Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112836

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

प्रतिनिधि हिन्दी मासिक पत्रिका
(संस्थापित सन् १९००)
फरवरी १९७५

112876

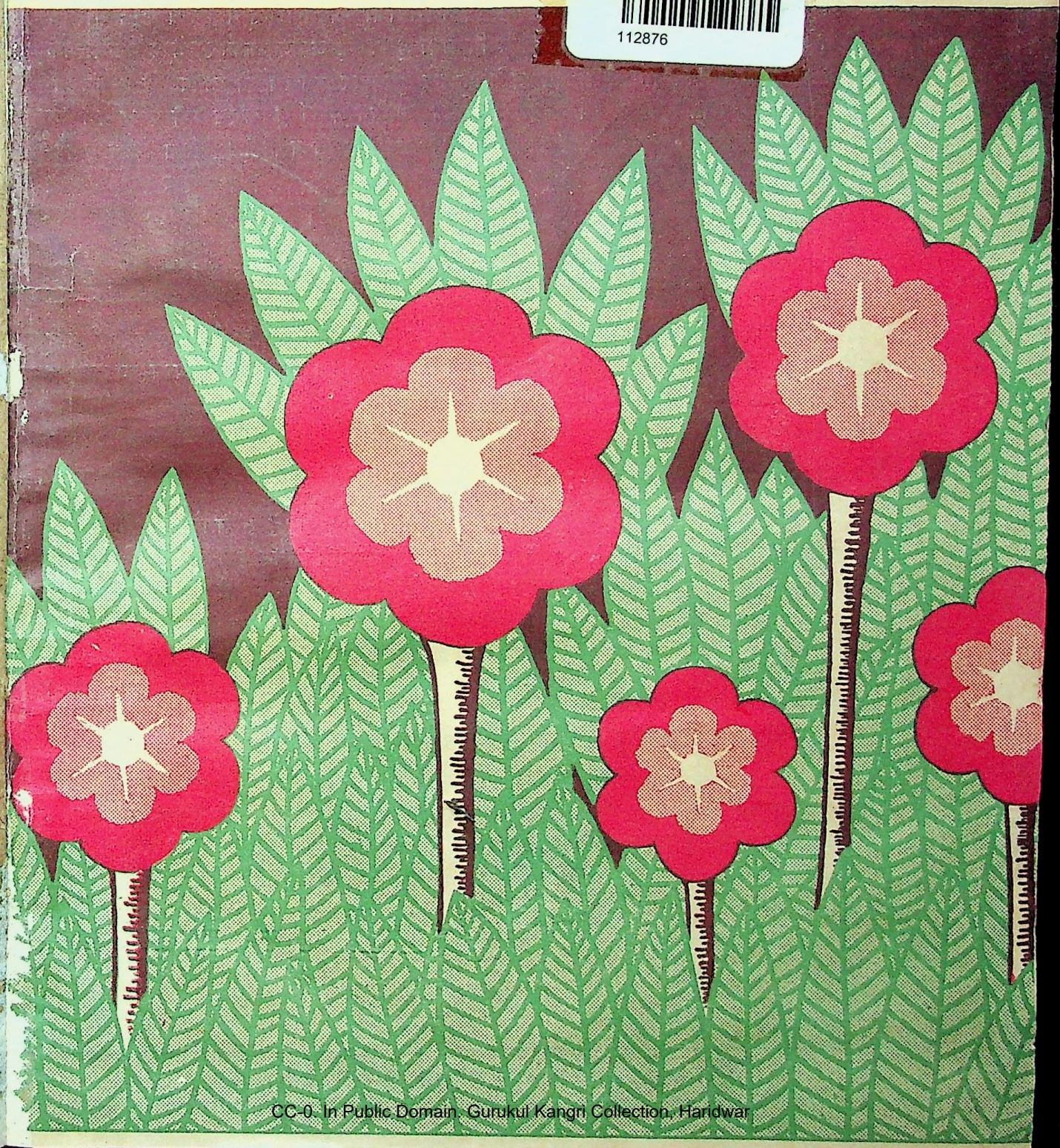

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध नवीनतम संस्करण

मघदूत : राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित : डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित

इस ललित काव्य का अनुवाद जिस मनोयोग से राजा लक्ष्मणसिंह ने किया उसी सामर्थ्य का कौशल डॉ० श्यामसुदरदास ने संपादन में दिखाया है। बड़े आकार-प्रकार की इस कलात्मक पुस्तक की साज-सज्जा विख्यात कलाकार असितकुमार हालदार के चित्रों से की गई है। संस्कृत-हिन्दी छंदों के साथ-साथ भाषा में अर्थ देकर व कठिन संस्कृत शब्दों के सरल रूप देकर ग्रंथ को अनुपम बनाया गया है। यह नवीन संस्करण अब पुनः उपलब्ध हो गया है। शीघ्र कला-काव्य-प्रेमी पाठक आर्डर भेजने की कृपा करें।

मूल्य १२·०० रुपये

कुमारसंभव : पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

कुमारसंभव महाकवि कालिदास की अमर रचनाओं में एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। यह पुस्तक उसका छायानुवाद है। माता पार्वती के जन्म से लेकर महादेव शिव के साथ वन में विहार करने तक की सभी मनोरम कथायें सरल भाषा में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे महारथी विद्वान् लेखक ने दी हैं। यह कथा और उसकी भाषा दोनों ही ललित हैं। पढ़ने में उपन्यास का आनन्द मिलता है।

नवीन सजधज के साथ मुद्रित संस्करण का मूल्य ५·०० रुपये

पुरातत्त्व निबंधावली : श्री राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् राहुल जी द्वारा प्रणीत ये अप्राप्य लेख जगह-जगह से इकट्ठा करके पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये गये हैं। विषय की उपयोगिता पर पुरातत्त्व के विद्यार्थियों से हमें कुछ कहना नहीं। अब तक हमारे देश में पुरातत्त्व पर क्या हुआ है और क्या आवश्यक है इस पर विद्वान् लेखक ने भली भाँति प्रकाश डाला है। यथास्थान में कलात्मक चित्र खुदाई में कैसे मिले, उनका परिचय देते हुए इन दुर्लभ चित्रों को भी छापा गया है।

बड़े आकार में पुनः मुद्रित संस्करण का मूल्य १४·०० रुपये

अपभ्रंश पाठमाला : श्री नरोत्तमदास स्वामी एम० ए० विशारद

अपभ्रंश भाषा का साहित्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। और भाषा विज्ञान की दृष्टि से तो उसका गौरव अद्वितीय है। साहित्यशास्त्री जानते हैं कि आर्यवंशीय भाषाओं की जननी अपभ्रंश ही हैं। प्रथम भाग में मूल संकलन है, दूसरे भाग में मूल पाठों का शब्दार्थ, भावार्थ आदि दिया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन से पाठकों की संगृहीत अंशों में पर्याप्त गति हो सकेगी और अपभ्रंश के साहित्य का रसास्वाद साधारण कोष और व्याकरण की सहायता से, वे स्वतः ही कर सकेंगे। परीक्षार्थियों के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। दूसरा भाग अभी मुद्रणाधीन है—सम्भवतः शीघ्र ही पुस्तकाकार प्रकाशित हो जायगा।

प्रथम भाग का मूल्य ७·०० रुपये : द्वितीय भाग का मूल्य ९·०० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112876

जिन शहरों में स्टाकिस्ट नहीं हैं वहाँ के हेतु स्टाकिस्ट चाहिए।

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि।
६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश!

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं। चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इंच बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का ५·०० रु० है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिंग पृथक्। ४ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजी जायँगी। अधिक के लिए मूल्य पेशगी भेजिए।

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' से पुरस्कृत

गुप्त साम्राज्य का इतिहास

लेखक

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सुविख्यात लेखक एवं प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति के

प्रकाण्ड विद्वान्

डा० वासुदेवशरण उपाध्याय

गुप्त सम्राटों का काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। गुप्त काल में सारे बृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति अपने विकास के उच्च शिखर पर थी। धन्य था वह युग जब शिक्षा, साहित्य ही नहीं ललित कला को भी उन महान् गुप्त सम्राटों ने विकसित कर अपनी आदर्श शासन-प्रणाली को इतिहास की एक अमर निधि बना दिया। विद्वान् लेखक की इस रचना के समकक्ष हिन्दी ही नहीं अँगरेजी में भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। सभी इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। अनेक विश्वविद्यालयों की एम० ए० कक्षाओं की परीक्षाओं के लिए यह पाठ्य पुस्तक बन गयी है। स्नातकों ने ही नहीं जनता ने भी इस ग्रन्थ का स्वागत किया है। ग्रन्थ का तीसरा संस्करण दो भागों में छप कर तैयार है।

प्रथम भाग	**१०·०० रुपये**
द्वितीय भाग	**१२·५० रुपये**

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी

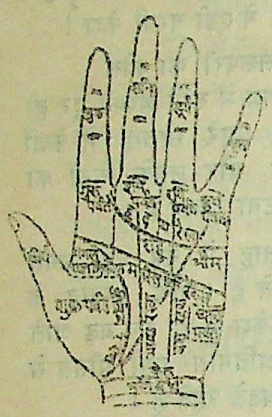

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

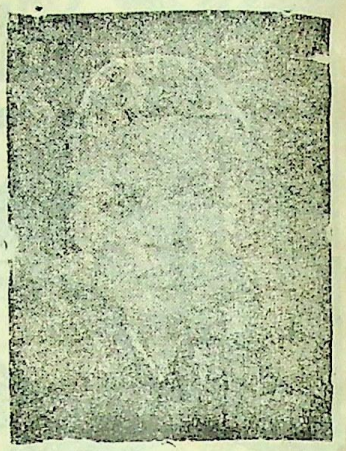

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिए :—कवि सम्राट् श्री सुमित्रानन्दन पंत जी क्या कहते हैं :—

श्री ज्योतिषाचार्य प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायणसिंह जी से मिलने का सौभाग्य मुझे दो बार मिला है। विगत जीवन के सम्बन्ध में मैंने जो प्रश्न पूछे उसका उत्तर भी मुझे बिलकुल ही ठीक मिला। आपको देश-विदेश के विद्वान् तथा प्रमुख व्यक्तियों से जो प्रशंसापत्र मिले हैं वह आपके चमत्कारिक गुणों के अनुरूप ही हैं। आप एक सफल सिद्ध तांत्रिक भी हैं। मुझे विश्वास है कि आपके बनाये हुए यंत्र तथा कवच भी आपकी वाणी की तरह ही अपना विशेष चमत्कार रखते हैं।

कामायनी-रहस्य

लेखक—श्री विजयबहादुरसिंह राठौर

विद्वानों की दृष्टि में कामायनी आधुनिक हिन्दी काव्य का गौरव ग्रन्थ है। विभिन्न विद्वानों ने कामायनी के अनेक भाष्य किये हैं। यों तो सभी की व्याख्या शैली महत्त्वपूर्ण है परन्तु कामायनी का सर्वोत्तम भाष्य 'कामायनी-रहस्य' में प्रगट कर लेखक की लेखनी अमर हो गयी है। सभी छः सर्गों के आख्यान, चारित्रिक विकास आदि का परिचय देते हुए विद्वान् लेखक ने शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक पद्धति की आधारशिला पर प्रत्येक पद के काव्य सौन्दर्य, छन्द, रस, अलंकार, शब्दशक्ति पर पूरा-पूरा प्रकाश डाला है।

दार्शनिक और पौराणिक संदर्भों का उल्लेख बड़ा ही हृदयग्राही हुआ है। विवादास्पद पदों की व्याख्या के कठिन कर्तव्य पूरी शक्ति और मनोबल के साथ निभाये गये हैं। यह एक ऐसी विशेषता है जो 'कामायनी-रहस्य' के अतिरिक्त कामायनी के अन्य भाष्यों में दी ही नहीं गयी। तपोनिष्ठ विद्वान् ने आत्म-विश्वास के साथ स्वमत स्थापन कर गंभीर स्थलों को सुगम और सुरुचिपूर्ण बना दिया है। विश्वास रहे कामायनी के रहस्योद्घाटन में कामायनी-रहस्य का योगदान सर्वोपरि है। प्रत्येक कामायनी अध्येता इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा करेगा और पूरा लाभ उठायेगा ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

पृष्ठ-संख्या ५२७ मूल्य १२·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्यवाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग्य लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य १०·०० रुपये।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य ६·०० रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवी सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य ५·०० रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओतप्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ६·०० रुपये।

एक क्रान्तिकारी के संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रांतिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आँखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्योरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ५·०० रुपये।

हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास—एक अध्ययन

लेखिका—कु० चन्द्रावतीसिंह एम० ए०

संसार की उन्नतिशील भाषाओं में जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुंवरानी जी ने हिन्दी साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर भाषा साहित्य की एक बड़ी कमी को दूर किया है। पृष्ठ-संख्या २७५, मूल्य ८·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	७७
२—शंख-पद्म : सांख्य-योग (२)—श्रीकुबेरनाथ राय	८५
३—सानेट—प्रो० सुरेशचन्द्र	९१
४—द्राविड़ सभ्यता की बात—श्रीपरिपूर्णानन्द वर्मा	९२
५—विनयपत्रिका के कुछ प्रमुख हस्तलेख, प्रकाशित संस्करण एवं टीकाएं—श्रीरामप्यारे त्रिपाठी	९४
६—साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र बाबू श्यामसुंदरदास—कु० प्रमिला खन्ना, एम० एस्-सी०	९९
७—भीलन लूटीं गोपिका वेही अर्जुन वेही वाण—डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	१०२
८—पेंट, वार्निश तथा रंग (१)—प्रो० पुरुषोत्तमदास स्वामी, एम० एस्-सी०, एम० एस०, विशारद	१०५
९—भारतेन्दु युग के एक दीप्तिमान कविरत्न—कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक'	११३
१०—एक जैन कवि द्वारा २५० वर्ष पूर्व का बंगाल-वर्णन—श्री अगरचंद नाहटा	११९
११—बेचारे—श्री राममोहन शर्मा	१२२
१२—मान्यताओं के प्रति आस्था—श्री शम्सुद्दीन	१२३
१३—राम शास्त्री—श्री नारायण चन्द्र भारती	१२६
१४—कल्पना—श्री रामस्वरूप खरे, एम० ए०, बी० एड०, साहित्यरत्न	१२९
१५—बुद्धि का व्यापार—श्री० वी० स० खांडेकर	१३०
१६—आँखों का डाक्टर—श्री जैजैराम टण्डन	१३३
१७—फुर्सत का जीवन—श्री नरेन्द्र छाबड़ा	१३४
१८—नवीन प्रकाशन	१३८
१९—मनोरंजक संस्मरण	१४१
२०—१९२५ की सरस्वती—महाप्रलय—श्री विश्वनाथ शर्म्मा	१४२

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

छेड़छाड़

'श्री विनोद' शर्मा की व्यंग्य कविताओं का संग्रह

रचनाएँ साहित्यिक और ऐतिहासिक हैं। इस संग्रह में घंटाघर, करेलालोचनी, एक अदबी खत, आलू का पेड़, अधकचरा, महाश्वेता, रघुपतिसहाय के लिए आल्हा और विनोद शर्मा की मरम्मत आदि विशिष्ट रचनाएँ पाठकों को हँसाती-गुदगुदाती हैं। पुस्तक सचित्र सजिल्द है। अच्छे कागज पर सुन्दरता से छापी गई है। इसकी रचनाएँ बहुचर्चित हैं पर सार्वजनिक रूप में अब प्रकाश में आ रही हैं। मूल्य केवल ६·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

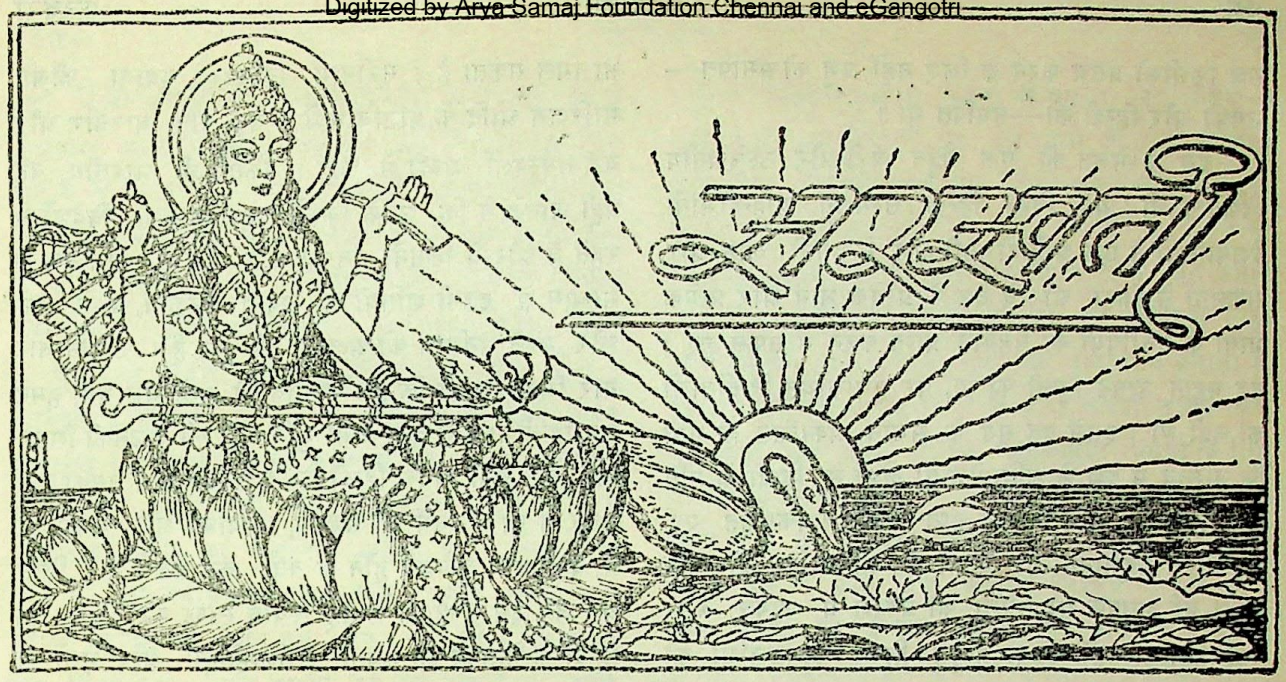

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

वर्ष ७६
पूर्ण संख्या ९०२

इलाहाबाद : फरवरी १९७५ : माघ २०३१ वि०

खण्ड १
संख्या २

सम्पादकीय

विश्व हिन्दी सम्मेलन—कुछ लोगों का कहना है कि अब चमत्कारों (मिराकिल्स) का युग नहीं रहा, किन्तु जनवरी में नागपुर में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन ने इसे भ्रम प्रमाणित कर दिया है। वह एक चमत्कार था। उपेक्षिता हिन्दी का भी ऐसा विशाल सम्मेलन हो सकता है और प्रबुद्ध जनता उसमें इतना उत्साह दिखलाएगी—इसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी। वास्तव में वह एक सारस्वत महायज्ञ था जिसने हिन्दी की नैसर्गिक शक्ति, विस्तार और उसके प्रति भारत तथा विदेशों के लोगों के प्रेम को प्रमाणित कर अश्रद्धालु और संदेहग्रस्त लोगों को आश्चर्य में डाल दिया। उसके पीछे निष्ठा और प्रभु की प्रेरणा एवं कृपा थी जैसा कि उसके समापन के समय गाये गये संत ज्ञानेश्वर के एक पद के आरंभ में कहा गया था :

आता विश्वात्मके देवें, येणें वाग्-यज्ञें तोषावें
तोषोनि मज द्यावें, पसाय-दान हें,

(हे विश्वव्यापी ईश्वर, तेरी ही कृपा से यह वाणीरूपी यज्ञ करने में सफल हो गया हूँ। अतः तेरे ही चरणों में इसे अर्पित कर रहा हूँ।)

वास्तव में सत्कर्म की सफलता में भगवान् की सहायता में अटल विश्वास, मनुष्यमात्र की मौलिक एकता और उस एकता को स्थापित करने में हिन्दी की सामर्थ्य में अनन्य विश्वास ही इस चमत्कार की कुंजी थे। और वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ किसीको प्रसन्न करने के लिए नहीं, प्रभु को समर्पित—उनको और हिन्दी को—समर्पित था।

इस सम्मेलन की एक बहुत बड़ी और उल्लेखनीय विशेषता थी : यह विश्व हिन्दी सम्मेलन अहिन्दीभाषी देशवासियों ने एक अहिन्दीभाषी क्षेत्र में इतनी शान और सफलता से किया और वे देश के प्रत्येक भाग और प्रत्येक भाषा के मनीषियों का सहयोग प्राप्त करने में सफल हुए। यह महान् उत्सव हिन्दी का था, पर तथाकथित हिन्दीवालों का नहीं था। इससे यह सूर्य के समान प्रकाशित हो गया कि वास्तव में देश के अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रति कितनी प्रगाढ़ और विस्तृत सुप्त और अप्रकाशित एवं अप्रचारित सद्भावना है। इसने उस अविज्ञापित और कम जानी हुई व्यापक सद्भावना को प्रकाश में लाकर बहुत बड़ा काम ही नहीं किया प्रत्युत हिन्दी कार्यकर्ताओं को प्रेरणा देकर उनके मन में एक नवीन आत्म-विश्वास उत्पन्न कर दिया। अपने ही क्षेत्र में जो वास्तविक हिन्दी-प्रेमी, एक ओर सरकार की हिन्दी के प्रति उदासीनता से, और दूसरी ओर अवसरवादी तथाकथित किन्तु चतुर और सरकार की कृपा से हिन्दी संस्थाओं की दुर्दशा करनेवालों के आपत्तिजनक क्रिया-कलाप से हतोत्साहित हो गये थे और जिनका मनोबल गिर गया था, उनमें आशा की एक किरण उत्पन्न हुई।

इस सम्मेलन की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपलब्धि इतिहास में पहिली बार विदेशों में बसे हिन्दीभाषियों को निमंत्रित कर उन्हें अपने पूर्वजों की भूमि और उसकी भाषा का दिग्दर्शन कराना और उनमें भारतीय संस्कृति के गौरव और हिन्दी भाषा की शक्ति और उन्नति से परिचित कराना थी। यह वृहद् 'भरत-मिलाप' था। उन विदेशी हिन्दी-भाषियों के पूर्वज अधिकतर कुलियों के रूप में उन देशों में ले जाये गये थे जहाँ उन्हें एक अजनबी संस्कृति, भाषा और वातावरण में कष्टमय जीवन बिताना पड़ा, किन्तु वे अपने साथ तुलसीदास की रामायण, हनुमान-चालीसा और गीता ले गये थे। गीता तो वे अशिक्षित कुलीगीरी करनेवाले समझ नहीं सकते थे। उनमें से कोई-कोई धार्मिक दृष्टि से उसका पारायण कर लेते थे, किन्तु रामायण ने उनकी भाषा, उनके धर्म, उनकी भारतीय संस्कृति और नैतिकता को जीवित रखा। रामायण की शक्ति, प्रभाव और महत्व का इससे बड़ा प्रमाण और कौन सा मिल सकता है? सुरीनाम, ट्रिनिडाड, गुयाना, फीजी, मारिशस आदि के प्रतिनिधियों ने यह बात बारबार और बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में कही। कितने ही भारतीय यह नहीं जानते थे कि उनके कितने सहभाषाभाषी विदेशों में रहते हैं और वे कितनी निष्ठा और प्रेम से रामायण के माध्यम से इतनी शतियों से अपनी संस्कृति, अपने धर्म और अपने मनोबल को अक्षुण्ण रखे हुए हैं। उन्होंने बार बार शिकायत की कि हम भारतवासी उन्हें भूल गये, हमने उन हिन्दीभाषियों की कभी सुधि नहीं ली। उनकी शिकायत इतनी सही थी कि हिन्दी के ठेकेदारों के पास उसका कोई उत्तर न था। उनमें जो सहृदय, न्यायप्रिय और समझदार थे, वे सिवाय लज्जित होने के क्या कर सकते थे? किन्तु अब जब इस सम्मेलन ने यह स्थिति स्पष्ट कर दी है, तब हिन्दी के नेताओं को अपनी कर्त्तव्यहीनता और भूलों का परिहार करने के लिए ठोस और व्यावहारिक कार्य करके इस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए। यहाँ यह कह देना असंगत न होगा कि स्वामी कृष्णानन्दजी की तरह दो-चार सहृदय और दूरदर्शी लोगों ने कुछ काम अवश्य किया, किन्तु वह सब व्यक्तिगत स्तर पर और छुटपुट था। आवश्यकता इस बात की है कि अब यह काम योजनाबद्ध और स्थायी रूप से किया जाय।

इस सम्मेलन में दो बातें और उभरकर सामने आयीं—एक तो हमारे दूतावासों में हिन्दी का प्रायः सम्पूर्ण बहिष्कार और दूसरा विदेशियों द्वारा भारत में आकर हिन्दी की उपेक्षा और अंग्रेजी के वर्चस्व को देखकर आश्चर्य करना और दुखी होना। पहिले का पूर्ण उत्तरदायित्व भारत सरकार पर है। उसका विदेश मंत्रालय पूर्णरूप से हिन्दी-विरोधी है। राजदूत और राजदूतावासों के कार्यकर्ता या तो हिन्दी जानते ही नहीं, या कम या अधिक हिन्दी जानते हुए भी उसकी जानबूझकर उपेक्षा करते हैं। कई वर्ष हुए हमारे एक मित्र इटली गये थे। उन्होंने बतलाया कि रोम के भारतीय दूतावास के कई दर्जन अधिकारियों में केवल एक व्यक्ति हिन्दी जानता था। और परम आश्चर्य यह था कि वह भारतवासी नहीं, एक इटालवी था। महायुद्ध में वह भारत में था और चूँकि इटली ब्रिटेन से लड़ रहा था, शत्रु देश का नागरिक होने के कारण वह पकड़कर देवली के विदेशी-बंदी-शिविर में कैद कर लिया गया था। समय बिताने के लिए उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ हिन्दी सीखी थी। स्वतंत्रता के बाद जब हमारा दूतावास इटली में खुला, तब वह वहाँ स्थानीय क्लर्क के रूप में ले लिया गया। हिज़ ऐक्सेलेंसी राजदूत महोदय एक भारतीय आई० सी० एस० आफ़िसर थे जो अपनी अंग्रेज़ियत के कारण विदेश सेवा में ले लिये गये थे। यद्यपि वे उत्तर भारत के थे तथापि उन्हें आई० सी० एस० सुलभ हिन्दी से घृणा थी। एक दूसरा उदाहरण एक अन्य मित्र ने बतलाया। वे अमरीका गये थे, और केलिफोर्निया-स्थित भारतीय कांसलेट में किसी काम से गये। वहाँ कार्यालय के मुख्यद्वार पर नामपट्ट लगा था जिसके ऊपरी भाग में सिंहवाला भारत का राजचिह्न अंकित था, किंतु उसके नीचे का आदर्शवाक्य 'सत्यमेव जयते' अशुद्ध लिखा था। कांसल महोदय का ध्यान इस भयंकर भूल की ओर आकर्षित किया गया, किन्तु उन्होंने 'इट डज़ नॉट मैटर' (इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं) कहकर टाल दिया। वे एक अहिन्दीभाषा क्षेत्र के थे और देवनागरी लिपि से भी अपरिचित थे। जब हमारी सरकार ऐसे अंग्रेज़ी फ़ैनेटिक्स और हिन्दी क्या देवनागरी लिपि से भी अपरिचित व्यक्तियों को उनकी पाश्चात्य वेशभूषा, पाश्चात्य रहन-सहन और अंग्रेज़ी के अंग्रेज़ों की नकल के उच्चारण के बल पर चुनती है, तब वे विदेशों में भारतीय संस्कृति या भाषा के संबंध में विदेशियों की क्या धारणा बनाएँगे—यह कल्पना करना कठिन नहीं है। अवश्य ही विदेश विभाग से बाहर भेजे जाने वालों में कुछ अपवाद भी हैं, किन्तु एक तो वे बहुत कम हैं, दूसरे विदेश मंत्रालय की अंग्रेज़ीपरस्ती के कारण उन्हें अपने सांस्कृतिक ज्ञान या राजभाषा की जानकारी का उपयोग करना कठिन हो जाता है। विदेशियों की यह शिकायत भी थी कि उनके हिन्दी बोलने के बावजूद हिन्दी-भाषी उनसे अंग्रेज़ी में बात करते हैं। इसका एक मज़ेदार उदाहरण हमने इसी सम्मेलन में स्वयं देखा। हमारे एक वरिष्ठ हिन्दी के प्रोफ़ेसर एक विदेश में कुछ दिनों हिन्दी की 'प्रोफ़ेसरी' कर आये थे। संयोग से उनके परिचित उस देश के एक हिन्दी प्रोफ़ेसर इस सम्मेलन में प्रतिनिधि होकर आये थे। उनको देखते ही हमारे प्रोफ़ेसर उनकी ओर बढ़े और बड़े तपाक से हाथ मिलाने के लिए हाथ बढ़ा कर बोले Hello, Professor, how do you do ? उस विदेशी प्रोफ़ेसर ने प्राञ्जल हिन्दी में उत्तर दिया, 'आपकी कृपा है। आप कैसे हैं' ? हमारा चेहरा लज्जा से विवर्ण हो गया। जब हिन्दी से रोटी-रोज़ी कमानेवालों का यह हाल है, तब सामान्य तथाकथित शिक्षित लोग यदि हिन्दी जाननेवाले विदेशियों के हिन्दी में किये प्रश्नों का उत्तर अंग्रेज़ी में देते हैं तो कौन सी आश्चर्य की बात है? रहा बाजारों में (जैसे कनाट प्लेस में) दूकानों या निजी मकानों में अंग्रेज़ी नामपट्टों का बाहुल्य। यह देश में भाषा का वातावरण बनाता है, जिसका अप्रत्यक्ष प्रभाव लोगों में भाषा चेतना उत्पन्न और दृढ़ करने और भाषा के लिए वातावरण बनाने के लिए अत्यन्त सहायक होता है। जब इस मनोवैज्ञानिक और सहज बुद्धि की सामान्य बात डा० लोहिया और सोशलिस्ट दल ने कही और अंग्रेज़ी साइनबोर्डों पर तारकोल पोतने की योजना बनाई तब अंग्रेज़ी फैनेटिक्स ही नहीं, कितने अन्य दल के तथा अंग्रेज़ी से प्रभावित लोगों ने भी इसका विरोध किया। निजी दूकानदार और संस्थान यदि अंग्रेज़ी की अपनी भक्ति का इतना सार्वजनिक प्रदर्शन करके हिन्दी वातावरण बनने में इतनी बाधा उत्पन्न करते हैं, तो क्या किया जाय ? हिन्दीभाषी उद्योगपतियों, जैसे बिरला, जे० के०, जैपुरिया, मोदी आदि की निजी बहियाँ चाहे मुड़िया में लिखी जाती हों (जिसका हमें ज्ञान नहीं है) किन्तु उनके संस्थानों के कार्यालयों का सारा काम, पत्राचार अंग्रेज़ी में ही होता है। उनके कार्यालयों में जाने से मालूम होता है कि हम इंग्लैण्ड के किसी कार्यालय में पहुँच गये हैं। एक बड़े उद्योगपति ने तो अपने कार्यालय के अधिकारियों और कर्मचारियों को अंग्रेज़ी परिधान में आना अनिवार्य कर दिया था। हमने यह कई वर्ष पूर्व देखा था। पता नहीं कि वह अनिवार्यता अब भी चल रही है या नहीं। ये संस्थान अपने अधिकांश विज्ञापन भी अंग्रेज़ी में देते हैं और यदि कुछ हिन्दी में दिये भी तो अधिकतर अपने और अपने मित्र उद्योगपतियों के हिन्दी पत्रों में। वह भी इन पत्रों की आय बढ़ाने के लिए। यही नहीं, हमारे विश्वविद्यालयों में भी अधिकांश काम अंग्रेज़ी में होता है क्योंकि वे अंग्रेज़ीपरस्तों के गढ़ हैं। उत्तर प्रदेश में केवल माध्यमिक शिक्षा परिषद् ही ऐसी शिक्षा संबंधी संस्था है जिसका काम हिन्दी में होता है। यही नहीं, अंग्रेज़ी का इस देश में इतना दबदबा है कि हमसे हमारे एक मित्र ने बताया कि ज्ञानपीठ के पिछले पुरस्कार-वितरण समारोह में भी अंग्रेज़ी में ही भाषण दिया गया। श्री बेंदरे की

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशस्ति हिन्दी में और श्री महन्ती की अंग्रेज़ी में पढ़ी गयी, किन्तु कृपाकर उसका अनुवाद हिन्दी में भी वितरित किया गया। दो अधिकारियों ने समारोह के अंत में धन्यवाद दिया। दोनों ही ने वह केवल अंग्रेज़ी में दिया। जब ज्ञानपीठ ऐसी संस्था अपना कार्य पूर्णतः राष्ट्रभाषा में न करके अंग्रेज़ी से इतनी चिपकी हुई है तो सरकारी और अर्द्ध सरकारी सांस्कृतिक संस्थाओं में हिन्दी का प्रयोग न करने के लिए टीका टिप्पणी करना व्यर्थ है। अतएव विदेशी प्रतिनिधियों ने इस देश में हिन्दी की उपेक्षा और अंग्रेज़ी के प्रचलन की जो शिकायत की वह बहुत ठीक थी।

हिन्दी के अवमूल्यन की मुख्य दोषी सरकार है। श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि भारत में १४ राष्ट्रभाषाएँ हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को तीन भाषाएं पढ़नी चाहिए—मातृभाषा, एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा, जो इस देश में अंग्रेज़ी उपयुक्त है और सम्पर्क भाषा अर्थात् हिन्दी। हिन्दी के लिए उनके 'सम्पर्क भाषा' के प्रयोग से हमें आश्चर्य हुआ। राष्ट्रभाषा, राजभाषा और सम्पर्क भाषा के अलग अलग अर्थ हैं। संविधान के अनुसार हिन्दी भारत की राजभाषा है। जब सरकार की प्रधान मंत्री हिन्दी को 'राजभाषा' न कहकर सम्पर्क भाषा कहती हैं तब हम इसे हिन्दी का अवमूल्यन और संविधान के विरुद्ध समझते हैं। यदि वह 'सम्पर्क भाषा' मात्र है, उसका उपयोग देश के भीतर के क्षेत्रों में आपसी सम्पर्क के लिए ही है तो उसके प्रयोग का सरकार, विदेश मंत्रालय और राजदूतावासों में होने का कोई औचित्य नहीं। किन्तु यदि वह भारत की 'राजभाषा' है (जिसे हम संविधान के अनुसार राज भाषा मानते हैं) तो राजदूतावासों में उसका उपयोग अनिवार्य है। रही सम्पर्क भाषा। वह तो जहाँ तक हमारी सरकार और तथाकथित भारतीय शिक्षित वर्ग एवं अधिकारियों का प्रश्न है, आज वास्तविक रूप से अंग्रेज़ी है। तब हिन्दी किनके लिए संपर्क भाषा होगी? जहाँ तक अशिक्षित जनता का संबंध है, हिन्दी शतियों से—बिना सरकार की सहायता, प्रोत्साहन और प्रयास के—देश की संपर्क भाषा बनी हुई है। इसके लिए उसके प्रोत्साहन देने या न देने से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। हमारी सरकार ने हिन्दी का इतना अवमूल्यन कर दिया है कि उसके दल—कांग्रेस—के अधिवेशनों में उसका जितना प्रयोग बीस साल पहले होता था उसका अब मुश्किल से २०/२५ प्रतिशत होता है। हिन्दी की वर्तमान अवस्था का मुख्य कारण भारत-सरकार है क्योंकि 'राजा कालस्य कारणम्।' यदि वह हिन्दीनिष्ठ हो, हिन्दी में काम करे और यदि वह हिन्दी का 'फैशन' चला दे तो अधिकारी, शिक्षित वर्ग, निजी संस्थान आदि सब उसकी नकल करने लगें। किन्तु केवल सरकार को दोष देकर हिन्दी-हितैषी और हिन्दी-कार्यकर्त्ता अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकते। उन्हें जनता को जाग्रत कर उसमें हिन्दी-चेतना उत्पन्न करके उसके द्वारा हम अंग्रेज़ीपरस्त सरकार को हिन्दी को उसका विधिसम्मत स्थान और अधिकार देने के लिए अथक परिश्रम करना होगा। यह कैसे हो—इस पर हम कभी स्वतंत्र रूप से विचार करेंगे।

इस सम्मेलन से जो एक और बात देशवासियों को मालूम हुई वह यह कि विश्व के ९० से अधिक विश्व-विद्यालयों में हिन्दी की उच्च शिक्षा दी जाती है। विदेशों के हिन्दी ज्ञाताओं का स्तर कितना ऊँचा है और उन्हें हमारी भाषा पर कितना अधिकार है यह अमरीकी, पश्चिमी योरप, सोवियत रूस, अन्य साम्यवादी देशों तथा जापान आदि के प्रतिनिधियों के भाषणों से प्रत्यक्ष हो गया। श्रोताओं को उनकी प्राञ्जल भाषा और धारा-प्रवाह भाषणों को सुनकर आश्चर्य और हर्ष हुआ। इतने देशों में हिन्दी के उच्च शिक्षण से यह स्पष्ट हो गया कि चाहे हम और हमारी सरकार दिये के नीचे के अँधेरे के समान हिन्दी के महत्त्व को न समझें, किंतु विदेशों ने उसके महत्त्व और उसके ज्ञान के महत्त्व को भली भाँति समझ और मान लिया है।

एक और उल्लेखनीय बात इस सम्मेलन में भारत की चौदह भाषाओं के प्रतिनिधियों की उपस्थिति और प्रत्येक के एक एक शीर्षस्थ विद्वान् का सम्मान करना था। इससे स्पष्ट हो गया कि हिन्दी सब भारतीय भाषाओं का आदर ही नहीं करती, उनके प्रति उसमें सद्भावना भी है, तथा दूसरी ओर उन भाषाओं में भी हिन्दी के प्रति काफ़ी सद्भावना है। कहीं-कहीं निहित स्वार्थ के लोगों में जो हिन्दी का विरोध है, उसे हमारे अंग्रेज़ी समाचारपत्र बहुत बढ़ा चढ़ाकर प्रकाशित करते हैं क्योंकि इन अंग्रेज़ीपरस्त अंग्रेज़ी समाचार-पत्रों का अंग्रेज़ी के प्रचार और हिन्दी के दबाने में निहित स्वार्थ है।

एक और महत्त्वपूर्ण बात जिस पर बल दिया गया वह देवनागरी लिपि का प्रचार था। यों तो १९०५-०६ में बंगाल के न्यायमूर्ति स्व० श्री शारदाचरण मित्र ने 'देवनागर' नामक मासिक पत्र निकालकर देवनागरी लिपि में भारतीय भाषाओं को छापकर इसकी व्यावहारिकता प्रमाणित कर दी थी, तथा बाद में संसदीय हिन्दी परिषद् ने भी उसे पुनर्जीवित कर श्री मन्नूलाल द्विवेदी के सम्पादकत्व में यह काम किया था। आज भी लखनऊ से श्री नन्दकुमार अवस्थी अपने 'वाणी सरोवर' नामक त्रैमासिक में अन्य भारतीय भाषाओं के ही नहीं प्रत्युत अरबी और फ़ारसी के गौरव ग्रंथों को भी देवनागरी लिपि में हिन्दी अनुवाद समेत निकालकर बड़ा उपयोगी कार्य कर रहे हैं, किंतु दूसरी भाषाओं को अपनी लिपियों के अतिरिक्त देवनागरी में लिखने का अभियान आचार्य विनोबा भावे ने योजना बद्ध रूप से चलाया है और उनका सर्वोदय संघ इस महत्त्वपूर्ण कार्य का प्रचार कर रहा है। योरप में (रूसी भाषा को छोड़कर) सभी भाषाएँ एक ही (रोमन) लिपि में लिखी जाती हैं। नयी भाषा सीखनेवालों को दो कठिनाइयाँ होती हैं: पहिली, उसकी लिपि का सीखना और फिर भाषा का सीखना। योरप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

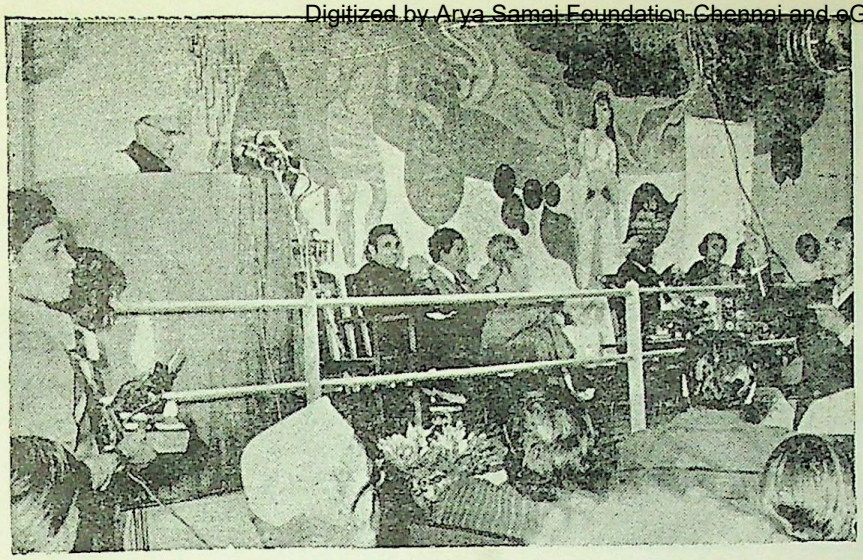

मंच का दृश्य

(बायें से) डा० कर्णसिंह, यूनेस्को के प्रतिनिधि, काका कालेलकर, अध्यक्ष सर शिवसागर रामगुलाम, श्रीमती इंदिरा गांधी, श्री नायक, श्री शेवड़े (महासचिव)

सम्मेलन के **अध्यक्ष** भाषण देते हुए

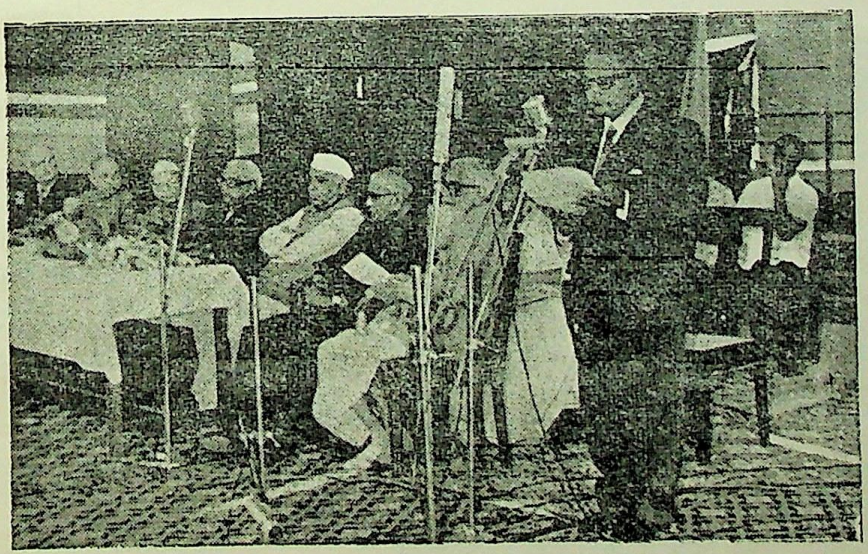

मारीशस के क्रीडा एवं युवा कल्याण मंत्री श्री दयानन्द वसन्तराम राष्ट्र-संघ में हिन्दी को मान्यता दिलाने का प्रस्ताव करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा सम्मेलन का संबोधन

समापन भाषण देते हुए केन्द्रीय रेल मन्त्री श्री कमलापति त्रिपाठी का भाषण

विश्व हिन्दी सम्मेलन के महासचिव श्री अनन्त गोपाल शेवड़े प्रतिनिधियों और अतिथियों को समापन के समय धन्यवाद देते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडाल में प्रतिनिधियों और दर्शकों का दृश्य

चकोस्लोवाकिया के प्रतिनिधि प्रो० स्मैकेल भाषण देते हुए

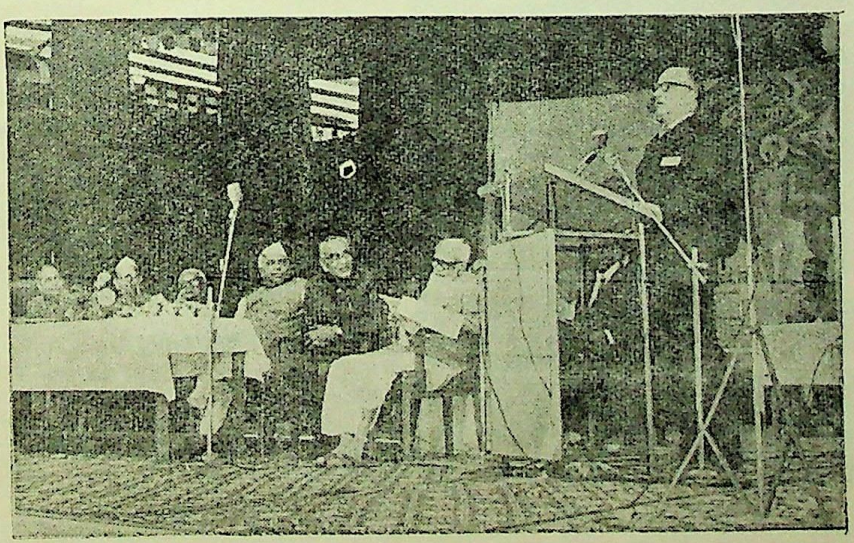

रूस के प्रतिनिधि श्री चौलीशेव भाषण देते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

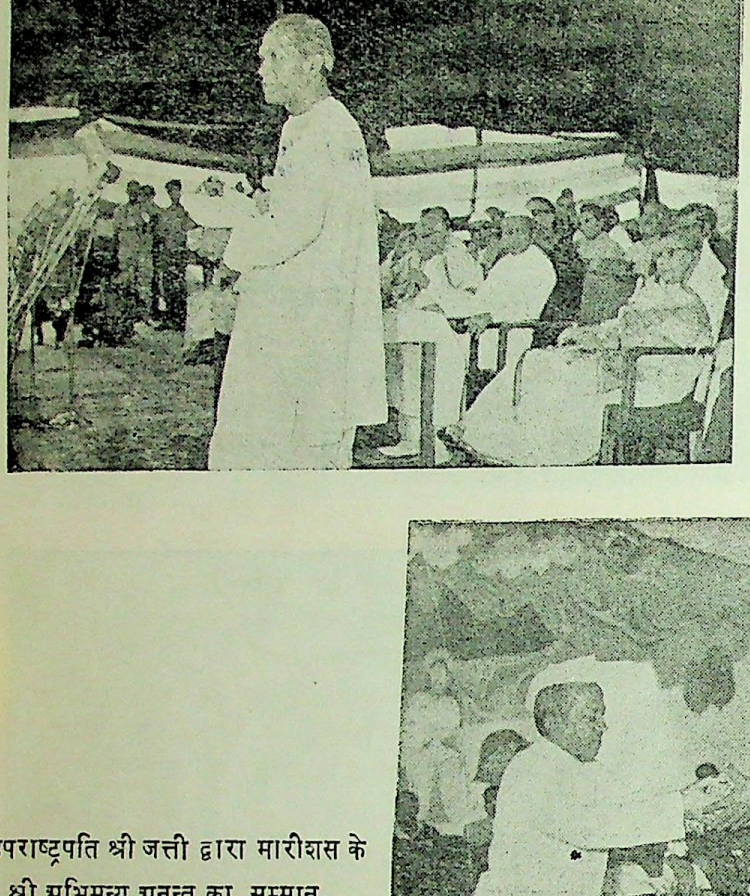

बंगला साहित्यकार श्री प्रेमेन्द्र मित्र का सम्मान होने पर आभार प्रदर्शन

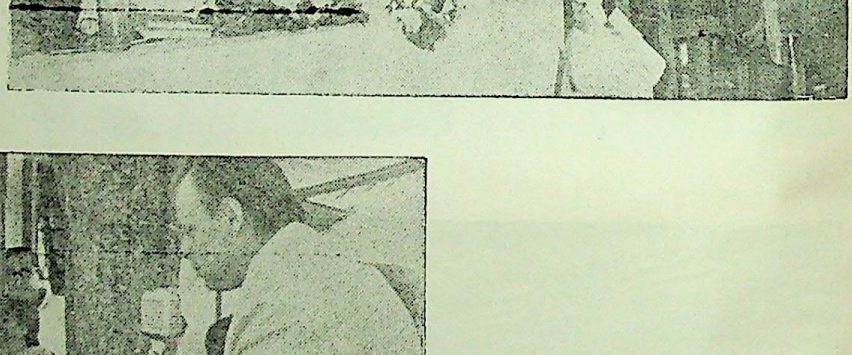

उपराष्ट्रपति श्री जत्ती द्वारा मारीशस के श्री अभिमन्यु अनन्त का सम्मान

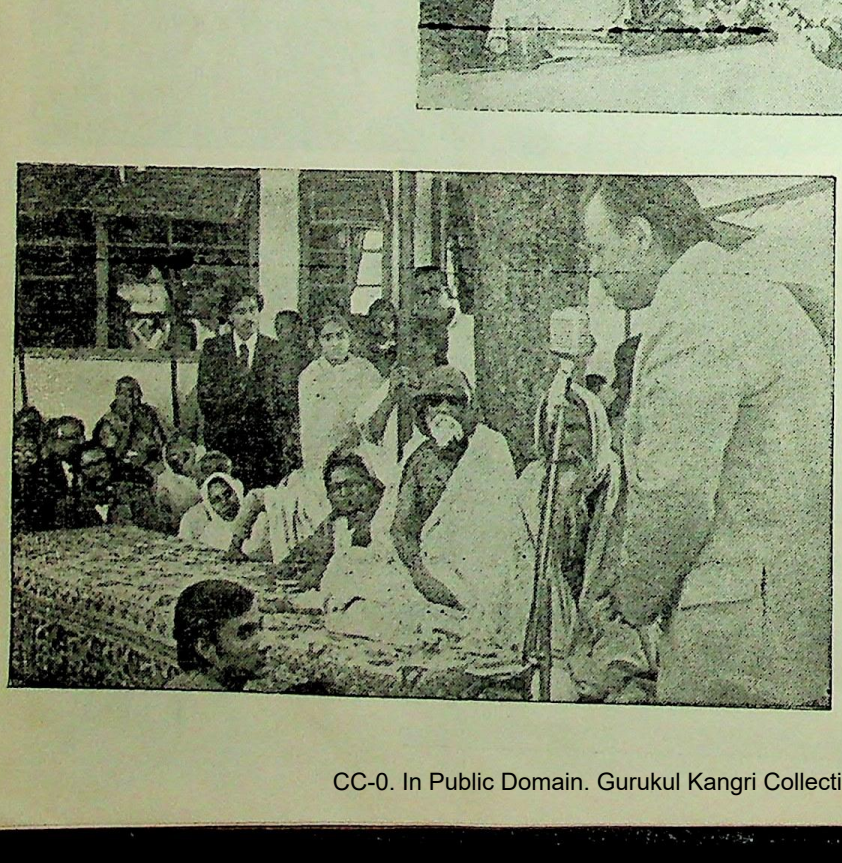

आचार्य भावे के आश्रम में विदेशी प्रतिनिधियों की ओर से पश्चिमी जर्मनी के प्रतिनिधि प्रो० लुत्से का भाषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11876

में सर्वत्र एक लिपि होने के कारण पहिली कठिनाई नहीं होती, और इस लिए दूसरी भाषाओं को सीखना अपेक्षाकृत सरल होता है। इसीलिए वहाँ अनेक व्यक्ति कई योरोपीय भाषाएँ सरलता से सीख लेते हैं। यदि सब भारतीय भाषाओं की पुस्तकें देवनागरी में उपलब्ध होने लगें तो उनका सीखना सरल हो जाय क्योंकि देश का अधिकांश भाग (हिमाचल, हरियाना, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात) उससे भली भाँति परिचित है। भारत की एकता के लिए यह परम आवश्यक है। अतएव इस सलम्मेन ने देश की सभी भाषाओं के लिए नागरी लिपि के वैकल्पिक उपयोग पर बल देकर बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

केन्द्रीय विदेशमंत्री श्री चह्वाण की अध्यक्षता में जो गोष्ठी हुई उसमें राष्ट्रसंघ में उसके उपयोग की भाषाओं में हिन्दी को भी मान्यता दिलाने पर देश और विदेश के प्रतिनिधियों ने बल दिया। फीजी के एक मंत्री ने इस संबंध में प्रस्ताव भी रखा, जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया, किन्तु विदेशों के—विशेषकर हिन्दीभाषी विदेशों के—प्रतिनिधियों ने स्पष्टरूप से कहा कि भारत सबसे बड़ा हिन्दीभाषी देश है, और राष्ट्रसंघ में उसे ही इस मामले को उठाना चाहिए। उन्होंने तथा कई अन्य देशों (जैसे रूस, जर्मनी आदि) के प्रतिनिधियों ने आश्वासन दिया कि उनके देश राष्ट्रसंघ में इस प्रस्ताव का समर्थन करेंगे। अतएव राष्ट्रसंघ में हिन्दी को स्थान दिलाने की पहल करने का उत्तरदायित्व भारत सरकार पर है। आज की भारत सरकार भले ही कभी-कभी संविधान में राज-भाषा के रूप में स्वीकार होने के कारण हिन्दी के संबंध में मीठी-मीठी बातें कर दे, कुछ प्रपत्र, परिपत्र, कुछ साइनबोर्ड, कुछ आदेशों और अध्यादेशों और विधेयकों के अनुवाद हिन्दी में निकाल दे तथा सूचना विभाग से पुस्तकें—विशेषकर सरकारी प्रचार संबंधी पुस्तकें—भी हिन्दी में निकाल दे, किन्तु यह बात गोपनीय नहीं है कि उसका अधिकांश कार्य मुख्य रूप से आज भी अंग्रेज़ी में होता है। सेवा आयोग में उसकी स्थिति सर्वविदित है। कुछ 'सरकारी साहित्यकारों' को छोड़कर उसकी हिन्दी निष्ठा में सामान्य हिन्दीवाले को (चाहे वे हिन्दीभाषी या अहिन्दी भाषी हों) व्यापक संदेह है। इसलिए हमें यह विश्वास नहीं कि वह इस संबंध में कोई प्रभावी कार्य करेगी, और करे भी तो स्वयं उसके प्रतिनिधियों में (जो राष्ट्रसंघ में जाते है) कितने हैं जो हिन्दी में भाषण दे सकते हैं और जो दे भी सकते हैं उनमें से कितने हिन्दी में भाषण देना पसंद करेंगे? किन्तु यह स्थिति सदैव नहीं बनी रहेगी। शीघ्र या देर में देश का स्वाभिमान जगेगा और वह अपनी सरकार और अपने प्रतिनिधियों को वहाँ हिन्दी बोलने को विवश करेगा। अतएव राष्ट्रसंघ में हिन्दी को मान्यता दिलाना आवश्यक है और इसके लिए सरकार पर दबाव डालना परमावश्यक है।

एक गोष्ठी में कहा गया कि संसद के हिन्दीभाषी सदस्य भी प्रायः अंग्रेज़ी में बोलते हैं, और हमारे कितने ही नेता और छोटे-बड़े नौकरशाह, बड़े उद्योगपति अपने बच्चों को पब्लिक या अन्य अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों में शिक्षा देते हैं। इससे इस देश में अंग्रेज़ी की जड़ ही मजबूत नहीं होती, भविष्य में भी कार्य अंग्रेज़ी में होता रहेगा क्योंकि इसी वर्ग के लोगों के बच्चे अपने अंग्रेज़ी ज्ञान के कारण भविष्य में सेवा आयोग द्वारा उच्च सेवा के पदों पर चुने जायँगे। अतएव अंग्रेज़ी को बनाये रखने में उनका निहित स्वार्थ होगा। हमारा मत है कि ऐसे लोगों की काली सूचियाँ (ब्लैक लिस्ट) बनाकर जनता में प्रचारित करके उनकी करतूतों को खोलना चाहिए और इस बात का प्रचार करना चाहिए कि कम से कम हिन्दी-भाषी क्षेत्रों के उन सदस्यों का जो संसद में हिन्दी में भाषण नहीं देते विरोध किया जाय। पब्लिक स्कूलों और अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों को हिन्दी माध्यम उपयोग में लाने के लिए भी बाध्य करने का व्यापक और प्रभावी अभियान चलाना आवश्यक है।

इस सम्मेलन के साथ कई गोष्ठियाँ भी हुईं जिनका विवरण देना इस टिप्पणी में सम्भव नहीं है, किन्तु वे सभी उपयोगी थीं और उनमें अनेक महत्त्वपूर्ण बातें उभर कर सामने आयीं।

इस सम्मेलन की कल्पना राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, वर्धा ने की थी। इसके लिए उसकी जितनी प्रशंसा की जाय वह कम है। आचार्य विनोबा भावे का भी आशीर्वाद उसे प्राप्त था। किन्तु सौभाग्य से उसके वास्तविक कार्यकर्ता कर्मठ, कल्पनाशील, व्यावहारिक और स्वप्नदर्शी एवम् आदर्शवादी थे। हिन्दी के द्वारा विश्वबंधुत्व और सारे विश्व के कल्याण की भावना इसका मूलमंत्र था। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इसका आदर्श था। स्वप्नदर्शी ही संसार को बदलने में समर्थ होते हैं, क्योंकि जिस स्वप्न की वे कल्पना करते हैं वह चाहे उनके जीवन में साकार न हो, वह जनता के हृदयों में घर कर लेता और उसके सामने एक आदर्श और एक लक्ष्य रख देता है, जिसकी ओर वह कभी मंथर गति से, और कभी द्रुत गति से बढ़ती है और कालान्तर में उसे प्राप्त कर लेती है। यह सम्मेलन ऐसे कार्यकर्ताओं को प्राप्त करने में बड़ा भाग्यशाली था। यही कारण है कि चार-छः महीनों में ऐसा विराट् और इतना सफल विश्व सम्मेलन हो सका।

एक दूसरी उल्लेखनीय बात यह थी कि सारा वातावरण भारतीय था। प्रतिनिधि आवासों में पहुँचने पर अतिथियों का स्वागत भारतीय शहनाई से होता था। प्रत्येक दिन कार्यारंभ के पूर्व और अंत में जो गान गाये जाते थे वे वेदों से लेकर देश की अनेक भाषाओं के संतों के थे और वे समयानुकूल ही नहीं, बड़े मर्मस्पर्शी भी थे। उनको हिन्दी और अंग्रेज़ी अनुवादों सहित छपाकर वितरित भी किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। हमें केवल एक शिकायत रही। तुलसीदासजी का जो अंश (वर्षाऋतु वर्णन) गाया गया वह उस समारोह के अनुकूल न था। उसके बदले यदि उनके 'रामराज्य' या 'धर्मरथ' का गायन होता तो अधिक उपयुक्त होता। सम्मान-समारोह उपराष्ट्रपति के द्वारा पूरी भारतीय रीति से हुआ।

आयोजकों का अनुमान था कि सम्मेलन में दो हज़ार प्रतिनिधि आयेंगे, किंतु आये प्रायः साढ़े तीन हज़ार। हमें भी ऐसे आयोजन करने का कुछ अनुभव है और जब अनुमान से प्रायः दुगने लोग आ जायँ तब आवास, भोजन आदि के प्रबंध में जो कठिनाइयाँ होती हैं उनकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। किंतु धन्य है उन आयोजकों की सूझबूझ और कार्य-तत्परता को कि अधिकांश प्रतिनिधियों को मालूम ही नहीं हो पाया कि आयोजकों के सामने ये अपार कठिनाइयाँ थीं। उन्होंने जिस सफलता और खूबसूरती से उन्हें सुलझाया उसकी प्रशंसा के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं।

इतने बड़े सम्मेलन में बीस-पचीस विघ्नसंतोषियों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वे सम्मेलन के आदर्श और उद्देश्यों के प्रेरित नहीं थे—वे 'वादों' से पीड़ित थे और हिन्दी के उस सार्वदेशिक मंच का उपयोग वे अपने 'वादों' के प्रचार के लिए करना चाहते थे। कुछ हिन्दी वाले यह भूल गये कि वे स्वयं आतिथेय हैं क्योंकि वह सम्मेलन हिन्दी का है। विदेश से आनेवाले हमारे अतिथि हैं। वे अपने को मेहमान समझने के कारण छोटी-मोटी असुविधाओं को शान्तिपूर्वक सहन नहीं कर सके। इतने बड़े सम्मेलन में सभी महत्त्वपूर्ण आगत लोगों को बोलने का अवसर नहीं मिल सकता। हिन्दी के कितने ही मूर्धन्य विद्वानों को यह अवसर नहीं मिला। इससे उनका खिन्न होना स्वाभाविक था। किंतु हिन्दी साहित्यकारों के प्रतिनिधि के रूप में श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रेरक उद्बोधन ने हिन्दी साहित्यकारों का प्रतिनिधित्व पूर्ण रूप से कर दिया। 'सर्वेपदा हस्तिपदे निमग्ना।

महाराष्ट्र की सरकार—विशेषकर उसके मुख्यमन्त्री श्री नायक—ने जो अपूर्व सहयोग और सहायता देकर इस सम्मेलन को सफल बनाने में योगदान दिया उसके लिए महाराष्ट्र सरकार, श्री नायक और महाराष्ट्र की जनता के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शन के उचित शब्द हमारे पास नहीं हैं। हिन्दी प्रचार और देश की एकता के प्रयास में उनका यह कार्य भारत के सांस्कृतिक इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

घड़ी में अनेक पुर्जे होते हैं। सभी मिलकर उसे ठीक तरह से चलाने में सहायक होते हैं। किंतु उसका मुख्य पुर्जा 'बालकमानी' होता है। वह सब पुर्जों को परिचालित करती है। इस सम्मेलन रूपी घड़ी को इतने सुचारु रूप से चलाने की बालकमानी इसके महासचिव श्री अनन्त गोपाल शेवड़े थे। हम उन्हें हिन्दी के उपन्यासकार के रूप में जानते थे, किंतु उनमें इतनी उच्च संगठन शक्ति छिपी है, यह हमारे लिए आश्चर्य जनक और हर्षप्रद नवीन ज्ञान था। उसका रहस्य उनका दृढ़ संकल्प, सहयोगियों से सद्भावतापूर्वक सहयोग लेने की शक्ति, ईश्वर में अटूट विश्वास था जिसने बड़ी से बड़ी कठिनाई में भी उन्हें विचलित नहीं किया। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं कि यद्यपि उसका आरंभ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने किया था तथापि उसकी सफलता का सारा श्रेय उन्हींको है।

हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई कि श्री शेवड़ेजी की इस महान सेवा के लिए राजर्षि टंडन द्वारा स्थापित उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अमरोहा (मुरादाबाद) में एक विशेष अधिवेशन कर उनका सम्मान और अभिनंदन करने का निश्चय किया है। वर्तमान अध्यक्ष श्री भगवती चरण वर्मा ने इस विशेष अधिवेशन की अध्यक्षता करने के लिए सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष और केन्द्रीय रेलमन्त्री पंडित कमलापति त्रिपाठी से आग्रह किया है। अमरोहा में स्वागत समिति बन गयी है और उसकी तिथि माननीय पंडित त्रिपाठी और शेवड़ेजी से परामर्श कर उनकी सुविधा का ध्यान कर निश्चित करके प्रकाशित कर दी जायगी। हमें विश्वास है कि विश्व हिन्दी सम्मेलन को इतनी सफलता से सम्पन्न कर हिन्दी की अपूर्व सेवा करने के लिए श्री शेवड़े के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उस विशेष आयोजन में हिन्दी में विद्वान्, साहित्यकार और हिन्दी-प्रेमी बड़ी संख्या में उपस्थित होंगे।

यूनेस्को और हिन्दी—विश्व हिन्दी सम्मेलन में तीस से अधिक देशों के प्रतिनिधि आये थे, जिनकी संख्या तीन सौ से अधिक थी। किन्तु इनके अतिरिक्त राष्ट्रसंघ के शैक्षणिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) ने भी प्रतिनिधि के रूप में अपने उपनिदेशक को भेजकर उस सम्मेलन के महत्त्व को स्वीकार किया था। उन्होंने अपने भाषण का आरंभ और अंत हिन्दी वाक्यों से किया, यद्यपि उनका भाषण अंग्रेज़ी में था क्योंकि वे हिन्दी नहीं जानते थे। उन्होंने बतलाया कि संसार के अन्य देशों में हिन्दी साहित्य का परिचय देने के लिए उस संगठन ने हिन्दी की पुस्तकों का कई विदेशी भाषाओं में अनुवाद करने का कार्यक्रम बनाया है। इसके अतिरिक्त वह हिन्दी में भी पुस्तकें प्रकाशित करता है। अब तक उसने तकनीकी तथा अन्य विषयों में ३८ पुस्तकें प्रकाशित की हैं और १५ अन्य पुस्तकें प्रकाशित कर रहा है। वह इन पुस्तकों को तैयार करके प्रतिष्ठित प्रकाशकों के द्वारा उन्हें प्रकाशित कराता है। हमें राष्ट्रसंघ की हिन्दी संबंधी इस सेवा का हाल जानकर प्रसन्नता हुई। यद्यपि राष्ट्रसंघ में अभी तक हिन्दी को अपने कार्य की भाषाओं में सम्मिलित नहीं किया गया तथापि उसके महत्त्वपूर्ण संगठन द्वारा हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाणित करता है कि वह हिन्दी की उपेक्षा नहीं करता, और यदि भारत उपयुक्त प्रयास करे तो राष्ट्रसंघ में ऐसा वातावरण तैयार है कि वह हिन्दी को अपने कार्य की पाँच भाषाओं में स्थान दे सकेगा।

हमारे नौकरशाहों द्वारा ऐतिहासिक सामग्री की उपेक्षा—दुर्भाग्य से इस देश के नौकरशाहों में आरम्भ ही से ऐतिहासिक सामग्री और सांस्कृतिक महत्त्व की वस्तुओं के संरक्षण के प्रति उदासीनता रही है। अंग्रेज़ों के शासन काल में अंग्रेज़ नौकरशाहों में अपने अज्ञान और भारतीय संस्कृति तथा इतिहास के प्रति कोई ममता न होने के कारण यह बात आश्चर्यजनक न थी। फिर भी कनिंघम, विनसेंट स्मिथ, ग्राउस, ग्रियर्सन आदि कुछ नौकरशाहों ने भारतीय इतिहास, साहित्य, पुरातत्त्व और संस्कृति के लिए जो काम किया वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है और हम उनके चिर-ऋणी हैं। शासकों में सबसे अधिक श्रेय लार्ड कर्जन को है जिन्होंने पुरातत्त्व की ओर विशेष ध्यान दिया और पुरातत्त्व विभाग की स्थापना कर असंख्य प्राचीन स्मारकों की रक्षा की। भारतीय नौकरशाहों में सर्वश्री आर० सी० दत्त, एन० सी० मेहता, एस० पी० शाह आदि के समान कुछ अँगुलियों पर गिने जाने योग्य व्यक्ति हुए जिन्होंने कला, इतिहास आदि की ओर ध्यान दिया। किन्तु अधिकांश शासक और नौकरशाह इस सम्बन्ध में अत्यन्त निरपेक्ष और उदासीन रहे और अब भी हैं। ऐटकिन्स ने अपने बाँदा के गजेटियर में एक कलक्टर की करतूत का वर्णन किया है। तहसीलदार की इस रिपोर्ट पर कि इतिहास-प्रसिद्ध कालिंजर के किले के मुख्य फाटक के लकड़ी के पल्ले बहुत जीर्ण हो गये हैं, उसने उनके नीलाम करने का आदेश दे दिया। अतः वे ३० रुपयों में नीलाम कर दिये गये। खरीदनेवाले ने उनकी लकड़ी को वहीं जला दिया, क्योंकि इतने भारी फाटकों को ले जाना सम्भव नहीं था। पाठक जानते हैं कि पुराने किलों के फाटकों में लोहे का प्रचुर प्रयोग होता था। उन्हें हाथियों से तोड़े जाने से बचाने के लिए उनमें बड़ी-बड़ी लोहे की नोकदार शलाकाएँ लगायी जाती थीं जिससे वे अपने मस्तक से उन पर प्रहार करके उन्हें तोड़ न सकें। अतएव फाटक की लकड़ी जल जाने पर खरीदनेवाले को कई सौ रुपयों का लोहा मिल गया। जब हम उत्तर प्रदेश में हिन्दी के विशेष अधिकारी थे तब हमने प्रदेश के सभी जिलों की कलक्टरियों को देखा था। हमें पुस्तकालयों में विशेष रुचि है, इसलिए हम उन्हें अवश्य देखते थे। हमें यह देखकर आश्चर्य और दुःख हुआ कि कलक्टरियों के कितने ही पुस्तकालयों में वे पुरानी पुस्तकें जो सरकार द्वारा उन्हें भेजी जाती थीं अनुपयोगी समझकर रद्द करके बेच दी गयी थीं। यहाँ तक कि पुराने गजेटियर जो प्रत्येक जिले की कलक्टरियों को भेजे गये थे, कितने ही जिलों में 'वीड' (weed) करके रद्दी में बेच दिये गये थे। किसी-किसी जिले में तो स्वयं उसी जिले के प्रथम गजेटियर की प्रति नहीं मिली। अन्य ऐसे ही कितने बहुमूल्य और पुराने प्रकाशन इसी प्रकार निकाल दिये गये थे। जब हमने अपना यह दुखद अनुभव एक सुसंस्कृत और विद्याप्रेमी तत्कालीन विधायक को सुनाया तब उन्होंने कहा कि हमारे अधिकांश नौकरशाह "सेमी-लिटरेट बार्बेरियन" (Semi-literate barbarian—अर्द्ध शिक्षित बर्बर) हैं। हम उन्हींके शब्द उद्धृत कर रहे हैं। यह विशेषण कटु और कड़ा है। जब ग्रियर्सन अपना भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण कर रहे थे तब उत्तर भारत के विभिन्न भागों में आंचलिक भाषाएँ किस प्रकार और किस लहज़े (एक्सेंट) में बोली जाती हैं, इसका अभिलेख रखने के लिए उन्होंने वहाँके देहातियों के गद्य वार्तालाप और पद्यों के गायन के ग्रामोफोन रेकार्ड तैयार किये थे। वे ग्रामोफोन रेकार्ड कई सरकारी कार्यालयों में भेजे गये थे। हमने स्वयं उन्हें अपने सेवा काल के आरम्भ में एक प्रमुख कार्यालय में देखा था और उनमें रुची होने के कारण अपना ग्रामोफोन ले जाकर उन्हें सुना था। उनमें आगरे की ग्रामीण बोली, झाँसी की बोली, बस्ती का एक गीत (मोतिया लर तोर लए रे मीहनवाँ) और एक बघेलखंडी गीत (तोहि आवै छमासी नींद बघेला! डंका बजौ लोहागढ़ में) की हलकी याद हमें आज भी है। कुछ वर्ष पूर्व किसी अध्ययन के सिलसिले में हम उन्हें फिर सुनना चाहते थे। हमने प्रयत्न किया, किन्तु उस कार्यालय के अधिकारी या कर्मचारी उनका पता न लगा सके। उन्हें उनके उस कार्यालय में कभी होने का ज्ञान भी न था। शायद वे भी रद्दी समझकर फेंक दिये गये हों। सरकार ने सुसभ्य योरोपीय राष्ट्रों की नकल पर पुरातत्त्व विभाग, अभिलेखागार (आर्काइव्स), पुस्तकालय, संग्रहालय आदि बना रखे हैं, किन्तु कुछ विद्वानों को छोड़कर उनमें वास्तविक रुचि बहुत कम लोगों की है। वे बहुधा हमारे सोंठ के समान सूखे, नीरस और फाइलें पीटनेवाले संस्कृति-साहित्य-कला-निरपेक्ष अधिकारियों के नियंत्रण में चलते हैं; और उन्हें तथा उनके बड़े भाई—वित्त विभाग के अधिकारियों और क्लर्कों को—उनकी आवश्यकताएँ बहुधा व्यर्थ मालूम होती हैं। सबसे बड़ा अनर्थ अनधिकारी और अर्द्धशिक्षित व्यक्तियों को उन्हें 'वीड आउट' करने का अधिकार करता है। हमें ऐसे अनेक उदाहरण मालूम हैं जहाँ दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'वीड आउट' कर दिये गये हैं। खेतों में जो अनावश्यक खर-पतवार उग आती है उसे अंग्रेजी में 'वीड' कहते हैं। अच्छी उपज के लिए किसान उन्हें उखाड़कर फेंक देता है। इस क्रिया को अंग्रेज़ी में 'वीडिंग' कहते हैं। निरर्थक, अनुपयोगी और हानिकारक वस्तुओं को उखाड़ फेंकने को 'वीड आउट' कहते हैं। किन्तु हमारे बुद्धि के वैभव अधिकारी सामयिक आवश्यक पुस्तकों और अभिलेखों को छोड़कर उपयोगी या अनुपयोगी, मूल्यवान् या मूल्यहीन, महत्त्वपूर्ण या अमहत्त्वपूर्ण का विचार किये बिना कितने ही पुराने बहुमूल्य अभिलेखों को फेंक देते हैं।

यह सब इसलिए लिखना पड़ा कि जनता का ध्यान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ओर दिलाया जाय जिससे वह इस सम्बन्ध में जागरूक हो। हम इतने बड़े बुद्धू नहीं हैं कि यह समझें कि हमारे लिखने का कोई प्रभाव सरकार या अधिकारियों पर पड़ेगा क्योंकि एक हिन्दी पत्रिका में प्रकाशित टिप्पणी पढ़ने की वे कल्पना भी न करेंगे, और न उन्हें ऐसी 'बेकार' बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक ही प्रतीत होता है। हम तो केवल देश की प्रबुद्ध जनता के विवेक को जाग्रत करने का प्रयत्न मात्र कर रहे हैं। सरकार के अधिकारियों की उपेक्षा से जो अनर्थ हो रहा है उसके दो ताजे उदाहरण संयोग से हाल में प्रकाश में आये हैं। अनेक ऐसी घटनाएँ प्रकाश में नहीं आतीं। इसमें पहिली घटना तमिलनाडु की है। वहाँ हाल ही में एक कार्यालय में अनेक बहुमूल्य ऐतिहासिक महत्त्व के अभिलेख 'वीड आउट' कर दिये गये जिनमें कट्टा बोमन से सम्बन्धित अनेक अमूल्य कागज थे। कट्टाबोमन ने प्रायः दो शती पूर्व अंग्रेजों के विरुद्ध डटकर दीर्घकालीन संघर्ष किया था और इस कारण वह बड़ा लोकप्रिय हो गया था। स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करनेवाले आदि पुरुषों में वह एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था। उससे सम्बन्धित प्रामाणिक सामग्री को रद्दी करके फेंक देना अधिकारियों की कल्पनाहीनता, ऐतिहासिक चेतना और उत्तरदायित्व के अभाव का एक दुखद उदाहरण है। उससे सम्बन्धित कागजों के साथ जो अन्य अनेक अभिलेख रद्दी करके फेंक दिये गये उनका विवरण प्राप्त नहीं है। एक ऐसी ही दूसरी घटना का समाचार मध्यप्रदेश से मिला है। वहाँ निम्न स्तर के अधिकारियों ने दो शतियों की ऐतिहासिक सामग्री के लाखों कागज रद्दी में बेच दिये। बहाना यह था कि कार्यालय में जगह की कमी थी और ये कागज बहुत जगह घेरे हुए थे! उन्हें फेंक देने से कार्यालय में कुछ बाबुओं को बैठने के लिए जगह निकल आयी। किसी अधिकारी ने यह जानने का भी कष्ट नहीं किया कि उन फेंके जानेवाले कागजों और अभिलेखों में ऐतिहासिक सामग्री थी। इंदौर में भी इसी प्रकार कितने ही पुराने ऐतिहासिक कागज रद्दी के रूप में नीलाम कर दिये गये। कहा जाता है कि उन नीलाम किये हुए 'रद्दी' कागजों में पानीपत के तीसरे युद्ध के आँखों देखे वर्णन और १८५७ की घटनाओं से संबंधित बहुमूल्य अभिलेख भी थे। हमारे लिए 'अर्द्धशिक्षित बर्बर' किंतु असीम अधिकार प्राप्त छोटे-बड़े नौकरशाहों के ऐसे कुकृत्यों की तालिका बनाना असंभव है। केवल ईश्वर ही जानता है कि भारत के इतिहास को इन बर्बरों ने कितनी हानि पहुँचायी है। इन घटनाओं को सुनकर इतिहास प्रेमी प्रबुद्ध विद्वानों और नागरिकों के लिए निराशा से हाथ मल कर केवल दुःख की आह भरकर चुप रह जाने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं हैं।

यह बर्बरता, यह इतिहास और संस्कृति का हनन, मध्ययुग के उन बर्बर लोगों की याद दिलाता है जो पुस्तकालयों को फूँक देते थे। आज के तथाकथित शिक्षित अधिकारी वास्तव में उनसे कितने भिन्न हैं? यह सब तभी रोका जा सकता है जब हमारी शिक्षा प्रणाली अपनी शिक्षा की फैक्टरियों में निर्मित तैयार माल (भावी अधिकारियों और नागरिकों) में इतिहास और संस्कृति की चेतना और ऐसी वस्तुओं के महत्त्व की भावना उत्पन्न करे। किन्तु शासकों (नेताओं) को उनके कर्तव्य को कैसे सिखाया जाय? यह केवल प्रबुद्ध जनता और बौद्धिक वर्ग के दबाव से ही हो सकता है। किन्तु क्या हमारा बुद्धिजीवी वर्ग इधर ध्यान देगा?

श्री क्षितीशचन्द्र मजूमदार का स्वर्गवास—हमें यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि गत मास प्रयाग में पिछली पीढ़ी के अवशेष एक मूर्धन्य और सर्वप्रतिष्ठित महान् कलाकार श्री क्षितीशचन्द्र मजूमदार का स्वर्गवास हो गया। वे बंगाल नयी शैली के (जो अवनीन्द्रनाथ टागोर, गजनेन्द्रनाथ टागोर, नन्दलाल बोस आदि ने प्राचीन भारतीय चित्रकारी को पुनर्जीवित करने के लिए प्रचलित की थी) शायद अंतिम उल्लेखनीय प्रतिनिधि थे, और उनके चित्रों में वह शैली अपने चरम निखार पर देखी जा सकती है। जब प्रयाग विश्वविद्यालय में कला विभाग खुला तब उसके तत्कालीन कलाप्रेमी और पारखी तथा हमारे सहपाठी स्वर्गीय पंडित अमरनाथ झा उन्हें उस विभाग के अध्यक्ष पद को विभूषित करने के लिए बड़े आदर के साथ कलकत्ते से लाये। वहाँसे सेवामुक्त होने पर वे प्रयाग ही में बस गये थे। वे परम वैष्णव थे और श्री चैतन्य महाप्रभु से बहुत प्रभावित थे। उनके अधिकांश उत्तरकालीन प्रसिद्ध चित्र राधा और कृष्ण की उपासना से संबंधित हैं तथा भाव, चित्रण और शैली की दृष्टि से उनकी कृतियों के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। साहित्यकार से भी अधिक इस देश में समर्पित चित्रकार की उपेक्षा और दुर्दशा होती है। अंतिम जीवन काल में देशवासियों की उपेक्षा के कारण उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। उत्तर प्रदेश सरकार ने अवश्य उनकी कुछ सहायता की, जिसके लिए वह प्रशंसा की पात्र है। किंतु वह अल्प सहायता उन ऐसे महान् कलाकार को वृद्धावस्था और रोग से जर्जर शरीर को वह सुख-सुविधा नहीं दे सकती थी जो उन्हें मिलनी चाहिए थी। 'सरस्वती' में उनके कई चित्र प्रकाशित करने का हमें गौरव है। उनकी मृत्यु से भारत की कला की अपूरणीय क्षति हुई है। हम उसके शोकसंतप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना व्यक्त करते और उनकी स्मृति में अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंख-पद्म : सांख्य-योग (२)

श्री कुबेरनाथ राय

[गतांक से आगे]

(३)

सांख्यदर्शन का आदिम स्थूल (crude) रूप था लोकायत तांत्रिक विश्वास तथा 'प्रकृति' की पंचभूतों (पंचजन) के रूप में उपासना। यही वर्त्तमान 'पंचोपासना' का आदि रूप था। 'पंच' शब्द का व्यंगार्थ या ध्वन्यार्थ समाज के आदिम 'व्रात्य' (गण) जीवन का संकेत लेकर आज भी अविच्छिन्न रूप में हमारी भाषा में चला आ रहा है। 'पंच', 'पंचायत' तथा 'पंच परमेश्वर' आदि मुहावरे पंच शब्द की गणतांत्रिक महिमा के द्योतक हैं, संख्या के द्योतक नहीं। आदिम कबीला जीवन' (tribal life) की शासन-पद्धति का संकेत-बीज इस शब्द के मुहावरों में छिपा हुआ आज तक चला आ रहा है।

विश्व की क्रियाओं के संचालन के लिए 'पंचभूतों' की कल्पना तथा सामाजिक संचालन के 'पंचजन' से उनका कल्पित साम्य उस प्राग् सैन्धव सभ्यता के दिनों में ही उद्भूत हुआ होगा। बाद में 'पंचभूतों' की उपासना का साँचा रह गया और उस साँचे में कभी 'ध्यानी बुद्ध' आये तो कभी वासुदेव-व्यूह आया तो कभी 'पंचवीर' आये। आज भी कहीं 'पंचदेवाः' (ब्रह्मा-विष्णु-महेश-शक्ति-सूर्य) चालू हैं तो कहीं 'पंचवीर'। पर पाँच का यह साँचा या आदर्श चालू हुआ आदिम सांख्य के साथ। तब 'प्रकृति' पंचधा विभक्त रही। वही बात कालान्तर में पंचतत्त्वों की थ्योरी में परिवर्तित हो गयी तथा महत्-अहंकार-मन को जोड़कर 'अष्टधा प्रकृति' मानी गयी। परन्तु ये सब बातें तो बाद की हैं। मूल में यह था पंच महाभूतों का सांख्य। फिर अपने विकसित रूप में यह २४ तत्त्वों का सांख्य बना जिसमें प्रकृति ('महत्' या 'प्रधान') सबका कारण या मूल बनी और 'ईश्वर' की भूमिका में यह सविकार त्रिगुणा प्रकृति ही प्रतिष्ठित हुई। यह हुआ वैश्वानर कपिल (हिरण्य कपिल) का निरीश्वर सांख्य।

शंकराचार्य ने 'प्रकृति कारणवाद' या 'प्रधान कारणवाद' मान कर इसी सांख्य का कठोरतापूर्वक खण्डन किया है। 'ब्रह्मसूत्र' में भी, जिसका संकलन व्यास ने किया था, कुल ५५५ सूत्रों में १०३ सूत्र अन्य विरोधी मतों के खण्डन के लिए हैं और इन १०३ में ६० सूत्र केवल सांख्य का खण्डन करने के लिए हैं और शेष ४३ में अन्य तात्त्विक मतों का निराकरण किया गया है। इससे पता चलता है कि भारतीय 'प्रत्ययवाद' (Idealism) अर्थात् 'वेदान्त' का प्रधान प्रतिपक्षी यही 'निरीश्वर सांख्य' था, जिसे शंकराचार्य को 'तंत्राख्य' (अर्थात् जो 'शक्ति' या 'माया' या 'प्रकृति' को ही 'स्व'-तंत्र माने) कहा है।

जब ब्रह्मसूत्रों में प्रधान (प्रकृति) कारणवादी दर्शन (अर्थात् अनीश्वरवादी सांख्य) की यह गति है, तो फिर यह कैसे माना जा सकता है कि अपने मूल रूप में सांख्य अनीश्वरवादी और नास्तिक नहीं था। इतना तो मानना ही होगा कि 'पूर्व सांख्य', जो आदिम पंचभूत प्रधान प्रकृतिवाद का विकसित रूप था, जन्मतः 'लोकायत' था, निश्चित रूप से उस 'उत्तर सांख्य' से भिन्न है जिसे ईश्वर कृष्ण ने 'सांख्य कारिका' (२०० ई०) में कमोवेश आस्तिक रूप में रखा है। वेदान्त के ज्ञानकाण्ड से सांख्य का तालमेल बैठाने की चेष्टा व्यास ने ही प्रारम्भ की थी। महाभारत के शान्तिपर्व (३०१-३१८) में इस प्रक्रिया का स्पष्ट रूप प्राप्त होता है।

व्यास अत्यन्त प्रतिभाशाली समन्वयवादी थे। वे विरोधी-दर्शनों के 'कलितार्थ' (पूर्वपक्ष) को स्वीकृत करके, उनका 'फल' बदल करके उन्हें वेदान्ती कर देते हैं। इसका अद्भुत उदाहरण है मक्खलि गोशाल के दर्शन का वेदान्तीकरण 'मंकि गीता' (शान्तिपर्व) में। वे 'ना'-धर्मी दर्शनों को 'हाँ'-धर्मी एवं वेदान्ती ऐंठन देने में बड़े पटु हैं। महाभारत में 'सांख्य' को २५ तत्त्वों वाला बना कर प्रस्तुत किया गया है। परन्तु ब्रह्मसूत्र में 'प्रधान कारणवाद' (प्रधान = प्रकृति) का खण्डन है खूब जमकर। ब्रह्मसूत्र का वर्तमान रूप कम से कम २०० ई० पू० पुराना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु इतनी 'ठस्स' बुनावट वाली संक्षिप्त शैली का रूप लेने में इस 'ब्रह्मसूत्र' को शताब्दियों लग गया होगा अतः बादरायण व्यास, जो इसके प्रथम सम्पादक थे, बहुत पहले हुए होंगे और मूल रूप बुद्ध के पूर्व का भी हो सकता है।

जहाँ तक सांख्य दर्शन का सम्बन्ध है वह तो अपने लोकायत रूप में, स्थूलतम रूप में, मोहनजोदड़ो-हरप्पा युग से भी प्राचीन है, और पंचभूतोपासना रूप में इसका वह आदिम रूप आज भी कुछ किरातवंशीय जनजातियों में चालू है। उपनिषद् काल में सांख्य और 'वेदान्त' दोनों विचारधाराओं की समान शक्ति थी। छान्दोग्य उपनिषद् में असुरराज वैरोचन एवं देवराज इन्द्र की परस्पर विरोधी जिज्ञासाओं की कथा है।

प्रजापति दोनों को उपदेश देते हैं। वैरोचन यही मान कर संतुष्ट हो जाता है, कि 'देह ही आत्मा है', परन्तु इन्द्र की जिज्ञासा 'देहातीत' को खोजती है। यह 'देहवाद' तथा 'प्रकृतिकारणवाद' दोनों मूल सांख्य के अंग हैं। मूल सांख्य ही कहीं प्रकृतिवाद, कहीं प्रधानवाद, कहीं लोकायत दर्शन, कहीं देहवाद, कहीं असुरदर्शन कहा गया है और यह भारतवर्ष में एक शक्तिशाली विचारधारा के रूप में आदिकाल से ही चला आता है। आधुनिक 'सांख्य' के बीज हैं आदिम प्रकृति कारणवाद में, तथा आधुनिक 'योग' के बीज हैं आदिम देहवाद में। बाद में इनका विकास वेदान्ती ऐंठन पाकर भिन्न हो गया। पर 'सांख्य' अन्त तक नास्तिकता (प्रकृति-कारणवाद) की गन्ध छोड़ नहीं पाया।

एक विशिष्ट बात यह देखने में आती है कि सांख्य दर्शन के आदि ऋषियों का सम्बन्ध हिमालय या पूर्वी भारत से है, जहाँ पर Tibeto-Mongoloid अर्थात् 'किरात' संस्कृति प्रबल थी। महाभारत में सांख्य की संवाद-परम्परा का उल्लेख शान्तिपर्व (३०१ से ३१८) के भीतर मिलता है :—

(१) हिरण्यगर्भ (=बुद्धि=महत्=प्रधान=ब्रह्मा) से वशिष्ट, वशिष्ट से मिथिला के कराल जनक। दूसरे शब्दों में इस परम्परा के आदि में है वशिष्ट। तंत्र साहित्य में वशिष्ट का चरित्र अयोध्या के पुरोहित वशिष्ट से भिन्न है। वे महातारा के साधक एवं 'चीनाचार' (तंत्र) के आचार्य हैं। कराल जनक भी विचित्र नाम है। एक समय था नेपाल की तराई और मिथिला तंत्र-भूमि भी थे। तंत्र और सांख्य का परस्पर सगोत्रीय सम्बन्ध है और दोनों का मूल है लोकायत धर्म।

(२) याज्ञवल्क्य से जनक, जनक से भीष्म, भीष्म से युधिष्ठिर (ये जनक सीरध्वज जनक नहीं। जनक रूस के 'ज़ार' या रोम के 'सीज़र' की तरह एक उपाधि मात्र है)।

(३) आसुरि से पंचशिख; पंचशिख से (जनक। शान्तिपर्व : २१४)

महाभारत में सांख्य के २० आचार्यों के नाम हैं; परन्तु प्रायः वे वेदान्ती नाम हैं। शायद सांख्य के वेदान्ती (उत्तर) रूप के प्रवेश के बाद ये श्लोक जोड़े गये हैं। परन्तु कुछ नाम बड़े मार्के के हैं। उनमें 'आसुरि' और 'पंचशिख' नाम हैं। 'पंचशिख' 'पंचजन' का समानान्तर शब्द है। इस नाम का कोई आर्येतर दार्शनिक हो सकता है जो आदि सांख्य के ऋषि शंख का सगोत्र हो। (भागवत के अनुसार वेद चुरानेवाले शंखासुर का नाम था 'पंचजन') पहले तो शंका 'आसुरी' या 'आसुरि' शब्द पर ही होती है। यदि यह 'आसुरि' आर्येतर वंश का द्योतक हो तो 'आसुरि' को 'कैरातज' मानने में कोई हर्ज नहीं।

मुझे लगता है कि यह आसुरि शब्द गोत्र का द्योतक है। अतः यह सांख्य के किरात या आसुरी मूल का द्योतक हुआ। इससे पंचशिख ने सांख्य ग्रहण किया। वे सांख्य के इतने बड़े पण्डित हुए कि उन्हें द्वितीय कपिल या कपिलावतार कहा जाने लगा। ये पंचशिख ही सम्भवतः अग्निपर्णी वैश्वानर कपिल या किरात कपिल हैं। एक और विचित्र बात है कि इनकी माँ का नाम था कपिला' और इन्हें 'कप्पिलेय' कहा जाता था। पर पिता का पता नहीं। यह मातृसत्ता प्रधान समाज की पद्धति का संकेत है।

स्मरण रहे कपिला ब्राह्मणी थी। इसका अर्थ हुआ कि या तो आर्यों का एक अति प्राचीन अग्रगामी कबीला भारत आकर मिथिला के उत्तर में बस गया था (जहाँ शाक्यगणों का 'कपिलवस्तु' था) जो अब भी मातृ-सत्ता की कुछ अवशिष्ट रीतियों का पालन करता था* अथवा यह ब्राह्मणी आर्येतर असुर या किरात-पुरोहित वर्ग की

*भारतीय इतिहासकार जहाँ मातृसत्ता का अवशेष पाते हैं तुरंत वहाँ आर्येतरता या अनार्यता को प्रमाणित करने लगते हैं। परन्तु आर्यों का आगमन कई सौ वर्षों तक दस्ते और कबीले के रूप में हुआ और यह सम्भव है कि सभी कबीलों का विकास समगति में समरैखिक नहीं था तथा कुछ कबीले अपनी मातृसत्तायुग की कुछ पद्धतियों को नाममात्र के लिए रखते चले आ रहे हों। आर्य कबीलों में भी तो पहले पहल मातृसत्ता ही रही होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्या रही होगी अथवा यह स्वयं नारी पुरोहित (female priest) रही होगी। पंचशिख का जनक से गुरु शिष्य सम्बन्ध बताता है कि ये मिथिला के उत्तर में हिमालय की नेपाल-भूमि के रहनेवाले थे। जहाँ कपिल के दर्शन की परम्परा मौखिक रूप में चालू रही होगी।

मेरी समझ से यह स्थान कपिलवस्तु (कपिल वास्तु = कपिल-स्थान) रहा होगा या आसपास का प्रदेश। इसी अनीश्वर सांख्य की भूमि और वातावरण में ही बौद्ध धर्म के जन्म लेने के बीज थे। शाक्य गण इक्ष्वाकुओं की एक शाखा थे। 'वशिष्ट' शब्द यदि वंशगत उपाधि का द्योतक हो तो कोशल के इक्ष्वाकुओं के 'वशिष्ट' की तरह शाक्यों के भी अपने 'वशिष्ट' रहे होंगे। सम्भवतः ये शाक्यों के वशिष्ट ही हिरण्यगर्भ* ('बुद्धि' या विश्वप्रज्ञा) से सांख्य का आविष्कार करके कराल जनक को उपदेश देते हैं और सम्भवतः शाक्यों के वशिष्ट ही चीनाचार और तंत्र के आचार्य हैं जिन्होंने 'महाचीन' (तिब्बत का पुराना नाम) जाकर तारा की उपासना की थी।

मुझे तो लगता है कि 'शाक्य' और 'सांख्य' के मूल रूप 'शांख्य<शांक्य' में भी कोई सम्बन्ध है। क्या यह इसलिए कि कोशल के इक्ष्वाकु वेदान्ती और आत्मवादी थे, पर इनके प्रतिकूल अपने पुराने व्रात्य (गण) जीवन को सुरक्षित रखनेवाले कपिलवस्तु के इक्ष्वाकुगण लोकायत मत 'शांख्य' (शांक्य→शाक्य) मानते थे। ऐसे वातावरण में जन्म लेकर ही सिद्धार्थ गौतम ने एक अवैदिक दर्शन की कल्पना की थी।

ब्रह्मसूत्रों के शांकर भाष्य में शंकराचार्य ने कहा है कि 'सृष्टिधारा में अनेक कपिल उत्पन्न हुए हैं।' शंकराचार्य ने जिस कपिल के 'प्रधान कारणवाद' ('प्रधान' अर्थात् प्रकृति) का खण्डन किया था वे थे वैश्वानर कपिल जो अनीश्वरवादी सांख्य के रचयिता हैं। स्मृति ग्रन्थों के अनुसार ये 'अग्नि' के अवतार हैं और ये शुक्ल ('विष्णु') के अवतार देवहूति-पुत्र कपिल से भिन्न हैं जिन्होंने सेश्वर अर्थात् ईश्वरवादी आस्तिक सांख्य का प्रतिपादन किया था। अतः दो भिन्न परम्पराओं का उल्लेख आर्ष ग्रन्थों में भी स्पष्टतः किया गया है। 'सांख्य' में दो ग्रन्थों को मूल माना जाता है: 'तत्त्व समास सूत्र', जो आस्तिक प्रकृति का है और 'षडाध्यायी' जिसकी प्रकृति अनीश्वरवादी और नास्तिक है।

ऐसा लगता है शंकराचार्य ने इसी 'षडाध्यायी' परम्परा का ही खण्डन किया (यों यह बात स्पष्टतः उन्होंने कहीं नहीं कही है)। अग्नि के चतुर्थ पुत्र थे 'भानु' (या 'भृगु') और ये ही महर्षि कपिल के अवतार (अर्थात् हमारे शब्दों में 'द्वितीय कपिल') कहे जाते हैं। सम्भवतः ये ही वैश्वानर कपिल हैं।

'अग्नि' का एक अर्थ तो आदित्य (विष्णु) होता है, पर दूसरा अर्थ 'रुद्र' भी होता है। रुद्र बनैले 'व्रात्य' आर्यों के देवता हैं जो यायावर कबीले या दल के रूप में अभियान करते हुए नयी भूमि में प्रवेश करते थे और अपना स्वतंत्र गण बनाकर तब भी रहते थे जब आस-पास के 'शालीन' (घरबारी) आर्यों की जीवन-पद्धति भिन्न हो चुकी थी। बुद्ध के समय ऐसे गणों में प्रधान थे: मल्ल, शाक्य, वज्जी आदि। 'शतरुद्रिय' के पाठ से पता चलता है कि रुद्र ऐसे ही व्रात्य बनैले यायावर आर्यों के देवता थे। अतः उनकी प्रकृति के अनुरूप एक वैश्वानर 'सांख्य' दर्शन का अस्तित्व 'पंचजन', 'गण' या 'व्रात्य' परिवेश में विकसित होना तथा उसे वैश्वानर कपिल का दर्शन कहकर प्रचारित करना स्वाभाविक है।

अनेक कपिलों में एक और कपिल जड़ जाने से कोई विसंगति का अनुभव नहीं हुआ होगा। शुक्ल कपिल (देवहूति-कर्दम के पुत्र), विश्वामित्र के पुत्र कपिल, एक नागवंशीय राजा कपिल (जिसने कपिल तीर्थ की रचना की है), सगरपुत्रों को भस्म करनेवाले कपिल, उपर्युक्त 'भानु' या 'भृगु'-कपिल (जो अग्नि के पुत्र थे) तथा पंचशिख नामक आसुरि-शिष्य द्वितीय कपिल। इतने कपिलों की एक लम्बी जमात है। यह सतयुग-त्रेता-द्वापर तक फैली है। इसमें शुक्ल कपिल निश्चय ही सेश्वर एवं वेदान्ती सांख्य के आदि विन्दु हैं। पर शेष के बारे में कुछ स्पष्टतः नहीं कहा जा सकता। दोनों परम्पराएँ बाद के पुराणों में गड्डमड्ड हो गयी हैं। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से लगता है सांख्य मूलतः प्रकृतिवादी और लोकायत था।

व्यास ने उसे अपनी प्रतिभा के बल आस्तिक ऐंठन तथा सेश्वर रूप दिया तथा 'सांख्य' शब्द का अर्थ विस्तृत करके उसे 'ज्ञान' और 'प्रज्ञा' का पर्याय कर

*सांख्य दर्शन में हिरण्यगर्भ महत्, प्रधान, बुद्धि, प्रज्ञा, आदि समानार्थक शब्द हैं। प्रकृति का सृजनोन्मुख पर 'अभी तक अव्यक्त' रूप ही महत् या प्रधान या 'बुद्धि' कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया और सम्भवतः अनीश्वर सांख्य के जनश्रुति पर आधारित मूल पुरुष 'कपिल' का जोड़ का तोड़ भिड़ाने के लिए एक विष्णु अवतार कपिल को उन्होंने ही उपस्थित किया था; अथवा पूर्व के ऐतिहासिक पात्र कर्दमपुत्र कपिल पर विष्णुत्व का वैसे ही आरोपण कर दिया था जैसे बुद्ध पर बाद के जयदेव आदि वैष्णवों ने नवाँ अवतार बनाकर विष्णुत्व का आरोपण किया है। ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से सेश्वर-आस्तिक सांख्य 'मूल' नहीं; बल्कि संशोधित परिवर्द्धित रूप मात्र है।

(४)

अब हम 'योग' की भी थोड़ी सी चर्चा कर लें। विष्णु के हाथ में, योगदर्शन का प्रतीक है 'पद्म'। शरीर के भीतर चैतन्य के षट्-स्नायु-केन्द्र (चक्र) कमलाकृति में कल्पित किये गये हैं। कमल सब प्रकार की ऋद्धियों का प्रतीक है चाहे वह ऋद्धि आर्थिक हो, मानसिक हो या दैहिक हो। यही कारण है कि कमल बड़ा ही सूक्ष्म और व्यापक प्रतीक हो गया है। यह पवित्रता, श्री, सुषमा और सौन्दर्यबोध का प्रतीक है। यह अन्तर की ह्लादिनी शक्ति, प्रणय, महाभाव और रतिक्रिया का प्रतीक है। (बौद्धों ने तंत्रभाषा में रक्तकमल को नारी-योनि का प्रतीक माना है और इस भावना का मूल भी लोकायत संस्कृति ही है) यह कमल भूमा, विस्तार और आध्यात्मिक ऋद्धि का भी प्रतीक है क्योंकि आध्यात्मिक बोध का महत्तम केन्द्र सहस्रदल कमल के रूप में कल्पित किया गया है। यह सृजन-शक्ति अर्थात् ब्रह्मा का भी प्रतीक है तथा इसे देहव्यापी और विश्वव्यापी मानसिक अधिभौतिक एवं दैवी शक्तियों का 'आसन' माना गया है। हम यहाँ पर इन सारे मूल्यों की चर्चा नहीं करेंगे। हमारा तात्पर्य यहाँ पर कमल प्रतीक के साथ योगदर्शन का सम्बन्ध देखना ही है।

सांख्य दर्शन में प्रतिपादित प्रकृति जब गुणों के अनुप्रवेश के कारण अपनी साम्यावस्था को छोड़कर विकसित होने लगती है तब इसका प्रथम रूप होता है 'महत्' या 'प्रधान' या 'बुद्धि' (मैक्समूलर के अनुसार 'cosmic Intelligence' या 'विश्व-प्रज्ञा' जो व्यक्तिगत प्रज्ञा से भिन्न है)। फिर यह अधिक नामरूपोन्मुख होकर द्वितीय अवस्था में 'अहंकार' का रूप लेती है। तत्पश्चात् असल सृष्टि विकास यहाँ से, इस तृतीय स्तर से, चालू होता है जब 'अहंकार' संज्ञक प्रकृति एक ओर तो 'वैकारिक (सात्विक और स्यंगत subjective) स्तर पर मन, व्यक्तिगत प्रज्ञा (बुद्धि), और दस इन्द्रियों के 'सूक्ष्म रूपों' (जैसे आँख की आकृति स्थूलरूप है और सूक्ष्मरूप है 'दृष्टि शक्ति') में विकसित होती है; दूसरी ओर 'तामसिक' (वस्तुगत objective) स्तर पर यह आदिभूत (पंचभूतों का आकृतिहीन, विराटव्यापी रूप) तथा उसके सूक्ष्मरूप (पंच तन्मात्राएँ; शब्द, गंध, स्पर्श, रस, रूप) में विकास पाती है। प्रकृति के दोनों वैकारिक और तामासिक विकासों में परस्पर थीसिस और एण्टी-थीसिस का सम्बन्ध रहता है, और अभी तक ये दोनों निर्वैयक्तिक (impersonal) ही हैं।

इन दोनों के समन्वय (synthesis) से राजसी सृष्टि का जन्म होता है असंख्य-असंख्य 'पुरुषों' (souls) को 'आकृति' में बाँधते हुए। प्रत्येक 'पुरुष' को आकृति का एक साँचा या 'मोडल' या 'पुर' (मन, दशेन्द्रिय और पंचप्राणयुक्त 'पुर') प्राप्त होता है जिसमें वह अपने को मुकुल के अन्दर बन्दी भ्रमर की तरह अवरुद्ध कर लेता है और प्रकृति के रूप रसादि सुख को भोगता है। इस सारे सृष्टि विकास में प्रकृति का उद्देश्य क्या है ?

'पुरुष' को अपने 'पुर' रूप भोग-पाश में बाँध कर भोग-सुख देना; तथा उस भोग-पाश को तोड़कर 'मुक्त' होने का सुख पाने के लिए एक अवसर, एक 'अखाड़ा' या संयोग रचना, क्योंकि 'मुक्ति' सुख का स्वाद तभी मिलेगा जब 'बन्धन' का अस्तित्व हो। अतः प्रकृति पुरुष के लिए भोग का उपकरण जुटाती है और साथ ही मुक्ति-सुख की चेष्टा और उपलब्धि के लिए अवसर भी रचती है। पुरुष इस ज्ञान को, इस 'सांख्य' को बूझे-समझेगा तो सचेत होकर प्रकृति के इस बन्धन को तोड़ने का यत्न करेगा, इसके बाहु-पाश से अपने को झटक करके अलग कर लेगा। यही संक्षेप में सांख्य दर्शन की मूल 'थीसिस' है। इसमें ईश्वर का कहीं नाम नहीं। मायाविनी सविकार आद्याशक्ति प्रकृति तथा असंख्य असंख्य सचैतन्य 'पुरुष' गण—इसमें इन्हीं दो की लीला है।

यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि यदि प्रकृति अपनी सारी शक्ति के बावजूद चैतन्य रहित अन्ध और सविकार मात्र है तो यह सब वह कैसे कर पाती है इतने शिस्तबद्ध और ऋतबद्ध ढंग से ? अतः इस प्रकृति का नियमन करने के लिए असंख्य-असंख्य 'पुरुषों' का आत्मरूप विश्वस्रोत, एक कर्म क्लेश-विपाकहीन 'पुरुषोत्तम' का होना आवश्यक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो इस सारे खेल को चलाये। यही पुरुषोत्तम हुआ 'ईश्वर' या 'परमात्मा'। असंख्य-असंख्य पुरुषों में से प्रत्येक का पुरुषार्थ है : प्रकृति के बन्धन को तोड़कर अपने असली स्वरूप को प्राप्त हो जाना अर्थात् उक्त परमात्मा के साथ एकाकार हो जाना। यही योगदर्शन का उद्देश्य है। यही योग दर्शन है। योग अर्थात् चिन्मय सत्ता 'परमात्मा' से अपनी व्यक्तिगत चिन्मय सत्ता 'आत्मा' का योग और लय।

इस प्रकार देखते हैं कि 'योग' साध्य है और सांख्य साधन। इसी से डॉ० एस० एन० दास गुप्ता ने कहा है कि "योगदर्शन तो 'सेश्वर सांख्य' का ही दूसरा नाम है।" योग सेश्वर सांख्य को सोद्देश्यत्व तथा व्यावहारिक आकृति प्रदान करता है। सांख्य थ्योरी है तो योग 'व्यवहार' (Practice) है। सांख्य को बूझ-समझ कर ही पुरुष चेतता है और योगारूढ़ होता है। योगारूढ़ होकर वह परम पुरुषार्थ उपलब्ध करता है। 'गीता' और 'पातंजलि योगशास्त्र' दोनों ही इस योग का उपदेश "तस्मात् योगी भव" कह कर देते हैं। योगसूत्रों में इसकी अभ्यास पद्धति की व्याख्या है।

हमारी धारणा है कि योगदर्शन का व्यावहारिक रूप भी विकसित होता है भारतीय लोकायत धर्म के 'देहवाद' से। यह देहवाद भी आदिम प्रकृतिवाद की ही तरह लोकायत परम्परा का अंग है। 'छान्दोग्य' पुराने उपनिषदों में से एक है। वैरोचन का 'देहवाद', तथा 'अन्न ही ब्रह्म है' जैसे मत, आर्यों की लोकायत-धारा के विश्वासों के छिट-पुट अवशेष (relics) हैं। मनुष्य की या किसी भी प्राणी की देह को अद्भुत् रहस्यमय शक्तियों के 'पुर' के रूप में प्रारम्भ से ही देखा जाता था और इसके भीतर रहस्यमय शक्ति के केन्द्रों की कल्पना लोकविश्वास में आदिम काल से चली आ रही है। यह कल्पना शुद्ध जड़वाद नहीं।

आदिम देहवाद 'जड़वादी' नहीं था बल्कि 'तन्त्रवादी' (occulist) था। 'देह' की रहस्यमता तो तब कम होनी शुरू हुई जब नये सायंस का पदार्पण हुआ। देह की रहस्य-निरपेक्ष भौतिक सत्ता के रूप में उपलब्धि तो बिलकुल आधुनिक उपलब्धि है। प्राचीन लोकायत में 'देहवाद' का अर्थ होता था 'देह-रहस्य'-वाद। मानव शरीर की विविध क्रियाएँ अज्ञात और अबूझ लगीं और फलस्वरूप प्रत्येक क्रिया में रहस्यवाद का अनुभव हुआ। अन्त 'ब्रह्म' है और 'देह' लघु ब्रह्माण्ड है, ऐसी कल्पनाएँ आर्यों के आदिम लोकायत से चलती हैं और ये बातें भौतिकवाद की द्योतक नहीं, बल्कि रहस्यवाद की द्योतक हैं। आदिम 'देहवाद' और आदिम 'प्रकृतिवाद' दोनों के दोनों, आधुनिक अर्थ में 'जड़वादी' (materialistic) नहीं थे, बल्कि जादू-टोना, तंत्र-मंत्र से युक्त रहस्यवादी थे। इस बात को हम अज्ञान कह सकते हैं, परन्तु 'जड़वाद' नहीं।

जब आदिम पुरुष 'रोटी' को 'भगवती माई' या 'ईश्वर' कह कर पूजता है, तो यह जड़वाद नहीं, बल्कि रहस्यवाद है। भले यह 'अज्ञान' हो। इस बात को न समझे बिना हम 'लोकायत परम्परा' को ही 'भौतिकवादी परम्परा' के पर्यायरूप में ग्रहण करने की गलती कर बैठेंगे और अपने सारे निष्कर्षों को आधुनिक भौतिकवाद की वकालत में पेश करने लगेंगे। (जैसा कि मार्क्सवादी विचारकों ने प्रायः किया है)। अतः इस सम्बन्ध में जरा बौद्धिक सावधानी बरतनी होगी।

पुराणों और तन्त्रों में समान रूप से कहा गया है—"जोई मुण्डे, सोई ब्रह्माण्डे।" "ब्रह्मण्डे जो गुणाः सन्ति ते तिष्ठन्ति कलेवरे।" इस 'कलेवर' के भीतर विश्व का सारा 'रहस्य' है। यह भाव प्राचीन लोकायत धारा से (भारतीय संस्कृति में यही 'आगम'-धारा कही गयी है, परन्तु नया शब्द लोकायत अर्थात् 'लोक' से 'आयत', (अधिक स्पष्ट है और अधिक व्यापक है) जन्म लेता हुआ आगम के तन्त्रों और निगम के दर्शनों दोनों में विकसित होता रहा है।

आगम और निगम को जोड़ने की कड़ी हैं सांख्य और योग। पातंजलि के योगदर्शन में परिभाषा पाते हैं—"योगश्च चित्तवृत्ति निरोधः।" और यह घोषणा इस बात की द्योतक है कि योग 'चित्त' का शास्त्र है। परन्तु पूरा योगसूत्र पढ़ जाने पर पता चलता है कि यह 'चित्त' केवल Mind के लिए नहीं आया है बल्कि इस चित्त का अर्थ होता है—'मन + बुद्धि + दशेन्द्रिय + पंचप्राण' से संयुक्त 'चित्त'। इसीलिए डॉ० एस० एन० दास गुप्ता ने लिखा है—अहंकार और इन्द्रियों समेत बुद्धि को ही योगदर्शन में चित्त कहा गया है।

पातंजलि योगदर्शन के विभूतिवाद में काया-संयम, कायासिद्धि, "नाभिचक्रे काया व्यूह ज्ञानम्" "कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा निवृत्ति", "कूर्मनाड्यां स्थैर्यम्" "मूर्ध ज्योतिषि सिद्धदर्शनम्" आदि की स्पष्ट चर्चा है। उद्देश्य है चित्तवृत्ति निरोध। पर यह चित्त मन-प्राण-इन्द्रियों का ही 'सूक्ष्म'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समवाय ('स्थूल' नहीं) है और यही कारण है। योग की प्रथम सीढ़ी है काया व्यूह का ज्ञान तथा विविध स्नायु-मण्डलों का प्राणायाम द्वारा नियमन और विकास। व्यवहार पक्ष में योगदर्शन सम्पूर्णतः देहाश्रित है। इसका उद्देश्य ही है 'दिव्य तनु' या 'भागवती तनु' की प्राप्ति। योग-सिद्धि इस शरीर के हित प्राप्त होती है। चरम कैवल्य सिद्धि शरीरपात से पूर्व ही अर्जित होती है और शरीर यंत्र का काम करता है उस अर्जन में। देह की सारी रहस्यमय शक्तियों का आहरण और नियमन करने की क्षमता ही योगसिद्धि की प्रथम उपलब्धि है।

योग का क्षेत्र निगम के इस 'योगदर्शन' से भी व्यापक है। वस्तुतः योग आगम का विषय है, तंत्र-जगत् की वस्तु है, साधना का मार्ग है। उस क्षेत्र में जाकर हमें योग की षट्चक्र की थ्योरी मिलती है। तांत्रिकों और योगियों को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने एक अत्यन्त वैज्ञानिक सत्य को आविष्कृत कर लिया था कि चैतन्य की स्थिति कपाल (मस्तिष्क) में है और सुषुम्ना मेरुदण्ड में है जबकि ठेठ दार्शनिक गण 'चित्त' को 'हृदय' में बताते थे। अरस्तू आदि पश्चिमी दार्शनिक भी चेतना का निवास हृदय (heart) में ढूंढ़ते थे। तांत्रिकों और योगियों ने दूसरा आविष्कार किया था शरीर के अन्दर शक्ति के प्रधान छः चक्रों (स्नायु केन्द्रों) को और उनकी आकृति कमलवत् कल्पित की थी। (अवश्य ही इस द्वितीय आविष्कार की वैज्ञानिक प्रामाणिकता अभी तक उपलब्ध नहीं)। वे षट्चक्र हैं—

(१) रक्तकमल की आकृति, चार दल (मूलाधार चक्र)

(२) पाटल वर्ण कमल, छः दल (स्वाधिष्ठान चक्र)

(३) श्याम वर्ण कमल, दस दल (मणिपूर चक्र। यही नाभि कमल है।)

(४) उज्ज्वल वर्ण कमल, बारह दल (अनाहत चक्र। यही हृदय-कमल है।)

(५) धूम्र वर्ण कमल, सोलह दल (विशुद्ध चक्र। यहीं कण्ठ-कूप का वाक् कमल है।)

(६) चन्द्रमा वर्ण का शुभ्र कांति कमल, दो दल (आज्ञा चक्र। यही भृकुटी के मध्य तीसरी आँख के स्थान पर स्थित है। यहीं उपास्य देवता के साथ साधक का तादात्म्य घटित होता है।)

शरीर मूल में कुण्डलिनी शक्ति स्थित है। योगी गण सुषुम्ना नाड़ी पर स्थित इन षट्चक्रों के मार्ग पर उक्त 'शक्ति' को उर्ध्वगामी करते हैं। साधारण शरीर में ये चक्र सुप्त या सम्पुटित रहते हैं। कुण्डलिनी के बेधते ही ये प्रसुप्ति छोड़कर जाग्रत और प्रस्फुटित हो जाते हैं और प्रस्फुटन के साथ वह क्षमता भी प्रस्फुटित हो जाती है जो जन साधारण में सुप्त पड़ी रहती है। इन छः स्नायु-कमलों (चक्रों) तक कुण्डलिनी अकेले भ्रमण करती है। इनके ऊपर है सातवाँ चक्र ब्रह्मरंध्र में 'सहस्र दल कमल' का है। यहीं पर आकर 'शक्ति' का 'शक्ति धर शिव' या 'भगवान्' के साथ एकाकार हो जाता है।

कहने का तात्पर्य यह कि कमल की आकृति में ही आन्तरिक शक्ति के केन्द्रों की कल्पना की गयी है और इस प्रकार पूर्ण प्रस्फुटित कमल योगदर्शन का प्रतीक हो गया है। इस आध्यात्मिक शक्ति का आहरण ही सर्वोच्चऋद्धि है। कमल 'ऋद्धि' का प्रतीक है, वह ऋद्धि सौन्दर्य, श्री, भूमा, शान्ति, ऐश्वर्य तो है ही—यह तो बिल्कुल स्पष्ट है; परन्तु यह कमल 'आध्यात्मिक ऋद्धि' का भी प्रतीक है, इस बात को बिना योगशास्त्र से परिचित हुए जाना नहीं जा सकता। भगवान् ही योगेश्वर हैं और इस यौगिक या आध्यात्मिक ऋद्धि का कमल भी उनके हाथ में स्थित है। इसके पाने के दो मार्ग हैं: योगमार्ग और भक्तिमार्ग। भक्त को कुण्डलिनी जगाने की परेशानी नहीं उठानी पड़ती क्योंकि उसका लक्ष्य मोक्ष या कैवल्य, परमपद या ब्रह्म में लय होना नहीं। भक्ति की दृष्टि से कमल सौन्दर्य प्रणय और पवित्रता का प्रतीक है। भक्ति एक काव्य है, एक सौन्दर्यबोध है। परन्तु योग एक शक्ति-साधना है और योग के संदर्भ में कमल प्रतीक है 'देह' या कलेवर के भीतर निहित आध्यात्मिक शक्ति के केन्द्रों का।

सांख्य और योग ये दो दर्शन आगम और निगम दोनों में उभयनिष्ट हैं और दोनों को परस्पर जोड़नेवाली कड़ी हैं। इसलिए वेदान्त हमारा केन्द्रीय दर्शन होते हुए भी, सांख्य और योग का अपार महत्त्व है। भागवत धर्म के संदर्भ में आकर योग वेदान्त का व्यावहारिक रूप या साध्य रूप बन जाता है, और सांख्य बन जाता है साधन रूप।

भागवत धर्म के ढाँचे में ये तीनों परस्पर पूरक बन गये हैं। भागवत धर्म का केन्द्रीय देवता विष्णु इसलिए सर्वाङ्गपूर्ण देवता हैं कि इसमें ही आकर परस्पर विरोधी चिन्ताओं और परम्पराओं का समाहार हो जाता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानेट

प्रो० सुरेशचन्द्र

आज कवि की आत्मा विश्वात्मा बन गीत गाती,
सृष्टि का कण-कण उसी के नाद से लो, गूँजता है,
ज्योति पारावार से वह इन्द्रधनुषी रंग लाती
जिसे सजाकर मेघ का रंगीन सा जग डोलता है।
विश्व के आँसू तथा मधुहास की नदियाँ समाईं
कवि हृदय के विपुल पारावार अंचल में लहरतीं,
प्रति कणों की वेदना तड़पन कसक वह बहा लाईं
किन्तु कवि-उर-जलधि से जीवन-प्रदायिनि वाष्प उड़ती।

कवि हृदय में नित्य शत ब्रह्माण्ड बनते औ बिगड़ते,
साथ ही पतझार औ मधुमास, झंझा गीत गाते,
मृत्यु-जीवन हाथ पकड़े साथ नाचें औ विहरते,
धवल आशा-शिखर औ नैराश्य-तम-घन साथ आते।
सभी कुछ कवि के हृदय की बाँसुरी की तान में मिल
एक नूतन जिन्दगी का राग बनकर बजें झिलमिल॥

वह शास्त्रीय तथा लोकायत दोनों परम्पराओं का सम्पूर्ण अलंकरण स्वीकार करके जनमानस में प्रतिष्ठित है। विष्णु के नामों, आयुधों और अलंकरण के पीछे भारतवर्ष का सारा मानसिक उत्तराधिकार छिपा है। ठीक-ठीक विष्णु को पहचानने का अर्थ होता है भारतवर्ष का पुनराविष्कार करना। यहाँ एक उदाहरण देना ठीक होगा। विष्णु के हजार नामों में एक नाम है 'अप्रतिरथ' (जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी न हो)।

पहले मेरी यह धारणा थी कि यह नाम विष्णु सहस्रनाम के कवि का आविष्कार है, उसने देवता की प्रशंसा में 'अप्रतिरथ' नाम दे दिया। परन्तु बाद में मुझे आश्चर्य हुआ यह जानकर कि यह नाम किसी कवि का आविष्कार नहीं, बल्कि यह एक सुदृढ़ लोकपरम्परा से आता है। मौर्ययुग में मगध-साम्राज्य में 'अप्रतिरथ' के मन्दिरों का उल्लेख है और ये अप्रतिरथ थे चतुर्भुज विष्णु।

यह नाम लोकपरम्परा से घोषित विशिष्ट नाम था, जैसे शिव के लिए 'विश्वेश्वर' या विष्णु के लिए 'जगन्नाथ' आज के युग में है। इसी से मैं कहता हूँ विष्णु को ठीक-ठीक से पहचानने से कोई आध्यात्मिक उपलब्धि हो या न हो; परन्तु इससे एक अत्यन्त महिमामय इतिहास-बोध हाथ लगता है जिसकी सीमा सुमेरिया (मेसोपोटामिया) से थाइलण्ड और हिन्देशिया तक फैली है और दूसरी बात यह कि इससे भारतीय संस्कृति और भारतवर्ष को हम नये आयाम में पुनराविष्कृत करते हैं। भारतवर्ष की श्रेष्ठतम महिमा का दूसरा नाम विष्णु है।

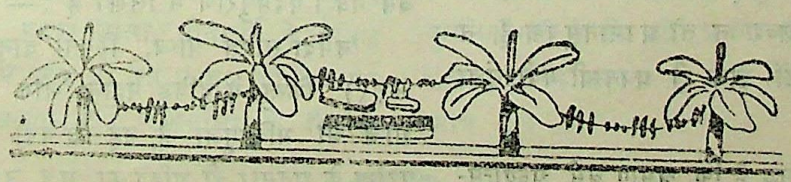

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्राविड़ सभ्यता की बात

श्रीपरिपूर्णानन्द वर्मा

तामिलनाद देश में द्राविड़ समुदाय के एक अङ्ग ने 'राम विरोधी' तथा 'रावण-पूजा' का जो अभियान शुरू किया है उसमें नारा लगाया गया है कि 'द्राविड़ सभ्यता' का अपमान उत्तर भारत कर रहा है। अतएव एक बड़ा प्रश्न यह उठता है कि द्राविड़ सभ्यता क्या है।

इतिहास के आधुनिकतम शोध ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत में वर्त्तमान महान् द्राविड़ लोग भूमध्य सागरीय आदिम निवासियों की एक शाखा हैं जो पूर्व-आर्यकाल में समूचे उत्तर भारत में बस गये थे। द्रविड़ परिवार की मुख्य भाषाएँ हैं—तामिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयालम। इनके अतिरिक्त गोंडी, कुई, ओराँव आदि भाषाएँ या बोलियाँ भी द्रविड़ परिवार की हैं। वैदिक सभ्यता के पूर्व ये भाषाएं उत्तरी, पश्चिमी, केन्द्रीय तथा पूर्वी भारत की भाषा थीं, व्यापक रूप से प्रयुक्त वाड्मय थीं। आज भी बलूचिस्तान में प्रचलित ब्राहुई नाम की बोली द्रविड़ भाषा का अपभ्रंश है।

असुर वर्ग

आज अज्ञानवश हम 'असुर' शब्द को हेय, नीचा समझते हैं। आर्यों के आगमन के पूर्व भारत में दो प्रकार की जाति थीं—सभ्य तथा असभ्य। इनमें असुर, नाग, द्रविड़ ये तीन सभ्य जातियाँ थीं तथा दास जाति असभ्य थी। असुर जाति ईरान तक फैली हुई थी और असुरों के ही देवता 'असुर महान'—(अहुर-मज़द)' आज भी पारसी धर्म में भगवान् के समान पूजनीय हैं। आर्यों के प्रवेश के बाद उन्होंने असुरों से भिन्न स्थापित करने के लिये अपने को 'सुर' तथा 'देव' कहा तथा आर्य के अलावा लोग 'असुर' तथा 'दानव' की संज्ञा में आ गये। आर्य को अधिक सभ्य तथा महान् समझने वालों ने 'सुर' तथा 'देव' को 'असुर' तथा 'दानव' से अधिक महान् समझा था। रावण के साथ 'असुर' तथा 'दानव' शब्द न तो अपमानसूचक हैं, न घृणा के। यह केवल द्रविड़ों द्वारा ही अपनायी गयी संज्ञा है, नाम है।

इतिहास से यह भी सिद्ध है कि श्रमण धर्म, अध्यात्मवाद का धर्म, जिसे आज हम जैन धर्म कहते हैं, असुरों में व्यापक था। अर्हत या जैन धर्म, का अनुयायी होने के कारणइन्हें 'असुर' कह कर वैदिक आर्य इनको अपने से पृथक समझते थे।

'द्राविड़' की व्याख्या

द्रविड़ की सन्तान को द्राविड़ कहते हैं। 'शत्रुंजय माहात्म्य' नामक प्राचीन हिन्दू ग्रंथ के अनुसार आदि पुरुष तथा भारत के आदि नरेश ऋषभ स्वामी के सौ लड़कों में से एक लड़के का नाम द्रविड़ था। ऋषभ स्वामी ही जैनियों के प्रथम तीर्थंकर हैं। मनुस्मृति, महाभारत आदि के अनुसार दो बातें मालूम होती हैं —एक तो द्रविड़ वे लोग थे जो निम्न श्रेणी के क्षत्रिय थे, दूसरे दक्षिण में एक जिले का नाम द्रविड़ है। द्रविड़ शब्द का तीसरा अर्थ है 'पाँच' की संख्या। महाभारत के अनुसार कर्णाटकी, गुर्जर, तैलंग, महाराष्ट्र द्रविड़ थे। इस प्रकार तमिलनाडू के जो लोग अपने को केवल तामिल प्रदेश का निवासी समझते हैं वे न तो अपने व्यापक रूप को जानते हैं और न जानने की चेष्टा करते हैं। महाभारत में 'द्राविड़ देश' ऊपर लिखे क्षेत्रों के निवासियों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

द्राविड़ नाम के एक बड़े पण्डित उत्तर भारत में हो गये हैं जिन्होंने 'अमरकोष' का भाष्य लिखा है।

प्राचीन द्रविड़

प्राचीन द्रविड़ अध्यात्मवादी थे। अर्हत या शैव थे। शैव या शाम्भवी मत वैदिक मत से पुराना है, यह तो सिद्ध है। इन्हीं द्रविड़ शैवों में प्राचीन व्रात्य (व्रत रखने वाले तपस्वी) होते थे।

जिन प्राचीन महापुरुषों की आज उत्तर भारत में चारों ओर पूजा होती है उनमें असुर राजा बलि, नमुचि और प्रह्लाद हैं। वे द्रविड़ थे। आर्यों के नेता इन्द्र द्वारा पराजित होने के बाद वे दक्षिण चले गये। नर्मदा तट पर बस गये। पद्मपुराण में लिखा है :—

'नर्मदा सरितं प्राप्य, स्थिता दानव सत्तमाः' (१३।-४१२)' किन्तु, ये द्रविड़ महान् लोग थे। हिन्दू धर्म में आज जो भक्तिपूजा है, वह द्रविड़ों की देन है। पद्मपुराण के अनुसार ही भक्ति का मूल उद्गम द्राविड़ प्रदेश है। लिखा है—उत्पन्ना द्राविड़े चाहम्। (उत्तर०५०।५१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत की यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदि जातियों में द्रविड़ का श्रेष्ठ स्थान था। २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने कर्णाटक, कोंकण, पल्लव तथा द्राविड़ देशों में विहार किया था। वे उस समय 'अनार्य' समझे जाते थे। सकलकीर्ति लिखित पार्श्वनाथ चरित्र (१५।७६-८५ तथा २३।१०-१९) में इनका अच्छा वर्णन है। जब समय पाकर वैदिक धर्म ने जैनियों का अध्यात्मवाद अपना लिया तथा वैदिकों का कर्मकाण्ड जैनियों ने ग्रहण कर लिया तब दक्षिण के द्रविड़ इतने कट्टर हिन्दू हो गये कि उनके बराबर असहिष्णु तथा उग्र हिन्दू उत्तर भारत में न रहे। दक्षिण के ही केरल निवासी आदि शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म के प्रचार प्रसार के लिए उत्तर भारत का 'दिग्विजय' किया था और दक्षिण के ही रामानन्द, नेमनाथ ज्ञानदेव, रामदास, तिरुवल्लियर आदि ने राम-कृष्ण की मर्यादा पुनः स्थापित करायी थी। मुस्लिम आक्रमण के बाद हिन्दू धर्म एवं राम-कृष्ण तथा अन्य अवतारों के रक्षक, पूजक, पुजारी द्राविड़प्रदेश ही रह गये थे और उन्हीं से हमने अपने धर्म की मर्यादा प्राप्त की।

अहिन्दुओं पर अत्याचार

द्राविड़ प्रदेश के हिन्दुओं ने अहिन्दुओं पर जितने अत्याचार किये तथा बर्बरताएँ कीं, उतना उत्तर भारत के किसी हिन्दू नरेश ने नहीं। द्रविड़ के ही 'लिंगायत' तथा 'वीर शैव' सम्प्रदायों ने जैनियों तथा बौद्धों पर क्या अत्याचार नहीं किये। कर्णाटक में वीरशैव ने जैनियों पर बहुत अत्याचार किया। गुजरात तथा मारवाड़ में जितना ब्राह्मणों ने किया उससे अधिक ही। लेफ्टि० कर्नल विलियम माइल्स ने तो यहाँ तक लिखा है कि पत्तननगर में आदि शंकराचार्य के कहने से बहुत से जैन साधु नष्ट कर दिये गये और जहाँ वे नष्ट हुए उस स्थान का नाम लछोद्धारा है।

विजयानगरम साम्राज्य में नरेश अदोनदयी ने पांत चूड़ी नामक जैन सम्प्रदाय को एकदम नष्ट कर दिया। सातवीं सदी में एक द्रविड़ पांड्य-वंश के नरेश ने मदुराई के ८००० जैनों को मरवा डाला, मीनाक्षी के प्रसिद्ध मन्दिर के एक मण्डप में आज भी उस घटना को चित्र-रूप में अंकित देखा जा सकता है। रामलीला के विरोधी द्रविड़ों को यह पता है कि प्रतिवर्ष मीनाक्षी के मन्दिर में जो बारह उत्सव होते हैं उनमें से एक है एक जैन मूर्ति का एक लट्ठ से पेट फाड़कर उसका जलूस निकालना। द्रविड़ अपने ही आदि धर्म का प्रतिवर्ष यह घृणास्पद अनादर करते हैं। इसमें उनकी 'द्राविड़ सभ्यता' को कोई ठेस नहीं पहुँचती। बारहवीं सदी से पन्द्रहवीं सदी तक का द्रविड़ इतिहास उनकी असहिष्णुता, धार्मिक उद्दण्डता तथा बर्बरता का रक्त-रंजित इतिहास है।

श्रीलका का इतिहास साक्षी है कि रावण ऐसे महापुरुष नरेश भारत से जाकर बसने वाले लोगों में नहीं थे। इतिहास के अनुसार वे भूमध्य सागर की द्रविड़ जाति के समानान्तर बसी हुई आस्ट्रो-एशियाई जाति के थे। प्रथम भारतीय जो वहाँ गया वह एक बंगाली राजकुमारी का पुत्र सिंहल था जिसके नाम से सिंहल देश नाम पड़ा जिसको वर्त्तमान श्रीलंका सरकार ने भारतीय नाम समझकर बदल दिया है तथा पुराने श्रीलंका के नाम पर आ गयी है। जो लोग रावण को द्रविड़ मानकर द्राविड़ सभ्यता की दुहाई दे रहे हैं वे गहरी भूल कर रहे हैं।

आज राजनीतिक दृष्टि से चाहे जो भी किया जाय पर द्राविड़ प्रदेश के लोगों को यह नहीं भूलना चाहिए कि सर्वोपरि पूज्य अगस्त्य ऋषि आर्य थे। पौराणिक कथा है कि जब विंध्य पर्वत बहुत ऊँचा उठने लगा तब हिमालय को भय लगा कि यह मुझसे ऊँचा हो जायगा। अतएव शंकर से उसने प्रार्थना की। शंकर के आदेश से अगस्त्य ऋषि अपने शिष्यों के साथ दक्षिण चले। उनके आगमन का समाचार पाकर विंध्य देवता उन्हें प्रणाम करने झुके तो अगस्त्य ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि 'इसी प्रकार रहो, जब तक मैं वापस न आऊँ।'

विंध्य तब से उनकी प्रतीक्षा में झुका हुआ है। अगस्त्य दक्षिण भारत में अपने साथियों के सहित बस गये। वास्तव में प्रतीक रूप में यह कथा है उत्तर से आर्यकरण के लिए अगस्त्य के हजारों आर्यों के सहित दक्षिण के लिए सांस्कृतिक प्रवास की। तब से द्रविड़-आर्य सभ्यता इतनी घुलमिल गयी है कि उसे अलग करना भी असम्भव है। अतएव द्राविड़ सभ्यता का नारा नितान्त भ्रम तथा कल्पना मात्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनयपत्रिका के कुछ प्रमुख हस्तलेख, प्रकाशित संस्करण एवं टीकाएँ

श्रीरामप्यारे त्रिपाठी

'विनयपत्रिका' के १७१ पदों की एक हस्तलिखित प्रति रामनगर (वाराणसी) निवासी स्व० चौधरी छन्नीसिंह के पास थी। इसकी पुष्पिका का कुछ अंश खंडित है। भागवतदास छत्री द्वारा सम्पादित प्रति के आधार पर पुष्पिका का रूप इस प्रकार बनता है :—

'इति श्री तुलसीदास विरचित [रामगीता] वली समाप्ता।
यदि रघुपति भक्तिर्मुक्तिदा प्रेक्ष्यते सा
सकल क [लुष हर्त्री] सेवनीयाऽप्रयासात्।
शृणुतु सुमति पुंसो निर्मिता राम भक्तै-
र्जग [ति तुल] सि दासै राम गीतावलीयाम ॥'

कोष्ठान्तर्गत शब्द पोथी में नहीं रह गये हैं। प्रतिलिपि की तिथि एवं प्रतिलिपिकार संबंधी अंश इस प्रकार है :—

'सुभम् संवत् १६६६ समये श्राव····द १२ बुधवासर लिखितम भगवान ब्राह्मणेन सुभम् भवेत।'

डा० माताप्रसाद गुप्त ने खंडित अंश की पूर्ति 'श्रावण सुद' से की है। प्रतिलिपिकार भगवान ब्राह्मण तुलसीदास के पितृतुल्य संरक्षक तथा आश्रयदाता कहे जाते हैं। छुन्नीसिंह के पास इन्हींकी लिखी हुई 'पदावली रामायण' नाम से 'गीतावली' की एक अत्यंत खंडित प्रति भी थी। श्रावणकुंज, अयोध्या में उपलब्ध 'मानस' का सं० १६९१ का लिखा प्रथम सोपान भी इन्हींका हस्तलेख कहा जाता है। 'विनयपत्रिका' के उपर्युक्त हस्तलेख के प्रत्येक पृष्ठ के हाशिये पर "रा० गी०" लिखा है। इससे पोथी का 'रामगीतावली' नाम तुलसीदास का दिया हुआ स्पष्ट है। इसके एक पृष्ठ पर किया हुआ संशोधन कवि के हाथ का किया हुआ कहा जाता है।

'रामगीतावली' में अंतिम पद संख्या १७५ दी हुई है। पद संख्या ७२ तथा १२१ दो बार लिख गयी है। ६८वाँ पद पुनः पद संख्या ११३ पर लिखा गया है। इसके २६, २७, ३६, ८० तथा १६६ संख्यक ५ पद वर्तमान 'गीतावली' में पाये जाते हैं। इस प्रकार विनयपत्रिका में इसके १७५ + २ − १ − ५ = १७१ पद लिये गये तथा १०८ पद और जोड़े गये। 'रामगीतावली' की प्रति के पद संख्या ३७ से ४०, ९० से १०१, ११८, १७० तथा १७१ के पत्रे खंडित हैं। इस पाठ की अन्य कोई प्रति उपलब्ध नहीं है। 'रामगीतावली' को 'विनयपत्रिका' का रूप देते समय पदों का क्रम भी बदल दिया गया है। अतः इन १९ पदों का अनुमान लगाना कठिन हो गया है। मेरे अनुमान से 'विनयपत्रिका' के पद ३७, ३८ (लक्ष्मण-स्तुति-सम्बन्धी), २३ व २४ (चित्रकूट-स्तुति सम्बन्धी), १९, २० (गंगा-स्तुति-सम्बन्धी), ३, ८, ११ (शिव-स्तुति-सम्बन्धी), ३२, ३३, ३४, ३५ (हनुमान-स्तुति-सम्बन्धी) तथा १७६ 'राम गीतावली' में भी रहे होंगे। शेष ५ पदों का अनुमान लगाने के लिए मुझे कुछ भी आधार नहीं मिल पाया। इस सम्बन्ध में अनुसंधित्सु स्वयं विचार करें।

हरताल और काट-छाँट इस पोथी में प्रायः नहीं के बराबर है। इस प्रकार पंडितों के हाथों से यह अछूती बच गयी है। हस्तलिखित उपलब्ध प्रतियों में यह प्राचीनतम है और कवि के जीवन-काल में उसके सम्पर्क में लिखी गयी प्रतीत होती है। इसका पाठ बहुत उत्तम है तथा अन्य सामान्य प्रतियों अथवा संस्करणों से बहुत से स्थलों पर भिन्न भी है। अतः 'विनयपत्रिका' के रचनाक्रम के अध्ययन तथा उसके पाठ-निर्धारण के लिए यह प्रति आधार-शिला है।

विजयानगर (ईजानगर) वाराणसी कोठी लीला के व्यास श्रीगजाधरदासजी के पास एक महत्त्वपूर्ण प्रति विनयपत्रिका की उपलब्ध थी। इसके प्रारम्भ के ९ पदों तथा अन्त के ४ पदों के पत्रे खंडित हैं। यह २०० वर्ष पुरानी कही जाती है। यह पोथी संवत् १६६६ वाली प्रति को छोड़कर अन्य सबसे शुद्ध प्रतीत होती है। इसका पाठ सं० १६६६ वाली पोथी के पाठ से बहुत मिलता-जुलता है। खेद की बात है कि अंजनीनंदनशरण के 'विनय-पीयूष,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अतिरिक्त संवत् १६६६ की प्रति तथा ईजानगर के व्यास की प्रति का उपयोग किसी सम्पादक ने नहीं किया। नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी द्वारा सं० २०३१ में प्रकाशित 'तुलसी-ग्रन्थावली' में भी ऐसी महत्त्वपूर्ण प्रतियों के उपयोग की उपेक्षा पाठालोचन की दृष्टि से शोचनीय है।

'विनयपत्रिका' की किसी सं० १७१७ की प्रति के आधार पर सं० १९४२ वि० में श्रीभागवतदास छत्री ने सरस्वती यंत्रालय, काशी से 'विनयपत्रिका' का एक संस्करण प्रकाशित कराया था। हस्तलिखित प्रति अब अप्राप्य है। अतः उक्त संस्करण का महत्त्व प्रकट है। सं० १६६६ की 'रामगीतावली' का पुष्पिका वाला श्लोक इस संस्करण में भी है। इस संस्करण का पाठ बहुत सुन्दर है, यद्यपि 'रामगीतावली' के पाठ से कम मिलता है और उससे भिन्न परम्परा का पाठ प्रस्तुत करता है।

संवत् १७६० की प्रति—इसका उल्लेख हिन्दी खोज रिपोर्ट सन् १९२६-२८, नो० ४८२ जेड (१) पर हुआ है। 'विनयपत्रिका' पाठ की प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन प्रति यही है। प्रकाशित संस्करणों में इस प्रति का भी उपयोग न किया जाना मानसेतर ग्रन्थों के सम्पादन में संतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

संवत् १७७४ की प्रति—इसे चित्रकूट के स्वामी श्री रामजी से प्राप्त करके पं० महावीरप्रसाद मालवीय वैद्य उपनाम 'वीर कवि' ने सं० १९८० में वेलवीडियर प्रेस, प्रयाग से इसके आधार पर अपने सटीक संस्करण का मूल-पाठ प्रकाशित किया। यह प्रति अब अप्राप्य है। इस संस्करण में रामगुलाम द्विवेदी की सं० १८८५ की लिखी प्रति से भी सहायता ली गयी है। 'वीर कवि' को सं० १८३७ और १८५४ की भी प्रतियाँ प्राप्त हुई थीं। परन्तु इस संस्करण का पाठ पुरानी पोथियों के पाठ से बहुत कम मिलता है और प्रामाणिक नहीं प्रतीत होता, यद्यपि सम्पादक के अनुसार 'यथासाध्य कविकृत पाठ की पूरी खोज की गयी और खटक आदि छंद दोषों के निवारण करने में पूरा ध्यान रखा गया है।' टीका में अलंकारों के दिग्दर्शन में बड़ा श्रम किया गया है। अच्छा होता यदि यह श्रम भाव-सौन्दर्य के उद्घाटन में किया जाता।

संवत् १८७८ की प्रति—इसके अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—'श्रीतुलसीदास कृत श्रीराम विनयपत्रिका सम्पूर्ण। शुभमस्तु। श्रीरामायनमः। श्रीसंवत् १८७८। कार्तिक बदि। २। बार सनि। दसषत बेनी कायस्थ की स्थिति मिरजापुर मध्य॥ श्री॥ श्री॥। राम॥ १५२॥' यह प्रति भोंसला घाट पर श्रीजानकीवल्लभ जू के मन्दिर में श्री पंडित राघोवल्लभशरणजी के पास थी। श्रीअंजनी-नंदनशरण के 'विनयपीयूष' में इस प्रति का उपयोग करते हुए पादटिप्पणी में इसके पाठ-भेद संकलित किये गये हैं।

सं० १८७९ की, रियासत बलरामपुर के पुस्तकालय की प्रति—इसके अन्त में पुष्पिका यों है—"इति श्रीगुसाईं तुलसीदास कृत विनयपत्रिका सम्पूर्ण। शुभम् भूयात। सवत १८७९ के श्रावण शुक्ल ११ सोमवासरे॥ दोहा।—'जैसी प्रति देषी जथा तैसी दई उतार। मम दूषन नहिं दीजिये लैबी आपु विचार॥' लिखितं प्रह्लाददासः अयोध्या मध्ये लक्ष्मणकुंड सरयू तटे।"

इस पोथी में लोगों ने पाठ बहुत काटा-छाँटा-बनाया है, जिससे प्राचीन पाठ ही नष्ट-भ्रष्ट हो गया है। प्राचीन पोथियों में यही एक पोथी है, जिसमें पहले पहल श्री जानकीजी वाला प्रक्षिप्त तीसरा पद मिलता है। 'विनय-पीयूष' में इस प्रति का भी उपयोग किया गया है।

सं० १८८१ की प्रति—हिन्दी-खोज-रिपोर्ट सन् १९२०-२२, नोट १९८ आई पर इसका उल्लेख है। इसका भी नाम 'रामगीतावली' दिया हुआ है। किसी प्रकाशित संस्करण में इस प्रति का उपयोग नहीं किया गया है।

संवत् १८९३ की प्रति—इसकी पुष्पिका इस प्रकार दी हुई है—"इति श्री संवत् १८९३ मार्गसीर्ष मासे शुक्ल पक्षे षष्टीयां बुधवासरे वारानसी क्षेत्रे लिष्य जमुना दासै बैस्य निज पठनार्थ....।" इसका पाठ संशोधकों से सुरक्षित बच गया है। राजघाट कोठी, काशी से प्राप्त करके श्रीअंजनी-नंदनशरण ने 'विनयपीयूष' के सम्पादन में इसका उपयोग किया है। प्रति पुस्तकाकार है। एक पृष्ठ में प्रायः २८ पंक्तियाँ हैं तथा एक पंक्ति में प्रायः २६ अक्षर हैं। अक्षर सुंदर हैं।

संवत् १९०६ की प्रति—यह स्व० डॉ० माताप्रसाद गुप्त के पास थी। इसका भी नाम 'रामगीतावली' दिया हुआ है। इस हस्तलेख का भी अभी तक उपयोग नहीं किया जा सका।

संवत् १९१५ की प्रति—इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री विनय पत्रिका गोसाईं तुलसीदास कृत सम्पूर्ण संवत् १९१५ जेष्ठ मासे शुक्ल पक्षे नवम्यां गुरुवासरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री अयोध्यापुरी मध्ये इदं विनयपत्रिकायां लिख्यते श्रीराम-रतन दास श्री सीताराम।" इसमें काँट-छाँट या हरताल कम है। मणिरामजी की छावनी, अयोध्या के रामायणी सुन्दरदासजी से प्राप्त करके 'विनयपीयूष' में इसका भी उपयोग किया गया है। इसमें २८० पद हैं।

चरखारी नरेश रतनसिंह की सं० १९३३ में महाराजनगर चरखारी में शेख इलाहीबख्श मुहतमिम मतबआ के प्रबंध में छपी 'विनयचंद्रिका' टीका। टीका के संबंध में उल्लेख है—

'संवत् गुन विध शशी नभ बद बिध शनिवार।
बिनय चंद्रिका छप तिलक ता दिन भयो तयार॥
रतनसिंह राजेन्द्र कृति तिलक विनय को चार।
महाराज जयसिंह की छपि आज्ञा अनुसार॥'

टीका लीथो में छपी है।

डुमराँव नरेश महाराज जयप्रकाशजी के भाई शिवप्रकाशजी की 'तत्वबोधिनी' टीका। इसका प्रथम संस्करण सं० १९४१ वि० का काशी का है। यह पांचवीं बार सं० १९६४ में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ में छपी थी। इसके अंत में यह दोहा है—

'भोज वंस अवतंस कहि जयप्रकाश महराज।
रजधानी डुमराँव है तिनकर सुभग समाज॥
तिनके लघु भाई सुहृद शिवप्रकाश जिहि नाम।
तिनने यह टीका करी सकल शास्त्र को धाम॥'

श्री बैजनाथदासजी की सं० १९४७ में नवलकिशोर प्रेस से छपी 'विनय प्रदीपक' टीका। अंत में टीकाकार का परिचय यों दिया गया है—

'योजन दोय लखनऊ पूरब जीला बारबंकी नाम।
नम्बरदार सुबैजनाथ बसि डेहवा निकट मानपुर ग्राम॥
नग श्रुति अंक मयंक भाद्र शुभ एकादशी सहित बुधवार।
गुरु करुना बल सुलभ यथामति विनय प्रदीपक भयो तयार॥'

अस्तु, सं० १९४७ वि० भाद्रपद सुदी एकादशी को यह टीका पूरी हुई थी। इस टीका में डुमराँव वाली टीका की पूरी छाया है। पद-पद पर टीकाकार की भावुकता उमड़ी पड़ती है। कहीं-कहीं राम-भाव के प्रति टीकाकार ने साम्प्रदायिक पक्षपात किया है, ऐसा लगने लगता है। हो सकता है रामभक्ति के प्रेमावेश में ऐसा हुआ हो। टीका का लगभग एक तिहाई पुनरुक्ति-दोष से ग्रसित है। भा पुरानी देशी है। यह लीथो में छपी है।

खेमराज श्रीकृष्णदास की संवत् १९५१ में छपा श्री व्यङ्कटेश्वर प्रेस की प्रति। यह पौष १९५७ वि में पुनः छपी। इसमें भी सं० १९६६ की प्रति में दि हुआ अंत का श्लोक है, जिसमें 'रामगीतावली' नाम आ है। श्री जानकीजी वाला अतिरिक्त पद इसमें भी है।

श्री सीतारामीय बाबा हरिहरप्रसादजी की सं १९६१ में खड्गविलास प्रेस पटना से प्रकाशित टीका मूल पाठ की दृष्टि से पुराने प्रकाशित संस्करणों में सर्वोत्त है, पर यह पता नहीं चलता कि इसका पाठ किस प्रति ग्रहण किया गया है। टीका उत्तम है, भाषा दुरूह है।

श्री लक्ष्मीनारायण यंत्रालय, मुरादाबाद से 'विनय पत्रिका' की तृतीय आवृत्ति सं० १९७० वि० में प्रकाशित हुई थी। 'जयति श्री जानकी भानुकुल भानु की' वा अतिरिक्त पद इसमें भी छपा है।

पं० रामेश्वर भट्ट की विनयपत्रिका 'सरला टीका' यह सं० १९७० में सर्वप्रथम इंडियन प्रेस, प्रयाग में छपी इसकी भूमिका मिति फाल्गुन शुक्ल १३, गुरौ सं १९६९ की है। अंत में टीका का समय इस प्रकार दि गया है—

'रस ऋतु निधि विधु बरन महँ रामचरन चित लाइ।
संपूरन टीका करी हरिभक्तन सुखदाइ॥'

इसके बाद के हर संस्करण में मूल पाठ का सुधा किया गया है। सं० १९८२ के तीसरे संस्करण का पा सं० १६६६ की प्राचीन प्रति तथा विजयानगर की पुरा प्रति के पाठ से बहुत कुछ मिलता है। चतुर्थ संस्करण सं १९८८ का पाठ फिर यत्रतत्र सुधारा गया है। इसका पा वियोगी हरि के पाठ से अच्छा है। टीका सुंदर औ आधुनिक ढंग की है।

ठाकुर बिहारीलाल सिरेश्तेदार दरबार आम रियास ओड़छा (टीकमगढ़) बुंदेलखंड की श्री लक्ष्मी वेंकटेश्व छापेखाने मुंबई व० कल्याण-मुंबई में सं० १९७२ में छ टीका। भूमिका मार्च १८९२ ई० (सं० १९४९) की है इसमें पाठ और अर्थ प्रायः बाबू शिवप्रकाशजी की टी का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० १९८० में काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित तुलसी ग्रंथावली में संकलित 'विनयपत्रिका, का मूल पाठ। इसके सम्पादक रामचंद्र शुक्ल, भगवान दीन तथा ब्रजरत्नदास थे। सं० २०१५ तक इसके चार संस्करण प्रकाशित हुए। सं० २०३१ में यह पुनः प्रकाशित हुआ है। इसमें इस बात का उल्लेख नहीं है कि किस प्रति के आधार पर इसका संपादन किया गया। नवीनतम संस्करण की विशेषता यह है कि इसमें प्रकाशित छः संस्करणों से पाठभेद 'ग्रंथावली' के अंत में संकलित किये गये हैं। संस्करण का पाठ अच्छा है। क्या ही अच्छा होता यदि प्रकाशित संस्करणों के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण हस्तलेखों के भी पाठांतर दिये गये होते।

श्री वियोगी हरि की सुप्रसिद्ध टीका—टीकाकार ने इसका नाम इस प्रकार दिया है—

'श्री गुरु जुगल प्रिया-चरन बार-बार उर लाय।
टीका श्री हरितोषिणी लिखौं रामगुन गाय॥'

यह साहित्य-सेवा-सदन, काशी से प्रकाशित हुई है। टीका का 'परिचय' पं० रामचंद्र शुक्ल ने ५.१.१९२४ को लिखा है। टीकाकार का विस्तृत 'वक्तव्य' मार्गशीर्ष शुक्ल ५ सं० १९८० का है। प्रकाशक ने इसका नाम धरा है—'श्री हरितोषिणी टीका-समलंकृता-विनयपत्रिका।'

कहीं-कहीं पाद-टिप्पणियों में पाठ-भेद भी दिये गये हैं। टीका विस्तृत और विशद है। भावार्थ अत्यंत सुगम और सुबोध हैं। पद के भीतर आये हुए प्रसंगों की कुछ अधिक चर्चा टिप्पणियों में की गयी है। सबसे बड़ी विशेषता है स्थान-स्थान पर अन्य कवियों की मिलती-जुलती उक्तियों का सन्निवेश। टीका का 'परिचय' समाप्त करते हुए श्री शुक्लजी ने लिखा है—टीका वास्तव में जैसी होनी चाहिए, वैसी ही हुई है यह 'परिचय' तथा टीकाकार का 'वक्तव्य' 'विनयपत्रिका' पर बहुत सुंदर लेख प्रस्तुत करते हैं।

श्री पंडित सूर्यदीन शुक्ल की टीका—यह नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से वियोगी हरि की टीका से पहले प्रकाशित हुई थी। इसका दूसरा संस्करण सं० १९८५ में प्रकाशित हुआ। यह टीका भी बड़ी सुन्दर है।

प्रोफेसर लाला भगवानदीन 'दीन' और पं० विश्वनाथ प्रसाद चौबे एम० ए० की साहित्य सेवक एवं साहित्य-भूषण कार्यालय, काशी से सं० १९८५ में प्रकाशित 'हरि-बोधिनी' टीका। इसका सम्पादन पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने किया था। मूल पाठ और टीका दोनों सुन्दर हैं। प्रारम्भ में सम्पादक का निवेदन तत्पश्चात् टीकाकार का 'वक्तव्य' है। वक्तव्य में विनय की 'सात भूमिकाओं' तथा 'सात नियमों' का उल्लेख करके कहा गया है कि पाठकों को इन्हें ध्यान में रखना चाहिए। बाद में इस टीका को रामनारायणलाल, इलाहाबाद ने प्रकाशित किया।

संवत् २०१३ में सद्गुरु कुटी, गोलाघाट, अयोध्या से प्रकाशित पं० श्रीकांतशरणजी की 'सिद्धांत-तिलक' नाम्नी टीका—इसमें पदों की बड़ी विशद व्याख्या है। विवेचन क्रम में संस्कृत ग्रन्थों एवं तुलसी साहित्य से तुलनात्मक उद्धरण दिये गये हैं। भक्तिदर्शन में रामानुज का दृष्टिकोण अपनाया गया है।

ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी से प्रकाशित देवनारायण द्विवेदी कृत 'देवदीपिका-समलंकृत' टीका। टीका बड़ी सुन्दर है। शब्दार्थ और भावार्थ के अतिरिक्त विशेष टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं। भूमिका में वियोगी-हरि की टीका की आलोचना तथा उसकी कुछ त्रुटियाँ भी प्रस्तुत की गयी हैं।

बक्सर के बाबा रामदास ने 'रामतत्त्वबोधिनी' टीका प्रस्तुत की थी। इसकी दूसरी प्रति पं० सीताप्रसाद, वासदेव घाट, अयोध्या के पास थी। स्वामी श्री युगलानन्यशरणजी के शिष्य महात्मा भगवानसहायजी ने देवनागरी में मूल तथा उर्दू में टीका प्रस्तुत की। यह ज्ञातव्य है कि मुंशी तुलसीराम (श्री भगवान सहायजी) ने उपर्युक्त 'तत्वबोधिनी' टीका को ही अपने नोट्स सहित उर्दू में लिखा था। यह टीका २२ दिसम्बर सन् १८७२, रविवार सं० १९२९ को सम्पूर्ण हुई। काशी के पं० रामकुमारजी ने भी 'विनयपत्रिका' पर अपने खर्रे (टिप्पणियाँ) तैयार किये थे। इस सब सामग्री का अंजनीनंदनशरणजी ने 'विनय-पीयूष' में उपयोग किया है।

इन सबके अतिरिक्त हनुमानप्रसाद पोद्दार (गीता-प्रेस, गोरखपुर), श्री दानबहादुर पाठक, डॉ० गोपीनाथ तिवारी तथा पं० सीताराम चतुर्वेदी आदि ने भी विनयपत्रिका पर अच्छी टीकाएँ प्रस्तुत की हैं। गीता प्रेस की टीका सर्वसुलभ है। चतुर्वेदीजी की टीका उनकी सटीक तुलसी-ग्रन्थावली के दूसरे खण्ड में संकलित है।

सबसे महत्त्वपूर्ण टीका स्व० महात्मा अंजनीनंदन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरण (शीतलासहाय सावंत श्री जनकसुताशरण) करुणानिधान कुंज, ऋणमोचन घाट, अयोध्या की 'विनयपीयूष' टीका है। यह टीका ६ 'हिलोरों' में, पाँच खण्डों में, लगभग ३००० पृष्ठों में संवत् १९९७ से २०२३ के मध्य प्रकाशित हुई है। इसका सम्पादन व प्रकाशन (प्रथम खंड को छोड़कर) स्वयं लेखक ने ही किया है। मूल पाठ के सम्बन्ध में सम्पादक का कथन है कि सं० १६६६ वाली पोथी को प्रधान और सब प्रकार से विश्वस्त और सुन्दर मानकर शुद्ध पाठ की परख के लिए उसको कसौटी बनाया गया है। जो पद सं० १६६६ वाली पोथी (रामगीतावली) में मिले, उनका पाठ ज्यों का त्यों ले लिया गया है। जो पद उसमें नहीं थे, उनके लिए विजयानगर (ईजानगर) बनारस, कोठी लीला के व्यास गजाधरदासजी की पोथी को कसौटी मानकर पाठ रखे गये हैं। आठ-दस पदों के पन्ने विजयानगर वाली पोथी में खंडित थे। उनका पाठ श्री भागवदास आदि से चुना गया है। अन्य पोथियों से पाठ-भेद पाद-टिप्पणी में दिये गये हैं।

यह तिलक प्रायः सभी प्राचीन-नवीन टीकाओं के आधार पर लिखा गया है। मूल के बाद शब्दों के अर्थ विस्तार से 'शब्दार्थ' में दिये गये हैं। शब्दार्थ के बाद पद्यार्थ (litral translation or para-phrase) है। उसके पश्चात् फिर शब्दों, वाक्यों और मुहावरों के विशेष भाव टिप्पणियों में दिये गये हैं। भावार्थान्तर या अर्थान्तर में अन्य टीकाकारों के अर्थ और भाव भी दिये गये हैं। अन्तर्कथाएँ प्रामाणिक आधार पर दी गयी हैं। गोस्वामीजी की संगी कला की परिचय चारुता भी स्थल-स्थल पर दृष्टिगो करायी गयी है। अलंकार आदि भी दिये गये हैं। तिलककार के अनुसार इस तिलक में एक विशेषता यह है कि इसमें समस्त देवताओं का जहाँ जैसा स्वरूप वर्णि है, वहाँ उसी के अनुसार पक्षपात रहित व्याख्या की ग है। इसमें सब शास्त्रों के सिद्धान्त दिये गये हैं। द्वैतवा अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शैववाद सभी वादों के अनुस व्याख्या की गयी है। सबके मत इसमें हैं, क्योंकि यह ग्रं मानवमात्र के लिए है, न कि वैष्णव मात्र के लिए।

यह टीका बड़े-बड़े विद्वानों से प्रशंसित तथा उत्त प्रदेश सरकार से पुरस्कृत है। इस टीका की जितनी प्रशंस की जाय, कम है। कितने धैर्य तथा परिश्रम से प्राची हस्तलेख तथा टीकाएँ खोज कर पाद-टिप्पणियों में विस्तृ पाठ-भेद संग्रह किये गये हैं। एक-एक शब्द तथा पाठान्त पर सम्पादक ने सूक्ष्म विचार प्रस्तुत किया है। टिप्पणिय में अन्य टीकाकारों के भावों का बड़ा विशद संग्रह किय गया है। स्वयं सम्पादक की टिप्पणियाँ भी बहुत उत्त हुई हैं। आश्चर्य होता है सम्पादक के अध्यवसाय एवं धै पर, जो टीका के पद-पद पर दृग्गोचर होता है तथा क्षो होता है, नागरी-प्रचारिणी, सभा जैसी साधन सम्प संस्थाओं के संस्करण देखकर, जिन्होंने कतिपय प्रकाशि संस्करणों के ही पाठ-भेद संकलित करके संतोष कर लिया।

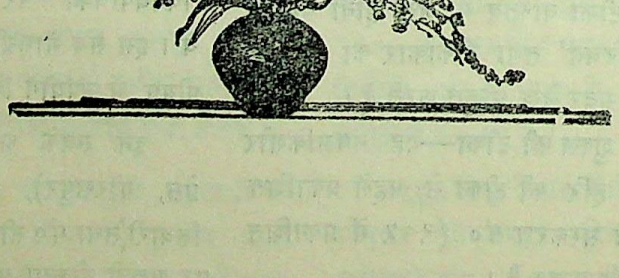

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म-शताब्दी के अवसर पर—

साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र बाबू श्यामसुंदरदास

कु० प्रमिला खन्ना, एम० एस्-सी०

हिन्दी भाषा और साहित्य में युगान्तर करनेवाले, हिन्दी को प्रगति-पथ पर अग्रसर करने तथा उसका देशव्यापी प्रचार-प्रसार करनेवाले बाबू श्यामसुंदरदास का भौतिक शरीर हमारे बीच नहीं है, किन्तु उनका यशःकाम युग-युग तक साहित्य-गगन में जाज्वल्यमान नक्षत्र की भाँति हमारे सम्मुख रहेगा।

बाबूजी आधुनिक हिन्दी के निर्माता और काशी नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक हैं। आज हिन्दी में जो विभूति दिखायी दे रही है उसके भीतर बाबूजी के रूप का तेज है। हिन्दी जगत् पर उनका ऋण ऐसा है जो उतारने पर भी नहीं उतरता।

पारिवारिक जीवन—बाबूजी हिन्दी के अनन्य साधक, विद्वान्, आलोचक और शिक्षाविद् थे। इनका जन्म १४ जुलाई १८७५ को काशी के प्रतिष्ठित खत्री परिवार में हुआ था। इनके पूर्वज अभावग्रस्त परिस्थितियों में लाहौर से अमृतसर आ गये और प्रतिष्ठा की रक्षा के हेतु अमृतसर से काशी आकर कपड़े का व्यवसाय करने लगे। इनके पितामह हजारीमल थे, पिता देवीदास खत्री थे और माता देवकी रानी। इन्होंने काशी में सन् १८९७ में बी० ए० किया। जब ये इंटर के छात्र थे तभी सन् १८९३ में मित्रों के सहयोग से इन्होंने काशी नागरी प्रचारिणी सभा की नींव डाली और ४५ वर्षों तक निरंतर उसके संवर्धन में बहुमूल्य योग देते रहे। सन् १८९५-९६ में नागरी प्रचारिणी पत्रिका निकालने पर उसके प्रथम सम्पादक नियुक्त हुए और बाद में भी आपने कई वर्षों तक उसका संपादन किया।

बाबूजी का सारा जीवन संघर्षों से पूर्ण था। उनका पारिवारिक जीवन अशांतिपूर्ण था, जातीय संगठन की रूढ़िवादिता उन्हें चिन्ताग्रस्त करती थी, समाज की कठोरता का आघात सहना पड़ता था, साहित्यिक क्षेत्र में विभिन्न व्यक्तियों के आक्षेपों का सामना करना पड़ता था। इन्हीं कारणों से उनके व्यक्तित्व तथा सामाजिक जीवन में कर्कशता आ गयी थी। वे समुचित प्रमाण मिलने पर ही किसी का विश्वास करते थे।

घर की आर्थिक समस्याओं से बाध्य होकर शीघ्र ही आपको जीविकोपार्जन में लगना पड़ा। आपने कुछ दिनों कश्मीर नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी के रूप में कार्य किया। इसके बाद कुछ वर्षों लखनऊ के कालीचरण हाईस्कूल में प्रधानाध्यापक व काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यक्ष रहे थे। आपका देहान्त संवत् २००२ में हुआ।

आप द्विवेदी युग के उत्कृष्ट गद्यकार थे। आपने आजीवन गद्य को समुन्नत करने का प्रयत्न किया। आपने साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश १६ जुलाई सन् १८९३ को नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना के साथ किया। जिस समय आपने साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश किया उस समय हिन्दी की दशा दीन-हीन थी। उस समय उसके पास न कोई इतिहास था, न कोश, न व्याकरण। साहित्य का खजाना खाली पड़ा था। उसका जीवित होना ही काफी था। घरों में न उसकी पूछ थी, न प्रतिष्ठा। कचहरियों में हिन्दी के साथ अछूतों का-सा व्यवहार किया जाता था। हिन्दी को 'भाखा' कहा जाता था। उसको बोलनेवालों को गँवार समझा जाता था। ऐसे समय में आपने हिन्दी के समुद्धार का प्रश्न उठाया और पचास वर्षों तक दत्तचित रहकर हिन्दी को उच्च स्थान दिलाया। हिन्दी को उच्च कक्षाओं में स्थान दिलाया व ग्रन्थों की समस्या हल करके ग्रन्थों की रचना की, जिसमें प्रमुख साहित्यालोचन, भाषा-विज्ञान, हिन्दी भाषा और साहित्य, रूपक रहस्य, गोस्वामी तुलसीदास आदि ग्रन्थों की रचना इसी का प्रमाण है। आपने भाषा-सम्बन्धी जो सेवाएँ की हैं उनमें महत्त्वपूर्ण है काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना जुलाई सन् १८९२ में हुई। इस सभा का मन्त्री बाबूजी को बनाया गया। पं० रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके मुख्य सभासद थे। यही तीनों इसके प्रमुख संस्थापक थे। ये बराबर इसमें लगे रहे, अन्य सभासदों ने अपना पद त्याग दिया। सभा ने पहले हिन्दी पुस्तकों की खोज के कार्य को चंदा करके आगे बढ़ाया। सभा के तीसरे वर्ष के अधिवेशन में 'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' निकालने का निश्चय किया गया। सन् १८९५-९६ में यह बात फैली कि सरकार फारसी के अक्षरों के स्थान पर रोमन अक्षरों का प्रसार करना चाहती है। इसके विरुद्ध 'आन्दोलन' करने का निश्चय किया गया। बाबूजी धन प्राप्त करने के लिए मुजफ्फरपुर गये। वहाँ से धन प्राप्त करके आये व इस सम्बन्ध में अंग्रेजी में एक पौम्पलेट नागरी कैरेक्टर (The Nagri charecter) के नाम से सन् १८९६ में प्रकाशित किया। इसकी प्रतियाँ बाँटी गयीं। २७ जुलाई सन् १८९६ में सरकार ने रोमन अक्षरों के प्रचार का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया।

सभा के पाँचवें वर्ष के आरम्भ में २८ जुलाई १८९७ को सभा का वार्षिकोत्सव मनाया गया। इसके सभापति काशी के कलेक्टर मि० करब थे। इन्होंने अपने अंतिम भाषण में नागरी की बड़ी निन्दा की। बाबूजी से यह सहन नहीं हुआ। आपने धन्यवाद देते हुए इस बात का खंडन किया। इस बात को सुनकर आपके चाचा बहुत बिगड़े, किन्तु फिर भी आपने प्रयत्न नहीं छोड़ा। आपने अदालतों में नागरी को स्थान दिलाने का बराबर प्रयत्न किया।

बाबूजी ने सबसे पहले हिन्दी में लेख १८९४ में हेल्प 'एसेज़ रिटेन इन द इंटरवल्स आफ बिज़िनेस' Help's Essays written in the Intervals of basiness नामक पुस्तक के 'एड्स टु कंटेटमेंट' Aids to contenement· शीर्षक निबन्ध में निबंध के अधार पर लिखा, इसका शीर्षक 'संतोष' था और यह बाँकीपुर की एक मासिक पत्रिका में छपा। १८९५-९६ की नागरी पत्रिका में भी आपने दो निबंध लिखे। पहला भारत-वर्षीय आर्य देश का प्रदेशिक विभाग और परस्पर सम्बन्ध' तथा दूसरा लेख 'नागर जाति और नागरी लिपि की उत्पत्ति' था। पहला लेख डा० ग्रियर्सन के लेख का अनुवाद है जो 'कलकत्ता रिव्यू' में छपा था। दूसरा लेख एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में छपे हुए लेख का अनुवाद है।

सन् १८३५ की ७ मार्च को लार्ड विलियम बैंटिंक ने घोषणा की कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो और पश्चिमी विद्यायों को प्रमुख स्थान दिया जाय। १८५४ मे लार्ड हालीफैक्स ने आज्ञापत्र में स्पष्ट कहा कि जन साधारण की शिक्षा का माध्यम उनकी मातृभाषा हो सकती है, पर सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। जब शासन देशी लोगों के हाथ में आ गया तब इस ओर ध्यान दिया गया कि शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जाय। इसी उद्देश्य से सर आशुतोष मुकर्जी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में अनेक देशी भाषाओं की उच्चत्तम शिक्षा का प्रबन्ध किया। इसके बाद काशी विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-विश्वविद्यालय और आगरा विश्वविद्यालय में इसका प्रबन्ध किया गया, किन्तु अभी तक हिन्दी में वैज्ञानिक ग्रन्थों का प्रकाशन नाम मात्र था। इसके प्रकाशन मे जो कठनाई थी वह थी वैज्ञानिक शब्दो का हिन्दी मे न मिलना। अतः सभा ने वैज्ञानिक कोष तैयार करने का आयोजन किया। इसके लिए एक कमेटी बनायी गयी जिसके संयोजक बाबूजी थे। हिन्दी वैज्ञानिक कोष की सर्वत्र प्रशंसा हुई। यहाँ तक कि इंग्लैंड के पत्रों में भी इसका सुन्दर शब्दों में उल्लेख किया गया। बाबूजी को हिन्दी के प्रति बचपन से ही प्रेम था। एक दिन बाबूजी को अंग्रेजी के प्रोफेसर मिस्टर जे० पी० जेनिंग्स ने एक निबंध अंग्रेजी शिक्षा पर दिया। बाबूजी ने निबंध अंग्रेजी शिक्षा के विरोध मे लिखा। इसका एक वाक्य था It damps the spirit of the education (यह शिक्षा की भावना को दबा देती है)। इसको पढ़कर अंग्रेजी के शिक्षक बहुत ही क्रुद्ध हुए। उनका रुख बाबूजी की तरफ से हमेशा ही टेढ़ा रहा, परन्तु बाबूजी ने कभी भी इसकी परवाह नहीं की। वह अपनी धुन के पक्के थे। इसी कारण वर्तमान अर्द्ध शताब्दि में आपके द्वारा किये गये प्रयत्नों से ही हिन्दी को विश्वविद्यालयों में उच्च स्थान प्राप्त हो सका।

१८९९ में इंडियन प्रेस के संचालक ने नागरी प्रचारिणी सभा से एक पत्रिका का सम्पादन करने का प्रस्ताव दिया। सभा ने इसके लिए पाँच व्यक्तियों का सम्पादक मंडल बनाया। इसमें बाबूजी भी थे। इन पाँच व्यक्तियों के तत्त्वावधान में 'सरस्वती' का प्रकाशन हुआ। दो वर्ष बाद चार व्यक्ति अलग हो गये। तीसरे वर्ष आपने ही इसका सम्पादन किया। आपने इसे मासिक पत्रिका का रूप दिया और कई नये स्तम्भ खोले। काम की अधिकता होने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने अवकाश लिया और द्विवेदीजी ने इसका सम्पादन किया। उस वर्ष की पत्रिका में बाबूजी का चित्र देते हुए जो टिप्पणी लिखी है उससे उनकी साहित्य-सेवा और ख्याति का पता लगता है। द्विवेदीजी ने लिखा—"जिन्होंने बाल्यकाल ही से अपनी मातृभाषा हिन्दी में अनुराग प्रकट किया उनके उत्साह और अथक परिश्रम से नागरी प्रचारिणी सभा की इतनी उन्नति, हुई। हिन्दी की दशा को सुधारने के लिये जिनके उद्योग को देखकर सहस्रशः साधुवाद दिये बिना नहीं रहा जाता।" चित्र के नीचे लिखा था—

"मातृ भाषा के प्रचारक बिमल बी० ए० पास--
सौम्य शील-निधान बाबू श्यामसुन्दर दास।"

१९३८ में नागरी प्रचारिणी सभा के प्रांगण में हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में राष्ट्र-भाषा की समस्या पर विवाद चला। आप बोलना न चाहते थे, किन्तु भाषणों ने आपको उत्तेजित कर दिया। उन्होंने मंच से नीचे ही अपने जर्जरित शरीर को लकुटि के बल पर खड़ा कर बोलना प्रारम्भ किया। आपने कहा—'हिन्दी ध्वनियाँ स्वयं पूर्ण हैं। उन्हें किसी वर्द्धक अर्द्धक की आवश्यकता नहीं है। उसका शब्द भांडार तथा साहित्य समृद्ध और सम्पन्न है। हिन्दी आज किसी भी भाषा से होड़ ले सकती है। उसमें राष्ट्रभाषा बनने की पूर्ण क्षमता है और मुझे विश्वास है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा बनकर रहेगी, किसी की मजाल नहीं कि वह इसे यह पद पाने से रोक सके।" आज बाबूजी भी भविष्यवाणी सफल हो रही है।

बाबू साहब के कर्तृत्व, एकरसता, और क्षमता का पूरा-पूरा परिचय देनेवाला ग्रन्थ 'शब्दसागर' है। इसके लिए एकनिष्ठ होकर कई वर्षों तक उन्हें सेवा करनी पड़ी। विविध योग्यता और रुचि-अरुचि के अनेक विद्वानों को संगठित करना, उनसे काम लेना, धन संचय करना, ग्रन्थ संपादन और प्रकाशन में लगे रहना, दैवी प्रेरणा और अद्भुत धैर्य का काम था।

इनकी हिन्दी सेवाओं से प्रसन्न होकर अंग्रेज सरकार ने 'रायबहादुर', हिन्दी साहित्य सम्मेलन' ने 'साहित्यवाचस्पति' और काशी हिंदू विश्वविद्यालय ने डी० लिट्० की सम्मानोपाधियाँ प्रदान कीं।

आपके निधन पर राष्ट्र कवि स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त ने जो उद्गार व्यक्त किये हैं उनमे आपकी सेवाओं का स्वरूप झलकता है—

मातृभाषा के हुए जो विगत वर्ष पचास
नाम उनका एक है बस श्यामसुन्दर दास ।।

आज मुझे अपने दादाजी की वह बातें याद आ रही हैं जो उनके व्यक्तिगत, जीवन और परिवार से संबन्धित हैं। बाबूजी की पत्नी अर्थात् हमारी दादी जिनको हम लोग 'भाभो' कहते थे, बाबूजी से सात महीने छोटी थीं, और बाबूजी के निधन के ठीक सात महीने पहले मरी थीं। बाबूजी का विवाह जिस समय हुआ उनकी उम्र आठ बरस की थी। हमारी भाभो को शिवजी पर अटूट भक्ति थी। इसलिए कहते हैं कि जब दादाजी की अर्थी जा रही थी, तब लोग गुलाल, फूल उड़ाते हुए विमान ले जा रहे थे। (विमान बनाने का कारण था कि भाभो ठीक सात महीने पहले स्वर्ग सिधार गयी थीं। उनके दो पुत्र व चारों पुत्रवधुएँ (दो पुत्र स्वर्ग सिधार चुके थे) और आठ पौत्र पौत्रियाँ उपस्थित थीं। वे अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो चुके थे। बाबूजी के सबसे छोटे पुत्र श्री गोपाललाल खन्ना अलीगढ़ में रहते हैं, वही अब बाबूजी के कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं।) जब बाबूजी का विमान शिवजी के मन्दिर के आगे पहुँचा तो एक साधु खूब गुलाब उड़ाता हुआ नाचता हुआ साथ-साथ गया और गंगाजी (काशी में) में जाकर लोगों के सामने ही अन्तर्धान हो गया। लोगों ने बहुत खोजा, परन्तु कहीं भी नहीं मिला। लोग कहते हैं कि भाभो उस साधु के रूप में अन्तिम समय भी बाबू जी के साथ थीं।

हो सकता है कि यह सत्य हो क्योंकि बाबूजी को आत्माओं को बुलाने की अभिरुचि थी। उनसे बात भी करते थे। कहते हैं कि एक बार अचानक देशबन्धु सी०आर० दास की आत्मा आ गयी। उन्होंने बाबूजी को स्वदेशी का पक्ष लेने और अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए किसी पहाड़ पर जाने का उपदेश दिया। बाबूजी स्वदेशी का पक्ष तो लेने लगे, परन्तु उन्होंने स्वास्थ्य की परवाह न की। इसी तरह एक बार लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की आत्मा भी बाबूजी के पास आयी थी। आगे चल कर बाबूजी को अनुभव हुआ कि महती आत्माएँ पृथ्वी पर नहीं आती हैं। नीच आत्माएँ पृथ्वी पर आकर भटकती हैं और दुख देती हैं। अतः फिर बाबूजी ने उन्हें बुलाना छोड़ दिया।

एक बार इसका अनुभव बाबूजी को घर में हुआ। बाबूजी की भाभी को एक प्रेतात्मा ने पकड़ लिया और उनसे भ्रूणहत्या करने का बदला लेने लगी, क्योंकि उसकी आत्मा को शांति नहीं मिल रही थी, और उस संबंधी से बदला लेना चाहती थी जिसने उसे कुमार्ग पर लगाया था। जब उसका आवेश होता तब वह अपना इतिहास सुनाती थी। अंत में एक मारवाड़ी ब्राह्मण की कृपा से यह बाधा दूर हुई। कई बर्ष बाद फिर उसका आक्रमण हुआ और उनकी मृत्यु हो गयी। इन बातों को सोच कर बाबूजी ने इस कृत्य को करना छोड़ दिया।

इस वर्ष बाबूजी की जन्म शताब्दी मनायी जा रही है। नागरी प्रचारिणी सभा यह कार्य कर रही है। आज हमारा दिल बाबूजी के लिए श्रद्धा खुशी और गर्व से ऊँचा उठता है कि हमने ऐसे महानुभाव के घर में जन्म लिया, जिन्होंने हिन्दी को भारत में छोटे पौधे के रूप में अंग्रेजों के समय में ही लगाया था और आज जिसकी शाखाएँ पूरे भारत में फैली हैं। उनको बार-बार नमस्कार, जिनका आशीर्वाद आज भी हमारे साथ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीलन लूटीं गोपिका वेही अर्जुन वेही वाण

डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी

हमारे जीवन में कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती है कि हम हाथ मलकर रह जाते हैं। कभी-कभी हमारे दिल पर वह चोट लगती है कि हम मन मसोस कर रह जाते हैं। कुछ बातें तीर की तरह सीधी हृदय पर चोट करती हैं और हम विस्फारित नेत्रों से देखते रह जाते हैं। कभी-कभी हम ऐसे काम कर बैठते हैं कि क्षोभपूर्ण आत्म-ग्लानि की शरण में जाने के अतिरिक्त हमारे सामने अन्य कोई चारा नहीं रह जाता है। इस प्रकार की बातें अनुभव-मनन की सामग्री प्रस्तुत करती हैं। ये कहने-सुनने की बातें नहीं होती हैं। जिसके लगती हैं, वही जानता है। मानवता की आवाज यह है कि पराई पीर का उपहास न किया जाय।

सोने के हिरन के पीछे सोने की सीता को गँवा कर राम क्षोभपूर्ण आत्मग्लानि से भर गये। हिरन-हिरनी को देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे उससे कह रहे थे—तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य, विनाशकाले विपरीत बुद्धिः। वह पुकार उठे थे–

हमहि देखि मृग निकर पराहीं
मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं।
तुम आनन्द करहु मृग जाए।
कंचन मृग खोजन ये आए।

भगवान् विष्णु ने नारद को कपि आकृति देकर हल्का सा मज़ाक किया। नारद बिगड़ गये। मज़ाक महँगा पड़ गया। उन्हें बैकुण्ठ छोड़कर इस महीतल पर आना पड़ा और वन-वन की धूल छाननी पड़ी। कौन कहे उन पर क्या बीती। जब तक वह किष्किन्धापुरी के निवासियों के द्वार पर नहीं पहुँच गये, तब तक उनका प्रायश्चित्त पूरा नहीं हुआ। देवगण ने पुराण-पुरुष के साथ लक्ष्मी का विवाह रच दिया। विष्णु ने इसे खेल समझा। परन्तु यह सम्बन्ध जगजीवन का व्यंग्य बन गया। लक्ष्मी ने तिल की ओट पहाड़ रख कर मनमानी करने का अवसर निकाल लिया। वह चंचला बन गयी--

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोइ।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होइ॥

लक्ष्मी को थिर रखने के लिए चतुराई के दंभी चिरकुमार रहे, गुणवान और समझदार लक्ष्मी-वाहन बन गये, परन्तु उसने नये-नये फड़ देखने की चाट न छोड़ी।

मानव ने बनानेवाले की आरजू-मिन्नत की। उसने उसे सौ वर्ष की उम्र दे दी। यह नियामत बवालेजान बन गई। जीने के लिए वह हमेशा मरों का सामान इकट्ठा करता रहता है। उसकी आयु का एक वर्ष भी मानव की भाँति व्यतीत नहीं हो पाता है। बकरी, भेड़, बन्दर, बैल, गधा, कुत्ता तथा उल्लू की भाँति बारी-बारी से आचरण करते हुए उसकी समस्त आयु व्यतीत हो जाती है। कोई उससे पूछ कर तो देखे कि चालीसा होने पर जब व वह खीसा हो जाता है, तब वह चोर की नारी की तरह अकेले में क्यों रोना चाहता है—चोरनारि जिमि प्रगट न रोई।

देवताओं के आग्रह पर लोक-कल्याण की दृष्टि से शिवशंकर ने बुढ़ापे में शैलजा से शादी कर ली। सेनापति कार्तिकेय के जन्म के पश्चात् उन्हें आज तक पत्नी के व्यंग्य वाण सहने पड़ रहे हैं --

कितब गयौ मोरा बुढ़ला जती
पीसल भाँग रहल गैरसती।

फलस्वरूप वृद्ध पति तरुणी पत्नी के सम्मुख सदैव अपराधी की भाँति व्यवहार करने लगे। दशरथ भले ही चक्रवर्ती नरेश रहे हों, परन्तु कैकेयी के सम्मुख वह एक दीनहीन व्यक्ति से अधिक नहीं थे। आज भी बड़े बड़े शेरे-नर नारी की कान पकड़ी छेरी बन कर रहने में जिस दिखावटी गौरव का अनुभव करते हैं, उसे कोई उनके दिल में झाँक कर देखे।

मनु ने सहधर्मिणी और सखी कह कर नारी पर व्यंग्य करने का प्रयत्न किया। उसने नर को उसी के दाँव पर मारा। उसने अपना भेड़िया रूप भेड़ की खाल के पीछे छिपा लिया, और वह अपने अनियारे नैनों द्वारा तीर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शमशीर का काम लेने लगी। सबला अबला जब नर को मर्कट की तरह नचाती है और कीर की भाँति राम-नाम पढ़ाती है तब लबों पर मोहरे-खामोशी लगाकर दिल में याद करनेवाले पुरुष की आँखें यही कहती हैं कि बादल बरसने के बाद आसमान अभी-अभी खुला है। रत्नावली ने कामासक्त पति पर फूल की छड़ी मार कर गुदगुदाना चाहा था। व्यंग्य-बाण की नोक जरा गहरी लग गयी। रत्नावली को रामबोला के दर्शन अलभ्य हो गये। रामबोला जब तुलसीदास बन कर लौटे, तब उन्होंने फूल की छड़ी के बदले रत्ना को फूलों की यह माला समर्पित की, जिसे उसने जन्मजन्मान्तर के व्यंग्य के रूप में ग्रहण किया—

कटे एक रघुनाथ सों बाँध जटा अरु केस।
हम तो चाखा प्रेम रस, पत्नी के उपदेस॥

कविराज सूर्यमल दर्पण में देख देखकर अपनी दाढ़ी के सफेद बाल उखाड़ रहे थे। उनकी युवती पत्नी चम्पा यह देखकर हँस पड़ी। उसकी भेद भरी मुसकान के प्रतिबिम्ब ने कविराज को आहत कर डाला। वह पुकार उठे—

पीथल धौला आविया बहुले लग्गी खोड़।
कामिण मत्तगयन्द जूँ ऊभी मक्ख मरोड़॥

परन्तु चम्पादे के हृदय में छिपी हुई पार्थ सुन्दरी ने वह वरुणास्त्र छोड़ा कि मरुस्थल में फव्वारा फूट पड़ा—

हल तो धूना धौरिया, पंथल घग्घा पाँव।
नरां तुराँ तु बन फलाँ पाका पाका साँव॥

कविराज दिल थाम कर रह गये। जवाब लाजवाब था। वह गुड़-भरा हँसिया न निगलते बनता था, न थूकते बनता था। प्रभु की प्रभुता भी रह जाय और अपना पातिव्रत भी भंग न होने पाये यह तभी सम्भव है जब चोट करनेवाला इतना जबर्दस्त हो कि वह मारे और रोने न दे अथवा वह यह पूछ कर चोट करता जाय कि ज्यादा तो नहीं लग रही है और चोट खानेवाला चोट खाकर भी यही कहता जाय कि कोई बात नहीं है, 'परन्तु तुम्हीं ने दर्द दिया है तुम्हीं दवा देना।' रायप्रवीन वैसे तो पतुरिया थी, परन्तु थी बड़ी चतुरा। सम्राट् अकबर हद से आगे बढ़ने लगे। उसने वह ढंग अपनाया कि चोट खाकर भी चोट खानेवाला सहला कर रह जाय अथवा पटक खानेवाले साइकिल सवार की तरह धूल झाड़कर उठ बैठे। रायप्रवीन की चोट कुछ इसी प्रकार की थी—

बिनती रायप्रबीन की सुनिए साह सुजान।
जूठी पातर भखत हैं बारी बायस स्वान॥

बात कलेजे को पार करनेवाली थी। कलेजे के पार गयी भी। अकबर ने अपनी सूखी आँखें नीची करके अपनी पराजय स्वीकार कर ली। जिन्हें घर की खाँड़ किरकिरी लगती है और बाहर का गुड़ मीठा लगता है और जो वायस और वैश्य में तथा श्वास और शर्म में भेद करते हैं वे पराई पत्तल की ओर हाथ बढ़ाने के पहले दस बार सोचने को विवश होते हैं।

उर्दू के एक शायर ने अपने प्रेम-पत्र में यह लिख दिया—

आरजू इतनी है कि निकले दम तुम्हारे सामने।
जी उठूँ यदि हो मेरा मातम तुम्हारे सामने॥

यह शेर आशिकों की जिन्दगी के लिए बहुत ही तकलीफदेह साबित हुआ। हर आशिक अपने माशूक की गली में होकर अपनी जिन्दगी में ही अपना जनाजा निकालने का इच्छुक हो गया है। परन्तु वास्तविक जीवन का व्यंग्य यह है कि कोई भी माशूक जनाजा रोक कर यह नहीं कहता है कि गली हमने कही थी, तुम तो दुनियाँ छोड़े जाते हो। परन्तु आशिकों ने मरना नहीं छोड़ा है। कोई किसी मरनेवाले से पूछ कर देखे कि मरने में क्या मजा आता है। हर मरनेवाला यही कहता है कि—

मिस्ल हिन्दू जन कसैदर, आशकी मर्दाना नेस्त।
सोखतन दर शमः मुर्दा कार हर परवाना नेस्त॥

सुदामा नाम के एक ब्राह्मण ने पूरी उम्र गरीबी में काट दी और कभी शिकायत नहीं की। पत्नी ने ठेल-ठाल कर उन्हें उनके सहपाठी श्रीकृष्ण के पास भेज दिया। उनको फटे हाल देखकर श्रीकृष्ण को उन पर दया आ गयी। चलते समय उन्होंने सुदामा को अच्छी-खासी रकम दे दी। जिस सुदामा को खाने के लिए कोदों-सावाँ नहीं जुड़ता था, उस सुदामा को अब अंगूर भी अच्छे नहीं लगते थे। जिस सुदामा की रातें जमीन पर कटती थीं, उसे अब प्रभु के प्रताप से कोमल शय्या पर भी नींद नहीं आती थी। वस्तुस्थिति तो सुदामा ही जानें कि यह रईसी उनके लिए वरदान थी अथवा अभिशाप, परन्तु इतना अवश्य है कि अब हर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरीब आदमी ब्राह्मण बन कर भगवान् के खजाने पर टकटकी लगाने लगा है।

हरिनाथ नाम के एक ब्राह्मण को एक राजा ने विपुल दान दिया। एक ईर्ष्यालु व्यक्ति पुकार उठा—

दान पाइ दो ही बढ़े, कै हरि कै हरिनाथ।
उन अड़ि ऊँचे डग दिए इन कर ऊँचे हाथ।

ब्राह्मण का ब्राह्मणपना जग गया। उन्होंने समस्त सम्पत्ति पर तुलसी दल रख दिया। जीवन के व्यंग्य से अट्टहास किया। ब्राह्मण को आजन्म भूख के कारण तड़पना पड़ा। त्याग की महिमा त्यागी से पूछो और दान की महिमा याचक से। मोह-भंग और संत्रास की जंजीरों में आप अपने आपको बाँधा हुआ पायेंगे और दुनिया वाले आपके प्रति सहानुभूति दिखा कर आपकी मीठी चुटकियाँ लेंगे।

चाहे तोता पिंजड़े में प्यासा मर जाय, चाहे बलि के अवसर पर वायस को समादृत देखकर हम आश्चर्यचकित हों अथवा पानी में मीन को प्यासी देखकर हम भरपेट हँस लें, परन्तु विधि का विधान अथवा भाग्य का लेखा जीवन की एकमात्र सच्चाई है। रेल हमारे सामने से छूट जाती है और हम देखते रह जाते हैं। साँप निकल जाता है, और हम लकीर पीटने लगते है। हम 'हियो हियो' करते रहते हैं और चिड़िया खेत चुग जाती हैं।

एक ब्राह्मण देवता पर बादशाह अकबर की बहुत कृपा थी। अकबर के लाख आग्रह करने पर भी वह ब्राह्मण उनसे कुछ भी धन स्वीकार नहीं करता था। ब्राह्मण की दीन दशा देखकर अकबर को दया आ गयी। उसने उत्सव का आयोजन किया। बादशाह ने एक ऊँची गहरी टोपी स्वयं पहनी और ठीक वैसी ही टोपी अपने मित्र ब्राह्मण को पहना दी। दासियों को आज्ञा हुई कि वे चारों ओर से अशर्फियों की वर्षा करें। बादशाह ने अपनी टोपी उतार कर उसमें भरी हुई अशर्फियाँ निकाल लीं और कहा 'उत्सव की प्रथा के अनुसार ये मेरी हैं। तुम भी अपनी टोपी को उतार कर अपने भाग की अशर्फियाँ ले लो। ब्राह्मण ने अपनी खाली टोपी को झाड़ते हुए निम्नलिखित दोहा पढ़ा—

अकबर कमला कर गहे कंचन बरसत नीर।
हम पै छत्र दरिद्र को, बूँद न परत सरीर॥

आदर्शवादी अकबर यथार्थवादी व्यंग्य को देखकर सकुचित हो गया। उसको याद आ गयी —

मनुज कछू ना कर सके, समय बड़ो बलवान।
भीलन लूटीं गोपिका वे ही अर्जुन वे ही बान॥

एक वयोवृद्ध एडवोकेट ने एक नवयुवक प्रोफेसर को चुप करने के विचार से कहा — साठ वर्ष की अवस्था के बाद ही अक्ल आती है। प्रोफेसर साहब ने अपनी वाचालता को प्रकट करते हुए चट से उत्तर दिया एडवोकेट कह रहे हैं कि मुझ में साठ वर्ष की उम्र के बाद ही अक्ल आई है। वयोवृद्ध एडवोकेट के मुँह पर ताला लग गया। उम्र के साथ वह अक्ल का ताल्लुक़ मानने में झिझकने लगे। दुनिया के लोग साठ के साथ सठियाने की बात करने लगे, परन्तु जन-गन-मन अधिनायक 'साठा सौ पाठा' वाली बात पर ही कायम रहे। दोनों ही अपनी-अपनी जगह ठीक हैं। पर चोर दोनों के दिलों में रहता है। भले ही कोई टटोल कर देख लें।

एक दिन एक राजा किसान मन्त्री से पूछ बैठा कि तुमने किस प्रकार जान लिया था कि उस समय वर्षा होगी।

"जब वर्षा होने वाली होती है, तब मेरा गधा अपने कान खड़े कर लेता है। उस समय उसके कान खड़े थे।" उसका सहज स्वाभाविक उत्तर था। राजा ने किसान को निकाल दिया और गधे को अपना मन्त्री बना दिया।

गधों की जमात के औसान बढ़ गये। वे पँजीरी देखकर इतराने लगे। घोड़ों को देखकर वे नाक-भौं सिकोड़ने लगे और हिमायतियों को पीठ पर बैठा कर हाथियों पर दुलत्ती झाड़ने के हौसले रखने लगे। प्रत्येक गधा मन्त्री बन जाने का स्वप्न देखने लगा। समाज की मान्यताएँ बदल गयीं। गधों के साथ निकट का सम्बन्ध स्थापित करके लोग गर्व और गौरव का अनुभव करने लगे। बन्दों को तौलने के बजाय बन्दों को गिना जाने लगा। जमात की करामात हो गयी, परन्तु हंसों ने फिर भी पंक्तिबद्ध होकर चलना स्वीकार नहीं किया।

आज उल्लू के व्यापारी बड़े उल्लू का एक रुपया और उल्लू के बच्चे के दो रुपये माँगते हैं। जीवन के इस व्यंग्य की महिमा वही जान सकता है जिसको आह भर कर कभी यह कहना पड़ा हो —

हंसा रहे सो मर गए सुग्गा गए पहार।
अब हमरे मन्त्री भए कौवा और सियार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेंट, वार्निश तथा रंग (१)

प्रो० पुरुषोत्तमदास स्वामी

एम० एस्-सी०, एम० एस०, विशारद

सारे चैतन्य पदार्थों को, चाहे वे प्राणिज हों या वानस्पतिक, प्रकृति की तरफ से सुरक्षा प्रदात्री चर्म देन के रूप में प्राप्त हुई है। पेड़ की छाल, मछली के शल्क, व प्राणियों की चमड़ी उन्हें चोट से बचाती है। ये बाहरी परतें न केवल यांत्रिक सुरक्षा ही प्रदान करती हैं, प्रत्युत बहुत बार अपने रंग तथा बनावट के कारण तीव्र प्रकाश से भी जीवों को बचाती हैं। जैसे जैसे पेड़, मछली या अन्य प्राणी बढ़ते हैं छाल, शल्क तथा चमड़ी भी और बनती जाती है। यदि बाह्य कारणों से उनको हानि पहुँचती है तो प्रकृति भीतर से उनकी मरम्मत कर देती है।

पर यह सौभाग्य बहुत से जड़ पदार्थों को प्राप्त नहीं है। उनके लिए कृत्रिम ढंग से सुरक्षा का प्रबन्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। यह सुरक्षा उन्हें पेंट से प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए लोहे या इस्पात को ले लीजिए। लोहे की बनी चीज पर जब तक उस पर पेंट न चढ़ा दिया जाय जंग लग जायगा तथा लकड़ी टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती है, फट जाती है और गलने लगती है।

पेंट करने का ध्येय केवल सुरक्षा प्रदान करना नहीं है। इसका अधिकांश चीज को सुन्दर बनाने के लिए प्रयोग होता है। पेंट के अन्य उपयोग पदार्थ को आरोग्यकारी बनाने, अभिलागी के तौर पर तथा प्रकाश सहायक के रूप में काम में लेना हैं।

सुरक्षा की अपेक्षा सजावट के कारण ही पेंट-उद्योग अपने प्रतिद्वंद्वी पदार्थों के, यथा जंग न खानेवाले इस्पात, चीनी मिट्टी के पदार्थ, सीमेंट की बनी वस्तुओं, काँच तथा प्लास्टिक की बनी चीजों के, सामने टिक सका है। मानव की रंग बदलने की तथा इमारती कामों में मरम्मत करने के बाद उनको सजाने की, वातावरण के अनुरूप रंग-समरूपता लाने की स्वाभाविक अभिलाषा को पूरा करने के लिए पदार्थों का पेंट करना जरूरी हो जाता है।

पेंट किसे कहते हैं ? पेंट शब्द का उपयोग प्रजातीय अर्थात् सामान्य तथा विशिष्ट अर्थ में किया जाता है। यदि इसका प्रजातीय अर्थ लिया जाय तो इसमें कई प्रकार के द्रव मिश्रण आते हैं जो पतली फिल्म के रूप में ठोस पदार्थ में बदल दिये जाते हैं। दूसरे शब्दों में ये हवा, प्रकाश या ताप से सूख जाते हैं या वाष्पशील घोलक के भाप बनकर उड़ जाने से एक ठोस फिल्म निक्षिप्त कर देते हैं। इस अर्थ में पेंट में ये सब पदार्थ परिगणित होते हैं :— घरेलू पेंट, इनेमल, संकेत पेंट, वार्निश, सैल्यूलोज नाइट्रेट लेकर आदि मिश्रण।

विशिष्ट अर्थ में पेंट एक प्रकार के चूरे, जिसे वर्णक कहा जाता है, तथा द्रव का, जिसे वाहक संज्ञा दी गयी है, मिश्रण है। सूखने पर इसकी अपारदर्शक फिल्म बन जाती है। काफी समय से मुख्य वाहक अलसी के तैल तथा तारपीन के तैल या पेट्रोलियम स्पिरिट का मिश्रण रहा है। अलसी का तैल वर्णक के कणों को बाँध कर एक समांग वस्तु बनाता है। तारपीन या पेट्रोलियम स्पिरिट तैल वर्णक मिश्रण के गाढ़ेपन को अपेक्षित तरलता में बदलता है।

वार्निश में वर्णक नहीं रहता और सूखी फिल्म चमकदार होती है, यद्यपि कभी-कभी कुछ पदार्थ ऐसे मिलाये जाते हैं जिनसे चमकहीन फिल्म बनती है। इस प्रकार के वार्निश को **सपाट वार्निश** कहा जाता है। वार्निश दो प्रकार के होते हैं—स्पिरिट युक्त तथा तैलीय उद्यास युक्त। स्पिरिट वार्निश वाष्पशील द्रव में उद्यास का विलयन या परिक्षेपण (dispension) होता है। यह वाष्पशील द्रव के भाप बनकर उड़ जाने के कारण सूखता है। इस प्रकार का वार्निश सैल्यूलोज नाइट्रेट लेकर तथा चपड़ी से बना वार्निश है। तैलीय उद्यास युक्त वार्निश सुखानेवाले तैल (यह साधारणतः पका लिया जाता है) तथा उद्यास का वाष्पशील द्रव में मिश्रण है, यह वाष्पशील भाग के भाप बनने से सूखता है और उसके बाद अवशिष्ट भाग का उपचयन तथा बहु-भाजन होता है। इस प्रकार का वार्निश लकड़ी के बने फर्श पर लगाया जाता है। तीसरे प्रकार का वार्निश स्थूलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र तैल से बनाया जाता है। इसका उपयोग चमड़े की बनी वस्तुओं पर किया जाता है।

तैल के स्थान पर वार्निश के साथ बनाये गये पेंट से जो फिल्म बनती है वह अधिक कठोर तथा चिकनी होती है। इसमें पेंट करने के ब्रुश के चिह्न नहीं रहते। यह काँच सदृश पोर्सिलेन इनेमल के समान लगता है। इसलिए इसे इनेमल पेंट या सिर्फ 'इनेमल' कहा जाता है।

पेंट के लिए प्रयुक्त पदार्थ—पेंट को तैयार के करने लिए कच्चे माल के रूप में वर्णक, सुखानेवाले तैल, उद्यास, वाष्पशील विलेयक तथा शोषक पदार्थ काम में लिये जाते हैं।

वर्णक—वर्णकों के उनके प्राप्ति-साधन या गुणों के अनुसार, जिन्हें वे पेंट को प्रदान करते हैं, रखा जा सकता है। वे इस प्रकार या तो प्राकृतिक या संश्लेषित; प्रांगारिक अर्थात् कार्बनिक या अकार्बनिक; सफेद या रंगीन; पारदर्शक या अपारदर्शक होते हैं। वे जंग निरोधक तथा वाहक के साथ क्रियाशील या उदासीन होते हैं।

प्राकृतिक अर्थात् खनिज वर्णकों में लौह-अयस्क, चीनी मिट्टी, ओकर (ochre), चाक, बेराइटीज, घीया पत्थर, अभ्रक तथा डाइऐटम मिट्टी होती हैं। ओकर, चाक आदि को सिर्फ पीसना जरूरी होता है। अभ्रक को विशेष प्रकार के यंत्रों में आर्द्र विधि से पीसकर उसका चूरा तैयार करना पड़ता है। यह विधि काफी खर्चे वाली है।

संश्लेषित या रासायनिक वर्णक काफी बड़े परिमाण में तैयार किये जाते हैं। ये वर्णक सीसे, जस्ते तथा टाइटैनियम के सफेद वर्णक तथा बड़ी संख्या में अकार्बनिक तथा कार्बनिक रंगीन यौगिक हैं। इनके बनाने में भौतिक तथा रासायनिक प्रतिक्रियाओं का सावधानीपूर्वक नियंत्रण अपेक्षित है। अकार्बनिक वर्णक को बनाने में धूमायन, प्रक्षेपण तथा दहन प्रक्रियाओं का आश्रय लिया जाता है। कार्बनिक वर्णक रंगों के लवण या लाक्षक होते हैं या शुद्ध अघुलनशील रंग। रासायनिक प्रकृति के कारण कुछ वर्णक सुखानेवाले तैल या उनके वसाम्लों के साथ होनेवाली प्रतिक्रिया में भाग लेते हैं। सामान्य प्रतिक्रिया क्षार तथा अम्ल की है। जस्ते का प्रॉक्साइड या लाल-सीसा वसाम्लों के साथ मिलकर धात्वीय साबुन बनाता है। टाइटैनियम डाई ऑक्साइड जैसे अन्य वर्णक रासायनिक दृष्टि से निष्क्रिय होते हैं। आकस्मिक तौर पर कुछ ऐसे पदार्थ इन वर्णकों में रहते हैं या अलग से मिला दिये जाते हैं, जिनसे ये वर्णक क्रियाशील हो जाते हैं। इसी प्रकार निष्क्रिय वस्तु की सुरक्षा प्रदात्री परत सक्रिय वर्णकों के कणों पर चढ़ा कर उनकी क्रियाशीलता कम कर दी जा सकती है।

सफेद रंग या पेंट में अपारदर्शिता वर्णक तथा वाहक के वर्त्तनाङ्कों में अंतर के कारण होती है। इस पर वर्णक कणों के आकार तथा वर्णक एवं वाहक के अनुपात का भी असर होता है। यहाँ पर कुछ महत्त्वपूर्ण सफेद वर्णक पदार्थों के वर्त्तनाङ्क तथा इनमें से कतिपय पदार्थों के कणों का औसत आकार दिया जा रहा है—

	वर्त्तनाङ्क	मध्यम कण व्यास (माइक्रोन में)
१. जस्ते का ऑक्साइड	२·०२	०·२ से ०·१
२. जस्ते का सल्फाइड	२·३७	
३. क्षारीय कार्बनेट, श्वेत सीसा	२·००	०·७ से १·२०
४. क्षारीय सल्फेट, श्वेत सीसा	१·९३	०·६ से ०·७
५. लिथोपोन	१·८	०·४
६. टाइटैनियम डाईऑक्साइड	२·५	०·३ से ०·६
७. सीसे का टाइटैनेट	२·७	०·३
८. कैल्सियम सल्फेट	१·५९	
९. बेराइटीज	१·६४	
१०. सिकता, स्फटिक	१·५५	
११. सिकता, डाइऐटम मय	१·४५	
१२. ऐंटीमनी आक्साइड	२·२	
१३. जिर्कोनियम आक्साइड	२·४	
१४. औसत पेंट वाहक	१·५	

वर्णकों को दो विभागों में बाँटा जा सकता है—पहले विभाग में उन वर्णकों को रखा जाता है जिनका वर्त्तनांक १·८ से अधिक है। दूसरे विभाग में लगभग १.५ वर्त्तनांक मान वाले वर्णक आते हैं। पहले विभाग के वर्णक अपारदर्शक या प्रधान वर्णक हैं और दूसरे विभाग वाले वितानक वर्णक कहे जाते हैं और ये अपारदर्शक नहीं होते।

यदि वितानक वर्णक पेंट को छिपाने अर्थात् ढकने का गुण प्रदान नहीं करते तो यह प्रश्न सहज ही पूछा जा सकता है कि उनका क्या उपयोग है और वे क्यों काम में लिये जाते हैं। इसके कई कारण हैं। कुछ वर्णक, जिनमें जस्ते का सल्फाइट तथा टाइटैनियम डाई-ऑक्साइड प्रमुख हैं, बहुत से पेंट पदार्थों को छिपाने या ढकने का अत्यधिक गुण प्रदान कर देते हैं। प्रधान वर्णक के कुछ अंश के स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर वितानक वर्णक के उपयोग से पेंट की कीमत में काफी कमी आ जाती है और इस प्रकार वह सर्वसुलभ हो सकता है। कुछ वितानक वर्णकों के कणों का आकार द्रव पेंट या सूखी फ़िल्म इन दोनों के गुणों को बढ़ा देते हैं। ये वितानक वर्णक पेंट के सूखने पर उसे तड़कने से रोकते हैं। द्रव पेंट में वितानक वर्णक के रूप में बने रहते हैं, नीचे नहीं बैठते।

यहाँ पर विभिन्न प्रकार के वर्णकों का उनके रंग के अनुसार विवेचन किया जायेगा।

श्वेत वर्णक—वितानक वर्णकों को छोड़कर, जो सामान्यतः सफेद रंग के होते हैं, मुख्य श्वेत वर्णकों में सफेद सीसा, उत्सादित सफेद सीसा, जस्ते का आक्साइड, लीथोपीन तथा टाइटैनियम डाई-ऑक्साइड हैं। बाजार में उपलब्ध सफेद पेंट वाले पदार्थों में बहुधा इन्हीं वर्णकों का विभिन्न अनुपात में मिश्रण होता है और उनमें निष्क्रिय, वितानक या संबलक पदार्थों का भी थोड़ा भाग रहता है।

सफेद सीसा—यह सीसे का क्षारीय कार्बनेट है। इसका सूत्र $pb(OH)_2\ 2\ pbCO_3$ हैं। यह सबसे पुरातन वर्णकों में से है और इसे पाँच विभिन्न तरीकों से बनाया जाता है। इस वर्णक में छिपाने का अच्छा गुण है और यह तेल के साथ मिलकर सहज ही चिकना लेप बना लेता है। यद्यपि सफेद सीसे की अलसी के तेल के साथ प्रतिक्रिया होती है तथापि इतनी अधिक नहीं कि कठोर भंगुर फ़िल्म बने। सफेद सीसे को वर्णक के रूप में प्रमुक्त करने पर वाहक फिल्म मजबूत तथा लचकीली बनती है। सफेद सीसे का अकेले वर्णक के रूप में प्रयोग उचित नहीं है। इससे सतह कुछ थोड़ी ऊबड़-खाबड़ हो जाती है अर्थात् उसका चिकनापन मिट जाता है, जिससे धूल के कण उसमें मिलकर वस्तु को अशोभन बना देते हैं, इसकी फिल्म पर कार्बन के कण भी चिपक जाते हैं। सफेद सीसे का काला पड़ जाना औद्योगिक वातावरण में सीसे के कार्बनेट के सीसे के काले सलफाइड यौगिक में बदल जाने के कारण होता है—

सीसा-कार्बनेट + हाइड्रोजन सलफाइड → सीसा-सलफाइड +
(सफेद) (काला)
जल + कार्बन डाई ऑक्साइड

सीसे का सल्फेट इस प्रकार काला नहीं पड़ता। कई लोग इस बात से सहमत नहीं हैं कि सफेद सीसे का काला

पड़ जाना कार्बनेट के सल्फाइड में परिणत हो जाने के कारण होता है। उनके अनुसार काजल तथा कार्बनयुक्त पदार्थ के फिल्म पर जम जाने के कारण वह काली पड़ जाती है। उन्हें फिल्म की जाँच करने पर उसमें सल्फाइड बिलकुल नहीं मिला। सफेद सीसे वाली फिल्म में मुख्य परिवर्तन कार्बनेट का सल्फेट हो जाना है। सीसे के क्षारीय सल्फेट के काले न पड़ने का कारण यह है कि वर्षा आदि के कारण धूल, कार्बन आदि धुल जाते हैं। यह देखा गया है कि सल्फेट फिल्म की कुछ काल बाद मुटाई कम हो जाती है।

उत्सादित श्वेत सीसा—यह क्षारीय सीसा-सल्फेट है। इसका सूत्र $2Po\ SO_4Pb(oH)_2$ है। इसे गेलीना खनिज को भून कर और वाष्पीभूत सीसे के सल्फाइड के उपचयन द्वारा बनाया जाता है। इसमें बहुत महीन कण होते हैं। यदि महीन सीसे के कारण पदार्थ काला पड़ जाता है तो उसे उत्सादित नीला-सीसा कहते हैं।

टाइटैनियम श्वेत वर्णक—ये नये श्वेत वर्णकों में से हैं। ये वर्णक लगभग शुद्ध टाइटैनियम डाई-ऑक्साइड से लेकर २५% तक इस ऑक्साइड के पैरियम सल्फेट कैल्सियम सल्फेट, मैगनेसियम सिलिकेट, जस्ते के ऑक्साइड या अन्य श्वेत वर्णकों के साथ मिश्रण होते हैं। टाइटैनियम डाई-ऑक्साइड अधिकतः इलोनाइट खनिज से बनाया जाता है। इस खनिज को, जो लौह तथा टाइटैनियम का ऑक्साइड होता है, गंधक के अम्ल में घोलकर जल संयोजित टाइटैनियम डाई-ऑक्साइड को प्रक्षिप्त कर तथा उसमें के पानी को जलाकर टाइटैनियम डाई ऑक्साइड वर्णक प्राप्त किया जाता है। इसके ऊँचे वर्त्तनाङ्क के कारण टाइटैनियम श्वेत वर्णकों में छिपाने का गुण बहुत अधिक होता है। इन वर्णकों का प्रयोग बाहर तथा भीतर सब जगह किया जाता है।

लीथोपोन—यह वर्णक जस्ते के सल्फाइड तथा बैरियम सल्फेट का मिश्रण है। इसे बैरियम सल्फाइड के तथा जस्ते के सल्फेट के घोल को आपस में मिलाकर सह-प्रक्षेपण द्वारा बनाया जाता है। इस प्रक्षेपण में ७०-७५% बैरियम सल्फेट और शेष जस्ते का सल्फाइड होता है।

जस्ते का ऑक्साइड—इसे सफेदा भी कहते हैं। यह उपचयन से बनता है। इस ऑक्साइड के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण पेंट या इनेमल फिल्म में पराबैंगनी प्रकाश का प्रवेश नहीं होने पाता।

संबलीय वर्णक—दूसरे वर्णकों के दोषों के निवारण के लिए अपेक्षाकृत कम मात्रा में ये वर्णक उपयोगी सिद्ध होते हैं; पर इनका उपयोग अधिक मात्रा में कभी न करना चाहिए। इन्हें दो श्रेणियों में रखा जाता है—(१) वे वर्णक जिन्हें तैल के साथ पीसकर सफेद लेप तैयार किया जाता है और (२) वे जो तैल में पारदर्शक होते हैं। पहली श्रेणीवाले वर्णक दूसरे वर्णकों को हलका करते हैं और इसलिए इन्हें **मंदक** कहते हैं। वे वर्णक जो सफेद लेप नहीं बनाते दूसरे रंग वाले वर्णकों के साथ मिलकर रंगीन वर्णकों की शक्ति में अभिवृद्धि करते हैं। सफेद लेप न बनाने का कारण यह है कि उनका तथा तैल का वर्त्तनाङ्क वही होता है। इस प्रकार के संबलक **आधार** कहलाते हैं। मंदकों में ऐस्बेस्टीन, घीयापत्थर तथा चीनी मिट्टी मुख्य हैं। मुख्य आधार सिकता, प्राकृतिक या प्रक्षिप्त कैलिसयम कार्बनेट, जिप्सम या मीठा चूना और प्राकृतिक या प्रक्षिप्त बैरियम सल्फेट हैं।

नीले वर्णक—नीले वर्णकों में मुख्य 'प्रशियन नील' है। इसका सूत्र $Fe_4 [Fe (CN)_6]_3$ है। इसके अन्य नाम हैं—पेरिस नील, चीनी नील तथा मिलोरी नील। इसके बनाने की विधि के अनुसार इसके रंग की गहराई भी अलग-अलग होती है। इसको तैयार करने की सामान्य विधि यह है कि फेरस सल्फेट के पानी के घोल में पोटेशियम फेरोसाइनाइड का घोल मिलाकर सफेद या हरापन लिये सफेद रंग का अवक्षेप बनाया जाता है। इसे विरजक चूर्ण जैसे पदार्थ से उपचयित करके फेरिक फेरोसाइनाइड तैयार किया जाता है। यही प्रशियन नील वर्णक है। इस वर्णक के रँगने की शक्ति काफी अधिक होती है। इसकी आधा आउंस की मात्रा से २० पाउंड श्वेत जस्ते को रँगा जाकर नीला पेंट तैयार किया जा सकता है। यह काफी स्थायी होता है। इस पर हवा, पानी तथा प्रकाश का कोई हानिप्रद प्रभाव नहीं पड़ता। यह अलसी के तेल को काफी मात्रा में शोषित कर लेता है, जिससे लम्बे समय तक चमकदार सतह बनी रहती है। प्रशियन नील का उपयोग चाक, क्षारीय सीसे के कार्बनेट या अन्य क्षारीय वर्णकों के साथ नहीं किया जा सकता, क्योंकि [illegible] होती है जिससे फेरिक हाइड्रॉक्साइड प्रक्षिप्त हो जाता है। इस कारण मिश्रण में कुछ ललाई आ जाती है।

एक अन्य नीला वर्णक लाजवर्दी नील है। यह एक जटिल सोडियम सेल्यूमीनियम सिलिकेट तथा सल्फाइड यौगिक है। प्रकृति में यह लाजवर्द (ultra marine) रत्न के रूप में मिलता है। इस वर्णक को मिट्टी, सोडियम सल्फेट तथा कार्बन को एक साथ गर्म कर पिघला कर बनाया जाता है। सल्फेट की कुछ मात्रा के स्थान पर कार्बनेट काम में लिया जा सकता है। इसका रंग इससे बनाने की विधि के अनुरूप हलका हरापन लिये नीले से लेकर बैंजनी नीला होता है। इसे कपड़े धोने में नील के रूप में काम में लिया जाता है। यह कपड़ों, श्वेत सार (स्टार्च) तथा कागज के पीलेपन को नष्ट कर देता है। अलकली यौगिकों का इस पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, पर अम्लों के सम्पर्क में आने पर इससे हाइड्रोजन सल्फाइड गैस निकलने लगती है। यद्यपि काष्ठ को रँगने के लिए लाजवर्दी नील एक सन्तोषजनक वर्णक है तथापि लोहे को पेंट करने में इसका उपयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसमें सल्फाइड विद्यमान है। सफेद सीसे व क्रोमपीत वर्णकों के साथ मिलाकर इसका प्रयोग अभीष्ट नहीं है, क्योंकि सीसे के सल्फाइड बन जाने से रंग काला पड़ जाता है।

अन्य नीले वर्णक में कोबाल्ट नील तथा ताम्र थैलो साइनाइड है। कोबाल्ट नील मे साधारणतः ३०-३५% तक कोबाल्ट ऑक्साइड तथा ६५-७०% ऐल्यूमीना रहता है।

हरे वर्णक—हरे वर्णकों को दो श्रेणियों विभाजित किया गया है—पहली श्रेणी में उन वर्णकों को रखा जाता है जो स्वभावतः हरे रंग के हैं। दूसरी श्रेणी में वे वर्णक आते हैं जो नीले तथा पीले वर्णकों के घनिष्ठ मिश्रण से तैयार किये गये हों। पहली श्रेणी का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वर्णक क्रोमियम ऑक्साइड है। इसका सूत्र Cr_2O_3 है। इसे स्थायी हरा या गुइगनेट का हरा रंग कहते हैं। इसका रंग ज्वलंत गहरा हरा होता है और स्थायी तौर पर वैसा ही बना रहता है। इस पर साधारणतया प्रकाश का कोई असर नहीं होता। यदि यह शुद्ध रूप में हो तो अम्ल तथा अलकली पदार्थ भी इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाते। इसमें अम्ल वर्णकों के साथ कोई अंतर्क्रिया नहीं होती। इसे [illegible] अच्छा होता है और धात्वीय सतह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर प्रयुक्त पेंट में इसे काम में लेने पर इसमें निरोधक गुणों का अच्छा प्रदर्शन होता है। इसके साथ बहुत बार क्रोम-पीत वर्णक मिलाया जाता है, पर ऐसा मिश्रण अम्ल-सह नहीं होता तथा इसे ३०० फेरेनहीट से ऊपर के ताप-मान पर काम में नहीं लिया जा सकता। शुद्ध क्रोमियम ऑक्साइड का ८००° फेरेनहीट तापमान पर भी कुछ नहीं बिगड़ता। इसका सबसे बड़ा दोष इसकी ऊँची कीमत है।

व्यवहार में अधिक प्रयुक्त हरे वर्णकों में क्रोमहरा जिसे ब्रंसविक हरा, प्रशियन हरा या हरा सिंदूर भी कहते हैं, मुख्य है। यह प्रशियन नील तथा सीस क्रोमेट (क्रोमपीत) का गाढ़ा मिश्रण है। इन दो रंगों को मिलाकर पीसने से क्रोम हरा रंग बनता है, पर अधिकतः इसे बैरियम सल्फेट या सीस-सल्फेट से इन दो रंगों को प्रक्षिप्त करके बनाया जाता है। क्रोमपीत, प्रशियन नील तथा श्वेत वर्णकों के आपेक्षिक परिमाण को घटा-बढ़ाकर कई प्रकार के हरे रंग तैयार किये जाते हैं। अन्य हरे वर्णकों की अपेक्षा क्रोम हरे रंगों में आच्छादन गुण सबसे अधिक होता है। हरे रंग पर प्राथ-मिक पेंट चढ़ाने के लिए इनका उपयोग करना ठीक नहीं। सल्फाइट युक्त वर्णकों के साथ भी इनका प्रयोग अभीष्ट नहीं है। यही बात क्षारीय वर्णकों के साथ इनके प्रयोग करने के सम्बन्धों में कही जा सकती है। क्रोम हरे रंग अम्लों के साथ प्रयुक्त नहीं हो सकते। अम्ल क्रोमपीत को घोल लेते हैं। इससे हरा रङ्ग नीला बन जाता है।

पेरिस हरा रंग जिसे पन्ना हरा रंग कहते हैं हरे वर्णक के रूप में सीमित मात्रा में प्रयुक्त होता है। यह रंग ताम्र ऐसिटो-आर्सेनाइट या आर्सेनेट होता है।

पीत वर्णक—क्रोमपीत, यशद पीत, पीत ओकर, कैड-मियम पीत व नारंगी-सियेना की गणना मुख्य पीत वर्णकों में की जाती है।

क्रोम पीत का मुख्य रासायनिक संघटक सीस-क्रोमेट ($PbCrO_4$) है। यह रंग डाईक्रोमेट यौगिक के घोल में घुलनशील सीस-लवण के विलयन को मिलाकर अवक्षेपण से बनाया जाता है। इसमें सीस-सल्फेट, जिप्सम, चीनी मिट्टी, बेराइटीज, सीस-ऑक्साइड, मोलिब्डेट या अन्य अघुलनशील सीस-लवण रहते हैं जिससे वांछित पीत आभा तैयार कर ली जाती है। हलके क्रोम पीत वर्णक में ६०% तक श्वेत वर्णक रहता है। यह पीत वर्णक काफी अधिक चमकीले होते हैं और सारे पीत वर्णकों की अपेक्षा इनमें सर्वाधिक आच्छादन शक्ति होती है। इन पर प्रकाश का कोई असर नहीं पड़ता, पर सल्फाइड से ये काले पड़ जाते हैं। क्षारीय वर्णकों के कारण ये नारंगी रंग के हो जाते हैं। पहले क्रोम-पीत वर्णकों का प्रयोग लोहे पर जंग निरो-धक तौर पर किया जाता था, पर बाद में यह पता चला कि वे इस ओर निरपेक्ष हैं। न वे जंग को प्रश्रय देते हैं और न वे इसका निरोध ही करते हैं।

यशद पीत, जिसे साइट्रन पीत रंग भी कहते हैं, यशद के लवणों के घोल में घुलनशील डाईक्रोमेट मिलाकर अव-क्षेपण द्वारा या उबलते हुए यशद ऑक्साइड को गंधक के अम्ल तथा डाईक्रोमेट के घोल में मिलाकर बनाया जाता है। इस वर्णक में आच्छादन का गुण बहुत बढ़िया होता है। इसका रंग चमकीले गंधक के रंग जैसा पीला होता है। प्रकाश का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यही हाल हवा, पानी, हाइड्रोजन, सल्फाइड तथा दूसरे वर्णकों का है, पर यह अम्ल-सह बिल्कुल नहीं है। इसके निरोधक वर्णक होने के कारण लोहे या इस्पात को इनके पेंट से रंगा जाता है। पेंट में इसे इस काम के लिए २% मात्रा में मिलाना समी-चीन होगा।

पीत ओकर या पीत गैरिक प्राकृतिक वर्णक हैं। वे बहुत से स्थानों में मिलते हैं। पीत गैरिक मिट्टी या कैल्सि-यम कार्बनेट है जिसमें २०% जल संयोजित फेरिक ऑक्सा-इड मिला होता है। इन्हें पीली गेरू को पीस कर तथा निस्सादित करके बनाया जाता है। फेरिक ऑक्साइड को अंशतः निरुदक (पानी रहित) करके लाल आभा उत्पन्न की जा सकती है। बिना गर्म किये गैरिक रंग सोने की तरह पीला होता है। इसमें सामान्य अपारदर्शिता होती है तथा आच्छादन का गुण ठीक-ठीक-सा होता है। इस पर अन्य वर्णकों तथा वातावरण का असर नहीं होता।

कैडमियम पीत, जो कैडमियम सल्फाइड यौगिक है, अकेले या बेराईटीज या जस्ते के ऑक्साइड के साथ मिला-कर प्रयुक्त होता है, एक गौण पीत वर्णक है। प्राकृतिक सियेना रंग जलाये जाने पर भूरे या गहरे लाल रंग के हो जाते हैं। सामान्यतः ये नारंगी रंग के मिलते हैं। इनमें अपारदर्शिता बहुत कम होती है। इनका उपयोग अन्य वर्णकों के रंग को ठीक करने के लिए पतले ऊपरी आच्छा-दन के तौर पर किया जाता है। सीसे के पीले ऑक्साइड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भी, जिसे लिथार्ज कहते हैं, पीत वर्णक की भाँति प्रयोग किया जा सकता है।

लाल वर्णक—रक्त अर्थात् लाल वर्णकों में लाल सीसा, लौह ऑक्साइड, प्राकृतिक तथा तैयार किये गये कैडिमियम लाल वर्णक व क्रोम रक्त वर्णक मुख्य हैं।

लाल सीसा, जिसे मिनियम कहा जाता है और जिसका रासायनिक सूत्र Pb_3O_4 है, सीसे की धातु को वायु की विद्यमानता में भट्टी में गर्म करके बनाया जाता है। पहले लिथार्ज (PbO) बनता है जो ३७५° सेन्टीग्रेट तापमान पर उपचयित होकर लाल सीसे में परिणत हो जाता है। यह चमकीले लाल रंग का वर्णक है। इस पर प्रकाश का कोई असर नहीं होता, पर इसका प्रयोग अन्य वर्णकों के साथ नहीं किया जा सकता। जहाँ वातावरण में सल्फाइड गैस विद्यमान है, वहाँ भी इसका प्रयोग वांछनीय नहीं है। इसका लेप बनाने के लिए अन्य वर्णकों की अपेक्षा तैल की कम मात्रा में जरूरत पड़ती है। वाहक तैल इसके कारण बड़ी जल्दी सूख जाते हैं। इस कारण शोषक पदार्थ पेंट में नहीं मिलाये जाते। सूखने की गति को कम करने के लिए यदि ऐसा अभीष्ट हो तो कुछ निष्क्रिय पदार्थ इसके साथ मिला दिये जा सकते हैं। इसमें जंग निरोधक गुण रहता है। अतः इसका उपयोग लोहे तथा इस्पात को रंगने में किया जाता है।

वेनिस का रक्त वर्णक—यह फेरिक ऑक्साइड तथा कैल्सियम सल्फेट का मिश्रण है। इसे बनाने के लिए बिना बुझाये गये चूने तथा फेरस सल्फेट के मिश्रण को गर्म किया जाता है। वर्णक में कैल्सियम सल्फेट की मात्रा निश्चित नहीं है, पर वह ५० प्रतिशत तक हो सकती है। वर्णक का रंग भट्ठी के तापमान पर आश्रित है। यदि तापमान कम हो तो वर्णक का रंग चमकीला होता है। यह वर्णक बहुत ही टिकाऊ लाल रंग प्रदान करता है। न तो इसका अन्य वर्णकों पर कोई असर होता है और न अन्य वर्णक इस पर कोई प्रभाव डाल सकते हैं। लकड़ी की सुरक्षा के लिए यह बड़ा अच्छा रंग है, पर धातु को इससे रंगना ठीक नहीं। इसमें जो कैल्सियम सल्फेट होता है, वह पानी में घुल कर थोड़ा आयनीकृत हो जाता है। इस प्रकार जो सल्फेट आयन बनते हैं, वे जंग को प्रोत्साहन देते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ गंधक का डाई-ऑक्साइड रह जाता है जिसका दहन क्रिया में चूने द्वारा पूरी तरह निष्फलन नहीं हो पाता। लाल-सीसे की तरह यह तैल के सूखने की गति में अभिवृद्धि नहीं करता। इसे तैल में जितनी देर अधिक रहने दिया जाता है, इसके पेंट में उतनी ही अधिक अच्छी फिल्म बनती है।

प्राकृतिक लौह-ऑक्साइड (लाल गेरू)—ये लौह-ऑक्साइड वर्णक लोहे के लाल हीमेटाइट अयस्क को पीस कर पानी के साथ निस्सादित करके तथा फिर उन्हें सुखा कर बनाये जाते हैं। यद्यपि इनका संगठन समरंग नहीं होता तथापि साधारणतः इनमें ८८-९५% तक लौह-ऑक्साइड तथा शेष भाग मिट्टी या रेत होती है। इनके गुण वेनिस के रक्त वर्णक से मिलते-जुलते हैं। ये धातुओं के लिए काफी अच्छे सिद्ध हुए हैं, क्योंकि इनमें कैल्सियम सल्फेट या स्वतन्त्र रूप में अम्ल नहीं रहते।

क्रोम रक्त वर्णक—इसे अमेरिकन सिंदूर या क्षारीय सीस क्रोमेट कहते हैं। इसका सूत्र $Pb_2(OH)_2CrO_4$ है। सीस क्रोमेट वर्णकों में यह सबसे अधिक क्षारीय लवण है। इसे पोटैसियम डाई क्रोमेट के घोल में सफेद सीसे को मिला कर उबालने तथा इस प्रकार बने पिंड पर उसकी आभा चमकाने के लिए गन्धक के अम्ल की थोड़ी मात्रा के उपचार द्वारा बनाया जाता है। इसके कण मोटे तथा दानेदार होते हैं। इसके साधारण गुण क्रोम पीत वर्णक के समान हैं। यह बड़ा अच्छा जंग निरोधक पेंट है। इसलिए इसका उपयोग निधड़क लोहे तथा इस्पात को रँगने में किया जा सकता है।

भूरे वर्णक—लगभग सारे भूरे वर्णकों में रंग प्रदायक संघटक के रूप में लोहे के ऑक्साइड होते हैं। वे विभिन्न प्रकार के लोहे के यौगिकों से तैयार किये जा सकते हैं। अधिकतः ये दूसरी विधियों में उपफल के तौर पर मिल जाते हैं या फिर इन्हें प्राकृतिक खनिजों से—यथा, अंबर या कुछ सियेना से—विशेष उपचार द्वारा तैयार किया जाता है।

शाही खनिज या शाही धात्विक भूरा वर्णक—यह लोहे का ऑक्साइड है। इसका अयस्क के रूप में खनन किया जाता है। यह जल संयोजित ऑक्साइड तथा कार्बोनेट के रूप में मिलता है। इसे तेज आग में भून कर पीस लिया जाता है। इस वर्णक में ऐल्यूटीना तथा सिलिका बड़ी मात्रा में रहते हैं। इसका रंग अच्छा भूरा होता है। यह रंग स्थायी बना रहता है। इसके कण बड़े महीन होते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उनका आकार एक सा नहीं होता। इससे बने पेंट लकड़ी तथा धातुओं के लिए बड़े अच्छे रहते हैं।

बभ्रु की या अंबर—यह भी एक प्राकृतिक वर्णक है। इसमें मिट्टी आधार रूप में होती है जिसमें लोहे का ऑक्साइड मिला रहता है। यह लाल गेरू की कोटि में रखा जा सकता है, पर इसमें यह अन्तर है कि इसमें भूरे मैंगेनिक ऑक्साइड की पर्याप्त मात्रा रहती है। यह चमकहीन भूरे बादामी रंग का वर्णक है, पर जलाये जाने पर यह लाल भूरे रंग का हो जाता है और यह रंग स्थायित्व ग्रहण कर लेता है। इसके गुण लाल गेरू के सदृश हैं।

वैंडाइक भूरा वर्णक—यह लोहे के लाल आक्साइड तथा पीत गैरिक का मिश्रण है। दीप कालिमा या कुछ बिटूमिन युक्त यौगिक मिला दिया जाता है। यह रंग बिगड़ता नहीं और तैल के साथ इसे मिलाने पर बड़ा अच्छा पेंट तैयार होता है, पर इसके कारण पेंट बड़ी मंथर गति से सूखता है।

कृष्ण वर्णक—दीप कालिमा वायु की सीमित मात्रा में भारी निरर्थक तैल को जला कर बनाई जाती है। यह वास्तव में जल है। इसमें औसतन ९०% शुद्ध कार्बन होता है। इसकी कई किस्में हैं। ज्वाला से काजल को श्रेणीबद्ध विभिन्न कक्षों में प्राप्त किया जाता है। पहले कक्ष में एकत्र कालिमा में कुछ तैलीय पदार्थ रहता है जो बिना जले उसमें आ जाता है। इस कारण इसका रंग हलका भूरा हो जाता है। बाद के कक्षों में प्राप्त काजल में तैलीय निक्षेप प्रायः नहीं होता। दीप कालिमा में अन्य कार्बन वर्णकों की अपेक्षा अधिक भूरापन होता है। इससे लिखे गये अक्षर काली पृष्ठभूमि में हलके दिखाई देते हैं।

दीप कालिमा के कण बड़े महीन तथा समांग होते हैं। यह स्थायी रंग है और जिस तैल में इसे मिलाया जाता है उसे यह बिगड़ने नहीं देती। अतः इससे बड़े अच्छे पेंट बनते हैं। लकड़ी को इससे रँगने से यह सीसे या जस्ते के पेंट की अपेक्षा अधिक समय तक टिकी रहती है। इसका आपेक्षिक घनत्व १·८२ है। इसको ७५% तैल में पीसने पर इसका साध्य लेप तैयार होता है। यह सूखने की गति को घटाती है। इसका कारण इसमें विद्यमान हाइड्रोकार्बन तैल का होना है। यदि वर्णक में १% से भी कम बिना जला तैल मौजूद हो तो वह पेंट के लिए सर्वथा अनुपयुक्त हो जाता है।

अंगार कालिमा—इसे गैस-कालिमा भी कहा जाता है। ९८-९९% तक शुद्ध कार्बन रहता है। इसे हाइड्रोकार्बन गैस—यथा, प्राकृतिक गैस या ऐसिटिलीन—को वायु की सीमित मात्रा में जलाकर बनाया जाता है। इसके गुण दीप-कालिमा के समान ही हैं।

हस्ति-दंत कालिमा—इसके अन्य नाम अंगूर-कालिमा, फ्रैंकफर्ट कालिमा तथा ड्रप्स काल है। इस वर्णक को बनाने के लिए कई प्रकार के पदार्थ गर्म किये जाते हैं। ये पदार्थ हाथीदाँत का चूरा, अंगूर की डालियाँ, कार्क के कटे भाग, नारियल की टोपसी आदि हैं। इन्हें रिटोर्ट या घुरियों में रख कर गर्म किया जाता है। अवशेष में पदार्थ का अधिकांश कार्बन रहता है। इसे ड्रप्स काल इसलिए कहा जाता है कि पदार्थ को पीसने के बाद इसमें थोड़ा गोंद-पानी मिलाया जाकर इसकी गोलियाँ बनाई जाती हैं। इसी रूप में इसे बाजार में बिकने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। ड्रप्स काल में खनिज भाग रहता है जो पदार्थ के जलने पर बनी राख में रहता है। इसमें विशेषतः पोटैशियम के लवण होते हैं जो थोड़े से जलग्राहक हैं। अतः इसे सावधानी से धोना तथा सुखाना चाहिए। यह वर्णक गहरा काला होता है। दीप कालिमा इसके सामने भूरी या सलेटी रंग की लगती है।

ग्रेफाइट—यह कार्बन का अपरावर्त्तिक रूप है। पहले यह खनिज के रूप में ही प्रकृति में मिलता था पर आजकल इसे कृत्रिम रूप से एवीसन विधि द्वारा भी बनाया जाता है। दोनों प्रकार के ग्रेफाइट में अशुद्धियाँ रहती हैं। ये सिलिका, लोहे के आक्साइड तथा ऐल्यूमीना हैं। प्राकृतिक ग्रेफाइट में ये अशुद्धियाँ अधिक मात्रा में होती हैं। अतः उसमें कार्बन कम मात्रा में रहता है। प्राकृतिक ग्रेफाइट में कार्बन ८०%, पर कृत्रिम अर्थात् संश्लेषित ग्रेफाइट में ९०% तक होता है।

ग्रेफाईट के कारण तैल बड़ी मंद गति से सूखता है। ग्रेफाइट पेंट का चिरकाल तक बना रहना संभवतः इसी कारण है। चूँकि ग्रेफाइट पेंट में उपचयन देर से होता है। फिल्म काफी लंबे समय तक लचकीली बनी रहती है और इस कारण इसका वियोजन सहज ही नहीं होने पाता।

यह निश्चित है कि कार्बन तथा ग्रेफाइट संक्षारण को प्रोत्साहन देते हैं। इसलिए इन वर्णकों का उपयोग लोहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा इस्पात पर प्रारंभिक आवरण के तौर पर करना ठीक नहीं है।

धात्वीय चूर्ण—सुरक्षा या सजावट के लिए फिल्म को रंगीन बनाने या उसका अपेक्षित गुण प्रदान करने के लिए कई धात्वीय चूरों का प्रयोग अधिकाधिक मात्रा में होने लगा है। इनमें यह गुण है कि इनके लिए तैल कम से कम मात्रा में अपेक्षित है और इस प्रकार निर्मित फिल्म अधिकतः धातु की ही बनी होती है। कांस्य चूर्ण का उपयोग सजावट के लिए प्रयुक्त पेंट में कई बरस तक होता चला आया है। अधुना ऐल्यूमीनियम के चूरे का उपयोग सजावट तथा सुरक्षा के लिए प्रयुक्त पेंट में अधिक होने लगा है। ऐल्यूमीनियम वर्णक के कणों का गठन दलमय होता और उन पर चिपकने वाली आक्सॉइड फिल्म चढ़ी रहती है। पेंट फिल्म में वे सीधे क्षैतिज रूप में आसन्न हुए प्रतीत होते हैं। ये फिल्म के बाहरी भाग में समाहृत हो जाते हैं। ये कण परस्पर एक बहुत ही चिपकने वाली वाहक फिल्म से अलग रहते हैं। इस गठन के कारण ऐल्यूमीनियम पेंट वाली फिल्म में पानी का प्रवेश नहीं हो सकता। इसमें पराबैंजनी प्रकाश को निकाल देने की क्षमता होती है तथा विद्युत् अवरोध असाधारण रूप में अधिक मात्रा में होता है।

यशद धूलि या जस्ते के चूरे तथा उसके ऑक्साइड के मिश्रण का उपयोग वर्णक से रूप में सुरक्षा प्रदायक पेंट लोहे या इस्पात तथा जस्ता चढ़ाये गये लोहे को, जिसे लोग भ्रमवश टीन करते हैं, रंगने के लिए किया जाता है। यशदधूलि वर्णक से पेंट का रंग सलेटी रंग के समान भूरा होता है। इसमें जंग निरोधक गुण विद्यमान है। संक्षारण को प्रोत्साहन देनेवाले वातावरण से प्रयुक्त धातुओं की बनी चीजों को रँगने में सीसे तथा सीसे की मिश्रधातुओं के चूरे का उपयोग भी किया जाता है। इन मिश्रधातुओं में से एक में सीसा ८५% , टीन या वंग २% तथा ऐंटियनी १३ % होती है।

लाक्षक (लेक) रंग—कई प्रांगारिक अर्थात् कार्बनिक रंगों को, जो अधिकतः कोलतार से बने होते हैं, उपयुक्त खनिज-आधार पर अवक्षिप्त करके लाक्षक रंग बनाये जाते हैं। इस प्रकार के खनिज-आधार के रूप में बैराइटीज का प्रयोग किया जा सकता है। आधार सामान रँगाई में कपड़े जैसा काम करता है। बैराइटीज के अतिरिक्त कई दूसरे खनिज वर्णकों का प्रयोग किया जा सकता है। ये रंग पानी, तैल तथा पेंट व वार्निश तैयार करने में प्रयुक्त विलेयकों में अघुलनशील होने चाहिए। ऐसा बहुधा होता है कि ये अघुलनशील नहीं होते। ऐसी अवस्था में वर्णक का रंगमय भाग वाहक में घल जाता है। यदि पेंट फिर से किया जाता है तो यह भाग ऊपर वाली परत में जा मिलता है। ऐसा होना आपत्तिजनक समझा जाता है। इस दोष को काष्ठांगार, दीप कालिमा, अस्थि कालिमा, जैसे पदार्थों से दूर किया जा सकता है। कार्बन में रंग अपशोषण का गुण काफी अधिक मात्रा में होता है। अतः ये पदार्थ रंगीन घोल को रंग-हीन बना देते हैं। फिर से पेंट करते समय पहले काले पेंट से उसे रँगा जाता है और फिर उस पर लाक्षक रंग वाला पेंट लगा दिया जाता है। लाक्षक वर्णक सब प्रकार के रंग वाले होते हैं और पेंट में इनका उपयोग प्रचुर मात्रा में किया जाता है। ये काफी टिकाऊ हैं और इनसे वस्तुओं को सुंदर ढंग से रँगा जा सकता है। प्रकाश तथा जलवायु का असर इन रँगों पर नहीं होता। [क्रमशः

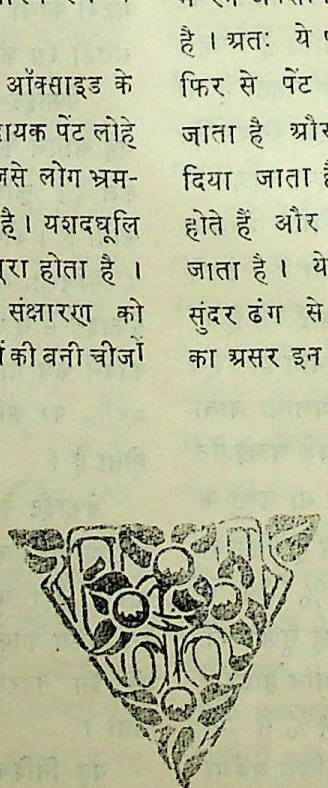

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु युग के एक दीप्तिमान कविरत्न

कुंवर हरिश्चन्द्र देव वर्मा 'चातक'

राधाचरण नाम है युग की एक अनोखी करवट का—
राधाचरण नाम है कालिन्दी कदम्ब वंशीवट का
राधाचरण नाम है राधारानी गैया मैया का
राधाचरण नाम है ब्रज के प्यारे कुँवर कन्हैया का

एक शब्द में कहें तो श्री पंडित राधाचरण में सम्पूर्ण ब्रज झाँक रहा है, देखनेवाली आँखें चाहिए।

श्रीराधाचरण गोस्वामी का जीवनचरित तद्द्वारैव-लिखित 'हिन्दुस्थान' और 'भारतेन्दु' मे पुनर्मुद्रित, मथुरा, भूषण प्रेस से १८९५ में प्रकाशित आज हमारे सामने है। उसके ऊपर श्रीमद्भागवत (२।३।१७) का यह श्लोक उद्धृत है—

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ—
तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया।

ठीक ही है—'काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।' कैसी सुधा-स्यन्दी सूक्ति है!

वंशानुक्रमणिका में

श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु (साक्षात् भगवतावतार), तच्छिष्य श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी, श्रीगोपीनाथ गोस्वामी, श्रीदामोदरदास गोस्वामी, तत्पुत्र श्रीहरिनाथदास गोस्वामी, श्रीसुन्दरदास गोस्वामी, श्रीमधुसूदनदास गोस्वामी, श्रीजयकृष्णदास गोस्वामी, श्री श्रीलाल गोस्वामी, श्रीप्रभु-दयाल गोस्वामी, श्रीरमणलाल गोस्वामी, श्रीगुणमञ्जरादास गोस्वामी (श्रीगल्लूजी महाराज), श्रीराधाचरण (दास) गोस्वामी।

श्रीगल्लूजी महाराज का जन्म मि० ज्ये० कृ० ८ सं० १८८४ में में हुआ। सांगोपांग सच्छास्त्र-निष्णात गृहस्थ होते हुए भी विरक्त थे। भगवदुपासना में तल्लीन रहते थे। इन्होंने भावभरी पदावली की रचना की है जो प्रकाशित है और उनकी गहन साधना को अभिव्यञ्जित करती है। आज भी शिष्य-परम्परया उसका गान होता रहता है।

माध्व गौडेश्वर सम्प्रदाय तो समस्त भारत में ही है। प्रायः आह्वान पर स्वयं गोस्वामीजी तथा पारिवारिक व्यक्ति बाहर जाते थे। सम्प्रदाय के लगभग चार करोड़ अनुयायी आज भी विद्यमान हैं। काशी महाराजजी का विशेष केन्द्र था। आज भी है।

श्रीराधाचरण मन्दिर की तरह काशी के बाबू गोपाल दासजी शाह द्वारा निर्मित श्रीश्यामारमणजी का मन्दिर वृन्दावन में है। महिषादल स्टेट (बंगाल) का मंदिर तथा अन्य अनेक नगरों के मन्दिर अब भी इनके पास हैं।

पूज्य श्रीगल्लूजी महाराज और श्रीराधाचरणजी विद्यावागीश महाराज के समय से सब कुछ यथावत है।

श्रीराधाचरणजी गोस्वामी श्रीभारतेन्दु के श्रेष्ठ और ज्येष्ठ आठ साहित्यकारों में प्रेष्ठ है। इनके द्वारा अनेक ग्रंथों की रचना हुई। राष्ट्रभाषा हिन्दी के इतिहास में इनका नाम स्वर्णवर्णाङ्कित है।

ये विशिष्ट सम्प्रदायानुयायी होने पर भी अत्यन्त आधुनिक मौलिक विचार-सरणी के पृष्ठ-पोषक थे। विधवा-विवाह, अछूतोद्धार, नारीशिक्षा आदि प्रायः सभी नई व्यवस्थाओं के अग्रणी थे। गरीब विद्यार्थियों को सहायता देना इनका कार्य था।

बाईस वर्ष तक वृन्दावन की नगरपालिका के सदस्य और दीर्घकाल तक अवैतनिक प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश (Honorary Magistrate) रहे। तीन बार आगरा की कार्यकारिणी के प्रतिनिधि रूपेण कांग्रेस महासभा के अधि-वेशन में भाग लेने गये।

महामना पं० मदनमोहन मालवीय एवं राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के साथ इनका राजनीतिक क्षेत्र रहा। एक बार ये अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के देहरादून अधिवेशन के सभापति चुने गये थे, जहाँ आप अस्वस्थता से पधार न सके। आपके सभापति भाषण का प्रारंभिक अंश देखिए कैसा बढ़िया है—

'देह री घर घराइ, देहरी चढ़्यो न जाइ
देह री तनिक हाथ, देहरी लँघाइ ले।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर यह तो देहरी नहीं देहरा और उसका दून अर्थात् देहरादून है। जब देहरी लाँघने में ही दूसरे की सहायता पड़ गई, तब देहरादून तक जाने में क्या-क्या सासत न भोगनी पड़े।

वृन्दावन मथुरा में होनेवाले षोडश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे, श्रीअमृतलालजी चक्रवती सभापति और मैं कवि-सम्मेलन का मुख्य संयोजक था।

इस सम्मेलन में सर्वश्री कृष्णविहारी मिश्र, माधव राव सप्रे, श्रीकिशोरीलालजी, अनूप शर्मा, श्रीजगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, श्रीअमृतलाल चक्रवर्ती, नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, बनारसीदास चतुर्वेदी, बाबूराव विष्णु पराड़कर, माखनलाल चतुर्वेदी, धर्मेन्द्रनाथ तर्कशिरोमणि, लक्ष्मीधर वाजपेयी, रामनरेश त्रिपाठी, रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', मोहनलाल महतो 'वियोगी', हितैषीजी, श्रीमती हेमन्तकुमारी चौधरानी, श्री तपस्विनी पार्वतीदेवी आदि प्रतिनिधियों के स्वागत में स्वागताध्यक्ष ने यह कविता पढ़ी थी—

आओ, आओ, बंधुवर दरसाओ मुख चंद—
सरसाओ साहित्य को, बरसाओ आनंद।
एक बरस दिन से लगी तुव आवन की आस,
अहो! आज पूरन भई चातक की सी प्यास।
यद्यपि हैं ब्रजभूमि के सहज सनेही लोग,
तद्यपि परदेसीन सौं इन्हें प्रीति को रोग।
परदेसी हैं प्राण प्रिय परदेसी सुख रूप,
परदेसी आये बिना ब्रज को रूप कुरूप।
तासें बृन्दाबिपिन को बंगालिन को संग,
बरस चार सौ से भयो मानों यमुना गंग।
गौड़ देश पावन करन प्रभू कृष्ण चैतन्य,
भेजि गौड़ियन को कियो हम सबसे सौजन्य।
घर बैठे 'अमृत'* मिलो धन्य हमारे भाग,
निज वचनामृत प्याइये बढ़े अधिक अनुराग।
गौड़ बिहारक मध्य भू कान्यकुब्ज के लोग,
अन्तर्वेदरु अवध के आये पुरुष सुयोग।

क्षमा प्रर्थना

परम अकिंचन जन सकल करत सबन परनाम,
सेवा नहिं हमसे बनी करहु छिमा गुणधान।

श्री यमुना जल पीजिये, ब्रजरज में रहु लोट,
दरसन राधा-रमन के जस की बाँधहु पोट।

ब्रज को दिव्य दृष्टि से देखो

दिव्य दृष्टि से देखिये ब्रज को वैभव मीत,
वही श्याम वृषभानुजा वही प्रेम की रीति।
वही गऊ अरु गोप वह बछिया बछड़ा वेह,
ललित लता वेही लखो वह तरुवर, वह गेह।
वह गोवर्धन ब्रह्मगिरि वह नंदीश्वर जान,
वह मथुरा वह कामवन, नंदगाँव बरसान।
वही राधिका कुसुम-सर, मानस-गंगा देख,
वह कालिन्दी की छटा प्रेम-प्रवाह बिसेख।
वह गोपीगण प्रेम की धुजा, वही रस-रीति,
वही दान अरु मान की लीला करहु प्रतीति।
वही मोर शुक सारिका वही मधुप गुंजार,
वह मर्कट की नटखटी, साँड़न की धुधकार।
वह पावस मनमोहनी वह हिंडोर मलार,
वह बसंत होली रुचिर गावत सरस धमार।
कुंज गली वेही भली सोहत सेवा कुंज,
सोही निधु वनराज है धीर समीर सुमंजु।

श्री वृन्दावन गोलोक धाम,
कुंज-कुंज में राधा श्याम।

श्री वृन्दावन के देवालय

श्रीहरिवंश प्रशंस को राजत वंश विशाल,
तन मन धन सों सेवते राधा वल्लभलाल।
श्रीस्वामी हरिदास के प्राण बिहारीलाल,
बाँकी झाँकी निरखि कैं छिन छिन होहु निहाल।
श्रीगुपाल भटके रुचिर राधारमण सुलाल।
गोस्वामी सेवा करत श्रीमधुसूदन लाल॥

श्रीरूप के गोविन्दजी राजा सु वृन्दाविपन के,
हैं श्रीमदनमोहन सनातन सेव्य कालिय-दमन के।
श्रीगोपीनाथ अनाथ-रंजन मधुर प्रभु के राजहीं,
राधा दमोदरजी वे गोस्वामी सुसेव्य विराजहीं।
श्यामसुंदर गोकुलानँद आदि विग्रह धारिकै,
वृन्दाबिपिन गोलोक की शोभा सदा विस्तारिकै।
श्रीकृष्णचंदरु रंगजी राधागुपाल निहारिये,
शृंगार वट वंशी पुलिन पुनि केशि तीरथ न्हाइये।

*श्रीअमृतलाल चक्रवर्ती (सभापति)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच कोस वृन्दाविपिन पिय प्यारी को धाम,
पशु पंछी अमरा नरा गावत राधा श्याम ।

ब्रजभाषा

ब्रजभाषा, भाषा ललित कलित कृष्ण की केलि,
या ब्रजमंडल मैं उगी ताकी घर घर बेलि ।
हिय से चहुँ दिसि विस्तरी पूरब पच्छिम देस,
उत्तर दक्षिण लौं गई ताकी छटा असेस ।
सूर-सूर तुलसी ससी उडुगन केसवदास,
देव बिहारी दयानिधि पद्माकर हरिदास ।
श्रीहरिवंश हरिप्रिया आनँदघन हरिचंद,
ललित किशोरी माधुरी ब्रजबासी अरु बृंद ।
इन कविगन कविता करी कलि उद्धारन हेत,
कृष्ण कृपा भवसिंधु के उद्धारन हित सेत ।

'न यदु वचश्चित्र पदामित्यादि,
तद्वारा विसर्गो जनता छित्यादि ।'

—श्री भागवत

हिन्दी

कविता कामिनि भाल में हिन्दी बिन्दी रूप,
प्रगट अग्रवन में भई ब्रज के निकट अनूप ।
लाल करी जिन अंकुरित शिवप्रसाद द्वैपात,
कुसुमित भारतइन्दु ने रचना रचि विख्यात ।

प्रार्थना

कवि पंडित परिजन प्रभृति छात्र रसिक रिझवार,
राजा प्रजा सुप्रेम बस कर हिन्दी को प्यार ।
हिन्दी हिन्दुस्तान की भाषा विशद विशाल,
जनम लेत सुख सो कहे माँ-माँ दा-दा बाल ।
घर की औघट घाट की खेत प्रेत समसान,
हाट बाट दरबार की भाषा येही जान ।
पितु-ऋण शोध सकै सहज कठिन मातु ऋण जान,
ताही के उद्धार हित यज्ञ रचो सुमहान,
जासे जो कछु बन सकै माता पद अरविन्द ।
भक्ति भाव से पूजिये, रहहु सदा आनंद ।

श्री राधाचरणजी के पुत्र श्री गौरचरण गोस्वामी श्री नित्याई चरण गोस्वामी दुर्भाग्य से इक्कीस वर्ष की आयु में दिवङ्गत हो गये । इससे उनके हृदय को बहुत आघात लगा । फिर भी वे अपने कर्त्तव्य-पथ पर समारूढ़ रहे । अपने जीवन-चरित्र में वे स्वयं लिखते हैं—"मेरा जन्म मि० फाल्गुण कृ० ५ संवत् १९१५, ता० २५ फरवरी १८५९ ई० को ४ बजे दिन में हुआ । मेरे पिता श्री गोस्वामी गल्लूजी महाराज, माता का नाम सूर्या देवी, जाति गौड़, ब्राह्मण, गोत्र शाण्डिल्य, प्रवर शाण्डिल्य असित देवल, यजुर्वेद माध्वन्दिनी शाखा, कृति सेवा पूजा, अग्रवाल वैश्यों की गुरुता, निवास श्रीवृन्दावन धाम जिला मथुरा है । मेरे पिता श्रीवृन्दावन के श्री राधारमणजी के मन्दिर के गोस्वामी वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य और बड़े महात्मा थे, छः वर्ष की अवस्था में मेरा कर्णवेध हुआ । पं० भोलानाथजी से घर पर कुछ कम दो वर्ष में कर्णमाला, अमरकोष, सारस्वत व्याकरण का पाठ मैंने पढ़ा । माताजी के देहान्त के बाद मेरी अवस्था में परिवर्त्तन हुआ । अब तक मैं माता के अधीन था । अब पिता के साथ रहने लगा । मेरी माता पढ़ी-लिखी थीं । जो कुछ पढ़ता था वह सुन लेती थीं ।

पिता के साथ बाल्यावस्था में ही कानपुर, काशी, बाढ़ (बिहार), फ़र्रुखाबाद, भरतपुर आदि में शिष्यों के समूह में यात्रा करता और पढ़ता भी रहा—साथ ही साथ धर्म-शिक्षा भी होती रही । फिर मेरा यज्ञोपवीत । फिर मेरा प्रथम विवाह वृन्दावन में ही श्री चम्पकलता देवी से हुआ । सारस्वत व्याकरण पढ़ा । फर्रुखाबाद में पं० हरिप्रसादजी से भी पढ़ा । फिर वृन्दावन पं० बल्देव महाराज जी से सिद्धान्त कौमुदी और रघुवंश, माघ काव्य तथा तर्क कौमुदी पढ़ी । श्रीमद्भागवत का आरम्भ अपने पिता से किया । फिर मैंने उस समय अंग्रेजी छिप-छिप कर पढ़ी । यदि उस समय कोई अंग्रेजी शब्द मुँह से निकल जाता था तो कठिन पश्चात्ताप करना पड़ता था । अतः गुप्त रीति से पं० राम रत्न संस्कृत टीचर जिला स्कूल से पढ़ीं । मैंने स्कूल में नाम लिखाया तो इतनी चर्चा का विषय बन गया कि मुझे अपना नाम कटाना पड़ा । शिष्यों ने भी भय दिखाया कि हम आपसे पृथक् हो जायेंगे । अस्तु, फिर वही हुआ जो ऐसी स्थिति में होना था ।

श्री बाबू हरिश्चन्द्र का मैगजीन भी मासिक पत्र रूप में निकला था वह मेरे दृग्गोचर हुआ और फिर मेरी प्रकृति देशोपकार की ओर हुई और तभी कुछ काल तक मैंने कवि-वचनसुधा का सुधा पान कर नवजीवन आरम्भ किया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराने गुरुजन पुरानी और नये अपनी ओर-'दुविधा में दोऊ गये माया मिली न राम, नई रोशनी का विष बड़ा तीव्र है, सावधान रहना। निदान सं० १९३२ में हमारे अभिन्न हृदय श्रीमधुसूदन गोस्वामी, श्रीशोभन गो० तथा मैंने मिलकर 'कवि कुलकौमुदी' सभा संस्थापन की। इसका उद्देश्य हिन्दी की गद्य-पद्य रचना तथा संस्कृत कविता की वृद्धि और व्याख्यान देना था। सभा के संस्थापन होने के तीन दिन पहिले गोस्वामीजी का देहावसान हो गया। मुझे बड़ा शोक हुआ। शोक-सभा का प्रथम प्रथम मनाना हमारे घर में एक नई बात थी। इसको अंग्रेजी रीति समझकर हमारे भाइयों ने बहुत विरोध किया। परन्तु हमारी दृढ़ता एवं अध्यवसाय से विरोधियों का विरोध कुछ भी नहीं चला।

इसी वर्ष मेरा दूसरा विवाह मथुरा में श्रीमती कुन्दलता देवी के साथ हुआ। यद्यपि प्रथम स्त्री के मरने के बाद मेरा विचार फिर विवाह करने का न था, परन्तु पितृपाद की आज्ञा और इन्द्रियों का अगम्य वेग और द्वितीय स्त्री के गुणों ने विवश किया। मेरी अर्धाङ्गिनी संसार सागर में मेरा साथी सिद्ध हुई। यदि इसके समान स्त्री मुझे न मिलती तो मैं संन्यासी हो जाता। सोसायटी में पड़कर ईसाई धर्म, ब्राह्मधर्म, ब्राह्मधर्म के मासिक पत्र 'हिन्दू बान्धव' में प्रस्ताव भी लिखता था, इन लेखों में मैंने कुछ पद भी लिखे थे जिनमें एक पद यह भी था—

हमें अब प्रभु की कृपा लखात।
भारत में पुनरपि वैदिक मत प्रकट होत दिखरात,
जहाँ तहाँ मानव-पूजा की पड़त सुनाई बात।
राधा चरण सनातन हमरो आर्य धर्म अवदात,
हमें अब प्रभु की कृपा लखात।

इस पद के ऊपर 'कवि वचन सुधा' में एक प्रेरित छपा जिसके लेखक स्वयं बाबू हरिश्चन्द्रजी गुप्त रीति से थे। इसमें मुझ पर व्यक्तिगत आक्रमण और उपदेश भी था। इस प्रेरित के छपने पर शिष्य मित्र और कुटुम्ब में बड़ा कोलाहल हुआ, बहुत विरोधी हुए, पर मैंने इसका शीघ्र ही प्रतिवाद छपाकर इसकी सफाई दी। इसके छपने पर हमारी प्रकृति में कुछ अन्तर आया, इधर तो हमें अपनी निन्दा सुनने में मिली, अब और लेख लिखने में स्वतंत्रता मिली उधर ब्राह्मधर्म के खयालात प्रकट करने से बाज आये। इसी समय पश्चिमोत्तर में स्वामी दयानन्दजी का बड़ा जोर शोर था। मैंने उनके ग्रंथ मँगाये और पढ़े। और फर्रुखाबाद में दो बार और वृन्दावन में अनेक बार गोष्ठी भी की और बैठने-उठने से विचार विनिमय भी हुआ परन्तु उनके व्याख्यान सुनने को नहीं जा सका। हम लोग किसी अन्य व्यक्ति के बराबर या नीचे नहीं बैठते। उस समय इस निश्चय के अधीन था, पर अब छोड़ दिया है। यह लिखने से बाबू हरिश्चन्द्र से बड़ा प्रेम बढ़ गया, उनके लेख ग्रंथ हमें वेद वाक्यवत् प्रमाण और मान्य थे। उनको ईश्वर का एकादश अवतार मानते थे, हमारे सब कार्यों में वे आदर्श थे।

अब हमने जीविका के साथ कलम भी सँभाली। गोसाइयों के सब ढंग मैंने सच्चरित और अकैतव रीति से आरम्भ किये और यत्र तत्र संशोधन भी किया। हिन्दी के प्रायः सब पत्रों में जो उस समय सन् १८७७ से १८८३ तक छपते थे अनेक विषयों पर लेख लिखे। उनकी संख्या २०० के निकट होगी और वह सब मैंने संग्रह कर जिल्द बँधवा कर पुस्तकालय में रक्खे हैं। अखबार बाँचने का मुझे बड़ा शौक था। यदि किसी दिन देखने को न मिले तो भोजन पान सभी बिसर जाता था। सन् ७५ से आजतक जितने पत्र आये हैं सभी की फाइल है। पुस्तक अखबार और एजेन्सी विभाग को छोड़कर ६३०० चिट्ठी पत्री मैंने व्यवहार्य्य लिखीं और इतनी ही आईं भी। इन्हीं दिनों मुझे कविता का बड़ा शौक था। ६०० कवित्त मुझे जिह्वाग्र थे—इससे मैंने कवित्तों का अभ्यास छोड़ दिया। मैंने स्वयं भी कवित्त बनाये हैं। उनमें मञ्जु, नाम रखा है।"

जिन श्री भाई डा० केदारदत्त तत्राड़ी एम० ए० स्व० राधाचरण गोस्वामीजी पर ही डाक्टरेट प्राप्त की है उन्हीं का प्रेषित गोस्वामीजी का मंजु उपनाम से ग्रीष्म पर लिखित एक कवित्त पढ़िये—

'फूल हैं फरस हैं फरासी पंख पंखे और,
फैल हैं फरेब हैं फुवारे हैं फुवार हैं।
बेनी हैं सुवायु हैं बरफ हैं बधू जन हैं,
वारुनी है विधु है बिहार हैं बहार हैं।
'मंजु' कवि मल्लिका हैं माधवी हैं, मालती हैं—
मलयज माधुरी है मोहनी हैं मार हैं।
गान हैं गुलाब हैं गिज़ा हैं गरकाब हैं—
औ गेंदे गुल गजरे हैं, ग्रीषम गुँजार हैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें पद्माकर की तरह अनुप्रास का अनुराग स्पष्ट है।

समाज की दयनीय स्थिति पर वसंत फाग और होली पर एक गेय पद सुनिये—

खेलत बसंत कलियुग नरेश,
लिय कपट रूप कामिनि सुदेश।
निज भाग फाग लखि उठी फूल,
स्वारथ सुबास उत्तम अबीर।
भरि काम क्रोध फेंटत गुलाल,
है लोभ मोह मुट्ठी अधीर।
कुलबधू त्रसित घर मै लुकाय,
ह्वै रही जगत मैं हाय! हाय!
बाजते पखंड के डफ रसाल,
तिन संग झूठ की लगत ताल।

सभी कुछ कलियुग में उलटा ही है। ऐसी सामाजिक दशा में कविता की कम और अधर्माचरण पर व्यंग्य प्रहार की ही चिन्ता प्रायः अधिक रहती है। सच पूछिये तो तत्कालीन अशिक्षित जनता को इसी सीधी सरल प्रणाली से समझाना था, नहीं तो उसके पल्ले कुछ भी न पड़ता।

पुस्तक सूची— १—शिक्षामृत (सबसे प्रथम छपी) २—इश्क चमन, ३—उपनिषद्चतुष्टय, ४—आर्य शब्द का उद्घाटन ५—शिक्षा-सार, ६—यमलोक की यात्रा, ७—नापित स्तोत्र, ८—दामिनी दूतिका (देशोपकारी पुस्तक है)। ९—सम्वरण शिशिर सुषमा, १०—रेलवेस्तोत्र, ११—हिन्दी बँगला वर्ण शिक्षा, १२—भंगतरंग, १३—विदेश यात्रा विचार, १४—नव भक्तमाला, १५—विधवा-विवाह विवरण, १६—बूढ़े मुँह मुँहासे १७—विधवा-विपत्ति, १८—जावित्री, १९—तन मन धन श्रीगुसाईंजी के अर्पन, २०—सती चन्द्रावली, २१—अमरसिंह राठौर, २२—श्रीराधारमण पद मंजरी,—२३—श्रीयुगल छद्म-रहस्य, २४—पदप्रेम प्रसंग, २५—श्रीचैतन्य-जयन्ती, २६—व्यवस्था वैष्णव बोधिनी, २७—श्रीचैतन्य बारह खड़ी, २८—श्रीचैतन्य चरितामृत (आदि खंड) इत्यादि। श्री तत्राड़ी के लेखानुसार उनकी रचनाओं की संख्या ५४ से अधिक है, कुछ रचनाएं, जैसा उस समय प्रचलित था थोड़े पृष्ठों की ही हैं, इनमें कुछ तत्कालीन हास्य-परिहास की हैं तथा कुछ गम्भीर गवेषणा की हैं। दरअसल वे कवि की अपेक्षा गद्य लेखक अधिक थे। फिर उस समय जो भी कार्य उनके द्वारा हुआ वह अप्रतिम था। वे आगे लिखते हैं—"श्रीराधारमण मन्दिर से मुकदमा चला। मुझे स्वयं उसकी पैरवी करनी पड़ी तब विजय पाई। सन् १८८२ में वृन्दावन में वैष्णवों की धर्म प्रचारिणी सभा हम सभी ने स्थापित की। ३ वर्ष तक धूमधाम से चलती रही। इसी बीच में शिक्षा-कमीशन बैठा। उनमें अपने उद्योग से इक्कीस हजार हस्ताक्षर हिन्दी के पक्ष में मेमोरियल के द्वारा भिजवाये। १८८३ में मैंने भारतेन्दु मासिक पत्र प्रकाशित किया। ३ वर्ष ५ मास तक उत्तम रीत्या चलता रहा, फिर अर्थाभाव से बंद करना पड़ा। १८८४ प्रयाग हिन्दी अधिवेशन में गया। यहाँ हिन्दी पत्र सम्पादकों की एक सभा संस्थापित है। १ वर्ष तक सेक्रेटरी रहा। १८८६ में कांग्रेस का वृन्दावन से डेलीगेट बन के कलकत्ते गया। वहाँ से आकर विदेश यात्रा विचार, बिलायत जाने की आवश्यकता तथा शास्त्रार्थ और विधवा-विवाह विवरण, विवाह युक्ति, शास्त्र और कानून के विधान से समाजोपयोगी ठहराया जिन पुस्तकों का यत्किंचित् विरोध हुआ फिर सभी शान्त हो गये। लिखते समय किसी की छाया लेकर लिखना मुझे रुचता नहीं। जो कुछ मन में हो उसे ही लिखना चाहिये। सज्जनों के दर्शन का मुझे बड़ा शौक है। मैं उनसे अपनी योग्यता का सार्टीफिकेट नहीं चाहता। मुझे तो सज्जन-सत्कार ही अभिप्रेत है। हाँ देशोपकारक विषयों पर शुभ-सम्मति या विचार-विनिमय आवश्यक है। म्यूनीसिपेल्टी में मैंने न्याय से कार्य किया। न तो स्वार्थी मेम्बरों की चलने दी न घाऊधप्प अमलदारों की।

वृन्दावन क्षेत्र श्री रंगजी के मंदिर में ब्रह्मोत्सव, बड़ा भारी मेला होता है—ईसाई भी उपदेश करते हैं और हिन्दू धर्म, अवतारवाद देवताओं की बड़ी निन्दा करते हैं, यह बात मुझे अखरती थी। अतः मैंने उपदेश शुरू किया। ईसाइयों ने तो इसका विरोध नहीं किया, सर्वसाधारण बड़े प्रेम से सुनते थे, पर हमारे बहुत से भोले साथी निन्दा करने लगे, परन्तु मैं संकल्प पर दृढ़ रहा, इससे जनता का बड़ा लाभ रहा। मेरे पिताजी परम वैष्णव थे महात्मा ही थे, मैं तो नगण्य उनकी चरण रज बराबर भी नहीं। उन्होंने कभी मुझे कुछ नहीं कहा। उनके चरणों की कृपा से ही मैंने देश जाति साहित्य की सेवा की है।

'पितृ देव। इष्ट देव। त्राहि माम्'

एक बार मेरे सम्प्रदाय में एक विवाद छिड़ गया। अन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मेरी तथा मेरे मित्रों की विजय हुई। तभी मुझे 'विद्या वागीश' की उपाधि से विभूषित किया गया। विद्यानिधि, विद्या-भूषण, विद्या-सागर, आचार्य, सार्वभौम, आदि उपाधियाँ मुझे दी गयीं।

मेरे शिष्यों की संख्या १५०० है। मेरे चार कन्यायें पुत्र कोई नहीं पर मुझे इसकी चिन्ता नहीं। श्रीषड्भुज महाप्रभुजी का मंदिर, हमारे मंदिर फर्रुखाबाद, भरतपुर, जाववर, शाहजहाँपुर, राधारमणजी के नाम से प्रकट हैं। एक मंदिर में पुस्तकालय है जिसमें गुजराती, मराठी, अंग्रेजी, बँगला, उर्दू, संस्कृत की अनेक पुस्तकें हैं।

अब थोड़ी सी अपनी जनरल करेक्टर की बात कहता हूँ—

१—मैं एक आर्थोडाक्स कुल में उत्पन्न हुआ हूँ—परन्तु देशोपकार के सब कार्यों में उदार हूँ।

२—मैं एक कट्टर हिन्दू हूँ पर अन्य धर्म समाज से विरोध करना उचित नहीं समझता, बहुत से आर्य, ब्रह्म, मुस्लिम, ईसाई मेरे मित्र हैं, इनके समाजों में भी जाता हूँ।

३—कपट दम्भ के कार्यों में सहानुभूति-शून्य हूँ।

४—धन आदि के लोभ से अपने मन्तव्य यों स्वतंत्र छोड़ देना मैं उचित नहीं समझता।

५—देशोन्नति, नेशनल कांग्रेस, समाज संशोधन, स्त्री स्वातंत्र्य ये सब मेरी प्राणप्रिय वस्तु है।

६—सत्य यह मेरी मुद्रा और जीवन का लक्ष्य है।

७—निर्बल पर बलवान का अत्याचार यह सब मेरी आँखों का शूल है।

८—'अस्य दामोदरस्यार्थे कः कुर्यात् पातकस्यहत्

९—ऊनविंशति शताब्दी के गुणों का पक्षपाती हूँ। भ्रष्टाचार दुराचार का नहीं।

मेरा धर्म—

'सर्व धर्मान् परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज,
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः'

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्तैव गतिरन्यथा।'

श्री वृन्दावनधाम
ज्ये० शु० ५ स० १९५१
८ जून १८९४

श्री गौरङ्गदासानुदास
कुक्कुराभास
गोस्वामी श्री राधाचरण दास
राधाचरण गोस्वामी।"

यों श्री गोस्वामीजी ने कठिन असिधारा व्रत का पालन किया है। सत्य और कड़वा सत्य भी किस सरल ढंग से लिख दिया है। उन्होंने अपने पिता श्री६ गल्लूजी महाराज का वृत्त भी लिखा है। सारांश यह कि वे सत्यवादी आलस्य रहित थे। कर्मनिष्ठ इतने कि कभी भी एक पल की भी चूक नहीं हुई। सभी कुछ भगवदार्पण लाख रुपये भी खाक कर दिये पर सेवा में ही।

मथुरा भारती अनुसंधान भवन ज्ञानदा के सम्पादक अनेक साहित्यिक पुस्तकों के प्रणेता मेरे मित्रवर श्री पं० राधेश्याम द्विवेदी जी आचार्य, श्री ज्योतिषी बाबा कवीन्द्र शिवप्रकाशजी के सुपुत्र हैं। उन्होंने मुझे लिखा कि स्व० आचार्य पं० राधाचरणजी गोस्वामी बहुमुखी प्रतिभावाले व्यक्ति थे, परम देशभक्त तथा सर्वधर्म समन्वय के सुन्दर प्रतीक थे। उनके दर्शन हिन्दी साहित्य में एक साथ ही सफल नाटककार, कथाकार, निबंधकार, गोष्ठीकार, पत्रकार, काव्यकार, सफल अनुवादक आदि अनेक रूपों में होते हैं, वे भारतेन्दु जागरण युग संधि के प्राचीन प्रकाश स्तम्भ थे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथमाधिवेशन काशी में व्रजभाषा और हिन्दी साहित्य पर जो भाषण गोस्वामी ने किया था उसमें उन्होंने ये दोहे पढ़े थे—

व्रज समुद्र मथुरा कमल, वृन्दावन मकरंद,
व्रज वनिता सब पुष्प हैं, मधुकर गोकुलचंद।
जिन तृन सम किय जाति जिय, कठिन जगत जंजाल,
जयति सदा ही धन्य वे, प्रेम-जोगिनी बाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जैन कवि द्वारा २५० वर्ष पूर्व का बंगाल-वर्णन

श्री अगरचंद नाहटा

बंग देश भारत के प्राचीन प्रदेशों में एक है। समय समय पर इसकी सीमा कुछ बदलती रही है। अंग्रेजों के राज्य में इसका एक हिस्सा आसाम में सम्मिलित कर दिया गया। इस लिए बंग का भंग हो गया। प्राचीन श्री हट्ट (वर्तमान सिलहट) और करीमगंज सिलचर का कच्छार जिला बंगला भाषी है, जो इस प्रदेश के बंगाल का ही अंश होने का सूचक है। पाकिस्तान होने पर सिलहट और बंगाल का काफी हिस्सा पूर्वी पाकिस्तान में चला गया। अब पूर्वी पकिस्तान बंगला देश के नाम से प्रतिष्ठित हुआ है।

बंग देश और बिहार में जैन धर्म का भगवान् महावीर के समय से प्रचार हुआ था। स्वयं महावीर ने इन प्रदेशों में काफी भ्रमण और धर्म प्रचार किया था। उनके बाद भी कई शताब्दियों तक बंग प्रदेश में जैन धर्म का अच्छा प्रभाव रहा। अतः कई स्थानों के नाम से श्वेताम्बर जैन श्रमणों की शाखाएँ प्रसिद्ध हुई, जिनका उल्लेख आचार्य भद्रबाहु रचित कल्पसूत्र के अन्त में प्राप्त स्थविरावली में पाया जाता है। बंगाल व बिहार के अनेक स्थानों में आज भी सराक नामक जाति के लोग लाखों की संख्या में बसते हैं। वे प्राचीन जैन श्रावक ही हैं। बंगाल और बंगला देश के अनेक स्थानों में जैन मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं, जो कई संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। संक्षेप में, भगवान् महावीर के कई शताब्दियों बाद भी जैन धर्म का अच्छा प्रचार रहा और आगे चलकर अनेक कारणों से वहाँ प्रचार कम हो गया। उत्तर भारत में मथुरा और दक्षिण भारत में मद्रास, बँगलौर, मैसूर आदि की तरफ जैन धर्म का प्रचार काफी बढ़ गया। राजस्थान-गुजरात श्वेताम्बर सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र बना और उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश व दक्षिण भारत में दिगम्बर सम्प्रदाय का काफी प्रचार हुआ।

१७वीं शताब्दी से बंगाल में फिर से जैन धर्म का प्रचार राजस्थान आदि से गये हुए जैनियों द्वारा प्रारंभ हुआ। मुर्शिदाबाद में जगतसेठ का घराना बहुत प्रभावशाली हुआ। बंगाल के कई स्थानों में जैन मन्दिर, उपासरा आदि बने। सैकड़ों परिवार, हजारों लोग व्यापार, नौकरी के लिए राजस्थान से बंगाल पहुँचे। अतः कलकत्ता व्यापारिक केन्द्र होने से जैन समाज का केन्द्र सा है।

मुर्शिदाबाद १८वीं शताब्दी में बंगाल का प्रसिद्ध सूबा था। वहाँ के नवाब बड़े प्रभावशाली माने जाते थे। जैन समाज का भी उनसे काफी अच्छा सम्बन्ध था। जगतसेठ का घराना भी उन्हीं से संबधित था। उस समय राजस्थान आदि से गये जो जैनी बंगाल में निवास करने लगे थे, उनको धर्म ध्यान कराने के लिए राजस्थान से जैन यति मुनि बराबर जाते रहते थे। उन्होंने वहाँ रहते हुए हिन्दी व संस्कृत में कई रचनाएँ बनाई हैं। बंगला भाषा में रचित कई जैन स्तवन मिलते हैं। जगतसेठ के पूर्वजों में सेठ माणक चंद की पत्नी माणक देवी जैन मुनियों की बड़ी भक्त थी। उसकी धार्मिकता का अच्छा विवरण पार्श्वचन्द गच्छीय मुनि निहाल रचित माणिक देवी रास में मिलता है। वह संवत् १७९८ पौष वदी १३ को मक्र शुद बाद में रचा गया है। वह जैन रास संग्रह में भी प्रकाशित हो चुका है। इसी यति कवि निहालचन्द ने बंगला देश की गजल नामक एक महत्त्वपूर्ण रचना हिन्दी में बनाई है, जिसमें उस समय के बंगाल का महत्त्वपूर्ण विवरण मिलता है। यह बंगला देश की गजल ६५ पद्यों की हैं। नवाब सुजासा, (सिराजुद्दौला) के राज्यकाल (सं० १७८२ से १७९५ तक) में यह रची गयी है। अतः इन १३ वर्षों के भीतर ही निहाल कवि की बंगाल गजल रची गयी हैं। इस गजल में २५० वर्ष पूर्व बंगाल में कौन से स्थान प्रसिद्ध थे, वहाँ की क्या स्थिति थी, इसका बहुत ही महत्त्वपूर्ण विवरण है। मुनि जिनविजयजी ने इस गजल का सार प्रकाशित करते हुए लिखा है कि इस गजल में नवाब सुजासा के राज्य-कारबार की बड़ी प्रशंसा की गयी है। इसके राज्य को रामराज्य सा लोकप्रिय बताया गया है। कवि कहता है कि इसके राज्य में बड़े सुख से रह रहे हैं वे इसे औलिया, पीर, जिन्द पर-दुःख हरने वाला आदि कहते हैं। इसकी रैयत दिल से इसे आशीष देती रहती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि इसका राज्य युगों तक अटल बना रहे। यह धन-दौलत और पुत्र परिवार से बढ़ता रहे और इस नवाब की उम्र एक हजार वर्ष की हो। एक मुसलमान नवाब के बारे में एक हिन्दू और जैन कवि का यह कथन अवश्य ही बड़ा औदार्य द्योतक है। इस गजल में बंगाल और उसकी राजधानी की तत्कालीन परिस्थिति का अच्छा रेखाचित्र है। इसे पढ़ने पर पता लगता है कि उस समय मुर्शिदाबाद की आबादी और समृद्धि कैसी बढ़ी-चढ़ी थी, लोग कैसे सुखी थे, देश का मालिक मुसलमान नवाब था, लेकिन क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सारी प्रजा उससे कैसी संतुष्ट थी, वह अपनी रैयत को किस तरह चाहता था और किस तरह सबको समान दृष्टि से देखता था, उनके राज्य में न कोई दुखी था, न कोई त्रस्त था, न किसी को चोरों और लुटेरों का भय था, न कर्मचारियों का जुल्म था। बंगाल गजल का सार नीचे दिया जा रहा है। कवि निहालचन्द की अन्य रचनाएँ जीव विचार भाषा, नव तत्त्व भाषा सं० १८०६-७ में मुर्शिदाबाद में रची गई हैं। अतः कवि काफी वर्षों तक बंगाल में रहा है। सं० १७९० से १८०७ तक उसने वहीं रहकर ब्रह्मबावनी (सं० १८०१) एवं उपर्युक्त रचनाएं बनायी हैं।

बंगाल देश की गजल का सार

सद्गुरु, शारदा और गौरी पुत्र (गणपति) को नमस्कार करके कवि बंगाल देश की सरल गजल बनाने का उपक्रम करता हुआ कहता है—बंगाल एक अव्वल दर्जे का देश है जिसमें बहुत नदी-नाले और जंगल हैं। इसके रास्ते सकड़ी गली में से हैं। इसके आखिर में नवलख कामरू (असम) देश हैं, जिसमें से आने का एक ही रास्ता है और बिना दस्कत लिए देश के अन्दर जाने नहीं दिया जाता। इस रास्ते में बायीं ओर गंगा बहती है और दाहिनी ओर ऊँचे ऊँचे पर्वत खड़े हैं।

पहले राजमहल स्थान मिलता है जिसे राजा मान ने बसाया था। यहाँ पर बहुत से वाड़ी बाग और अच्छे-अच्छे मन्दिर व महल हैं। गुदरी चौक और बाजार आदि देखने लायक है। गोलागंज में मच्छी भवन स्थान है जहाँ सुजाशाह रहा करते हैं। पड़वा नामक स्थान में हजरत कुतुब का मकान है जहाँ पर बड़ा मेला लगता है और लोग यात्रा के लिए आया करते हैं। उसके बाद गौड़ का किला है, जिसके पास गंगा बह रही है। इसका मैदान १२ कोस के घेरे में है, जिसमें बीच-बीच में कई कमठान (मकानात) आदि बने हुए हैं। हुसैन नाम का पहले एक बादशाह हो गया है जिसने इसका कोट बनाया है, ऐसा बुजुर्ग लोग जिक्र किया करते हैं। फिर मालदह नामक शहर मिलता है जो एक बड़ी जगह है। यहाँ पर तरह-तरह के कपड़े बनते हैं, जिसकी तारीफ करना मुश्किल है। मसूर, खार, शक्कर, अतलस, इलायची आदि बहुत चीजें यहाँ बिकती हैं और सौदागर माल खरीदते रहते हैं। उनके साथ दलाल भी बहुत फिरते रहते हैं।

इसी बंगाल देश के बीच में प्रसिद्ध शहर मकसूदाबाद (मुर्शिदाबाद) है जिसको जाफर खाँ ने आबाद किया है। इसके पास गंगा बह रही है जिसमें स्नान करने से पाप दूर हो जाते हैं। इस नदी में तरह-तरह की बनी हुई नावें चलती रहती हैं। इनमें काँसे, पर्दे और लाल किस्म की जो नावें हैं, उनके बनाने में खूब दाम लगते हैं। बजरा और महलागरा नाम की नावें हैं उनकी तो तारीफ ही क्या की जाय। वे तो देवविमान जैसी मालूम देती हैं।

शहर का बाजार देखो तो उसमें अठारह वर्ण के लोग रहते दिखाई देते हैं। बड़ी-बड़ी कोठियाँ बनी हुई हैं। कटला, कोट, टंकसाल आदि हैं, जिनमें बड़े-बड़े व्यापारी शाह, शराफ आदि बैठे रहते हैं और वे रुपया, मोहर और दामों की परीक्षा करते रहते हैं। ये देश देशावरों की हुंडियाँ लेते-देते हैं। बड़े-बड़े बजाज बनकर बैठे रहते हैं और खूब कपड़ों का व्यापार करते रहते हैं। ये मलमल, डोरिया, चौतार, बाफता, गढ़वार, जरी, जरब मखमल, खीमखाप, फताक आदि तरह तरह के कपड़े बेचते हैं। जवहरी (जौहरी) लोग बैठे-बैठे लाल, हीरा, चूनीमोती, पन्ना, मणि आदि अनेक प्रकार के जवाहरात परखते हैं और लेते-देते हैं। महाजनों की खूब टोलियाँ बनी हुई हैं और वे बड़े मजे में रहते हैं। ब्राह्मण, बनिया, क्षत्रिय और सब जाति के लोग तथा गंधर्व, मसारा, अतार, सुखड़ागर, सुनार, ठठार, सोना, सालवी, सुतार, तँबोली, कांदू, कागदा, कंमार, नाई, नायटा, नटवा, छींपा, छपणागर, पटवनि, तेली, तुनिया, धोबी, धनकुटार, धुनिया, माली, मलमाँजी, सुचिगर, हलवाई आदि सब पेशों के लोग अपना अपना धन्धा करने में मशगूल हैं।

शहर के अच्छे-अच्छे मन्दिर, मस्जिद, धर्मशाला और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीनारें आदि बड़ी कारीगरी के बने हुए हैं। योगी, यतिनाथ, अलख, जंगम, भक्त, दण्डी, कनफटे, मस्तान आदि भेष वाले इधर-उधर घूमते-फिरते दिखाई देते हैं।

शहर का जो भाग बालुचर कहलाता है वह और खास कर उसका कचरा हाट देखने लायक है। जिसमें लोटा, थाली, झारी, गगरी, चरी, दीवट आदि खूब अच्छे धार वाले नाना प्रकार के बासन बर्तन बिकते रहते हैं। वहाँ ताँती लोग (कपड़ा बुनने वाले) भी बहुत रहते हैं, जो जामे आदि का बड़ा कीमती कपड़ा बुनते हैं।

महिमापुर नामक बस्ती में जैन धर्म का बड़ा मन्दिर है, जहाँ जगतसेठ रहते हैं। इन सेठ के दरवाजे पर सारे खलक के लोग भेंट करने के लिए खड़े रहते हैं। याचक लोग जय जय किया करते हैं और उन्हें यथायोग्य खूब दान दिया जाता है।

कासमबाजार और सैदूदाबाद आदि बस्तियों में गुजराती रहते हैं। और उनके साथ ही जितने टोपी वालों की जाति के (विदेशी लोग) हैं वे रहते हैं। इन टोपी वालों में अरब, अरिमनी, अंग्रेज, हबसी, हूरमजी, उलदाज, सिन्धी, फरांसीस, अदमान, मुगल, पठान आदि सब तरह के सौदागर हैं। कम्पनी की कोठी बड़ी भारी बनी है और उसमें लाखों रुपये लगे हैं। यह लोग दूर-दूर के बन्दरों से अपना माल लाते हैं और यहाँ पर रिझा-रिझा कर लोगों को बेचते हैं। ये करोड़ों रुपयों का व्यापार करते हैं और यहाँ से रेशम का कपड़ा खरीदते हैं।

बंगाली लोग भी वैसे ही रहते हैं और उनके घर-घर में बाग और बाड़ी होते हैं। ये लोग बहुत नियम और आशा रखते हैं पर इनके दिल में दया नहीं होती।

बंगालियों के लिए ऐसा कटाक्षमय कथन इस गजल वालों ने क्यों किया, सो समझ में नहीं आता। शायद बंगाली लोग मछली बहुत खाते हैं और वे अपने बागबगीचों के तालाब में से रोज उन्हें पकड़ते रहते हैं जिसे देखकर इस जैन यति को घृणा आई हो और इसलिए बंगालियों के दिल में दया नहीं होती, इसने कहा हो।

इसके बाद शहर के उस भाग का जिक्र है जहाँ पर बादशाही लश्कर रहता है। यह जगह दिल्ली के बाजार जैसी गुलजार है। इसमें शेख, मुगल, पठान आदि लश्करी पेशों के लोग रहते हैं। और साथ ही ब्राह्मण, बनिये, कायस्थ आदि भी, जो इनके साथ सम्बन्ध रखते हैं, सब बड़ी तादाद में बसते हैं। घुड़दौड़ के मैदान में घोड़े दौड़ते रहते हैं। वहाँ अव्वल दर्जे का गुदरी का बाजार लगता है।

इस तरह शहर बड़ा आबाद है। इसमें सुजावर्दी अहमद शाह का राज्य है। जिसका नाम सारा खलक आठों प्रहर लिया करता है। राम के जैसा इसका राज्य है और यह सब राजाओं का सिरताज जैसा माना जाता है। इसकी आज्ञा समुद्र तक मानी जाती है। इसने अपने दुश्मनों को जेर करके अपना विकट रास्ता साफ किया। इसके पास बड़े सूर सिपाहियों की बड़ी फौजें रहती हैं। सिपाहियों को अच्छा वेतन दिया जाता है और वे बड़े ताजे बने रहते है। इसके राज्य की सीमा बड़ी लम्बी चौड़ी हैं। कहते हैं कि कोई आदमी रोज १२ कोस चलता रहे तो पूरे चार महीने के बाद वह इसके राज्य की हद को पार सकता है।

इस नवाब के रहने के जो महल बने हुए हैं उनकी तो तारीफ ही क्या की जाय। उनके पास ही गंगा बहती है। और उसके ऊपर अच्छे कोट से घिरा हुआ बड़ा भारी बाग है। इस बाग में सैकड़ों प्रकार के फूल और फल वाले झाड़ पौधे लगे हुए हैं। बीच-बीच में पानी के बड़े-बड़े हौज बने हुए हैं। कहीं इस प्रकार के आइने जड़े हुए हैं और इनके इर्ग-गिर्द अच्छे तबक मढ़े हुए हैं। कहीं मजेदार तम्बू तने हुए हैं।

नवाब जब कभी यहाँ आकर बैठता है तब मानों इन्द्र की सी सभा का ठाठ लगता है। बड़े बड़े खान खानान, मीर, मुगल, पठान, सेठ, साहूकार, मुत्सदी, हुदेड़ार, चौपदार आदि खड़े रहते हैं। रक्षक लोग हाथ में गोल गुर्ज लेकर खड़े रहते हैं। फौज अपने हथियारों से सजकर समुद्र की लहरों की तरह उमड़ आती है। हाथी और घोड़ों की ठठ लग जाती है। किसी महत्त्व के काम का फैसला नवाब खुद अपने ही मुख से सुनाता है। इसके राज्य में न कोई तूफान और जुल्म है न कहीं जार और चोर का डर है। और न कहीं रास्ते में लूट जाने का भय है। मुसाफिर रास्ते में कहीं भी चले जायँ, कहीं कोई कुछ नहीं पूछता। इस प्रकार सारी रैयत खुशी है। कोई कहीं दुःखी नहीं दिखाई देता।

नवाब के महलों के दरवाजे पर हमेशा नौबत बजती रहती है और याचक लोग जय जय करते रहते हैं। नवाब रोज याचकों को बकसीस दिया करता है जिसमें हाथी, घोड़ा, सिरोपाव आदि सब तरह की मूल्यवान् वस्तुएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीत-युद्ध में—

बेचारे

श्री राममोहन शर्मा

शीत की लहर,
वातावरण में घोलती जहर,
आ गई है।
दीनों की कुटिया में
मौत की छाया सी
छा गई है।

हाथ पर हाथ धरे बैठे,
आग के साहारे,
काटते हैं दिन-रात बेचारे।

होती हैं। ब्राह्मण और भाट आदि भी इन याचकों में शामिल होते हैं।

सब जगह इसने अपनी सरहद पर सूबे भेज रखे हैं और वे सब राज्य की मर्यादा का पालन करते हैं। इन सूबों के नाम इस प्रकार हैं—हाजीपुर और अजीमाबाद, उड़ीया (ओरिसा) की सरहद तरफ है, ढाका, रंगपुर, चटगाँव सिलहट, हुगली, रंगामाटी, वीरभूमि पंचेट, हिजला, विसनपुर, अकबर नगर और कूचबिहार—ये सब बंगाल की हद के स्थान हैं।

इस देश में बहुत रेशम होता है। इसके जैसा रेशम दूसरी किसी जगह नहीं सुना गया। अव्वल तरह के कपड़े की यहाँ पैदाइश होती है। बादशाही पोशाकें ही बनती हैं। नवाब का जो बाग है वह खास देखने लायक चीज है। उसमें चारों ओर फूल खिल रहे हैं और जोरों से पानी की लहरें बह रही हैं।

सेठ (जगत सेठ) माणिकचन्दजी के नाम का जो विश्रामधाम है वह भी खूब अच्छा बनाया है। उसमें मन्दिर, महल और तालाब बने हुए हैं। वे क्या रंक और क्या राव सबके देखने लायक हैं।

इस तरह इस शहर की कहाँ तक तारीफ की जाय। काबुला काश्मीर, कन्धार, अरब, इसफान, अंजार, मरु, मालवा, मेवात, दक्षिण, गुजरात, दिल्ली, आगरा, लाहौर, ठट्टा, भखर, पटना आदि सब देशों के लोग यहाँ आकर बड़े सुख से बस रहे हैं और वे सुजावर्दी महमद को करोड़ वर्ष तक जीते रहने की आशीष दे रहे हैं।

गजल के अन्त में कवि बंगाल देश की महानता बतलाता हुआ कहता है कि इस देश की क्या महिमा गायी जाय? इसमें स्वयं भागीरथी गंगा बह रही हैं। यहाँ पर समेतशिखर पहाड़ है जिस पर पार्श्वनाथ प्रभु हैं, झाड़खंड में महादेव हैं, पचेटनगर में रघुनाथ हैं, गंगासागर स्नान का स्थान है और उड़ीसा में जगन्नाथ का धाम है

इस प्रकार बंगाल देश की यह गजल निहाल नामक यति ने बनायी है। मूर्ख के मन में इसका कोई महत्त्व नहीं है। लेकिन पंडित लोगों का दिल इससे खुश होगा। ऐसी आशा रहते हुए कवि ने अपना कथन पूरा किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान्यताओं के प्रति आस्था

श्री शम्सुद्दीन

मानवता आज चौराहे पर खड़ी है। जो दो शक्तिशाली तत्त्व आज मानव-मस्तिष्क को सर्वाधिक प्रभावित कर रहे हैं वे हैं विज्ञान और मानव तत्त्व। ये वर्तमान युग के दो जागरूक विचार हैं।

अपनी अभूतपूर्व तरक्की के साथ विज्ञान ने मानव सुख के जो साधन उपलब्ध किये हैं वे अलौकिक आश्चर्य से कम नहीं हैं। उन्होंने मानव जीवन इतना सुखदायक बना दिया है कि पृथ्वी पर रहते हुए भी मनुष्य ऐसा अनुभव करता है मानों वह स्वर्ग में हो। किन्तु स्थिति का दूसरा पहलू भी है। आज मानवता विज्ञान की दया पर आश्रित है।

मानव निर्मित मशीनें एवं औजार उसका हित करने के बजाय अपने निर्माता के अस्तित्व को ही नष्ट करने की धमकी दे रहे हैं। विज्ञान के द्वारा तैयार किये गये विनाशात्मक शस्त्र चाहें तो क्षण भर में सम्पूर्ण मानव उपलब्धियों, संस्कृति एवं सभ्यता का विनाश कर सकते हैं।

इसके विरुद्ध मानव तत्त्व मनुष्यों को दो विभिन्न मार्गों की ओर ले जा रहा है। एक है साम्यवादी एकतंत्र तथा दूसरा है धर्मनिरपेक्ष जनतंत्र। इनमें पहला मार्ग धर्म-निरपेक्ष मानवता का ही अन्तिम रूप है। यहाँ राज्य सर्व-शक्तिशाली होता है तथा सारे मानवीय प्रयास इसी की समृद्धि के हेतु किये जाते हैं। दूसरे मार्ग में व्यक्ति प्रधान होता है तथा शासन तंत्र जनता का सेवक होता है। समाजतंत्र के ये दोनों प्रकार मूल में मानवीय होते हुए भी आज दो विभिन्न दिशाओं में कार्यरत हैं। उनका प्रधान लक्ष्य आज नेतृत्व की प्राप्ति है तथा शक्ति और अधिकार की भूख उन्हें निरन्तर दुखी एवं अशान्त बना रही है।

ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि वास्तविक सुख, शान्ति एवं उन्नति का मार्ग आखिर है क्या? इस अराजकता का कारण क्या है? सभ्यता के लिए खतरा क्यों उत्पन्न हो गया है? क्या कारण है कि विज्ञान एवं मानवतत्त्व के संपूर्ण प्रयासों के बावजूद आज मानवता चौराहे पर खड़ी है और निर्णय नहीं कर पा रही है कि वह क्या करे और किधर जाय?

प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ना कठिन नहीं है। आज संसार बाह्य अथवा भौतिक उन्नति के पीछे इतना अधिक पागल हो रहा है कि वह जीवन में वास्तविक मानवीय मान्यताओं को भुला बैठा है।

मान्यताओं से तात्पर्य उन विश्वासों एवं आदर्शों से है जिनका मानव व्यवहार में उपयोग होने पर जीवन अधिक उन्नत एवं सुसंस्कृत होता है तथा आचरण के उस स्तर पर पहुँचता है जो सबसे स्तुत्य एवं मान्य होता है।

कोई भी समाज सामुदायिक जीवन के कुछ स्तरों के बगैर अपने अस्तित्व को कायम नहीं रख सकता। जैसे-जैसे सामाजिक ढाँचा अधिक जटिल होता जाता है, सामान्य आदर्शों एवं मान्यताओं की आवश्यकता वैसे-वैसे अधिक प्रबल होती जाती है। वास्तव में मान्यताएँ वे बहुमूल्य मार्गदर्शक हैं जो मानवीय कार्यों की दिशा निर्धारित करती हैं। मान्यताएँ उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का कार्य करती हैं तथा मानव जाति की उन्नति का मार्ग निश्चित करती हैं।

युग युग से प्रत्येक देश तथा काल में लोग कुछ मान्यताएँ स्वीकार करते आये हैं। वे उस देश और काल के लोगों के आदर्शों, विश्वासों एवं जीवन के स्तर को प्रकट करती हैं। इनमें एक स्थान से दूसरे में तथा एक काल से दूसरे काल में भिन्नताएं भी पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए पाश्चात्य देश भौतिक मान्यताओं पर अधिक जोर देते हैं जब कि पूर्वी देशों में आज भी आध्यात्मिक मान्यताओं पर बल दिया जाता है। प्राचीन काल में शासन-व्यवस्था में एकतंत्र की प्रधानता थी, किन्तु आज अधिकांश देशों में जनतंत्र को स्वीकार किया जाता है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। अतः देश काल की परिस्थितियों तथा लोगों की आवश्यकताओं और माँगों के अनुसार जीवन में मान्यताएँ भी बदलती रहनी चाहिये। किन्तु इनकी तह में कुछ आधारभूत तत्त्व होते हैं, जो स्थायी एवं शाश्वत होते हैं तथा जिन्हें हर कीमत पर हमेशा के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान्यताएँ जीवन का मार्ग निश्चित करने के साथ ही मानव-जाति को सुख-शांति की ओर ले जाती हैं। इस संदर्भ में यदि हम संसार पर दृष्टि डालें तो हमें दिखाई देगा कि संसार के सर्वाधिक उन्नतिशील देशों में भी कहीं वास्तविक सुख एवं शान्ति नहीं है। हर जगह तथा हर क्षेत्र में अराजकता, अंतर्द्वन्द्व तथा निराशा ही दिखाई देती है।

भारत में स्थिति और भी गम्भीर है। गरीबी एवं अज्ञान के साथ वर्षों की गुलामी ने हमारा मस्तिष्क अपंग बना दिया है। पश्चिम का भौतिकतावादी प्रभाव हमें इतना अधिक आकर्षित कर रहा है कि हम अपने प्राचीन भारतीय आदर्शों को भूलते जा रहे हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, चाहे वह राजनीतिक हो अथवा सामाजिक, सांस्कृतिक हो अथवा आर्थिक, अशांति एवं अराजकता फैली हुई दिखाई देती है।

भारत पर सूक्ष्म दृष्टि डालने पर पता चलता है कि यहाँ फैली अशांति के लिए अनेक तत्त्व उत्तरदायी हैं। उदाहारणर्थ निरक्षर एवं अशिक्षित जनता द्वारा चुनी गयी प्रजातंत्रीय सरकार, देश का बढ़ता हुआ औद्योगीकरण किन्तु धन का असमान वितरण, संयुक्त-कुटुम्ब प्रणाली का व्यक्तिगत कुटुम्ब प्रणाली के रूप में विघटन, मध्य एवं निम्नवर्गीय जनता में बढ़ता हुआ जीवन-संघर्ष, जीवन की असुरक्षितता के कारण युवकवर्ग में बढ़ता हुआ तनाव एवं आक्रोश इत्यादि भारतीय सुख शांति के मार्ग में बाधक कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

ये बाधाएँ यद्यपि हमारे लिए बड़ी मुश्किल प्रतीत होती हैं, तथापि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि हम खतरे के युग से गुज़र रहे हैं तो सुनहरे अवसरों का युग भी हमारे सामने है। इस कठिन समस्या के फलस्वरूप हमें सर्वप्रथम उन आवश्यक मान्यताओं को स्पष्ट कर लेना चाहिए जिन्हें हमें जीवन में स्वीकार करना एवं अपनाना है।

इनमें सबसे प्रथम एवं महत्वणपूर्ण मान्यता है मानव व्यक्तित्व के प्रति सम्मान की भावना। व्यक्ति के व्यक्तित्व में नैतिक निर्णय एवं नैतिक जिम्मेदारी की क्षमता होती है जो हर तरह के दबाव व अन्याय का प्रतिकार करती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को नित्य के जीवन में आने वाली समस्यायों से जूझने के लिए आवश्यक योग्यता एवं सुरक्षा की भावना का विकास करने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध होने चाहिए।

इसी मान्यता के अनुसार मनुष्य सामाजिक सम्बन्धों के बगैर अपनी पूर्ण आत्मानुभूति प्राप्त नहीं कर सकता। अतः इसमें एकाधिकार की भावना को निरुत्साहित किया जाता है। यह मान्यता अधिक शक्तिशाली एवं योग्य व्यक्ति को अधिक ऊँचा नैतिक स्तर न प्रदान कर उस पर अधिक नैतिक जिम्मेदारी डालती है। यह प्रत्येक व्यक्ति में गहरे आत्मसम्मान एवं एकीकरण की भावना को जाग्रत करने का प्रयास करती है।

जीवन सर्वाधिक मूल्यवान एवं महत्त्वपूर्ण है। अतः व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्मान होना ही चाहिये—चाहे वह विधान सभा भवन में हो अथवा सार्वजनिक मंच पर, कारखाने में हो या खेत पर हो, घर में हो या पाठशाला में हो।

यदि व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रधान है तो संस्थागत सारी व्यवस्था उसकी सेविका है। पारिवारिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ स्वयं में तब तक आदर एवं सम्मान की पात्र नहीं जब तक वे मानव जीवन के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की वृद्धि में सहायक न हों।

एक संस्था के रूप में परिवार सामाजिक स्थिरता में सहायक होता है तथा छोटों को सुरक्षा प्रदान करता है। परिवार, जिसमें अधिकार की अपेक्षा स्नेह के बंधन अधिक होते हैं, मानवीय सम्बन्धों के पूर्ण विकास के लिए सुन्दर शिक्षण स्थल प्रस्तुत करता है।

जीवन की दूसरी महत्त्वपूर्ण मान्यता है सत्य के प्रति भक्ति। रीति-रिवाज तथा शिष्टाचार के कारण हम बौद्धिक स्वतंत्रता की नैतिकता खो बैठे हैं। फिर भी मानव इतिहास के रूप में अपने विचार प्रकट करने, अपने इच्छानुसार धर्म का पालन करने, ज्ञान प्राप्त करने तथा मत की भिन्नता रखने की स्वतंत्रता हमारी नवीनतम उपलब्धियाँ हैं।

आज संसार की जनता का बहुत बड़ा हिस्सा इन अधिकारों से वंचित है। धोखे की एकतंत्रीय व्यूह रचना ने यह और भी आवश्यक कर दिया है कि हम सत्य को गहराई से समझें, हृदय में अनुभूति करें तथा जीवन में उसका उपयोग करें। स्वच्छन्दता द्वारा वास्तविक स्वतंत्रता का हनन, व्यर्थ की बहस द्वारा काम का नुक्सान, दोषारोपण एवं विचार प्रतिबंध तथा अन्यायी शासन के प्रति आत्मसमर्पण हमारी इस मान्यता के लिए खतरे की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घंटियाँ हैं। इस प्रकार बौद्धिक स्वतंत्रता के अभाव में वे मनुष्य जो एकत्व व शुद्धता का निर्वाह करते, छली और दम्भी हो जाते हैं।

जीवन की तीसरी आवश्यक मान्यता है भ्रातृभावना। इसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ उनकी भी भलाई करने का प्रयास करता है जो उसके ऊपर निर्भर हैं। भाईचारे की भावना मानवता का व्यापक प्रसार तथा दूसरों के दुःख में सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण का विकास करती है।

बढ़ते हुए औद्योगीकरण में सहकारिता अत्यंत आवश्यक होती है ताकि निर्बलों एवं गरीबों को सुरक्षा प्रदान की जा सके। भाईचारे में भौतिक सहायता से कहीं अधिक नैतिक सहायता निहित रहती है। भाईचारा न केवल जरूरतमंदों की आवश्यकता की पूर्ति करता है वरन् उनके दुखों के कारणों का भी विनाश करता है।

जीवन की चौथी आवश्यक मान्यता है आध्यात्मिक समृद्धि। मनुष्य अन्य सभी प्राणियों से श्रेष्ठ एवं अधिक पूर्ण है। उसमें प्राणियों की मूलप्रवृत्ति के साथ साथ दैवी पक्ष भी है। जहाँ तक खाने, सोने एवं प्रजनन का सम्बन्ध है वह अन्य प्राणियों के समकक्ष है, किन्तु एक बात में वह दूसरों से भिन्न है। यह है तर्क एवं विवेक शक्ति। इस शक्ति के उचित प्रयोग द्वारा वह ईश्वर तक पहुँच सकता है, उसे देख सकता है, यहाँ तक कि उसके साथ एकाकार भी हो सकता है। इसका अनुचित प्रयोग उसे नैतिक पतन के गड्ढे में भी गिरा सकता है।

अधिकार के मद में चूर आज के भौतिक जगत् में आध्यात्मिक मूल्यों का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है। आज विज्ञान के चमकते हुए प्रकाश के बावजूद मनुष्य आध्यात्मिक दृष्टि से अंधकार में भटक रहा है। वह शान एवं शौकत में रह रहा है, किन्तु उसकी आत्मा तड़प रही है। उसके पीड़ित हृदय को कहीं शांति नज़र नहीं आती।

जब तक लोगों को आध्यात्मिक प्रकाश नहीं मिलता भौतिक समृद्धि एवं सम्पन्नता उनके लिए अभिशाप ही सिद्ध होगी तथा एक दिन मानवता के लिए ही खतरा उत्पन्न हो जायगा। मनुष्य शरीर, मस्तिष्क एवं आत्मा से बना है और इन तीनों के सम्मिलित विकास से ही वह पूर्णता प्राप्त कर सकता है।

जीवन की एक दूसरी महत्त्वपूर्ण मान्यता है आत्मानुशासन और आत्मनियंत्रण। ये परिपक्व व्यक्तित्व के लक्षण हैं। एक छोटे बच्चे को बड़ों के निर्देश एवं नियंत्रण की आवश्यकता होती है, किन्तु जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है माता-पिता तथा शिक्षकों को उसे स्वयं निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र छोड़ते जाना चाहिए। ऐसे लोग जीवन में अपनी असफलताओं से साहस एकत्र करते हैं तथा भावी संघर्षों का सामना करने के लिए शक्ति का संचय करते हैं। आगे चलकर वे प्रजातंत्र के जिम्मेदार नागरिक बनते हैं।

'सुख की खोज' जीवन की एक अन्य महत्त्वपूर्ण मान्यता है। किन्तु प्रश्न यह है कि यह सुख है क्या? निश्चय ही प्रचुरता तथा भौतिक आराम मात्र को सुख नहीं कहा जा सकता। क्षणिक आनन्द नीरसता एवं जिम्मेदारी से मुक्ति अवश्य दिलाता है, किन्तु वास्तविक सुख इससे भिन्न कुछ और ही होता है। यद्यपि भौतिक तत्त्व, जैसे, भोजन, वस्त्र, मकान आदि, इसमें सहायक होते हैं, तथापि पर्याप्तता की प्राप्ति होते ही इनकी महत्ता समाप्त हो जाती है।

यद्यपि अत्यधिक गरीबी में सुख की कल्पना धोखा है, तथापि अत्यधिक धन से भी इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। स्थायी सुख की प्राप्ति व्यक्तिगत युक्तियों तथा दूसरों के लिए स्नेह एवं सम्मान से की जा सकती है।

इस सुख में कभी-कभी त्याग भी करना पड़ता है तथा भविष्य के गहन एवं व्यापक संतोष के लिए वर्तमान सुखों को तिलांजलि भी देनी पड़ती है। इसमें प्रयत्न एवं त्याग निहित रहता है। इस प्रकार सुख की खोज भावी व्यापक लक्ष्यों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए।

विचार विश्लेषण की दृष्टि से यहाँ विभिन्न मान्यताओं की अलग-अलग चर्चा की गयी है, किन्तु एक बालक एक ही समय में एक से अधिक मान्यता को आत्मसात कर पूर्णता की ओर अग्रसर हो सक्ता है। पाठशाला का एक छात्र, जो छात्र-परिषद् में शाला-पत्रिका पर चर्चा करते हुए कहता है कि अल्पसंख्यक वर्ग के छात्र को शाला-पत्रिका के सम्पादन का अवसर दिया जाय, एक साथ अनेक मानवीय मूल्यों एवं मान्यताओं का दिग्दर्शन करता है, जैसे, नैतिक समानता, श्रेष्ठता के लिए सम्मान, मानवीय बंधुता, बौद्धिक स्वतंत्रता तथा सुख की खोज के लिए अवसर आदि।

इस प्रकार जीवन में अनेक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक मान्यताएँ रहती है, किन्तु नैतिक एवं आध्यात्मिक मान्यताएँ इन सभी क्षेत्रों में जीवन का पथ प्रदर्शन करती हैं। यों जीवन में मानवीय मूल्यों एवं मान्यताओं का अपना महत्त्व है। ये हमारे जीवन को उन्नत कर हमें अपने वास्तविक लक्ष्य तक पहुंचने में अपना अमूल्य योगदान करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम शास्त्री

श्रीनारायण चन्द्र भारती

'आपकी भावना को मैं समझ सकता हूँ। मैं भी अनेक बार सोचता हूँ कि इस दरबार की उठा-पटक और न्यायदान की सारी झंझटें छोड़कर काशी जाकर भजन-पूजन में जीवन के शेष दिन बिताऊँ। फिर विचार होता है कि जब न्यायदान की जिम्मेदारी ली है तब इसे किसी योग्य अधिकारी को सौंपे बिना कैसे छुटकारा हो सकता है। किन्तु श्रीमन्, यदि आपको ऐसा लगता हो कि इस राज्य-भार की खटपट की अपेक्षा ईश्वर-पूजा ही अच्छी है तो ऐसा कीजिए कि आप राजगद्दी छोड़ दें और मैं भी न्यायाधीश-पद त्याग दूं। हम दोनों काशी चलकर शान्ति-पूर्वक भजन-पूजन में दिन बिताएँ, जिससे चित्त को शान्ति-तो मिले!' राज्य के प्रधान न्यायाधीश राम शास्त्री ने पेशवा माधवराव से कहा।

राम शास्त्री अत्यावश्यक कार्य से पेशवा से मिलना चाहते थे। पहरेदार बोला, 'महाराज इस समय पूजा में बैठे हैं। क्षमा कीजिए। किसी को अन्दर आने की आज्ञा नहीं है।' बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद जब पेशवा माधवराव बैठक में आये और बोले कि आपको बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी; क्या करूँ, पूजा में बैठा हुआ था।' तभी उपर्युक्त वचन दबंग न्यायाधीश ने पेशवा से कहे।

पेशवा माधवराव चुपचाप इस व्यंग्य को पी गये। रामशास्त्री ने पेशवा के हृदय में अपने लिए अनोखा स्थान बना लिया था। यहाँ तक कि कभी-कभी वे अपनी माता गोपिकाबाई तक की आज्ञा की अवहेलना कर देते थे। एक बार हैदराबाद के निजाम के विरुद्ध लड़ाई चल रही थी। उनको माता की आज्ञा थी कि बिना विजय-प्राप्त किये नहीं लौटना। उन दिनों प्रतिदिन की लड़ाई का विवरण पेशवा राम शास्त्री को भेजा करते थे। मार्ग में माधवराव बीमार हो गये, किन्तु शत्रु को हराये बिना आने की आज्ञा नहीं थी। राम शास्त्री को जब यह समाचार मिला तब फौरन लिख भेजा, 'तबियत अस्वस्थ हो तो फौरन लौट आइए। लड़ाई फिर देखी जायगी।' पेशवा ने उत्तर में लिखा, 'आपका आदेश मुझे मानना ही पड़ेगा।' और वे वापस लौट आये।

राम शास्त्री का जन्म कृष्णा नदी के किनारे स्थित माहुली नामक ग्राम में प्रभुणे वंश के एक निर्धन ब्राह्मण के घर में हुआ था। बचपन में ही माता-पिता का देहान्त हो गया। इसलिए जन्मतिथि कौन याद रखता? अनाथ बालक राम कुछ दिन चाचा के आश्रय में रहा। चाचा यजमानों से भिक्षा-वृत्ति द्वारा जीवन-निर्वाह करते थे। चाचा की इच्छा थी कि भतीजा थोड़ा-बहुत पढ़-लिखकर यजमानों के यहाँ पूजा-पाठ कराने लायक बन जाय तो अपना गुजारा चलाने लायक हो जाय, किन्तु राम को पढ़ने की अपेक्षा शरारती लड़कों के साथ घूमना, नदी में तैरना और सारे दिन खेलना ही अच्छा लगता था। सोलह वर्ष का होने पर भी उसने अक्षर-ज्ञान तक प्राप्त नहीं किया था। अन्त में तंग आकर चाचा ने भतीजे राम को घर से निकाल बाहर किया।

गाँव में पेट भरने के लिए कोई व्यवसाय नहीं था। इसलिए नौकरी की खोज में राम सतारा गया। उन दिनों वहाँ अनगल नामक एक बड़ा साहूकार रहता था। उसके यहाँ राम घरेलू नौकर हो गया।

एक दिन सेठ अनगल शाम को घर आये। राम को आवाज दी, 'राम, पानी ला। पैर धोने हैं।' पानी का लोटा भरकर राम आया और साहूकार के पैरों पर पानी डालने लगा। उसकी नजर सेठ के दाहिने कान की सोने की बाली की ओर गयी जिसमें चमकीला मोती गूँथा हुआ था। (उन दिनों धनी और अमीर-उमराव लोगों द्वारा कानों में सोने की बाली पहनने का रिवाज था।) उसके बाली की ओर ध्यान-मग्न होने से पानी की धार पैरों में गिरने के बदले जमीन में गिरने लगी।

सेठ बोले, 'अरे रामा, आज तुझे क्या हो गया है? तेरा ध्यान कहाँ है?' राम बोला, 'आपकी 'भिकबाली' देख रहा था।' सेठजी मुसकराते हुए बोले, 'क्या तुझे भी ऐसी ही भिकबाली चाहिए?' उत्तर में राम ने स्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया। सेठ बोले, 'अरे मूर्ख, ऐसा गहना तो पैसे-वाला ही खरीद सकता है, या वह किसी विद्वान् को ही भेंट-स्वरूप प्राप्त हो सकता है! तेरे पास न धन है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न विद्वत्ता ही। पहले योग्यता तो प्राप्त कर। बाद में गहने की बात करना।'

राम के हृदय में ये शब्द चुभ गये। यदि मैं विद्वान् या वीर होता तो कितनी शान से ऐसा गहना पहनता और समाज में शोभा भी देता। बीस वर्ष का हो गया। अभी तक निरक्षर हूँ। क्या मैं इस उम्र में विद्याभ्यास कर सकता हूँ? इस प्रकार के मनोमन्थन ने अन्त में निश्चय किया कि काशी जाकर एकाग्रचित्त से विद्याभ्यास करना ही चाहिए।

सेठ से काशी जाने की अनुमति माँगी। उन्हें खुशी हुई कि मेरे व्यंग्य-बाणों से इसने जीवन में कुछ बनने का निश्चय किया है। उन्होंने राम को मार्ग-व्यय के लिए धन देकर कहा कि तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो और सफलता प्राप्त करके आओ।

सतारा से काशी तक का सारा सफर राम ने पैदल तय किया। उन दिनों आजकल की तरह मोटर और रेलें तो थीं ही नहीं, न आजकल के समान राजमार्ग ही थे। उन दिनों काशी में बालभट्ट पायगुंडे नामक एक प्रख्यात विद्वान् पाठ-शाला चलाते थे, जिसका व्यय-भार जयपुर दरबार उठाता था। राम ने बालभट्ट से अपनी व्यथा निष्कपट भाव से कह सुनाई। बीस वर्ष के इस 'बालक' को बिल्कुल निरक्षर देखकर सभी छात्र चकित रह गये। गुरु ने बड़े स्नेह से अपने छात्रों में राम को भी सम्मिलित कर लिया।

गुरु के यहाँ राम को एक मित्र मिल गया। वह गुरुजी का भानजा था और जमाई भी लगता था। (दक्षिण भार-तीयों में यह रिश्ता आमतौर पर चलता है।) उसका नाम अनन्त भट्ट था। बालभट्ट के यहाँ रिवाज था कि विद्वान् चतु-शास्त्री, षट्-शास्त्री शिष्यों को चाँदी की थाली में भोजन परसा जाता था। बाकी सामान्य छात्रों को केले के पत्ते में ही भोजन करना पड़ता था। अनंत भट्ट जमाई होने पर भी विद्वान् न था। इसलिए उसे भी केले के पत्ते में ही भोजन परोसा जाता था। किसी त्यौहार के दिन जमाई ने अपनी सास से हठ किया कि मुझे भी चाँदी की थाली में परोसा जाय। सास ने पति बालभट्ट से आग्रह किया; किन्तु बालभट्ट बोले, 'इस घर में पंगत में चाँदी की थाली में भोजन करने का सम्मान विद्वान् को ही मिलता है, जमाई को नहीं। अगर तुम्हें जमाई प्यारा है तो रसोई में चूल्हे के पास चाँदी की थाली में खुशी से जिमाओ। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु अविद्वान् जमाई को पंगत में चाँदी की थाली में जिमाऊँगा तो इससे विद्वानों का अपमान होगा। यह काम मुझसे नहीं हो सकेगा।'

फलस्वरूप अनन्त भट्ट चुपचाप केले के पत्ते में जीमने बैठ गया। यद्यपि उसके आत्मसम्मान को चोट लगी थी तथापि अपने गुरु और श्वशुर के इस व्यवहार ने उसे योग्यता प्राप्त करने की महान् प्रेरणा दे दी। अतएव उसने राम के साथ ही दत्तचित्त होकर अध्ययन करना आरंभ कर दिया। आगे चलकर अनंत भट्ट वेदान्तशास्त्र का महान् विद्वान् हुआ और राम प्रभुणे धर्मशास्त्र में पारंगत होकर राम शास्त्री नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१७५१ ई० में राम शास्त्री पूना आया और पेशवा नाना साहेब फड़नवीस के धर्मखाते में नियुक्त हो गया। १७५९ ई० में न्यायाधीश बालकृष्ण शास्त्री का देहान्त होने पर राम-शास्त्री की न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति हुई। राम शास्त्री ने निष्पक्ष और निर्लोभ होकर न्यायदान करना आरंभ कर दिया। इससे उनकी कीर्ति फैलने लगी। १७६४ ई० में पेशवा माधवराव ने आपको राज्य के प्रधान न्यायाधीश के पद पर नियुक्त कर दिया।

मराठों के राज्यकाल में बेगार प्रथा का एक प्रसंग है। चौमासा समाप्त हो चुका था। किसान बड़े उत्साह से फसल काटने की तैयारी में लगे हुए थे। इसी समय राम शास्त्री पालकी में सवार होकर अपने गाँव माहुली जा रहे थे। राम शास्त्री ने एक गाँव के पास पहुँचते ही देखा कि सर-कारी सिपाही खेत में एक किसान को पीट रहे हैं। उस किसान की वृद्धा माता सिपाहियों को कोस रही है। रामशास्त्री ने पालकी रुकवाई। वे खेत में पहुँचे। पता चला कि सरकारी काम के लिए कुछ किसानों को पकड़कर सिपाही ले जा रहे हैं, वह किसान अपनी माता का इकलौता पुत्र था। अगर वह चला जाता तो उसकी फसल को कौन सँभालता? राजाज्ञा का अनादर करने का उसका इरादा भी न था। राम शास्त्री सिपाहियों के अधिकारी से बोले, 'इसे ही नहीं बल्कि सारे किसानों को छोड़ दो।' अधिकारी बोला, 'ऐसा नहीं हो सकता। सरकारी काम में बाधा डालने पर इनके साथ ही मुझे आपको भी दरबार में हाजिर करना पड़ेगा।' अन्त में हुआ भी यही।

राजाज्ञा की अवहेलना देखकर पेशवा माधवराव बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रुद्ध हुए और बोले, 'इस अपराध में आपको भी मुझे दण्डित करना पड़ेगा। क्या यह आपको मालूम है ?'

'श्रीमन्, भले ही मुझे दण्डित होना पड़े, किन्तु मेरा निवेदन भी सुनने की आप कृपा करें। हम आपकी प्रजा हैं। आपकी आज्ञा मानना हमारा कर्तव्य है। किन्तु प्रजा की हाजिरी किस स्थान पर अधिक उचित है, इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ तो सोचना ही चाहिए। यदि आज किसान फसल कटाई छोड़कर बेगार में जायँगे तो फसल का नुकसान होगा। इसका परिणाम जनता को अर्थात् राज्य को ही भोगना पड़ेगा। ये लोग आपके कितने आज्ञाकारी हैं, क्या यह आप जानना चाहते हैं ? बोलो भाइयो, मालिक के कार्य के लिए यदि तुम्हें बुलाया जायगा तो क्या तुम आओगे ?'

सभी ने एक स्वर से उत्तर दिया, 'हम जरूर आयेंगे और महाराज के लिए अपनी जान तक दे देंगे।'

राम शास्त्री पेशवा से बोले, 'देखा श्रीमान्, ये लोग आपके लिए प्राण तक समर्पित करने में नहीं हिचकेंगे। ऐसी प्रजा को बेगार में पकड़कर नाराज करना और फिर राज्य का नुकसान करना क्या यही इनकी स्वामिभक्ति का इनाम है ? फसल के मौके में इनको खेत में ही काम करना चाहिए। यही मुझे ठीक लगता है।'

पेशवा माधवराव सब समझ गये और बोले, 'इन सभी को मुक्त कर दो और जब तक फसल का काम चले तब तक किसी भी किसान को बेगार में न पकड़ा जाय।' थोड़े दिनों के बाद ही राज्य में यह घोषणा करवा दी गयी कि राज्य में बेगार प्रथा हमेशा के लिए बन्द की जाती है।

एक बार पेशवा माधवराव की पत्नी महारानी रमाबाई ने किसी पुण्यपर्व पर वस्त्र और आभूषण प्रदान किये। अपनी पत्नी को वस्त्राभूषणों से सज्जित देखकर राम शास्त्री को आश्चर्य हुआ। सारा वृत्तान्त सुनकर उन्होंने निश्चय किया की ऐसा दान राज्य के प्रधान न्यायाधीश के घर नहीं आना चाहिए, भले ही वह पेशवा के द्वारा दिया हुआ ही क्यों न हो। अतएव राम शास्त्री ने वे सभी वस्त्राभूषण लौटा दिये।

दुर्भाग्य से माधवराव क्षय रोग से ग्रस्त हो गये और थोड़े दिनों के बाद ही उनका देहान्त हो गया। पत्नी रमाबाई साथ में सती हो गई। माधवराव के निस्सन्तान देहान्त होने के कारण राज्य का वारिस छोटा भाई नारायणराव हुआ। नारायणराव के नाबालिग होने के कारण माधवराव का चाचा रघुनाथराव (राघोबा) राज्य का संरक्षक बना। वह एक वीर सेनानायक था। राघोबा की पत्नी आनन्दीबाई हद दर्जे की महत्त्वाकांक्षिणी थी। उसने बड़ी कोशिश से पति को समझाया कि नारायणराव को कैद करके पेशवा का पद स्वयं ले लो। इस योजना के अनुसार राघोबा के हस्ताक्षरों से अंकित यह हुक्मनामा जारी किया गया कि नारायणराव को गिरफ्तार किया जाय। किन्तु आनन्दीबाई ने मराठी शब्द 'धरावे' (गिरफ्तार किया जाय) के स्थान में 'मारावे' (मार डाला जाय) करके हुक्मनामा जारी कर दिया। यह बात मालूम होने पर भी राघोबा चुप्पी साध गया। अतएव नरायणराव की हत्या कर दी गयी और राघोबा पेशवा बन गया।

हत्या के समय नारायणराव की पत्नी गर्भवती थी। राम शास्त्री को जब पता चला कि नारायणराव की हत्या में रघुनाथराव (राघोबा) का हाथ है तब वह पेशवा से मिलने गये और बोले, 'श्रीमान्, आप पेशवा पद पर अधिष्ठित हों—इसमें मुझे आज तक कोई आपत्ति नहीं थी क्योंकि नियमानुसार आप ही राज्य के उत्तराधिकारी हैं, किन्तु प्राप्त प्रमाणों से पता चला है कि नारायणराव की हत्या में आप का हाथ है। इसलिए प्रधान न्यायाधीश के रूप में मैं आपका पेशवा के पद पर अधिष्ठित होना सहन नहीं कर सकता। कारण, पेशवा पद पर हत्यारे को अभिषिक्त करना न्याय-देवता का अपमान है। इसलिए आपको मेरा आदेश है कि पेशवा-पद को प्राप्त करने के सारे प्रयत्न आपको बन्द कर देने चाहिए। बात यहीं समाप्त नहीं होती। हत्यारे के लिए न्याय-विधान एक ही दण्ड देता है। इसलिए नारायणराव की हत्या के लिए मैं आपको आत्महत्या के प्रायश्चित का दण्ड देता हूँ।'

आज्ञा तो दे दी, किन्तु उत्तराधिकारी पेशवा को कौन पकड़े या आत्महत्या के लिए बाध्य करे ? कारण कि उस समय राघोबा का आतंक चारों ओर छाया हुआ था। इसलिए राम शास्त्री ने निश्चय किया कि जब तक रघुनाथराव पेशवा पद पर रहेगा तब तक मैं पूना शहर का पानी भी नही पीऊँगा। यह कहकर वे तत्काल ही अपने गाँव माहुली चले गये।

राम शास्त्री के जाते ही राज्य में खलबली मच गयी। दरबार में भी खटपट शुरू हो गयी। कुछ दिनों बाद जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पना

श्री रामस्वरूप खरे, एम० ए०, बी० एड०, साहित्यरत्न

कल्पना, कवि की सहज अनुगामिनी !
पीर को देती सुला वह प्यार से,
आ नहीं पाती उदासी भूलकर।
श्रान्त होता जब मनुज जग-भार से,
मुग्ध करती पंथ के सब शूल हर ॥
स्वयं संघर्षों अभावों में पली,
विहँसती रहती विजन कलि-सी मुखर।
सत्य से जाती रही हरदम छली,
उर्मि-सी चंचल, मृदुल भोली सुधर।
किन्तु फिर भी वह रही मन-भावनी !
कल्पना, कवि की सहज अनुगामिनी !!

कौन कहता, है अमूर्त विदेह वह ?
जब कि अनगिन बार मुझसे आ मिली।
देखती जब वह अकेला-सा व्यथित,
हिय-गगन में नव-उषा-सी आ खिली ॥
दूर भी रहती, बहुत ही पास भी,
किन्तु उसके सौध को हम पा नहीं सकते ?
बिन किये ही ध्यान, अर्चन, बन्दना,
गीत सुन्दर विश्व में कवि गा नहीं सकते !!

रूठ भी जाती विहँस, अभिमानिनी !
कल्पना, कवि की सहज अनुगामिनी !!

पा लिया सुस्पर्श जिसने मधुर-सा,
अमर होकर वह उसी में खो गया।
पा गया जो साथ अनजाने वही
एक ही क्षण में किसी का हो गया ॥
हर खुशी ब्याही अभागे अश्रु से,
प्रीति की डोली उठा तू ले चली।
कल्पना ! तेरी कठिन आराधना,
कौन कवि, जिसके न उर में तू पली ॥

चिर - कुमारी भी अखण्ड सुहागिनी !
कल्पना, कवि की सहज अनुगामिनी !!

नारायणराव की विधवा ने पुत्र को जन्म दिया तब 'बारह भाइयों' के मंत्रिमंडल ने रघुनाथराव को पेशवा के पद से हटाकर राज्य के वारिस शिशु के प्रतिनिधि के रूप में राज्य-शासन अपने हाथ में ले लिया और राम शास्त्री को पास बुलाकर न्यायाधीश के पद पर फिर से प्रतिष्ठित कर दिया।

राम शास्त्री का वेतन आधुनिक भ्रष्टाचारी मंत्रियों की आँखें खोलनेवाला है। इतिहासकारों ने तत्कालीन सामग्री को खोजकर बताया है कि राम शास्त्री की पहली नियुक्ति के बाद डेढ़ मास का वेतन कुल ४७ रुपये मिला था। वर्ष के अंत में कुल १४४१ रुपये मिले। अपनी आयु के अन्त तक राम शास्त्री प्रधान न्यायाधीश के पद पर रहे। तब तक आपको कुल वेतन ५५९६८ (पचपन हजार नौ सौ अड़सठ) रुपये मिला था। यह लगभग १२० रु० प्रतिमास होता है जब कि राज्य की आय ३० करोड़ रुपये वार्षिक थी।

२५ अक्तूबर १७८९ ई० को इस महापुरुष का देहान्त हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललित निबंध

बुद्धि का व्यापार

श्री वि० स० खांडेकर

(मराठी से अनुवादक—श्री रा० र० सर्वटे)

बाग में गुलाब पर नई कली देखते ही छोटे बालक को अथवा आकाश में किसी नये तारे को उदय होते देखकर ज्योतिर्विद को जो आनंद होता है वही किसी नये यंत्र की खोज का समाचार पढ़ने पर मुझे होता है। संभव है कि अनेक लोगों को यंत्र के प्रति मेरा यह प्रेम अंधा प्रतीत हो। परन्तु जब मैं ऐसी दुनिया का चित्र अपनी आँखों के सामने मूर्त्त करता हूँ जिसने सारे यंत्रों को देशनिकाला दे दिया है तब मुझे रेतीले मैदान की याद हो आती है। उस रेतीले मैदान में फूलों के बाग खिलाने का सिर्फ यंत्र ही कर सकते हैं—उन्हींमें वह शक्ति है ऐसा मैं सोचता हूँ। पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की मानव की सदिच्छा तभी सफल होगी जब वह अपने दो मित्रों का साथ कभी न छोड़े, ऐसा मेरा ख्याल है। वे दो मित्र हैं—आत्मा और यंत्र।

आज सुबह समाचार-पत्र पढ़ते समय 'एक नया यंत्र' इस शीर्षक पर मेरी दृष्टि बड़े कुतूहल से गड़ गयी। इसका कारण अब अलग से बताने की क्या जरूरत ? बड़ी दिल-चस्पी से मैं वह मजमून पढ़ने लगा। ज्वार के समय समुद्र की लहरें जिस तरह एक-एक क्षण में अधिक जोर से उमड़ती हैं उसी तरह मेरा आनंद बढ़ने लगा। वह सिर्फ नया यंत्र ही न था। वह ऐसा यंत्र था जिसका अभाव आज कई सालों से मुझे बड़ी तीव्रता से खटक रहा था। डाक्टर हडसन होगलेंड और डाक्टर ग्रेगरी पिक्स नामक दो विद्वानों ने उस यंत्र की खोज की थी। मैंने कभी उनका मुँह नहीं देखा था और इस समाचार के साथ उनके फोटो भी नहीं छपे थे। मन में यह निश्चय करके कि अपनी आगामी एक पुस्तक इन दो डाक्टरों को कृतज्ञता-पूर्वक अर्पित करूँगा, मैं वह समाचार पुनः पढ़ने लगा।

मानवी बुद्धि कितनी सूक्ष्म और विशाल है। मनुष्य की थकावट को नाप सकनेवाला अद्‌भुत यंत्र भी उसने खोज निकाला। मैंने सोचा कि यह यंत्र जितनी जल्दी हिन्दुस्तान में आये, उतना ही अच्छा होगा। अगर वह यंत्र थर्मामीटर की तरह एक छोटी नली हो तब तो क्या बात है। मेरी चिरवांछित आशा पूरी हो जायगी। सफर में भी हम इस यंत्र को अपने पास रख सकेंगे और फिर परसों जिस तरह मुझ पर गुजरी थी, वह अगर फिर और कहीं गुजरने लगे, तो उसे एकदम रोका जा सकेगा।

परसों बड़ी कठिनाई से साढ़े तीन बजे, पूना स्टेशन पर पहुँचकर, मैंने बंबई की एक्सप्रेस पकड़ी थी। मेरे शरीर से पसीने की धाराएँ बह रही थीं। कुली ने जल्दी में सामान नीचे ही रख दिया था। इसलिए पैर सिकोड़कर बैठे बगैर मेरे लिए दूसरा चारा ही न था। नजदीक की सीट पर बैठे गुजराती भाई के भारीभरकम शरीर की, वैसे मैंने बड़ी सराहना की होती लेकिन अनजाने, उसने मेरी आधी सीट पर कब्जा जमा लिया था। इसलिए पूँजी-पति गरीबों का शोषण किस तरह करते हैं, इसकी नई बानगी मुझे चखने को मिल रही थी। उससे मुँह कुछ कड़ुआ हो गया था। इस कड़ुआपन को हटाने के लिए मैं खिड़की से बाहर देख रहा था। उसी समय एक महाशय मेरे सामने आकर खड़े हो गये।

"आप खांडेकर ही हैं न ?" मेरे मन में आया कि उनके इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' कहकर दे दूँ। लेकिन ऐसे प्रश्नों से मनुष्य का अहंकार जागृत हो जाने के कारण हो अथवा यह प्रतीत हो जाने के कारण हो कि झूठ बोलने से यहाँ कोई लाभ न होगा, मनुष्य के मन का उत्तर उसकी जीभ से बहुधा आगे नहीं बढ़ता।

मेरे मुँह से यह निकलते ही कि "जी मैं खांडेकर हूँ" उन महाशय ने मुझ पर प्रश्नों की झड़ी लगा दी। मेरा विश्वास हो गया कि विधाता ने उड़ते हुए बम फेंकनेवाले लड़ाई जहाजों के कारखाने में ही उसकी जीभ बनवाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी। सुबह से मैं काम में लगा हुआ था। थक गया था। थकावट दूर करने के लिए मेरी बिल्कुल चुप बैठे रहने की इच्छा हो रही थी। लेकिन इन महाशय के तोपखाने से एक के बाद एक प्रश्न मेरे कानों पर आकर गिर रहे थे। धर्मराज को कुंठित करने के लिए असंख्य प्रश्न पूछनेवाला महाभारत का यक्ष, उस दिन, अगर हमारी गाड़ी में बैठा होता तो वह भी इन हजरत को तुरंत ही साष्टांग नमस्कार करता, इसमें मुझे रंच मात्र भी संदेह नहीं मालूम होता।

यदि उस समय मेरे पास यह थकावट नापने का यंत्र होता तो मेरा सफर काफी सुख का होता। मैं उस यंत्र को झट से अपने जेब से निकालता और अपने को लगाकर, चुपचाप उस जिह्वा बहादुर के सामने पढ़ने के लिए कुछ रख देता और फिर....

मुझे इसकी याद हो आई और समाचार-पत्र के उस समाचार की ओर कृतज्ञता से देखते हुए मैंने संतोष की एक साँस छोड़ी। कैद की मियाद जब समाप्त होने पर होती है तब कैदी को जो खुशी होती है, उसीका इस समय मैं अनुभव करने लगा। मैंने मन में कहा—युद्ध समाप्त होते ही ये यंत्र हमारे देश में आने लगेंगे। हिन्दुस्तान में आनेवाले ऐसे पहले यंत्र का आर्डर मैं आज ही क्यों न दर्ज करा दूँ जिससे मुझे व्याख्यान के लिए निमंत्रण देने आनेवाले हर तरह के उत्सव-संचालकों से लेकर व्यर्थ की बकबक करने के लिए मेरे घर आनेवाले निठल्ले विद्वानों तक, अनेक मनुष्यों के चक्रव्यूह में फँसकर मेरा जो आज-कल दम घुट जाता है, उससे सन् १९४५ में या कम-से-कम १९४६ में मेरा छुटकारा हो जायगा। यह यंत्र यदि मुझे मिल जाय तो शायद मेरी जिंदगी पाँच-दस साल बढ़ भी जायगी। कौन कह सकता है कि नहीं बढ़ेगी। मानव जाति पर इतने उपकार करनेवाले उन दो डाक्टर अन्वेषकों को आज ही बधाई का पत्र भेजना अपना कर्त्तव्य है।

इस कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए जब मैं बैठा, तब जरूर यह उत्साह एकदम कम हो गया। एक शंका मेरे मन को रह-रहकर व्याकुल करने लगी। इस यंत्र को ईजाद करनेवाले अन्वेषकों के कर्तृत्व और बुद्धिमत्ता के प्रति जो आदर था, वह अभी भी मेरे हृदय में बना था। लेकिन कोई मेरे हृदय के भीतर से आर्त स्वर में कह रहा था—इस यंत्र का उपयोग किसे होनेवाला है? अमीरों को ही न? नये बँगले, नयी दवाएं, नई सवारियाँ, नये श्रृंगार के साधन, नये मनोरंजन के साधन, नये यंत्र, जो जो नई चीजें दुनिया में उत्पन्न हो रही हैं, वे सब क्या कभी उन लोगों को मिलती हैं जिन्हें उनकी अत्यंत आवश्यकता है?

मेरी आँखों के सामने मजदूरों की असंख्य चालें मूर्त्त हो उठीं। शाम को थके-माँदे घर लौटनेवाले लाखों परिश्रमी लोगों के चेहरे मुझे नजर आने लगे। मेरे मन में आया—रेडियो का सच्चा आनंद यदि कोई ले सकता है तो मशीनों की अखंड घरघराहट से जिनके कान ऊब उठे हैं और काम की चक्की में जिनके शरीर घिस गये हैं, वे अभागे मजदूर ही ले सकते हैं। लेकिन उन बेचारों को क्या कभी स्वप्न में भी रेडियो देखने को मिलता है!

शाम को रेडियो पर जो कार्य-क्रम होते हैं उन्हें सुनने वाले लोग दूसरे ही हैं। सुबह से जिन्हें यह फिक्र होती है कि आज का दिन कैसे काटें, वे निठल्ले अमीर नये कोच पर बैठे हुए रेडियो से प्रसारित प्रेम संगीत सुनने में तल्लीन हो जाते हैं और अन्त में, उसी उन्माद में रात की रंग-रेलियों के सुख-सपने सँजोने लगते हैं। रेडियो का अन्वेषण करनेवाली अलौकिक बुद्धि के आगे हमारा मस्तक हमेशा नत होता है। रेडियो के कारण दुनिया के भिन्न-भिन्न हिस्से अत्यंत निकट आ गये इसमें जरा भी सन्देह नहीं। लेकिन ऊपर से एक होती दिखनेवाली इस दुनिया के अन्तरंग के पहले से ही जो दो विलक्षण टुकड़े हो गये हैं, उन्हें जोड़ने की शक्ति रेडियो में कहाँ है? रेडियो हमेशा अमीरों के काम का होता है, अपनी मुट्ठी में लक्ष्मी को बंद करने की इच्छा करनेवाले करोड़ों व्यापारियों के काम का होता है, मानव जाति को युद्ध की खाई में धकेल देने वाले गोअरिंग और गोबेल्स जैसे नर-राक्षस भी उससे भरपूर लाभ उठा सकते हैं। लेकिन दिन भर के कठिन परिश्रम से ऊबे हुए गरीबों को, लक्ष्मी से मुख मोड़कर दुनिया के सुख को बढ़ाने में लगे हुए विद्वानों को, अथवा मानव-धर्म का प्रचार करके युद्धों को बंद कर देने की इच्छा रखनेवाले छोटे-बड़े गांधियों को भी रेडियो से अभी तक कितना लाभ हुआ है? रेडियो के उस असाधारण अन्वेषक की बुद्धि अनजाने बिक गयी है। सत्ताधारियों और संपत्तिवानों ने दुनिया के बाजार में उसे निस्संकोच खरीद लिया है।

मेरे मन में आया—थकावट को नापनेवाले इस नये यंत्र की भी आज की दुनिया में यही दशा होगी। सुबह सात बजे सड़क के किनारे, सिरहाने खाली टोकनी रखकर, सोये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए कुली की थकान को, जो उसे भूख के कारण महसूस हो रही है, यह यंत्र कभी न नापेगा। रात पाली करके सुबह बिलकुल शिथिल हुए मजदूरों के शरीरों को, उसका कभी स्पर्श न होगा। स्टूडियो में अभिनेत्री के चेहरे को रँगने के बाद, यह देखने के लिए कि उसे कितनी थकावट आ गयी है, उन यंत्रों का हर घड़ी अवश्य उपयोग किया जायगा। लेकिन सुबह से शाम तक प्रखर दीयों की उष्णता में भुनकर निकले हुए वहाँके नौकरों की और इस यंत्र की, जीवन में, एक बार भी भेंट न होगी। गर्दन झुकाये दिन भर कलम घसीटते रहनेवाले क्लर्कों अथवा पेट के लिए दिन-रात तोते की तरह विद्यार्थियों से रटवानेवाले शिक्षकों का, इस यंत्र से मृत्युपर्यन्त संबंध न आयगा। रात को दो-तीन बजे तक चलनेवाली मादक दावतों के धनिकों को आनेवाली थकावट अथवा रेस के लिए आवश्यक होनेवाले लम्बे सफरों में सिनेमा के अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों को आनेवाली थकान को नापना ही इस यंत्र का इस दुनिया में काम रहेगा। बहुत हुआ, तो बड़े-बड़े प्रसूतिका-गृहों और नर्सिंग होमों का संचालन करनेवाले डाक्टर इस यंत्र को प्रसूता अथवा रोगी को दिन में दस बार लगाकर अपने बिल की रकम को अच्छी तरह बढ़ायेंगे।

जिन अन्वेषकों ने इस यंत्र की खोज की है उनकी इच्छा यही होगी कि वह समस्त मानव जाति के लिए उपयोगी हो।

लेकिन—

आज की दुनिया में क्या यह संभव है ?

नहीं! आज की दुनिया बुद्धिमानों की नहीं, सज्जनों की नहीं, अन्वेषकों की नहीं, सहृदयों की नहीं; वह संपत्तिवानों और सत्ताधारियों की है। ये लोग पंडितों की बुद्धि खरीद लेते हैं, जनता की शक्ति खरीद लेते हैं, सत्य, नीति, आत्मा, सब कुछ खरीद सकते हैं।

वेश्यालयों के स्वामी गरीब किंतु सुन्दर लड़कियाँ प्राप्त करके जिस तरह उनके तारुण्य और लावण्य पर आजीवन मौज में करते हैं, उसी तरह ये लोग भी मानवता की बुद्धि और शक्ति की खरीद के लिए काला-बाजार लगाकर जीवन-भर स्वर्ग-सुख का उपभोग कर सकते हैं। वे दिन-रात इस कोशिश में व्यस्त रहते हैं कि समाज की रीति इसी प्रकार की बनी रहे जिससे हमारे रंगीन विलासों और स्वार्थी महत्त्वाकांक्षाओं को धक्का न पहुँचे।

उन दो डाक्टरों को बधाई का पत्र भेजने का विचार अब भी मेरे मन में चक्कर काट रहा था। लेकिन अब मैं सोचने लगा—उन्हें सिर्फ बधाई का पत्र लिखना भूल होगी। उस पत्र में कुछ इस तरह लिखना चाहिए कि जिस खोज का उपयोग सारी दुनिया को नहीं हो सकता उस खोज को करने का आनंद क्षणभंगुर है। बुद्धि को बेचना शील बेचने से भी अधिक अमंगल बात है। शास्त्र और विज्ञान यदि सत्ता की रक्षा करते हैं तो यह पाप है—उन्हें हमेशा मानव-धर्म का ही पक्ष लेना चाहिए।

जिस दिन मनुष्यों की बुद्धि दुनिया के बाजार में किसी गुलाम की तरह अपने आपको बिकवा लेने से इन्कार कर देगी उसी दिन यह बाजार मंदिर की तरह मंगलमय हो जायगा।

क्या वह दिन जल्दी आयेगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखों का डाक्टर

श्री जैजैराम टण्डन

युगल नयनों का करके योग सिद्ध करते हो दो दो चार।
हृदय के भाव रहित निर्लिप्त अकेली आँखों का संसार॥

आँख की काया से है काम
और छाया से भी है काम
तुम्हें क्या मतलब उससे भला,
आँख की माया जिसका नाम
तुम्हारा आँखों से व्यापार
देखते हो उनका व्यवहार
किनारे से ही थाह टटोल
नहीं जाते हो तुम उस पार

युगल नयनों का करके योग सिद्ध करते हो दो दो चार।
हृदय के भाव रहित निर्लिप्त अकेली आँखों का संसार॥

समाता जिस तिल में संसार
आँख के तिल की करके जाँच
तिलों के पासँग तोल निकाल
बिठाते आर पार के काँच
बराबर कर पल्लों के भार
हमेशा ही दो औ दो चार
जहाँ कुछ तीन पाँच के मेल
वहीं हैं आँखों के बीमार
बिगड़ते आँखों के संसार
अकेली आँखों का संसार

युगल नयनों का करके योग सिद्ध करते हो दो दो चार।
हृदय के भाव रहित निर्लिप्त अकेली आँखों का संसार॥

आँख में जब आता कुछ फेर
दिखाते आँख तुम्हें तब लोग
आँख की तह में आँखें डाल
देख लेते आँखों के रोग
धुंध आँखों के नशे उतार
उतरते हुए खुमार उतार
साफ खुल पड़ते मोती बंद
टूटती परदे की दीवार
सुधरते आँखों के संसार
अकेली आँखों का संसार

युगल नयनों का करके योग सिद्ध करते हो दो दो चार।
हृदय के भाव रहित निर्लिप्त अकेली आँखों का संसार॥

साँझ के उगते तारे सदृश
आश वाली चमकीली आँख
दिन उगे का सा फीका चाँद
निराशा की पथरीली आँख
कदाचित् तुम सकते पहचान
दुखी धनिकों की सीली आँख
मगर क्या देखी तुमने कभी
किसी शायर की गीली आँख
देखते तुम बस रेखा रश्मि
बहे चाहे आँसू की धार
अकेली आँखों का संसार

युगल नयनों का करके योग सिद्ध करते हो दो दो चार।
हृदय के भाव रहित निर्लिप्त अकेली आँखों का संसार॥

तुम्हारे ग्रंथों में क्या लिखा
तुम्हारे यंत्रों की क्या खोज
तुम्हारे मंत्रों में क्या असर
तुम्हारे तंत्रों में क्या ओज
जमाने की बढ़ती रफ्तार
आज की जीत बने कल हार
जहाँ थी कल मंजिल की इति
वहीं अथ आज अग्र विस्तार
है आगे कौन ? है पीछे कौन ?
कि हैं बीमार ? कि हैं उपचार ?

युगल नयनों का करके योग सिद्ध करते हो दो दो चार।
हृदय के भाव रहित निर्लिप्त अकेली आँखों का संसार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

फुर्सत का जीवन

श्री नरेन्द्र छाबड़ा

उनकी सीढ़ियों में टक-टक की आवाज़ होती तो मैं झट समझ जाती कि मिसेज़ पाठक उतर रही हैं। उस दिन भी सजधज कर निकली थीं। शायद सिनेमा जाने का प्रोग्राम था।

लम्बे-ऊँचे कद की, गठे बदन वाली। रंग उनका गेहुँआ है। हमेशा की तरह आज भी घने बालों में सीधी माँग निकाले, गोल-सा जूड़ा बाँधे, और जूड़े में एक ताज़ा लाल गुलाब का फूल, जो संभवतः फ़्रिज में रख कर ताज़ा रखा गया होगा, खोंसा हुआ था। गुलाबी रंग की नायलोन की साड़ी और टाईट-फिट, लो-नैक का छोटी आस्तीन का मैचिंग ब्लाउज़ पहने थीं और अपने छोटे लड़के को गोद में लिये उतर रही थीं।

नीचे उनके पति मिस्टर पाठक, जो करीबन उनसे मिलती-जुलती ऊँचाई और गठे शरीर के हैं, उनका इन्तज़ार कर रहे थे, और दो-तीन बार हार्न दे चुके थे--'भई, जल्दी करो न। तुम तो बहुत देर कर रही हो। शो का वक्त हो गया है। हम हैं कि अभी तक घर से ही नहीं निकले।' वह स्कूटर का इंजिन स्टार्ट कर सीट पर सवार हो चुके थे।

मिसेज़ पाठक बच्चे को गोद में लेकर हल्का-सा जम्प लेकर स्कूटर के पीछे बैठ गयीं।

× × ×

उनकी सीढ़ियों में टक-टक होने और पाठक साहब के हार्न बजाने पर पापा घर पर हों तो अक्सर कमरे की खिड़की के पास आ खड़े होते, जहाँ से उनका घर साफ दिखाई पड़ता था। उन्हें मिसेज़ पाठक को निहारना बहुत अच्छा लगता।

उनके पड़ौस में आये हमें करीब एक साल हो चुका था, पर कभी बातचीत का अवसर नहीं बना। यह अमीरों का मुहल्ला कहलाता है। आपस में लोग कम ही वास्ता रखते हैं। सभी अपने में मस्त रहने का दिखावा करते हैं, पर दूसरे के घर में क्या हो रहा है, इसकी पूरी खबर रखते हैं, नौकरों-महरियों की मार्फत और अपने पर्दों की ओट-से ताक-झाँक कर अपने को पूरी तरह दूसरों के बारे में परिचित रखते हैं। फिर भी यह दिखलावा करेंगे कि दूसरों के मामलों में दखल देने की हमारी कतई आदत नहीं। किसी को किसी की परवाह नहीं, किसी से हमदर्दी और दिलचस्पी नहीं। अपने ही मेल-जोल के लोगों और रिश्तेदोरों का आना-जाना चलता रहेगा और उनमें 'बिजी' रहने और 'फुर्सत न मिलने' के दिखलावे की नकाब डाले फिरेंगे। सभी के मकान दो या तीन मंज़िले हैं। एक मंज़िल में स्वयं रह रहे होंगे तो बाकी बिल्डिंग किराये पर उठा रखी होगी। बस, अपने-अपने किरायेदारों से हैलो-हैलो या 'क्या हालचाल हैं जी ? '.....सब ठीक ठाक है जी !' ठेठ पंजाबी लहज़ा होता बातचीत का, जिसमें बनावटीपन का विशेष पुट होता। बस इससे आगे कोई सरोकार नहीं।

कोई किसी के सुख-दुःख का साथी नहीं। अच्छा किराया अदा करने वाले किरायेदार पाकर अच्छी आमदनी होने से सभी मौज में रहते हैं। अच्छी आय है, नौकर चाकर रखे है, घर के काम-काज के लिए। स्त्रियों को दिन भर फुर्सत ही फुर्सत है। एक दूसरे से न बोलते हुए भी एक दूसरे को अपने रूप, मेकअप की चीज़ों, कपड़ों और बालों के बनावटी 'घोंसलों' से प्रभावित करने की चेष्टा रहती है। जो नौकरी-पेशा लोग यहाँ रहते हैं, उनके बारे में उन्हें यह चिन्ता रहती है कि पड़ोस में रहने वाले कितना किराया देते हैं, क्या वेतन पाते हैं, क्या ओहदा है, हमारे कितने काम आ सकते हैं। कितने कमरे हैं उनके पास, कितने बच्चे हैं, किस स्कूल में पढ़ते हैं, वगैरह-वगैरह। एक झूठी दुनिया और शान में रहकर बस अपने में जी रहे हैं।

मेरे पापा अच्छे कहानीकार और लेखक हैं। लेखक होने के नाते उन्होंने जिन्दगी को बहुत निकट से देखा है, भोगा है, झेला है। उनका कलात्मक कल्पनाशील मस्तिष्क हमेशा कलापूर्ण जीवन और सौंदर्य के पीछे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागता है। यही बात है कि वह मिसेज़ पाठक की प्रशंसा करते हैं। जब भी निकलते देखते तब कह बैठते, 'देखो मीना बेटी, क्या सौंदर्य है, क्या सलीका है कपड़े पहनने का, मेकअप का। साधारण सुन्दर वेश-भूषा में भी सौंदर्य निखरा पड़ता है। चाल है कि मोरनी जैसी। बोलती है तो फूल झड़ते हैं .....।'

हमारे घर के साथ ही उनके घर की दीवार लगी है। उनका बेडरूम हमारे बरसाती सैट के अकेले कमरे के बिल्कुल सामने पड़ता है। पर्दा हटाने पर एक दूसरे का चलना-फिरना स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पापा जब उन्हें अपनी घर-गृहस्थी में मगन देखते तब उनकी तारीफ करते न थकते। 'क्या घर सँभालती हैं, कैसी सुघड़ औरत हैं। बच्चों को पहनाने, सँवारने, सँभालने का क्या सलीका है। आर्टिस्ट मालूम पड़ती हैं। पति तो इंजीनियर और पत्नी कलाकार! वाह! क्या कंबीनेशन है!'

उनके दिमाग में तो उनकी एक अच्छी गृहणी की तस्वीर बन चुकी थी। वे हरदम कहते, 'मीना बेटी, तुम भी अपने घर में रहन-सहन इसके जैसा रखना। मैं चाहता हूँ कि मेरी बेटी में आज भी न कृत्रिमता, झूठा दिखावा, दम्भ हो, और न पुरानी दकियानूसी आदतें हों। वह इन सबसे ऊपर उठे....उसका रहन-सहन सधारण, पर कला-पूर्ण हो।' वह यह कहते-कहते खो-से जाते और न जाने क्या-क्या सोच जाते....।

इतनी ही बात हो पाती कि माँ बीच में बोल उठतीं, 'नश्ता तैयार है,' या खाने का वक्त होता तो कह उठतीं, 'खाना तैयार है, चलिये छोड़िये इन सुघड़ताओं को।' और बातचीत का क्रम बीच में टूट जाता। बात बीच में रह जाती और हम लोग खाने की मेज़ पर पहुँच जाते। माँ मेरी कोई दकियानूस, अनपढ़, गँवार नहीं। बी० ए० पास हैं। सितार बहुत अच्छा बजाती हैं। उन्हें कहानियाँ लिखने का भी शौक है, पर वह लोगों से, समाज से भय खाती हैं। लोगों से मिलने से कतराती हैं। उन्हें पता है कि ये लोग पति का ओहदा और तनख्वाह और मकान के कमरों और किराये पूछने के सिवा और क्या बात करेंगी। आज भी हमारे समाज में लेखक होना कोई ओहदा नहीं समझा जाता। असली चीज़ तो कार, स्कूटर, फ्रिज, टी० वी०, विदेशी कपड़े, साज-शृंगार और काला धन है। इन बातों से माँ को बड़ी घबराहट होती है।

पर न जाने पापा को मिसेज़ पाठक क्यों इतनी प्रभावित कर गईं। वैसे माँ से अक्सर कहते, 'भई, पास-पड़ौस से थोड़ा-बहुत मिलना-जुलना चाहिये....अच्छे लोग हैं ....पढ़े-लिखे हैं....सभ्य और शिष्ट है। चुप रहने की अपनी यह दकियानूसी आदत छोड़ दो। हमारा यहाँ कौन है? भगवान् न करें यदि सुख-दुःख हो जाय तो उन्हें ही आवाज दी जा सकती है।....मिसेज़ पाठक बड़ी सुशील और भली औरत लगती हैं। इनसे कभी समय निकालकर मिल आओ....।'

ऐसी बात नहीं कि माँ किसी से मिलती-जुलती ही नहीं। जो लोग उन्हें पसन्द आते, उनसे माँ दोस्ती खूब निबाहती हैं। पर सवाल अब मिसेज़ पाठक से मिलने का था। पूरा वर्ष बीत गया था उनके पड़ोस में आये, लेकिन माँ की उनसे नमस्ते के आगे दूसरी कोई बात न हो पायी थी। समय बड़ी तेज़ी से बीत रहा था।

मैं उस वर्ष हायर सेकेंड्री की परीक्षा में उत्तीर्ण हुई थी और अब कालेज जाने की तैयारी में थी। रोज घर में विभिन्न कालिजों के बारे में, ऐडमिशन के बारे में चर्चा होती। छुट्टियाँ चल रही थीं। पढ़ाई का ज़ोर कम होने से माँ के काम में हाथ बँटाती थी।

सुबह का समय था। नीचे साईकिल पर सब्ज़ी बेचने वाले ने आवाज दी। माँ बाथरूम में थीं। टीनू को गोद में लिये आज मैं सब्जी लेने नीचे उतर आयी। मिसेज़ पाठक का दस साल का अनूप भी नीचे उतर आया, सब्जी लेने। मिसेज़ पाठक ऊपर बरामदे में खड़ी सब्ज़ी वाले को आर्डर दे रही थीं, 'एक पाव करेला, आधा किलो भिंडी, दो सौ ग्राम टमाटर, ककड़ी, हरी मिर्च, धनिया....।'

अनूप ने हाथ बढ़ाकर टीनू को मुझसे ले लिया और गोद में उठाकर अपनी सीढ़ियों की ओर लपका, यह कहते हुए, 'दीदी, आप लोग तो कभी आते ही नहीं हमारे यहाँ। अब चलिये न! मैं टीनू को नहीं दूँगा। यह हमारे छोटे सन्नी से खेलेगा....।'

ऊपर बाल्कनी से मिसेज़ पाठक भी बोलीं, 'आओ न मीना।....पता चला है कि तुम पास हो गयी हो। कौन सा कालेज ज्वाइन कर रही हो?....आ जाओ न थोड़ी देर ऊपर, चार पाँच मिनट के लिए ही सही....।'

'नहीं आँटी प्लीज़। सुबह का समय घर के काम-काज का है। माँ नहा रही हैं। मुझे सब्ज़ी ऊपर पहुँचानी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापा को नौ बजे घर से जाना है खाना खा कर....।' मैंने इतनी सारी कैफियत दे डाली।

लेकिन उनके बात दोहराने पर और शिष्टाचार के नाते और यह भी सोचकर कि पापा इन्हें इतना 'एडमाएर' (admire) करते है, क्यों न पाँच मिनट बात कर लूँ। ऐसे ऐसे ही पहचान बढ़ेगी। फिर एक दिन माँ को भी पकड़ लाऊंगी। मैं सब्जी की टोकरी उठाये उनकी सीढ़ियाँ चढ़ गई। दरवाजा खोलते ही मिसेज़ पाठक बड़े तपाक से बोलीं, 'आओ मीना। आप लोग तो कभी आते ही नहीं।'

'माँ घर के कामों में और मैं अपनी पढ़ाई में लगी रहती हूँ....बस घर से निकलना ही नहीं हो पाता। कब से....'

'तुम्हारे पास कितने कमरों की 'बरसाती' है?' मेरी बात पूरी होने से पूर्व ही प्रश्न बरसा, और फिर तो प्रश्नों की बौछार आ गयी।

'किताना किराया देते हो?'

'किचन कितना बड़ा है?'

'मकान-मालिक कैसे हैं? कौन हैं? हमारे वाले से तो अच्छे दिखते हैं।'

'हमारे पास तो एक कमरे वाला बरसाती सेट है और किराया १५० रु० महीना है।' मैंने जवाब दिया। 'और.....'

'हाँ, हमारे ऊपर 'बरसाती' में जो मिसेज शाह रहती हैं उनके पास तो दो छोटे-छोटे कमरे हैं।' मिसेज़ पाठक ने पुनः मेरी बात काट डाली। 'किचन तो उनका बहुत छोटा है। बस एक ही आदमी खड़ा हो सकता है उसमें। पर किराया २२५ रु० महीना है। दिल्ली शहर है। बड़ा शहर है न, राजधानी है न। यहाँ मकानों की तंगी है न.....(फुसफुसाकर) यहाँ मकान-मालिक जो जी में आये किराये माँगते हैं..... और जब चाहें खाली कराने को तंग करने लगते हैं, और नये किरायेदार को किराया बढ़ा कर मकान देते हैं। देखो न, हम इस फ्लैट का ५०० रु० किराया दे रहे हैं। चार कमरों का फ्लैट है, फिर भी ये लोग खुश नहीं। मकान-मालकिन कहती है कि 'कोयला ऊपर मत तोड़ो, चटनी-दाल मत पीसो.....सीढ़ियों को सर्फ डाल कर धुलवाया करो।.....'

'हाँ आँटी, दिल्ली में आजकल मकान मिल जाय, यही गनीमत है। किराये की तो बात न पूछो.....'

'हाँऽऽजी! किराये की तो भली पूछी। किराये तो 'शूट' कर रहे हैं.....।'

'हमारे नीचे के फ्लैट का किराया भी चार सौ से पाँच सौ रुपये हो गया है, आँटी। कोई बड़ा आफिसर है शायद। हमसे तो बोलना भी पसन्द नहीं करता, क्योंकि हम 'बरसाती' में रहते हैं। वह अकेला ही रहता है पाँच कमरों में। वाह रे दिल्ली! एक कमरे में पाँच व्यक्ति और पाँच कमरों में एक व्यक्ति....।' मैं हँस दी।

'तुम्हारे मकान-मालिक तो तुम से अच्छी तरह बोलते हैं न?'

'हाँ, हम लोगों से तो ठीक तरह बोलते हैं। टीनू को भी प्यार कर देते हैं। आते-जाते इसे आवाज़ भी देते रहते हैं.....।'

'उनकी बहू के कुछ है या नहीं?' बीच में उनकी सास बोल उठीं! 'अरे.. वही रवि की बहू को! अरे.... वही मकान-मालिक का लड़का! अरे.....जब मैं पहली बार अलीगढ़ से यहाँ रहने आयी थी तब तो उसकी शादी हुई थी न। अभी कोई पिछले साल तो हुई थी.....अभी तक कुछ नहीं हुआ क्या?.....हमारी बहू को तो.....'

'मुझे तो यह सब पता नहीं, माँजी!' मैं बेचैन हो उठी।

'तुम्हारी बगल की किरायेदारनी के शायद बच्चा होने वाला है।.....परसों जब कार से उतर रही थीं तब मैंने देखा उसका पेट बढ़ा हुआ था.....।' मिसेज़ पाठक बोलीं।

'हमने कभी इन चीजों की ओर ध्यान नहीं दिया..... मुझे तो ऐसी कुछ समझ नहीं, आँटी!' मैंने जान छुड़ानी चाही।

'उनके 'हस्बंड' किस आफिस में हैं? क्या काम करते हैं? कितनी 'पे' मिलती है उन्हें?'

'एक दिन वह मेरी माँ से बात कर रही थी। शायद स्कूटर का बिजनैस करते हैं।'

'नये बेचते हैं या...'

'ये सब 'डिटेल्स' मुझे पता नहीं....! अच्छा आँटी, मैं अब चलूँ?' यह कह मैं सब्जी की टोकरी उठाकर खड़ी हो गयी।

'किसी दिन माँ को लेकर आओ न! दोपहर भर यहीं रहो। ऊपर तो बड़ी लू और गर्मी होगी। बरसाती रूम सैट है न, इसलिए।.. तुम लोग भी मीना, क्यों नहीं ज्यादा किराये वाला बड़ा 'सैट' ले लेते?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं कुढ़ गयी। बुरा तो बहुत लगा, पर चुप रही और गुस्सा और अपमान पी गयी। सहज होकर बोली, 'एक तो माँ को फुरसत नहीं मिलती, दूसरे गर्मियों के दिन हैं, दोपहर को घर अकेले नहीं छोड़ा जा सकता। सब ओर सुनसान हो जाता है। चोरी का डर रहता है। हमारे मकान-मालिक के फ्लैट के चौथे कमरे के किरायेदार मिस्टर गुलाटी की चोरी हो चुकी है। किसी को पता तक नहीं चला। वे लोग दोपहर को घर नहीं थे....।'

'हाँ, यहाँ तो हर कोई अपने में मस्त रहता है। तुम्हारे मकान में तो ऐसे कई किस्से हो चुके हैं। तुम्हारी मकान-मालकिन तो बड़ी अपने में ऐंठी रहती है। बड़ी नखरैल दिखती है। बड़ी घमंडी लगती है—उसे तो अपने बालों को तरह-तरह से संवारने और मेकअप से ही फुरसत नहीं....'

'तुम्हारे पापा क्या काम करते हैं?'

'वह तो लेखक, कहानीकार हैं!'

'वह तो लिखकर खूब कमा लेते होंगे। आजकल तो इन लोगों की बहुत कमाई है। यह भी एक प्रकार का 'बिजनैस' ही तो है, 'बिजनैस'। नाम का नाम और पैसा का पैसा।' बिजनैस शब्द पर उन्होंने विशेष जोर दिया।

मैंने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। बस यही बोली, 'अच्छा आँटी, मैं चलूँ। देर हो रही है। चलो टीनू, आओ।' और उसे उठाकर सीढ़ियों की और बढ़ने लगी।

तभी अनूप बोला, 'मम्मी, हमारा सन्नी तो टीनू से बड़ा है न?'

'टीनू कै साल का है?' मिसेज पाठक पूछने लगीं।

'डेढ़ साल का।' कह कर मैं मुड़ कर सीढ़ियों में उतरने लगी। उतरते हुए मैंने सुना।

'सन्नी दो का है। हमारा बेटा बड़ा है इससे।'

'पर मम्मी, टीनू लम्बा दिखता है सन्नी से।'

'इसके पापा भी तो लम्बे हैं।' मिसेज पाठक की आवाज थी। 'हाँ, मीना, फिर आना कभी। लो पाठक साहब भी सोकर उठ गये। अच्छा चलूँ, उनके लिए चाय का कप ले आऊँ....।'

'आँटी आप भी आइये कभी।' मैं आखिरी सीढ़ी उतर चुकी थी।

और आखिरी शब्द जो मेरे कानों में पड़े वे ये थे: 'मैं भी आऊँगी कभी....तुम्हारी 'बरसाती' में—हाँ, हाँ.... इतना बड़ा फ्लैट है हमारा। क्या करूँ सारा दिन बस यों ही घर कोनों में ही निकल जाता है। अच्छा आऊँगी ..।'

सीढ़ियाँ उतरने पर मैंने महसूस किया कि मेरा सिर चकरा रहा है। गोदी में टीनू को उठाये और दायें हाथ में सब्जी की टोकरी लिये अब अपनी सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मैं सोच रही थी कि न जान न पहचान और पन्द्रह मिनट भी मुलाकात में बातों का ऐसा ताँता, न किसी के सुख-दुःख से सरोकार, न किसी से हमदर्दी। बस, दूसरों के बारे में पूरी जानकारी लेना, अपने से तुलना करना, दूसरों से ईर्ष्या, अपने में बड़प्पन....फुर्सत में जी रही हैं, धन के बाहुल्य में लोट रही हैं, साधन-सम्पन्न हैं—हर वाक्य में 'हमारा बड़ा फ्लैट' और 'तुम्हारी बरसाती' अवश्य उचारती रही हैं। मानों 'फ्लैट' न हुआ सारे समाज की प्रतिष्ठा का चिह्न, तमगा ही यही है, जिसे लगाकर समाज में अपनी धूम मचाती हों....ओफ मेरा तो दिमाग चक्कर खा गया—समाज की ये सारी मान्यताएँ, आदर्श झूठे दिखने लगे।.... क्या यही झूठे दिखावे और भेदभाव हैं, जो आज की कथित 'सभ्य', 'सुसंस्कृत', 'बुर्जुआ' पीढ़ी कल की पीढ़ी के लिए तैयार कर रही है....।

घर पहुँचते ही पापा बड़े उत्साह से बोले, 'आज तो अपनी खास आँटी से मुलाकात करके आयी है। कैसी लगीं?'

'बहुत अच्छी, बहुत ही अच्छी!' मैंने चुस्की ली।

'उनकी बातों में लगता है बड़ा रस था, यह घर आना ही भूल गयी....।

'लाओ भई, मुझे तो सब्जी दो। मैं अपना काम करूँ।' माँ बीच में ही बोल पड़ीं।

....मजा आ गया 'न बात करने का! मैं न कहता था कि....'

'बस....बस पापा, रहने भी दीजिये'—पापा की बात मैंने काटी। 'हुँह, पापा बड़ा मजा आया इस सभ्य, सौम्य, कलामूर्ति महिला से मिलकर! आप सुनेंगे तो आपकी कल्पना की मूर्ति टूट-फूट जायगी। आपके 'इम्प्रैशन्स' बिखर-बिखर जायँगे।'

हमारे सारे वार्तालाप का ब्यौरा सुनने के बाद माँ तो हँस दीं और पापा ने बस अपना माथा ठोंक लिया।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

भारत में मुर्गी पालन–लेखक, डा० पी० एम० एम० नायडू, डाइरेक्टर पशुपालन विभाग आंध्रप्रदेश। प्रकाशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली—१। प्रधान सम्पादक, डा० रामगोपाल चतुर्वेदी। सरस्वती का आकार, पृष्ठ संख्या २८७, चित्रों की संख्या १४७, अनेक सारिणियाँ। मूल्य, दस रुपये।

इस देश में इधर कई वर्षों से भोजन के लिए अंडों का प्रयोग बहुत बढ़ गया है और उनकी माँग दिनों दिन बढ़ती जाती है। माँग की पूर्ति न होने के कारण उनका दाम भी अंधाधुंध बढ़ रहा हैं। इसलिए मुर्गी पालकर अंडे पैदा करना एक महत्त्वपूर्ण कुटीर उद्योग हो गया है। अंडों के अतिरिक्त लोग मुर्गी भी खाते हैं। किंतु मुर्गी-पालन अपेक्षाकृत कठिन काम है क्योंकि सावधानी से उनकी देख-रेख न करने से मुर्गियों में अनेक रोग पैदा हो जाते हैं, उनमें बहुत सी मर जाती हैं और वे ठीक तरह से पर्याप्त संख्या में अंडे भी नहीं देतीं। यह सब अवैज्ञानिक ढंग से मुर्गी-पालन करने और मुर्गीपालकों के अज्ञान और असावधानी से होता है। बहुत से मुर्गीपालक यह भी नहीं जानते कि किस जाति की मुर्गी पालना चाहिए जिससे वे अधिक अंडे प्राप्त कर सकें, उनके लिए कौन से खाद्य पदार्थ उपयोगी हैं, उन्हें कौन-कौन से रोग होते हैं और उन्हें उनसे कैसे बचाया जा सकता है। वास्तव में मुर्गीपालन आज एक विज्ञान हो गया है और उसकी जानकारी के बिना मुर्गी-पालकों को हानि उठानी पड़ती है। भारत में पौष्टिक भोजनों में मांसाहारियों के लिए अंडों का बड़ा महत्त्व है और इसीलिए उनकी माँग बढ़ती जा रही है। किंतु अनजानकारी और अवैज्ञानिक ढंग से मुर्गीपालन करने से इस देश के मुर्गी पालक उतनी संख्या में अंडे पैदा नहीं कर पाते जितने होने चाहिए। यह बात इस पुस्तक में दी हुई एक सारिणी से स्पष्ट हो जाती है। उसके अनुसार कुछ देशों की मुर्गियों और उनसे प्राप्त अंडों की संख्या देखने से स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

देश	मुर्गियों की संख्या	उत्पादित अंडों की संख्या
कनाडा	३८५ लाख	४२,००० लाख
अमरीका	९२९७ ,,	६,१७,०१० ,,
डेनमार्क	२४७ ,,	२१,५५० ,,
पश्चिमी जर्मनी	५१३ ,,	५५,००० ,,
ब्रिटेन	८८१ ,,	६२,००० ,,
भारत	९७० ,,	१७,००० ,,

इस सारिणी से स्पष्ट है कि कनाडा, डेनमार्क, पश्चिमी जर्मनी और ब्रिटेन की अपेक्षा भारत में मुर्गियों की संख्या अधिक होने पर भी अंडों का उत्पादन सबसे कम है। अतएव उनकी संख्या के अनुसार हमारी मुर्गियाँ सबसे कम अंडे देती हैं। भारत की जनसंख्या इन सब देशों से अधिक है, अतएव प्रति व्यक्ति इस देश के लोगों को वे सबसे कम प्राप्त हैं। यह स्थिति अत्यन्त असंतोषजनक है और इसे सुधारने की बड़ी आवश्यकता है।

इस दृष्टि से इस पुस्तक का बड़ा महत्त्व है। इसमें मुर्गी के अवयवों की बनावट से आरंभ कर, उसकी किस्मों का वर्णन करके मुर्गीपालन को वैज्ञानिक ढंग से करने, उनको उपयुक्त भोजन देने, रोगों से बचाने और रोग होने पर उनका इलाज करने, संकर मुर्गी पैदा करके अंडों का उत्पादन करने, मुर्गी और अंडों की देखभाल और रक्षा करने के संबंध में बड़ी सरल भाषा में बड़े वैज्ञानिक ढंग से सभी जानने योग्य बातें बतलायी गयी हैं। इस समय एक ओर देश में खाद्य समास्या का और दूसरी ओर बेरोज़गारी का संकट है। मुर्गीपालन यदि ठीक ढंग से किया जाय तो बड़ा लाभदायक कुटीर उद्योग है। अतएव हिन्दी में इस ढंग की सर्वांगपूर्ण जानकारी देनेवाली पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। यह पुस्तक उस अभाव की पूर्ति करती है। इसमें जो चित्र दिये गये हैं वे अलंकरण के लिए नहीं हैं। वे लिखी हुई बातों को समझाने और स्पष्ट करने के लिए हैं। जो लोग मुर्गीपालन में रुचि लेते हैं उनके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक एक वरदान है। हम कृषि अनुसंधान परिषद् को इस महत्त्वपूर्ण और उपयोगी प्रकाशन पर बधाई देते हैं। पुस्तक का आकार और प्रचुर संख्या में चित्रों को देखते हुए इसका मूल्य आज की पुस्तकों का मूल्य देखते हुए काफी कम है।

फार्म प्रबन्ध : नयी दिशाएँ—लेखक, डा० ए० एस० कहलों (अधिष्ठाता, मूलभूत विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय) प्रकाशक भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली। रायल आकार पृष्ठ संख्या ५७। मूल्य, ३ रुपये ३० पैसे।

इस देश में कृषि में धीरे-धीरे उन्नति हो रही है, किन्तु अधिकांश खेत आकार में अपेक्षाकृत छोटे हैं। छोटे खेतों के स्वामी अर्थाभाव के कारण कृषि सम्बन्धी नये अनुसंधानों और उन्नत उपकरणों का लाभ नहीं उठा पाते। किन्तु इधर कुछ दिनों से बड़े खेत या 'फार्म' बनाकर खेती करने का रिवाज आरम्भ हो गया है। ये फार्म अपेक्षाकृत शिक्षित और साधन सम्पन्न लोगों द्वारा चलाये जाते हैं और वे अधिक उत्पादन कर देश की सेवा के साथ-साथ अधिक लाभ भी प्राप्त करते हैं। किन्तु कृषि-विधि के अच्छे ज्ञाता होने पर भी, उनमें से अधिकांश आधुनिक प्रबंध प्रणाली से प्रायः अनभिज्ञ होते हैं। इस कारण उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए वे अपने उत्पादन को किस बाजार में, कैसे और कहाँ बेचें, यह नहीं जानते। इस अनभिज्ञता के कारण उन्हें जितना लाभ हो सकता है, उतना नहीं होता। इसके अतिरिक्त उन्हें नवीन अनुसंधानों की भी समय से जानकारी नहीं मिलती। परिषद् ने इस संबंध में अनुसंधान और अध्ययन करके फार्म के आदर्श प्रबंध पर यह पुस्तिका निकाली है जो फार्मों के स्वामियों और प्रबंधकों के लिए बड़ी उपयोगी है। इससे उन्हें अब तक के अनुसंधानों का तो पता लगेगा ही, साथ में उन्हें यह भी मालूम होगा कि फार्मों के प्रबंध के संबंध में क्या नई प्रवृत्तियाँ काम कर रही हैं जिनसे फार्मों पर शीघ्र या देर से प्रभाव पड़ने वाला है। इसमें फार्मों के प्रबंध का संक्षिप्त इतिहास भी दिया है। यह पुस्तक अनेक नये विचार और सुझाव देती है तथा फार्मों के सजग प्रबंधकों के लिए बड़ी उपयोगी है।

स्वतन्त्रता रजतजयन्ती अभिनंदन ग्रंथ—हिन्दी के २५ वर्ष। सम्पादक श्री गोपालप्रसाद व्यास। प्रकाशक, दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, २० थिएटर कम्यूनिकेशन बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली-१। बहुत बड़ा आकार। पृष्ठ संख्या ८००। रेशमी खद्दर की मजबूत जिल्द। सैकड़ों हाफटोन और रेखाचित्र। प्रत्येक खंड के आरम्भ में आकर्षक मुखपृष्ठ। बढ़िया कागज और सुन्दर छपाई। मूल्य १७५ रुपये।

इस समय उत्तर भारत में हिन्दी की सबसे अधिक कर्मठ, क्रियाशील और जागरूक संस्था दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन है। हिन्दी के प्रसार में लगातार बीस-पचीस वर्षों से यह संस्था जो काम कर रही है, उसका जोड़ मिलना इस समय उत्तर भारत में अन्यत्र संभव नहीं। स्वतंत्रता की रजतजयन्ती के अवसर पर उसने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने का संकल्प किया और इसकी योजना बड़ी कल्पना तथा सूझबूझ से बनायी गयी। हिन्दी आन्दोलन स्वदेशी आन्दोलन काल ही से स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ जुड़ गया था और हिन्दी को देश की राजनीतिक गतिविधियों से अलग करना वास्तविकता पर पर्दा डालना होगा। इसलिए सम्मेलन ने ठीक ही इस अभिनंदन ग्रन्थ को स्वतंत्रता के २५ वर्षों की प्रगति तक ही सीमित नहीं रखा, प्रत्युत इसमें देश के बलिदानियों और स्वतंत्रता प्राप्त करने के अभियान के नेताओं के स्मरण करने का निश्चय किया। अतएव यद्यपि प्रमुख रूप से यह स्वतंत्रता की रजत जयन्ती के समय तक की हिन्दी की प्रगति का ही लेखा-जोखा है, तथापि इसमें उन राजनीतिक धाराओं का भी समावेश कर दिया गया है जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त करने में, और उसके बाद देश की प्रगति में योगदान दिया। इस कारण यह ग्रन्थ अत्यन्त ऐतिहासिक महत्त्व का बन गया है। इसके आरंभ में वेद के पृथ्वी सूक्त और वन्देमातरम् से आरंभ कर हिन्दी की उन प्रमुख राष्ट्रीय कविताओं का संकलन है जिन्होंने देश में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न और पोषित की। 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' गीत तो उसके रचयिता के हस्ताक्षरों में छापा गया है। इसके बाद 'ईंट की नींव' शीर्षक में सम्पादक ने उन बलिदानियों का संक्षिप्त परिचय दिया है जिन्होंने देश में आरंभ में स्वतंत्रता की चेतना उत्पन्न की और जिनमें से कितनों ही ने इस प्रयास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मृत्यु का वरण किया। इसके बाद ग्रन्थ सात खंडों में विभाजित है : स्थिति और परिस्थिति, विकास और क्रम, प्रचार और बाधा, क्या और कैसे, साहित्य और समीक्षा, जयन्ती और कार्यक्रम, संगठन और सेवा। इनमें हिन्दी साहित्य के विकास में रुचि लेनेवालों के लिए पाँचवाँ खंड साहित्य और समीक्षा है जिसमें विगत २५ वर्षों का हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं का बहुमूल्य विवेचन है। हिन्दी भाषा के प्रचार में रुचि लेनेवालों के लिए पहिले, तीसरे और चौथे खंड महत्त्वपूर्ण हैं। इस छोटी सी टिप्पणी में इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की समीक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि इसके प्रत्येक खंड की सम्यक् आलोचना के लिए एक स्वतंत्र लेख चाहिए। यहाँ हम इतना ही कह सकते हैं कि यह ग्रन्थ स्थायी महत्त्व का है और हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान सदैव रहेगा। यह ग्रन्थ बड़ी सुरुचि के साथ छापा गया है। अनेक पृष्ठ तो दो रंगों में छपे हैं। अलंकरण सार्थक हैं और साहित्यकारों के अधिकांश रेखाचित्र बहुत सुन्दर बने हैं। आजकल प्रकाशन की जो कठिनाइयाँ हैं उन्हें देखते हुए इतने अच्छे कागज पर इतनी बड़ी सचित्र और सजिल्द पुस्तक निकालना एक चमत्कार है। अवश्य ही इसका मूल्य (१७५ रुपये) इसके प्रचार में बाधक होगा, किन्तु यह केन्द्रीय और हिन्दी भाषी सरकारों का काम है कि वे इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ को जनता तक पहुंचाने के लिए इन्हें सार्वजनिक पुस्तकालयों को अपने व्यय से सुलभ कर दें। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों को अपने पुस्तकालयों के लिए इसे खरीदना आवश्यक है क्योंकि इसकी सामग्री प्राध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए समान-रूप से आवश्यक और उपयोगी है। हम दिल्ली प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन और इसके सम्पादक तथा उनके सहयोगियों को ऐसे महत्त्वपूर्ण और हिन्दी का गौरव बढ़ाने वाले ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाई और धन्यवाद देते हैं।

पंचायतीराज का विश्वंभरसहाय प्रेमी स्मृति ग्रन्थ—प्रकाशक, पंचायतीराज (साप्ताहिक) कार्यालय, मेरठ। सम्पादक, श्री धर्मवीर प्रेमी। बड़ा (सरस्वती का) आकार, पृष्ठ संख्या १९०। अनेक चित्र। मूल्य ५ रुपये।

श्री विश्वंभरसहाय प्रेमी हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार, पत्रकार और अनन्य प्रचारक थे। वे राजर्षि टंडन से बहुत प्रभावित थे और उनकी स्मृति में उन्होंने अपनी कर्मठता और लगन से मेरठ में राजर्षि टंडन हिन्दी पुस्तकालय का विशाल भवन निर्मित किया। साहित्य प्रेमी होने के अतिरिक्त वे स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी भी थे। उनके प्रथम वार्षिक श्राद्ध के अवसर पर उनके स्थापित पत्र पंचायती राज ने, जिसका सम्पादन उन्होंने २५ वर्ष सफलतापूर्वक किया, यह सुंदर स्मृति अंक निकाला है। इसमें उनकी बहुमुखी प्रतिभा और विभिन्न क्षेत्रों में उनके कार्यकलाप का अच्छा परिचय और उनके संघर्षमय जीवन की जानकारी प्राप्त होती है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में प्रेमी जी प्रमुख साहित्यकार और पत्रकार थे, और उनकी सेवाएं बड़ी मूल्यवान थीं। मेरठ में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का इतना सफल अधिवेशन करा देना (जिसके अध्यक्ष स्व० सेठ गोविन्ददासजी थे) उन्हींके बूते का काम था। इस अंक की सामग्री का चयन और सम्पादन सावधानी से किया गया है और यह वास्तव में प्रेमीजी के व्यक्तित्व का सफल चित्रण है और यह एक हिन्दीनिष्ठ कर्मठ महापुरुष के प्रति उपयुक्त श्रद्धांजलि है। हम आशा करते हैं कि हिन्दी-प्रेमी इस अंक का स्वागत करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनोखे प्रदर्शन

अंग्रेज शासन में गुरुद्वाराओं के प्रबंध में सरकार के अनुचित हस्तक्षेप से सिखों में बड़ा असंतोष था। वे अपने गुरुद्वाराओं का प्रबंध स्वयं अपने निर्वाचित सिख सदस्यों द्वारा कराना चाहते थे। अंग्रेज सरकार राजनीतिक कारणों से उसका विरोध कर रही थी और सिख उस पर तुले हुए थे। इससे उनमें अंग्रेज-शासन के विरुद्ध बड़ा असंतोष और बड़ी कटुता उत्पन्न हो गयी थी और अंत में उन्होंने अंग्रेजों की इस नीति का सक्रिय विरोध करने का निश्चय किया।

नाभा राज्य में जैतू नामक एक स्थान है। वहाँ एक गुरुद्वारा है। सिखों ने उसका प्रबंध अपने हाथ में ले लिया और अंग्रेजों के विरोध करने पर वे उग्र हो उठे। परिणाम-स्वरूप और सिखों में भी वहाँ विद्रोह की आग भड़क उठी और उन्होंने डटकर अंग्रेजी पुलिस और सेना का सामना किया। अंग्रेज इस विद्रोह को एकदम कुचल देना चाहते थे क्योंकि उन्हें भय था कि यदि वहाँके सिखों को न दबाया गया तो पंजाब में दूसरी जगहों में सिख उपद्रव या विद्रोह करेंगे। अतएव उन्होंने जैतू के वीर और विद्रोही सिखों का दमन बड़ी कठोरता से किया और उस संग्राम में कितने ही सिख मारे गये। उस समय जैतू की इस घटना ने सारे देश में विक्षोभ उत्पन्न कर दिया था और सिखों पर अंग्रेजों के दमन और अत्याचार से जनता में बड़ा रोष उत्पन्न हो गया था।

हिन्दी के कवि सिख नहीं, किंतु हिन्दी-कवि सदैव सभी धर्मों और उनके अधिकारों का आदर करते और उनमें से यदि किसीके प्रति अन्याय हो तो उनका हृदय भी आन्दोलित हो जाता है। जैतू की इस दुर्घटना पर कितने ही कवियों ने कविताएँ लिखीं। उनमें सर्वोत्तम अनूप शर्माजी का यह छन्द था :

नाभा की भई है हाय, आभा रक्तरंजित सी,
भूत सौ चढ्यौ है लाट साहब के मत पैं।
जैतू में जमाव अति जोश-जोमवारौ जम्यौ,
डायर सी डायरी नची है नई गत पैं।
'सत श्री अकाल' घोष घन सौ घहरि उठ्यौ,
हहरि गगन कियौ जाहिर जगत पैं।
लाली चढ़ी भूमि पैं, दुनाली बिकराली चली,
काली चढ़ी सिंह पैं, अकाली चढ़े सत पैं।

कितना संयत, मर्मस्पर्शी और काव्यमय यह विक्षोभ प्रकाशन है!

अकालियों का बलिदान (क्योंकि जैतू में अनेक अकाली मौत के घाट उतार दिये गये) व्यर्थ नहीं गया। अंत में सिखों की शिरोमणि गुरुद्वारा समिति बनायी गयी और पंजाब के गुरुद्वाराओं का प्रबंध उन्हें सौंप दिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाप्रलय

श्री विश्वनाथ शर्म्मा

इस विषय का एक लेख "प्रवासी" में निकल चुका है। वह महत्त्व का है। अतएव उसका सारांश सुन लीजिए। महाभारत में लिखा है—

ततो दिनकरैर्दीप्तैः सप्तभिर्मनुजाधिप।
पीयते सलिलं सर्वं समुद्रेषु सरित्सु च॥
यच्च काष्ठं तृणञ्चाषि शुष्कं चार्द्रञ्च भारत।
सर्वं तद्भस्मसाद्भूतं दृश्यते भरतर्षभ॥
ततः संवर्तको वह्निर्वायुना सह भारत।
लोकमाविशते पूर्वमादित्यैरुपशोषितम्॥
ततः स पृथ्वीं भित्वा प्रविश्य च रसातलम्।
देवदानवयक्षाणां भयं जनयते महत्॥
निदहन्नागलोकञ्च यच्च किञ्चित् क्षिताविह।
अधस्तात् पृथिवीपाल सर्वं नाशयते क्षणात्॥

महाभारत। वनपर्व। १८८ अध्याय। ६५-७१ श्लोक।

अर्थात् इसके बाद (प्रलयकाल में) चमकते हुए सात सूर्य्य नदियों और समुद्रों के सब जल को सोक लेंगे। सूखे और गीले सब तृण भस्म हो जायँगे। इसके साथ ही संवर्तक नामक अग्नि वायु के साथ पृथ्वी पर आकर पाताल में प्रवेश कर जायगी। उससे देव, दानव और यक्ष बहुत डरेंगे। वही अग्नि नाग-लोक और पृथ्वी के सब पदार्थों को ध्वंस कर डालेगी।

ईसाइयों के धर्म-ग्रन्थ बाइबिल में लिखा है—

"Moreover, the light of the moon shall be as the light of the sun, and the light of the sun shall be sevenfold as the light of the seven days in the day the Lord bindeth the breach of his people, and healeth the stroke of their wound."

Isaiah (Chapter 30, V. 26)

अर्थात्—प्रलय के दिन चन्द्रमा सूर्य की तरह प्रकाशमान हो जायगा और सूर्य सात दिन के इकट्ठे प्रकाश की तरह सतगुना प्रकाशमान होगा। अन्तिम परिणाम के सम्बन्ध में पूर्व और पश्चिम के दो अति प्राचीन ग्रन्थों का मेल बड़ा ही विस्मयकर है।

अब प्रश्न हो सकता है कि महाप्रलय के सम्बन्ध में प्राचीन ऋषियों ने जो भविष्यवाणी कही है वह क्या विज्ञान-सम्मत है? एक दल के लोग कहते हैं कि ऋषि लोग अभ्रान्त थे। इसलिए पृथ्वी का ध्वंस शास्त्र में लिखी हुई विधि के अनुसार ही होगा। ऐसे लोगों की युक्ति के विषय में हम कुछ नहीं कहना चाहते। परन्तु जिस दल के लोग विज्ञान की सहायता से ऊपर लिखी हुई प्राचीन उक्तियों की सत्यता सिद्ध करना चाहते हैं, यहाँ पर हम उन्हीं लोगों की बातों पर विचार करते हैं।

इस दल के कुछ लोगों का कथन है कि पृथ्वी के भीतर की अग्नि ही पृथ्वी को ध्वंस करेगी अर्थात् पृथ्वी अपने ही ताप से भस्म हो जायगी। इस तरह ऋषि-वाक्य भी सत्य हो जायगा। परन्तु यह सिद्धान्त विज्ञान-सम्मत नहीं हो सकता। क्योंकि इस बात के कई प्रमाण पाये जाते हैं कि पृथ्वी के भीतर का ताप दिन पर दिन कम होता जाता है। इसलिए उसके द्वारा पृथ्वी का ध्वंस होना असम्भव है। इस दल के अन्य लोगों का मत है कि पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य्य से हुई है। यह सूर्य्य ही अकस्मात् प्रज्वलित होकर पृथ्वी को ध्वंस कर देगा। वास्तव में यही मत आलोचना के योग्य है।

सौरजगत् में प्रायः हर साल तूफ़ान आते हैं। उन्हीं के कारण सूर्य से धब्बे दिखाई देते हैं। इसमें शक नहीं कि तूफ़ान बड़े ही विकट और भयंकर होते हैं। लाखों मील दूर होने पर भी उनका प्रभाव पृथ्वी पर पड़ता है। परन्तु ऐसे सौरोत्पात का एक भी लक्षण अब तक देखने में नहीं आया जिससे कि पृथ्वी के एक दम ध्वंस हो जाने की सम्भावना हो। इसलिए ऐसा मालूम होता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य्य केवल अपनी ही अग्नि से पृथ्वी को ध्वंस नहीं कर सकता। सूर्य्य तभी एक दम प्रज्वलित हो सकता है जब उसका सङ्घर्षण किसी बाहरी तारे या पिण्ड के साथ हो। इसके सिवा किसी अन्य उपाय से पृथ्वी को ध्वंस करने की शक्ति रखनेवाला ताप सूर्य्य में नहीं आ सकता।

किसी नूतन तारे का आकस्मिक आविर्भाव ज्योतिष-शास्त्र के इतिहास में कोई नई बात नहीं। अभी कुछ ही वर्ष बीते होंगे जब वृष राशि के पास एक नया तारा पैदा हो गया था। ज्योतिषियों का कथन है कि दो अनुज्ज्वल तारों के सङ्घर्ष से यह तारा उत्पन्न हुआ था। इसलिए क्या यह सम्भव नहीं कि हमारा सूर्य्य भी किसी ऐसे ही तारे से धक्का खाकर जल उठे?

इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नहीं। हम लोगों के पहचाने हुए प्रायः सभी तेजस्क पिण्ड सौरजगत् से बहुत दूर हैं। यदि सूर्य्य हज़ारों वर्ष तक उनकी ओर बड़ी तेज़ी से दौड़े तो भी उन्हें नहीं पा सकता। दक्षिणी आकाश की एक राशि का एक तारा हम लोगों के अत्यन्त निकट है। ज्योतिषियों ने हिसाब लगाकर बतलाया है कि सूर्य्य यदि प्रति सेकण्ड दस मील की चाल से उस निकटतम तारे की ओर चले तो कोई अस्सी हज़ार वर्ष में उसके पास पहुँच सकता है। अस्सी हज़ार वर्ष बाद सूर्य्य का सङ्घर्ष किसी तारे के साथ होगा या नहीं, इसकी आलोचना यदि न की जाय तो भी कोई हर्ज नहीं। हाँ, दो चार हज़ार के अन्दर सौरजगत् में कोई विपद आवेगी या नहीं, इसकी आलोचना करना आवश्यक है।

ज्योतिषियों का कथन है कि आँखों या दूरबीन के द्वारा जितने तारे या ग्रह देखे जाते हैं उनके सिवा एक जाति के और भी पिण्ड हैं जो सदा आकाश में घूमा करते हैं। आकार-प्रकार में वे मामूली नक्षत्रों ही की तरह हैं। उष्णता और प्रकाश फैलाते फैलाते वे अनुज्वल हो गये हैं। इसलिए हम लोग उन्हें नहीं देख सकते हैं। अतएव अब यह प्रश्न हो सकता है कि सूर्य्य किसी ऐसे अनुज्वल तारे के सङ्घर्ष से क्या प्रज्वलित नहीं हो सकता? इसके उत्तर में आधुनिक ज्योतिषी कहते हैं कि यदि किसी समय सूर्य्य के तापाधिक्य से पृथ्वी का ध्वंस होना सम्भव है तो किसी अनुज्ज्वल तारे के सङ्घर्ष ही से यह बात हो सकती है। बृहस्पति, शनि इत्यादि ग्रह अपने छोटे छोटे उपग्रहों को लेकर जैसे आकाश में दौरा लगाते हैं, वैसे ही सूर्य्य भी अपने समस्त सौर-परिवार के साथ आकाश की एक ओर दौड़ा करता है। सूर्य की इस गति का पता लगने के बाद कुछ दिनों तक विद्वानों में इस बात पर तर्क-वितर्क होता रहा था कि सूर्य की गति किस ओर है। कुछ ही समय पूर्व यह तर्क-द्वन्द्व समाप्त हुआ है। सब विद्वानों ने एकमत होकर मान लिया है कि सौरजगत् प्रति सेकण्ड दस मील की चाल से अभिजित् नक्षत्र की ओर दौड़ रहा है। इसलिए यदि सूर्य और अभिजित् नक्षत्र के बीच में कोई अनुज्ज्वल तारा आ जायगा तो दोनों के सङ्घर्ष से एक विकट अग्निकाण्ड उपस्थित होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

अध्यापक गोर (Gore) एक विख्यात अंगरेज़ ज्योतिषी हैं। यह सोचकर कि भविष्यत् में सूर्य के साथ किसी अनुज्ज्वल तारे का सङ्घर्ष होना बिलकुल सम्भव नहीं, उन्होंने इसके सम्बन्ध में कुछ दिन हुए गणना करना प्रारम्भ किया था। उसका फल प्रकाशित होगया है। सूर्य और अभिजित् नक्षत्र के बीच में किसी स्थान पर सूर्य ही की तरह बृहत् और गतिशील एक अनुज्ज्वल नक्षत्र का अस्तित्व मान कर गणना प्रारम्भ की गई थी। हिसाब लगाने पर मालूम हुआ कि जब सूर्य्य और इस कल्पित नक्षत्र का फ़ासला एक अरब पचास करोड़ मील रह जायगा तब इस नक्षत्र के दर्शन हम लोगों को होंगे। अर्थात् उस समय वह सूर्य्य के प्रकाश से प्रकाशित हो जायगा और हम लोगों को नवम श्रेणी के तारे के समान दिखाई पड़ेगा।

जब दो गतिशील पदार्थ एक दूसरे के निकट होने लगते हैं तब माध्याकर्षण के नियमानुसार उनकी चाल अधिक तेज़ हो जाती है। इस हिसाब से सूर्य्य और उस कल्पित नक्षत्र के बीच की दूरी एक अरब पचास करोड़ मील में से एक अरब चवालीस करोड़ मील तय करने में, दोनों को सिर्फ़ बारह वर्ष लगेंगे। अर्थात् बारह वर्ष बाद दोनों के बीच का फ़ासला सिर्फ़ छः करोड़ मील रह जायगा। उस समय यह कल्पित नक्षत्र पञ्चम श्रेणी के नक्षत्र की तरह दिखाई देगा। पञ्चम श्रेणी के नक्षत्र बहुत उज्ज्वल नहीं होते। इसलिए सूर्य के इतना निकट आने पर भी सर्व-साधारण भी उसे दूरबीन की सहायता के बिना न देख सकेंगे। पर इसके बाद दोनों का फ़ासला इतनी जल्दी कम होने लगेगा कि बाद के चार वर्षों में बृहस्पति की कक्षा के निकट आकर यह नक्षत्र दो शुक्रों और चार बृहस्पतियों के समान उज्ज्वल हो जायगा। उस समय इसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय चन्द्रमा की तरह आकाश में उदित देखकर पृथ्वी-वासी अवश्य ही विस्मित होंगे।

इसके बाद सौरजगत् कितने वेग से उस सहायक नक्षत्र के निकट होने लगेगा, इसका हिसाब भी गोर साहब ने लगाया है। आप कहते हैं कि ५१ दिन में पृथ्वी की कक्षा पार करके यह नक्षत्र इसने प्रबल वेग से सूर्य्य को धक्का देगा कि सौरजगत् क्षण भर में ध्वंस हो जायगा।

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि सूर्य्य को धक्का देने के पहले यह संहारक नक्षत्र जब पृथ्वी की कक्षा के निकट होगा तब इसके आकर्षण से पृथ्वी का कोई अनिष्ट हो सकता है या नहीं। गोर साहब ने इसके सम्बन्ध में भी गणना की है। उससे मालूम होता है कि यदि यह नक्षत्र किसी साल की इक्कीसवीं जून को भूकक्षा के निकट होगा तो सूर्य्य के पास पहुँचने के पहले ही वह पृथ्वी को टक्कर मारकर ध्वंस कर देगा। इस दशा में यह नक्षत्र इतने ज़ोर से पृथ्वी को खींचेगा कि सूर्य्य उसके आकर्षण को किसी तरह न रोक सकेगा। यदि यह नक्षत्र तिरछी चाल से सौरजगत् में प्रवेश करेगा तो पृथ्वी की क्या दशा होगी, गोर साहब ने इसका भी हिसाब लगाया है। आपके कथनानुसार इस नाक्षत्रिक संहार से सूर्य तो बच सकता है; पर हमारी पृथ्वी का निरापद रहना असम्भव है। इसलिए मालूम होता है कि महाभारत और बाइबिल ने सैकड़ों वर्ष पहले पृथ्वी के अन्तिम परिणाम के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं वे एक-दम असम्भव नहीं।

ज्योतिष-शास्त्र की उन्नति के साथ साथ नक्षत्रों का पर्य्यवेक्षण करने के उपयोगी बहुत से यन्त्रों का आविष्कार हो गया है। इसलिए अब यदि किसी नये नक्षत्र का आविर्भाव होता है तो वह घटना तुरन्त जान ली जाती है। सौरजगत् के गन्तव्य स्थान में, बहुत अनुसन्धान करने पर भी, किसी नये नक्षत्र का पता नहीं लगा। इसलिए गोर साहब के कथनानुसार यह प्रकट है कि अभी बहुत समय तक पृथ्वी के ध्वंस होने की कोई सम्भावना नहीं। हाँ, यदि कभी पूर्वोक्त प्रकार का कोई नक्षत्र देख पड़े तो उसके सोलहवें वर्ष पृथ्वी का ध्वंस निश्चय समझना चाहिए।

प्रकाशक—बी० पी० श्रीवास्तव, इंडियन प्रस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन प्रेस) इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा धार्मिक साहित्य

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

दो भागों में

यह संस्कृत का अमर काव्य सदियों से हिन्दू जनता का प्रेरणा-स्रोत रहा है। पर संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ पाठक इस काव्य का पूर्ण आनन्द नहीं ले पाते इस विचार से सरल मृदु हिन्दी भाषा में इस ग्रन्थ का दो भागों में प्रकाशन हुआ जिसका सर्वत्र स्वागत हुआ। दोनों भाग सचित्र और सुन्दर अक्षरों में छापे गये हैं।

दोनों भागों का मूल्य २५ रु० मात्र

तुलसी साहित्य का प्रचार करके उस महान् संत को श्रद्धांजलि समर्पित करें जिसने संसार भर में भारतीय वाङ्मय को गौरवान्वित किया है:

गोस्वामी तुलसीदास के कुछ चुने हुए ग्रन्थ

रामचरितमानस (सचित्र तथा सटीक)	२५·००
रामचरितमानस (मूल)	५·००
रामचरितमानस (अमृतलहरी टीका सहित)—पंडित रामेश्वर भट्ट टीकाकार	१२·००
सुन्दरकाण्ड (मूल)—श्री नरोत्तमदास स्वामी	६·००
अयोध्याकाण्ड (सटीक)—स्वर्गीय श्यामसुन्दरदास	८·००
विनयपत्रिका (सटीक)—स्वर्गीय रामेश्वर भट्ट	१०·००
कवितावली (सटीक)—पं० चम्पाराम मिश्र	८·००
कुण्डलिया रामायण—सत्यनारायण पाण्डेय	८·००
तुलसी रत्नावली—केदारनाथ गुप्त	३·००
तुलसी के चार दल—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग	६·००
द्वितीय भाग	५·५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक डिप्टी की डायरी

पृष्ठ-संख्या १६८ लेखक : निशीथकुमार राय मूल्य १२·५०

हिन्दी की इस अनोखी पुस्तक के बारे में कुछ सम्मतियाँ

माननीय विचारपति श्री महेशनारायण शुक्ल

"Diary writing is a well recognised literary form, it is at least as old as Samuel Pepys but few house displayed real excellence in this genre, particularly in Hindi.

Shree Nishith Kumar Roy, deserves to be congratulated on the remarkable success he has achieved in his "Diary of a Deputy" which is a landmark in the art of diary writing. When a Deputy Collector turns a lawyer he packs into his life a wealth of experience not vouchsafed to a person spending his life-time in the pursuit of a single avocation. This is the secret of the irresitable charm, the deeply absorbing quality, the surpassing human interest of these models of brevity strung together like pearls on a necklace.....the author has written the book in fluent, virile, idiomatic Hindi.

The author has a knack of selecting the most captivating captions for his pieces and enriching the same by his subtle irony and pleasant humour. His description of the performance of courtesans as "cultural activity extending far into the night" is a superb specimen of his incisive wit and buoyant humour. To a narrative of the sordid facts of actual life the writer has imparted the fascinating beauty of fiction and that is the highest measure of his success as a diary-writer."....

श्री श्यामनाथ कक्कड़, एडवोकेट जनरल, हाईकोर्ट, इलाहाबाद

..... यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पुस्तक का आरम्भ करने के पश्चात् बिना समाप्त किये छोड़ना बड़ा कठिन है। सत्य भी इतना मनोरंजक होता है यह डिप्टी की डायरी पढ़कर ही विश्वास होता है.....इस डायरी के माध्यम से उन्होंने आफिसर्स वर्ग का बड़ा सही चरित्र-चित्रण किया है। मैं आशा करता हूँ जो कोई इस पुस्तक को पढ़ेगा उसको भी इतना ही रस और आनन्द मिलेगा जितना मुझे मिला।.....

श्री प्रेमशंकर गुप्त, गवर्नमेन्ट एडवोकेट, हाईकोर्ट, इलाहाबाद

बन्धु निशीथ राय की 'एक डिप्टी की डायरी' ने १५-२० वर्ष पूर्व की डिप्टियों की इजलास में वकालत करते समय की वे स्मृतियाँ सहज जागृत कर दीं जो मस्तिष्क के किसी कोने में सुप्तावस्था में पड़ी थीं। यह उनकी लेखनी का चमत्कार है कि उनकी डायरी पढ़कर पाठक पाँचवीं दशाब्दी के पूर्वार्द्ध के डिप्टी कलक्टरों के संसर्ग एवं सम्पर्क में पहुँच जाता है, और वैसे ही जाने-पहिचाने कितने मुखड़े उसकी आँखों के सामने नाचने लगते हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह अनूठी पुस्तक है.....इस चित्रण में इस कारण और अधिक निखार आ गया है क्योंकि यह पात्र काल्पनिक न होकर लेखक के व्यक्तिगत सम्पर्क में आये हुये व्यक्ति हैं जिन्हें बिना संजोये-सँवारे लेखक ने ज्यों का त्यों पाठकों के सामने रख दिया है। वास्तव में उन भ्रमित व्यक्तियों को इस पुस्तक को पढ़कर मार्ग दर्शन लेना चाहिये जो अहमग्रस्त होकर जनसेवा से भटक गये हैं और जनसाधारण की दृष्टि में उपहास का पात्र बन रहे हैं। हिन्दी पाठक श्री राय के इस स्तुत्य प्रयास के लिए कृतज्ञ है।.....

श्री जे० एस० टिंगल, सुपरिण्टेण्डेण्ट आफ पुलिस

.....The book is so interesting that one cannot lay it aside without reading it from cover to cover. Not many books have yet been written which give any inkling into the personal and social life of officers.....

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

प्राचीनतम हिन्दी मासिक पत्रिका
(संस्थापित सन १९००)
मार्च १९७५

18/4/75
पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध नवीनतम संस्करण

मेघदूत : राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित : डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित

इस ललित काव्य का अनुवाद जिस मनोयोग से राजा लक्ष्मणसिंह ने किया उसी सा का कौशल डॉ० श्यामसुंदरदास ने संपादन में दिखाया है। बड़े आकार-प्रकार की इस कला पुस्तक की साज-सज्जा विख्यात कलाकार असितकुमार हालदार के चित्रों से की गई है। संस्कृ हिन्दी छंदों के साथ-साथ भाषा में अर्थ देकर व कठिन संस्कृत शब्दों के सरल रूप देकर ग्रंथ अनुपम बनाया गया है। यह नवीन संस्करण अब पुनः उपलब्ध हो गया है। शीघ्र कला-का प्रेमी पाठक आर्डर भेजने की कृपा करें। मूल्य १२·००

कुमारसंभव : पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

कुमारसंभव महाकवि कालिदास की अमर रचनाओं में एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। यह पु उसका छायानुवाद है। माता पार्वती के जन्म से लेकर महादेव शिव के साथ वन में विहार त तक की सभी मनोरम कथायें सरल भाषा में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे महारथी वि लेखक ने दी हैं। यह कथा और उसकी भाषा दोनों ही ललित हैं। पढ़ने में उपन्यास का आ मिलता है।

नवीन सजधज के साथ मुद्रित संस्करण का मूल्य ५·००

पुरातत्त्व निबंधावली : श्री राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् राहुल जी द्वारा प्रणीत ये अप्राप्य लेख जगह-जगह से इ करके पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये गये हैं। विषय की उपयोगिता पर पुरातत्त्व के विद्या से हमें कुछ कहना नहीं। अब तक हमारे देश में पुरातत्त्व पर क्या हुआ है और क्या आवश्य इस पर विद्वान् लेखक ने भली भाँति प्रकाश डाला है। यथास्थान में कलात्मक चित्र खुद कैसे मिले, उनका परिचय देते हुए इन दुर्लभ चित्रों को भी छापा गया है।

बड़े आकार में पुनः मुद्रित संस्करण का मूल्य १४·००

अपभ्रंश पाठमाला : श्री नरोत्तमदास स्वामी एम० ए० विशारद

अपभ्रंश भाषा का साहित्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। और भाषा विज्ञान की दृष्टि से तो गौरव अद्वितीय है। साहित्यशास्त्री जानते हैं कि आर्यवंशीय भाषाओं की जननी अपभ्रंश प्रथम भाग में मूल संकलन है, दूसरे भाग में मूल पाठों का शब्दार्थ, भावार्थ आदि दिया गया है पुस्तक के अध्ययन से पाठकों की संगृहीत अंशों में पर्याप्त गति हो सकेगी और अपभ्रंश के स का रसास्वाद साधारण कोष और व्याकरण की सहायता से, वे स्वतः ही कर सकेंगे। परीक्ष के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। दूसरा भाग अभी मुद्रणाधीन है—स शीघ्र ही पुस्तकाकार प्रकाशित हो जायगा।

प्रथम भाग का मूल्य ७·०० रुपये : द्वितीय भाग का मूल्य ९·०० रुप

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन शहरों में स्टाकिस्ट नहीं हैं वहां के हेतु स्टाकिस्ट चाहिए।

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि। ६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश!

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं। चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इंच बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का ५·०० रु० है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिंग पृथक्। ४ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजी जायँगी। अधिक के लिए मूल्य पेशगी भेजिए।

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूं, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।.....'

डॉ० रामकुमार वर्मा, भू०पू० अध्यक्ष हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देश-व्यापी प्रचार की कामना करता हूं।.....'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य २० रुपये है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी

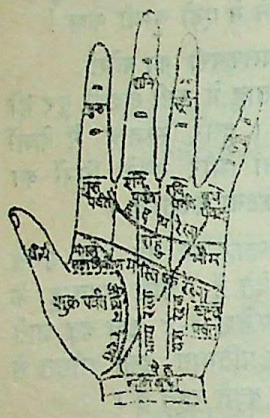

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

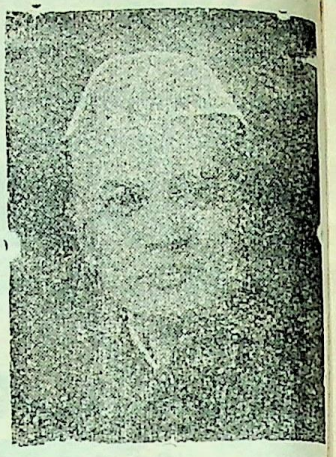

देखिये :—श्री बी० मलिक, बैरिस्टर एट्-लॉ, (भूतपूर्व) चीफ जस्टिस हाईकोर्ट, इलाहाबाद क्या कहते हैं :—

मेरे पूर्ववर्ती चीफ जस्टिस श्री के० वर्मा के सम्बन्ध में इलाहाबाद के ज्योतिषी तथा हस्तरेखा-विशारद श्री पी० एन० सिंह ने अनेक भविष्यवाणियाँ की थीं और वे सभी भविष्यवाणियाँ सत्य सिद्ध हुईं। भू० पू० चीफ जस्टिस श्री के० वर्मा ने ही मुझे श्री पी० एन० सिंह का परिचय कराया है। मुझे यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि श्री पी० एन० सिंह मुझे ऐसे सज्जन प्रतीत हुए जिन्होंने अपने विषयों का गहरा अध्ययन किया है और अपने शास्त्र का उन्हें पूर्ण ज्ञान है।

अभी तक मेरे सम्बन्ध में श्री पी० एन० सिंह ने जो भी भविष्यवाणियाँ की हैं, वे सत्य सिद्ध हुई हैं। मैं उनकी सफलता की कामना करता हूं।

इतिहास की दो नई पुस्तकें

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास

डॉ० ओमप्रकाश

हिन्दी भाषा में प्राचीन भारतीय इतिहास पर मौलिक रूप से लिखी गई पुस्तकों का प्रायः अभाव सा है। इतिहा के गहन एवं विस्तृत विवेचन को लक्ष्य में रखते हुए विद्वान् लेखक ने यथासंभव आधुनिकतम शोधों और मतों क समावेश करते हुए इस पुस्तक की रचना की है। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कथन की पुष्टि उचित पाद टिप्पणियों द्वारा की ग है। इतिहास के विद्वज्जगत् द्वारा प्रशंसित पुस्तक का प्रकाशन हमारे लिए भी गौरव की बात है। इतिहास के प्रा मौर्यकाल का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी इस पुस्तक को यथाशीघ्र मँगाकर लाभ उठावें। मूल्य १२·०० रुप

भारत का प्राचीन इतिहास

लेखक—प्रो० नगेन्द्रनाथ घोष एम० ए०

संशोधक—ओमप्रकाश एम० ए० डी० फिल०

यह पुस्तक इतिहास जगत् में प्रायः दशाब्दियों से लोकप्रिय रही है मगर यह सर्वांशतः संशोधित संस्करण नवी तम ऐतिहासिक उपलब्धियों, अनुसंधानों के परिणामों को ध्यान में रखते हुए प्रकाशित हुआ है। कलेवर पहले से दू है। इस संस्करण की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं—राजनीतिक इतिहास के नवीन एवं ग्राह्य मतों के अनुसार वस्तु परिवत उनके सांस्कृतिक अंगों पर विशेष प्रकाश, पाँच विशेष प्रकार के मानचित्रों का समावेश और विवादात्मक विषयों परिशिष्टों में देना आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जो विद्यार्थियों की ऐतिहासिक ज्ञानवृद्धि के प्रकाशस्तंभ हैं। जब च पुस्तक मँगाकर लाभ उठावें। मूल्य १२·५० रुप

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Allahabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असंख्य मंदिरों की पौराणिक नगरी वाराणसी में

वरूणा नदी के पवित्र तट पर आइ टी डी सी का एक नवीनतम् होटल

वाराणसी होटल

50 कमरे और स्वीट्स, 31 वातानुकूलित, हर कमरे के साथ लगा स्नानगृह, जिसमें गर्म और ठंडे पानी का प्रबन्ध. पृथक छज्जा.

8 एकड़ भूमि में सुन्दर उद्यानों के मध्य पवित्र वरूणा नदी के तट पर स्थित.

वातानुकूलित रेस्तराँ, 'बार' और 'काफी शाप'.

बैठकों और पार्टियों के लिये 'कांफ्रेन्स रूम'.

स्विमिंग पूल और उसके तट पर 'बारबिक्यु'

मीना बाजार, आइ टी डी सी की गाड़ियों से सैर सपाटे, डाक घर और सेफ डिपाजिट की सुविधाएं.

पर्यटक सूचना केन्द्र.

सूचना और रिजर्वेशन:
मैनेजर
वाराणसी होटल
वाराणसी 221002
फोन: 52040 52041
तार: टूरिज्म वाराणसी

आइ टी डी सी की शाखा

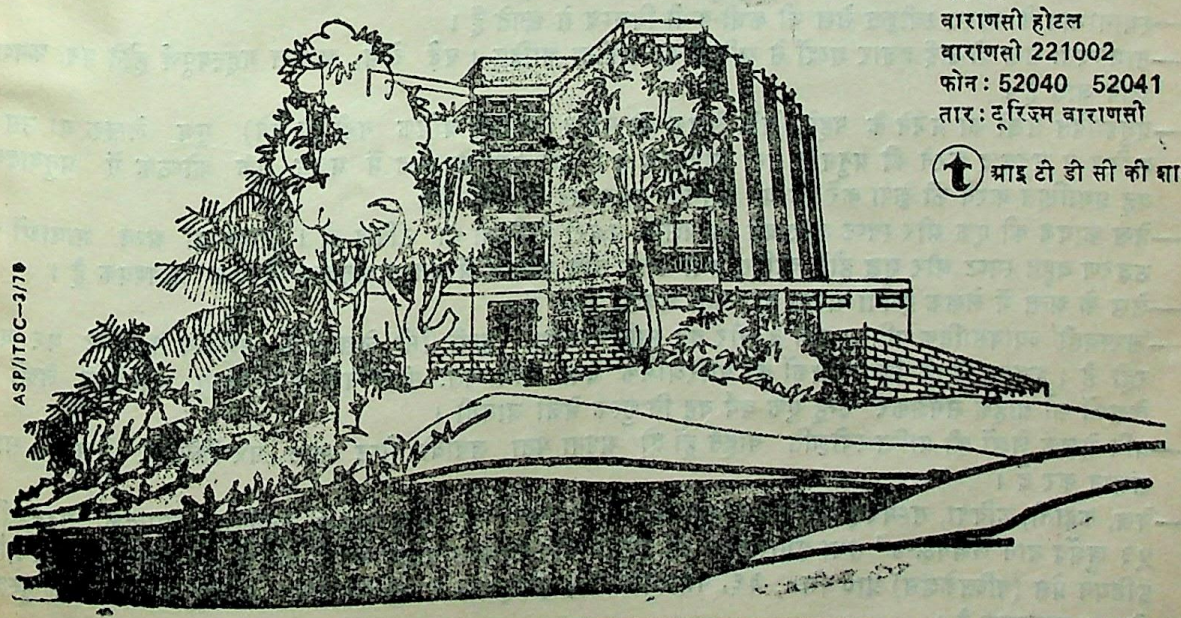

ASP/ITDC-3/70

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	१४९
२—धर्मयोगी तुलसी और कर्मयोगी गांधी—डा० लक्ष्मीनारायण दुबे	१५७
३—थाई देश में रामायण नृत्य एवं संगीत—अनु० श्री बाबूराम वर्मा	१६१
४—कोशकार लारूस की निर्वाणशती—श्री बा० विष्णुदयाल (मारिशस)	१६३
५—श्री बल्लभ-सूर मिलनस्थल : फरह का गऊ-घाट—श्री स्वामी ब्रजेश	१६५
६—क्रांतिकारी महावीर और उनके धर्म-शासन की विशेषताएँ—श्री अगरचंद नाहटा	१६७
७—मध्यकालीन मेवाड़ की सांस्कृतिक स्थिति—डा० शिवचरण मेनारिया, एम० ए०, पी-एच० डी०, बी० एड०	१७०
८—भावात्मक एकता में कन्नड का योगदान—श्री एस० केशवमूर्ति, एम० ए०, बी० एड०, साहित्यरत्न	१७५
९—सत्य की पुकार—श्री रामप्रसाद पाण्डेय	१८१
१०—सरेस तथा अन्य चिपकानेवाले पदार्थ—प्रो० पुरुषोत्तमदास स्वामी, एम० एस्-सी०, एम० एस०, विशारद	१८४
११—गीत—श्री रामस्वरूप खरे, एम० ए०, बी० एड०, साहित्यरत्न	१८८
१२—पेंट, वार्निश तथा रंग (२)—प्रो० पुरुषोत्तमदास स्वामी, एम० एस्-सी०, एम० एस०, विशारद	१८९
१३—परिस्थितियों का शिकार—श्री शमशुद्दीन, एम० ए०, एम० एड०	१९७
१४—फैसले का इंतज़ार है—श्री निरंकुश	२०६
१५—गीत—श्री रवीन्द्र 'अनघ'	२१५
१६—मनोरंजक संस्मरण	२१९

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

सरस्वती के लेखकों के प्रति

१—सरस्वती में भारत की चालू या वर्तमान राजनीति पर छोड़कर सभी विषयों के लेख प्रकाशित होते हैं। व्यक्तिगत आक्षेपोंवाले लेख भी नहीं छापे जाते।

२—सरस्वती में वे ही लेख छापे जाते हैं जो अन्यत्र न छपे हों। जो लेख अन्यत्र छपने को भेजे गये हों उन्हें 'सरस्वती' के लिए न भेजा जाय।

३—लेखकों को चाहिए कि लेखों की प्रतिलिपि अपने पास रख लें। डाक में या कार्यालय में उनके खो जाने के लिए 'सरस्वती' जिम्मेवार न होगी यद्यपि उन्हें सुरक्षित रखने का पूरा प्रयत्न किया जाता है।

४—स्थानाभाव के कारण स्वीकृत लेख भी कभी-कभी विलम्ब से छपते हैं।

५—सामान्यतः लेख दो-ढाई हज़ार शब्दों से अधिक का न होना चाहिए। बड़े लेख, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने पर, क्रमशः छापे जाते हैं।

६—अनुवादित लेखों को भेजने के पहले (यदि लेखक को मरे ५० वर्ष से अधिक नहीं हो गये) मूल लेखक या उसके वारिस से अनुवाद करने की अनुमति लेना आवश्यक है। इन लेखों के अन्त में अलग एक कोष्ठक में अनुवाद यह प्रमाणित करने की कृपा करें कि यह अनुमति प्राप्त कर ली गयी है।

७—लेख कागज की एक ओर स्पष्ट और बड़े या मझोले अक्षरों में लिखा या टंकित हो। संस्कृत या अन्य भाषाओं के उद्धरण बहुत स्पष्ट और शुद्ध होने चाहिए तथा उनके नीचे कोष्ठक में उनका अनुवाद भी देना आवश्यक है।

८—लेख के अन्त में लेखक कृपया अपना पूरा पता अवश्य लिख दें।

९—'सरस्वती' व्यावसायिक पत्रिका नहीं है और वह साहित्य तथा हिन्दी प्रेमी लेखकों के सहयोग से घाटे पर चल रही है। अतएव उसके लिए लेखकों को पारिश्रमिक देना सामान्यतः संभव नहीं है। किन्तु प्रकाशित लेखों के लेखकों को ग्राहक समझकर उन्हें एक वर्ष वह निःशुल्क भेजी जायगी।

१०—यदि लेखक लेखों की प्राप्ति-स्वीकृति चाहते हों तो अपना पता जवाबी पोस्ट कार्ड पर लिखकर लेख के साथ संलग्न कर दें।

११—लेख, कहानी, कविता, संस्मरण आदि तथा सम्पादक से संबंधित पत्र "श्रीनारायण चतुर्वेदी, सम्पादक, 'सरस्वती' ५३ खुर्शेद बाग लखनऊ-४" तथा समालोचना की पुस्तकें और प्रबंध या ग्राहक संबंधी पत्रादि व्यवस्थापक 'सरस्वती' इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्रा० लि०, ३६, पन्नालाल रोड, इलाहाबाद के पते पर भेजें। समालोचना की दो पुस्तकें भेजना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

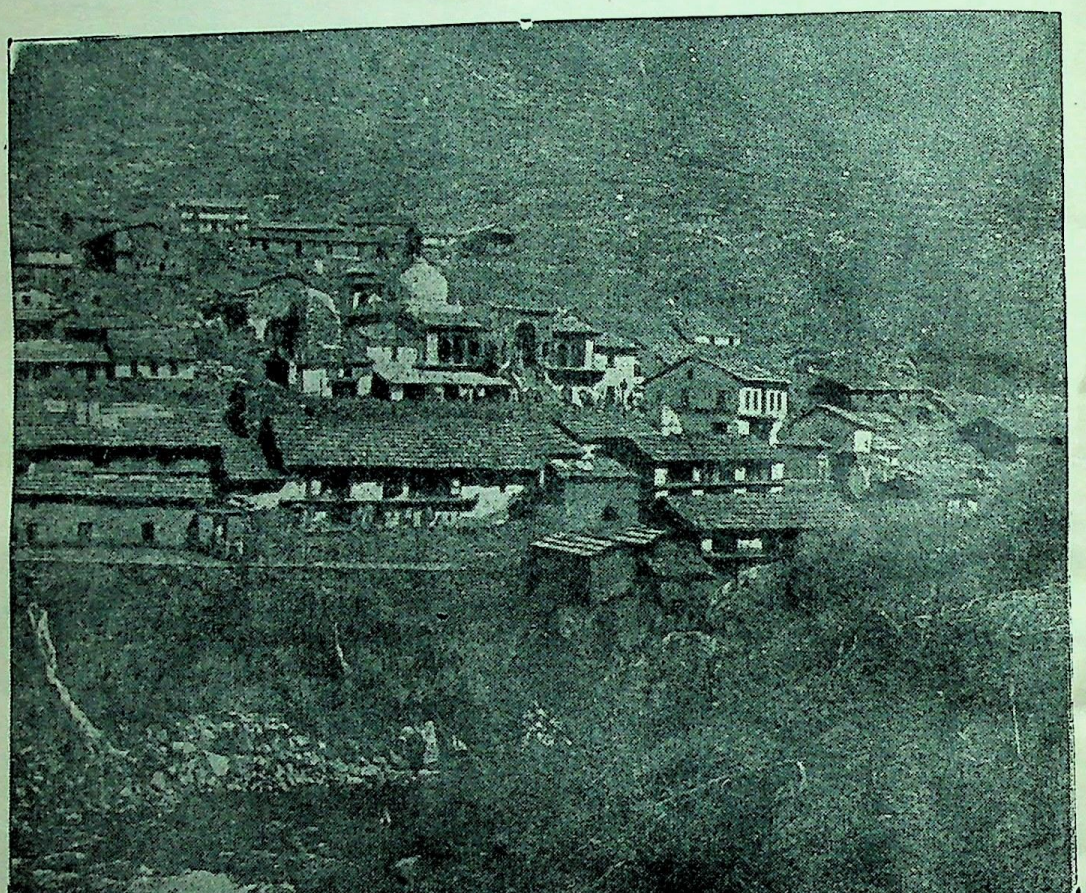

१९२५ में श्री बदरीनाथ पुरी
(सेठ डागा का बनाया गुम्बज़ और नवनिर्मित मुग़ल शैली का फाटक
दिखायी पड़ रहे हैं। शिखर गुम्बज़ के पीछे अस्पष्ट है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

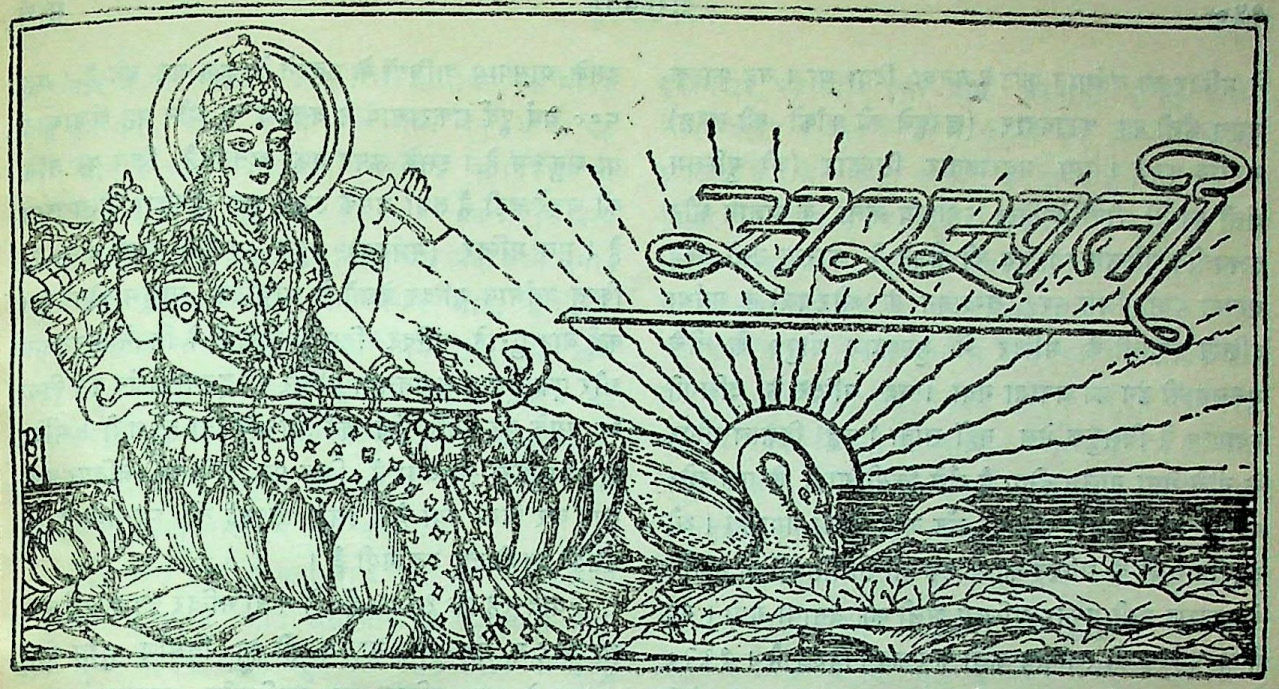

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

वर्ष ७६
पूर्ण संख्या ९०३

इलाहाबाद : मार्च १९७५ : फाल्गुन २०३१ वि०

खण्ड १
संख्या ३

सम्पादकीय

श्री बदरीनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार और बिड़लाजी—भगवान् शंकराचार्यजी ने भारत के चार कोनों में चार धाम स्थापित किये थे। सुदूर उत्तर में—हिमालय के हृदय देश में—उन्होंने श्री बदरीनाथजी की मूर्ति की पुनर्स्थापना की थी। उन दिनों वहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन था। वहाँ भवन बनाने का सामान अप्राप्य था, और उसे वहाँ ले जाना प्रायः असंभव था। अतएव मूल मन्दिर स्थानीय शिला-खंडों से बनाया गया होगा और संभव है कि उस पर चूने का सामान्य पलस्तर कर दिया गया होगा। गढ़वाल के राजाओं के श्री बदरीनाथजी इष्टदेव हैं। उन्होंने बाद में मन्दिर की रक्षा और विस्तार कार्य में सहायता दी थी। किन्तु मूल मन्दिर कैसा था—यह बात इतिहास के गर्भ में छिप गयी है। बाद में गर्भगृह के सामने दो मंडप बने। उनमें एक बहुत छोटा और दूसरा कुछ बड़ा था, जिसमें सौ-सवा सौ व्यक्ति बैठ सकते थे। यह मंदिर बहुत सादा था। इसका शिखर त्रिरथ था और केवल २८ फुट ऊँचा था। उत्तराखण्ड की शिखर शैली में तिब्बत की तरह शिखर पर लकड़ी और टीन, या केवल लकड़ी की ढालुआँ छतरी लगाने का रिवाज था, जिससे हिमपात के कारण शिखर पर हिम न एकत्र हो, वह ढालुआँ छतरी के सहारे नीचे जमीन पर गिर जाय। यही छतरी उत्तराखण्ड के मन्दिरों की विशेषता है, जो भौगोलिक कारणों से बनायी जाती है। प्राचीन हिन्दू मंदिर निर्माण सम्बन्धी ग्रन्थों में इसकी चर्चा नहीं मिलती। उत्तराखंड के सभी मन्दिर—ऊखीमठ के मंदिर को छोड़कर, जो केदारनाथ के धनी राव लोगों का निवास स्थान था—अलंकार-विहीन और सादे हैं। श्री बदरीनाथ का मंदिर भी इसका अपवाद नहीं है। १८९० और १८९९ के बीच किसी कमिश्नर की प्रेरणा से किसी धनी व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने मन्दिर का वर्तमान फाटक बनवा दिया था। यह फाटक मुग़ल शैली का कटावदार (खरबूजे की फाँकों की तरह) महराब का है। ऐसा महराबदार सिंहद्वार (जो मुस्लिम शैली का है) लोगों के हिन्दू स्थापत्य कला के अज्ञान और तत्कालीन मुस्लिम स्थापत्य की फैशन के कारण उसी तरह बनाया गया जिस तरह वृन्दावन के श्रीरंगजी के सर्वथा दक्षिण प्रणाली के मन्दिर में मुख्यद्वार गोपुर के नीचे मुसलमानी ढंग का बनाया गया। वह मन्दिर के दक्षिणी स्थापत्य से बिलकुल मेल नहीं खाता। वह विशाल गोपुर के नीचे ऐसा मालूम होता है जैसे किसी गाड़ी के एक छोर पर बैल और दूसरी छोर पर ऊँट जोत दिया गया हो। श्री बदरीनाथजी के मन्दिर का फाटक भी निर्माताओं के अज्ञान के कारण उसी प्रकार मुस्लिम शैली का बनाया गया। वह हिन्दू मन्दिर की स्थापत्य कला के एकदम विरुद्ध है। १९२० में सेठ कस्तूरचंद डागा ने मंडप के ऊपर मुसलमानी शैली का गुम्बज बनवा दिया, और इस आशय का एक पत्थर भी लगवा दिया कि वह गुम्बज उन्होंने बनवाया था। वह पत्थर अब भी सुरक्षित है। किन्तु कुछ दिन पूर्व उस गुम्बज में दरार पड़ गयी और वह इंजीनियरों द्वारा खतरनाक घोषित कर दिया गया था।

श्री बदरीनाथ के मन्दिर के सम्बन्ध में १८८६ में प्रकाशित गढ़वाल के गज़ेटियर में श्री ऐटकिन्सन ने यह लिखा है :—

Badrinath....also a village temple and collection of rest houses.....The building said to have been erected some 800 years ago by Sankara Acharya is of conical form with a cupola covered with plates of copper and surmounted by gilded ball and spire. The original establishment is reported to be of very great antiquity. The present temple has, however, a modern appearance, several former ones having been overwhelmed by avalanches and an earthquake having shaken the present erection so seriously as to render necessary an almost entire restoration. The body is constructed of flat stones on which a coat of fine plaster, while adding to its neatness, detracts from the appearance of antiquity.

इसका आशय यह है कि यह एक मन्दिर है और इसके आसपास यात्रियों के ठहरने के कुछ घर बने हैं। यह ८०० वर्ष पूर्व शंकराचार्य ने बनाया था और यह शंखाकार या शंकुरूप है। इसके ऊपर एक छतरी है जिस पर ताँबे की चद्दरें चढ़ी हैं तथा उसके ऊपर एक सुनहरा गोला लगा है। मूल मन्दिर (गर्भगृह) बहुत प्राचीन कहा जाता है, किन्तु वर्तमान मन्दिर देखने से आधुनिक मालूम होता है। कई बार पुराने मन्दिर हिम-शिलाखंडों के गिरने से टूट गये और एक भूचाल ने वर्तमान मन्दिर को इतना जर्जर कर दिया कि उसके पूरे पुनर्निर्माण की आवश्यकता हो गयी। मंदिर सपाट पत्थरों का बना है जिस पर चूने का बढ़िया पलस्तर कर दिया गया है। इससे सफाई तो आ गयी है पर उसकी प्राचीनता दब गयी है।

याद रहे कि १८८६ ई० में न तो मन्दिर का फाटक बना था और न मंडप पर गुम्बज ही का निर्माण हुआ था। भूचाल के बाद मन्दिर का नवनिर्माण वरदाचार्य नामक एक सज्जन की प्रेरणा से हुआ और ऐटकिन्सन ने उसीको देखा था। वह कामचलाऊ, सादा और अपेक्षाकृत छोटा भवन था। इसी भूचाल में जोशीमठ में स्थित उत्तराखंड के सबसे ऊँचे शिखरवाले भगवान् वासुदेव के मन्दिर का आधा शिखर गिर गया था, जो आज भी उत्तराखंडवाले नहीं बनवा पाये। वह टूटा हुआ शिखर यहाँकी जनता और अधिकारियों की निष्क्रियता का मूक किन्तु सजीव प्रमाण है।

मन्दिर का सबसे प्राचीन भाग गर्भगृह है, जिसमें भगवान् बदरीनाथजी की मूर्ति स्थापित है। यह भाग बहुत छोटा अर्थात् १३ फुट लम्बा और ७ फुट १० इंच चौड़ा है। इसकी लम्बाई की दीवारें २ फुट ३ इंच, तथा चौड़ाई की दीवारें ३ फुट ७ इंच मोटी हैं और ये शिलाओं से बनी हैं। उन पर चूने का पलस्तर है, जिस पर सफेदी कर दी गयी है।

मध्ययुग में बहुत थोड़े यात्री श्री बदरीनाथ जाते थे क्योंकि मार्ग बड़ा दुर्गम था, और उनकी संख्या सैकड़ों में होती थी। बाद में जब अंग्रेजी राज्य में पैदल मार्ग और चट्टियाँ बन गयीं तब उनकी संख्या बढ़ गयी। फिर भी पैदल यात्रा बहुत कठिन और समयसाध्य थी, और यात्रियों को पर्वतीय सोतों के जल से दस्त होने लगते थे और कितने ही उनसे या विशूचिका से मर जाते थे। यात्रा संख्या वर्ष में कुछ हजार से ऊपर नहीं होती थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु बाद में पीपलकोटी, और फिर जोशीमठ तक मोटर सड़क बन गयी, और केवल २० मील पैदल-यात्रा रह गयी। चीन के आक्रमण के बाद उत्तराखंड के विकास की ओर सैनिक दृष्टि से सरकार का ध्यान गया और अन्य विकास कार्यों के साथ सड़कों पर विशेष बल दिया जाने लगा। 'गेहूँ के साथ बथुआ को भी पानी मिल जाता है।' सो, सैनिक आवश्यकता के कारण बदरीनाथ तक, दुर्गम क्षेत्र में भी सड़क बना दी गयी, क्योंकि वहाँसे तिब्बत की सीमा केवल २६ मील है। अब श्री बदरीनाथ तक मोटर या जीप से सरलता से पहुँचा जा सकता है। अतएव अब यात्रियों की संख्या लाखों में होने लगी है।

मंदिर बहुत जीर्ण हो गया था। डागा का बनाया मंडप का गुम्बज क्षतिग्रस्त और खतरनाक हो गया था। मंडप इतना छोटा था कि उसमें बहुत कम दर्शक स्थान पा सकते थे। इन सब कारणों से मंदिर का जीर्णोद्धार और विस्तार, तथा कुछ भागों का पुनर्निर्माण अत्यन्त आवश्यक हो गया। प्रबंधक समिति के पास इसके लिए धन नहीं था। हिन्दू धनिकवर्ग ही सहायता कर सकता था।

किन्तु तीन समस्याएँ और थीं। एक तो मंदिर के पीछे के पर्वत के ढलान से हिमशिलाओं के खिसककर मंदिर को दबा देने का भय, दूसरी मंदिर के सामने कुछ ही दूर पर बहती अलकनंदा का कटाव, और तीसरी इस बात का ध्यान रखना कि इस स्थान में भूचाल के झटकों का खतरा बराबर बना रहता है।

सरकार ने एक कानून बनाकर उसका प्रबंध रावल से ले लिया है, और वह अब उसके प्रबंध के लिए तीन वर्ष के लिए प्रबंध समिति बना देती है। उसका अध्यक्ष इधर वर्षों से कोई कांग्रेसी हिन्दू ही होता रहा है। उसमें अधिकांश सदस्य स्थानीय लोग ही रखे जाते हैं। प्रबंधक के पद पर प्रान्तीय सिविल सर्विस का अधिकारी या कोई स्थानीय व्यक्ति नियुक्त किया जाता है। अतएव यह समिति हिन्दू जनता का प्रतिनिधित्व न करके एक सरकारी समिति है, जिसमें स्थानीय (उत्तराखंड के) लोगों का बाहुल्य है। श्री बदरीनाथ का मंदिर उत्तराखंड में स्थित है, किन्तु वह सारे हिन्दुओं का तीर्थ है, और ९९·९ प्रतिशत यात्री उत्तराखंड के बाहर के होते हैं। गढ़वाल के लोगों का अधिकांश भाग—वहाँका अर्थशास्त्र—इन्हीं गंगोत्री, यमनोत्री, केदारनाथ और बदरीनाथ के यात्रियों पर निर्भर है। कुली, घोड़ेवाले, दूकानदार, पंडे आदि (जो प्रायः गढ़वाली ही हैं) अपने जीवन-यापन के लिए किसी न किसी रूप में—प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से—इन्हीं गढ़वाल के बाहर के यात्रियों पर निर्भर हैं। किन्तु उसके प्रबंध में उनकी कोई पूछ नहीं है। संयोग से इस समय राज्य के मुख्यमंत्री गढ़वाली हैं। मुख्य सचिव तथा वित्तमंत्री भी उत्तराखंड के हैं। अतएव उनका श्री बदरीनाथ मंदिर के कार्य में रुचि लेना स्वाभाविक है। हम नहीं जानते कि धर्म निरपेक्ष होने के कारण श्री बदरीनाथ में उनकी कितनी आस्था है। सत्ताधारी दल के, और प्रशासक होने के कारण उनका दृष्टिकोण दलगत या प्रशासकीय होना आश्चर्य की बात नहीं है।

प्रबंध समिति मंदिर के जीर्णोद्धार की आवश्यकता तो पूरी तरह अनुभव करती थी, किन्तु उसके पास उसे करने के लिए धन नहीं था। 'ट्रुअरिस्ट' स्थान न होने और धार्मिक स्थान होने के कारण सरकार उस पर उस तरह व्यय नहीं कर सकती थी जिस तरह उदारतापूर्वक केंद्रीय सरकार ने ताजमहल और दिल्ली की जामा मस्जिद को सुन्दर बनाने के लिए लाखों रुपये व्यय किये। अब भी ताजमहल को रासायनिक प्रक्रिया से धोकर चमकाने के लिए वह लाखों का व्यय करने जा रही है। हमें इससे प्रसन्नता है, क्योंकि ये दोनों इमारतें मुग़ल काल के स्थापत्य के अनुपम अवशेष हैं और इन्हें अच्छी हालत में रखना सांस्कृतिक दृष्टि से परम आवश्यक है, यद्यपि जामा मस्जिद विशुद्ध रूप से धार्मिक स्थान है। किन्तु हम सैक्युलर सरकार से श्री बदरीनाथजी के मंदिर के जीर्णोद्धार के लिए ऐसी उदारता की अपेक्षा नहीं करते, और हमारी सम्मति में वह करनी भी न चाहिए। यदि धनी और दरिद्र हिन्दू अपने श्री बदरीनाथ ऐसे महत्त्वपूर्ण तीर्थ का जीर्णोद्धार स्वयं न करके उसके लिए सरकार के मुखापेक्षी हो जाते हैं तो उनके लिए इससे अधिक लज्जा की बात क्या हो सकती है? अतएव प्रबंध समिति के तत्कालीन उपाध्यक्ष श्री जयनारायण राठी ने १९६४ में बिड़ला-बंधुओं से मंदिर के जीर्णोद्धार, और उसका विस्तार करने का प्रस्ताव किया। बिड़ला-बंधुओं का एक ट्रस्ट है जो ऐसे कार्यों में सहायता करता है। उसका नाम 'जयश्री ट्रस्ट' है। बिड़ला-बंधुओं ने बड़ी उदारतापूर्वक इस ट्रस्ट से पाँच-सात लाख रुपये देना स्वीकार कर लिया। किन्तु मंदिर की प्रबंध समिति ने जो योजना बनायी वह प्रायः पचास लाख रुपये की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिड़लाजी ने सोमनाथ मंदिर का पुनर्निर्माण करनेवाले प्रसिद्ध भारतीय स्थापत्य विशारद श्री सोमपुरा को मंदिर के पुनर्निर्माण की रूपरेखा तैयार करने के लिए श्री बदरीनाथ भेजा, किन्तु वे अपना काम पूरा नहीं कर पाये और अलकनंदा में स्नान करते समय उसमें बह गये और उनकी मृत्यु हो गयी। तब बिड़लाजी ने अन्य भारतीय स्थापत्य-विदों से मंदिर के जीर्णोद्धार और विस्तार की रूपरेखा बनवायी और प्रबंध समिति को स्वीकारार्थ भेजी। प्रस्तावित मंदिर का एक 'मॉडेल' भी बनवाकर भेज दिया जो मंदिर के प्रांगण में रख दिया गया, जिसे असंख्य यात्रियों और स्थानीय लोगों ने देखा और सराहा। प्रबंध समिति ने प्रस्तावित नक्शा स्वीकार करके बिड़लाजी को सूचना दे दी, और उनके अभियन्ताओं और कर्मचारियों ने आकर निर्माण-कार्य आरंभ कर दिया और कुछ कार्य हो भी गया।

बिड़लाजी ने विशुद्ध धार्मिक भावना से भगवान् की यह सेवा स्वीकार की थी। उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि मंदिर में इस आशय का कोई अभिलेख या पत्थर नहीं लगाया जायगा कि बिड़लाओं ने मंदिर का जीर्णोद्धार किया, और मंदिर का नक्शा, रूपरेखा आदि हिन्दू शैली की वही रहेगी जो प्रबंध समिति स्वीकार करेगी।

बिड़लाजी ने जो नक्शा बनवाया उसका बाह्य रूप बहुत कुछ श्री केदारनाथ मन्दिर के अनुसार है। वहाँकी स्थिति देखते हुए ईंटों की जगह मजबूती की दृष्टि से सीमेंट-कांक्रीट की नींव और दीवारें बनायी गयीं। यद्यपि मन्दिर की दीवारें सीमेंट की बनेंगी और यथासंभव स्थानीय पत्थर का उपयोग होगा तथापि मन्दिर की सौन्दर्य-वृद्धि के लिए उन पर लाल पत्थरों की पट्टियाँ लगाने की योजना है। गर्भगृह छुआ नहीं जायगा। वह जैसे का तैसा बना रहेगा, पर उसकी दीवारों से ढाई फुट की दूरी पर दूसरी मोटी दीवार बनायी जायगी (जो प्रायः २० फुट ऊँची बन भी गयी है)। उस पर नया शिखर बनेगा। मण्डप का मुसलमानी ढंग का सेठ डागा का बनाया गुम्बज, जिसमें दरार पड़ गयी थी और जिसे अभियंताओं ने खतरनाक घोषित कर दिया था, गिराकर मण्डप की ऊँचाई १२ फुट से बीस फुट कर दी गयी है, और उसका आकार बढ़ा दिया गया है जिससे उसमें पहले की अपेक्षा तिगुने-चौगुने लोग बैठ सकते हैं। उस पर लिंटल पड़ने लगी थी। फाटक को भी मन्दिर के गौरव के अनुरूप विशाल और हिन्दू मन्दिरों की शैली के अनुसार बनाने का प्राविधान है। श्री बिड़ला के अभियन्ताओं को भारत के भिन्न-भिन्न भागों में विशाल भवन बनाने का अनुभव है और वे जी लगाकर इस अत्यन्त पवित्र स्थान को अधिक से अधिक सुन्दर और मजबूत बनाने का प्रयास कर रहे थे, जिससे यह मन्दिर हिन्दू शैली के मन्दिरों का एक भव्य नमूना बन सके। उन्होंने मज़बूती की दृष्टि से नींव के नीचे और ऊपर भी लिंटल लगायी है।

किंतु 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि।' कुछ स्थानीय छोटे लोगों और कर्मचारियों को बिड़लाजी का अपने अनुभवी आदमियों द्वारा इस मंदिर का जीर्णोद्धार करना अच्छा न लगा, क्योंकि यदि वे यह काम उनके द्वारा कराते तो उन्हें लाभ होता। मंदिर के कई अधिकारी उच्च पदों पर हैं, किंतु वे हिन्दू स्थापत्य की विशेषताओं को नहीं समझते। वे मंदिर का वर्तमान बाह्य रूप (जो मुग़ल शैली का है) बदलने के विरुद्ध थे। दुर्भाग्य से कुछ राजनीतिक दलों को श्री बिड़लाजी से 'बुग़ज़ लिल्लाही' है। वे अपने पूँजीपति-विरोधी वाद से इतने पीड़ित हैं कि उन्हें बिड़लाजी का नाम ही भड़का देने को पर्याप्त है। उनमें कितने ही कम्यूनिस्ट हैं जिन्हें हिन्दू धर्म क्या, किसी भी धर्म में कोई आस्था नहीं। वे प्रत्यक्ष रूप से धर्म विरोधी हैं। गढ़वाल में वे काफी सक्रिय हैं। वर्त्तमान सरकार से कम्यूनिस्ट पार्टी का गठबंधन है। अतएव उस पर उनका काफी प्रभाव है। इसके अतिरिक्त यहाँके लोगों में संकुचित स्थानीय भावना भी काफी गहरी है, और वे श्री बदरीनाथजी को अपनी जागीर समझते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि यह पवित्र स्थान सारे हिन्दुओं का है। अतएव इन लोगों का प्रभाव वर्त्तमान सरकार पर पड़ना स्वाभाविक है क्योंकि मुख्यमंत्री और मुख्य सचिव दोनों पर्वतीय हैं, और अपने भाई-बंदों की संकुचित भावनाओं के विरुद्ध नहीं जा सकते। वहाँके कुछ आंदोलनकारियों तथा कुछ लोगों के प्रभाव में आकर, तथा प्रबंध समिति की उपेक्षा कर, उससे बिना सलाह किये, मुख्यमंत्री ने मंदिर के जीर्णोद्धार का काम तुरन्त रोक देने का आदेश दिया। यह आदेश इस कड़ाई से कार्यान्वित किया गया कि मंडप की जो लिंटल पड़ रही थी वह अधूरी रोक दी गयी। उसे भी पूरा नहीं करने दिया गया। मुख्यमंत्री ने श्री नारायणदत्त तिवारी की अध्यक्षता में (जो स्वयं उत्तराखंड अर्थात् कुमाऊँ-गढ़वाल क्षेत्र के हैं) एक जाँच समिति बना दी है। उसमें प्रबंध समिति के अध्यक्ष को नहीं रखा गया कि वे अपना पक्ष रख सकें। जीर्णोद्धार का काम ठप हो गया। प्रबंध समिति के निर्णय को नज़र-अंदाज़ कर दिया गया, यद्यपि ऐसे मामलों में उसे निर्णय का पूरा अधिकार है। धार्मिक संस्थाओं के प्रबंध में धर्म निरपेक्ष सरकार का यह हस्तक्षेप कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है।

विरोधियों की तीन शिकायतें हैं। (१) बिड़लाजी के जीर्णोद्धार करने से वह 'बिड़ला मंदिर' कहलाने लगेगा। (२) उसका नक्शा उत्तराखंड की स्थापत्य शैली के अनुरूप नहीं है और (३) उसमें लाल पत्थर लगाये जायँगे, जो उत्तराखंड के नहीं हैं। ये शिकायतें लचर हैं। वृन्दावन का गोविन्ददेवजी का मंदिर तत्कालीन ओरछा नरेश ने बनवाया था, किंतु अब यह बात बहुत से लोग जानते तक नहीं। वह गोविन्ददेवजी के मंदिर के नाम ही से प्रसिद्ध है। वृन्दावन का श्रीरंग मंदिर सेठ लक्ष्मीचन्द ने बनवाया था। मथुरा का द्वारिकाधीशजी का मंदिर पारिखजी ने बनवाया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

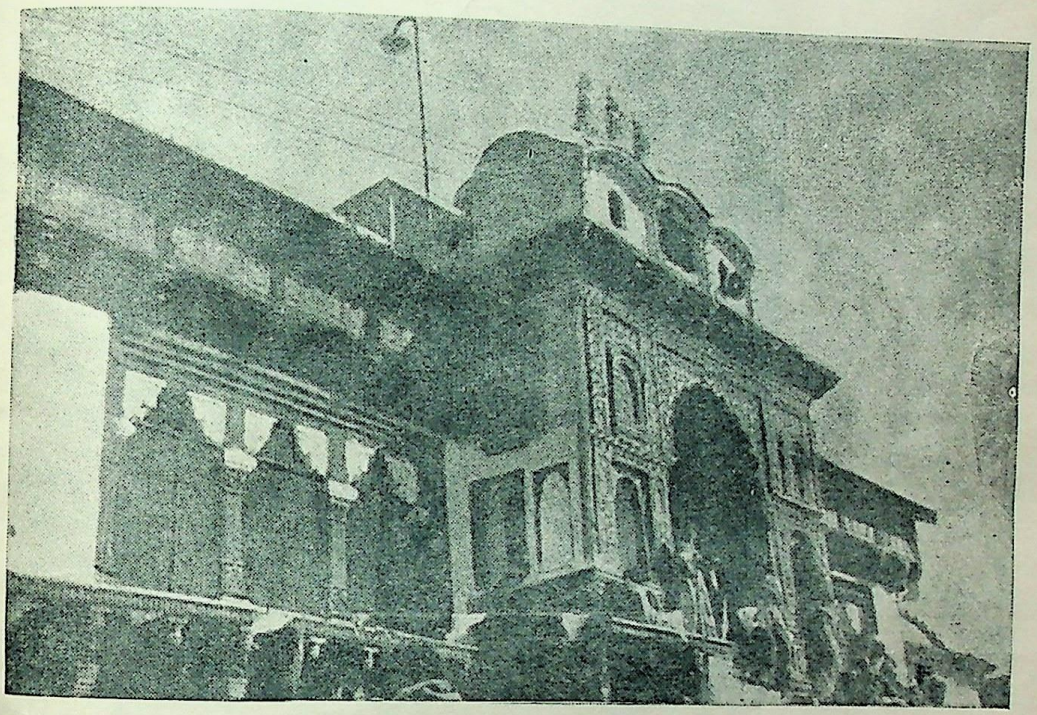

श्री बदरीनाथ मंदिर

उसका फाटक जो मुगल शैली का बना है और जिस पर मुगल शैली के अलंकरणों की खुदाई है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

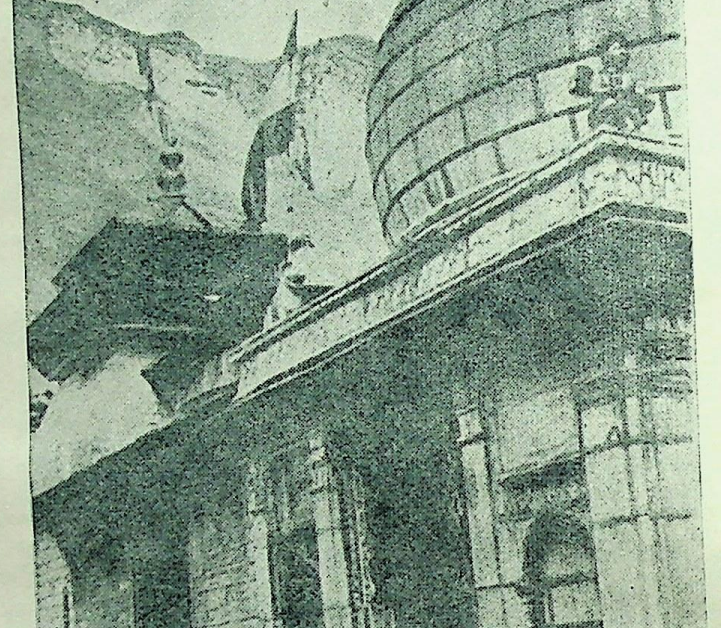

श्री बदरीनाथ मंदिर

गर्भगृह के ऊपर का शिखर तथा मंडप के ऊपर का गुम्बज। चित्र से मालूम हो सकता है कि मंडप कितने छोटे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु ये मन्दिर निर्माणकर्त्ताओं के नाम से नहीं चले। तब केवल जीर्णोद्धार करनेवाले के नाम से भारत-प्रसिद्ध श्री बदरीनाथजी का मंदिर 'बिड़ला मंदिर' के नाम से कैसे प्रसिद्ध हो जायगा? श्री सोमनाथजी का नवनिर्मित मंदिर सरदार पटेल की प्रेरणा से बना, पर वह सोमनाथ मंदिर ही कहलाता है। स्थानीय लोगों ने सेठ डागा के मंडप के पुनर्निर्माण पर अपने नाम का पत्थर लगाने दिया था। इस पर स्थानीय लोगों ने आपत्ति नहीं की थी। उदारमना बिड़लाजी तो अपने नाम का पत्थर भी लगाने को राजी नहीं हैं। वे विशुद्ध धार्मिक भावना से श्री बदरीनाथजी की निष्काम सेवा करना चाहते हैं। उन्होंने देश में इतने नये मंदिर तथा सार्वजनिक उपयोग के भवन बनवाये हैं कि उनका नाम पीढ़ियों तक चलेगा। वे पर्याप्त से अधिक नाम कमा चुके। उन्हें इस प्रकरण में लोकेषणा नहीं है। रही उत्तराखंड शैली की बात। सो मंदिर का बाह्य रूप श्री केदारनाथजी मंदिर पर आधारित है। वैसे हम अखिल भारतीय महत्त्व के हिन्दू मंदिरों को स्थानीय शैली का बनाना वांछनीय या आवश्यक नहीं समझते। वृन्दावन का श्रीरंग मंदिर दक्षिण की शैली पर बना है। यहाँ तक कि उसके मुख्य भाग में लगे बहुत से पत्थर भी दक्षिण से लाये गये थे। किंतु व्रज के उदार लोगों ने वृन्दावन में स्थानीय शैली का न होने के कारण विरोध नहीं किया। हमारी सम्मति में इस अखिल भारतीय महत्त्व के मंदिर में सभी विशिष्ट हिन्दू-मंदिर शैलियों का समावेश होना चाहिए, जिससे यह स्थानीय शैली का न रहकर अखिल भारतीय हिन्दू-मंदिर शैलियों का समन्वय हो। वह गढ़वाल में है, किंतु केवल गढ़वालवालों का नहीं है। वह देश व विदेश के सारे धर्मप्राण हिन्दुओं का पूज्य स्थान और उनकी धार्मिक भावना और विश्वासों का प्रतीक है। इसी उद्देश्य से भगवान् शंकराचार्य ने दक्षिण, पूर्व और पश्चिम को उत्तर से जोड़ने के लिए उसे इस सुदूर उत्तर में स्थापित किया था। रही लाल पत्थर के उपयोग की बात। यह आपत्ति बचकानी है। यदि मंदिर के फर्श पर मकराने का संगमरमर लगाने में आपत्ति नहीं की जाती तो दीवारों पर धौलपुर के लाल पत्थर लगाने पर क्यों आपत्ति की जाय? यदि पूरा मंदिर संगमरमर का बनाया जाय तो उसमें क्या इसीलिए आपत्ति की जायगी कि वह पत्थर उत्तराखंड का नहीं है? ऐसे मंदिरों में वह पत्थर लगना चाहिए जिसका क्षरण वहाँकी जलवायु में कम से कम हो, और जिससे मंदिर की शोभा बढ़े। यह आश्चर्य की बात है कि जो लोग अनगढ़ पत्थरों की दीवारों पर बाहर के चूने या सीमेंट का पलस्तर लगाने में आपत्ति नहीं करते (जिसकी सफेदी प्रतिवर्ष करानी पड़ती है) वे स्थानीय न होने के कारण टिकाऊ और सुन्दर लाल पत्थर के उपयोग का विरोध कर रहे हैं।

किंतु जो लोग धर्म में रुचि ही नहीं लेते, जिन्हें मंदिर बेकार मालूम होते हैं या जो क्षुद्र स्वार्थों या पूर्वग्रहों के कारण विरोध करते हैं उनसे तुलसीदासजी के अनुसार 'ज्ञान कहानी' कहना व्यर्थ है।

श्री बिड़लाजी पर 'होम करते हाथ जलने' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। भलाई करने में वे व्यर्थ के विवाद में पड़ गये। उत्तर प्रदेश की सरकार और गढ़वाल के कुछ संकुचित लोगों और राजनीतिक नेताओं के कारण चाहे उनकी श्री बदरीनाथ के मंदिर संबंधी सेवा की मनोकामना पूर्ण न हो, किन्तु उनकी इस भावना, संकल्प और सदाशयता के लिए धर्म-प्रेमी हिन्दू उनके सदा आभारी रहेंगे। खेद की बात है कि बिड़लाजी के ऐसे महत्त्वपूर्ण और निष्काम कार्य में अदूरदर्शी और संकुचित विचारवालों के द्वारा इतने रोड़े अटकाये जा रहे हैं। इस पवित्र कार्य में बाधा देनेवालों का यह कर्त्तव्य है कि यदि वे बिड़लाजी से यह काम नहीं कराना चाहते तो स्वयं इस काम को करें, और दिखलावें कि वे बिड़लाजी की योजना से अधिक भव्य मंदिर बनवा सकते हैं। वे उसे संगमरमर से बनवाएँ क्योंकि उन्हें लाल पत्थर से 'ऐलर्जी' है। किन्तु क्या उनमें इतनी दम है? यदि नहीं, तो यही कहना पड़ेगा कि उनका सिद्धान्त है कि 'न करेंगे, और न दूसरों को करने देंगे'। जो लोग एक शती से अधिक पहले गिरे हुए जोशीमठ के मंदिर का शिखर भी नहीं बना सके, वे क्या श्री बदरीनाथजी के मंदिर का जीर्णोद्धार करने में समर्थ हैं? हमें दुःख है कि इन विघ्न संतोषियों और संकुचित विचारवालों के कारण श्री बदरीनाथजी के मंदिर के अधबने रह जाने का खतरा पैदा हो गया है जिससे स्थिति और भी विषम और दयनीय हो गयी है। यदि उत्तर प्रदेश की वर्तमान सरकार इस योजना को खटाई में डाल देती है और मंदिर अधूरा रह जाता है तो विशाल हिन्दू जनता और भावी पीढ़ियाँ उसे क्षमा नहीं करेंगी और उसकी निन्दा करती रहेंगी। हम अब भी आशा करते हैं कि उसमें सुबुद्धि आवेगी और वह संकुचित लोगों के मोहपाश से अपने को छुड़ाकर श्री बिड़ला से मंदिर का जीर्णोद्धार कार्य पूरा करने का आग्रह करेगी।

उत्तर प्रदेश सरकार प्रदेश की सभी धार्मिक संस्थाओं, मंदिरों, प्रतिष्ठानों को अपने नियंत्रण में लेने का विचार कर रही है। यदि श्री बदरीनाथ मंदिर की अपनी ही बनायी प्रबंध समिति में उसका ऐसा अनुचित हस्तक्षेप होता है तो सारे प्रदेश के मंदिरों और हिन्दू संस्थानों को क्या कठिनाइयाँ होंगी, इसका पूर्वाभास इस काण्ड से हिन्दू जनता को मिल सकता है। 'भगवान् हमारे रक्षकों से हमारी रक्षा करें!'

देश के वातावरण में हिंसा—समस्तीपुर में तत्कालीन केन्द्रीय मंत्री श्री ललितनारायण मिश्र की हत्या हथगोले या विस्फोटक बम से की गयी। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री अजितकुमार राय पर भी हथगोला फेंककर उनकी हत्या की चेष्टा की गयी, जो सौभाग्य से विफल रही। इन दोनों दुर्घटनाओं के शिकार देश के शीर्षस्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियों में गिने जाते हैं। इससे समाचारपत्रों ने इन घटनाओं का व्यापक प्रचार किया, निन्दा की और चिन्ता व्यक्त की। ऊपर से ये दोनों दुर्घटनाएँ राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित मालूम होती हैं, किन्तु जब तक जाँच का परिणाम न मालूम हो तब तक निश्चय रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। सभी वर्गों ने इनकी भर्त्सना की है और ये देश-हितैषियों के लिए चिन्ता का कारण बन गयी हैं।

किंतु क्या केवल राजनीतिक या बड़े आदमियों की हत्या या हत्या का प्रयत्न ही चिन्त्य है? यदि पिछले कुछ वर्षों के दैनिक समाचारपत्र देखे जायँ तो प्रत्येक अंक में ऐसी घटनाओं के समाचार मिलेंगे। ये हिंसा की घटनाएँ नगरों और गाँवों में होती हैं। अंग्रेजी समाचार-पत्रों में अपेक्षाकृत कम छपती हैं, किन्तु हिन्दी पत्रों में ये बराबर छपा करती हैं। उदाहरण के लिए संयोग से हिन्दी के एक दैनिक का एक अंक हमारे सामने है। उसमें एक दिन में हिंसा की ये घटनाएँ छपी हैं :

१. हथगोला फटने से दो मरे (बरेली)
२. बम विस्फोट (गोरखपुर)
३. व्यापारियों में मारपीट (सुलतानपुर)
४. मंझनपुर में गोलियों का दौर (इलाहाबाद)
५. बदमाशों द्वारा आगजनी और लूटपाट (प्रतापगढ़)
६. बाजार में गोली चली (इलाहाबाद)
७. वृद्ध की हत्या और लूट (मुरादाबाद)
८. फायरिंग से एक आहत (फतेहपुर)
९. दो ग्रामीणों की हत्या—कुएँ से शव बरामद (फतेहपुर)
१०. ग्रामीण की हत्या (देवरिया)
११. क्रुद्ध छात्रों द्वारा ट्रक स्वाहा (फतेहगढ़)
१२. सागर विश्वविद्यालय में दो दलों में संघर्ष—एक मरा।

हमने तस्करी और चोरी के समाचार, जो इस अंक में प्रकाशित हैं, नहीं दिये। हिन्दी के अधिकांश समाचार-पत्रों के संगठित संवाददाता नहीं हैं। अतएव वे प्रायः रामभरोसे रहते हैं। अधिकांश घटनाओं के समाचार उनके पास पहुँचते ही नहीं। संयोग से इस अंक में रेल और बसों की लूट और हिंसा का कोई समाचार नहीं है और न बड़े नगरों के अपराधों का ही कोई समाचार है। ये बहुधा उन नगरों के ही पत्रों में छपते हैं जहाँ ये घटनाएँ होती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में हिंसक अपराधों की संख्या बढ़ रही है और वहाँका जीवन असुरक्षित होता जा रहा है, किंतु वहाँके समाचार अपेक्षाकृत कम प्रचारित होते हैं और होते भी हैं तो अधिकतर केवल स्थानीय पत्रों ही में।

इन हिंसक घटनाओं में एक बात और ध्यान देने की है। मार-पीट के लिए गाँवों में लाठी की जगह देशी तमंचों और पिस्तौलों ने ले ली है। देशी तमंचे कितने सस्ते हैं यह श्री विजय के सम्पादक श्री गोविन्द मिश्र के कथन से स्पष्ट हो जाता है। हाईकोर्ट में उसके साथ पकड़े जाने पर उन्होंने बतलाया कि उन्होंने अपना देशी तमंचा केवल साठ रुपये में एक गुण्डे से खरीदा था। हमारे गाँवों के मित्रों और परिचित लोगों ने बताया कि गाँवों में अब ये तमंचे रखना सामान्य बात हो गयी है। शहरों में भी इनकी कमी नहीं है। तमंचे ही नहीं, अब तो बमों और हथगोलों का भी प्रयोग होने लगा है। इस स्थिति पर प्रयाग के 'भारत' का यह उद्धरण महत्त्वपूर्ण है :

"आप मानें या न मानें, लेकिन यह सच है कि यदि शहर की किसी सड़क पर अनायास राह चलते सौ लोगों को रोक लिया जाय और उनकी तलाशी ली जाय तो कम से कम चालीस के पास तमंचा, बम या चाकू बरामद होगा। तमंचों की तो यह हालत है कि शादी-ब्याह, चुनाव या खुशी के किसी मौके पर बाकायदे इनकी फायरिंग की जाती है। हाल में एक शादी के दौरान आतिशबाजी के रूप में देशी बमों की चर्चा आम है। बम, तमंचा रखना अब फैशन में आ गया है।

"पुलिस से लेकर साधारण व्यक्ति तक जानता है कि अस्सी-नब्बे रुपये हाथ में रखकर जनपद के किसी क्षेत्र में तमंचा प्राप्त किया जा सकता है। दस-पन्द्रह रुपये में एक देशी बम हथियाया जा सकता है।

"यदि ध्यान से देखा जाय तो पिछले एक वर्ष से शहर में बमकांडों की संख्या में वृद्धि हुई है। गोली चलना तो आम बात हो गयी है। चाकू का प्रयोग कम होता जा रहा है। पुलिस बम पकड़ती है, तमंचा बरामद करती है, लेकिन इसके स्रोत का पता लगाने का प्रयास नहीं करती। इनके बढ़ते हुए प्रयोग से बढ़ रही जान-माल की असुरक्षा को देखते हुए आवश्यकता इस बात की है कि अलग से एक दस्ता कायम करके इस रोग का जड़ से उन्मूलन किया जाय।"

यह इलाहाबाद का वर्णन है, किन्तु, कम या अधिक, यही स्थिति अन्य नगरों में भी है। स्थिति इतनी बिगड़ गयी है कि अब विद्यार्थी भी इन्हें रखने लगे हैं। हमसे कितने ही जानकार लोगों ने बतलाया कि विश्वविद्यालयों या बड़े कालिजों के शायद ही कोई छात्रावास हों जिनमें दस-बीस छात्रों के पास देशी तमंचे न हों। हमारी शिक्षा में भावनात्मक उत्तेजना पर संयम रखना सिखलाया ही नहीं जाता। समाज में भी तनिक सी उत्तेजना पर घातक हथियार चला देना सामान्य बात हो गयी है। हम यहाँ पेशेवर अपराधियों की चर्चा नहीं करते। पुलिस के लिए उनका नियंत्रण अपेक्षाकृत सरल है। किन्तु सारे समाज में—यहाँ तक कि तथाकथित 'भले आदमियों' के लड़कों में—इस प्रवृत्ति का बढ़ना अत्यन्त चिन्ताजनक है। इससे जनता में असुरक्षा की भावना बढ़ रही है। ग्रामों की हिंसक घटनाओं के अतिरिक्त अब बड़े नगरों में रिक्शे पर या पैदल जाती हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिलाओं के गले से, चाकू या तमंचा दिखाकर, या जबर्दस्ती सोने का हार खींच लेने, तनिक भी कहा-सुनी पर चाकू या तमंचा चला देने की घटनाओं के समाचार बहुधा सुने जाते हैं। वास्तव में देश में हिंसा का वातावरण इन सब बातों से बढ़ रहा है। हमसे कई लोगों ने कहा कि पुलिस से न संरक्षण प्राप्त होता है और न वह अपराधी को पकड़ने में सामान्यतः सफल होती है। अतएव हमें विवश होकर अपनी रक्षा के लिए हथियार रखने पड़ते हैं। अतएव एक दुश्चक्र उत्पन्न हो गया है। कुछ तत्त्व किसी कारण से अवैधानिक हथियार रखते हैं। उनसे दूसरों को भय है। पुलिस किस-किस की रक्षा करे? अतएव अपनी रक्षा स्वयं करने के लिए सामान्य रूप से कानून भंग करने की इच्छा न करनेवाले भी अवैधानिक हथियार रखने लगे हैं। उन्हें देखकर और लोग भी उनका अनुकरण करने लगे हैं। परिणाम यह है कि असुरक्षा की भावना और हिंसा का वातावरण बढ़ता जा रहा है।

यदि पुलिस जागरूक है (और हम अपनी पुलिस की दक्षता में विश्वास करते हैं) तो उसे जानना चाहिए कि ये देशी तमंचे, बम और चाकू कहाँ बनते हैं और इनका वितरण या व्यापार कैसे होता है। यदि वह नहीं जानती तो उसे इस कार्य को प्राथमिकता देकर अवैध हथियार बनानेवालों और वितरकों का पता लगाना चाहिए। जैसा कि 'भारत' ने सुझाव दिया है, उसे एक विशेष संगठन बनाकर राज्य में इन अवैध हथियार बनानेवालों का पता लगाकर उन्हें समाप्त करना चाहिए।

दूसरा प्रश्न यह है कि यद्यपि गाँवों के भी कुछ कुशल लुहार तमंचा बना सकते हैं तथापि उनके लिए वे कारतूस या गोली नहीं बना सकते। उन्हें बनाने के लिए दुर्लभ रासायनिक पदार्थों और विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इन देशी तमंचों के लिए कारतूस और गोलियाँ कहाँ से मिलती हैं? यदि कम से कम इन कारतूसों और गोलियों का प्राप्त करना असंभव या दुःसाध्य कर दिया जाय तो कारतूस-हीन तमंचे बेकार हो जायँगे। अतएव कारतूसों के बनानेवालों या अवैध रूप से उन्हें प्राप्त करने के स्रोतों का पता लगाकर उन्हें समाप्त करना और भी अधिक आवश्यक है।

किन्तु बमों की समस्या फिर भी बनी रहेगी। यह एक पहेली है कि जनता को अधिकाधिक संख्या में बम या हथगोले कैसे प्राप्त हो रहे हैं। इसका पता लगाना भी प्रस्तावित पुलिस संगठन का विशेष कर्तव्य होना चाहिए।

तमंचे, बम और हथगोले भीषण हथियार हैं, किन्तु झगड़ों और दंगों में चाकुओं, लोहे की मोटी सरियों (डंडों) और लाठियों आदि का प्रयोग भी होता है। इनका उपयोग रोकना अपेक्षाकृत कठिन है। किन्तु घातक चाकुओं के निर्माण पर पुलिस बहुत कुछ नियंत्रण कर सकती है क्योंकि घातक चाकू राज्य में गिने-चुने स्थानों में ही बनाये जाते हैं।

पुलिस को छापा मारकर अवैध हथियारों को बरामद करने का एक विशेष अभियान चलाना चाहिए।

हम यह सब इसलिए लिख रहे हैं कि इस स्थिति ने वैसे ही देश में हिंसा का वातावरण बना दिया है, और समाज की आर्थिक गिरावट, भ्रष्टाचार आदि ने जनता में काफी असंतोष उत्पन्न कर दिया है। कुछ लोगों में गहरी कुंठा उत्पन्न हो गयी है। अपराध संबंधी चलचित्रों और उपन्यासों के कारण युवकों को अपराध करने की नयी-नयी विधियाँ मालूम होती रहती हैं। इन कारणों से भविष्य में हिंसा का वातावरण बढ़ने की आशंका है। इसलिए इस समस्या को देश और जनता के हित में शासन को प्राथमिकता देना बहुत आवश्यक है।

गांधीजी के देश में राजनीति में भी हिंसा का समावेश हो गया है, जो अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण और देश की संस्कृति और आदर्शों के एकदम प्रतिकूल है। वह हिंसा जनमत ही से रोकी जाती है, किन्तु जब जनता के दैनन्दिन जीवन में हिंसा का वातावरण बन जाय तब वह इतनी हिंसा-निरपेक्ष और हृदयहीन हो जायगी कि राजनीतिक हिंसा के विरुद्ध उसमें जनमत बनाना यदि असाध्य नहीं तो दुःसाध्य अवश्य हो जायगा।

हमारे और विदेशों के टेलीफ़ोन— हमारे पास वर्षों से अपना टेलीफ़ोन है। कुछ खराबियाँ पहले भी थीं, पर इधर चार-पाँच वर्ष से और किसी क्षेत्र में उन्नति हुई हो या न हुई हो, टेलीफ़ोन के मिजाज़ बिगड़ने में बड़ी उन्नति हुई है। लखनऊ की बेगमों और पाश्चात्य देशों की 'प्राइमा डोनाओं' (नृत्यदल की प्रधान नर्तकियों) की नाज़ुक-मिजाज़ी तथा नखरों के लिए प्रसिद्धि रही हैं। हमारे टेलीफ़ोन इन बातों में उनसे स्पर्द्धा कर सकते हैं। दिन में हमें आठ-दस बार उठकर अपना नम्बर बतलाने पर 'राँग नम्बर' सुनना पड़ता है, यहाँ तक कि बाहर के टेलीफ़ोन के (जो स्थानीय एक्सचेंज से लगाये जाते हैं) उनके लगाये नंबर भी गलती से हमारे टेलीफ़ोन में लग जाते हैं। एक्सचेंज ने कहा, "२३९१४, आप के लिए बाहर से 'काल' है।" मुझे कहना पड़ा, "मेरा नम्बर २३८१४ है।" राँग नम्बर कहकर टेलीफ़ोन बन्द हो गया। कभी बात करनेवाले की आवाज़ सुनायी पड़ती है पर उसे हमारी बात नहीं सुनायी पड़ती। और कभी इसका उल्टा होता है। कभी जैसे ही कोई नम्बर मिलाया और सुननेवाले ने फ़ोन उठाया कि फ़ोन कट गया और एक 'कॉल' हमारे हिसाब में चढ़ गयी। कभी हम मिलाते परिचित ऊधो से, और मिल जाता है अपरिचित माधो से। कभी लाइनें उलझ जाती हैं और हमें नम्बर तो नहीं मिलता पर दूसरों की बातें सुनायी पड़ती हैं। कभी-कभी, विशेषकर जब दो उच्च वर्ग की महिलाओं की बातें सुनने को मिल जाती हैं तब घर बैठे मनोरंजन या खीझ हो जाती है। जब कोई नम्बर नहीं मिलता तब 'शिकायत' को फ़ोन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर मिलता है-'यह नम्बर बिगड़ा हुआ है'। हमारा फ़ोन ही बहुधा बिगड़ा रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हम अपने टेलीफ़ोन के नखरे सहते सहते परेशान हो गये हैं। कभी-कभी इतनी झुंझलाहट आती है कि उसे कटवा दें, किन्तु हमें प्रायः पचास वर्ष की फ़ोन की आदत है, और हम ऐसे कुटीचर के लिए मित्रों से सम्पर्क का यही एक मात्र साधन रह गया है। आजकल जीवन में इतनी परेशानियाँ बढ़ गयी हैं कि यह सोचकर चुप हो जाते हैं कि यह युग ही परेशानियों का है। नेता और अधिकारी लम्बे-लम्बे भाषण देते और इस सेवा के विस्तार के बढ़े हुए आँकड़े देते हैं, किन्तु कार्यकुशलता बढ़ने के बजाय दिनोंदिन घटती जाती है।

हमें ३१ मार्च १९७१ के बाद के भारत के आँकड़े नहीं मिले। उनके अनुसार उस दिन भारत में १२,१७,००० टेलीफ़ोन निजी व्यक्तियों, संस्थानों और सरकारी कार्यालयों में लगे थे।

संसार के अंतिम आँकड़े हमें १९६९ ही के मिल सके। कुछ प्रमुख देशों के ये हैं :—

देश	टेलीफ़ोन	जनसंख्या
अमरीका (सं० रा०)	११करोड़५२ लाख	२०करोड़३२ लाख
जापान	१ ,, ९९ ,,	१० ,, ३५ ,,
इंग्लैण्ड	१ ,, ४१ ,,	५ ,, ५७ ,,
पश्चिमी जर्मनी	१ ,, २५ ,,	१ ,, ७३ ,,
रूस	१ ,, २० ,,	२४ ,, २७ ,,
कनाडा	९३ लाख	२ ,, १४ ,,
इटली	८५ ,,	५ ,, ३७ ,,
फ्रांस	८१ ,,	५ ,, ८ ,,
स्पेन	४१ ,,	३ ,, ३३ ,,
स्वीडन	४१ ,,	८१लाख
आस्ट्रेलिया	३६ ,,	१करोड़ २६लाख
भारत (१९७२ में)*	१४ ,, ८०हजार	५४करोड़ ६९लाख

इस तालिका से स्पष्ट है कि भारत जनसंख्या में सब से बड़ा होने पर भी टेलीफ़ोनों की संख्या में सबसे नीचे है।

सार्वजनिक सेवा में परिमाण और गुण, दोनों देखे जाते हैं। परिमाण में तो स्थिति स्पष्ट है, किन्तु गुण या दक्षता का यह हाल है कि हमें कभी-कभी लखनऊ से इलाहाबाद या गोरखपुर की ट्रंककाल ५-६ घंटों तक नहीं मिलती और कई बार तो ऊबकर हमें उसे रद्द कराना पड़ा है। बहुधा एक्सचेंज से यह उत्तर मिलता है कि 'लाइन खराब है।' इन सब बातों से उपभोक्ताओं पर टेलीफ़ोन की अकुशलता की छाप सी लग गयी है। जब लखनऊ से इलाहाबाद और गोरखपुर को ट्रंककाल मिलने में इतनी दिक्कत होती है, तब यदि कलकत्ता, हैदराबाद, पूना, बंगलोर या बंबई टेलीफ़ोन करना चाहें तो सामान्य लोगों की क्या दशा होगी इसकी कल्पना की जा सकती है। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि बड़े-बड़े धनिकों और विशेष विभागों के अफ़सरों को ट्रंककाल शीघ्र मिल जाते हैं। यह रहस्य है जो सामान्य जनता को उलझन ही में नहीं डाल देता उसमें कभी-कभी आक्रोश भी उत्पन्न करता है।

यही नहीं, सहायता आदि के नम्बर लगाने पर या तो घंटी बजती रहती है और फ़ोन कोई उठाता ही नहीं, अथवा उससे 'एंगेज्ड' की आवाज आती है। दिन में कम से कम आधे दर्जन ग़लत नम्बर हमें उठाने पड़ते हैं और कभी-कभी हमारे लगाये नम्बर भी गलत लग जाते हैं और हमें उनका भी दाम देना पड़ता है। 'आन करे कोऊ कर्म, अरु आन पाव फल भोग।' यही नहीं, कभी-कभी दूरभाष की लाइनें उलझ जाती हैं और हमें दूसरों का वार्तालाप काफ़ी देर तक सुनना पड़ता है। फिर, कभी-कभी वह अकारण 'मृत' हो जाता है और फिर घंटे-दो घंटे बाद अपने आप ही जीवित हो जाता है। डाक-तार विभाग अपनी दरें अनाप-शनाप बढ़ाता जाता है क्योंकि यहाँ उसका एकाधिकार है और वह सरकारी है। उसमें सरकारी तन्त्र के गुण तो नाम मात्र को हैं, अवगुणों की कमी नहीं है। सुनवाई भी कठिनता से होती है। यदि शिकायत करने का कोई साहस करे तो उसका कष्ट और बढ़ जाय। अतएव इस भाग्यवादी देश में सिवाय भाग्य के भरोसे रहने के और कोई उपाय नहीं है। बहुधा यह भी होता है कि जितने फ़ोन किये जाते हैं उनसे कहीं अधिक का बिल आ जाता है। किन्तु उसे देना ही पड़ता है, नहीं तो फ़ोन कट जाय।

डाक-तार विभाग अपनी दरें बराबर बढ़ाता जाता है किन्तु दक्षता उत्पन्न करने और सेवा के सुधार की ओर समुचित ध्यान नहीं देता, और यदि वह ध्यान भी देता है तो न मालूम किन कारणों से उसका कोई स्थायी और ठोस परिणाम नहीं निकलता। उसके विस्तार के आँकड़े और लुभानेवाली योजनाओं के प्रचार में जितना श्रम और शक्ति व्यय की जाती है, यदि वह उसके सुधार में लगायी जाय तो विभाग और सरकार की साख कहीं अधिक बढ़े।

अमरीका में टेलीफ़ोन सेवा में इतनी कुशलता है कि कुछ ही क्षणों में न्यूयार्क का व्यक्ति दूसरे छोर पर स्थित सेन फ्रेंसिस्को में अपने मित्र से बात कर लेता है। वहाँ टेलीफ़ोन की दरें भी, उस देश की आय और व्यय के स्तर को देखते हुए, अपेक्षतया भारत से कम हैं। वहाँ टेलीफ़ोन सरकार द्वारा संचालित नहीं होते। उनका संचालन कम्पनियाँ करती हैं और वे अपनी सेवा की दक्षता और साख के प्रति अत्यन्त जागरूक हैं। हम एक स्वतन्त्र लेख में अमरीका की टेलीफ़ोन सेवा का परिचय अपने पाठकों को देंगे। हम स्वयं राष्ट्रीयकरण के पक्ष में हैं, किन्तु सरकार यदि चाहती है कि राष्ट्रीयकरण लोकप्रिय हो तो उसके लिए आवश्यक है कि वह राष्ट्रीयकृत सेवाओं की दक्षता और कार्य-कुशलता को उच्च स्तर पर लाने का सफल प्रयत्न करे।

*हिन्दुस्तान समाचार वार्षिकी के अनुसार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मयोगी तुलसी और कर्मयोगी गांधी

डा० लक्ष्मीनारायण दुबे

तुलसी और गांधी दोनों महात्मा थे। तुलसी गांधी से तीन सौ वर्ष पूर्व पैदा हुए थे। गांधीजी तुलसी से प्रभावित थे। जहाँ हमने सन् १९६९ में गांधीजी की शत वार्षिकी मनायी थी, वहाँ सन् १९७४ में 'मानस' की चतुश्शती मनायी है।

दोनों महान् सन्त थे। दोनों में निर्भयता, विनम्रता, सादगी, परोपकार की प्रवृत्ति और चरित्रनिष्ठा मिलती है। नेहरूजी ने गांधीजी के विषय में लिखा था कि वह जहाँ बैठते थे, वह मन्दिर बन जाता था और वह जहाँ चलते थे, वह भूमि पवित्र हो जाती थी। तुलसी ने संत की व्याख्या इस प्रकार की है—

सरल बरन भाषा सरल, सरल अर्थ समनानि।
तुलसी सहजै संतजन, ताहि यही पहिचानि॥

दोनों ने अपने युग तथा अनुयायियों को इस प्रकार प्रभावित किया है—

बन्दौं संत समान चित, हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ॥

तुलसी और गांधी दोनों में काफी समानता है। दोनों को किसी से कुछ लेना-देना नहीं था। (लैबे को एक न दैबे को दोऊ)। दोनों त्याग की प्रतिमूर्तियाँ थीं। दोनों का जनप्रेम महनीय था। गांधी यदि आधे-नंगे फकीर और 'लंगोटी वाले' कहलाते थे तो तुलसी सिर्फ 'मलीन कथरी' अथवा 'करवाधर कर' तथा 'माँगि के खैबो मसीत को सोइबो' एवं 'नीच निरादर भाजन कादर कूकर-टूकन' के लिए ललात कहलाये। गांधीजी यदि अपना परिवार त्याग आश्रमों में या हरिजनों के बीच रहने के लिए झोपड़ी में रहे तो तुलसी भी 'सुत दार अगार सखा परिवार—सबकी ममता तजि के' रहे।

गांधीजी 'महात्मा', 'बापू' तथा 'राष्ट्रपिता' कहलाते थे। तुलसी भी 'महात्मा', 'महाकवि' और 'भक्त' कहलाते थे। गांधीजी कहते थे—मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है। तुलसी का सन्देश उनका 'मानस' है। तुलसी ने न कोई मठ स्थापित किया और न कोई सम्प्रदाय ही चलाया। वे इन सबके विपरीत थे। गांधीजी की भी यही पुनीत वृत्ति थी: 'अगर गांधीवाद सम्प्रदाय का ही दूसरा नाम है तो वह मिटा देने के काबिल है। मरने के बाद अगर मुझे मालूम हो कि मैंने जिन चीजों की हिमायत की थी, वे बिगड़कर सम्प्रदायवाद बन गयी हैं तो मेरी आत्मा को गहरी चोट पहुँचेगी। हमें तो चुपचाप काम कर जाना है। कोई यह न कहे कि मैं गांधी का अनुयायी हूँ। मैं अपना ही अनुयायी बन जाऊँ तो बहुत है। मैं जानता हूँ कि मैं अपना कितना अपूर्ण अनुयायी हूँ क्योंकि मैं जिन विश्वासों की हिमायत करता हूँ, उन पर अमल नहीं कर सकता। आप लोग अनुयायी नहीं हैं, बल्कि स्वाध्याय में, धर्मयात्रा में, सत्य की शोध में और सेवा-कार्य में मेरे साथी हैं।'

दोनों में अतीव विनीत वृत्ति थी। गांधीजी मसीहा, पैगम्बर और बुद्ध कहलाते थे। परंतु वे अपने आप को ऐसा नहीं मानते थे: 'मुझे आज का बुद्ध कहकर मुझ पर झूठा आरोप लगाया जाता है। मैं एक मामूली आदमी हूँ। फिर भी मेरा यह दावा है कि मैंने जिन्दगी में काफी तजुर्बा हासिल किया है लेकिन इसी वजह से प्रार्थना में आये हुए लोगों में से किसी से भी ऊँचा होने का मेरा दावा नहीं है। मैं हिन्दुओं और मुसलमानों का या हिन्दुस्तान की सारी जातियों का एक-सा सेवक हूँ।' तुलसी भारत के श्रेष्ठ महाकवि होते हुए भी अपने को अयोग्य ही घोषित करते हैं—

कवि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू।
सकल कला सब बिद्या हीनू॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहौं लिखि कागद कोरे॥

वे अपने कथन का स्पष्टीकरण 'पार्वती मंगल' में करते हैं—

कबित रीति नहिं जानउँ कबि, न कहावउँ,
संकर चरित सुसरित मनहिं अन्हवावउँ॥

दोनों के आचार-विचार में पर्याप्त समानता है। दोनों 'राम' के परम भक्त थे। दोनों ने 'राम नाम' को 'ओषिधि' माना है। तुलसी कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकृपा नासहिं सब रोगा।
जौ एहि भाँति बनै संयोगा॥
सदगुर बेद बचन बिस्वासा।
संजम यह न बिषय कै आसा॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी।
अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहि सो रोग नसाहीं।
नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

तुलसी-गांधी के एतद्विषयक विचारों में अद्भुत सादृश्य है—'मेरा यह भी विश्वास है कि रामनाम ही सारी बीमारियों का सबसे बड़ा इलाज है। इसलिए वह सारे इलाजों से ऊपर है। चारों तरफ से मुझे घेरनेवाली आग की लपटों के बीच तो भगवान् में जोती-जागती श्रद्धा की मुझे सबसे बड़ी जरूरत है। वही लोगों को इस आग को बुझाने की शक्ति दे सकता है। अगर भगवान् को मुझसे काम लेना होगा तो वह मुझे जिन्दा रखेगा, वरना मुझे अपने पास बुला लेगा।'

गांधीजी के राम तुलसी के राम से प्रभावित होते हुए भी उनसे पृथक् हैं। गांधीजी ने तुलसी के रामराज्य को लोकतंत्रात्मक माना था। तुलसी भी कहते हैं—

जो पाँचै मत लागै नीका।
देहु हरषि हिय रामहिं टीका॥

गांधीजी के लिए रामराज्य आदर्श था। वे इस स्थिति पर भारत को पहुँचा देना चाहते थे—

भूमि सप्त सागर मेखला।
एक भूप रघुपति कोसला॥
भुवन अनेक रोम प्रति जासू।
यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी।
यह बरनत हीनता घनेरी॥
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी।
फिरि एहि चरित तिन्हहुँ रति मानी॥
सोउ जाने कर फल यह लीला।
कहहिं महामुनिबर दमसीला॥
रामराज कर सुख सम्पदा।
बरनि न सकहिं फनीस सारदा॥
सब उदार सब परउपकारी।
बिप्र चरन सेवक नर नारी॥
एक नारि ब्रत रत सब झारी।
ते मन बच क्रम पति हितकारी॥
दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस, रामचंद्र के राज॥
फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन।
रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई।
सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा।
अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा।
गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥
लता बिटप माँगें मधु चवहीं।
मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी।
त्रेता भइ कृतजुग कै करनी॥
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी।
जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी।
सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥
सागर निज मरजादा रहहीं।
डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा।
अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥
बिधु महिपूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
माँगे बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज॥

गांधीजी ऐसे नरेश को पसंद करते थे जिसमें साधुमत तथा जनमत का मेल हो—

करिय साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥

उसका प्रजावत्सल होना अनिवार्य है—

सोचिय नृपति जो नीति न जाना।
जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥

गांधीजी ने 'हरिजन सेवक' के १९-५-१९४६ के अंक में लिखा था कि "तुलसीदासजी हमारे लिए अपनी अमर रामायण छोड़ गये हैं। वेदव्यासजी ने महाभारत की शकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हमारे लिए मानव जाति का इतिहास छोड़ा है। ये सब निरे कवि नहीं थे। ये तो गुरु थे।" गांधीवाद का सबसे बड़ा तत्त्व है: "पावन साध्य के लिए पावन साधन का प्रयोग। विचार, शब्द तथा कर्म में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए।" तुलसी की 'दोहावली' में यही हैं—

सूधे मन, सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि, रघुबर प्रेम-प्रसूति॥
बेष-बिषद, बोलनि मधुर, मन कटु, करम मलीन।
तुलसी राम न पाइये, भए बिषय-जल-मीन॥
बचन-बेष ते जो बनै, सो बिगरै परिनाम।
तुलसी मन ते जो बनै, बनी बनाई राम॥

दोनों ने धर्म को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है। दोनों का प्रधान कार्य-क्षेत्र धर्म ही था। इस ओर गांधीजी राजनीति के माध्यम से आये और तुलसी काव्य की रज्जु पकड़कर। तुलसी धर्मयोगी थे तो गांधी कर्मयोगी। तुलसी ने व्यावहारिक रूप में मर्यादा-धर्म को प्रतिष्ठित किया। उनका धर्म चार सौ वर्षों के बाद भी जीवित है। उनका 'मानस'-धर्म आज का राष्ट्रधर्म बन गया है। गांधीजी कर्म को ही धर्म मानते थे। उन्होंने अपने विषय में लिखा है: "मुझे लोग कर्मयोगी कहते हैं। मैं नहीं जानता कि मैं कर्मयोगी हूँ या और कोई योगी। लेकिन काम के सिवा मैं जी नहीं सकता। इतना ही मैं जानता हूँ। जब कोई बात मेरे दिल में बैठ जाती है तो जब तक मैं उसे अमल में न लाऊँ, मुझे चैन नहीं पड़ती।"

धर्म के क्षेत्र में तुलसी की अपेक्षा गांधीजी अधिक क्रान्तिकारी थे। तुलसी का धार्मिक समन्वय हिन्दू जाति तक ही परिमित है। परन्तु गांधीजी का सम्पूर्ण मानव जाति के लिए। डा० ग्रियर्सन ने लिखा है कि बुद्धदेव के बाद भारत में सबसे बड़े लोकनायक तुलसीदास थे। तुलसी को लोकनायकत्व प्रदान करनेवाली मुख्य आधार-शिला उनकी समन्वय बुद्धि थी। तुलसी ने शैव एवं वैष्णव मत, वैष्णव एवं शाक्त मत, रामावत सम्प्रदाय तथा पुष्टि मार्ग, अद्वैतवाद एवं विशिष्टाद्वैत, ज्ञान एवं भक्ति, सगुण तथा निर्गुण, नर व नारायण, द्विज व शूद्र और राजा एवं प्रजा का समन्वय किया था। सीता के द्वारा शक्ति रूपा पार्वती की स्तुति करवाकर तुलसी ने अपनी सात्विक समन्वयात्मक दृष्टि का ज्वलंत परिचय दिया है—

नहिं तव आदि मध्य अवसाना।
अमित प्रभाव बेद नहिं जाना।
भव भव बिभव पराभव कारिनि।
बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि॥

गांधीजी ने हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख आदि सभी धर्मों में एकता स्थापित की।

गांधीजी ने तो अछूतोद्धार का बीड़ा ही उठाया था। उन्होंने इस दिशा में सर्वाधिक कार्य किया। 'मानस' में निषाद तथा कोल-किरातों का उल्लेख मिलता है। मछली पकड़ने वाली जाति निषाद को समाज अस्पृश्य मानता था। गुह कहता है—

(क) कपटी कादरु कुमति कुजाती।
लोक बेद बाहेर सब भाँती॥
(ख) लोक बेद सब भाँतिहि नीचा।
जासु छाँह छुइ लेइय सींचा॥

इन जातियों को राम ने अपने सहज प्रेम से समाज में सम्मानित स्थान दिलाया। केवट गुह अपनी लघुता के कारण गुरु वशिष्ठ को दूर से प्रणाम करता है, परन्तु वे उसको गले लगा लेते हैं—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू।
कीन्ह दूरि ते दंड प्रनामू॥
रामसखा रिषि बरबस भेटा।
जनु महि लुठत सनेह समेटा॥

राम को ये सब अत्यन्त प्रिय थे। गांधीजी भी 'हरिजन 'सेवक' के २२-८-१९३६ के अक में लिखते हैं—"हिन्दू साहित्य और, जहाँ तक मैं जानता हूँ, ईसाई साहित्य भी इस विचार से भरा पड़ा है कि संसार जिन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखता है, भगवान् को वह प्रिय हैं। वह दुखियों का बेली है, असहायों का सहायक है, निर्बल का बल है। इस अर्थ में उन करोड़ों मनुष्यों से बढ़कर और कौन हरिजन नाम के अधिकारी हो सकते हैं जिन्हें हमने अपने झूठे अहंकार के वश होकर समाज से बहिष्कृत कर रखा है?"

गांधीजी कहते थे कि हर एक अपनी श्रद्धा और धर्म के अनुसार ईश्वरार्चन किया करे। तुलसी भी यही कहते हैं—

जे श्रद्धा संबल रहित, नहिं संतन कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति, जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधीजी ने 'यंग इंडिया' के ४-११-१९२६ के अंक में लिखा था कि यदि मनुष्य आत्मानुभव अर्थात् सत्यानुभव करना चाहता है तो वह तभी हो सकता है जब वह अपने शरीर से पूर्णतः अनासक्त हो जाय अर्थात् समस्त अन्य प्राणी उससे अपने आप सुरक्षित मानने लग जायँ। तुलसी भी 'वैराग्य संदीपनी' में यही बात कहते हैं—

अहंबाद मैं तें नहीं, दुष्ट संग नहिं कोइ।
दुख ते दुख नहीं ऊपजै, सुख ते सुख नहिं होइ॥
मैं तैं, मेट्यो मोह तम, उगो आतमा भानु।

गांधीजी ने सत्य को ही परमेश्वर माना था। तुलसी भी यही तत्त्व चिन्तन करते हैं—

(क) सत्य मूल सब सुकृत सुहाए।
(ख) धरमु न दूसर सत्य समाना॥

गांधीजी ने लिखा है कि सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी ज्यों-ज्यों सेवा की जाती है त्यों-त्यों उसमें अनेक फल आते हुए दिखाई देते हैं। उनका अंत ही नहीं होता। ज्यों-ज्यों हम गहरे पैठते हैं त्यों-त्यों उनमें से रत्न निकलते हैं, सेवा के अवसर हाथ आते ही रहते हैं।

तुलसी और गांधी दोनों ही अहिंसा को विशेष महत्त्व देते हैं। गांधीजी ने तो राष्ट्रीय आन्दोलन की लड़ाई ही अहिंसा के माध्यम से सफलतापूर्वक लड़ी। तुलसी कहते हैं—

परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा।

गांधीजी ने 'हरिजन सेवक' के ११-२-१९३९ के अंक में लिखा था कि सारा समाज अहिंसा पर उसी प्रकार कायम है जिस प्रकार कि गुरुत्वाकर्षण से पृथ्वी अपनी स्थिति में बनी हुई है।

गांधीजी परोपकार को महा धर्म मानते थे। उन्होंने 'हरिजन सेवक' के १४-९-१९४७ के अंक में लिखा था कि भलाई अपने बल पर जिन्दा रहती है, बुराई नहीं। बुराई भलाई के सहारे और उसके आसपास पनपती है। जब भलाई का सहारा हटा लिया जाता है तो बुराई अपनी मौत मर जाती है। तुलसी भी महत्त्वांकन करते हैं—

(क) श्रुति कह परम धरम उपकारा।
(ख) परहित सरिस धरम नहिं भाई।
पर पीडा सम नहिं अधमाई॥

प्रेम जीवन का सार है। गांधीजी ने 'हरिजन सेवक' में लिखा था कि प्रेम का पंथ पावक की ज्वाला है। उसे देखकर मनुष्य पीछे भागता है, पर जो उसके अन्दर चला गया है, उसे तो महा सुख ही मिलता है, जलता तो देखने वाला है। तुलसी ने भी लिखा है—

का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहियतु साँच।
काम जो आवइ कामरी का लै करै कमाँच॥

क्षत्रिय श्रेष्ठ भरत निम्न वर्ण निषाद का प्रेमपूर्वक आलिंगन करते हैं—

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती।
लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥
लोक बेद सब भाँतिहि नीचा।
जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता।
मिलत पुलक परिपूरित गाता॥

तुलसी और गांधी दोनों ने ही भाषा का मूल्य समझा। तुलसी ने संस्कृत को छोड़कर 'भाषा' में 'मानस' की रचना की। राष्ट्रपिता ने राष्ट्रभाषा के प्रति अपना सम्पूर्ण ममत्व तथा अनुराग उड़ेल दिया था। तुलसी के विपरीत उनके समकालीन कवि केशव 'भाषा' में काव्य-रचना करने के कारण अपनी भर्त्सना करते हैं—

भाषा बोलि न जानई जिनके कुल को दास।
भाषा-कबि भो मंदमति तिहि कुल केशवदास॥

तुलसी के युग के संस्कृत के पण्डित भाषा-कविता का उपहास करते थे—

भाषा भनिति भोरि मति भोरी।
हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी॥

राजशेखर ने 'भाषा' अर्थात् प्राकृत में 'कर्पूरमंजरी' की रचना करते समय संस्कृत प्रेमी भाषा-विरोधियों को तुलसी के समान ही उत्तर दिया था—

अत्थविसेसा ते चिअ सद्दा ते चेअ परिप्फंदा वि।
उत्तिविसेसो कव्वं भासा जा होइ सा होउ॥

(प्राकृत में भी संस्कृत की सी विशिष्ट अर्थ-योजना होती है, रूप-परिवर्तन के बावजूद वे ही शब्द रहते हैं।

[शेष पृष्ठ १६४ पर देखिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थाई देश में रामायण नृत्य एवं संगीत

श्री मन्त्री त्रमोद (बैङ्काक)

अनु०—श्री बाबूराम वर्मा

रामगाथा प्राचीन काल में थाई देश पहुँची और थाई-वासियों ने अपने मनोरंजन के लिए इसका उपयोग किया। थाई-वासियों ने इस गाथा को 'रामकीर्ति' नाम दिया। पहले रामगाथा को खाल के टुकड़ों की सहायता से, जिन्हें गाथा में आये पात्रों के अनुसार काट कर बनाया जाता था, प्रकाश में, संगीत और काव्य पाठ के साथ दिखलाया जाता था। खाल को कथा के अनुसार व्यक्ति हिलाते-डुलाते रहते थे। इस प्रस्तुति को 'नङ्' अथवा 'नङ् यई' कहा जाता था। बाद में चलकर प्रस्तुतीकरण में व्यक्तियों का उपयोग किया जाने लगा। नृत्य और वेश-भूषा भी जोड़े गये और प्रस्तुतीकरण स्थल में भी उपयुक्त परिवर्तन किया गया। तब प्रस्तुतीकरण को 'खोन्' कहा जाने लगा।

रामकीर्ति के खोन् नाटकों में चार विभिन्न प्रकार का नृत्य किया जाता है। इनमें प्रथम है, मानव अथवा देवता की गति, जो भव्य, स्वाभिमानी, वीर, भद्र और सौम्य होती है। दूसरा है मानवी अथवा देवी की गति, जो सौम्य, समर्पित और स्त्रियोचित ढंग से भद्र होती है। राक्षसों की गतियाँ बलवान, भयंकर और उद्धत होती हैं। वानर की गति व्यग्र और तीव्र होती है क्योंकि वास्तविक वानर-व्यवहार ही यहाँ कला के रूप में परिणत कर दिया जाता है। नृत्य की ये चारों रीतियाँ नाटक के पात्रों की मूढ़ताओं के अनुसार संशोधित-परिवर्धित भी हो सकती हैं। ये सभी गतियाँ थाई नाट्य कला के सिद्धान्तों के अनुसार विकसित हुई हैं।

मानव या देव पात्रों को थाई राजाओं या योद्धाओं की वेशभूषा पहनाई जाती है। मानवी या देवी वेश-भूषाएँ ऐसी होती हैं मानों वे रानियों की हों। नाटक में पात्रों की स्थिति के अनुसार उनकी चमक-दमक में घट-बढ़ होती रहती है और नाटकीय गति के अनुकूल बनाने के लिए उनमें परिवर्तन भी किया जाता है। दैत्यों या राक्षसों की वेश-भूषा थाई राजाओं के समान होती है, परन्तु उसे कसकर पहना जाता है और उसमें कमर की तरफ एक टुकड़ा लटका रहता है। वानरों की वेश-भूषा दैत्यों या राक्षसों के समान होती है, परन्तु उनकी कमर के नीचे पीछे की ओर एक पूँछ लगी होती है, जिसका रंग उनके कुर्ते के रंग जैसा होता है। कुर्ता वानरों के बालों का सूचक माना जाता है। इसलिए उसे प्रत्येक वानर पात्र के लिए विहित रंग में रँगा जाता है और बालों के प्रतीक स्वरूप उसपर गोल आकल्प बने होते हैं।

मुखौटा सिर को गर्दन तक ढकने वाला टोप जैसा आवरण होता है। इसे प्राचीन लोक-कथाओं के अनुसार चित्रित और निर्मित किया जाता है तथा रंग, नेत्र, मुख, कान, दाँत और मुकुट द्वारा पात्रों को पहचाना जा सकता है। प्राचीन समय में मानव और देव पात्र भी मुखौटे पहनते थे, परन्तु आजकल वे मुखौटे नहीं पहनते। स्त्री या देवी पात्र भी मुखौटे धारण नहीं करते, क्योंकि इन पात्रों के चेहरे स्वयं ही अधिक सुन्दर और जीवन अभिव्यक्त करने वाले होते हैं। सभी राक्षस और वानर तरह-तरह के मुखौटे और ऊपर मुकुट धारण करते हैं। राक्षसों और वानरों की शोभा और उनकी भयंकरता सभी थाई आकल्पों की सहायता से निर्मित की गयी है। राक्षसियों में जो राक्षसी अधिक भयंकर होती हैं वे मुखौटे पहनती हैं, शेष मानवों की तरह सुन्दर मानी जाती हैं, इसलिए वे मुखौटे नहीं पहनतीं।

खोन् का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। इसलिए प्रस्तुतीकरण को मंच पर करने के कई तरीके हैं। प्रथमतः नाटक एक बड़े भूमिखण्ड पर खेला जाता है, जहाँ वास्तविक जीवन के अनुकरण पर महलनुमा मण्डप, वन, पर्वत बनाये जाते हैं। इस व्यवस्था को 'खोन् क्लङ प्लैङ्' या खुला मुखौटे वाला नाटक कहा जाता है। दूसरी व्यवस्था में मंच को ऊँचा बनाया जाता है और नाटक देखने के लिए लोगों को उसके आगे खड़ा होना पड़ता है। इसकी पृष्ठ-भूमि पेपरमाशी से बने जंगल की होती है। पखवाइयों (पार्श्व) पर महलनुमा मण्डपों के चित्र बने होते हैं। वन के सामने कुर्सी के बराबर ऊँचाई का पटरा या लम्बी बेंच होती है। यह व्यवस्था 'खोन् नंङ राव' अर्थात् पटरे पर बैठकर किया गया मुखौटा नाटक कही जाती है। तीसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था में नाटक सुनहरे पर्दे के आगे किया जाता है, जिसमें दोनों तरफ से आने-जाने का मार्ग होता है। इसमें दर्शकों को दाहिने-बायें बैठाने की औपचारिक व्यवस्था रहती है। यह व्यवस्था प्रायः राजभवनों में नाटक करते समय अपनाई जाती है और इसे 'खोन् रोङ् नई' अर्थात् भवनान्तर्गत मुखौटा नाटक कहते हैं। चौथी व्यवस्था में चलचित्र दिखाने की तरह मध्य मंच में एक सफेद पर्दा लगा दिया जाता है। एक ओर मण्डप का चित्र बनाया जाता है तथा दूसरी ओर राजभवन दर्शाये जाते हैं। आने के दो मार्ग होते हैं और दर्शकों के बैठने की व्यवस्था मंच के ठीक दाहिनी या ठीक बायीं ओर की जाती है। खोन् की इस व्यवस्था को 'खोन् न चो' अर्थात् पर्दे के सामने मुखौटा नाटक कहते हैं। पाँचवें प्रकार में नाटक आधुनिक नाटक मंच के समान किया जाता है। इसकी पृष्ठभूमि कथा में वर्णित स्थानों के दृश्यों से बनाई जाती है। जैसे, दरबार उद्यान या रणभूमि। इस व्यवस्था को 'खोन चक' अर्थात् दृश्यों से खेला गया मुखौटा नाटक कहा जाता है, जो सुविधापूर्वक किसी नाट्यशाला में ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

पहले खोन नाटकीय प्रस्तुतीकरण औपचारिक लयपूर्ण गद्य या काप (काव्य) के वर्णन या पाठ के साथ किया जाता था। जब प्रस्तुतीकरण में विकास के साथ नृत्य सम्मिलित हो गया तब तरह-तरह के गायन भी कथा-वर्णन में सहायतार्थ मिला लिये गये। आजकल चलन ऐसा ही है। खोन् नाटक के साथ रहनेवाला वाद्य वृन्द 'पिफट्य' कहा जाता है। पिफट्य वाद्यवृन्द में दुहरी रीड वाला थाई वाद्य, जिसकी आवाज कुछ नफीरी जैसी निकलती है, लैड का काष्ठ जायलोफोन, दूसरा गहरा काष्ठ-जायलोफोन बड़ा नक्कारा (gong-kettle), छोटे नक्कारों का कुलक, दो तरह के ढोल और एक झाँझों का जोड़ा होता है। इसके अतिरिक्त कार्य के आवश्यकतानुसार अन्य वाद्य भी साथ लिए जा सकते हैं। संगीत में भी कार्य और गायन दोनों के साथ वाद्य रहते हैं। कार्य के साथ बजनेवाला संगीत कार्य की प्रत्येक गति पर जोर डालने में धुन और लय की सहायता करने के लिए महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। उदाहरणार्थ 'क्राव नई' रचना, जो राक्षसों के निरीक्षण और प्रयाण के साथ बजती है, विशाल राक्षस सेना की उत्तेजना और आगमन की भावना उत्पन्न करती है। थाई रामकीर्ति के विकास कदाचित् रामगाथा से हुआ है जो उत्तरोत्तर एक के बाद दूसरी पीढ़ी में वहाँ चलती आ रही थी। कहीं यह कथा वाल्मीकि की रामायण जैसी है तो कहीं यह तुलसीदास के हिन्दी रामचरितमानस या रामायण के तमिल संस्करण का अनुसरण करती है। इनके अलावा, थाई-वासियों के मनोरंजन तथा उनकी रुचि के अनुकूल कलात्मक और सौन्दर्यात्मक वृद्धि के लिए घटनाएँ जोड़ी हैं। जैसे, बिचक्काई देवी (थाई जो रामकीर्ति में फिफेक्शन नामक राक्षस की पुत्री है) का सीता देवी की जल पर तैरती मृत देह के रूप में परिवर्तित होकर देवताओं की तरफ जाना, (इसलिए कि राम उसे देख सकें) और मार्ग बनाना (जिसमें सुफ्फनमाचा ने अपने मत्स्य-अनुचरों को पत्थरों को उठा ले जाने का आदेश दिया जिससे निर्माण में बाधा पड़े) ऐसी घटनाएँ हैं जो रामायण के किसी संस्करण में नहीं पायी जातीं।

थाई खोन् नाटक का प्रस्तुतीकरण उच्च श्रेणी की कला माना जाता है। कथा कहने के अतिरिक्त इसका उद्देश्य नृत्य, गायन और संगीत के कलात्मक सौन्दर्य का प्रदर्शन करना भी होता है। इसलिए अनेक उदाहरणों में प्रस्तुतीकरण वास्तविकता से भिन्न हो सकता है। जैसे, युद्ध में योद्धागण कलात्मक नपी-तुली मुद्रा में गति करते हुए परस्पर भिड़ेंगे। वे सामान्य जनों की भाँति तलवार घुसेड़ने या पेट फाड़ देने के लिए एक-दूसरे पर नहीं झपटते। तीरन्दाजी में भी नाटक का पात्र सुन्दर और शैलीपूर्ण ढंग से पहले कुछ देर नृत्य करता और फिर बाण छोड़ता है। संगीत के साथ भी यही बात है। बजाये जानेवाले संगीत की धुन कुछ देर बजनी चाहिए। नाटक का उद्देश्य सौन्दर्य की प्रस्तुति है इसलिए उसकी गति सामान्य जीवन की अपेक्षा कुछ मन्द है। परन्तु जब किसी वस्तु को कला बना दिया जाता है तब उसके उद्भूत होनेवाले कलात्मक सौन्दर्य को समालोचनात्मक दृष्टि से ही देखा जाना चाहिए।[1]

---

१. स्टडीज इन इंडो-एशियन आर्ट ऐण्ड कल्चर, भाग १ (प्रका० सरस्वती विहार, नई दिल्ली) में छपे अंग्रेजी लेख रामायण डांस ऐण्ड म्युजिक इन थाईलैण्ड से अनूदित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोशकार लारूस की निर्वाणशती

श्री बा० विष्णुदयाल (मारिशस)

कुछ कोशकारों के नाम अमर हो गये हैं। भारत में अमरसिंह, इंग्लैण्ड तथा अमेरिका में जॉनसन, वेब्स्टर और फ्रांस में लारूस के नाम अविस्मरणीय हैं।

कोशकार प्येर लारूस का देहावसान दिनांक ३ जनवरी १८७५ को हुआ था। विद्या वह है जिससे मुक्ति मिले, यह उनकी मान्यता थी। संस्कृत में उक्ति है—सा विद्या या विमुक्तये, जो इससे मिलती-जुलती है, पर जहाँ भारत में मतलब व्यक्ति की मुक्ति से है वहाँ फ्रांस में देश की मुक्ति पर बल दिया जाता है।

लारूस एक बढ़ई के पुत्र थे। वे ग्राम में एक प्राथमिक पाठशाला के अध्यापक रहे। उन्होंने ८ वर्ष के लिए अध्यापन करना छोड़ दिया। उस बीच पैरिस में रहकर ज्ञान अर्जित किया।

१८५३ में उन्होंने और ओगिस्तें बुयाये ने (ये दोनों शिक्षक थे) अध्यापकों के लिए कुछ ग्रन्थ रचे। उनकी 'लेकोल नोर्माल' नाम की पत्रिका भी निकलने लगी। लेकोल नोर्माल के अर्थ हैं ट्रेनिंग या प्रशिक्षण का स्कूल।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के दिनों में जिदरो, दालाँनेर आदि ने जो विश्वकोश रचा था उसको एक प्रकार से लारूस ने नया रूप दिया। उन्होंने 'उन्नीसवीं सदी का वृहत्कोश' की रचना की, जो १७ जिल्दों तथा २२,५०० पृष्ठों का था। यह 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' की टक्कर का है। शब्दों के अर्थों के अतिरिक्त इसमें ऐतिहासिक पुरुषों की जीवनियाँ सम्मिलित की गयीं। अब जब कि आर्यसमाज की स्थापना शती होने जा रही है यह याद दिलाना उचित है कि उस कोश में उस समाज के जनक ऋषि दयानन्द का जो परिचय दिया गया है वह इस प्रकार है: "१८७५ में स्वामी दयानन्द (१८२४-१८७३) द्वारा संस्थापित आर्यसमाज का मुख्य सिद्धान्त यह है कि वेद ईश्वरकृत है और विद्या तथा सत्य का स्रोत है। उसका आग्रह है कि वेद की ओर लौटा जाय।"

लारूस कोश के आवरण पर सेंदे के फूल के बीज उड़ते दिखाई देते हैं। चित्र के नीचे यह वाक्य रहता है—"वायु कहीं भी बहे वहाँ मैं बीजारोपण करता हूँ।" ये शब्द कोशकार के मुँह में डाले जाते हैं। यही साथ-साथ अन्य लारूस प्रकाशनों का आदर्श वाक्य है।

नाना प्रकार के लारूस कोश हैं। उनमें सबसे लोकप्रिय है 'सचित्र लघु लारूस कोश।' फ्रेञ्च में बाइबल के बाद इसी की सबसे अधिक प्रतियाँ मुद्रित होती हैं। अभी तक इसकी दस करोड़ प्रतियाँ छप चुकी हैं। पश्चिम की अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं।

लारूस वैयाकरण भी थे। उनका व्याकरण ५-६ दशक पूर्व फ्रांस में ही नहीं, मारिशस, लारेइन्यों, मादागस्कर, कनाडा अर्थात् फ्रेञ्चभाषियों के सब देशों में लोकप्रिय था।

लारूस प्रकाशन गृह १२३ साल पुराना है। अन्य लेखकों की प्रसिद्ध कृतियों का भी इस प्रकाशन गृह की ओर से प्रकाशन होता है।

आज प्येर लारूस को उनके चल बसने के १०० वर्ष व्यतीत होने पर भी उनको समस्त संसार के फ्रेञ्चभाषी आत्मीय समझते हैं।

एक वह भी लारूस कोश है जो वृहत् कोश से छोटा और सचित्र लघु कोश से बड़ा है। उसके ८ भाग हैं। उसमें भी स्वामी दयानन्द का नाम आता है। सचित्र लघु कोश में बीसवीं सदी के नौ भारतीयों का उल्लेख किया गया है। श्री अरविन्द का उसमें तब नाम शरीक किया गया जब पाण्डिचेरी में ओरोविल बनने लगा।

खेद का विषय है कि जिस तरह बड़े देशों से लारूस कोश प्रायः न्याय करता है ठीक उसी प्रकार लघु देशों से नहीं करता। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। मारिशस में फ्रेञ्चों का शासन काल १८१० तक रहा। इस कोश में दो मारिशसीयों के नाम सम्मिलित किये जाते थे, जो १८१० से पहले जन्मे थे। तब मारिशस का नाम 'फ्रांस का द्वीप' था। यह नाम न देकर लारूस कोश में मारिशस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम दिया जाता रहा। यह गलती दर्शायी गयी और दोनों नाम निकाल दिये गये।

भारत के साथ भी अन्याय ही किया गया। स्वामी दयानन्द की मृत्यु की गलत तिथि दी गई। १८७३ में उनका देहावासन हुआ होता तो उसी कोश के अनुसार १८७५ में वे बम्बई में आर्यसमाज की नींव कैसे रखते। डॉ० सत्येन वसु के देहावसान के पूर्व कोशकार उनका उल्लेख करते आ रहे थे। यह देखा गया कि इनका नाम स्व० जगदीशचन्द्र वसु के नाम से मिलता-जुलता है, अतः इनका परिचय उन्हीं शब्दों में दिया गया था जिनको व्यवहृत करके बहुत दिनों से जगदीश बाबू का परिचय दिया जाता रहा। यहाँसे इस भूल के विषय में एक चिट्ठी भेजी गयी। उत्तर मिला कि वस्तुतः भूल की गयी।

लारूस कोशों का ऐसा दबदबा है कि जब कभी उनमें किसी नये शब्द का समावेश किया जाता है तब इसका यह अर्थ लगाया जाता है कि इसको मान्यता मिल गयी है। इन कोशों की प्रसिद्धि के कारण लोग भूल से गये हैं कि फ्रेञ्च अकादमी का भी कोश है जो प्रामाणिक है और टकसाली बोली बोलने का प्रोत्साहन देता है।

वर्तमान शताब्दी में जो वृहत्कोश का नवीन संस्करण छपा है उसका नाम 'बीसवीं सदी का वृहत्कोश' रखा गया। और जब २५ साल बीत जायँगे तब नयी शती का पदार्पण होगा। तब इसकी माँग रही और नया संस्करण प्रकाशित किया गया तो उसका नाम '२१वीं सदी का वृहत्कोश' होगा।

धर्मयोगी तुलसी और कर्मयोगी गांधी

[पृष्ठ १६० का शेषांश]

उक्ति विशेष ही काव्य है, भाषा चाहे जो हो।) इसीलिए तुलसी कहते हैं—

भाषा बद्ध करबि मैं सोई।
मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥
जस कछु बुधि बिबेक बल मेरे।
तस कहिहौं हिअँ हरि के प्रेरे॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी।
करौं कथा भव सरिता तरनी॥

तुलसी और गांधी साहित्य के प्रयोजन के विषय में सहमत हैं। दोनों काव्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप को अभीष्ट मानते हैं। तुलसी लिखते हैं—

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

महात्मा गांधी ने 'हरिजन सेवक' (१-८-१९३६) में लिखा था: "मैं ऐसा साहित्य और ऐसी कला चाहता हूँ जिसे करोड़ों लोग समझ सकें।" तुलसी भी काव्य की लोकप्रियता के लिए भाषा का सरल होना आवश्यक मानते हैं—

सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान॥

गांधीजी ने लिखा था कि जो इंसान को सदाचार में एक कदम आगे बढ़ाये और उसके आदर्श ऊँचे बनाये वह कला है। जो उसके सदाचार को गिराये वह कला नहीं बल्कि वीभत्सता है। तुलसी की भी यही काव्य दृष्टि है—

(क) मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।

(ख) बुध बिश्राम सकल जन रंजनि।
रामकथा कलि कलुष बिभंजनि।

तुलसी और गांधी दोनों ही बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय अपना कर्त्तृत्व प्रस्तुत करते हैं। तुलसी ने सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण किया तो गांधीजी ने राष्ट्रीय वातावरण का। दोनों के प्रदेय शाश्वत हैं। दोनों महान् भारत के महान् निर्माता थे। दोनों भारतीय इतिहास के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री बल्लभ-सूर मिलनस्थल : फरह का गऊघाट

श्री स्वामी ब्रजेश

हिन्दी के सूर्य महाकवि संत श्री सूरदासजी की ५००वीं जन्मजयंति सन् १९७७ ई० में मनाई जायगी, जिसका समापन सन् १९७८ में होगा। इस संदर्भ में सूर-भक्त साहित्यकारों के सम्मुख सूर साहित्य और सूर के जीवन से संबंधित स्थलों की चर्चा हो रही है। पंचशती के आयोजन सूर स्मारक मंडल, आगरा तथा सूर श्याम कीर्ति मंदिर, मथुरा कर रहा है। दोनों संस्थाओं को देश का सहयोग मिल रहा है।

सूरदास के जीवन का अध्ययन करने पर एक अत्यंत महत्वपूर्ण संदर्भ उभर कर सामने आया, जिससे यह प्रतीत होने लगा कि साहित्य-जगत् एक भयंकर भ्रम का शिकार हो रहा है। यदि समय रहते इसका निराकरण न किया गया तो भावी पीढ़ी के सम्मुख आज के शोध विद्वान् हास्यास्पद स्थिति में आ जायँगे। श्री सूरदास के जन्मस्थल, जाति आदि के प्रश्न को न लेकर हम केवल विचारकों का ध्यान उस स्थान की ओर आकर्षित करना चाहते हैं, जिसे उनके गुरु श्री वल्लभाचार्य से भेंट और दीक्षा का स्थान अब तक माना जाता रहा हैं। दो दशकों से रुनकुता का गऊघाट इस गौरव को प्राप्त किये हुए था। यहाँ तक कि कुछ चतुर लोगों ने सूर के राष्ट्रीय-स्मारक के रूप में प्रन्तीय सरकार से अनुदान की बड़ी राशि प्राप्त कर ली और राष्ट्रपति तक यहाँ शिलान्यास कर गये। आवश्यकता तो इस बात की थी कि इस खेल को खड़ा करने के पूर्व गहन विचार किया जाता, किन्तु ऐसा नहीं किया गया और न शासन ने ही इस ओर ध्यान दिया।

अब इस संबंध में जब ऊहापोह चला तब सबसे प्रामाणिक पुस्तक 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा इसके आधार पर ही निर्मित 'सूरदास की वार्ता, तथा 'अष्टछाप की वार्ता' हैं। संवत् १६९७ ई० की लिखित श्री बल्लभाचार्य के पौत्र गो० श्री हरिरायजी द्वारा सुसम्पादित 'अष्टछाप की वार्ता' जिसे काँकरौली के विद्या विभाग ने श्री कण्ठमणि शास्त्री के सम्पादन से प्रकाशित किया है, अत्यंत ही महत्वपूर्ण पुस्तक है। इस समय तक सम्प्रदाय के परम विद्वान् श्री द्वारकादास पारिख और साहित्यवाचस्पति श्री प्रभुदयाल मीतल आदि का 'अष्टछाप परिचय' तथा 'सूर निर्णय' प्रकाशित हो चुका था और बड़े दंभ से कहा जाता था कि अब सूर के संबंध में विचार करने को कुछ रह नहीं गया, जबकि इन विद्वानों के ग्रन्थों में भी विचारणीय विषय उपस्थित है—

१—'अष्टछाप की वार्ता' में 'सूरदास की वार्ता' का आरम्भ इस प्रकार है—'अब श्री आचार्यजी महाप्रभुन के सेवक सूरदासजी तिनके पद गाइयत हैं, जो गऊघाट ऊपर रहते, तिनकी वार्ता'। इस उल्लेख में केवल 'गऊघाघ ऊपर रहते' कहा गया है।

२—इस पुस्तक के १२वें पृष्ठ पर पुनः कहा है—'सो यह विचारिकै सूरदास मथुरा और आगरे के बीचौबीच गऊघाट है, तहाँ आइकैं श्री यमुनाजी के तीर स्थल बनाइकै रहे।' इस उल्लेख में 'मथुरा और आगरे के बीचौबीच गऊघाट' तथा 'यमुनाजी के तीर स्थल बनाइकै रहे' महत्वपूर्ण हैं।

३—इस पुस्तक के पृष्ठ १३ पर श्री महाप्रभुजी के अंडेल से ब्रज आने का वर्णन करते हुए कहा है—'महाप्रभु आप अंडेल ते ब्रज कों पधारे, सो गऊघाट आगरे और मथुरा के बीच में है, तहाँ श्री आचार्यजी महाप्रभु आप गऊघाट ऊपर उतरे।' इस उल्लेख में पुनः 'मथुरा और आगरे के बीच' गऊघाट का स्थान निर्देश तथा 'गऊघाट के ऊपर उतरे' पद विचारणीय हैं। इसी पृष्ठ पर आगे पुनः उल्लेख हैं—'सो गऊघाट के ऊपर सूरदासजी को स्थल हतो' इस पद में सम्पूर्ण वाक्य विचारणीय है।

४—इसी पुस्तक के पृष्ठ १४ पर पुनः है—'श्री आचार्यजी महाप्रभु गऊघाट ऊपर उतरे' तथा पृष्ठ १५ पर 'तब सूरदासजी अपने स्थल ते श्री आचार्यजी महाप्रभुन के दरसन को आए।' प्रथम पद में पुनः गऊघाट के ऊपर उतरने की पुष्टि तथा दूसरे पद में 'अपने स्थल ते' विचारणीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी गऊघाट पर महाप्रभु श्री बल्लभाचार्यजी ने संत स्वामी सूरदास को सं० १५६७ ई० में मंत्र-दीक्षा देकर शिष्य बनाया था।

आइये, अब हम इस अघोषित 'गऊघाट' की खोज करें। सर्वप्रथम विचारणीय उल्लेख 'मथुरा और आगरे के बीचौबीच' है। यदि हम श्री बल्लभ और सूर के समय का इतिहास अवलोकन करें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उस समय दिल्ली के राज-सिंहासन पर हिन्दू धर्मद्वेशी सिकंदर लोदी का शासन था, जिसने आगरा नगर में मथुरा की ओर 'सिकंदरा' नाम से नयी बस्ती का निर्माण कराया था, जो उस समय शासन का वास्तविक केन्द्र था। बाद में इसी सिकंदरा में अकबर की कब्र बनायी गयी। इस काल में मथुरा भी श्री कृष्ण जन्मभूमि के निकट ही समझी जाती थी, और आज की औरंगाबाद तक बढ़ी हुई मथुरा नहीं थी। उस समय मथुरा से आगरा का वर्तमान सिकंदरा ठीक ३० मील पर था। इस तीस मील के ठीक 'बीचौबीच' आज का फरह ग्राम स्थित है। उस समय इस ग्राम का अस्तित्व संभवतः नहीं था, किन्तु इसके आस-पास अनेक प्राचीन गाँव स्थित हैं और उन सभी के यमुना तट पर गऊघाट है। फरह की बीचो-बीच स्थिति और उसके यमुना तट पर गऊघाट की उपस्थिति हमें सहसा वार्ता साहित्य के 'गऊघाट' पर पहुँचा देती है।

अब हमें यह देखना है कि इस लेख के उपर्युक्त अंक १ में वर्णित गऊघाट पर सूर के आवास के लिए 'ऊपर' शब्द का प्रयोग है। हमने देखा कि काल के प्रभाव और यमुना के प्रवाह ने 'गऊघाट' को तो अपनी गोद में समेट लिया है, किन्तु घाट पर वह तिवारी विद्यमान है, जिसमें महाप्रभुजी उतरे थे और इसके ऊपर आज भी 'अस्तल' के नाम से विख्यात चला आ रहा सूरदासजी का वह 'स्थल' है जिसका सूर द्वारा बनाकर रहना कहा गया है। 'स्थल बनाइकै रहे' वाक्य स्पष्ट रूप से इमारत बनाकर रहने का बोधक है, क्योंकि इससे पूर्व जब वह गाँव से चले थे तब उनका झोपड़ी बनाकर रहना स्पष्ट रूप से कहा गया है। श्री बल्लभाचार्य और सूर जब परस्पर मिले तब १२ वर्ष की सम्पूर्ण अवधि निकल चुकी थी और निश्चय ही सूर का पक्का स्थल बन गया था। इस सम्बन्ध में यह भी कहना अनुचित न होगा कि सूरदास ने जिस प्रकार की वास्तुकला का प्रयोग अपने स्थल के निर्माण में कराया था वही प्रयोग आगे चलकर परासौली में किया। वही डाट की छत को कोठरी और उसके आगे तिवारी, उसका आकार भी उतना ही। हाँ, यह स्थल जिस टेकरी पर बनाया गया, उसकी चहारदीवारी भी बनायी गयी और ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ भी बनीं। निर्माण में वही ककइया ईंट और बलुई पत्थर का तत्कालीन प्रयोग हुआ। इस लेख के दूसरे और तीसरे उद्धरण में 'स्थल' के नाम से स्थान की प्रसिद्धि और आज भी इस स्थान को 'अस्तल' कहा जाना इतिहास की कड़ी को मिला देता है। चौथे उद्धरण में 'सूर का अपने स्थल तें' आना भी इसी बात का बोधक है कि यह स्थान 'स्थल' नाम से प्रसिद्धि पा चुका था और संभवतः श्री हरिरायजी ने भी यहाँ की यात्रा की हो और इस स्थान को ठीक बीचौबीच पाकर और स्थल के नाम से प्रसिद्ध पाकर किसी टिप्पणी की आवश्यकता न समझी हो, जैसा कि आवश्यकतानुसार अपने सम्पादन में उन्होंने अपनी जानकारी के आधार पर पाद-टिप्पणियों में अन्यत्र महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी हैं।

२० जनवरी १९७५ को इस संदर्भ में जब साहित्यकारों की एक टोली इन पंक्तियों के लेखक के आग्रह पर फरह गयी और वहाँ हमने नागरिकों के बयान लिये तब बल्लभ-सूर मिलन स्थल की झाँकी साकार हो उठी। यमुना तट पर जब गऊघाट पर पहुँचे तब स्थान की मनोरमता ने सभी को प्रभावित किया। इस समय यह बात भी सामने आई कि यहाँ घाट पर पहले गाय की भी एक मूर्ति थी और गायघाट के रूप में आज भी इसका प्रयोग होता है। स्थल तो मुँह बोलता प्रमाण है। इस स्थान की अवनत स्थिति और इस स्थान के नाम पर अन्यत्र शासन और जनता के धन का दुरुपयोग देखकर सभी दर्शकों को भारी पीड़ा हुई। आशा है कि हिन्दी जगत् और शासन इस पावन स्थल की रक्षा और कीर्ति के अनुरूप विकास की ओर तत्काल ध्यान देगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रांतिकारी महावीर और उनके धर्म-शासन की विशेषताएँ

श्रीअगरचंद नाहटा

भगवान् महावीर का पवित्र शासन अन्य सभी दर्शनों से महती विशेषता रखता है। महावीर प्रभु ने अपनी अखंड एवं अनुपम साधना द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर विश्व के सामने जो नवीन आदर्श रखे, उनकी उपयोगिता विश्वशांति के लिए त्रिकालाबाधित है। उन्होंने विश्व-कल्याण के लिए जो मार्ग निर्धारित किये वे इतने निर्भ्रान्त एवं अटल सत्य हैं कि उनके बिना सम्पूर्ण आत्मविकास असम्भव ही है।

वीर प्रभु ने तत्कालीन परिस्थितियों का जिस निर्भीकता से सामना करके काया पलट कर दी, वह उनके जीवन की एक असाधारण विशेषता है। सर्वजन मान्य सर्वत्र प्रचलित भ्रामक सिद्धान्तों एवं क्रिया काण्डों का विरोध करना साधारण मनुष्य का कार्य नहीं। इसके लिए बहुत बड़े साहस एवं आत्मबल की आवश्यकता होती है और वह आत्मबल बड़ी कठिन साधना द्वारा ही प्राप्त होता है। भगवान् महावीर का साधक जीवन इसका विशिष्ट प्रतीक है। इसी प्रकार उनका शासन भी महती विशेषता रखता है। वीर शासन से विश्व कल्याण का कितना घनिष्ट संबंध है, तत्कालीन परिस्थतियों में इस शासन ने क्या काम कर दिखाया—यह भली भाँति तभी विदित होगा जब हम उस समय के वातावरण से सम्यक् प्रकार से परिचित हो जायँ। अतः सर्वप्रथम तत्कालीन परिस्थितियो का दिग्दर्शन करना आवश्यक हो उठता है।

जैन एवं बौद्ध प्राचीन ग्रंथों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उस समय धर्म के एकमात्र ठेकेदार ब्राह्मण लोग थे, गुरु पद पर वे ही सर्वेसर्वा थे। उनकी आज्ञा राजाज्ञा से भी अधिक मूल्यवान् समझी जाती थी। राजगुरु भी वे ही थे। अतः उनका प्रभाव बहुत व्यापक था। सभी सामाजिक रीति-रस्में एवं धार्मिक क्रिया-काण्ड उन्हीं के तत्त्वावधान में होते थे और इसीलिए उनका जातीय अहंकार बहुत बढ़ गया था। वे अपने को सबसे उच्च मानते थे। शूद्रादि जातियों के धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार प्रायः सभी छीन लिये गये थे। इतना ही नहीं, वे उन पर मनमाना अत्याचार भी करने लगे थे। यही दशा मूक पशुओं की थी। उन्हें यज्ञ-यागादि में ऐसे मारा जाता था मानों उनमें प्राण ही न हों। इसे महान् धर्म भी समझा जाता था। वेदविहित हिंसा हिंसा नहीं मानी जाती थी।

उधर स्त्री जाति के अधिकार भी छीन लिये गये थे। पुरुष उन पर जो मनमाने अत्याचार करते थे, वे उन्हें निर्जीव की भाँति सहन कर लेने पड़ते थे। उनकी कोई सुनवाई नहीं थी। धार्मिक कार्यों में भी उनका उचित स्थान नहीं था अर्थात् स्त्री जाति बहुत कुछ पददलित सी थी।

यह तो हुई ऊँच-नीच जातीयवाद की बात। इसी प्रकार वर्णाश्रम वाद भी प्रधान माना जाता था। साधना का मार्ग वर्णाश्रम के अनुसार ही होना आवश्यक समझा जाता था। इसके कारण सच्चे वैराग्यवान व्यक्तियों का भी तृतीयाश्रम के पूर्व संन्यास ग्रहण उचित नहीं समझा जाता था।

इसी प्रकार शुष्क क्रिया काण्डों का भी उस समय बहुत प्राबल्य था। यज्ञयागादि स्वर्ग के मुख्य साधन माने जाते थे। बाह्य शुद्धि की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। आन्तरिक शुद्धि की ओर से लोगों का लक्ष्य दिनोंदिन हटता जा रहा था। स्थान-स्थान पर तापस लोग तामसिक बाह्य कष्ट-मय क्रिया-काण्ड किया करते थे और जन साधारण को उन पर काफी विश्वास था।

वेद ईश्वर कथित शास्त्र है—इस विश्वास के कारण वेदाज्ञा सबसे प्रधान मानी जाती थी। अन्य महर्षियों के मत गौण थे। वैदिक क्रिया-काण्डों पर लोगों का बहुत अधिक विश्वास था। संस्कृत भाषा में रचित होने के कारण शास्त्रों से साधारण जनता विशेष लाभ नहीं उठा सकती थी। वेदादि पढ़ने के एकमात्र अधिकारी ब्राह्मण ही माने जाते थे।

ईश्वर एक विशिष्ट शक्ति है। संसार के सारे कार्य उसी के द्वारा परिचालित हैं। सुख-दुःख कर्मफल-दाता ईश्वर ही है, विश्व की रचना भी ईश्वर ने ही की है, इत्यादि बातें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष रूप से सर्वजन-मान्य थीं, जिसके कारण लोग स्वावलम्बी न होकर, केवल ईश्वर के भरोसे बैठे रहकर आत्मोन्नति के सच्चे मार्ग में प्रयत्नशील नहीं थे। मुक्तिलाभ ईश्वर की कृपा पर ही माना जाता था। कल्याण के पथ में विशेष मनोयोग न देकर लोग ईश्वर की लम्बी-लम्बी प्रार्थनाएँ करने में ही निमग्न थे और प्रायः इसी में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते थे।

इस विकट परिस्थिति के कारण लोग बहुत अशान्ति भोग रहे थे। शूद्रादि तो अत्याचारों से ऊब गये थे। उनकी आत्मा शान्ति प्राप्ति के लिए व्याकुल हो उठी थी। वे शान्ति की शोध में आतुर हो गये थे। भगवान् महावीर ने अशान्ति के कारणों पर बहुत मनन कर शान्ति के वास्तविक पथ का गम्भीर अनुशीलन किया। उन्होंने पूर्व परिस्थिति की काया पलट किये बिना शान्ति लाभ को असंभव समझ कर अपने अनुभूत सिद्धांतों द्वारा क्रान्ति मचा दी।

उन्होंने जगत् के वातावरण की कोई चिन्ता न करके साहस के साथ अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। उनके द्वारा विश्व को एक नया प्रकाश मिला। महावीर के प्रति जनता का आकर्षण बढ़ता चला गया। फलतः लाखों व्यक्ति वीर शासन की पवित्र छत्रच्छाया में शान्ति लाभ करने लगे।

वीर-शासन की विशेषताएँ

वीर-शासन की सबसे बड़ी विशेषता विश्व-प्रेम है। इस भावना द्वारा अहिंसा को धर्म में प्रधान स्थान मिला। सब प्राणियों को अधिकार एक समान दिये गये। पापी से पापी और शूद्र एवं स्त्री जाति को मुक्ति तक का अधिकारी घोषित किया गया और कहा गया कि मोक्ष का द्वार सबके लिए खुला है। धर्म पवित्र वस्तु है, उसका जो पालन करेगा, वह जाति अथवा कर्म से चाहे कितना ही नीच क्यों न हो अवश्य पवित्र हो जायगा। साथ ही जातिवाद का जोरों से खण्डन किया गया और ऊँच-नीच के सम्बन्ध में जाति के बजाय गुणों को प्रधान स्थान दिया गया। इसकी कुछ रूप रेखा 'उत्तराध्ययन सूत्र' एवं बौद्धों के 'धम्मपद' में पाई जाती है। लोगों को यह सिद्धांत बहुत संगत और सत्य प्रतीत हुए। फलतः लोकसमूह महावीर के उपदेशों को श्रवण करने के लिए उमड़ पड़ा। उन्होंने अपना वास्तविक व्यक्तित्व प्राप्त किया। वीर शासन के दिव्य आलोक से चिरकालीन अज्ञान, भय, भ्रान्त धारणाएँ दूर हो गयीं। विश्व ने एक नई दिशा प्राप्त की, जिस कारण लाखों शूद्रों एवं लाखों स्त्रियों ने आत्मोद्धार किया। एक सदाचारी शूद्र निर्गुण ब्राह्मण से लाख गुना ऊँचा है अर्थात् ऊँच नीच का माप जाति से न होकर गुण सापेक्ष है। कहा भी है—गुणः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

धार्मिक अधिकारों में जिस प्रकार सब मनुष्य समान अधिकारी हैं, उसी प्रकार प्राणिमात्र सुखाकांक्षी है। सब जीने के इच्छुक हैं, मरण से सबको भय एवं कष्ट है। अतएव प्राणिमात्र पर दया रखना वीर-शासन का मुख्य सिद्धांत है। यज्ञयागादि में असंख्य मूक पशुओं का जो आये दिन संहार हुआ करता था, वह इसके द्वारा सर्वथा रुक गया। लोगों ने इस सिद्धान्त की सच्चाई का अनुभव किया कि जिस प्रकार हमें कोई मारने को कहता है तो हमें उसके कथन मात्र से कष्ट होता है उसी प्रकार हम दूसरों को सतायें तो उन्हें भी अवश्य कष्ट होगा। परपीड़न में कभी धर्म हो ही नहीं सकता। मूक पशु चाहे मुख से अपना दुःख व्यक्त न कर सकें, पर उनकी चेष्टाओं द्वारा यह भली भाँति ज्ञात होता है कि मारने पर उन्हें भी हमारी भाँति अवश्य कष्ट होता है। इस निर्मल दयामय उपदेश का जनसाधारण पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और ब्राह्मणों के लाख विरोध करने पर भी यज्ञयागादि की हिंसा प्रायः समाप्त हो गयी। इस सिद्धान्त से असंख्य जीवों का रक्षण हुआ और असंख्य व्यक्तियों का पाप से बचाव हुआ। असंख्य मूक एवं निरपराध प्राणियों को अभय दान मिला।

अहिंसा की व्याख्या वीर-शासन में जिस विशद रूप में पाई जाती है अन्य किसी भी दर्शन में वैसी उपलब्ध नहीं है। मानव जाति के लिए इसकी कितनी आवश्यकता है यह भावना महावीर ने भली भाँति सिद्ध कर दिखायी। कठोर से कठोर हृदय भी कोमल हो गये और विश्व-प्रेम की अखण्ड धारा चारों ओर प्रवाहित हो चली।

वीर-शासन में वर्णाश्रमवाद को अनुपयुक्त घोषित किया गया। मनुष्य के जीवन का कोई भरोसा नहीं। हजारों प्राणी बाल्यकाल एवं यौवनावस्था में मरण को प्राप्त होते हैं। अतः आश्रमानुसार धर्म पालन उचित नहीं कहा जा सकता। व्यक्तियों का विकास भी एक समान नहीं होता। किसी आत्मा को अपने पूर्व संस्कारों एवं साधना द्वारा बाल्यकाल में ही सहज वैराग्य हो जाता है, धर्म की ओर उसका विशेष झुकाव होता है। उधर किसी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पर भी वैराग्य नहीं होता। इस परिस्थिति में वैराग्यवान बालक को गृहस्थाश्रम पालन के लिए विवश करना अहितकर है और वैराग्यहीन वृद्ध का संन्यास-गृहण भी बेकार है। अतः आश्रम व्यवस्था के बजाय धर्म पालन योग्यता पर निर्भर करता है। हाँ, योग्यता की परीक्षा में असावधानी करना उचित नहीं है। स्त्रियों को भी धर्म-पालन का पूरा-पूरा अधिकार है।

इसी प्रकार वीर-शासन में ईश्वरवाद के बदले कर्मवाद पर जोर दिया है। जीव स्वयं कर्म का कर्ता है और स्वभावानुसार स्वयं ही उसका फल भोगता है। ईश्वर शुद्ध बुद्ध है, उसे सांसारिक झंझटों से भी कोई मतलब नहीं। वह किसी को तारने में भी समर्थ नहीं। यदि लम्बी प्रार्थना से ही मुक्ति मिल जाती तो संसार में आज अनन्त जीव शायद ही मिलते। जीव अपने भले-बुरे कर्म में स्वयं स्वतन्त्र हैं। पौरुष के बिना मुक्ति-लाभ संभव नहीं। अतः प्रत्येक प्राणी को अपना निज स्वरूप पहचान कर पैरों पर खड़े होने का अर्थात् स्वावलम्बी बनकर आत्मोद्धार करने का सतत प्रयत्न करना चाहिए। ईश्वर न तो सृष्टि रचयिता है और न कर्म फलदाता!

शुष्क क्रिया-काण्डों और बाह्य शुद्धि के स्थान पर वीर-शासन में अन्तःशुद्धि पर बल दिया गया है। अन्तःशुद्धि साध्य है, बाह्य शुद्धि उसका साधन मात्र है। अतः साध्य के लक्ष्य बिना क्रिया फलवती नहीं होती। केवल जटा बढ़ाने से, राख लगाने से, नित्य स्नान कर लेने से एवं पंचाग्नि तप आदि से सिद्धि नहीं मिल सकती। सिद्धि तो चित्त-शुद्धि तथा सात्विक भावों के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

भगवान् महावीर ने अनेक बातों में सुधार-संशोधन द्वारा क्रांति की। उनके उपदेश विश्व-कल्याण के लिए बड़े उपयोगी हैं। उनकी जीवनी एवं वाणी प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी, मराठी, कन्नड, तमिल आदि भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। पाठकों को उनसे लाभ उठाना चाहिए।

गत दीवाली से अगली दीवाली तक उनका २५००वाँ निर्वाण महोत्सव सरकार एवं जनता द्वारा तथा देश में ही नहीं विदेशों में भी मनाया जा रहा है। इसी प्रसंग से प्रस्तुत लेख में यह संक्षिप्त जानकारी दी गयी है।

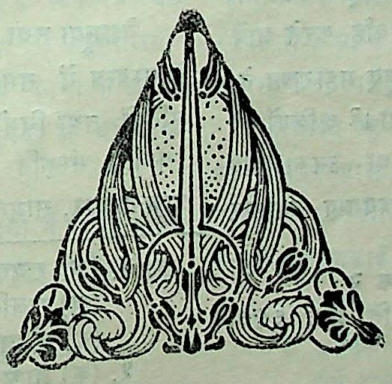

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यकालीन मेवाड़ की सांस्कृतिक स्थिति

डा० शिवचरण मेनारिया, एम० ए०, पी-एच० डी०, बी० एड्०

महामहिमामयी राजस्थान की धरती पर साहित्य संगीतादि कलाओं की रसवती धारा सदैव प्रवाहित होती रही है। राजस्थान का इतिहास आज तक विकसित हुई भारतीय संस्कृति का सजीव चित्र उपस्थित करने की क्षमता रखता है। राजस्थान का ही एक गौरवमय राज्य मेवाड़ भारतीय वीरता और स्वाधीनता का संवाहक तो है ही, भारतीय संस्कृति को अनुप्राणित करनेवाली सरस्वती की सरस धारा भी प्रकट या अप्रकट रूप में यहीं बहती रही है। मध्यकालीन मेवाड़ की संस्कृति ने इस गौरवमयी परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा हैं। इस काल में साहित्य, संगीत, नृत्य, स्थापत्य, चित्रकला, शिक्षा, धर्म आदि विभिन्न विषयों में अनुपम वृद्धि हुई है।

स्थानीय हिन्दू समाज परम्परागत चार भागों में विभक्त था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।[1] राज्य की प्रजा में जैन और मुसलमान भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। जैन अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए भी स्वयं को हिन्दू समाज के वैश्य वर्ग में ही परिगणित करते रहे हैं। समाज में ब्राह्मणों को विशेष सम्माननीय स्थान प्राप्त था। ब्राह्मण न केवल सांसारिक एवं धार्मिक वरन् राजनीतिक एवं सैनिक कार्यों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करते आये हैं। राजपुरोहित के रूप में कार्य करते हुए महाराणा ने, धर्मगुरुओं ने, युद्ध में भी सोल्लास भाग लिया।[2] क्षत्रियों को समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था तथा उनका मुख्य कार्य राजकीय एवं सैनिक सेवा था।[3] वैश्यगण व्यापार के साथ राजकीय कार्य भी करते थे।[4] शूद्र अपने जातिगत व्यवसाय एवं सेवाकार्य करते थे।

राज्य में रहनेवाली अन्य जातियों में कायस्थ तथा चारण मुख्य थे। कायस्थ राजकीय सेवा में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते रहे थे।[5] चारणों का कार्य गीतों एवं कविताओं का सृजन करना था। इनके अतिरिक्त अन्य कई व्यावसायिक जातियाँ (यथा, स्वर्णकार, तेली, तम्बोली, नाई, धोबी, कुम्हार आदि) भी यथेष्ट संख्या में राज्य में निवास करती थीं।[6]

पहाड़ी प्रदेशों में भील, मीणे, मेर, रावत, गरासिया आदि आरण्य जातियाँ रहती थीं। भीलों की जनसंख्या राज्य की कुल आबादी का लगभग १८वाँ भाग थी। राज्य को भीलों से बहुत ही महत्त्वपूर्ण सेवाएँ प्राप्त हुई हैं। प्राचीनकाल से ही राजा के प्रति अन्धभक्ति रखनेवाले भीलों ने महत्त्वपूर्ण सैनिक सेवाएँ की हैं।[7] मेवाड़-अजमेर सीमा पर बसनेवाले मेर भी बड़े युद्धप्रिय रहे हैं। राज्य की इन विविध जातियों के लोगों के रहन-सहन, वेशभूषा, सामाजिक जीवन आदि में एक अनूठी एकता दृष्टिगोचर होती है।

वेशभूषा तथा गहने— नागरिकों की पोशाक एवं गहनों के सम्बन्ध में समसामयिक साहित्य, पुरातात्त्विक सामग्री, मूर्तियों तथा चित्रों से यथेष्ट जानकारी प्राप्त होती है। स्थानीय संस्कृति पर मुगल प्रभाव सीमित रहा है। राज-दरबार, सामन्तगण, उच्च एवं धनिक वर्ग के खान-

---

१. दृष्टव्य—'अन्वेषणा'। वर्ष १ अंक २

२. (क) राणा रासौ (हस्तलिखित प्रति) छन्द ६४३, ६८८-९१, ७०३, ७०७, ७१५, ७२८
(ख) राज विलास—विलास १०, पद्य ७१-७५
(ग) राज प्रशस्ति-सर्ग २४, श्लोक १०-११
(घ) अमरसिंहाभिषेक काव्य, श्लोक १११

३. ओझा—उदयपुर, भाग २ पृ० १११-१२

४. (क) रावल राणाजी री वात (ह०प्र०) पच १२१-२४
(ख) राजविलास—विलास १४
(ग) खेतल-कृत—उदयपुर गजल

५. (क) ताम्रपत्र संख्या ४७७, ४१८ (राज० राज्य० अभि० उदयपुर)
(ख) गजेटियर ऑफ उदयपुर स्टेट, पृ० ३५-३८

६. राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट्स, अजमेर १९२६-२७

७. राजरत्नाकर (ह०प्र०) सर्ग ७, पद्य ४१-४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पान, रहन-सहन पर मुगल प्रभाव कुछ अंशों में अवश्य रहा, किन्तु सामान्य जनता पर इसका प्रभाव अत्यल्प था। मुगल-प्रभाव धीरे-धीरे सामान्य जीवन में प्रविष्ट हुआ और स्थानीय संस्कृति में घुल-मिल गया।

पूर्व मध्यकाल में मेवाड़-वासी धोती और कमर के ऊपरी भाग में उत्तरीय पहनते थे। मध्यकालीन पुरुषों की पोषाक में पगड़ी, कुरता, लम्बा अँगरखा और धोती प्रचलित रही है। दरबारी लोग धोती, दोवड़, जामा, वग्गा आदि पहनते थे और कमरबंद बाँधते थे।[८] ऋतुओं और त्योहारों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की पगड़ियाँ बाँधी जाती थीं। वर्षा ऋतु में हरी, सर्दियों में कुसुम्बी, गर्मी में कसुमल और तीज पर लहरिया, दशहरे पर माँझल छपाई की तथा होली पर पीली पगड़ी बाँधी जाती थी। पगड़ी पर सुनहरे और रुपहरे तारों से बने हुए तुर्रे, सरपेच, बालावन्दी, डुगडुगी, गासेपेच, लटकन, फतहपेच आदि बाँधे जाते थे। दरबारी लोग पायजामा-इजार-बंध और जाँघिया पहनते थे और गुलबन्द भी बाँधते थे।[९] सामान्य जन पगड़ी बखतरी, धोती और दुपट्टा पहिनते थे और पाँवों में चमड़े और मखमल के जूते पहनते थे।[१०] भील अधिकांशतः नंगे बदन रहते थे। वे लँगोटी पहनते थे जो मुश्किल से उनकी जंघाओं को ढक पाती थी।[११]

महिलाओं की मुख्य पोशाक घाँघरा, लहँगा, साड़ी, काँचली, कुर्ती आदि थी। ग्रामीण स्त्रियाँ ऊँचे-ऊँचे और बड़े घेरदार घाँघरे पहनती थीं। मुगल-प्रभाव के कारण साड़ी, चोली और घाँघरी की जगह कुछ स्त्रियाँ लम्बी कुर्त्ती, छोटी साड़ी तथा कई सलों वाली घाँघरी पहनने लगी थीं। धनवान परिवारों में गोटे किनारी के कामों के कपड़े पहने जाते थे। धनिक एवं निम्नवर्गीय स्त्रियों के पहिनावे में बड़ा अन्तर था।[१२]

स्थानीय महिलाओं को सौन्दर्य प्रसाधनों में काफी रुचि थी। अनेक ऐसे भूषण यहाँ के जन जीवन में प्रचलित रहे जिनकी बनावट और सुन्दरता अनुपम है। आभूषणों में निम्न का अद्यावधि अत्यधिक प्रचलन रहा है—[१३]

सिर के गहने—शीशफूल, रखड़ी, बोर, टीका व ठिकडिया

नाक, कान व गले के आभूषण—नथ, काँटा, नवसर, कर्णफूल, झूमका, थमणियाँ, नवसर, हार, चन्द्रहार, माणिक्यमाला, मोतीमाला, हँसली आदि।

बाजुओं के गहने—कंकण, पहुँची, चूड़ी, बाजूबन्द, कड़ा, मुँदड़ी, अणत, गूजरी, नोगरी आदि

कमर में कन्दोरा तथा पाँवों में—पायल, पैंजनी, कड़े, लंगर, पगपान, आँवला, नेवर, तोड़ा, झाँझरिया, अंगुठा, बिछिया, नकलिया और अनवट आदि।

निम्नवर्गीय तथा भील स्त्रियाँ सीपियों, कौड़ियों, बबूल की फलियों तथा नकली मोतियों के गहने पहनती थीं।

त्योहार तथा उत्सव—स्थानीय शासक एवं बहुसंख्यक जनता वैदिक (ब्राह्मण) धर्म की अनुयायी रही है तथापि महाराणाओं की उदार एवं धार्मिक सहिष्णुता-पूर्ण नीति के कारण अन्य धर्मावलम्बियों की धार्मिक परम्पराएँ भी यथावत् बनी रहीं। राज्य में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नव-वर्षोत्सव, द्वितीया को दांतण हेला तथा तृतीया को गवगोर उत्सव मनाया जाता था। उदयपुर नगर में इस अवसर पर भारी उत्सव होता था और सवारी निकलती थी। बैसाख कृष्णा प्रतिपदा को एकलिंग-प्रादुर्भावोत्सव मनाया जाता था। वर्षा ऋतु में हरियाली अमावस्या, तीज, कजलिया-तीज आदि मनाई जाती थी। स्त्री-पुरुष रंगीन वस्त्र धारण करके मेलों में जाते और आनन्द लेते थे।

होलिका दहन के बाद रंगोत्सव का मुख्य आकर्षण था। महाराणाओं द्वारा खेली जानेवाली 'हाथियों की फाग,' दशहरे पर विशेष मनोरंजक कार्यक्रम—दौड़, कुश्ती, पशुओं की लड़ाई आदि—का आयोजन होता था। राम-

---

८. परवाना महाराणा अमरसिंह का
९. बाँकीदास की ख्यात, भाग २, पत्र २९६, ३४०
१०. अर्ष रामायण (चि० ह० प्र०) पत्र २०-२७
११. राजविलास—विलास १०, पद्य ९१-९७
१२. सती स्तंभ कुम्भलगढ़ सन् १६२५ ई०
दस्तुर कौमवार संवत् १७९९ ई०। पत्र ५६, ९७, ९८, १०२ आदि।

१३. जसवंतसागर कृत उदयपुर वर्णन छन्द
अर्ष रामायण के चित्र
जिनरत्न सूरीकृत उदयपुर वर्णन
खेतलकृत उदयपुर गजल
राजविलास—विलास ७, पद्य १-६
शोध पत्रिका, वर्ष २१, अंक १, पृष्ठ ७०-दृष्टव्य—लेखक का निबन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवमी, अक्षयतृतीया, गुरुपूर्णिमा, नागपंचमी, रक्षाबन्धन, जन्माष्टमी, गणेश चतुर्थी, जल झूलनी एकादशी, नवरात्रि महोत्सव, शरद पूर्णिमा, वसंतपंचमी, खेंखरा, मकर संक्रान्ति आदि त्योहार विशेष उल्लास से मनाये जाते थे। जैन लोग महावीर जयन्ती, स्वंत्सरी आदि मनाते थे और केशरियाजी में रथयात्रा और दीपोत्सव के विशेष आयोजन होते थे और मेले लगते थे।[१४] मुसलमान मुहर्रम, शब्बे-बारात, ईदुलफितर, ईदुज्जुहा और बारावफात मनाते थे और ताजिये निकालते थे। इस काल में विभिन्न धार्मिक विचारों के लोग आपस में मिल-जुलकर रहते थे और उनमें कोई साम्प्रदायिक तनाव नहीं था।

धर्म और सम्प्रदाय

मानव जीवन में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। मनुष्य का धार्मिक जीवन उसके जीवन और ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण का द्योतक है। मेवाड़ में प्राचीन काल से ही वैदिक धर्म का बड़ा जोर रहा है। वैदिक धर्म के साथ-साथ शैव सम्प्रदाय का प्रसार भी पूर्णरूपेण रहा। राज्य में चतुर्दिक शिवपूजा प्रचलित थी। स्थानिक महाराणा श्री एकलिंगमहादेव को अपना उपास्य देव मानते रहे हैं। राज्य में ब्रह्मा और सूर्य की पूजा का भी यथेष्ट प्रचलन रहा है। छठी सदी से यहाँ शक्तिपूजा के चिह्न दृष्टि-गोचर होते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य में लक्ष्मी, राम, गणेश, हनुमान आदि की भी पूजा प्रचलित रही है।[१५]

बौद्ध एवं जैन धर्मों के प्रसार के समय राज्य में इनका भी प्रचार हुआ। कालान्तर में बौद्ध धर्म तो यहाँ से लुप्त ही हो गया किन्तु जैन धर्म के उपासक श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आज भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। जैन मुनियों ने धर्म प्रसार के साथ साहित्य एवं संस्कृत के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। १७वीं सदी के उत्तरार्द्ध में यहाँ वल्लभ सम्प्रदाय का प्रवेश हुआ और नाथद्वारा तथा काँकरोली में देवालयों का निर्माण हुआ।[१६] महाराणा अ सिंह (१६९८-१७१० ई०) के राज्यकाल में अद्वैतवाद सीवनाखेड़ा मठ की स्थापना हुई।[१७] इसी सतर सदी के अन्तिम चरण में यहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रवेश हुआ।[१८]

मेवाड़ में दादू, तेजाजी, रैदास आदि के पंथों के उ सक भी निवास करते रहे हैं। सुल्तान मुहम्मद गोरी द्वा अजमेर अधिकृत करने के पश्चात् मेवाड़ में मुसलमानों प्रवेश आरम्भ हुआ। मेवाड़ में मुसलमानों ने महत्त्वपू सेवाएँ दी हैं। महाराणाओं द्वारा मुसलमानों को सम समय पर भूमि भी प्रदान की गयी थी।[१९] राज्य में शि और सुन्नी दोनों सम्प्रदायों के मुसलमान निवास करते यद्यपि इनकी संख्या अत्यल्प थी।

शिक्षा

शिक्षा सोद्देश्य एवं आदर्शों से परिपूर्ण थी। शिक्षा द्वारा प्रसन्नता और ज्ञान प्राप्त करने के साथ जीवन सुन्दर ढंग से बिताने का ढंग समझाया जाता था।[२०] समय शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत, सामाजिक, धार्मिक आर्थिक ज्ञान प्राप्त करना था। पूर्व काल में इसके पी धार्मिक दृष्टिकोण था किन्तु परवर्तीकाल में इसका लाभ क्षेत्र में प्रयोग होने लगा।

शिक्षा का प्रमुख केन्द्र परिवार था। परिवार में बा प्रथम स्कूल, प्रथम शिष्य के रूप में सेवा और त्याग शिक्षा लेता था। पिता पुत्र को अपना सम्पूर्ण ज्ञान था। यह क्रिया परम्परया एक के बाद दूसरी पीढ़ी में चल रहती थी। पारिवारिक विद्यालयों के साथ कुछ विद्या ऐसे थे जो गुरु के घर पर चलते थे, जिनका स्वरूप प्राची आश्रमों की तरह था।[२१] कभी-कभी राज्य की ओर शिक्षण केन्द्र स्थापित करने के लिए विद्वान् ब्राह्मणों

---

१४. अमरकाव्य, पत्र १०१ (ह० प्र०)
बारहमासीरा दूहा, पत्र ८३ (ह० प्र०)
राजरत्नाकर, सर्ग १५, पत्र ८५, सर्ग १७, पत्र ९६ (ह० प्र०)
मधुमति, अक्टूबर १९६९ पृ० ६८ में दृष्टव्य लेखक का निबन्ध।

१५. राज प्रशस्ति, सर्ग १६, श्लोक १४।
राजरत्नाकर, सर्ग १६, पत्र ८१, श्लोक १४।

१६. काँकरोली का इतिहास, पृ० १४-१५, १५०-
१७. जरनल ऑफ राजस्थान इन्स्टिटचूट ऑफ हिस्ट रिकल रिसर्च, भाग ४, अंक ३, पृ० ४०-४१
१८. देवनाथ—उदयपुर, पृ० ८०-८१।
१९. पट्टा सं० ४१५ तथा पट्टा दिनांक २ अग १७२५ ई० (राज० राज्य अभिलेखागार, उदयपुर।)
२०. मधुमालती (ह० प्र०) पत्र ७४, १८७।
कल्याण मन्दिर स्त्रोतम्, पत्र ७. (ह० प्र०)
२१. कादम्बरी, पत्र २०८ (ह० प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माफी में गाँव प्रदान किये जाते थे। यथा, महाराणा संग्राम सिंह (द्वि०) ने दक्षिणा मूर्ति को इसी उद्देश्य से एक गाँव प्रदान किया था।[२२] ऐसे स्थानों में बालकों पर गुरु के व्यक्तित्व, आदर्श एवं नैतिकता का अनुपम प्रभाव पड़ता था।

राज्य के विभिन्न नगरों में जैन उपासरों में भी शिक्षण कार्य किया जाता था। सवीनाखेड़ा का मठ भी कुछ समय तक शिक्षा का केन्द्र बना रहा। उक्त संस्थाओं के अतिरिक्त कहीं-कहीं पाठशालाएँ भी थीं जिन्हें 'पोशाल' या 'चौकी' के नाम से पुकारा जाता था। राजनगर में ऐसी ही एक पाठशाला थी।[२३] शिक्षण में अक्षर ज्ञान, गणित, पुराण, नीति, ज्योतिष, खगोल विद्या, साहित्य, गणित, व्याकरण, औषध-विज्ञान आदि को प्रमुखता दी जाती थी। राजपुत्रों को तर्कशास्त्र, न्यायशास्त्र, धर्म, व्याकरण और राजनीति के साथ युद्ध-शिक्षा भी दी जाती थी।[२४] पुस्तकें हस्तलिखित होती थीं।

शिक्षण की परम्परा को सजीव बनाये रखने के लिए छात्र और शिक्षक के सम्बन्ध पिता-पुत्र जैसे होते थे। ऐसे कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं जिनसे ज्ञात हो सके कि छात्रों से कोई नियमित शुल्क लिया जाता हो। भेंट आदि से ही गुरुजनों का नित्य प्रति का व्यय चलता था। शालाओं में महीने में ४ दिन (दोनों अष्टमियाँ, पूर्णिमा तथा अमावस्या) की छुट्टी रहती थी तथा विशेष त्योहारों पर भी अवकाश रहता था।[२५]

भाषा और साहित्य

अपभ्रंश की प्रमुख शाखा नागर से निकली राजस्थानी भाषा वस्तुतः वैदिक भाषा का ही एक रूप है। राजस्थानी की पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं—१. मारवाड़ी २. मेवाड़ी ३. ढूँढाडी ४. मालवी और ५. वागड़ी। राजस्थान की बोलियों में मारवाड़ी का विस्तार अधिकतम है। मेवाड़ी, बीकानेरी आदि राजस्थानी के इतर नाम हैं। मेवाड़ी मेवाड़ राज्य, प्रतापगढ़ के उत्तरी भाग, मारवाड़ के उत्तरी-पूर्वी भाग, अजमेर तथा किशनगढ़ के दक्षिण में तथा खेराड़ में बोली जाती थी। मेवाड़ राज्य के दक्षिणी और पश्चिमी भागों के निवासी, जिनमें प्रमुखतया भील हैं, वागड़ी बोलते हैं।

इस काल का साहित्य डिंगल, पिंगल और राजस्थानी में रचित है। मध्यकाल में राजस्थानी साहित्य की उल्लेखनीय प्रगति हुई। राज्य कार्य एवं बोलचाल की भाषा होने के कारण इसे संस्कृत की अपेक्षा अधिक प्रोत्साहन मिला। इस काल में यहाँ राणारासो, खुमाणरासो, राजविलास, जगदविलास आदि ऐतिहासिक एवं अनेक साहित्यिक रचनाओं का सृजन हुआ। साहित्य सृजन की दृष्टि से यह मेवाड़ का स्वर्णकाल था।[२६]

चित्रकला

राजस्थान की चित्रकला का आरम्भ प्रागैतिहासिक काल में हुआ। अपने सांस्कृतिक विकास के लिए राजस्थानवासियों ने चित्रकला का आश्रय लिया। मेवाड़ के १५०० ई० पू० की चित्रकला प्रवृत्ति का ज्ञान आहाड़ में प्राप्त अवशेषों से होता है। पूर्व मध्यकाल में भी यहाँ चित्रकला की अच्छी प्रगति हुई। राजस्थानी चित्रकला के विकास में मुगल कला का हाथ अधिक है, किन्तु इसमें दो मत नहीं हैं कि इसकी उत्पत्ति जैन चित्रकला के गर्भ से ही हुई है। जैनों के अधिकांश चित्र पुस्तक-चित्र हैं, जो हरे कागज पर बने हुए प्राप्त होते हैं। जैन चित्रों के चेहरे सवाचश्म तथा वर्णिका सीमित हैं।[२७]

मेवाड़ की चित्रकला में मुख्यतः देवी-देवताओं, महाराणाओं, सामन्तों, वीरों, धनाढ्य पुरुषों, धर्माचार्यों, राजदरबार, सवारी, तुलादान, राजकीय एवं धार्मिक उत्सव, राजमहल, जलाशय, उपवन, युद्ध एवं शिकार के दृश्य चित्रित मिलते हैं। महाभारत, भागवत, रामायण तथा

---

२२. दक्षिणामूर्ति शिवालय का लेख—भावनगर इन्सक्रिप्शन्स, सं० १५, पृ० १५५।

२३. राजविलास—विलास द्वितीय, पद्य १०३-४

२४. सौम सौभाग्य काव्य, सर्ग २, पद्य ६४-६८, (ह०प्र०)
राजरत्नाकर, सर्ग १६, पत्र ९१, (ह० प्र०)
गुटका, न० ५७९-७१ तथा ५९३-६०५ (प्रा० वि० प्र० उदयपुर) (ह० प्रतियाँ)।

२५. राजरत्नाकर (ह० प्र०) सर्ग १७, पत्र ९४, पद्य २०

२६. अणिमा—साहित्य संस्कृति कला विशेषांक में दृष्टव्य लेखक का निबन्ध।

२७. कलानुसंधान, वर्ष १ अंक ३ पृष्ठ ४५ में दृष्टव्य लेखक का निबन्ध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य कथा-प्रसंगों के, नायक-नायिका वर्णन के, ऋतुओं तथा राग-रागिनियों के, कामशास्त्र, शृंगार-रस आदि के चित्र भी प्राप्त होते हैं। महाराणा जगतसिंह तथा राजसिंह के शासन काल में विशद चित्रण हुआ।[२८] महाराणा जयसिंह, अमरसिंह तथा संग्रामसिंह के काल में जगन्नाथ, कृपाराम आदि चित्रकारों ने कई सुन्दर चित्र बनाये। नाथद्वारा का मोतीमहल इस काल की चित्रकला का अनुपम उदाहरण है। यद्यपि यह मुगल चित्रकला से स्वच्छता एवं कलात्मकता में काफी निम्न है तथापि यह चमकीले रंगों व आकर्षक कलम में अपना अलग आकर्षण रखती है। मेवाड़ की चित्रकला जन सामान्य से सम्बन्धित रही है। अतः इसका क्षेत्र राजदरबार से बाहर भी विस्तृत रहा है।[२९]

संगीत एवं नृत्य

मध्यकालीन मेवाड़ में संगीत मनोरंजन का मुख्य साधन रहा है। कृषक एवं श्रमिक वर्ग दिन भर के कठोर श्रम के पश्चात् सायंकाल और रात्रि में सार्वजनिक रूप से संगीतादि कार्यक्रमों में योग देते थे और गाँव की चौपाल में बैठ भजन, कीर्तन आदि करते थे। मांगलिक अवसर पर स्त्रियाँ उत्सव के गीत गाती थीं। इस तरह गीत भक्ति और मनोरंजन के साधन थे। मध्यकाल के अन्तिम चरण में संगीत पर पेशेवर संगीतकार वैतनिक कर्मचारियों की तरह नियुक्त किये जाते थे। परिणामतः प्रारम्भ में संगीत के प्रति जो आदर था वह धीरे-धीरे लुप्त होने लगा। राज्य में छत्तीस तरह के रागों को गाया जाता था। वीणा, वंशी, सितार, करताल, ढोलक, तम्बूरा, तुरही आदि वाद्य यन्त्रों का प्रयोग होता था।

राज्य में शास्त्रीय नृत्यों के अतिरिक्त बन्द, घोड़ी, छाछरी, धूमर, गवरी आदि नृत्य किये जाते थे। धार्मिक दृष्टि से यत्र-तत्र कृष्ण चरित्र, रास, महावीर चरित्र, हरिश्चन्द्र चरित्र आदि विभिन्न नृत्य-नाटिकाएँ प्रदर्शित की जाती थीं।[३०] नट, भवाई आदि जातियों के लोग भी मनोरंजक कार्य क्रम प्रस्तुत करते थे।

स्थापत्य—प्राचीन काल से ही मेवाड़ में शिल्प कला बहुत ही उन्नत अवस्था में रही है। समयान्तर में विभिन्न देवालयों, महलों, बाँधों आदि का निर्माण होता रहा है। मेनाल, बिजोलियाँ, जहाजपुर, देलवाड़ा, आहाड़, चित्तौड़, नागदा और भूपाल सागर के देवालय और भवन इसके श्रेष्ठ उदाहरण है। इनकी कला में पूर्ववर्ती गुप्तकालीन कला के दर्शन होते हैं। कीर्ति-पुरुष कुम्भा के काल में इस दृष्टि से अनुपम प्रगति हुई। कुम्भलगढ़, चित्तौड़गढ़, अचलगढ़ के भवन आज भी उसकी कीर्ति का मूक गुणगान करते है।[३१] तदनन्तर परवर्तीकाल में अनेक जगदीश मन्दिर, वैद्यनाथ, शिवालय आदि देवालयों, राजसमुद्र, जयससुद्र जैसी विशाल झीलों तथा सुन्दर राजभवनों का निर्माण हुआ। ये आज भी अपनी सानी नहीं रखते।

---

२८. डा० शर्मा—राजस्थान स्टडीज़, पृ० सं० १४४-४९

२९. वैद्यनाथ शिवालय सिसारमा के गन्धर्वदल की मूर्तियाँ।

३०. (क) दामोदर—संगीत दर्पण, पत्र १०१-१०
(ह. प्र.)
(ख) पार्श्वनाथ चरित्र (ह. प्र.)
(ग) मालती माधव (चित्रित प्रति)
(घ) विभिन्न देवालयों एवं बाँधों पर बनी मूर्तियाँ

३१. राजस्थान भारती—कुम्भा अंक, पृ० ३५-५१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावात्मक एकता में कन्नड का योगदान

श्री एस० केशवमूर्ति, एम० ए०, बी० एड०, साहित्यरत्न

भारत विशाल देश है। इसके निवासी विभिन्न भाषाओं, जातियों, धर्मों, रंगों, रीति-रिवाजों और सम्प्रदायों के हैं। ये सब प्रान्तों की संकुचित सीमा में बँधकर राष्ट्रीय एकता के लिए बाधा पहुँचानेवाले सिद्ध हुए हैं। भारत जैसा विशाल है, वैसा उसका मन आजकल विशाल नहीं है। फिर भी हम कभी-कभी एकता के दर्शन करते हैं। वह क्षणिक होती है। जब देश पर बाहर से कोई आक्रमण होता है तब हम एक स्वर में बोलने लगते हैं, लेकिन जैसे ही संकट दूर हो जाता है, हम फिर एक-दूसरे के विरुद्ध खड़े हो जाते हैं, क्योंकि यह एकता स्वार्थ से ओतप्रोत होती है। भारत की विशाल दृष्टि 'वसुधैव कुटुंबकम्' प्रायः समाप्त हो चुकी है।

भावात्मक एकता की पुकार पुराने जमाने में नहीं उठी और न तब उसकी आवश्यकता ही थी। प्राचीन भारत एक स्वर में बोलता था। जिस तरह सप्त स्वर से संगीत मधुर बनता है, सप्त रंग से इंद्रधनुष की शोभा बढ़ती है, उसी तरह भाषा, जाति, धर्म, रंग, रीति-रिवाज, सम्प्रदाय एवं प्रान्तों की सप्त विविधता ने भारतमाता के सौन्दर्य को बढ़ाया है। संस्कृत भाषा ने भारत की रग-रग में अपनी संस्कृति को प्रवाहित कर सबको एक सूत्र में बाँधा है। यदि वेद, उपनिषद् और पुराणों की त्रिवेणी ने उत्तर भारत से निकलकर दक्षिण भारत को उर्वर किया तो भक्ति-गंगा, सहजानुभूति-यमुना एवं सिद्धान्त-सरस्वती के संगम ने दक्षिण भारत से निकल कर उत्तर भारत को आप्लावित किया। इस तरह के आदान-प्रदान, पुरातन काल से ही होते आये हैं, आज भी हो रहे हैं और भविष्यत् में भी होते रहेंगे। इसीलिए हम भारत को एक बनाये रखने में सफल हुए हैं।

आखिर यह 'भावात्मक-एकता' है क्या? इसकी पूर्ति कैसे हो सकती है? 'भारत का हर निवासी अपनी भाषा, जाति, प्रान्त, धर्म, सम्प्रदाय, रीति-रिवाज आदि संकुचित सीमाओं से ऊपर उठकर इसका अनुभव करे कि हम एक ही भारतमाता की संतान हैं। राष्ट्र ही मेरा धर्म है। मानव जाति ही मेरी जाति है। सब की रगों में एक ही भारतमाता का खून दौड़ रहा है। मेरा देश भारत है और मेरा धर्म भारत माँ की सेवा है।' मन में यह भावना, वचन में इसकी अभिव्यक्ति और कर्म में इसीका अवतरण भावात्मक एकता का प्रत्यक्षीकरण है।

स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद इस भावात्मक एकता की आवश्यकता जोर पकड़ती गयी और आजकल चरम सीमा तक पहुँच चुकी है। भारत की समस्त भाषाओं के साहित्य के प्रारंभिक काल में इस भावात्मक एकता पर प्रत्यक्षतः जोर नहीं दिया गया है, यद्यपि सभी भाषाओं में कवियों ने लोगों को प्रान्तीयता, छुआछूत, जातिवाद, सांप्रदायिकता, अनुशासनहीनता, स्वार्थपरता, गुटबंदी एवं भाषायी संघर्ष से ऊपर उठने का संदेश दिया है और देशप्रेम को जगाकर, परधर्म-सहिष्णुता का बीज बोया है। दैनिक जीवन में राष्ट्रीय-एकता को आत्मसात कर लिया है। निम्नलिखित उक्तियों में, जो स्नान करते समय सारे देश में हम नित्य दुहराते हैं, राष्ट्रीय एकता का दर्शन मिलता है—

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती
नर्मदे सिंधु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु।

× × ×

अयोध्या मथुरा माया, काशी काञ्ची अवंतिका
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्ष दायिका।

यहाँ हम समग्र भारत के एक इकाई के रूप में दर्शन करते हैं।

कन्नड भाषा और साहित्य भी इसके अपवाद नहीं। अतः अब हम यह देखेंगे कि कन्नड भाषा और साहित्य ने इस भावात्मक एकता के लिए कहाँ तक सहयोग दिया है।

कर्नाटक में बोली जानेवाली भाषा कन्नड है। कर्नाटक शब्द से कन्नड शब्द निकला है। कर्नाटक शब्द के चार अर्थ हैं—

कर्णयोः अटति = जो कानों में गूँजती रहती है।
कम्मित्तु नाडु = सुगन्ध युक्त देश
कर्नाडु = काली मिट्टी की भूमि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करुनाडु = ऊँचा देश। (पहाड़ों से युक्त ऊँचा प्रदेश)

ईस्वी सन् ४५० का हलिमडि शिलालेख अब तक प्राप्त कन्नड का प्रथम शिलालेख है। इसमें संस्कृत के समस्त पदों की बहुलता है। अतः यह सिद्ध है कि कन्नड भाषा-भाषी विशाल हृदय हैं। उन्होंने संस्कृत में निहित भारतीय संस्कृति को खुलकर अपनाया है। साथ ही महाभारत और रामायण में भी कर्नाटक का उल्लेख है। महाभारत, पाणिनि के व्याकरण और गाथा सप्तशती में कन्नड के शब्द—'कर्णाट', 'कुंतल' आदि मिलते हैं। इस तरह संस्कृत ने भी कन्नड शब्दों को अपनाया था।

संस्कृत साहित्य ही कन्नड साहित्य का आधार बना। वेद, पुराण, महाभारत, रामायण एवं भास, कालिदास की रचनाएँ कन्नड साहित्य के आदर्श बनीं। माघ, भारवि, बाण, भट्टनारायण के काव्य मार्ग-दर्शक बने। पैशाची प्राकृत में रचित गुणाढ्य की बृहत्कथा, हाल की गाथा सप्तशती का प्रभाव केवल ग्रंथों के विषय के क्षेत्र में ही नहीं, रीति, शैली, छंद, साहित्य एवं शब्द के क्षेत्र में भी काफी पड़ा। इस प्रकार के भावों का आदान-प्रदान ही भारतीय भावात्मक एकता की नींव है।

बौद्ध-जैन मतों का प्रभाव भी कन्नड साहित्य पर पड़ा। ब्राह्मी लिपि में कन्नड भाषा के शिलालेख मिलते हैं। अशोक के अनगिनत शिलालेख पाये जाते हैं, जिनकी लिपि ब्राह्मी है परन्तु भाषा कन्नड। अतः यह स्पष्ट है कि विशाल हृदय राजाओं एवं कवियों ने कन्नड लिपि के प्रयोग में आने से पूर्व ही, ब्राह्मी लिपि से अपना काम लिया था।

एक भाषा जब दूसरी भाषा के साथ आदान-प्रदान करती है तब भावात्मक एकता का प्रथम सोपान निर्मित होता है। कन्नड भाषा की तरह उसका साहित्य भी प्रारंभ से ही संस्कृत के प्रभाव से फूला-फला। 'कविराजमार्ग' (ई० सन् ८५०) कन्नड का प्रथम ग्रंथ है। इसे दण्डी के 'काव्यादर्श' का अनुवाद ही कहा जा सकता है। महाकवि पंप के भारत ने व्यास के भारत से स्फूर्ति प्राप्त की थी। आदि पुराण जिनसेन के महापुराण से प्रेरित है। कन्नड कवियों ने अपनी रुचि के अनुसार विषय और दर्शन संस्कृत से लिये थे, क्योंकि उन्होंने पहचान लिया था कि संस्कृत में महान् शक्ति है।

यदि संस्कृत भाषा ने उन सब को एक सूत्र में बांध कर उसको अविभाज्य देश के रूप में न जोड़ दिया होता तो प्राचीन काल में भारत विविध राजनीतिक इकाइयों में बँट गया होता। यह भाषा भारतीयों की संस्कृति का सुदृढ़ स्वरूप है।[1]

डा० राधाकृष्णन के अनुसार "संस्कृत साहित्य एक अर्थ में राष्ट्रीय है परन्तु इसका प्रयोजन सार्वभौम है।"[2]

संस्कृत में भावात्मक एकता बनाये रखने की अद्भुत क्षमता को देखकर ही शायद कन्नड भाषा ने उसे खुलकर अपनाया है। कन्नड में ७५ प्रतिशत शब्द संस्कृत के मिलते हैं। यद्यपि कन्नड ने अपना दरवाजा खोलकर सबका स्वागत किया, फिर भी यह भाषा अपनेपन को भूले बिना, उनके उत्तम अंशों को ग्रहण कर, आत्मसात कर अपने नयेपन से निखर उठी। कन्नड साहित्य की विशेषता यह है कि इसने आर्य-द्रविड, संस्कृत-कन्नड, पूर्व-पश्चिम आदि सभी के परस्पर संपर्क से समन्वय दर्शन का अवलंबन किया था। नवीं शताब्दी में रचित कन्नड का प्रथम ग्रंथ 'वड्डाराधने' भगवती आराधना नामक प्राकृत व्याख्या के आधार पर लिखित है। कन्नड के दसवीं शताब्दी का साहित्य सुवर्ण युग माना जाता है। पंप के 'विक्रमार्जुनविजय' काव्य में जाति-भेद का खण्डन पाया जाता है जो भावात्मक एकता की दूसरी सीढ़ी है। कर्ण के कुल पर व्यंग्य करनेवाले द्रोणाचार्य की बातें सुनकर दुर्योधन यों कटु आलोचना करता है—

कुलमेम्बुदुण्टे बीर मे
.....मनुष्य जाति तानोंदे वलं।

अर्थात् कुल भी एक चीज है क्या? जाति सबकी एक है। वह है मानव जाति।

उन्होंने यह भी कहा है कि राष्ट्रवाद ही हमारा युग धर्म है, राष्ट्रवाद ही हमारा कर्मयोग है।

इस काल में जैन धर्म का प्रभाव ज्यादा पड़ा।

---

१. India might have deen devided in the past into different political entities but Sanskrit had cemented the groupings and made Indians an integrated nation. The language is the strongest manifestation of the culture of Indians.

२. Sanskrit literature is nationanal in one sense but its purpose is universal.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चामुण्डराय ने जिनसेन और गुणभद्र के पूर्वोत्तर पुराणों का कन्नड गद्यानुवाद 'त्रिषष्ठी शलाकापुरुष पुराण' के रूप में किया। नागवर्म ने बाण भट्ट की कादंबरी का कन्नड में अनुवाद किया।

ग्यारहवीं शताब्दी में श्रीधराचार्य ने अपना ग्रंथ 'जातक तिलक' 'बृहज्जातक,' 'लघूजातक और 'सारावली' के आधार पर लिखा। नागचन्द्र ने अपने ग्रंथ 'मल्लिनाथ पुराण' और 'रामचन्द्र चरित पुराण' को प्राकृत के कवि विमलसूरि के 'उपमचरिय' और संस्कृत कवि वीरषेण कृत 'रामायण' के आधार पर लिखा है।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियों में प्राकृत और जैन ग्रंथों का खुलकर प्रभाव पड़ा। कन्नड ने उन्हें हृदय खोलकर अपनाया। इसके फलस्वरूप अग्गळ ने 'चन्द्रप्रभ चरित्र' और जन्न ने 'यशोधर चरित्र' रचा। 'शान्ति पुराण' और 'धर्मनाथ पुराण' इसी युग की देन हैं। सुबंधु की 'वासवदत्ता' के आधार पर नेमिचन्द्र ने 'लीलावती नामक शृंगार रस के काव्य की रचना की तो चौंडरस ने दण्डी के 'दशकुमार चरित्र' के आधार पर 'अभिनव दशकुमार चरित्रे' और 'नलचंपू' की रचना की थी।

इस युग में काव्यशास्त्र की भी कमी नहीं। द्वितीय नागवर्म का 'काव्यावलोकन' संस्कृत के वामन, रुद्रट, भामह, दण्डी, भरत एवं राजशेखर के काव्य शास्त्रों के आधार पर रचित है।

'कर्नाटक भाषा-भूषण' संस्कृत सूत्रों में रचित कन्नड व्याकरण है। इसमें उदाहरण कन्नड काव्य ग्रन्थों से दिये गये हैं। 'कर्नाटक शब्दानुशासन वस्तुकोश' भट्टकळंक द्वारा पद्यरूप में रचित संस्कृत-कर्नाटक निघंटु है।

राजादित्य ने गणित शास्त्र के ग्रंथों के आधार पर 'क्षेत्र गणित', 'व्यवहार गणित', 'व्यवहाररत्न', 'लीलावती' चित्रहसुगे', 'जैन गणितसूत्र टीकोदाहरणे' की रचना की। इस तरह संस्कृत भाषा को सारे देश को एक सूत्र में बाँधनेवाली भावात्मक एकता की कड़ी मानकर कन्नड साहित्य में खुलकर अपनाया गया और भावात्मक एकता की गहरी नींव डाली गयी।

कन्नड के वीर शैव साहित्य ने तमिल और कन्नड भाषा के बीच और विजयनगर के राजाओं ने तेलुगु और कन्नड के साहित्य में आदान-प्रदान कर भावात्मक एकता को और बढ़ाया। विजयनगर के राजाओं ने कवियों को प्रोत्साहित कर इन शास्त्र ग्रंथों का संस्कृत से कन्नड में अनुवाद कराया—वैद्यामृत, वैद्यसांगत्य, खगेन्द्रमणिदर्पण, अश्ववैद्य, माधवालंकार, रसरत्नाकर, शारदाविलास, कविजिह्वाबंधन, मंगाभिधान, चतुरास्य निघंटु, कर्नाटक शब्द मंजरी, नरपिंगळी, शकुनसार, शकुनप्रपंच, रट्टजातक, जननश्थ, सूपशास्त्र इत्यादि।

मैसूर के राजाओं ने भी संस्कृत पंडितों को आश्रय देकर कन्नड साहित्य की श्रीवृद्धि की। ई० १७९९ से १८३१ तक श्रीमुम्मुडि कृष्णराज उडेयार ने निम्नलिखित ग्रंथों को कन्नड में अपने अंबाविलास मुद्राक्षरशाला में शिलायंत्रों से मुद्रित चित्रों द्वारा मुद्रित कर सारे राज्य में मुफ्त में वितरण किया—श्रीतत्त्वनिधि, गणित संग्रह, स्वर चूडामणि, सौगंधिका परिणय, संख्यारत्न कोश, श्रीकृष्ण कथा सार संग्रह, नवग्रह पूजा मंजरी, आर्यरामायण, श्रीचक्र संग्रह मंजरी, सूर्य चंद्र वंशावली, श्री चामुंडिका लघु निघंटु, महाकोश सुधाकर, चदुरंग सारस्वरूप भारत, भागवत, रामायण, महाभारत, चारों वेदों का कन्नड में भाष्य, ग्रहण दर्पण, विष्णुनाम पंचाशत, देवतानाम कुसुममंजरी, श्रीचामुंडेश्वरी, गणपति श्रीकंठेश्वर, महाविष्णु आदि की त्रिशति इत्यादि।

ई० सन् १९३५ में मिशनरियों ने साहित्य की बहुत सेवा की। 'किट्टल निघंटु' अद्वितीय कोश है। कई पंडितों ने मिलकर बाइस वर्षों में इसे समाप्त किया। काल्वेल-रचित कंपेरेटिव स्टडी आव ड्रेविडियन ग्रामर (Comparative study of Dravidian Grammar) ने भाषा के क्षेत्र में एकता को दर्शाया है।

सांगलीकर नाटक और संगीत मण्डली ने मराठी से सीतास्वयंवरं, उषा-हरण, शाकुंतल का कन्नड में अनुवाद कर मराठी और कन्नड में एकता की स्थापना की तो राजा नाटक कंपनी ने संस्कृत के दर्जनों नाटकों को कन्नड में अभिनीत कर सबको एकता के सूत्र में बाँधा था।

श्री बि० वेंकटाचार्य ने साठ से ज्यादा बंगाली उपन्यासों का अनुवाद कर कन्नड साहित्य की श्रीवृद्धि के साथ बंगाली-कन्नड को एकता के सूत्र में बाँधा था। उनमें उल्लेखनीय उपन्यास हैं—विषवृक्ष, इन्दिरा, युगळांतरीय, राधाराणि, रजनी, कृष्णकांतन उयिलु, दुर्गेशनंदिनी, देवी चौधुराणि, कपालकुंडला, आनन्दमठ, राजसिंह, मृणालिनी, चन्द्रशेखर, सीताराम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गळगनाथ ने मराठी से इक्कीस उपन्यासों का अनुवाद प्रस्तुत कर कन्नड-मराठी के बंधन को और सुदृढ़ बनाया। बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रचित वचन साहित्य और सोलहवीं शताब्दी में रचित दास साहित्य में भावात्मक एकता की स्थापना करने का खुलकर प्रयत्न किया गया है। उसका बाद में विस्तार से विवेचन करेंगे।

भावात्मक एकता की स्थापना में श्रीरंग ने उल्लेखनीय कार्य किया है। उन्होंने जातीयता, प्रांतीयता, छुआछूत आदि को मिटाकर भारत को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए हरिजन्वार, राम राज्य, गण-गण-राज्य, शुद्धि सप्ताह, सहनौ भुनक्तु, पुरुषार्थ आदि नाटकों की रचना की।

श्री कारांत ने भावात्मक एकता के बाधक धार्मिक अंधविश्वास, जातिवाद, भाषावाद, स्वार्थ लौलुपता, सांप्रदायिकता आदि को मिटाकर देश-प्रेम जगाने के लिए कई उपन्यास लिखे। उनमें उल्लेखनीय हैं—परिवर्तन भारत, देहलिय दौर्भाग्य, रक्त-काणिके, गेद्दवर सत्य इत्यादि।

श्री कट्टीमनी ने 'नी नन्न मुट्टबेड' (तुम मझे मत छुओ) साक्षात्कार, माडिमडिदवरु आदि उपन्यासों द्वारा अस्पृश्यता निवारण एवं त्याग पर जोर दिया है।

श्री अनन्तमूर्तिजी का 'संस्कार' एवं श्रीवैरप्पा का 'वंशवृक्ष' जातीयता को दूर हटाने के लिए लिखित सुन्दर उपन्यास हैं, जो बाद में फिल्में बनाकर राष्ट्रपुरस्कार से सम्मानित हुए।

ई० सन् १९१५ में कर्नाटक साहित्य परिषद् की स्थापना हुई। उसके मुख्य उद्देश्यों में से एक है भावात्मक एकता की स्थापना करना। छिद्र-छिद्र कन्नड प्रांतों एव भाषा-भाषियों को मिलाकर सह अस्तित्व का पाठ सिखाना और अन्य भाषाओं के उत्तम ग्रंथों को कन्नड में अनुवाद कर, सारे कर्नाटक में पुस्तकालय और वाचनालय खोलकर समग्र भारत को अपना बनाकर देखने की दृष्टि प्रदान करना।

मैसूर विश्वविद्यालय ने 'कन्नड अध्ययन संस्थे' की स्थापना कर, उसके अंतर्गत अनुवाद विभाग खोलकर भारत की ही नहीं, विश्व की सभी भाषाओं के उत्तम ग्रंथों को कन्नड में अनुवाद कर यह दर्शाया है कि हम भारतीयों की रगों में एक ही भारत-माता का खून बह रहा है।

मैसूर विश्वविद्यालय के प्रसार विभाग ने अद्भुत कार्य किया है। भावात्मक एकता की स्थापना करने के लिए विविध भाषाओं के सैकड़ों उत्तम ग्रंथों का कन्नड में अनुवाद कर और मौलिक ढंग से लिखवाकर उसने बहुत ही उत्तम कार्य किया है। इनमें से भावात्मक एकता की स्थापना के क्षेत्र में अद्वितीय ग्रंथ है—श्री एन० अनंतरंगाचार रचित 'साहित्य भारती' नामक विशाल ग्रंथ, जिसमें भारत की उन्नीस भाषाएँ—संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड, तेलुगु, मलेयाळम, बंगाली, ओडिया, असमिया, मराठी, गुजराती, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, कश्मीरी, सिंधी, मैथिली और भारत के अंग्रेजी साहित्य का सुन्दर इतिहास कन्नड भाषा में प्रस्तुत है जो अन्य भाषाओं में दुर्लभ है। इस ग्रंथ में प्रत्येक साहित्य की भौगोलिक व्याप्ति, दूसरी भाषाओं के साथ उसका संपर्क, आदिकाल से लेकर आजतक के कवियों और काव्यों का परिचय, उन पर विविध प्रभाव, इतिहास की विभिन्न सीढ़ियाँ, प्रादेशिक गुण और मौलिकता आदि की चर्चा है एवं जनसामान्य के मत का अंगीकरण हुआ है। प्रत्येक साहित्य की पत्र-पत्रिकाओं की प्रगति एवं इतिहास का निरूपण भी किया गया है। सभी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए संस्कृत में एक गद्यांश देकर, अन्य सभी भाषाओं का लिपि अनुवाद, उच्चारणानुवाद कन्नड में प्रस्तुत किया गया है। केन्द्र शिलालेख विभाग से अनुमति प्राप्त कर लिपिचित्र छापे गये हैं और यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार ब्राह्मी लिपि से इन उन्नीस भाषाओं के अक्षर और अंक विकसित हुए हैं। भारतीय भाषाओं का यह लिपिवृक्ष देखते ही बनता है।

इस ग्रंथ के अध्ययन के पश्चात् पाठक इस निर्णय पर निस्संदेह आ जायँगे कि भारत एक प्राचीन पवित्र देश है, वेद-द्रष्टाओं, ऋषि-मुनियों, दार्शनिकों, शास्त्रवेत्ताओं और कवि-कोविदों का पवित्र जन्मस्थान है। देश, काल, आकार एवं भाषाओं में बाह्य भिन्नता के होते हुए भी अन्दर की दृष्टि, ध्येयों तथा धारणाओं में एकता है। एक-दूसरे का निकट संबंध है। इस ग्रंथ का नाम 'साहित्य भारती' भी भावात्मक एकता का सूचक है। ग्रंथ के अंत में सभी भाषाओं में भारतीय ज्ञानपीठ के पारितोषक विजेताओं, साहित्य अकाडेमी एवं नोबल पुरस्कार विजेताओं की सूची, क्रमबद्ध रीति से देकर यहाँ भी भावात्मक एकता के दर्शन कराया गया है।

ई० सन् १९३७ में डा० राधाकृष्णन संपादित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया (The Cultural Heritage of India) का कन्नड अनुवाद 'युगयात्री भारतीय संस्कृति' दूसरा उल्लेखनीय ग्रंथ हैं। इसमें भारत के १०० अद्वितीय विद्वानों ने २००० पृष्ठों में भारतीय सांस्कृतिक इतिहास को समग्र दृष्टि मे प्रस्तुत किया है। इसका अनुवाद एकमात्र कन्नड भाषा से हुआ है। इस पुस्तक में यह दर्शाया गया है कि भारत की शक्ति मानव की एकता, चिंतन की एकता और आध्यात्मिकानुभव की एकता के तत्त्वों पर सुदृढ खड़ी है। अन्वेषण, अध्ययन और प्रयोग के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति की परंपरा अटल खड़ी है। विविधता में एकता का सुन्दर दर्शन हम इस ग्रंथ में कर सकते हैं जो चार विभागों के रूप में अनुवाद कर प्रकाशित हुआ है।

भावात्मक एकता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील कवियों में उल्लेखनीय कवि हैं—राष्ट्रकवि कुवेंपु बेन्द्रे, गुण्डप्पा, सिद्धय्य पुराणिक, गोपाल कृष्ण अडिग इत्यादि।

अब हम कन्नड के वचन साहित्य, हरिदास साहित्य और आधुनिक कविता में यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि ये तीनों कहाँ तक भारतीय भावात्मक एकता को बनाये रखने में काम कर रहे हैं।

भारतीय भावात्मक एकता के रास्ते में बाधा पहुँचाने वाली प्रथम चीज़ है कुल और जाति। हिन्दुओं में ही कुछ लोगों को अस्पृश्य कह कर हमारे समाज ने घोर अन्याय किया है। इसको दूर हटाने के लिए सर्वज्ञ ने यों कहा है—

"नडेवुदोंदे भूमि, कुडिवुदोंदे नीरु
सुडुवग्नियोंदे इरुतिरलु कुलगोत्र
नडुवे एत्तणदु सर्वज्ञ ।।"

(हम जिस पर चलते हैं वह एक ही भूमि है। हम जो पीते हैं वह एक ही पानी है। जलानेवाली आग भी एक है। ऐसी अवस्था में कुल और गोत्र का भेद बीच में कैसे आया ?)

हरिदासों ने भी इसका खण्डन किया है। कनकदास ने कहा है—

"कुलकुल कुलवेन्नुतिहर। कुल यावुदु सत्य सज्जनरिगे"

(अर्थात् सब लोग कुल (जाति), कुल, कुल कहकर झगड़ते हैं। हे सज्जनो, असल में यह कुल किसका नाम है ?)

बसवण्ण ने कहा है कि कुल, कर्म के आधार पर निकला है—

"लोहा गरमाने से लुहार बना, कपड़ा धोने से धोबी बना, बुनने से जुलाहा बना, वेद पढ़ने से ब्राह्मण बना, क्या कानों से जन्म लेनेवाला कोई है इस संसार में ? हे कूडल संगम देव, अंगस्थल को जाननेवाला ही कुलीन है।"

कर्मानुसार मनुष्य उच्च या नीच बनता है न कि कुल या जाति के आधार पर—

"हत्यारा ही अंत्यज है, गंदगी (मांस) खानेवाला ही चण्डाल है।
जाति किस चिडिया का नाम है ?
सकल जीवात्मा की भलाई चाहनेवाला हमारे कूडलसंगमदेव का शरण ही कुलीन है।"

आधुनिक कवि गोपाल कृष्ण अडिग की वाणी सुनिए—

नावेल्लरु ओंद जाति, ओंदे मत, ओंदे कुल नाउ मनुजरु।

× × ×

नावेल्लरु ओंदे ताय एदेयासेय कुडिगळु।
जातिमतद गुद्देगळिंद होरबन्निरि बयलिगे।

अर्थात् हम सब एक ही जाति, एक ही धर्म एवं एक ही कुल के हैं। हम सब मानव हैं। हम सब एक ही भारतमाता की महत्त्वाकांक्षा की कोंपलें हैं। जाति, धर्म रूपी अज्ञान ये अंधकार में आवृत्त गुफाओं में से निकलकर ज्ञान के प्रकाशयुक्त बाहर के मैदान में आइए।

भावात्मक एकता में बाधा पहुँचानेवाली दूसरी चीज है धर्मांधता और विविध देवोपासना। कन्नड के कवियों ने बताया है कि परमात्मा एक है, यद्यपि हम कई नामों से उसे पुकारते हैं। बसवण्ण ने कहा है कि देव तो होता है एक ही, पर उनके नाम होते हैं कई। परम पतिव्रता का पति होता है एक ही।

विविध देवोपासना का खण्डन कवि ने यों किया है—

इरुव ओंदु दैवक्के नूरु हेसरिट्टु
अव हेच्चु, इव हेच्चु एन्नुता बोब्बिट्टु ।।"

(परमात्मा एक है, उसके लिए सैकड़ों नाम देकर, यह बड़ा है, वह बड़ा है कहते हुए हम आपस में झगड़ते हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रान्तीयता की संकुचित सीमा भावात्मक एकता को भारी बाधा पहुँचाती है। समग्र भारत को देखने की भावना तभी होती है जब भारत के हर एक व्यक्ति में देश-प्रेम जाग उठता है। आधुनिक कवि सिद्धय्य पुराणिक ने भावात्मक एकता को यों जगाया है—

"भारतीयरु नावु एन्देंदु ओंदे
भावैक्यदलि कूडि नडेयुवेवु मुन्दे।
नूरुमत नमगिरलि, नूरु माता गिरलि
नाडिन जनमन नावेल्ल ओंदे
× × ×
काश्मीरदिंद कन्याकुमारिय वरेगे
कंगोळिप ताय्नाडु प्राणक्कु मिगिलेमगे
कुलभेद, नेलभेद, जाति भेदव तीरेदु
काळगके ओंदागि नडेयुवेवु मुन्दे॥"

(हम भारतीय हैं। सदा एक हैं। भावात्मक एकता से युक्त होकर आगे बढ़ेंगे। चाहे हमारे बीच सैकड़ों भाषाएं हों या चाहे सैकड़ों मत क्यों न हों, देश का जन-मन और हम सब एक हैं। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक शोभायमान मातृभूमि हमें प्राणों से भी प्यारी है। कुल-भेद, स्थल-भेद एवं जाति-भेद को त्यागकर मातृभूमि की रक्षा करने, शत्रुओं से युद्ध करने के लिए एक बन आगे बढ़ेंगे।)

प्रान्तीयता और भाषायी संघर्ष भावात्मक एकता में बाधा पहुँचानेवाले पिशाच हैं। लोग यह भूल जाते हैं कि प्रान्तों का भाषा के आधार पर विभाजन शासन की सुविधा के लिए है, न कि भारत के लोगों में भाई-चारे, सहअस्तित्व और सहयोग में बाधा डालने के लिए। नदी के पानी के वितरण को लेकर ही एक प्रान्त दूसरे का दुश्मन बन बैठा है। इसको दूर हटाने के लिए कन्नड भाषा में दर्जनों लेख छप चुके हैं। कर्नाटक ने त्रिभाषा सूत्र को अपने हृदय से अपना कर, हिन्दी को अनिवार्य भाषा के रूप में शिक्षा के क्षेत्र में स्वीकार कर, भाषायी संघर्ष को पूर्ण रूप से समाप्त कर भावात्मक एकता की स्थापना की है। इन संघर्षों का मूल कारण (कुछ अन्य प्रान्तों में) है—भारतीयों में सच्चे देश-प्रेम का अभाव। आधुनिक कवि जो भारतमाता की उपासना कर रहे हैं उसे देखते ही बनता है—

मातृभूमि जननि निन्न चरण सेवे माडुव
परम हरुषदिंद निन्न सुखके प्राण नीडुव
हिन्दु माते बंधु भाव दिंद निन्न मक्कळु
ओंदुकूडि निन्न यशव जगदोळेल्ल मेरेयुव॥

(ऐ मातृभूमि, तुम हमारी जननी हो। तुम्हारी सेवा हम करेंगे। अत्यन्त हर्ष के साथ तुम्हारे सुख के लिए प्राणों की बलि चढ़ायेंगे। हिन्दुस्तान की हे माता, तुम्हारी संतानें बंधुभाव से एकत्र होकर तुम्हारे यश को जगत् में फैलायेंगी।)

जब भारत पर चीन और पाकिस्तान के आक्रमण हुए तब कवि ने सबको मातृभूमि की रक्षा करने का आह्वान करते हुए कहा—

ताय्नाड रक्षणगे ओडोडि बन्नि
हुडुगिरुव भेदगळ हूतिट्टु बन्नि
एच्चेत्तु अडियिट्टु गडियत्त बन्नि
ताय्नाड रक्षणगे पणतोट्टु बन्नि।

(मातृभूमि की रक्षा करने के लिए दौड़कर आइए। अपने हृदय में छिपे भेद भावों को गाड़कर हमेशा के लिए जाग उठिए और दौड़कर सीमा प्रान्त में आ जाइए। मातृभूमि की रक्षा करने की प्रतिज्ञा करके आइए।)

अतः यह सिद्ध है कि कन्नड-भाषा-साहित्य प्रारम्भ से लेकर आजतक देश की भावात्मक एकता की स्थापना करने के लिए सतत प्रयत्न करते आया है और आगे भी करता रहेगा। जय हिन्दी! जय हिन्द!! जय भावात्मक एकता!!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य की पुकार

श्री रामप्रसाद पाण्डेय

विश्व-जनसंख्या का आधे से अधिक भाग समाजवाद अथवा उसके उग्र रूप साम्यवाद को अपना चुका है। लगता यही है कि और लोग भी इसके घेरे में आवेंगे। यह एक उठता हुआ वाद है। भारतवर्ष की वर्त्तमान सरकार भी इसको अपनी आर्थिक नीति स्वीकार कर चुकी है, और प्रधान मंत्री समय-असमय इसकी दुहाई देती रहती हैं और इसके नाम पर अनेक कार्य करती जा रही हैं जिनकी न्यायिकता और नीतिमत्ता विवाद का भारी विषय है।

इस देश के प्रथम समाजवादी नेता स्वर्गीय पं० जवाहरलाल कहे जा सकते हैं, जिन्होंने, कांग्रेस-अध्यक्ष-पद से, सर्वप्रथम १९३६ के लखनऊ-अधिवेशन में समाजवाद का सबल समर्थन किया। परन्तु अभी कांग्रेस के कुछ ही सदस्य इसको स्वीकार करते थे। बहुसंख्यक इसके विरोधी थे। कांग्रेस के बहुमत ने इसको १९६२ में जाकर अपनाया, जिससे इस विषय में शासकदल पूर्णरूप से समाजवादी हो गया, और इसकी आड़ में अनेक प्रकार के असामाजिक क्रूर कार्य करने में संकोच नहीं करता। दृष्टांत के लिए, हाल की कठोर वसूली और गेहूँ तथा अन्य अन्नों का थोक-व्यापार सरकार द्वारा लेने के विफल प्रयास हैं। इस अंग पर आगे चलकर और प्रकाश डालने का प्रयत्न करूँगा।

थोड़ी देर के लिए हम यह भूल जायँ कि ५० प्रतिशत मतों का ४० प्रतिशत मात्र कांग्रेस के पक्ष में है अर्थात् राष्ट्रीय जनसंख्या का केवल ६ प्रतिशत कांग्रेस का सक्रिय समर्थन करता है। कांग्रेस को राष्ट्र का प्रवक्ता कहना प्रवंचना है। परन्तु 'मौनं स्वीकृति लक्षणम्' न्याय से हम कांग्रेस को राष्ट्र का महत्तम प्रवक्ता मान लेते हैं। तथापि क्या देश-विदेश की बहुसंख्या से कोई सिद्धान्त स्थापित हो सकता है? इस तर्क से तो सूर्य का चलना, स्वार्थपरता का मान्य होना, और सृष्टि में अनेक भिन्न-भिन्न तत्त्वों का होना सिद्ध हो जायगा, क्योंकि अधिकतर लोगों का वैसा ही अनुभव और विश्वास है। तात्पर्य यह है कि सत्य के निरूपण के लिए सुसंस्कृत बुद्धि एवं दिव्य चक्षु की अपेक्षा है। शास्त्रों की और साधुसंतों की यहीं नितान्त आवश्यकता है। व्यवहार में भी देखें तो समाज के अनेक क्षेत्रों में एक ही नेता होता है, जैसा स्वतंत्रता-संग्राम के नेता महात्मा गांधी थे।

हाँ, यदि नेता असाधु अथवा अज्ञानी हो तो अनर्थ कर देता है। समाजवाद की यही विडंबना है। १९वीं शती के यूरोप में तीन विचारकों का आविर्भाव हुआ जिनकी विचारधारा ने मानव समाज पर विशेष प्रभाव डाला। जर्मनी में, कार्ल मार्क्स (१८१८-१८८३), इंगलैंड में जॉन रस्किन (१८१९-१९००), और रूस में लियो टॉल्सटॉय (१८२८-१९१०) हुए। इनमें अंग्रेज तथा रूसी दोनों ही अभिजात महानुभाव थे और उनका जीवन जैसा शुद्ध और साधु था वैसा ही उनका आदर्श और ध्येय भी उच्च था। एक चित्रकला के माध्यम से मानव-जीवन में सुखद सौंदर्य लाने का इच्छुक था तो दूसरा साहित्य-कला के कथा भाग द्वारा मानवीयता को प्रोत्साहित करता रहा। रस्किन की सौंदर्य-भावना उदार थी और समाज में दीन-दुःखी-विपन्न दृश्य को वह सामाजिक कुरूपता समझता था। अपने प्रसिद्ध व्याख्यान 'अनटू द लास्ट' (Unto the Last) द्वारा उसने प्रबल अनुरोध किया कि जीवन के सामान्य सुख और सुविधाएँ निम्नतम वर्ग में भी होनी चाहिए। यह दया और सहानुभूति का संदेश था। इसमें महानता थी, अभिजात सत्त्व की सरस श्रद्धा थी। टॉल्सटॉय ने पृथ्वी-पुत्रों के मध्य सरल, स्वाभाविक एवं श्रमसिक्त जीवन का आदर्श उपस्थित किया। श्रममहिमा और सहानुभूति उसके आदर्श की मूल धाराएँ थीं। दोनों की विचारधाराओं में समान रूप की शान्ति थी। वे विधायक थे। गिरे को उठाने का प्रयत्न करते रहे, किसी को गिराने का नहीं। उनसे सभी को सुख पाने की प्रेरणा मिली, कोई अपहरण का शिकार नहीं बना। उन्होंने मानवीयता को उठाया। सक्रिय एवं अग्रसर होने का उदात्त उपदेश दिया।

जर्मन सज्जन उन दोनों से सर्वथा भिन्न थे। कार्ल महोदय क्रूर, प्रतिशोधी और क्षुद्र स्वभाव के थे। पड़ोस के फ्रांस-विप्लव की ज्वाला से जल रहे थे। अमीर और उच्च वर्गों के प्रति उनके हृदय में आग धधकती थी। उन्हींके वर्ग के लोगों के लिए यह श्रुति है:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परांचिखानि व्यतृणत् स्वयंभू-
स्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मा ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष—
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ।।

मुंडको० २।१

ब्रह्मा ने इंद्रियों को बहिर्मुखी बनाया है। अतः उनके वशीभूत प्राणी, भीतर नहीं, बाहर की ओर ही देखते हैं। बिरला ही विद्वान्, अमरता की इच्छा से, बाह्य वस्तुओं से आँख मोड़कर, अन्तःकरण का ध्यान करता है। मार्क्स प्राकृत और रस्किन-टॉल्सटॉय धीर श्रेणी के थे। मार्क्स ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'दास कैपिटल' (Das Capital) में मूलतः यह प्रतिपादन किया कि सृष्टि के मूल में न कोई प्रेरक तत्त्व है, न मनुष्यों में बनाने-बिगाड़नेवाली कोई कर्म शक्ति है। समाज के कुछ लोगों ने अन्याय से सभी साधन अपने अधिकार में कर लिये हैं। उस समग्र भूमि और पूंजी को छीनकर सभी के भरण-पोषण में लगाना चाहिए। प्रचलित सरकारें और अन्य संस्थाएँ दोषमूलक हैं। उनका अन्त होना चाहिए। खून खराबी के भय से वह जर्मनी और फिर फ्रांस से निर्वासित किया गया, परन्तु उसके मत को रूस के लेनिन (१८७०-१९२४) और स्टालिन (१८७९-१९५२) ने अपनाया और १९१७ की खूनी क्रान्ति रचायी, जिसमें अगणित हत्याएँ—कहते हैं एक करोड़ के लगभग—हुईं। जो हो, वहाँ साम्यवाद की विचारधारा स्वीकार किये बिना रहना असम्भव है। नोबेल-पुरस्कार-विजेताओं की दुर्गति देखी जा रही है।

यह विधि की विडंबना ही कही जायगी कि आनन्द भवन में पले, केंब्रिज में शिक्षा पाये और अंग्रेजी रीति-नीति के पंडित होते हुए, पं० जवाहरलालजी को प्रेरणा उस रूस से मिली जहाँ खूनी क्रान्तियाँ उनके सामने-सामने हुईं। रुधिरहीन क्रान्तिवाले अधिक सभ्य देश ब्रिटेन का प्रभाव गौण हो गया। अमरीका, जापान आदि अधिक समृद्ध देशों की भी छाप नहीं पड़ी। परन्तु यह देश के लिए सौभाग्य की बात हुई कि पंडितजी, अथवा आचार्य नरेंद्र देव, डा० लोहिया और बाबू जयप्रकाश आदि ने रूस की हिंसात्मक राजनीति नहीं अपनायी, प्रत्युत उसकी निन्दा की, और केवल अर्थ-नीति अपनायी, जिसके वशीभूत संविधान के लागू होते ही, १९५० में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन कर दिया। यह साम्यवाद का पहला निशाना था। उन्होंने सरकारी क्षेत्र में बड़े-बड़े कल कारखाने स्थापित किये, जो औद्योगीकरण में बड़े सहायक सिद्ध हुए। उनकी नीति बड़े-बड़े स्टेट-फार्मों के द्वारा अनाज की प्रभूत उत्पत्ति भी थी, और सूरतगढ़ तथा पन्तनगर में उनका आरम्भ भी किया। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि उनकी नीति राज्य साधनों द्वारा उत्पादन की थी जो वास्तविक समाजवाद है। पूँजीपतियों को प्रोत्साहन देकर मिश्रित-अर्थ-व्यवस्था की स्थापना पंडितजी की मौलिक देन थी। यदि वे कुछ वर्षों तक और जीवित रह गये होते तो वह छीछालेदर नहीं मचती, जिसमें आज देश डूबा जा रहा है। उनकी सुपुत्री इंदिराजी ने उनकी नीति छोड़ दी, और साम्यवादियों के प्रभाव में आकर वे पंडितजी की सुदृढ़ नीति पर अनेक बार कटाक्ष भी कर चुकी हैं। आम जनता तक उत्पादन के लाभ को पहुँचाने के नाम पर, और उसे भावात्मक तुष्टि देने के लिए, उन्होंने बड़े-बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया, बीमा व्यवसाय को सरकारी क्षेत्र में ले लिया, भूतपूर्व राजाओं की वृत्ति बन्द कर दी, गेहूँ के थोक व्यापार को हाथ में ले लिया, और उसके अभद्र रूप के विफल होने पर अब राजकीय शक्ति के प्रयोग द्वारा उत्पादकों से अनाजों की वसूली हो रही है और सरकारी साधनों द्वारा उसका वितरण किया जाने पर सारा जोर दिया जा रहा है जिससे एक ओर कृषिकारों में और दूसरी ओर व्यापारियों में असंतोष बढ़ रहा है। गुजरात और बिहार की सार्वजनिक अशांति उसी असंतोष के ज्वलंत प्रमाण हैं। जब राज्य की ओर से क्षेत्र तैयार कर दिया गया, तब विरोधी तत्त्वों का उससे लाभ उठाना स्वाभाविक है। जयप्रकाश बाबू की कार्य-प्रणाली अनैतिक एवं असंवैधानिक है, उत्पात मचानेवाली है, परन्तु उनके सभी आक्षेपों में ठोस सत्य है। यह कितना बड़ा परिवर्त्तन जनमानस का है कि आनन्द भवन की नगरी में प्रधान मंत्री शांतिपूर्वक भाषण नहीं कर सकतीं, उन्हें अनेक उत्पातों का सामना करना पड़ता है, अभद्र नारे सुनने पड़ते हैं, जैसा १९७३ के आरंभ में कायस्थपाठशाला के मैदान में हुआ था। यह भावना बढ़ती पर है, न कि उतार पर! देश की अन्तरात्मा में अशांति और क्रांति का आरंभ हो चुका है। जयप्रकाश नारायण की यह कल्पना मात्र नहीं है। स्वतंत्र चिन्तन छोड़कर कांग्रेसी सांसद 'अहो रूपम्' और उसके नेतागण 'अहोध्वनिः' कह रहे हैं। समाज और धर्म की व्यवस्था हिल गयी है। सरकार प्रशासनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्था न रहकर क्रमशः व्यापारिक संस्था होती चली जा रही है। भला जिस गणराज्य का प्रेसिडेंट दूकान में आटा-चावल की बानगी देखेगा (जैसा गिरि महोदय ने एक बार दक्षिण में किया था) उसकी शासन व्यवस्था कहाँ रहेगी? सरकार स्व-रूप और स्व-धर्म को भूल गयी है। कानून व्यवस्था तिरोहित हो रही है। पुलिस के आई० जी०, डी० आई० जी०, और एस० पी० सभा करते हुए साधारण व्यक्तियों द्वारा गोली से उड़ा दिये जाते हैं, केन्द्रीय रेलवे मंत्री को न रक्षा मिलती है, और, घायल होने पर, न समय से उपचार मिलता है, रेल और बैंकों में खुले लूट हो जाती है, गाजियाबाद से मेरठ का मार्ग तय करना कठिन हो गया है, लूट-पाट-हत्याओं के समाचार निरंतर छपते हैं—इन सभी से तो यही सिद्ध होता है कि शासन शासन न रहा, व्यापार मंडल हो गया है!

यह दुरवस्था क्यों? यह सब है परिणाम साम्यवाद-गर्भित समाजवाद के विकृत प्रयोग का। देश का वास्तविक बल स्वतंत्र व्यवसाय में लगा विकसित नागरिक व्यक्तित्व है, जिसके लिए आज अनुकूल स्थिति नहीं है। साम्यवाद तो 'पापोऽहं पाप संभवः' है। स्वार्थ, प्रतिशोध, आक्रोश और ईर्ष्या से इसकी उत्पत्ति है और इस प्रकार 'पापरूप' है। इसका मृदुल रूप भी बिगड़ कर आज दानवरूप हो गया है। इस पर गहरे विचार की आवश्यकता है। राज्य अपने शासन को सुदृढ़ करे, ऐसी स्थिति पैदा करे जिसमें प्रत्येक नागरिक अपने-अपने व्यवसाय में लगकर उन्नति करे, समृद्ध बने जिससे उसमें सदाचार बढ़े। इतिहास कारों ने प्राचीन समाज और अर्थ-व्यवस्था की भूरि-भूरि प्रशंसा की है कि दिल्ली सरकार के परिवर्त्तनों का भारत के कृषकों और व्यापारियों पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे अपना व्यवसाय चलाते रहे। यही भारतीय समाज-व्यवस्था की विशेषता थी। मानव की उन्नति व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास से होती है, उसके आत्मनिर्भर होने से होती है। खोखले समाजवाद से कर्मण्यता, आत्मनिर्भरता और चरित्र का नाश हो रहा है। लूट-पाट, छीना-झपटी आदि लोक की नीति हो रही है। यदि समय रहते सुधार नहीं किया गया तो देश विप्लव के पंक में धँस जायगा। विचारशीलों को आंदोलन करने की परमावश्यकता है इस सुधार और परिवर्त्तन के पक्ष में। सच्ची अर्थ-व्यवस्था में सुख-समृद्धि की न्यूनतम सीमा—सीलिंग—होती है। उच्चतम को तो अग्रसर ही रहने देना चाहिए। जैसे ज्ञानविज्ञान समाज-कल्याण के लिए अपेक्षित हैं, वैसे धनाढ्य वर्ग भी। गरीबी का वितरण नहीं, समृद्धि का वितरण सच्चा आदर्श है।

अतः सरकार ओछी नीति छोड़े, शासन-व्यवस्था कड़ी करे, सुरक्षा-शांति की स्थिति स्थापित करे, नागरिकों को स्वतंत्रता दे, जिससे सुख-समृद्धि बढ़े। 'तमसो तां ज्योतिर्गमय', आज यही बुद्धिवादी की प्रार्थना होनी चाहिए।

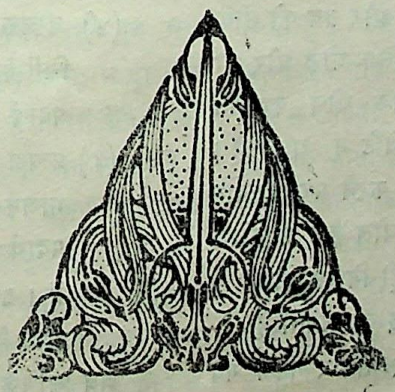

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरेस तथा अन्य चिपकानेवाले पदार्थ

प्रो० पुरुषोत्तमदास स्वामी, एम० एस्-सी०, एम० एस०, विशारद

श्लेष अर्थात् सरेस तथा जिलेटीन ये दो ऐसे पदार्थ हैं जिन्होंने अपने गुणों के कारण उद्योग जगत् में अपना सारभूत स्थान बना लिया है। वास्तव में देखा जाय तो ये दोनों एक-से हैं, क्योंकि ये समान रासायनिक संगठन वाले नाइट्रोजनीय प्रांगारिक यौगिक हैं। मोटे तौर पर सरेस को अशुद्ध जिलेटीन की संज्ञा दी जा सकती है। सरेस को अंग्रेजी में 'ग्लू' कहते हैं, जो लैटिन भाषा की धातु 'ग्लूयरे' से बना है, जिसका तात्पर्य 'निकट खींचना' होता है। सरेस का प्रयोग अभिलागी की तरह किया जाता है। सरेस को उपयुक्त विलेयक में घोलने पर सांद्र घोल तैयार होता है, जो अंततः ठोस अवस्था में परिणत हो जाता है। इसमें संलागी तथा अभिलागी गुण बहुत अधिक होता है। साधारणतः सरेस पदार्थ से अभिप्राय चमड़ी, हड्डियाँ तथा दूसरे प्राणिज क्षेत्र पदार्थ को पानी के साथ उबालने से प्राप्त वस्तु से माना जाता है पर कुछ सरेस-जैसे पदार्थ अप्राणिज वस्तुओं से भी बनाये जाते हैं और उन्हें तैयार करने में पानी का घोलक के रूप में उपयोग नहीं किया जाता।

प्राणिज सरेस के एक टुकड़े को गर्म पानी में डालने पर वह अदृश्य होकर सरेस तथा पानी का समांग मिश्रण बन जाता है। इस प्रकार का मिश्रण कलोदीय घोल कहलाता है। यह घोल आणविक घोल नहीं है। इसमें कण अणु से बड़े होते हैं। आणविक घोल का उदाहरण पानी में नमक का विलयन है। इस प्रकार का कलोदीय घोल 'सोल' कहलाता है। जो कलोदीय घोल ठोस और द्रव को सीधे मिलाकर तैयार किये जाते हैं वे लायोफिलिक घोल और जो अप्रत्यक्ष रीति से बनते हैं, वे लायोफोबिक घोल कहलाते हैं। सरेस तथा पानी का घोल प्रथम कोटि में आता है। स्वर्ण के आयनों को पानी में अपचयित करने पर धात्वीय स्वर्ण का जल में विलयन लायोफोबिक घोल है। आणविक घोल चर्मपत्र (पार्चमेंट) में से शीघ्र ही निकल जाता है पर कलोदीय घोल को ऐसा करने में कुछ देर लगती है।

सरेस को गर्म पानी में घोलकर तैयार किये गये कलोदीय घोल को ठंढा करने पर ठोस, जेली के सदृश पिण्ड बन जाता है। इसे 'जेल' कहते हैं। जिस जेल में विलेयक की मात्रा बहुत अधिक होती है वे नर्म तथा श्लथ पुंज होते हैं। यदि विलेयक की मात्रा कम हुई तो जेल कठोर तथा परिदृढ़ होता है। पानी तथा सरेस का बना जेल उत्क्रमीय है क्योंकि जेल को गर्म करने पर वह 'सोल' बन जाता है और सोल को ठंढा करने पर पुनः जेल। बार-बार ऐसा करने पर सोल का जेल बनानेवाला गुण घट जाता है।

उत्क्राम्यता को घटाने के लिए फार्मेलीन, टैनिन, फिटकरी तथा अन्य पदार्थ सोल में मिलाये जाते हैं। फार्मेलीन मिलाकर जल प्रतिरोधक सरेस तैयार किये जाते हैं।

सरेस पदार्थों के वर्गीकरण का आधार श्री एफ्० डब्ल्यू० ब्राउन के अनुसार जेल-निर्मापक विधियाँ हैं। जेल इस प्रकार बनाये जाते हैं :—

(१) लायोफिलिक सोल का प्रशीतन—प्राणिज सरेस यथा अस्थि तथा चर्म से बने सरेस, इस विभाग में रखे गये हैं।

(२) लायोफिलिक सोल को गर्म करना—ऐल्बुमिन सरेस, जो रक्त व अण्डे की सफेदी से बनाये जाते हैं, इस श्रेणी में आते हैं।

(३) सोल तथा अलग से मिलाये गये पदार्थ पर रासायनिक प्रतिक्रिया—कैसीन सोल में बुझा हुआ चूना मिलाकर जेल तैयार करना। प्राणिज सरेस के साथ फार्मेलीन की यही प्रतिक्रिया होती है।

(४) घोलक का वाष्पीकरण—द्रव सरेस, सोडियम सिलिकेट, गोंद तथा अन्य सामान्य चिपकानेवाले पदार्थ इस श्रेणी में रखे गये हैं।

(५) प्रत्यक्ष रासायनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पुनर्भाजन—फीनोल-आल्डीहाइड के संघनन से बने पदार्थ कभी-कभी अभिलागी के तौर पर प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार के सरेसों को गर्म करना आवश्यक होता है।

जब प्राणिज सरेस का लकड़ी में प्रयोग किया जाता है तब सोल के तापमान के घटने से 'जेल' बनता है। सोल से वाष्पीकरण द्वारा तथा लकड़ी द्वारा अपशोषण से पानी के निकल जाने से भी जेल के बनने में सहायता मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार सरेसों को मुख्य रासायनिक संघटक के आधार पर अलग-अलग श्रेणियों में रखा जाता है। जिलेटीन-सरेस, कैसीन-सरेस, डेक्सिट्रन-सरेस आदि विभिन्न श्रेणियाँ निर्णीत की गयी हैं।

जिलेटीन—प्राणिज तथा मत्स्य-सरेस का मुख्य अंग जिलेटीन है। यह प्रोटीन वर्ग का सदस्य है। प्रोटीन जटिल प्रांगारिक यौगिक है जिसमें कार्बन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन और यदा-कदा गंधक व फास्फोरस होते हैं। जिलेटीन के जल-विश्लेषण से असीनो-अम्ल बनते हैं। जिलेटीन के सोल में व्याप्त कण एक अणुवाले हैं या कई अणुवाले, इसका ठीक-से पता नहीं लग सका है। व्याप्त कण बड़ा अवश्य है पर उसका कण भार क्या है, यह ठीक-से मालूम नहीं है। जिलेटीन-सोल का कण भार ७०० से १,००,००० तक हो सकता है जब कि ऑक्सीजन का अणुभार ३२ होता है। जिलेटीन-सरेस चार प्रकार के हैं :—

(१) चर्म-सरेस, (२) अस्थि-सरेस, (३) मत्स्य-सरेस तथा (४) स्नायु-सरेस। मत्स्य-सरेस मछली के सिर, हड्डी तथा चमड़ी से बना होता है। इनमें सिर से बना सरेस बहुमूल्य तथा सबसे अधिक मजबूत माना जाता है।

चर्म तथा स्नायु-सरेस बनाने के लिए चमड़ी तथा स्नायु को पहले पानी से धोकर उनमें विद्यमान धूल को हटा लिया जाता है। यदि चमड़ी तथा स्नायु सूखे हों तो पानी से धोने पर वे फूल जाते हैं। यदि उनमें नमक लगा हो तो धोकर उसे भी अलग कर लिया जाता है। इसके बाद उन्हें पानी में चूने के संपृक्त घोल में डाल दिया जाता है। उसे कभी-कभी हिला दिया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर चूने का और पानी डाल दिया जाता है। इस काम में दो दिन से लेकर एक महीना तक लग जाता है। इस अवधि को चमड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े करके कम किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में केश तथा मांसवाला भाग अलग हो जाता है, चमड़ी फूल जाती है और म्यूसिन निसृत हो जाता है। इसके बाद इसे धो लिया जाता है। कभी-कभी धोने के पानी में थोड़ा अम्ल मिला दिया जाता है जिससे स्कंध अम्लीय रहे। इससे यह कीटाणुओं का शिकार होने से बचा रहता है।

अस्थि-सरेस के लिए हड्डियों को पीसकर उनका महीन मैदा-सा बना लिया जाता है। इसके बाद बेंजीन या कार्बन टेट्राक्लोराइड द्वारा निस्सारण से चिकनाई चूरे से दूर कर ली जाती है। अब हड्डियों के इस चूरे को २-५% नमक के अम्ल के पानी के घोल में डाल कर २ से १० दिन तक रखा जाता है। इससे हड्डियों में से कैल्सियम फास्फेट अलग हो जाता है। इस अम्लीय पानी में से चूने के उपचार द्वारा अवक्षिप्त अस्थि-फास्फेट प्राप्त किया जाता है जो खाद के रूप में तथा अस्थि पोर्सलीन बर्त्तन बनाने में प्रयुक्त होता है। इस निस्सारण के पश्चात् अस्थि-चूरे में लगभग एक तिहाई मूल अस्थियाँ रह जाती हैं। अवशिष्ट भाग नर्म कार्टिलेज पिंड होता है जिसे 'कोलेजन' कहते हैं। इसे धोकर तथा इसमें बचे हुए अम्ल के निष्फलन के पश्चात् इसे सरेस या जिलेटीन में परिवर्त्तित कर देते हैं। यदि कोलेजन को निम्न तापमान पर सुखाया जाय तो 'ओसीन' मिलता है।

मत्स्य-सरेस के लिए स्कंध को धोकर धूल, रक्त तथा नमक को हटा लिया जाता है। सरेस के निस्सारण से पहले और किसी उपचार की आवश्यकता नहीं होती।

सरेस के निस्सारण के लिए इस प्रकार तैयार किये गये पदार्थ को केतली या दाबवाले बर्त्तन में डालकर पानी मिलाया जाता है और फिर मिश्रण को गर्म किया जाता है। अस्थियों के लिए दाब टंकियाँ काम में ली जाती हैं। सरेस का निस्सारण एक या अधिक क्रमबद्ध क्रियाओं में किया जाता है। यदि कई क्रियाओं का सहारा लिया गया हो तो पहला निस्सारण पानी की न्यूनतम मात्रा लेकर कम से कम तापमान पर, जो ७०° सेंटीग्रेड के आस-पास हो, किया जाना चाहिए। निस्सारण में दो से छः घण्टे तक लगते हैं। जब द्रव का नमूना अलग से लेकर देख लिया जाता है। यदि वह ठोस बन जाता है तो उसे और गर्म करना बन्द कर दिया जाता है। द्रव को अलग करके और पानी मिलाया जाता है। दूसरे निस्सारण में अधिक समय तथा ऊँचा तापमान अपेक्षित है। अंतिम निस्सारण में उबलते पानी का प्रयोग किया जाता है। बाद के निस्सारणों में सरेस की मात्रा कम होती है अतः उनका समाहरण आवश्यक है। निस्सारण के समय स्कंध में रही हुई चिकनाई सतह पर ऊपर उठ आती है। इसे हटा लिया जाता है। बर्त्तन में बचे हुए पदार्थ को खाद के रूप में काम में लिया जाता है।

पानी में सरेस को घोलकर मोटी अशुद्धियों को हटाने

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए दाब लगा कर उसे छाना जाता है। निर्मल सरेस पाने के लिये गर्म घोल में फिटकरी मिलाई जाती है और फिर साफ घोल को निथार लिया जाता है। अशुद्धियाँ फिटकरी के साथ चिपक कर नीचे बैठ जाती हैं। ऐसा करने से सरेस का ताप के कारण थोड़ा जल-विश्लेषण होने से सरेस की मात्रा घोल में कुछ कम हो जाती है।

कभी-कभी सरेस को गंधक डाइ-ऑक्साइड द्वारा विरंजित किया जाता है। सरेस को सड़ने से बचाने के लिए थोड़ी मात्रा में किसी परिरक्षक का मिलाना आवश्यक है। सुहागा, बोरिक-अम्ल व फार्मेलीन को इस काम में लेते हैं।

सरेस तथा पानी के घोल को लोहे की छिछली तसलियों में रख कर उन्हें कठोर पड़ने अर्थात् सेट होने दिया जाता है। इस प्रकार जो जेल बनता है उन्हें तसलियों में से हटा कर आड़े पतले टुकड़ों में काट लिया जाता है। इन्हें सुखानेवाली जाली में रख कर गर्म हवा के संपर्क में लाया जाता है। यह सुखाने का काम कई घंटे से लेकर छः सात दिन तक चलता है। इसके बाद या तो ऐसे ही या पीसकर विक्रयार्थ प्रस्तुत किया जाता है।

जिलेटीन-सरेस बाजार में टिकिया, चूरे या शल्कलों के के रूप में मिलता है। मत्स्य-सरेस अधिकतः मोटे तथा गाढ़े द्रव के रूप में बेचा जाता है। ठोस मत्स्य-सरेस भी मिलता है पर वह जलग्राही होता है। अपारदर्शक या रूसी सरेस, सरेस में सफेद, निष्कृम चूरा मिलाकर बनाया जाता है। यह चूरा बैरियम सल्फेट, घीया भाठा, जस्ते के ऑक्साइड या सफेद सीसे का हो सकता है। इस चूरे को मिलाने से सरेस की शक्ति घट जाती है। विरंजित अस्थि-सरेस 'कोलोनश्लेष' के नाम से बाजार में मिलता है। गिल्डर का सरेस प्रथम निस्सारण से प्राप्त विरंजित चर्म-सरेस है। यह कठिनता से घुलता है। पेरिस-सरेस लम्बे समय तक सरेस को गर्म करके बनाया जाता है। इसमें चिपकने की शक्ति बहुत कम रह जाती है। आइजिंग्लास एक प्रकार का मत्स्य-सरेस है। यह लगभग शुद्ध कोलेजन होता है और इसको सुगमता से गर्म पानी मिलाकर जिलेटीन में परिणत किया जा सकता है। आइजिंग्लास तथा पानी से बना जेल बड़ा मजबूत होता है। द्रव-सरेस मत्स्य-सरेस या कमजोर प्राणिज-सरेस हैं। इनमें कुछ अम्ल इसलिए मिला दिये जाते हैं कि सामान्य तापमान पर वे द्रव बने रहें। लचकीला सरेस ग्लिसरीन तथा सरेस को बराबर मात्रा में मिलाकर तैयार किया जाता है।

सरेस पदार्थों को बनाने के बाद उन्हें क्रमानुबद्ध किया जाता है। इन्हें ग्यारह श्रेणियों में इनकी घटती हुई शक्ति के अनुसार इस प्रकार रखा जाता है :—ए एक्स्ट्रा, १ एक्स्ट्रा, १×, १$\frac{१}{४}$, १$\frac{३}{८}$, १$\frac{१}{२}$, १$\frac{५}{८}$, १$\frac{३}{४}$, १$\frac{७}{८}$ तथा २। लकड़ी के जोड़ों के लिए १$\frac{३}{८}$ से ऊपर की श्रेणीवाले सरेस उपयुक्त हैं। बहुत-बार जोड़ की दृढ़ता जोड़ी गई लकड़ी की मजबूती से बढ़ जाती है। लकड़ी के जोड़ में काम लेने के लिए सरेस की सांद्रता का कम होना आवश्यक है।

कैसीन-सरेस—कैसीन फास्फोरस युक्त प्रोटीन यौगिक हैं जो उपयुक्त परिस्थितियों में जलविश्लेषित होकर प्रांगारिक अम्लों में परिणत हो जाते हैं। इन अम्लों में फास्फोरस भी रहता है। कैसीन की प्राप्ति का मुख्य साधन गाय का दूध है। दूध को मथकर मक्खन निकाल लेने पर उससे उपफल के रूप में दुग्ध-उद्योग में प्राप्त होता है। मक्खन निकाले गये दूध में अम्ल अर्थात् खटाई डालकर कैसीन को दही के रूप में अवक्षिप्त किया जा सकता है। अम्ल के स्थान पर बैक्टीरिया या विकर का प्रयोग भी किया जा सकता है। इस प्रकार प्राप्त दही को धोकर सुखा लिया जाता है। कैसीन सफेद रंग का चूरा होता है। यह जलग्राहक नहीं है। कैसीन अम्लीय है और पानी अलकोहल तथा दूसरे प्रांगारिक में नहीं घुलता। अलकली युक्त अर्थात् क्षारीय पानी के घोल में कैसीन को कलोद के रूप में अपाकिरणित किया जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि क्षारीय घोल में कैसीनेट लवण बनते हैं। कैसीन तथा विभिन्न धात्विक आयनों के मिलने से लवण बनने के बारे में पर्याप्त प्रमाण नहीं मिले हैं। अतः कैसीन के गुण भौतिक ही माने जा सकते हैं।

पानी में अलकली धातुओं के कैसीनेट लवण कलोदीय बनाते हैं जो पानी के वाष्पीकरण से जेल में परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार बने जेल में आसक्ति तथा संसक्ति काफी मात्रा में होती है। जेल उत्क्रमीय हैं। इनमें पानी को मिलाने पर तापस सोल बन जाता है। कैल्सियम तथा मैगनेसियम के कैसीनेट के पानी में घोल भी उनके वाष्पीकरण से जेल में परिणत हो जाते हैं पर ये जेल उत्क्रमीय नहीं होते। भारी धातुओं के कैसीनेट भी जेल बनाते हैं जो उत्क्रमीय नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसीन-सरेस दो प्रकार के बनाये गये हैं—(१) वे जो उत्क्रमीय जेल बनाते हैं, तथा (२) वे सरेस जिनसे ऐसे जेल बनाये जा सकते हैं जो उत्क्रमीय नहीं हैं। पहले प्रकार के सरेस का उपयोग जिलेटीन-सरेस के समान ही होता है। दूसरे प्रकार के सरेस जल-अवरोधक हैं और उनका उपयोग वहाँ किया जाता है जहाँ नमी के प्रतिरोध को महत्त्व प्रदान किया जाता है।

जल में कैसीन के अपाकिरण के लिए अलकली को मिश्रण में (१) कॉस्टिक सोडा या अमोनियम हाइड्रॉक्साइड को या फिर (२) कमजोर अम्ल के पोटैसियम या सोडियम लवण को डाल कर मिलाया जाता है। कभी-कभी कॉस्टिक सोडा या अमोनियम हाइड्रॉक्साइड के स्थान पर अंशतः बुझा हुआ चूना मिलाया जाता है। इससे जेल निर्माण-क्रिया कम उत्क्रमीय रह जाती है, पर इस प्रकार बना जेल सर्वथा जल-अभेद्य नहीं होता।

सुथारों के काम के लिए उपयुक्त सरेस १०० ग्राम कैसीन को ६०० ग्राम पानी में मिलाकर तैयार किया जाता है। इसमें ४ ग्राम कॉस्टिक सोडा तथा २९% अमोनिया के पानी में घोल के १३ मिली लीटर मिलाये जाते हैं। सरेस के घोल का β^H मान का १०·५ से नीचे रहना आवश्यक है। यदि वह इससे अधिक हो जाता है तो कैसीन का जलविश्लेषण द्रुत गति से होने लगता है और इससे उसकी अभिलाग शक्ति कम पड़ जाती है। घोल की सांद्रता ९·२ β^H पर सबसे अधिक होती है।

कैसीन के उत्क्रमीय सरेस काफी लंबे समय तक तरल तथा काम में लिये जाने योग्य बने रहते हैं। जीवाणु की क्रिया तथा जल-विश्लेषण से सोल हलका पड़ जाता है और उसका अभिलाग बल घट जाता है।

जिलेटीन-सरेस के स्थान पर उत्क्रमीय कैसीन-सरेस प्रयोग किया जा सकता है। ये सस्ते होते हैं और काफी संतोषजनक प्रमाणित हुए हैं।

अच्छे कैसीन-चूने के सरेस का संगठन इस प्रकार का होता है—कैसीन १०० ग्राम, पानी ३०० ग्राम, चूना (बुझा हुआ) १६ ग्राम। यह आधा घंटे में कठोर पड़ जाता है। इसलिए मिश्रण को इस बीच काम में ले लेना चाहिए। अधिक लंबी अवधि में सेट होनेवाले सरेस का संगठन इस प्रकार है—कैसीन १०० ग्राम, पानी ३०० ग्राम, चूना ३० ग्राम, कमजोर अम्ल का सोडियम लवण ०·२७५ समभार के बराबर। ऐसे लवण टेट्राबोरेट, फास्फेट, स्टेनेट कार्बनेट तथा आर्सिनेट हैं।

कैसीन की जलविश्लेषण के प्रति प्रवृत्ति को कम करने के लिए सोडियम सिलिकेट मिलाया जाता है। इस प्रकार के घोल का संगठन यह है :—कैसीन १०० ग्राम, पानी ३०० ग्राम, चूना २०-३० ग्राम, जलकाँच (सोडियम सिलिकेट) ७० ग्राम, (घनत्व ४०° बौमे)। इस मिश्रण में जलकाँच सबसे बाद में मिलाया जाता है।

बाजार में मिलनेवाले कैसीन-सरेस तैयार सरेस व गीले मिश्रण के रूप में मिलते हैं। तैयार सरेस सूखा चूरा होता है जिसमें सरेस बनाने के लिए केवल पानी मिलाना पड़ता है। गीले मिश्रण में दो या तीन भाग पृथक् रहते हैं जिन्हें अलग से तौलकर पानी में मिलाना पड़ता है। जलकाँच वाले सरेस तैयार किये हुए नहीं मिलते।

ऐल्बुमिन-सरेस—ऐल्बुमिन एक प्रकार का प्रोटीन है। यह रक्त की लसी, अण्डे की सफेदी, कई प्रकार के बीजों तथा दूध से निकाला जाता है। पहले दो पदार्थ इसकी प्राप्ति के मुख्य साधन हैं। ऐल्बुमिन को पानी में मिलाने पर वह कलोदीय घोल बनाता है। ये घोल उदासीन होते हैं तथा गर्म किये जाने पर जेल में परिणत हो जाते हैं। यह जिलेटीन उत्क्रमीय नहीं होता। पानी-ऐल्बुमिन जिलेटीन बहुत अच्छा जल अवरोधक सरेस है। रक्त से प्राप्त ऐल्बुमिन से बना सरेस सर्वोत्तम होता है।

जलकाँच-सरेस—पानी में सोडियम सिलिकेट तथा बालुका के कलोदीय अपाकिरण को जलकाँच की संज्ञा दी गयी है। पानी के वाष्पीकरण से सोडियम सिलिकेट का सोल जेल में परिणत हो जाता है। इसमें पर्याप्त अभिलागी गुण तथा संसक्ति पाई जाती है। इसलिए सरेस की तरह इसे काम में लिया जा सकता है। इसका उपयोग मुख्यतः कागज के तख्ते तथा कार्टन बनाने में किया जाता है। ये काँच को चिपकाने में भी काम में आ सकते हैं पर जल-अभेद्य न होने के कारण अनुपयुक्त हैं। काँच को चिपकाने के लिए ऐस्बेस्टस बैरियम, सल्फेट, घीया पत्थर तथा एलंडम सीमेंट जलकाँच में मिलाये जाते हैं।

निर्यासोद—यह गोंद का पानी में घोल है। गोंद वह पदार्थ है जिसका मणिभकरण संभव नहीं। इसमें कार्बोहाइड्रेट होते हैं जो जलविश्लेषित होकर शर्करा बनाते हैं। इस गोंद का उपयोग टिकटों तथा लिफाफों के चिप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत

श्री रामस्वरूप खरे एम० ए० बी० एड० साहित्यरत्न

पा नव यौवन मधु मास
भर लिया बाँहों में,
पर मैं संयम का संन्यासी
यह मेरी मजबूरी है !

मैंने खुशियों के बदले व्यथा जगत की ली—
वीरान खण्डहर मिले, उन्हें आबाद किया !
जो शूल मिले, पथ में उनको भी दुलराया—
जिस पथ पर कोई चला, उसे परित्याग दिया !!

मैं चला जिधर बन गई—
राह, बाधाओं में;
मुसकाने का चिर अभ्यासी—
यह मेरी मजबूरी है !

लख सुन्दर छवि यह नयन न किसके उठ जाते—
चलते-चलते पथ पाँव कभी हैं रुक जाते !
पाकर मेरी ही श्रद्धा तो यह देवालय—
बन गये, जहाँ हैं मस्तक सबके झुक जाते !!

मथ सिंधु, सुधा तुम—
मुझे पिलाने ले आई,
मैं विष पीने का अभ्यासी—
यह मेरी मजबूरी है !

काने में किया जाता है जहाँ मजबूती की जरूरत नहीं पड़ती। ऐरेबिक गोंद ऐकेसिया पेड़ से मिलता है। इसमें ऐरेबिक अम्ल के लवण होते हैं। डेक्स्ट्रिन श्वेतसार (स्टार्च) को २००°-२५०° सेंटीग्रेड तक गर्म करके तैयार किया जाता है। फलों के सैल्यूलोज गठन से प्राप्त पेक्टिन को भी चिपकाने के काम में लिया जाता है।

उद्यास-सरेस—ये विभिन्न पौधों से निःसृत प्रांगारिक ठोस पदार्थ होते हैं। ये पानी में नहीं घुलते। यदि निःसृत रस पानी में घुल जाता हो तो उसे गोंद कहते हैं। उपयुक्त घोलकों में उद्यास का विलयन तैयार करके सरेस बनाया जाता है। रबड़ को चिपकानेवाली सीमेंट बेंजीन में अपाकिरणित रबड़ होता हैं। यदि इसमें पिच मिला दिया जाय तो सामुद्रिक सरेस बन जाता है। चपड़ी को अलकोहल में घोलकर उसका सरेस तैयार किया जाता है। बेकेलाइट सीमेंट भी इसी श्रेणी में आते हैं।

नाइट्रो-सैल्यूलोज सरेस—ऐसीटोन में पायरोक्सिलीन को घोलकर यह सरेस तैयार किया जाता है। यह काँच के चिपकाने में प्रयुक्त होता है। पायरोक्सिलीन सैल्यूलोज पर शोरे के अम्ल की प्रतिक्रिया से यह सरेस बनता है। कोलोडियन अलकोहल तथा ईथर में सैल्यूलायड का घोल है।

आश्लेष या ग्लूटेन-सरेस—गेहूँ के आटे में ग्लूटेन नामक प्रोटीन रहता है। इससे चिपकानेवाली लेई आटे में पानी डालकर तथा गर्म करके बनाई जाती है। जापानी लेई जो कागज को चिपकाने के लिए प्रयुक्त होती है, गर्म पानी में चावल का आटा मिलाकर तैयार की जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेंट, वार्निश तथा रंग (२)

प्रो० पुरुषोत्तमदास स्वामी

एम० एस्-सी०, एम० एस०, विशारद

(फरवरी १९७५, पृ० ११२ का शेषांश)

वाहक तैल तथा शोषक—तैल शब्द से साधारणतः हमारा अभिप्राय ऊँचे अणुभार वाले वसाम्लों के ग्लिसरीन सरीखे बहुलक अल्कोहल के साथ मिले बने एस्टरों से है। खनिज तैल अर्थात् पेट्रोलियम को भी तैल कहा जाता है जो हाइड्रोकार्बनों का मिश्रण है, पर यह खनिजात्मक है। एस्टर निर्विवाद रूप से प्राणिज या वानस्पतिक तैल होते हैं। इन तैलों को तीन कोटियों में रखा जा सकता है :— सूखनेवाले, कम सूखनेवाले तथा न सूखनेवाले तैल। सुरक्षा-प्रदायक प्रांगारिक लेपन में वाहक के रूप में सूखने तथा कम सूखनेवाले तैल बड़े परिमाण में व्यवहृत होते हैं। तैलों का यह विभाजन उस फिल्म के विशिष्ट गुणों के अनुसार किया जाता है जो तैल की एक महीन परत को चिकनी सतह पर फैलाने से बनती है और जिसे वायु तथा प्रकाश में कुछ देर के लिए छोड़ दिया जाता है। सूखनेवाले तैल से जो फिल्म बनती है वह अपेक्षाकृत मजबूत तथा कठोर सतहवाली होती है। इस पर उँगली रखने से वह चिपकती नहीं। कम सूखनेवाले तैल से बनी फिल्म भी कम या अधिक दृढ़ होती है पर उसमें उँगली कुछ चिपक जाती है। न सूखनेवाले तैल की फिल्म मजबूत नहीं होती। वह तैलीय बनी रहती है और अंततः दुर्वासित हो जाती है। कुछ समय पहले न सूखनेवाले या कम सूखनेवाले तैल से सूखनेवाले तैल भी तैयार किये जा चुके हैं। एरंड के तैल को विजलीय कृत एरंड तैल में परिवर्तित कर दिया जाता है।

सूखनेवाले तैल से ठोस फिल्म का निर्माण ऑक्सीजन के शोषण के कारण होता है। ताजी फिल्म एकदम ऑक्सीजन को द्रुतगति से लेना शुरू नहीं करती। यह अवधि तैल में विद्यमान प्राकृतिक उपचयन विरोधी तापों पर निर्भर है। तैल में शोषक (सुखानेवाले) पदार्थ मिलाकर इस अवधि को घटाया जा सकता है।

सूखने व कम सूखनेवाले तैल—अलसी का तैल सर्वाधिक प्रयुक्त सूखनेवाले तैलों में से है। इस प्रकार के अन्य तैल तुंग तैल, ओइटिक्स का तैल, पेरिला तैल तथा विजलीयकृत एरंड तैल हैं। कम सूखनेवाले तैलों से सोयाबीन का तैल तथा कई प्रकार के मत्स्य तैल परिगणित होते हैं। कम सूखनेवाले तैलों को अकेले काम में न लेकर उनको सूखनेवाले तैलों में उपयुक्त परिमाण में मिलाकर मिश्रित तैल तैयार किये जाते हैं, जिनमें अभीष्ट फिल्म निर्माणक गुण उत्पन्न हो जाता है।

अलसी का तैल—पेंट तथा वार्निश के निर्माण में अलसी के तैल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह अलसी के बीजों से निकाला जाता है। इसके निर्माण में इन तीन विधियों में से किसी एक का प्रयोग किया जाता है—

(१) द्रवचालित प्रेस विधि

(२) सतत उद्वासन विधि

(३) निस्सारण विधि

इन तीनों में सबसे पुरानी द्रवचालित प्रेस (संपीडन) विधि है। इस विधि में अभिशीतित लोहे के बेलनों में बीजों को दलकर बहुत महीन समिता अर्थात् मैदा बना लिया जाता है। इस मैदे को अब ०° सेंटीग्रेड तक गर्म किया जाता है। ऐसा करते समय उसे निरंतर हिलाया जाता है। जब इस प्रकार यह काफी गर्म हो जाता है तब इसके दस किलोग्राम वजन के पिंड बना लिये जाते हैं। इन्हें कपड़े में लपेट कर हाइड्रोलिक प्रेस (द्रवचालित संपीडक) में दबाया जाता है जिससे उसमें का बहुत कुछ तैल निकल जाता है। दाब अधिक से अधिक २ टन प्रति वर्ग इंच तक होता है। इस प्रकार जो खली बच रहती है उसमें ४-८% तक तैल रहता है। इस खली को जानवरों को खिला दिया जाता है। यह तैल गर्म दाब से प्राप्त तैल है। इसमें मैदे के जो निलंबित कण रह जाते हैं, उन्हें छानकर अलग करने का प्रयास किया जाता है। फिर भी घुले हुए रूप में कुछ कण तथा पानी रह ही जाते हैं। घुले हुए कणों को अवक्षिप्त करने के लिए तैल को टंकियों में भरकर ४ से ६ महीने तक पड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने दिया जाता है। इस तरह कुछ तलछट नीचे बैठ जाता है। जितने अधिक समय तक तैल को इस प्रकार रहने दिया जाता है उतना ही अधिक वह साफ होता है। ऊपर का साफ तैल बाजार में उपलब्ध **अलसी का कच्चा तैल** है। शीतदाब से प्राप्त तैल उच्चकोटि का होता है पर इस प्रकार से मिलनेवाले तैल की मात्रा काफी कम होती है। यह तैल अधिक हलके रंगवाला तथा तरल होता है और इसमें तलछटीय पदार्थ कम मात्रा में रहता है। इसकी लगभग १५% मात्रा खली में बच रहती है। इसलिए शीतदाब तैल कम बनाया जाता है। सतह उद्वासन विधि में पीसे हुए बीजों को एक पेच में से होकर शंकु के आकार की जाली में खोजाया जाता है। जाली में से तैल झरता रहता है और खली अंत में निकल आती है। इसमें कम श्रम अपेक्षित है, पर खली में तैल अधिक बच रहता है। निस्सारण विधि में पेट्रोलियम नैफ्था को समिता के साथ मिलाकर निःसृत कर लिया जाता है। निस्सारक में से नैफ्था को आसवन द्वारा एशक करके फिर से काम में लिया जाता है। तैल में से नैफ्था को पूरी तरह पृथक् करना कठिन है। इस कारण तैल में इस विलेयक की गंध बनी रहती है।

उबाला हुआ अलसी का तैल—अलसी के तैल के सूखने की गति में कच्चे तैल को उबाल कर द्रुतता लाई जा सकती है। इसके लिए तैल में सुखाने वाले पदार्थ मिला कर या तो उसे खुले बर्त्तन में सीधे आग पर रख कर या भाप की जैकेटयुक्त बन्द बर्तन में या फिर जलवाष्प वेष्टन द्वारा १५०° सेंटीग्रेड तक गर्म किया जाता है। गर्म करते समय शोषक पदार्थ आंशिक रूप में घुल जाते हैं और तैल का थोड़ा बहुलकीकरण (Polymerization) भी हो जाता है। सुखाने वाले पदार्थ सीसे, मेंगेनीज तथा अन्य धातुओं के लिनोलियेट, रेजिनेट या बोरेट लवण होते हैं। सीसे के शोषक पदार्थ को मिला कर उबाला हुआ तैल उपचयित होने पर सिकुड़ता है और मैंगेनीज शोषक युक्त उबाला हुआ अलसी का तैल उपचयित होने पर फैलता है। साधारणतः इन दोनों पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। कच्चे तैल की पतली परत सोखने में तीन या चार दिन लेती है पर उबाला हुआ तैल एक दिन से कम समय में ही सूख कर कठोर फिल्म बना देता है। तापमान तथा आर्द्रता की अनुकूल अवस्था में तो कभी-कभी आठ घंटे से भी कम समय लगता है। उबाला हुआ तैल साधारणतः गहरे लाल रंग का होता है। इसका रंग शोषक के प्रकार तथा उसकी मात्रा, गर्म करने के समय तथा तापमान पर पूर्णतः आश्रित है।

विरंजित तैल—वसा तैल को बनाने वाले ग्लिसराइड एस्टर रंगहीन होते हैं, पर तैल में विद्यमान अशुद्धियों के कारण सामान्यतः उनमें रंग होता है। अलसी के तैल का पीला रंग सफेद पेंट बनाने में अवांछित है। रंग वाले पदार्थ के उपचयन से तैल के रंग को मिटाया जा सकता है। इसके लिए उसमें गंधक का अम्ल मिला कर हवा फूंक दी जाती है और फिर तैल को छान लिया जाता है या उसे कुछ देर तक पड़ा रहने देकर निथार लिया जाता है। कुछ अन्य विरंजक पदार्थ भी प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार रासायनिक प्रक्रिया द्वारा विरंजित तैल कच्चे तैल की भाँति टिकाऊ नहीं होता।

चीनी काष्ठ या तुंग तैल—यह तैल तुंग वृक्ष की फलियों को पीस कर बनाया जाता है। तुंग वृक्ष चीन तथा जापान देश में ही होता है। इस तैल का रंग हलका पीला या गहरा भूरा होता है और इसमें एक विशेष प्रकार की गंध पाई जाती है। इस तैल को प्रकाश में रखने पर एक थक्केदार अवक्षेप बनता है जो धीरे-धीरे अधिक परिमाण में बढ़ कर अंततः कुछ महीने बाद सारे तैल को सफेद ठोस पिंड में परिणत कर देता है। यह प्रकाश भंग नाम से विख्यात है। इस तैल को २५०° सेंटीग्रेड तक गर्म करने पर यह स्कंधित होकर जैलीवत हो जाता है। ठंडा करने पर इसे फिर तरल नहीं बनाया जा सकता। यह जिलेटीन-क्रिया बहुभाजन के कारण होता है, ऑक्सीजन के शोषण से नहीं। तुंग तैल मुख्यतः ऐलियो स्टियरिक अम्ल का ग्लिसराइड है। दबा कर इसके लिये बीजों से लगभग ४०% तैल निकाला जा सकता है। बीजों में तैल की मात्रा ५३% होती है।

यदि कच्चे तुंग तैल की ब्रुश से एक पतली फिल्म बनाई जाय तो वह घंटे-आधा घंटे में ही बिलकुल सूख जाती है, पर कच्चा तैल पेंट तथा वार्निश के लिए उपयुक्त नहीं क्योंकि सूखने पर जो फिल्म बनती है वह सफेद-सी अ-पा दर्शक तथा मोम सरीखी लचकरहित होती है। इसके अतिरिक्त उसमें तड़कने की प्रवृत्ति पाई जाती है और सतह चिपकी नहीं रहती। उपयुक्त उपचार के पश्चात् तुंग तैल से सबसे कड़ी, मजबूत तथा लचीली फिल्म का निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभव है। यह फिल्म अलसी के तैल के बनी फिल्म की अपेक्षा अधिक टिकाऊ होती है और पानी का इसमें प्रवेश नितांत असंभव है। तुंग तैल को १८०° सेंटीग्रेड तापमान तक गर्म किया जाता है और उसमें १२-१५% सीसे तथा मैंगेनीज के प्रांगारिक लवण मिला दिये जाते हैं। इन लवणों के कारण तैल का स्कंधन नहीं होने पाता। तुंग तैल को अलसी के तैल के साथ मिला कर प्रयोग में लाया जाता है। ऐसी अवस्था में अलसी का तैल उसमें प्रांगारिक लवणों के डालने के ठीक बाद ही मिलाया जाता है। पर्याप्त रूप में ठंढा हो जाने पर इस मिश्रित तैल को तारपीन या बेंजीन या इन दोनों का मिश्रण मिला कर हलका किया जाता है। यह तैल अब कच्चे तैल की अपेक्षा सूखने में कुछ अधिक समय लेता है।

तुंग तैल से बनी फिल्म कम छिद्रिष्ट या रंध्रमय होती है, जिससे इसमें पानी के आ सकने की गुंजाइश बहुत कम रह जाती है। इस गुण के कारण इसका उपयोग इमेल, जल अभेद्य पेंट तथा वार्निश बनाने में प्रचुर मात्रा में किया जाता है। बाहर के कामों के लिए यह बहुत बढ़िया तैल है। इससे बनाये गये पेंट नमी वाले वातावरण में भी ठीक-से सूख जाते हैं। इससे बनी फिल्म के कठोर होने के कारण उसमें खरोंच नहीं पड़ती। इसमें उद्‌यास अर्थात् रेजिन थोड़ी मात्रा में मिलाकर प्रांगण-वार्निश तैयार किये जाते हैं। आँगन में लगी लकड़ी पर इस वार्निश के लगाने से उसमें पदचिह्न नहीं उभरते। यह कहा जाता है कि तुंग तैल में साधारण रेजिन या कोलोफोनी मिलाकर उत्तम कोटि के वार्निश तैयार किये जा सकते हैं। यह एक विचित्र परन्तु सत्य बात है। रेजिन में कठोरता का अभाव है और वह भंगुर होता है। रेजिन को दूसरे तैलों के साथ मिला कर अच्छे वार्निश नहीं बनाये जा सकते।

ओइटिसिका तैल—एक लाइकेनिया रिजिडा नामक पेड़ से यह प्राप्त होता है। यह पेड़ मुख्यतः ब्राजील में होता है। इसको ताप के उपचार द्वारा स्थायी सूखने वाले तैल में परिणत किया जाता है। इसका रंग हरापन लिये होता है जो क्लोरोफिल के कारण है। इसकी बनी फिल्म तुंग तैल की अपेक्षा अधिक भंगुर होती है तथा इसमें पानी, अलकली व ताप के प्रति प्रवरोध कम होता है। तुंग तैल तथा अलसी के तैल से बने वार्निशों में तुंग तैल के स्थान पर इसका उपयोग थोड़ी मात्रा में किया जा सकता है।

पेरिला तैल—इसका उपयोग पेंट बनाने में अधिक न किया जाकर वार्निश तैयार करने में किया जाता है। यह चीन, जापान तथा उनके निकट वाले देशों में लगे पेड़ पेरिला की फलियों से तैयार किया जाता है। इसमें अलसी के तैल के समान सूखने का गुण उतनी अधिक मात्रा में नहीं होता पर इसमें शोषक पदार्थ मिला कर इस गुण में काफी अभिवृद्धि की जा सकती है। इस तैल के उपयोग के बारे में एक आपत्ति यह है कि इसकी अत्यधिक पृष्ठ तनाव के कारण फिल्म की सतर पर बूँदें-सी बन जाती हैं। इस अवगुण को मिटाने के लिए इसके साथ कम पृष्ठ तनाव वाले तैल मिलाये जाते हैं या फिर उसे ताप उपचार से ठीक किया जाता है। यह तैल काफी टिकाऊ होता है। इसमें सुखाने वाले पदार्थ आसानी से घुल जाते हैं। यदि सीसे या मैंगेनीज के यौगिक शोषक के रूप में प्रयुक्त किये गये हों तो इसमें लगभग ३० प्रतिशत अलसी का तैल मिला देना चाहिए। कोबाल्ट शोषक मिलाने पर अलसी का तैल मिलाने की जरूरत नहीं पड़ती और इसके बिना ही चमकने वाली फिल्म तैयार हो जाती है।

बिजलीयित एरंड का तैल—यह पहले एरंड के तैल के भंजक आसवन से बनाया जाता था पर आजकल इसे उत्प्रेरकीय बिजलीयन तथा निर्वाण आसवन द्वारा तैयार किया जाता है। वार्निश को बनाने वाले ओइटिसिका तैल के स्थान पर इसे अच्छा मान कर उपयोग में लिया जाता है। काम में लेने से पहले इस पर ताप उपचार किया जाता है। तुंग तैल की अपेक्षा इसे जैली-जैसा बनाने में अधिक समय लगता है।

सोयबीन का तैल—सोयबीन पहले मंचूरिया में उगाया जाता था पर आजकल कई देशों में इसकी खेती की जाती है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। सभी से पेंट के लिए उपयुक्त तैल नहीं मिलता। तप्त दाब विधि से १०-१५% तक तैल निकाला जाता है। इसका रंग यद्यपि कुछ अधिक गहरा काला होता है तथापि अन्य बातों में यह अलसी के तैल से मिलता है। सोयबीन तैल में लगभग १५% संपृक्त वसा होती है। यह अधिकतः पामिटीन होती है। कच्चे तैल से लचकदार फिल्म बनती है पर यह कुछ धीरे सूखती है। इसमें शोषक मिला कर काफी अच्छा सूखने वाला तैल बना लिया जाता है। बाहरी कामों के लिए यह तैल अलसी के तैल सरीखा अच्छा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता पर भीतरी कामों के लिए यह तैल उससे घटिया नहीं है। इसका उपयोग अधिकतः अकेले न करके इसमें अलसी का तैल मिला कर किया जाता है।

मछली का तैल—यह कम सूखनेवाले तैल के रूप में प्रयुक्त होता है। इसका प्रयोग इसमें अलसी का तैल मिलाकर किया जाता है। इसमें शोषक पदार्थ मिलाकर इसे अच्छा जल्दी सूखने वाला तैल बना लिया जाता है। इसका उपयोग ऐसे स्थानों में किया जाता है जहाँ ऊँचा तापमान प्रयुक्त होता है। इसकी फिल्म में नमी के प्रति काफी अवरोध पाया जाता है।

रोजिन तैल—यद्यपि यह तैल वसामय नहीं है और इसमें वे गुण नहीं होते जो अच्छा पेंट तैयार करने के लिए आवश्यक हैं, फिर भी इसे लोग मिलावट के तौर पर अन्य तैलों के साथ मिला देने में काम लेते हैं। इसमें सूखने का गुण ऑक्सीजन के शोषक के कारण है। यह तैल अपेक्षाकृत काफी अधिक सस्ता मिलता है।

सुखानेवाले पदार्थ—सूखने वाले तैलों में कुछ अरसे से फिल्म के सूखने की गति में अभिवृद्धि करने तथा कुछ अंश में उसके भौतिक गुणों के नियंत्रण के लिए कुछ ऐसे पदार्थ मिलाये जाते हैं जिन्हें शोषक पदार्थ कहा जाता है। ये सामान्यतः उन धातुओं के प्रांगारिक भौतिक हैं जो सहज ही उपचयन की कई अवस्थाओं में रहने में सक्षम होते हैं। ये अधिकतः वैनेडियम, मैंगेनीज तथा सीसे के लिनोलियेट, नैफ्थीनेट तथा रेजिनेट होते हैं। कौबाल्ट शोषक तैल की सतह पर सूखने के गुण में ही अभिवृद्धि करते हैं पर सीसे तथा मैंगेनीज वाले शोषक फिल्म को भली भाँति सुखाने का काम करते हैं। शोषक पदार्थ बहुत कम मात्रा में तैल में मिलाये जाते हैं।

तैल में शोषक पदार्थ उनमें ऑक्साइड या अन्य अकार्बनिक भौतिक डाल कर तथा गर्म करके प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकार अकार्बनिक भौतिक प्रांगारिक धात्वीय यौगिकों में परिणत हो जाते हैं, जो तैल में घुल जाते हैं। आजकल ऐसा न करके तैल में घुलनशील शास्त्रीय प्रांगारिक यौगिकों को अलग से तैयार किया जाता है और फिर इन्हें तारपीन या बेंजीन में घोल कर बाद में मिलाया जाता है। शोषक पदार्थों के ये घोल 'जैयेन शोषक' कहलाते हैं।

उद्यास अर्थात् रोजिन—ये प्रांगारिक पदार्थों के स्वाभाविक या कृत्रिम मिश्रण होते हैं जो अपने विकास काल में किसी अवस्था में प्रांगारिक विलेयकों में घुल जाते हैं और जब इन घोलकों से निक्षिप्त होते हैं तो एक अटूट चिपकने वाली फिल्म का निर्माण करते हैं। घोलकों से निक्षिप्त होने पर इनका मणिभकरण नहीं होता।

उपयुक्त गुणोंवाले उद्यास काफी लंबे अरसे से अकेले स्पिरिट वार्निश की तरह या सूखने वाले तैलों में मिलाकर इनेमल की भाँति या सैल्यूलोज प्रसूत पदार्थ के साथ 'लेकर इनेमल' के रूप में पेंट के वाहक के तौर पर प्रयुक्त होते रहे हैं। प्राप्ति के साधन के अनुसार उद्यास प्राकृतिक तथा संश्लेषित वर्गों में रखे जाते हैं।

प्राकृतिक उद्यास—चपड़ी को छोड़ कर शेष सारे प्राकृतिक उद्यास पौधों तथा पेड़ों से निःसृत रस से तैयार किये जाते हैं। जब इन पौधों या पेड़ों को चोट पहुँचती है तब इनसे पानी में न घुलनेवाले उद्यासमय पदार्थ निकलते हैं। चोट से हानि न हो इसलिए प्रकृति ऐसा करती है। ये पदार्थ द्रव रूप में होते हैं और कई प्रकार के विलेयकों में घुल जाते हैं, पर कुछ देर बाद इनके वाष्पशील भाग उड़ जाते हैं और अवशिष्ट भाग का उपचयन हो जाता है जो नरम पड़ने से तापमान को उँचा कर देता है और उद्यास को निष्क्रिय बना देता है। इससे यह विलेयकों में नहीं घुलता। ये उद्यास रोजिन, अंबर आदि हैं।

एक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक उद्यास, जो वानस्पतिक नहीं है, चपड़ी या लाख उद्यास है। भारत में यह पदार्थ काफी अधिक मात्रा में बनता है। यह परजीवी कीड़े द्वारा बनाया जाता है। लाख का कीड़ा अपने आतिथेय पेड़ पर पलता है। ये पेड़ के रस को चूसते रहते हैं और मलोत्सर्जन करते हैं। इनका यह मल सूख कर एक सुरक्षा प्रदायक पपड़ी बनाता है। इन्हीं पपड़ियों से लाख बनाती है। बाजार में विक्रयार्थ भेजने से पहले इसका परिशोधन किया जाता है। पेड़ की डालियों से उद्यास को दबा कर या पीस कर अलग कर लिया जाता है, और फिर गर्म पानी में उसे डाल कर खूब हिलाया जाता है। इससे रंगीन पदार्थ उसमें से निकल जाता है। बर्तन के नीचे से उद्यास को लेकर हवा में सुखाया जाता है। इस लाख से विशेष उपचार द्वारा चपड़ी तैयार की जाती है। विरंजित चपड़ी बनाने के लिए उसे अलकली में घोलकर इसमें सोरियम हाईपोक्लोराइट का घोल मिला दिया जाता है। इसके बाद गंधक के अम्ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा अलकली के निष्फलन से चपड़ी को पुनः अवक्षिप्त कर लिया जाता है।

चपड़ी अलकोहल (मीथिल तथा ईथिल) में घुल जाती है पर तारपीन में अघुलनशील है। स्पिरिट वार्निश तैयार करने के लिए चपड़ी श्रेष्ठतम उद्यास है क्योंकि यह कठोर तथा लचकीली फिल्म बनाती है। मेज, कुर्सी आदि के लिए इसी का स्पिरिट वार्निश प्रयुक्त होता है। चपड़ी का विद्युत् विसंवाहक के रूप में भी उपयोग किया जाता है तथा अपघर्षक चक्कों में बंधक के तौर पर भी इसका इस्तेमाल किया जाता है।

संश्लेषित उद्यास—ये सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ ऐसे उद्यासों का यहाँ पर संक्षेप में वर्णन किया जायगा जो पेंट, वार्निश तथा लेकर उद्योग में प्रयुक्त होते हैं।

फीनोल आल्डीहाइड प्रकार के उद्यास वार्निश में इस्तेमाल किये जाने, पर ऐसा पदार्थ प्रदान करते हैं जो वायु में अधिक नमी, पानी तथा रासायनिक प्रतिकारकों के संपर्क में आने पर भी टिकाऊ बने रहते हैं। इन उद्यासों में कुछ सुधार कर दिया गया है जिससे उनका रंग प्रकाश में वैसा ही बना रहता है।

ग्लिप्टल या ऐल्किड उद्यास ग्लिसरीन में थेलिक निरुदक (anhydride) को मिला कर बनाये जाते हैं। इनका उपयोग पेंट व्यवसाय में प्रचुर मात्रा में किया जाता है।

सैल्यूलोज प्रसूत पदार्थ—ये सैल्यूलोज (रुई) के अवहु-भाजन से बनाये जाते हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रसूत पदार्थ एस्टर (यथा, सैल्यूलोज नाइट्रेट, सैल्यूलोज ऐसिटेट तथा सैल्यूलोज ऐसिटो-ब्युटाइरेट) एवं ईथर (यथा—मीथेल तथा ईथिल सैल्यूलोज) हैं। इनमें उद्यासों का विशिष्ट गुण फिल्म-निर्माण का है पर यह फिल्म चिपकती कम है और इस कारण इसमें सिकुड़न आ जाती है। इसलिए लेकर में उपयुक्त उद्यास मिला दिये जाते हैं जिससे अच्छी फिल्म बन सके। परिदृढ़ होने से पहले लेकर की सरलता बनी रहे एतदर्थ अभिघटक (लोच प्रदायक पदार्थ) मिलाये जाते हैं। इससे फिल्म की मजबूती, लचक तथा चिकनाई बढ़ जाती है।

अभिघटक पदार्थ द्रव या निम्न द्रवणांक वाले ठोस पदार्थ होते हैं। इनकी वाष्पशीलता नगण्य होती है। इस-लिए ये सूखी फिल्म के स्थायी अंश बने रहते हैं। कर्पूर पहले अभिघटक के रूप में सैल्यूलोज नाइट्रेट में मिलाया जाता था पर वाष्पदाब बहुत ऊँचा होने के कारण यह धीरे-धीरे फिल्म से उत्सादित होकर निकल जाता है। इससे फिल्म भंगुर होकर शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। कर्पूर के स्थान पर बाद में एरंड का तैल काम में लिया जाने लगा। यह अवाष्पशील द्रव है। ट्राई-क्रीजिल फास्फेट, ट्राईफीनिल फास्फेट, डाई-ब्युटिल थैलेट, डाई-ऐमिल थैलेट तथा डाई-ब्युटिल टारटरेट अन्य अभिघटकों में से हैं।

ब्रुश से पेंट करने के लिए वाहक में वर्णक के निलंबन को हलका करने के वास्ते तन्वीकारक पदार्थों की जरूरत पड़ती है। महत्त्वपूर्ण पेंट तथा वार्निश तन्वीकारकों में पेट्रो-लियम स्पिरिट या नैफ्था, तारपीन तथा कोलतार से प्राप्त हाइट्रो कार्बनों की गणना की जाती है। चपड़ी के घोलक के रूप में मीथिल तथा ईथिल अलकोहल का इस्तेमाल किया जाता है। लेकर एवं लेकर इनेमल को हलका करने के लिए मुख्यतः पेट्रोलियम तथा कोलतार के हाइड्रोकार्बन यौगिकों का प्रयोग किया जाता है।

सामान्यतः विभिन्न वाष्पशीलता वाले द्रवों का मिश्रण किसी अकेले द्रव पदार्थ की अपेक्षा तन्वीकारक के रूप में अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। यदि तन्वीकारक अधिक वाष्पशील हुआ तो द्रुत वाष्पीभवन के कारण शीतन से फिल्म पर नमी संघनित हो जाती है जो एक दोष है और यदि इसकी वाष्पशीलता बहुत कम हो तो फिल्म अधिक समय तक चिपचिपी बनी रहती है।

तारपीन—यह पाइन वृक्ष से निःसृत रस से तैयार किया गया घोलक है। इसे मृत पाइन पेड़ की लकड़ी या तने के उद्यासमय पदार्थ से भी बनाया जाता है। पहले प्रकार का तारपीन गोंद स्पिरिट युक्त तारपीन तथा दूसरे प्रकार का काष्ठ तारपीन कहाता है।

तारपीन पानी जैसा सफेद वाष्पशील द्रव है। इसमें मुख्यतः पिनोन ($C_{10}H_{16}$) होता है यह पेंट तथा वार्निश में इसलिए मिलाया जाता है कि उनकी तरलता में वृद्धि हो। इस काम के लिए यह बड़ा अच्छा है क्योंकि यद्यपि यह वाष्पशील है फिर भी इसका वाष्पीभवन तेजी से नहीं होता। इसके कारण हाल ही में लगाई गयी पेंट या वार्निश फिल्म काफी अधिक देर तक द्रव बनी रहती है जिससे ब्रुश के चिह्न मिट जाते हैं। इसके बहुत से स्थाना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्न पदार्थ, जिनमें पेट्रोल तथा नैफ्था मुख्य हैं, अत्यधिक वाष्पशील होते हैं जिससे फिल्म की तरलता जल्दी नष्ट हो जाती है। इस कारण ब्रुश के चिह्न फिल्म में बने रहते हैं।

पड़े रहने पर कुछ प्रकार के तारपीन पीले पड़ जाते हैं, गाढ़े हो जाते हैं और इस प्रकार उनका अर्ध ठोस पिंड बन जाता है। इस प्रकार के गाढ़े तारपीन पेंट तथा वार्निश के लिए उपयुक्त नहीं होते। यद्यपि पानी तारपीन में आंशिक रूप में घुल जाता है तथापि तारपीन पानी में नितांत अघुलनशील है। तारपीन पेट्रोलियम, केरोसीन, बेंजोल, ऐमिल ऐसिटेट, ऐसिटोन तथा प्रोपिल, ब्युटिल व ऐमिल अलकोहल में पूर्णतः मिश्रणीय है। परम ईथिल अलकोहल में यह मिश्रणीयता आंशिक ही है। परम मीथिल अलकोहल में यह लगभग अमिश्रणीय है। तारपीन को रखने के लिए लोहे के बर्त्तन उपयुक्त नहीं हैं। इसे टिन या लकड़ी के बने बर्त्तनों में रखा जाता है। यह काफी महँगा होता है। काष्ठ तारपीन में दुर्गन्ध नहीं आती।

पेट्रोलियम स्पिरिट—यह पानी में अमिश्रणीय है पर मीथिल तथा ईथिल अलकोहल को छोड़कर शेष सारे प्रांगारिक घोलकों में यह मिश्रणीय होता है। एरंड के तैल के अतिरिक्त सारे वसामय तैल, खनिज तैल इसमें घुल जाते हैं। सैल्यूलोज नाइट्रेट इसमें नहीं घुलता।

बेंजीन, टोलीन तथा जाइलीन—ये सब पानी की तरह रंगहीन तथा पारदर्शक द्रव हैं जो कोलतार के आसवन से प्राप्त होते हैं। घोलक नैफ्थाइन सुरभिमय हाइड्रो कार्बनों का मिश्रण होता है। बाजारू बेंजीन में ७% बेंजीन तथा २५% टोलीन व थोड़े परिमाण में दूसरे यौगिक रहते हैं। यह सैल्यूलोज नाइट्रेट को घोलने में असमर्थ है।

पेंट तथा वार्निश को हटानेवाले पदार्थ—कई द्रव पदार्थ ऐसे होते हैं जो सूखे पेंट तथा वार्निश को घोल लेते हैं पर ये अत्यधिक वाष्पशील होने के कारण एक स्थान पर इतने समय तक नहीं रह सकते जिससे ये काम के सिद्ध हो सकें। इस काम के लिए उपयुक्त पदार्थ को, तीन भाग पैरेफीन मोम को ५० भाग बेंजीन में घोल कर तथा उसमें ऐमीटोन का ऐसा घोल मिलाकर जिसमें ऐसिटोन तथा ९५%में अलकोहल समान मात्रा में हो, बनाया जाता है। मीथिल कीटोन, मीथिल-ईथिल कीटोन, ब्युटिल अलकोहल आदि ऐसे अन्य उपयोगी पदार्थ हैं। १०-१२% सोडियम कार्बनेट का घोल भी पेंट या वार्निश को हटाने के लिए प्रयोग में लिया जा सकता है। इससे पेंट को हटाने के बाद अलकली के निष्फलन के लिए काष्ठ पर आक्जेलिक अम्ल का ५% घोल लगाया जाता है। यह विरंजक का काम भी करता है।

अब यहाँ पर उन सुरक्षा प्रदायक प्रांगारिक लेपन पदार्थों का संक्षिप्त विवेचन करने का प्रयास किया जा रहा है, जो पेंट, वार्निश व लेकर इन तीनों में से किसी भी श्रेणी में नहीं रखे जा सकते।

बिटूमनयुक्त लेपन—इनमें ऐस्फाल्ट के आधार पर असंख्यकृत तैल से वायु द्वारा फूंके गये ऐस्फाल्ट तथा कोलतार का अधिक प्रयोग किया जाता है। इन्हें बिना तन्वीकारक मिलाये गर्म-गर्म ही लकड़ी या लोहे पर घोल दिया जाता है या फिर सामान्य तापमान पर लगाने के लिए इनमें हलका करनेवाले पदार्थ मिलाये जाते हैं। बिटूमनयुक्त लेपन नलों तथा लोहे व इस्पात की उन वस्तुओं पर लगाये जाते हैं जो जमीन के अन्दर गड़ी होती हैं। कभी-कभी बिटूमनयुक्त लेपन में खनिज पूरक तथा अभिघटक पदार्थ मिलाये जाते हैं। फूंके हुए ऐस्फाल्ट की अपेक्षा कोलतार के लेपन में नमी का प्रवेश कम होता है। इन लेपनों का प्रयोग कांक्रीट के बने ढाँचों पर भी किया जाता है जिससे उनमें नमी का प्रवेश कम हो। गीले कांक्रीट पर बिटूमन-जल प्रनिलंबन सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है।

न सूखने वाले सुरक्षा प्रदायक लेपन—इस प्रकार के अनेक पदार्थ बाजार में मिलते हैं। इनमें अधिकांश के व्यावहारिक नाम रखे गये हैं। इनके मुख्य संघटक अमणिभ मोम या ग्रीज अर्थात् चिकनाई होती है। कुछ में इनके अतिरिक्त प्रांगारिक संक्षारण निरोधक रहते हैं, कुछ में क्रोमेट जैसे निरोधक मिले होते हैं तो दूसरों में यशद धूलि रहती है। कई काफी कड़े होने के कारण धातु की सतह से बहते नहीं। इन पदार्थों से अस्थायी सुरक्षा ही प्राप्त होती है। पानी धीरे-धीरे इस प्रकार के सारे लेपनों को मिटा देता है।

मोम की पालिश—इस काम के लिए नैफ्था तथा तारपीन में मोम की बनी जेली का उपयोग किया जाता है। द्रव मोम या तो विलेयक में मोम का प्रनिलंबन होता है या पानी में मोम को डाल कर उसे साबुन से स्थायित्व प्रदान करके तैयार किया जाता है। इस प्रकार की पालिश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से घर के भीतर व्यवहृत लकड़ी के सामान की काफी सुरक्षा हो जाती है। इसे लिनोलियम पर भी लगाया जाता है।

शीत जल पेंट—जल पेंट में महीन पिसे हुए खनिज वर्णक बंधक तथा न घुलने देनेवाले पदार्थ के साथ प्रयुक्त होते हैं। पानी विलेयक तथा तन्वीकारक का काम करता है। तैलीय पेंट में सूखा हुआ तैल बंधक का काम देता है। जल पेंट में प्रयुक्त बंधक कैसीन, सोयाबीन का प्रोटीन, गोंद (ग्लू), डेक्स्ट्रिन तथा सोडियम सिलिकेट होते हैं। कैसीन के साथ कैल्शिम-हाइड्रोक्साइड को न घुलने देनेवाले पदार्थ की तरह काम में लिया जाता है। ग्लू के साथ फिटकरी या डाईक्रोमेट लवण का प्रयोग किया जाता है। कैसीन पेंट काफी सस्ते होते हैं और उन्हें सुगमता से किसी भी सतह पर लगाया जा सकता है।

डिस्टेंपर—ये साधारणतः पानी में ग्लू के साथ वर्णकों के मिश्रण घोलकर तैयार किये जाते हैं। इनमें थोड़ी फिटकरी मिला दी जाती है। यह नमी का अवरोधक जरूर है पर वेदरप्रूफ नहीं है। यदि सतह पर धूप पड़ने की संभावना हो तो डिस्टेंपर में ३% सोडियम बाईक्रोमेट मिला देना चाहिये, पर हर प्रकार के मौसम के उपयुक्त यह फिर भी नहीं होता।

लकड़ी के अभिरंजक (स्टेन) तथा पूरक—जो लकड़ी फर्नीचर बनाने या मकानों के भीतरी भाग में लगाई जाती है उसका अभिरंजन उसकी सुंदरता बढ़ाने या इससे भी कीमती काष्ठ का रूप ग्रहण करने के ध्येय से किया जाता है। अभिरंजकों में प्रांगारिक रंग, अम्ल, अलकली, धात्विक लवण तथा खनिज वर्णक हैं। अभिरंजकों के वाहक जल, स्पिरिट, अम्ल तथा तैल होते हैं। जल अभिरंजक अधिकतः प्रयुक्त होते हैं, पर पानी से लड़की फूल जाती है। इसे रोकने के लिए थोड़ी ग्लिसरीन को पानी में मिला दिया जाता है। जल अभिरंजक ऐनिलीन रंगों का विलयन या लकड़ी-मंजीठ, ब्रुस्फोर आदि के जल निस्सारक होते हैं। स्पिरिट अभिरंजक को अलकोहल या अच्छे स्पिरिट वार्निश में वर्णकों को घोलकर बनाया जाता है। ये अभिरंजक तेजी से सूखते हैं। अम्ल अभिरंजक में कई प्रकार के पदार्थ होते हैं। इनमें से कइयों को तो अम्ल कहा ही नहीं जा सकता। इसमें गंधक तथा शोरे का अम्ल, पिक्रिकाम्ल, फिटकरी, फेरस सल्फेट, पोटैसियम क्रोमेट तथा डाईक्रोमेट, पोटैसियम परमैंगनेट, सोडियम तथा पोटैसियम के कार्बनेट तथा सोडा तथा कास्टिक पोटैस भी सम्मिलित हैं।

तैल अभिरंजक लकड़ी में गहराई तक नहीं पहुँचते अतः इन्हें उस लकड़ी पर नहीं लगाया जा सकता है जिसमें भराव की जरूरत पड़ती है। इन्हें खनिज वर्णकों को तैल में डालकर तैयार किया जाता है। इसमें कुछ तारपीन तथा जैपेन शोषक मिलाया जाता है।

काष्ठ पूरक लकड़ी के छिद्रों को भरने में प्रयुक्त होते हैं। ये दो प्रकार के हैं,—लेप और द्रवपूरक। सबसे अच्छा लेप सिलिका या बैराइटीज, उबले हुए तैल तथा जैपेन शोषक से बनाया जाता है। सिलिका तथा बैराइटीज तैल में मिलकर पारदर्शक से हो जाते हैं। इस प्रकार यह पूरक पारदर्शक होता है। घटिया किस्म का पूरक मक्की के श्वेतसार अर्थात् स्टार्च, सफेदी (चूने का चूरा), उबाले हुए तैल, तारपीन तथा शोषक से बनाया जाता है। ये पूरक सूखने के बाद सिकुड़ते हैं। पूरक में रंग भी मिलाया जाता है। द्रव पूरकों में वे ही पदार्थ रहते हैं जो लेप में होते हैं। इनमें द्रव भाग की अधिकता होती है। यदि अभिरंजकों के साथ पूरक का प्रयोग करना हो तो पहले अभिरंजक और बाद में पूरक लकड़ी पर लगाये जाते हैं। यदि पूरक में सफेदी या संगमर्मर का चूरा हो और अभिरंजक अम्ल-अभिरंजक हो तो अभिरंजक पर चपड़ी की एक पतली परत पोतकर फिर पूरक लगाना चाहिए। इससे सफेदी पर अम्ल की प्रतिक्रिया नहीं होगी।

लेपिका (पुट्टी)—यह सफेदी को कच्चे अलसी के तैल में गूँद कर बनाई जाती है। इसमें कभी-कभी सफेदी, सीसे का कार्बनेट, सफेद मिट्टी या इसी प्रकार के पदार्थ अलसी के तैल के साथ रहते हैं।

पदार्थों पर पेंट का प्रयोग—प्रांगारिक लेपन धात्वीय तथा अधात्वीय सब प्रकार के निर्माण कार्य में प्रयुक्त पदार्थों पर सजावट या सुरक्षा के उद्देश्य से लगाये जाते हैं। इंजीनियरी दृष्टि से पदार्थों की सुरक्षा ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात नहीं है, सजावट वाले लेप का टिकाऊपन भी काफी अधिक महत्त्व रखता है। उपयुक्त सुरक्षा प्रदायक लेपन के चुनाव में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :—

(१) जिस सतह पर लेपन करना है उसका रासायनिक संगठन तथा भौतिक विशेषताएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) वातावरण जिसमें लेपन किया हुआ पदार्थ रहेगा।

(३) लेपन की तथा उसके लगाने की कीमत।

(४) ढाँचे को बदलने की कीमत।

किसी भी इंजीनियर को इस प्रकार चुनाव करना चाहिये कि प्रतिवर्ष ढाँचे को बने रखने में कम के कम खर्च करना पड़े।

लकड़ी पर सुरक्षाप्रदायक लेपन—साधारण तौर पर लेपन का लकड़ी की सतह में कुछ गहराई तक पहुँचना आवश्यक है। पहले यह समझा जाता था कि जितनी गहराई तक पहुँचा जाय उतना ही ठीक रहता है। अतः प्रारंभिक लेपन में वर्णक थोड़ी मात्रा में और वाहक काफी अधिक परिमाण में प्रयुक्त होता था। वर्णक में जो अधिकतः पीत गैरिक होता था, आवेष्टन शक्ति कम होने के कारण लकड़ी को बहुत कम सुरक्षा प्राप्त होती है। लकड़ी जितनी अधिक सघन होती है लेपन का उस पर चिपके रहना उतना ही कम होता है। वसंत ऋतु में गिराये गये पेड़ की लकड़ी ग्रीष्म ऋतु वाले काष्ठ की अपेक्षा कम सघन होती है। इस लिए उसमें पेंट अच्छी तरह लगाया जा सकता है।

यदि फर्श पर जड़ी गई लकड़ी नरम काष्ठ है तो उस पर कठोर, टिकाऊ वार्निश या इनेमल पेंट लगाना चाहिए। कठोर काष्ठ के फर्श में वार्निश के कई आवरण अर्थात् कोर लगाकर मोम का लेपन कर देना चाहिए। मोम का लेपन समय-समय पर फिर से करते रहना आवश्यक है।

धातु पर सुरक्षा प्रदायक लेपन—धातुओं की संक्षारक वातावरण से रक्षा करने के लिए उन पर दूसरी धातुओं का झोल अर्थात् पानी चढ़ाया जाता है या उन पर अकार्बनिक यौगिक—जैसे, पोर्सिलेन इनेमल आदि लगाये जाते हैं पर बहुत करके प्रांगारिक सुरक्षा प्रदायक लेपन का अकेले या धात्वीय तथा अकार्बनिक आवरणों के साथ उन पर प्रयोग करना आर्थिक दृष्टि से अधिक संगत है।

धातुओं की बनी चीजों की सतह चिकनी तथा अपशोषक होती है। वह लकड़ी की तरह खुरदरी तथा रेशेवाली नहीं होती। इसलिए धातु पर लगाया जानेवाला पेंट ऐसा होना चाहिये जो सतहबल से उस पर चिपकनेवाला हो। धातु पर पेंट में चिपकानेवाले पदार्थ गोंद, उद्यास तथा तुंग तैल हैं। संक्षारण को रोकने के लिए कम से कम प्रारंभिक आवरण में निरोधक वर्णकों का होना आवश्यक है। ऐसे वर्णक लाल सीसा, यशदधूलि, जस्ते का ऑक्साइड, जस्ते का क्रोमेट, सीसे का क्षारीय क्रोमेट आदि हैं।

धातु पर प्रांगारिक पेंट लगाने से पहले उसकी सतह को सावधानीपूर्वक साफ कर लेना आवश्यक है। इसके पश्चात् इसका रासायनिक उपचार किया जाता है और फिर पेंट लगाया जाता है। प्रारंभिक आवरण के सूखने पर एक या दो और आवरण चढ़ाकर उस पर अभेद्य एवं टिकाऊ फिल्म बनाई जाती है।

पलस्तर तथा कांक्रीट पर लेपन—पलस्तर तथा कांक्रीट में चूने के क्षारीय यौगिक होते हैं जिनकी नमी की मौजूदगी में बहुत से तैल-पेंट के साथ प्रतिक्रिया होती है। इन पर पेंट चढ़ाने से पहले इनकी सतह को जस्ते के सल्फेट के घोल से धो लेना चाहिए। कभी-कभी इन पर मैगनीसियम फ्लुओसिलिकेट, सोडियम सिलिकेट तथा जस्ते के सल्फेट के घोल का उपचार करने के बाद सूखकर कठोर पड़ने-वाले वार्निश में अपघर्षण निरोधक रंग मिलाकर इन्हें पोत दिया जाता है।

कुछ पेंट ऐसे तैयार किये जाते हैं जिनमें ताप तथा प्रकाश के परावर्त्तन का गुण होता है। ताप परावर्त्तक पेंट पेट्रोलियम टंकियों के रँगने के काम में लिये जाते हैं। प्रकाश परावर्त्तक पेंट का उपयोग मकानों के भीतरी भाग, ट्रैफिक (यातायात) संकेत आदि में किया जाता है। सफेद पेंट इस काम के लिए अधिक उपयुक्त हैं। इसके बाद हलके रंगवाले, गहरे रंग के तथा काले पेंट परावर्त्तन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं। ऐल्यूमीनियम चूर्ण का उपयोग इस काम के लिए काफी अधिक बढ़ चला है, पर परीक्षणों से यह पता चला है कि यह सफेद पेंट की तुलना नहीं कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सत्य कथा

परिस्थितियों का शिकार

श्री शमशुद्दीन, एम० ए०, एम० एड०

देहात की कई शालाओं में अनेक वर्षों तक अध्यापकीय कार्य करने के बाद अन्त में मैं सरगुजा के हाईस्कूल में हेड मास्टर बनाकर भेज दिया गया। अब तक मेरा जीवन बड़े ही सुख शान्ति से बीत रहा था, किन्तु जुलाई १९६६ में कुछ ऐसी घटना घटी जिसने मेरे जीवन की सारी शांति भंग कर दी।

उस दिन मैं आफिस में जाकर बैठा ही था कि एक नवयुवक ने, जो वेशभूषा और चेहरे के हाव-भाव से सभ्य दिखाई दे रहा था, कमरे में प्रवेश किया। उसने आते ही कहा कि वह शिक्षक है। उसका स्थानान्तरण बालोद के हाईस्कूल से मेरे स्कूल में हो गया है और मैं उसे तुरन्त काम पर ले लूं। चूंकि उसके पास सरकारी आदेश की कोई प्रति नहीं थी अतः मैं उसे काम पर लेने में असमर्थ था। इस पर वह युवक शिक्षक बड़ा निराश हुआ और तुरन्त काम पर लिये जाने के लिए बार-बार मुझसे अनुरोध करने लगा।

उसकी शीघ्रता और कार्य-तत्परता को देख मैं अचंभे में पड़ गया। कारण, अपने शालेय जीवन के इतने लम्बे अरसे में मुझे कभी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो कार्य आरम्भ करने के लिए इतना उत्सुक हो। दो-चार रोज के बाद ही उसके स्थानान्तर के सरकारी आदेश प्राप्त हो गये और श्री नईम ने, जैसा कि उसका नाम था, मेरी शाला, और साथ ही मेरे जीवन में भी प्रवेश किया।

मैंने उसे अपने ही घर के एक हिस्से में रहने के लिए स्थान दे दिया और वह वहाँ रहने लगा। पूछने पर मालूम हुआ कि वह विवाहित है तथा उसका एक वर्ष का बच्चा है, किन्तु अभी वह अकेला ही सरगुजा आया है।

श्री नईम बड़ा ही ईमानदार और आज्ञाकारी शिक्षक था। वह कार्य-कुशल इतना था कि उसके खिलाफ शिकायत की कहीं कोई गुंजाइश ही नहीं रहती थी। एक बात अवश्य थी कि वह एकान्तप्रिय था और उसके मित्र बहुत कम थे। मैंने देखा कि वह स्वभाव से ही शान्त एवं एकाकी रहनेवाला है। अतः मैंने उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता में कोई दखल नहीं दिया।

एक दिन एक वृद्ध सज्जन, जो उसके पिता मालूम हुए, उससे मिलने आये। मैंने देखा कि नईम ने अपने पिता की बड़े आदर एवं सम्मान के साथ आवभगत की। दूसरी बार जब वे फिर आये तब उन्होंने मुझसे भी मुलाकात की और हम दोनों रात काफी देर तक एकांत में बातें करते रहे। उसी दिन मुझे अपने इस नये शिक्षक के बारे में कई बातें मालूम हुईं।

श्री कमाल ने, जो नईम के पिता का नाम था, मुझे बताया कि नईम का विवाह गुलबकावली के साथ हुआ जो पुलिस सब-इंस्पैक्टर एवं एक बड़े परिवार के मुखिया श्री पाशा की लड़की थी। श्री पाशा बहुत ही तेज़ मिजाज़ और दुष्ट प्रकृति का आदमी था तथा उसकी नीयत अपने दामाद की जायदाद हड़पने की थी। उसकी लड़की भी कम नहीं थी। वह बड़ी असभ्य और खराब स्वभाव की थी तथा अभी-अभी अपने पति एवं बच्चे को छोड़कर वह अपने पिता के घर चली गयी है।

श्री कमाल ने अपने पुत्र के जीवन पर खतरे की आशंका प्रकट की तथा मुझसे प्रार्थना की कि मैं उसे अपने ही घर में सुरक्षित रखूं। मैं इसके लिए राजी हो गया, किन्तु मैंने उनसे पूछा कि दो परिवारों के बीच इतनी बुराई का आखिर कारण क्या है।

कमाल ने उस दुर्भाग्यपूर्ण घड़ी को धिक्कारा जिस समय नईम और गुलबकावली का विवाह हुआ और बोला कि इससे नईम पर न केवल हठी और दुष्ट पत्नी का बोझ बढ़ गया बल्कि उसे अपने कठोर ससुर का भी सामना करना पड़ता है। यद्यपि गुलबकावली के पिता अच्छी हैसियत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी थे किन्तु उन्होंने दहेज के मामले में अपने वचन का पालन नहीं किया। इस विवाह से नईम की उम्मीदों पर पानी फिर गया और इसलिए वह बहुत दुखी और निराश है।

लड़की के सुसराल आकर रहने के बाद भी उसमें कोई सुधार नहीं हुआ बल्कि स्थिति बिगड़ती ही गयी। उसने शब्दों से न सही किन्तु अपने कार्यों और व्यवहार से सिद्ध कर दिया कि उसे यह नया घर और परिवार पसन्द नहीं है। एक दिन उसने जिस पानी से अपनी साड़ी को धोया था उसी गंदे पानी में और पानी डालकर अपनी सास को नहाने के लिए पानी दे दिया। इस प्रकार उसने अपनी सास का भी अपमान किया।

किन्तु जहाँ तक नईम का सवाल था वह और गुलबकावली मजे में रहते हुए प्रतीत होते थे। अपनी पहले महीने की तनख्वाह लाने पर उसने अपनी पत्नी के लिए सोने की घड़ी खरीदी। कमाल को इस पर बहुत बुरा लगा और उसने नईम को ताकीद की कि वह अपनी औरत के लिए व्यर्थ की चीजें न खरीदकर घर-खर्च के लिए अधिक पैसा दे।

कमाल ने यह भी कहा कि वह अपनी औरत को अनुशासन में रखे और उसे आधुनिक फैशनेबल औरतों की तरह कपड़े और शृङ्गार की चीजें काम में न लाने दे। कमाल ने मेरे सामने स्वीकार किया कि यद्यपि कुछ बातों में उसने हमारी आज्ञा का पालन किया किन्तु अपने माता-पिता और पहचानवालों को हमारे खिलाफ शिकायत भरे पत्र लिखना बंद नहीं किया।

मुझे यह जानकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि नईम का अठारह महीने का एक बच्चा भी है जिसे उसकी माँ से अलग रखकर कमाल के घर उसका पालन-पोषण किया जा रहा है। जब मैंने कमाल से इसका कारण पूछा तब उसने एक और कहानी सुनाई।

एक दिन गुलबकावली का छोटा भाई अपने पिता का संदेशा लेकर आया कि गुलबकावली को किसी पारिवारिक उत्सव के लिए दो दिन को मायके भेज दिया जाय। गुलबकावली तुरन्त तैयार हो गयी और उसने ससुर से जाने की इजाजत माँगी। ससुर ने यह कहकर उसे जाने से रोक दिया कि वह एक छोटे से लड़के के साथ बहू को नहीं भेज सकते। उनका कहना था कि उसके माता-पिता को लड़की को लेने जाना चाहिए था। एक आज्ञाकारी पुत्र के अनुरूप नईम ने भी अपनी पत्नी को भेजने से इंकार कर दिया।

गुलबकावली अड़ गयी और उसने इजाजत के बिना जाने का निश्चय कर लिया। उसने अपना कुछ सामान बाँधा, बच्चे को लिया और बस स्टैंड के लिए रवाना हो गयी। भाग्यवश कमाल ने उसे देख लिया। उसने हल्ला किया और नईम से कहा कि वह बच्चे को उससे छीन ले। गुलबकावली रोते हुए घर वापिस आ गयी। उसका छोटा भाई यह सब देख घबरा गया। उसने सीधे घर जाकर अपने माता-पिता से सारा हाल कह सुनाया।

कमाल ने महसूस किया कि बहू खतरनाक होती जा रही है और इसलिए उसने नईम से कहा कि वह अपने ससुर को तार देकर खबर कर दे कि गुलबकावली अपने ससुर के घर से भाग जाना चाहती है और वे तुरन्त यहाँ चले आवें।

नईम के ससुर श्री पाशा अपनी पत्नी सहित बड़े घबराये हुए उसी रात वहाँ पहुँच गये। गुलबकावली ने जब उन्हें सब हाल सुनाया तब वे शांत हुए और उसकी तरफ से लड़ने के लिए तैयार हो गये। कमाल ने उन्हें बताया कि उनकी लड़की घर से भागना चाहती थी और इसे उसके कई पड़ोसियों ने अपनी आँखों से देखा है। चूँकि बात सबको जाहिर हो चुकी है अतः उसने पंचों को बुलाकर फैसला कराने का विचार किया है।

इसी बीच गुलबकावली से कहा गया कि वह सब इकट्ठे अतिथियों के लिए खाना पकाये। उसने खाना पकाया और जब सब खाने बैठे तब मौका पाकर गुलबकावली घर से निकल गयी और चुपचाप जाकर अपने पिता की जीप गाड़ी में बैठ गयी। उसे उम्मीद थी वे शीघ्र ही आकर उसे मिल जायँगे। किन्तु उन्हें कुछ पता नहीं था और वे जल्दी नहीं आये। नतीजा यह हुआ कि फिर वह लोगों की नजर में आ गयी।

इस समय कई लोग इकट्ठे हो गये और उन्होंने गुलबकावली का रास्ता रोक लिया। बच्चा उससे छीन लिया गया और घर पर ले जाया गया।

पंचों की दूसरी बैठक बुलाई गयी और इस समय उन्होंने फैसला किया कि गुलबकावली अपने माता-पिता के साथ जा सकती है किन्तु वह बच्चे को नहीं ले जा सकती। गुलबकावली चली गयी। कमाल का कहना था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि इस घटना ने सिद्ध कर दिया कि उसे अपने पति तथा बच्चे से कोई लगाव नहीं है। उसे गये छः महीने हो गये किन्तु इस बीच उसने एक बार भी इनकी खैरियत की खबर नहीं ली।

सारा हाल सुनने के बाद मैंने मन में सोचा कि यह तो कहानी का एक पहलू हुआ—इसका दूसरा पहलू भी होगा। और मुझे लड़की के तरफ से भी जानकारी लेना चाहिए। चूँकि नईम ने मुझसे मध्यस्थता करने का आग्रह किया था, मैं दूसरी तरफ का भी हाल जानने के लिए गम्भीरता से विचार करने लगा। यह तो करीब-करीब निश्चित था कि कोई भी लड़की या परिवार किसी कारण के बिना इतना दुष्ट और अत्याचारी नहीं हो सकता।

कुछ दिनों के बाद एक सज्जन मुझसे मिलने आये। उन्हें गुलबकावली के पिता श्री पाशा ने भेजा था। उन्होंने बताया कि गुलबकावली की हालत बड़ी दयनीय हो गयी है और वह रात-दिन रोती रहती है। उसने कहा कि मैं उसकी हालत तभी समझ सकूँगा जब मैं स्वयं उससे मिलूँ। उसने पाशा से मेरी मुलाकात कराने का वायदा किया और चला गया।

जब पाशा मुझसे मिलने आये तब उम्मीद के बिलकुल विरुद्ध मैंने उन्हें एक शांत और सज्जन व्यक्ति पाया। उनकी बातचीत और व्यवहार में मैंने कहीं गर्म मिजाज़ी अथवा दुष्टता का निशान भी नहीं पाया। मैंने उनसे आग्रह किया कि वे नईम और मेरे दो मित्रों के सामने गुलबकावली का पूरा किस्सा बयान करें।

अब हमें बिलकुल ही भिन्न कहानी सुनने को मिली। पाशा ने कहा कि यद्यपि वह मामूली हैसियत का आदमी था और उसे कम आय से बहुत बड़े परिवार का पालन-पोषण करना पड़ता था, फिर भी वह स्वयं संतुष्ट था और उसने दूसरे की जायदाद पर बुरी नीयत कभी नहीं रखी। उसे इस बात की प्रसन्नता थी कि उसकी लड़की को ग्रेजुएट वर मिला और उसने अपनी हैसियत के अनुसार लड़की की शादी बहुत अच्छी तरह से की। इसके बावजूद भी कमाल को संतोष नहीं हुआ और वे यही शिकायत करते रहे कि पाशा ने अपने वायदे पूरे नहीं किये।

इसके विरुद्ध जब शादी के बाद पाशा अपनी पत्नी के सहित कमाल के घर गये तब उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया गया। कमाल की पत्नी ने पाशा द्वारा किये गये प्रत्येक कार्य में दोष ढूँढ़-ढूँढ़ कर बताये। यहाँ तक कि जो मिठाई मिसिज़ पाशा लाई थी वह मिसिज़ कमाल को पसंद नहीं आई। अंत में भारी हृदय से वे अपने घर लौट आये। आते समय उन्होंने अपनी पुत्री को शुभ-कामनाएँ दीं तथा कहा कि वह अपने सास-ससुर को संतुष्ट करने की हर सम्भव कोशिश करे।

पाशा ने कहा कि जब भी नईम उनके घर आया उन्होंने हृदय से उसका स्वागत किया तथा उसे कपड़े आदि दिये। उन्होंने यह भी कहा कि गुलबकावली को नईम से कोई शिकायत नहीं है किन्तु अपने सास-ससुर के दुर्व्यवहार से त्रस्त होकर उसे घर छोड़ना पड़ा। अंत में पाशा ने मुझसे आग्रह किया कि मैं उनके घर जाकर स्वयं गुलबकावली की जबानी उसका सारा हाल सुनूँ। मैं इसके लिए राजी हो गया और हमने तिथि निश्चित कर ली।

निश्चित दिन मैं अपने दो मित्रों के सहित पाशा के घर पहुँचा। चाय-नाश्ते के पश्चात् मैंने लड़की से मिलने की इच्छा व्यक्त की। पाशा भीतर गये और मैंने सुना कि वे गुलबकावली को यह कहते हुए बाहर कमरे में आने के लिये बाध्य कर रहे थे कि हम उसके शुभचिंतक हैं और उसको किसी तरह का नुकसान न पहुँचाकर उसकी मदद करेंगे। अंत में वह राजी हो गयी और कमरे में आयी।

सिर नीचा किये हुए बहुत धीमी गति से उसने हमारे कमरे में प्रवेश किया। उसकी आँखों से बहते हुए आँसू अब भी उसके कपोलों पर दिखायी दे रहे थे। उन्हें पोंछते हुए वह चुपचाप खड़ी हो गयी। हमने उसकी हार्दिक पीडा को महसूस किया और हर तरह से उसकी मदद करने का निश्चय कर लिया।

उसकी उम्र करीब २० वर्ष होगी। रंग गोरा तथा चेहरा खूबसूरत था किन्तु उसकी वेश-भूषा अत्यन्त सादी थी। वह शिष्ट और व्यवहार-कुशल प्रतीत हुई तथा उसकी आदतों और व्यवहार में हमने कहीं भी हठीपन या दुष्टता से चिह्न नहीं देखे। यह पूछने पर कि क्या वह अपने पति और बच्चे के साथ रहना चाहती है, उसने बड़ी ही सादगी से जवाब दिया कि वह कुछ और नहीं चाहती, केवल अन्य लड़कियों की तरह सुख-शांति का जीवन व्यतीत करना चाहती है। फिर उसने अपनी कहानी सुनाना आरम्भ किया।

उसके कष्टों का आरम्भ उसी दिन से हो गया जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन उसका विवाह हुआ। इसके पहले वह सुखी और संतुष्ट थी। विवाह से पहले वह अपने भावी जीवन की सुखद कल्पनाएं कर रही थी, किन्तु जैसे ही उसने पति-गृह में प्रवेश किया उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। उसके ससुर आरम्भ से ही उससे नाखुश और असंतुष्ट रहने लगे। वह जो भी काम करती, उन्हें पसंद ही नहीं आता था। हर समय वे पाशा के किये गये विवाह के प्रबंध की आलोचना किया करते। गुलबकावली को अपने पिता के लिए दुःख होता। कारण, उन्होंने कमाल और नईम को खुश करने के लिए कोई कसर उठा नहीं रखी थी। इन सबके बावजूद वह यह सोचती कि समय के साथ सब बातें ठीक हो जायँगी।

विवाह के बाद जब दोबारा गुलबकावली अपने माता-पिता के साथ कमाल के घर आई तब उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया गया। मिसिज़ कमाल ने उसके माता-पिता को बुरा-भला कहा तथा उन पर घमंडी और तेज़ मिजाज़ होने का आरोप लगाया। पाशा और उनकी पत्नी को उनके घर बड़े बुरे अनुभव हुए किन्तु फिर भी जाते समय उन्होंने गुलबकावली को यही सलाह दी कि वह अपने घर में सबको संतुष्ट करने का प्रयास करे।

जिस दिन गुलबकावली ने ससुर-गृह में प्रवेश किया उसी दिन से उसे काम के बोझ से लाद दिया गया। एक दिन उससे पानी गरम करनेवाले बर्तन में पानी भरने के लिए कहा गया। उसने बिना यह जानते हुए कि उसमें पहले से बचा हुआ गंदा पानी है, उसमें ताजा पानी भर दिया और उसे अपनी सास को नहाने के लिए दे दिया। इस पर उसकी सास बहुत बिगड़ी और कहने लगी कि उसने सास को अपमानित करने के लिए जान-बूझकर ऐसा किया।

वे गुलबकावली के प्रत्येक व्यवहार के लिए उसके माता-पिता को कोसते। उसे घर के सभी लोगों के लिए खाना बनाने के सिवाय खेत पर काम करनेवाले नौकरों के लिए भी खाना पकाना पड़ता। वह जब भी ससुर से पूछने जाती कि आज क्या पकाना है तब वे उसे सास से पूछने को कहते, सास नईम से पूछने को कहती और नईम कह देता कि जो चाहो पका लो। इस प्रकार वह बड़े असमंजस में पड़ जाती कि क्या करे और क्या न करे। अंत में वह फिर अपनी सास के पास जाती और उससे पूछकर ही खाना पकाती। यह एक दो दिन का नहीं वरन् हर रोज का रवैया था।

इसके साथ ही वे उसके पकाने में दोष ढूँढ़ते। वैसे गुलबकावली ने स्वयं स्वीकार किया कि वह खाना पकाने में बहुत निपुण नहीं है किन्तु सीखने के लिए वह हमेशा तैयार रहती थी, परन्तु दुर्भाग्यवश उसे कोई मदद करना ही नहीं चाहता था। उसके सास-ससुर उसे राजकुमारी कहते जिसे नौकर-चाकर और फूलों की सेज चाहिए। चूंकि उसके माता-पिता ने उसे ताकीद की थी कि कोई उसे कुछ भी बुरा-भला कहे, वह कभी जवाब न दे, इसलिए उसने खमोशी से हर अत्याचार सहा और वह धीरज से अपना समय काटती रही।

वह अपने पति के साथ सुख से रहती थी तथा वह भी उसके साथ दया का व्यवहार करता था। गुलबकावली भी उसे हृदय से प्रेम करती थी। जब उसके पति ने उससे कहा कि वह पावडर न लगाये और पेटीकोट न पहने क्योंकि उसके पिता पसंद नहीं करते तब उसने तुरन्त आज्ञा का पालन किया। वह नम्रतापूर्वक सबका कहना सुनती रही। कभी-कभी उसका पति उसकी तरफदारी करता किन्तु अधिकांश बार वह अपने माता-पिता की ही बात मानता क्योंकि वह उनका आज्ञाकारी पुत्र था और उन्हें नाखुश नहीं करना चाहता था।

जब कभी दो-एक बार उसने अपनी पत्नी की तरफदारी की तब उसके माता-पिता ने उसे यह कहकर फटकारा कि वह औरत का गुलाम और नामर्द है। इसके बाद नईम भी उसके प्रति कठोर हो गया। गुलबकावली ने बताया कि उसे शारीरिक कष्ट कभी नहीं दिया गया किन्तु मानसिक दृष्टि से उसे हमेशा परेशान रखा गया। उसने कई दिन तक हर तरह की यातनाएँ सहीं। अंत में उसने अपने पति से कहा कि वे दूसरी जगह जाकर अलग रहें तो अच्छा होगा। नईम इससे सहमत नहीं हुआ और इस प्रकार जीवन को सुखी बनाने का जो एक रास्ता था वह भी बंद कर दिया गया।

एक दिन उसने अपने माता-पिता के एक मित्र को, जो उसके पति को भी जानते थे, पत्र लिखा कि वे उसके पति को सलाह दें कि वे उसके साथ अलग रहें। उसने अपने दुःख की कहानी बताते हुए यह भी लिखा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भव न हो तो वे जहर की शीशी भेज दें ताकि वह अपने जीवन को ही समाप्त कर दे।

दुर्भाग्यवश यह पत्र उसके पति के हाथ में पड़ गया जिसे उसने अपने पिता को बता दिया। वे एकदम इस निर्णय पर पहुँच गये कि गुलबकावली अपने माता-पिता के भड़काने पर उन्हें और उनके लड़के को जहर देकर मार डालना चाहती है। उन्होंने उसे पत्र लिखने के लिए बहुत डाटा-फटकारा तथा उसमें झूठी शिकायतें लिखने के लिए बुरा-भला कहा। गुलबकावली ने कहा कि वह रात-दिन अपने माता-पिता की बुराई सुनने और ताड़नाएँ सहने से ऊब गयी थी। उसके ससुर ने वह पत्र सारे गाँव में पढ़ सुनाया और लोगों से कहना आरम्भ कर दिया कि उसे भय है, कि यह लड़की शीघ्र ही उन्हें जहर न दे दे।

इसके सिवाय कमाल अपने लड़के से भी बहुत नाराज था। जब नईम स्थानीय माध्यमिक शाला में शिक्षक हो गया तब उसने अपनी पहली तनख्वाह में से गुलबकावली के लिए घड़ी खरीद दी थी। इस पर कमाल बहुत बिगड़े और उन्होंने लड़के से कहा कि वह पत्नी के लिए व्यर्थ की शौकिया चीजें खरीदने के बजाय घर-खर्च में अधिक हिस्सा बटाये।

इसके बाद कमाल ने गुलबकावली और उसकी छोटी बहिन को घर के पिछले हिस्से के अस्तबल में रहने को भेज दिया और उन्हें वहाँ अकेले रहने दिया। वहाँ वह अपने लिए खाना पकाती और अपना काम खुद करती। नईम अपने पिता के साथ रहता। कमाल ने उससे कहा कि वह गुलबकावली के हाथ से एक बूँद जल भी ग्रहण न करे। नईम ने पिता की आज्ञा का पालन किया।

गुलबकावली के लिए अब जीवन दूभर हो गया। उसे अस्तबल के गंदे स्थान में रहना पड़ता तथा केवल अपनी छोटी बहिन के साथ ही सारा समय काटना पड़ता। यहाँ पर भी उसे संतोष की कुछ घड़ियाँ न मिल पातीं। कारण, नईम अन्य सभी बातों में उसके ऊपर दया दिखाता, केवल उसके हाथ का न कुछ खाता और न पीता।

एक बार जब नईम उसके पास गया तब वह काफी बना रही थी। उसने नईम से काफी पीने का आग्रह किया। नईम पहले राजी नहीं हुआ किन्तु उसके बहुत अनुनय-विनय करने पर और यह आश्वासन देने पर कि वह उसे प्राणों से भी अधिक चाहती है और उसका कोई बुरा इरादा नहीं है, वह काफी पीने के लिए तैयार हो गया। उसने दो कप काफी तैयार की किन्तु यहाँ भी नईम ने पहले उसे पिलाया और तब स्वयं पिया।

इसी प्रकार कष्ट में कुछ माह गुजरे। अंत में गुलबकावली गर्भवती हो गयी और उसने यह जानकर चैन की साँस ली कि जचिक के लिए उसे माता-पिता के घर भेज दिया जायगा। वह मायके चली गयी। नईम कभी-कभी उससे मिलने जाता किन्तु उस समय वह ऐसी बुरी हालत से जाता कि प्रत्येक बार उसे नई कमीज और नया पायजामा देकर बिदा किया जाता।

दो महीने बाद नईम ससुराल गया और उसने गुलबकावली को अपने साथ तुरन्त भेज देने के लिए कहा। पाशा ने यह कहकर नाहीं कर दी कि लड़की को जचिक के बाद किसी शुभ दिन में वापिस भेजा जायगा। नईम ने इसे अपना बहुत बड़ा अपमान समझा और पाशा को धमकी दी कि वह दूसरा विवाह कर लेगा। इस पर भी पाशा शांत रहे और उन्होंने दामाद से यही प्रार्थना की वे ऐसे ख्याल अपने दिमाग में न लावें।

कुछ दिनों के बाद नईम पश्चात्ताप की मुद्रा में लौटा और उसने अपने व्यवहार के लिए सास-ससुर से क्षमा-याचना की। मिसिज़ पाशा ने अपने बच्चे की तरह उसे समझाया और शांत किया। फिर शुभ मुहूर्त में वह गुलबकावली और उसके नवजात शिशु को लेकर वापिस आ गया। एक बार फिर जीवन का वही पुराना क्रम आरम्भ हो गया। इस बार गुलबकावली की गोद में नन्हा शिशु था जिससे वह अपना मन बहला लेती थी।

कुछ महीनों के बाद पाशा के यहाँ से निमंत्रण आया जिसमें एक पारिवारिक उत्सव में गुलबकावली को बुलाया गया था। गुलबकावली ने ससुर से पूछा किन्तु उन्होंने यह कहकर सीधे नाहीं कर दी कि लेने के लिए स्वयं पाशा नहीं आये और उन्होंने एक छोटे बच्चे को भेजकर लड़की को बुलवाया है—यह हमारा अपमान है। गुलबकावली ने कहा कि काम की अधिकता से वे नहीं आ सके हैं और इसके लिए उन्होंने माफी माँगी है।

गुलबकावली ने ससुर से बहुत अनुनय-विनय की और जाने की आज्ञा माँगी किन्तु वह अपनी बात पर अड़े रहे। वे बार-बार उस घड़ी को धिक्कारते रहे जब उनके पुत्र ने उसे पत्नी रूप से ग्रहण किया। उन्होंने नईम से कहा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह गुलबकावली को घर से बाहर न जाने दे। गुलबकावली निडर बनी और उसने बिना इजाजत के ही जाने का निश्चय कर लिया। उसने संदूक में कुछ कपड़े रखे, बच्चे को उठाया और बस स्टैण्ड के लिए चल पड़ी।

कमाल को साफ नहीं दिखाई देता था इससे वे उसे जाते न देख सके, किन्तु एक पड़ोसी ने उसे देख लिया। उसने हल्ला मचाया कि गुलबकावली भाग रही है और लोग इकठ्ठा हो गये। उन्होंने उसे जाने से रोका और बच्चे को उससे छीन लिया। गुलबकावली रोते हुए घर वापस आ गयी।

घर में केवल दो ही व्यक्ति ऐसे थे जो गुलबकावली से सहानुभूति रखते थे। उनमें एक तो नईम का छोटा भाई आरिफ था जो बच्चे को बहुत प्यार करता था तथा कभी-कभी उसे खिलाता रहता था, किन्तु वह भी गुलबकावली से बहुत कम बोलता था। दूसरा उसका ननदोई था जो अपनी पत्नी से कहा करता था कि वह गुलबकावली के साथ सहानुभूति का व्यवहार रखे।

गुलबकावली अपने दुर्भाग्य पर लगातार रोती रही। उसी दिन रात ११ बजे अचानक उसके माता-पिता आ पहुँचे और गुलबकावली उन्हें देख आश्चर्य में पड़ गयी। वह रोने लगी और उसने सारा किस्सा अपने पिता को कह सुनाया। पिता ने उसे धीरज बँधाया और ईश्वर में भरोसा रखने के लिए कहा।

उसी रात गुलबकावली से कहा गया कि वह अतिथियों के लिए भोजन तैयार करे। उसी समय घर के हाल में पंचों को बुलाकर उसके व्यवहार पर चर्चा की जा रही थी। जब सब भोजन कर रहे थे, तब वह धीरे से निकलकर पिता की जीप में जाकर बैठ गयी। उसने अपने बच्चे को जकड़कर पकड़ रखा था।

इस समय फिर लोगों ने उसे देख लिया और जीप के पास इकट्ठा हो गये। नईम ने बच्चे को उससे छीन लिया। गुलबकावली की माँ ने उससे प्रार्थना की कि वह बच्चे के प्रति दया करे और उसे छोड़ दे, किन्तु उसकी बात नहीं सुनी गयी। पंचों ने फैसला किया कि गुलबकावली अपने पिता के साथ जा सकती है किन्तु वह बच्चे को नहीं ले जा सकती। पाशा ने समझा-बुझाकर लड़की को जीप में बिठाया और इस वायदे पर कि वे शीघ्र ही उसे बच्चे से मिलाने का प्रयास करेंगे उसे लेकर घर आ गये।

अब गुलबकावली के दुखी जीवन का दूसरा अध्याय आरम्भ हो गया। गुलबकावली अपने घर की चहारदीवारी के अन्दर दिन-रात रोती रहती। उसका मन किसी में नहीं लगता। यद्यपि उसके माता-पिता और घर के सभी लोग उसके साथ बहुत ही सहानुभूति का व्यवहार करते तथापि इससे उसके अभाव की पूर्ति नहीं होती। वह न ठीक से खाती-पीती और न सोती। उसका स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरने लगा। उसे कालेज में भरती कर दिया गया ताकि उसका मन पढ़ने में लग जाय और वह अपने दुःख को कम कर सके। उसने अपने पति को कई पत्र लिखे किन्तु उसे एक का भी उत्तर नहीं प्राप्त हुआ।

जब हमने लड़की के सारे कष्टों की कहानी सुनी तो हमें उसके वास्तविक दुःख का अंदाज़ हो गया। हम सबकी आँखें आँसुओं से भर आयीं। हमने उसे मदद करने का दृढ़ निश्चय किया और उसे सांत्वना व आशीर्वाद देते हुए वहाँसे बिदा ली।

जैसे ही हम घर से निकले गुलबकावली द्वार पर खड़ी हमें ऐसी दृष्टि से देखती रही मानो उसे हमारी सफलता में शंका हो। उसने पहले ही अपना निश्चय प्रगट कर दिया था कि वह उस घर में किसी कीमत पर नहीं रहेगी जहाँ उसे जीवित नरक की यातना भोगनी पड़ी है तथा यदि उसका पति उसके साथ रहने को तैयार हो तो वह शिक्षिका का कार्य कर जीवनयापन में उसकी मदद करेगी।

भारी हृदय और चिन्तित मन से हम घर लौटे। हमने यह महसूस किया कि कमाल किसी भी कीमत पर इस रिश्ते को तोड़ देना चाहता है या फिर वह तभी मानेगा जब लड़की अपना जीवन ही समाप्त कर दे।

हमने नईम को खबर भेजी कि अन्य सारी बातों के बावजूद उसकी पत्नी उसके साथ रहकर सुखी दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार है। नईम भी राजी हो गया और हमने उससे कहा कि वह साहस करके किसी से अपने बच्चे को माँग ले और अलग ही अपना घर बसाये। वह इसके लिए भी राजी हो गया। उसने वायदा किया कि जो भी दिन गुलबकावली और उसके पिता पाशा निश्चित करें वह बच्चे को उनके सामने हाजिर कर देगा।

दिन निश्चित हो गया और मैं बड़ी उत्सुकता से उसका इंतजार करने लगा। किन्तु उस दिन मुझे उस समय बड़ी निराशा हुई जब निश्चित समय पर गुलबकावली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसके पिता तो आ गये किन्तु नईम और बच्चे का कोई निशान भी नज़र नहीं आया। इसके विपरीत हमें कमाल का खत मिला कि चूँकि बच्चा अशुभ नक्षत्र में पैदा हुआ है, इस समय उसकी माता के पास जाने से वह न केवल अपने माता-पिता वरन् दादा-दादी के लिए भी कलह एवं दुर्भाग्य का कारण होगा। इस पर एक ज्योतिषी के भी हस्ताक्षर थे जो निश्चय ही कमाल के कहने से किये गये थे।

दो घंटे के बाद कमाल स्वयं मेरे घर आये। जब हम सब बैठ गये तब मैंने स्वयं उन्हें बताया कि पाशा और उनकी लड़की यहाँ क्यों आये हैं। हमने यह भी कहा कि कमाल स्वयं लड़की से मिल ले ताकि उन्हें इस बात का निश्चय हो जाय कि वह स्वेच्छा से अपने पति के साथ रहने के लिए तैयार है।

कमाल ने लड़की को बुलवाया। उसने निडरता से कमरे में प्रवेश किया। उसने झुककर अपने ससुर के पैर छुए किन्तु इस पर भी कमाल खामोश रहा और हम लोगों के आग्रह पर ही उसने बहू को आशीर्वाद दिया।

इसके बाद बातचीत शुरू हुई। शुरू में ही यह पूछने के बजाय कि क्या वह अपने पति के साथ रहना चाहती है कमाल ने गुलबकावली से प्रश्न किया कि वह छोटे से बच्चे को छोड़कर घर से क्यों भागी थी। उसने कहा कि यदि गुलबकावली को अपने परिवार से जरा भी स्नेह होता तो वह अवश्य वापिस आती और इस प्रकार आठ महीने उन्हें छोड़कर बाहर न रहती।

इस बीच गुलबकावली शान्त रही। उसने कहा कि वह अपनी इच्छा से घर से नहीं भागी थी बल्कि कमाल और उसके परिवार ने उसे घर छोड़ने के लिए बाध्य किया था।

इस समय मैंने बीच में हस्तक्षेप किया और कमाल को बताया कि इन आठ महीनों के दरम्यान गुलबकावली ने किस तरह से रोकर दिन बिताये। फिर मैंने उनसे पूछा कि नईम ने अपने वायदे के अनुसार आज बच्चे को हाजिर क्यों नहीं किया। उसने तुरन्त जवाब दिया कि नईम बीमार है और इसके लिए वह डाक्टरी सर्टिफिकेट दे सकता है। मेरे कहने पर कि मैंने तो डाक्टरी सर्टिफिकेट नहीं माँगा था, उसने बताया कि अभी उन्होंने इसे लिया नहीं है।

पाशा, जो अब तक खामोश बैठे हुए थे, अपने को और न संभाल सके। उन्होंने तेज आवाज़ में कहा कि कमाल शुरू से ही झूठ बोल रहे हैं जब कि उनकी लड़की ने अब तक एक भी बात झूठ नहीं कही। उन्होंने कमाल पर अपनी लड़की को सताने तथा उसे घर से निकाल देने के आरोप लगाये।

अपने को बचाने की गरज़ से कमाल ने लड़की से पूछा कि क्या तुम्हें इस घर में कभी मारा-पीटा गया था। इस पर गुलबकावली ने कहा कि मुझे मार-पीटकर शारीरिक दंड तो कभी नहीं दिया गया, किन्तु मानसिक दृष्टि से मुझे अत्यन्त पीड़ित किया गया और इसी ने मुझे घर से भगाया। कमाल उत्तेजित हो उठा और बोला कि वह बिलकुल झूठ बोल रही है।

गुलबकावली और अधिक बरदाश्त न कर सकी। वह सिसक-सिसककर रोने लगी। इस समय पाशा ने फिर हस्तक्षेप किया और कहा कि कमाल झूठ बोल रहे हैं, न कि उनकी लड़की।

दुख से कातर गुलबकावली चिल्ला उठी—'पिताजी, बस करिये। चलिये, घर चलें।' इतना कहते हुए वह अपने पिता के कंधे पर गिर पड़ी। पाशा ने उसे पकड़ा और शान्त किया। धीरे-धीरे वह शान्त हुई। बीच-बीच में कभी उसकी हिचकी कमरे में सुनाई दे जाती थी। हम सबकी आँखें आँसुओं से गीली हो गयी थीं।

अब मैंने हस्तक्षेप करना उचित समझा और लड़की को नीचे अपनी पत्नी के पास भेज दिया। जब वह कमरे से चली गयी तब मैंने कहा, कमाल लगातार झूठ बोल रहे हैं और मैं इसे सिद्ध कर सकता हूँ। कमाल जब इस प्रकार पकड़ में आ गये तब वे यह कहकर कि उनकी तबियत ठीक नहीं है, वहाँसे जाने लगे। किन्तु हमने उन्हें तुरन्त नहीं जाने दिया और कहा कि उन्होंने हमें इस स्थिति में डाल दिया है जिसके लिए उन्हें अफसोस होना चाहिए। अन्त में हमने पूछा कि वे बच्चे को उसकी माँ को लौटाना चाहते हैं या नहीं।

कमाल बोले, मैं बूढ़ा आदमी हूँ और मेरा एक पैर कबर में लटक रहा है। मुझे बच्चे की क्या परवाह यदि लड़का और बहू उसके साथ सुख से रहते हैं। मेरे साथ घर चलिये और बच्चे को ले आइये।

बिना एक क्षण भी बरबाद किये मैंने दस मिनिट में सब तैयारी कर ली और कमाल के साथ बस स्टैंड के लिए चल पड़ा। रास्ते में मैंने ख्याल किया कि कमाल मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचानक साथ हो लेने से कुछ अजीब सा अनुभव कर रहे थे।

बस में भी मैंने देखा कि वे अपने ही ख्यालों में डूबते-उतराते रहे। फिर वे धीमी आवाज में मुझसे कहने लगे कि मुझे उनकी जाति के नेताओं की सलाह के बगैर कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए। मैंने कहा, मैं उनका निर्णय चाहता हूँ, जाति के लोगों का नहीं। इस पर वे चुप हो गये।

जब हम घर पहुँचे नईम तब घर में ही था। वह मुझे देख आश्चर्यचकित सा रह गया। कमाल अपने दो मित्रों को ले आया और उन्हें मेरा परिचय दिया। मैंने यह स्पष्ट कर दिया कि मैं कमाल से ही बातें करना चाहता हूँ, उनके मित्रों से नहीं। उन्होंने मेरा भाव ताड़ लिया और वे उठकर जाने लगे किन्तु कमाल ने उन्हें रोक लिया। फिर वे बार-बार पुरानी बातें दुहराते रहे और बोले कि मैं बच्चे को लेने आया हूँ जब कि वास्तव में पाशा को उसे लेने के लिए आना चाहिए था।

मैंने कहा कि मैं लम्बी कहानी सुनने नहीं आया हूँ, मैं तो बच्चे को लेने आया हूँ। कमाल ने बच्चे को देने से इन्कार कर दिया और बोला कि वह उसे तभी देगा जब पाशा से उसे लिखित वचन मिल जाय और इस लिखित बयान के लिए उसे अपने वकील से सलाह लेनी होगी।

मैं बरामदे में ही लेट गया। वहीं पड़े-पड़े मैंने सुना। कमाल अपनी पत्नी से कह रहा था कि गुलबकावली बार-बार यही कहती रही कि उसे यहाँ मारा-पीटा और परेशान किया गया और इसी कारण वह यहाँ से भाग गयी।

इसे सुनकर मैं भड़क उठा और उस हाल में घुस गया जहाँ बैठकर वे बातें कर रहे थे। मैंने तीव्र स्वर में कहा कि कमाल बिलकुल झूठ बोल रहे हैं। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि सारी वारदात मेरे सामने हुई और मैं उसका गवाह हूँ। कमाल फिर धीरे से बोला कि वह झूठ नहीं बोल रहा है और उसके बाद उसने एकदम चुप्पी साध ली।

दूसरे दिन कमाल ने फिर वायदा किया कि वह वकील से सलाह लेने के बाद बच्चे को उन्हें सौंप देगा। मैंने कहा—अभी क्यों नहीं दे देते ताकि सारी झंझटों और खर्च से छुटकारा मिल जाय, किन्तु वे नहीं माने। यहाँ तक कि नईम के कहने पर कि बच्चे को दे दो, उन्होंने [illegible] न सुनी।

भारी मन और खाली हाथ मैं घर लौट आया और सोचने लगा कि कहाँ से इस झंझट में पड़ गया। पाशा और उनके मित्र मोटर स्टैंड पर मेरी राह देख रहे थे। मुझे बड़े दुःख के साथ उन्हें सूचित करना पड़ा कि मैं अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका। पाशा ने किसी भावावेश का प्रदर्शन नहीं किया। मानों वह इसके लिए पहले से ही तैयार थे। उन्होंने केवल यही कहा कि उनकी वजह से मुझे बहुत तकलीफ उठानी पड़ी, भाग्य के लिखे को कोई नहीं मेट सकता। पाशा के सज्जन व्यवहार ने मेरे मन में उनकी इज्जत दुगनी कर दी।

गुलबकावली मेरे घर के दरवाजे पर खड़ी मेरा इंतजार कर रही थी। जब उसने मेरे हाथ खाली देखे तब वह समझ गयी कि मुझे कामयाबी नहीं मिली और बिना एक शब्द भी मुँह से निकाले वह खामोश भीतर चली गयी। उसी दिन वे दोनों वापिस चले गये। जाते समय मैं गुलबकावली के चेहरे को न देख सका और मुझे बड़ा मार्मिक पीडा हुई।

करीब एक सप्ताह बाद नईम घर से वापिस आया। पहले वह मेरे मित्र से मिला और बोला कि हमसे मिलकर वह बहुत लज्जित है। उसने कहा कि वह तो चाहता था कि बच्चे को मुझे सौंप दे, किन्तु वह लाचार था। जब वह मेरे पास आया तब मैं उस पर बिगड़ा और मैंने उसे झूठ बोलने का दोषी ठहराया। वह चुपचाप सब कुछ सुनता रहा। अंत में ईश्वर को साक्षी देकर बोला कि दूसरे दिन वह अवश्य ही बच्चे को ला देगा।

दूसरे दिन नईम ने मेरे एक मित्र से आग्रह किया कि वे उसके साथ उसके ससुर के घर चलें किन्तु उसने 'नहीं' कह दिया। उसका कहना था कि नईम पर भरोसा नहीं किया जा सकता। उसने फिर वायदा किया कि दूसरे दिन वह अवश्य ही बच्चे को दे देगा। दूसरे दिन वह हमारे पास न आकर सीधे अपने ससुर के घर चला गया।

पाशा ने बिना किसी अचरज के उसका स्वागत किया और उसे घर के भीतर ले गये। पाशा की पत्नी ने उसके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया तथा उसे पीने के लिए कुछ पेय दिया। बाद में वह गुलबकावली से मिलने गया। असह्य सिर-दर्द से पीडित वह कमरे के एक कोने में पड़ी हुई थी। नईम ने उसे प्रेम से उठाया और बो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि अब उसके दुर्दिन समाप्त हो चुके हैं। वह शीघ्र ही बच्चे को उसके पास ला देगा तथा वे अलग सुख-चैन से रहेंगे। वह फिर रो पड़ी तथा फिर और धोखा न देने की भीख माँगने लगी। नईम ने गुलबकावली और उसके माता-पिता को आश्वासन दिया कि अब भय की कोई बात नहीं और वह बच्चे को अवश्य ही ले आयेगा। नईम ने इस भेंट का जिक्र हम लोगों के सामने बिलकुल नहीं किया।

इस समय तक शीतकालीन छुट्टियाँ आरम्भ हो गयी थीं। मैंने और मेरे मित्रों ने तय कर लिया था कि पाशा को कानूनी सहायता से बच्चे को प्राप्त करने की सलाह देंगे। हमने एक वकील मित्र से सलाह लेनी चाही। जिस समय हम उसके घर जा रहे थे हमने देखा कि नईम हमारे पीछे आ रहा है। उसने हमें बताया कि वह बच्चे को लाने के लिए बिलकुल तैयार है तथा उसके लिए उसने कपड़े आदि भी तैयार करवा लिये हैं।

हमें उसके शब्द सुन आश्चर्य हुआ, किन्तु हम उन पर भरोसा नहीं कर सके। उसने कहा कि हम सबको तकलीफ देने का उसे बेहद अफसोस है किन्तु वह परिस्थितियों का शिकार था। इसी समय उसने बताया कि वह अपने पिता को बिना बताये अपनी पत्नी एवं ससुर से मिलने भी गया था। वापिस लौटने पर उसने अपने पिता से सब कुछ बता दिया और वे बोले कि वह जब चाहे बच्चे को ले जाकर उसकी माँ को दे सकता है।

हमने नईम से कहा कि वह बच्चे को लेकर दूसरे दिन हमें बस स्टैंड पर मिले ताकि हम भी उसके साथ पाशा के घर तक चल सकें।

दूसरे दिन हम बस स्टैंड पहुँचे और हमने देखा कि नईम बच्चे को लेकर खड़ा है। हमें इस बात की प्रसन्नता हुई कि अंत में उसने अपना वचन पूरा किया। हम तुरन्त ही पाशा के घर के लिए रवाना हो गये।

जैसे ही हमने घर में प्रवेश किया पाशा की पत्नी आश्चर्य से चीख उठी और बच्चे को हमारी गोद से लेने के लिए दौड़ पड़ी। वह बार-बार उसका मुख चूमने लगी।

मैंने गुलबकावली को पुकारा और कहा कि देखो, हम तुम्हारे लिए क्या लाये हैं। वह कमरे में लपकी और आश्चर्य-मिश्रित आनन्दातिरेक से गद्‌गद हो गयी।

नईम ने तब बच्चे को लिया और मुस्कुराते हुए उसे अपनी पत्नी के हाथों में दे दिया। लम्बे अरसे के विरह के बाद एक बार फिर उनके मधुर मिलन का दृश्य सचमुच ही बड़ा लोमहर्षक था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैसले का इंतज़ार है

श्री निरंकुश

हस्तिनापुर के जजी में विशेष चहल पहल थी। उस मुक़दमे की सुनवायी होने जा रही थी जो भारत युद्ध के उपरान्त युधिष्ठिर और भीमसेन आदि पर चलाया गया था। भीड़ नियंत्रित करने के लिए पुलिस के साथ पी० ए० सी० भी लगी थी। वकीलों ने अन्य इजलासों में पेशी की तारीखें बढ़वा ली थीं, जिससे वे इस केस का तमाशा देख सकें। बाजार में हड़ताल की घोषणा नहीं हुई थी, फिर भी अधिकांश प्रतिष्ठान बन्द थे। मालिक और मुलाज़िम एक-सी मूड में अदालत के इर्द गिर्द मँडरा रहे थे। सरकारी दफ्तर ज़रूर खुले थे, मगर उनके कर्मचारियों ने झूठे बहाने बनाकर अवकाश ले रखा था और वे न्यायालय के भीतर डटे हुए थे। जिन लोगों के पास टेलिविज़न-सेट थे, उन्होंने पैसे लेकर सार्वजनिक दूरदर्शन की व्यवस्था कर दी थी। इक्के, ताँगे, रिक्शे, टू-सीटर, फ़ोर-सीटर, टेम्पो और खटारे, सवारी ढोते-ढोते मर गये थे। सिटी बस सर्विस का कचूमर निकल गया था। तभी ग्यारह बजे और पुकार हुई—'कोई सरकार बनाम यूधशटर वग़ैरा हाज़िर हैं।' अभियुक्तगण अपने अभिभाषकों के साथ दौड़े, पैरोकार और मुंशी बस्ता दाबकर पीछे चले। भीड़ के कारण अदालत में घुसना दूभर हुआ। बड़ी कठिनाई से आरक्षी दल उन्हें भीतर पहुँचा सका। शोरगुल कम करने को सत्र-न्यायाधीश ने शंख फूँका। उसकी ध्वनि पर जन-समुदाय शान्त हो गया। जज साहब ने लोक-अभियोक्ता से प्रश्न किया, 'सब मुलज़िमान हाज़िर हैं?' शारद्वत शर्मा बोले, 'बस एक नहीं है।' पेशकार ने गर्दन उठाकर अनुपस्थित अभियुक्त का नाम पूछा। बचाव पक्ष के मुख्य अधिवक्ता, वासुदेव यदुवंशी ने कहा, 'धरशटदमन, जो न आया है और न कभी आ सकेगा।'

'क्यों? ऐसी क्या बात है?' अदालत ने त्योरी चढ़ा कर सवाल किया।

'उसे हलाक़ कर दिया गया, यौर आनर! और क़ातिल को मेरे लायक़ दोस्त ने छिपा रखा है।' पब्लिक प्रासी-क्यूटर की ओर संकेत कर, डिफेंस कौंसिल ने कहा।

'सर, मुझे अपने स्याहफ़ाम फ्रैंड की ग़ैर पारलमानी गुफ़्तगू पर बेहद इतराज़ है।'

'इन्हें अपने अल्फ़ाज़ वापस लेना चाहिये।' सरकारी वकील बोले।

'बैरिस्टर यदबंशी छे.....ड़छाड़ करने के आदी हैं इनके वि.....ट और हचू.....मर से मानोटनी चली जाती है, वरना आप जैसे न .....सूड़िया तो दिन भर बो किया करते हैं।' चेयर ने मत व्यक्त किया।

'ओ० के० ग़रीबपरवर!' कहकर अभियोक्ता खामोश हो गये। जज साहब ने प्रस्तुत किये गये पत्रजात में धारा लेखनी से काटछाँट कर, उन्हें अहलकार की ओर सरका दिया। उसने आवाज़ में बनावट का पुट देकर पढ़ा—'यूधशटर उर्फ़ धरमराज, भीमसेन उर्फ़ बड़कादर.....तु पर इल्ज़ाम लगाया जाता है कि बतारीख़ १० नवंबर १४३२ साल क़ब्लपैदायशे ईसा मसीह, बवक्त सेहा बमुक़ाम कुरूछत्तर, इत्तफ़ाकुर्राय से, तुमने दरोनाचार्य वल्द भरदवाज, क़ौम बरहमन, साकिन कूचा दिगरकर हल्क़ा खाम, बस्ती उजाड़, को हलाक करने का इरादा किया, और बमूजिब साज़िशे मज़कूर, निहायत चुस्त चालाकी और चिड़ीमारी से, उस बुज़ुर्ग इंसान का क़त्ल कर दिया। चूँकि तुम्हारा यह फ़ेल, मजमुए ताज़ीराते हिन्द उर्फ़ भारत, दैट इज़ इण्डिया, की दफ़ात १२०-बी व ३०२ में मुत्तज़क्किर जरायम के, दर्जए-इत्तिकाब को पहुँचता हैं, लिहाज़ा मैं हुक्म देता हूँ कि मर्जिए-खुदा, फ़रिस्तबरदा माने-हाकिमेवक़्त और रूए-आईन से तुम पर इस अदालत में मुक़द्दमः चलाया जाय।'

फर्द जुर्म का आशय समझे बग़ैर मुलज़िमान बोल पड़े 'यह मिथ्याभियोग है, हम निर्दोष हैं। हमने किसी का क़त्ल नहीं किया, न किसी हत्या के षड्यंत्र में भाग लिया।' सत्र न्यायाधीश ने काग़ज़ों को टीप टापकर अभियोक्ता से आरोप की पुष्टि में साक्ष्य प्रस्तुत करने को कहा। चपरासी के गोहराने पर अर्जुन उपस्थित हुए। साक्षी-बाड़ में खड़ा करके शपथ दिलवायी गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने उसे स्वीकार नहीं किया, बल्कि वे आपसे आप कहने लगे, 'मैं सत्य बोलूँगा, सम्यक् सत्य बोलूँगा, सत्य के अतिरिक्त कुछ नहीं बोलूँगा, सत्य नारायण मेरी सहायता करें।' तदुपरान्त सरकारी वकील ने प्रश्न किया, 'आप मक़तूल को जानते थे?'

'भली प्रकार। यह मेरे गुरुप्रवर थे' अर्जुन ने उत्तर दिया।

'और मुलिज़मान में किस किस से वाक़िफ़ हैं?'

'युधिष्ठिर और भीमसेन, मेरे सहोदर हैं, अन्य स्वजन और परिचित।'

'आपने कोई वाक़या अपनी आँखों से देखा?'

'जी हाँ। घटना दिवस पर मैं पाण्डव पक्ष की ओर से युद्धरत था, और महामना द्रोणाचार्य प्रतिपक्षी कौरवों की ओर से जूझ रहे थे। मध्याह्न तक उन्होंने हमारी सेना का इतना संहार कर दिया कि विजय की सम्भावना जाती रही।'

'आपके साथ कौन था?'

'मेरा सारथी।'

'उसका नाम।'

'वासुदेव कृष्ण', अर्जुन ने जवाब दिया।

'यही हरफ़न-मौला जो मुलज़िमान की तरफ़ से पैरवी कर रहे हैं?' अभियोक्ता ने बैरिस्टर यदुवंशी की जानिब इशारा करते हुए पूछा।

'यौर आनर, इस सवाल पर मुझे एतराज़ है। न मैं गवाह हूं और न मुलज़िम। फिर मेरी निशानदेही किस लिए करायी जा रही है। अगर प्रासीक्यूशन का इरादा इस केस में मुझे भी नत्थी करने का है, तो उसे अभी से ज़ाज़ो कर दिया जाय ताकि मैं डिफ़ेंस कौंसेल के फ़रायज से दस्तबरदारी दे दूँ।' वासुदेव ने बीच में टोककर कहा।

'ग़रीब परवर, मैं ऐसे काँइया आदमी को जो नटवर-लाल कहा जाता है, अपना हमराज़ बनाकर केस की रेढ़ नहीं मारना चाहता।' शारद्वत बोले।

'यौर आनर, आपके ज़रिए मैं क़ाबिल वकीलेसरकार की शुक्रिया अदा करते हुए, यह गुज़ारिश करूँगा कि इन्हें बाबनुमा सवाल करने की इज़ाजत नहीं दी जाय।'

'नो ली·····डिंग को·····इश्चन्स, मिस्टर प्रा····· क्यूटर, एण्ड प्रो·····सीड।' अदालत ने हुक्म मादिर फ़रमाया।

'फिर क्या हुआ?' सरकारी वकील ने साक्षी से पूछा।

'हमें चिंताग्रस्त देखकर वासुदेवजी ने कहा द्रोणाचार्य के करों में शस्त्र रहते पाण्डवों का मनोरथ सफल नहीं हो सकता। कुछ ऐसा किया जाय जिससे वह अस्त्र धर कर बैठ जायँ। उपाय पूछने पर वासुदेव बोले जरद्गव का ध्यान पलटना होगा। उन्हें कोई हृदय-विदारक समाचार दिया जाय।'

'आपके कोचवान ने इतना ही कहा था या दरोनाचारया के फ़रज़न्द की मौत की फर्जी ख़बर देने का सुझाव भी दिया था?' शारद्वत ने प्रश्न किया।

'जहाँ तक स्मरण है वासुदेव ने पुत्र-वियोग की अधिसूचना निर्गत करने को कहा था।' अर्जुन ने उत्तर दिया।

'फिर क्या हुआ?'

'भीमसेन उस वार्तालाप को सुन रहे थे। उनकी रचना में विवेचनात्मक शक्ति को कुंठित करने वाले तत्त्वों का प्रयोग हुआ है। वह खिसककर आचार्य-श्री के पास पहुँचे, उनसे मुखर हुए, और लौटकर बोले कि इन्द्रवर्मा के गयंद अश्वत्थामा की हत्या होने के समाचार का प्रसारण कर आये हैं, किन्तु कौरव-सेनापति पर अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा है। उन्होंने मुझसे निवेदन किया कि तुम उस उद्घोषणा को दोहरा दो। जब मैंने उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया तब वह युधिष्ठिरजी के पास गये, और उनकी अनुनय-विनय करके उन्हें गुरुवर के पास लिवा ले गये। धर्मराज ने द्रोणाचार्य को इस ढंग से सूचित किया जिससे सन्देह हो गया था कि उनका एकमात्र पुत्र मारा गया है।'

'इस साज़िश में कौन कौन शामिल थे?'

'कठघरे में खड़े समस्त अभियुक्त।' साक्षी ने जवाब दिया।

'आपने इससे पेश्तर चीफ़ जुडीशल मजिस्ट्रेट के सामने बयान दिया था?'

'जी हाँ।'

'वह बयान यह है। इस पर अपने दस्तख़त पहचानते हैं?'

'जी हाँ।'

'इसे पढ़ लीजिये। इसमें आपने किसी इंदरवरमा के हाथी वाथी का नाम नहीं लिया है। आज पहली बार उसका ज़िक्र कर रहे हैं।' अभियोक्ता ने कहा।

अर्जुन ने ध्यानपूर्वक अभिकथन को पढ़कर उत्तर दिया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इसमें यह तथ्य सम्मिलित नहीं है, किन्तु मैंने उस पर प्रकाश डाला था। गत अवसर पर कही गयी बात की ही आवृत्ति कर रहा हूँ। नवीन समाचार नहीं दे रहा हूँ।'

'कोई वजह बतला सकते हैं कि आपकी कही गयी बात लिखी क्यों नहीं गयी ?'

'लेखक मैं नहीं था, उससे पूछा जाय जिसने मेरे वक्तव्य को लिपिबद्ध किया।'

'बयान पर आपने लिखा है कि मैंने उसे सुनकर और पढ़कर तस्दीक़ किया, फिर कातिब से क्या पूछताछ की जाय ?"

'वास्तविकता यह है कि जिस दिन मेरा परीक्षण हुआ, दण्डाधिकारी न्यायासन पर बैठे ही नहीं।' जज साहब ने बात काटते हुए पूछा, 'ह्वाट डू यू मीन बाई डं..... डाढिकाड़ी ?' इससे पूर्व कि साक्षी कोई उत्तर देता, लोक अभियोक्ता बोल पड़े, 'सर, यह मजिस्ट्रेट के लिए हिन्दी रेविड्स का दिया हुआ नाम है।' 'हारिबिल ! ऐसी बेहूदा ज़बान को ये लोग नेशनल लैं.....ग्वेज बनाने का इरादा रखते हैं ! गाड ब्लेस देम।' कहकर न्यायाधीश ने साक्षी को सम्बोधित किया 'मिस्टर विटनेस ! यौर डायलेक्ट शुड ब.....की सिम्पल। यह कोर्ट है कमानी (कामायनी) की फाउंड्री नहीं।' अर्जुन ने जवाबदेही का सिलसिला फिर से शुरू करके कहा, 'न अभियुक्तगण थे और न किसी पक्ष के अभिभाषक। उपस्थापक ने मेरी वार्त्ता सुनकर एक प्रपत्र के रिक्त स्थानों को भरा था और मुझसे अपेक्षा की थी कि मैं सूर्यास्त की वेला के समीप आऊँ, जब यदा कदा पीठासीन अधिकारी झाँकने को चले जाते हैं। मैंने वैसा ही किया। जब पुनः उपस्थित हुआ तब बिना कुछ सुनाये अथवा पढ़ाये, इस अभिलेख पर मेरे हस्ताक्षर करवा लिये गये। मैं रणविद्या का अध्येता रहा हूं। न्यायायिक प्रक्रिया का उतना साधारण ज्ञान भी नहीं रखता, जितना वैशाखनन्दन को स्वर-साधना का होता है। वृहदाकार गाण्डीव की तुलना में अंगुलिकाय लेखनी अधिक शक्तिशाली होती है, इसका साक्षात् आज भली प्रकार कर लिया है।'

'यौर आनर, अब वह स्टेज आ गयी है जब मुझे गवाह को होस्टायल क़रार देकर उससे जिरह करनी होगी।' शारद्वात बोले और अदालत की अनुमति प्राप्त कर उन्होंने पूछा, 'इंदरवरमा कौन साहब हैं ?'

'मालव नरेश।' अर्जुन ने उत्तर दिया।

'भीमसेन को उनका हाथी मिल कहाँ गया ?'

'इन्द्रवर्मा पाण्डवों के सहयोगी थे, इस कारण उनका कुंजर भी हमारे प्रयोज्य था।'

'उसे किस तुफ़ैल में मार डाला भीमसेन ने ?'

'वह उन्मत्त हो गया था।'

'उस सूरत में दुश्मन को ज्यादा नुक़सान पहुँच सकता था ?'

'पगलौट में उसने हमारे शिविर में ही उत्पात मचाना आरम्भ कर दिया था।'

'यानी आपकी बिल्ली आपसे ही म्याऊँ कर रही थी इसकी वजह क्या रातब की चोरी थी ?'

'जब चर्चा गज की हो रही थी तो मार्जार का संदर्भ अप्रासांगिक हो जाता है। रहा आहार विषयक प्रश्न, तो उसका उत्तर चतुष्पद के टहलुए से लेने का कष्ट करें।'

'छोड़िये इसे। यह बतलाइये उसके नाम की जानकारी कैसे हुई ?'

'वैसे तो बिगड़ैल की ख्याति स्वचालित होती है किन्तु भारत युद्ध में सम्मिलित समस्त हस्तियों के मस्तक पर उनके नाम तथा पद-सूचक चिह्न रंगलेपित कर दिये गये थे।'

'आप यह कहना चाहते हैं कि हाथी उसी धज में दीखते थे जिसमें आजकल के फ़ौजी अफ़सर।'

'हाँ, अन्तर केवल इतना था कि पशुओं के गणवेश में जेबें कम होती थीं।'

'ऐसा तो नहीं था कि टेस्ट मैच की जैसी कोई कामेंट्री चल रही हो जिससे पता लग जाता हो कि कब कौनसा हाथी जौहर दिखला रहा है ?'

'चल तो रही थी।'

'बहुत खूब ! जनाब तो ग्रेजुएट हैं। यह बतला सकते कि अश्वतथामा के मानी क्या होते हैं ?'

'जहाँ तक मैं समझता हूं उस जीव के, जो घोड़े की भाँति हिनहिनाता हो।'

'क्या आप यह कहना चाहते हैं कि जिस हाथी को वक़ील आपके मुलजिम भीमसेन ने हलाक़ किया था, वह घोड़े की मानिन्द आवाज़ करता था ?'

'निस्संदेह।'

'अगर ऐसी बात है तो आपके रिसाले में कुछ गदहे भी होंगे जो ऊँट की तरह बलबलाते हों।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गर्दभ-वाहिनियाँ शत्रु के अधिकार में थीं, उनकी गतिविधि से मैं अनभिज्ञ हूँ।'

'यह तो तस्लीम करेंगे कि एक जानवर दूसरे की आवाज़ की नक़ल नहीं कर सकता।'

'जी नहीं। मेरे अनुभव में आया है कि एक जीव दूसरे की भाषा का कुशलता से अनुकरण कर सकता है।'

'कोई मिसाल पेश कर सकते हैं?'

'तत्काल। देखिये न आप सब लोग आर्य होकर अनाड़ियों की बोलियों में कैसा धाराप्रवाह सम्भाषण कर रहे हैं।'

'यह तो कोर्ट लेंगुएज की पाबन्दी की वजह से है।' शारद्वत ने कहा।

'हो सकता है उस जीव के समक्ष भी इसी प्रकार की कोई विवशता रही हो?' अर्जुन ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया।

'अच्छा छोड़िये ज़ुबान के इस मसले को और यह बतलाइये कि अगर हाथी को घोड़ा कहा जाय तो वह खुश होगा या नाराज़?'

'वस्तुस्थिति का बोध तो गज समाज का प्रतिनिधि ही करा सकता है, परन्तु अनुमान तो यह है कि प्रबुद्ध होने पर वह बुरा मानेगा, और निश्चय ही एक दिन विद्रोह कर देगा।'

'अब मैं आपसे मज़ीद सवालात न करके यह कहलवाना चाहूँगा कि आप क़रीबी रिश्तेदारी की वजह से मुलज़िमान से साज़ कर गये हैं, उन्हें बचाने के वास्ते सरासर झूठ बोल रहे हैं, और हक़ीक़त यह है कि न तो इंदरवर्मा के पास अश्वतथामा नाम का कोई हाथी था, और न उसे मुलज़िम भीमसेन ने हलाक़ किया, जुमला मुलज़िमान सरकश और गिरोहबन्द हैं, ये मकतूल से रंजिश मानते थे, इन्होंने उसे जान से मार डालने की साज़िश की, और उसी के बमूजिब निहत्था करके, उसे चारों तरफ़ से घेरकर तेज़ धारदार आलात से हमला करके, क़त्ल कर दिया।' एक साँस में शारद्वत बोले।

'आप अनेक जन्म लेकर भी मुझसे ये तथ्यहीन बातें नहीं कहला सकते। मैं आपके किसी प्रस्ताव का समर्थन नहीं करता?' अर्जुन ने कठोर वाणी में कहा।

'थैंक यू। अब वकील सफ़ाई जो कुछ पूछें उसका सही जवाब देने की तक़लीफ़ गवारा करें।' कहते हुए सरकारी वकील ने बचाव पक्ष के प्रमुख अधिवक्ता वासुदेव कृष्ण की ओर संकेत किया। बैरिस्टर यदुवंशी ने साक्षी से पूछा, 'आप कितने भाई हैं?'

'पाँच।'

'सबसे बड़े कौन हैं?'

'युधिष्ठिरजी।'

'यही जो मुलज़िमान के कठघरे में खड़े हैं?'

'जी हाँ।'

'इसके बाद किसकी बारी आती है।'

'भीमसेन की, जो युधिष्ठिरजी के पीछे, मूँछ ऐंठ रहे हैं।

'आप किस नम्बर पर हैं?'

'तीसरे।'

'खुदा न करे, अगर इस मुकदमे में आपके बिरादरान मज़कूर सज़ा पा जावें, तो जायदाद का क़ानूनी वारिस कौन होगा?'

'मैं।'

'क्या यह सही है कि आपकी एक बीबी का नाम मुसम्मात द्रौपदी है, जिसे आपने तनहा, बज़ोर तीरौकमान हासिल किया था, लेकिन आपके भाइयों ने भी उससे ज़बरन शादी कर ली?'

'जी हाँ।'

'क्या यह सही है कि आपने मेरी बहन सौभद्रा को भगाया, जिस पर आपकी मेरे भाई चौधरी बलराम सिंह यादव से तकरार हुई?' डीफेंस कौंसेल के यह सवाल करते ही सरकारी वकील अपने आसन से उठ खड़े हुए और बोले 'सर! यह नहीं पूछा जा सकता, क्योंकि बैरिस्टर यदुवंशी के ख़िलाफ़ समाअत नहीं हो रही है।' जज साहब ने कहा, 'आब्जेक्शन सस्टेंड।' और वकीले सफाई ने अगला प्रश्न किया, 'बहुत सी बेरूनी ताक़तों के साथ आपके ताल्लुक़ात हैं?'

'जी हाँ।'

'यह वही सल्तनतें हैं जिनके हुक्मराँ मुल्कगीरी की हबस में दुनिया के अवाम को गुलाम बनाना चाहते हैं?'

'चक्रवर्ती सम्राट् की इच्छा किसको नहीं होती!'

'क्या इस जवाब से मैं यह समझूँ कि आप किसी रिएक्शनरी इंटरनेशनल स्पाई एजेंसी की एक्टिव लिस्ट पर हैं, और देश में अराजकता फैलाने का इरादा रखते हैं?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हरे राम ! हरे कृष्ण ! ये कैसे हृदयविदारक शब्द सुन रहा हूँ !' अर्जुन बोले।

'शुक्रिया। अब आप बयान पर दस्तख़त फ़रमाकर तशरीफ़ ले जा सकते हैं।' बचाव पक्ष के अभिवक्ता, ऐसा कहकर कुर्सी पर बैठ गये। सबूत का दूसरा गवाह था उलूक, जिसकी चेष्टा पर जन समुदाय को हँसी आ गयी। मूल परीक्षण में उसने स्वीकार किया—'घटनादिवस पर मैं द्रोणाचार्य का रथ हाँकता था, भीम और युधिष्ठिर रोनी सूरत बनाकर आचार्य से कहने लगे कि आपका पुत्र द्रोणि बधिक के हाथों परलोक सिधार गया, जिसका हमें भारी खेद है। गुरुजी स्तब्ध रह गये। हथियार पटककर वह रथ से नीचे उतर आये, और अभियुक्तों के साथ वीरगति-प्राप्त संतान को देखने चल पड़े। थोड़ा आगे बढ़ने पर उन्हें अभियुक्तों ने घेर लिया और निर्दयता से समाप्त कर दिया। तब मैं रथ दौड़ाकर आचार्य के पुत्र के पास पहुँचा, उन्हें बिठाकर शव-स्थल पर लाया।' जिरह में साक्षी ने अंगीकार किया कि मैं अपने स्थान पर खड़ा-खड़ा तमाशा देखता रहा, और वहाँसे तब हिला जब मुलज़िमान क़त्ल करके भाग चुके थे। मुझे रात से पहले दूर या पास का बिल्कुल नहीं दिखायी देता, मैं बहरा हूँ तथा बकुए के वक्त घमासान युद्ध के कारण कान पड़ी आवाज़ सुनायी नहीं देती थी। बड़ी अदा के साथ उसने तस्लीम किया कि तीन दिन पूर्व मुझे शालिहोत्र (वेटरनरी सर्जन) के पद पर प्रोन्नत कर दिया गया है।

अगले गवाह को तत्काल पेश करने का साहस नहीं हुआ, क्योंकि न्यायाधीश आसन से उचक रहे थे। उभय पक्ष के अभिभाषकों ने सहमत होकर प्रस्ताव किया कि अदालत लंच के वास्ते उठ जाय, और हम उसके लौटकर रौनक़अफ़रोज़ होने तक, मिल-जुलकर, मरणोपरान्त-चिकित्सा-विशारद तथा सभी फ़ार्मल विटनेसेज़ के बयान, क़लम बन्द करवा दें। जज साहब ने संकल्प को यह कहकर स्वीकार कर लिया कि इस क़िस्म की सहूलियत दिये बग़ैर मुक़दमे जल्दी फैसल नहीं हो सकते। उनके चैम्बर में दाखिल हो जाने पर, पेशकार ने समोसा-चाय मँगवाया और डायस के ऊपर बैठकर वकीले सरकार, वकीले सफ़ाई और उनके चेलों-चपाटों ने नाश्ता-पानी किया। पब्लिक इस भय से कि बाहर निकलने पर हमारी जगह छिन जायगी, अपनी सीटों पर जमी रही। कुछ मूँगफली, सिंघाड़े, चना कुरमुरा और दाल सेव बेचने वाले अदालत में घुस आये। उनकी देखादेखी केले और अमरूद फ़रोख़्त करने वाले भी टपक पड़े। लोग खाने की चीज़ों पर ऐसे टूटे जैसे कालभैरव का रोट लूट रहे हों। बातों ही बातों में खोमचे खाली हो गये और फेरी वाले यह कहते हुए चले गये कि भगवान् करे इजलासों में ऐसी ही भीड़भाड़ रहा करे जिससे हमारी ग़रीबी दूर हो सके। इसी अन्तराल में कई वकीलों ने बिना अर्ज़ी लगाये मिसिलों का मुआयना कर लिया, और मुंशियों ने कच्ची नक़लें टीप लीं। पेशकार के मुँह से कभी-कभी यह ज़रूर निकल जाता था कि अब दो रुपल्ली से काम नहीं चलेगा, ज़रा महँगाई की तरफ़ भी तो देखा करो। अभियोक्ता और बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने सहयोग के साथ फ़ालतू-फंड के कई साक्षियों के अभिकथन लिखवा दिये। दो घंटे बाद जब सत्र न्यायाधीश महोदय तख़्ते-ख़स्ता पर फिर से तशीन हुए तब पीक पर पीक किये जा रहे थे, जो यह ज़ाहिर करता था कि पान के साथ तम्बाकू ज्यादा फाँक गये हैं। सुनवाई अनुसंधान-कर्त्ता, अज़ीज़दूलहा खाँ की गवाही से शुरू हुई।

'आपने इस मुक़दमे की तफ़तीश की ?' सरकारी वकील ने पूछा।

'जी हाँ, मौक़ा मुआयना किया, नक़शा नज़री बनाया, जिसमें खसरा दर्ज है।'

अभियोक्ता ने काग़जों पर एक्ज़हीबिट डालते हुए अगला प्रश्न किया, "जाय बकुआ से खून आलूदा मिट्टी के नमूने लिये ? उन्हें गवाहों के सामने सर्वेमुहर किया और जाँच के वास्ते सीरालोजिस्ट के पास भेजा ?'

'जी हाँ' साक्षी ने उत्तर दिया।

'और उस मुक़ाम पर गये जहाँ मुलज़िम भीससेन के हाथों किसी हाथी के मारे जाने की बात कही गयी थी ?'

'जी हाँ। वहाँ की मिट्टी के नमूने लिये, उन्हें गवाहों के सामने मुहरबंद किया और जाँच के लिए मवेशी डाक्टर के पास रवाना किया।'

'डाक्टर ने खून के बारे में क्या राय दी ?'

'खून हाथी का नहीं था।'

'और उस खून की जाँच से क्या पता चला जो महलूक़ दरोनाचारया की लाश के पास से इकट्ठा किया गया था ?'

'वह इसान का था।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आपने गवाहों से पूछताछ की ? किसी ने मुलज़िम भीमसेन के हाथों किसी हाथी के मारे जाने की बात कही ?'

'मैंने गवाहों के बयानात लिये, लेकिन किसी ने नहीं बताया कि मुलज़िम भीम ने किसी हाथी को मारा।'

'आपने मुलज़िमान को गिरफ़्तार किया ? क्या यही वे लोग हैं जो अदालत में हाज़िर हैं ?'

"जी हाँ।"

'थाने पर रपट इब्तदाई किसने लिखायी थी ?'

'दिरोनी ने।'

"वह आपको मिला ?"

'जी नहीं। धरशटदमन के क़त्ल के सिलसिले में फ़रार है।'

'उसके रपट लिखाते वक्त आप थाने पर मौजूद थे ?'

'जी नहीं। मैं कौरों पांडों के बीच खेले जाने वाले टेस्ट मेच को देखने के लिए आये हुए वी० आई० पियों० के इंतज़ामात की देखभाल में, जनाब कप्तान साहब बहादुर के हुक्म से मामूर था।'

'बाद तफ़्तीश आपने मुलज़िमान के ख़िलाफ़ चार्जशीट दी ?'

'जी हाँ।'

'मुलज़िमान सज़ायाफ़्ता साबिक़ हैं ?'

'अभी तक इल्म नहीं हुआ है। थानों को गश्ती जारी कर रखी है।'

साक्षी के प्रतिपरीक्षण में वासुदेव ने प्रश्न किया, 'आप किसके कहने से उस जगह पहुँच गये जहाँ से आपने खून आलूदा मिट्टी के नमूने लेकर वेटरनरी सर्जन के पास भेजे ?'

'खुदबखुद चला गया था।' अज़ीज़ दूल्हा ख़ाँ ने जवाब दिया।

'कोई इल्हाम हुआ था आपको ?'

'जी नहीं। मुलज़िम भीम ने कहा था।'

'पब्लिक का कोई गवाह साथ में लिया ?'

'जी नहीं। मुलज़िम की सरकशी के ख़ौफ़ से कोई तैयार नहीं हुआ।'

'आपने महलूक हाथी के मालिक और महावत से मुलाक़ात की ?'

'जी नहीं। ज़रूरत नहीं समझी।'

'आपने तस्वीर के अलावा भी हाथी देखा है ?'

'जी हाँ।'

'ज़िंदा या मुर्दा।'

'ज़िंदा।'

'इसका मतलब यह हुआ कि आप मरे हुए हाथी की शनाख़्त नहीं कर सकेंगे।'

'आप बजा फ़रमाते हैं।'

'अब यह बता दीजिये कि मुद्दई ने रपट इब्तदाई में अपना हुलिया क्या लिखाया था ?'

'दिरोनी वल्द दरोनाचारया।'

'दिरोनी का मतलब समझते हैं आप ?'

'बखूबी। वह शख़्स जो दरोनाचारया का फ़रज़न्द हो।'

'इस सूरत में उसकी वल्दियत क्यों लिखी गयी ?'

'क्यों का जवाब मुंशीजी दे सकते हैं। रपट मुरत्तिब होते वक़्त मैं मौजूद होता तो ऐसी ग़लती नहीं हो सकती थी।'

'आप कौन-कौन सी ज़ुबानें जानते हैं ?'

'उर्दू मेरी मादरी, फ़ारसी पिदरी और अंग्रेजी फ़ौजी ज़ुबान है।'

'कुछ हिन्दी-विन्दी में भी दख़ल रखते हैं ?'

'वाजबी सा।'

'दरोनाचारया की अक़्ल के सरमाये के बारे में आपकी जानकारी क्या है ?'

'कुछ नहीं, क्योंकि थाने पर उनकी आमद रफ़्त नहीं होती थी। अलबत्ता शोहरत इस बात की रही है कि वह बेहद अक़्लमंद थे।'

'देखिये हमारा कहना है कि रपट लिखाने वाले ने अपना नाम अशवतथामा और बाप का नाम दरोनाचारया बतलाया था, लेकिन आपके थाने के कातिब ने उसे दिरोनी वल्द दरोनाचारया लिखा।'

'हो सकता है। मुंशी लोग इस क़िस्म की हरकतें करने के आदी हो चुके हैं। आयंदा के लिए तम्बीह कर दी जायगी।'

'आँजहानी दरोनाचारया की बवक़्त मौत उम्र क्या रही होगी ?'

'आटप्सी करनेवाले डाक्टर ने सौ से ऊपर का अंदाज़ किया है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आपके तजुर्बे से इतने उम्ररसीदा आदमी की सुनने की क़ुव्वत कैसी होती है ?'

'निहायत गयी गुज़री और दरोनाचारया तो बिल्कुल फूंस हो चुके थे।'

'आप बुरा न मानें तो चन्द सवालात और कर लूं।'

'शौक से कीजिये। मैं तो जवाब देने के लिए ही खड़ा हूँ।'

'शुक्रिया। देखिये खुदा न करे, आपके घर से ख़बर आये कि आपकी बेगम साहिबा को किसी भारी-भरकम भैंस ने सींग मारकर गिरा दिया है। उस इत्तिला के मिलने पर जनाब क्या करेंगे ?'

'भागूंगा।'

'इस बयान को अधूरा छोड़कर।'

'और नहीं तो क्या !'

'और क्या करेंगे ?'

'उस भैंस को हलाल किये बिना नहीं छोड़ूंगा।'

'आपका यह फ़ेल ग़ैर मामूली तो नहीं होगा ?'

'क्या बात करते हैं आप ! मेरी जगह अगर कोई गदहा भी होगा तो इक्ज़ैक्टली इसी ढंग से बीहेव करेगा।'

'थैंक यू मिस्टर ख़ान। अब यह बतला दीजिये कि वह रास्ता जिस पर दरोनाचारया का पैदल जाना कहा जाता है, कितना चौड़ा होगा ?'

'कम से कम चालीस फ़िट।'

'उससे होकर रथ गुजर सकता था ?'

'एक नहीं, एक साथ दो दो।'

'दरोनाचारया का क़त्ल किसने किया ?'

'धरशटदमन के साथ मुलज़िमान हाजिर अदालत ने।'

'इन सब ने वार किये ?'

'जी हाँ, चारों तरफ से घेरकर मारा।'

'उस वक़्त जंग बंद कर दी गयी थी ?'

'जी नहीं, वह जारी थी।'

'आपने वे हथियार बरामद करने की कोशिश की जिनका दरोनाचारया के क़त्ल में इस्तेमाल हुआ था ?'

'जी हाँ, पर वे दस्तयाब नहीं हुए।'

'अगर मिल जाते तो क्या करते ?'

'शहादत में पेश करता।'

'लगता है अब आपका भेजा खाली हो गया है। बयान पर दस्तखत कीजिए और भागिये।' कहकर बैरिस्टर यदुवंशी ने आई० ओ० की जिरह समाप्त कर दी। सफ़ाई के अभियुक्तों के लिए अभिकथन और अगला दिन मुकर्र हुआ।

दूसरे रोज मुलज़िमान के बयान तितम्मा लिखे गये जिनमें उन्होंने सफ़ाई देने से इनकार कर दिया। अदालत ने बहस सुननी चाही। सरकारी वकील शारद्वत शर्मा ने आरम्भ किया,

'मे इट प्लीज़ यौर आनर ! यह मुक़द्दमः एक ऐसे बुज़ुर्ग और पाकदामन इंसान के बहिशयाना क़त्ल का है, जिसकी मिसाल जरायम की तारीख़ में मिलना मुश्किल है। क़ातिलान वे एहसानफ़रामोश अफ़राद हैं जो मुद्दत तक मक़तूल की शागिर्दी में रहे, और जिन्होंने बिला किसी एवज़ के उस्ताद मरहूम से इल्मी और फ़नी तरबियत हासिल की। जैसा कि हज़ूर के तजुर्बे में आ चुका होगा, हर क़त्ल के पीछे एक ज़बरदस्त मक़सद छिपा होता है। चुनांचे सबसे पहले मैं इस मर्डर के मोटिव पर रोशनी डालूंगा। इस बात से मेरे लायक़ दोस्त भी इन्कार नहीं कर सकते कि मह्लूक़ दरोनाचारया ज़ात के बरहमन थे। मुझे निहायत अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि इस मुल्क में बरहमनों को ज़ेर करने की तहरीक अर्सए दराज़ से चली आ रही है। अल्लामा परशराम, शम्सुल-उलमा बसीसठ और आलमगीर रावन जैसी मुमताज़ हस्तियों को ज़िन्दगी भर छतरियों ने परेशान किया। दरोनाचारया बरहमन ख़ान्दान में पैदा होकर अपने ज़माने के सबसे बड़े तीरंदाज़ बन जायें और कुव्वते बाज़ू से दुरपद की अमलतनत पर क़ब्ज़ा कर लें, यह छतरियों को गवारा नहीं हो सका। धरशटदमन अपने बाप की शिकस्त का बदला लेना चाहता था, यूधशटर को ताजो-तख़त की तमन्ना के साथ उसके लिए लाहक़ हर ख़तरे को दूर करने की फ़िक्र थी, पाण्डु की बकिया औलाद ऐशो इशरत के सामान की जुस्तजू करती थी। लिहाज़ा इन सबने मिलकर अचारया को ख़त्म करने की साज़िश की। वह बेचारे ज़ईफ़ होकर भी हक़ और इंसाफ़ की हिमायत के लिए निहायत मुस्तैदी और कामयाबी से जंग कर रहे थे। मुलज़िमान ने समझ लिया था कि उन पर फ़तह पाना नामुमकिन है। इन्होंने जाकर उनको झूठी इत्तिला दी कि आपका लौता बेटा शहीद हो गया है। ख़बर पाकर वह सकते आ गये। उन्होंने हथियार रख दिये। सवारी से उतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनसे उस मुक़ाम पर ले चलने को कहा जहाँ उनके नूरे चश्म की लाश पड़ी हुई थी। ये लोग उन्हें ऐसे रास्ते से ले गये जहाँ उन पर वार किया जा सकता था। चन्द क़दम चलने के बाद इन सबने उन्हें चारों तरफ़ से घेर लिया और एक साथ धावा बोल दिया। एक निहत्था इंसान इतने सारे दरिन्दों से कैसे पेश पा सकता। नतीजा यह हुआ कि वह क़त्ल कर दिये गये।

यह वाक़या इस ढंग से हुआ इसका सबसे बड़ा सबूत है मुलज़िमान हाज़िर अदालत के नज़दीकी रिश्तेदार अरजन का इस्तग़ासे की ताईद में बयान देने के लिए हाज़िर होना। सफ़ाई के वकीले-आला जिरह के हुनर में अपना सानी नहीं रखते। उन्होंने बहुत सर मारा मगर वे अरजन की शहादत को कमज़ोर नहीं कर सके। गवाह ने जो दो एक बातें बिना सर-पैर की कह दी हैं, वे उसके घबरा जाने के सबब से हैं। सबूत की शहादत में कहीं कोई इख़्तलाफ़ या बनावट नहीं है। उस पर ग़ौर करने से वाक़यात की एक एक कड़ी नुमायाँ हो जाती है। मुलज़िमान का जुर्म बिला शको-सुबह साबित हो चुका है। मैं अदालत से निहायत अदब के साथ गुज़ारिश करूँगा कि वह इन सबको सख़्त से सख़्त सज़ा दिये जाने का हुक्म सादिर फ़रमाये। थैंक यू, यौर आनर!'

बैरिस्टर यदुवंशी ने अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा, "जनाबेआली, वकीले सरकार ने बहस करते वक़्त वाक़यात के मुक़ाबले जज़्बात से ज़्यादा काम लिया है, जो मुनासिब न होते हुए भी क़ाबिले क़द्र है, क्योंकि वह मरहूम दरोनाचारया के ख़ास सालाए नामवर हैं। शायद इसीलिए उन्होंने रेकर्ड से बाहर जाकर भी बहुत कुछ कह दिया है। मेरे लायक़ दोस्त का यह फ़रमाना कि इस मुल्क में छतरी बरहमनों के साथ ज़्यादती करते आये हैं सरासर ग़लत और बेबुनियाद है, बल्कि हक़ीक़त यह है कि बरहमन साहबान की आज भी इज़्ज़त ही नहीं, इबादत तक की जाती है। अगर यह कहा जाय कि परसराम जेनोसाइड की लानत के मूजिद, बसीसठ नस्ली इम्तयाज़ के हामी, और रावन अख़लाकी तमद्दुन के दुश्मन थे, तो मुबालग़ा-आमेज़ी न होगी। नारद और दुरबासा की बेहूदा हरकतों से कितने शाही घराने तहस नहस हो गये, इसकी शुमार करना आसान नहीं। इन लोगों से निबटने के लिऐ छतरियों ने क़ौमी दिफ़ा के जो इंतज़ामात किये, उन्हें कन्डेम नहीं किया जा सकता। दरोनाचारया एक मुदम्मिग़ इंसान थे। उन्होंने मामूली से फ़ेल पर, जो हर किसी से हो सकता है, दुरपद से आधी जागीर तक़सीम करा ली। अस्लियत यह है कि अगर मुलज़िमान हाज़िर अदालत उनके मददगार न होते तो वह हरगिज़ फ़तहयाबी हासिल नहीं कर सकते थे।

मोहतरिम प्रासीक्यूटर ने हादसे को क़त्ल का वाक़या बतलाकर, उसकी बिना पर रोशनी डाली है। अव्वल तो दरोनाचारया का क़त्ल हुआ ही नहीं, और दोयम यह कि क़त्ल का जो मक़सद बयान किया गया है वह अक़्ल से परे है। डाक्टर की शहादत से वाज़े हो चुका है कि महलूक बहुत उम्ररसीदा था, उसके जिस्म पर मौत से पहले के सारे ज़ख़्म तीर से पहुँचाये गये थे, कांते, बल्लम और भाले की ज़रबात मरने के बाद की थीं, और सर तलवार से क़लम किया गया था। ज़ाहिर है लाश की यह कैफ़ियत उस सूरत में नहीं हो सकती जब किसी को बहुत से आदमियों ने घेरकर नज़दीक से मारा हो, बल्कि ऐसी शक्ल जंग में खेत रहे इंसान की होती है।

सबूत ने अरजन की गवाही पर बड़ा ज़ोर दिया है जो शुरू से एक चालाक और खुदग़र्ज़ आदमी रहा। अगर ऐसा न होता तो वह एकलवया का अँगूठा न कटवा देता, भाईबन्दों की जानिब से इस मुक़दमे की पैरवी करता, और जिरह में यह तस्लीम नहीं करता कि मुलज़िमान की सज़ायाबी पर जायदाद मुझे मिलेगी। उसकी मक्कारी का इज़हार इस बात से हो जाता है कि दरोनाचारया के क़त्ल की साज़िश से बाख़बर होकर भी वह उसे नाकामयाब बनाने की कोशिश नहीं करता। वह कितना सफ़ेद झूठ बोल सकता है, इसका अंदाज़ उस तोहमत से हो सकता है जो उसने चीफ़ जुडीशल मजिस्ट्रेट पर अपने बयान के सिलसिले में लगाया है। बक़ौल उसके अगर दरोनाचारया को फ़रेब से हलाक करने की कोई साज़िश मुकम्मिल हुई थी, जिसकी उसे जानकारी थी, तो उसका उसमें शरीक न होना इस ख़याल की ताईद करता है कि वह चाहता था कि मेरे बिरादरान अपने ही बिछाये जाल में फँसकर मारे जायँ, और मैं तनहा गुलछर्रे उड़ाने के लिए ज़िंदा रहूँ।

अब ज़रा उस ड्रामे पर नज़रसानी की जाय जिसके बमूजिब दरोनाचारया को उनके बेटे की मौत की ख़बर दी गयी है। सवाल इस ख़बर की इतना मिलने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंसान को बेहद ग़मो-गुस्सा सवार होता है, और वह इंतक़ाम की आग में जलने लगता है, न कि ख़ामोश व ख़ायफ़ होकर बैठ जाय। इसी क़िस्म का एक वाक़या कुछ दिन पहले हो चुका था, जब अरजन ने अपने फ़रज़ंद अभमन्यू के शहीद होने की जानकारी मिलने पर उसके क़ातिल जयदरथ को मग़रिब से पेश्तर हलाक कर देने का अहद किया था। समझ में नहीं आता कि इस प्रीसीडेन्ट की मौजूदगी में दरोनाचारया के साथ ऐसा खिलवाड़ क्योंकर किया गया। शहादत में यह चीज़ कहीं आयी नहीं है कि मुलज़िमान का दिमाग़ ख़राब हो चुका था। इसी मुद्दे पर सबूत के गवाह उलूक का बयान भी क़ाबिले ग़ौर है, जिसमें उसने कहा है कि बेटे की मौत की इत्तला पाकर दरोनाचारया ने हथियार टेक दिये और सवारी छोड़कर वह पैदल चल पड़े। कोई भी समझदार इंसान उस सूरतेहाल में न सिर्फ़ मारकाट की रफ़्तार बढ़ा देता, बल्कि सवारी को तेज़ी से दौड़ाकर उस मुक़ाम पर पहुँचने की कोशिश करता जहाँ हादसे का होना बतलाया गया था। तफ़तीश-कुनिन्दा की गवाही मेरे इस नज़रिये की सौ फ़ीसदी ताईद करती है। उलूक साहब ने यह भी फ़रमाया है कि मुझे शब से पेश्तर दिखाई नहीं देता और मैदाने जंग में इतना शोर-गुल हो रहा था कि बातचीत सुनाई नहीं दे सकती थी। इतनी बड़ी लाचारी के वजूद में, उनकी देखी और सुनी बातों पर किस तरह यक़ीन किया जाय, मैं, इस मुंसिफ़मिजाज़ अदालत के फ़ैसले पर छोड़े देता हूँ।

थाने पर रपट दिरोनी वल्द दरोनाचारया के नाम से लिखायी गयी है। आई० ओ० ने यह तस्लीम कर लिया है कि मुस्तग़ीस के नाम में सरासर नुक़्स है और ग़ालिबन उसकी वजह मुंशी की बेजा मदाखलत है। हमारा कहना है दिरोनी के नाम से रपट लिखाने का सवाल ही नहीं उठता था। अगर कभी कोई इत्तला दर्ज करायी जाती तो वह अशवतथामा के नाम से होती। अशवतथामा का नाम जानबूझकर इसलिये नहीं रखा गया कि उसी नाम का एक हाथी मुलज़िम भीमसेन के हाथों मारा जा चुका था। सरकारी वकील ने अरजन से जिरह करके यह दिखलाने की नाकामयाब कोशिश की है कि उस नाम का कोई हाथी हो ही नहीं सकता। आदमियों के नामों को देवताओं पर, और जानवरों के नाम आदमियों पर रखने का रिवाज बहुत पुराना है। इनदर वरमा ने भी अपने हाथी का नाम अशवतथामा के ऊपर रख लिया हो तो इसमें ताज्जुब की बात नहीं होनी चाहिए। हाथी हिनहिना नहीं सकता, इस मसले को कुरादने की बेकार तकलीफ़ की गयी है। दुनिया जानती है हंस मानसरोअर में रहता है जहाँ मोती नहीं होते और न दूध मिलता है। फिर भी हंस के बारे में रिवायत है कि वह मोती चुगता है और दूध को पानी से अलहदा कर देता है। मेरे लायक़ दोस्त बतलायें कि वह इस बात पर यक़ीन करते आये हैं या नहीं। इसी तरह गूलर और चंदन में फूल नहीं लगते—यह सबने मान रखा है जब कि साइंसी तजुर्बात बतलाते हैं कि दोनों फूलते हैं। जब इतनी सारी बातें इंसानी क़यास के खिलाफ़ हो सकती हैं तब एक इनदर वर्मा के हाथी ने हिनहिनाना सीख कर कौन-सा ग़ज़ब ढा दिया।

हमें क्या ज़रूरत थी जो दरोनाचारया का क़त्ल करते, जब कि हम इतने ताक़तवर थे जो उन जैसे दस-बीस बहादुरों को मैदाने जंग में हरा सकते थे। हमारी क़ुव्वत का इसी से अंदाज़ा किया जा सकता है कि हमने तमाम दुश्मनों को ज़ेर कर दिया। दरअसल यह फ़र्ज़ी मुक़दमा चलाया ही खिसियाकर गया है। हाकिमे वक़्त का नामलेवा, पानीदेवा बाक़ी नहीं रहा है। सल्तनत मुलज़िमान के हाथ आनी थी। उससे उन्हें दूर रखने को अरजन से साज़बाज़ करके यह झूठा इल्ज़ाम लगाया गया है।

मैं नहीं जानता हूँ कि सबूत की जुमला शहादत की धज्जियाँ उड़ाने में कहाँ तक कामयाब हो सका हूँ, लेकिन मेरी नज़र में मुलज़िमान को क़सूरवार ठहराने की एक भी चीज़ बाक़ी नहीं रह गयी है। इस सूरत में मैं अदालत से बड़ी आजिज़ी से दरख़्वास्त करूँगा कि वह सारे मुलज़िमान को बाइज़्ज़त रिहा किये जाने के अहकाम जारी करे और मैलीशस प्रासीक्यूशन के लिए ज़ाब्ते की कार्रवाई अमल में लाये। थैंक यू। वेरी मच।"

जवाब में शारद्वत ने खड़े होकर कहा, "ग़रीब परवर, अगर मैं दरोनाचारया का साला हूँ तो वासदेव किशन मुलज़िमान के साले होने के साथ उनके ममेरे भाई भी हैं। जहाँ तक अरजन की शख़्सियत पर किये गये हमले का सवाल है, मैं इतना ही अर्ज़ कर सकता हूँ कि मुल्क का तख़्त ख़ाली नहीं पड़ा है, और इस बात के कोई आसार नहीं दीखते कि मौजूदा हुक्मराँ, अरजन को अपना वारिस

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत

श्री रवीन्द्र 'अनघ'

टेसू के फूल खिले, धरती गदरायी है,
वासन्ती ऋतु आयी, महकी अमराई है।
तरु-तरु पर, वन-वन में पीत वर्ण छाया है;
कण-कण में पीत रश्मि लेती अँगड़ाई है।

धूप भरा नभ का तन, पीत हास विहँस रहा,
घन शिशु है खेल रहें, मलय बास बरस रहा,
हल्के से झोंकों से वायु धरा दुलराती,
पंखों पर ज्योति मान पक्षि पुंज हरष रहा।
चहुँ दिशि में हासभरा रश्मि रास लहराया;
आकाशी माया की जागी तरुणाई है।
टेसू के फूल खिले.....

धरती के आनन पर यौवन-रस झलक रहा,
सरसों के खेतों में पीत ज्वार बहक रहा;
भिन्न-भिन्न रंगों से, प्रकृति प्राण नहलाती,
सुषमा का सागर सा अनजग में लहक रहा।
प्राणों के नभ में फिर इन्द्रधनुष रंग छलके;
रंगों की छवि-माया मन में मुसकाई है।
टेसू के फूल खिले..... .....

अन्तर में कुहुक उठे कोयल के मनसिज स्वर;
प्राणों में जाग उठे रति के अनुरोध प्रखर
दूर किसी वीणा सा गूंज उठा मधु-गुंजन,
अनजाने, भावों में जागी है काम लहर।
रग-रग में, तन मन में मदरिम प्रश्वास बसे
'कनक छरी' रश्मि अंग-अंग में समाई है।
टेसू के फूल खिले..... .....

मुक़र्रर करने जा रहे हैं। दरोनाचारया के क़त्ल की साज़िश में अरजन का हिमायत न करना उसकी ईमानदारी मिसाल पेश करता है, न कि बददयानती की। दरोनाचारया ने हथियार इसलिए रख दिये थे कि उन्हें अपने बेटे की सूरत देखने की उतावली थी। सवारी का इस्तेमाल उन्होंने दो वजह से नहीं किया। पहली यह कि वह सरकारी थी और जर्नी प्राइवेट होना था। दूसरी बात यह कि अगर वह उस सवारी को मैदाने जंग से कहीं और ले जाते तो अफ़वाह फैल जाती कि सिपहसालार ज़ेर होकर भाग खड़े हुए हैं। इसके अलावा मातमपुर्सी में सवारी पर चढ़कर जाया नहीं जाता है। उलूक को इसी वास्ते अपनी जगह पर जमे रहने की हिदायत की गयी थी। उसके देखने और सुनने से माजूर होने का सवाल नहीं उठता, क्योंकि वह बाइनाक्यूलर्स और हेड फ़ोन लगाये हुए था। मेरी राय नाक़िस में सबूत अपने फ़रायज़ को बखूबी निभा सका है, और उसकी तरफ़ से पेश की गयी इस दलील को मानने में कोई उज्र नहीं होना चाहिए कि मुलज़िमान सख्त सज़ा के हक़दार हैं। दैट्स आल आई हैव टु से इन रिप्लाई।"

इससे पूर्व कि न्यायाधीश उलझे हुए विचारणीय विन्दुओं पर उभय पक्षों के विद्वान् अभिभाषकों की व्याख्या आमंत्रित करते, उसे सुनते और अभिनिर्णय की तिथि निश्चित करते स्वप्नदृष्टा की नींद टूट गयी और वह हड़-बड़ाकर उठ बैठा। तब से उसने अनेक बार प्रयत्न किया, बड़ी मात्रा में नींद की गोलियाँ खाकर भी, कि शेष कार-वाई का साक्षात कर ले, परंतु दुर्भाग्य से ऐसा न हो सका। देखिये इतना ओल्ड केस कब तक पेन्डिंग रहता है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनोखे संस्मरण

प्रतीक्षा कराने के लिए उपालंभ

स्व० श्री रामनारायण चतुर्वेदी कुलपहाड़ (जिला हमीरपुर) में तहसीलदार थे। वे हास्यावतार पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के रिश्ते में दूर के भाई लगते थे और मिर्जापुर के रहने वाले थे। स्वयं अच्छे कवि और काव्यरसिक होने के कारण वे जहाँ जाते वहाँ के कवियों से उनका परिचय हो जाता। उन्होंने अनेक कविताएँ रचीं और मिल्टन के 'कोमस' नामक काव्य के एक बड़े अंश का अनुवाद किया। वे व्रजभाषा और खड़ीबोली, दोनों में कविता करते थे। अवकाश प्राप्त करने के बाद वे प्रयाग में रहने लगे और कई वर्ष हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के प्रचार-मंत्री रहे। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख और कविताएँ प्रकाशित हुईं। 'प्रयाग समाचार' के स्वामी स्व० राजवैद्य पंडित जगन्नाथ शर्मा के वे बड़े मित्र थे और बहुधा बिना नाम दिये उसमें लिखा करते थे। कुलपहाड़ में उन दिनों एक स्थानीय कवि थे जिनका नाम श्री उमेश द्विवेदी था। उनसे चतुर्वेदीजी की घनिष्ठता हो गयी और वे उनसे मिलने बहुधा जाते थे। एक बार जब उमेशजी के आने की उन्हें सूचना मिली तब वे किसी काम में व्यस्त थे, और उनसे कहला भेजा कि मैं पाँच मिनिट में बाहर आता हूँ। प्रायः एक घंटा हो गया, किंतु चतुर्वेदीजी अपने काम से छुट्टी न पा सके। भला स्वाभिमानी और संचेत्य कवि इसे कैसे बर्दाश्त करता? उन्होंने यह छंद लिख कर उनके पास भिजवा दिया—

परिचित मित्रता पै अति उपकारी बड़े
सज्जन, हितैषी, गुन गौरव की खान हैं।
दरसन हेत हम खड़े रहें द्वार पास,
कैसे रहै धीर चित्त, कैसे रहै मान है?
कहत उमेस व्यस्त कार्य माँहि आप सदा,
कैसे सुनैं सोचैं कछु युक्ति जो महान हैं।
जोहत किताबें या कि आवैं फिर नाहीं यहाँ
क्योंकि पाँच मिट एक घंटा के समान हैं।

यह छंद मिलते ही चतुर्वेदीजी अधूरा काम छो कर बाहर निकल आये और कविजी से भूरि-भू क्षमा-याचना की।

हमसे भी कभी-कभी लोग 'पाँच मिनिट' में आने काम करने का वचन देते हैं। अनुभवी होने के कारण ह उनसे कहते हैं कि यह भी बतलाते जाइए कि आपके 'मिनि में कितने 'सैकंड' होते हैं। हमारा मिनिट तो ६० सैक का होता है, आपका २००, ३०० या और अधिक 'सैकं का? किन्तु इस देश में यह कोई नई बात नहीं है। पुर समय में धनी या व्यवसायी इसी तरह कह दिया करते कि आपका काम 'घड़ी भर', 'पल भर' या 'चार घड़ी' हो जायगा। इस पर एक बिगड़ेदिल कवि ने यह दो लिखा था:

घड़ी महीना, पल पखवारौ, चौ-घड़िया की साल
जाकों लाला काल कहत हैं, ताकौ कौन हवाल?

यह लाला शब्द धनियों और व्यवसायियों के लिए प्रयु हुआ है। आशय यह है कि जब लालाजी कहते हैं कि का घड़ी भर में हो जायगा तब उनका मतलब एक महीने है। इसी प्रकार 'पल' का मतलब एक पखवारा (पक्ष पंद्रह दिन) और चार घड़ी कहने से उनका मतलब ए वर्ष होता है। अब यदि लालाजी ने कहीं कह दिया कि काम कल होगा तो यह कहना कठिन है कि वह कब होगा। झूठे वादे करके लोगों को टरका देनेवालों पर इसमें अच्छ व्यंग्य किया गया है।

प्रकाशक—बी० पी० श्रीवास्तव, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन) प्रेस, इलाहाबाद
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा धार्मिक साहित्य

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

दो भागों में

यह संस्कृत का अमर काव्य सदियों से हिन्दू जनता का प्रेरणा-स्रोत रहा है। पर संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ पाठक इस काव्य का पूर्ण आनन्द नहीं ले पाते इस विचार से सरल मृदु हिन्दी भाषा में इस ग्रन्थ का दो भागों में प्रकाशन हुआ जिसका सर्वत्र स्वागत हुआ। दोनों भाग सचित्र और सुन्दर अक्षरों में छापे गये हैं।

दोनों भागों का मूल्य २५ रु० मात्र

तुलसी साहित्य का प्रचार करके उस महान् संत को श्रद्धांजलि समर्पित करें जिसने संसार भर में भारतीय वाङ्मय को गौरवान्वित किया है:

गोस्वामी तुलसीदास के कुछ चुने हुए ग्रन्थ

रामचरितमानस (सचित्र तथा सटीक)	२५·००
रामचरितमानस (मूल)	५·००
रामचरितमानस (अमृतलहरी टीका सहित)—पंडित रामेश्वर भट्ट टीकाकार	१२·००
सुन्दरकाण्ड (मूल)—श्री नरोत्तमदास स्वामी	६·००
अयोध्याकाण्ड (सटीक)—स्वर्गीय श्यामसुन्दरदास	८·००
विनयपत्रिका (सटीक)—स्वर्गीय रामेश्वर भट्ट	१०·००
कवितावली (सटीक)—पं० चम्पाराम मिश्र	८·००
कुण्डलिया रामायण—सत्यनारायण पाण्डेय	८·००
तुलसी रत्नावली—केदारनाथ गुप्त	३·००
तुलसी के चार दल—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग	६·००
द्वितीय भाग	५·५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Yearly Subscription : Rs. 24.00
Single Copy : Rs. 2.00
March 1975
SARASWATI—Reg. No. A. D. 17

एक डिप्टी की डायरी

पृष्ठ-संख्या १६८ लेखक : निशीथकुमार राय मूल्य १२.५०

हिन्दी की इस अनोखी पुस्तक के बारे में कुछ सम्मतियाँ

माननीय विचारपति श्री महेशनारायण शुक्ल

"Diary writing is a well recognised literary form, it is at least as old as Samuel Pepys but few house displayed real excellence in this genre, particularly in Hindi.

Shree Nishith Kumar Roy, deserves to be congratulated on the remarkable success he has achieved in his "Diary of a Deputy" which is a landmark in the art of diary writing. When a Deputy Collector turns a lawyer he packs into his life a wealth of experience not vouchsafed to a person spending his life-time in the pursuit of a single avocation. This is the secret of the irresitable charm, the deeply absorbing quality, the surpassing human interest of these models of brevity strung together like pearls on a necklace.....the author has written the book in fluent, virile, idiomatic Hindi.

The author has a knack of selecting the most captivating captions for his pieces and enriching the same by his subtle irony and pleasant humour. His description of the performance of courtesans as "cultural activity extending far into the night" is a superb specimen of his incisive wit and buoyant humour. To a narrative of the sordid facts of actual life the writer has imparted the fascinating beauty of fiction and that is the highest measure of his success as a diary-writer."

श्री श्यामनाथ कक्कड़, एडवोकेट जनरल, हाईकोर्ट, इलाहाबाद

..... यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पुस्तक का आरम्भ करने के पश्चात् बिना समाप्त किये छोड़ना बड़ा कठिन है। सत्य भी इतना मनोरंजक होता है यह डिप्टी की डायरी पढ़कर ही विश्वास होता है..... इस डायरी के माध्यम से उन्होंने आफिसर्स वर्ग का बड़ा सही चरित्र-चित्रण किया है। मैं आशा करता हूँ जो कोई इस पुस्तक को पढ़ेगा उसको भी इतना ही रस और आनन्द मिलेगा जितना मुझे मिला।.....

श्री प्रेमशंकर गुप्त, गवर्नमेन्ट एडवोकेट, हाईकोर्ट, इलाहाबाद

बन्धु निशीथ राय की 'एक डिप्टी की डायरी' ने १५-२० वर्ष पूर्व की डिप्टियों की इजलास में वकालत करने समय की वे स्मृतियाँ सहज जागत कर दीं जो मस्तिष्क के किसी कोने में सुप्तावस्था में पड़ी थीं। यह उनकी लेखनी का चमत्कार है कि उनकी डायरी पढ़कर पाठक पाँचवीं दशाब्दी के पूर्वार्द्ध के डिप्टी कलक्टरों के संसर्ग एवं सम्पर्क में पहुँच जाता है, और वैसे ही जाने-पहिचाने कितने मुखड़े उसकी आँखों के सामने नाचने लगते हैं। हिन्दी में अपने ढग की यह अनूठी पुस्तक है.....इस चित्रण में इस कारण और अधिक निखार आ गया है क्योंकि यह पात्र काल्पनिक न होकर लेखक के व्यक्तिगत सम्पर्क में आये हुये व्यक्ति हैं जिन्हें बिना सँजोये-सँवारे लेखक ने ज्यों का त्यों पाठकों के सामने रख दिया है। वास्तव में उन भ्रमित व्यक्तियों को इस पुस्तक को पढ़कर मार्ग दर्शन लेना चाहिये जो अहमग्रस्त होकर जनसेवा से भटक गये हैं और जनसाधारण की दृष्टि में उपहास का पात्र बन रहे हैं। हिन्दी पाठक श्री राय के इस स्तुत्य प्रयास के लिए कृतज्ञ है।.....

श्री जे० एस० टिंगल, सुपरिण्टेण्डेण्ट आफ पुलिस

.....The book is so interesting that one cannot lay it aside without reading it from cover to cover. Not many books have yet been written which give any inkling into the personal and social life of officers.....

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

प्राचीनतम हिन्दी मासिक पत्रिका
(संस्थापित सन् १९००)
अप्रैल १९७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' से पुरस्कृत

गुप्त साम्राज्य का इतिहास

लेखक

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सुविख्यात लेखक एवं प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान्

डा० वासुदेवशरण उपाध्याय

गुप्त सम्राटों का काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। गुप्त काल में सारे वृहत्तर भारत में भारतीय अपने विकास के उच्च शिखर पर थी। धन्य था वह युग जब शिक्षा, साहित्य ही नहीं ललित कला को भी गुप्त सम्राटों ने विकसित कर अपनी आदर्श शासन-प्रणाली को इतिहास की एक अमर निधि बना दिया। विद्वा की इस रचना के समकक्ष हिन्दी ही नहीं अँगरेजी में भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। सभी इतिहासकारों ने की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। अनेक विश्वविद्यालयों की एम० ए० कक्षाओं की परीक्षाओं के लिए यह पाठ्य बन गयी है। स्नातकों ने ही नहीं जनता ने भी इस ग्रन्थ का स्वागत किया है। ग्रन्थ का तीसरा संस्करण दो छप कर तैयार है।

प्रथम भाग	१०·०० रुपये
द्वितीय भाग	१२·५० रुपये

इतिहास की दो नई पुस्तकें

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास

डॉ० ओमप्रकाश

हिन्दी भाषा में प्राचीन भारतीय इतिहास पर मौलिक रूप से लिखी गई पुस्तकों का प्रायः अभाव सा है के गहन एवं विस्तृत विवेचन को लक्ष्य में रखते हुए विद्वान् लेखक ने यथासंभव आधुनिकतम शोधों और समावेश करते हुए इस पुस्तक की रचना की है। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कथन की पुष्टि उचित पाद टिप्पणियों द्व है। इतिहास के विद्वज्जगत् द्वारा प्रशंसित पुस्तक का प्रकाशन हमारे लिए भी गौरव की बात है। इतिहा मौर्यकाल का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी इस पुस्तक को यथाशीघ्र मँगाकर लाभ उठावें। मूल्य १२

भारत का प्राचीन इतिहास

लेखक—प्रो० नगेन्द्रनाथ घोष एम० ए०

संशोधक—ओमप्रकाश एम० ए० डी० फिल०

यह पुस्तक इतिहास जगत् में प्रायः दशाब्दियों से लोकप्रिय रही है मगर यह सर्वांशतः संशोधित संस्क तम ऐतिहासिक उपलब्धियों, अनुसंधानों के परिणामों को ध्यान में रखते हुए प्रकाशित हुआ है। कलेवर है। इस संस्करण की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं—राजनीतिक इतिहास के नवीन एवं ग्राह्य मतों के अनुसार उन उनके सांस्कृतिक अंगों पर विशेष प्रकाश, पाँच विशेष प्रकार के मानचित्रों का समावेश और विवादात्मक पारिशिष्टों में देना आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जो विद्यार्थियों की ऐतिहासिक ज्ञानवृद्धि के प्रकाशस्तंभ हैं पुस्तक मँगाकर लाभ उठावें। मूल्य १

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रेलवे

आवश्यक सूचना

यात्रा करनेवाली जनता की जानकारी के लिए सूचित किया जाता है कि जब विशेष मूल्य के सामान जैसे सिल्क, नायलान, टेरिलीन, टेरीकॉट और टेरीवूल के वस्त्र और कपड़े, रेडियो, ट्रांजिस्टर, कैमरे वाद्य तथा वैज्ञानिक यंत्र, सोना, चाँदी आदि, जिनका उल्लेख भारतीय रेलवे एक्ट १८९० की द्वितीय अनुसूची में दिया हुआ है, किसी गाँठ (पैकेज) में बन्द हो और यदि उनका मूल्य ५०० रुपये से अधिक हो, तो ऐसे सामानों के मालिक को उनका मूल्य तथा प्रकार लिखित रूप में घोषित करना चाहिए और वजन के आधार पर साधारण भाड़ा देने के साथ-साथ लागू दर से परसेन्टेज चार्ज भी देना चाहिए। यदि इस प्रकार की घोषणा नहीं की जायगी या परसेन्टेज चार्ज का भुगतान नहीं किया जायगा तो भारतीय रेलवे एक्ट १८९० की धारा ७७-बी के अनुसार, रेलवे शासन, उन पैकेजों की क्षति, ध्वंस या उनके खोने या नष्ट-भ्रष्ट होने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

यह नियम केवल उन्हीं प्रेषणों के विषय में लागू नहीं होता जो 'गुड्स' या 'पार्सल' के रूप में भेजे जायँ बल्कि उन सामानों के सम्बन्ध में भी लागू होगा जो 'लगेज वान' से भेजे या ले जाये जायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन शहरों में स्टाकिस्ट नहीं हैं वहाँ के हेतु स्टाकिस्ट चाहिए।

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि
६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश!

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केश का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं। चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इंच बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का ५·०० रु० है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिंग पृथक्। ४ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजी जायँगी। अधिक के लिए मूल्य पेशगी भेजिए।

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी

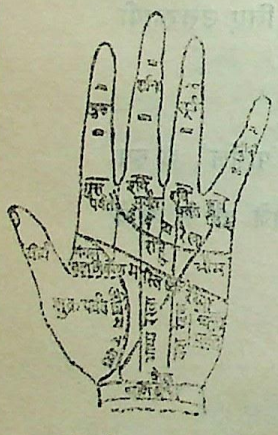

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—
प्रोफेसर प्रद्युम्नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,
तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

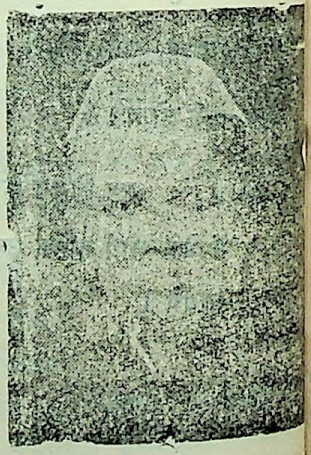

देखिये:—सी० वाई० चिन्तामणि भू० पू० मिनिस्टर क्या कहते हैं:—

प्रोफेसर पी० एन० सिंह प्रयाग के अद्भुत ज्योतिषी, हस्तरेखा-शास्त्री तथा प्रसिद्ध तांत्रिक हैं। मेरा उनसे पाँच वर्ष से अधिक का परिचय है। वे अत्यन्त सभ्य महानुभाव हैं। उनका आचरण बहुत उत्तम एवं विश्वसनीय है। उन्होंने मेरे जीवन में घटनेवाली अनेक घटनाओं के सम्बन्ध में मुझसे सूचित कर दिया था और उनकी भविष्य वाणियाँ उल्लेखनीय रूप से सत्य सिद्ध हुईं। उनकी तांत्रिक शक्ति की परीक्षा वांछनीय है। मैंने उनकी गुप्त एवं संचित एकाग्र-शक्तियों का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन कई बातों में किया है और उन सभी में उन्हें आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है। मेरी आन्तरिक कामना है कि उन्हें हर प्रकार से सफलता होती रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंज़) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञापन

उत्तर प्रदेश शासन के वर्ष 1975-76 के साहित्यिक पुरस्कार

1—वर्ष 1975-76 में उत्तर प्रदेश शासन द्वारा देश के हिन्दी तथा संस्कृत भाषाओं के लेखकों को उनकी मौलिक तथा हिन्दी में अनूदित उच्च कोटि की रचनाओं पर 2,35,000 रुपये के विभिन्न पुरस्कार प्रदान किये जावेंगे। इस संदर्भ में निम्नांकित विषयों पर पुस्तकें 30 जून, 1975 तक सचिव, उत्तर प्रदेश साहित्यिक पुरस्कार समिति, शिक्षा (12) अनुभाग, उत्तर प्रदेश सचिवालय, लखनऊ द्वारा स्वीकार की जायेंगी :—

(1) साहित्य उपन्यास, लघु कथाओं का संग्रह, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, गणित, भौतिक तथा रसायन शास्त्र, वनस्पति तथा प्राणिशास्त्र, महाकाव्य, प्रबन्ध काव्य, खण्ड काव्य, नाटक, मुक्तक तथा गीत, ललित निबन्ध, विधि तथा विधिशास्त्र, शिक्षा शास्त्र, दर्शन शास्त्र आदि विषयों में हिन्दी भाषा की मौलिक रचनायें।

(2) हिन्दी भाषा में बाल साहित्य की रचनायें।

(3) अहिन्दी भाषा-भाषी निवासियों को हिन्दी की उत्तम एवं मौलिक कृतियाँ।

(4) विदेशी भाषाओं से हिन्दी में अनूदित तथा अन्य भारतीय भाषाओं से हिन्दी में अनूदित पुस्तकें।

(5) संस्कृत में मौलिक पद्य, संस्कृत से हिन्दी में अनूदित रचनायें तथा संस्कृत के दुर्लभ एवं प्राच्य ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद।

2—विस्तृत जानकारी तथा नियमावली के लिये सचिव, उत्तर प्रदेश साहित्यिक पुरस्कार समिति, शिक्षा (12) अनुभाग, सचिवालय, लखनऊ को लिखें। यह सूच्य है कि समस्त प्रकाशन वर्ष 1974 के होने चाहिये। 30-6-75 के उपरान्त प्राप्त पुस्तकों पर विचार नहीं किया जायेगा।

राम मनोहर लाल अस्थाना
अनुसचिव एवं सचिव पु० यो० समिति
शिक्षा (१२) अनुभाग
उत्तर प्रदेश सचिवालय, लखनऊ

लखनऊ, दिनांक ७ अप्रैल, १९७५

कोड नम्बर : उ० प्र० १५९०/सू० नि० (प्रेस) विज्ञापन
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	२२१
२—विश्व के महान् दार्शनिक और शिक्षाविद् डा० राधाकृष्णन्—श्री महेश बी० शर्मा	२२९
३—स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी आलोचना : उपलब्धियाँ और अभाव (१)—डा० नारायणप्रसाद वाजपेयी 'करुणेश'	२३१
४—कोणार्क का सूर्य-मन्दिर—प्रो० दिवाकर त्रिपाठी	२३६
५—हिन्दी का प्रथम समाचारपत्र—डॉ० रामनारायण सिंह 'मधुर'	२४४
६—फैण्टैसी और पश्यन्ति—श्री कमलाप्रसाद चौरसिया	२४६
७—पृथ्वीराज तृतीय और मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष—प्रो० अताउल्ला खाँ, एम० ए०	२४८
८—निर्वासित अर्जुन और अभिशप्त द्रोणाचार्य—प्रो० महेन्द्रनाथ पाण्डेय	२५२
९—आधुनिक इन्दोनीसिया में संस्कृत—अनु० श्री बाबूराम वर्मा	२५५
१०—काँच व तामचीनी के पदार्थ—प्रो० पुरुषोत्तमदास स्वामी, एम० एस्-सी०, एम० एस०, विशारद	२६०
११—जहाँगीर का खान-पान—डा० पद्मधर पाठक	२६१
१२—असहायता—अनु०—श्री रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे	२७१
१३—कुमारी अर्चना मिश्र—श्री हरप्रसाद शर्मा	२७२
१४—नवीन प्रकाशन	२८१
१५—मनोरंजक संस्मरण	२८६
१६—१९२५ की सरस्वती—एक लिपि—श्री मोहनदास करमचंद गांधी	२८९

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

सरस्वती के लेखकों के प्रति

१—सरस्वती में भारत की चालू या वर्तमान राजनीति पर छोड़कर सभी विषयों के लेख प्रकाशित होते हैं। व्यक्तिगत आक्षेपोंवाले लेख भी नहीं छापे जाते।

२—सरस्वती में वे ही लेख छापे जाते हैं जो अन्यत्र न छपे हों। जो लेख अन्यत्र छपने को भेजे गये हों उन्हें 'सरस्वती' के लिए न भेजा जाय।

३—लेखकों को चाहिए कि लेखों की प्रतिलिपि अपने पास रख लें। डाक में या कार्यालय में उनके खो जाने के लिए 'सरस्वती' जिम्मेवार न होगी यद्यपि उन्हें सुरक्षित रखने का पूरा प्रयत्न किया जाता है।

४—स्थानाभाव के कारण स्वीकृत लेख भी कभी-कभी विलम्ब से छपते हैं।

५—सामान्यतः लेख दो-ढाई हज़ार शब्दों से अधिक का न होना चाहिए। बड़े लेख, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने पर, कभी-कभी छापे जाते हैं।

६—अनुवादित लेखों को भेजने के पहले (यदि लेखक को मरे ५० वर्ष से अधिक नहीं हो गये) मूल लेखक या उसके वारिस से अनुवाद करने की अनुमति लेना आवश्यक है। इन लेखों के अन्त में अलग एक कोष्ठक में अनुवादक यह प्रमाणित करने की कृपा करें कि यह अनुमति प्राप्त कर ली गयी है।

७—लेख कागज की एक ओर स्पष्ट और बड़े या मझोले अक्षरों में लिखा या टंकित हो। संस्कृत या अन्य भाषाओं के उद्धरण बहुत स्पष्ट और शुद्ध होने चाहिए तथा उनके नीचे कोष्ठक में उनका अनुवाद भी देना आवश्यक है।

८—लेख के अन्त में लेखक कृपया अपना पूरा पता अवश्य लिख दें।

९—'सरस्वती' व्यावसायिक पत्रिका नहीं है और वह साहित्य तथा हिन्दी प्रेमी लेखकों के सहयोग से घाटे पर चल रही है। अतएव उसके लिए लेखकों को पारिश्रमिक देना सामान्यतः संभव नहीं है। किन्तु प्रकाशित लेखों के लेखकों को ग्राहक समझकर उन्हें एक वर्ष वह निःशुल्क भेजी जायगी।

१०—यदि लेखक लेखों की प्राप्ति-स्वीकृति चाहते हों तो अपना पता जवाबी पोस्ट कार्ड पर लिखकर लेख के साथ संलग्न कर दें।

११—लेख, कहानी, कविता, संस्मरण आदि तथा सम्पादक से संबंधित पत्र "श्रीनारायण चतुर्वेदी, सम्पादक, 'सरस्वती', ५३ खुर्शेद बाग लखनऊ-४" तथा समालोचना की पुस्तकें और प्रबंध या ग्राहक संबंधी पत्रादि व्यवस्थापक 'सरस्वती' इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्रा० लि०, ३६, पन्नालाल रोड, इलाहाबाद के पते पर भेजें। समालोचना की दो पुस्तकें भेजना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि दयानंद सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

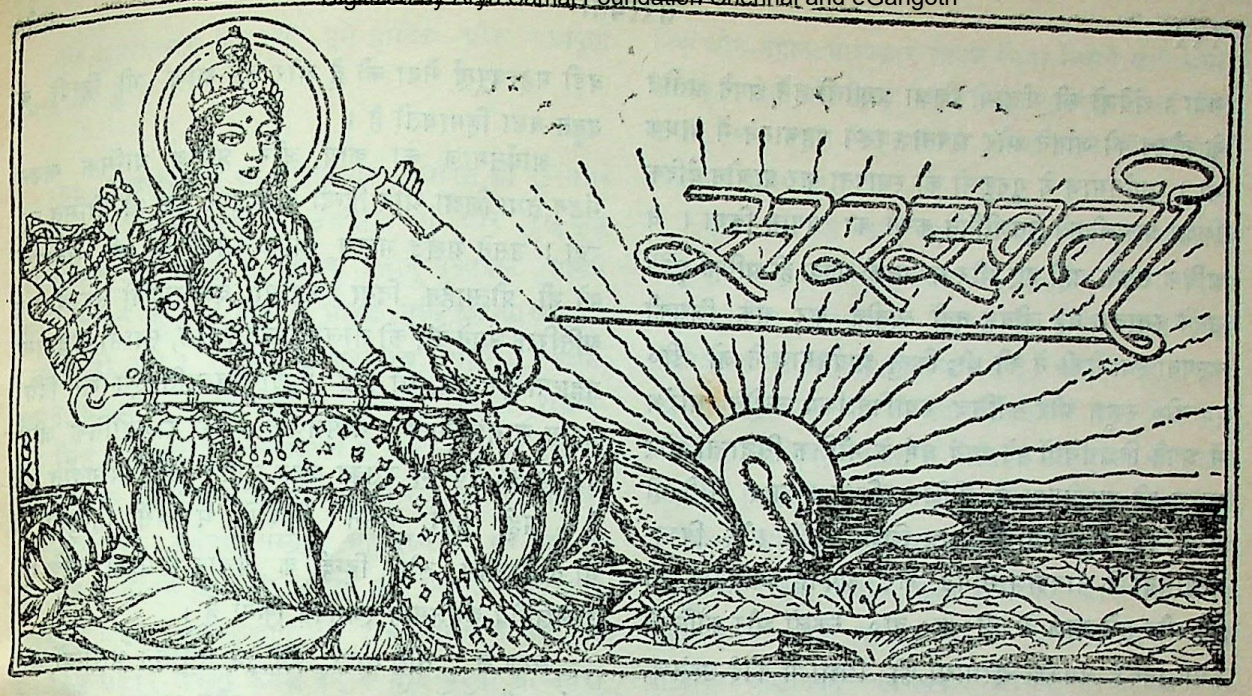

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

वर्ष ७६
पूर्ण संख्या ९०४

इलाहाबाद : अप्रैल १९७५ : चैत्र २०३२ वि०

खण्ड १
संख्या ४

सम्पादकीय

आर्यसमाज की शताब्दी—सन् १८७५ में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी। यह कार्य उन्होंने अपने कुछ भक्तों के इस आग्रह पर किया था कि आपके विचारों के प्रचार के लिए एक स्थायी संस्था की आवश्यकता है। उन्होंने स्वयं इस संस्था का नाम 'आर्यसमाज' रखा था। उसी वर्ष मुरादाबाद के राजा जयकृष्णदास ने उनसे 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखवाकर अपने व्यय से प्रकाशित किया था। अतएव १८७५ का महत्त्व दुहरा है : इसी वर्ष 'आर्यसमाज' की स्थापना हुई और इसी वर्ष आर्यसमाज के आधारभूत ग्रन्थ का भी प्रकाशन हुआ। भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण में आर्यसमाज ने बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सुकरात कहा करता था कि मैं एथेन्स का डाँस (gadfly) हूं जो यहाँके लोगों को अपने शब्द-दंशों से बराबर जाग्रत रखता है। प्रायः वही काम स्वामी दयानन्दजी ने हिन्दू समाज के लिए किया। वह उस समय मृतप्राय था। वह अपने प्राचीन गौरव और अपने धर्म के महान् एवं मौलिक सिद्धान्तों को भूल गया था। उस पर हजार-आठ सौ वर्षों की दासता से गहरा जंग लग गया था। स्वामीजी ने अपने आन्दोलन से उसे जाग्रत किया और कितनी ही कुरीतियों को, जो उसमें जंग की तरह लग गयी थीं, बहुत कुछ हटाने में सफलता प्राप्त की।

उनके आन्दोलन का परोक्ष प्रभाव सनातनधर्मियों पर भी पड़ा और यद्यपि उनके अनेक मौलिक सिद्धान्तों के वे विरोधी थे तथापि उनके उपदेशों के कारण उन्होंने भी समाज में फैली कुरीतियों को पहचाना और उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया। इस आन्दोलन का पश्चिमी भारत पर बड़ा प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव व्यापक था। इसीके कारण शिक्षा के सुधार की ओर सबसे पहले भारतीयों का ध्यान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। अंग्रेजों की फैलायी शिक्षा प्रणाली हमें अपने अतीत के गौरव को जानने और अपना स्वरूप पहचानने में बाधक थी। आर्यसमाज ने गुरुकुलों की स्थापना कर प्राचीन वैदिक शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। वे अधिक सफल नहीं हुए और न उनकी संख्या ही अधिक हुई। उनके स्नातक वह जीवन नहीं व्यतीत कर सके जिसकी कल्पना स्वामीजी ने की थी; किन्तु आर्यसमाज ने जो डी० ए० वी० स्कूल और कॉलिज स्थापित किये उन्होंने आरंभ में अपने विद्यार्थियों को आर्य धर्म के मौलिक सिद्धान्तों और भारत की राष्ट्रीयता में दीक्षित किया। बाद में वे भी अन्य निजी विद्यालयों की तरह शिक्षा बोर्डों और विश्व-विद्यालयों के नागपाश में पड़ कर अपना व्यक्तित्व खो बैठे और हमें आज के डी० ए० वी० स्कूलों और कॉलिजों तथा उनकी समकक्ष संस्थाओं की शिक्षा में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं मालूम पड़ता। किन्तु आरम्भ में गुरुकुलों और डी० ए० वी० संस्थानों ने बड़ा महत्त्वपूर्ण काम किया। अनाथों को विधर्मियों के चंगुल से बचाने के लिए कुछ दयानन्द अनाथालय भी खोले गये, किन्तु अब इस सम्बन्ध में आर्यसमाज का उत्साह शिथिल है।

हिन्दी भाषा के प्रचार में—विशेषकर पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में—उसका कार्य स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। उसने भारत में फैली अपनी असंख्य शाखाओं के द्वारा 'आर्यभाषा' (हिन्दी), के प्रति आस्था उत्पन्न कर दी थी, जिससे हिन्दी साहित्य सम्मेलन और महात्माजी के 'राष्ट्रभाषा' सम्बन्धी आन्दोलन के लिए जमीन तैयार हो गयी थी। आर्यसमाज के पैने प्रहारों के कारण सनातन-धर्मियों और उसके खंडन-मंडन के प्रचुर साहित्य ने खड़ी-बोली हिन्दी का व्यापक प्रचार किया तथा उसकी जड़ मजबूत की। इसी खंडन-मंडन की प्रवृत्ति तथा प्रचार की आवश्यकताओं ने हिन्दी पत्रकारिता को भी बड़ा प्रोत्साहन दिया। 'भारत सुदशा प्रवर्तक' नाम का एक अल्प आयु का हिन्दी पत्र तो स्वामीजी के सामने ही निकला था। यह फर्रुखाबाद से प्रकाशित होता था। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने इसे जालंधर से पहले उर्दू में, और फिर हिन्दी में एक पत्र निकाला, जिसके सम्पादन में सम्पादकाचार्य रुद्रदत्त शर्मा ने उनकी सहायता की थी। आर्यसमाज के पुराने हिन्दी पत्रों में 'आर्यमित्र' अभी जीवित है और सफलतापूर्वक निकल रहा है। इस प्रकार सभी क्षेत्रों में आर्यसमाज ने हिन्दी की बड़ी महत्त्वपूर्ण सेवा की है और वह आज भी हिन्दी की बहुत बड़ा हिमायती है।

आर्यसमाज का कार्य और प्रभाव धार्मिक खंडन-मंडन तथा शिक्षा और हिन्दी के प्रचार तक ही सीमित नहीं रहा। उसने अखंड भारत और स्वतन्त्रता की भावनाओं को भी प्रोत्साहन दिया। स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के अतिरिक्त उसने देश को लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ऐसे रत्न दिये। भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन पर इन सौ वर्षों में उसका बहुत प्रभाव और योगदान रहा है। यही नहीं, उसने विदेशों में बसे हिन्दुओं में भी वैदिक धर्म और हिन्दी के प्रचार में पहल करके एक उल्लेखनीय कीर्तिमान स्थापित किया है।

आज से साठ-सत्तर वर्ष पूर्व सनातन धर्मियों और आर्यसमाजियों में जो कट्टरता और कटुता थी, उसे हमने देखा था। हमें प्रसन्नता है कि आज वह अशिव भावना प्रायः समाप्त हो गयी है। आर्यसमाज ने इन सौ वर्षों में हिन्दू समाज और देश की जो विविध प्रकार से सेवा की है और उनके दृष्टिकोण को बदलने में जो योगदान दिया है उससे उसकी सार्थकता स्पष्ट है और उसके लिए उसे गर्व होना चाहिए। हम इस अवसर पर उसकी स्थापना के 'शत शरद' बीतने पर उसे हार्दिक बधाई देते हैं। किन्तु यदि वह भविष्य में देश और समाज के जीवन में पहले की सी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना चाहता है तो उसे अपनी संस्थाओं को ऐसे लोगों से मुक्त करना होगा जिनका आचरण स्वामीजी की दृष्टि से 'आर्यो-चित' नहीं है। अब भी उसमें पुराने आदर्शों से प्रेरित, निःस्वार्थ और कर्मठ कुछ व्यक्ति हैं। किन्तु खेद है कि उनकी संख्या कम होती जाती है। दूसरे, उसे आदिवासियों, पिछड़े वर्ग के लोगों की सेवा में मिशनरी भावना से योजनाबद्ध रूप से उत्साहपूर्वक लग जाने की आवश्यकता है। उसे निर्मम आत्मपरीक्षण की आवश्यकता है। उसके सौ वर्ष गौरवशाली रहे हैं जिसकी हम भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं, किन्तु परिवर्तित स्थिति के अनुरूप उसका कार्यक्रम भी वैसा ही क्रान्तिकारी होना चाहिए जैसा आरंभ में रहा है। उस पर यह लोकप्रिय पंक्तियाँ लागू हैं—

शानदार था भूत, भविष्यत भी महान है।
मत भुलाइये आज उसे जो वर्तमान है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शुभअवसर पर हम उसे हार्दिक और श्रद्धापूर्ण बधाई देते हैं।

डा० राधाकृष्णन् का कैलासवास—भारत की रत्नगर्भा वसुधरा ने पिछली शती के उत्तरार्द्ध में (और कुछ-कुछ बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में) अनेक महान् पुरुषरत्न उत्पन्न किये। जीवन के सभी क्षेत्रों में भारत भूमि असाधारण रूप से उर्वरा हो उठी। राजनीति, पुरातत्त्व, साहित्य, दर्शन, विज्ञान, अध्यात्म आदि क्षेत्रों में बंकिम, रानाडे, राजेन्द्रलाल मित्र, लोकमान्य, विवेकानन्द से आरम्भ होकर राजेन्द्रप्रसाद, नेहरू, जगदीश बोस, वेंकटरामन, राजर्षि, राजगोपालाचार्य तक हमें सर्वगुण सम्पन्न महापुरुषों ही की नहीं—(हम कहना चाहेंगे कि अति मानवों की) एक अटूट शृङ्खला मिलती है। डा० राधाकृष्णन् उस रत्नावली के अंतिम रत्न थे। जिस प्रकार अच्छी फसल देने के बाद धरती की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है और वह बौने पौधे और कम फसल देने लगती है, उसी प्रकार उस पीढ़ी के बाद वैसी प्रतिभाएँ विरल हो गयीं—शायद यह प्रकृति का अस्थायी चक्र है। 'चक्रनेमिक्रमेण।' फिर कभी हमारी भूमि वैसी प्रतिभाएं उत्पन्न करेगी। ईश्वर ही जाने कि वह युग कब आएगा।

आन्ध्र प्रदेश में चित्तूर नाम का एक ज़िला है। उसमें भारतविख्यात तिरुपति नाम का स्थान है जो वैष्णवों का तीर्थ है क्योंकि वहाँ विष्णु (श्रीवेंकटेश्वर) का प्रसिद्ध मंदिर है। इसी ज़िले में एक और तीर्थ भी है जिसमें शिव का एक प्रसिद्ध मन्दिर है और आसपास के क्षेत्रों में इसकी बड़ी मान्यता है। उस स्थान का नाम तिरुत्तनी है। सन् १८८८ में डा० राधाकृष्णन् का जन्म इसी ग्राम के एक अत्यन्त धर्मनिष्ठ शैव परिवार में हुआ था। अपने परिवार से प्राप्त संस्कारों के कारण वे बड़े धर्मनिष्ठ हो गये थे।

उन्होंने मद्रास के क्रिश्चियन कॉलिज से दर्शन शास्त्र में एम० ए० किया। किंतु ईसाई प्रोफेसरों की हिन्दू धर्म की कटु आलोचनाओं से वे बड़े मर्माहत हुए। इसी अनुभव ने उन्हें हिन्दू धर्म और दर्शन के गम्भीर अध्ययन तथा उसकी व्याख्या करके उसे शिक्षित लोगों में प्रचारित करने के लिए अनेक लेख और पुस्तकें लिखने को प्रेरित किया। वास्तव में क्रिश्चियन कॉलिज से ईसाई प्रोफेसरों की कटु आलोचनाओं ने अनजान ही में हिन्दू धर्म का एक ऐसा आधुनिक और महान् भाष्यकार उत्पन्न किया जिसने सारे संसार के प्रबुद्ध लोगों को हिन्दू दर्शन की महानता से परिचित कराने तथा उसके लिए प्रतिष्ठा प्राप्त करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की।

एम० ए० में उन्हें एक अधिनिबन्ध (थीसिस) भी लिखना था। उपर्युक्त कारण से उन्होंने उसका विषय Ethics in Vedanta 'वेदान्त में नीति शास्त्र' (यहाँ नीतिशास्त्र का अभिप्राय सदाचार से है) चुना। यह १९०९ की बात है। २१ वर्ष की वय में उनके इस निबन्ध ने प्रेसीडेंसी कॉलिज, मदरास के प्रिंसिपल श्री हॉब्स को इतना प्रभावित किया कि उन्होंने सरकार से प्रान्तीय शिक्षा सेवा में नियुक्त करा कर उन्हें अपने कॉलिज में लेक्चरर पद पर रख लिया। तब प्रान्तीय शिक्षा सेवा का आरम्भिक वेतन केवल १०० रुपये मासिक ही था। इसी बीच उनके पाश्चात्य दार्शनिकों—विशेषकर बर्गसन—पर कितने ही निबन्ध विदेशी शोध पत्रिकाओं में छपने लगे जिनसे उनकी ख्याति बढ़ने लगी।

भारत में दो गुणग्राहियों ने युवक राधाकृष्णन् की प्रतिभा का सही मूल्यांकन किया। पहले थे मैसूर के सर विश्वेश्वरैया जिन्होंने केवल ३० वर्ष की वय में उन्हें मैसूर विश्वविद्यालय में दर्शन शास्त्र का प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष बनवा दिया। वहाँ उन्होंने दो पुस्तकें प्रकाशित कीं—Rein of Religion in Contemporary Philosofy (समकालीन दर्शन में धर्म का राज्य) और Philosophy of Robindra Nath Tagore (रवीन्द्र नाथ टागोर का दर्शन)। इन दोनों पुस्तकों ने उनके पाश्चात्य और प्राच्य दर्शन के गम्भीर ज्ञान और व्याख्या-शक्ति को उजागर कर दिया।

उनके दूसरे गुणग्राहक थे कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन उपकुलपति न्यायमूर्ति सर आशुतोष मुकर्जी। उन्हें मैसूर में प्रोफेसर हुए तीन वर्ष ही हुए थे और उस समय उनकी अवस्था मुश्किल से ३४ वर्ष की थी, फिर भी सर आशुतोष ने उनकी योग्यता को परखा। 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।' उन्होंने उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय की बड़ी प्रतिष्ठित प्रोफेसरशिप—किंग ज्यॉर्ज दि फ़िफ्थ प्रोफेसरशिप ऑफ फिलॉसोफी—पर नियुक्त कर दिया। इस पद पर वे प्रायः बीस वर्ष रहे और उन्होंने उस पर रह कर विद्वत्ता और दर्शनशास्त्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन अध्यापन का ऐसा कीर्तिमान स्थापित किया कि कलकत्ता विश्वविद्यालय का दर्शन विभाग संसार-प्रसिद्ध हो गया। यहाँ रहते हुए वे इंग्लैण्ड, अमरीका, जर्मनी आदि देशों के विश्वविद्यालयों में दर्शन शास्त्र के विभिन्न अंगों पर व्याख्यान देने के लिए बराबर बुलाये जाते थे। उनके ऐसे कितने ही व्याख्यान इतने महत्त्वपूर्ण थे कि उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित करना पड़ा। अंतर्राष्ट्रीय विद्वत् समाज में उन्होंने इस बीच जो स्थान बना लिया वह बर्ट्रेण्ड रसल ऐसे दो ही एक विद्वानों को प्राप्त हो सका। इन भाषणों का महत्त्व यह था कि उन्होंने अपनी अननुकरणीय शैली में संसार को भारतीय दर्शन, धर्म और विचारों से परिचित ही नहीं कराया, उनके लिए प्रतिष्ठा भी प्राप्त की। वास्तव में स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो के सर्व-धर्म सम्मेलन में पाश्चात्य देशों को भारतीय दर्शन, नीतिशास्त्र और जीवन दर्शन से परिचित करने का जो कार्य आरम्भ किया था, वह डा० राधाकृष्णन् ने अपनी प्रतिभा और अथक परिश्रम से पूरा किया। विदेशों में उनका जो स्वागत हुआ और उन्हें वहाँ जो प्रतिष्ठा मिली, उसके समाचारों से भारतीय शिक्षित वर्ग भी उनकी ओर आकृष्ट हुआ। इससे वे अंग्रेजी-शिक्षित भारतीय भी जो पाश्चात्य प्रभावों से आक्रान्त होने के कारण हिन्दू धर्म और भारतीय दर्शन को हीन दृष्टि से देखते थे, उनकी ओर आकृष्ट ही नहीं हुए प्रत्युत उनका आदर भी करने लगे।

बाद में वे आंध्र विश्वविद्यालय (वाल्टेयर) और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी रहे और इन स्थानों में उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि वे कोरे प्रोफेसर ही नहीं थे, उनमें उच्चकोटि की प्रशासनिक योग्यता भी थी।

राष्ट्रसंघ के सांस्कृतिक और शैक्षणिक संगठन (यूनेस्को) में उन्हें भारत के प्रतिनिधि के रूप में भेजा गया। वहाँ उन्होंने लोगों को इतना प्रभावित किया कि वे पहले उसके उपाध्यक्ष, और बाद में अध्यक्ष चुने गये।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जब रूस में राजदूत की नियुक्ति का प्रश्न आया तब वहाँकी स्थिति देखते हुए उपयुक्त व्यक्ति की खोज हुई। उस समय रूस में तानाशाह स्तालिन का बोलबाला था। वह राजदूतों से मिलता तक नहीं था। अन्त में डा० राधाकृष्णन् को रूस में भारत का प्रथम राजदूत बनाने का निर्णय किया गया। उनकी ख्याति ऐसी थी कि तानाशाह स्तालिन उनसे दो बार मिला, और डा० राधाकृष्णन् ने उससे बड़ी बेतकल्लुफ़ी से घंटों बा की। रूस से भारत के मधुर सम्बन्धों की नींव डालने क श्रेय डा० राधाकृष्णन् ही को है।

बाद में वे दो बार भारत के उपराष्ट्रपति औ अन्त में राष्ट्रपति हुए। उपराष्ट्रपति के रूप में वे राज्य सभा के अध्यक्ष भी थे। सदस्य उनका इतना सम्मा करते थे कि उनके कार्यकाल में राज्य सभा में कोई अशोभ नीय घटना नहीं होने पाती थी। उनके राष्ट्रपति के कार्यका में भारत को चीन और पाकिस्तान से दो युद्ध लड़ने पड़े। चीन के आक्रमण के समय उन्होंने प्रधान मन्त्री श्री नेहरू को जो नैतिक समर्थन और परामर्श दिया, वह इतिहा की बात है। उन्हींके कार्यकाल में श्री नेहरू और श्री लाल बहादुर शास्त्री के देहावसान के कारण दो बार प्रधा मन्त्रियों की नियुक्ति हुई। इन दोनों नियुक्तियों में उनक जो बहुमूल्य योगदान था, वह भी इतिहास की बात है उन्हींके कारण दोनों बार इस पद के चुनाव बड़ी सरलत और शोभनीय ढंग से हो सके।

राष्ट्रपति पद से मुक्त होने के बाद वे मदरास में अपने बनाये मकान में एकान्तवास करने लगे और उन्होंने सार्वजनि जीवन से अपने को एकदम अलग कर लिया। अपनी धार्मिक और शैव भावना के कारण उन्होंने अपने मकान क नाम 'गिरिजा' रखा था। यद्यपि उन्होंने औपचारिक रूप से संन्यास ग्रहण नहीं किया तथापि उनका वह जीवन धर्म चिन्तन और संन्यासी ही का जीवन था।

वे संस्कार और विश्वास से धर्मनिष्ठ और अद्वैत वेदान्त थे। उन्हें भारतीय संस्कृति से अकृत्रिम प्रेम था जो उनके परिधान और रहन-सहन से परिलक्षित होता था। उनकी विशेष ढंग की पगड़ी, उनका लम्बा भारतीय अंगा औ धोती उनकी भारतीयता के प्रेम की प्रतीक थी। वे हीन भावना से ग्रस्त नहीं थे कि 'धोती' पहनना शिष्टता औ सभ्यता का चिह्न न समझें। 'धोतीवाला' शब्द आधुनिक शिक्षित वर्ग में अवमानना का शब्द हो गया है। किन्तु बड़े से बड़े विदेशी राजपुरुषों के समारोहों में भी वे अपने इस भारतीय परिधान में सम्मिलित होकर भारतीय रीति-रिवाज के प्रति अपने प्रेम और निष्ठा को व्यक्त करते थे।

उन्होंने कितनी ही महत्त्वपूर्ण पुस्तकें और सैकड़ों विद्वतापूर्ण निबंध लिखे हैं। उनकी शिक्षा आयोग की रिपो उनकी शिक्षा-समस्या की गहरी पैठ का प्रमाण है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतरत्न डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

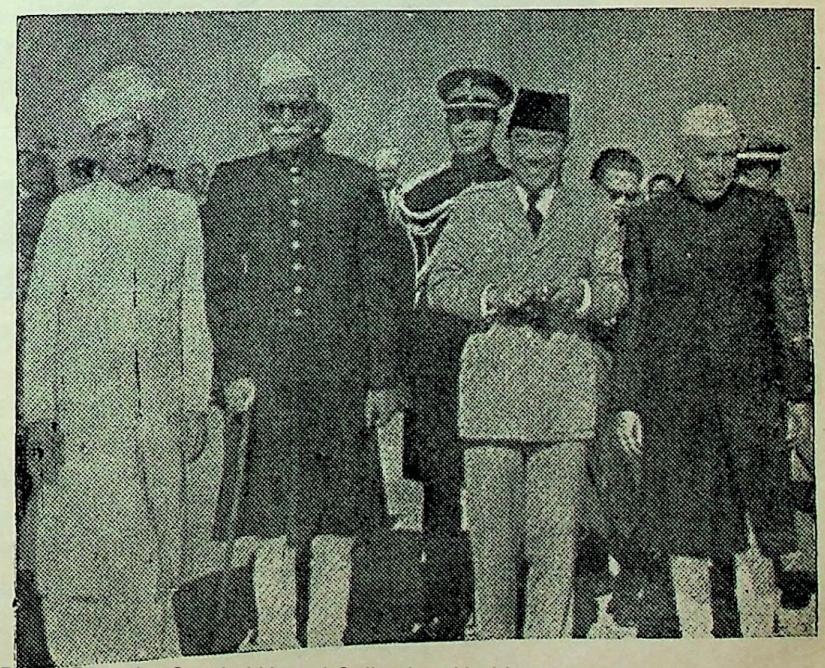

डा० राधाकृष्णन् (जब उपराष्ट्र-पति थे) इन्दोनेसिया के राष्ट्रपति का स्वागत करते हुए। वे ऐसे अवसरों पर भी भारतीय परिधान पहिनते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनरलस्सिमो चियांग काई शेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी प्रमुख पुस्तकों में विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं—उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति इंडियन फिलॉसफी (दो खंडों में)। हिन्दू वे आफ लाइफ, रेन आफ रिलिजन इन कन्टेपररी फिलॉसफी, भगवद्गीता (अंग्रेजी भाष्य सहित) उपनिषदों का अंग्रेजी अनुवाद।

ये सब पुस्तकें अंग्रेजी में हैं। इसका कारण यह है कि संसार के विद्वानों को हिन्दू दर्शन और धर्म से परिचित कराने, और हिन्दूधर्म के प्रति उदासीन अंग्रेजी शिक्षित भारतीयों को अपना स्वरूप ज्ञात कराने के लिए अंग्रेजी माध्यम का प्रयोग करना अनिवार्य था।

उनकी वाग्मिता अप्रतिम थी। उनकी वाणी मधुर और ओजस्वी थी और वे धाराप्रवाह बड़े प्रभावशाली ढंग से भाषण देते थे। उनका अंग्रेजी भाषा पर अपूर्व अधिकार देखकर अंग्रेज विद्वान् भी चकित हो जाते थे। संस्कृत के भी वे पंडित थे और उनकी स्मरण शक्ति असाधारण थी। वे अपने भाषणों में यथास्थान संस्कृत श्लोकों के उद्धरण देते जाते थे जो कंठहार में नगीनों की तरह चमक उठते थे।

आजकल समाचारपत्रों में राजनीतिक 'बड़े' लोगों की इतनी चर्चा होती है कि वास्तविक महान् पुरुष जनता की आँखों से प्रायः ओझल हो जाते हैं। किन्तु जब ये मौसमी राजनीतिक फूल अल्पकाल में मुर्झाकर गिर जायँगे और भुला दिये जायेंगे तब डा० राधाकृष्णन् का कृतित्व उन्हें अमर रखेगा। ऐसे ही महान् पुरुषों के लिए कहा गया है—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

चियांग काई शेक—अप्रैल में एक ऐसे महापुरुष का निधन हो गया जिसकी ओर वर्तमान राजनीति के कारण विशेष ध्यान नहीं दिया गया, किन्तु एशिया या संसार के बीसवीं शती के इतिहास में जिसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। उसने इतिहास में अपना स्थान बना लिया है। वह था जनरलिस्समो चियांग काई शेक।

चियांग काई शेक का जन्म अक्तूबर सन् १८८७ में एक मध्यवित्त परिवार में हुआ था। उन्हें लड़कपन ही से सैनिक बनने की प्रबल इच्छा थी, और वे किशोरावस्था में घर से भाग कर सेना में भर्ती हो गये थे। सन् १९०६ में वे अपनी प्रतिभा के कारण उच्च सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए सैनिक अधिकारियों द्वारा पहले चीन के, और फिर जापान के सैनिक प्रशिक्षण विद्यालयों में भेज दिये गये, जिनमें उन्होंने १९१० तक प्रशिक्षण प्राप्त किया। १९२३ में उन्होंने सोवियत रूस में जाकर सैनिक विज्ञान और वहाँ की राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन किया। वे वहाँ से १९२४ में चीन लौट आये।

चीन में मंचू वंश का राज्य था। मंचू लोग चीनी न थे। वे उसके उत्तर में रहते थे। सन् १६४४ में उन्होंने चीन पर आक्रमण करके उसे जीत लिया और वहाँ का राजा उस पर राज करने लगा। सन् १८०७ में वहाँ पहला प्रोटेस्टेण्ट मिशनरी पहुँचा और बाद में डच, स्पेनी, अंग्रेज और अमरीकी मिशनरी वहाँ बड़ी संख्या में पहुँचने लगे। उसी समय अंग्रेज व्यापारी भी वहाँ पहुँचे। वे भारत से वहाँ अफीम ले जाने लगे और उन्होंने चीनियों में अफीम के सेवन का व्यसन खूब फैलाया। चीनी शासक पश्चिम के इस दोहरे आक्रमण से सशंकित होकर घबड़ा गये। उन्होंने अंग्रेजी व्यापारियों की अफीम जब्त कर ली। किन्तु अंग्रेज चीन में व्यापार करने का अपना अधिकार समझते थे। अतएव १८३९ में अंग्रेजों के आक्रमण कर देने से चीन और इंग्लैण्ड में युद्ध हुआ। चीन की सेना आधुनिक अस्त्र-शास्त्रों से सज्जित न थी, और न वह अद्यतन रण कौशल ही जानती थी। चीन की हार हुई। चीन ने इंग्लैण्ड को हांग-कांग का बन्दरगाह दे दिया, तथा पाँच बड़े नगरों में विदेशियों को रहने और व्यापार करने की भी शर्त मान ली। जनता में इसकी प्रतिक्रिया हुई और सरकार के विरुद्ध विद्रोह हुआ। स्वयं उस विद्रोह को दबाने में असमर्थ मंचू सरकार ने विदेशी सहायता से उसे दबाने की मूर्खता की। अब वे और अधिक राजनीतिक और व्यापारिक रियायतें माँगने लगे। अंत में इंग्लैण्ड और फ्रांस ने मिल कर १८५६ में उससे लड़ाई छेड़ दी, जो १८६० तक चली। चीन फिर हारा। उसे विदेशियों को और अधिक आर्थिक रियायतें देनी पड़ीं। यही नहीं, उसे मिशनरियों को चीनियों को ईसाई बनाने के प्रचार और अंग्रेजों को अफीम का व्यापार अबाधरूप से करने की अनुमति देनी पड़ी। किन्तु चीन का दुर्भाग्य यहीं नहीं समाप्त हुआ। १९०० में विदेशियों के विरुद्ध जनता उठ खड़ी हुई। उधर विदेशी चीन में जहाँ चाहें वहाँ व्यापार करने का अधिकार चाहते थे, जिसे वे open door policy (खुले दरवाजे की नीति) कहते थे। जनता के विदेशियों के विरुद्ध विद्रोह करने पर अपने सजातियों की रक्षा के बहाने रूस, फ्रांस, इंग्लैंड, जर्मनी और जापान ने उस पर मिलकर आक्रमण कर दिया। चीन इन शक्तियों के सामने कहाँ ठहर सकता था। विदेशी सेनाएँ पीकिंग तक पहुँच गयीं। मंचू सरकार ने उनकी सब बातें मान लीं। अमरीका युद्ध में तो सम्मिलित न हुआ, पर वह पाँचों आक्रमणकारियों का समर्थन करता रहा।

इन घटनाओं ने चीन की आन्तरिक निर्बलता को स्पष्ट कर दिया। केन्द्रीय सरकार के कमजोर होने से तथा संचार और यातायात के साधनों की कमी के कारण उस विशाल देश में घोर अव्यवस्था फैल गयी और स्थानीय अधिकारी तथा बड़े जमींदार मनमानी करने लगे। अफीम की लत लगने से जनता वैसे ही दुर्बल हो गयी थी, अब विदेशी आर्थिक शोषण के कारण उसकी अवस्था अत्यन्त दयनीय हो गयी। उस समय कुछ थोड़े से पढ़े लिखे देशप्रेमी और प्रबुद्ध चीनी युवकों ने, जिन्हें विदेशी शिक्षा मिलने का अवसर मिला था या जो विदेशियों के सम्पर्क में आये थे, इस स्थिति से ऊब कर मंचू सम्राट् को अपदस्थ कर चीन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखंडता बनाये रखने तथा उसे प्रजातंत्र बनाने का निश्चय किया।

इन क्रान्तिकारियों का सबसे अधिक कर्मठ और प्रभावशाली नेता सन-यात-सेन था जिसने हांगकांग में डाक्टरी की शिक्षा ली थी। १८९८ में उसने घोषित किया कि मंचू सम्राट् को हराकर प्रजातंत्र स्थापित किया जाय, जिसके आधारभूत सिद्धान्त राष्ट्रीयता, जनतंत्र और समाजवाद होंगे। इससे मंचू सामन्त उसके प्राणों के गाहक हो गये और उसे चीन छोड़कर भागना पड़ा। किन्तु उसके मार्ग दर्शन में उसके अनुयायियों ने आन्दोलन जारी रखा और अंत में उन्हें सफलता मिली। १९१२ में मंचू सम्राट् निकाल बाहर किया गया, चीन प्रजातंत्र घोषित हुआ और सन-यात-सेन को इंग्लैण्ड से बुलाकर चीन प्रजातंत्र का पहला राष्ट्रपति बनाया गया। किन्तु उसकी समाजवादी और प्रजातांत्रिक नीतियों से सामन्त उसके विरोधी हो गये। तीन बार उसे अपने पद से हटना पड़ा। अंत में यह मालूम पड़ने लगा कि सामन्तों के विद्रोह के कारण देश बिखरकर खण्ड खण्ड हो जायगा। ऐसे समय सन् १९२५ में उसकी मृत्यु हो गयी।

१९१० से ही चियांग काई शेक को तत्कालीन राष्ट्रीय और प्रजातंत्रीय भावनाओं ने सन-यात-सेन की ओर आकर्षित किया। धीरे-धीरे वे उनके बहुत ही विश्वस्त पट्ट शिष्य और सहयोगी हो गये। सन-यात-सेन ने राष्ट्रीय चीन की जो सेना बनायी थी उसका नाम 'कुओ मिन टांग, था। रूस से लौटने पर उसे इस सेना को पुनर्गठित और प्रशिक्षण देने का काम सौंपा गया। रून में रहते हुए उसने सभी नेताओं से सहयोग माँगा था और इस कार्य में उसे रूस से सहायता भी मिली। सन-यात-सेन की मृत्यु के समय स्थानीय सेनापति प्रायः स्वतन्त्र हो गये थे और अपने अपने क्षेत्रों के मालिक बन कर जनता पर अत्याचार कर रहे थे। सन-यात-सेन का अखंड चीन का स्वप्न भंग हो गया था। सन-यात-सेन की मृत्यु के बाद चियांग काई शेक ने कुओ मिनटांग की सहायता से, जो उसके प्रति बड़ी निष्ठावान और अनुशासित थी, इन स्वच्छन्द सेनापतियों (वार लॉर्ड्स) को कुचलना आरम्भ किया, और १९२७ तक उसने उन्हें पूरी तरह कुचलकर सारे चीन को एक केन्द्रीय सरकार के अधीन करके सन-यात-सेन का अखंड चीन का स्वप्न पूरा किया। वह राष्ट्रीय विचारों का और प्रजातांत्रिक था। वह कम्यूनिस्टों के सिद्धान्तों का विरोधी था। जब उसने चीन को एक छत्र के नीचे ला दिया और वह अपने को शक्तिशाली अनुभव करने लगा तब वह कम्यूनिस्टों के विरुद्ध हो गया। चीन में भी कम्युनिस्ट थे और उन्होंने अपनी सेना संगठित कर ली थी। अब उनसे उसका युद्ध छिड़ गया, पर जब १९३१ में जापान ने चीन के एक भाग (मंचूरिया) पर आक्रमण करके उसे हड़प लिया तब चियांग की सारी शक्ति जापान से लड़ने में लग गयी। १९३७ में जापान ने चीन के कुछ अल्प भागों पर अधिकार करना चाहा, तब चीनी कम्युनिस्ट चियांग से मिल [illegible] और उनकी सेना भी चियांग के सेनापतित्व में जापान लड़ने लगी।

अभी यह चीन-जापान युद्ध समाप्त नहीं होने पा था कि द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया। जब अमरी पर जापान ने आक्रमण कर उसके विरुद्ध युद्ध घोषित दिया तब चीन ने अमरीका का साथ दिया। मित्र रा के उस समय चार बड़े नेता थे—रूजवेल्ट, चर्चिल, स्त लिन और चियांग काई शेक। चीनी क्षेत्र में लड़नेवा सभी मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ चियांग की कमान में थीं।

सन् १९४५ में जापान ने आत्म-समर्पण कर दिया इसके बाद ही रूस की सोवियत सरकार की सहायता चीन के कम्यूनिस्टों ने अपनी सेना को मजबूत करके धी धीरे सारे चीन पर अधिकार कर लिया। चियांग काई शे को प्रायः पूरी चीनी नौसेना का समर्थन प्राप्त था। क कई लाख कुओ मिनटांग सेना लेकर चीन छोड़कर ताईवा (फारमोसा) चला गया। उसने चीन की कम्यूनिस्ट सरका को स्वीकार नहीं किया, और ताईवान जाकर उसने अप को चीन के प्रजातंत्र के राष्ट्रपति के रूप में स्थापित लिया तथा चीन पर आक्रमण कर उस पर अधिकार क वहाँ फिर से प्रजातंत्र स्थापित करने की असफल योज बनाता रहा। ताईवान काफी बड़ा द्वीप है। वह चीन मुख्य भाग से प्रायः १०० मील पूर्व है। चीन से लेक फारमोसा तक के सब द्वीप उसके अधीन हो गये। इनमें दो छोटे-छोटे द्वीप तो चीन के तट से प्रायः दस मील दूर थे। चीनी कम्यूनिस्टों ने कई वर्ष तक लगात तोपों से गोलाबारी करके उन पर अधिकार जमाना चा किन्तु चियांग की रणकुशलता, व्यूह-कौशल और अ शासित एवं अत्यन्त दक्ष सेना के कारण वे आज तक पर अधिकार नहीं कर सके। चियांग को कई वर्ष अमेरिका का समर्थन प्राप्त रहा। उसने वहाँ ६ ला बहुत दक्ष और आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित तैयार कर ली। उसकी वायु सेना संख्या और शक्ति काफी बड़ी है। कम्यूनिस्ट चीन अभी तक उस पर आ मण कर उसे अपने अधिकार में करने का साहस नहीं सका। ताईवान चीन ही का भाग है और स्वभावतः ची कम्यूनिस्ट सरकार उसे अपने राज्य का अंग समझती है

ताईवान का प्रशासन चियांग ने इतनी दक्षता से कि कि वह इसराइल की तरह और किसी-किसी अर्थ में उससे भी अधिक एशिया का सबसे अधिक उन्नत समृद्ध देश है।

चियांग सन-यात-सेन के सिद्धान्तों के अनुसार चीन प्रजातंत्र स्थापित करने के पक्ष में था। वह सैद्धान्तिक से कम्यूनिस्ट विरोधी था। उसने चीन के एकीकरण जो कार्य किया वह सदैव याद रखा जायगा। वह संत के महान् सैनिकों ही में नहीं गिना जायगा, प्रत्युत कुश प्रशासक के रूप में भी याद रखा जायगा। उसने सन-या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेन के सिद्धान्तों तथा अपने अनुभवों के आधार पर एक पुस्तक भी लिखी थी जो 'चाइनाज डेस्टिनी' के नाम से अंग्रेजी में अनुवादित हो गयी है। प्रधान मंत्री श्री नेहरू के कार्यकाल में उसने भारत की यात्रा भी की थी और उसका बड़ा स्वागत हुआ था। किन्तु चीन में कम्यूनिस्ट सरकार बनने और भारत द्वारा उसे मान्यता देने के बाद भारत ने चियांग काई शेक से सभी प्रकार के सम्बन्ध-विच्छेद कर लिये थे। उनकी मृत्यु से ताईवान (फारमोसा) की समस्या फिर ज्वलन्त हो उठी है। उसका जो भी परिणाम हो, किन्तु संसार के इतिहास के महान् सेनापतियों और राष्ट्र निर्माताओं में चियांग काई शेक का नाम (उनकी अन्तिम असफलता के बावजूद) अवश्य लिया जायगा।

उत्तर प्रदेश के न्यायालयों की विज्ञापतियों की भाषा—हम नहीं जानते कि उत्तर प्रदेश के न्यायालयों के कार्य में कैसी भाषा का प्रयोग होता है, किन्तु उनकी जो विज्ञप्तियाँ हिन्दी समाचारपत्रों में छपती हैं उनकी भाषा के दो नमूने हम यहाँ देते हैं।

पहला नमूना (अमर उजाला, बरेली, ३१-१२-१९७४)

सम्मन—आदेश अनुसार श्री एम० एस० शुक्ला सिविल जज बरेली,

नम्बर मुकदमा १२९|७४ इश्तहार मुजरिया।

बअदालत सिविल जज बरेली

मुकाम बरेली

दरख्वास्त मुसम्मी शारदा देवी w/o कृष्णप्रसाद जौहरी नि मौ कानून गोयान भूड़ बरेली श्री कृष्णप्रसाद जौहरी मुतवर्फा ५ मई सन १९७३ ई० लालता प्रसाद सक्सेना पुत्र श्री कृष्ण प्रसाद जौहरी निवासी मौ० कानून गोयान भूड़ बरेली निवासी हाल लखनऊ C/514 नगर पालिका कालोनी निराला नगर, लखनऊ।

हरगाह मुसम्मी शारदा देवी दरख्वास्त हसल सर्टीफिकेट और तारीख २५-१-७५ वास्ते समायत दरख्वास्त हाजा के मुकर्रर हुई है लिहाजा इश्तहार जारी किया जाता है कि जिस किसी को दरख्वास्त हाजा की निस्बत कोई उजर हो असालतन या वकालतन बतारीख २५-१-७५ पेश होकर दरख्वास्त हाजा की निश्वत उजर पेश करें दरसूरत इलाजे तारीख मुकर्रर उजर निस्बत दरख्वास्त सुना नहीं जावेगा और मुलासिव हुक्म निस्वत दरख्वास्त हाजा सादिर होगा।

आज बतारिख २१|१२|७४ मेरे दस्तखत व मोहर अदालत से जारी किया गया।

जज परमानन्द सक्सेना
मुन्सरिम
सिविल जज बरेली।

दूसरा नमूना (स्वतन्त्र भारत, लखनऊ, ७ अप्रैल १९७५।

अदालती नोटिस—समन बगरज इनफिसाल मुकद्दमा (आर्डर ५, कायदा १ व ५, मजमू आ जाब्ता दीवानी सन १९०८ ई०)

बअदालत हाकिम तहसील मुकाम हैदरगढ़ जिला बाराबंकी

कुदरत अली —मुद्दई

बनाम

वहाजुद्दीन आदि —मुद्दाअलेह

बनाम—(१) हकीमुद्दीन पुत्र वाहिद अली, (२) अबरार हुसेन पुत्र वारिस अली साकिनान पारा इब्राहिम परगना सिद्धौर बाराबंकी।

वाजेह हो कि वादी ने आपके नाम एक नालिश बाबत———के दायर की है लिहाजा आपको हुक्म होता है कि आप बतारीख २१ माह ४ सन् १९७५ ई० बवक्त १० बमुकाम सदर असालतन या मारफत वकील के जो मुकद्दमा के हालात से करार वाकई वाकिफ किया गया हो और जो कुल उमूरात अहम मुताल्लिका मुकद्दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख्स हो कि जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाजिर हूजिये और जवाबदेही दावा की कीजिये और हरगाह वही तारीख जो आपकी हाजिरी के लिए मुकर्रर है वास्ते इनफिसाल कत्तई मुकद्दमा के तजबीज हुई है पस आपको लाजिम है कि उस रोज अपने जुमला गवाहों को, जिनकी शहादत पर नीज जुमला दस्तावेजात जिनपर आप बताईद अपनी जबावदेही के इस्तदलाल करना चाहते हों उसी रोज पेश कीजिये।

और आपको इत्तिला दी जाती है कि अगर बरोज मजकूर आप हाजिर न होंगे तो मुकद्दमा बगैर हाजिरी आपके मसमूअ और फैसल होगा।

बसब्त मेरे दस्तखत और मुहर अदालत के आज बतारीख————ई० जारी किया गया।

—दस्तखत हाकिम व मुहर अदालत।

ये विज्ञप्तियाँ हिन्दी पत्रों में छपी हैं। उर्दू समाचार पत्रों में भी छपती होंगी जिनकी भाषा के ये अनुकूल हैं। किंतु ये न्यायालयों से जारी की गयी हैं और स्पष्ट है कि हमारे न्यायालय अपनी विज्ञप्तियों में कैसी 'हिन्दी' का प्रयोग करते हैं, जो राज्य की विधिसम्मत राजभाषा है। हमसे बताया गया है कि न्यायालयों में देवनागरी लिपि का व्यापक प्रयोग होता है। यदि यह सच है, तो संतोष की बात है। किंतु जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, यदि इन विज्ञप्तियों की भाषा उनकी भाषा के नमूने हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे न्यायालयों ने भाषा के मामले में सर एंथनी मैकडानैल के सन् १९०० के अप्रैल के आदेश के आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई प्रगति की है। हम नहीं जानते कि इन न्यायालयों में राजभाषा हिन्दी को चलाने का उत्तरदायित्व राज्य सरकार का है या उच्च न्यायालय का। ये विज्ञप्तियों (समन) के प्रपत्र (फार्म) शासन की आज्ञा से गवर्मेंट प्रेस में छापे जाते हैं और इनमें वादी, प्रतिवादी, न्यायालय के नाम और तारीख आदि के लिए जगह छोड़ दी जाती है। न्यायालय का मुंसरिम इन्हें भर कर प्रकाशित करा देता या प्रतिवादी को भेज देता है। राज्य सरकार का दावा है कि उसने सभी सरकारी प्रपत्र हिन्दी में करा दिये हैं। प्रश्न यह है कि इनका अनुवाद हिन्दी में क्यों नहीं कराया गया? सरकार का अपना भाषा विभाग है जो इस काम को कर सकता है। यदि आवश्यक हो तो उच्च न्यायालय या विधि विभाग से उस अनुवाद की स्वीकृति भी करायी जा सकती है। या यह 'दो मुल्लाओं के बीच मुर्गी के हलाल होने' का उदाहरण है? हम राज्य सरकार और उच्च न्यायालय का ध्यान इस ओर आकर्षित करके कहना चाहते हैं कि इसकी शब्दावली— हरगाह, मुसम्मी, वास्ते समाअत, दरख्वास्त हाजा, असालतन, दर सूरत, सादिर, उमूरात अहम मुताल्लिका, इनफ़िसाल क़तई, तजवीज हुई, जुमला दस्तावेज़ात, इस्तदलाल, बरोज़ मज़कूर, फ़ैसल आदि—सामान्य नागरिक के लिए दुरूह है और इसलिए जनता के हित में नहीं है। यह विशुद्ध उर्दू ही नहीं, इसका शब्द-विन्यास और व्याकरण भी फ़ारसी का है। 'वास्ते समाअत, असालतन, दरसूरत, उमूरात, दस्तावेज़ात (अहिन्दी बहुवचन), बरोज़ मज़कूर आदि हिन्दी शैली और हिन्दी व्याकरण के विरुद्ध हैं हमारी सरकार के कर्णधार— श्रीमती इन्दिरा गाँधी और श्री इन्दरकुमार गुजराल से लेकर श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा तक—हम हिन्दी वालों को 'सरल' हिन्दी का प्रयोग करने का बराबर उपदेश दिया करते हैं। क्या उनकी सरल हिन्दी की यही कल्पना है?

एक बात उच्च न्यायालय के संबंध में भी हम कहना चाहते हैं। हम प्रयाग के 'भारत' में उसके द्वारा इस प्रकार की विज्ञप्तियाँ कभी-कभी छपी हुई देखते हैं। 'भारत' हिन्दी का पत्र है, किंतु उसकी विज्ञप्तियाँ हमने 'भारत, में सभी अंग्रेजी में छपी देखीं। उदाहरण के लिए हाल ही में यह विज्ञप्ति उस पत्र में प्रकाशित हुई थी :

In the High Court of Judicature at Allahabad
Civil Side
(Chapter XII, Rules 1 and 7)
Miscellaneous Application No. 3976 of 1973
In Special Appeal No. 1059 of 1970

Thag Singh and others—Applicant
D. D. C. and others—Opp. Par

To,—14. Raghunandan, s/o Sat Ram r village Thubha Mohan, Pargana Kapach West, P. O. Hajauli, District Ballia—Oppos party.

Whereas the above mentioned applica has made an application to the Court for sub titution in the above noted case. You a hereby called upon to enter appearance on before the 21st day of April, 1975 to sho cause why the application be not granted. Th said application will be heard on the abo mentioned date.

Take notice that in default of appearan on or before the day before mentioned in pe son or by Advocate or by some person by la authorized to act on your behalf, the applic tion will be heard and determined in yo absence.

Given under my hand and the seal of t Court this, the 19th day of March, 1975.

(Sd.) Rama Shanker Misra, Advocate appellant.

(Sd.) C. P. Srivastava, Deputy Registra Allahabad.

12-66—21-3-75

यह विज्ञप्ति बलिया जिले के एक बहुत भीतरी गाँव एक व्यक्ति के सूचनार्थ है। सामान्य रूप से ये ग्रामीण अंग्रे नहीं जानते। यदि न्याय के हित में उन्हें सूचना देना आवश्य है तो उसे अंग्रेजी में छापने से वह उद्देश्य पूरा नहीं होत फिर हिन्दी पत्रों के बहुत से—विशेषकर ग्रामीण पत्र अंग्रेजी नहीं जानते। अतएव उनमें अंग्रेजी में ये सूच छापने से, कानूनी खानापूरी भले ही पूरी हो जाय, इ न्याय का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। हिन्दी पत्रों में ये अं की सूचनाएँ गायों के समूह में बुलडॉग की तरह मालूम हो हैं। वर्तमान मुख्य न्यायाधीश को जनता के हितों का ध्यान है, और वे 'डाईहार्ड अंग्रेजी फैनेटिक' भी नहीं भाषा के संबंध में उनका दिमाग़ खुला और निष्पक्ष हम उनका ध्यान इस ओर बड़ी विनम्रता से आकर्षित क हैं और आशा करते हैं कि जनता के लिए जो सूचनाएँ माननीय न्यायालय से निकाली जायँ वे यथासंभव हि में हों और कम से कम हिन्दी समाचार-पत्रों में तो हिन्दी ही में प्रकाशित की जायँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व के महान् दार्शनिक और शिक्षाविद् डा० राधाकृष्णन्

(संक्षिप्त जीवनवृत्त और परिचय)

श्री महेश बी० शर्मा

युगों के परिवर्तन के साथ महान् विभूतियों का जन्म इस धराधाम पर हुआ है। देश काल के अनुरूप मानव समाज में सदा ही कुछ ऐसे विशिष्ट प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति होते हैं जो अपने अव्यक्त व्यक्तित्व की आभा से ही जन-समाज सुधारक, जननेता तथा अपनी अध्ययनशील मनोवृत्ति के परिणामस्वरूप महान् शिक्षा-विद् बन जाते हैं। ऐसे व्यक्तित्व की आभा में सुगठित शरीर एवं सुन्दर रूप-रंग की विशेषता न होकर चारित्रिक आलोक की प्रधानता होती है। ऐसे ही व्यक्तित्ववाले विश्व के महान् दार्शनिक और शिक्षाविद् डा० राधाकृष्णन् का जन्म मध्यवर्गीय परिवार में ५ सितम्बर १८८८ को मद्रास प्रान्त में तिरुतनी नामक ग्राम में हुआ था। आरम्भ से ही आप पर माता-पिता के सद्गुणों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। आप अध्ययन के क्षेत्र में मेधावी तथा अध्ययनशील छात्र रहे।

आपने १९०३ में मेट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। मद्रास क्रिश्चियन कालेज से आपने दर्शन शास्त्र में स्नातकोत्तर परीक्षा सर्वोच्च अंकों से पास की थी। डा० राधाकृष्णन् १९०८ में 'वेदान्त में नीतिशास्त्र' नामक ग्रंथ की रचना की थी। यह आपने एम० ए० करने से एक वर्ष पूर्व ही लिख डाला था। तदुपरान्त १९१७ तक आप मद्रास में अध्यापन कार्य करते रहे और फिर मैसूर विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र के आचार्य हुए। इन्हीं दिनों आपने 'भारतीय दर्शन' नामक पुस्तक लिख कर विदेशों में दर्शनशास्त्र के सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा बढ़ाई। डा० राधाकृष्णन् की प्रखर बुद्धि व अद्वितीय विचारधारा से प्रभावित होकर १९३१ में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें 'सर' की उपाधि से सम्मानित किया, तथा १९३६ में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने आपको डाक्टरेट की उपाधि से न केवल विभूषित किया वरन् वहीं पर 'दर्शनशास्त्र' के पन्द्रह वर्ष के लिए प्रोफेसर भी बना दिया।

वे १९३९ से १९४८ तक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के और १९५३ से १९६२ तक दिल्ली विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद पर रहे। सितम्बर १९४९ से मार्च १९५२ तक आप रूस में भारत के राजदूत रहे। इस पद पर आपने वहाँ पर जो कार्य किया वह अन्य व्यक्ति के बस का नहीं था। स्तालिन से विदेशी अधिकारियों की भेट नहीं होती थी, किन्तु डा० राधाकृष्णन् को उनसे दो बार लम्बी भेंट करने का अवसर मिला। १९५२ में वे भारत के उपराष्ट्रपति पद पर आरूढ़ हुए। फिर १९६२ में राष्ट्रपति पद पर प्रतिष्ठित हुए। आपने इस पद का गौरव बढ़ाया। सभी क्षेत्रों में आपकी महानता से प्रभावित हो भारत सरकार ने आपको १९५४ में 'भारत रत्न' की उपाधि प्रदान की।

भारत को अपने जिन इने गिने धुरन्धर विद्वानों तथा महान् शिक्षाशास्त्रियों पर गर्व है उनमें डा० राधाकृष्णन् अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। डा० राधाकृष्णन् ने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से भारतीय धर्म, संस्कृति एवं भारतीय तत्त्वज्ञान का उज्ज्वल स्वरूप विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया था। उनके व्यापक दृष्टिकोण ने समस्त विश्व को आकर्षित करके पूर्व और पश्चिम का बड़ा सुन्दर समन्वय किया। भारतीय धर्म, संस्कृति तथा तत्त्वज्ञान में आपका सुन्दर विवेचन समग्र संसार में बेजोड़ सिद्ध हुआ।

दार्शनिक तत्त्वों से ओत-प्रोत आपके आध्यात्मिक विचारों की झलक इन पंक्तियों में स्पष्ट हो जाती है—

"भौतिक सुधार चाहे जितना हो जाय पर सृष्टि के गूढ़ तत्त्वों की खोज के कार्य में अध्यात्मवाद की ही शरण में जाना पड़ता है। अध्यात्मवाद के सामने व्यक्तिगत भावनाओं अथवा आकांक्षाओं या अन्य वस्तुओं का मूल्य शून्य ठहरता है। धर्म का सम्बन्ध जीवन के प्रत्येक क्षण से है। यह लेखन या विचार का नहीं, अपितु आचार का विषय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में निम्न से निम्न व्यक्ति भी साधारण नीति और नियमों के अनुसार धर्म के सिद्धान्तों को प्रत्यक्ष व्यवहार में उतारने का प्रयत्न करता है।"

जब डा० राधाकृष्णन् संयुक्त राष्ट्र-संघ की समिति 'यूनेस्को' के सदस्य और अध्यक्ष थे तब आपने अपने भाषण में कहा था, "अगर राष्ट्र मिलकर चलेंगे तो बच जावेंगे।" यूनेस्को में ही स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री नेहरूजी ने आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर कहा था, "सरस्वती के वरद पुत्र डा० राधाकृष्णन् कविवर रवीन्द्र के समान ही अपनी कृतियों और विचारों से विश्वबन्धुत्व और सब धर्मों की एकता में संसार की आस्था पर सदैव बल देते रहे।" आप पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों को मिलानेवाले महान् पुरुष थे। कम बोलनेवाले तथा मृदुभाषी थे।

भारत के राष्ट्रपति के रूप में जब डा० राधाकृष्णन् विदेश-यात्रा पर गये तब प्रत्येक देश में आपको वहाँ की जनता तथा प्रमुख राजनायकों एवं राष्ट्र के अधिकारियों व प्रमुखों द्वारा अभूतपूर्व सम्मान और प्रेम प्राप्त हुआ था। ईरान में उन्हें 'शांतिदूत' कहा गया। अफगानिस्तान ने आपको पूर्व का ऋषि और 'श्रेष्ठ आर्य' कहा। अमेरिका ने आपके स्वागत में उन्हें "राष्ट्रों के बीच न्याय और बंधुत्व का प्रेमी" बतलाया। ब्रिटेन की महारानी ने आपको सर्वोच्च उपाधि 'आर्डर आफ मेरिट' से सम्मानित किया। ब्रिटेन के समाचार-पत्र 'ईवनिंग टेलीग्राफ' ने आपके विषय में लिखा था, "यदि आज संसार के राजनीतिक नेताओं में भारतीय राष्ट्रपति जैसी विद्वत्ता और बुद्धि होती तो न केवल हम अनेक उलझनों और पचड़ों से बच जाते, वरन् हमें इस अणुयुग में मानव के भविष्य के बारे में चिन्ता न होती।"

देश के लिए नवीन तथा सुगठित शिक्षा-प्रणाली चला जाने के हेतु जिस आयोग का गठन किया गया था, उसक आपको अध्यक्ष बनाया गया था। उस आयोग का प्रतिवेद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वतन्त्र भारत का संविधान बनान वाली परिषद् के भी आप मान्य सदस्य थे। महा अध्यापक के रूप में सीलोन और लंदन के विश्वविद्यालय ने आपको एल-एल० डी० की सम्मानपूर्ण उपाधि प्रदा की थी। इसी भाँति विश्व के अन्य विद्यालयों ने भी समय समय पर आपको दर्शन और अन्य विषयों में डाक्टरेट क सम्मानार्थ उपाधियों से विभूषति किया था।

डा० राधाकृष्णन् सौजन्यशील, गंभीर एवं आदर्श व्यक्ति थे। आपकी स्मरण शक्ति अद्भुत थी। आपक जीवन साधना का आदर्श जीवन है। आप प्रकृति से सन्त और व्यवहार में कुशल राजनीतिज्ञ थे। 'सादा जीवन और उच्च विचार' आपका सदा आदर्श रहा। आप दार्शनि पहले थे और राजनीतिज्ञ बाद में। दर्शन के क्षेत्र में आप गम्भीर अध्ययन करके अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना की अंग्रेजी भाषा पर आपका असाधारण अधिकार था। आ उसमें बड़े प्रभावशाली वक्ता भी थे।

विश्व के इस महान् दार्शनिक, शिक्षाविद् एवं भारती संस्कृति और धर्म के व्याख्याकार का १६ अप्रैल की मध्य रात्रि के आसपास मद्रास में देहावसान हो गया। अध्ययन शील होते हुए भी उन्होंने सामाजिक और राजनीति क्षेत्रों में भारतीय जनता तथा जन नेताओं को उज्ज्व भविष्य निर्माण करने के हेतु जो मार्गदर्शन दिया चिरस्मरणीय रहेगा।

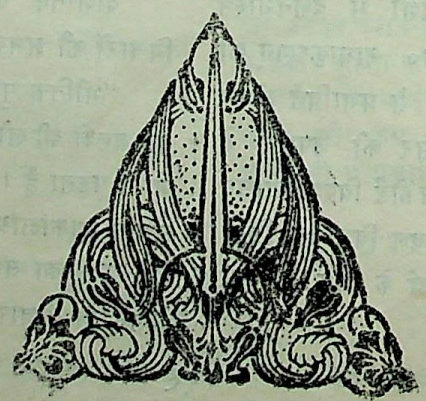

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी आलोचना : उपलब्धियाँ और अभाव (१)

डा० नारायणप्रसाद वाजपेयी 'करुणेश'

[उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सोलहवें अधिवेशन के अवसर पर डा० नारायणप्रसाद वाजपेयी के संयोजन में 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-आलोचना' विषयक एक साहित्य विमर्श गोष्ठी आयोजित हुई। गोष्ठी की अध्यक्षता हिन्दी के सुप्रसिद्ध मानवतावादी समालोचक तथा नव्य साहित्य समीक्षा चिंतन के 'निरन्तर' नामक पत्र के यशस्वी सम्पादक, कानपुर के श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी ने की। गोष्ठी का प्रवर्त्तन डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने किया। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी प्रभृति ने हिन्दी आलोचना के मूल प्रश्नों और सन्दर्भों को रेखांकित किया। गोष्ठी की समाप्ति डा० नारायणप्रसाद वाजपेयी के प्रस्तुत निबन्ध से हुई।]

हमें देखना है कि स्वतंत्रता के सत्ताईस वर्षों की अवधि में हमारे साहित्य की समीक्षा मनीषा साहित्य सरणि के विकास क्रम के किन-किन स्तरों से गुजरी है, किन सोपानों को वह पार कर चुकी है, कौन से मील के पत्थर और कौन से प्रकाशस्तम्भ हिन्दी आलोचना की सरणि में स्थापित हुए हैं, कौन सी वे परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ हैं जो हमारे सृजनशील और समीक्षा साहित्य के लिए अशुभ अस्वाथ्यकर और खतरनाक हैं, वे कौन से तत्त्व हैं जो साहित्य में व्याप्त असंगतियों एवं हमारी संवेदनशीलता के गत्यवरोध के लिए उत्तरदायी हैं।

आलोचना रचनात्मक साहित्य सर्जना से धारावाहिक रूप में संश्लिष्ट, साहित्य की वह स्वतंत्र विधा है जिसका प्रमुख लक्ष्य है साहित्य का सर्वांगीण विमर्श।

कृतिकार की प्रेरणा, परिवेश और वैयक्तिक अनुभूतियों के आलोक में तथा सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक परंपरा के गतिशील परिप्रेक्ष्य में शास्त्रीय प्रतिमानों एवं युगीन मूल्यों के सापेक्ष कृति को आधार बनाकर की गयी वैचारिक संघटना ही आलोचना है।

'अन्तर्भाष्य अवान्तरार्थ विच्छेदश्च समीक्षा।' सच्ची आलोचना अवान्तरार्थों को स्पष्ट करती है, कृति के कलेवर सम्बन्धी बहिरंग निरूपक, स्थूल गुण-दोष व्यंजक विवेचन से आगे बढ़कर मर्मों का उद्घाटन करती है, कृति के अतल गर्भ में छिपे अप्रस्तुत प्रतीकों, संकेतों, बिम्बों और गूढ़ ध्वनियों के सौन्दर्य का अन्वेषण करती है। वांग्मय के सान्द्र रस से अभिषिक्त करा सकना, अर्थ की अतिपत्ति, कृतिकार की अन्तर्दृष्टि का साक्षात्कार और कृति के मूल्यांकन के निकष निर्णीत कर सकने की क्षमता, उनके आधार पर कृति की समष्ट्यात्मक परख करना—ये सभी तत्त्व समालोचक के दायित्व को गुरु गम्भीर बना देते हैं।

सामाजिक आदर्शों एवं वैयक्तिक प्रेरणाओं और आकांक्षाओं के बीच साहित्य की जो रसवन्ती प्रवाहित होती है वह आलोचना के आलोक में नये संस्कारों, नयी उद्भावनाओं, नये अर्थगौरव और नवीन संकेतों से सम्पन्न होती चलती है।

आलोचना साहित्य-चिन्तन को नये वातायन, नये क्षितिज, नये गवाक्ष, नयी दिशाएं, नये आयाम और नयी प्रेरणाएं देती है।

आलोचना जब रचनात्मक साहित्य से कदम से कदम मिलाकर नहीं चल सकती, जब उसकी संवेदना क्षीण संकीर्ण और प्राणशक्ति अवरुद्ध हो जाती है, तब वह वादों की बैसाखी का सहारा लेती है। साहित्यिक संरक्षण, पक्षपात, पूर्वाग्रह, दलबंदी के स्ट्रेचर पर चलनेवाली रुग्ण कातर मृत आलोचना अपने प्रभावों से समकालीन साहित्य को भी न्यूनाधिक प्रदूषित करती है। यह खतरनाक स्थिति साहित्य के सृजन और समीक्षा दोनों पक्षों में अन्तराल, एकरसता, ठहराव और जबर्दस्त अन्तर्विरोधों को जन्म देती है। इन्हीं विषम द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों में, भाव-योग के कुन्द होने पर, समीक्षकों के सिर पर बिजली गिरानेवाले और अपनी कृति द्वारा समीक्षकों को ताल ठोंक कर चुनौती देनेवाले प्रतिभा के ऐसे ज्योतिपुंज—कालिदास, भवभूति, तुलसी, निराला, मुक्तिबोध सरीखे साहित्यिकों के रूप में जन्म लेते हैं, जो न केवल सृजनशील साहित्य में कालजयी कीर्त्ति पाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं अपितु आलोचना के दिग्दिगंत को जाज्वल्यमान करने वाली, युगांतर उत्पन्न करनेवाली प्रकीर्ण आलोक शिखाएँ भी दे जाते हैं।

हमारे राष्ट्रीय इतिहास जीवन में सर्वाधिक महत्त्व की घटना है भारतीय स्वतंत्रता।

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ जबर्दस्त विसंगतियों, नैतिक विघटन और अन्तर्विरोधों का एक तूफानी दौर आया। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विभीषिकाओं से घिरे हमारे जनगण ने आस्था-अनास्था, आशा-निराशा, परंपरा-आधुनिकता के पार्श्वों में आत्मप्रवंचना और विडम्बना का भग्न कुंठित संगीत सुना और मूल्यों और आदर्शों का द्रुत परिवर्त्तन भोगा।

निश्चय ही स्वतंत्रता प्राप्ति पर्यन्त हमारे साहित्य का मूल स्वर देशभक्त, राष्ट्रवादी और प्रगतिशील एवं सुधारोन्मुखी रहा। स्वतंत्रता के पश्चात् यह केन्द्रीय स्वर क्षीण हो गया और समकालीन साहित्य में विविधता और बिखराव आया।

हमारे साहित्य में यही विविधता और बिखराव बदलते सन्दर्भों में व्यंजित हुए हैं।

चाहे मानवीय समस्याओं, नव-जागरण, सौन्दर्यबोध और व्यक्ति-स्वातंत्र्य से सम्बद्ध साहित्य हो अथवा जनजीवन की अस्तव्यस्तता, दर्द, कुण्ठा, घृणा, क्रोध, संत्रास, आक्रोश, विद्रोह, आशा, नैराश्य, जडता, विपन्नता, अकर्मण्यता, भय, विश्वास, आत्मरति, अहं आदि वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का साहित्य, साहित्य के समाजोन्मुखी और एकांतिकतावादी दोनों स्तरों पर क्रमशः प्रतिकार, सहिष्णुता और पलायन की प्रवृत्तियाँ प्रतिफलित हुई हैं।

इन्हीं प्रवृत्तियों के प्रयोग, सम्भावनाओं और उपलब्धि रूप सोपानों की परंपरा अथवा रूढ़ि में बदलने की प्रक्रिया का रिपोर्ताज हमारे इस साहित्य का इतिहास है।

मध्ययुगीन ह्रासोन्मुखी आलोचना जब अपनी अंतिम साँसें गिन रही थी। उस समय भारतेन्दुजी का उदय हुआ। उनकी 'नाटक' नामक समीक्षा रचना से प्रारम्भ होनेवाली हिन्दी समीक्षा विधा क्रमशः सिद्धान्त और व्यवहार दोनों पक्षों में विकसित होती गयी।

१९०० ई० में सरस्वती का आरम्भ और १९०३ ई० से आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी द्वारा उसका संपादन हिन्दी समीक्षा के विकास के इतिहास में बड़े महत्त्व घटनाएँ हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल में द्विवेदी युग समीक्षात्मक उपलब्धियों का उत्कृष्ट समाहार पूर्ण परि से मिलता है। शुक्लजी की समीक्षा की केन्द्रीय दृ रस है और लोकमंगल है उनका काव्यादर्श। आच महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा निरूपित हिन्दी समीक्षा रूपरेखा में रंग भरने, उसको प्रशस्त करने और शास्त्री मर्य्यादा देने का श्रेय शुक्लजी को है। हिन्दी समीक्षा के शिखरतम मनीषी आचार्य शुक्ल के संबंध में डा० रामविला शर्मा के शब्दों में कहना समीचीन होगा कि 'कथा साहि के क्षेत्र में जो कार्य प्रेमचन्द ने किया, काव्य के क्षेत्र जो कार्य निराला ने किया आलोचना के क्षेत्र में कार्य आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया।'

शुक्लजी द्वारा प्रवर्त्तित शास्त्रीय समीक्षा धारा अन्तर्गत आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पं० कृष्णश शुक्ल, डा० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', डा० केसरीनारा शुक्ल, डा० भगीरथ मिश्र, डा० रामशंकर शुक्ल 'रसा बाबू कृष्णानन्द गुप्त, डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, सत्येन्द्र, डा० जगन्नाथ शर्मा, श्री जनार्दनप्रसाद झा 'द्वि आदि अनेक सिद्ध सुधी साहित्य समीक्षक आते हैं।

शुक्लजी ने जिस हिन्दी समीक्षा का नव प्रव किया, उसके अनंतर हिन्दी में जिस समीक्षा धारा विकास हुआ वह स्वच्छन्दतावादी समीक्षा धारा के से जानी जाती है।

इस समीक्षा धारा के अन्तर्गत आनेवाली 'निराला' प्रबंध प्रतिमा, प्रबंध-पद्म, रवीन्द्र कविता कानन, गीति अनामिका और परिमल की भूमिकाएँ एवं चाबुक लिखे निबंध और टिप्पणियाँ, 'प्रसाद' की काव्य कला तथा अन्य निबंध, पंत की पल्लव की भूमिका, और दर्शन, महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, साहित्य की आस्था और अन्य निबन्ध आदि कृतियाँ छायाव कवियों की काव्य और आलोचना-विषयक मान्यताओं पारदर्शी परिचय दे दी हैं।

इसी समीक्षाधारा के अंतर्गत आती हैं छायाव कवियों के सहृदय व्याख्याकार पं० शांतिप्रिय द्विवेदी आत्मव्यंजक उद्भावनाएँ, इलाचन्द्र जोशी की मनोवि णात्मक समीक्षाएँ और गंगाप्रसाद पाण्डेय की महा निराला पर लिखी समीक्षाएँ। पं० विष्णुकांत शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि निराला की वेदना और अन्य निबंध, 'कुछ चंदन की कुछ कपूर की' तथा केदारनाथ सिंह का 'कल्पना और छायावाद' आदि इसी समीक्षा शैली के उदाहरण हैं।

हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा धारा के उत्थान से लेकर नव्यतम हिन्दी समीक्षा के उदय और विकास तक इतिहास और संस्कृति की परिवर्त्तनशील परिस्थितियों के अध्ययन द्वारा रचनाकारों के विशिष्ट काव्य मूल्य की प्रतिष्ठा करनेवालों में स्वतंत्रचेता समीक्षक आते हैं।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० जानकीवल्लभ शास्त्री, आचार्य हजारीप्रसादजी द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा, श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी, डा० नगेन्द्र, डा० सत्येन्द्र, डा० रामधारीसिंह 'दिनकर', डा० देवराज, जयनाथ 'नलिन', डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' आदि समालोचक इसी समीक्षा धारा के प्रतिनिधि आलोचक हैं।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की समीक्षा, अपने विस्तार और गहनता में, सुस्पष्टता, दृढ़ता, आत्मविश्वास और सूक्ष्म मर्मभेदी दृष्टि से संवलित होकर पं० रामचन्द्र शुक्ल की याद दिलाती है। यों तो वाजपेयीजी ने 'सूरदास' पर उत्कृष्ट समीक्षा लिखकर प्राचीन साहित्य की गहरी परख का प्रमाण भी दिया है किन्तु वे सच्चे अर्थों में खड़ी-बोली के हिन्दी साहित्य के समीक्षाशास्त्री हैं। प्रयोगवादी कवियों और सप्तक महारथियों की प्रत्यालोचना करते हुए भी वाजपेयीजी ने नये साहित्य की उपलब्धियों और महत्त्व को उदारतापूर्वक स्वीकारा है। छायावाद, प्रगतिवाद, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, सनेही, प्रसाद, निराला, दिनकर, मुक्तिबोध, अंचल और नये कवियों की मौलिक और सुचिन्तित समीक्षा हिन्दी को देने का श्रेय उन्हें है। उन्होंने पाश्चात्य और पौरस्त्य काव्य सिद्धान्तों का समसामयिक सृजनशील साहित्य के सन्दर्भ में समन्वय करके समीक्षा के आदर्शों और मूल्यों की स्थापना की दिशा में क्रान्तिकारी कार्य किया।

साहित्य को इतिहास, समाज-परंपरा और मानवीय संस्कृति के अविच्छिन्न परिप्रेक्ष्य में परखने वाले समीक्षकवर आचार्य हजारीप्रसादजी द्विवेदी हैं। 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' लिखकर द्विवेदीजी ने आचार्य शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' की विसंगतियों और आग्रहों का निराकरण किया और साहित्य प्रवाह को एक सुस्पष्ट धारावाहिक दृष्टि दी, उसे एक वृहत्, उदात्त, विराट्, विस्तृत परंपरा के दर्शन कराये। कबीर और नाथ सिद्धों की उपलब्धियों के उत्कर्ष और परिणाम द्विवेदीजी की आलोचना से स्पष्ट हुए। द्विवेदीजी में शाश्वत मूल्यवान तत्त्वों की सार्थकता के प्रति श्रद्धा भाव और उज्ज्वल अभिनव तत्त्वों का अभिनिवेश मिलता है। कबीर, सूर, कालिदास, अपभ्रंश साहित्य और समसामयिक साहित्य की समीक्षा के क्षेत्र में द्विवेदीजी की कृतियों ने अपनी जबर्दस्त छाप छोड़ी है।

डा० नगेन्द्र की 'सुमित्रानन्दन पन्त', 'साकेत', 'कामायनी', 'उर्वशी', 'कुरुक्षेत्र' आदि की समीक्षाएँ, साहित्य की विविध प्रवृत्तियों और सृजनात्मक कृतियों का विवेचन करनेवाले निबन्धों का संग्रह 'आस्था के चरण' तथा उनकी शास्त्रीय महत्त्व की सामयिक कृति 'रस-सिद्धान्त' उन्हें उच्चकोटि के स्वतंत्रचेता आलोचकों में सुप्रतिष्ठित करती है। डा० नगेन्द्र की समीक्षाओं में उनकी रसग्राही दृष्टि, गंभीर तर्काश्रित विचार, सौन्दर्यशास्त्रीय संवेदना, मनोविज्ञान और पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्य शास्त्र में उनके अध्ययन मनन अनुशीलन की प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है। सांस्कृतिक चेतना, इतिहास बोध और जनवादी अवधानता की ओर नगेन्द्रजी ने इतना ध्यान नहीं रखा है। उत्कर्ष और परिमाण दोनों दृष्टियों से नगेन्द्रजी ने हिन्दी साहित्य के सैद्धान्तिक व्यावहारिक समीक्षा शास्त्र तथा शोध तंत्र के क्षेत्र में ठोस और स्थायी महत्त्व का कार्य किया है।

इतिहास दर्शन और सांस्कृतिक बोध से अनुप्राणित डा० देवराज की समीक्षाओं में एक प्रौढ़ रचनात्मक, सूक्ष्मग्राही दृष्टि एवं सहृदयता और वैदग्ध्यपूर्ण बौद्धिकता का परिचय मिलता है। छायावादी काव्य का पतन, प्रगतिवादी समीक्षा : एक दृष्टि, साहित्य चिन्ता, आधुनिक-समीक्षा, प्रतिक्रियाएँ, आधुनिक हिन्दी आलोचना का उदय और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी आलोचना की अर्वाचीन प्रवृत्तियाँ, आदि कृतियाँ डा० देवराज की महत्त्वपूर्ण समीक्षाएँ हैं। त्यागपत्र, बाणभट्ट की आत्मकथा, नदी के द्वीप, भाषा और संवेदना पर की गयी समीक्षाएँ डा० देवराज की समसामयिक प्रबुद्ध समीक्षा दृष्टि का परिचय देती हैं। उनकी बौद्धिकता ने कहीं-कहीं आलोचना बुद्धि को आक्रान्त भी किया है, लेकिन ऐसे स्थल वहीं हैं जहाँ वे मात्र तुलनात्मकता के फेर में पड़े हैं।

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी की समीक्षा-मनीषा समकालीन साहित्य के प्रति उनकी गहरी संसक्ति और पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर परखने पहचानने की अंतर्दृष्टि की परिचायक है। इतिहास, समाज, लोकजीवन के विविध आयामों का समन्वय उनकी समीक्षा में मिलता है। वे मूलतः मानवतावादी समीक्षक हैं। साहित्य-चिन्तन से 'निरन्तर' आलोचना पत्र तक उनकी समीक्षा-प्रतिभा हिन्दी की व्यावहारिक समीक्षा को प्रामाणिक, शिष्ट और संतुलित आलोचना देकर माँ भारती का भण्डार भर रही है।

दिनकरजी शुद्ध कविता की खोज, गुप्त, प्रसाद, पंत और रीतिकालीन कविता तथा अन्य साहित्यिक प्रश्नों एवं भाषा समस्याओं पर लिखे निबंधों में एक तटस्थ वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित सैद्धान्तिक परिचयात्मक समीक्षा को प्रस्तुत करते हैं।

छायावादी साहित्य के उत्तरार्द्ध में सुकुमार एकांतिक, वायवी स्वप्निल नक्काशी ने निराशा और सामाजिक अनुत्तरदायित्व को साहित्य में प्रश्रय दिया। इसके विरोध में साहित्य के सामाजिक आदर्शों का आग्रह करनेवाली और अनेक अप्रिय अवस्थाओं के अन्त करने के लिए कृतसंकल्प आलोचना, साहित्य-क्षेत्र में अवतरित हुई।

सूक्ष्म सुकुमार मृदुल से आगे बढ़कर, कटु कठोर प्रत्यक्षवाद ने साहित्य में स्थान पाया। मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और टालस्टाय, कॉडवेल और प्लेखोव, गांधी और लोहिया की कला संबंधी मान्यताओं का परिचय इस समीक्षा दृष्टि में अनुस्यूत है।

यह हमारी राष्ट्रीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में रचा गया, पूंजीवादी सभ्यता के, अनाचार, अत्याचार और शोषण के विरुद्ध सर्वहारा समाज के आक्रोश और विद्रोह को वाणी देनेवाला साहित्य है।

प्रारम्भ में प्रगतिशील समीक्षा में प्रखरता, उग्रता, विधि निषेधमय उपदेशों और 'सतही विचारसूत्रों के प्रति हठधर्मी आसक्ति' का स्वर था। उसमें विचारोत्तेजनशील कठोर निर्मम आलोचना का आग्रह था। शनैः-शनैः प्रतिभा और प्रतिबद्धता के बल पर अपने तर्कसम्मत और व्यवस्थित समीक्षादर्श के निर्माण में प्रगतिवादी आलोचना सफल हुई। इस समीक्षा धारा के प्रतिनिधि लेखकों में डा० शिवदानसिंह चौहान, अमृतराय, डा० रांगेयराघव, डा० रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, डा० प्रभाकर माचवे, आचार्य राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त, भगवतशरण उपाध्याय, चन्द्रबलीसिंह, शिवकुमार मिश्र, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, ओंकार शरद आदि आते हैं।

डा० शिवदानसिंह चौहान का 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' नामक निबंध प्रगतिवाद का अग्रलेख आमुख है। उन्होंने प्रगतिवाद, प्रयोगवाद दोनों पर तथा दोनों प्रकार के साहित्य की समीक्षा पर लिखा है किन्तु उनकी कृतियों का महत्त्व उनके प्रचारात्मक, ऐतिहासिक होने में अधिक है, समीक्षात्मक रूप से कम। उनकी समीक्षाओं में 'प्रगगिवाद की वीर पूजा' का स्वर तीव्र है और विवेचन विश्लेषण का पक्ष कमज़ोर है। साहित्य की समस्याएँ, साहित्य की परख, प्रगतिवाद, आलोचना के मान आदि डा० चौहान की समीक्षा कृतियाँ हैं।

प्रकाशचन्द्र गुप्त के आधुनिक हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा, साहित्य धारा आदि कृतियों में उनकी तटस्थ, व्यापक, सहृदय और जागरूक समीक्षा दृष्टि का परिचय मिलता है। मार्क्सवादी कला-मान्यताएँ उनकी व्यावहारिक सैद्धान्तिक आलोचना में औचित्य बोध और शालीनता से संपृक्त होकर व्यक्त हुई हैं। उनकी समीक्षा परिचयात्मक और संश्लेषणात्मक रही है।

अमृतरायजी की नई समीक्षा, साहित्य में संयुक्त मोर्चा, सहचिन्तन आदि समीक्षा कृतियों में मार्क्सवादी कला प्रतिमानों का विवेचन और समकालीन साहित्य का समीक्षण है। अमृतजी की समीक्षा निरंतर प्रौढता को प्राप्त करती गयी है। उनकी 'कलम का सिपाही' जीवनी साहित्य या चरितमूलक व्यावहारिक समीक्षा का उत्कृष्ट उदाहरण रही है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की 'समाज और साहित्य' और संसत्सदस्य सिद्धेश्वरप्रसाद की 'छायावादोत्तर काव्य' प्रगतिवादी साहित्य की उपलब्धियों को रेखांकित और उसके सिद्धान्तों की लीक को निरूपित करती है। असाधारण प्रतिभासम्पन्न, प्रगतिवादी आलोचकों में डा० रामविलास शर्मा अपनी समीक्षात्मक कृतियों के विस्तृत और विशद विषय चयन तथा तत्त्वाभिनिवेषी दृष्टि के लिए विख्यात हैं। हिन्दी साहित्य समीक्षा में शर्माजी की आलोचनाएँ, बहुचर्चित विवादास्पद रही हैं और उपलब्धियों के रूप में अपना विशिष्ट स्थान बना सकी हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्क्सवादी सिद्धान्तों में निष्णात, अंग्रेजी के अध्येता और प्राध्यापक डा० रामविलास शर्मा हिन्दी और संस्कृत वाङ्मय के सहृदय, प्रबुद्ध, प्रखर और जनवादी समीक्षक के रूप में लोकप्रिय हैं। उनकी व्यावहारिक समीक्षा में उनके आत्मविश्वास, रसरूपवादी मर्मोद्घाटन की कला, कटु सत्यों पर आधारित ध्वंसात्मक व्यंग्य करनेवाली पत्रकारों की सी खण्डन-मण्डनवाली शैली और उनके प्रकान्त चिन्तन, अगाध अध्ययन, अध्यवसाय और परिवृंहण की छाप मिलती है। ऋजुता, तथ्यात्मकता, सटीक सार ग्रहण में शर्माजी की शैली हिन्दी के गद्य साहित्य का आदर्श बन गयी है। उन्होंने कृति और कृतिकार की समीक्षा में जीवन और रचनादर्शों की संगति जोड़कर, इतिहास की पृष्ठभूमि पर कृति के परिवेश, प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं का समाजशास्त्रीय दृष्टि से साक्षात्कार किया है। एक प्रखर आलोचक और सहृदय साहित्य रसिक के रूप में शर्माजी की लेखनी में रस का अभिषेक और अर्थ की प्रतिपत्ति तथा अन्तर्दृष्टि की छानबीन करने कराने की अचूक क्षमता है। प्रगतिवाद के सम्बन्ध में वे सतही हठधर्मी से मुक्त होकर साम्यवाद और समाजवाद की सांस्कृतिक चेतना के जाज्वल्यमान पक्ष को उजागर करती हैं। शर्माजी कवि बनकर हिन्दी संसार में आये और सिद्ध समीक्षक बनकर छा गये। उन्होंने उपन्यास, कविता, भाषा विज्ञान के क्षेत्रों में भी ठोस और महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। संस्कृति और साहित्य, प्रगति और परंपरा, प्रेमचन्द और उनका युग, भारतेन्दु युग, प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, निराला की साहित्य साधना, रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, लोकजीवन और साहित्य, आस्था और सौन्दर्य, शैली और रवीन्द्रनाथ, निराला की कविता, पन्त की स्वर्ण धूलि, स्वर्ण-किरण की समीक्षाएँ, आदि-काव्य, साहित्य के स्थायी मूल्य, कालिदास और भवभूति पर उनकी समीक्षाएँ हिन्दी समीक्षा की उत्कृष्ट उपलब्धियाँ हैं।

गतानुगतिकता को छोड़कर, नवीन साहित्य-सरणि का निर्माण करके और भारतेन्दु, प्रेमचन्द, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और निराला के युगप्रवर्त्तक रूप की प्रतिष्ठा करके शर्माजी ने अनेक भ्रान्तियों का निवारण किया और हिन्दी समीक्षा को नयी भाषा और नयी भावक दृष्टि प्रदान की।

डा० भगवतशरण उपाध्याय की 'समीक्षा के सन्दर्भ में', डा० विजयशंकर मल्ल की 'हिन्दी कविता में प्रगति-वाद', रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की 'प्रगतिशील-आलोचना' चन्द्रबलीसिंह की 'लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य', डा० शिवकुमार मिश्र की 'नया हिन्दी काव्य', 'प्रगतिवाद', 'आधुनिक हिन्दी कविता और युग दृष्टि' आदि कृतियाँ निश्चय ही प्रगतिवादी समीक्षा के विकासोन्मुख स्वरूप का निर्देश करती हैं।

प्रगतिशीलता के युग में छायावाद की रोमांटिकता के जवाब में टी० एस० इलियट के निर्वैयक्तिकतावादी सिद्धान्त से प्रभावित एक अन्य प्रवृत्ति का जन्म हुआ। इस प्रवृत्ति को सामूहिक रूप से प्रयोगवाद नाम दिया गया।

'अज्ञेय' द्वारा प्रथम तारसप्तक का १९४३ ई० में प्रकाशन प्रयोगवाद के पूर्वार्द्ध को और १९५१ ई० में द्वितीय तार सप्तक का प्रकाशन प्रयोगवाद के उत्तरार्द्ध को प्रकट करते हैं। एक दिसम्बर १९५६ को पं० नलिन विलोचन शर्मा, केसरीकुमार और नरेश मेहता के 'प्रपद्यों' के प्रकाशन ने 'नकेनवाद' को जन्म दिया जिसमें दुरूहता के प्रति आग्रह है, प्रयोग को साध्य बनाने की उपपत्ति है। तीसरे सप्तक १९५८ तक आते-आते नयी कविता ने अपने अस्तित्व का धरातल खोज लिया। तब से आज तक नई कविता के परिवर्त्तनशील रूपों में न जाने कितने वादों और आन्दोलनों का जुलूस हिन्दी साहित्य के मार्ग पर से गुजरा है।

सप्तकयुगीन साहित्य के पक्ष-विपक्ष में आनेवाली आलोचना-प्रत्यालोचनाओं के तीन प्रमुख स्वर हैं—

प्रथम स्वर है सर्जक साहित्यकार का स्वर, द्वितीय है स्वच्छन्दतावादी प्रगतिवादी प्रौढ़ समीक्षकों का स्वर, तीसरा स्वर है सद्यः प्रवर्त्तित अभिनव समीक्षा धारा के उदीयमान समीक्षकों का स्वर। निस्सन्देह आधुनिक समसामयिक समीक्षा को इस तीसरे स्वर ने सर्वाधिक समृद्ध बनाया है।

प्रथम स्वर के अन्तर्गत तारसप्तकों की भूमिकाओं, सप्तक कवियों के वक्तव्यों, कृतियों के घोषणापत्रों तथा आत्मरचना कथ्यों को रखा जा सकता है। इनमें काव्य-सर्जना के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष पर काव्य के स्वरूप, प्रयोग की आवश्यकता, काव्य के उद्देश्य, काव्य की प्रेरणा, काव्य-विषय, शिल्प शैली वस्तुतत्त्व और रूपविधान, जीवन-दर्शन, अनुभूति की प्रामाणिकता, अनास्था, साधारणीकरण दुरूहता, बौद्धिकता, व्यक्तिवादिता, संप्रेषणीयता तथा कला सम्बन्धी विचारों पर सृजन प्रक्रिया और रचनानुभव के सन्दर्भ में विवेचन हुआ है।

[क्रमशः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास

कोणार्क का सूर्य-मन्दिर

प्रो० दिवाकर त्रिपाठी

धर्म संयुक्त भारतीय संस्कृति के प्राचीन मूर्ततत्त्वों के दर्शन का अभिलाष यदि आप रखते होंगे तो मेरी सलाह अवश्य मानेंगे। भारतीय रेल की सेवा ग्रहण कर सागर की विशाल उत्ताल तरंगों और लहरों की क्रीडा का आनन्द लूटते हुए, चिल्का झील की शांति के साथ स्वर मिलाते हुए आप उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर पहुँच जाइये। पूर्वी सागर के प्रशान्त तट पर स्थित इस प्रान्त में ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी से लेकर उत्तर मध्यकाल तक के अनेक प्राचीन स्थल काल, प्रकृति और मानव के अगणित प्रहारों को सहन कर अपनी गाथा सुनाते हुए आज भी मौजूद हैं। लगभग इन सभी स्थानों के लिए आपकी यात्रा का प्रारंभिक केन्द्रविन्दु भुवनेश्वर ही रहे तो सुविधा होगी। प्राचीन कालीन कलिंग और उत्कल प्रदेश में ही उदयगिरि-खण्डगिरि की पहाड़ियाँ, परसुरामेश्वर मंदिर, मुकुटेश्वर मंदिर, लिंगराज मंदिर, राजारानी मंदिर, पुरी का जगन्नाथ मंदिर और लिंगराज-नाट्य-मंडप आदि कलाकृति केन्द्र अवस्थित हैं। इन मंदिरों में अधिकांश उड़ीसा के कटक जिले में केन्द्रीभूत हैं। उड़ीसा में मंदिर स्थापत्य का व्यापक पैमाने पर स्वतंत्र विकास छठी शताब्दी ई० के उपरान्त ही प्रारंभ हुआ और तेरहवीं शाताब्दी तक खूब हुआ। इन मंदिरों की निर्माण-विधि के सूक्ष्म अवलोकन से ज्ञात होता है कि इनमें अधिकांश तत्कालीन स्थानीय परवर्ती उड़िया शैली से प्रभावित हैं।

यों तो उड़ीसा के सभी प्राचीन कला मंदिर अपनी उत्कृष्ट शैली, विशालता और उन्नत रचना के कारण चित्ताकर्षक और विख्यात हैं, किन्तु 'कोणार्क का सूर्य मंदिर (उड़ीसा में यह 'सूर्य देउलि' नाम से प्रसिद्ध है। उड़िया में 'देउलि' का अर्थ मंदिर का 'मुख्य खण्ड' या 'विभाग' होता है) एक अद्भुत, विशाल, अत्यन्त संतुलित और यहाँ तक कि अपने ढंग का अकेला अनेक विध कलाओं का पूंजीभूत प्रतिनिधि मंदिर है। डा० कुमारस्वामी ने इसे 'कृष्ण पैगोडा' (Black Pagoda) नाम से भी उल्लिखित किया है। प्रकाश-पुंज, चरम तेज के मूर्त्तरूप भगवान् भास्कर की शाश्वत लीला का इतनी जीवंतता के साथ पाषाण खंडों में प्रतिष्ठापन अन्यत्र देखने को नहीं मिलता है। तो कला प्रेमी बन्धु, आपकी जिज्ञासा इस मंदिर के सम्बन्ध में अवश्य बढ़ गयी होगी। आइये आपको कोणार्क ले चलूँ।

पुरी से मात्र १९ मील दूर एकान्त में पूर्वी सुमुद्र के शान्त एवं सुरम्य तट पर यह मंदिर स्थित है। यहाँ व्याप्त नीरवता और उसके मध्य मंदिर की स्थिति का कारण जानना चाहते हैं तो सुनिये। दरअसल इसके निर्माण के लिए जानबूझ कर साफ मैदान और प्रकृति की उन्मुक्त गोद का चुनाव किया गया था। संभवतः ऐसा चुनाव दो कारणों से किया गया होगा—

१. मंदिर निर्माण की योजना में मंदिर को दूर-दूर तक चतुर्दिक सुरक्षा प्राचीर से आवेष्ठित बनाने की योजना भी सम्मिलित रही होगी।

२. भगवान् सूर्य के गत्यात्मक स्वरूप का प्रतीकात्मक बोध कराने के लिए इसे निरवरोध स्थान पर बनाया गया होगा।

यह इससे भी स्पष्ट है कि सम्पूर्ण मंदिर का स्वरूप मूलतः रथारूढ़ सूर्य की प्रतिकृति है। रथ के चक्र बिलकुल गतिमान होने का आभास प्रदान करते हैं। इतना ही नहीं, समुद्र के तट पर इसकी स्थिति भी इस बात की द्योतक है कि सूर्यदेव का अधिकार समुद्र ब्रह्माण्ड पर है। जहाँ तक रवि-रश्मियाँ अपना आलोक बिखेरती हैं वहाँ तक रवि का अकंटक राज्य है—इस व्यप्ति को प्रदर्शित करने के लिए भी इसे भूमंडल के रिक्त स्थान पर अनन्त आकाश में बनाना शास्त्रसम्मत है और फिर सूर्य और समुद्र का सम्बन्ध भी तो पुराना है। भुवन-भास्कर इस समुद्र से जल खींचते हैं और बादलों के माध्यम से पृथ्वी पर बरसाते हैं। रघुवंश का यह श्लोक प्रमाण है—

"गर्भदघत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि।
अबिन्धनं वहिनमसौ बिभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि इस मंदिर का मूल रूप ध्वंसावशेषों में आज अपना विलीनीकरण कर चुका है तथापि बचे-खुचे भाग को निहारकर मूल ही का अंदाजा कर आश्चर्य के सागर में गोता लगाया जा सकता है। मंदिर का दर्शन करते ही आपके अंदर धार्मिक भावनाओं की लहरें उठेंगी, आप उल्लसित होंगे, श्रद्धा से आपका माथा झुक जायगा, आप भावुक हो उठेंगे और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। हाँ, एक बात और। यदि आप कविता करते हैं तो इन रम्य दृश्य को देखते ही कवि-हृदय की कली खिल जायगी, कल्पना के रथ पर आप उड़ चलेंगे, मनोरम कविता के शब्द निकल पड़ेंगे। इससे प्रभावित होकर जगदीशचन्द्र माथुर यदि 'कोणार्क' नाटक लिख सकते हैं तो क्या आप काव्य-परंपरा में कुछ योगदान नहीं कर सकते ? गनीमत है आप इतिहास के विद्यार्थी नहीं हैं, लेकिन क्या करूँ, मैं तो हूँ। इसलिए इस देवालय के इतिहास का राग तो मैं अलापूँगा ही। अतः इतिहास की निष्पक्ष स्पष्टवादी यथार्थवादी प्रवृत्ति का जायका तो आपको लेना ही पड़ेगा।

१९वीं शताब्दी ई० तक इस मंदिर का ज्ञान किसी को न था। २०वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों की बात है। पुरी के पास समुद्र तट पर जंगली वनस्पतियों, झाड़-झंखारों और धूलिकणों से ढके एक ऊँचे स्थान को जब साफ किया गया तब उससे कोणार्क मंदिर का ध्वस्त रूप प्रकट हुआ। तभी से समस्त भारतीय मंदिर वास्तु तथा उड़ीसा के अन्य मंदिरों के संदर्भ में इस मन्दिर का भी अध्ययन प्रारंभ हो गया। उड़ीसा की कुछ जागीरों के लेख-पत्रों में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि गंगवंशीय शक्तिशाली नरेश नरसिंहदेव ने कोणार्क को निर्मित कराया। नरसिंहदेव का राजत्वकाल १२३८ ई० से १२६४ ई० तक माना जाता है। अतः मंदिर भी १२३८ से १२६४ ई० के बीच किसी समय बना होगा। अनेकविध कलात्मक अभिप्रायों से युक्त इस भव्य एवं विशाल मंदिर को देखकर ऐसा लगता है कि सैकड़ों श्रमिकों एवं शिल्पियों के कठिन परिश्रम और अनवरत साधना के उपरान्त उस 'महाशिल्पी' की ऐसी विराट् कल्पना साकार हुई होगी, जिसने इस मन्दिर की परिकल्पना कर योजना बनायी होगी। प्रस्तरखंडों की बहुराशि को काट-छाँटकर, तराशकर, उनमें जीवन डालकर, शिल्पियों के हाथों से पर्वतसम विशाल यह मन्दिर पल-पल अपना कल्पित रूप धारण करता चला गया होगा। है तो यह पृथ्वी पर और पत्थर का, लेकिन इसे महाशिल्पी की कार्यदक्षता का चमत्कार ही कहना चाहिए कि मन्दिर रथ पर आरूढ़ अन्तरिक्षमार्ग में यात्रा करनेवाले सर्वत्र व्याप्त आदित्य का वास्तकि रूप प्रतिबिम्बित कर रहा है— हवा की तरह गतिमान, रश्मियों की तरह स्पर्शहीन और सुगन्ध की तरह सर्वव्यापी होने का आभास देकर।

लेकिन आखिर क्यों ? 'सूर्य' को इतना महत्त्व क्यों दिया तत्कालीन समाज ने कि इतना विशाल मंदिर बन गया। इस 'आग के गोले' के लिए, सौरमंडल के एक ग्रह के लिए, 'पिण्ड' के लिए इतना त्याग ! इतना व्यय ! भारतीय दृष्टि वैज्ञानिक भावबोध के अतिरिक्त ब्रह्माण्ड के सभी प्रभावकारी तत्त्वों में 'देवत्व' के भावबोध को सर्वस्व मानती है। भारतीय दृष्टि श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा, प्रेम, भक्ति और आत्मोत्सर्ग का संसार रचती है। तपता हुआ यह सूर्य उत्कल ही क्या, समूचे भारतीयों के लिए वैदिक काल से ही 'ईश्वरत्व' का मूर्त रूप रहा है। द्युस्थानीय देवों में सूर्य का प्राधान्य है। उसे सविता, पूषा, सूर्य, मित्र, विष्णु, विवस्वत्, अरियमन् आदि नामों से अभिहित किया गया। पं० बलदेव उपाध्याय के अनुसार 'सविता का अर्थ है प्रसव करनेवाला (उत्पन्न करनेवाला)। सविता के उदय लेने पर ही जगत् में चेतना का संचार होता है, नहीं तो वह मृतक के समान विद्यमान रहता है। वही सब क्रियाओं का उत्पादक होने के कारण 'सविता' का नाम धारण करता है। उसके क्रियाशील रूप की 'विष्णु' नाम से सम्बोधित किया जाता है।' (ऋग्वेद १:११५/१ में उसके स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है—

मित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

अर्थात् चमकनेवाली किरणों का तेजपुंज रूप आश्चर्यजनक सूर्यमण्डल उदयाचल के ऊपर उदित हो रहा है। यह मित्र, वरुण, अग्नि का नेत्र स्थानीय है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश को इसने अपनी किरणों से व्याप्त कर लिया है। सूर्य स्थावर और जंगम दोनों तरह के पदार्थों की आत्मा है, वह सम्पूर्ण विश्व का कारणभत है। सूर्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदित होने पर मृतप्राय संसार पुनः चेतनायुक्त होता है। तैत्तिरीय आरण्यक भी इसी मान्यता की पुष्टि करता है। वैदिक साहित्य में ही सूर्य की सत्ता को भी, अन्ततोगत्वा, एक ही सर्वोच्च सत्ता में विलीन कर दिया जाता है। सूर्य को ही केन्द्र बनाकर बाद में द्वादशादित्यों की कल्पना का उदय हुआ। सूर्य के इस देवरूप की कल्पना का विकास विविध प्रकार से बाद की शताब्दियों में होता रहा। महाभारत में सूर्य को एक प्रमुख देवता माना गया है और उन्हें 'देवेश्वर' कहा गया है। सूर्योपासना की परंपरा कालान्तर में समृद्ध और सुसंगठित होती गयी। सूर्योपासकों का एक संप्रदाय, जिसे सौरसंप्रदाय के नाम से जाना जाता है, बाद की शताब्दियों में अस्तित्व में आया। इस संप्रदाय के लोग सूर्य को 'परमात्मा' और 'सृष्टिकर्ता' मानने लगे। इस संप्रदाय में बहुत से उपसंप्रदाय हो गये। शनैः शनैः सूर्य का महत्त्व इतना बढ़ा कि इसे मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिष्ठापित किया जाने लगा। पांचाल सिक्कों पर सूर्य की आकृति मण्डल रूप में मिलती है। मौर्यकालीन एक ठीकरा सूर्य के मानवरूप में अंकित होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। शुंग काल और ई०पू० की प्रारंभिक शताब्दियों तक आते-आते सूर्य की मूर्तियों का निर्माण भी होने लगा। उड़ीसा में सूर्याकृतियों के निर्माण का सर्वप्राचीन प्रमाण खण्डगिरि की अनन्तगुफा (गुफा नं० ३) में उत्कीर्ण वाहन और परिचारिकाओं सहित सूर्य की आकृति है जो ई० संवत् के पहले की है। कुषाणकालीन मथुराकला की सूर्य-मूर्तियों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इस काल में भारतीय सूर्योपासना को ईरान के (सूर्योपासक) मग-संप्रदाय ने अधिक प्रभावित किया। इस विदेशी प्रभाव का समर्थन साहित्यिक साक्ष्यों से भी होता है। इस काल से सूर्य का मंदिर भी बनने लगा जिसकी सूचना भविष्य और साम्ब पुराण देते हैं। वैदिककाल से प्रारंभ सूर्य-देव की भक्ति गुप्तों के काल तक आते-आते अपने चरम विकास पर पहुँच गयी। इस काल में सूर्य की उपासना अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी। बन्धुवर्मा और कुमारगुप्त के मंदसोर अभिलेख में सूर्य के लिए 'भास्कर' और 'सवित्र' संज्ञाओं का प्रयोग करते हुए इन्हें जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश का कारण बतलाया गया है तथा सुरगणों, गन्धर्वों, किन्नरों, सिद्धों और मनुष्यों से पूजित होने का उल्लेख है, जो निस्सन्देह उनके 'ईश्वरत्व' को सिद्ध करता है। सूर्य के उदीयमान, मध्याह्न तथा अस्ताचलगामी—तीनों रूपों की उपासना इस काल में लोकप्रिय थी। मिहिरकुल के ग्वालियर अभिलेख में सूर्यमंदिर के निर्माण का उल्लेख है। मंदिर-निर्माण की यह परंपरा और आगे चलती है और जीवितगुप्त का देवबर्नार्क अभिलेख, पुनः सूर्यमंदिर के निर्माण का प्रमाण प्रस्तुत करता है। इस समय सूर्य का मंदिर एवं उसमें स्थापित मूर्ति दोनों भारतीय मान्यता के आधार पर निर्मित होने लगे थे। सूर्योपासना का यह स्वरूप मध्यकाल और उत्तरमध्यकाल में अपने पूरे निखार के साथ उत्तर से लेकर दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक संपूर्ण भारत में परिव्याप्त हो गया। जिस भूमि पर सूर्य के ऐसे और इतने उपासक मौजूद रहें वहाँ अपने परमपूज्य श्रद्धेय देवता के लिए कोणार्क जैसे विशाल मनोहर मंदिर की रचना, देवों के प्रति श्रद्धा और बलिदान भाव के इतिहास में, एक महत्त्वपूर्ण घटना तो बन ही सकती है। सचमुच मंदिर-वास्तु के इतिहास में यह एक युगान्तकारी घटना ही थी। समस्त हिन्दुओं के अर्चा-भाव का केन्द्रबिन्दु बन गया था यह मंदिर उस युग में।

पल-पल परिवर्तनशील, नश्वर, क्षणभंगुर यह संसार बड़ा विचित्र है। सद्यःपूर्व निर्मित यह मंदिर बहुत थोड़े समय तक खड़ा रह सका। इस अटल, अचल मंदिर का जीवन महाकाल की अनन्तता को देखते हुए अत्यन्त क्षणिक रहा। जिस मंदिर को या तो भूकम्प हिला सकता था या प्रलय की आँधी ही झकझोर सकती थी, उसे मानव समाज के राजनीतिक तथा धार्मिक वैमनस्य एवं द्वेषभाव का कोपभाजन बनना पड़ा। एक दिन इस सूर्य सदन में विनाश का भयंकर अट्टहास गूँजा, ८६५ फीट लम्बे तथा ५४० फीट चौड़े इसके प्रांगण में पशुता का आगमन हुआ। मंदिर ढहा गया। कैसे टूटा, किसने आक्रमण किया, क्यों किया? इन प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर दुर्भाग्यवश हमारे पास नहीं है। इसके लिए बहुत कुछ हमें आसपास की बस्तियों में होगी और शिल्पीपरिवारों में प्रचलित मतों और इस मंदिर के सम्बन्ध में उड़ीसा में लोकप्रिय किंवदन्तियों का सहारा लेना पड़ेगा। है। नरसिंहदेव के दरबारी कवि 'साहित्य दर्पण' के रचयिता विश्वनाथ द्वारा प्रणीत अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थ 'एकावली' में नरसिंहदेव के लिए 'यवनावनिवल्लभ' शब्द प्रयुक्त हुआ है। नरसिंहदेव ने बंगाल के तत्कालीन मुस्लिम शासकों को निरन्तर कई बार युद्ध में पराजित किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह युद्धशृंखला बहुत दिनों तक चली थी। कूर्मम् अभिलेख से नरसिंहदेव के प्रमुख मंत्री के रूप में पूर्वीय चालुक्यवंशीय राजराज का नाम ज्ञात होता है। नरसिंहदेव सूर्य भगवान् में अपनी अगाध श्रद्धा का परिचय देने के लिए, कोणार्क मंदिर के निर्माण का कार्य प्रारंभ कराकर बंग-देश में यवनों के साथ युद्धरत हो गये। विजयोपरान्त अपने स्वप्न के साकार रूप का दर्शन करने के लिए राजा सीधे कोणार्क आये, लेकिन राज्य की सेना और सेनापति अभी रास्ते में ही थे कि इधर महामात्य राजराज चालुक्य ने सत्ता के लोभ से राज्य में विद्रोह की ज्वाला भड़काकर सेना में भेद पैदा कर, राज्य की पुलिस एवं पुलिस अधिकारियों को लेकर, मंदिर में मूर्ति-प्रतिष्ठापन की तैयारी में व्यस्त राजा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। असहाय राजा किसी तरह वहाँ से सकुशल निकल भागने में समर्थ हो गये, और पुरी चले गये। लेकिन समय अधिक हो चुका था। जब तक राजा पुलिस, सेना और प्रजा के साथ राजराज का मुकाबला करने के लिए लौटे तब तक स्वार्थी, विद्रोही राजराज मंदिर की सुषमा विकृत कर चुका था। लोगों का यह भी अनुमान है कि मूर्तिभंजक, हिन्दू-धर्मविरोधी यवनों ने बदले की भावना से प्रेरित होकर राजराज की सहायता की होगी लेकिन सत्ता के खिलाफ यह षड्यंत्र पूरी तरह सफल नहीं हो सका। अन्ततोगत्वा सत्ता महामात्य के हाथ में जाने से बच गयी।

अत्याचारी दुष्टात्माओं को मंदिर तोड़ने में आसानी से सफलता नहीं मिली होगी। अपना खून-पसीना एक कर इसे बनानेवाले शिल्पियों के श्रद्धासुमन पर जब वज्र-प्रहार प्रारम्भ हुआ होगा, तब अपनी ही सृष्टि को अपनी आँखों से विनष्ट होती हुई न देख सकने के कारण मंदिर की रक्षा हेतु, मृत्यु की फैलती हुई छाया की परवाह किये बिना उन्होंने अपने को कुर्बान कर दिया होगा। इस सतरंगी कलाकेन्द्र पर आसुरी धनुष की टंकार हुई होगी और घोर रक्तपात हुआ होगा। हाँ, वही कोणार्क जिसमें राजा, महाशिल्पी, शिल्पियों, भक्तों और उपासकों का सुनहरा सपना, उनके अरमानों का पंछी बसेरा लेने जा रहा था, आततायियों के हाथों ध्वस्त कर दिया गया। उस समय महोदधि भी चीत्कार कर उठा होगा, उसमें विराट् हलचल मची होगी, लहरें साँपों की तरह बिलबिलाकर फूत्कार रही होंगी। तट के तमाल और ताड़ भी अपनी तड़तड़ाहट से शत्रुओं को भयभीत करने में चूके न होंगे। यही कारण है कि इस काल के मन्दिरों की परम्परा में सबसे बाद में बना यह मन्दिर आज भग्नावस्था में है। उड़ीसा में इसके बाद इस शैली के मन्दिर पुनः नहीं बन सके।

किन्तु कला का पारखी मन्दिर के इस इतिहास से ही संतुष्ट नहीं होता। वह तो अपनी कला-पारखी दृष्टि से अवशिष्ट मन्दिर के कण-कण का अवलोकन कर कला के अभिप्रायों को समझने का प्रयास बहुत दिन से करता आ रहा है। अतः इसके कलात्मक पक्ष का क्रमागत सूक्ष्म विश्लेषण भी प्रासंगिक है। इसके लिए वास्तुविद्या विशारदों और मूर्तिशिल्प के पंडितों ने पर्याप्त सूचनाएँ दे रखी हैं। इस समय मन्दिर का महत्त्वपूर्ण भाग ध्वंसावशेषों का एकत्र रूप है। भग्नमूर्तियाँ और प्रस्तर-खण्ड बिखरे पड़े हैं। सम्पूर्ण को देखते हुए केवल बचा है—मुख्य मंडप (जिसे उड़िया में 'जगमोहन' कहते हैं) जो मध्याह्नसूर्य का प्रतीक बनकर अचल भाव से विशाल, विस्तृत वेदी (रथ) पर खड़ा है। यह १०० फुट चौड़ा तथा इतना ही ऊँचा है। आधारस्वरूप विशाल रथ में बृहदाकार बारह चक्र हैं, उसी अनुपात में सात बलिष्ठ, दिव्य घोड़े जुते हैं। डा० कुमारस्वामी की दृष्टि में इस मन्दिर की रचना तो इस काल के अन्य मन्दिरों की तुलना में कोई खास भिन्नता नहीं रखती है, लेकिन मंडप की छत की सर्वोत्कृष्ट रचना इस मन्दिर की मौलिक विशेषता है। जहाँ भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर की छत दो बहिर्गामी छज्जास्तरों (Cornice-stages) में विभक्त है, वहाँ कोणार्क के जगमोहन की छत तीन छज्जास्तरों में विभक्त है और छत की ऐसी रचनाविधि—ऊपर की ओर कोणिक स्तरों का क्रमशः लघु, लघुतर और लघुतम होते जाना—एकाएक छत के सौन्दर्य, रचना शैली एवं अलंकार में वृद्धि कर देती है। "तल से शिखर तक मन्दिर की ऊँचाई २२५ फुट है। मन्दिर का जर्रा-जर्रा शिल्प से ओतप्रोत है। उड़ीसा के अधिकांश मन्दिरों की तरह इस मन्दिर का रूप भी प्रधानतः आलंकारिक है, किन्तु इन अलंकरणों में आध्यात्मिक तत्त्वों की सांकेतिक अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है।

मन्दिर के गर्भगृह में स्थापित भगवान् सूर्य की परम-तेजस्वी, दीप्तमूर्ति का विवरण कुछ अर्वाचीन साहित्यिक कृतियों में उपलब्ध होता है, जिसके अनुसार चुम्बकीय आकर्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से युक्त प्रस्तरखण्डों की सहायता से शून्य में निराधार सूर्य की मूर्ति स्थापित की गयी थी। मन्दिर के ध्वंसावशेषों से एक ऐसी मूर्ति प्राप्त हुई है, जो नख से शिख तक राजसी वस्त्राभूषण से अलंकृत है। मूर्ति के मुखमंडल से दर्प और मान की आभा टपकती है तथा राजा की मुद्रा निर्मलचित्त प्रसन्न है। मूर्तिशिल्प के विद्वान् इसे उत्कल नरेश नरसिंह देव की मूर्ति मानते हैं। १९५१ के मद्रास संगीत एकादेमी के जर्नल में प्रकाशित श्री टी०एन० रामचन्द्रन् (पुरातत्त्ववेत्ता जो अभी गतवर्ष दिवंगत हुए हैं) के एक निबंध से इस मन्दिर से एक ऐसी मूर्ति के प्राप्त होने की सूचना मिलती है, जिसकी चरणचौकी पर 'सौम्यश्रीदत्त' नाम अंकित है। मूर्ति की भाव-भंगिमा तथा अन्य लक्षणों के आधार पर श्री रामचन्द्रन् ने इस सौम्यदत्त को कोणार्क मन्दिर का नाट्याचार्य सिद्ध किया है। मूर्ति के गले में एक चक्रनुमा लैकेट से संयुक्त हार है, कानों में मकर-कुंडल और दोनों हाथों मंजीर है, किन्तु कलाई में कोई आभूषण नहीं है।

मन्दिर के सर्वोच्च भाग के विभिन्न अंगों—शिखर, आमल, त्रिपटधर, कलश और छत्र आदि-की वर्तमान अनुपस्थिति को लेकर कुछ वर्षों पूर्व तक विद्वानों में घोर विवाद रहा कि वस्तुतः निर्माण के समय ये बन पाये थे या नहीं। इस विवाद को हल करने का श्रेय वाराणसी में अद्यावधि साधनारत, कलातपस्विनी पद्मभूषण प्राप्त चौरासी वर्षीया वृद्धा इटैलियन महिला एलिस बोनर को है। एलिस बोनर ने इस मन्दिर के सम्बन्ध में अपनी मौलिक खोजों से न केवल कलश-स्थापन सम्बन्धी, बल्कि अन्य संशयमूलक टेढ़े प्रश्नों का समाधान कर दिया है। पिछले ३६ वर्षों से काशी के अस्सीघाट पर स्थायी रूप से निवास करनेवाली एलिस बोनर के प्रति हमें कृतज्ञ होना चाहिए जिन्होंने 'न्यू लाइट आन द सन टेम्पुल आव कोणार्क' नामक पुस्तक प्रदान कर इस मन्दिर को विश्व-भर में ख्याति प्रदान कर दिया है। प्रारम्भ में विद्वानों में यह धारणा प्रचलित थी कि निर्माण काल में शिखर पर कलश की स्थापना हो ही नहीं सकी थी और इस प्रयास में संतुलन बिगड़ जाने के कारण मन्दिर गिर पड़ा। एलिस बोनर ने अपनी उक्त पुस्तक में सर्वथा नवीन तथ्यों के आधार पर इन धारणाओं का प्रबल खंडन करते हुए यह सिद्ध किया है कि मन्दिर में मूर्ति प्रतिष्ठापन के साथ-साथ शिखर पर कलश भी स्थापित हो चुका था। अपने इस मत के प्रतिपादन के हेतु एलिस बोनर ने स्थानीय बस्तियों में परम्परया मूर्तिशिल्प और वास्तुकला का कार्य करनेवाले स्थपति परिवारों से साक्षात्कार किया, जिसके दौरान सौभाग्यवश उन्हें इस मन्दिर के निर्माण से सम्बद्ध कई पांडुलिपियाँ तथा ताम्रपत्रों पर लिखित पुस्तकें मिलीं हैं जिनमें मन्दिर का पूर्ण रेखाचित्र तथा निर्माण कार्य से सम्बद्ध अन्य तथ्य संकलित हैं। इस प्रयास में उन्हें ऐसे बहीखाते भी मिले हैं, जिनमें शिल्पियों और श्रमिकों की मजदूरी, आय-व्यय आदि का व्यौरा है। (द्रष्टव्य—मासिक 'उत्तर प्रदेश' नवम्बर, १९७४ अंक 'कलातपस्विनी एलिस-बोनर') लेकिन कलश-स्थापन सम्बन्धी अनुश्रुतियाँ सर्वथा निराधार नहीं हैं। इन अनुश्रुतियों तथा जिन परवर्ती उड़िया साहित्यिक रचनाओं में कोणार्क की चर्चा है उनके आधार पर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि कलश-स्थापन में शिल्पियों को संतुलनपरक कठिनाई हुई होगी और कलश सरलता से स्थापित नहीं हो पाया होगा।

मन्दिर की दीवारों पर उट्टंकित कुछ प्रणय-मूर्तियों पर विद्वानों में व्याप्त रोचक विवाद को यहाँ छोड़ा नहीं जा सकता। श्री राय कृष्णदास इन मूर्तियों को इस काल के कला में व्याप्त व्यापक दोष से प्रभावित मानते हैं और इन पर अश्लीलता का आरोप लगाते हैं तथा साथ ही साथ इनके निर्माण को तांत्रिकों की कुत्सित भावनाओं से प्रेरित मानते हैं। यहाँ तक कि कुछ लेखक इन प्रणय-मूर्तियों को गणिकावृत्ति से जोड़ते हैं, जो मौर्यों की आय का एक साधन थी और जिस गणिकावृत्ति को कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में राजकीय संरक्षण प्राप्त व्यापार कहा गया है। मूर्ति शिल्प के अध्येताओं का एक बड़ा वर्ग इन्हें आत्मा और परमात्मा के सम्मिलन का द्योतक स्वीकार करता है, लेकिन संतोषजनक व्याख्या शायद ही आज तक इन मूर्तियों की दी गयी हो। इसका एक कारण है। भारतीय कला के साथ बहुत बड़ी विडम्बना यह है कि इसकी व्याख्या अधिकांश यूरोपियन विद्वानों ने, कला के प्रति यूरोपियन दृष्टि से युक्त होकर, भारतीय कला की सम्पूर्ण पृष्ठभूमि को बिना समझे-बूझे ही पक्षपातपूर्ण ढंग से कर डाली है। हैवेल और एलिस बोनर जैसी गहरी संवेदनावाले तथा भारतीय अध्यात्म, धर्म-दर्शन का ज्ञान रखनेवाले विदेशी विचारकों को छोड़कर अधिकांश ने भारतीय कला की व्याख्या पत्रकारिता शैली में की है। भारतीय कला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उथली व्याख्या करने में मि० आर्चर और स्तेफानोपुलू बहुत आगे रहे हैं, यद्यपि स्तेफानोपुलू ने खजुराहो के कामदृश्यों की उचित व्याख्या की है। भारतीय विद्वानों में कुमारस्वामी, डा० अग्रवाल तथा श्री अरविन्द को छोड़कर बहुत कम लोगों ने भारतीय कला में व्यक्त अभिप्रायों को ठीक-ठीक समझा है। यही कारण है कि अब तक इन प्रणयमूर्तियों अथवा मिथुन युग्मों का संतोषजनक सर्वमान्य अर्थ स्पष्ट नहीं हो सका है। इनका मूल प्रतिपाद्य जानने के लिए कुछ मूलभूत भारतीय सैद्धान्तिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में इन्हें देखना अनिवार्य है। समष्टिगत एवं व्यष्टिगत जीवन के मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक आधारों—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा भारतीय शिल्पशास्त्र की मान्यताओं को ध्यान में रखकर ही इन तथाकथित अश्लील मूर्तियों का मूल्यांकन सम्भव है। कला-वस्तु को परखने के पहले भारतीय शिल्पी के मनोभाव, प्राक्कल्पना, आकांक्षा आदि के साथ स्वयं को एकीकृत कर, तदुपरांत सत्-असत् का विवेचन करना इन मूर्तियों के साथ न्याय होगा। संक्षेप में, आध्यात्मिक संवेदना से हीन, धर्म-दर्शन, साहित्य, एवं सौन्दर्य शास्त्र का ज्ञान न रखनेवाला व्यक्ति कभी भी भारतीय कला की किसी भी कृति को नहीं समझ सकेगा, चाहे वह कला का शीर्षस्थ विद्वान् ही क्यों न हो। इस संदर्भ में श्री अरविन्द के मत को उद्धृत करना उचित होगा—

"Indian art, in fact, is identical in its spiritual aim and principle with the rest of Indian culture.····It is an intuitive and spiritual art and must be seen with the intuitive and spiritual eye." (The Foundations of Indian culture.)

भारतीय कला की कुछ सामान्य विशेषताओं की चर्चा करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा, क्योंकि इन्हीं विशेषताओं के प्रकाश में हम कोणार्क की निर्वस्त्र मूर्तियों को देखेंगे। भारतीय कलाकारों के लिए कृति का बाह्येन्द्रिक सौन्दर्य, आलंकारिता और वैयक्तिकता, अन्तः परमतत्त्व (spirit), कथ्य या प्रतिपाद्य, सामान्यीकरण या सार्वभौमिकता (Generalization) की अपेक्षा कम महत्त्व रखती हैं। भारतीय शिल्पी उसी सीमा तक बाह्य सौन्दर्य को प्रधानता देता है, जिस सीमा तक कृति के अन्तःतत्त्व की माँग है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि भारतीय कला दृष्टि सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि की उपेक्षा करती है। यह बात मूर्ति-शिल्प के षडंग प्रतिमानों से स्पष्ट हो जाती है—रूप भेद (आकारगत-वैविध्य), प्रमाण (आनुपातिक व्यवस्था या उचित सामंजस्य), भाव, लावण्य (आकर्षक पक्ष), सादृश्य (स्वाभाविकता या अनौपचारिकता), वर्णिका भंग (उचित रंग-प्रयोग)। इन्हीं निकषों पर कलाकृति की सफलता-असफलता आँकी जाती है।

ऐसी ही स्वस्थ, मर्यादित और वैचारिक परम्परा में कोणार्क की सभी मूर्तियों, अलंकरणों आदि का निर्माण हुआ है। नग्नरूपता का अस्तित्व तो सृष्टि के आदि से लेकर अन्त तक स्वयंसिद्ध है। सृष्टि का हर तत्त्व अपने मूल में उत्पत्ति के समय नग्न ही होता है और अन्त के समय भी सब कुछ निरावरण हो जाता है। 'काम' का अस्तित्व भी सृष्टि के आदि से है। इस नग्नता और काम के प्रति नये-नये दृष्टिकोणों का निर्माण देश और काल के अनुसार होता रहा है। इस चिरन्तन कठोर सत्य को विभिन्न जीवन मूल्यों के समानान्तर रखकर समय-समय पर मर्यादा, औचित्य और शुभत्व का आवरण पहनाया गया है। इसी रूपतत्त्व को, समय-समय पर इसमें निहित रहस्यों को, आवश्यकतानुसार सामाजिक स्तर पर उद्घाटित किया जाता रहा है और किया जाता रहेगा। अतः इसे अनुचित और अश्लील नहीं माना जाना चाहिए। भारत में भी इसके रूप को विविध आइनों में देखा गया है और जीवन के नैतिक व मनोवैज्ञानिक आधारों के साथ इसे समन्वित किया गया है। हिन्दू-धर्म, जैसा कि स्पष्ट है, 'रिलिजन' नहीं है, वरन् दिव्य जीवन जीने की एक पद्धति है। इस दिव्य जीवन को परमशुभ तक ले जाने के लिए चार—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सोपान हैं।

भारत धर्मप्राण देश है और इसकी धार्मिक कट्टरता कभी विचलित नहीं होने पायी है। यहाँ सभी देवी-देवताओं की कल्पना एक विराट् सत्ता के रूप में की गयी है—चाहे वे सूर्य हों या दुर्गा। फिर इस विराट्सत्ता के पवित्र परिवेश में अपवित्र, अश्लील कृतियों को स्थान क्यों दिया जायगा? निश्चित रूप से इन प्रणयमूर्तियों का सम्बन्ध मन्दिर के पवित्र वातावरण के अनुकूल है। अतः इसीके साथ इसकी व्याख्या भी उचित होगी। इन धार्मिक-दार्शनिक मानदंडों को स्वीकार कर लेने के उपरान्त इन मूर्तिचित्रों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को गणिकावृत्ति के साथ समायोजित करना किसी भी दशा में उचित नहीं है। इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। ऐसे ही मन्दिर के दिव्य (Divine) परिवेश में तांत्रिकों की कुत्सित वृत्ति और मान्यता की घुसपैठ कैसे संभव है? प्रश्न है—इन कामदृश्यों की व्याख्या क्या की जाय? भला सूर्यदेव का इस वृत्ति (प्रणय व्यापार) से कैसा सम्बन्ध? विचित्र बात है। लेकिन है और जग-जाहिर है कुंती और सूर्यदेव का प्रणय-प्रसंग। कथा है—कुंती ने ऋषि के वरदान की परीक्षा के हेतु भगवान् सूर्य का आह्वान किया। बात इतनी ही नहीं थी। प्रातः काल में 'आविष्कृतोऽरुणः पुरः—सरः एकतोऽर्कः'—दूर क्षितिज के पास जगमगाती लालिमा ने रूप धारण किया। तेजस्वी सूर्य के मादक स्वरूप का कुंती ने दर्शन किया—वह दिव्यतम रूप कुंती के हृदय छोर पर गहरी रेखा की तरह खिच गया। फिर दोनों का एक-दूसरे के प्रति आकर्षण, उत्कट प्रेम, तपता हुआ काम, ब्रह्माण्डव्यापी विलास बन गया। उद्दाम यौवन का यह तीव्रवेग, पूर्ण शृंगार का यह भोग क्या अश्लील है? नहीं, प्रणय का यही आमोद-प्रमोद, उल्लास-विलास, आलोडन-विलोडन—जीवन का आदि और उत्कर्ष है। फिर यही तो है कोणार्क की युगल-मूर्तियों में। वेद, उपनिषद्, महाभारत, रामायण, कालिदास का सम्पूर्ण साहित्य कहाँ नहीं है यह आदि और उत्कर्ष। दानवीर कर्ण और दुष्यन्त-पुत्र भरत की उत्पत्ति के पीछे भारतीय मनीषा की विचारधारा कहाँ जाकर रुकती है? वहीं---जहाँ समूची सृष्टि का संविधान कार्यान्वित होता है। सृष्टि के सम्यक् संचालन के लिए यौन-सम्बन्ध की यह अनिवार्यता मोक्ष प्राप्ति के पूर्व गृहस्थ जीवन में काम को व्यापक और संकीर्ण दोनों अर्थों में मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। इसका प्रतिबिम्ब कोणार्क की युगल-मूर्तियों में उत्तम रीति से चित्रित है। धर्म द्वारा नियंत्रित अर्थ और काम की दो स्थितियों को जब तक जीव, भोगकर, तृप्त होकर, समाप्त नहीं कर लेता तब तक वह मोक्ष की ओर अग्रसर होने में असफल रहता है। धर्म, अर्थ, काम—इन तीन प्रवृत्तिवादी या स्वार्थमूलक सोपानों से गुजरे बिना ही मोक्ष—निवृत्तिवादी या परमार्थमूलक उद्देश्य से साक्षात्कार संभव नहीं है। अतृप्त कामनाओंवाला व्यक्ति मोक्ष की स्थिति तक पहुंच ही नहीं सकता है। मन्दिर की दीवारों पर इनके उत्खनित होने का अभिप्राय भी यही है। इससे भीतर मन्दिर में स्थित देवत्व तिरोहित नहीं होता है। यह एक सत्य है। दैवी लोक के बाहर पृथ्वी लोक या संसार में यही होता है। यही आकर्षण है, यही बंधन है, यही माया है। संसार रूपी यह कानन बड़ा मोहक है—जंजाली भी है और व्यापक भी—

The woods are lovely dark and deep
But I have promises to keep,
And miles to go before I sleep,
And miles to go before I sleep.

(Robert Frost).

भारतीय धर्म एवं दर्शन के आलोक में मंदिर का निर्माण करनेवाले महाशिल्पी का यही संदेश है कि जिस संसार में रहते हो, वह यही है। यह बड़ा मोहक है, आकर्षक है, लेकिन जीवन का लक्ष्य नहीं है, यह आखिरी मंजिल नहीं है, यह सब यात्रा के मनोहर ठहराव हैं। यदि इससे विरक्त होकर मंदिर तक पहुँचना चाहते हो तो भीतर छिपे आत्मा को पहचानो, देवत्व का दर्शन करो, सूर्य (भगवान्) की शरण में जाओ।

इस विचारधारा का ऐतिहासिक विकास भी कम रोचक नहीं है। गुप्तकाल में राजनीतिक इकाई के स्थिर होने पर चतुर्दिक विकास का मार्ग प्रशस्त हो गया। भौतिक साधनों की प्रचुरता के परिणामस्वरूप समृद्धि आयी, विलास बढ़ा, भोग-लिप्सा की प्रवृत्ति को फूलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिला। जीवन के शाश्वत, सर्वोत्तम मूल्य समाज में कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित रह गये। परन्तु धीरे-धीरे भौतिकवादी सुख से ऊबकर समाज आध्यात्मिक शान्ति की ओर भी झुकता रहा। फलस्वरूप गुप्तकाल में बहुत से मंदिर बने।

प्रवृत्तिवाद और निवृत्तिवाद का समानान्तर विकास अबाधगति से १२वीं शताब्दी तक हुआ, यद्यपि राजनीतिक इकाई बिखर चुकी थी। समाज में व्याप्त इसी विलासिता एवं समृद्धि का चित्रण कोणार्क मंदिर की दीवारों पर है और आध्यात्मिक शांति का लोक मंदिर के गर्भगृह में बसाया गया है। परन्तु तृष्णाओं को तृप्त कर उनकी सीमा से निकलकर चरम शांति के अनन्त लोक में आने का उपदेश मूकभाषा में मंदिर का प्रत्येक कण दे रहा है। कोणार्क मन्दिर तत्कालीन साहित्य एवं समाज का दर्पण कहा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन युगल-मूर्तियों को पुरुष और प्रकृति के संयोग का द्योतक माना जा सकता है। आत्मा और पराशक्ति के एकत्व में विधान का संकेत भी स्वीकार्य है, जैसा कि यूनानी महिला पत्रकार स्तेफानोपुलू ने (जो गतवर्ष भारत के सांस्कृतिक भ्रमण के हेतु आयी थी) खजुराहो की युगल-मूर्तियों के सम्बन्ध में अपने साप्ताहिक पत्र में लिखा है—"खजुराहो के साहसिक काम-क्रीडा के दृश्य आत्मा और पराशक्ति के विधान का संकेत करते हैं" (द्रष्टव्य, जनस्वर, २९ दिसम्बर,७४, हिन्दी अनुवाद)।

हमारी मूर्ति कला में रागात्मक वृत्ति एवं प्रणय-व्यापार की स्वस्थ परंपरा अति प्राचीनकाल से ही अमर-युग्म, वृक्षिकाओं तथा यक्षों का शृंगारिक अंकन हो रहा था। शैव संप्रदाय में प्रचलित लिंगोपासना तथा विविध लिंगों के निर्माण को हम धार्मिक प्रयोजन से प्रेरित मानते हैं। यदि उक्त परंपरा स्वस्थ एवं पवित्र है तो ये युगल मूर्तियाँ भी दार्शनिक प्रयोजन की सूचक हैं। लुकास क्रेनाच के 'ऐडम एण्ड इव', पालोग्रो वेरोनीज के 'मार्स एण्ड वीनस', पीटर पाल रबेन्स के 'ऐन्जेलिका एण्ड द मांक', फ्रान्कायस बाउचर के 'डायना रेस्टिंग आफ्टर हर बाथ', जीन आगस्टी डोमिनिक इंग्रेस के 'वीनस अनाडायोमीन', पालगोगीन के 'ह्वाट ! आर यू जेलस ?' जैसे नग्न यूरोपियन चित्रों (Paintings) में धार्मिक अभिप्राय और उत्कृष्ट सौंदर्य का दर्शन किया जा सकता है तो कोणार्क की इन मूर्तियों में अश्लीलता का दर्शन करना भारतीय कला के साथ घोर अन्याय होगा।

तो जनाब, बहुत देर तक आपने पवित्र कोणार्क मन्दिर को देखा और समझा। आप ही नहीं, हर भारतीय सोचता है कि जब तक भारतीय संस्कृति जीवित रहेगी तब तक 'भक्ति रस के ये महाकाव्य' नित नूतन रहेंगे। बहुत से समृद्धिशाली नगर बनेंगे और उजड़ेंगे, कितने राजवंश आयेंगे और राजमुकुट पुराने होंगे, राज्य बदलेंगे, लेकिन सूर्य का यह प्रचण्ड मन्दिर कभी प्रभावहीन नहीं होगा।

आज के तिमिरावृत भारत में सूर्यदेव के स्वर्णिम आलोक की महती आवश्यकता है। अंधकार घनीभूत है। इससे त्राण पाने के लिए निर्भर भक्तिभाव से स्तुति कीजिए—"असतो मा सद्गमय ! तमसो मा ज्योतिर्गमय।"

चलते समय याद रखिये–पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के शब्दों में—'उड़ीसा में कोणार्क का सूर्यमन्दिर (जो भग्नावस्था में है और जिसमें पूजा-अर्चा नहीं होती)..... उड़ीसा की उत्कृष्ट स्थापत्यकला के लिए संसार-प्रसिद्ध है। कोणार्क का भग्न मन्दिर तो कला का अप्रतिम नमूना है।' (सरस्वती, नवम्बर ७४, संपादकीय) तो अन्त में–श्री मोती, बी० ए० के साथ कला की आरती उतारना मत भूलिए—

आओ, चलें आज कला की उतारें आरती।
चमक उठे दिशा-दिशा गूँज उठे भारती॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी का प्रथम समाचारपत्र

डॉ० रामनारायणसिंह 'मधुर'

हिन्दी-समाचारपत्रों के इतिहास लेखन की पहल की भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्णदास ने। इस विषय पर उनकी पुस्तक १९वीं शती के अन्तिम दशक में लिखी गयी थी। इस पुस्तक में बाबू राधाकृष्णदास ने काशी-निवासी राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द द्वारा प्रकाशित 'बनारस अखबार' को हिन्दी का पहला समाचारपत्र माना है। बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने भी बाबू राधाकृष्ण की बात का अनुमोदन किया है। डॉ० रामरतन भटनागर ने अपने शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी पत्रकारिता का उदय और विकास' में 'बनारस अखबार' को ही हिन्दी का प्रथम समाचारपत्र माना है। सम्भवतः समाचारपत्रों की सूची एकत्र करने में वे यथार्थ तथ्यों की ओर विशेष ध्यान न दे सके। हैदराबाद के श्री बेंकटलाल ओझा ने भी इस पर कुछ अधिक प्रकाश नहीं डाला। सन् १९३१ ई० में 'माडर्न रिव्यू' और 'प्रवासी' के उपसम्पादक बाबू ब्रजेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय को बँगला के पुराने पत्रों की खोज में हिन्दी के प्रथम पत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड' को प्रकाश में लाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ब्रजेन्द्रबाबू ने 'विशाल भारत' के तत्कालीन सम्पादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को इसकी जानकारी दी। तब चतुर्वेदीजी ने 'विशाल भारत' के फरवरी, मार्च, अप्रैल और मई, १९३१ ई० के अंकों में इसका विस्तृत परिचय प्रकाशित किया। इसके बाद से 'उदन्त मार्तण्ड' को ही हिन्दी का प्रथम समाचारपत्र होने का गौरव प्राप्त है।

उदन्त मार्त्तण्ड

'उदन्त मार्त्तण्ड' प्रति मंगलवार को कलकत्ते से प्रकाशित होता था। इसका पहला अंक ज्येष्ठ वदी ९, सं० १८८३, ता० ३० मई, १८२६ को प्रकाशित हुआ था। इसके प्रथम पृष्ठ पर लिखा था—

उदन्त मार्त्तण्ड

अर्थात्

दिवाकान्त कान्ति विना ध्वान्तान्तं
न चाप्नोति तद्वज्जनस्तत्र लोकः।
समाचार सेवामृते ज्ञप्तमाप्तुं
न शक्नोति तमाकरोमीति यत्नः॥

१ अंक ज्येष्ठ वदि ९ सं० १८३३।३० मे १८२६ साल भौम

इस पत्र की लम्बाई २० अंगुल और चौड़ाई १३ अंगुल थी। लेख की लम्बाई १५ अंगुल और चौड़ाई १२ अंगुल थी। प्रथम अंक के अन्त में यह श्लोक छपा था—

युगुल किशोरः कथयति धीरः सविनयमेतत् सुकुलजवंशः।
उदिते दिनकृत सति मार्त्तण्डे तद्वत् विलसति लोक उदन्ते॥

सबसे अन्त में छपा था—

अंक उदन्त मार्त्तण्ड कोल्हू टोला के अमड़ातला की गलि की ३७ अंक की हवेलि के मार्त्तण्ड छापा हा सतवारे मंगल को छापा होता है जिनको लेने का काम पड़े वे उस छापाघर में अपना नाम भेजने हि से उनके समीप भेजा जायगा उसका मोल महिने में दो रुपया जिन्होंने सहि किई है जो उनके पास न पहुँचे तो उस छापाखाने में कहला भेजने हि से तुर्त उनके पास भेजा जायगा।

उदन्त-मार्त्तण्ड शीर्षक के नीचेवाले श्लोक के बाद ये हिन्दी दोहे भी छापे जाते थे—

दिनकर-कर प्रगटत दिनहिं यह प्रकाश अठ याम।
ऐसो रवि अब उग्यो महि जेहि तेहि सुख को धाम॥
उत कमलनि विगसित करत, बढ़त चाव चित बाम।
लेत नाम या पत्र को होत हर्ष अरु काम॥

तीसरे अंक में दिया हुआ सोने का भाव यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

सोना दर भरी १६।।।)
सोना टकसाल सही भरी द० १५।।। ≡) १७।)
मोहर नई द० १७) १७।।)
मोहर पुरानी १८ =) १८ ≡)

इस अंक (ज्येष्ठ वदी ९ सं० १८८३।१३ जून, १८२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साल भौम) से एक समाचार का उद्धरण भी नीचे दिया जा रहा है—

"अराकान से जो सरकारी रोकड़ कलकत्ते आवती थी वह दैवयोग से वहाँ न आय करके चटगाँव को गई है और हम सब सुनते हैं कि वह रोकड़ यहाँ लावने को बफारे का जहाज चटगाँव गया है और वह जहाज यहाँ पहुँच के तुर्त अराकान जायगा और भी सुनने में आया कि डाक्टतर बालिन साहिब रंगून जायँगे ओ उसी साथ में केफर्ड साहिब कम्पनी के वकील हो करके अमरपुर में रहेंगे ओ फिर और साहिबान कूच करेंगे।"

भारत के गवर्नर जनरल लार्ड एम्हर्स्ट किसी कार्य से लखनऊ गये। उनके लखनऊ-आगमन सम्बन्धी घटना का विवरण 'उदन्त-मार्त्तण्ड' के १९ दिसम्बर, १८२६ के अंक में प्रकाशित हुआ—

"जिस समय ये नगर में पैठे उतने समय देखने में आया कि राजमार्ग में दोनों ओर छोटी-छोटी हवेलियों के बाजारों [बारजों ?] पर मुसज्जर और कमखाब औ ताशबादले के कामों के सुनहले औ रुपहले औ कारचोबियों के काम के कपड़े लोगों ने लटकाये थे और लखनौ शहर भीतर जितनी दुकानें जिस-जिस पदार्थ की थीं उस समय सामग्री से सुची उसकी शोभा देखते ही बन आवती है। और जब-जब सवारी शहर में धँसी तब तब ठौर-ठौर नाच रंग भी देखने में आये।.....फिर जब वे आसफुद्दौला के महल के पास होके निकले उस समय बादशाह की जेठी बहिन की डेवढ़ी की तैनाती फौज आके सलामी की। जब सवारी फरीदबख्श मुलतानी कोठी के पास पहुँची वहाँ पर बहुत सी तोपें दगियाँ और लोगों ने उसी कोठी में जाकर हाजरी खाई। हाजरी हो चुके पीछे बड़े साहिब और उसकी मनोरमा के आगे कई पार अच्छी पदार्थों के धरे।.....उस दिन रात को उस कोठी में ऐसी रोशनी हुई कि वर्णन नहीं कर सकते ओ उनके आवती बेर राह में दोनों ओर भाँत-भाँत की रोशनियाँ देखने में आईं।"

उदन्त मार्त्तण्ड का अंत

हिन्दीवालों में दो रुपये खर्च कर 'उदन्त मार्त्तण्ड' पढ़ने की सामर्थ्य नहीं थी और न तो इस पत्र को सरकारी या गैर-सरकारी आर्थिक सहायता ही प्राप्त थी। अतः यह ठीक-ठीक कहें तो एक वर्ष सात महीने तक प्रकाशित होकर अस्ताचलगामी हो गया। पत्र बंद होने की सूचना अंतिम अंक [मिती पौष बदी १ भौम सं० १८८४ तारीख ११ सितम्बर १८२७ ई०] में इस प्रकार दी गयी—

आज दिवस लौं उग चुक्यौ मार्त्तण्ड उदन्त।
अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अंत॥

आगे के चार दोहों को दीमक चाट गयी है। दोहों के बाद व्रजभाषा में यह लेख है—'जब ते या कलकत्ता नगरी में उदन्त मार्त्तण्ड को प्रकास भवो तबते लै आज दिवस लौं काहू प्रकार ते ढाँढस बाँध विद्या के बीज बैबै को हिन्दुस्तानियन के जडता के खेत को बहुबिधि जैत्यो पहिले तो ऐसी कठोर भूमि काहे को जुतै ताहू पै काया कष्ट कर जैसो तैसो हर चलाय वा क्षेत्र में गाँठ की व्यू बखेर बड़े यतन से सींच फल लुन्यो चाह्यो तो समय लोभ रूपी टाड़ी परिवा खेत के फल-फूल पाती सिगरी चरि गई अब तो फिरि-फिरि या नाशें क्षेत्र को गोडियो तो श्रम ही के फल फलैंगे।

यहाँ मूरख कौ मान ज्ञान चर्चा को बूझै।
हँसी तू अपनी रोक जगत् अँधियारौ ही सूझै॥
जडता जर नाशि चल्यौ गात की होइगौ पतझर।
काकौ है परतीत बहुरि चलिहै सुब बैहर॥

प्रथम या काज कौ जो कारण कह्यौ ताकौ विस्तार सयानिकौ जनावनो उचित है ताते अब कछु मध्यदेशीय भाषा लिखत हौं

इस उदंत मार्त्तंड के नाव पड़ने के पहिले पछाहियों के चित्त का इस कागज न होने से हमारे मनोर्थ सफल होने का बड़ा उतसा था इसलिए लोग हमारे बिन कहे भी इस कागज की सही की बही पर सही करते गये पै हमैं पूछिये तो इनकी मायावी दया से सरकार अंगरेज कम्पनी महाप्रतापी की कृपा कटाक्ष जैसे औरों पर पड़ी, वैसे पड़ जाने की बड़ी आशा थी और मैंने इस विषय में उपाय यथोचित किया पै करम की रेख कौन मेटै तिस पर भी सही की बही देख जी सुखी होता रहा अंत में नटों कैसे

[शेष पृष्ठ २६८ पर देखिये]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैण्टैसी और पश्यन्ती

श्री कमला प्रसाद चौरसिया

हिन्दी कविता में फैण्टैसी का प्रयोग मुक्तिबोध से ही, विशेषकर रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में प्रारम्भ होता है। कला के सन्दर्भ में फैण्टैसी का सन्निवेश फ्रायड के द्वारा किया गया माना जाता है। हो सकता है कि मुक्तिबोध ने इस शब्द को फ्रायड से ही ग्रहण किया हो तथापि ऐसा हुआ प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जितने विस्तार से मुक्तिबोध ने फैण्टैसी पर विचार किया है, उतने विस्तार से फ्रायड का उल्लेख नहीं है। अतः मुक्तिबोध का फैण्टैसी-विषयक चिन्तन मौलिक माना जा सकता है तथापि इस चिन्तन के आधार का शोध आवश्यक है ताकि इसे अधिक सरलता एवं द्विधा-रहित दृष्टि से समझा जा सके।

मुक्तिबोध यह चाहते थे कि 'साहित्य संबंधी धारणाएँ वास्तविक साहित्य में विश्लेषण के आधार पर बनायी जावें। जिस प्रकार विज्ञान में इण्डक्शन से डिडक्शन पर आया जाता है, तथ्यों के संग्रह से, उनके विश्लेषण द्वारा उनके सामान्यीकरण के अनुमान निकाले जाते हैं, उसी प्रकार साहित्य में इण्डक्शन से डिडक्शन पर क्यों न आया जाय ?[१] इस पद्धति को वाक्यपदीय में अपनाया गया है। यथा, 'वैखर्यांमध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्। अनेक-तीर्थभेदायास्त्रयो वाचं परं पदम्।' व्यक्त से अव्यक्त अथवा स्थूल के आधार पर सूक्ष्म तक पहुँचने का प्रयास किया गया।'

'अनुभव विचित्र रूप से अन्य मनस्तत्वों से जुड़ता हुआ मनस्पटल पर स्वयं को प्रक्षेपित कर स्वयं ही बदल जाता है।'[२] यह प्रक्षेपित अनुभव ही फैण्टैसी है। इसीलिये फैण्टैसी अनुभव की कन्या है।[३] लाइक आल सिम्बोल्स, फेण्टेसीज़ आर डेराइव्ड फ्राम एक्सपीरिएन्स, इव्हन द मोस्ट एलेबोरेटली मोन्स्ट्रस वन्स गो बेक टु विटनेस इव्हेन्ट्स। बट द ओरीजिनल परसेप्शन लाइक एनी आय-टम दैट स्टिक्स इन माइन्ड इज़ प्राम्प्ट्ली ऐण्ड स्पोण्टे-नियसली एक्स्ट्रेक्टेड ऐण्ड यूस्ड सिम्बोलिकली टु रिप्रैज़ेण्ट ए होल काइण्ड आफ एक्चुअल हेपनिंग। एव्हरी प्रोसेस, वी परसीव्ह इफ इट इज़ टु बी रिटेण्ड, मस्ट रिकार्ड इटसेल्फ ऐज़ फेण्टेसी, एन एन्व्हिसेजमण्ट बाइ व्हर्च्युं आफ व्हिच इट केन बी काल्ड अप इन इमेजिनेशन आर रिकग्नाइज्ड व्हेन इट आकर्स अगेन।[४] स्पष्टतः फेण्टेसी अनुभव-प्रसूत होते हुए भी अनुभव-बिम्बित होती है।[५] अनुभव के तीव्र आघात से जो छाया मनस्पटल पर, अपनी प्रेरणा-भूमि से टूटकर खड़ी होती है, उसे फैण्टेसी कहा जायेगा। और जब रचनाकार इस छाया को दृष्टि के समक्ष रखकर उसमें कल्पना द्वारा रंग भरने लगता है, कहने का तात्पर्य यह कि इस छाया के विभिन्न अंगों का रचनाकार भावनात्मक और बौद्धिक विश्लेषण करता है, तब उस फैण्टेसी का विस्तार होने लगता है। इसी को मुक्तिबोध के शब्दों में कह सकते हैं कि 'मूल फैण्टेसी का मर्म जो सिकुड़ा हुआ एक बिंदु था, अब फैलकर एक पर्सपेक्टिव का रूप धारण कर लेता है।'[६] इस प्रक्रिया में 'फेण्टेसी जो शुरू में एक आभास मात्र होती है, वह तुरंत ही अनेक चित्रों की सुसंगत पाँत बन लगती है।'[७]

"द सिम्बोलिक स्टेटस आफ़ फैंटेसीज़ (इन दि टेक्निकल सेन्स आफ़ ऐक्शन एन्व्हिसेज़मेंट) इज़ फ़ार अटैस्टेड बाय द रेग्युलेरिटी विद व्हिच दे फ़ालो सरटेन ला आफ़ सिम्बोल्स। लाइक वर्ड्स ऐण्ड इमेजेस, दे हैव न ओनली लिटरल रिफरेन्स टु कांसेप्ट बट टेंड टु कन्वे मेटाफ़ रिकल मीनिंग।"[८] हृदय में उठते भावों को यथारूप पक सकना कठिन है। घटना से हम इतने अभिभूत हो जाते कि भावों का ज्वार पूरे उफान पर होता है। हम मात्र द्र दर्शक रहते हैं। इस सम्पूर्ण अनुभव को जी लेने के इस अनुभव को व्यक्त करने के लिए हम उसी आदि अनु को व्यक्त करना चाहते हैं, तब कल्पना द्वारा उस सम घटना को हम याद करते हैं, तब हमारे सामने विगत भुक्त-भाव-संवेदन अपनी समग्रता में नहीं आते अपितु तथ्य ही सामने आते हैं। ये कुछ तत्त्व इतिवृत्तात्मक अपितु लाक्षणिक अर्थ व्यंजित करते हैं। "एमांग फैण्टेसीज़ देयर इज़ यूसुअली समथिंग ऐट लास्ट, दैट

---

१. एक साहित्यिक की डायरी—पृष्ठ १२
२. वही — ,, १७
३. वही — ,, ११
४. फिलासाफी इन ए न्यु की
५. एक साहित्यिक की डायरी—पृष्ठ २१
६. एक साहित्यिक की डायरी —पृष्ठ २१
७. वही —पृष्ठ २०
८. फिलासाफी इन ए न्यु की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डू ऐज़ मेटाफ़र ऐण्ड दिस समथिंग हैज़ टु सर्व्ह, जस्ट ऐज़ द नियरेस्ट बर्ड हैज टु सर्व्ह इन ए न्यु व्हर्बल एक्सप्रेशन.... मेटाफ़र इज़ द लॉ आफ़ एव्हरी सीमेंटिक। इट इज़ नाट ए डेव्हलपमेंट, बट ए प्रिन्सिपल।[९] इस तरह कहा जा सकता है कि फैण्टेसी मूल अनुभव का आदिम सूक्ष्म प्रतीक रूप है जिसको कलाकार अपनी कल्पना के द्वारा विवर्धित, संशोधित, परिवर्धित करता है। इसे फिल्म का निगेटिव्ह निराकार रूप कहा जा सकता है और रचना इस निगेटिव्ह का ही प्रोसेज्ड पाजिटिव्ह रूप है।

कला सृजन में प्रयुक्त यह फैण्टेसी वाक्तत्त्व की पश्यन्ति जैसी ही है। 'अविभागत्तु पश्यन्ति सर्वतः संयतक्रमा। स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मावागनपायिनी' के अनुसार पश्यन्ति अवस्था अनुभव का सूक्ष्मतम, संयत और उज्ज्वल रूप का साक्ष्य कराती है, जिसे सिर्फ अनुभव किया जा सकता है। "जैसा कि पश्यन्ति शब्द से स्पष्ट है कि यह व्यक्ति की वह चेतन स्थिति है जिसमें वह अपने भाषा-प्रवाह को भाषा-हीनता की स्थिति से देखता है।"[१०] पश्यन्ति अवस्था में द्वैत का निरंशतः अभाव है। मानव मात्र दृष्टा होता है। भोक्ता अथवा भावक नहीं। "भेद क्रम आदि से रहित, सूक्ष्म अविनाशिनी केवल स्वप्रकाश रूप ज्योति जो कि सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त है, उसको पश्यन्ति कहते हैं।"[११] मध्यमा अवस्था में पश्यन्ति को विश्लेषित किया जाता है। यद्यपि मध्यमा अवस्था में विचारालोडन होता है, तथापि इसमें भाव मूर्त नहीं होते। पश्यन्ति और मध्यमा दोनों ही अवस्थाएँ वैयक्तिक और स्वगत है। "केवलं बुद्धयुपादाना क्रमरूपानुपातिनी। प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते।" मध्यमा अवस्था में पश्यन्ति के प्रत्येक अंग को बुद्धि द्वारा समावेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना के परस्पर संयोजन से रूपायित किया जाता है। इस प्रकार पश्यन्ति के रूप क्रमशः उजागर होने लगते हैं और वह प्रथमतः कलाकार द्वारा स्वगत बोध्य होती है। पश्यन्ति में जो व्यक्ति वाक्हीन तटस्थ और निर्वैयक्तिक संवेदन का अनुभव करता है, वही मध्यमा अवस्था में उसका भोक्ता भी बन जाता है। दर्शक तो था ही, भोक्ता भी बन जाता है। अन्तःकरण के द्विधा विभाजन के इस क्रम में जब भोक्ता क्रियाशील होता है, तब उसका विवेचन, विश्लेषण प्रारम्भ हो जाता है। "वाक्तत्त्व की समस्त व्यावहारिक अवस्थाओं में साधु और असाधु, संस्कृत और असंस्कृत का विवेचन होता है। अतः ये अवस्थाएँ पुरुष के संस्कारों के कारण हैं। परन्तु पश्यन्ति का स्वरूप अपभ्रंश से रहित है, संस्कृत है, उसमें किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं, वह लोक व्यवहारातीत है।"[१२] इसी कारण पश्यन्ति का दृष्टा मध्यमा में भोक्ता बनकर अपने जीवनानुभवों से उस आदिम सौन्दर्यानुभव को संतुलित, संशोधित और संवर्धित करता है। पश्यन्ति अवस्था को ही यद्यपि व्यक्त करने का उपक्रम मध्यमा और वैखरी में होता है तथापि वह मूल रूप में व्यक्त नहीं हो पाती। इसके कारण प्रथमतः तो मध्यमा और वैखरी की अवस्था में उसके साधुत्व और असाधुत्व का संस्करण है तो द्वितीयतः पश्यन्ति से मध्यमा अवस्था में गमन के अनन्तर भाव प्रवाह के विराम की स्थिति में भावों का बिना भोगे ही हृदयस्थ हो जाना है।

पश्यन्ति के उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि फैण्टेसी पश्यन्तिवत् ही है। पश्यन्ति अवस्था की भाँति फैण्टेसी मात्र एक ज्योतिपुंज है, जिसे देखा जा सकता है, महसूस किया जा सकता है, व्यक्त नहीं किया जा सकता। दृष्टा की इस अवस्था में कलाकार स्व से पूर्णतया ऊपर उठकर वाक्हीन होकर मात्र अचम्भित रहता है, जैसा कि मुक्तिबोध का अनुभव है—"मैं नहीं जानता कि मैं क्या अनुभव कर रहा था। मैं केवल यही कह सकता हूँ कि किसी मादक अवर्णनीय शक्ति ने मुझे भीतर से जकड़ लिया था। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि इस समय मेरे अन्तःकरण के भीतर एक कोई और व्यक्तित्व बैठा था। मैं उसे महसूस कर रहा था। कई बार उसे महसूस कर चुका था किन्तु अब तो उसने भीतर से मुझे बिलकुल ही पकड़ लिया था। मैं जो स्वयं था, वह अस्वयं हो गया था। अपने से बृहत्तर, विलक्षण, अस्वयं।"[१३] यह सम्पूर्णतः पश्यन्ति अवस्था का दृश्य है किन्तु है मुक्तिबोध की फैण्टेसी।

---

९. फिलासाफी इन ए न्यू की
१०. भाषिकी—१— पृष्ठ १७
११. अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन—पृष्ठ ३९७
१२. अर्थ विज्ञान और व्यकरण-दर्शन—पृष्ठ—४०
१३. एक साहित्यिक की डायरी—पृष्ठ—६

सन्दर्भ ग्रंथ

१. एक साहित्यिक की डायरी—ले० गजानन माधव मुक्तिबोध
२. फिलासाफी इन ए न्यु की—सुसन्ना के० लेंगर
३. भाषिका—१ सं० भोलानाथ तिवारी
४. अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन—आचार्य कपिलदेव द्विवेदी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वीराज तृतीय और मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष

प्रो० अताउल्ला खाँ, एम० ए०

पृथ्वीराज चौहान का मूल्यांकन करने में आधुनिक काल के इतिहासकारों ने भूल की है। उन्होंने उसके ऊपर यह आरोप लगाया है कि उसकी गलत नीतियों के कारण ही भारत पर तुर्कों का अधिकार हुआ। किसी भी व्यक्ति के कार्यों के मूल्यांकन के लिए उसकी समकालीन परिस्थितियों का गम्भीर अध्ययन आवश्यक है। शासकों की सफलता में बहुत कुछ परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं।

बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में उत्तरी भारत में जितने भी राजपूत राज्य थे उनमें पारस्परिक सहयोग का अभाव था। फलस्वरूप वे एक-दूसरे के राज्य को हड़प कर समस्त उत्तरी भारत का स्वामी बनना चाहते थे। यही दशा मुस्लिम राज्यों की भी थी। उस समय गोरी शक्ति, ख्वारिजम की शक्ति, बगदाद के खलीफा की शक्ति तथा बुखारा में गुज शक्ति प्रमुख मुस्लिम राज्य थे। भारत मे अरब वालों ने सिंध को अपने अधीन किया था और पंजाब का कुछ भाग गजनी शासक खुसरू मलिक के अधिकार में था।

पृथ्वीराज चौहान का भारत के इतिहास में अद्वितीय स्थान है। उसकी जन्म-तिथि के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। उसने भारत में ११७८ से ११९२ तक १४ वर्षों तक राज्य किया। उसके पिता का नाम सोमेश्वर तथा माता का नाम कर्पूर देवी था, जो कलचुरि राजकुमारी थी। पृथ्वीराज चौहान की सौतेली माता दिल्ली के तोमर नरेश आनन्दपाल की पुत्री थी। आनन्दपाल की सुन्दरी नामक अन्य पुत्री का विवाह विजयचन्द से हुआ था। सुन्दरी से ही जयचन्द का जन्म हुआ था।

शहाबउद्दीन गोरी ने गुजरात के चौलक्य शासक मूलराज द्वितीय पर ११७२ ई० में आक्रमण किया। पृथ्वीराज चौहान ने मूलराज द्वितीय की सहायता नहीं की। वह सोचता था कि शहाबउद्दीन गोरी का मुकाबला बाद में किया जायगा और गुजरात के कमजोर हो जाने के कारण उसे भी जीत लिया जायगा। डा० शर्मा ने पृथ्वीराज चौहान की इस दूरदर्शी नीति की घोर आलोचना करते हुए इसे उसकी एक बड़ी भूल और इसे तुर्की साम्राज्य की स्थापना का कारण बताया है। उनका निम्न लिखित कथन गलत है—

"And in this they probably committed their greatest mistake. Instead of counteracting the danger from the north-west by presenting a united front, they continued fighting among themselves.....on Prithviraja's defeat." Lectures on Rajpoot History.

डा० रमेशचन्द्र मजूमदार तथा एस० सी० रे उपर्युक्त कथन का समर्थन किया है। उन्होंने भी पृथ्वीराज की इस नीति को उसकी एक बड़ी भूल बताया है। उनका तर्क है कि यदि वे दोनों मिल जाते तो मुहम्मद गोरी की शक्ति सदैव के लिए नष्ट हो जाती और भारत भविष्य में विदेशी आक्रमण से सुरक्षित हो जाता। गुजरात के शासक ने मुहम्मद गोरी को अकेले ही हरा दिया, और वह सम्पूर्ण उत्तरी भारत का शासक बनने का स्वप्न देखने लगा। भला इस परिस्थिति में पृथ्वीराज उसे कैसे सहायता दे सकता था? मुहम्मद गोरी से किसी भी दशा में पृथ्वीराज कमजोर नहीं था और उसे यह पूर्ण आशा थी कि वह गोरी को सरलता से हरा लेगा। यदि मुहम्मद गोरी विजयी होता तो इस युद्ध में उसकी शक्ति अवश्य कमजोर हो जाती। इस युद्ध में सम्मिलित न होने के कारण पृथ्वीराज शक्तिहीन नहीं होता और उसकी शक्ति पूर्ण बनी रहती जिससे वह मुहम्मद गोरी को अकेले हराने में सफल रहता। यदि मुहम्मद गोरी की पराजय होती तो फिर भारत में तुर्कों के आक्रमण का अवसर ही न मिलता और विजय होने पर भी मूलराज की इस युद्ध में शक्ति क्षीण हो गयी थी जो पृथ्वीराज का मुकाबला किसी दशा में नहीं कर सकता था, जैसा कि बाद की घटनाओं से स्पष्ट है। यह पृथ्वीराज की दूरदर्शी नीति थी। राष्ट्रीयता की भावना किसी भी दशा में उस मध्यकाल में नहीं थी। हिन्दू राष्ट्रीयता की भावना भारत में किंचित् न थी। चन्द बरदाई के अनुसार मुहम्मद गोरी को भारत पर आक्रमण करने के लिए जयचन्द ने आमन्त्रित किया था, जिसका प्रमाण जैन साहित्य के 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है। संयुक्ताहरण पृथ्वीराज चौहान द्वारा हुआ। इस विषय में इतिहासकारों में मतभेद है, परन्तु यह ठीक नहीं है कि संयुक्ताहरण असत्य है। कवि चन्द बरदाई ने महाकाव्य पृथ्वीराज रासो में संयुक्ताहरण स्वयंवर का स्पष्ट वर्णन किया है।

उसने यह लिखा है कि पृथ्वीराज सभा से बाहर नगर में उपस्थित था। जब संयुक्ता ने वरमाला पृथ्वीराज की मूर्ति को पहनायी तब पृथ्वीराज सभा में पहुँचकर संयुक्ता को उठा ले गया। संयुता कन्नौज के गहडवाल शासक जयचन्द की पुत्री थी। पृथ्वीराज और जयचन्द दोनों दिल्ली के तोमर शासक के निकट सम्बन्धी थे। निःसन्तान होने के कारण दिल्ली के तोमरनरेश ने पृथ्वीराज को अपना राज्य दे दिया। पृथ्वीराज को दिल्ली का राज्य मिलने के कारण जयचन्द और पृथ्वीराज में शत्रुता हो गयी। इसके अतिरिक्त पड़ोसी होने के नाते उनमें एक दूसरे की सीमा का भी झगड़ा था। दोनों की नीति सम्राज्यवादी थी। कन्नौज का राज्य प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न था। इससे जयचन्द पृथ्वीराज से अधिक शक्तिशाली हो गया था।

पृथ्वीराज के समकालीन 'पृथ्वीराज विजय' काव्य से तथा जैन स्रोतों से भी प्रमाणित होता है कि संयुक्ता की कथा सत्य है। इसकी सत्यता अबुल फ़जल तथा 'सुरजन चरित्र' काव्य से भी प्रमाणित होती है कि संयुक्ता जयचन्द की वास्तविक पुत्री थी, जिसे पृथ्वीराज ने हरण कर लिया था। संयुक्ता और पृथ्वीराज का चित्र भी मिला है जो डा० हबीबउल्लाह की पुस्तक 'फ़ाउंडेशन आफ मुस्लिम रूल' में प्रकाशित है।

पृथ्वीराज ने ११८२ ई० में चन्देल नरेश परमर्दिदेव को हराया। इस युद्ध का वर्णन चन्द बरदाई ने भी किया है। परमर्दिदेव के दो कुशल सेनापति थे आल्हा और ऊदल जो परमर्दिदेव से असन्तुष्ट होकर जयचन्द के दरबार में रहने लगे थे। इस घटना से जयचन्द और पृथ्वीराज से और भी शत्रुता बढ़ गयी। राजस्थान में आबू के परमार तथा दूसरे छोटे-छोटे राज्यों को भी, जिनमें भद्रक प्रसिद्ध थे, पृथ्वीराज ने हराया था। वह समस्त उत्तरी भारत को जीतकर चक्रवर्ती राजा बनना चाहता था।

विदेशी आक्रमण के प्रतिरोध के लिए उसने पंजाब के गजनी शासक खुसरू मलिक से मित्रता की। पृथ्वीराज ने पंजाब को तटस्थ राज्य बनाया। डा० रमेशचन्द्र मजूमदार ने 'प्राचीन भारत' (पृष्ठ २७२) में लिखा है—"समकालीन अभिलेखों से यह भी ज्ञात होता है कि हिन्दुओं ने मुसलमानी सेनाओं को कई बार पराजित किया था। इससे जान पड़ता है कि मुसलमानों में विशेष योग्यता और अनुशासन भी न था। इन सबके बावजूद आश्चर्य की बात तो यह है कि क्यों अथवा कैसे भारत की सुरक्षा के इस महान् खतरे—मुसलमानों—को पंजाब में जिन्दा रहने दिया गया।"

उस समय हिन्दुओं तथा मुसलमानों का धार्मिक झगड़ा नहीं था। यदि धार्मिक झगड़ा होता तो मुहम्मद गोरी पंजाब के इस्लामी राज्य को न नष्ट करता। इसी तरह पृथ्वीराज चौहान राजपूत शासकों को न हराकर पंजाब के गजनी राज्य को समाप्त कर देता। पृथ्वीराज चौहान जब परमर्दिदेव, जयचन्द तथा गुजरात के शासक मूलराज द्वितीय के संघर्ष में फँसा था तभी मुहम्मद गोरी ने पंजाब पर आक्रमण करके इस्लामी राज्य ११८१-८२ में समाप्त कर दिया। अब चौहान तथा मुहम्मद गोरी का सीधा संघर्ष होने लगा।

शहाबउद्दीन ने ११९१ ई० में भटीण्डा से २७ मील तराईन गाँव में पृथ्वीराज से युद्ध किया, जिसमें वह बुरी तरह से हरा दिया गया। पृथ्वीराज की सेना पूर्णतया विजयी हुई, परन्तु भागती हुई मुसलमानी सेना को मारना अनुचित समझा गया। इससे वे जान बचाकर भाग गये। विद्वानों का मत है कि यदि भारत में दूसरे शक्तिशाली हिन्दू राजा मिलकर मुहम्मद गोरी को पराजित करते तो तुर्क राज्य की स्थापना न होती।

१००९ ई० में महमूद गजनवी के विरोध में उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेर के राजाओं से सहायता लेकर पंजाब के साही शासक आनन्द पाल ने अवहिन्द के निकट मिलकर युद्ध किया। फिर भी वे हार गये थे। इस विचार में बहुत सी बातों की भूल हुई है। प्रथम प्रश्न यह उठता है कि यदि मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज की शक्ति की तुलना की जाय तो स्पष्ट होता है कि पृथ्वीराज ही शक्तिशाली था। उसकी सेना, आर्थिक दशा तथा प्रयोग में आने वाले शस्त्र मुहम्मद गोरी से श्रेष्ठ थे। पृथ्वीराज ने तराईन के युद्ध में प्रथम बार गौरी को हराकर अपनी सैनिक योग्यता का ११९१ ई० में प्रमाण दिया था। यसामी के कथानुसार पृथ्वीराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शक्तिशाली हाथी के दस्ते से गौरी के घोड़े भयभीत हो गये थे। तराईन का दूसरा युद्ध ११९२ ई० में हुआ। पृथ्वीराज शक्तिशाली होते हुए भी इस युद्ध में हार गया।

पृथ्वीराज की हार का कारण एकता का अभाव तथा वैमनस्य नहीं था। मुसलमान भी परस्पर एक-दूसरे से लड़ते थे और उसी लड़ाई में कमजोर होकर शहाबउद्दीन गोरी ने भारत पर हमला किया था।

पृथ्वीराज चौहान की हार का मुख्य कारण क्षत्रिय आदर्शवाद था। मुहम्मद गोरी अवसरवादी था और उसने धोखे की नीति का लाभ उठाकर शूरवीर पृथ्वीराज को विश्वासघात करके हराया। पृथ्वीराज ने मुसलमानों के साथ उदारता का व्यवहार किया। भागती हुई सेनाओं को प्रथम तराईन के युद्ध में सुरक्षित स्थान तक पहुँच जाने दिया क्योंकि भागते हुए को मारना वह क्षत्रिय आदर्श के विरुद्ध समझता था।

मुसलमान सूफी सन्त ख्वाजा मुईनउद्दीन चिश्ती को उसी ने अजमेर में रहने दिया था। ख्वाजा साहब का जन्म ११४२ ई० में मध्य एशिया में हुआ था। मुहम्मद गोरी के हमले के पूर्व आप भारत आये। लाहौर में रहने लगे। वहाँसे ख्वाजा साहब दिल्ली आये और दिल्ली से अजमेर में अन्नासागर के निकट बहुत दिनों तक रहे। १२३५ ई० में अजमेर में ही आप का स्वर्गवास हुआ। ख्वाजा साहब के शिष्य कुतुबउद्दीन बाग्रखतीयार काकी, बाबा फरीदउद्दीन, निजामउद्दीन औलिया थे। सूफी सन्तों ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों में हेल-मेल स्थापित किया। उनकी शिक्षा यही थी कि सभी मनुष्य समान हैं तथा मनुष्य के साथ भलाई करनी चाहिए। सूफी सन्त शासकों की परवा नहीं करते थे। निजामउद्दीन औलिया का कथन था—

"There are two doors in my house. If the sultan comes by one door I will quit by the other."

पृथ्वीराज चौहान ने अपने गुरु राम देव को ख्वाजा मुईनउद्दीन के पास भेजा। वह ख्वाजा का मुरीद हो गया। युसुफ हुसैन का कथन है—

"Legend relates that in approaching the Khwaja, Ram Deo was so much impressed by his personality that he became from that moment a faithful disciple of the Khwaja and spent the rest of his life in the service of the helpless and the down trodden. After the death of the Khwaja in 1234, his numerous disciples continued his eupostolic work." (Siyarul Aulia)

पृथ्वीराज ने गजनी के शासक खुसरू मलिक के साथ भी मित्रता स्थापित की थी। आल्हा खण्ड के अनुसार उसने अपनी पुत्री बेला की देखभाल के लिए काबुली सिपाही समझकर अनजान रूप में बनाफरों चन्देलों को रख लिया था। फिरिश्ता के अनुसार उसने अफगानों को अपनी सेना में विश्वसनीय पदों पर रखा, जिनकी संख्या अत्यधिक थी। उसके दरबार में बहुत से कवि रहते थे। पृथ्वीराज एक विशिष्ट शासन-प्रबन्धक भी था। डा० रमेशचन्द्र मजूमदार ने राजपूतों के पतन का मुख्य कारण पृथ्वीराज को बताया है। यह ठीक नहीं जान पड़ता। यह सिद्ध हो चुका है कि उसने समस्त उत्तरी भारत के शासकों को हराने के अतिरिक्त मुहम्मद गोरी को भी प्रथम बार हरा दिया था, परन्तु कुछ आकस्मिक घटनाओं के कारण जिनपर उसका कोई बस नहीं था, उसकी हार हुई। उसका साम्राज्य चारों ओर शत्रुओं से घिरा हुआ था। पश्चिम दक्षिण दिशा में गुजरात का विशाल चौलक्य साम्राज्य था, पूरब उत्तर में कन्नौज के शक्तिशाली गहड़वाड थे। पूरब दक्षिण में चन्देल राज्य था। पंजाब में गजनी राज्य था। चौहान साम्राज्य में प्राकृतिक सीमा नहीं थी। खुला मैदान होने के कारण आक्रमण करनेवालों को विशेष सुविधा मिलती थी। रक्षा करनेवालों को उतनी सुविधा नहीं मिलती थी। इसके अतिरिक्त कई युद्धों के मोरचे होने के कारण पृथ्वीराज की सेनाएँ विभाजित थीं। पृथ्वीराज को निरन्तर भय लगा रहता था कि उसके दूसरे शत्रु आचनक आक्रमण न कर दें। इस कारण वह अपनी सैन्य-शक्ति को एक स्थान पर केन्द्रित नहीं कर सकता था।

सचमुच उसके शत्रुओं के कारण ही भारत में मुसलमानों का राज्य स्थापित हुआ। इसमें पृथ्वीराज चौहान का कोई दोष नहीं था, क्योंकि उसका हेलमेल दूसरी विरोधी शक्तियों से होना कठिन था जब कि उस समय सभी एक दूसरे का राज्य हड़प कर एक बड़ा साम्राज्य बनाना चाहते थे। पृथ्वीराज को अन्तिम हार खानी पड़ी। उसकी हार का अर्थ यह न समझना चाहिए कि वह बिल्कुल नाकारा या कायर था। परिस्थिति का मनुष्य के मूल्यांकन में हाथ होता है। नैपोलियन भी वलेंगटन से वाटरलू में हार ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर नैपोलियन के कुशल सेनापतित्व में कोई कमी नहीं आती है। इसी तरह जर्मन सेनापति रोमल भी अफ्रीका के रेगिस्तानी में द्वितीय विश्व युद्ध में अन्तिम बार हार गया था पर उसे कुशल सेनापति के रूप में सभी लोग अब भी मानते हैं।

पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरी की तुलना सेनापति की दृष्टि से बिल्कुल नहीं की जा सकती। शहाबउद्दीन गोरी कम से कम तीन महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध युद्धों में बुरी तरह से हारा था, अन्धकंद भारत की सीमा से बाहर था, पर तराईन और गुजरात में आबू के निकट खदिरा भारत में है। भारत के लिए बड़ा दुर्भाग्य है कि हारा हुआ सेनापति एक महान् शूरवीर सेनापति पृथ्वीराज को पराजित करके ऐसा कार्य करे जो महमूद गजनवी जैसे शूरवीर नायक न कर सके। उसमें महमूद गजनवी के समान कोई विशेष योग्यता तथा तीव्रता नहीं थी, पर मुहम्मद गोरी साहस और निरन्तर संघर्ष में पूर्ण निष्ठा रखता था। मुहम्मद गोरी कूटनीतिज्ञता का प्रयोग करता था। उसने सिंध में उच्च (?) तथा पंजाब में खुसरू मलिक के साथ धोखे का व्यवहार किया। वह कई पराजयों के बावजूद साहस रखता रहा। इस तरह मुहम्मद गोरी एक महान् साहसी था। डा० अवधविहारी पाण्डेय का यह कथन गलत है कि 'भारतीय शासकों में पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द आदि कुशल सेनानायक थे, परन्तु सब बातों पर विचार करते हुए तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर तुर्क विजेताओं के समान अनुभवी नहीं थे। (मध्ययुगीन भारत, पृष्ठ ३५)

पृथ्वीराज चौहान ने बड़ी वीरता से मुहम्मद गोरी की सेना का मुकाबला किया, परन्तु भाग्य ने उसका साथ नहीं दिया। उसने तराईन के द्वितीय युद्ध में एक दूत मुहम्मद गोरी के पास भेजकर यह कहलवाया था कि वह लड़ाई न लड़े। मुहम्मद गोरी ने उत्तर भेजवाया कि वह निश्चित होकर यह सन्देश अपने भाई के पास भेजने का प्रबन्ध कर रहा है। इस प्रकार धोखे में डालकर रात्रि के पिछले पहर में अकस्मात् धावा बोल दिया, जबकि उसकी सेनाएं सो रही थीं। मुहम्मद गोरी के अचानक आक्रमण के कारण पृथ्वीराज कोतल सेना का प्रबन्ध न कर सका। शहाबउद्दीन गोरी के पास १२ हजार सुरक्षित घुड़सवार थे जिनके सहयोग से हारते हुए भी उसने युद्ध जीत लिया। तराईन के प्रथम युद्ध में विजयी होने के नाते पृथ्वीराज समझता था कि मैं फिर सरलता से मुहम्मद गोरी को हरा दूंगा।

पृथ्वीराज की मृत्यु के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मत-विभिन्नता है। इसका मुख्य कारण यह है कि समकालीन मुस्लिम इतिहासकारों तथा चन्द बरदाई के कथन में अन्तर है। चन्द बरदाई के अनुसार उसे बन्दी बनाकर गौर या गजनी भेज दिया गया था। गौर में पृथ्वीराज ने शब्दवेधी बाण का प्रयोग किया, जिसके फलस्वरूप उसे मार डाला गया। 'मिनहाजुससिराज' के अनुसार वह युद्धक्षेत्र में पकड़े जाने के बाद ही मार डाला गया। हसन निजामी के अनुसार वह अजमेर में बन्दी करके रखा गया था, परन्तु उसके षड्यन्त्र के कारण उसे फाँसी का दण्ड दिया गया।

अजमेर का राज्य गोविन्द राय को दिया गया था, जो पृथ्वीराज का पुत्र या पोता था। सी० बी० विद्या के अनुसार पृथ्वीराज के पुत्र का नाम रैनसी था। मेरे विचार में पृथ्वीराज के साहस और चरित्र को देखते हुए मिनहाजुससिराज के कथन को स्वीकार करना उचित है। दूसरे स्रोतों से भी अजमेर और गजनी दो भिन्न स्थानों पर पृथ्वीराज की मृत्यु का उल्लेख है। अजमेर और अफगानिस्तान के गौर में पृथ्वीराज की मृत्यु नहीं हुई। वह युद्धक्षेत्र में ही शहीद हो गया था।

पृथ्वीराज चौहान का इतिहास में महान् स्थान है, क्योंकि वह राष्ट्रनिर्माता और कुशल सेनापति है। वह चौहान कुल में सबसे श्रेष्ठ नरेश था। उसने देश को एकता के सूत्र में बाँधने के आदर्श को जाग्रत किया। उसने भारत की मूल एकता को कायम रखा। वह अपने दूसरे विरोधी व्यक्तियों से अवश्य श्रेष्ठ था। वह भारत के छोटे-छोटे राज्यों को समाप्त करके शक्तिशाली शासक तथा दिग्विजयी बनना चाहता था, जिससे वह अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा कर सके। युद्धक्षेत्र में शहीद होकर उसने संसार में यह सिद्ध कर दिया कि हार में भी जीत है। स्वतंत्रता की रक्षा के लिए पृथ्वीराज ने निरन्तर संघर्ष किया। हम पृथ्वीराज चौहान को सदैव याद रखकर अपने सत्य पथ पर चलकर साहसी तथा स्वतंत्रता की रक्षा कर सकते हैं।

[शेष पृष्ठ २५३ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वासित अर्जुन और अभिशप्त द्रोणाचार्य

प्रो० महेन्द्रनाथ पाण्डेय

"आज अश्वत्थामा नंगई पर उतारू हो गया है। इसे अब एक दिन भी दूध के नाम पर 'चउर धोवन' नहीं पिलाया जा सकता। निरर्थक है मेरी विद्या जो अपने एकलौते पुत्र के लिए एक गिलास दूध तक की व्यवस्था नहीं कर सकती। चलूँ द्रुपद को उसके वचनों की याद दिलाऊँ। अपने आश्रम पर कम से कम एक गाय तो होनी ही चाहिए।"

यह सोचकर सरस्वती-पुत्र (द्रोणाचार्य) लक्ष्मी-पुत्र के यहाँ याचक बना था। लेकिन अन्धी राज-शक्ति फुंकार उठी, "दरिद्र ब्राह्मण! मेरी बराबरी करता है! कहाँ एक दीन-हीन दरिद्र बम्हन-पुत्र और कहाँ उज्ज्वल बल की दीप्ति से मण्डित राज-पुत्र। तुम मेरे राज्य की सीमा के बाहर चले जाओ।"

लक्ष्मी-पुत्र अपने वचन से तो मुकर ही गया, उसने द्रोणाचार्य का अपमान भी किया।·····अपमान····· अपमान·····अपमान ···· ओह! घोर अपमान·····! दूध के लिए लालायित एकलौती संतान, क्षुधा से व्याकुल धर्मपत्नी और अपमान से आहत द्रोणाचार्य। नियति ने उन्हें कौरवों की सेवा में प्रेषित कर दिया। अन्धी राजशक्ति से जनित अपमान ने सरस्वती-पुत्र को अन्ध-राज्य की कुसेवा में लगा दिया। दैव का दुर्योग जाने क्या करनेवाला है!

द्रोणाचार्य का सर्वाधिक प्रेम अर्जुन पर था। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुरु-दक्षिणा अर्जुन ने ही दी थी। उसने द्रुपद को बाँध कर द्रोणाचार्य के कदमों में डाल दिया था। लेकिन हाय री अन्धी राजशक्ति! गृह-युद्ध के समय गुरु खड़ा हुआ अर्जुन के विपक्ष में। क्या अन्त ही सब कुछ है? न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित, सत्-असत् इनमें कोई तात्त्विक भेद नहीं होता? जिस गुरु ने प्रेमान्ध होकर अर्जुन के लिए एकलव्य का अँगूठा कटवा लिया था, उसी गुरु के चक्रव्यूह में मारा गया अर्जुन का लाल अभिमन्यु। वह भी अत्यन्त क्रूरता एवं कायरतापूर्ण ढंग से। अश्वत्थामा में निहित द्रोणाचार्य का प्रेम उन्हें जीवन भर भटकाता रहा। अश्वत्थामा की भूख ने उन्हें द्रुपद के दरवाजे पर खड़ा किया। द्रुपद के अपमान ने उन्हें दुर्योधन की चाकरी में भेज दिया। और अश्वत्थामा की मौत के अपप्रचार ने उन्हें मौत की गोद में सुला दिया। विद्या के तेज-पुंज लक्ष्मी से अभिशप्त द्रोणाचार्य अधर्म के पक्षधर हो गये।

यह क्रम आज भी चालू है। अंतर यह है कि आज अर्जन का स्थायी निर्वासन हो गया है। आज द्रोणाचार्य तन, मन, धन से दुर्योधन की विराट सेना को दीक्षित करने में लगे हैं। आज द्रोणाचार्यों ने अलग-अलग दुर्योधनों की टोलियाँ खड़ी कर ली हैं। ये सब आपस में शक्ति परीक्षण करते रहते हैं। लेकिन निर्वासित अर्जुन के लिए सब के सब एक जुट हो जाते हैं। आज अर्जुन के सारथी भगवान् भी उसके साथ नहीं हैं। विद्या का तेज लिए अर्जुन दर-दर भटक रहा है। उसकी प्रज्ञा रूपी, प्रतिभा रूपी द्रोपदी का सरेआम चीरहरण हो रहा है। दुर्योजनाओं का दुर्योधन अट्टहास कर रहा है। दुःशासन द्रोपदी को नंगा कर रहा है। इस बार भीष्म और द्रोणाचार्य की आँखें लज्जा से या ग्लानि से झुकी नहीं हैं। वे भी इस चीर-हरण में रस ले रहे हैं। अकेले निर्वासित अर्जुन ने बार-बार पुकारा—भगवान् श्रीकृष्ण, तुम कहाँ हो, मधुसूदन, भव भार हरो। नारायण के बिना यह नर अशक्त है, भगवान् इसलिए दया करो।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन के सामने अपनी मजबूरी व्यक्त की। उन्होंने कहा, "मैं क्या करूँ, बन्धु! तुम मेरी दीन दशा देख ही रहे हो। मैं इस समय बंदी हूँ।" अर्जुन देखता है कि भगवान् भी इस समय परेशान हैं। हुआ यह है कि भूमि-वासियों को लक्ष्मी की जरूरत थी। सभी चिन्तित थे कि क्या किया जाय। अन्त में तय पाया गया कि भाई, लक्ष्मी तो वहीं रहेंगी जहाँ भगवान् के चरण रहेंगे। इसलिए भगवान् के चरणों की व्यवस्था की जाय। भक्तों ने एक दिन सागर में घात लगा दी। शेष जी समय ऊँघ रहे थे। चक्र सुदर्शन मोबिल आयल के अभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाम हो गया था। इसलिए वह स्थायी कैजुअल लीव पर था। भगवान् को झपकी आ गयी थी। लक्ष्मी भी पाँव दबाते-दबाते सो गयी थीं। भक्तों ने भगवान् के दोनों पाँव काट लिये और उसे अपने तहखानों (मंदिरों) में बंद कर दिया। लक्ष्मी का तो एक ही नियम है। वे चरण-सेवा ही चाहती हैं। अतः उन्होंने पिता का घर सागर छोड़ दिया है। भगवान् अब पंगु हो गये हैं। गरुड मुफ्त की सेवा करने के लिए तैयार नहीं है। ऐसे समय में भगवान् अर्जुन के लिए क्या करें? क्या कर सकते हैं?

अर्जुन चिल्ला रहा है। चीख रहा है। उसकी मौन चीख! उसके नीरव आँसू..... वह क्या करे? कल 'लुगरी' सीते हुए प्रज्ञा ने कहा, "भूल गये भगवान् का यह वाक्य.....ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति—अर्जुन! ईश्वर सबके हृदय देश में ही स्थित है।" यह सुन कर हृदय-देश में एक विश्वास अँखुवा रहा है—'नात्मानं अवसादयेत्' (आत्मअवसादन मत करो)। अर्जुन इस अंकुर को शीत एवं घाम से बचाये रखना चाहता है। वह इसके लिए उर्वरक की व्यवस्था करना चाहता है, लेकिन उर्वरक की बोरियाँ तो दुर्योधन के यहाँ कैद हैं। द्रोणाचार्य का चक्रव्यूह उसकी सुरक्षा में तैनात है। भीष्म का तेज वहाँ तप रहा है। नारायण के संबल से विहीन नर आज अकेले कँकरीली गली में धँसता चला जा रहा है। निगलने को आमादा अंधकार.....प्रवाहित करने को समुपस्थित जल-प्रवाह... और झुलसाने को तत्पर ज्वालामुखी.....है कोई श्रीकृष्ण जो सारथी बन सके? है कोई शंकर जो पाशुपत अस्त्र दे सके? है कोई अग्नि जो वरुण के यहाँ से अक्षय तूणीर ला सके, गांडीव समर्पित कर सके? अर्जुन अपनी प्रज्ञा प्रिया द्रोपदी के साथ इस हृदय-देश की यात्रा पर जा रहा है।

पृथ्वीराज तृतीय और मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष

[शेषांश पृष्ठ २५१ का]

परिशिष्ट

आकर ग्रन्थ-सूची

१—चन्द बरदाई	पृथ्वीराज रासो	१३—रामा नेगी		हिस्ट्री आफ गहड़वाल
२—जयानक	पृथ्वीराज विजय काव्य	१४—डा० सी० गंगोली		हिस्ट्री आफ परमार्स
३—मिनहाजुससिराज	तबकातेनासरी	१५—डा० बोस		हिस्ट्री आफ चन्देलस
४—हसन निजामी	ताजुल मसायर	१६—बी० ए० स्मिथ		अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया
५—विद्यारति	पुरुष परीक्षा	१७—अवध बिहारी पाण्डेय		मध्यकालीन भारत
६—यसामी	फतहुत सलातीन	१८—के० एम० मुंशी		ग्लोरी आफ गुर्जर इम्पायर
७—दशरथ शर्मा	१—लेकचर आन राजपूत हिस्ट्री २—चौहान डेनेस्टीज	१९—आर० एस० त्रिपाठी		हिस्ट्री आफ कन्नौज
		२०—सी० बी० विधा		डाउन फाल आफ दी मेडिबल हिन्दू इंडिया
८—आर० बी० सिंह	हिस्ट्री आफ चहमान	२१—मुहम्मद हबीब		१—लेख शहाबउद्दीन गोरी प्रकाशक अलीगढ़ विश्व-विद्यालय। १९३०
९—हबीबउल्लाह	फाउन्डेशंस आफ मुस्लिम रूल			
१०—मित्रा	हिस्ट्री आफ खजुराहो			
११—ए० के० मजूमदार	चौलुक्य आफ गुजरात	२२—युसुफ हुसैन		रिलमसेस आफ मेडिवल इंडियन कलचर
१२—रमेशचन्द्र मजूमदार	प्राचीन भारत सम्पादित १—दिल्ली सल्तनत २—स्ट्रगिल्स फार इम्पायर			

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक इन्दोनीसिया में संस्कृत

श्री सुत्जिप्तो वीर्यसुपर्तो, जकार्ता

अनुवादक श्री बाबूराम वर्मा

नीदरलैण्ड्स में उत्रेख्त विश्वविद्यालय के संस्कृत प्राध्यापक डॉ० जे० खाण्डा संस्कृत के साथ-साथ इन्दोनीसी अध्ययनों के भी अधिकारी विद्वान् हैं, विशेषकर इन्दोनीसी भाषाओं एवं उनके साहित्य के। इसलिए अपनी पुस्तक 'संस्कृत इन इन्दोनीसिया' में उन्होंने इस विषय का सांगोपांग वर्णन किया है। इतना होने पर भी, इस पुस्तक में आधुनिक इन्दोनीसिया में संस्कृत भाषा की भूमिका का वर्णन कतिपय कारणों से नहीं आ पाया है। आधुनिक बहासा इन्दोनीसिया में संस्कृत की भूमिका का ज्ञान कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है और उसे प्रस्तुत निबन्ध में देने का प्रयास किया गया है।

बहासा या भाषा इन्दोनीसिया को इन्दोनीसिया की राष्ट्रभाषा के रूप में १९२८ में ग्रहण किया गया जब इन्दोनीसीय राष्ट्रीय युवा सम्मेलन में भाग लेनेवाले प्रतिनिधियों ने प्रण किया कि (१) इन्दोनीसी जन एक राष्ट्र हैं अर्थात् इन्दोनीसी राष्ट्र (२) इन्दोनीसियों की एक मातृभूमि है अर्थात् इन्दोनीसिया, तथा (३) इन्दोनीसियों की एक राष्ट्रभाषा है, अर्थात् बहासा या भाषा इन्दोनीसिया।

१९२८ के पश्चात् भाषा इन्दोनीसिया वहाँके क्रान्तिकारी आन्दोलन का उपकरण बन गयी तथा राजनीतिज्ञ एवं लेखक अपने-अपने क्षेत्र के कार्यों को इन्दोनीसिया की राष्ट्रभाषा के माध्यम द्वारा अभिव्यक्त करने का कठिन कार्य संपादित करने में लग गये। प्रारम्भ में, निस्सन्देह भाषा इन्दोनीसिया को, जो मलय भाषा से उद्भूत हुई थी, उस समय के आधुनिक बने इन्दोनीसियाई मानस की अभिव्यक्ति के उपकरण रूप में प्रयुक्त करना कठिन था। इन्दोनीसिया में मलय भाषा पहले केवल स्थितिशील एवं अविकसित समाज के मानस को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त की गयी थी। इसके प्रतिकूल १९२८ के इन्दोनीसी मानस को, जो नया एवं स्वतन्त्र इन्दोनीसिया निर्मित करने के क्रान्तिकारी विचारों से प्रेरित हो चुका था, अभिव्यक्ति देने के लिए, यदि उसे डच भाषा से बहुत पीछे छूट जाना अभीष्ट नहीं था, भाषा इन्दोनीसिया का राष्ट्रभाषा के रूप में तेजी से विकसित होना आवश्यक था। डच भाषा उपनिवेशवादियों की भाषा थी और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के सभी क्षेत्रों में उच्च स्तरों तक विकसित हो चुकी थी।

ऐतिहासिक दृष्टि से मलय या इन्दोनीसिया की अन्य प्रादेशिक भाषाओं—जैसे, जावा की जावी, बालि द्वीप की बालि, दक्षिणी सेलीबीज की मकसारी भाषाओं—के लिए विदेशी प्रभावों में आने का यह पहला अवसर नहीं था। इन्दोनीसिया के इतिहास में संकेत मिलते हैं कि लगभग सातवीं शताब्दी के प्राचीन सुमात्रा की साहित्यिक भाषा प्राचीन मलय और प्राचीन जावा की साहित्यिक भाषा प्राचीन जावी भाषाओं ने दार्शनिक, धार्मिक एवं राजनीतिक विचारों के क्षेत्र में बहुत से संस्कृत शब्द ग्रहण किये थे। जैसे, **वज्र शरीर, अनुपम शक्ति, जातिस्मर, अविकलेंद्रिय, जन्म, कर्म, क्लेश, अनुत्तराभिसम्यक् सम्बोधि** आदि। ६८४ ई० के प्राचीन मलय अभिलेख में मिलनेवाले ये दार्शनिक पारिभाषिक शब्द प्राचीन मलय भाषा पर संस्कृत के प्रभाव को सातवीं शताब्दी ई० तक पीछे ले जाते हैं। तथापि पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों से मलय भाषा इस्लामी धार्मिक विचारों की साहित्यिक अभिव्यक्ति की भाषा बनी। तब इसमें बहुत से अरबी और फारसी शब्द भी मिलने शुरू हो गये। इन्दोनीसिया के दीर्घकालिक साहित्यिक इतिहासवाली क्षेत्रीय भाषा प्राचीन जावी और नवीन जावी भाषाओं की भी यही कहानी है। इन्होंने संस्कृत और अरबी मुस्लिम साहित्य दोनों से प्रभाव ग्रहण किया।

यद्यपि आधुनिक इन्दोनीसी मानस की अभिव्यक्ति के उपकरण-स्वरूप प्रयुक्त करते समय बहुत-सी कठिनाइयाँ हुईं तो भी यह नई भाषा, जो ऐतिहासिक दृष्टि से, ऐतिहासिक और भाषाई सम्बन्धों में मलय भाषा पर आधारित थी, संस्कृत या अरबी शब्दों की सहायता से इन बाल्यकालीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिनाइयों पर पार पा गयी। इन्दोनीसी राष्ट्रीय युवा सम्मेलन के प्रतिनिधियों द्वारा एक भाषा निर्माण की शपथ लिये जाने के पाँच वर्ष बाद भाषा इन्दोनीसिया के विकास में रुचि लेने वाले कई लेखकों और लोगों ने १९३३ में **पुजंग्ग बरु** (pudjangga Baru) अर्थात् नया पुजंग्ग प्रकाशित करना आरम्भ किया। भाषा इन्दोनीसिया के माध्यम से लेखकों, दार्शनिकों और इतिहासज्ञों ने वैज्ञानिक लेख लिखने के प्रयत्न किये। बहुत से क्षेत्रों के पारिभाषिक शब्द भाषा इन्दोनीसिया में उपलब्ध नहीं थे। इसलिए **पुजंग्ग बरु** के उत्साही लेखकों ने नये पारिभाषिक शब्द गढ़ने के प्रयत्न किये। इनके गढ़ने की रीति इस प्रकार थी :—

(१) जो डच शब्द इन्दोनीसी उच्चारण या वर्तनी के अनुकूल पड़ते थे उन्हें ग्रहण कर लेना। जैसे, **तेलीफून, तेलीग्राम** आदि जो इन्दोनीसी में **तिलपुन** और **तिलग्राम** आदि बन गये।

(२) डच पारिभाषिकों के स्थान पर अरबी शब्द लेना। बहुत से अरबी शब्द, जैसे **किताब, मजलिस** और **मुश्वरा** आदि पहले से ही मलय भाषा को ज्ञात थे तथा उसमें प्रयुक्त होते थे, परन्तु नये शब्दों के लिए, जो मलय भाषा में पहले से ज्ञात नहीं थे, भाषा इन्दोनीसिया ने नये अरबी शब्दों का प्रयोग किया। जैसे, **तबलीग** (प्रचार) **मजमूक** (निबन्धन) आदि। अरबी जानने वाले लोगों ने नये शब्द गढ़ने के लिए प्रायः अरबी शब्द उपयोग किये।

(३) संस्कृत शब्द लेना—ये संस्कृत शब्द, अरबी शब्दों की भाँति उन शब्दों से व्युत्पन्न किये जा सकते थे जो मलय भाषा या किसी अन्य क्षेत्रीय भाषा में पहले से व्यवहार में चले आ रहे थे। जैसे, विदादरी (विद्याधरी से) महराज (**महाराज से**), जक्ष (अध्यक्ष से) आदि अथवा नये इन्दोनीसी शब्द सीधे संस्कृत से लिए जा सकते थे। जैसे, सूत्रदर (सं० **सूत्रधार**), बिग्रार (सं० विहार) आदि। किन्तु भाषा इन्दोनीसिया में एक बार ले लिये जाने पर सूत्रदर जैसी संज्ञाएँ इन्दोनीसी उपसर्ग दि—और प्रत्यय—ई लगाकर, जो दोनों कर्मवाच्य का संकेत देते हैं, क्रिया की भाँति उपयोग की जा सकती हैं। इस प्रकार **सूत्रदर** से **दिसूत्रदरी** बनता है, जिसका अर्थ किसी अन्य व्यक्ति के निर्देशन में चलना होता है। उसी सूत्रदर संज्ञा से इन्दोनीसी उपसर्ग के और प्रत्यय अन, जो संज्ञा की सामान्यता के परिचायक हैं, लगाकर दूसरा व्युत्पन्न बनाया जा सकता है—के-सूत्रदारन, जिसका अर्थ किसी का निर्देशन होता है।

इस संबंध में यह चर्चित किया जा सकता है कि जावाई साहित्य भी, जो काफी उच्च स्तर तक विकसित हो चुका है, भाषा में बहुत से संस्कृत शब्द उपयोग करता है तथा संस्कृत से ऋण लिये इन शब्दों में बहुत से भाषा इन्दोनीसिया में ले लिये गये हैं। विकास की यह प्रक्रिया तर्कशून्य नहीं प्रतीत हुई, क्योंकि जावाई क्षेत्र के इन्दोनीसियों की संख्या इन्दोनीसिया राष्ट्र में सबसे अधिक है तथा जावाई सांस्कृतिक क्षेत्र के शिक्षित इन्दोनीसियों की संख्या शिक्षित इन्दोनीसियों का भी सबसे बड़ा भाग है। इस कारण जावी भाषा के माध्यम से संस्कृत शब्द भाषा इन्दोनीसिया में ले लिये गये हैं। प्रस्तुत अभिपत्र में इसके दो-तीन उदाहरण देना पर्याप्त होगा।

भाषा इन्दोनीसिया में संस्कृति के लिए के लिए **बुदयाअन** शब्द आता है, जो जावाई शब्द **के-बुदयन** से बना है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह **के-बुदयन** शब्द संस्कृत **बुदय** (ठीक कहें तो बुद्धि के बहुवचन **बुद्धयः**) से व्युत्पन्न है, जिसमें जावाई उपसर्ग के और प्रत्यय **अन** उस शब्द का गुण बतानेवाले हैं। एक अन्य शब्द **केसुसास्तेरअन** अर्थात् साहित्य है, जो जावाई शब्द **केसुसास्तरन** से बना है जो मूलतः संस्कृत **सुशास्त्र** से व्युत्पन्न है। **के बुदयाअन** शब्द की भाँति संज्ञा **सुशास्त्र** में उपसर्ग के और प्रत्यय अन लगाये गये हैं।

(४) इन्दोनीसिया की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं, जैसे, जावी, मिनंगकबाऊ (केन्द्रीय सुमात्रा के पश्चिमी तट की भाषा) आदि से शब्द लेना। जावी से लिये शब्दों में—उदाहरण **निङरत** अर्थात् श्रेष्ठजन, **जिन्दिल-अबग** अर्थात् लाल छोटा चूहा आदि कहे जा सकते हैं। मिनंगकबाऊ से भाषा इन्दोनीसिया में लिये गये बहुत से शब्दों में **लेम्बग** अर्थात् संस्थान है जिसका पहले उच्चारण **लिम्बागो** था, और नया शब्द **तेगक** (अर्थात् सीधा खड़ा होना) है जिसका उच्चारण पहले **तगक** किया जाता था।

ऊपर बताये गये चारों वे निर्देशक सिद्धान्त हैं जिनके द्वारा भाषा इन्दोनीसिया विकसित होती हुई धीरे-धीरे राष्ट्रभाषा बनी जो अन्ततः आधुनिक इन्दोनीसी मानस की अभिव्यक्ति के लिए उपकरण स्वरूप उपयोग की जा सकती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान तेजी से प्रगति हुई। कारण,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९४२ में ज्योंही जापानी सैनिक अधिकारियों ने डच भाषा के प्रयोग को रोक दिया तथा यह घोषित किया कि जापानी भाषा के साथ राजभाषा के रूप में केवल भाषा इन्दोनीसिया सहन की जा सकती है तब भाषा इन्दोनीसिया ने विलक्षण उन्नति की, विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में। उस समय समूचे इन्दोनीसिया में भाषा इन्दोनीसिया ही शिक्षा का माध्यम मानी जाती थी। कौमिसी भाषा अर्थात् इन्दोनीसी भाषा परिषद् के कार्यों में विज्ञान की सभी शाखाओं के लिए सभी तरह के शब्द ऊपर बताये गये चार निर्देशक सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर बनाये गये।

इन्दोनीसिया ने १७ अगस्त १९४५ को अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। उसके पूर्व ही भाषा इन्दोनीसिया पूरे इन्दोनीसी राष्ट्र में समझी जाती थी तथा उसे १९४५ के संविधान में राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया। तब से भाषा इन्दोनीसिया प्रशासन की एक मात्र भाषा होने के अलावा सभी तरह के विद्यालयों अर्थात् प्राथमिक स्तर की पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक में शिक्षा देने का एक मात्र माध्यम भी हो गयी है। इस प्रकार १९४५ से विश्वविद्यालयों में सभी व्याख्यान भाषा इन्दोनीसिया के माध्यम से दिये जाते हैं तथा डच एवं अन्य विदेशी भाषाओं की पुस्तकों का स्थान लेने के लिए राष्ट्रभाषा में बहुत अधिक संख्या में पाठ्य पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं।

इन्दोनीसी राष्ट्र अनेक जनजातियाँ और जनों से बना है। इससे प्रारम्भ में डच भाषा के शब्दों के स्थान पर इन्दोनीसी शब्दों का प्रयोग कुछ गड़बड़ रहा। कारण, इन्दोनीसिया के किसी क्षेत्र-विशेष ने—जैसे, जावाई सांस्कृतिक क्षेत्र के लोगों ने—अनेक शब्द, वाक्य, व्याकरणिक विशिष्टताएँ इत्यादि जावी भाषा से लीं तो पश्चिम सुमात्रा के लोगों ने बहुत से शब्द मिनंगकबाऊ भाषा से लिये। इसमें और गड़बड़ी और निर्बोधिता बचाने के लिए इन्दोनीसिया शासन ने लम्बग बहासा बुदय (भाषा एवं संस्कृति संस्थान) की स्थापना की जो इस समय भाषा इन्दोनीसिया और इन्दोनीसी संस्कृति के विकास का जिम्मेदार है।

प्रश्न किया जा सकता है कि आधुनिक इन्दोनीसिया की राष्ट्रभाषा के विकास में संस्कृत की अभी महत्त्वपूर्ण भूमिका क्यों है। आगे के तर्कों से यह बात पर्याप्त स्पष्ट हो जायगी कि बहासा इन्दोनीसिया का राष्ट्रभाषा के रूप में अपनी शब्दावली के लिए नये शब्दों को निर्माण करने के इन्दोनीसी प्रयत्नों में संस्कृत की भूमिका अभी क्यों है तथा आगे भी किस लिए बनी रहेगी।

१—पहले बताया जा चुका है कि भारतीय संस्कृति ने अतीत में ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दियों से इन्दोनीसी संस्कृति के विकास में योगदान किया है तथा यह भली भाँति सिद्ध किया जा चुका है कि इन्दोनीसिया में स्थानान्तरित भारतीय संस्कृति अपने सांस्कृतिक मानस की अभिव्यक्ति के माध्यम स्वरूप संस्कृत भाषा का उपयोग करती थी। उस समय भी, जैसा डा० विजनराज चटर्जी ने बताया है, जब इन्दोनीसी जन भारतीय सांस्कृतिक दाय को इन्दोनीसी संस्कृति के रूप में परिवर्तित कर रहे थे महाभारत में आये हुए स्थान जावाईयों के लिए इतने परिचित हो चुके थे कि कालान्तर में भारतीय महाभारत में हुई घटनाएँ स्वयं जावा में ही घटी हुई मानी जाने लगीं और जावाई राजकुमार अपना वंश पाण्डवों से ही निकला बताने लगे। यदि ऐसा होना सम्भव था तो यह भी इसी तथ्य का परिणाम है कि संस्कृत को इन्दोनीसी संस्कृति की सज्जा के लिए मोड़ा गया है।

२—दूसरे प्रश्न का कि बहासा इन्दोनीसिया इस समय भी बहुत से नये संस्कृत शब्द ग्रहण करती है उत्तर इस भाषा के विकास के मनोवैज्ञानिक पक्षों पर ध्यान दिये बिना नहीं दिया जा सकता। यह बताया जा चुका है कि इन्दोनीसिय भाषा प्रारम्भ से ही ऐसे उपकरण के रूप में रही है जिससे इन्दोनीसी डचों की उपनिवेशीकरण नीति का मुकाबला कर रहे थे। इसलिए भाषा इन्दोनीसिया राजनीति का अस्त्र थी और इस समय भी है।

इन्दोनीसिया राष्ट्र इन्दोनीसिया को नया और मजबूत बनाना चाहता है। इसलिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वैभवशाली इन्दोनीसिया की स्थापना के प्रयत्न को इन्दोनीसिया के अतीत कालीन वैभव से जोड़ा जाना चाहिए, जिसे उसने किसी समय मजपहित साम्राज्य में प्राप्त किया था। इतिहास से यह भली भाँति ज्ञात है कि चौदहवीं शती में जब यह साम्राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर था तब मजपहित की संस्कृति अंशतः भारतीय सांस्कृतिक दाय पर आधारित थी जिसकी वैज्ञानिक भाषा संस्कृत के साथ-साथ प्राचीन जावी थी। प्राचीन जावी भाषा का संस्कृत भाषा से इतना अधिक घनिष्ट सम्बन्ध था कि बहुत से संस्कृत शब्द प्राचीन जावी में ले लिये गये हैं और संस्कृत की उस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक अभिव्यक्तियों में प्रमुख भूमिका रही है। इसी कारण यह जानना अचरज की बात नहीं है कि भाषा इन्दोनीसिया में नये शब्द गढ़ते समय बहुत से नये शब्द संस्कृत से ही व्युत्पन्न हैं। मनोवैज्ञानिक एवं राजनीतिक दृष्टियों से इन्दोनीसी राष्ट्र वे ही शब्द उपयोग करना चाहता है जिनका मजपहित काल में राजनीतिज्ञों एवं विद्वानों ने प्रयोग किया था। यह भी एक कारण है जिससे भाषा इन्दोनीसिया के लिए नये शब्द बनाने का स्रोत ढूँढ़ने का झुकाव अरबी की अपेक्षा संस्कृत की तरफ ज्यादा है, यद्यपि यह भी अच्छी तरह ज्ञात है कि इन्दोनीसी जनता का ८५ प्रतिशत भाग इस्लाम का अनुयायी है जो अरबी को पवित्र भाषा मानता है।

इस अभिपत्र में आगे चलकर पता चलेगा कि संस्कृत आधुनिक इन्दोनीसिया में अब भी महत्त्वपूर्ण है। सभी को यह जानकर आश्चर्य होगा कि इन्दोनीसी गणराज्य की नौ-सेना का आदर्श वाक्य है— **जलेश्व जयामहे** अर्थात् महासागर पर हम विजयी हों। यह वाक्य संस्कृत में है। इन्दोनीसी स्थल सेना का आदर्श वाक्य भी संस्कृत का है— **त्रिउभय शक्ति** अर्थात् इन्दोनीसी सैनिक के तीन शक्तिशाली कर्त्तव्य। सभी को यह बात अचरज की लगेगी कि इन्दोनीसी पुलिस दल का आदर्श वाक्य **त्रिव्रत** अर्थात् तीन शपथ है जो इन्दोनीसी पुलिस दल के सदस्यों को लेनी होती है। अंत में, पर कम महत्त्वपूर्ण नहीं, यह भी बता दिया जाय कि इन्दोनीसी वायुसेना भी सेना के अन्य अंगों से इस बात में भिन्न नहीं है क्योंकि उसका आदर्श वाक्य है— **स्वभुवन पक्ष**—अपने पक्षों से अपने देश के स्वामी हैं।

३—मनोवैज्ञानिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के अतिरिक्त, जिनसे संस्कृत से शब्द लेकर अपनी शब्दावली विकसित करने की दिशा भाषा इन्दोनीसिया को प्राप्त होती है, ऐतिहासिक परिस्थितियों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह बताया जा चुका है कि जावी भाषा ने इन्दोसिया में एक विलक्षण साहित्य का विकास किया था। इसलिए भाषा इन्दोनीसिया में विचारों के व्यवधानों की पूर्ति के लिए नये शब्द या परिभाषिक शब्द जावी भाषा से लिए गये हैं, जो स्वयं संस्कृत शब्दों से अत्यधिक प्रभावित है। इस प्रकार जावी और संस्कृत भाषा के शब्दों से मिश्रित बहुत से संकर शब्द भाषा इन्दोनीसिया में ले लिये गये हैं।

इन्दोनीसिया की एक पिछली सरकार का नाम **काबिनेत कार्य** था। **कार्य** शब्द संस्कृत से लिया हुआ है परन्तु साथ-साथ जावी भाषा में भी उसी रूप में प्रयुक्त किया जाता है। जावी भाषा के माध्यम से भाषा इन्दोनीसिया में **कार्य** को आधुनिक शब्द बना लिया गया है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है, क्योंकि भाषा इन्दोनीसिया में काम के लिए **करिय** शब्द है जो मलय भाषा के माध्यम से संस्कृत से ही लेकर अनुकूल बनाया गया शब्द है। **करिय** दैनिक व्यवहार का शब्द हो गया है इसलिए गतिशील साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए एक नये शब्द की आवश्यकता पड़ी और जावाई शब्द **कार्य** चुना गया जो मूलतः संस्कृत से व्युत्पन्न है।

दो-तीन वर्ष हुए मजेलिस परेमुशवरतन रक्यत को बाण्डुंग में सम्बोधित करते हुए महामहिम राष्ट्रपति सुकर्णो ने **अम्बेग परमार्त** शब्द का प्रयोग किया जो वास्तव में जावी शब्द है। इसमें **अम्बेग** जावी है जिसका अर्थ दृष्टिकोण है तथा **परमार्त** वस्तुतः संस्कृत **परमार्थ** से लिया गया है जिसका अर्थ परम सम्पदा होता है। राष्ट्रपति सुकर्णो के विचारों के अनुसार इन्दोनीसियों का दृष्टिकोण, **अम्बेग परमार्त** होना चाहिए जिसके अनुसार उसे इन्दोनीसी लोक कल्याण राज्य का निर्माण करने के विशाल कार्य को सम्पादित करने में इन्दोनीसी सरकार की सहायता करने के लिए छोटी-छोटी कम महत्त्व की बातों पर महत्त्वपूर्ण बातों को करने में वरीयता देनी चाहिए।

वस्तुतः **परमार्त** या संस्कृत **परमार्थ** का मतलब **परम अर्थ** होता है और भारतीय दर्शन शास्त्र में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चतुर्वर्ग में अर्थ भी एक है।

एक अन्य उदाहरण संस्कृत से जावी भाषा होकर लिये गये शब्द **नर मिडन** का है। इसका अर्थ वन्दी होता है। औपनिवेशिक इन्दोनीसिया में इन्दोनीसी वन्दियों को जंजीरों से बाँधा जाता था और उनके लिए **पेरानतैयन** शब्द था जिसका अर्थ था जिसे जंजीरों में बाँधा गया हो। आधुनिक स्वतन्त्र इन्दोनीसिया में जेल छोड़ने के बाद प्रत्येक वन्दी को समाज का अच्छा सदस्य बनाने का मार्गदर्शन किया जाना चाहिए, इसलिए **पेरानतैयन** स्वतन्त्र इन्दोनीसिया में उपयुक्त नहीं लगता। अतः इसकी जगह जावी शब्द **नरपिडन** लिया गया है। शुद्ध संस्कृत में इसे **नरपीडन**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा जायगा, जहाँ इसका अर्थ नर = व्यक्ति और पीडन = कष्ट देना होता है।

अन्य उदाहरण भी हैं जिनसे सूचित होता है कि जावी भाषा के माध्यम से संस्कृत शब्दों को लिया जाना इन्दोनीसी समाज के विकास और उसकी प्रगति के लिए उपयुक्त है। स्वतंत्र इन्दोनीसिया में पुरुष के लिए मलय शब्द **लकि-लकि** और स्त्री के लिए **पेरेम्पुअन** अपमानजनक समझे जाते हैं। अतः मूल देशी मलय शब्दों के स्थान पर स्त्री के लिए **वनिता** और पुरुष के लिए **प्रिय** आ गये हैं और प्रत्येक संस्कृत भाषी के लिए स्पष्ट है कि भाषा इन्दोनीसिया के ये दोनों शब्द जावी भाषा से होते हुए संस्कृत भाषा से लिए गए हैं। संस्कृत में **वनिता** का अर्थ प्रिय पत्नी और **प्रिय** का अर्थ प्रेमी या पति होता है।

इस तथ्य के अतिरिक्त नये शब्द जावी भाषा के माध्यम से बनाये गये हैं। भाषा इन्दोनीसिया में प्रशासन और अन्य क्षेत्रों के आधुनिक भावों को प्रकट करनेवाले बहुत से शब्द मलय भाषा और इन्दोनीसिया की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के मध्यम से भी बनाये गये हैं। उदाहरणार्थ **स्वक्रिय** (स्वयं संचालन के लिए) संस्कृत **स्व** (अपने आप) और **क्रिय** (कार्य) **स्वप्रज** या स्वशासन (संस्कृत **स्व** और **प्रजा** से) इत्यादि।

४—चौथी बात का सम्बन्ध महामहिम राष्ट्रपति डा० सुकर्णो की भूमिका का है। राष्ट्रभाषा के रूप में भाषा इन्दोनीसिया की संवृद्धि एवं विकास को राष्ट्रपति सुकर्णो के व्यक्तित्व से अलग नहीं किया जा सकता। इस अभिपत्र में अन्यत्र बताया जा चुका है कि डच आधिपत्य के विरुद्ध इन्दोनीसी संघर्ष में भाषा इन्दोनीसिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसलिए राष्ट्रभाषा के विकास में राष्ट्रपति सुकर्णो के वैयक्तिक प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता। सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के सभी क्षेत्रों के बहुत से शब्द राष्ट्रपति सुकर्णो के बनाये हुए हैं। राष्ट्रपति सुकर्णो जावी पिता और बालि ब्राह्मणी की सन्तान हैं जिनसे उन्हें इन्दोनीसिया की पारम्परिक संस्कृति मिली है जो संस्कृत माध्यम द्वारा परहितैषी भारतीय संस्कृति से प्रभावित थी। इसलिए वे ऐसे व्यक्ति हैं जो आधुनिक इन्दोनीसियायी संस्कृति और संस्कृत के बीच बने सेतु को, विशेषतः भाषा इन्दोनीसिया के क्षेत्र में, सदैव मजबूत बनाते रहे हैं। इन्दोनीसिया की प्राचीन संस्कृति के विस्तृत ज्ञान द्वारा वे अपने बहुसंख्यक भाषणों और लेखों में जा संस्कृति और भाषा द्वारा इतने अधिक संस्कृत शब्दों वाक्यांशों का प्रयोग करते हैं कि अनेक प्राचीन शब्द भा इन्दोनीशिया में पुनः सजीव हो गये हैं।

पंचशील (संस्कृत **पंच** और **शील**) जैसे शब्द सुगमता से मूल संस्कृत स्रोत से लिये जा सकते हैं पर इनमें अब एक विशिष्ट इन्दोनोसी भाव निहित हो है। भारतीय दर्शनशास्त्र में **शील** का मूल अर्थ अब आ निक इन्दोनीसी संस्कृति में नहीं रहा, इसलिए इन्दोनी राज्य-दर्शन का **पंचशील** भारतीय दर्शन शास्त्र के शील अनुरूप नहीं है। दूसरे शब्दों में, भाषा के रूप में संस्कृ जो भाषा इन्दोनीसिया के विकास में काफी योगदान रही है, इस प्रकार इन्दोनीसिया में अपना ही विकास रही है, जो इसके मूल देश, भारत, में होनेवाले संस्कृत विकास से भिन्न है।

प्रत्येक संस्कृत-ज्ञाता को पता है कि संस्कृत में को विंशति कहा जाता है। उसका यह शुद्ध रूप इ नीसिया में व्यवहार नहीं किया जाता। इस शुद्ध शब्द जगह राष्ट्रपति सुकर्णो ने बीस का अर्थ व्यक्त करने लिए संस्कृत शब्द **द्विदश** का उपयोग करने का आदेश है। इस कारण इन्दोनीसी गणराज्य की बीसवीं जय मनाते समय पूरे इन्दोनीसिया में **द्विदसावर्ष** शब्द ही था। इस मामले में भाषा इन्दोनीसिया में संस्कृत के नि लागू नहीं होते। कारण, संस्कृत को इन्दोनीसी संस्कृति ग्रहण किया गया है और इसका विकास उन्हीं दिशाओं हो रहा है जिस ओर भाषा इन्दोनीसिया बढ़ रही है।

इस अभिपत्र में अन्यत्र किये गये विवेचन से यह हो जाता है कि इन्दोनीसी भूमि में संस्कृत भाषा उर्वरक माना जा सकता है, जहाँ के अनेक शब्दों को भ इन्दोनीसिया आत्मसात कर रही है। ऊपर से देखने संस्कृत से गृहीत शब्द भाषा इन्दोनीसिया के विकास में दान करते हैं, परन्तु भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से देखने संस्कृत भाषा इन्दोनीसी भाषा की सज्जा में संरोपित गयी प्रतीत होती है।

एक अन्य प्रखर उदाहरण, जिसमें संस्कृत व्याकरण नियम भाषा इन्दोनीसिया में लागू नहीं किये गये हैं प्रयोग से सम्बन्धित है, जो संस्कृत व्याकरण के अनु निषेधवाची उपसर्ग है। किन्तु जावी भाषा में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वत्ववाची देशी उपसर्ग होता है जो शब्द में ही लग जाता है। प्राचीन जावी भाषा में अ उपसर्ग है एक संस्कृत का अ, दूसरा प्राचीन जावी का अ। जावी भाषा के इतिहास से यह भली भाँति ज्ञात है कि स्वत्व सम्बन्ध बताने वाला देशी उपसर्ग अ शब्द के अर्थ में किसी प्रकार का परिवर्तन लाये बिना छोड़ा जा सकता है।

उदाहरणार्थ, **उरिप** और **अउरिप** शब्द दोनों का वहाँ एक ही अर्थ 'जीना' है। परन्तु प्राचीन जावी और जावी के व्याकरण के इस नियम को निषेधवाची अ से युक्त संस्कृत शब्दों पर, जैसे, **असम्भव** पर, लागू करने पर वह जावी भाषा में बिना परिवर्तन लाये अ से विहीन हो गया है, और इसलिए जावी भाषा में सम्भव का अर्थ **असम्भव** भी होता है। इस विकास से निस्सन्देह काफी उलझनें पड़ती हैं। इनका एक उदाहरण इन्दोनीसी गणराज्य की पूर्व राजधानी मध्य जावा के **योग्याकार्ता** का नाम है। **योग्या** नाम संस्कृत **अयोध्या** से निष्पन्न है जो रामायण के अनुसार राम की राजधानी थी जिसका अर्थ अविजेय होता है। ऊपर बताया जा चुका है कि उपसर्ग **अ** को अर्थ में किसी प्रकार का परिवर्तन लाये बिना छोड़ा जा सकता है। इसलिए **योग्या** का अर्थ इसके बिना भी अविजेय (नगर) ही है। इस उलझन के कारणों को जान लेने पर किसी को यह जानने पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि वर्तमान समय के सबसे बड़े ठेकेदार का नाम निंद्य कार्य है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार निंद्य कार्य का नाम अनिंद्यकार्य (**अ** उपसर्ग से युक्त) होना चाहिए था, जिसका अर्थ पुण्य कार्य होता है। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से निंद्यकार्य का अर्थ बुरा कार्य होता है, परन्तु इसके विपरीत इन्दोनीसी दृष्टि से, निंद्यकार्य को भाषा इन्दोनीसिया में पुण्यवान कार्यों के अर्थ में लिया गया है, क्योंकि यहाँ निषेधवाची उपसर्ग और प्राचीन जावी उपसर्ग **अ** के व्यवहार की गड़बड़ी है। यह इस बात का एक और प्रमाण है कि भाषा इन्दोनीसिया में लिये गये संस्कृत शब्द भाषा इन्दोनीसिया के विकास के अनुसार विकसित हुए हैं।

भाषा इन्दोनीसिया के नये शब्दों के अन्य उदाहरण **स्वस्त** और **प्रयुवन** है। जहाँ तक पहले शब्द की बात है **स्वस्त** का अर्थ निजी (प्राइवेट) है और यह सरकारी का विपरीतार्थक है। **स्वस्त** शब्द संस्कृत के **स्व** और **स्थ** से बना हुआ होना चाहिए, जिसका अर्थ अपने पैरों पर खड़ा हुआ होता है। इस शब्द के प्रयोग पर इन्दोनीसिया की एक संस्कृत विदुषी, श्रीमती एच० सोबादियो ने अपना अभिमत प्रकट किया है कि संस्कृत में **स्वस्थ** का अर्थ अच्छे स्वास्थ्य का होता है, किन्तु भाषा इन्दोनीसिया संस्कृत व्याकरण या संस्कृत वाक्प्रचार की चिन्ता नहीं करती। वास्तव में **स्वस्त** शब्द सारे इन्दोनीसिया में प्राइवेट के अर्थ में ज्ञात है।

जहाँ तक प्रयुवन शब्द की बात है भाषा इन्दोनीसिया में यह शब्द डच-लातीनी शब्द प्रो-युवनटयूट (Pro-yuwentute) की जगह प्रयुक्त किया जाता है जिसका अर्थ **अनाथाश्रम** होता है। इन्दोनीसिया की ऊपर वर्णित विदुषी एच० सोबादियो के अनुसार, उपर्युक्त शब्द शुद्ध संस्कृत में नहीं हो सकता तथा उनके अनुसार ठीक शब्द, **यौवनस्य अर्थम** या **यौवनार्थम** होना चाहिए। परन्तु **प्रयुवन** शब्द पहले से ही ज्ञात है और इन्दोनीसिया में काफी व्यवहार किया जा रहा है तथा यह अभी सन्दिग्ध है कि शुद्ध **यौवनस्य अर्थम** कभी भाषा इन्दोनीसिया में अपनाया जा सकेगा। **प्रयुवन** शब्द डच शब्द प्रो-युवनट्यूट की जगह माना जाता है। यह इस प्रमाण की पुष्टि है कि विदेशी भाषाओं से उधार लिये गये शुद्ध शब्द सरलता से स्वीकार नहीं किये जा सकते, किन्तु भाषा इन्दोनीसिया का नियम यह है कि केवल उन्हीं विदेशी शब्दों को भाषा इन्दोनीसिया में लिया जा सकेगा जिनका उच्चारण भाषा इन्दोनीसिया के शब्दों की तरह किया जा सकेगा। आखिर, भाषा इन्दोनीसिया की भी तो अपनी संरचनाएँ और विशिष्टताएँ हैं।

तथापि शुद्ध संस्कृत शब्द उपयोग करना अधिमान्य है या अन्य संस्कृत शब्द जो भाषा इन्दोनीसिया की रचना के अनुकूल हो सकते हैं—इस प्रश्न के विवेचन को रहने भी दिया जाय तो यह मुख्य बात बची रह जाती है कि इन्दोनीसी संस्कृति के विकास में सामान्यतः और भाषा इन्दोनीसिया के विकास में विशेषतः संस्कृत की मुख्य भूमिका रही है और रहेगी। इन्दोनीसियों में प्राचीन भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा के प्रति प्रेम और आदर का भाव है। इन्दोनीसिया के सरकारी और निजी दोनों तरह के विश्वविद्यालयों में भारत का सांस्कृतिक इतिहास और संस्कृत भाषा उन विद्यार्थियों के लिए दो महत्त्वपूर्ण विषय हैं जो भाषा इन्दोनीसिया की क्षेत्रीय भाषाओं और पुरातत्त्व का अध्ययन करें। यदि इन्दोनीसिया के बी० ए० और एम० ए० पाठ्यक्रमों की अवधि पाँच वर्ष की है तो विद्यार्थियों को विश्वविद्यालयों में ३ या ४ वर्ष तक संस्कृत पढ़नी होती है।

यदि इस बात पर ध्यान दिया जाय कि इन्दोनीसिया में कम से कम १४ विश्वविद्यालय (राज्य के तथा निजी) हैं जहाँ भाषा इन्दोनीसिया और पुरातत्त्व की शिक्षा दी जाती है तो भारत का सांस्कृतिक इतिहास और संस्कृत भाषा इन १४ विश्वविद्यालयों के साहित्य संकायों में पढ़ायी जाती है। इनके अतिरिक्त इन्दोनीशिया के शिक्षण संस्थानों के विद्यार्थियों को भी २-३ वर्ष संस्कृत पढ़नी होती है और इन संस्थानों की संख्या २० मानी जा सकती है, तो संस्कृत का अध्ययन विश्वविद्यालय स्तर पर ३४ संस्थानों में किया जाता है। भारत का सांस्कृतिक इतिहास पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए भाषा इन्दोनीसिया में लिखी पुस्तकें उपलब्ध हैं और कुछ मास हुए संस्कृत व्याकरण की एक पुस्तक (तत्वहासा संसकर्त रिङकस) भाषा इन्दोनीसिया में प्रकाशित हुई है ताकि इस महत्त्वपूर्ण भाषा का अध्ययन सुगमता से किया जा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काँच व तामचीनी के पदार्थ

प्रो० पुरुषोत्तमदास स्वामी, एम्० एस्-सी०, एम्० एस्०, विशारद

काँच--काँच शब्द से एक तो पदार्थ की अवस्था का अभिज्ञान होता है दूसरे यह एक व्यावसायिक पदार्थ का नाम है। जब किसी द्रव को ठंढा किया जाता है और विशेषतः जब वह द्रव शुद्ध यौगिक से बना उसके द्रवणाङ्क से ऊपर के तापमान पर हो तब एक अवस्था ऐसी आती है जब वह सहसा ठोस पदार्थ में बदल जाता है। जब तक सारा का सारा पदार्थ ठोस नहीं बन जाता तापमान और नीचे नहीं उतरता प्रत्युत वह स्थिर बना रहता है। यह तापमान हिमाङ्क कहलाता है। प्रशीतन तथा ठोस बनने की इस प्रक्रिया में ये यौगिक बड़े या छोटे आकार के ज्यामितीय गठन के पदार्थों का निर्माण करते हैं जो मणिभ कहलाते हैं। बहुत से द्रव पदार्थ, जिनमें पानी, धातुएँ, वसाएँ बहुत से रासायनिक पदार्थ आदि हैं, ठंढे होने पर मणिभों का निर्माण करते हैं। वस्तुओं का मणिभकरण एक तरह से स्वाभाविक बात है और इसीकी द्रवों के प्रशीतन पर अपेक्षा की जाती है। पृथ्वी की पर्पटी बहुत कर मणिभों से ही बनी है। काँच ऐसे पदार्थों में नहीं है। व्यवहार की दृष्टि से मणिभ शब्द से हमें निर्मल एवं पारदर्शक वस्तु का अभिज्ञान होता है। काँच भी निर्मल एवं पारदर्शक होता है। अतः उसे मणिभों का बना मान लेना स्वाभाविक है, पर यह हमारी भ्रांति होगी।

कुछ द्रवों का आचरण उपरिलिखित द्रव पदार्थों से सर्वथा भिन्न होता है। जब वे ठंढे पड़ते हैं तब वे और अधिक सांद्र होते जाते हैं और अंततः परिदृढ़ या ठोस बन जाते हैं। यह परिदृढ़ ठोस पदार्थ फिर से गर्म किये जाने पर धीरे-धीरे कम सांद्र होता-होता अंततः तरल द्रव में परिणत हो जाता है। ऐसा द्रव जो ठंढा होने पर बिना मणिभकरण के ठोस बनता है, भौतिक दृष्टि से काँच है चाहे उसका रासायनिक संगठन कैसा ही क्यों न हो।

बहुत-सारे तत्त्व, यौगिक एवं विभिन्न प्रकार के मिश्रण काँचयुक्त अवस्था में मिल सकते हैं, पर साधारण काँच से हमारा तात्पर्य उस पदार्थ से है जो सिकता, क्षारीय ऑक्साइड तथा कुछ दूसरे यौगिकों के, जिनका सिकता या क्षारीय ऑक्साइड के साथ संयोग हो सकता हो, मिश्र को गलाकर तैयार किया गया हो। शुद्ध सिकता (SiO_2) को गलाने पर काँच बनता है। यह काँच न केवल संतो प्रद ही है बल्कि साधारण काँच से कई बातों में श्रेष्ठ है, पर इससे सुगमता से चीजें अर्थात् भाण्ड बनाना सं नहीं है। सिकता का द्रवणांक १७१०° सेंटीग्रेड है और उ गलने से जो पदार्थ बनता है, वह सांद्र तथा बुलबुलों भरा होता है। इस द्रवणाङ्क में गिरावट लाने तथा की सांद्रता घटाने के लिए, जिससे चीजें सुगमता से सकें कुछ अन्य पदार्थ मिलाये जाते हैं। फिर भी हो रहे पदार्थ में काफी सांद्रता का रहना आवश्यक है उसे फूंका जाकर बोतलें आदि बनायी जा सकें। सिकता द्रवणांक को गिराने के लिए सोडियम तथा पौटैसियम कार्बनेट बड़े अच्छे यौगिक हैं। इनमें सोडियम कार्ब जिसे सोडाराख कहते हैं, सस्ता होने के कारण अधिक हार में आता है। सोडा तथा सिकता से बने काँच वस्तुएँ अभाग्यवश नर्म होती हैं और पानी में कुछ जाती है। अतः वे टिकाऊ नहीं होतीं। यदि अधिक का उपयोग किया गया तो सोडियम सिलिकेट अर्थात् काँच बनता है जो पानी में पूर्णतः घुल जाता है। इस का उपयोग सरेस की तरह किया जाता है तथा इसे धो घरों में साफ करने के काम में लिया जाता है।

काँच के इस अवगुण को मिटाने के लिए कच्चे में चूना मिलाया जाता है। यदि चूने को अत्यधिक मात्रा में मिलाया जाता है तो काँच की तरलता इतनी जाती है कि उसे फूंका नहीं जा सकता और उसके होने पर मणिभ बनने लगते हैं।

सिकता के अतिरिक्त कई अन्य अम्लीय ऑक्साइड काँच निर्माणक होते हैं। इनका यहाँ पर संक्षेप में विवे करना समीचीन प्रतीत होता है।

बोरोन ऑक्साइड--इसका सूत्र B_2O_3 तथा आ विकभार ६९·६ है। यह प्रकृति में सुहागा तथा बो अम्ल के रूप में मिलता है। बोरोन ऑक्साइड बो अम्ल को गर्म करने पर बनता है। लाल तप्त आँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सांद्र द्रव होता है। इसे ठंढा करने पर काँच बन जाता है, पर नम वायु से जल को ग्रहण कर यह फिर बोरिक अम्ल में परिणत हो जाता है। इस ऑक्साइड का उपयोग कम तापमान पर पिघलनेवाले ऐनेमल अर्थात् तामचीनी में किया जाता है। बोरोसिलिकेट काँच बनाने में भी यह प्रयुक्त होता है।

ऐल्यूमीना—यह अल्मुनियम का ऑक्साइड (Al_2O_3) है। इसका आणविक भार १०२ है तथा प्रकृति में यह ऐमेरी, लाल, नीलम आदि के रूप में मिलता है। इसका द्रवणाङ्क २०५०° सेंटीग्रेड है। इसका उपयोग ऊष्मसह पदार्थ के रूप में किया जाता है। इसका घनत्व लगभग ४ है। यह भी काँच निर्माण में भाग लेता है।

फास्फरस पेरोक्साइड—इसका सूत्र P_2O_5 तथा आणविक भार १४२ है। यह मुख्यतः अस्थियों की राख (कैल्सियम फास्फेट) के रूप में प्रयुक्त होता है। इस ऑक्साइड से बने काँच उपलभासी होते हैं। फास्फेट काँच प्रकाशीय उपयोग में लिये जाते हैं। अल्मुनियम फास्फेट के काँच भी बनाये गये है। ये हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के अच्छे अवरोधक माने गये हैं।

काँच निर्माणक क्षारीय ऑक्साइडों में सोडा, पोटैस, लीथिया, चूना, मैगनेसिया, सीस-ऑक्साइड, बैरियम ऑक्साइड आदि हैं। इनका भी यहाँ पर संक्षेप में वर्णन करना संगत प्रतीत होता है।

सोडियम ऑक्साइड (Na_2O)—इसका आणविक भार ६२ है। जब सोडियम हवा में या ऑक्सीजन में जलाया जाता है या सोडियम नाइट्रेट को ऊँचे तापमान पर गर्म किया जाता है तब सोडियम ऑक्साइड बनता है। काँच में यह सोडियम कार्बनेट के रूप में मिलाया जाता है।

पोटैसियम ऑक्साइड (K_2O)—सोडियम ऑक्साइड की भाँति यह भी प्रकृति में स्वतंत्र रूप में नहीं मिलता। इसका आणविक भार ९४·१ है। काँच के निर्माण में यह ऑक्साइड भी महत्त्वपूर्ण भाग लेता है।

लीथियम ऑक्साइड (Li_2O)—इसका आणविक भार २९·९ है। यह भी स्वतंत्र रूप में प्रकृति में नहीं मिलता। स्पोड्यूमीन, लेपिडोलाइट आदि लीथियम खनिज हैं। इनसे काँच के कच्चे माल के रूप में प्रयोग के लिए लीथियम कार्बनेट बनाया जाता है। सोडा या पोटैस की अपेक्षा लीथिया सिकता के द्रवणांक में गिरावट लाने में अधिक सहायक होता है। यह इसके थोड़े सम-भार के कारण है। पर यह बड़ा महँगा पड़ता है। अतः इसका उपयोग काँच-निर्माण में नहीं-सा होता है।

कैल्सियम ऑक्साइड (CaO)—इसका आणविक भार ५६·१ है। यह चूने के पत्थर, कैल्साइट, संगमर्मर आदि को, जो कैल्सियम कार्बनेट होते हैं, जलाने पर बनता है। इसका द्रवणाङ्क २५७२° सेंटीग्रेड है और घनत्व ३·३ है। वायु में नमी को लेकर यह बुझे हुए चूने में धीरे-धीरे परिणत हो जाता है।

मैगनेसियम ऑक्साइड (MgO)—इसका आणविक भार ४०·३ है। यह चूने से भी कम गालनीय होता है। इसका द्रवणाङ्क २८००° सेंटीग्रेड तथा घनत्व ३·१ है। इसमें चूने से कम क्षारीयता पायी जाती है। वायु में रख छोड़ने पर यह धीरे-धीरे जल-संयोजित हो जाता है। इस ऑक्साइड को मैगनेसियम कार्बनेट को गर्म करके बनाया जाता है।

सीसे का ऑक्साइड (PbS)—इस ऑक्साइड का आणविक भार २२३·२ है। सीसे को वायु में उसके द्रवणाङ्क से ठीक ऊपर के तापमान पर गर्म करके इसे बनाया जाता है। इसका रंग हलका पीला होता है। काँच निर्माणक आक्साइडों में यही अकेला रंगीन ऑक्साइड है। सीसे का काँच रंगहीन होता है। इसका द्रवणाङ्क ८८८° सेंटीग्रेड तथा आपेक्षिक घनत्व ९ है।

बैरियम ऑक्साइड (BaO)—इसे बेराइटा भी कहते हैं। इसको बैरियम नाइट्रेट को जलाकर बनाया जाता है। इसका आणविक भार १५३·४ है। हवा में इसे गर्म करने पर यह बैरियम पैरोक्साइड में परिणत हो जाता है। इसका द्रवणाङ्क १९२३° सेंटीग्रेड तथा घनत्व लगभग ५ है। यह प्रबल क्षार है।

जस्ते का ऑक्साइड (ZnO)—इसका आणविक भार ८१·४ है। इसे जस्ते को हवा में जलाकर बनाया जाता है। गर्म किये जाने पर यह पीला हो जाता है, पर ठंढा होने पर फिर सफेद बन जाता है। यह १८००° सेंटीग्रेड तापमान पर दाब लगाने पर पिघलता है अन्यथा यह उत्सादित हो

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है अर्थात् बिना द्रव बने यह गैसीय पदार्थ में परिणत हो जाता है। इसका घनत्व ५·६ है।

सहायक काँच निर्माणक ऑक्साइड ये हैं—आर्सेनिक पेंटोक्साइड (As_2O_5) तथा आर्सेनिक ट्राई आक्साइड (As_2O_3), ऐंटिमनी ऑक्साइड (Sb_2O_3), गंधक ट्राई-ऑक्साइड (SO_3), टिन ऑक्साइड ($Sn\ O_2$) एवं टाइटैनियम ऑक्साइड (T_1O_2)।

काँच की निर्माण-क्रिया में कच्चे माल को पिघलाते वक्त उसमें विद्यमान कार्बन डाई-ऑक्साइड अलग हो जाता है और क्षारीय ऑक्साइडों की अम्लीय ऑक्साइडों के साथ प्रतिक्रिया के फलस्वरूप लवण बनते हैं :—

$$CaO + SiO_2 \rightarrow CaSiO_3$$

ये ऑक्साइड यदि विभिन्न अनुपात में रहें और अधिक ऊँचे तापमान पर गर्म किये जायँ तो जो यौगिक या लवण बनते हैं। वे ये होते हैं :—

$3CaO + 2Si_2O \rightarrow Ca_3\ Si_2\ O_7$ या $3\ CaO.\ 2SiO_3$

$2\ CaO + SiO_2 \rightarrow CaSiO_4$ या $2\ CaO.\ SiO_2$

सिकता तथा सोडियम कार्बनेट की प्रतिक्रिया इस प्रकार होती है :—

$$Na_2\ CO_3 + SiO_2 \rightarrow Na_2\ SiO_3 + CO_2$$

चूने का पत्थर, डोलोमाइट तथा सिकता के संयोग से कैल्सियम एवं मैगनेसियम के लिलिकेट तथा कार्बन डाई-ऑक्साइड बनते हैं। सोडियम सल्फेट भी ऊँचे तापमान पर सिकता के साथ मिलकर सोडियम सिलिकेट बनाता है। इस प्रतिक्रिया में तेजी लाने के लिए उसमें कोयले का चूरा मिला दिया जाता है जो सोडियम सल्फेट को सोडिमम सल्फाइट में बदल देता है :—

$$Na_2\ SO_4 + C \rightarrow Na_2\ SO_3 + CO$$

$$Na_2\ SO_3 + SiO_2 \rightarrow Na_2\ TiO_3 + SO_2$$

काँच बनाने में सोडियम नाइट्रेट का उपयोग भी किया जाता है क्योंकि इसका द्रवणांक काफी कम है। सीसे के ऑक्साइड के प्रयोग से लेड-सिलिकेट बनता है :—

$$PbO + SiO_2 \rightarrow PbSiO_3$$

पोटैस के लिए काँच बनाने में पोटैसियम कार्बनेट काम में लिया जाता है। यह सिलिका के साथ मिलकर पोटैसियम सिलिकेट तथा कार्बन-डाई ऑक्साइड बनाता है। बोरोन ऑक्साइड ताप निरोधक तथा संक्षारण प्रतिरोधक काँच के बनाने में प्रयुक्त होता है। यह क्षारीय ऑक्साइडों के साथ मिलकर बोरेट लवण बनाता है :—

$$CaO + B_2 \quad O_3 \rightarrow Ca \quad (BO_2)_2$$

$$Na_2CO_3 + B_2\ O_3 \rightarrow 2\ NaBO_2 + CO_2$$

फास्फरस पेंटोक्साइड तथा ऐल्यूमीना भी क्षारीय ऑक्साइडों के संयोग से फास्फेट तथा ऐल्यूमीनेट लवण बनाते हैं। कच्चे माल में थोड़ा त्रोट (क्युलेट) अर्थात् रद्दी काँच भी मिलाया जाता है।

काँच का निर्माण अग्नि पर आधारित कला मानी गयी है। काँच बनाने की इस कला का उद्गम सर्व प्रथम कब और कैसे हुआ यह अनिश्चित है। संभवतः बालुका तथा सोडा के खुली आग में पड़ने से उनके गलने पर काँच अकस्मात् बन गया होगा। प्रयोगों से यह विदित होता है कि काँच को इस तरह बनाया जा सकता है। आँच पर निर्भर कलाओं में काँच निर्माण कला सबसे प्राचीन है। काँचनिर्माण कला का जन्मस्थान मिस्र माना जाता है। पर लोगों का यह विचार है कि इसके उद्गम के लिए हमें मैसोपोटेमिया की ओर दृक्पात करना चाहिए। मिस्र के पश्चात् रोम, वेनिस आदि स्थानों में यह कला विकसित हुई। आजकल सर्वत्र काँच बनाने के कारखाने चलते हैं। वहाँ नाना भाँति के सुंदर से सुंदर काँच का निर्माण होता है।

काँच के प्रकार—संघटन के लिहाज से काँच का इन वर्गों में विभाजन किया जाता है—सोडा-चूना काँच, चकमक काँच, बोरो-सिलिकेट काँच व तामचीनी काँच।

(क) सोडा-चूना काँच—यह काँच बड़े परिमाण में तैयार किया जाता है। इसका संघटन स्थिर नहीं है। संघटकों के परिमाण तथा प्रयुक्त रासायनिक यौगिकों के प्रकार में घटा-बढ़ी संभव है। यह मुख्यतः खिड़कियों व दरवाजों में प्रयुक्त काँच, प्लेट काँच तथा भाण्ड काँच (बोतलें, बर्नियाँ आदि) होता है। अगले पृष्ठ पर इन काँचों के कुछ रासायनिक संघटनों का निर्देश किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोडा-चूना काँच के कुछ रासायनिक संघटक

प्रकार	SiO_2	Al_2O_3	Fe_2O_3	CaO	MgO	Na_2O	K_2O	अन्य
खिड़की-काँच	७१·०	०·५४	०·०९	११·२६	१·५६	१५·१३	—	०·४४
बेल्लित प्लेट-काँच	७१·७८	०·४७	०·०६	१३·१२	—	१३·८२	—	०·९४
भाण्ड काँच	७४·०	०·५		५·०	३·५	१७·०	—	—
विद्युत्-लैंप-काँच (हलका)	७२·१	२·०	—	२·७७	१·९५	२१·१	—	—
निर्वाप बोतलों व लालटेन की चिमनी का काँच	७६·७८	०·७२		६·५२	०·२४	११·१४	४·७४	—

(ख) चकमक काँच—इस काँच का उपयोग खाने के बर्तनों में तथा प्रकाशीय काँच के तौर पर किया जाता है। ये पोटैस-सीस काँच हैं। ये काँच सोडा-चूना काँच की अपेक्षा कम तापमान पर पिघलते हैं। इनमें बढ़िया चमक-दमक होती है। चूँकि सीसे के यौगिक सहज ही अपचयित हो जाते हैं, इससे इस प्रकार के काँच को पिघलाते समय आक्सीकारक वातावरण का रखा जाना आवश्यक है।

नीचे खाने की मेज पर प्रयुक्त भाण्डवाले काँच, प्रकाशीय काँच तथा चाक्षुष् काँचों का संघटन दिया जा रहा है :—

प्रकार	SiO_2	PbO	Al_3O_3	CaO	MgO	Na_2O	K_2O	अन्य
मेज-काँच	७२·०	१४·८	—	०·९	—	९·५	७·१	०·५
प्रकाशीय काँच	२९·३	६७·५	—	—	—	—	३.०	२.०
चाक्षुष् काँच	४४·४५	४५·५	०·३१	—	—	१·०१	८·४	२·०

(ग) बोरोसिलिकेट काँच—अपने अत्यधिक प्रसार गुणाङ्क के कारण ऊपर बतलाये गये सोडा-चूना काँच तथा चकमक काँच का उपयोग ऐसे स्थलों में नहीं किया जा सकता जहाँ आकस्मिक ताप परिवर्त्तन होते हैं। उनमें विद्यमान क्षारीय ऑक्साइडों पर पानी तथा अम्लों की प्रतिक्रिया होती है। क्षारीय ऑक्साइडों को हटाकर बोरोन ट्राई-ऑक्साइड को मिलाने से जो काँच बनता है, वह ताप-परिवर्त्तनों का अच्छी तरह सहन करता है तथा जल एवं अम्लों का प्रतिरोधक है। प्रयोगशाला में प्रयुक्त पाइरेक्स काँच बोरो सिलिकेट वर्ग का सदस्य है। वस्तुओं को गर्म करने के लिए भाण्ड के तौर पर इसी प्रकार के काँच का प्रयोग किया जाना चाहिए। यहाँ पर प्रयोगशाला काँच तथा तापमापक यंत्र में प्रयुक्त काँच का रासायनिक संघटन दिया जाता है :—

प्रकार	SiO_2	B_2O_3	Al_2O_3	ZnO	CaO	MgO	Na_2O	K_2O	अन्य
प्रयोगशाला-काँच									
(१) जीना	६४·७०	१०·९०	४·२०	१०·९०	०·६३	०·२१	७·५०	०·३७	०·३९
(२) पाइरेक्स	८०·५०	११·००	२·००	—	०·२९	०·०६	४·४०	०·२०	०·७०
थर्मामीटर– (तापमापक यंत्र)	७२·०६	१०·४३	६·२४	—	०·३५	०·२०	९·८२	०·१०	—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) तामचीनी काँच—रसोई के बर्त्तन, स्नानघर में प्रयुक्त टब, चिलमची (वाशबेसिन), अस्पताल में प्रयुक्त तामचीनी के विभिन्न भाण्ड इस्पात की चद्दर पर काँच सदृश तामचीनी चढ़ाकर बनाये जाते हैं। चद्दर पर तामचीनी द्रव रूप में आवृत्त करके भट्टी में इसे तपाया जाता है जिससे तामचीनी का काँच पिघलकर बर्त्तन पर अच्छी तरह फैल जाता है। इस प्रकार के काँच में सोडा अधिक मात्रा में रहता है। इसका प्रसार गुणाङ्क धातु के प्रसार गुणाङ्क के समकक्ष होता है जिससे वह चटखता नहीं। यहाँ पर आधार लेप तथा सफेद आवरण लेप का संघटन दिया जाता है:—

लेप काँच	$K_2O + Na_2O$	B_2O_3	Al_2O_3	SiO_2	QF_2	CoO	MnO	NiO	अन्य
आधार लेप काँच	१७·८	१६·०	७·७	५१·१	५·५	०·५	०·९	०·५	–
आवरण लेप काँच	८·०	१२·०	१०·०	५५·०	–	–	–	–	४·० AlF_3 ४·० Sb_2O_3 ७·० SnO
ढलवें लौह पर आवृत्त काँच	१६·००	९·१	–	२४·०	७·० (F_2)	–	–	–	२·३ CaO १६·० PbO ७·९ Ba(८·० ZnO ४·० Sb_2O_3
ताँबे पर आवृत्त काँच	२१·३	१३·४	६·८	४७·८	–	–	–	–	५·० CaO ६·० pbO

काँच की निर्माण प्रक्रिया में कच्चे माल को पिघलाने के लिए जिन भट्टियों का प्रयोग किया जाता है, वे दो प्रकार की हैं :—तड़ाग-भट्टी तथा घट-भट्टी।

तड़ाग-भट्टी के दो रूप हैं :—दिवस तड़ाग भट्टी तथा अविराम तड़ाग भट्टी। दिवस तड़ाग भट्टी में, जो छोटी होती है और जिसमें कुछ टन कच्चा माल डाला जा सकता है, एक दिन में कच्चे माल को पिघलाकर परिशोधित कर लिया जाता है और दूसरे दिन कारीगरों द्वारा हाथ में लेकर मुँह से फूँका जाकर काँच के भाण्ड बना लिये जाते हैं। इसमें एक ही आयताकार कक्ष होता है। इसकी पार्श्व-दीवारें दो फुट से अधिक ऊँची नहीं होतीं। इसकी लंबाई तथा चौड़ाई अभीष्ट धारिता पर निर्भर है। साधारणतः यह ८ फुट लंबी तथा ४ फुट चौड़ी होती है। इस आकार की भट्टी की धारिता लगभग पाँच टन की होती है। इसकी दीवारें तथा पेंदा साधारण तौर पर एक फुट मोटा होता है। थोड़े परिमाण में काँच पिघलाने के लिए यह भट्टी बड़ी अच्छी है। इस भट्टी में बनाया गया काँच उतना बढ़िया नहीं होता जि घट या अविराम तड़ाग भट्टी में बनाया गया होता है।

अविराम तड़ाग भट्टी में कच्चे माल को डालते र पिघले हुए काँच का तल एक-सा रखा जाता है। दो कक्षों में बनी होती है। बड़े कक्ष में काँच पिघ है और छोटे कार्यकारी कक्ष से पिघले काँच को छोटे छेद से निकालकर उससे बर्त्तन तैयार जाते हैं। पिघला हुआ काँच पहले से दूसरे कक्ष में बीच की विभाजक दीवार के तले पर बने छेद होकर पहुँचता है। द्रावण कक्ष का भीतरी आकार १६′ × का होता है। इसकी ऊँचाई ४२″ तथा दीवारों मुटाई १२ इंच होती है। विभाजक दीवारों के बीच अंतर दो फुट का होता है और इनकी ऊँचाई होती है। कार्यकारी कक्ष में एक अर्धवृत्त १६ फुट का तथा दूसरा आयत १६′ × २′ का होता है। दीवारें ४२ इंच ऊँची, पर मोटी केवल ८″ होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घट-भट्टी का उपयोग प्रकाशीय काँच के समान थोड़े परिमाण में काँच तैयार करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार के काँच को बनाने में कच्चे माल के संघटकों के परिमाण तथा द्रावण एवं परिष्करण प्रक्रियाओं पर भली भाँति नियंत्रण रखना आवश्यक होता है। इस भट्टी में आग मिट्टी के बने घटों का उपयोग किया जाता है। ये घट ३ फुट ऊँचे तथा ५ फुट तक व्यास के बने होते हैं। ये बंद या खुले दोनों प्रकार के होते हैं। खुले घट प्रकाशीय काँच तथा प्लेट काँच के बनाने में प्रयुक्त होते हैं। प्लेट काँचवाले घटों की धारिता एक या दो टन की होती है। इनकी दीवारों की मुटाई घट के व्यास का बारहवाँ भाग होता है। ढके हुए घटों के प्रयोग का उद्देश्य इनमें डाले गये माल को भट्टी के वातावरण के संपर्क में आने से रोकना है। इस प्रकार के घट की धारिता एक टन की होती है। यह ५ फुट लंबा तथा लगभग ४ फुट चौड़ा होता है। इसकी ऊँचाई २२-२६ इंच होती है। घट वृत्ताकार या दीर्घवृत्त आकृति की भट्टी में दीवारों की ताक पर रखे जाते हैं। प्लेट काँच बनाने की भट्टी आयताकार होती है और उसमें १३ से २० घट तक रखे जा सकते हैं।

काँच निर्माण के लिए भट्टियाँ बनाने के वास्ते अपेक्षित इस प्रकार के सामान को पाना एक कठिन समस्या है जो पिघले काँच की उस पर होनेवाली क्रिया का प्रतिरोध करने में समर्थ हो, ताप को रखे रहे तथा ऊँचे तापमानों पर आवश्यक भार वहन कर सके। सभी ऊष्मसह पदार्थों पर पिघले काँच का आक्रमण होता है। समुचित संघटन वाली आग मिट्टी काफी संतोषजनक काम देती है, पर उसका लोचदार होना आवश्यक है तथा उसके बने पदार्थ में १६००° सेंटीग्रेड तापमान सहन करने की शक्ति अवश्य हो। काँच उद्योग में न्यूलाइट के ढाले गये खण्डों का प्रयोग आजकल बढ़ चला है।

काँच का द्रावण—जब भली भाँति मिलाये गये कच्चे माल में प्रयुक्त पदार्थ भट्टी में गर्म किये जाते हैं तब उनमें से निम्न द्रवणाङ्कवाले पदार्थ पिछलकर द्रव बन जाते हैं और वे दूसरों के लिए विलेयक का काम करते हैं तथा साथ ही उनके संग प्रतिक्रिया में भाग लेते हैं। कच्चे माल को पिघलाते समय तापमान बहुत ऊँचा अर्थात् १४००°–१५००° सेंटीग्रेड रखा जाता है, जिससे द्रवित पदार्थ की सांद्रता में कमी हो सके। गर्म करते समय कार्बन डाई-ऑक्साइड, जल-वाष्प आदि के बुलबुले उठते हैं। उनका निष्कासन आवश्यक है। अधिक सांद्र द्रव से इन बुलबुलों का निकलना कठिन होता है। गैसों को पूरी तरह से निकाल देने के लिए पिघले काँच को उच्चतम संभव तापमान पर कुछ देर तक रखना आवश्यक है। इस प्रक्रिया को चारुकरण विधि कहा जाता है। चारुकरण के लिए कच्चे माल में द्रव की सांद्रता को घटाने तथा बाद में अधिक परिमाण में गैसोत्पादन के लिए कुछ विशेष प्रकार के पदार्थ मिलाये जाते हैं। यह गैसोत्पादन छोटे-छोटे बुलबुलों को अपने में आत्मसात करके बाहर ले जाता है। इस प्रकार के पदार्थों में सोडियम सल्फेट व सुहागा उल्लेखनीय हैं। पिघले काँच में चारुकरण के लिए आर्सेनिक ऑक्साइड भी मिलाया जाता है। द्रावण विधि का उद्देश्य ऐसा काँच तैयार करके देना है जो निर्मल तथा समांग द्रव हो।

काँच की वस्तुएँ तैयार करने के लिए अपेक्षित तापमान १०००° से १३००° सेंटीग्रेड होता है। निश्चित तापमान इस बात पर आश्रित हैं कि हम किस प्रकार का काँच तैयार करना चाहते हैं और उसके लिए कौन-सा यंत्र काम में लिया जा रहा है।

काँच की बनी सभी वस्तुओं में संकोचन-तनाव को हटाने के लिए निर्माण के तुरन्त बाद उन्हें अविराम चुल्लिकाओं में, जिन्हें ले'र या अभितापक भट्टी कहते हैं, ले जाया जाता है और वहाँ उन्हें धीरे-धीरे ठंडा होने दिया जाता है।

व्यावसायिक काँच में इन गुणों का होना आवश्यक है :—

१. इसके लिए प्रयुक्त कच्चे माल के घाण का उद्योग में प्राप्त तापमान पर अर्थात् लगभग १४०° सेंटीग्रेड पर पिघल जाना जरूरी है।
२. पिघले हुए मिश्रण का ठंढे होने के पश्चात् मणिभकरण नहीं होना चाहिए। उसका अमणिभ रूप में रहना आवश्यक है। इसके लिए द्रवित मिश्रण की सांद्रता काफी अधिक रहने दी जाती है।
३. पिघले काँच की तरलता उसे अभीष्ट आकार प्रदान करने के लिए काफी देर तक बनी रहनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. काँच का स्थायी रूप में बना रहना जरूरी है। इस पर जल तथा अम्लों की प्रतिक्रिया न होने देने के लिए काँच में क्षारीय आक्साइड की मात्रा का कम होना आवश्यक है।

काँच के भौतिक गुणों का उल्लेख यहाँ पर किया जा रहा है :—

वर्त्तनाङ्क—१·४६७—२·१७९

आपेक्षिक घनत्व—२·१२५—८·१२०

प्रत्यास्थ गुणांक—६,५००,०००—१२,५००,००० पौंड प्रति वर्गइंच

संपीडन बल—९०,०००—१००,००० पौंड प्रति वर्ग इंच

आतनन बल—४,०००–१,०००,००० पौंड प्रति वर्ग इंच

ताप चालकता—०·००१८–०·००२८ कैलोरी प्रति सेंटीमीटर प्रति अंश सेंटीग्रेड प्रति सेकिंड

प्रसादर गुणाङ्क—५ × १०⁻⁷–१४० × १०⁻⁷ सेंटीमीटर प्रति सेंटीमीटर प्रति अंश सेंटीग्रेड

मृदुवनांक—५००°–१५१०° सेंटीग्रेड

अभितापनाङ्क—३५०°–८८९०° सेंटीग्रेड

आयतन प्रतिरोध—१०⁵–१०¹⁵ ओहम प्रति घन सेंटीमीटर

पारद्युतिस्थिराङ्क—३·७—१६·५

काँच पर खुदाई हाइड्रोक्लोरिक अम्ल तथा स्वचालित सुई द्वारा की जाती है। काँच को पारभासक बनाने के लिए सिकताधामन विधि का प्रयोग किया जाता है। सम्पीडित वायु द्वारा खुरदरे गोल दानेवाली बालुका को काँच की सतह पर जोर से फूँका जाता है। काँच के दर्पण भी बनाये जाते हैं। इसके लिए उस पर निम्न घोलों का मिश्रण पोत दिया जाता है—

(१) अमोनिया तथा रजत नाइट्रेट का पानी में घोल।

(२) रोशल लवण या टारटैरिक अम्ल या शर्करा का पानी में घोल।

इस मिश्रण को पोतने से पहले काँच की सतह पर टिन क्लोराइड का घोल लगाकर उसे गीला कर दिया जाता है।

रंगीन काँच—काँच को रंग-बिरंगा बनाने के लिए जो वर्णक प्रयुक्त होते हैं, वे तीन प्रकार के हैं (१) वे पदार्थ जो काँच में घुल जाते हैं और काँच द्वारा कुछ प्रकाश आवेपों के शोषण का कारण बनते हैं, (२) कलोदीय आकार के अवक्षिप्त कण, तथा (३) बड़े आकार के कण।

पहले प्रकार के पदार्थ धातुओं के आक्साइड होते हैं। ये धातुएँ अधिकतः निकल, कोबाल्ट, लौह, मैंगेनीज, क्रोमियम, टाइटैनियम, वैनेडियम, ताम्र आदि हैं। निकल का ऑक्साइड एक शक्तिशाली वर्णक है। ५०,००० में एक भाग से रंग को निश्चित आभा प्राप्त हो जाती है। निकल से लाल रंग लिए हुए बैंजनी रंग का या भूरापन लिये बैंजनी रंग का काँच बनता है। कोबाल्ट ऑक्साइड भी एक बड़ा अच्छा वर्णक है। इससे काँच बैंजनी या नीले रंग का बनता है। क्रोमियम आक्साइड से हरे तथा नारंगी रंग के काँच बनाये जाते हैं। ताँबे के ऑक्साइड को काँच में मिलाकर उसे हरापन लिये नीले रंग का बनाया जाता है, लौह आक्साइडों से काँच नीले, हरे तथा पीले रंग के बनते हैं। यूरेनियम आक्साइड का प्रयोग काँच को पीला रँगने तथा उसे हरा आशमान बनाने में किया जाता है। काले रंग का काँच वर्णकों की अधिक मात्रा मिलाकर बनाया जाता है।

काँच-खण्ड—ये खंड खोखले व रंगहीन काँच की बनी इकाइयाँ हैं। इनके प्रत्येक पार्श्व पर प्रतिकृतियाँ अर्थात् नमूने खुदे होते हैं जिससे प्रकाश का प्रसरण हो जाने से उनसे कोई भी पदार्थ नहीं देखा जा सकता। ये इमारती काम के लिए खूब मजबूत होते हैं, पर भारवाहक दीवारों में इनका प्रयोग करना उचित नहीं है। इनको लगाने के लिए सीमेंट के संमृद अर्थात् गारे का प्रयोग किया जाता है। यदि विस्तृत रूप से परिस्थापन करना हो तो जोड़ों में प्रसार के लिए स्थान रखना आवश्यक होता है क्योंकि तापमान के कारण आकार में परिवर्तन होता है।

परिप्रोक्षित काँच—काँच भंगुर है। इसका आतनन बल केवल ४००० से १०,००० पौंड प्रति वर्गइंच है। मगर इसका संपीडन बल एक लाख पौंड प्रति वर्गइंच से भी अधिक होता है। यदि हवा के धामन में काँच की बनी चद्दर को सहसा ठंढा किया जाता है तो उसकी सतह संपीडित अवस्था में रहती है। इसलिए इस पर आतनन चाप लगाकर पहले संपीडन चाप को हटाना जरूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। उसके बाद कहीं सतह की परतें आतन्य बनती हैं। इस प्रकार परिप्रोक्षित काँच का प्रयोग मोटर कारों में पृष्ठ भाग की खिड़की में किया जाता है। जब इस प्रकार का काँच टूटता है तब उसके टुकड़ों के सिरे तीखे न होकर गोल होते हैं।

कुछ काँचों के, जिनमें बोरोसिलिकेट काँच मुख्य है, ताप प्रसार गुणाङ्क बहुत-सी धातुओं के ताप प्रसार गुणाङ्क के एक-चौथाई भाग के बराबर होता है और इसलिए ये काँच ताप-परिवर्तनों को सहने में बड़े सक्षम होते हैं। मामूली काँच की बनी गिलास में गर्म दूध एकदम डालने पर वह फौरन टूट जाती है।

फेन काँच—इसे बनाने के लिए काँच का पीसा हुआ चूरा तथा कार्बन की निश्चित मात्रा मिलाकर जंगरहित इस्पात के बने साँचों में भरा जाता है और फिर उसे अविराम भट्टी में रखकर गर्म किया जाता है। ऐसा करने पर काँच नर्म पड़ जाता है और कार्बन के साथ मिलकर गैसोत्पादन करता है जिससे कोषीय आकृतिवाले पदार्थ बन जाते हैं। इन्हें धीरे-धीरे ठंढा करके कारबुरदम की पट्टिका से चीर कर अभीष्ट आकार में बना लिया जाता है। ये टुकड़े १२″ × १८″ के होते हैं और इनकी मुटाई ३″ × ६″ तक रहती है। इनमें पानी या जल वाष्प का प्रवेश नहीं होता। इनका संपीडन बल १५० पौंड/वर्ग इंच है। प्रति घनफुट भार केवल ५ किलोग्राम से थोड़ा अधिक। इनकी ताप-चालकता अधिक नहीं होती। अतः इन्हें दीवारों तथा छतों पर ताप विसंवाहक खण्डों के रूप में लगाया जाता है।

फुल्लित सिकता—इसका हाल ही में विकास हुआ है। यह सिकता का एक रूप है जो महीन चूरे के रूप में मिलता है तथा जिसमें कणों के ढाँचे में सूक्ष्म छिद्र रहते हैं जो पानी के शोषक या जलापसारी बनाये जा सकते हैं। इसका भार प्रति घनफुट केवल ३–५ पौंड होता है। इसका प्रयोग उत्कृष्ट तापीय विसंवाहक के रूप में किया जाता है। लाल तप्त आँच में भी इस पदार्थ का कुछ नहीं बिगड़ता।

तंतु-काँच—काँच को नर्म बनाकर उसके तार खींचे जा सकते हैं। ये तार रेशम से भी पतले तथा महीन होते हैं। इनका आतनन बल २,५०,००० पौंड प्रति वर्ग इंच होता है तथा इन्हें खींचकर ३ % अधिक लंबा बनाया जा सकता है। कुछ मोटे काँच तंतु इंच की लंबाई के बनाये जाते हैं जो काँच-ऊन के नाम से प्रख्यात हैं। इनके एक घन फुट का भार केवल १५ पौंड होता है। इसका उपयोग ताप तथा ध्वनि विसंवाहक के तौर पर किया जाता है। काँच-तंतुओं से वस्त्र भी तैयार किये जाते हैं। तकियों के गिलाफ तथा चादरें भी बनायी जाती हैं। इनका उपयोग करने से धूम्रपान करनेवाले व्यक्ति यदि सिगरेट पीते-पीते उसे बिना बुझाये सो जायँ तो भी बिस्तर में आग लगने की आशंका नहीं रहती।

तामचीनी या ऐनेमल—काँचयुक्त ऐनेमल से आवृत्त लोहे के बने बर्त्तनों का उपयोग रसोई घर, स्नानघर, अस्पताल आदि में किया जाता है। स्नानघरों में प्रयुक्त नहाने के टब तथा कुंडियाँ ढलवें लोहे की बनी होती हैं। उन पर काँचयुक्त ऐनेमल या तामचीनी चढ़ी रहती है। ऐनेमल, जैसा अन्यत्र कहा जा चुका है, मुख्यतः काँच ही है, पर इसका संघटन इस प्रकार सुधार दिया जाता है। इससे इसका प्रसार गुणाङ्क ढलवें लोहे या इस्पात के प्रसार गुणाङ्क जैसा हो जाय। काँच में धात्वीय ऑक्साइड मिलाकर उसे रंगीन भी बना दिया जाता है। गहरे नीले रंग के लिए कोबाल्ट आक्साइड मिलाया जाता है। कुछ अन्य ऐसे पदार्थ मिलाये जाते हैं जो काँच में न घुलकर महीन निलंबित बूँदों की तरह उसमें मिले रहते हैं। इस प्रकार यह काँच अ-पारदर्शक बन जाता है। अपारदर्शिता लाने के लिए कैल्सियम क्लोराइड, कैल्सियम फास्फेट तथा टिन ऑक्साइड का प्रयोग किया जाता है। ऐनेमल को पहले छोटी काँच-तड़ाग भट्टी में या घट में पिघलाकर पानी में डाला जाता है जिससे काँच के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। इन टुकड़ों को पीसकर तथा उनमें थोड़ी चिकनी मिट्टी मिलाकर पानी में इसकी स्लिप तैयार कर ली जाती है। इस स्लिप में बर्त्तन को डुबोकर तथा बाद में सुखाकर भट्टी में पकने के लिए उसे भेजा जाता है। इस प्रकार एक आधार लेप तथा दो आवरण लेप बर्त्तन पर चढ़ाकर उन्हें पकाया जाता है। सफेद तामचीनी की कुण्डियाँ तथा टब यदि उनपर लौह युक्त पानी टपकता रहे तो बदरंग हो जाते हैं। लोहा थोड़े सोडा का स्थान ऐनेमल में ले लेता है और इस प्रकार वह भीतर चला जाता है। चीनी मिट्टी के बने टब तथा कुंडियों पर प्रतिरोधक ग्लेज चढ़ा होता है जो लोहे को अंदर नहीं जाने देता।

इस प्रकार गले हुए सिलिकेटवाले ऐनेमल को भ्रांति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वश वार्निश का एक रूप, जिसे भी ऐनेमल कहा जाता है, नहीं समझ लेना चाहिये। वह ऐनेमल संश्लेषित उद्भास से तैयार किया जाता है। आधुनिक घरेलू प्रशीतक (रिफ्रिजरेटर) भीतर तथा बाहर दोनों तरफ सफेद होते हैं। इस्पात की चद्दर भीतर की तरफ काँच युक्त तामचीनी से आवृत्त होती है, जिससे खाने की चीज़ों के पड़ने से वह बदरंग न हो जाय तथा जिससे खाने की चीजों में दुर्गन्ध का समावेश न हो। रिफ्रिजरेटर के बाहर की तरफ संश्लेषित उद्यास चढ़ाया जाता है। ताँबे, ऐल्युमीनियम तथा आभूषणों पर भी तामचीनी चढ़ाई जाती है। इसे मीनाकारी कहा जाता है।

बहुधा ऐसा देखने में आता है कि व्यवहार में आने के कई दिनों बाद इस्पात पर से तामचीनी का कुछ भाग टूटकर अलग हो जाता है। इस प्रकार के भाण्ड को और व्यवहार में लेना ठीक नहीं होता। कभी-कभी चद्दर पर से तामचीनी को हटाना जरूरी हो जाता है। अम्लसह ऐनेमल को हटाना टेढ़ी खीर है, पर नर्म ऐनेमल को हटाने में विशेष दिक्कत नहीं होती। ढलवें लोहे पर तामचीनी को रज-धामनविधि से दूर कर लिया जाता है। ऐनेमल को हटाने में हथौड़े तथा छेनी का प्रयोग भी किया जाता है। इसे अम्ल तथा अलकली द्वारा भी हटाया जाता है। नमक के अम्ल, गंधक के अम्ल तथा क्रोमिक अम्ल का प्रयोग इस काम के लिए किया जाता है। अलकली विधि में इस काम के लिए कॉस्टिक सोडा के पानी में ५०% घोल का उपयोग किया जाता है। यदि इस क्रिया में त्वरा अपेक्षित हो तो पिघला हुआ कॉस्टिक सोडा काम में लेना वांछनीय है।

हिन्दी का प्रथम समाचारपत्र

[पृष्ठ २४५ का शेषांश]

आम दिखाई दिए इस हेत स्वारथ अकारथ जान निरे परमारथ को कहाँ तक बनजिए अब अपने व्यवसाई भाइयों से मन की बात बताय विदा होते हैं। हमारे कुछ कहे सुने का मन में न लाइयो जो दैव और भूधर मेरी अंतरव्यथा और इस गुण को विचार सुधि करैंगे तो मेरे हैं ही। शुभ मिति ॥

'उदन्त मार्त्तण्ड' की भाषा पर विचार करते हुए पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने लिखा है—"जहाँ तक 'उदन्त मार्त्तण्ड' की भाषा का प्रश्न है, वह उस समय लिखी जानेवाली किसी भाषा से हीन नहीं है। उसके सम्पादक बहुभाषाज्ञ थे। यह उनका बड़ा भारी गुण था और यद्यपि उनका 'उदन्त मार्त्तण्ड' डेढ़ ही वर्ष निकला तथापि प्रूफ की भूलें जो प्रेसों में बराबर होती रहती हैं, उनका ध्यान रखकर हमें निःसंकोच कहना पड़ता है कि 'उदन्त मार्त्तण्ड' हिन्दी का पहला समाचारपत्र होने पर भी भाषा और विचारों की दृष्टि से सुसम्पादित पत्र था।"

उदन्त मार्त्तण्ड के सम्पादक

'उदन्त मार्त्तण्ड' के सम्पादक-प्रकाशक युगुलकिशोर शुक्ल थे। वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और कानपुर से कलकत्ता गये थे। वहाँ उन्होंने सदर दीवानी अदालत में लिपिक की हैसियत से कार्य आरम्भ किया और बाद में अपनी योग्यता के बल पर वकील हो गये। कोल्हूटोला अमड़ातला की गली में 'मार्त्तण्ड' नाम का उनका प्रेस जहाँ से 'उदन्त मार्त्तण्ड' का प्रकाशन होता था। शुक्ल के विषय में इससे अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं उनमें पत्र-सम्पादन की प्रतिभा थी और वे हिन्दी के अतिरिक्त ब्रजभाषा में भी लिखने की योग्यता रखते थे। और फारसी की सामान्य जानकारी उन्हें थी। उनके के कथन से 'उदन्त मार्त्तण्ड' हिन्दी का प्रथम समा सिद्ध होता है। उन्होंने लिखा है—"यह उदन्त मार्त पहले-पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक ने नहीं चलाया पर अंगरेजी औ फारसी औ बंगले में समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों जानने और पढ़नेवालों को ही होता है। इससे सत्य चार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ औ समझ लें पराई अपेक्षा न करें औ अपने भाषा की उपज न इसलिए बड़े दयावन करुणा और गुणनि के निधान कल्यान के विषय गवर्नर जेनेरल बहादुर की आयस से साहस में चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाटा...।"

निःसंदेह श्री युगुलकिशोर शुक्ल ने 'उदन्त मार्त्तण्ड' प्रकाशन करके हिन्दी-समाचारपत्रों को एक नयी दिशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँगीर का खान-पान

डा० पद्मधर पाठक

जहाँगीर के खाने-पीने के शौक को यदि उलटकर पीने-खाने के क्रम से उठावें तो वह अधिक उचित होगा। पन्द्रह साल की अवस्था में उसने शराब का पहला प्याला पिया था। बचपन में दवा की शक्ल में अकबर ने उसे पानी और गुलाब के साथ एक तोला अर्क़ पिला रखा था। अनजाने में लाया गया यह एक तोला अर्क़, होश सँभालने पर बीस-बीस प्याले विशुद्ध शराब प्रतिदिन में बदल गया और वह भी दो बार खींचे हुए अर्क़ के बीस प्याले। 'दुआतशः अर्क़' के साथ जहाँगीर दो हिस्सा अंगूर की शराब भी मिला लेता था। लिखनेवालों ने यहाँ तक लिखा है कि जवानी में अत्यधिक पीने के कारण उसका बदन भट्टी की तरह धधकता था। पीने पर कुछ क़ाबू पा लेने के लिए उसने 'फ़लूनिया' लेना शुरू कर दिया था। यह माजून की वह क़िस्म थी जिसमें अफ़ीम भी मिली रहती थी। छियालीस की उम्र के कुछ बाद से वह दोनों पहर अफ़ीम का सेवन करता था। खुद लिखता है कि वह इतनी पी जाता था कि उसके लिए अपने हाथों प्याला पकड़ना कठिन हो जाता था और दूसरों का सहारा लेना पड़ता था। शराब न मिलने पर उसकी आँखें भर आती थीं। पाते ही उनमें चमक लौट आती थी। अफ़ीम और शराब के अत्यधिक सेवन से वह अकाल ही में बुढ़ापे और दमे का शिकार हुआ था।

बाबर की आदत के विपरीत जहाँगीर अपने दरबारियों और नज़दीकी लोगों की संगत में शराब पीना पसंद करता था। कई बार जमुना के बीच चार चार दिन तक उसने इन लोगों की मजलिस में शराब का जश्न मनाया था। काबुल में उसने सभी उपस्थित दरबारियों और सेवकों को प्याले बाँटे थे। शराब से इतना लगाव होने के कारण जहाँगीर ने उसे देसी नाम 'रामरंगी' भी दे डाला था। शराब की एक बिल्कुल नयी क़िस्म 'अछी' का जहाँगीर ने जिक्र किया है। इसे चावल से बनाते थे। दस साल तक इसमें कोई बिगाड़ नहीं आता था।

मदिरापान की इस शाही लत के बावजूद थोड़ा-बहुत अनुशासन बनाए रखने की गरज़ से जहाँगीर ने नशे की हालत में अपने सामने आने पर पाबंदी लगा दी थी। हो सकता है कि अपने आप पीकर चले आनेवालों के साथ यह क़दम उठाया गया हो। एक मौके पर उसने कुछ अमीरों को पी लेने की वजह से कोड़े मारकर अधमरा करवा दिया था। दरअसल गद्दीनशीं होने के बाद नूरजहाँ बेगम ने उसके पीने पर पाबंदी लगाने में काफी सफलता पायी। वह प्यालों की तादाद नौ तक घटा लाई। अपने राज्यकाल के प्रथम वर्ष (१६०५) में जहाँगीर ने शराब के पीने और उसकी बिक्री पर रोक लगा दी। अपनी आदत की सफ़ाई में उसने लिखा है कि अब खुराक को हज़्म करने के लिए, लेता हूँ (ख़ुद महज़ बराए गवारिश ता'म में खूरम)। ईरान के शाह अब्बास की तरह उसने १६१७ में धूम्रपान पर पूरी पाबंदी लगा दी थी।

मद्यपान के व्यसन के अतिरिक्त जहाँगीर को शिकार करके मांस खाने का बड़ा शौक था। स्वाद के मामले में वह औरों से भिन्न था। वह इस नतीजे पर पहुँचा था कि सारे जंगली जानवरों में पहाड़ी बकरी का मांस सबसे स्वादिष्ट होता है और काले तीतर का स्वाद सफेद तीतर से अधिक अच्छा होता है। उसे जंगली खर का मांस बिल्कुल पसंद न था। जंगली चौपायों में आहू मुश्कीं (कस्तूरी मृग) के मांस को उसने स्वादहीन बतलाया था।

शिकार करके मारे गये नीलगाव का 'दुपियाज़ा' जहाँगीर को बहुत पसंद था। सवेरे की नमाज़ के बाद वह चार-पाँच तरह का भुना गोश्त लेता था। मांस-पुलाव का भी वह उतना ही शौकीन था। हलवान से बने 'कबाब जहाँगीरी' को यहाँ याद किया जा सकता है। रोहू मछली पर वह लट्टू था। उसकी निगाह में उसके बाद 'बरीं' नाम की मछली की बारी आती थी। वह केवल काँटेदार मछली ही खाता था क्योंकि उसने यह अनुभव किया था कि बग़ैर खार की मछलियाँ मरे जानवर भी चट कर जाती हैं। जीवशास्त्रियों की तरह वह खोल-खोल कर मालूम करता था कि उसका-मनपसंद जानवर स्वयं क्या खाता है। दारुलबरकत नामक अजमेर के अपने शिविर में उसने देखा कि पालतू सोना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुर्गाबी छोटे-छोटे घिनौने कीड़े खा जाती है। इसलिए उसने उसे खाना सदैव के लिए छोड़ दिया।

अपने पिता अकबर की तरह जहाँगीर भी दो दिन 'सूफ़ियाना' (मांसहीन) भोजन लेता था। वृहस्पतिवार को उसका राजतिलक हुआ था, और रविवार को अकबर का जन्मदिन था इस कारण वह दोनों दिन 'सूफ़ियाना' भोजन ही करता था। यह बड़ी मनोरंजक बात है कि मुग़ल बादशाह ऐसे अवसरों पर मांस से कितना बचते थे। एक बार ईदुज्जुहा वृहस्पतिवार को ही पड़ जाने के कारण पूरी मुसलमान रिआया जानवरों को 'ज़िबह' नहीं कर सकी। यह घटना जहाँगीर के समय की ही है। सूफ़ियाना दिनों में वह गुजरात में प्रचलित बाजरे की खिचड़ी (जिसे लज़ीज़ा कहते थे) ही लेता था। मूँग और हलवान से तैय्यार की गयी 'शुल: खिचड़ी जहाँगीरी' उसके खिचड़ी के शौक के उदाहरण हैं।

अकबर की तरह जहाँगीर भी शिवरात्रि को जोगियों के साथ खाता-पीता था।

दूध को उसने 'अल्लाह की न्यामत' माना है। कई महीनों जहाँगीर ने ऊँट का दूध भी पीया। फ़ारस के इस ऊँट को चार सेर गाय का दूध, पाँच सेर गेहूँ, एक सेर गुड़ और एक सेर सौंफ खाने को दी जाती थी। इसीलिए उसने इस ऊँट के दूध को गाय और भैंस के दूध से कहीं ज्यादा मीठा बतलाया है।

जहाँगीर भी गंगा का जल पीता था। मुहरबंद ताँबे के बर्तनों में आफ़ताबची लोग गंगाजल इकट्ठा रखते थे। इस महकमे को 'आबेहयात' कहते थे।

हिन्दुस्तान के फलों की चर्चा करते समय जहाँगीर को बाबर की याद आ जाती है जो ठहर-ठहरकर सेब के पेड़ की पत्तियों पर पतझड़ के असर तक का सूक्ष्म निरीक्षण करता था। इसी तरह जहाँगीर अपने हाथों फल तोड़ना बहुत पसन्द करता था। उसका कहना था कि ऐसे फलों का स्वाद ही और है। अंजीर को वह खुद बटोरकर इकट्ठा करता था। उसे आम इतना पसन्द था कि शाही मेवाखाना में दकन, बुरहानपुर, गुजरात और मालवा से आम मँगाए जाते थे। मालवे के हासिलपुर से आमों का आना लगा ही रहता था। सबसे बढ़िया आम छिबरामऊ से आता था। फर्रुखाबाद जिले के उस गाँव को छिबरामऊ कहते हैं जहाँ के टिकारी आम बहुत प्रसिद्ध हैं। बाहर इन्हींको आजकल लँगड़ा कहते हैं। उस समय छिबरामऊ सूबा आगरा के अन्तर्गत था।

जहाँगीर के समय कुछ फलों की किस्में पहले ही पहल हिन्दुस्तान लाई गयीं। यज़्द के अनार और करीज़ के तरबूज़ को फ़ारस के व्यापारी यहाँ लाये। जहाँगीर को इसका बड़ा खेद रहा कि ये दोनों फल अकबर को नसीब न हो सके। जहाँगीर के ही समय साहबी, हबशी और किशमिशी नाम के अंगूर हिन्दुस्तान में लाये गये। छोटे लाल फल 'चैरी' को वह शराब के साथ लेता था। उसे यह फल इतना पसन्द था कि एक बार उसने डेढ़ सौ चैरियाँ खा ली थीं। इतना ही नहीं, उसने कश्मीर के मुत्सद्दियों को आदेश दिया था कि वहाँ के हर बाग में चैरी के पेड़ लगाये जायें। चैरी को शाहआलू भी कहते थे। डाक चौकियों द्वारा काबुल से आड़ू मँगवाये जाते थे। नाशपाती, ज़र्दालू, अंगूर, अनार इत्यादि कश्मीर में पैदा किये जाने लगे। संतरा का उसने 'रंगतारा' नाम रख दिया था।

जहाँगीर अपने हरम में भोजन करता था। 'मीर बक्काबल' को 'बकावले-बेगी' नाम से जाना जाता था। अपनी वफ़ादारी के लिए मशहूर कमाल खाँ नाम का एक गुलाम इस पद को सँभाले था। खिलानेवालों को सुफ़्ची कहा जाता था।

दावतों और दिखावट पर खुलकर खर्च किया जाता था। नूरजहाँ और उसके देश के खुरासानियों के जमघट ने इन बातों पर बड़ा पैसा खर्च किया-कराया। १६१५ में उसने शाहजहाँ की सैनिक सफलता पर जो 'जश्ने फ़तह' मनाया था उसमें तीन लाख के लगभग खर्च हुआ था। नूरजहाँ के बाग के पूरे हो जाने पर उसने एक बड़ी दावत दी जिसमें उसने अपनी देखरेख में जहाँगीर के लिए चुनिंदा चीज़ें बनवाई थीं। उसी साल १६२० में उसने खुर्रम की बिजय पाने पर एक और बड़ी दावत दी थी। जेरबिरियानी, नूरमहली, खिचड़ी नूरमहली के बनाने का तरीका नूरजहाँ के नाम से ही जुड़ा है। १६१६ के पहले या उसी साल में जहाँगीर ने उसका नाम नूरमहल से नूरजहाँ कर दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी कहानी—

असहायता

श्री प्रकाश गं० प्रभू

अनु०—श्री रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे

'बाई साहब, साहब बुला रहे हैं आपको।' चपरासी की इस ऊँची आवाज को सुनते ही सरला चौंककर जागी। दो-तीन घंटे वेटिंग रूम में बैठी वह ऊब उठी थी। जिला पंचायत के इस आफिस में जब वह प्रथम ही आयी थी, तब चेयरमैन साहब के केबिन में काफी भीड़ थी। उसके आते ही चपरासी ने उससे कहा था, 'आपको अभी बहुत देर ठहरना पड़ेगा।' परंतु दस-पन्द्रह मिनटों में ही उस आफिस से उसे विलक्षण घृणा हो गयी थी। छुपी नजर से उसकी ओर देखते हुए बाबू लोगों का उसके आस-पास चक्कर काटना, सभ्यता और सेवा-भाव का रोब लाकर उससे कुछ भी पूछताछ करना और उसका अन्दाज लेने की कोशिश करना—यह सब देखकर वह इतनी झुँझला उठी थी कि यह जिला पंचायत का आफिस है या गुंडों का अड्डा—यही वह नहीं समझ पा रही थी। अंत में लाचार होकर उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं और थकावट के कारण थोड़े ही समय में उसे झपकी आ गयी और वह निद्रा देवी के अधीन भी हो गयी।

और अब चपरासी उसे पुकार रहा था।

रूमाल से उसने आहिस्ते से माथे का पसीना पोंछा। साड़ी कुछ ठीक-ठाक की और अदब से उसने चेयरमैन के केबिन में प्रवेश किया।

'आइए।' साहब ने विस्तृत भर्रायी आवाज में उसका स्वागत किया। वह हकबकायी और वहीं खड़ी रही।

'बैठिए न?' फिर वही भर्रायी आवाज उस केबिन गूँजी। फिर वह बदन पर आँचल ठीक से लपेटकर नजदीक की कुर्सी पर धीरे-से बैठ गयी।

डरते-डरते उसने सामने साहब की ओर देखा। साहब ने अपनी भारीभरकम देह कुर्सी पर यथेच्छ फैला दी थी। उनकी लाल आँखें उसी पर तनी हुई थीं। पान से लाल रँगे होंठों से नीचे लार बह रही थी। तिरस्कार की एक टीस उसके मस्तक में सनसना गयी। परंतु समय पर ही उसने अपने को सँभाल लिया। यहाँ आने से पहले यह मानकर ही मैं घर से चली थी कि ऐसी कुछ बातें यहाँ होंगी ही—यह बात उसने अपने मन को याद दिलायी और चेयरमैन साहब विषय की ओर कब मुड़ते हैं इसका वह सिर झुकाये इंतजार करने लगी।

एक-दो मिनट कोई कुछ न बोला। साहब ने उसके केस की फाइल के एक-दो पन्ने पलटे और वह बंद कर दी। मेज पर रखे पेपर वेट से खेलते हुए वे तनिक हँसे। उनका चौड़ा जबड़ा देखते ही एक बार फिर उसे सनसनाकर घिन आयी।

'बाई, सच बताऊँ आपको। दो-तीन अत्यंत महत्त्व-पूर्ण काम छोड़ दिये मैंने आपके लिए।' साहब ने प्रस्ताव किया। उस वाक्य में भरा गर्व उसे भी महसूस हुआ। चेहरे पर का भावपरिवर्तन भी उसने बड़े प्रयास से टाला।

'थैंक्स!' चेहरे पर मंद मुस्कान लाकर हाथ जोड़ती हुई वह बोली। साहब की अनुभवी नजर ने इस समय तक उसका ठीक से निरीक्षण कर लिया था। उम्र करीब पैंतीस की होते हुए भी उसके शरीर की ताजगी अभी तक कायम थी। मोतिया रंग की साड़ी में उसका मूलतः गोरा रंग अधिक खिलकर दिख रहा था। अपनी देह को सजाने का उसने कोई विशेष प्रयत्न किया हो ऐसा नहीं दिख रहा था। फिर भी अवयवों की सुंदरता और देह की कमनीयता स्पष्ट महसूस हो रही थी।

'तो आपके मिस्टर ड्यूटी पर अभी हाजिर नहीं हुए?' साहब ने पुनः संभाषण को गति दी।

'जी नहीं। और मेरा ख्याल है कि...'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यस, यस, बोलिए। बिलकुल दिल खोलकर कहिए। आप क्या कहना चाहती हैं?'

'मेरा ख्याल है कि आगे भी वे अब हाजिर न हो सकेंगे।'

'मतलब?'

'मतलब यह कि उनकी बीमारी असाध्य है। उन्हें ब्रेन कैंसर हो गया है।'

'दैट्स नाईस।' और ऐसा कहकर साहब ने झट से जीभ चबाई। 'आई मीन—आपकी इस समझदारी के बारे में कह रहा था मैं। सामने जो संकट उपस्थित हुआ है उसे आपने ठीक से समझ लिया है। बेशक आप बड़ी समझदार हैं। वरना इस विषय में स्त्रियों से बातें करना बड़ा कठिन....'

'पंचायत के पास ढाई साल का वेतन बकाया पड़ा है उनका। और सच पूछा जाय तो आगे के छः महीनों की भी मेडीकल लीव मंजूर करने में कोई हर्ज नहीं था। संभाषण की गाड़ी वह फिर लाईन पर ले आयी।

'आपकी मुश्किल को मैं समझ रहा हूँ। परंतु मामला पेचीदा है। सब काम कानून के मुताबिक होने चाहिए। कोई कानूनी खामी आ गयी होगी। देखना पड़ेगा।'

'पर अब तीन साल हो चुके हैं उन्हें बिस्तर पकड़े। पन्द्रह-बीस दरख्वास्तें भेज चुकी हूँ अभी तक। उनकी दवा-दारू, दो बच्चों की पढ़ाई और यह आसमान छूती महँगी, कमानेवाला घर में कोई भी नहीं।

'ओ यस। रियली करेजस फाईटिंग। इसके लिए हम सचमुच ही आपकी तारीफ करते हैं। इतनी देर नहीं होनी चाहिए थी हमारी तरफ से।'

'बच्चों को पढ़ाई की सुविधाएँ प्राप्त होने के बारे में भी तीन बार आवेदन पत्र भेजे मैंने पंचायत के पास! परंतु अभी तक उनकी मामूली प्राप्ति-सूचना भी नहीं मिली मुझे।'

'हाउ इज दिस? यह कैसे संभव है? दो-चार दिन के भीतर ही फैसला कर देता हूँ मैं इसका। आप अपने आवेदन पत्रों की नकलें और अपने मिस्टर के बारे में आपने जो दरख्वास्तें भेजी थीं उनके जो उत्तर पंचायत के दफ्तर से आपको मिलें, वे सब कागजात मुझे दे दें। समझीं?'

'पर साहब, इस समय तो मैं कोई भी कागज अपने साथ नहीं लाई हूँ।'

'कमाल कर दिया आपने! अपने ऐसे काम के लि जब आना हो तब मामले की पूरी फाइल ही अपने प रखना ठीक होता है। है न?'

'तुरंत ही उन कागजों की जरूरत पड़ जायगी इस कल्पना नहीं थी मुझे। इसके सिवा मैं डायरेक्ट दवाखाने आ रही हूँ यहाँ।'

'अच्छा आप रहती कहाँ हैं? यहीं कहीं आसपास न?'

'जी नहीं। मैं विक्रमनगर में रहती हूँ।'

'ओ! याने काफी दूर रहती हैं। मतलब, आप अ फाइल भी अभी नहीं ला सकेंगी।'

'अगर कल ले आऊँ तो काम बन जायगा?'

'नो। मैं कल ही टूर पर जा रहा हूँ। आप ऐ कीजिए। मेरी मिसेज इस समय घर में ही हैं। शाम आप अगर मेरे बँगले पर जाकर उन्हें फाइल दे दें तर आपका काम हो जायगा। कल मैं जा ही रहा हूँ वालय। अपने सामने ही सब कुछ मंजूर कराकर आऊँगा।' उसकी ओर अपना ताश का पत्ता फेंकते साहब बोले।

सरला चौंकी। इस मनुष्य के बँगले पर शाम को जा सिर्फ कल्पना से ही उसके पैर लड़खड़ाए।

तुरंत ही उसने स्वयं को सँभाला। फाइल तो साहब की पत्नी के पास जाकर देनी थी। पहले के अनुभवों के कारण मैं इस बाल-बच्चेवाले मनुष्य की भी शक की निगाह से देख रही हूँ—ऐसा उसके ध्या आया।

'क्यों? इसमें भी कोई मुश्किल है क्या?' साह पुनः पूछा।

'जी नहीं। ऐसी कोई बात नहीं, सर।' तनिक घबरा उसने उत्तर दिया।

'हाँ तो फिर इतना काम कर डालो आज ही।' हुए साहब ने केस फाइल बंद कर दी। पुनः एक बार भर हँसते हुए साहब ने उससे बिदा ली।

क्यों कौन जाने? इस वक्त अलबत्ता उसने भी कुल मन से उन्हें नमस्ते किया और वह केबिन से निकल पड़ी।

भास्कर को दवा-पानी देकर और शाला से लौटे विजय और विजया को शांत करके घर से बाहर नि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय तक सरला को छः बज ही गये। साहब के बँगले तक पैदल जाने में आध-पौन घंटा लगनेवाला था। उसके मन में फिर एक बार फिजूल शक आया और वह बेचैन हो गयी। पर मन में यह पक्का निश्चय करके कि यदि बँगले में साहब की श्रीमती न हुई तो किसी भी परिस्थिति में उसके भीतर मैं कदम नहीं रखूँगी। वह जल्दी-जल्दी निकल पड़ी। साहब का बँगला नगर की घनी आबादी वाले मुहल्ले में होने के कारण मन में एक हिम्मत भी थी ही। उसने अपनी गति और तेज कर दी।

जिस वेग से वह चल रही थी, उसी वेग से उसका मन भूतकाल में प्रवेश कर रहा था। आठ-दस वर्ष पहले के अपने कालेज के वे दिन उसकी नजरों के सामने सिनेमा की रील की तरह सरकने लगे।

भाग्य भी कितना सनकी होता है? सिद्धार्थ जैसे राजविलास भोगने के लिए जन्म लेनेवाले को वह संन्यासी बना देता है और किसी पानी पाँडे राम को रामशास्त्री प्रभुणे भी बना देता है। उसे भी जीवन भर क्रूर चक्र में ही चक्कर देता आ रहा था वह! नहीं तो एक लखपति की लड़की का इस अवस्था को पहुँचना कैसे संभव था!

ऐश्वर्य, बुद्धिमत्ता—और सौन्दर्य—सब कुछ इफरात दिया था उसे भगवान् ने। उसका पिता एक मशहूर कम्पनी का मालिक था। किसी चीज का कोई अभाव न था। परीक्षा हो, वाद-विवाद प्रतियोगिता हो अथवा निबंध-स्पर्धा हो-किसी में भी पहला नंबर नहीं छोड़ती थी वह। 'कालेज क्वीन' के नाम से कालेज में प्रसिद्ध थी। और सभी के कौतुक का विषय हो बैठी थी वह। उसके हिस्से में आया था सुख—केवल सुख!

और एक दिन उसका सारा जीवन ही पलट गया।

वह शनिवार था। कालेज के लेक्चर्स खत्म हो गये थे। लेडीज रूम में नित्य की भाँति अपनी सहेलियों के साथ बैठी वह हँसी-मजाक कर रही थी।

'सरला, सुना है कि तेरे उस प्रिय लेखक का परसों गांधी चौक में भाषण होनेवाला है।'—किसी ने चुटकी ली।

'किसका? किसका री? सब लड़कियों ने एक साथ पूछा।

'अरी वह भास्कर दानी है न? वह जो 'वार्ता' में 'इधर-उधर' स्तम्भ में लिखता है। सरला बेहद खुश है उसके लेखों पर।' पहली ने अपना पक्ष स्पष्ट किया।

'मुझे ही नहीं, बल्कि मेरे पिताजी को भी वह स्तम्भ बहुत अच्छा लगता है। कितने ही लोग सिर्फ उस कालम को पढ़ने के लिए ही वह अखबार खरीदते हैं।' अन्य सहेलियों का सरला ने समाधान किया और भाषण कहाँ, किस दिन और कितने बजे है—यह भी उन्मुक्तता से पूछ लिया। भाषण सुनने जाने का कार्य-क्रम भी वहीं तय कर डाला।

'क्यों री सरला को उसका लेखन और भाषण ही अच्छा लगता है न या कि····?' एक बक्की सहेली ने पूछा।

'यह कैसा गंदा मजाक है री! कहाँ वह, कहाँ सरला? शिक्षा, रूप, परिस्थिति इस किसी का भी विचार न करके कुछ भी वाहियात क्या बक देती हो तुम लोग?' एक दूसरी सहेली ने उस बक्की सहेली को डाट बतायी और वह विषय वहीं खत्म हो गया।

सच पूछा जाय तो भास्कर दानी को इससे पहले उसने प्रत्यक्ष कभी भी नहीं देखा था। पढ़े थे उसके लेख और सुने थे सभा को मंत्रमुग्ध कर देनेवाले उसके भाषणों के वर्णन। पेशे से वह मामूली स्कूल मास्टर है, और राजनीति में विरोधी पक्ष का एक अत्यन्त उत्साही कार्यकर्त्ता है—यह भी उसने सुना था। परन्तु अनजाने ही मन में उत्पन्न हुआ उस व्यक्ति के प्रति आकर्षण इस कारण तिल मात्र भी कम नहीं हुआ था। इस आकर्षण का स्वरूप क्या है यह ठीक से वह भी नहीं समझ पा रही थी। अनेक बार वह भौंचक्की हो जाती। उसके सम्बन्ध में विचारों को टालने का भरसक प्रयत्न करती। परन्तु उसके दृढ़ निश्चय के ये बुर्ज मिनट-मिनट में ढह जाते। फिर अपना ही उसे भय लगने लगता। मन की इस खलबली और इस अनोखे आकर्षण की कल्पना भी वह किसीको दे नहीं सकती थी। सभी उसे पगली करार कर देते। अन्तर्मुख होकर अनेक बार इसका वह स्वयं ही विचार करती।

अब तो वह प्रत्यक्ष इस नगर में ही आ रहा था। वह उसे देखनेवाली थी। उसका भाषण सुननेवाली थी। वह बहुत खुश हो गयी थी और उतनी ही घबरा गयी थी। यह ऐसा क्यों हो रहा है यह न समझ पाने के कारण वह असमंजस में पड़ गयी थी।

व्याख्यान का दिन आया। सहेलियों के साथ वह गांधी चौक पहुँची। उस समय व्याख्यान शुरू होने के लिए थोड़ा ही समय रह गया था। चौक लोगों से खचाखच भर गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। अभी भी चारों तरफ से आनेवाले लोगों का ताँता लगा था। भास्कर की इस असीम लोकप्रियता पर उसे खूब कौतुक लगा। इसी चौक में इससे पहले हुई अनेक मंत्रियों की सभाओं में लोगों की इतनी विशाल भीड़ कभी नहीं हुई थी।

तालियों की प्रचण्ड गड़गड़ाहट के बीच भास्कर मंच पर आया और उसने उत्सुकता से उसे निरखकर देख लिया। ऊँचा, इकहरा बदन, काला साँवला रंग, बिखरे हुए बाल और बैठा हुआ चेहरा, धूल से लाल हो रहा पैजामा और शर्ट तथा शर्ट के बायें जेब से झाँकनेवाला हलके हरे रंग का टर्किश टावल। देखते ही किसी पर उसका प्रभाव पड़े ऐसा कुछ भी उसके पास न था।

भाषण के आरम्भ होने पर अलबत्ता सारे चौक के मन पर ही उसने अपना कब्जा कर लिया। गजब की शांति और तल्लीनता से समूची सभा उसके विचार सुनने लगी। भाषण पर रंग चढ़ने लगा। तालियों की गड़गड़ाहट से लोग दाद देने लगे। उसके शब्द हृदय से जाकर भिड़ जाते थे। लोगों को हँसा रहे थे, रुला रहे थे। मंत्रमुग्ध हुई सी सरला भी सुन रही थी।

सभा के समाप्त होने पर जब वह घर लौटी, तभी उसे महसूस हुआ कि वह कुछ खो आयी है। भास्कर की वह मूर्त्ति उसके अंतश्चक्षुओं के सामने से अब हटने को तैयार ही न थी।

मन से इस पागलपन को हटा देने की उसने जी तोड़-कर कोशिश की। नाना प्रकार से अनेक उपाय किये, पर व्यर्थ! दिन गुजर रहे थे और यह पागलपन कम होने के बजाय जोर पकड़ता जा रहा था। मन के भीतर उठे विचारों के इस तूफान को किस तरह और कहाँ से निकल जाने का रास्ता दे दूँ यह वह समझ नहीं पा रही थी। उसकी अंतर्मुखता का अर्थ यह होगा, ऐसी कल्पना किसीके मन में आती, यह भी सम्भव नहीं था।

संयोग से कालेज की वाद-विवाद सभा की तरफ से भी, उसी समय के लगभग, भास्कर का भाषण हुआ और इस निमित्त से तो उसका उससे व्यक्तिगत परिचय भी हो गया। भास्कर की बातों में एक प्रकार का जादू था, दूसरों को अपना-सा बना लेने की शक्ति थी। घुलनेवाली मिश्री की तरह वह उसके साथ एक रूप होती गयी—इतना कि अन्त में वह यह समझ चुकी कि उससे अलग मेरा अस्तित्व रह ही न सकेगा।

परिचय बढ़ता गया। उसकी प्रेरणा से स्थापित हुई महिला सभा की कार्यकर्त्री के नाते दोनों की मुलाकातें बार-बार होती रहीं। भास्कर-जैसे व्यक्ति के साथ उसके होनेवाले ये नाजुक सम्बन्ध, और वे भी एकतर्फा ही—किसी को भी संशयास्पद न लगे। यह स्वाभाविक ही था। उसके इस नये पागलपन का सच्चा अर्थ किसी की भी समझ में नहीं आ रहा था।

अन्त में मन पर का यह तनाव उसे असहनीय हो गया। उसने ही एक दिन भास्कर के सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया। भास्कर के भी मन में ऐसा ही कोई अंकुर निर्मित हो गया था क्या? कौन जाने? उसकी बात सुन-कर, वह भी भौचक्का रह गया, असमंजस में पड़ गया। परन्तु तुरन्त ही उसने अपने आपको संभाल लिया। उम्र, परिस्थिति, शिक्षा इत्यादि की दृष्टि से यह कितना अविचार है—यह बड़ी आस्था से उसे जँचा देने की उसने खूब कोशिश की। लेकिन अब बहुत देर हो गयी थी। किसी भी भय या लालच से यह नाजुक रिश्ता अब टूटने की अवस्था के बहुत परे चला गया था। अन्त में भास्कर की सम्मति उसने प्राप्त कर ली और उसके मन का भारी बोझ कम हो गया। उसके लिए अब किसी भी परिस्थिति का सामना करने के लिए वह तैयार हो गयी थी।

शाम को डरते-डरते ही उसने अपने पिताजी के सामने यह विषय रखा।

'सरला, यह कौन-सा पागलपन घुसा लिया है तूने अपने दिमाग में? अरी, वह कौन और तू कौन—कम-से-कम इसका भी विचार किया है क्या तू ने? क्रोध से थरथराते हुए उन्होंने पूछा।

'पर उनके बिना रहने की कल्पना ही बरदाश्त नहीं होती मैं, पिताजी।' उसने उखड़ी जबान से जवाब दिया।

'अरी पगली लड़की, तेरी और उसकी उम्र में पन्द्रह-बीस वर्ष का अन्तर है! ईश्वर ने तुझे रूप लावण्य दिया है, पैसा दिया है, और तू उस नाचीज मास्टर के साथ....'

'उनका लेखन....भाषण....'

'बंद कर यह बकवास। लेखन और भाषण से गृहस्थी नहीं चला करती। ऐसी उथली भावनाओं का शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर तू जिंदगी भर पछतायेगी, लड़की। अब भी अक्ल से काम ले।'

सरला चुप।

'मैंने जो कहा उस पर ठीक से सोच, और शाम को फुरसत से अपना निर्णय मुझे बता—' कहकर पिताजी बाहर चल दिये और फिर एक बार उसके मन में विचारों का तूफान उठने लगा।

शाम को खाना खाने के बाद पिताजी ने फिर वह विषय उठाया—

'फिर क्या तय किया, सरला तू ने ?'

सरला चुप।

'मौन का अर्थ मैं समझता हूँ, सरला। इतनी मूर्ख निकलेगी तू—ऐसा मैंने कभी नहीं सोचा था। तेरी दो बहिनों की बराबरी का, बल्कि उनसे भी अधिक श्रेष्ठ रिश्ता तेरे लिए खोज देना मेरे लिए कोई कठिन नहीं।'

'मुझे सिर्फ आशीर्वाद....'

तो मतलब यह कि यह पागलपन तेरे दिमाग से नहीं जायगा, बेवकूफ लड़की। अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार लेने के तेरे इस अविचार को मैं आशीर्वाद दूँ ? इतना कहने के बाद भी यदि तेरी समझ में नहीं आता तो यह भी याद रख कि उससे विवाह होने से पहले तेरा और मेरा पिता-पुत्री का नाता समाप्त हो चुका होगा।'

सरला चुप।

'और अब आखिरी बात तुझसे कह देता हूँ। उम्र, जाति, शिक्षा, परिस्थिति, इन विचारों को एक ओर रखकर मैं तुझे अनुमति भी दे देता। दुनिया की छिः-थू भी मैं बरदाश्त कर लेता तेरे लिए। परंतु पिता के नाते तेरा हाथ मैं उसके हाथ में नहीं दे सकता।' ऐसा कहकर वे कमरे के बाहर चल दिये।

कुछ समय पहले से रोककर रखा हुआ उसके दुःख का बाँध एक दम फूट पड़ा और एक बच्चे की तरह वह फूट-फूटकर रोने लगी।

काफी देर बाद जब उसे कुछ अच्छा लगा तब पिताजी से उसने स्पष्ट कह दिया, 'मेरे भाग्य में जो होगा सो होगा। भविष्य की चिंता करके यह नाता मैं तोड़ नहीं सकूँगी।'

'तो फिर इस क्षण से यही समझ ले कि तेरा पिता मर गया।' कहते हुए पिताजी ने कोट पहना, और दूसरे रास्ते से वह भी चल दी।

एक-दो दिन में ही उसका तूफानी विवाह हो गया और उससे पहले ही पिताजी भी सर्कस के साथ विदेश चले गये। इधर जीवन का सारा प्रवाह ही बदल गया उसका।

भास्कर के दो कमरोंवाले घर में उनकी गृहस्थी सजने लगी। तूफान शांत हो गये। एक साल के भीतर ही विजय के रूप में गृहस्थी की लता पर पहला फल आया और पुनः डेढ़-दो वर्ष बाद दूसरा।

सरला खुश थी। संतुष्ट थी। तृप्त थी।

भाग्य ने पुनः बदला लिया। ब्रेन कैंसर की असाध्य बीमारी के कारण भास्कर ने बिस्तर पकड़ लिया। परिस्थिति की इस जबरदस्त चुनौती को स्वीकार करने के अतिरिक्त उसके पास कोई विकल्प न रहा।

मोटर के कर्कश हार्न से वह चौंकी। स्मृति-शृंखला टूट गयी। साहब का 'मातृपूजा' बँगला सामने शान से खड़ा था।

धड़कते हृदय से उसने द्वार पर काल-बेल दबायी। एक मिनट के भीतर ही दरवाजा खुल गया और एक ऊँची, छरहरे बदन की स्त्री, मुस्कान-भरे चेहरे से उसके स्वागत के लिए आगे आयी। उसके शरीर के कपड़े और आभूषण तथा चेहरे पर स्वामित्व की भावना देखने पर सरला को इस विषय में कोई शक ही न रहा कि ये ही साहब की श्रीमती हैं और उसने नम्रता से उन्हें नमस्कार किया।

'आइए, भीतर आइए न ?' अदब से बाई साहब ने उसे भीतर बुलाया। प्रसन्न चेहरे से उनके स्वागत को स्वीकार करके सरला भीतर गयी। साहब की पत्नी से पेश आते समय पालन किये जाने योग्य शिष्टता के नियमों का पालन करते हुए उनके सामने वाले सोफा पर वह बैठ गयी।

'आप सरला दानी ही हैं न ?'—उसे निरखते हुए साहब की पत्नी ने पूछा।

'जी।'

'साहब अभी ही आये थे और चाय पीकर चले गये। उन्होंने बताया आपका सब हाल मुझे।'

'बड़ी सहानुभूति से विचार किया उन्होंने हमारी परिस्थिति का।'

'अजी, क्या कर्तव्य ही नहीं है यह उनका ? इसके सिवा उनका स्वभाव भी थोड़ा कोमल ही है। आप देखना, चार दिन में ही आपके सब काम हो जायँगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बड़े उपकार होंगे आप लोगों के हम पर।'

'देखिए, यह उपकार-वुपकार की भाषा मुझे कतई पसंद नहीं।' कहकर बाई साहब सरला की फाइल के पन्ने पलटने लगीं।

बाई साहब का उदार मन देखकर सरला अभिभूत हो गयी थी। साहब के बारे में मैंने बड़ी गलत धारणा बना ली थी, इसके लिए भी मन-ही-मन उसे बहुत बुरा लग रहा था।

फिर बाई साहब के साथ उसकी इसी तरह अनेक विषयों पर बातें हुईं। चाय-नाश्ता हुआ। फाइल उनके पास देकर वह जाने के लिए उठी।

'आप ऐसा कीजिए न, सरलाजी....' बाई साहब अत्यन्त प्रेमपूर्वक बोलीं, 'साहब आ ही जाते हैं आध घंटे में। आपकी परिस्थिति अधिक अच्जी तरह से समझाकर बतायेंगी हम उन्हें। मैं हूँ ही। क्या आप थोड़ी देर और नहीं रुक सकतीं?'

'रुक जाती बहिन मैं। पर 'उन्हें' दवा देनी है। बच्चों के भी खाने का वक्त हो रहा है। इसके सिवा, घर भी बहुत दूर पड़ता है यहाँ से, अकेली जाने के लिए।'

'वैसे कोई अधिक देर नहीं होगी। साहब के आने पर सबसे पहले आपही का काम हाथ में लेने को कहूँगी मैं। आपका काम हुआ कि मैं खुद आपको अपनी गाड़ी में आपके घर छोड़ आऊँगी।'

'लेकिन आपको भी इतने कष्ट क्यों दूं मैं? एक कष्ट तो दे ही रही हूं और अब दूसरा क्यों?'

'अजी, इसमें कष्ट की क्या बात है? इसके सिवा साहब के आने तक मेरा भी वक्त कटेगा आपसे बातें करने में।'

अब अलबत्ता बाई साहब का आग्रह टालना उसे उचित नहीं लगा। अभी सात बज रहे थे। आध घंटे में साहब के आने पर, आठ बजे तक घर पहुंच जाऊँगी। वैसे भी अगर पैदल जाती तो आठ बज ही जाते। यह सोचकर वह रुकने को तैयार भी हो गयी। इसी समय बाहर गाड़ी का हार्न बजा।

'शायद आ गये वे। देखती हूं जाकर।' इतना कहकर, बाई साहब पोर्च की ओर गयीं। वह भी उनके पीछे गयी। सामने साहब गाड़ी से नीचे उतर रहे थे।

सरला के कलेजे की धुक्-धुकी ही एकदम बढ़ गयी।

बाई साहब साहब के स्वागत के लिए आगे बढ़ीं और वह पुनः बैठकखाने में जाकर बैठ गयी। साहब को सारी परिस्थिति किस तरह बताऊँ ताकि उनके मन पर काफी प्रभाव पड़े और मेरा काम तुरन्त हो जाय—इसकी वह मन-ही-मन योजना बनाने लगी।

बैठकखाने में साहब के आते ही वह उठकर खड़ी हो गयी। साहब ने भी मुस्कराते हुए हाथ जोड़े और श्रीमती के साथ वे अटारी पर चल दिये।

'सरलाजी, आप भी ऊपर ही आ जाइए न?' आधा जीना चढ़ चुकने के बाद पीछे मुड़कर, उसकी ओर देखते हुए बाई साहब ने कहा। अपने कागजों की फाइल उठाकर वह भी उनके पीछे-पीछे निकल पड़ी।

साहब का यह ड्राईंग रूम काफी बड़ा और अत्याधुनिक फर्नीचर से सुसज्जित था। जगह-जगह ऐश्वर्य झांक रहा था। जिला परिषद् के चेयरमैन की शोभा के अनुरूप ठाठबाट वहाँ सब तरफ दिख रहा था। साहब की श्रीमती के साथ सरला भी नजदीक के सोफा पर बैठ गयीं।

'देखिए, मैंने जान-बूझकर ही रोक लिया है सरलाजी को। कल आपके टूर में इनके सारे काम हो ही जाने चाहिए।' साहब की श्रीमतीजी ने विषय शुरू किया।

'अजी, मैं तो इनसे वादा भी कर चुका हूं। अब अगर तुम कह रही हो तो मतलब यह कि जब तक इनके काम पूरे न होंगे, मैं वहांसे लौट ही न सकूँगा।' ऐसा कहकर साहब जोर से हँसे और वे दोनों भी उसमें शामिल हुईं।

'अच्छा, आप फाइल तो ले आयी हैं न?' कुर्सी पर बैठते हुए साहब ने पूछा।

'जी हाँ। ले आयी हूँ।' कहकर उसने फाइल आगे बढ़ायी।

बाद में बहुत देर तक उन तीनों ने उस विषय पर चर्चा की। सरलाजी संकट में हैं, उनका काम होना ही चाहिए, यह बात साहब की पत्नी ने बार-बार बड़ा जोर देकर कही।

उन दोनों के उदार मन और समझदार स्वभाव को देखकर सरला अभिभूत हो गयी। रिश्ते वगैरह की बात तो दूर ही रही, पर मामूली पहचान भी न होते हुए बात-बात में उसके लिए बहुत कुछ किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अच्छा, अब शरबत लीजिए हमारे साथ और फिर मैं छोड़ आती हूँ आपको आपके घर।' कहकर बाई साहब उठीं और रसोईघर की ओर चल दीं।

साहब बैठे-बैठे उसकी फाइल के पन्ने पलटने लगे। नजदीक ही पड़ी हुई एक मासिक पत्रिका उठाकर सरला ने अपनी नजर उसमें उलझा दी। सिर पर का सीलिंग फैन घरघरा रहा था। घड़ी की तालबद्ध टिकटिक शुरू थी। आठ के घंटे हाल ही में बजे थे। कुछ समय बाद शरबत पीकर घर पहुँचते-पहुँचते साढ़े आठ निश्चित ही हो जायँगे। उसके बाद भास्कर का दवा-पानी, बच्चों का और मेरा खाना—इन्हीं बातों का विचार वह कर रही थी।

'सरला बाई' फाइल पर से निगाह ऊपर न उठा कर ही साहब ने पुकारा।

'जी, सर।'

'अजी, यहाँ आपके हस्ताक्षर रह गये हैं। वे कर दीजिये जरा। वरना हमारे आफिसवालों को इतना ही एक बहाना मिल जायगा।' फाइल आगे करते हुए वे बोले।

कुछ लज्जित-सी होकर वह उठी। साहब द्वारा मेज पर आगे रखे कागजों पर हस्ताक्षर कहाँ करने हैं, यह वह देखने लगी।

और तभी क्या होता है यह समझ पाने से पहले ही साहब ने, हस्ताक्षर करने के लिए उसके आगे बढ़े हाथ को अपने पंजे में कसकर पकड़ लिया। वह चिल्लाने जा रही थी कि तभी उन्होंने अपना दूसरा भी हाथ पीठ पर से उसकी काँख में डाला और झटके के साथ उसे अपने नजदीक खींच लिया।

'कोई हस्ताक्षर नहीं रहे हैं। रह गया है सिर्फ हमारा हिसाब।' साहब बुदबुदाये और उसके हिलते हुए शरीर को समेटने लगे।

इस अनपेक्षित चाल से वह इतनी घबरा गयी कि क्या करे यही वह समझ नहीं पा रही थी। लाल हुई आँखों से साहब उसका सौन्दर्य पी रहे थे। लजचाये हुए होंठों को उसके होंठों पर टिकाने की कोशिश कर रहे थे।

उस दृढ़ आलिंगन से मुक्त होने का प्रयत्न करते हुए वह बोली—'साहब, यह क्या ? मैं विवाहिता हूँ। आप मेरे पिता के स्थान में हैं।'

'पगली है तू। ये नाते बताने से क्या काम होते हैं कभी ? नाते बदलने पड़ते हैं उसके लिए।' एक निराली ही भारी-सी आवाज में साहब बोले।

'मैं भीख माँगती हूँ साहब, आप से। यह न कीजिए। मैं बाई साहब के पास रसोईघर में जाती हूँ।' एक जोर का झटका देकर वह बोली।

त्योंही साहब ने अपना आलिंगन ढीला कर दिया। उन भूखी आँखों और दहकते होंठों का उसे इतना डर लगा कि बदन की साड़ी का भी होश रखे बिना वह दरवाजे की ओर भागी।

साहब सिर्फ खिलखिलाकर हँसते रहे। कमरे की चारों दीवारें इतनी नजदीक-नजदीक आने लगीं कि मैं अब उनमें कुचली जा रही हूँ—ऐसा उसे लगा।

'दरवाजा खोलकर बाहर जाने की पागल कोशिश मत कर, लड़की ! दरवाजे में बाहर से कुंडी लगी है।' हँसते-हँसते वे बोले।

सारी शक्ति समेटकर उसने दरवाजा खींचा। 'बाई साहब ! बाई साहब !' इस तरह जोर से पुकारकर उसे जोर-जोर से थपथपाया।

'कौन बाई साहब ? और क्यों अपने को व्यर्थ यूँ थका रही है ? वे बाई साहब मेरी पत्नी नहीं। तुझ जैसी चिड़ियों को जाल में फँसाने के लिए ऐसी किराये की बाई साहब लानी पड़ती हैं हम लोगों को।' धीरे-धीरे आगे बढ़कर साहब बोले। उसकी धड़कती हुई छाती पर उनकी नजर तनी हुई थी।

सारी ताकत बटोरकर वह फिर चिल्लायी।

'इसका भी कोई उपयोग न होगा। यहाँ से कोई भी तेरी आवाज न सुन सकेगा।' भर्रायी हुई आवाज कमरे में गूँजी।

जो भी मिल जाय उसे उठाकर इस बदमाश के सिर पर दे मारूँ—ऐसा निश्चय करके वह जरा एक तरफ हटी और इसी समय साहब उस पर झपट पड़े। एक हाथ से उन्होंने स्विच आफ किया और चारों तरफ से भीतर घुसा हुआ अँधेरा उसे निगल जाने लगा।

इसके बाद क्या हुआ यह वह समझ ही न पायी।

बिस्तर के नजदीक का स्विच साहब ने दबाया। बँगले में कहीं बेल बजी। बाहर के दीये जल उठे और दरवाजा खुला।

[शेष पृष्ठ २८३ पर देखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

कुमारी अर्चना मिश्र

श्री हरप्रसाद शर्मा

कुमारी अर्चना मिश्र बचपन से ही प्रखर बुद्धि की लड़की थी। उसकी स्मरणशक्ति तथा हाजिरजबाबी देख कर लोग दंग रह जाते। परिणामस्वरूप वह हर कक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होती रही। उसने एम० ए० किया। फिर एल०-एल० बी० किया। इसके बाद उसने देश के कोने-कोने का भ्रमण किया तथा ग्रामीण जीवन का गहन अध्ययन किया। उसने देखा कि किसानों और मजदूरों को कठिन परिश्रम के बावजूद भरपेट खाना नहीं मिलता, तन ढकने को कपड़े नहीं, रहने के लिए अच्छे मकानों की व्यवस्था नहीं और पढ़ाई-लिखाई का उचित प्रबन्ध नहीं। लोगों की दशा बड़ी दयनीय है। यह सब देखकर उसका मन बेचैन हो उठता, दुःख से उसकी पलकों की कोरें अश्रु-विन्दु से भीग जातीं और वह मन ही मन उनकी सेवा सच्चे हृदय से करने का दृढ़ संकल्प करने लगती। अन्त में उसने यह निश्चय किया भी कि जैसे भी हो मैं निर्धनों, दीन-दुखियों तथा मज़दूर-किसानों के मुकदमे—चाहे वह दीवानी के हों चाहे फौजदारी के—उनसे बिना किसी प्रकार की फीस लिये उनके लिए अमेरिकिन राष्ट्रपति एब्राहिम लिंकन की भाँति लड़ूँगी और उन्हें उचित न्याय दिलवाने का भरसक जीवनपर्यन्त प्रयत्न करती रहूँगी। जब इस समाचार का पता लोगों को चला तब उनके हर्ष का ठिकाना न रहा। निस्सहाय लोगों को मानो दो आँखें मिल गईं; उनको अन्याय के विरुद्ध लड़ने का साहस बढ़ा और उनके मन में इस आशा का संचार हुआ कि इस स्वार्थपूर्ण, मक्कार और चालबाज़ दुनिया में भी हमारा कोई रक्षक है जो आड़े समय पर हमारे काम आयेगा। जब वह वकालत के अखाड़े में उतरी तब थोड़े ही समय में वह इतनी प्रसिद्ध हो गई कि उसका नाम लोगों की ज़बान पर चढ़ गया। मजिस्ट्रेट और न्यायाधीश भी उसके नाम से घबराने लगे क्योंकि उसकी युक्तियाँ इतनी ठोस और तर्कसगत होतीं कि उनका उत्तर आसानी से किसी से देते न बनता। अच्छे-अच्छे वकील और बैरिस्टर उसका मुँह आश्चर्य से ताकते रह जाते। जिस समय वह जिरह करने को न्यायालय में खड़ी होती गवाहों को इस प्रकार क्रास-एक्ज़ामिन करती कि उन्हें मजबूर होकर सत्य उगलना पड़ता। वह सरकारी मुकद्दमों की धज्जियाँ इस प्रकार उड़ा देती कि दूध का दूध और पानी का पानी सामने आ जाता।

प्रस्तुत मुकद्दमे की कहानी इस प्रकार है—ठेकेदार कुंदनलाल बड़ा ही शराबी-कबाबी, चरित्रहीन और दुराचारी व्यक्ति था। उसके पास करीब सौ मज़दूर काम करते थे। उसने एक सरकारी पुल बनवाने का ठेका लिया था। वह मज़दूरों की सुन्दर बहू-बेटियों तथा उनकी स्त्रियों पर बुरी नज़र रखता और जो भी उसकी इस बुराई का विरोध करता उसे काम से तुरन्त हटा देता।

ऐसा ही कुंदनलाल ने एक दिन किया। माधो की स्त्री रधिया रूपवती, हँसमुख और भोले-भाले स्वभाव की थी। कुंदनलाल उसके पति की ग़ैरहाज़िरी में उसके झोंपड़े पर गया और उसका शील भंग करने की चेष्टा करने लगा। परन्तु रधिया चिल्ला उठी और वहाँ लोगों की भीड़ एकत्र हो गयी। सिवाय थुक्का-फज़ीहत के उसे कुछ भी हाथ न लगा। वह अपमान के कारण क्रोध से पागल हो उठा। उसने रधिया को काम से हटा दिया। उसने उस अपमान का बदला लेने की मन ही मन कसम खाई, परन्तु उसके पति माधो को काम पर रखा क्योंकि यदि उसे भी काम से हटा दिया जाता तो मज़दूरों के मन में एक भूचाल आ सकता था जो शायद उसके हक़ में अच्छा न होता।

जहाँ पुल बन रहा था उसी के पीछे रधिया और माधो की झोंपड़ी थी। एक दिन कुंदनलाल के इकलौते बेटे का खून किसी ने रंजिश के कारण कर दिया। चारों तरफ हलचल मच गई। उसकी विशाल कोठी आर्तनाद से गूंज उठी। पुलिस की दौड़धूप शुरू हो गई। कुंदनलाल ने माधो का नाम इस केस में केवल दर्ज ही नहीं कराया बल्कि उसने अपनी रिवाल्वर भी उसकी झोपड़ी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिकवाई और उसे पुलिस द्वारा हथकड़ी लगवा दी। उसकी स्त्री रधिया गला फाड़-फाड़ कर रोने लगी। उसके छोटे-छोटे दो बच्चे, जिनके बदन पर कोई कपड़े न थे यानी जो नंग-धड़ंग थे, अपनी माँ को देखकर बिलख-बिलख कर रोने लगे। पुलिस उन सबको पकड़ कर थाने ले गई और माधो के विरुद्ध एफ० आई० आर० (फर्स्ट इन्फॉरमेशन रिपोर्ट) ३०२ आई० पी० सी० के अन्तर्गत रजिस्टर में दर्ज की। बस केस की शुरुआत यहीं से है।

जब फॅर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट की अदालत से मुकद्दमा सिविल ऐण्ड सैशंस जज के न्यायालय में आया तब वहाँ इस केस की सुनवाई के लिए इतनी बड़ी भीड़ एकत्र थी कि पैर रखने के लिए तिल भर भी जगह न थी। ऊँचे चबूतरे पर न्यायाधीश अपना मोटे काले फ्रेम का चश्मा नाक पर चढ़ाये और काले रंग वाला सिल्किन ज्यूडिशल गाउन शरीर पर धारण किये अपनी कुर्सी पर आसीन थे। उनके सिर के सफेद छोटे-छोटे बाल और भारी भौहें चाँदी के समान बिजली की रोशनी में चमक रही थीं। डॉयस के तीनों ओर लकड़ी की रेलिंग खड़ी थी। बाईं ओर स्टेनों मेज़ पर टॉइपराइटर रखे टाइप करने के लिए तैयार बैठा था। सीधे हाथ की तरफ पेशकार फ़ाइलों में कुछ अध्ययन कर रहा था। जज की कुर्सी के पीछे एक अर्दली पोशाक पहने, जिस पर सरकारी बिल्ला कमर की पेटी के साथ चमक रहा था, बाअदब खड़ा था। उसकी सुनहरी कुल्लेदार ऊँची कलगी वाली पगड़ी उसके गोल मूँछों वाले चेहरे पर खूब फब रही थी। डॉयस के सामने एक बड़ी सी चौकोर मेज पड़ी थी जिसके चारों तरफ वकील, बैरिस्टर तथा दूसरे लोग पुस्तकें तथा ज़रूरी कागज़ात रखे कुर्सियों पर बैठे थे। सरकार की ओर से पी० पी० (पब्लिक प्रोज़ीक्यूटर) डॉ० टी० साज़नानी बार० एट० ला मुकद्दमे के लिए था और डिफेंस काउंसिल की ओर से कुमारी अर्चना मिश्र, एम० ए० एल०-एल० बी० मुकर्रर थीं। अपराधी माधो हाथों में हथकड़ी पहने तथा उसकी स्त्री रधिया अपने छोटे-छोटे बच्चों सहित पुलिस वालों के साथ रेलिंग के पास खड़ी थी। बाहर कोलाहल मच रहा था और सभी लोग मुकद्दमा आरम्भ होने का इंतजार बड़ी उत्सुकता से कर रहे थे।

थोड़ी देर बाद कुमारी अर्चना मिश्र ने न्यायालय में प्रवेश किया। उसकी असिस्टेंट कुमारी शीला रानी मुकद्दमे से सम्बन्धित ज़रूरी कागज़ात लेकर उसके पीछे आयी और उन्हें उसको देकर वहाँ से चली गयी।

डॉ० साज़नानी ने मुकद्दमे की शुरूआत इस प्रकार की—"अपराधी माधो के विरुद्ध कई ठोस प्रमाण हैं। जैसे, ठेकेदार कुंदनलाल की रिवाल्वर का अपराधी के घर में बरामद होना, उस पर उसकी उँगलियों के स्पष्ट निशान, एक चश्मदीद गवाह का बयान जिसके सामने गोली चलाकर कुंदनलाल के लड़के का खून किया गया तथा दूसरे चश्मदीद गवाह का भी बयान, जिसने उसका खून होते देखा। अतः न्याय की माँग है कि इन स्पष्ट प्रमाणों तथा साक्ष्यों को मद्देनज़र रखते हुए अपराधी को उचित दंड दिया जाना चाहिए।'

उसी समय कुमारी अर्चना मिश्र की ओर न्यायाधीश ने संकेत करते हुए पूछा—

'बैल! आपको इस मुकद्दमे के सम्बन्ध में जो कहना हो, कहिए।'

कुमारी अर्चना मिश्र ने रूमाल से अपना मुह पोंछा और थोड़ा खाँस कर गला साफ करते हुए डा० साज़नानी की ओर मुड़ कर उससे कहा—

डॉ० साज़नानी, क्या मैं जान सकती हूँ कि अपराधी के घर की तलाशी लेने के पूर्व पुलिस ने अपनी जेबों की तलाशी अपराधी के सामने किसी जिम्मेदार व्यक्ति के सम्मुख दी और यदि तलाशी दी तो किसके सामने?'

डॉ० साज़नानी प्रश्न सुनकर सन्नाटे में आ गये। उनसे उत्तर देते न बना तो वह हड़बड़ा कर बगलें झाँकने लगे।

'और इस प्रश्न का उत्तर न देने का मतलब है कि पुलिस ने अपनी तलाशी नहीं दी जो उसे न्याय की दृष्टि से किसी की तलाशी लेने के पूर्व देनी चाहिए।' कुमारी अर्चना मिश्र ने दहाड़ते हुए कहा।

'और जिस रिवाल्वर से खून किया गया माधो उसे उठाकर नहीं लाया और न उसने गोली ही चलाई, बल्कि यह रिवाल्वर किसी और ने उसके घर में जाकर फेंकी और उसे इस केस में शत्रुता के कारण फँसाया गया।'

'नहीं, नहीं—बिलकुल ग़लत। यह कभी नहीं हो सकता। यह बात इतनी ही असत्य है जितनी कि सूर्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिम से उदय होना।' डॉ० साज़नानी ने तुरन्त डिफेंस लिया।

'यह सत्य है, इतना ही सत्य जितना कि सूर्य का पूर्व से उदय होना और पश्चिम में डूबना। क्या यह सत्य नहीं है कि जब पहली बार अपराधी की झोपड़ी की तलाशी ली गयी तब वहाँ कोई रिवाल्वर नहीं पायी गयी। फिर थोड़ी देर बाद उसके घर की दुबारा तलाशी उसी कमरे की क्यों ली गयी?' कुमारी अर्चना मिश्र ने अगला प्रश्न किया।

'क्योंकि तलाशी पूरी तरह से नहीं ली गयी थी।'

'तलाशी पूरी तरह से नहीं ली गयी—या थोड़ी देर के बाद जब किसी ने उसके पीछे की दीवार के पास जाकर उसके छोटे से खुली रसोईघर की खिड़की से रिवाल्वर फेंकी और जब वह वापस लौटकर दुबारा उसी रसोईघर की तलाशी जानबूझ कर ली गयी? योर ऑनर, जरा इस तरफ गौर कीजिए—अपराधी की झोपड़ी में दो कमरे हैं—एक सामने का जिसमें वह और उसका परिवार उठता-बैठता है, आराम करता है, और पीछे छोटा-सा कमरा रसोईघर बना रखा है, जिसमें बिना किवाड़ों की एक छोटी सी खिड़की है ताकि रसोईघर का धुआँ बाहर जा सके और ताजी हवा अन्दर-बाहर आ-जा सके। वहीं से रिवाल्वर अन्दर फेंकी गयी। वह एक जाड़े की ठंढी रात थी, घर में अँधेरा था और टॉर्च की रोशनी में उसके यहाँ पुलिस द्वारा तलाशी ली गयी थी।'

'यह सब सफेद झूठ के सिवाय कुछ भी नहीं। भला उसमें रिवाल्वर कौन फेंकेगा? यह सब मनगढ़न्त कहानी है। और फिर अपराधी की उँगलियों के निशान भी रिवाल्वर पर स्पष्ट बने थे। 'फिंगर-प्रिन्ट्स एक्सपर्ट' की रिपोर्ट से यह एकदम स्पष्ट है।' डा० साज़नानी ने अपने सीधे हाथ की हथेली को अपनी बात पर जोर देने के लिए जोर से रेलिंग पर पटकते हुए झल्ला कर कहा।

'जहाँ तक उसकी उँगलियों के निशान का प्रश्न है,' कुमारी अर्चना ने अपनी विचारपूर्ण मुद्रा में त्यौरियों को जरा चढ़ाते हुए गरज कर कहा, 'क्या यह सत्य नहीं है कि जब रिवाल्वर माधो के रसोईघर में पड़ी थी तब अपराधी से पुलिस इंस्पेक्टर ने यह नहीं कहा कि माधो तुम उसे अपने हाथ से उठाकर देखो कि वह क्या चीज है, जिसकी तामील उसने भयभीत होकर तुरन्त की और जो उसके उठाने पर सिवाय रिवाल्वर के और कुछ भी नहीं थी। स्पष्ट है कि उसकी उँगलियों के निशान उस पर बनते ही। इसलिए उसके घर की तलाशी लेने से पहले पुलिस ने अपनी तलाशी किसी को नहीं दी और उसके घर की दुबारा तलाशी लेना और उससे यह कहना कि तुम अपने हाथ से उठाकर देखो कि वह क्या चीज है माधो के विरुद्ध शत्रुता के कारण सरासर एक षड्यंत्र रचा गया और उस निर्दोश व्यक्ति को खून के अपराध में जानबूझ कर फँसाया गया।'

यह सुनकर न्यायालय के चारों तरफ सनसनी फैल गयी। उपस्थित लोग, जो अपनी साँस रोक कर मुकद्दमे को सुन रहे थे, आपस में कानाफूसी करने लगे। केस की धज्जियाँ उड़ती नजर आने लगीं और कुमारी अर्चना के अकाट्य तर्कों को सुनकर सभी उसके चेहरे को प्रशंसात्मक दृष्टि से देखने लगे।

डॉ० साज़नानी हारे हुए जुआरी की भाँति इधर उधर ताकने लगा था। उसने रेलिंग पर मुकद्दमे की फाइल रखकर खोली, फिर बन्द करके क्षण भर में झुँझलाते हुए अगला पॉइंट उठाया।

'इसमें यह भी स्पष्ट है कि जो रिवाल्वर की गोली ठेकेदार कुन्दनलाल के लड़के को लगी उसी से उसकी मृत्यु हुई। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट इसे पूरी तरह साबित करती है जो इक्जीबिट नं० ३ है।'

'इस पर मुझे आपत्ति है, योर ऑनर! जिस व्यक्ति ने इस बात की गवाही दी मुझे उस गवाह को क्रास-एग्जामिन करने की इजाज़त दी जाय ताकि सच्चाई लोगों के सामने आये।' कुमारी अर्चना ने अपने काले सिल्क जैसे मुलायम बालों पर उँगलियाँ फेरते हुए जज से प्रार्थना की।

'गवाह को क्रॉस-एग्जामिन करने की इजाजत दी जाती है। उसे फ़ौरन न्यायालय में पेश किया जाय।' न्यायाधीश ने आज्ञा दी।

गवाह बरक़त उल्ला विटनैस-बॉक्स में खड़ा किया गया। वह लम्बा तड़ंगा व्यक्ति था। उसकी काली डाढ़ी कट की थी, मूछें और खोपड़ी के बाल सफाचट थे। कुर्त्ता और चूड़ीदार पायजामा पहने था।

'तो क्या बतला सकते हो कि गोली कितनी दूर फासले से चलायी गयी?' अर्चना ने गवाह से पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मुझे क्या मालूम था कि अदालत में ऐसे सवाल पूछे जाते हैं, वर्ना मैं इंचीटेप से सही-सही फासला नाप कर लाता और आपकी ख़िदमत में पेश करता ?' बरक़त उल्ला ने अपनी कटहल जैसी गोल और खुरदरी खोपड़ी पर ज़रा हाथ फेरते हुए सोच कर उत्तर दिया।

सब लोग ही-ही करके हँस पड़े। 'बड़ा मज़ाकिया और दिलचस्प गवाह मालूम होता है।' कुछ लोग इस प्रकार कानाफूसी करने लगे।

कुमारी अर्चना ने जज की ओर मुड़ते हुए कहा, 'गवाह काफी चालाक मालूम होता है, योर औनर। वह फासले के सम्बन्ध में सही बयान नहीं देना चाहता। पर उसे यह सही सही बतलाना ही होगा।' उसने गवाह की तरफ देखते हुए अपना प्रश्न फिर दुहराया और चेतावनी भरे स्वर में गम्भीरता से कहा, 'देखो, यह अदालत है, मजाक नहीं। जो प्रश्न पूछा जाय उसका सही सही उत्तर दो।'

डा० साज़नानी ने कुछ उत्तेजित होकर कुमारी अर्चना मिश्र से कहा, यदि गवाह को फ़ासला ठीक-ठीक मालूम नहीं तो उस पर कोई दबाव नहीं डाला जा सकता, उससे ज़बरदस्ती नहीं कहलवाया जा सकता जो आप उससे कहलवाना चाहती हैं।'

कुमारी अर्चना मिश्र ने गरज कर कहा, 'मुझे उससे सवाल जवाब करने दीजिये। आप बाधा मत डालिये। हाँ, तो क्या फसला था गोली चलाने का ?'

'करीब पाँच-छः गज की दूरी होगी।' बरक़त उल्ला ने उत्तर दिया। 'और फिर आगे क्या हुआ ?' अगला प्रश्न था।

'गोली बाबूलाल के पेट में धँस गयी और उसकी मौत हो गयी।'

'मेरा मतलब है कि गोली पेट में ही रह गयी या पेट के पार जा निकली थी।'

'जी नहीं, गोली पेट में ही धँस कर रह गयी ? उससे बाहर नहीं निकली ?' गवाह ने स्पष्ट किया।

'अब तुम जा सकते हो।' कुमारी अर्चना एक विजेता के रूप में रेलिंग के सामने इधर से उधर घूमती हुई दहाड़ी।

'जरा ग़ौर कीजिये, योर औनर! गवाह ने जो गवाही दी उससे स्पष्ट है कि रिवाल्वर की गोली उतने नज़दीक से नहीं चलायी गयी जितना फ़ासला उसने बयान किया है। इतने पास के फ़ासले से चलायी गयी गोली किस तरह पेट में फँस कर रह सकती है; उसे पेट के बाहर जाना ही चाहिये क्योंकि रिवाल्वर के चलते समय गोली में बड़ा फ़ोर्स होता है। वह किसी भी हालत में पेट के अन्दर नहीं रह सकती थी। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि गवाह मौक़े पर हरगिज़ हाज़िर नहीं था जबकि गोली दूर से चलायी गयी जो उसके पेट में फंस गयी और वह गोली चलाने वाला कोई और अपराधी था जिसे पकड़ा नहीं जा सका।'

डा० साज़नानी के पैरों से ज़मीन खिसक गयी। उसके होश उड़ गये। उसका बुलडॉग जैसा भारी चेहरा आक्रोश और परेशानी से लाल हो उठा और वह झुँझला कर कुमारी अर्चना की दलील पर दाँत पीसने लगा। उसने जैसे-तैसे अपने आपको सँभाला। रूमाल से अपनी मोटी गर्दन से पसीना साफ़ किया और फिर एक करारी चोट, लाठी खाये हुए साँप की तरह, कुमारी अर्चना मिश्र पर की।

'यह आप किस तरह गॉरंटी दे सकती हैं कि रिवाल्वर की गोली पेट में नहीं फँस सकती, उसको पेट के बाहर जाना ज़रूरी है ?'

'यह तो रिवाल्वर की एग्ज़ामिनेशन रिपोर्ट से स्पष्ट है कि जिस समय रिवाल्वर चलायी गयी वह बिल्कुल ठीक हालत में थी। तब उसकी गोली इतने नज़दीक चलने से पेट में फँसने का कोई सवाल ही नहीं उठता। इसलिए उससे किसी ने दूर ने गोली चलायी न कि पास से। यह तो कोमनसेन्स की बात है। व्हॉट नौन्सेन्स ?' कुमारी अर्चना मिश्र ने शान से अपने चारों ओर देखते हुए दलील पेश की।

'योर औनर, सुना आपने ? मुझे भरी अदालत में इतने लोगों के सामने नौनसेन्स कहा गया, मुझे ज़लील किया गया। मैं मानहानि का मुक़द्मा कुमारी अर्चना मिश्र के ख़िलाफ दायर करूँगा।' डा० साज़नानी ने क्रोध से अपने हाथ की मुट्ठियों को हवा में उछालते हुए कहा।

'मैंने आपको तो नौनसेन्स नहीं कहा। कौन कहता है डॉ० साज़नानी ? मैंने तो आपके आर्गुमैंट को नौनसेन्स कहा।' कुमारी अर्चना मिश्र ने मुसकराते हुए विनम्रता से डिफेन्सिव उत्तर दिया।' यह सुन सब लोग खिलखिला कर हँसने लगे। कुछ लोग जो अन्दर मेज के चारों ओर बैठे अपनी हथेलियों पर अपनी ठुड्डियाँ रख कर मुकद्मे को सुन रहे थे मुँह में रूमाल ठूंस-ठूंस कर हँसने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० साज़नानी का चेहरा चिढ़ और झेंप से कुछ क्षण के लिए झुक गया। उसकी ज़बान से बोल तक न फूटा।

लोगों को अब पूरा भरोसा हो गया था कि ठेकेदार कुन्दनलाल की मुकद्दमे में निश्चित हार थी क्योंकि केस में अब कोई जान बाकी नहीं रह गयी थी। यदि आखिरी गवाही में कुछ गुज़रा तो हो सकता है कि मामले का रुख कुछ बदल जाय क्योंकि यह एक ऐसा पढ़ा-लिखा और चालाक गवाह था जिसकी गवाही से कमज़ोर केस में भी जान पड़ जाती थी और मुकद्दमे शत प्रतिशत जीत लिये जाते थे। इस गवाह का नाम डॉ० पी० अलिन कार्टर था जो ऐंग्लो-इंडियन था। झूटी सच्ची गवाहियाँ दे-दे कर उसने अपना एक बंगला खड़ा कर लिया था; काफी धन जोड़ लिया था और वह ठाटबाट से रहता था। केवल गवाही देना ही उसका पेशा था जिस पर उसकी रोटी चलती थी।

कुमारी अर्चना मिश्र ने न्यायाधीश से फिर एक बार कहा, 'योर ऑनर' इस प्रौज़ीक्यूशन का जो अंतिम गवाह है उसे पेश किया जाय। मैं उसका भी क्रास-एग्ज़ामिनेशन करना चाहूँगी।'

'इज़ाज़त है। उसे विटनेस-बॉक्स में पेश किया जाय।' जज ने अनुमति दी। टाई कालर से अप-टू-डेट और केवल अंग्रेजी भाषा में गवाही देने वाला डा० अलिन कॉर्टर विटनेस-बॉक्स में चुपचाप खड़ा हो गया। केस की धज्जियाँ उड़ते देखकर बयान देने में काफी सावधानी से काम लूँगा, यही वह अभी अपने मन में सोच ही रहा था कि उससे कुमारी अर्चना ने प्रश्न किया, 'अच्छा तो आप खुदा को हाज़िर नाज़िर जान करके ठीक-ठीक बयान कीजिये कि आपने बाबूलाल का खून होते हुए किस प्रकार देखा?'

डा० कार्टर ने जो कुछ भी देखा अंग्रेजी में शुरू से बयान किया और अन्त में कहा, 'दैट बाबूलाल हैड बीन शौट डैड बिफोर मी' और यहीं पर कुमारी अर्चना मिश्र ने उससे कहा कि अब आप जा सकते हैं और वह विटनैस-बॉक्स से बाहर जा खड़ा हुआ।

इस पर गर्व से फूलते हुए डा० साज़नानी ने रेलिंग के पास खड़े होकर कहा, 'यह वह चश्मदीद गवाह है जिसको झुठलाया नहीं जा सकता। पढ़ा-लिखा और कुलीन घराने का व्यक्ति है। क्या उसके बयान से यह बिलकुल साबित नहीं हो जाता कि यह खून का एक प्रेमा-फेसी केस है और माधो निस्सन्देह पूर्णतया अपराधी है और उसे उचित दण्ड क्यों न दिया जाय?'

और तभी कुमारी अर्चना मिश्र बयान के अंतिम पाइंट पर बाज़ की तरह झपट्टा मारकर बोली। जरा गवाह के अन्तिम सेंटेंस (वाक्य) पर ध्यान दीजिये, योर ऑनर। उसने कहा दैट ही हैड बीन शोट डैड बिफोर मी। ज़रा यहाँ 'बिफोर' शब्द का मतलब देखिये। 'बिफोर' शब्द का मतलब है 'पहले'। इसका मतलब यह हुआ कि गवाह से पहले उसे शूट किया गया। अतः यह दिन के उजाले की भाँति स्पष्ट है कि गवाह सीन पर हरगिज़ मौजूद नहीं था, योर ऑनर। यह गवाह तो सिखला पढ़ा कर झूठी गवाही देने के लिए भेजा गया है।'

चारों तरफ हर्ष ध्वनि होने लगी। मॉईकिल फॉकनर अमेरिकन न्यायालय के जज थे और भारत के ज्यूडीशरी सिस्टम का अध्ययन करने आये थे और वहाँ कुर्सी पर बैठे इस केस को ध्यान से सुन और देख रहे थे। उनके होंठ अचम्भे के मारे खुले के खुले रह गये। सभी लोग कुमारी अर्चना मिश्र के गवाह के 'बिफ़ोर' शब्द के अकाल्पनिक तर्क को सुन कर उसे हैरत की नजरों से ताकने लगे और कुछ लोग तो आपस में अपनी गर्दन हिला-हिलाकर उसकी सूझ-बूझ की प्रशंसा करने लगे। डा० कॉर्टर ने, जिसकी पूरी चिकनी खोपड़ी शीशे की भाँति रोशनी में चमक रही थी, परेशानी की मुद्रा में अपनी उंगलियों से उसे खुजलाया। आज जीवन में उसे पहली बार अंग्रेजी भाषा की उलझन का अनुभव हुआ था जिसकी प्रशंसा करते हुए उसकी जबान कभी न थकती थी।

डा० साज़नानी को तो जैसे साँप सूँघ गया। एक क्षण के लिए वह भी स्तंभित रह गया। परन्तु अपने आपको सँभालते हुए वह तुरन्त बोला, 'हरगिज नहीं। हरगिज नहीं। 'बिफ़ोर' वर्ड का मतलब मैं 'सामने' से ही लूंगा क्योंकि 'पहले' का तो मतलब इस संदर्भ में कहीं भी फिट नहीं होता।'

जज महोदय ने अपने काले रेशमी ज्यूडिशल गाउन पर उंगलियाँ फेरते हुए टोंक कर अपनी भारी आवाज में पूछा, 'तो क्या आपको आपके उस्ताद ने 'बिफ़ोर' शब्द का एक ही अर्थ 'सामने' बतलाया, दूसरा 'बाद' नहीं?'

'बतलाया क्यों नहीं, योर ऑनर! दूसरा भी बतलाया था।' डा० साज़नानी ने कुछ झेंपते हुए उत्तर दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर वहाँ बैठे लोग खी-खी करके हँसने लगे। सभी डा० साज़नानी की सूरत देखने लगे। उसके सफेद बाल और भारी भौहें सभी को ऐसे प्रतीत होने लगीं जैसे उसने उन्हें अनुभव से नहीं बल्कि धूप में सफ़ेद किया हो। कुछ लोग तो एक दूसरे के कंधे छू-छू कर डा० साज़नानी का मज़ाक उड़ाने लगे। कोर्ट में कोलाहल होने लगा। कुन्दन-लाल और उसके रिश्तेदार तथा साथियों के चेहरे उस समय देखने लायक़ थे जिन पर हल्दी पुत चुकी थी। किसी को भी अब मुक़द्दमा जीतने की आशा रत्ती भर भी नहीं थी।

'बतलाया तो होगा, परन्तु भूल गये लगता है; अब आपके कहने से याद आया।' कुमारी अर्चना मिश्र ने कटे पर नमक छिड़कते हुए कहा। 'और जब गवाह मौक़े पर था ही नहीं तो उसने अपने बयान में इस सेन्टेन्स को (दैट ही हैड बीन शौट डैट बिफ़ोर मी) के बदले में यह क्यों नहीं कहा कि दैट ही हैड बीन शौट डैड इन हिज़ 'प्रिज़ेन्स' उसने 'प्रिज़ेन्स' शब्द का प्रयोग क्यों नहीं किया ? इससे सिद्ध होता है कि गवाह सीन पर कभी मौजूद नहीं था।' उसने अपने तर्क पर फिर एक बार इस प्रकार ज़ोर दिया और इतना कहने के पश्चात् उसने अपने दोनों हाथ रेलिंग पर से हटाये और वह जज के डॉयेस के सामने आकर खड़ी हो गयी। उसने अपनी बड़ी-बड़ी पलकों से, जो काली बरौनियों और घनी भौहों से सजी थीं, गर्व और विजय के उल्लास के साथ भीड़ पर चारों तरफ एक उड़ती नज़र डाली। उसने अपनी डबल चोटियाँ, जो उसके वक्ष से उसकी कमर तक लम्बी झूल रही थीं, हाथ के झटके के साथ पीछे कीं। फिर वह मुस्करायी और उसके छोटे-छोटे चौकोर दूध से सुन्दर दाँत उसके गुलाबी होठों के बीच मोतियों की पंक्तियों की भाँति ट्यूब लाइट के फैले प्रकाश में चमक उठे। उसने अपने गाउन की पड़ी सिलवटों को ज़रा नीचे झुक कर ठीक करते हुए आगे कहा, 'तो इन सारी परिस्थितियों को देखते हुए यह कहना कदापि अनुचित नहीं होगा कि माधो के विरुद्ध जो ख़ून करने का आरोप है वह नितांत निर्मूल है, बेबुनियाद है, जिसमें सत्य का एक कण भी नहीं। अतः वह इस अपराध से, न्याय की दृष्टि से, सर्वथा मुक्त करने योग्य है।'

और इसके बाद न्यायालय दो दिन के लिए उठ गया। जब तीसरे दिन अदालत बैठी तब वहाँ बड़ी भीड़ थी। वह माधो के भाग्य के निर्णय का अंतिम दिन था। वह जीवन और मृत्यु के बीच में झूल रहा था।

तभी पेशकार ने अर्दली से कह कर दोनों पार्टियों को आवाज़ दिलवायी। माधो तथा ठेकेदार कुन्दनलाल और उसके अन्य साथी न्यायालय में आकर खड़े हो गये। वे अपनी अपनी साँस रोक कर भीड़ के मध्य में अंतिम निर्णय सुनने के लिए उपस्थित थे।

न्यायाधीश डा० सीताराम सिंह एम० ए०, एल्-एल० बी०, पी-एच० डी०, डी० लिट् ने सारे मुक़द्दमे की कहानी का संक्षिप्त विवरण देते हुए अन्त में अपने निर्णय में कहा कि माधो अभियुक्त के विरुद्ध जो ख़ून का आरोप धारा ३०२ आई० पी० सी० के अन्तर्गत लगाया गया वह किसी साक्ष्य द्वारा सिद्ध नहीं होता और नितांत निर्मूल है। अतः माधो को क़ानून तथा न्याय की दृष्टि से इस आधारहीन आरोप से पूर्ण सम्मानसहित मुक्त किया जाता है।

और उस समय कुमारी अर्चना मिश्र अपने प्रशंसकों के मध्य मुसकराती हुई खड़ी थी।

असहायता

[पृ० २७७ का शेषांश]

शाम की वह बाई साहब चुड़ैल की तरह धीरे-धीरे भीतर आयी।

'तुम्हारा काम बढ़िया रहा। यह लो तुम्हारा बचा हुआ इनाम।' ऐसा कहकर साहब ने सौ का एक नोट उसे थमा दिया।

'अभी इसी समय इसे घर पहुँचा दो। तीन की गाड़ी से मैं बम्बई जा रहा हूँ।' उसकी तरफ देखकर साहब पुनः बोले।

दाँत चबाते हुए सरला ने दोनों की ओर देखा।

'और सरला बाई, जो बात हुई है उसकी यदि तुम कहीं चर्चा करोगी तो तुम्हारे कुटुम्ब का भविष्य बनानेवाली फाइल मेरे पास है यह मत भूलना। ज़िला परिषद् का चेयरमेन हूँ मैं, यह याद रखना।' भर्रायी हुई आवाज कमरे में गूँजी।

सरला को जोर की घिन आयी।

फूट-फूटकर रोती हुई वह उस बाई के साथ कमरे से बाहर निकली।

भाग्य के एक और क्रूर दाँव का वह शिकार हो गयी थी।

साहब के बँगले पर 'मातृपूजा' ये अक्षर चमक रहे थे। उसे उन्हें देखते ही एकदम घृणा हुई।

सामने विस्तीर्ण निर्जन सड़क फैली हुई थी।

वह असहाया जा रही थी—रास्ता काट रही थी।*

*मराठी के सुप्रसिद्ध 'सह्याद्रि' मासिक पत्र से साभार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

भवानी शंकर की हिन्दी ग़ज़लें—कवि, भवानी शंकर; प्रकाशक, लोक चेतना प्रकाशन, १८४ शहीद स्मारक पथ, जबलपुर—२; डिमाई आकार; मूल्य, ३ रुपये।

बहुत दिन हुए रुद्र काशिकेय की 'ग़ज़लिका' पढ़ी थी। वैसे तो हिन्दी में कई कवि ग़ज़लनुमा कविताएँ लिखते हैं किन्तु इधर हिन्दी के दो ग़ज़ल संग्रह देखने में आये जो विशेषरूप से आकर्षक लगे। एक है श्री गुलाब खंडेलवाल का 'सौ गुलाब खिले' और दूसरा यह संग्रह। श्री गुलाब का संग्रह अधिक साहित्यिक महत्त्व का है। किन्तु भवानी-शंकर का यह संग्रह अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसके आवरण पर जो चित्र बना है, वह हमारी समझ में नहीं आया। वह 'नयी कला' का है और उसका अर्थ समझना हमारी मंद बुद्धि के लिए संभव नहीं। प्रकाशक ने हम ऐसे अज्ञानियों के लिए उसकी कहीं व्याख्या भी नहीं की। यदि कर दी होती तो हम ऐसे अज्ञानियों का कुछ ज्ञानवर्धन होता। आवरण के चित्र की दुरूहता के कारण हमने समझा कि इसकी कविताएँ भी इतनी ही दुरूह होंगी और बहुत दिनों हमने इसे एक ओर रख दिया, किन्तु जब पुस्तक समालोचना के लिए आयी है तब इस पर कुछ लिखना आवश्यक है। अतएव बहुत अनिच्छा से हमने इसे पढ़ा। पढ़ने पर मालूम हुआ कि आवरण के चित्र और भीतर की कविताओं में कोई साम्य नहीं है। इसमें केवल बत्तीस गज़लें हैं, और हम उन्हें बिना प्रयास रुचिपूर्वक पढ़ गये।

ग़ज़लें फ़ारसी बहरों में लिखी जाती हैं और इस कारण उनमें बहुधा उर्दू के शब्द आ जाते हैं। गुलाब का संग्रह इस दोष से प्रायः बिलकुल मुक्त है। यही बात हम प्रस्तुत संग्रह के बारे में भी कह सकते हैं। ये वास्तव में हिन्दी की ग़ज़लें हैं।

ग़ज़लों की परम्परा में अभिधा ही नहीं है, वह 'महबूब' के पर्दे और 'जाम, मीना, साकी, गुल और बुलबुल' की ओट में अपने लक्ष्य पर चोट भी करती हैं। भवानी-शंकर की गजलों में इस परम्परा का सुन्दर निर्वाह किया गया है। वास्तव में कितनी ही ग़ज़लों में उन्होंने इस प्रकार वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था पर करारी चोटें की हैं। कुछ नमूने देखिए—

प्रतिष्ठा को पहन कर जो खड़े हैं
यकीनन वे खजूरों से बड़े हैं।
सचाई है कहाँ पर, क्या बताएं
जहाँ खोजो वहीं सपने गड़े हैं,
तुम्हारे आश्वासन ताज़गी के
हमें मालूम है कितने सड़े हैं।

या

बदला लोहे का हर कन है,
फिर भी पारसमणि निर्धन है।
जो पीड़ा का वस्त्र धो रही
वही प्रार्थना की धोवन है।
सुख का कोई दाग नहीं है,
दुख मेरा कितना पावन है।
मित्रों की आँखों में आँसू,
या आँसू का विज्ञापन है।

या

क्या जियें हम तेरे ज़माने में
दर्द मिलता है दवाखाने में
चन्द विश्वासघात फूलों के
और क्या है तेरे ख़ज़ाने में
रात भर देशभक्ति ने देखा
एक बेहोश जिस्म थाने में

या

क्या करें, आदमी तो सीधा है
किन्तु कुर्सी बहुत अकड़ती है।
ज़िन्दगी का उदाहरण देखो
लाश राशन दुकान तक पहुँची।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे अच्छा कहीं कुआँ है मौत का।
यह जो जीवन का अन्धा ठहराव है।
और अन्त में, देखो जादू जेब का
नागफनी के चेहरे पर सद्भाव है।

× × ×

है मुहल्ला यह शरीफों का
पर यहाँ की ज़मीन काली है।
मत करो भूख-प्यास की चर्चा,
तृप्ति के हाथ में दुनाली है।

× × ×

ऊँची बातें, ऊँचा पद है
नैतिकता का छोटा क़द है।

यह तो वर्तमान व्यवस्था संबंधी चुटकियों के कुछ नमूने हैं। अब कुछ 'बुद्धिजीवियों' पर भी कुछ फबतियाँ देखिए—

अर्थों को जितना खींचा ताना है,
शब्द दिन-ब-दिन उतने ही थुलथुले हुए हैं।

× × ×

मंच पर नाच रही है बोतल
और कविता शराबख़ाने में।

× × ×

क्यों न महकें समाज में साहब!
सभ्यता का इतर लगाते हैं।

× × ×

एक शोध ग्रंथ हाथ में लेकर
वे महानुभाव बाल्मीकि बन गये।
मौलिकता गणिका हो गयी और वे
चंद किताब पढ़कर शुद्ध हो गये।

इन ग़ज़लों में अभिव्यक्ति की एक नवीनता है और इनमें इतनी हार्दिकता तथा सचाई है कि ये सहृदय पाठकों के हृदय पर सीधे चोट करती हैं।

कवि सलाह देकर नागरिक को उसकी हैसियत बता देता है

बातचीत मत करो यहाँ ईमान की
नीयत साफ़ नहीं है रोशनदान की।
वैसे तो हम मालिक हैं इस देश के,
किन्तु भूमिका करते हैं दरबान की।

और देसाईजी के अनशन पर यह शेर कितना सटीक बैठता है--

ग़नीमत है कि दिल टूटा हमारा
मगर टूटा तुम्हारा प्रण नहीं है।

अवश्य ही कहीं-कहीं छंदों में दोष है। कहीं-कहीं व्याकरण की दृष्टि से वाक्य अधूरे लगते हैं। किन्तु भावों के प्रवाह में उनकी ओर ध्यान कम जाता है। भवानीशंकरजी नवयुवक हैं। वे पेशेवर कवि नहीं। पेशे से अभियंता हैं। आत्मतोष के लिए लिखते हैं। यह इन ग़ज़लों का विशेष गौरव है। फिर भी हिन्दी की प्रकृति की रक्षा की गयी है और कोई कोई ग़ज़ल तो विशुद्ध हिन्दी कविता बन गयी है। जैसे—

कहते हैं सारे घाव बन्धु,
बाँधो न नाव उस ठाँव बन्धु,
जीवन की सीट मिली तम को,
हारी रोशनी चुनाव बन्धु।
बैसाखी लेकर चलता है,
कट गया देश का पाँव बंधु।

हमें आशा है कि भवानीशंकरजी की आत्माभिव्यक्ति की आत्मतोषी भावना भविष्य में और अधिक शक्तिशाली होकर हिन्दी काव्य की श्री-शोभा बढ़ाएगी।

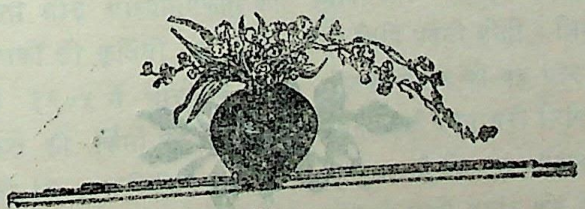

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

दकियानूसी पर आधुनिकता की प्रतिक्रिया

हमारे एक मित्र दिल्ली के 'उच्च वर्ग' के जीवन की झाँकी लेने के लिए एक दिन अति उच्च और आधुनिक लोगों के लिए बनाये गये वहाँ के पाँच सितारेवाले ओबरॉय (Obroi) होटल में गये। दिल्ली के अत्यन्त धनी, जोड़-तोड़ लगानेवाले व्यवसायियों और उनके द्वारा निमंत्रित बड़े लोगों, उच्च वर्ग के विदेशी यात्रियों और रुपया फूंकने की सामर्थ्य रखनेवाले दिलफेंक लोगों के लिए दिल्ली के बड़े-बड़े होटल बड़े सुविधाजनक हैं। ये होटल वास्तव में 'महल' हैं, और इनमें आवास और भोजन की जिस शान की व्यवस्था है वह शायद मोग़ले-आज़म को भी नसीब नहीं थी। ये भारत में पैरिस, न्यूयार्क, लन्दन आदि के उच्च और धनी वर्ग के जीवन के नमूने हैं। ये भारत ऐसे गरीब देश में वैभव और विलासिता के द्वीपों के समान हैं। सामान्य भारतीय नागरिक, यहाँ तक कि दिल्ली का भी औसत नागरिक, इनके वैभव और रंग-ढंग से परिचित नहीं है क्योंकि सुना है कि इनमें से कई तो एक प्याले काफी के लिए ही कई रुपये लेते हैं। हमारे मित्र इन होटलों का बाह्य रूप तो देख चुके थे, उन्हें इनके भीतर की झाँकी लेने की इच्छा हुई और वे केवल कॉफी पीने के लिए उसमें चले गये।

पश्चिमी देशों में धनिकों और मुक्त विचारों के स्त्री-पुरुषों का जीवन बहुत ही मुक्त और स्वच्छन्द है। शायद औसत भारतवासी उसे देख कर भौंचक्का रह जायगा। हमारे मित्र कॉफी पीने की फ़ीस देकर वास्तव में इन होटलों की झाँकी देखने गये थे। वे कवि नहीं हैं, किन्तु उन्हें वहाँ जो देखा उससे उन्हें ऐसा झटका लगा कि उनमें पड़ी रचना की शक्ति का स्फुरण हो गया। (वाल्मीकि को ऐसा ही झटका लगा था और इसी कारण उनके मुंह कविता निकल गयी थी।) कॉफी पीते-पीते उन्होंने पद्य रचना की वह यह है :

ओबरॉय होटल में बैठा,
सम्मुख काफ़ी का प्याला है।
इधर पत्र लिखता मैं तुमको
उधर विदेशी सुर-बाला है।
आर्य-पुत्र लट्टू हैं उस पर,
औ प्रत्येक खुशामद-रत है।
मातु इन्दिरा की जय बोलो,
हुआ विलायत यह भारत है!

हमारे मित्र ६० से ऊपर हैं। पिछड़े हिन्दी भाषी क्षेत्र के हैं। इसलिए हमें आश्चर्य नहीं कि पाँच सितारे होटल में यदि युवक-युवतियों का ऐसा मुक्त-मिलन देख वे भौंचक्के रह गये हों। हमने पिछले २५-३० वर्षों अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य सभ्यता के बाह्य रूप (शायद उसके विद्रूप) को अपनाने में कितनी प्रगति और उसके क्या परिणाम हुए हैं, यह संस्कृति और समाज विज्ञान के किसी प्रतिभाशाली शोध-छात्र के लिए का अच्छा विषय होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक लिपि

श्री मोहनदास करमचंद गांधी

यदि हमको अपना यह दावा मज़बूत बनाना हो कि हम एक-राष्ट्र हैं तो हमें बहुतेरी बातें एक-सी रखना पड़ेंगी। भिन्न भिन्न धर्म-मतों और पन्थों के रहते हुए भी हमारे यहाँ संस्कृति की एकता तो है। हमारी त्रुटियाँ भी एक-सी हैं। मैं यह दिखलाने की कोशिश कर ही रहा हूँ कि पहनाव के लिए एक तरह की वस्त्र-सामग्री केवल इष्ट ही नहीं, आवश्यक भी है। हमें एक-भाषा की भी ज़रूरत है—देशी भाषाओं की जगह पर नहीं, बल्कि उनके अलावा। और आम तौर पर यह बात मान ली गई है कि वह माध्यम हिन्दुस्तानी ही होना चाहिए, जो कि हिन्दी और उर्दू के मिलाप का फल हो और जिसमें न तो भारी भारी संस्कृत के शब्द हों और न अरबी या फ़ारसी के। अब हमारे रास्ते में सबसे बड़ी बाधा है हमारी देशी-भाषाओं की अनेक लिपियाँ। यदि हम एक-लिपि को अपना सकें तो हम अपने एक-भाषा-सम्बन्धी वर्तमान स्वप्न को सच बनाने के रास्ते की एक भारी रुकावट दूर कर देंगे।

लिपियों की बहुतायत एक नहीं अनेक तरह से बाधक है। वह ज्ञान-प्राप्ति के रास्ते में एक ज़बरदस्त विघ्न है। आर्य-भाषाओं में इतनी समानता है कि यदि हमें इनकी विविध लिपियों के सीखने में बहुतेरा समय नष्ट न करना पड़े तो हम कितनी ही भाषाओं को बिना अधिक कठिनाई के जान सकें। जैसे— यदि किसी मनुष्य को थोड़ा भी संस्कृत का ज्ञान हो तो उसे कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अनुपम रचनाओं का स्वाद लेने में कोई कठिनाई न होगी, यदि वे देवनागरी लिपि में प्रकाशित हों। परन्तु बँगला-लिपि तो मानो अ-बङ्गालियों को एक नोटिस ही है—'मुझे न छुओ'। इसी तरह यदि बङ्गाली देवनागरी-लिपि को जानते हों तो वे तुलसीदास की अद्भुत सुन्दरता और आध्यात्मिकता का तथा दूसरे कितने ही हिन्दी-लेखकों की कृतियों का रसास्वाद कर सकते हैं। जब कि मैं १९०५ में भारतवर्ष को लौटा तब, मैं समझता हूँ, कलकत्ते की किसी एक समिति से मेरा पत्र-व्यवहार हुआ था जो कि एक-लिपिविस्तार के लिए प्रयत्न कर रही थी। मुझे इस संस्था के काम-काज का हाल मालूम नहीं है; पर यदि कुछ उत्साही लगनेवाले कार्यकर्ता धार लें तो इस दिशा में बहुत पक्का और सार-रूप काम हो सकता है। हाँ, इस कार्य की मर्यादायें ज़रूर हैं और वे स्पष्ट हैं। सारे हिन्दुस्तान के लिए एक-लिपि का होना एक दूरवर्ती आदर्श है। परन्तु उन सब लोगों के लिए जो कि संस्कृत से उत्पन्न होनेवाली भाषायें, जिनमें दक्षिण की भाषायें भी शामिल हैं, बोलते हैं, एक-लिपि का होना व्यावहारिक आदर्श है, यदि हम सिर्फ़ अपनी प्रान्तीयता को दूर कर दें। उदाहरण के लिए एक गुजराती के लिए गुजराती-लिपि पर चिपके रहना कोई खास गुण नहीं है। प्रान्त-भक्ति अच्छी चीज़ है जब कि वह देश-भक्ति की बड़ी धारा को सहायक होती हो। इसी तरह देश-भक्ति भी उसी हद तक अच्छी चीज़ है जिस हद तक वह बड़ी धारा विश्व-भक्ति को सहायक होती हो। वह प्रान्त-भक्ति जो कहती है कि भारतवर्ष अपने घर गया, हमारे लिए गुजरात ही सब कुछ है, बुरी चीज़ है। गुजरात का नाम यहाँ मैंने इसलिए दिया है कि एक तो वह इस बात में अधबीच का ठिकाना है, और दूसरे मैं ख़ुद एक गुजराती हूँ। गुजरात में तो थोड़े-बहुत भाग्य से उन लोगों ने जिन्होंने कि प्रारम्भिक शिक्षा के सिद्धान्तों को स्थिर किया है, देवनागरी को अनिवार्य करना तय किया है। इसलिए वहाँ हर एक गुजराती लड़का या लड़की, जिसने किसी मदरसे में तालीम पाई है, देवनागरी और गुजराती दोनों लिपियों को जानती है। यदि उन्होंने सिर्फ़ देवनागरी लिपि ही तय की होती तो और भी अच्छा होता। हाँ, पुरातत्व के प्रेमियों को तो अवश्य पुराने ग्रन्थों और लेखों को पढ़ने के लिए गुजराती लिपि पढ़नी होगी। परन्तु गुजराती लड़कों की शक्ति दूसरे उपयोगी श्रम के लिए बच रहती, यदि उन्हें दो के बजाय एक ही लिपि पढ़नी होती। जिस समिति ने महाराष्ट्र में शिक्षा-योजना तैयार की वह और भी अधिक विचारवान् थी। उसने सिर्फ़ देवनागरी लिपि को ही क़ायम रक्खा। फल यह हुआ है कि एक महाराष्ट्रीय तुलसीदास के ग्रन्थों को उतने ही अच्छे प्रकार कम से कम पढ़ ज़रूर सकता है जितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि तुकाराम के ग्रन्थों को, और गुजराती और हिन्दुस्तानी भी उतने ही अच्छी तरह तुकाराम के ग्रन्थों को पढ़ सकते हैं।

परन्तु बङ्गाल में इसके विपरीत निर्णय हुआ, जिसको हम सब लोग जानते हैं और जिसे कि बहुतेरे शोचनीय मानते हैं। भारत की सबसे समृद्ध भाषा के जौहर तक पहुँचना मानो जान-बूझ कर अत्यन्त कठिन बना दिया गया है। और इस बात के लिए कि देवनागरी ही सर्वसामान्य लिपि हो, मैं समझता हूँ, किसी प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता न होगी; क्योंकि यही तो एक ऐसी लिपि है जिसे भारत के अधिकांश भाग के लोग जानते हैं उसका प्रचार ही उसके पक्ष में यह फ़ैसला देता है।

ये विचार मेरे मन में इसलिए उत्पन्न हो रहे हैं कि अभी जब मैं कटक गया था, एक अमली सवाल हल करने के लिए मेरे सामने पेश किया गया था। वहाँ एक ऐसी जाति है जो बिहार के हिन्दी-भाषी और उड़ीसा के उड़िया-भाषी लोगों के बीच में है। सवाल यह था कि उनके बच्चों की पढ़ाई का कैसा इन्तज़ाम करें? उन्हें उड़िया सिखाई जाय या हिन्दी? उन्हें अपनी ही मातृभाषा के द्वारा शिक्षा दी जाय और उनकी लिपि देवनागरी रहे या कोई नई ईजाद की जाय? उत्कल-वासियों का पहले पहल यह विचार हुआ कि उनको उड़िया लोगों में शामिल कर लिया जाय। बिहारी लोग उन्हें बिहारियों में मिलाना चाहेंगे और यदि उस जाति के बड़े-बूढ़ों से पूछा जाय तो शायद वे क़ुदरती तौर पर कहेंगे कि हमारी बोली उड़िया और बिहारी से कम नहीं है और उसकी लिपि भी ज़रूर बननी चाहिए और उनके लिए यदि कोई नई ईजाद की हुई लिपि न हो जैसा कि एक दो जगह वर्तमान युग में होता हुआ मैंने देखा है, तो इस बात में खींचा-तानी होगी कि लिपि देवनागरी रहे या उड़िया! अखिल भारत को विचार-पथ में रखने का प्रयत्न करते हुए मैंने उन मित्रों से कहा कि उनके लिए यह तो उचित है कि वे उड़िया-भाषी लोगों में उड़िया-भाषा को मज़बूत बनावें; पर इस जाति के लोगों को हिन्दी सिखानी चाहिए और क़ुदरती तौर पर लिपि भी देव-नागरी होनी चाहिए? जो वृत्ति हर प्रकार की बोली को स्थानीय और उन्नत रूप देना चाहती है—इतनी सङ्कुचित और दूसरे से फटक कर रहती है, वह राष्ट्रधर्म और विश्वधर्म के प्रतिकूल है। मेरी नाकिस राय में तमाम अनुन्नत और अलिखित बोलियाँ महान् हिन्दुस्तानी के प्रभाव में शामिल हो जानी चाहिए। यह बड़ी ऊँची क़ुर्बानी होगी, क़ुदकुशी न होगी। यदि सुसंस्कृत हिन्दुस्थान के लिए हमें एक-भाषा बनाना है तो हमें भाषाओं और लिपियों की वृद्धि और भिन्नता की इस बढ़ती को रोकना होगा। हमें ज़रूर एक-भाषा तैयार करनी होगी। उसकी शुरुआत क़ुदरती तौर पर लिपि से ही होगी और जब तक लिपि का मुसलिम प्रश्न हल न होगा, देश के हिन्दू लोगों में वह मर्य्यादित रहेगी। यदि मेरी चलती तो देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियों का, अन्य प्रान्तीय लिपियों के अलावा, हर प्रान्त में पढ़ना अनिवार्य कर देता और मैं भिन्न भिन्न देशी भाषाओं के मुख्य ग्रन्थों को देवनागरी लिपि में छपवाता और साथ ही उसका अक्षरशः अनुवाद भी हिन्दुस्तानी में छपाता। दुर्भाग्यवश अब तक थोड़े ही महासभा-वादियों ने देवनागरी लिपि सीखने की और उससे भी थोड़ों ने दूसरी लिपि सीखने की तकलीफ़ गवारा की है।

प्रकाशक—बी० पी० श्रीवास्तव, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन प्रेस) इलाहाबाद
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध नवीनतम संस्करण

मघदूत : राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित : डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित

इस ललित काव्य का अनुवाद जिस मनोयोग से राजा लक्ष्मणसिंह ने किया उसी सामर्थ्य का कौशल डॉ० श्यामसुदरदास ने संपादन में दिखाया है। बड़े आकार-प्रकार की इस कलात्मक पुस्तक की साज-सज्जा विख्यात कलाकार असितकुमार हालदार के चित्रों से की गई है। संस्कृत-हिन्दी छंदों के साथ-साथ भाषा में अर्थ देकर व कठिन संस्कृत शब्दों के सरल रूप देकर ग्रंथ को अनुपम बनाया गया है। यह नवीन संस्करण अब पुनः उपलब्ध हो गया है। शीघ्र कला-काव्य-प्रेमी पाठक आर्डर भेजने की कृपा करें।

मूल्य १२·०० रुपये

कुमारसंभव : पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

कुमारसंभव महाकवि कालिदास की अमर रचनाओं में एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। यह पुस्तक उसका छायानुवाद है। माता पार्वती के जन्म से लेकर महादेव शिव के साथ वन में विहार करने तक की सभी मनोरम कथायें सरल भाषा में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे महारथी विद्वान् लेखक ने दी हैं। यह कथा और उसकी भाषा दोनों ही ललित हैं। पढ़ने में उपन्यास का आनन्द मिलता है।

नवीन सजधज के साथ मुद्रित संस्करण का मूल्य ५·०० रुपये

पुरातत्त्व निबंधावली : श्री राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् राहुल जी द्वारा प्रणीत ये अप्राप्य लेख जगह-जगह से इकट्ठा करके पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये गये हैं। विषय की उपयोगिता पर पुरातत्व के विद्यार्थियों से हमें कुछ कहना नहीं। अब तक हमारे देश में पुरातत्त्व पर क्या हुआ है और क्या आवश्यक है इस पर विद्वान् लेखक ने भली भाँति प्रकाश डाला है। यथास्थान में कलात्मक चित्र खुदाई में कैसे मिले, उनका परिचय देते हुए इन दुर्लभ चित्रों को भी छापा गया है।

बड़े आकार में पुनः मुद्रित संस्करण का मूल्य १४·०० रुपये

अपभ्रंश पाठमाला : श्री नरोत्तमदास स्वामी एम० ए० विशारद

अपभ्रंश भाषा का साहित्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। और भाषा विज्ञान की दृष्टि से तो उसका गौरव अद्वितीय है। साहित्यशास्त्री जानते हैं कि आर्यवंशीय भाषाओं की जननी अपभ्रंश ही हैं। प्रथम भाग में मूल संकलन है, दूसरे भाग में मूल पाठों का शब्दार्थ, भावार्थ आदि दिया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन से पाठकों की संगृहीत अंशों में पर्याप्त गति हो सकेगी और अपभ्रंश के साहित्य का रसास्वाद साधारण कोष और व्याकरण की सहायता से, वे स्वतः ही कर सकेंगे। परीक्षार्थियों के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। दूसरा भाग अभी मुद्रणाधीन है—सम्भवतः शीघ्र ही पुस्तकाकार प्रकाशित हो जायगा।

प्रथम भाग का मूल्य ७·०० रुपये : द्वितीय भाग का मूल्य ९·०० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक डिप्टी की डायरी

पृष्ठ-संख्या १६८ लेखक : निशीथकुमार राय मूल्य १२.५०

हिन्दी की इस अनोखी पुस्तक के बारे में कुछ सम्मतियाँ

माननीय विचारपति श्री महेशनारायण शुक्ल

"Diary writing is a well recognised literary form, it is at least as old as Samuel Pepys but few house displayed real excellence in this genre, particularly in Hindi.

Shree Nishith Kumar Roy, deserves to be congratulated on the remarkable success he has achieved in his "Diary of a Deputy" which is a landmark in the art of diary writing. When a Deputy Collector turns a lawyer he packs into his life a wealth of experience not vouchsafed to a person spending his life-time in the pursuit of a single avocation. This is the secret of the irresitable charm, the deeply absorbing quality, the surpassing human interest of these models of brevity strung together like pearls on a necklace.....the author has written the book in fluent, virile, idiomatic Hindi.

The author has a knack of selecting the most captivating captions for his pieces and enriching the same by his subtle irony and pleasant humour. His description of the performance of courtesans as "cultural activity extending far into the night" is a superb specimen of his incisive wit and buoyant humour. To a narrative of the sordid facts of actual life the writer has imparted the fascinating beauty of fiction and that is the highest measure of his success as a diary-writer."....

श्री श्यामनाथ कक्कड़, एडवोकेट जनरल, हाईकोर्ट, इलाहाबाद

"....यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पुस्तक का आरम्भ करने के पश्चात् बिना समाप्त किये छोड़ना बड़ा कठिन है। सत्य भी इतना मनोरंजक होता है यह डिप्टी की डायरी पढ़कर ही विश्वास होता है....इस डायरी के माध्यम से उन्होंने आफिसर्स वर्ग का बड़ा सही चरित्र-चित्रण किया है। मैं आशा करता हूँ जो कोई इस पुस्तक को पढ़ेगा उसको भी इतना ही रस और आनन्द मिलेगा जितना मुझे मिला।"....

श्री प्रेमशंकर गुप्त, गवर्नमेन्ट एडवोकेट, हाईकोर्ट, इलाहाबाद

बन्धु निशीथ राय की 'एक डिप्टी की डायरी' ने १५-२० वर्ष पूर्व की डिप्टियों की इजलास में वकालत करते समय की वे स्मृतियाँ सहज जागृत कर दीं जो मस्तिष्क के किसी कोने में सुप्तावस्था में पड़ी थीं। यह उनकी लेखनी का चमत्कार है कि उनकी डायरी पढ़कर पाठक पाँचवीं दशाब्दी के पूर्वार्द्ध के डिप्टी कलक्टरों के संसर्ग एवं सम्पर्क में पहुँच जाता है, और वैसे ही जाने-पहिचाने कितने मुखड़े उसकी आँखों के सामने नाचने लगते हैं। हिन्दी में अपने ढग की यह अनूठी पुस्तक है.....इस चित्रण में इस कारण और अधिक निखार आ गया है क्योंकि यह पात्र काल्पनिक न होकर लेखक के व्यक्तिगत सम्पर्क में आये हुये व्यक्ति हैं जिन्हें बिना संजोये-सँवारे लेखक ने ज्यों का त्यों पाठकों के सामने रख दिया है। वास्तव में उन भ्रमित व्यक्तियों को इस पुस्तक को पढ़कर मार्ग दर्शन लेना चाहिये जो अहमग्रस्त होकर जनसेवा से भटक गये हैं और जनसाधारण की दृष्टि में उपहास का पात्र बन रहे हैं। हिन्दी पाठक श्री राय के इस स्तुत्य प्रयास के लिए कृतज्ञ है।"....

श्री जे० एस० टिंगल, सुपरिण्टेण्डेण्ट आफ पुलिस

.....The book is so interesting that one cannot lay it aside without reading it from cover to cover. Not many books have yet been written which give any inkling into the personal and social life of officers.....

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

प्राचीनतम हिन्दी मासि
(संस्थापित सन्
27/6/75
मई १९७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक डिप्टी की डायरी

पृष्ठ-संख्या १६८ | लेखक : निशीथकुमार राय | मूल्य १२)

हिन्दी की इस अनोखी पुस्तक के बारे में कुछ सम्मतियाँ

माननीय विचारपति श्री महेशनारायण शुक्ल

"Diary writing is a well recognised literary form, it is at least as old as Sam... Pepys but few house displayed real excellence in this genre, particularly in Hindi.

Shree Nishith Kumar Roy, deserves to be congratulated on the remarka... success he has achieved in his "Diary of a Deputy" which is a landmark in the art of di... writing. When a Deputy Collector turns a lawyer he packs into his life a wealth of experie... not vouchsafed to a person spending his life-time in the pursuit of a single avocation. Thi... the secret of the irresitable charm, the deeply absorbing quality, the surpassing hum... interest of these models of brevity strung together like pearls on a necklace.....the author ... written the book in fluent, virile, idiomatic Hindi.

The author has a knack of selecting the most captivating captions for his pie... and enriching the same by his subtle irony and pleasant humour. His description of the p... formance of courtesans as "cultural activity extending far into the night" is a superb specim... of his incisive wit and buoyant humour. To a narrative of the sordid facts of actual lif... writer has imparted the fascinating beauty of fiction and that is the highest measure o... success as a diary-writer."....

श्री श्यामनाथ कक्कड़, एडवोकेट जनरल, हाईकोर्ट, इलाहाबाद

"....यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पुस्तक का आरम्भ करने के पश्चात् बिना समाप्त किये छोड़ना... कठिन है। सत्य भी इतना मनोरंजक होता है यह डिप्टी की डायरी पढ़कर ही विश्वास होता है....."इस डायर... माध्यम से उन्होंने आफिसर्स वर्ग का बड़ा सही चरित्र-चित्रण किया है। मैं आशा करता हूँ जो कोई इस पुस्तक... पढ़ेगा उसको भी इतना ही रस और आनन्द मिलेगा जितना मुझे मिला।".....

श्री प्रेमशंकर गुप्त, गवर्नमेन्ट एडवोकेट, हाईकोर्ट, इलाहाबाद

बन्धु निशीथ राय की 'एक डिप्टी की डायरी' ने १५-२० वर्ष पूर्व की डिप्टियों की इजलास में वकालत... समय की वे स्मृतियाँ सहज जागृत कर दीं जो मस्तिष्क के किसी कोने में सुप्तावस्था में पड़ी थीं। यह उनकी लेख... चमत्कार है कि उनकी डायरी पढ़कर पाठक पाँचवीं दशाब्दी के पूर्वार्द्ध के डिप्टी कलक्टरों के संसर्ग एवं सम्पर्क में... जाता है, और वैसे ही जाने-पहिचाने कितने मुखड़े उसकी आँखों के सामने नाचने लगते हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह... पुस्तक है.....इस चित्रण में इस कारण और अधिक निखार आ गया है क्योंकि यह पात्र काल्पनिक न होकर लेख... व्यक्तिगत सम्पर्क में आये हुये व्यक्ति हैं जिन्हें बिना सँजोये-सँवारे लेखक ने ज्यों का त्यों पाठकों के सामने रख दि... वास्तव में उन भ्रमित व्यक्तियों को इस पुस्तक को पढ़कर मार्ग दर्शन लेना चाहिये जो अहमग्रस्त होकर जनसे... भटक गये हैं और जनसाधारण की दृष्टि में उपहास का पात्र बन रहे हैं। हिन्दी पाठक श्री राय के इस स्तुत्य प्र... लिए कृतज्ञ है।".....

श्री जे० एस० टिंगल, सुपरिण्टेण्डेण्ट आफ पुलिस

".....The book is so interesting that one cannot lay it aside without reading it... cover to cover. Not many books have yet been written which give any inkling in... personal and social life of officers.....

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद्

हिन्दी प्रकाशन

प्रकाशन का नाम	मूल्य रु० पै०	डाक व्यय रु० पै०
कपास	12·00	3·00
मुर्गी पालन	10·00	3·00
भेड़ पालन	7·50	2·50
भारत के किसान	4·50	3·00
फार्म प्रबन्ध—नयी दिशाएँ	3·30	1·50
भारतीय कृषि ज्ञान कोष	6·25	4·00
भारत में कृषि और पशुपालन	5·50	4·00
उर्वरक और खाद	7·50	4·00
पशुपालन विज्ञान भाग–1	3·50	4·00
पशुपालन विज्ञान भाग–2	3·50	4·00
सुहावने उद्यान	19·50	5·00
जैविक खाद	2·70	1·50
संकर मक्का	1·40	1·50
कृषि चयनिका	2·00	1·50
मिलवाँ खेती	1·25	1·50
आलू के विषाणु रोग	0·90	1·50
भारत में नींबू वर्गीय पेड़ों का उल्टा सूखा रोग	3·00	1·50
भारत की मिट्टियाँ	0·50	1·50
भारत में डेयरी उद्योग	0·90	1·50
दलहन अनुसंधान—नयी दिशाएँ	5·55	1·50
पशुओं में क्षयरोग का निदान	0·50	1·50
पशुओं का आहार और उनका दूध काल	1·50	1·50
पशुओं की परजीवी कीट व्याधियाँ	1·00	1·50
मुर्गियों का आहार	0·40	1·50
अनाज के सुरक्षित भण्डार के लिए पूसा कोठी	0·50	1·50

प्रकाशन मँगाने का पता :—

व्यवसाय प्रबन्धक

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्

कृषि भवन, नई दिल्ली–110001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी

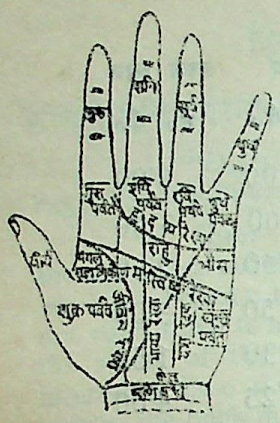

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—सी० वाई० चिन्तामणि भू० पू० मिनिस्टर क्या कहते हैं :—

प्रोफेसर पी० एन० सिंह प्रयाग के अद्भुत ज्योतिषी, हस्तरेखा-शास्त्री तथा प्रसिद्ध तांत्रिक हैं। मेरा उनसे पां वर्ष से अधिक का परिचय है। वे अत्यन्त सभ्य महानुभाव हैं। उनका आचरण बहुत उत्तम एवं विश्वसनीय उन्होंने मेरे जीवन में घटनेवाली अनेक घटनाओं के सम्बन्ध में मुझसे भुक्ति कर दिया था और उनकी भविष्य वाणियाँ उल्लेखनीय रूप से सत्य सिद्ध हुईं। उनकी तांत्रिक शक्ति की परीक्षा वांछनीय है। मैंने उनकी गुप्त ए संचित एकाग्र-शक्तियों का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन कई बातों में किया है और उन सभी में उन्हें आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है। मेरी आन्तरिक कामना है कि उन्हें हर प्रकार से सफलता होती रहे।

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' से पुरस्कृत

गुप्त साम्राज्य का इतिहास

लेखक

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सुविख्यात लेखक एवं प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान्

डा० वासुदेवशरण उपाध्याय

गुप्त सम्राटों का काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। गुप्त काल में सारे वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृ अपने विकास के उच्च शिखर पर थी। धन्य था वह युग जब शिक्षा, साहित्य ही नहीं ललित कला को भी उन महा गुप्त सम्राटों ने विकसित कर अपनी आदर्श शासन-प्रणाली को इतिहास की एक अमर निधि बना दिया। विद्वान् लेख की इस रचना के समकक्ष हिन्दी ही नहीं अँगरेजी में भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। सभी इतिहासकारों ने इस ग्र की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। अनेक विश्वविद्यालयों की एम० ए० कक्षाओं की परीक्षाओं के लिए यह पाठ्य पुस्त बन गयी है। स्नातकों ने ही नहीं जनता ने भी इस ग्रन्थ का स्वागत किया है। ग्रन्थ का तीसरा संस्करण दो भागों छप कर तैयार है।

प्रथम भाग	१०·०० रुपये
द्वितीय भाग	१२·५० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध नवीनतम संस्करण

मेघदूत : राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित : डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित

इस ललित काव्य का अनुवाद जिस मनोयोग से राजा लक्ष्मणसिंह ने किया उसी सामर्थ्य का कौशल डॉ० श्यामसुंदरदास ने संपादन में दिखाया है। बड़े आकार-प्रकार की इस कलात्मक पुस्तक की साज-सज्जा विख्यात कलाकार असितकुमार हालदार के चित्रों से की गई है। संस्कृत-हिन्दी छंदों के साथ-साथ भाषा में अर्थ देकर व कठिन संस्कृत शब्दों के सरल रूप देकर ग्रंथ को अनुपम बनाया गया है। यह नवीन संस्करण अब पुनः उपलब्ध हो गया है। शीघ्र कला-काव्य-प्रेमी पाठक आर्डर भेजने की कृपा करें।

मूल्य १२·०० रुपये

कुमारसंभव : पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

कुमारसंभव महाकवि कालिदास की अमर रचनाओं में एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। यह पुस्तक उसका छायानुवाद है। माता पार्वती के जन्म से लेकर महादेव शिव के साथ वन में विहार करने तक की सभी मनोरम कथायें सरल भाषा में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे महारथी विद्वान् लेखक ने दी हैं। यह कथा और उसकी भाषा दोनों ही ललित हैं। पढ़ने में उपन्यास का आनन्द मिलता है।

नवीन सजधज के साथ मुद्रित संस्करण का मूल्य ५·०० रुपये

पुरातत्त्व निबंधावली : श्री राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् राहुल जी द्वारा प्रणीत ये अप्राप्य लेख जगह-जगह से इकट्ठा करके पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये गये हैं। विषय की उपयोगिता पर पुरातत्त्व के विद्यार्थियों से हमें कुछ कहना नहीं। अब तक हमारे देश में पुरातत्त्व पर क्या हुआ है और क्या आवश्यकता है इस पर विद्वान् लेखक ने भली भाँति प्रकाश डाला है। यथास्थान में कलात्मक चित्र खुदाई में से मिले, उनका परिचय देते हुए इन दुर्लभ चित्रों को भी छापा गया है।

बड़े आकार में पुनः मुद्रित संस्करण का मूल्य १४·०० रुपये

अपभ्रंश पाठमाला : श्री नरोत्तमदास स्वामी एम० ए० विशारद

अपभ्रंश भाषा का साहित्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। और भाषा विज्ञान की दृष्टि से तो उसका गौरव अद्वितीय है। साहित्यशास्त्री जानते हैं कि आर्यवंशीय भाषाओं की जननी अपभ्रंश ही है। प्रथम भाग में मूल संकलन है, दूसरे भाग में मूल पाठों का शब्दार्थ, भावार्थ आदि दिया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन से पाठकों की संगृहीत अंशों में पर्याप्त गति हो सकेगी और अपभ्रंश के साहित्य का रसास्वाद साधारण कोष और व्याकरण की सहायता से, वे स्वतः ही कर सकेंगे। परीक्षार्थियों के लिए यह दोनों पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगी।

प्रथम भाग का मूल्य ७·०० रुपये : **द्वितीय भाग का मूल्य ९·०० रुपये**

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	२९३
२—यज्ञ—श्री रामप्रसाद पाण्डेय	३०१
३—देश जिन्हें भूल गया—जतीन्द्रनाथ मुखर्जी—श्री शंकरसहाय सक्सेना	३०३
४—सतसैया के दोहरे—श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह	३०८
५—स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी आलोचना : उपलब्धियाँ और अभाव (२)—डा० नारायणप्रसाद वाजपेयी 'करुणेश'	३१०
६—भारत की भाषा-समस्या—श्री ओमप्रकाश भाटिया 'अराज'	३१५
७—अपरिग्रही महर्षि लोमश—श्री श्रीराम दुबे	३२०
८—रंग कवि और उनका 'रसरंग'—श्री उदयशंकर दुबे	३२१
९—वेद पर एक परिसंवाद—प्रो० चन्द्रप्रकाश आर्य, एम० ए०	३२४
१०—दक्खिनी हिन्दी में प्राप्त ब्रजभाषा काव्य—डा० परमानन्द पांचाल	३३१
११—जनता का वाहन—श्री अरविन्द मालवीय	३३३
१२—भारत के प्राचीन आयुध—डॉ० रामनारायण सिंह 'मधुर'	३३
१३—अलबरूनी तथा संस्कृत (१)—अनु० श्री वाहिद काजमी	३३
१४—अविस्मरणीय—राहुलजी—श्री भँवरलाल नाहटा	३४
१५—एक विश्व प्रति-पदार्थ का भी—श्री श्याममनोहर व्यास	३४
१६—सुकेशी—प्रो० रामस्वरूप खरे एम० ए०, बी० एड्०, साहित्यरत्न	३४
१७—कुट्टी—अनु० श्री एस० कृष्ण बाबू	३५
१८—नवीन प्रकाशन	३५
१९—मनोरंजक संस्मरण	३५
२०—१९२५ की सरस्वती—समाज—श्री कृष्णगोपाल श्रीवास्तव	३५

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख का अधिकार सुरक्षित हैं।

सरस्वती के लेखकों के प्रति

१—सरस्वती में भारत की चालू या वर्तमान राजनीति पर छोड़कर सभी विषयों के लेख प्रकाशित होते हैं। व्यक्ति आक्षेपोंवाले लेख भी नहीं छापे जाते।

२—सरस्वती में वे ही लेख छापे जाते हैं जो अन्यत्र न छपे हों। जो लेख अन्यत्र छापने को भेजे गये हों उन्हें 'सरस्वती' के लिए न भेजा जाय।

३—लेखकों को चाहिए कि लेखों की प्रतिलिपि अपने पास रख लें। डाक में या कार्यालय में उनके खो जाने के लिए 'सरस्वती' जिम्मेवार न होगी यद्यपि उन्हें सुरक्षित रखने का पूरा प्रयत्न किया जाता है।

४—स्थानाभाव के कारण स्वीकृत लेख भी कभी-कभी विलम्ब से छपते हैं।

५—सामान्यतः लेख दो-ढाई हज़ार शब्दों से अधिक का न होना चाहिए। बड़े लेख, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने पर, कम छापे जाते हैं।

६—अनुवादित लेखों को भेजने के पहले (यदि लेखक को मरे ५० वर्ष से अधिक नहीं हो गये) मूल लेखक या उ वारिस से अनुवाद करने की अनुमति लेना आवश्यक है। इन लेखों के अन्त में अलग एक कोष्ठक में अनुव यह प्रमाणित करने की कृपा करें कि यह अनुमति प्राप्त कर ली गयी है।

७—लेख कागज की एक ओर स्पष्ट और बड़े या मझोले अक्षरों में लिखा या टंकित हो। संस्कृत या अन्य भाषाओं उद्धरण बहुत स्पष्ट और शुद्ध होने चाहिए तथा उनके नीचे कोष्ठक में उनका अनुवाद भी देना आवश्यक है।

८—लेख के अन्त में लेखक कृपया अपना पूरा पता अवश्य लिख दें।

९—'सरस्वती' व्यावसायिक पत्रिका नहीं है और वह साहित्य तथा हिन्दी प्रेमी लेखकों के सहयोग से घाटे पर रही है। अतएव उसके लिए लेखकों को पारिश्रमिक देना सामान्यतः संभव नहीं है। किन्तु प्रकाशित लेख लेखकों को ग्राहक समझकर उन्हें एक वर्ष वह निःशुल्क भेजी जायगी।

१०—यदि लेखक लेखों की प्राप्ति-स्वीकृति चाहते हों तो अपना पता जवाबी पोस्ट कार्ड पर लिखकर लेख के संलग्न कर दें।

११—लेख, कहानी, कविता, संस्मरण आदि तथा सम्पादक से संबंधित पत्र "श्रीनारायण चतुर्वेदी, सम्पादक, 'सरस्व ५३ खुर्शेद बाग लखनऊ-४" तथा समालोचना की पुस्तकें और प्रबंध या ग्राहक संबंधी पत्रादि व्यवस्थापक 'सरस्व इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद के पते पर भेजें। समालोचना की दो प्र भेजना आवश्यक है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

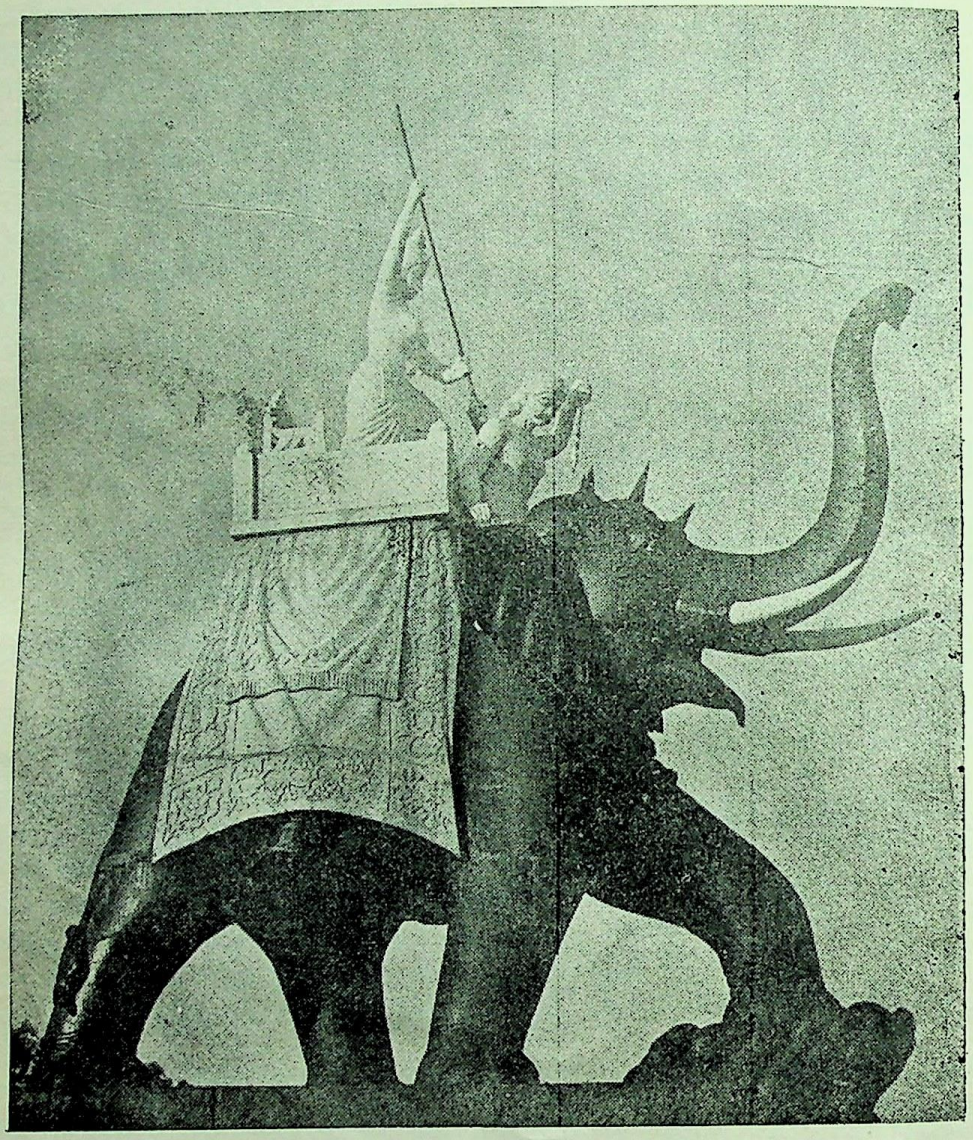

गोंडवाने की वीरांगना रानी दुर्गावती
की गजारूढ़ प्रतिमा जो जबलपुर नगर निगम ने स्थापित की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

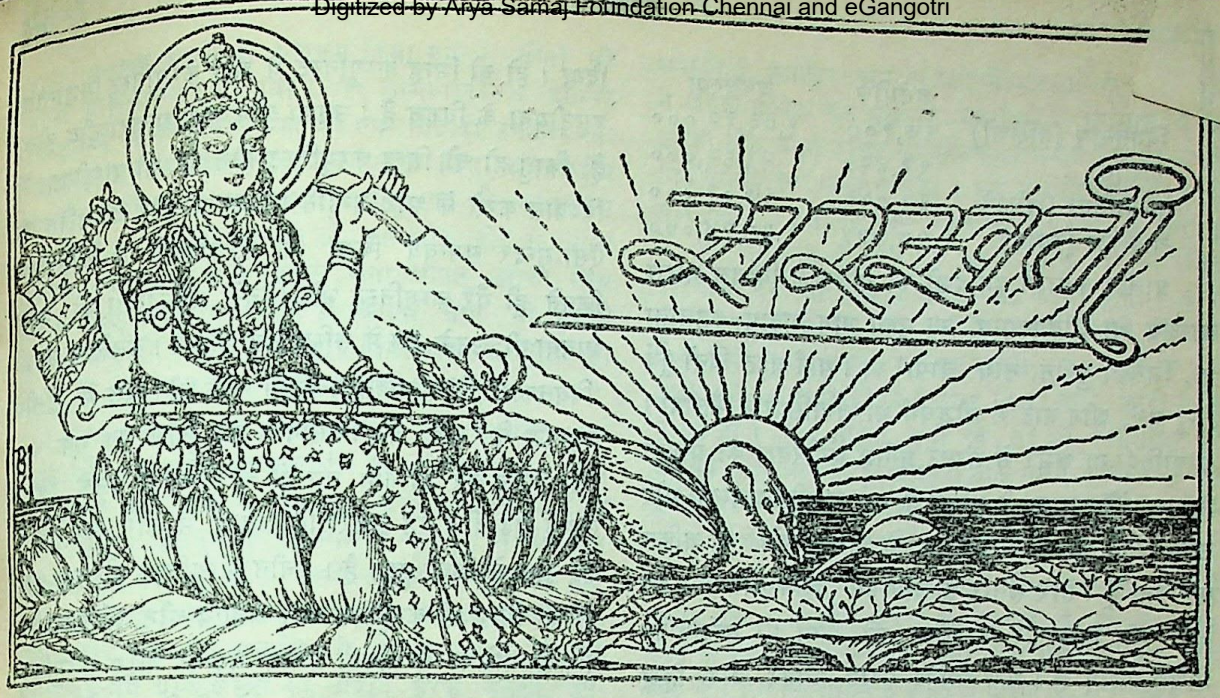

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

वर्ष ७६
पूर्ण संख्या ९०५

इलाहाबाद : मई १९७५ : वैशाख २०३२ वि०

खण्ड १
संख्या ५

सम्पादकीय

वियतनाम के युद्ध का अन्त और दक्षिण-पूर्व एशिया में शान्ति—यों तो वियतनाम में प्रायः तीस वर्षों से युद्ध चल रहा था, किन्तु इधर कई वर्षों से उसने बड़ा भयंकर रूप धारण कर लिया था।

दक्षिण-पूर्व एशिया एक प्रायद्वीप है जिसमें चार राज्य हैं : वियतनाम, लाओस, कम्बोडिया और थाईलैण्ड। वियतनाम और लाओस उत्तर में हैं और उनकी सीमाएँ चीन से मिली हैं। वियतनाम के पश्चिम में लाओस और कम्बोडिया हैं और पूर्व की ओर समुद्र है। लाओस की सीमाएँ चीन, वर्मा, वियतनाम और कम्बोडिया तथा थाईलैण्ड से मिली हैं। यह समुद्र से दूर है। कम्बोडिया के तीन ओर (पूर्व से क्रमशः) वियतनाम, लाओस और थाईलैण्ड हैं। दक्षिण में समुद्र है। थाईलैण्ड उत्तर और पश्चिम में बर्मा, उत्तर में लाओस, पूर्व में कम्बोडिया तथा दक्षिण में मलेशिया और समुद्र से घिरा है। इसके अधिकार में 'क्रा' का प्रसिद्ध स्थल डमरूमध्य है जो अत्यन्त सैनिक महत्त्व का है। यदि उसमें पनामा की तरह नहर बना दी जाय (जो इस युग में कोई कठिन काम नहीं है) तो बंगाल की खाड़ी तथा प्रशान्त महासागर की थाईलैण्ड और टानकिन की खाड़ियाँ तथा चीन समुद्र मिल जायँ। कलकत्ते या मद्रास से अभी जो सिंगापुर का चक्कर लगाकर जाना पड़ता है, वह बच जाय और जिस शक्ति या राज्य के पास वह नहर हो वह बंगाल की खाड़ी तथा हिन्द महासागर पर भी सरलता से घुसपैठ कर सकता है।

ये देश जनसंख्या की दृष्टि से छोटे हैं। इनका क्षेत्रफल और जनसंख्या इस प्रकार है :

	वर्गमील	जनसंख्या
वियतनाम (उत्तरी)	६१,२९३	२,११,५०,०००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	वर्गमील	जनसंख्या
वियतनाम (दक्षिणी)	६७,१०८	१,८३,३२,०००
लाओस	९१,४२८	२९,६२,०००
कम्बोडिया (खमेर)	६९,८९८	६७,०१,०००
थाईलैण्ड (स्याम)	१,९८,४५५	३,५८,१४,०००

प्राचीन काल में इन देशों का अधिकांश विशाल भारत का अंग था। वियतनाम का मुख्य भाग अनाम कहलाता था, जिसका पुराना नाम 'चम्पा' था। यहाँ बहुत दिनों पूर्व हिन्दू धर्म, और बाद में बौद्धधर्म भारतवासियों ने फैलाया। कम्बोडिया या खमेर में संसार प्रसिद्ध अंगोरवाट का अत्यन्त विशाल मंदिर आज भी मौजूद है, जो अपनी विशालता और उच्च श्रेणी की स्थापत्य कला के कारण दर्शकों को चकित कर देता है। सारे संसार से लोग इसे देखने आते हैं। इन देशों की, विशेषकर थाईलैण्ड की भाषा पर संस्कृत का विशेष प्रभाव है। यहाँ असंख्य पुराने मन्दिर और हिन्दू राजाओं के शिलालेख जहाँ-तहाँ मिलते हैं। इन देशों का मुख्य धर्म बौद्धधर्म है। थाईलैण्ड और लाओस के अधिकांश निवासी 'थाई' वंश के, कम्बोडिया के खमेर वंश के और वियतनाम के अनाम वंश के हैं। वियतनाम पर कई बार चीन ने चढ़ाई की और बहुत से भाग पर अधिकार भी कर लिया था। अन्त में उसे निकाल दिया गया, किन्तु उसके कारण वहाँके बौद्धधर्म पर चीनी बौद्धधर्म की छाप है। फ्रांस के पादरी उन्नीसवीं शती में वहाँ गये और उन्होंने वहाँ रोमन कैथलिक धर्म फैलाना प्रारम्भ किया। जब वहाँके निवासियों ने उनका सक्रिय विरोध किया तब फ्रांस ने अपनी आधुनिक सेना भेजकर उस पर अधिकार कर लिया। किन्तु अनाम (वियतनाम), लाओस और कम्बोडिया के राजाओं के अधिकार हरण करके उनको उसी तरह बने रहने दिया जिस तरह भारत में अंग्रेजों ने नरेशों को बने रहने दिया था। द्वितीय महायुद्ध में जब फ्रांस के बहुत से भाग पर जर्मनी ने अधिकार कर लिया और जापान युद्ध में कूदा तब उसने फ्रांसीसियों को वहाँसे निकाल बाहर किया। किन्तु थाईलैण्ड में वहाँके शासकों ने दूरदर्शिता दिखायी। उन्होंने निरुपाय होने के कारण जापानियों से समझौता कर लिया। इस प्रकार उनके राज्य की स्थिति बनी रही। किन्तु इस बीच मास्को में प्रशिक्षण पाये हुए हो ची मिन्ह नामक एक नेता का उदय उत्तरी वियतनाम में हुआ। उन्होंने पहले फ्रांसीसियों के विरुद्ध और बाद में जापानियों के विरुद्ध छापामार युद्ध आरंभ कर दिया। हो ची मिन्ह कम्युनिस्ट थे और कम्युनिस्ट सिद्धान्ततः राष्ट्रीयता के विरुद्ध हैं। उनका दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय होता है, किन्तु हो ची मिन्ह कम्युनिस्ट होने पर भी राष्ट्रीयता में विश्वास करते थे और उन्होंने साम्यवाद और देशभक्ति का ऐसा सुन्दर समन्वय किया कि कम्युनिस्टों के अतिरिक्त कितने ही गैर कम्युनिस्ट भी, जिनमें राष्ट्रीयता की प्रबल भावना थी, उनके दल में सम्मिलित हो गये। इसलिए उनकी 'वियतकांग' सेना शक्तिशाली हो गयी और अंत में द्वितीय महायुद्ध के बाद जब वियतनाम पर फ्रांस का एक बार फिर अधिकार हो गया तब हो ची मिन्ह ने उनके विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी। वह उत्तरी वियतनाम में काम कर रहे थे जो चीन से मिला हुआ है। चीन कम्युनिस्ट हो गया था। हो ची मिन्ह भी कम्युनिस्ट थे। अतएव चीन, जो स्वभावतः दक्षिण एशिया में अपना प्रभाव बढ़ाना और कम्युनिज्म का प्रचार करना चाहता था, हो ची मिन्ह की भरपूर सैनिक सहायता करने लगा। अन्त में हो ची मिन्ह ने फ्रांसीसी सेना को १९५४ में पराजित कर दिया। दक्षिण में अनाम के राजा को फ्रांस ने शासन सौंप दिया था। यहाँके निवासी भी अधिकतर कम्युनिस्ट विरोधी थे। अतएव उत्तर वियतनाम (हो ची मिन्ह की सेना) और दक्षिण वियतनाम में युद्ध होने लगा। उत्तर वियतनाम के कम्युनिस्ट विरोधी निवासी भागकर दक्षिण में आने लगे। अभी तक फ्रांसीसी दक्षिण वियतनाम की सहायता कर रहे थे, पर हारने के बाद वह सहायता बंद हो गयी। उन दिनों अमरीका की विदेशी नीति यह थी कि कम्युनिज्म का विस्तार न होने दिया जाय। अतएव वह दक्षिण वियतनाम की सहायता करने लगा। उन्हीं दिनों रूस और अमरीका में ठनी हुई थी। हो ची मिन्ह तो मास्को में रहकर वहाँके कम्युनिस्ट नेताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर चुके थे। अतएव अमरीका ने जब दक्षिण वियतनाम की सहायता आरंभ की तब रूस ने उत्तरी वियतनाम की सहायता करनी आरंभ कर दी। १९६६ में रूस तथा सात अन्य कम्युनिस्ट देशों ने उत्तरी वियतनाम की सहायता करने का निश्चय किया और युद्ध भीषण हो गया। इस विभीषिका से बचाने के लिए पेरिस और जिनेवा में अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुए। उत्तर और दक्षिण वियतनाम अलग-अलग राज्य अस्थायी रूप से मान लिये गये और दोनों के एकीकरण के लिए एक विराष्ट्रीय आयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा मतदान कराने का निश्चय किया गया। दोनों की सीमा निश्चित कर दी गयी। पर कम्युनिस्टों ने दक्षिण वियतनाम में कम्युनिस्टों का जो एक विद्रोही संगठन बना दिया था उसको सैनिक सहायता देने के लिए अंतर्राष्ट्रीय निर्धारित सीमा ही का नहीं, लाओस का भी अतिक्रमण कर दिया। विद्रोही संगठन को रूस और चीन से प्राप्त सैनिक सामान ही नहीं मिलने लगा अपितु उसका साथ देने के लिए उत्तर वियतनाम ने अपनी सेना भी भेजनी आरंभ कर दी, और इस प्रकार वियतनाम के युद्ध का नया दौर आरंभ हुआ जो अब समाप्त हुआ है।

वास्तव में यह युद्ध अमरीका और रूस के बीच था। उत्तर और दक्षिणी वियतनामी तो निमित्त मात्र थे। विभीषिका और नाश में यह युद्ध अभूतपूर्व रहा। जिस प्रकार द्वितीय महायुद्ध के पूर्व स्पेन के गृह-युद्ध में विभिन्न शक्तियाँ कूद पड़ी थीं और उसमें उन्होंने अपने-अपने नव-निर्मित हथियारों का प्रयोग कर उनका परीक्षण किया था, उसी प्रकार रूस और अमरीका ने वियतनाम युद्ध में अपने अनेक नये-नये अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करके उनकी उपयोगिता और उनकी त्रुटियों का व्यावहारिक परीक्षण किया, जिसके आधार पर वे उनका सुधार कर सकेंगे। उत्तर वियतनामी और विद्रोही सैनिक दक्षिणी वियतनाम के उत्तरी भाग के विस्तृत और घने जंगलों में छिपे रहते थे, जिससे विमानों से उनका पता नहीं लगता था। इसलिए अमरीका ने ऐसे विषाक्त बम बनाये जिनके विस्फोट से ऐसे रासायनिक पदार्थ जंगलों में फैल जाते थे जो पेड़ों को नष्ट कर देते थे। इन बमों की अंधाधुंध वर्षा ने वियतनाम के जंगलों के हजारों वर्गमील क्षेत्र के पेड़ों को नष्ट कर दिया। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इन जंगलों के फिर से पनपने में कई पीढ़ियाँ लग जायँगी। रूस ने यहाँ अपने अनेक नये हथियारों—विशेषकर तरह-तरह के प्रक्षेप अस्त्रों (मिसाइल)—के प्रयोग कर उनका परीक्षण किया। अमरीका ने जिस पैमाने पर इस युद्ध में विमानों से बमबारी की उसने द्वितीय महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों द्वारा की गयी जर्मनी की बमबारी को भी मात कर दिया। रूसी मिसाइलों ने अमरीकी विमानों के गिराने में बड़ी सफलता प्राप्त की। अमरीका के कई हजार विमान नष्ट हुए। युद्ध के कारण उत्तरी और दक्षिणी वियतनाम की जो बरबादी हुई है, उसका ठीक-ठीक अनुमान लगाना भी अभी संभव नहीं है। एक-दो लाख अमरीकी सैनिक हताहत हुए। उत्तरी और दक्षिणी वियतनामों के हताहतों की संख्या का पता लगाना और भी कठिन है। कई लाख बच्चे अनाथ हो गये, जिनके भरण-पोषण की समस्या अत्यन्त जटिल है। अमरीकियों ने कई हजार अनाथ बच्चों को वहाँसे निकाल लिया है और वे उनके पुनर्वास की विषम समस्या को हल करने में लगे हैं। हजारों दक्षिण वियतनामी, जो कट्टर कम्यूनिस्ट विरोधी होने के कारण वहाँ रहने में खतरा समझते हैं, भागकर पास के देशों में चले गये हैं। अमरीका ने खरबों डालर इस युद्ध पर व्यय किये। अनुमान है कि उनका तीन अरब डालर का सैनिक सामान विजयी उत्तर वियतनामी सेना के हाथ लगा। युद्ध में विशेषकर युवक ही मारे गये हैं। इसलिए वहाँ स्त्रियों और पुरुषों के अनुपात में बहुत असंतुलन हो गया है। इसके नैतिक और सामाजिक परिणामों का नयी सरकार को सामना करना होगा। दोनों ही वियतनामों में घोर बम वर्षा से कारण कितने ही नागरिक (स्त्री, पुरुष, बच्चे) मरे या घायल हुए। गाँव के गाँव उजड़ गये। शायद ही कोई नगर हो जिसकी भारी क्षति न हुई हो। यदि शान्ति बनी रहे तो भी वियतनाम की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था ठीक करने में खरबों डालर की आवश्यकता होगी। राष्ट्रसंघ तथा अन्य देशों की सहायता के बिना यह काम नहीं हो सकता।

कम्बोडिया में भी कम्यूनिस्टों की जीत हुई। इनके प्रमुख नेता राजकुमार नरोत्तम सिहनख हैं जो वामपंथी होने के कारण दक्षिणपंथी सेना द्वारा अपदस्थ कर दिये गये थे। उन्होंने पीकिंग (चीन) में शरण ली तथा चीन की सहायता से वे अपनी सेना का संचालन करते रहे। उनकी सेना 'खमेर रूज' (लाल खमेर) कहलाती है। राजधानी नामपेन्ह पर अधिकार करने के बाद जो विरोधी नेता मिले उनको उसने गोली मार दी।

लाओस में दो सौतेले राजकुमारों की अनबन के कारण एक राजकुमार कम्युनिस्टों से मिल गया और चीन तथा उत्तरी वियतनाम की सहायता से उसने 'पाथेटलाओ' नामक संगठन बनाया। वियतनाम और कम्बोडिया में कम्युनिस्टों की विजय के बाद पाथेटलाओ का मनोबल बढ़ गया है और वह दिन दूर नहीं जब वहाँ भी लाल सितारे के झंडे का एकाधिकार हो जायगा।

थाईलैण्ड की सरकार अभी तक अमरीका के साथ थी। किन्तु अपने पड़ोसियों के कम्युनिस्ट हो जाने से उसकी नयी सरकार ने भी अमरीकी विरोधी रुख अपनाया है और शीघ्र ही वहाँसे अमरीकी सेना और सैनिक अड्डे हटा लेने की माँग की है। थाईलैण्ड से लाओस और कम्बोडिया के खमेरों से पुश्तैनी बैर है। इसलिए वह अपने यहाँ अमरीका को प्रश्रय देकर उन्हें आक्रमण करने का बहाना या अवसर नहीं देना चाहता। थाईलैण्ड के उत्तरी भाग में (जो लाओस से मिला है) कम्यूनिस्ट छापामारों के दल बन गये हैं। ऐसा समझा जाता है कि इनके बनाने और इन्हें प्रोत्साहन और सहायता देने में लाओस, उत्तरी वियतनाम तथा चीन का यदि प्रत्यक्ष हाथ नहीं, तो शह अवश्य है।

इस प्रकार बर्मा के पूर्व में स्थित हिन्द चीन प्रायद्वीप पर कम्युनिस्टों का अधिकार हो गया है। बर्मा अब उत्तर में चीन से और पूर्व में इन कम्युनिस्ट राज्यों से घिर गया है। वहाँ भी वर्षों से भूमिगत या जंगलों में छिपे कम्युनिस्ट सक्रिय हैं। अतएव हमें आश्चर्य न होगा यदि बर्मा में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल सितारे की गतिविधियाँ निकट भविष्य में तेज हो जायँ और अंत में वह भी कम्यूनिस्ट हो जाय।

इस युद्ध में अमरीका को नीचा देखना पड़ा। इसका एक बड़ा कारण यह था कि अमरीकी संसद (कांग्रेस) राष्ट्रपति और सेना के नेताओं की नीति की विरोधी हो गयी और उसने वियतनाम युद्ध के लिए व्यय पर अंकुश लगा दिया। इस कारण अमरीका को वियतनाम की सैनिक सहायता में पहले तो कमी करनी पड़ी और बाद में वह उसे बंद करने को बाध्य हो गया। अमरीकी जनता भी इस लम्बे युद्ध से ऊब गयी थी, और वह दूसरे देशों के लिए इतना अपार धन व्यय करने और उनके लिए अपने जवानों को कटाने की बड़ी विरोधी हो गयी थी। रूस और उसके साथियों को ऐसी कोई बाधा न थी। इसके अतिरिक्त हो ची मिन्ह ने अपने अनुयायियों में ऐसी भावना उत्पन्न कर दी थी जिसने उन्हें दीर्घकाल तक युद्ध करने के लिए तैयार कर दिया था। पिछले प्रायः तीस वर्षों से लगातार लड़ते लड़ते (पहले फ्रांसीसियों से, फिर जापानियों से और अन्त में अमरीकियों और दक्षिण वियतनामियों से) वे युद्ध के आदी हो गये थे। उनमें से अधिकांश युवकों ने कभी शान्ति देखी ही नहीं थी। वे युद्ध ही में पैदा हुए, युद्ध ही में पले और बड़े हुए तथा एक मात्र युद्ध ही से परिचित थे। आदर्शवादी और व्यक्तिगत रूप से संत के समान सादा जीवन बिताने वाले हो ची मिन्ह ने उन्हें जो आदर्शवाद सिखलाया था, उसे उन्होंने जीवन में उतार लिया था। वे लंबे युद्ध के लिए तैयार थे। रूस से उन्हें सैनिक सामान की तथा अन्य प्रकार की भरभूर सहायता मिल रही थी। उनका मनोबल बहुत ऊँचा था। वे अपने देश के लिए लड़ रहे थे। इसके विपरीत अमरीकी सैनिकों के सामने कोई आदर्श न था। वे भिन्न संस्कृति, भिन्न धर्म और भिन्न वंश के लोगों के लिए केवल सरकार की आज्ञा से लड़ रहे थे।

जो भी हो, यह युद्ध समाप्त हो गया और दक्षिण-पूर्व एशिया में भयंकर विनाश और नर-संहार रुक गया। इससे अमरीका की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा। छोटे राष्ट्र अब बहुत सोच-विचारकर अमरीकी सहायता पर भरोसा करेंगे। अमरीका को इस क्षेत्र ही में नहीं, अन्य क्षेत्रों में भी अपनी साख स्थापित करने में, और जहाँ वह बच रही है, वहाँ उसे बनाये रखने में कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। अमरीका विश्वशक्ति है और उसके नेता राजनीति को विश्व-युद्ध व्यूह तथा शक्ति-संतुलन की दृष्टि से देखते और निर्णय लेते हैं। किंतु अमरीकी जनता, जो ऐश-आराम में रहती है और जो गैर-गोरे लोगों में विशेष रुचि नहीं लेती, दूसरों के झगड़ों में पड़ना पसन्द नहीं करती। इसके दो कारण हैं: एक तो इस खर्चीले युद्धों के कारण उस पर कर-भार बढ़ जाता है, दूसरे वह इन अश्वेतों के लिए अपने जवानों का कटाना पसंद नहीं करती। वहाँकी संसद के अधिकांश सदस्य उन्हें वोट देनेवाली जनता की भावना को समझते हैं। अनेक सदस्य तो स्वयं इन्हीं विचारों के हैं। अतएव अमरीकी सरकार को (जिसे प्रत्येक पाँच वर्ष बाद चुनावों में जनता से मत माँगने पड़ते हैं) जनभावना के सामने झुकना पड़ता है और वह आत्म-विश्वास से युद्ध सम्बन्धी निर्णय (जो जनता को प्रिय नहीं है) एक सीमा से आगे नहीं ले सकती, और न उन्हें जनता का विरोध होने पर चला ही सकती है। अधिनायकवादी देशों के नेताओं के सामने ऐसी कोई कठिनाई नहीं है।

फिर भी, इस समय वास्तविक स्थिति यह है कि संसार में दो महान् शक्तियाँ हैं—रूस और अमरीका। एक तीसरी शक्ति उभर रही है जो विश्व शक्ति होना चाहती है। वह है चीन। यद्यपि चीन भी रूस और अमरीका की तरह शक्तिशाली नहीं है, फिर भी यह तो सभी मानते हैं कि उसकी सेना इतनी बड़ी और इतनी शक्तिशाली है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उसने परमाणु बम भी बना लिया है। रूस और चीन दोनों कम्युनिस्ट देश हैं। पहले दोनों में प्रगाढ़ मित्रता थी। किंतु अब षडाष्टक योग पड़ गया है, और वे एक दूसरे को अपना परम शत्रु समझने लगे हैं। इस टिप्पणी में इस स्थिति के कारण बताने का न तो अवकाश है और न अवसर। ये दोनों ही देश पहले अमरीका के विरोधी थे। किन्तु अब रूस को भय है कि यदि अमरीका चीन के साथ हो गया तो उसके लिए बड़ी समस्या खड़ी हो जायगी, और चीन भी यह सोचता है कि यदि अमरीका और रूस एक हो गये तो उसकी खैर नहीं। अतएव संसार आश्चर्य से देख रहा है कि एक ओर रूस और अमरीका में सद्भावना और मैत्री स्थापित करने का प्रयत्न चल रहा है, तो दूसरी ओर चीन और अमरीका में मित्रता का सम्बन्ध बनाने का प्रयत्न हो रहा है। यों तो इस समय संसार में और भी राजनीतिक शक्तियाँ और शक्तियों के छुट-पुट दल हैं, किन्तु संसार की राजनीति और रणनीति पर ये तीन ही देश छाये हुए हैं, और वर्तमान राजनीति इन तीनों के घात-प्रतिघात, कूटनीतिक चालों और गोटी बैठाने की कुशलता में सिमट गयी है। दक्षिण-पूर्व एशिया में भी यही स्थिति है।,

वियतनाम की विजय से उसे संपूर्ण सहायता देने वाले रूस का प्रभाव उस क्षेत्र में बढ़ गया है। चीन को यह सह्य नहीं है। इसके दो कारण हैं: एक तो यह कि वह इस समय उसका शत्रु है, दूसरे यह कि चीन स्वयं दक्षिण-पूर्व एशिया में बढ़ने की योजना बहुत पहले से बनाये बैठा है। वह अपने शत्रु देश (रूस) का वहाँ प्रभाव या वर्चस्व सहन नहीं कर सकता। इसीलिए चीन के नेताओं ने कहा है कि अमरीका को इस क्षेत्र से हटना चाहिये। इसीलिए उसने (रूस का प्रभाव कम करने के लिए) अमरीका द्वारा हिन्द महासागर के डिगो गार्शिया द्वीप में सैनिक-नाविक अड्डा बनाने का समर्थन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव इस त्रिकोण स्पर्द्धा का परिणाम इस क्षेत्र (दक्षिण और दक्षिण-पूर्ण एशिया) में स्पष्ट नहीं है। देखना है कि ऊंट किस करवट बैठता है। भारत भी इस क्षेत्र में है। पाकिस्तान को अमरीका और चीन द्वारा अपार सैनिक सहायता इसीलिए दी जा रही है कि रूस भारत को सहायता दे रहा है। चीन और अमरीका इस क्षेत्र में रूस का प्रभाव सहन नहीं कर पा रहे।

द्वितीय महायुद्ध के बाद समझा जाता था कि अब युद्ध न होंगे, किन्तु शायद ही कोई ऐसा वर्ष बीता हो जिसमें संसार के किसी न किसी क्षेत्र में युद्ध न हो रहा हो। ये स्थानीय युद्ध होते, किन्तु यदि इनमें से एक पक्ष का एक महाशक्ति और दूसरे का दूसरी महाशक्ति समर्थन न करती तो ये शीघ्र ही समाप्त हो जाते और इनमें न इतना नर-संहार होता और न इतनी बरबादी होती, किन्तु अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने की ताक में ये दोनों महान् शक्तियाँ इन स्थानीय छोटे युद्धों में कूद पड़ीं और धन-जन का संहार बड़े पैमाने पर करतीं तथा अपने आधुनिकतम हथियारों का व्यावहारिक परीक्षण करके उन्हें और अधिक उन्नत करती हैं। यदि ये शक्तियाँ हस्तक्षेप न करतीं तो अरब-इसराइल, वियतनाम, कम्बोडिया, लाओस, कोरिया, के युद्ध इतना भयंकर रूप न ले लेते, और शायद भारत-पाकिस्तान के युद्धों की नौबत ही न आती। अतएव यदि देखा जाय तो संसार की शांति भंग करने और नर-संहार को इतने विशाल पैमाने पर करने का उत्तरदायित्व इन्हीं बड़ी शक्तियों पर है।

ये छोटे युद्ध भी न आरम्भ हों यदि संसार के 'मौत के सौदागर' अपना व्यवसाय बन्द कर दें। अमरीका, रूस और चीन तो मुख्यतः अपने प्रभाव के विस्तार के लिए मुफ्त या नाममात्र के मूल्य पर अपने पिट्ठुओं को शस्त्र देते हैं, किन्तु कुछ देश रुपया कमाने के लिए बड़ी निष्पक्षता और निरपेक्षता से रुपया लेकर छोटे और बड़े भयंकर हथियार बेचते हैं। यह बात उनकी अन्तरात्मा को उद्वेलित नहीं करती कि उन हथियारों से हजारों या लाखों निरीह व्यक्तियों को अपने प्राण गँवाने पड़ेंगे। ये तीन महान् शक्तियाँ तो हथियार बेचती ही हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त सबसे बड़ा 'मौत का सौदागर' फ्रांस है जिसे सैनिक विमानों, सैनिक जलयानों तथा अन्य आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से अरबों रुपयों का लाभ प्रति वर्ष होता है। अन्य 'मौत के सौदागर' ब्रिटेन, चेकोस्लाविया, स्वीडन, इटली, जर्मनी और बेलजियम हैं। क्या हशीश कोकेन आदि की तरह इन भयंकर प्राणघाती और विनाशक हथियारों का व्यापार राष्ट्रसंघ द्वारा अवैध नहीं घोषित किया जा सकता? महान् शक्तियाँ तो युद्धों और नरसंहार को बढ़ावा देने के लिए उत्तरदायी हैं ही, किन्तु ये 'विशुद्ध' व्यापारी मौत के सौदागर उनसे कम उत्तरदायी नहीं हैं। हमें हाल में समाचार-पत्रों में यह पढ़कर आश्चर्य हुआ कि महात्मा गांधी के देश के सैनिक-सामान उत्पादन मंत्री ने कुछ संवाददाताओं से कहा कि हम अब छोटे हथियार इतने परिमाण में बनाने लगे हैं कि उनका निर्यात भी कर सकते हैं या कुछ किया भी है। 'विदेशी मुद्रा' कमाना आवश्यक है। इसमें दो राय नहीं, किन्तु क्या बुद्ध, शंकर, महावीर और गांधी के देश को भी कुछ विदेशी मुद्रा के लोभ में मौत के सौदागरों की सूची में अपना नाम दर्ज कराना उचित है?

स्त्रियों का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष—यह वर्ष सारे संसार में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। महिलाओं की स्थिति पाश्चात्य जगत् में इतनी ऊँची है और उन्होंने इतनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है कि उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में मनमाने अवसर मिलने लगे हैं। रूस में तो एक महिला अन्तरिक्ष यात्रा भी कर चुकी हैं। यदि वे वहाँ अब भी परिवार के बन्धन में हैं तो अपनी इच्छा से। इसरायल में गोल्डा मेयर, लंका में श्रीमाओ भंडारनायके और भारत में इन्दिराजी प्रधान मंत्री पद को सुशोभित कर चुकी हैं या कर रही हैं। वियतनाम में सैगोन-विरोधी सेना और मुक्ति दल के पीछे एक महिला का मस्तिष्क ही काम कर रहा है। वे मर्दों की बराबरी में चाहे खेल हो, युद्ध हो, व्यापार हो, उच्च शिक्षा का अध्यापन हो, शोध हो, विज्ञान हो, या अन्य सेवा हो, उनसे पीछे नहीं। पुरुषों का उन पर उतना ही नियन्त्रण रह गया है जितना स्त्रियों को सुविधाजनक है। पुरुषों की बराबरी करने के लिए अब वे उनकी नकल करके पतलून और शर्ट भी पहनने लगी हैं। किन्तु इस बराबरी में केवल प्रकृति ही बाधक है। चाहे कोई देश हो स्त्री की औसत ऊँचाई मर्द की औसत ऊँचाई से कुछ इंच कम ही होती है। चाहे स्वीडन या अमरीका ऐसे आधुनिकतम देश हों, और चाहे अफ्रीका के पिछड़े, किन्तु मुक्त समाज के देश हों स्त्री की ऊँचाई पुरुष से कुछ इंच कम ही होती है। प्रकृति ने और भी कुछ भेद किये हैं जो उन्हें पुरुष की बराबरी नहीं करने देते, किन्तु उनके लिए पुरुष जिम्मेदार नहीं, प्रकृति जिम्मेदार है। आज प्रबुद्ध नारी प्राचीन मर्यादाओं और बन्धनों से मुक्त होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहती है, और करती भी है। जो स्त्रियाँ अब भी बन्धन में हैं, उन्हें मुक्ति दिलाने की ओर ध्यान दिलाने के लिए यह अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष मनाया जा रहा है। अवश्य ही इस युग में कुछ स्त्रियों को अब भी तरह-तरह के बन्धनों में रहना पड़ रहा है। उनसे मुक्ति दिलाना स्त्री-स्वातन्त्र्य आन्दोलन का मुख्य ध्येय है। हम 'माडर्न' नहीं हैं, और न हमें माडर्न लोगों की ओर से बोलने का ही अधिकार है। किन्तु इस वय में हम स्त्री-समस्या पर तटस्थ भाव से विचार कर सकते हैं, और हमें इस स्वतंत्रता के युग में—जब विद्यार्थी तक परीक्षाओं में नकल करने की स्वतन्त्रता चाहते हैं—स्त्रियों की पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग असामयिक या अनुचित नहीं मालूम होती। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग-धर्म है और अनिवार्य परिवर्तन को शोभनीय ढंग से स्वीकार कर लेना ही बुद्धिमत्ता है।

स्त्री का जीवन इस देश में परिवार की सेवा या यों कहिए कि चूल्हा-चक्की में व्यतीत हो जाता है। कहा जाता है कि वह अपने व्यक्तित्व को विकसित नहीं कर सकती। जब हम अपनी दादी, चाची या माँ की बात सोचते हैं तब हमें याद आता है कि घर के भीतर उनकी इच्छा ही कानून थी और वही चलती थी। मुहल्ले में भी उनकी धाक थी। पर वे राजनीति या अन्य सार्वजनिक कामों में भाग नहीं लेती थीं। घर का प्रबन्ध और घर का 'बजट' ठीक रखने में तथा अन्य गृहकार्यों में वे अत्यन्त कुशल थीं। पर इससे उनको सार्वजनिक महत्त्व नहीं मिलता था और उनके काम का क्षेत्र बहुत संकुचित था। पुरानी स्त्रियाँ कैसी होती थीं इसका एक जीवित उदाहरण हमारे सामने है—

लखनऊ नगर महापालिका की सीमा से कुछ ही दूर औरंगाबाद खालसा एक छोटा सा गाँव है। इस गाँव में मुराऊ जाति का एक वृद्ध रहता है। मुराऊ वे खेतिहर हैं जो शाकभाजी की खेती करते हैं। उस मुराऊ वृद्ध का नाम बालगोविन्द है। उसे अपनी वर्तमान वय ठीक-ठीक नहीं मालूम, किन्तु वह कहता है कि मेरी माँ कहा करती थी कि गदर (प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम) के समय तू डेढ़-दो महीने का था। इस हिसाब से वह इस समय ११७ वर्ष का है। उसके दो पुत्र थे जो अच्छी आयु (७०-८० वर्ष) पाकर कई वर्ष पूर्व मर गये। गाँववालों का कहना है कि उसकी अवस्था ११५ और १२५ के बीच है। वह ४० वर्ष गाँव का चौकीदार रहा। उसके पास १० बीघा जमीन है। उसकी खेती का काम उसके दो पौत्र और विधवा बहुएँ देखती हैं। इस वय में भी उसका शरीर अच्छा और चेहरा भरा हुआ है। इधर कुछ दिनों से वह अधिक चल फिर नहीं सकता। लाठी के सहारे थोड़ा-बहुत चल लेता है, पर चलने में किसी व्यक्ति का सहारा नहीं लेता। उसे कोई रोग नहीं है। किन्तु अब उसे ऊँचा सुनायी पड़ता है। बात-चीत करते समय वह कोई असंबद्ध बात नहीं करता, ठीक उत्तर देता है। कहता है कि चौकीदारी के समय मुझे ४० बदमाशों की निगरानी करनी पड़ती थी।

प्रायः बीस-पचीस वर्ष की बात है। वह किसी बात पर अपने लड़कों से रुष्ट होकर घर छोड़कर जाने लगा। लड़कों ने बहुत मनाया, पर वह रुकने को राज़ी न हुआ। तब उसकी छोटी बहू ने (जिसकी वय इस समय ७० और ८० के बीच है) उससे कहा—"दादा, जिन जाव। तुँहका कोई तकलीफ न होई। हम तुँहका लरिकन की तरह राखब।" बहू की बात उसने मान ली और वह घर पर रह गया।

बहू ने (जो अभी भी जीवित है) उसकी ऐसी सेवा की कि बालगोविन्द घर पर रह जाने से पूरी तरह प्रसन्न है। इधर कई वर्षों से उसे याद नहीं रहता कि मैंने भोजन किया है कि नहीं। ऐसा बहुधा होता है कि संध्या को भोजन करने के बावजूद वह भूल जाता है कि मैंने भोजन कर लिया है। रात में जब एक-दो बजे उसकी नींद खुलती है तब वह बहू से कहता है कि आज मैंने भोजन नहीं किया। बहू कभी यह नहीं कहती कि तुमने भोजन कर लिया है, वह केवल यह पूछती है कि क्या बनाऊँ। वृद्ध ने जो भी बनाने को कहा वह उसे बनाने को तैयार हो जाती है। जाड़ों में भी भोजन बनाने के पहले वह रात में एक-दो बजे स्नान करती है, और स्नान करने के बाद वह वृद्ध को बताये भोजन को बनाकर उसे खिलाकर और सुलाकर फिर सोने के लिए चली जाती है। सप्ताह में एक-दो बार और कभी और अधिक बार ऐसे प्रसङ्ग आते हैं। वह बहू सास ससुर की सवेरे से रात तक इसी प्रकार मनोयोग से सेवा करती है। जब उससे इस बात की पुष्टि करने के लिए कहा गया तब वह संकोचवश मुस्कुराकर रह गयी।

वह महिला भारत की स्त्रियों की प्राचीन परिपाटी का निर्वाह आज भी कर रही है। वह स्वतन्त्रता के २८वें वर्ष और स्त्रियों के अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष ईसा के सन् १९७५ में आज भी जीवित है। खेती-पाती का काम, पुत्र-भ्रातृ की देखभाल, गृहस्थी के अनेक कार्यों के साथ, वह अपने १०० वर्षीय श्वसुर की भी ऐसी सेवा कर रही है। सारा गाँव उसकी लगन और सेवा की प्रशंसा करता है। और वह सुखी और संतुष्ट है। सामान्यतः उसके मुख पर मुस्कान खेलती रहती है। अब जब संयुक्त परिवार प्रथा समाप्त हो गयी और परिवार me and my husband (मैं और मेरा पति) तक सीमित रह गया है, तब यह महिला (जो पुरानी प्रथा के अनुसार संकोचवश अपना नाम नहीं बता सकी) इस अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री वर्ष में एक विसंगति (एनाक्रोनिज्म) मालूम होती है। वह स्त्री-स्वतन्त्रता युग के पूर्व काल की एक अवशेष है।

किन्तु हम-ऐसे लोग इस अंतर्राष्ट्रीय स्त्री वर्ष में भारतीय महिलाओं के आदर्शों के इस अवशेष के प्रति श्रद्धा से नत हैं। बड़े आदमियों की छोटी-बड़ी बातें बहुत चर्चा करती हैं, किंतु कभी-कभी बहुसंख्यक, अज्ञात और उपेक्षित छोटे लोगों के सामान्य जीवन के रोचक दुख-सुख मिलन दैनन्दिन जीवन का सच्चा अंकन भी समाज के चित्र को संतुलित बनाये रखने के लिए आवश्यक मालूम होता है। पता नहीं कि उस महिला तक अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष का प्रेरक संदेश पहुँचा या नहीं, या वह दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, लखनऊ की मोटर-वाहिनी पर्स-सज्जिता प्रगतिशील महिलाओं के ड्राइंगरूमों और वातानुकूलित 'हॉलों' की सभाओं तक ही सीमित रह गया!

'सरस्वती' सम्पादक के लिए एक नया पेशा—हमारे पास एक पत्र आया है। वह एक नवोदित कहानीकार का है। उसका एक अंश आगे दिया जाता है :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मनुष्यतः के नाते ही मैं आपको एक कष्ट दे रहा हूँ। पता नहीं क्यों मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप जैसे परोपकारी और सज्जन व्यक्ति मेरा काम अवश्य कर देंगे। इस महान् कृपा के लिए मैं आपका आजन्म आभारी रहूँगा। मेरे काम में आपका जो बहुमूल्य समय नष्ट होगा उसकी क्षतिपूर्ति के रूप में (भूमिका प्राप्त होने पर) मैं पचास रुपये की तुच्छ धन राशि आपके पास मनीआर्डर द्वारा अवश्य और शीघ्र भेज दूँगा।.....मैं एक छोटा-मोटा कहानीकार हूँ, ...आपको इस समाचार से प्रसन्नता होगी कि मेरा दूसरा कहानी संग्रह प्रकाशित होने जा रहा है। अतः आपसे मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि आप मेरे इस दूसरे कहानी संग्रह की ऐसी भूमिका लिखने का कष्ट करें जो आलोचनात्मक न होकर सराहनापूर्ण एवं उत्साहवर्द्धक हो। आप मेरी कहानियों की समीक्षा मुझे अलग से लिख सकते हैं पर भूमिका में मेरी त्रुटियों की ओर इंगित करना उचित नहीं रहेगा। क्योंकि इससे पुस्तक के प्रकाशन और बिक्री पर बहुत बुरा असर पड़ेगा। नये लेखकों के मार्ग में वैसे ही कदम-कदम पर अड़चनें आती रहती हैं।... यदि आप अपनी सराहनापूर्ण भूमिका भेज देंगे तो आपकी कोई हानि न होगी किन्तु मेरी पुस्तक की शोभा बढ़ जायगी.....आपको कम से कम कष्ट करना पड़े इसलिए मैं इस पत्र के साथ आपके पास एक टाइप की हुई भूमिका भी भेज रहा हूँ। अतः यदि आप उचित समझें तो इस टाइप की हुई भूमिका पर अपने हस्ताक्षर करके और तारीख तथा अपना पता लिखकर मेरे पास शीघ्र भेजने का कष्ट करें। अन्यथा आप इस भूमिका के आधार पर दूसरी भूमिका अपने लेख में लिखकर मेरे पास शीघ्र भेजने की कृपा करें। आपकी कृपादृष्टि मेरे आगे बढ़ने में बड़ी सहायक सिद्ध होगी सिर्फ आपके कलम चलाने की बात है।....."

अपने जीवन में हमें पहली बार ऐसा पत्र मिला है। इसे पढ़कर हमें क्रोध नहीं आया। आश्चर्य अवश्य हुआ। अभिव्यक्ति और प्रकाशन के लिए अति उत्सुक नवयुवक की छटपटाहट की हम कल्पना कर सकते हैं। उससे हमारी पूर्ण सहानुभूति है। मालूम होता है कि इस युग के बड़े साहित्यकारों के 'अर्थ बोध' और रुपया देकर उनसे मनमाना काम करा सकने में उसका अखंड विश्वास है। किन्तु उसके भोलेपन ने हममें आक्रोश उत्पन्न नहीं होने दिया। हमें आक्रोश के बदले उस पर दया आयी और उसके प्रति सहानुभूति भी उत्पन्न हुई। इंग्लैण्ड में उच्चवर्ग की तरुणी १७-१८ वर्ष की वय तक सामाजिक समारोहों (जैसे बॉल डांस आदि) में भाग नहीं ले सकती जब तक वह महारानी के वार्षिक दरबार में औपचारिक रूप से पेश न की जाय। इस क्रिया को 'डिबट' (debut) कहते हैं। किन्तु उसे महारानी के सामने पेश करने का अधिकार दरबार की किसी वयस्का महिला ही को होता है जो उस तरुणी की चैपरन या चैपरन (chaperon) कहलाती है। दरबार में पेश होने के बाद तरुणी को सामाजिक समारोहों में भाग लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार शायद नवोदित कवियों, कहानीकारों, लेखकों को भी हिन्दी देवी के दरबार में पेश करने के लिए हमारे ऐसे बूढ़े 'चैपरन' की आवश्यकता हमारा भोला कहानीकार अनुभव करता है। एक बार उस दरबार में प्रवेश पाने के बाद वह हिन्दी संसार में 'चालू सिक्का' हो जायगा। अतएव उसकी हमसे 'चैपरन' बनने की प्रार्थना अनुचित नहीं है।

हम न कवि हैं, न उपन्यासकार, न नाटककार, न कहानीकार और न समीक्षक। अतएव हमें संदेह है कि हमें हिन्दी की साहित्य देवी (या माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों में 'साहित्य देवता') के दरबार में 'चैपरन' का काम करने का अधिकार है भी या नहीं। यह नहीं कि हमने कभी कोई भूमिका लिखी ही नहीं। किन्तु प्रत्येक भूमिका यह जानते हुए भी कि हम अनधिकारी हैं, हमें विशेष परिस्थिति में लिखनी पड़ी।

किन्तु इस पत्र ने हमारे सामने एक सुखद स्वप्न उपस्थिति कर दिया। भूमिका लेखन से भी आय हो सकती है, यह हमारे कूढ़ दिमाग में अब तक नहीं आया था। पत्र लेखक ने जो अंटसंट बातें लिखी हैं, उन पर विचार करना व्यर्थ है। सार की बात यह है कि भूमिका लिख देने, या टंकित भूमिका पर हस्ताक्षर मात्र कर देने से हमें पचास रुपये मिल सकते हैं। हिन्दी के मूर्धन्य लोगों के लिए इसने आय का एक नया स्रोत खोल दिया है। इस अर्थप्रधान युग में कोई क्यों किसी के लिए भूमिका लिखने में अपना समय नष्ट करे? इतनी देर में तो वह एक लेख, कहानी और कविता लिखकर आय कर सकता है। अतएव भूमिका लिखने के लिए 'फीस' लेना (कविसम्मेलनों में कविता पढ़ने के लिए फीस लेने की तरह) बिल्कुल जायज है। सिद्धांततः इससे कौन मतभेद करेगा, और जो पैसा देकर भूमिका लिखायेगा उसकी प्रशंसात्मक भूमिका प्राप्त करने की अभिलाषा भी सर्वथा उचित है क्योंकि जो पैसा देता है उसके इच्छानुसार वादक को गत सुनानी पड़ती है। अतएव हम इस महँगाई में सोचते हैं कि इस पेशे को करने लगें। किन्तु रुपये का अवमूल्यन इतना अधिक हो गया है कि हम अपने को इतना सस्ता नहीं बनाना चाहते कि पचास रुपये पर भूमिका लिख दें। सामान्य भूमिका के लिए हमने अपनी दर पचास रुपया प्रति पृष्ठ और सराहनापूर्ण भूमिका के लिए १०० रुपया प्रति पृष्ठ रखी है। साथ ही यह शर्त भी है कि हम पाँच पृष्ठ से कम की भूमिका लिखना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। हमें आशा है कि हिन्दी के भूमिका लेखक हमसे सहमत होंगे और वे भी भविष्य में मुफ्त भूमिका लिख कर पेशेवर भूमिका लेखकों का अहित न करेंगे। वे भी अपनी दर अपनी पदमर्यादा से बढ़ा भले ही लें, किन्तु इससे कम करके हमारे ऐसे आने सहयोगियों का अहित न करें।

हमने पत्र लेखक को क्या उत्तर दिया यह व्यावसायिक रहस्य है। अतः गोपनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की बड़ी संस्थाएँ और उनको मुफ्त पुस्तकें और पत्रिकाएँ—हमारे पास हिन्दी की एक प्रमुख संस्था की ओर से पत्र आया है कि हम अपनी हाल की प्रकाशित एक पुस्तक उसे मुफ्त भेंट में भेज दें। हिन्दी की उस संस्था को एक महान् हिन्दी सेवक ने स्थापित किया था और उसकी सेवा में अपने जीवन का अधिकांश अर्पित कर दिया था। उससे उन्होंने कभी लाभ नहीं उठाया। उस संस्था ने उनके मार्गदर्शन में हिन्दी की जो सेवा की वह स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। किन्तु जब वह 'जम' गयी तब कुछ उच्चाभिलाषियों ने 'प्रजातांत्रिक' तरीके से उन्हें निकाल दिया और धीरे-धीरे उसका ह्रास होने लगा। उसके नये संचालकों ने राजनीतिज्ञों का अभिनन्दन और वन्दन करके सरकार से प्रचुर सहायता भी प्राप्त की। अब वह कुछ इने-गिने लोगों की संस्था है। उसका आय-व्यय भी लम्बा-चौड़ा है। एक दूसरी 'अखिल भारतीय' हिन्दी संस्था है। उसके पास भी प्रचुर धन है। वह कितने ही पूँजीपतियों से हिन्दी और अंग्रेजी के पत्र अपने वाचनालय के लिए खरीदती है। अपना बैठकों में सदस्यों के जलपान के लिए बड़ी उदारता से व्यय करती है। किन्तु कई वर्ष पूर्व उसके एक अधिकारी ने हमसे 'सरस्वती' को मुफ्त भेजने के लिए कहा। हमने उस अधिकारी से स्पष्ट कह दिया कि जब आप पूँजीपतियों के हिन्दी और अंग्रेजी पत्र रुपये देकर अपने वाचनालय के लिए खरीद सकते हैं और खरीदते भी हैं, तब क्या आप 'सरस्वती' नहीं खरीद सकते? उसे क्यों मुफ्त चाहते हैं? अतएव हमने उस संस्था को मुफ्त 'सरस्वती' देना अस्वीकार कर दिया। पहली संस्था को भी हमने अपनी पुस्तक भेंट देना उचित नहीं समझा क्योंकि उसके पास भी प्रचुर धन है और उसका व्यय भी बड़ी उदारता से किया जाता है। इन संस्थाओं के व्यय के बारे में अनेक बातें सुनी जाती हैं। कहीं हिसाब-किताब की गड़बड़ी की तो कहीं अपव्यय की शिकायतें सुनने में आती हैं। बहुत से लोगों को यह भी संदेह है कि ये हिन्दी की कोई ठोस सेवा भी कर रही हैं। ये कुछ लोगों की जेबी संस्थाएँ हो गयी हैं। जब ये संस्थाएँ निष्काम भाव से हिन्दी की सेवा करती थीं और जब इन्हें हमारे ऐसे सामान्य व्यक्तियों और सामान्य हिन्दी-प्रेमियों की सहायता की आवश्यकता थी तब हमारा कर्तव्य था, और हम उसका निर्वाह भी करते थे, कि इन संस्थाओं की भरसक सहायता करें। किंतु आज यह स्थिति बदल गयी है।

इस समय हिन्दी में चार प्रकार की संस्थाएँ हैं—एक तो सरकारी संस्थाएँ (जैसे, उ० प्र० की हिन्दी समिति), दूसरी अर्द्ध सरकारी संस्थाएँ, जिन पर सत्ताधारी दल के लोगों का वर्चस्व है और जिन्हें समय-समय पर प्रचुर सरकारी सहायता मिली है या मिलती रही है। तीसरी विशुद्ध छोटी-छोटी हिन्दी संस्थाएँ हैं जो किसी दल विशेष के लोगों के हाथ में नहीं हैं और न जो सरकार से सहायता ही प्राप्त करती हैं। चौथे प्रकार की संस्थाएँ वे जो हिन्दी प्रोफेसरों की हैं। ये शास्त्रीय बातों, 'वादों' तथा अपने वर्ग के हितों और समस्याओं की बात करती हैं। हिन्दी की समस्याओं पर कम ही ध्यान देती हैं। हमारे एक मित्र ने तो साहित्यकारों का भी वर्गीकरण कर दिया है—सरकारी साहित्यिक, सरकार विरोधी साहित्यिक, राजनीति निरपेक्ष साहित्यिक, और हिन्दी प्रोफेसर।

ऐसा नहीं है कि हम 'सरस्वती' या अपनी पुस्तकें मुफ्त भेंट नहीं करते। 'सरस्वती' घाटे पर चलते हुए भी कितने ही वरिष्ठ साहित्यकारों और कई संस्थाओं को उनके सम्मानार्थ भेंट की जाती है। किन्तु जो संस्थाएँ पूँजीपतियों के हिन्दी या अंग्रेजी के पत्र पैसा देकर अपने वाचनालयों के लिए खरीदती हैं, और जो वर्ष अपनी बैठकों के जलपान या नेताओं के अभिनन्दनों हज़ारों रुपये खर्च कर देती हैं, उन्हें हिन्दी की पुस्तकों पत्रिकाओं को मुफ्त भेंट देने का हमें कोई औचित्य नहीं मालूम होता। यदि ये धनी संस्थाएँ हिन्दी की पुस्तकें और पत्रिकाएँ पैसे देकर लें तो हम इसे भी इनकी एक प्रकार की हिन्दी सेवा ही समझेंगे। इन धनी संस्थाओं से हिन्दी साहित्यकार, पत्रकार और प्रकाशक इतनी अपेक्षा तो कर ही सकते हैं। हम वास्तविक हिन्दी सेवी संस्थाओं को दान देना पवित्र कार्य समझते हैं, किन्तु भगवान् शंकराचार्य ने कहा है, 'दानं परं किम्? च सुपात्रदत्तम्'—दान वही है जो सुपात्र को दिया जाय। हमारी सम्मति में ये धनी संस्थाएँ जो नेताओं के अभिनन्दन समारोहों पर तथा उच्च श्रेणी में भ्रमण के व्यय तथा जलपान पर इतना अधिक व्यय करती हैं, 'सुपात्र' नहीं हैं। इन्हें मुफ्त पुस्तकें या पत्रिकाएँ देना 'गुनाह बेलज्ज़त' है।

इन संस्थाओं के प्रकाशन भी अब व्यापारिक दृष्टि से निकाले जाते हैं। उनके मूल्य इतने अधिक रखे जाते हैं कि यह स्पष्ट है कि इनके सामने 'प्रचार' का प्रश्न नहीं है। वास्तव में ये सामान्य प्रकाशकों की श्रेणी में आ गयी हैं। अब ये इतनी सम्पन्न और समर्थ हैं कि अपने पुस्तकालय और वाचनालयों के लिए सभी पुस्तकें खरीद सकें। अतः जिस समय ये साधनहीन और वास्तव में हिन्दीसेवी थीं उस समय इन्हें सहायता देना उचित था। किन्तु अब परिस्थिति बदल गयी है। अब ये संस्थाएँ मोटी हो गयी हैं। अब इन्हें परमुखापेक्षी नहीं रहना चाहिए, और लेखकों तथा प्रकाशकों को स्थिति का पुनरीक्षण करके सोचना चाहिए कि क्या अब भी ये मुफ्त हिन्दी पुस्तकें और पत्रिकाएँ पाने की अधिकारिणी हैं। ये सरलता से अपने पुस्तकालय का बजट बढ़ा सकती हैं और सरकार पर इनका इतना प्रभाव है कि ये उस बढ़े खर्च के लिए अनुदान बढ़वा या नया अनुदान प्राप्त कर सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ

(ऐतिहासिक विवेचन)

श्री रामप्रसाद पाण्डेय

यज्ञ हिन्दू आचार और विचार का अभिन्न अंग है। इसकी भावना हमारे जीवन में ओत-प्रोत है। परन्तु अनेक जैन और बौद्ध आचार्यों ने, हिंसा से जोड़कर इसको बदनाम कर दिया है। उन्हीं के लेखों को प्रमाण मानकर, पश्चिमी पंडितों ने भी पशुवध को इसका मुख्य अंग दिखाया है। इन दोनों वर्गों के भ्रम का मूल, इनका वेद-शास्त्रों एवं हिन्दू जीवन का अधूरा अध्ययन है।

गीता में इसका शुद्ध और व्यापक विवेचन संकेतमात्र से हो गया है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रकाविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकाम धुक्।३। १०

अर्थात् ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि काल में यज्ञ के साथ-साथ मनुष्य की रचना करके कहा कि इससे तुम प्रगति करो, क्योंकि इसमें सभी कामनाओं एवं आवश्यकताओं को पूर्ण करने की क्षमता है। तुम इसको अपनी कामधेनु बनाओ।

इस उक्ति के पूरे अर्थ को समझने के लिए इसके पूर्व के श्लोक पर ध्यान देना पड़ेगा—

यज्ञार्थात् कर्मणोन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर। ३।९

तात्पर्य यह कि लोकसंग्रह अर्थात् समाज को लाभ पहुँचाने के लिए जो कर्म किया जाता है वह यज्ञ है। ऐसा कर्म मोक्षप्रद है, अर्थात् सभी आवश्यकताओं—प्रयोजनों—को पूरा कर, जीवन को निर्बाध, सुगम, मुक्त बनाने वाला है। दूसरे शब्दों में, परोपकार से समृद्धि और मुक्ति दोनों मिलती हैं, जो यज्ञ का स्वरूप है। इसके विपरीत, जो कर्म स्वार्थवश किये जाते हैं वे लोक-परलोक दोनों में बंधन के कारण होते हैं। सहकारिता अथवा परोपकार यज्ञ का मूलभाव है। इसी अध्याय के अगले चौदहवें श्लोक में तो यज्ञ को पर्जन्य (बादल) का कारण कहा गया है, जिससे अन्न की सृष्टि संभव है। शाब्दिक अर्थ में यज्ञ सामूहिक हवनकार्य है, जिसमें घृतादि सुगंधित पदार्थों की आहुति होती है, जिससे प्रत्यक्षरूप से वायु-शुद्धि एवं वर्षा का होना देखा जा सकता है। परन्तु इसका लाक्षणिक तात्पर्य यह है कि सृष्टिगत शक्तियों के अनुकूल आचरण करने से ही मनुष्य को सुख-समृद्धि मिलती है। इसके विपरीत आचरण से आपत्तियाँ आती हैं। अग्निदेव में मिर्च डालिये तो साँस लेना कठिन हो जायगा, और घी-शक्कर-धूप आदि अनुकूल-पदार्थों की आहुतियों से उधर अग्नि प्रज्ज्वलित होती है और इधर सुगंधियों से हमारी प्रसन्नता बढ़ती है। मनुज और देव के पारस्परिक आदान-प्रदान का यह छोटा-सा दृष्टांत है।

आत्मोत्सर्गमूलक परोपकार की यह याज्ञिक भावना वेद के कतिपय मंत्रों में अधिक स्पष्टता से दिखायी गयी है। नीचे दिये गये मंत्र में, जो ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद तीनों में है, निराकार ब्रह्म का अपने को सृष्टि के रूप में साकार करने की प्रक्रिया को यज्ञ कहा गया है—

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञ मतन्वत,
वसंतो तस्यासीदाज्यंग्रीष्म इध्म : शरद्धविः।

ऋ ५०. ९०-६। य० ३१-१४। अ० १९-६-१०

अर्थात् देवों ने यज्ञ रचा, जिसमें ब्रह्म को हवि, वसंत को घी, ग्रीष्म को ईंधन, और शरत् को आहुति बनाया। यहाँ अव्यक्त को व्यक्त सृष्टि के रूप में प्रकट होने को आलंकारिक शैली से कहा गया है, जो वास्तविकता को दर्शाते हुए रहस्यपूर्ण है। इसमें सृष्टि के भौतिक क्रम से अध्यात्म का सुन्दर विवेचन है। ग्रीष्म के ताप से बादल बनते हैं, जो पृथ्वी को सिंचित करते हैं, जिससे बसंत की हरियाली आती है और शरत्काल में धनधान्य संभूत होते हैं; परंतु ये सभी उस एक ही सत्ता के विविध रूप हैं जिसने अपनी सहज और शांत सत्ता का त्याग किया है और जीव-समूह को अपनी लीला से आनंदित किया है।

ऐसा ही भाव अन्य मंत्रों में भी व्यक्त किया गया है। परंतु सामान्य रूप से यज्ञ को देव-पूजन कहा गया है; यज्ञीय पद पूज्य अथवा आराध्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। जैसे, देवीसूक्त में **'प्रथमा यज्ञियानाम्'** (ऋ० १०.१०. १२५), **'विश्वेषाम अदितिर्यज्ञियानाम्'** (ऋ० ४.१.२०) अथवा **'दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्'** (य० २७.२६) आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्रों में। इसी वैदिक अर्थ में शास्त्रों ने देवयज्ञ, पितृयज्ञ ब्रह्मयज्ञ, नृयज्ञ और भूतयज्ञ का विधान किया है, जिनको प्रत्येक गृहस्थ का नित्य धर्म कहा गया है। देव से लेकर भूतमात्र को तृप्त करने की प्रक्रिया वास्तविक यज्ञ है। आज बोल-चाल की भाषा में बहुसंख्यक लोगों को भोजन कराने को यज्ञ कहा जाता है। इसमें भी देव-यज्ञ आ जाता है, क्योंकि सामान्य व्यवहार के अनुसार, सभी पकवानों को देवार्पित करने के बाद ही उनका वितरण होता है। जहाँ विधिपूर्वक भोग नहीं लगाया जाता है, अर्थात् देव को अर्पित नहीं किया जाता वहाँ भी गृहिणी अथवा हलवाई पहले कुछ तलकर (प्रायः पूड़ियों और मिष्ठान्नों को) अग्नि में डाल देते हैं। तत्पश्चात् सभी सामग्री बनती है।

इन सभी कृत्यों का आधार आत्म-त्याग की भावना है। यज्ञ का यही सर्वव्यापी भाव है। इसी से प्रेरित होकर कुछ अज्ञानी जन पशु अथवा अपने प्रिय पुत्रादि का बलिदान कर देते हैं। ऐसे लोग सभी देशों और सभी कालों में पाये जाते हैं। शाक्तों में यह आराधना की विधि है। परंतु यह विधि कभी व्यापक नहीं रही है। उच्च वर्गों में इसकी निन्दा ही होती रही है। इसे वेद-सम्मत मानना या कहना, वेदों का अपमान है। मनु महाराज के कुछ वचनों से लोग भ्रम में पड़ जाते हैं, परंतु पूर्ण अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुजी ने सभी प्रकार के रीति-रवाजों को 'प्रवृत्तिरेषा-भूतानाम्' कहकर स्वीकार कर लिया है। किसी व्यवहार को शास्त्रविरुद्ध कहकर पाप की भावना उत्पन्न करना उन्हें सम्मत नहीं था। परंतु वे अपनी व्यवस्था यह दे देते हैं कि 'निवृत्तिस्तु महाफलः।' मनु महाराज की अंतर्भावना है कि मनुष्य के बनाये नियमों को तोड़ना अपराध है और यह राजा द्वारा दण्डनीय है, परंतु ईश्वर की सृष्टि में कोई अप्राकृतिक व्यापार नहीं है। जो स्वभाववश होता है वह निर्दोष है। हाँ, संयम से आत्मोत्थान अवश्य होता है।

स्वतः वेदों ने भी श्रद्धा-भक्तिरहित अनेक यज्ञों को निन्द्य एवं गर्ह्य कहा है और ज्ञानमूलक आराधना पर बल दिया है। यथा—

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तम् ऋष्वसम्" (ऋ० ८-७०-३)

नकिष्टं कर्मणा नशत् (वही);

'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति' (ऋ० १-१६४-३९)

अर्थात् जो ईश्वर (इंद्र) सभी का आराध्य है, वह यज्ञों से नहीं प्राप्त होता है; न केवल ज्ञानहीन कर्मों से वह मिलता है। (जो सभी का स्वामी है) उसको हृदय के द्वारा जाना जा सकता है, केवल मंत्रों के पाठ द्वारा नहीं। वैदिक सिद्धांतों की यह मुख्य धारा है। गीता और उपनिषदों में इसको अधिक विशद किया गया है। मुंडक उपनिषत् ने यज्ञों को अदृढ नौका की उपाधि दी है, जो यात्री को लेकर कभी डूब सकती है :

"प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा" (मु०-१-२-७)

वृहदारण्यक और छांदोग्य में यज्ञों को आलंकारिक मानकर, कुवासनाओं के संयम-त्याग का साधन कहा गया है। इसी उपनिषत् के दूसरे मंत्र को देखिए—

नचक्षुषा गृह्यते नापि वाचा,
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा" (१. १. ८)

(न उसे चर्मचक्षुओं से देखा जा सकता है, न मंत्रों से पकड़ा जा सकता है, न कड़ी तपस्याओं अथवा कर्मकांडों से ग्रहण किया जा सकता है। वह तो ज्ञान-भक्ति का विषय है।)

जैसा आरंभ में संकेत कर चुके हैं, गीता के तीसरे और चौथे अध्यायों में यज्ञ विषय का विशद विवेचन हुआ है। जीवन के सभी क्रिया-कलाप, जो किसी आदर्श को लेकर किये जाते हैं, यज्ञ हैं। यज्ञ के बिना यह जीवन सूना हो जायगा, असंभव हो जायगा। 'नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य'। ऊँचे-नीच सभी साधनाओं को गीता ने यज्ञ की संज्ञा दी है। जो सहज समाधि की अवस्था में है उसकी ब्राह्मीभूत क्रियाएँ लेकर जो अभी अज्ञान-वश हवन-भोजादि के पुण्य कर्मों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति में लगे हुए हैं वे सभी यज्ञ कर रहे हैं। योग-जप-तप-स्वाध्याय आदि सभी यज्ञ हैं, क्योंकि ये सभी ऊँची स्थिति में पहुँचने के लिए किये जाते हैं। परंतु गीताकार ने साफ-साफ कह दिया है कि

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञान यज्ञः परंतप
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञानं परिसमाप्यते (गी० ४.३३)

अध्यात्म-चिन्तन ही ईश्वर-प्राप्ति अथवा आत्मज्ञान का उच्चतम साधन है। उसके नीचे के सभी कर्म प्रारंभिक हैं। यदि एक पद का प्रयोग किया जाय तो संकल्पित (dedicated) कर्म को गीता यज्ञ की उपाधि देती है। अधिकार-भेद से ऐसा संकल्पित कर्म अनेक प्रकार का हो सकता है। उसका उद्देश्य भी स्वर्गप्राप्ति अथवा किसी कामना-विशेष की पूर्ति से लेकर ब्रह्मात्मैक्य हो सकता है।

ध्यान देने का विषय यह है कि पशु-वध गर्भित यज्ञ शास्त्र-सम्मत नहीं है। वेदों ने कभी उस पर बल नहीं दिया। वेदों की निन्दा किये बिना दया-अहिंसा का प्रतिपादन किया जा सकता है, क्योंकि वैदिक विचारधारा में 'सर्वभूत हितेरता' लक्षण सदा प्रधान रहा है। "परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम्" यह हिन्दूसाधनारूपी शरीर का मेरुदण्ड है। यज्ञ की मौलिक भावना आत्मोत्सर्ग, परोपकार और सहकारिता है, जिससे लोक का कल्याण हो। अनेक परिवर्त्तनों के बीच वही भावना आज भी बनी है। सामूहिक पुण्य का कार्य यज्ञ था और आज भी हिन्दू उसपर आचरण करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश जिन्हें भूल गया—जतीन्द्रनाथ मुखर्जी

श्री शंकरसहाय सक्सेना

अलीपुर बम अभियोग के उपरान्त जब सरकार का दमनचक्र चला और श्री अरविन्द सहित अधिकांश क्रान्तिकारी नेता गिरफ्तार हो गये, तब बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन नेतृत्वविहीन हो गया। क्रान्तिकारी आन्दोलन को जीवित रखने और उसको सतेज बनाने के लिए एक साहसी और कुशल नेता की आवश्यकता थी और वह जतीन्द्रनाथ मुखर्जी के रूप में उसे मिल गया। जतीन्द्रनाथ मुखर्जी को क्रान्तिकारी कार्य करने की दीक्षा उनके गुरु श्री भोलानन्द गिरी और श्री अरबिन्द से मिली थी। उस समय वे सरकारी नौकरी करते थे परन्तु क्रान्तिकारी दल में सक्रिय थे।

बचपन से ही जतीन में अद्भुत साहस और शक्ति के दर्शन करके उनके साथी उन्हें अपने नेता के रूप में स्वीकार करते थे। तीन घटनाओं से उनकी शक्ति और साहस का हमें परिचय मिलता है। जब जतीन बीस वर्ष से भी कम के थे तब उनके कस्बे में एक बड़ा घोड़ा बिगड़ गया। क्रोध में उन्मत्त वह घोड़ा सड़क पर बुरी तरह दौड़ रहा था। जो भी वस्तु उसके सामने आती उसीको वह कुचल डालता। सड़क पर सभी त्रस्त और भयभीत थे। जतीन ने उस घोड़े के बालों को पकड़ लिया और उसे नियंत्रित कर लिया। घोड़ा जतीन की बलिष्ठ मुट्ठी से अपने बाल न छुड़ा सका। एक अन्य अवसर पर केवल एक कटार हाथ में लेकर उन्होंने शेर से युद्ध किया। यद्यपि वे जख्मी हो गये तथापि उन्होंने शेर को मार दिया। एक बार पूर्वी बंगाल (अब बाँगला देश) के सन्ताहार स्टेशन पर उनका चार गोरों से झगड़ा हो गया। जतीन अकेले थे, परन्तु उन्होंने अकेले ही उन चारों गोरों की ऐसी कस कर पिटाई की कि वे भाग खड़े हुए। उस दिन से जतीन को सभी युवक अपना नेता स्वीकार करने लगे और उनकी प्रसिद्धि बंगाल में फैल गयी।

जतीन्द्रनाथ मुखर्जी १९०६ में क्रान्तिकारियों के उस सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे जिसे श्री अरविन्द ने आमंत्रित किया था और जो कलकत्ते में सुबोध मलिक के मकान पर हुआ था और जिसमें श्री अरविन्द के साथ श्री भूपेन्द्रनाथ दत्त आदि सभी प्रमुख क्रान्तिकारी उपस्थित थे। अलीपुर षड्यंत्र अभियोग के उपरान्त जब श्री अरविन्द पांडिचेरी चले गये और सरकार का भयंकर दमन-चक्र चला तब जतीन्द्रनाथ मुखर्जी ने बिखरे हुए क्रान्तिकारियों को जुगान्तर दल में संगठित कर क्रान्तिकारियों को बिखरने और क्रान्तिदलों को विघटित होने से बचा लिया। जुगान्तर दल का नवीन संगठन खड़ा करने तथा छोटे छोटे स्थानीय क्रान्तिकारी दलों को जुगान्तर दल में सम्मिलित करने में जतीन्द्रनाथ मुखर्जी को अपने प्रमुख सहायक अविनाश चक्रवर्ती से बहुत सहायता मिली थी।

जब नवगठित जुगान्तर दल का संगठन ढाका को छोड़ कर समस्त बंगाल में फैल गया तब जतीन ने सोचा कि क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रति विश्वास उत्पन्न करने तथा उसका प्रभाव बढ़ाने के लिए कुछ साहसपूर्ण क्रान्तिकारी कार्य करना चाहिए। अतएव उन्होंने चार साहसी कृत्यों के किये जाने की व्यवस्था की, परन्तु किसीको स्वप्न में भी पता नहीं लग सका कि इन कार्यों के सृष्टा जतीन्द्रनाथ थे।

७ नवम्बर १९०७ को जुगान्तर दल के युवक जितेन राय चौधरी ने ओवरटन हाल में एक सार्वजनिक सभा में बंगाल के लैफ्टीनैंट गवर्नर सर ऐन्ड्रू फ्रेजर को गोली मारी। फ्रेजर घायल हो गया। दो दिनों के उपरान्त नन्दलाल बनर्जी को, जिसने प्रफुल्ल चाकसी को गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया था, सरपैनटाइन लेन में मार दिया गया। जतीन के विरुद्ध ललित चक्रवर्ती सरकारी गवाह ने हावड़ा-षड्यंत्र अभियोग में बयान दिया कि जतीन्द्रनाथ मुखर्जी के आदेश पर युवक गुनेन्द्र गुप्त ने बनर्जी को मारा था। १० फरवरी १९०९ को जतीन के क्रान्तिकारियों ने आशुतोष विश्वास को मार दिया। विश्वास उस अभियोग की सरकार की ओर से पैरवी कर रहा था जो नरेन गोस्वामी और शमशुल आलम पुलिस अधिकारी को मारने के अपराध में कनाई और सत्येन पर चल रहा था। जब आशुतोष विश्वास अलीपुर की अदालत के बाहर आ रहा था तब युवक चारु बसु ने उसे सबके सामने मार दिया।

२४ जनवरी १९१० को बीरेनदत्त गुप्ता ने कलकत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च न्यायालय में डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस शमशुल आलम को गोली से मार दिया। दो बार शमशुल आलम बच गया था। जतीन्द्रनाथ ने इस बार इस कार्य के लिए बीरेन को चुना था।

जब अभियोग चल रहा था तब पुलिस अधिकारी ने बीरेन से बड़ी युक्ति से यह मालूम कर लिया कि जतीन्द्रनाथ के आदेश पर उसने शमशुल आलम को मारा था। बीरेन जेल में एकान्त काल कोठरी में था। पुलिस अधिकारी ने उसको एक समाचार-पत्र दिखलाया जिसमें किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति ने बीरेन के कृत्य की निन्दा की थी। आवेश और क्रोध में बीरेन ने कहा, "यदि केवल एक व्यक्ति का विश्वास मुझे प्राप्त है तो मुझे संसार भर की राय की तनिक भी चिन्ता नहीं है। यह पूछने पर कि वह कौन व्यक्ति है आवेश में उसने यह स्वीकार कर लिया कि मैंने जतीन्द्रनाथ मुखर्जी के आदेश से यह कार्य किया था। उस समय तक जतीन्द्रनाथ मुखर्जी हावड़ा अभियोग में गिरफ्तार हो गये थे। पुलिस उन्हें बीरेन से मिलाने प्रेसिडेंसी जेल में लायी। पुलिस को आशा थी कि बीरेन जतीन के सम्बन्ध में और कुछ कहेगा, परन्तु आवेश में जो कुछ वह कह गया था उससे अधिक उसने कुछ नहीं कहा। जतीन को देखकर वह रो पड़ा, परन्तु जतीन ने उसको स्नेह से बताया कि तुम पर मेरा पूर्ववत् पूरा विश्वास है। अपने नेता का स्नेह और विश्वास उस पर पूर्ववत् है यह जानकर उसका हृदय प्रसन्नता से भर गया और दूसरे दिन वह अत्यन्त प्रसन्नता और गौरव के साथ फाँसी के तख्ते पर चढ़ गया।

पुलिस ने बीरेन के कथन के आधार पर जतीन्द्रनाथ को शमशुल आलम की हत्या के अभियोग में फँसाने का प्रयत्न किया, परन्तु उच्च न्यायालय में वह सफल नहीं हुई। हावड़ा अभियोग में जतीन पर कोई अपराध सिद्ध नहीं हुआ। निर्दोष होने से वे छूट गये।

हावड़ा अभियोग से छूटने के उपरान्त जतीन ने और भी अधिक तेजी से कार्य करना आरम्भ कर दिया। दल के लिए धन की आवश्यकता थी। उन्होंने कई डकैतियों का आयोजन किया। १२ फरवरी १९१५ को जतीन ने बर्ड कम्पनी के अट्ठारह हजार रुपये लूट लिये, २२ फरवरी को उसके दल ने एक चावल के व्यापारी के खजांची से बीस हजार रुपये छीन लिये, २ दिसम्बर को एक अन्य चावल के व्यापारी की दूकान से पचीस हजार रुपए उड़ा लिये।

पुलिस हैरान थी। जतीन का दल पुलिस के अधिकारियों तथा गुप्तचरों की हत्या भी करता था, साथ ही धन भी एकत्र कर रहा था। पुलिस अब किसी भी प्रकार जतीन को गिरफ़्तार कर लेना चाहती थी। जतीन अपने कतिपय विश्वस्त क्रान्तिकारी साथियों के साथ भूमिगत हो गये। पुलिस ने सारे प्रयत्न कर लिये, परन्तु उसे जतीन का पता नहीं लग सका। जतीन अपने साथियों के सहित एक स्थान से दूसरे स्थान को चले जाते। २० फरवरी १९१५ को पथुरिया घाटा स्ट्रीट में ७३ नम्बर का मकान फणीभूषण राय (जाली नाम से) ने जतीन तथा उनके साथियों के लिए किराये पर लिया। पुलिस को संदेह हो गया। २४ फरवरी १९१५ को पुलिस का गुप्तचर निरोद हलदार उस मकान में घुसा और किसीका नाम पुकारता हुआ ऊपर सीढ़ियों पर चढ़ गया। वहाँ जतीन को अपने पाँच साथियों के सहित देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बोला, "अच्छा तो जतीन, तुम यहाँ हो।" इस पर एक क्रान्तिकारी ने आगे बढ़कर उस पर रिवाल्वर ताना। जैसे ही निरोद ने वहाँसे जाने के लिए पीठ फेरी एक गोली उसकी रीढ़ को छेदती हुई निकली और वह पृथ्वी पर गिर गया। उसे मरा समझकर तीन युवक तो साइकिलों पर और शेष अपना सामान लेकर वहाँ से पैदल निकल गये।

पुलिस तुरन्त वहाँ पहुँच गयी और निरोद को मेडिकल हास्पिटल ले गयी। निरोद यद्यपि गम्भीर रूप से घायल हो गया था तथापि होश में था। उसने बयान दिया कि जतीन वहाँ था और उसी ने मुझको गोली मारी थी। २६ फरवरी १९१५ को तीसरे पहर दो बजे उसकी मृत्यु हो गयी।

जतीन और उनके वीर साथी कुछ दिनों तक कलकत्ते में ही रहे। पुलिस का कहना था कि उस सप्ताह में कलकत्ते में जो अत्यन्त साहसिक क्रान्तिकारी कार्य हुए थे उनके ही कृत्य थे। परन्तु अब जतीन के लिए कलकत्ते में अधिक ठहरना खतरे से खाली नहीं था। अतएव जतीन और चित्तप्रिय काप्तीपोदा (माहुलदिहा) चले गये। काप्तीपादा बालासोर से ३० मील दूर तत्कालीन मयूरभंज राज्य में एक गाँव था। नलनी कार और नरेन भट्टाचार्य (एम० एन० राय) ने देखभालकर जतीन के लिए उस स्थान को सुरक्षित समझकर चुना था।

उस समय जतीन देश के विशाल क्षेत्र में—बंगाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्त तक समस्त उत्तर भारत में—सशस्त्र विद्रोह का संगठन करने की योजना कार्यान्वित करने में व्यस्त थे। प्रथम महायुद्ध छिड़ चुका था। भारत में उस समय अंग्रेज बहुत कम थे। भारतीय सेनाएँ योरप और पश्चिमी एशिया के रणक्षेत्रों में लड़ रही थीं। जतीन ने श्री रासबिहारी बोस को उत्तर भारत में सशस्त्र विद्रोह का संगठन करने के लिए भेज दिया था। उन्होंने पंजाब और उत्तर प्रदेश में सैनिक छावनियों से सम्पर्क स्थापित कर लिया था। संयुक्त राज्य अमेरिका में गदरपार्टी की स्थापना हो चुकी थी। देश को अंग्रेजों की दासता से मुक्त करने के लिए सशस्त्र क्रान्ति में योग देने के लिए हजारों पंजाबी स्वदेश लौट आये थे। कोमागाता मारू जहाज की दुर्घटना घट चुकी थी। विदेशों में जो भारतीय क्रान्तिकारी थे उनमें लाला हरदयाल, राजा महेन्द्रप्रताप, बरकतउल्ला आदि ने प्रसिद्ध बर्लिन कमेटी बना ली थी और उन्होंने जर्मन सरकार से भारत में सशस्त्र विद्रोह को सहायता देने के सम्बन्ध में संधि कर ली थी। जर्मन सरकार ने भारतीय क्रान्तिकारियों को अस्त्र-शस्त्र, धन, सैनिक प्रशिक्षण तथा छापामार युद्ध के लिए प्रशिक्षण देने के लिए सैनिक अधिकारियों को भारत भेजने की स्वीकृति दे दी थी। भारत में बर्लिन कमेटी तथा जर्मन सरकार का सम्बन्ध जतीन से था। जतीन ही भारत में जर्मन सहायता से सशस्त्र क्रान्ति और विस्तृत क्षेत्र में विद्रोह करने के लिए उत्तरदायी थे।

जतीन के एक विश्वस्त सहायक हरीकुमार चक्रवर्ती ने हैरी ऐण्ड संस नामक एक व्यापारिक फर्म कलकत्ते में खोल रखी थी। वह वास्तव में क्रान्तिकारियों का विदेशों से सम्पर्क बनाये रखने का गुप्त केन्द्र थी। जब यह आवश्यक हो गया कि जतीन को कलकत्ता छोड़ बालासोर की ओर चला जाना चाहिए तब यह भी नितान्त आवश्यक हो गया कि बालासोर में हैरी ऐण्ड सन्स की एक शाखा खोली जाय जिससे उसके माध्यम से जतीन का कलकत्ते और विदेश से संबंध बना रह सके। अस्तु, शैलेश्वर ने उड़ीसा के बालासोर स्थान पर 'यूनीवर्सल ऐम्पोरियम' नाम से घड़ियों और साइकिलों की एक दूकान खोली, जो वास्तव में क्रान्तिकारियों का सम्पर्क-स्थान था। बालासोर से छः मील दूर तलदिहा नामक स्थान पर नरेन और ज्योतिशचन्द्र पाल ने खेती करना आरम्भ कर दिया और उन्होंने वहाँ एक दूकान खोली। उनका उद्देश्य ग्रामीण जनता से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में लाने का प्रयत्न करना था। काप्तीपोदा और तलदिहा के लोग समय-समय पर एक दूसरे से मिलकर सूचनाओं का आदान-प्रदान करते थे।

ये युवक क्रान्तिकारी अपने जीवन के प्रति कितने उदासीन थे—यह एक घटना से पता चलता है। जब जतीन और चित्तप्रिय मार्च १९१५ में कलकत्ता से काप्तीपोदा ग्राम चले गये तब कुछ दिनों के उपरान्त नरेन और मनोरंजन भी वहाँ पहुँचे। गाँव के उन्मुक्त वातावरण में अत्यन्त प्रसन्न हो वे उछल-कूदकर रहे थे। मनोरंजन के हाथ में एक मौसर पिस्तौल था। उसने व्यंग्य में नरेन की ओर पिस्तौल तानकर पूछा कि क्या तुम्हें मृत्यु से तनिक भी भय नहीं लगता। नरेन ने उत्तर दिया कि तुम परीक्षा करके देख लो। मुझे मृत्यु से तनिक भी भय नहीं लगता। आखिर हमें मरना है। मनोरंजन का विश्वास था कि पिस्तौल में गोली नहीं है। अस्तु, उसने हँसी में घोड़ा दबा दिया और एक गोली नरेन की टाँग में जाकर लगी। नरेन तनिक भी विचलित नहीं हुआ।

जतीन ने जहाँ अपने को पुलिस की दृष्टि से बचाने के लिए काप्तीपोदा गाँव में आश्रय लिया था वहाँ वह जर्मनी से आनेवाले अस्त्र शस्त्रों की भी प्रतीक्षा कर रहा था। जतीन के पास यह सूचना पहुँच चुकी थी कि जर्मनी ने 'मैवरिक' तथा 'हैनरी' जहाजों में अस्त्र-शस्त्र भेजे हैं। जतीन ने यह तय किया कि सुन्दरबन के राय-मंगल नामक स्थान में दोनों जहाजों से अस्त्र-शस्त्र उतार कर पूर्व निश्चित स्थानों में छिपा दिया जाय। इसके लिए उन्होंने वहाँके एक जमींदार को क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित कर लिया था। उसने वचन दिया था कि मैं अपने भरोसे के ग्रामीणों और लालटैनों की सहायता से रात्रि के समय उन जहाजों से अस्त्र-शस्त्र उतरवाकर गुप्तस्थानों में सुरक्षित पहुँचा दूँगा। जतीन को यह सूचना बर्लिन कमेटी के सदस्यों ने भिजवायी थी। परन्तु देश को अभी और परतंत्र रहना था। जैकोस्लावाकिया के क्रान्तिकारियों के विश्वासघात के कारण ब्रिटिश सरकार को यह पता लग गया कि जर्मनी भारतीय क्रान्तिकारियों को अस्त्र-शस्त्र तथा धन की सहायता दे रहा है। इससे उन्होंने अस्त्र-शस्त्र से भरे उन जहाजों को भारत नहीं पहुँचने दिया। भारत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार को यह भी पता चल गया कि बटाविया का जर्मन एजेंट भारतीय क्रान्तिकारियों को आर्थिक सहायता देता है। उसका सम्पर्क कलकत्ते की हैरी ऐण्ड सन्स तथा उसकी शाखा बालासोर के युनीवर्सल ऐम्पोरियम से है, जो वास्तव में क्रान्तिकारियों के सम्पर्क-केन्द्र हैं। बात यह हुई कि बटाविया के जर्मन एजेंट से क्रान्तिकारियों को यूनीवर्सल ऐम्पोरियम में तैंतालीस हजार रुपये मिलने थे परन्तु केवल तैंतीस हजार रुपये ही मिले और दस हजार रुपये भारत-सरकार के हाथ लग गये। उससे सरकार को भारतीय क्रान्तिकारियों और जर्मन सरकार के सम्बन्ध का पता चल गया।

मार्च १९१५ में पुलिस को कलकत्ते में यह सूचना मिली कि यूनीवर्सल ऐम्पोरियम क्रान्तिकारियों का सम्पर्क-केन्द्र है। इस पर उसने सितम्बर १९१५ में कतिपय शीर्षस्थ अधिकारियों को बालासोर भेजा। ५ सितम्बर को यूनीवर्सल ऐम्पोरियम की तलाशी ली गयी। जतीन के दोनों साथी पकड़े गये। परन्तु पुलिस उन दोनों से जतीन का पता न जान सकी। उनके साथ पाशविक अत्याचार किये गये, परन्तु उन्होंने जतीन के सम्बन्ध में कुछ नहीं बतलाया। जब पुलिस निराश होकर वहाँसे चलने लगी तब एक पुलिस अधिकारी को एक कागज का पुर्जा फर्श पर पड़ा मिला। उसमें काप्तीपोदा का नाम था। वह मयूरभंज राज्य से मिली नीलघेरी रियासत का एक छोटा-सा ग्राम था।

६ सितम्बर को दिन छिपे बालासोर का जिलाधीश सेना और पुलिस के साथ कलकत्ता से आये हुए योरोपियन पुलिस अधिकारियों के साथ हाथियों पर काप्तीपोदा की ओर चले। इतने अधिक लोगों के काप्तीपोदा जैसे छोटे गाँव में पहुँचने से वहाँ हड़कम्प मच गया। गाँव के कुछ लोग जतीन को महात्मा या साधू कहते थे और उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उनमें से एक ने दौड़कर पुलिस अधिकारियों के आने की सूचना उन्हें दे दी। तुरन्त ही जतीन, चित्तप्रिय और मनोरंजन ने सब कागज पत्र नष्ट करके उस स्थान को छोड़ दिया और वे तलदिहा की ओर नरेन और जोतिश को साथ लेने के लिए चल पड़े। यह सब करने में कई घंटों का मूल्यवान समय नष्ट हो गया। परन्तु जतीन अपने साथियों को छोड़कर अपनी सुरक्षा का स्वप्न में भी ध्यान नहीं कर सकते थे।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब अधिकारी जतीन के आश्र[य] स्थल पर पहुँचे तब वहाँ उन्हें एक पेड़ पर गोली के चि[ह्न] मिले। उनसे ज्ञात होता था कि वे लोग वहाँ निशा[ना] लगाने का अभ्यास करते थे।

जो पुलिस दल जतीन की खोज कर रहा था उस[में] केन्द्रीय गुप्तचर विभाग के जी० सी० डेनहेम, सार्जेन्ट रड[ी] फोर्ड, बालासोर के जिलाधीश के० जी० किल्बे, बालासो[र] के सुपरिटैन्डैन्ट पुलिस तथा कलकत्ते से आये अन्य यो[रो] पियन पुलिस अधिकारी भी थे। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि जतीन वहाँसे निकल गये तब उन्होंने समीपवर्ती गाँवों में अपने आदमी भेज कर यह समाचार फैला दिया कि कु[छ] बंगाली जो जर्मनी के एजेन्ट और खतरनाक डाकू हैं [वे] जंगलों में फिर रहे हैं, उन्हें पकड़ने के लिए ही पुलिस [का] आयी है, जो गाँव वाला उन्हें पकड़वाने में सहायक हो[गा] उसको नकद पारितोषिक दिया जायगा।

जतीन और उनके साथी दो दिन और रात नि[रन्तर] चलते रहे। वे बहुत थक गये थे। ८ सितम्बर की अ[र्ध] रात्रि को वे बालासोर स्टेशन पहुँचे, पर वहाँ पुलिस [की] स्पेशल ट्रेन खड़ी थी। अस्तु, उन्होंने वहाँ ठहरना उ[चित] नहीं समझा। दो तीन दिन से वे निरन्तर चल रहे थे। विश्राम, नींद और भोजन उन्हें नहीं मिला था। कुछ [गाँव] वालों ने पुलिस को सूचना दे दी कि वे बंगाली हमारे [गाँव] के पास हैं। चित्तप्रिय ने जतीन से बहुत कहा कि [आप] अकेले सुरक्षित स्थान पर चले जायँ। हम लोग [पुलिस] संघर्ष करेंगे जो हमारा पीछा करेंगे, परन्तु जतीन [अपने] साथियों को छोड़कर जाने को तैयार नहीं हुए। कुछ [गाँव] वाले पुलिस द्वारा फैलाये हुए समाचार और इनाम के लो[भ] से उनको पकड़ लेना चाहते थे, परन्तु उनका साहस न[हीं] पड़ता था। जतीन और उनके साथी बहुत भूखे थे। उन्हों[ने] गाँव की दूकान से खाने का कुछ सामान खरीदा और दूकान[दार] दार को दस रुपए का नोट दिया। उन दिनों उड़ीसा के गाँवों में दस रुपए का नोट बहुत कम देखने में आता था। गाँववाले और भी सशंक हो गये। उन्होंने उन्हें घेर लिया। एक ग्रामीण ने जतीन को पकड़ लिया, परन्तु जतीन बहुत बलिष्ठ थे। उन्होंने उसे पृथ्वी पर पटक दिया। [भीड़] बढ़ता देख मनोरंजन ने गाँववालों को धमकी दी कि [वे] भाग जायँ, परन्तु वे नहीं हटे। तब मनोरंजन ने [गोली] चला दी। एक गाँववाला मरकर गिर गया और दूस[रा]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घायल हो गया। तब जतीन और उनके साथी आगे बढ़े। एक नदी पार कर वे तेजी से आगे चल पड़े।

गाँव वालों ने बालसोर के जिलाधीश को सूचना दे दी और दूर रहकर वे उन क्रान्तिकारियों की टोह लेते रहे। जिलाधीश किल्बी, सार्जेन्ट रदरफोर्ड तथा सेना के मेजर फ्रीथ अस्सी जवानों को लेकर क्रान्तिकारियों को पकड़ने के लिए चल पड़े। जब पुलिस दल उस स्थान पर पहुँचा जहाँ गाँववालों ने क्रान्तिकारियों का होना बतलाया था तब उन्होंने गोली चलाना आरम्भ कर दिया। जतीन और उनके साथियों ने एक झुरमुट में शरण ली। जब पुलिस दल निरन्तर गोली वर्षा करता हुआ उस झुरमुट के समीप आ गया तब क्रान्तिकारियों ने भयंकर गोली वर्षा आरम्भ कर दी। एक बार तो पुलिस दल विचलित हो गया। उसके कई सिपाही मारे गये। लगभग ७५ मिनट दोनों ओर से वह अ-समान युद्ध होता रहा। अन्त में क्रान्तिकारियों के पास कारतूस समाप्त हो गये। इस अ-समान युद्ध में चित्त-प्रिय मारे गये। जतीन का एक हाथ जर्जर हो गया और पेट के निचले हिस्से में वे बुरी तरह घायल हो गये। जतीन्द्र नाथ तथा जतीश को अस्पताल ले जाया गया। निरेन और मनोरंजन को जेल ले जाया गया। जतीन का आपरेशन किया गया और पट्टी बाँध दी गयी, परन्तु जतीन ने पट्टी को फाड़ दिया तथा टाँकों को तोड़ दिया। पुनः रक्त बहना आरम्भ हो गया और दूसरे दिन प्रातःकाल उस वीर की मृत्यु हो गयी। अपनी मृत्यु को स्वयं निमंत्रित कर जतीन ने अपनी बहिन की इच्छा पूरी कर दी। हावड़ा अभियोग के समय बहिन ने जतीन को लिख भेजा था—"मैं दुबारा शेर को पिंजड़े में कैद हुआ न देखूँ।"

इस प्रकार उस महान् क्रान्तिकारी का अन्त हो गया। जतीन केवल एक साहसी वीर क्रान्तिकारी नेता ही नहीं थे, उनमें संगठन करने की अद्भुत क्षमता थी। तत्कालीन सभी क्रान्तिकारी उन्हें अपना नेता और मार्गदर्शक मानते थे। उन्होंने एक शक्तिशाली क्रान्तिकारी संगठन खड़ा किया था और सशस्त्र क्रान्ति की भूमिका तैयार की थी। महा-विप्लवी नायक रासबिहारी बोस भी उनको अपना नेता स्वीकार करते थे और उनके पास परामर्श लेने आते थे। नरेन भट्टाचार्य (एम० एन० राय) उनसे बहुत अधिक प्रभावित थे और उनके द्वारा ही वे क्रान्तिदल में दीक्षित हुए थे।

जब जतीन बालासोर हास्पिटल में घायल होकर पड़े थे तब कलकत्ते के एक वरिष्ट योरोपियन पुलिस अधिकारी ने उनके साहस तथा शौर्य से प्रभावित होकर उनसे अत्यन्त आदर के साथ कहा, "मुखर्जी, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ?" वे मुस्कराये और बोले, "धन्यवाद। सब समाप्त हो चुका है। अन्तिम विदा।" केन्द्रीय गुप्तचर विभाग के अधिकारी डेनहेम ने जतीन से हुए युद्ध की जो विस्तृत रिपोर्ट भेजी थी उसमें जतीन की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। जतीन के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा था—"जतीन मुखर्जी बंगाली क्रान्तिकारियों में सबसे अधिक साहसी और खतरनाक क्रान्तिकारी थे।" जतीन केवल साहसी और वीर ही नहीं थे। वे अत्यन्त उदार हृदय, स्नेहशील और उच्चकोटि के नैतिक तथा अध्यात्मिक व्यक्ति भी थे। जो भी उनके सम्पर्क में आता वह उनका बन जाता था। अपने समय के क्रान्तिकारियों के वे सर्वमान्य नेता थे। उनकी योजना थी कि प्रथम महायुद्ध में जब भारत में अंग्रेजी सेना नहीं थी और भारतीय सेनाएँ भी योरप तथा एशिया के रणक्षेत्रों में युद्ध कर रही थीं तब जर्मनी की सहायता से तथा भारत स्थित भारतीय सेनाओं को सशस्त्र विद्रोह करने के लिए तैयार करके क्रान्ति कर दी जाय। उनकी योजना सफल नहीं हुई। उस वीर देशभक्त ने भारत को स्वतंत्र करने के प्रयास में अपने प्राणों को उत्सर्ग कर दिया।

जब भारत में अंग्रेजी शासन का चरम सीमा का आतंक छाया हुआ था, सर्वसाधारण व्यक्ति देश की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए भी भयभीत होता था तब इन क्रान्तिकारियों ने सर पर कफन बाँधकर ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी थी। यह इन्हीं क्रान्तिकारियों के आत्मबलि-दान का परिणाम है कि भारतवासियों में स्वतंत्रता प्राप्त करने की उत्कट भावना जीवित रही, वह मरी नहीं। इन क्रान्तिकारी बलिदानियों के बलिदान के फलस्वरूप देश में जो देशभक्ति की तीव्र भावना उत्पन्न हुई उसकी नींव पर ही राष्ट्रपिता गांधी ने स्वतंत्रता आन्दोलन का भवन खड़ा किया।

परन्तु आज की पीढ़ी उन देशभक्त क्रान्तिकारियों को भूल गयी जिन्होंने अपने प्राणों की भेंट चढ़ाकर देश में स्वतंत्रता प्राप्ति की चाह जीवित रखी। जतीन जैसे महान् देशभक्त बलिदानी का आज कोई नाम भी नहीं जानता। उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। उनके शौर्य और बलिदान की गाथा किसी लेखक या कवि ने नहीं गायी। उनका कोई स्मारक नहीं बना। उनका चित्र लोकसभा की दीर्घा में नहीं लगाया गया। डाक विभाग ने उनके चित्रों के टिकट निकालने तक की आवश्यकता नहीं समझी। हमारे इस लज्जाजनक व्यवहार और आचरण को देखकर स्वयं कृतघ्नता लज्जित और कुंठित होती होगी।

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरनेवालों का यही बाक़ी निशां होगा।

के गायक के शब्दों में यदि हम भारतीयों ने देशभक्त बलि-दानियों की प्रेरणादायक स्मृति को स्थायी बनाकर देश में गहन देशभक्ति की परम्परा स्थापित की होती तो देश की स्थिति आज जैसी निराशामय और दयनीय है वैसी नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतसैया के दोहरे

श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

बकौल ग्रियर्सन भारतीय वाङ्मय की सबसे बड़ी देन उसका वह काव्य है जो सरसता से भरा हुआ है और गेय है, जिसे अंग्रेज़ी में 'लिरिक' कहते हैं। इसका सबसे बड़ा दृष्टांत हम आर्यों के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद की ऋचाओं में पाते हैं और यह सिलसिला इसके बाद हज़ारों बरस तक अटूट चलता रहा—कालिदास और उनके बाद के कवियों तक। प्राकृत काल में इसमें कमी आने के बजाय इसका और भी सौन्दर्य-वर्द्धन हुआ। प्राकृत गीतों के कई संग्रह हुए जिनमें सबसे प्राचीन हाल-कृत सप्तसतिका है जिसका सृष्टि-काल ई० छः माना जाता है। १८१६ में प्रोफेसर वेबर ने इन छोटे-छोटे ग्रामीण गीतों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी—इन्हें कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण बताया था।

इसके बाद १४वीं शती में शार्ङ्गधर-पद्धति नामक एक काव्य-संग्रह सप्तसतिका के ढाँचे पर बना और सप्तसती लिखने की जिस परम्परा की नींव हाल ने डाली थी वह आगे की ओर बढ़ चली। भर्तृहरि के शतक (७वीं शती), अमरुक-शतक (१२वीं शती) गोवर्धनकृत आर्यासप्तशती (१२-वीं शती) आदि ग्रंथ (संस्कृत भाषा में) लिखे गये। १७वीं शती में सप्तशती की इस परम्परा पर अपनी अमूल्य कृति बिहारी-सतसई लिखकर महाकवि बिहारीलाल ने चार चाँद लगा दिये।

सूर, तुलसी आदि की भाँति बिहारीलाल के जीवन-चरित के संबंध में भी निश्चयात्मक रूप से कुछ कहना संभव नहीं है। फिर भी आमतौर पर यह मान्य है कि उनका जन्म ग्वालियर में हुआ था, बचपन बुन्देलखंड में बीता और अंत में वह अपनी ससुराल मथुरा में जाकर बसे, जैसा कि किसी अज्ञात कवि के इस दोहे से भी प्रतीत होता है—

जन्म गवालियर जानिए, खंड बुँदेले बाल,
तरुनाई आई सुभग, मथुरा बसि ससुराल।

उनका जन्म मूर्धाविसिक्त जाति में हुआ था, अर्थात् उनके पिता ब्राह्मण थे और माता क्षत्रिय कन्या थी, जैसा कि पद्माकर, देव, पजनेस तथा ग्वाल कवि के संबंध में कहा जाता है। जन्मकाल सन् १६६२ के आसपास बताया जाता है।

जयपुर के राजा जयसिंह मिर्ज़ा के दरबार में उनके प्रवेश उनके जीवन का सबसे बड़ा मोड़ था। और यहीं पूर्णरूपेण प्रस्फुटित हुआ उनका काव्य-सौष्ठव। कहते हैं वह प्रति दिन एक दोहा रचते थे जिस पर उन्हें जयसिंह द्वारा (प्रति दोहे पर) एक स्वर्ण-मुद्रा प्रदत्त होती थी अर्थात् सतसई के ७०० दोहों पर उन्हें सात सौ स्वर्ण-मुद्रा मिली थीं।

ये दोहे फुटकल ढंग पर रचे गये थे, इनका कोई क्रमबद्ध सिला नहीं था। इन्हें उचित सिलसिले में डालने का सर्व-प्रथम प्रयास औरंगजेब के तृतीय पुत्र शाहजादा आज़म ने (१६५३-१७०७) ने किया। उन्होंने कवियों की एक समिति गठित की और इस काम को उसके जिम्मे सौंपा। दोहों का एक सिलसिला तैयार किया जो आज़मशाही संस्करण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके प्रारम्भिक ५१ दोहे वे थे जिनका संबंध नायक-नायिका तथा प्रेम के विभिन्न अंगों से था। बिहारी सतसई का सबसे पहला गठित रूप यही था। तत्पश्चात् इस पर न जाने कितनी टीकाएं लिखी गयीं जिनमें सुलतान पाठान (१७००), सुरति मिश्र (१७००), राजा गोपालशरण (१७००), कृष्णदत्त (मथुरा निवासी), नवाब अनवर खाँ लिखित अनवर-चन्द्रिका (१७१४), कर्णभट्ट (१७३१-३७), सारन (बिहार) निवासी हरिचरणदास, काशी के राजा चेतसिंह के दरबार में रहनेवाले हरिप्रसाद तथा अवधनिवासी रसिक बिहारी की टीकाएँ विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। पीछे चलकर कलकत्ता फोर्ट विलियम में मुंशी-पद पर नियुक्त लल्लूजी लाल (जो गुजराती थे पर आगरे में, फिर मुर्शिदाबाद में, बसे थे) ने लालचंद्रिका नाम से बिहारी सतसई की टीका १८१८ में लिखी। यही नहीं, कई लोगों ने इसकी नकल में स्वतंत्र सतसइयाँ भी लिखीं, जिनमें चन्दन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१७७३) तथा चरखारी राज्य के विक्रमशाह के नाम मुख्य हैं, पर ये बिहारी सतसई के करीब न पहुँच सकीं; बिहारी यदि जिन्दा होते तो शायद इन्हें देखकर यही कहते कि—

मेरी तर्जे-फुगां की वे अगर तकलीद करते हैं,
खिजल होंगे असर की भी अगर उम्मीद करते हैं।

सन् १८६८ में काशी के परमानन्द पंडित ने सरल संस्कृत दोहों में बिहारी सतसई का टीका के साथ-साथ अनुवाद भी किया (जिसके लिए कहते हैं, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उन्हें पारितोषिक-रूप में सात सौ रुपये प्रदान किये थे) और इसमें सन्देह नहीं कि संस्कृत के ये दोहे बड़े सुन्दर साबित हुए। उदाहरणार्थ इसके कुछ दोहे आपके पेश-नजर हैं।

सतसई का प्रथम दोहा है—

मेरी भव-बाधा हरो, राधा नागरि सोय,
जा तन की झाई परै, स्याम हरित दुति होय।

परमानन्द पंडित ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

अपनय भवबाधाभयं, राधे त्वं कुशलासि,
हरिरपि धरति हरिद्युतिं, यदि माधवमुपयासि।

तीन और दोहे—

बिहारी—

ऊँचे चितै सराहियत, गिरह कबूतर लेत,
झलकित दृग, प्रफुलित बदन, तन पुलकित किहि हेत।

परमानन्द—

दृष्ट्वा नभसि कपोतकं, कीर्तिं तस्य तनोषि,
वद विकसितवदनं कयं, रोमांचितं चिनोषि।

बिहारी—

बिहँसि बुलाय, लगाय उर, प्रौढ़ तिया रसघूमि,
पुलकि पसीजत पूत कौ, प्यौ चूम्यो मुख चमि।

परमानन्द—

चुम्बति सति बालाननं, रमणे मदनबलेन,
चुम्बति सापि रसावृता, वृताघर्मसलिलेन,

बिहारी—

कच समेटि, कर भुजि उलटि, खये सीसपट डारि,
काको मन बाँधे न यह, जूरौ बाँधनहारि।

परमानन्द—

उन्नमय बाहुद्वयं कच पुंजं गृह्णाति
प्रिया केशबन्धे मनः कस्य न सा बध्नाति।

वर्तमान काल में भी बिहारी सतसई पर दर्जनों टीकाएँ लिखी गयीं। इनमें सर्वाधिक विख्यात, पांडित्यपूर्ण तथा रोचक टीका स्व० पद्मसिंह शर्मा की है जिसने किसी समय हिन्दी-संसार में तहलका मचा दिया था। खेद है कि यह अब अप्राप्य है। किसी हिन्दी-प्रकाशन-संस्थान ने इसके पुनर्मुद्रण की ओर ध्यान नहीं दिया। शर्माजी के इस टीका-ग्रंथ में केवल सतसई की टीका ही नहीं है बल्कि बिहारी के दोहों के भाव से मिलते-जुलते सैकड़ों संस्कृत की समानान्तर पंक्तियाँ और उर्दू के शेर उद्धृत हैं जो बिहारी के दोहे की श्रेष्ठता प्रदर्शित करते हैं। यह एक ऐसी कृति है जिसे देखकर ग्रियर्सन साहब यदि जीवित होते तो निःसन्देह आनन्द से उछल पड़ते। उदाहरणार्थ, बिहारीलाल के इस दोहे की चर्चा करते हुए

छुटे छुटावे जगत तें, सटकारे सुकुमार,
मन बाँधत बेनी बँधे, नील छबीले बार।

पंडित पद्मसिंहजी ने संस्कृत के इस मोजूँ श्लोक को उद्धृत किया—

कमलाक्षि ! विलम्ब्यतां क्षणं कमनीये कचभार बन्धने,
दृढलग्नमिदं दृशार्युगं शनकैरदयसमुद्धराम्यहम्,

(अभी ठहरो, अभी जूड़ा न बाँधो, मेरी आँखें केशपाश के जाल में फँसी हैं, मैं जरा उन्हें आहिस्ता-आहिस्ता उभार लूँ, वहाँ से इन्हें निकाल लूँ, कहीं वे बालों में बँधी न रह जायँ।)

और उर्दू के इस शेर को—

लटों में कभी दिल को लटका लिया,
कभी साथ बालों के झटका दिया।

और इस तरह तुलना के तराजू पर इन्हें तौलकर यह साफ कर दिया कि बिहारी के दोहों के संबंध में जो यह उक्ति है कि

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर,
देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर

वह सर्वथा सच है। उसकी भावगरिमा औरों से कहीं बढ़ी-चढ़ी है। ग्रियर्सन महोदय के इस कथन में कि पिछले

[शेष पृष्ठ ३१९ पर देखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी आलोचना : उपलब्धियाँ और अभाव (२)

डा० नारायणप्रसाद वाजपेयी 'करुणेश'

(गतांक से आगे)

सप्तक वक्तव्यों के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से साहित्यिक समीक्षा पर लिखनेवाले सप्तक कवियों और प्रपद्यवादियों में अज्ञेय, मुक्तिबोध, लक्ष्मीकान्त वर्मा, धर्मवीर भारती, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, विजयदेव नारायण साही, पं० नलिन विलोचन शर्मा, प्रो० केसरीकुमार, डा० जगदीश गुप्त आदि प्रमुख हैं।

आलोचना को कवि का आपद्धर्म माननेवाले कवि उपन्यासकार लेखक सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने समकालीन काव्य की दिशा और उपकरण तथा सीमाओं को स्पष्ट किया। उन्होंने कविता को वैज्ञानिक, तटस्थ, बौद्धिक और निर्वैयक्तिक बताया, आत्म स्पष्टीकरण की अनिवार्यता का निर्घोष किया और प्रयोग को साधन के रूप में स्वीकारा। उन्होंने काव्य को कवि का परम वक्तव्य, उसकी विवशता और व्यक्तित्व से मुक्ति का साधन बताया है तथा प्रयोग की अनिवार्यता को गहराया है। पुष्करिणी, तारसप्तकों की भूमिकाएँ, त्रिशंकु, आत्मनेपद, हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, अज्ञेय की वे समीक्षा कृतियाँ हैं जो नयी कविता के लिए आमुख पृष्ठभूमि तैयार कर सकी हैं।

मुक्तिबोध ने प्रगतिशील परंपराओं में आस्था रखकर युगानुरूप काव्य मर्यादाओं पर विचार किया। उन्होंने काव्य को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया माना, 'क्षण' की महत्ता को बतलाया और नये सौन्दर्य प्रतिमानों का निर्माण करने में पहल की। उन्होंने कामायनी : एक पुनर्विचार, एक साहित्यिक की डायरी, नयी कविता का आत्मसंघर्ष और अन्य निबन्ध, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, जैसी गंभीर प्रखर समीक्षा कृतियों से साहित्य समीक्षा में व्याप्त अनेक प्रवंचनाओं और विसंगतियों का उद्घाटन किया। उन्होंने इन समीक्षा कृतियों में सृजन और समीक्षा के बुनियादी प्रश्नों पर, कृति की संरचना की प्रक्रिया के सोपानों पर मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं। मुक्तिबोध ने नयी कविता के मर्म से अपरिचित पुराने प्रगतिवादी समीक्षकों का विरोध किया, नयी कविता को गलत दिशाएँ देनेवाले अपने अनेक समानधर्मा कवियों की प्रत्यालोचना की और आधुनिक लेखक की रचना प्रक्रिया की जटिलता का विश्लेषण किया।

डा० धर्मवीर भारती की मानवमूल्य और साहित्य, 'पश्यन्ति', 'प्रगतिवाद' और आधार, कल्पना, धर्मयुग आदि में प्रकाशित समीक्षा लेख, डा० जगदीश गुप्त की 'नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ', पं० नलिन विलोचन शर्मा के आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह 'दृष्टिकोण' और 'साहित्य का इतिहास दर्शन', नेमिचन्द्र जैन के 'बदलते-परिप्रेक्ष्य', 'अधूरे-साक्षात्कार', 'रंगदर्शन', लक्ष्मीकान्त वर्मा की 'नयी कविता के प्रतिमान', 'नये प्रतिमान : पुराने निकष', गिरिजाकुमार माथुर की 'नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ,' शमशेर की 'दो आब', भारतभूषण अग्रवाल की 'प्रसंगवश' आदि कृतियाँ नये साहित्य के विविध आयामों को रोशनी दिखाती हैं।

शुद्ध आलोचकों में डा० नामवरसिंह, डा० रघुवंश, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डा० शम्भुनाथ सिंह, डा० बच्चन सिंह, डा० शिवप्रसाद सिंह, डा० देवीशंकर अवस्थी, डा० विद्यानिवास मिश्र, डा० रमेश कुन्तल मेघ, रमेशचन्द्र शाह, गिरिराज किशोर आदि आते हैं।

डा० नामवर सिंह की छायावाद, कवित्व के नये प्रतिमान, इतिहास और आलोचना, कहानी, नयी कहानी समसामयिक रचना जगत् के प्रति उनकी संसक्ति को व्यक्त करती हैं। हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग तथा पृथ्वीराज रासो का आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के साथ सहसम्पादन और पाठशोध डा० नामवर की बहुमुखी सामर्थ्य को प्रकट करते हैं। डा० नामवर सिंह समसामयिक सन्दर्भों में काफी विवादास्पद रहे हैं। उनकी प्रसिद्धि का एक कारण यह भी है।

डा० रघुवंश की 'हिन्दी साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य', रामस्वरूप चतुर्वेदी की नवलेखन भाषा और संवेदना, अज्ञेय और आधुनिक रचनाशीलता, हिन्दी साहित्य की आधुनातन प्रवृत्तियाँ, डा० रमेश कुन्तल मेघ की मिथक और स्वप्न, आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, तुलसी : नये वातायन से, देवीशंकर अवस्थी की 'विवेक के रंग', नयी कहानी की समीक्षा कृतियाँ, परमानन्द श्रीवास्तव की नयी कविता का परिप्रेक्ष्य, बालकृष्ण राव के हंस और माध्यम में प्रकाशित समीक्षा के व्यवहार और सिद्धान्त पक्ष पर विचारात्मक लेख, गंगाप्रसाद विमल एवं दूधनाथ सिंह के छायावादी कवियों पर, मलयज की नयी कविता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीकविधान पर, कुमार विमल की छायावाद के सौन्दर्य-शास्त्रपरक अध्ययन पर, आनंदप्रकाश दीक्षित का रस सिद्धान्त : स्वरूप और विश्लेषण, ओंकारनाथ श्रीवास्तव का हिन्दी साहित्य-परिवर्त्तन के सौ वर्ष आदि कृतियाँ हमारी समीक्षा संचेतना की समसामयिक उपलब्धियाँ हैं।

प्रयोगवादी और नयी कविता को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने अनिश्चय, उद्देश्यहीनता और संशयालु मनोवृत्ति का संस्कारहीन साहित्य कहा। डा० नगेन्द्र ने प्रयोगवाद को छायावाद की अतिशय कोमलता और मार्दव के विरुद्ध अनगढ़ और भदेस प्रतिक्रिया बताया। शिवदान सिंह चौहान जैसे प्रगतिशील समीक्षकों ने प्रयोगधर्मी नयी कविता पर दुरूहता, सामाजिक अनुत्तरदायित्व का अभियोग लगाकर उसे त्रिशंकुवत् निराधार बताया।

नये साहित्य के प्रति हिन्दी के प्रौढ़ समीक्षकों की यह रोष दृष्टि बहुत अंशों में वैयक्तिक मान्यताओं के टकराव का परिणाम है। आज स्थिति बदल चुकी है और नया साहित्य प्रौढ़ प्रतिनिधि समीक्षकों की सहानुभूति पाने में बड़ी सीमा तक गंभीर रूप से सफल हुआ है।

कुबेरनाथ राय, विश्वंभर 'मानव', श्याम परमार, सकलदीप सिंह, निर्मला जैन, वचनदेवकुमार, हिमांशु श्रीवास्तव, राममूर्त्ति त्रिपाठी प्रभृति अनेक नयी प्रतिभाएँ हिन्दी साहित्य समीक्षा में योग दे रही हैं। इन नये आलोचकों द्वारा साहित्य के नये मूल्य और विश्लेषण की नवीन प्रणाली का विकास हुआ है। प्राचीन शास्त्रीय चिन्तन और नवीन युग बोध के सामंजस्य से पुनर्मूल्यांकन के वातायनों का उद्घाटन हुआ है तथा हिन्दी आलोचना की नयी भाषा को गति मिली है।

साहित्यिक अनुसंधान से भी आलोचना के सिद्धान्त और प्रयोग दोनों पक्ष लाभान्वित हुए हैं। स्वीकृत शोध प्रबन्धों तथा शुद्ध साहित्योपासना के हेतु की गयी गवेषणाओं और सारस्वत अनुसंधानों ने हमारी आलोचना को गंभीर तत्त्व दृष्टि, वैज्ञानिक चिन्तन, अभिव्यक्ति और अन्य ज्ञानानुशासनों की विविध उपलब्धियों से समृद्ध बनाया है। आदिकाल, मध्यकाल, रीतिकाल, आधुनिक साहित्य, लोक साहित्य, तुलनात्मक समीक्षा, क्षेत्रीय साहित्य, इतिहास, दर्शन, मनोविज्ञान और दर्शन से सम्बद्ध साहित्यिक शोध हमारी आलोचना के दृष्टि क्षितिज को विस्तीर्ण बनाते हैं।

आलोचना के स्वरूप विधान में हिन्दी पत्रकारिता का असाधारण योग रहा है। पत्रकारिता आलोचना को किस हद तक ऊँचा उठा सकती है अथवा नीचे गिरा सकती है इसकी प्रत्यक्ष मिसाल हमारे साहित्य में मिलती है। यदि पत्रकार तटस्थ, निष्पक्ष और सहृदय है तो निश्चय ही आलोचना उपकृत होती है। सरस्वती, इन्दु, प्रतीक, वीणा, आलोचना, विशाल भारत, नया सबेरा, नयी चेतना, आधार, साहित्य संदेश, सम्मेलन पत्रिका, परिषद् पत्रिका, हिन्दी अनुशीलन, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, लहर, सारिका, धर्मयुग, ज्ञानोदय, वातायन, नयी माध्यम, हंस, विकल्प, निरन्तर आदि अनेक पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी आलोचना को साम्प्रतिक और गतिशील बना रही हैं।

साहित्य के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी पुस्तकें लिखने के लिए विशेष दायित्व और निष्ठा की आवश्यकता है। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी के पठन-पाठन और प्रचार-प्रसार से माँग और पूर्त्ति के आधार पर हिन्दी में छात्रोपयोगी आलोचनाएँ लिखी जाने लगीं।

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, बाबू गुलाबराय, डा० विनय-मोहन शर्मा, डा० विजयेन्द्र स्नातक, डा० रामरतन भटनागर, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पं० नलिनविलोचन शर्मा, डा० सत्येन्द्र, डा० प्रेमनारायण टण्डन, डा० गणपति चन्द्र गुप्त, नरोत्तम स्वामी आदि अनेक प्राध्यापकों, साहित्यिकों ने छात्रोपयोगी उच्चस्तरीय आलोचना कृतियों का भाण्डार भरा है।

परिमाण की दृष्टि से आज हिन्दी में अनेक छात्रोपयोगी समीक्षा कृतियाँ लिखी जा रही हैं। उनमें लेखकों और प्रकाशकों के व्यावसायिक दृष्टिकोण तथा छात्रों के प्रयत्नलाघव की प्रवृत्ति के फलस्वरूप मौलिकता तथा ठोस सुचिंतित, तथ्यात्मकता का अभाव है। इसी कारण दृष्टि-दोष और पूर्वग्रहों का प्रसार हो रहा है। हमारा समीक्षा साहित्य घटिया और बाजारू न बने इसके लिए सम्मिलित प्रयास की आवश्यकता है।

नव्य साहित्यशास्त्र, हिन्दी साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियों का विवेचन विश्लेषण करनेवाले मानक इतिहास ग्रन्थ, गतिशील और सक्रिय साहित्यिक सम्मेलनों और साहित्य परिषदों, संस्थानों, विश्वविद्यालयों, सरकारी संस्थाओं के प्रयासों से निष्पन्न होनेवाली शोध संगोष्ठियाँ, साहित्य-चर्चाएँ एवं व्याख्यान मालाएँ, पर्यवेक्षण, सभी प्रकारान्तर से हिन्दी समीक्षा को समृद्ध बनाते हैं।

अस्तु पत्रकारिता, शोध, पाठ्य समीक्षाएँ, इतिहास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं साहित्यशास्त्र, लेखन तथा अन्य अनेक साहित्यिक गतिविधियों से हिन्दी की समालोचना का स्वरूप बन और बिगड़ रहा है। साहित्य को तोड़-मरोड़कर उसका विकृत और दोषपूर्ण चित्र प्रस्तुत करना हमारे सृजनशील और समीक्षा साहित्य दोनों के लिए अनिष्टकारक है।

साहित्य अकादमी से प्रकाशित डा० नामवर सिंह के 'स्वाधीनतोत्तर भारतीय साहित्य' में 'स्वाधीनतोत्तर हिन्दी साहित्य' पर लिखे गये सर्वेक्षण के प्रति श्री अमृत राय ने हिन्दी साहित्य जगत् के विक्षोभ को 'धर्मयुग' में, 'स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य के सन्दर्भ में' नाम से लिखे दो धारावाहिक निबन्धों के माध्यम से प्रखर अभिव्यक्ति दी है। हिन्दी पाठकों को स्मरण होगा कि 'अज्ञेय' द्वारा अकादमी के 'आधुनिक भारतीय साहित्य' को लेकर भी पाठकों, समीक्षकों और सर्जकों में ऐसी ही तीखी प्रतिक्रिया हुई थी। अमृत रायजी की बेबाक अभिव्यक्ति और उत्तर-प्रत्युत्तर की शैली ने हमारी विकृत समीक्षा दृष्टि का मोह भंग करने का साहस किया है।

स्वतंत्रता के पश्चात् द्रुतगति से विकसित होनेवाले नवगीत, कहानी, उपन्यास, जीवनी, रेखाचित्र, नाटक, एकांकी साहित्य-सृजन के समानान्तर समीक्षा ने भी तेजी से डग भरने प्रारम्भ किये हैं। डा० सत्येन्द्र, डा० इन्द्रनाथ मदान, डा० प्रेमनारायण टण्डन, स्व० डा० देवीशंकर अवस्थी, गोपाल राय, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, डा० रणवीर रांग्रा, नेमिचन्द्र जैन, अज्ञेय, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, अश्क, परसाई, डा० नामवर, डा० नगेन्द्र, हृषीकेश, सुरेन्द्र चौधरी, मोहन 'राकेश', परमानन्द श्रीवास्तव, राजेन्द्र यादव, रमेश बख्शी, नित्यानन्द तिवारी, श्रीकान्त वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, धनंजयवर्मा, मांधाता ओझा, बच्चन सिंह, रामदरश मिश्र, जगदीशचन्द्र माथुर आदि अनेक सुधी समीक्षकों ने साहित्य की नयी विधाओं के सृजनशील साहित्य की समीक्षा करके हमारी समीक्षा को सर्वाङ्गसमृद्ध बनाने में योग दिया है।

समीक्षकों की समकालीन साहित्य के प्रति संसक्ति समीक्षा के उत्कर्ष के लिए बहुत ही शुभ लक्षण है। उसमें साहित्य की विविध उपलब्धियाँ रूपायित हो रही हैं। इस प्रकार नवीन मूल्यों और उद्भावनाओं का उदय, अप्रस्तुत प्रतीक विधान, नये बिम्ब, लय, अलंकार, प्रयोग, बौद्धिकता, यथार्थवादी सत्यान्वेषण, छोटी-छोटी अनुभूतियों के आत्मीय और सार्थक चित्र, प्रखर क्रुद्ध ललित साहित्य, कलात्मक स्वातंत्र्य का भाव, सूत्रात्मकता, अनास्था आस्था का जीवन दर्शन, अनुभूति की प्रामाणिकता का आग्रह, आधुनिकता और प्रतिबद्धता सम्बन्धी प्रतीतियाँ, निस्संदेह नये साहित्य के शैली शिल्प, वस्तुतंत्र और रूप विधान सम्बन्धी उपलब्धियों के संकेत देते हैं।

समीक्षा का महत्त्व इस बात में है कि वह पाठक भावक को रचना से रसग्रहण, अर्थग्रहण और साधारणीकरण बैठाने में सहायक हो तथा साहित्य के श्रेय की वृद्धि करनेवाले सृजन को प्रोत्साहित करे, और कृतिकार को रचना के सम्बन्ध में उपयोगी सुझाव देकर साहित्य के दिशा-निर्देश का विनम्र प्रयास करे। कितने अंशों में हमारी समीक्षा सफल हुई है इस प्रश्न का उत्तर ही हमारी समीक्षात्मक उपलब्धियों और अभावों के गुणात्मक और परिमाणात्मक विश्लेषण से जुड़े अनेक प्रश्नों का सार्थक उत्तर हो सकता है।

समय के साथ समीक्षा के मूल्य बदले हैं और हमारी समीक्षात्मक मनीषा के क्षितिज, क्षेत्र एवं सीमाओं का विस्तार तथा स्वरूप का पुनर्संस्कार हुआ है। समीक्षा आज कृति के कथ्य की व्याख्या से काफी आगे बढ़कर सृजन की प्रकिया, साहित्यकार के व्यक्तित्व, युगीन परिस्थितियों के प्रभाव एवं निरंतर विकसित होने वाले साहित्येतर शास्त्रों के गतिमान पहलुओं को अपने परिप्रेक्ष्य में रखकर साहित्य की गुण-दोष परीक्षा, वस्तु संघटना, रूप विधान एवं अप्रस्तुत रचना एवं रस-निष्पत्ति का विवेचन कर रही है। यह दृष्टि विस्तार एक बड़ी उपलब्धि है। हमारी समीक्षा दृष्टि आज की तनावपूर्ण परिस्थितियों में भी अपनी संवेदना में गम्भीर, परिष्कृत, शिष्ट, व्यापक, उदात्त और ऊर्ध्वमुखी होने के लिए निरंतर जो अनेक संघर्ष अनेक स्तरों पर कर रही है वह निश्चय ही उसकी जीवन्त सामर्थ्य एवं उज्ज्वल सम्भावनाओं की ओर लक्ष्य करते हैं।

हिन्दी समीक्षा की उपलब्धियों पर इतना कहने के पश्चात् अभावों के सन्दर्भ पर आना उचित होगा। कई अंशों में, साधना और आत्मविश्वास के अभाव तथा व्यवहार और सिद्धान्त दोनों पक्षों में समन्वय के अभाव से आज तक नयी समीक्षा यथास्थिति की लीक पर चल रही है। यों हिन्दी की नयी समीक्षा में पिछली शताब्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा के प्रति तीव्र असहमति, आक्रोश, और विद्रोह की मुद्राएँ हैं, समीक्षा की रूढ़ पारिभाषिक शब्दावली को बदलने का उद्घोष है, प्रचलित मूल्यों और प्रतिमानों को अपर्याप्त और अर्थहीन कहने का विकट साहस है, परम्परा के प्रति संशय और चुनौती का भाव है, परिवर्त्तन, आधुनिकता और समसामयिकता का तुमुल नाद है और समकालीन साहित्य से कदम से कदम मिलाकर चलने का दावा है। इतने आन्दोलनों, नारों, जुलूसों और तमाम ढिंढोरों के बावजूद कैसा करुण और कुटिल व्यंग्य है कि इसी नयी समीक्षा में युगों पुरानी उच्छिष्ट मान्यताओं की ज्यों की त्यों दुहाई देकर वावावाक्यं प्रमाणम् की आवृत्ति हो रही है। एकदम नयी जमीन तोड़कर नयी नींव पर नयी तकनीक से अपने प्रकृत पंथ का निर्माण करनेवाले कितने नव्य समीक्षक हैं ?

पुरानी प्रतिष्ठित मान्यताओं और उद्भावनाओं पर पलस्तर चढ़ाकर उन्हें नया कहने की वृत्ति मात्र आत्मप्रवंचना होगी। उर्वर मौलिक और अभिनव समीक्षा की खोज हम पुराने की प्रकृति और नये उपकरणों की मर्यादा की पहचान व परख करके ही भली प्रकार कर सकते हैं। हिन्दी में आज भी पत्र-पत्रिकाओं, घोषणापत्रों और अंधाधुंध प्रचार की विषैली आतिशबाजी छोड़कर, साहित्यकारों का संरक्षण और स्थापना का गुरुडम चलाकर, नये सिद्धान्तों के गुब्बारे उड़ाकर अहं का विस्फोट करनेवाले स्वार्थी मठाधीशों की परंपरा स्थापित है। समीक्षा के क्षेत्र में आज भी अतिवादिताओं का दौरदौरा है। समीक्षकों का एक वर्ग समकालीन परिवेश की चुनौती को स्वीकारने से कतराता है और नयी विधाओं और समीक्षा की नयी प्रणाली के विकसित होने पर बगलें झाँकता है।

दूसरा वर्ग उन समालोचकों का है जो भारतीय साहित्य संस्कृति की प्राण शक्ति से अपरिचित, अपने समाज की मूल समस्याओं से असंप्रज्ञात रहकर पाश्चात्य साहित्य के घटाटोप में साहित्य की समीक्षा करने का दम भरते हैं। इसी प्रकार एक अन्य वर्ग उन समालोचकों का है, जिनके आन्तरिक साहित्यिक विवेक पर वादग्रस्तता और गुटबन्दी का आतंक आरोपित है।

इस प्रकार की समीक्षा के शिकंजे में पड़कर साहित्य की नयी और पुरानी कृतियाँ अपने वास्तविक स्वरूप, संवेदना और अर्थ को खोने का आभास देती हैं।

हिन्दी समीक्षा की एक व्यापक प्रवृत्ति का उल्लेख करना अनुचित न होगा। हमारे समालोचकों की वर्गीकरण की स्थूल विभाजन रेखाओं के प्रति आसक्ति ने व्यक्ति, कलाकार या कृति-विशेष को सम्बद्ध सामूहिक काव्य अथवा साहित्य की प्रतिनिधि प्रवृत्ति के सन्दर्भ में तो देखा है, किन्तु प्रवृत्ति की इकाई के रूप में, कृतिकार के निजी वैशिष्ट्य, उसकी रचनाओं के वैविध्य तथा उसकी प्रकृति की असाधारणता पर हमारी समालोचना का ध्यान नहीं गया है। सर्जना को किसी विशिष्ट काव्यधारा के कटघरे में रखकर देखना चाहे जितना भी सुविधाजनक हो, वह व्यक्ति, कलाकार की उपलब्धियों को सामूहिक उपलब्धियों की भीड़ में गड्डमड्ड कर धुँधलाने के खतरे से मुक्त नहीं होता। अतः आज आवश्यकता है भीड़ में और भीड़ से अलग दोनों तरह से कृति को देखने की।

उसके निजी अपने विशिष्ट कलात्मक उद्देश्य में, कृतिकार के रचना संसार की झाँकी में, युगीन मूल्यों के सन्दर्भ में कृति को परखनेवाली दृष्टि ही साहित्य सृजन और समीक्षा में तालमेल बैठाने का दावा कर सकती है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी मौलिकता, उर्वर प्रतिभा और प्रकृति का विकास करें, विदेशी साहित्य के कूड़ादानों में टक्करें न मारें और सिर ऊँचा करके विराट् साहित्यिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए जमीन तैयार करें। यही नहीं, अर्थ का अनर्थ करने वाली, भ्रामक, अनैतिहासिक, अप्रासंगिक, और 'अपनी ढपली पर अपना राग' को अपनानेवाली समीक्षाओं से साहित्य को शीघ्र मुक्ति दिलायें !

निरन्तर आयास और कठोर साधना के बल पर ही हमारे साहित्य का विकास सम्भव है। उदार-हृदयता से ही साहित्य को प्रेरणा और प्रशस्ति दी जा सकती है। समीक्षा के क्षेत्र में हिन्दी साहित्य में निश्चय ही कीर्त्ति के धवल शिखर स्थापित हुए हैं, किन्तु कुछ मूर्धन्य समीक्षकों के अतिरिक्त साहित्यिक समीक्षा का सामान्य स्तर हमारी परंपरा और गौरव के अनुरूप नहीं बन पाया है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा साहित्य ठहरा हुआ, रूठा हुआ, कुंठित और बेजान, बेजबान न हो, यदि हम चाहते हैं कि हमारा साहित्य साम्प्रतिक, गतिमय, सजीव और सम्प्रेषणीयता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के स्पन्दनों से युक्त हो, यदि हम चाहते हैं कि हमारी लोकमान्या राजमान्या मातृभाषा राष्ट्रभाषा हिन्दी अधिकाधिक शक्तिसम्पन्न, समर्थ, ऊर्जस्वित होकर सर्वत्र महत्त्व और गौरव प्राप्त करे तो इसके लिए हम सभी को अपने संकीर्ण स्वार्थों और सुविधाओं को तिलांजलि देनी होगी, साहित्य के सही स्वरूप को अस्पष्ट और धूमिल बनानेवाले मुखौटों को, समीक्षा को रूढ़िबद्ध और घुमावदार बनानेवाले अप्रासंगिक चौखटों को तोड़ना होगा, आलोचना की रूढ़ भाषा में सुधार और परिवर्त्तन ही नहीं, नये सिरे से निर्माण कार्य भी करना होगा। दिग्भ्रम, लक्ष्यहीनता और संशय उपजानेवाले व्यर्थ, बौद्धिकता और तर्कवाद के कृत्रिम व्यामोह को छोड़कर पुराने मूल्यवान तत्त्वों और नयी सारवान विधाओं का सार्थक समन्वय कर संकीर्णताग्रस्त दृष्टि को अधिकाधिक उदार एवं व्यापक बनाना होगा।

यदि हम चाहते हैं कि हमारा साहित्य उत्कर्ष और परिमाण की दृष्टि से इतना समृद्ध, विकसित और समर्थ हो कि बिना किसी हीनता ग्रन्थि के विश्व की बड़ी से बड़ी भाषा के साहित्य से हर क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर चल सके, हर विधा में डटकर टक्कर ले सके, यदि हम चाहते हैं कि हमारा समूचा भारतीय साहित्य विश्व साहित्य मंच पर अलग-थलग बँटी इकाइयों में नहीं एक राष्ट्रीय समष्टि के रूप में अखिल भारतीय साहित्यिक मनीषा का प्रतिनिधित्व करे तो हिन्दी के समीक्षकों को भी अपनी समाहार शक्ति का विस्तार करना होगा। संकीर्णता को त्यागकर सम्पूर्ण देश को अपनी साहित्यिक सीमाओं में मापना समेटना होगा, अपनी एक एक हमजोली भारतीय भाषा के साहित्य, संस्कृति से भेंट मिलाप की, आदान-प्रदान की स्वाभाविक प्रणाली बनानी होगी और एक ऐसी सर्वाङ्गीण दृष्टि का विकास करना होगा जो देश के विभिन्न प्रान्तों और विदेशों में होनेवाली हिन्दी साहित्य की समष्टिगत, व्यष्टिगत उपलब्धियों को उनके वैविध्य और सम्पूर्णता में परख सके।

समकालीन साहित्य में जिस आधुनिकता का ढिंढोरा पीटने का फैशन बन गया है, वह वस्तुतः फैशन नहीं जीवन के शाश्वत प्रवाह का अविच्छिन्न संतत स्वर है, वह जीवन्त परिवर्त्तनों के प्रति उदात्त प्रबुद्ध चैतन्य का भाव है, जीवन की एक समष्ट्यात्मक दृष्टि है। नौसिखियों और मौलिक प्रतिभाओं को अनर्गल और परंपराभ्रष्ट कहकर अपमानित करना और संकीर्ण क्षुद्रता की अंधी लाठी से श्रेयस्कर साहित्य साधना को ध्वस्त करना हमारे साहित्य के लिए शोभनीय नहीं है।

आधुनिकता का तकाजा भी यही है कि हमारे समीक्षक उत्तराधिकार में प्राप्त उपलब्धियों का पूर्ण समाहार करें, नये ज्ञान-विज्ञान में संसक्ति रखें और पाश्चात्य और पौरस्त्य समीक्षा सिद्धान्तों में अवगाहन करके समीक्षा की सुस्पष्ट कार्य-सरणि और विशिष्ट परम्परा का निर्माण करें। यही नहीं, सबसे बड़ी बात तो है सिद्धान्त और व्यवहार दोनों पक्षों में एकरूपता और समरसीकरण की आवश्यकता की। जिन मूल्यांकन के प्रतिमानों और समीक्षादर्शों को हम सैद्धान्तिक मान्यताओं के रूप में स्थापित करते हैं उनको व्यवहार और प्रयोग पक्ष में भी पूरी निष्ठा और आत्मविश्वास से अपनायें। तभी हम युगीन सन्दर्भों में कृतिविशेष के महत्त्व की स्थापना, समसामयिक साहित्य का प्रबुद्ध विवेचन और पुरानी अज्ञात, अल्पज्ञात और सुविख्यात, सुप्रतिष्ठित कृतियों पर विचार, पुनर्विचार कर सकेंगे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की भाषा-समस्या

श्री ओमप्रकाश भाटिया 'अराज'

१. समस्या जानने की आवश्यकता

भाषा केवल विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम ही नहीं होती, वरन् स्थान एवं काल विशेष के समाज की सभ्यता और संस्कृति का, उसके गौरव का या इसके विपरीत समाज के असभ्य, असंस्कृत, दुर्बल, पराश्रित आदि होने की परिस्थिति का प्रतिबिंब भी होती है। किसी भी समाज का सही चित्र केवल उसकी भाषा में मिलता है। यही कारण है कि प्रत्येक समाज, देश या राष्ट्र अपनी-अपनी भाषा को अपने कार्य-संचालन का, अपनी अभिव्यक्ति का तथा अपने उन्नयन का माध्यम बनाता है और इस माध्यम को सशक्त बनाने के लिए अपनी-अपनी भाषा की संरक्षा एवं समृद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है।

स्थान-विशेष पर किसी भाषा का विकास कैसे हुआ, यह तो भाषा-विज्ञान का विषय है। सामाजिक अध्ययन के लिए इतना भर मान लेना पर्याप्त है कि प्रत्येक समाज में प्रकृतिक रूप से उसकी भाषा का उद्भव और विकास होता है, आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है जिसे अवश्यम्भावी माने बिना गति नहीं, चाहे उसे विकास कहें या ह्रास। वह स्वतः विकसित भाषा जब साहित्य से अलंकृत होकर गरिमामयी भाषा के रूप में किसी समाज को प्राप्त होती है तब समाज पीढ़ी-दर-पीढ़ी उस भाषा को माँ के दूध की तरह पान करता है। स्वयं बढ़ता है, अपनी भाषा को बढ़ाता है। माँ के दूध से भाषा का अमृत इसलिए उत्तम है कि यह दूध कभी सूखता नहीं और इसे पीनेवाला समाज माँ के एक पुत्र-विशेष से इसलिए उत्तम है कि समाज पीढ़ियों द्वारा अमर होता रहता है। इस प्रकार भाषा और समाज सतत प्रवहमान इकाइयाँ हैं जो एक दूसरे में होकर जोती हैं, बढ़ती हैं; अमर और अविच्छिन्न, अविभाज्य, एक दूसरे की सतत आत्मीय।

भाषा के इस स्वाभाविक विकास को देखते हुए भाषा कोई समस्या नहीं होती, लेकिन समय, स्वार्थ और राजनीति जैसे कुछ कारण उसे समस्या बना देते हैं। जागरूक समाज इस ओर सदा सावधान रहा है और ऐसा समय नहीं आने देता कि भाषा समस्या बन जाय। जब तक भाषा समस्या नहीं बनती, तब तक भाषा और समाज दोनों एक दूसरे से लाभान्वित होते रहते हैं और दोनों समृद्ध होते हैं। जब भाषा समस्या बन जाती है तब भाषा और समाज दोनों के मार्ग में अवरोध खड़े हो जाते हैं। अतः दोनों की प्रगति रुक जाती है। समाज और भाषा अन्योन्याश्रित हैं अतः यह दोनों के हित में है कि यदि कभी भाषा समस्या हो जाय तो उसे शीघ्रातिशीघ्र सुलझा दिया जाय ताकि प्रगति का क्रम अवरुद्ध न हो।

संसार के अनेक देशों में किसी ऐतिहासिक मोड़ पर भाषा समस्या के रूप में आयी, लेकिन समस्या को सुलझाने में अधिक समय नहीं लगा।[1] भाषा समाज का अविभाज्य अंग है। अतः संबद्ध समाज ने उसे बहुत शीघ्र सुलझाकर अपना हित ही किया। संसार के विभिन्न भागों का इतिहास इसका गवाह है। लेकिन भारत में ऐसा नहीं हुआ। भारत १५ अगस्त सन् १९४७ को स्वतन्त्र हुआ। तब से भाषा की समस्या प्रयत्न करते रहते पर भी उलझती गयी और उसके कारण भारत की प्रगति में बाधा पड़ी। इस समस्या के अब तक न सुलझ पाने के लिए हम किसी अन्य को दोषी ठहराने से अपनी अदूरदर्शिता पर परदा नहीं डाल सकते। हमने अपनी भाषा नीति का भूत-वर्तमान-भविष्यत् आद्योपांत देखने का कभी प्रयत्न ही नहीं किया। हमने इस समस्या को इसके महत्त्व के अनुकूल समझने और सुलझाने का कष्ट नहीं किया। यदि निष्ठापूर्वक समस्या सुलझाने का प्रयत्न हो तो कोई भी समस्या ऐसी नहीं जो सुलझ नहीं सकती और यदि वह भाषा-जैसी समस्या हो, जिसके विकास पर हमारा विकास होगा, जिसके पतन पर हमारा पतन होगा, तो कोई कारण नहीं कि वह समस्या हल न हो।

---

१. जैसे, इज़राईल में (दे० 'पृथ्वी-परिक्रमा'—सेठ गोविंददास, पृ० ३४)

या स्विट्ज़रलैंड में (वही, पृ० ९१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि हम इस समस्या को हल करना चाहते हैं तो हमें

१. इस समस्या को पूरी तरह समझना होगा,

२. भावनाओं से ऊपर उठकर तटस्थ दृष्टि से उसका विश्लेषण करना होगा,

३. संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर पूरे राष्ट्र के हित के लिए निर्णय लेने होंगे और

४. भविष्यत् में लाभ उठाने के लिए वर्तमान में कष्ट सहकर भी निर्णयों को कार्यान्वित करना होगा।

कायरों के लिए कभी परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं होतीं और वीरों के लिए परिस्थितियाँ कभी बाधक नहीं होतीं। अनुकूल अवसर की खोज और प्रतीक्षा में हमने पूरी जवानी भर के वर्ष खो दिये। भाषा-नीति के उलझाव के कारण राष्ट्र की प्रगति में जो बाधा पड़ी उसकी भरपाई कर पाना कठिन है। आनेवाला इतिहास हमारी पीढ़ी को कोसेगा कि हमने इतने महत्त्वपूर्ण विषय में निर्णय लेने में मूढ़ता, मूर्खता, अदूरदर्शिता और कायरता का प्रदर्शन करते हुए उसे भविष्यत् के लिए टाल दिया। यदि हम इस कलंक से बचना चाहते हैं और आनेवाली पीढ़ियों के लिए प्रगति के राजमार्गों के तोरण खोल जाना चाहते हैं तो इस एक भारी अर्गला को आज ही, इसी समय खोलने का निर्णय लेना होगा। यह निर्णय या तो अभी होगा, या कभी नहीं। भाषा की समस्या को सुलझाने में विलम्ब का तर्क समस्या को कभी न सुलझने देने की नीयत के प्रदर्शन से अधिक कुछ नहीं। उन अर्जुनों को तो आज ही गांडीव की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाना है जो यह सहन नहीं कर सकते कि आनेवाला इतिहास हमें कायर या स्वार्थ-लोलुप कहे।

२. आधारभूत तथ्य

एक भाषा और एक धर्म के राष्ट्र दुर्लभ होते जा रहे हैं। ऐसे राष्ट्र हैं भी तो वे विश्व के अन्य भागों से अलग-थलग नहीं रह सकते। विज्ञान की प्रगति ने यातायात के साधन सुलभ कर विश्व को छोटा कर दिया है और सारे विश्व को एक कुटुम्ब मानने की भारतीय कल्पना साकार होती जा रही है। अतः छोटे से छोटे राष्ट्र को जहाँ अपनी भाषा सीखनी होती है, वहाँ उसे विश्व की अन्य प्रमुख भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक होता है। अपने राष्ट्र की सीमा में उसका सारा काम अपनी भाषा में चलता है। शिक्षा, शासन, सामाजिक कार्य आदि सभी उसीकी भाषा में चलते हैं। राष्ट्र के अधिकांश व्यक्तियों को राष्ट्रीय सीमा में ही कार्य करना होता है। अतः यदि अधिकांश व्यक्ति राष्ट्रीय भाषा जानते हों तो देश की प्रगति में वे सरलता से हाथ बटा सकते हैं। परिणामतः हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीय भाषा राष्ट्र की प्रथम आवश्यकता है।

देश की दूसरी अनिवार्यता विदेशी भाषा है। जैसा ऊपर कहा गया है, विदेशों से कट कर आज कोई राष्ट्र रह नहीं सकता। अन्य देशों से सम्पर्क रखना अनिवार्य हो गया है। विदेशी भाषाएँ अनेक हैं और हर उस राष्ट्र की भाषा, जो किसी देश का शत्रु हो या मित्र हो, या उसके हित-अहित को प्रभावित कर सकता हो, सीखना आवश्यक हो जाता है ताकि उसके माध्यम से अन्य देशों को जाना जा सके, उनसे अपने देश के हित को साधा जा सके और अहित से बचा जा सके। विदेशी भाषाओं में किसे और किस सीमा तक प्रयोग किया जाय, इसका निर्णय प्रत्येक देश को अपने हित को देखकर करना होता है। यदि उसका आकलन ठीक होता है तो उससे देश का उत्थान होता है और आकलन अनुचित होने पर देश का पतन हो सकता है, कम से कम कुछ हानि तो हो ही सकती है।

केवल दो भाषाओं की उक्त व्याख्या उन्हीं राष्ट्रों पर लागू होती है, जो एकभाषीय सार्वभौम राष्ट्र हैं और जहाँ धर्म, संस्कृति और राजनीतिक विकास में बाह्य प्रभाव शून्य या नगण्य रहे हैं। जहाँ देश से बाहर के प्रभाव सक्रिय हुए, और देश ने उन्हें अपनाया वहाँ भाषा भी अनिवार्य रूप से समस्या बनी। किसी-किसी जागरूक राष्ट्र ने इस समस्या के मूल को समझकर बाहर से प्राप्त अच्छे संस्कार तो सुरक्षित कर लिये और भाषा-विषयक अनावश्यक विदेशी प्रभाव फेंक दिये, लेकिन कई देश बाह्य प्रभावों में अपनी सत्ता ही खो बैठे। फलतः उनकी भाषा खो गयी और उसके साथ उनका अतीत मृत हो गया, पूर्वज मर गये। उनका राष्ट्र फिर से शुरू हुआ। इंग्लैंड ने फ्रेंच को कैसे त्यागा—इसका इतिहास दोहराने की आवश्यकता नहीं।[२]

भारत प्राचीन देश है, विशाल देश है और सबसे बड़ी

---

२. द्रष्टव्य—महावीरप्रसाद द्विवेदी का लेख 'साहित्य की महत्ता' जो उनके कानपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्षीय भाषण से लेकर इस नाम से अनेक संग्रहों में प्रकाशित हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत स्वतन्त्र चिन्तन का देश है। यहाँ हजारों वर्षों से स्वतन्त्र चिन्तन होता आया है। विचारों की इस स्वतन्त्रता के कारण जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जहाँ हमने प्रयोग न किये हों। भाषा के क्षेत्र में भी हमारे यहाँ अनेक प्रयोग हुए, अनेक रूढ़ियाँ बनीं, अनेक रूढ़ियाँ टूटीं। परिणामतः यहाँ भाषा की समस्या को सुलझाना इतना सरल नहीं रहा, जितना अन्यत्र। जहाँ भारत में विविधता ने समस्या को जटिलतर बनाया है, वहाँ दूसरी ओर सहनशीलता और खुले मस्तिष्क से सोचने की हमारी आदत के कारण समस्याओं का समाधान कर पाने की हमारी क्षमता बढ़ी भी है। आज इसी क्षमता के बल पर हम इस समस्या को सुलझा सकते हैं।

भारत में भाषाओं के स्तर देशी-विदेशी के अतिरिक्त धर्म और प्रादेशिक हित के साथ भी नत्थी हैं। अतः हमें उनका वर्गीकरण करते समय अन्य बातों को भी ध्यान में रखना होगा। भारत में शासन और शिक्षा के क्षेत्र में प्रचलित भाषाओं को चिन्तन की सुविधा के लिए निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है :—

प्रचलित देशी भाषाएँ—हिन्दी, कश्मीरी, पंजाबी, मराठी, गुजराती, बँगला, असमिया, उड़िया, तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम, उर्दू। ये तेरह भाषाएँ 'आधुनिक भारतीय भाषाएँ' भी कहलाती हैं। भारत के संविधान में स्वीकृत भारतीय भाषाओं में संस्कृत और सिन्धी का भी उल्लेख है। वे दोनों अपने आपमें महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं, हैं भी, किन्तु प्रचलित देशी भाषाओं में उनका वह महत्त्व नहीं है जो अन्य तेरह भाषाओं का है, अतः उन्हें इस सूची से पृथक् रखा गया है। इन भाषाओं को क्षेत्रों में बाँटने से इनके विवेचन में सरलता रहेगी। वे क्षेत्र इस प्रकार हैं :

उत्तर क्षेत्र : काश्मीरी
मध्य क्षेत्र : हिन्दी, उर्दू, पंजाबी
पूर्वी क्षेत्र : असमिया, बँगला, उड़िया
पश्चिमी क्षेत्र : गुजराती, मराठी
दक्षिणी क्षेत्र : तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम

सांस्कृतिक भाषाएँ : संस्कृत, पालि, अपभ्रंश, उर्दू

धर्म-भाषाएँ : संस्कृत, अरबी, अपभ्रंश, पालि, अंग्रेजी

प्रशासन की भाषाएँ : अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, असमिया, बंगला, उड़िया, गुजराती, मराठी, तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम।

शिक्षा का माध्यम : अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, असमिया, बँगला, उड़िया, गुजराती, मराठी, तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम, सिन्धी

इसके अतिरिक्त कोंकणी और लद्दाखी उपेक्षित भाषाएँ कही जा सकती हैं। फ़ारसी को भी शिक्षा और संस्कृति में दखल है। विदेशी भाषाओं की सूची बनाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उनके विषय में स्वतन्त्र विचार किया जा सकता है। इस समय भारत के लोगों के जीवन से जिन भाषाओं का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार है, उन सबकी सूची इस प्रकार है—

१. हिन्दी (अपनी उपभाषाओं सहित) : नागरी लिपि।
२. उर्दू : फारसी लिपि।
३. कश्मीरी : लिपि का संघर्ष है : प्राचीन लिपि शारदा आखिरी साँसें ले रही है। (कश्मीरी भाषा के लिए नव-विकसित उर्दू और नागरी से बनी कश्मीरी लिपियों में संघर्ष चल रहा है।)
४. पंजाबी : गुरुमुखी लिपि।
५. मराठी : नागरी लिपि।
६ गुजराती : गुजराती लिपि।
७. मलयालम : मलयालम लिपि।
८. तमिल : तमिल लिपि।
९. कन्नड़ : कन्नड़ लिपि।
१०. तेलुगु : तेलुगु लिपि।
११. उड़िया : उड़िया लिपि।
१२. बँगला : बँगला लिपि।
१३. असमिया : असमिया लिपि।
१४. संस्कृत : देवनागरी लिपि।
१५. सिन्धी : नागरी या अरबी-जैसी सिन्धी लिपियाँ।
१६. अंग्रेजी : रोमन लिपि।
१७. अरबी : अरबी लिपि।
१८. फारसी : फारसी लिपि।
१९. पालि : नागरी लिपि।
२०. अपभ्रंश : नागरी लिपि।

३. समस्या का स्वरूप

उक्त सूचियों को देखते ही कई प्रश्न हमारे सामने आ खड़े होते हैं और ज्यों-ज्यों हम उन पर विचार करना शुरू करते हैं, हमारे व्यक्तिगत स्वार्थ और हमारे देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कुछ वर्गों के स्वार्थ प्रश्नों के आसपास चिपकने लगते हैं और प्रश्न दैत्याकार होते चले जाते हैं। हम सिर थामे बैठे रहते हैं। हमें कोई समाधान नहीं मिलता। अंत में घबराकर हम आँखें मूँद लेते हैं और प्रश्न ग़ायब हो जाते हैं। इस कबूतरी स्वभाव में हमने कितने ही मूल्यवान वर्ष बिता दिये। एक पीढ़ी बूढ़ी हो गयी, दूसरी पीढ़ी जवान हो गयी और तीसरी पीढ़ी पनपने लगी। प्रश्न ज्यों के त्यों बने ही नहीं रहे, एक पूरी पीढ़ी को हमने भटकने दिया और भटकी हुई पीढ़ी अगली पीढ़ी को और अधिक भटकायेगी। आज हमें कहना पड़ रहा है कि देश का भला कोई नहीं सोचता, सब अपने पेट पर हाथ फेरते हैं, लेकिन इसमें हम जिन्हें 'सब' मान लेते हैं, वे बहुत कम हैं, लेकिन वे जिन 'सब' को बना रहे हैं, वे इतने अधिक होंगे कि उनके सामने देश की आत्मा काँपने लगेगी। इसलिए कम से कम अब तो हम कबूतरी मनोवृत्ति को त्यागकर वास्तविकता का सामना करें। देखें किस-किस में साहस है ? देखें कौन-कौन स्वार्थ से ऊपर उठता है ? देखें कौन अपने से बड़ा देश को मानता है ? देखे कौन आनेवाली पीढ़ियों के लिए अपने सुख त्याग सकता है ?

सबसे प्रमुख प्रश्न जो उक्त सूचियाँ प्रस्तुत करती हैं वह हैं शासन की भाषा और भारत में प्रचलित आज की भाषाओं में अन्तर। प्रचलित देशी भाषाओं की संख्या तेरह है और उनमें प्रत्येक तो नहीं किन्तु काफी बड़ी संख्या ऐसी भाषाओं की है जो इतनी समृद्ध और सशक्त हैं कि विश्व के राष्ट्रों में शासन की प्रचलित भाषाओं में अधिकांश को नीचा दिखा सकती हैं। फिर भी शासन अधिकांश रूप से अंग्रेजी में होता है। जहाँ प्रादेशिक भाषाओं को प्रशासन की भाषाओं में गिनाया गया है, वहाँ भी वह आंशिक रूप से ही सत्य है। केरल की प्रचलित भाषा मलयालम है और वहाँ मलयालम को प्रशासन में कुछ स्थान प्राप्त भी है, लेकिन वहाँकी प्रशासन की प्रमुख भाषा अंग्रेजी ही है। अंग्रेजी की इस प्रमुखता का ही नहीं, उसका इस सूची में होने तक का कहाँ तक औचित्य है—यह वह प्रश्न है जो सभी प्रश्नों को दबाये हुए है। यह समस्या का आधे से अधिक भाग है। यदि यह एक प्रश्न हल हो जाय तो शायद समस्या के स्वतः ही धीरे-धीरे समाप्त हो जाने की कल्पना की जा सकती है !

शिक्षा के माध्यम की सूची में कश्मीरी क्यों नहीं ? इस सूची में अंग्रेजी को होना चाहिए या नहीं ? इन साधारण से प्रश्नों से बढ़कर आज की परिस्थिति पर बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न है—क्या अंग्रेजी को माध्यम के रूप में इतना गौरवशाली पद दिया जाना चाहिए कि राष्ट्र के धनी वर्ग और उच्च अधिकारी वर्ग भारत से, भारतीयता से और भारत की महान् विरासत से न केवल अपरिचित रह जाय बल्कि उसे हेय मनाने लगें और उन्हें अपने पूर्वजों से घृणा होने लगे ? यह क्रम कब तक चल सकता है कि अपने राष्ट्र के घटकों को ऐसी शिक्षा देते रहें कि वे योग्य होने पर विदेश की सेवा करें और अयोग्य और निखट्टू होने पर अपने देशवासियों की छाती पर मूँग दलते रहें ?

तीसरा प्रश्न भाषाओं की संख्या को समेटने का है। भारत से तत्कालीन सम्बन्ध रखनेवाली भाषाओं की सूची में पूरी बीस भाषाएँ आ गयी हैं। इसके अतिरिक्त कितनी ही विदेशी भाषाएँ है जिन्हें पढ़ना हमारे हित में है। इतनी सब भाषाएँ हर व्यक्ति तो पढ़ नहीं सकता। प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रत्येक भाषा का एक-सा महत्त्व भी नहीं है। तो किसे कौन-कौन सी भाषाएँ पढ़ायी जाय ? कब, कौन-सी, भाषा पढ़ायी जाय ताकि देश को और देशवासियों को अधिकतम लाभ हो ?

भारत के कुछ भागों में अंग्रेजी से प्रबल घृणा है और दूसरी ओर कुछ व्यक्तियों को अंग्रेजी से प्रबल मोह है। भाषा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी और प्रशासन की भाषा के रूप में अंग्रेजी के विषयों पर ऊपर के अनुच्छेदों में कई प्रश्न हो चुके हैं। अंग्रेजी का एक और रूप है—'अंग्रेजी संसार की एक महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में।' विदेशी भाषाओं का क्या महत्त्व है ? उनमें अंग्रेजी का क्या स्थान है ? क्या अंग्रेजी को भारतीय भाषा नहीं कहा जा सकता ? विदेशी भाषाओं पर सोचते समय हमें अंग्रेजी की विशेष स्थिति को ध्यान में रखना होगा अन्यथा हमारे निर्णय ग़लत हो सकते हैं। मोह और घृणा को छोड़कर, केवल देश-हित को सामने रखते हुए हमें अंग्रेजी के स्थान को निश्चित करना होगा।

विदेशी भाषाओं का प्रशासन और शिक्षा में क्या महत्त्व है ? क्या हम उनके इस महत्त्व के अनुसार उन्हें वह स्थान दे पा रहे हैं ? कहीं कुछ कमी है तो क्या कमी है ? किस प्रकार ऐसी व्यवस्था की जा सकती है कि विदेशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं का वांछित ज्ञान हमें हो सके और उनका उचित उपयोग हो सके।

संस्कृत का क्या महत्त्व है ? क्या उसे धार्मिक दृष्टि से चिपकाये रखना उचित है ? क्या धर्म से अलग भी उसका कुछ महत्त्व है ? कहाँ तक उससे लाभ उठाया जा सकता है और कहाँ तक उसका बोझ ढोया जा सकता है ?

धर्म और भाषा का आपसी सम्बन्ध क्या है ? भारत में धर्मान्धता ने हमारी भाषा नीति पर क्या प्रभाव डाला है ? इन रूढ़ियों के किस सद्गुण के संरक्षण की आवश्यकता है और किस दुर्गुण को दूर करने की ?

वे कौन से स्वार्थ हैं जिन्होंने हमारी भाषा-नीति को सही दिशा से हटाया है ? उनमें कहाँ तक स्वदेशी स्वार्थ हैं और कौन से विदेशी ? वर्ग, प्रदेश, धर्म, दल आदि भिन्न-भिन्न आधारों पर उन्हें कैसे निर्दिष्ट किया जा सकता है और कैसे उनका निराकरण किया जा सकता है ?

४. चुनौती

उक्त तथ्यों को देखते हुए समस्या का समाधान खोजने की आवश्यकता है। समस्या की जटिलता को देखते हुए उसका समाधान प्रस्तुत करने से पूर्व उस पर कई स्तरों पर विचार करना होगा—खण्डशः भी और समग्रतः भी; सैद्धांतिक दृष्टि से भी और व्यावहारिक दृष्टि से भी।

यह समस्या प्रत्येक व्यक्ति के लिए चुनौती है जो भारत को महान् राष्ट्र के रूप में अग्रसर होते देखना चाहता है और निःसंदेह आप भी ऐसे व्यक्तियों में सम्मिलित हैं। क्या आपके विचार प्राप्त होंगे ?

सतसैया के दोहरे

[पृष्ठ ३०९ का शेषांश]

इक्कीस वर्षों मैंने जब-जब बिहारी-सतसई पढ़ी, तब-तब उसमें नया आनन्द पाया, अत्युक्ति का सन्देह नहीं किया जा सकता है। दरअस्ल शर्माजी की टीका ही एक ऐसा दर्पण है जिसमें सतसई के दोहों का वास्तविक सौन्दर्य हमें देखने को मिलता है।

पर आज का हिन्दी-संसार न तो बिहारी सतसई का क़द्रदाँ है, न शर्माजी-जैसे टीकाकारों की कृति का। वह क़द्रदाँ है निम्न श्रेणी की कहानियों और उपन्यासों का। और यही कारण है कि जहाँ इंग्लेण्ड में आज भी आये दिन शेक्सपियर, शेली, कीट्स आदि पर नयी-नयी पुस्तकें निकलती रहती हैं, पत्र-पत्रिकाओं में उन पर लेख प्रकाशित होते रहते हैं, हम भूल-सा गये हैं (या उनकी ओर से उपेक्षापूर्ण हैं) बिहारी, पद्माकर, देव आदि अपने महान् कवियों को। 'सरस्वती' को छोड़ कोई ऐसी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिका आज नहीं है जो उन पर लेख प्रकाशित करने को तैयार हो।

और कविता के स्तर का क्या कहिए ! नई कविता के नाम पर आज न जानें क्या-क्या कूड़ा-करकट लिखा जा रहा है। उर्दू के किसी शायर की यह उक्ति कि—

'शायरी मर चुकी, जिन्दा न अब होगी यारो !'

उर्दू-साहित्य पर भले ही लागू न हो, हिन्दी पर अवश्य है।

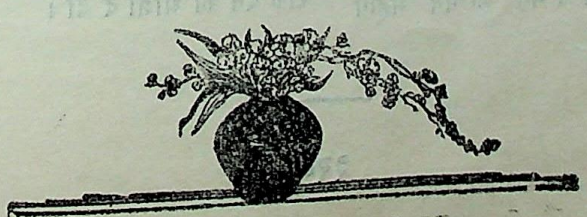

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरिग्रही महर्षि लोमश

श्री श्रीराम दुबे

विश्वकर्मा अपने अनुचरों के साथ थककर चूर हो गये थे। फिर भी देवराज की आज्ञा तो टाली नहीं जा सकती है। देवराज इन्द्र के मन में इस बार एक अत्यन्त विशाल, सुदृढ एवं उत्तुङ्ग भवन बनवाने की इच्छा थी, जिसकी समता का दूसरा भवन त्रिभुवन में न हो। वे चाहते थे कि उस भवन का एक-एक अंगुल अत्यन्त सूक्ष्म कलाकारी से चित्रित हो।

परेशान एवं चिन्तित विश्वकर्मा की भेंट देवर्षि नारद से हो गयी। विश्वकर्मा को परेशान व चिन्तित देखकर नारदजी ने उसका कारण पूछा। विश्वकर्मा ने कहा, 'प्रभो, देवेन्द्र एक ऐसे भवन का निर्माण करवाना चाहते हैं जो अद्‌भुत कलाकारी से युक्त हो और जिसकी त्रिभुवन में कहीं भी समता न की जा सके। मैं तथा मेरे अनुचर इसके निर्माण-कार्य में लगे रहकर थक चुके हैं, परन्तु वह भवन अब तक पूरा नहीं हो पाया। मुझे तो ऐसा लगता है कि अगर मैं अपनी पूरी आयु (देवयोनि की आयु) इस भवन के निर्माण में लगा दूँ तो भी यह कार्य पूरा नहीं हो पायेगा। अब आप ही मेरी इस विपत्ति का अनुमान कर सकते हैं।'

नारदजी ने कुछ देर तक विचार किया। फिर वे विश्वकर्माजी को आश्वासन देकर सुरेन्द्र के यहाँ गये। जब भी किसी के पास कोई नयी वस्तु आती है तब उसके मन में स्वभावतया ही यह इच्छा उत्पन्न होती है कि लोग मेरी इस वस्तु का अवलोकन करें एवं इसकी अच्छाई के बारे में अपने भाव व्यक्त करें। देवेन्द्र के भी मन में यह अभिलाष उठा। वे आग्रहपूर्वक देवर्षि को अपना वह विशाल भवन दिखलाने को ले गये। भवन दिखाकर सुरेश ने नारदजी से पूछा, 'देवर्षि, आप तीनों लोकों में सदा भ्रमण किया करते हैं। क्या आपने ऐसा कलापूर्ण भवन कहीं कभी देखा है?'

नारदजी ने कहा, 'मैंने तो नहीं देखा, परन्तु महर्षि लोमश दीर्घजीवी हैं। अगर उन्होंने देखा हो तो मैं कह नहीं सकता।' इतना कहकर देवर्षि ने मन ही मन महर्षि लोमश का स्मरण किया। त्रिकालज्ञ देवर्षि के स्मरण करते ही महर्षि सिर पर एक चटाई रखे उपस्थित हो गये। उनका सारा शरीर रोमों से भरा हुआ था। केवल वक्षपर बीच में रुपये भर का स्थान रोमहीन था।

देवर्षि ने कहा, 'लीजिए, महर्षि भी मिल गये। अब आप इन्हीं से पूछ लीजिए।'

कटि में कौपीन, हाथ में कमण्डल एवं सिर पर चटाई! इतनी ही सामग्री थी मुनि के पास। देवेन्द्र ने मुनि को साष्टांग दण्डवत किया।

देवर्षि ने महर्षि से पूछा, 'महर्षि, यह आप सिर पर चटाई क्यों रखे हैं?'

देवर्षि का प्रश्न सुनकर महर्षि ने उत्तर दिया, 'जीवन विनाशी है। अतः इस छोटी-सी आयु के लिए कुटिया एवं अन्यान्य संग्रह-परिग्रह कौन करे। इस चटाई से ही बैठने, ओढ़ने एवं छाया का काम चल जाता है।'

सुरेन्द्र महर्षि का उत्तर सुनकर चौंक पड़। बोले, 'आपकी आयु, और छोटी-सी!'

महर्षि उदासीनतापूर्वक अपने वक्ष के रोमहीन स्थान को दिखलाते हुए बोले, 'देखो सुरेन्द्र, मेरे इतने रोम तो टूट चुके हैं। जिस दिन शरीर के सारे रोम टूट जायँगे उस दिन महर्षि लोमश की, यानी मेरी, मृत्यु हो जायगी। एक ब्रह्मा के मरने पर उनके सम्मान में एक रोम टूट जाता है और ये ब्रह्मा तो आये दिन मरते ही रहते हैं। अतः मेरी आयु छोटी-सी ही तो है।'

'ब्रह्मा के एक दिन में चौदह इन्द्र बदल जाते हैं। ऐसे तीन सौ साठ दिन के वर्ष से एक ब्रह्मा की मृत्यु होती है। उस ब्रह्मा की मृत्यु के सम्मान में महर्षि का एक रोम टूट जाता है। लेकिन ये.....।' सहस्राक्ष इसके आगे कुछ न सोच सके। वे वहीं सिर पकड़कर बैठ गये और उसी दिन उन्होंने विश्वकर्मा को उस विशाल भवन का निर्माण-कार्य रोक देने की आज्ञा दे दी।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

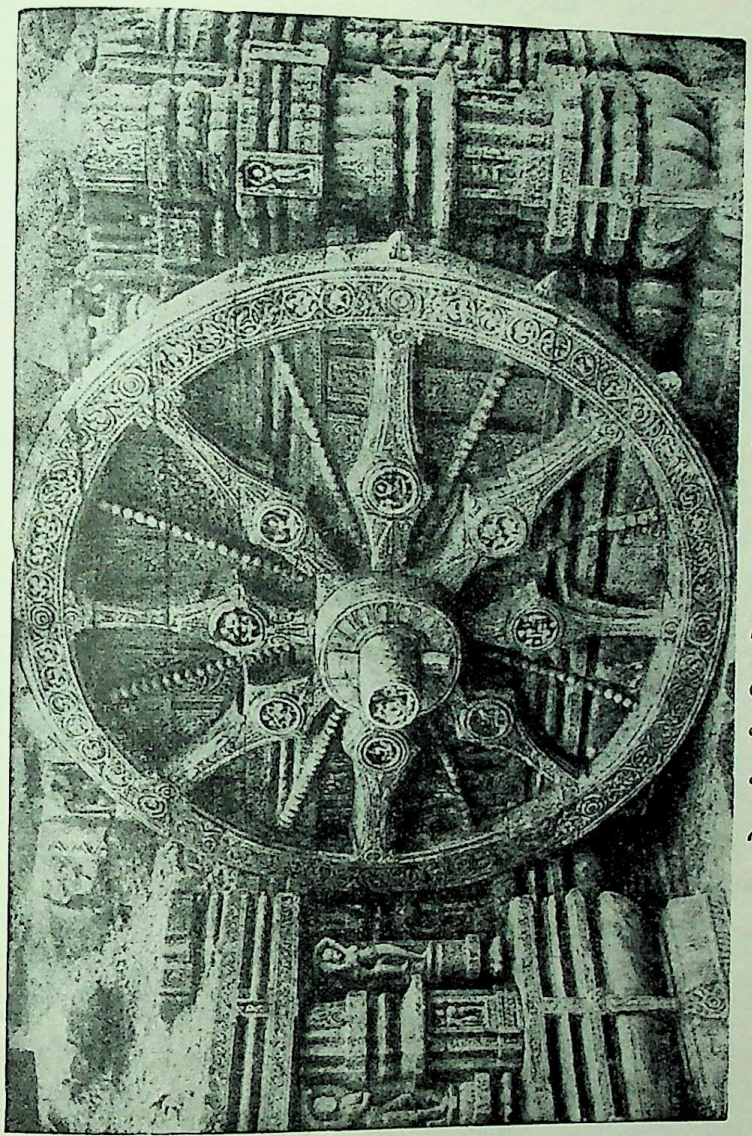

कोणार्क सूर्य मन्दिर के रथ का एक अलंकृत पहिया
(स्थानाभाव से पिछले अंक में लेख के साथ नहीं दिया जा सका।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंग कवि और उनका 'रसरंग'

श्री उदयशंकर दुबे

रंग कवि प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हिम्मत बहादुर अनूपगिरि के पुत्र थे। इनका नाम नरेन्द्रगिरि था। इन्होंने संवत् १८७४ वि० में 'रंग' उपनाम से 'रसरंग' नामक नायिकाभेद का ग्रंथ लिखा। इसकी रचना का आधार मतिराम कवि कृत 'रसराज' ग्रंथ है। एक प्रकार से रसरंग ग्रंथ रसराज का उल्था मात्र है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में रंग कवि का उल्लेख नहीं के बराबर हुआ है।

नरेन्द्रगिरि का प्रारम्भिक जीवनवृत्त ज्ञात नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में बुन्देलखण्ड का नेतृत्व एकाएक हिम्मत बहादुर अनूपगिरि के हाथ में आ गया। एक कुशल राजनीतिज्ञ होने के साथ ही अनूपगिरि वीर, योद्धा तथा साहित्यानुरागी था। उसके दरबार में पद्माकर, ठाकुर और मान जैसे कवियों को आश्रय प्राप्त था। पद्माकर ने उसकी प्रशंसा में 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' ग्रंथ की रचना की।[1] मान कवि ने भी उसकी प्रशंसा में कई छंद लिखे हैं।[2] अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त संवत् १८६१ वि० में हिम्मत बहादुर नरेन्द्रगिरि की गद्दी धारण कर उसने अधिकृत क्षेत्र का शासन सँभाला। उस समय वह अल्पायु था। इस कारण हिम्मत बहादुर का भाई उमरावगिरि उन सब जागीरों की देखभाल करता था।[3] यदि संवत् १८६१ वि० में नरेन्द्रगिरि की अवस्था कम से कम मान लें तो उसका जन्मकाल संवत् १८५१ वि० के आस-पास होता है। रसरंग ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १८७४ वि० है। इस प्रकार रंग कवि ने २३ वर्ष की अवस्था में अपने ग्रंथ की रचना की।

साहित्य के प्रति जन्मजात अभिरुचि के कारण नरेन्द्रगिरि का अधिकांश समय कवियों और विद्वानों के मध्य व्यतीत हुआ। पूर्ववर्ती कवियों द्वारा प्रणीत रीतिपरक ग्रंथों का रंग कवि ने जमकर अध्ययन किया था। कवि ने अपने एक छंद में कई कवियों का नामोल्लेख किया है—

नेह करौ केसव सौं यह मतिराम मन,
भूषन सजहु तन चिन्तामन पाई है।
लीजै मोल कालिदास मिलकै बिहारीलाल,
सुखदेव सीख या सुमेरे मन छाई है।
रंग कहै कंचन कलस कुच केहरी यौं
कलानिधि नीलकंठ रसखान गाई है।
मेरी कवि मई तेरी रूप रस नई,
उन बंसीधर दई तू तौ बीरबल भाई है।[1]

आलंकारिक शैली में लिखे गये इस छंद से ज्ञात होता है कि रंग कवि केशव, मतिराम, भूषण, चिन्तामणि, कालिदास, कंचन, कलश, कलानिधि, केहरी, नीलकंठ, रसखान, बंशीधर, बिहारीलाल, सुखदेव और वीरबल के साहित्य से पूर्ण परिचित था। कंचन, कलश, केहरी और कलानिधि के रीतिपरक छंद बड़े उच्चकोटि के हैं।[2] अभी तक कवि के एक ही ग्रंथ की सूचना उपलब्ध हो सकी है। कवि की मृत्यु संवत् १८९७ वि० में हुई।[3] 'रसरंग' ग्रंथ की रचना (संवत् १८७४ वि०) के बाद लगातार तेईस वर्ष तक कवि मौन नहीं रहा होगा। उसने और भी ग्रंथ लिखे होंगे जो अभी तक प्रकाश में नहीं आ पाये हैं।

हिम्मत बहादुर नरेन्द्रगिरि ने रसरंग की रचना संवत् १८७४ वि० में की—

दोहा—वेद दीप बसु चन्द कहि मारग मास सुजान।
सुक्ल पच्छ तिथि पंचमी सुक्रवार पहिचान॥[4]

१—द्रष्टव्य—पद्माकर ग्रंथावली, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा काशी।

२—द्रष्टव्य—नीतिनिधान ग्रंथ। छंद संख्या ५८२-५९६। प्रकाशन काल, संवत् १९५९ वि०। चरखारी खास प्रेस।

३—द्रष्टव्य—बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २८२, ले० गोरेलाल तिवारी, ना० प्र० सभा, काशी।

१—रसरंग, छंद संख्या, ७४।

२—दतिया राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित एक हस्तलिखित प्रति में इन कवियों के छंद संगृहीत हैं।

३—द्रष्टव्य—बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २८२, ले० गोरेलाल तिवारी, ना० प्र० सभा, काशी।

४—रसरंग, छंद संख्या, २।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ की समाप्ति उसी वर्ष फाल्गुन मास में हुई—

दोहा—कृपा भारती नै करी अति उमंग मन दीन।
फागुन वदि सिवराति को ग्रंथ समापत कीन ॥[1]

ग्रंथ की पुष्पिका में कवि ने अपने को महाराजा लिखा है– "इति श्रीमनि महाराजधिराज श्री महाराजा श्री राजा हिम्मत बहादुर नरेन्द्रगिरि जू देव विरचितायां रस-रंग ग्रंथ पंचमो प्रकास ॥५॥ संपूर्न ॥"

जैसा कि कहा जा चुका है, रसरंग ग्रंथ मतिराम कवि कृत रसराज का उल्था है। कवि ने ग्रंथांत में लिखा है— "उल्था यह रसराज को कियो रंग रसरंग ॥"[2] पूरा ग्रंथ पाँच प्रकाशों में विभक्त है। प्रकाशानुसार छंद संख्या इस प्रकार है--प्रथम प्रकाश में ५५, द्वितीय प्रकाश में ५३, तृतीय प्रकाश में ११७, चतुर्थ प्रकाश में ८३ और पंचम प्रकाश १२५। कुल छंद संख्या ४३३।

रसरंग का मुख्य विषय नायिकाभेद निरूपण है। इसकी विशेषता है कि कवि ने लक्षण दोहे में तथा उदाहरण कवित्त-सवैया के साथ-साथ दोहे में प्रस्तुत किया है। विषय-विभाजन इस प्रकार है--

प्रथम प्रकाश—मंगलाचरण, ग्रंथ रचनाकाल, शृंगार रस की उत्पत्ति, नायिका लक्षण और उदाहरण, भेद—स्वकीया, परकीया, गणिका, स्वकीया नायिका लक्षण और उदाहरण, स्वकीया के भेद—मुग्धा, ज्ञात यौवना, अज्ञात यौवना। नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा, मध्या-मध्याधीरा, मध्या-अधीरा, मध्या धीराधीर। प्रौढ़ा—प्रौढ़ा धीरा, प्रौढ़ा अधीरा, प्रौढ़ा धीराधीर। ज्येष्ठा, कनिष्ठा।

द्वितीय प्रकाश--परकीया--ऊढ़ा, अनूढ़ा। भेद—गुप्ता, विदग्धा—वचन विदग्धा, क्रिया विदग्धा। लक्षिता, कुलटा, मुद्रिता। अनुशयना—प्रथम अनुशयना, द्वितीय अनुशयना, तृतीय अनुशयना। गणिका के भेद लक्षण उदाहरण सहित। इसके अतिरिक्त इसी प्रकाश में रूपगर्विता, प्रेम गर्विता, गुण गर्विता, मानवती, अन्यसुरति दुःखिता नायिकाओं का वर्णन हुआ है।

तृतीय प्रकाश—प्रोषित पतिका, खंडिता, कलहंतरिता, अभिसारिका, वासकसज्या, स्वाधीनप्रीतम, उक्ता, प्रवत्स्य-पतिका, विप्रलब्धा—लक्षण और उदाहरण। प्रोषितपतिका के भेद--मुग्धा प्रोषितपतिका, मध्या प्रोषितपतिका, प्रौढ़ा-प्रोषित पतिका, परकीया प्रोषितपतिका, गणिका प्रोषित-पतिका। खंडिता के भेद—मुग्धा खंडिता, मध्या खंडिता, प्रौढ़ा खंडिता, परकीया खंडिता, गणिका खंडिता। कलहंतरिता के भेद--मुग्धा कलहंतरिता, मध्या कलहंतरिता, प्रौढ़ा कलतरिता, परकीया कलहंतरिता, गणिका कलहंतरिता। वासकसज्या के भेद—मुग्धा वासकसज्या, मध्या वासक-सज्या, प्रौढ़ा वासकसज्या, परकीया वासकसज्या, गणिका वासकसज्या,। अभिसारिका के भेद—मुग्धा अभिसारिका, मध्या अभिसारिका, प्रौढ़ा अभिसारिका, परकीया अभि-सारिका, स्यामा अभिसारिका, चंद्राभिसारिका, दिव्याभि-सारिका, गणिकाभिसारिका। विप्रलब्धा के भेद—मुग्धा विप्र-लब्धा, मध्या विप्रलब्धा, प्रौढ़ा विप्रलब्धा, परकीया विप्रलब्धा गणिका विप्रलब्धा। उक्ता के भेद--मुग्धा उक्ता, मध्या उक्ता, प्रौढ़ा उक्ता, परकीया उक्ता, गणिका उक्ता। स्वा-धीन पतिका के भेद–मुग्धा स्वाधीनपतिका, मध्या स्वाधीन-पतिका, प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका, परकीया स्वाधीनपतिका, गणिका स्वाधीनपतिका। प्रवत्स्यप्रेयसी के भेद—मुग्धा प्रवत्स्यप्रेयसी, मध्या प्रवत्स्यप्रेयसी, प्रौढ़ा प्रवत्स्यप्रेयसी, परकीया प्रवत्स्यप्रेयसी, गणिका प्रवत्स्यप्रेयसी। आगत-पतिका के भेद—मुग्धा आगतपतिका, मध्या आगतपतिका, प्रौढ़ा आगतपतिका, परकीया आगतपतिका, गणिकाआगत-पतिका।

चतुर्थ प्रकाश—नायक लक्षण और उदाहरण। नायक के भेद—उत्तम, मध्यम और अधम। पति, उपपति, वैसक, अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, सठ, मानी, वचनचतुर, क्रिया चतुर आदि। दर्शन--स्वप्न दर्शन, चित्र दर्शन, श्रवण एवं प्रत्यक्ष दर्शन। सखी लक्षण एवं उदाहरण, शिक्षा, दूती लक्षण और उदाहरण तथा भेद।

पंचम प्रकाश—भाव, अनुभाव--लक्षण और उदाहरण भेद—सात्विक-स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, विवर्ण, अश्रु-प्रलाप और जंभा। शृंगार रस—लक्षण, उदाहरण एवं भेद। हाव—लक्षण, उदाहरण और भेद। दशा—लक्षण उदहरण एवं भेद। ग्रंथ रचना का उद्देश्य।

इस प्रकार रसरंग में कवि ने नायिका भेद का निरूपण किया है। यहाँ पर कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१—रसरंग, छंद संख्या, १२४।
२—वही, छंद संख्या, १२२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्या अधीर नायिका

लक्षण—कठिन वचन सतराइ कहि, पिय सपराध निहार।
सो अधीर मध्या कही रसक रंग निरधार॥

उदाहरण—

हसन रसीली अन हसन गसनि वारी,
लोचन ललामी अनुराग के अदल ऐ।
मसन उरोजन की मसन लगायौ पर,
रदन छदन सुकुमारी के सदल ऐ।
कौन मतवारी मतिवारी मतवारे करै,
मैं हूँ मतवारी बात पातन कदलि ऐ।
कौन के बसन गए कौन के बसन भये,
वसन बदल आए वसन बदलि ऐ॥

दोहा—भाल महाउर लाज नहि अधरन काजर रेष।
हम अनहेतिन हेतनी वासौ करौ विसेष॥ १

गुनगर्विता नायिका

लक्षण—अति प्रवीन तिय नाह सौं गुन कौ करै गुमान।
ताहि कहत गुन गर्विता जे नृप-रंग सुजान॥

उदाहरण—

आऊं मैं साजि भलै सजिकै बहुभाँति सुगंधन डोरै लगाऊं।
लगाऊं त्रपुंड सुकेसरि कौ अलिकै सु अलीगन रूप भ्रमाऊं,
भ्रमाऊं तहाँ नदनन्दन कौ इहि भाँति इकंत तुरंग लियाऊं,
लियाऊं निसंक लै अंक भरौ रंग देख बसंत लला बनि आऊं।

पुनः

दोहा—

गुन मो मै ऐ बहुत है सुनियै स्याम सुजांन।
बसकर राषौ छिनक मै जाके मन अभिमांन॥२

१—रसरंग, छंद संख्या, ३८, ३९, ४०।
२— वही, " " ४५, ४६, ४७।

परकीया कुलटा नायिका

लक्षण—

निसि वासर रति चाह मन सघन पुरिष सै जोइ।
लाज करै न समाज मैं कुलिटा कहिये सोइ॥

उदाहरण—

सहस सहेली मैं नवेली बाल लाल लखी
अंग-अंग झलकै अनंग सुख दैनी की।
रंग कवि कहै ढुरै झबिया जराऊ पीछै
झीनै चीर लसै तैसी वैनी पिकवैनी की।
चमकै तरौना पान हेरी मुख फेर जबै
कहियै मजेज या अनन्त मन लैनी की।
हसन छबीली भौंह कसत कुटिल अैसी
चुभि रही चित्त चितवन मृगनैनी की॥

पुनः

हसत जात मग मैं चली झरत जात मन फूल।
जगमगात जोवन झलक लख मुनि गन मन भूल॥१

इस प्रकार हिम्मत बहादुर नरेन्द्रगिरि उपनाम 'रंग' कवि ने पूरे नायिकाभेद का वर्णन किया है। आचार्य कवि मतिराम के प्रमुख ग्रंथ रसराज का उल्था करना साधारणी कार्य नहीं है। यह तो रंग जैसे रसिक और साहित्यानुराग व्यक्ति की ही क्षमता थी कि उसने रसराज का उल्था रस-रंग के रूप में प्रस्तुत किया। हिन्दी साहित्य में उक्त ग्रन्थ-द्वय का तुलनात्मक अध्ययन अत्यावश्यक है।

१—रसरंग, छंद संख्या, २०, २१, २२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद पर एक परिसंवाद

प्रो० चन्द्रप्रकाश आर्य, एम० ए०

पात्र—विभिन्न विषयों के छात्र

मोहन———संस्कृत साहित्य
सोहन———इतिहास
नरेश———विज्ञान
रमेश———तुलनात्मक धर्म
महेश———भाषा विज्ञान
सुरेश———समाज शास्त्र
सोमेश———सहयोगी छात्र
दिनेश———संयोजक

पहला दृश्य

स्थान—उद्यान, बसन्त ऋतु, मन्द-मन्द समीर बह रही है, चारों ओर पुष्पों की गन्ध वातावरण को मादक बना रही है।

दिनेश—भाइयो, सावधान होकर बैठें। कुछ चर्चा करनी है। तुम तो वासन्ती सुषमा में कुछ खो से गये हो।

सोमेश—आज क्या सुना रहे हो, मित्र ?

दिनेश—मोहन कल वेद के बारे में कुछ कह रहा था।

सोहन—हाँ मित्र ! यह वेद-वेद क्या हैं ? कई दिनों से ये शब्द कानों में गूंज रहे हैं। भारत में इनका क्या स्थान है ? यहाँ की संस्कृति और इतिहास से इनका क्या सम्बन्ध है ?

सुरेश—भाई, कुछ लोगों को यह रोग हो गया है—हर एक बात में वेद को लाकर उपस्थित करेंगे। भारत के बारे में कोई चर्चा करो, झट से उसकी उत्पत्ति एवं विकास वेद से दिखायेंगे।

रमेश—बात भारत तक सीमित रहती तो ठीक था। ये तो कहते हैं कि विश्व संस्कृति के आदि स्वामी भी हम हैं। हमारा वेद संसार का सबसे प्राचीन ग्रंथ है।

नरेश—आप लोगों ने कैसी चर्चा छेड़ दी है ? तुम कैसी बातें करते हो ? लोक तो चन्द्र और मंगल की यात्रा कर रहा है और तुम अब भी वहीं पड़े हुए हो। क्या पुन: पाषाण युग (Stone age) में जाने का विचार है ? छोड़ो इन बातों को।

दिनेश—इस तरह भावुक होना ठीक नहीं। मोहन, इस बारे में तुम्हारी क्या राय है ?

मोहन—मित्र, संस्कृत साहित्य में तो वेद का सर्वोच्च स्थान है और भारत की संस्कृति संस्कृत के ग्रन्थों पर आधारित है। समग्र संस्कृत साहित्य, वैदिक हो या लौकिक (classical), प्राचीन हो या अर्वाचीन (modern) वेद को महत्त्व देता है। उपनिषद्, दर्शन, गीता, रामायण तथा व्यास, कालिदास, भवभूति, तुलसीदास आदि सब वेद को प्रमाण मानते हैं।

सोहन—यह तो मैंने भी इतिहास में पढ़ा है कि ऋग्वेद संसार की भाषाओं में प्राचीनतम ग्रन्थ है।[1]

महेश—भाषा विज्ञान के क्षेत्रों में भी संस्कृत के कारण एक नई क्रान्ति आने लगी है।[2] समस्त विश्व को एक आर्य परिवार माना जाने लगा है तथा स्वभावत: उस परिवार की एक आर्य भाषा संस्कृत रही होगी ऐसा भाषाविद् एवं इतिहासकार सोचने लगे हैं।[3]

सोमेश—फिर भारतीय भाषाएँ तो सब संस्कृत से उद्भूत होंगी ?

महेश—हाँ, इसी कारण तो वे आर्य-भाषाएँ कहलाती हैं परन्तु तमिल, तेलगु, कन्नड़ तथा मलयालम को भाषा वैज्ञानिक अभी द्राविड वर्ग में रखते हैं।

मोहन—परन्तु उनमें भी तो अधिकांश शब्दावली संस्कृत की ही है तथा उनका सांस्कृतिक आधार भी एक है

---

१. The Oxford History of India (V. A. Smith) 1964 Ed. Chapt. 2; p. 44.

२. The Cultural Heritage of India, Vol. I R. K, Mission Institute of Culture, Calcutta, S.K. Chatterji. P. 67.

३. The Outline of History (H. G. Wells) Chapt. 12, pp. 145 and 274.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।[४] उनकी सभ्यता (culture) के आधारभूत ग्रन्थ भी वही हैं।[५] फिर यह द्राविड-आर्य भेद की कहानी समझ में नहीं आती !

दिनेश—मित्र, छोड़ो इस विवादास्पद विषय को। वेद के बारे में इनका क्या दृष्टिकोण है, यह बतलाओ।

सोहन—भला वेद से उस (द्राविड वर्ग) का क्या सम्बन्ध है ? उस पर तुमने धक्के से काबू पाया था।

मोहन—मित्र, मुझे तो यह द्राविड और आर्य भेद की कहानी भ्रान्तिजनक प्रतीत होती है। कारण, इनका सांस्कृतिक आधार तो एक है। संस्कृत की पुस्तकों में तो इस प्रकार का संघर्ष नहीं मिलता। आश्चर्य यह है कि वेद की रक्षा दक्षिण भारत में हुई।

सोहन—क्या उत्तर भारतवालों ने नहीं की ?

मोहन—मेरे विचार में दक्षिणवालों का योगदान अधिक है। वेदभाष्यकार सायण, भरतस्वामी, वेंकट माधव आदि वहीं के थे।[६] वहाँ के वेदपाठी वेदों को कंठस्थ करते थे और आज भी यह परम्परा कम वा अधिक रूप में जारी है।

सुरेश—उत्तर भारत में भी तो द्विवेदी त्रिवेदी, चतुर्वेदी, उपाध्याय, त्रिपाठी आदि नाम वेद के सामाजिक महत्त्व पर प्रकाश डालते प्रतीत होते हैं।

सोमेश—आज तो ये वेद के बारे में बहुत कम जानते हैं। नाममात्र के रह गये हैं।

मोहन—महाभाष्यकार पतंजलि तो वेदाध्ययन ब्राह्मण का निष्कारण (आवश्यक) धर्म मानते हैं।[६अ] और वह भी अर्थ सहित। बिना अर्थ ज्ञान के वेद पढ़ना निरुक्तकार के मत में व्यर्थ भार ढोने के समान है।[७]

सोमेश—वह अर्थज्ञान कैसे हो सकता है ?

मोहन—मंत्रों का मनन-चिन्तन करने से।[८] कारण, पतंजलि के अनुसार वेद का एक शब्द या एक मन्त्र भी अच्छी तरह समझकर जीवन में ढाल लिया जाय तो वह लौकिक और परलौकिक उन्नति करनेवाला होता है।[९]

दिनेश—आप लोग कहाँ भटक गये ? चर्चा दक्षिण भारत की कर रहे थे, और पहुँच गये परलोक में।

नरेश—विज्ञान भी तो परलोक या चन्द्रलोक की बातें करता है। इस बेचारे ने क्या अपराध कर दिया ?

मोहन—बात यह है कि वेद के मुख्य विषय को लेकर व्यासजी ने वेदान्त दर्शन लिखा। उसका जितना प्रचार दक्षिण में हुआ उतना अन्यत्र नहीं। आगे चलकर भक्ति की धारा दक्षिण से प्रारम्भ होकर समस्त उत्तर भारत में फैल गयी।[१०]

सोहन—शंकर, रामानुज, मध्व आदि वेदान्त के भिन्न-भिन्न व्याख्याकार दक्षिण के थे—यह तो इतिहास में विदित है।

मोहन—तभी तो मुझे यह द्राविड-आर्य भेद की कहानी अधिक तर्क-संगत नहीं प्रतीत होती।

सोहन—बौद्धमत, जैनमत, और चार्वाक तो वेद के विरुद्ध खड़े हुए थे तथा स्वयं बुद्ध ने कर्मकांड तथा यज्ञों का विरोध किया था।

मोहन—कुछ अज्ञानी एवं स्वार्थी व्यक्तियों ने वेद के नाम पर यज्ञों में पशुहिंसा आरम्भ कर दी थी। मेरे ख्याल में तो बौद्ध, जैन और चार्वाकों के विरोध से लाभ ही हुआ। नहीं तो न जाने कब तक वेद के नाम पर अनाचार एवं अनर्थ होता रहता। उन्होंने इसी हिंसा के कारण ही वेद का विरोध किया था।[११] व्यक्तिगत रूप से सम्भवतः वे वेद के विरुद्ध नहीं थे।

---

4. 5. The Indian Heritage (Dr. V. Raghvan) Madras. preface p 21.

६. (i) वैदिक साहित्य और संस्कृति (आचार्य बलदेव उपाध्याय) १९६७ संस्करण पृ० ५२-८६ (ii) वेदों के भाष्यकार (पं० भगवतदत्त रिसर्च स्कालर) भाग २

६. अ 'षडंगो वेदोऽध्येयः ज्ञेयश्च ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः (व्याकरणाध्ययने प्रयोजनानि)।

७. स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदस्ययो विजानाति नार्थम् (निरुक्त) अ० १, खं० १८।

८. मन्त्राणि मननात् ?

९. एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तश्च स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति। (महाभाष्य)

१०. हिन्दी साहित्य—युग और प्रवृत्तियाँ (शिवकुमार शर्मा) देखिए भक्तिकाल।

११. विस्तार के लिए दृष्टव्य हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, खंड ३, अध्याय ३, पृ० ४४६-४४७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललितविस्तर आदि बौद्ध ग्रन्थों में उनके वेद स्तुतिपरक अनेक वचन मिलते हैं।[११अ]

सोमेश—तुम्हारे कहने का अर्थ हुआ कि उन्होंने वेद के नाम पर हो रही बुराई का विरोध किया।

मोहन—यही कहा जा सकता है। कारण, वेद में यज्ञ में पशुओं को मारना नहीं बतलाया है। महाभारत कहता है कि यह तो धूर्त-ठग लोगों की लीला है।[१२] वेद तो किसी भी प्राणी को मारने के लिए नहीं कहते हैं। कुमारिल भट्ट ने[१३] स्पष्ट कहा है—वेद सब प्राणियों से मित्रता रखने तथा उनकी रक्षा के लिए कहता है।[१४]

सुरेश—यहाँके सामाजिक जीवन में तुम्हारे वेद क्या काम आते हैं?

रमेश—मालूम पड़ता है तुम्हारा विवाह नहीं हुआ। दूसरों का तो देखा होगा? यहाँ तो जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त सभी संस्कार वैदिक मन्त्रों के आधार पर कराये जाते हैं।

दिनेश—सिख गुरुओं ने भी वेद के बारे में कुछ कहा होगा? क्या वे हमारे नहीं हैं?

रमेश—हैं तो अपने ही। आज उनके अनुयायियों में कुछ भ्रान्ति आ गयी है। गुरु तो हमारी रक्षा के लिए आये थे। धर्म में आयी त्रुटियों का सुधार करना उनका लक्ष्य था।[१५]

सोमेश—तुम उनको अलग मत करो। वे गलती करते हैं तो इसका अर्थ यह नहीं कि तुम भी त्रुटि करो।

रमेश—भाइयो, गुरुओं में तो धर्मान्धता या भ्रांति नहीं थी। उन्होंने तो भारत के सभी सन्तों की वाणियाँ आदि ग्रन्थ में एकत्र की हैं। श्री गुरु गोविन्द सिंह जी तो कहते हैं कि मैं उसी प्राचीन संस्कृति की रक्षा एवं समाजसुधार के लिए संसार में आया हूँ।[१६]

मोहन—आदिग्रंथ में अधिकांश प्रायः तीन चौथाई वाक्य संस्कृत के हैं। सब के नाम हमारे जैसे हैं। सिंह नाम श्री गोविन्दसिंहजी ने तो विशेष उद्देश्य के लिए रखा था।

महेश—'सिंह' शब्द भी तो संस्कृत का है। तुमने भाषाविज्ञान नहीं पढ़ा? आदिग्रन्थ, गुरु द्वारा, ग्रन्थी, शिरोमणी, सत-श्री-अकाल, विद्वान्, बुद्धिमान्, ज्ञानी आदि शब्द ठेठ संस्कृत के हैं।

दिनेश—हम यहाँ भाषाविज्ञान पर आपका भाषण सुनने नहीं आये। वेद के बारे में गुरुओं का विचार पूछा था।

मोहन—गुरुओं ने 'एक ओंकार' का बार-बार स्मरण किया है और ओंकार या ओ३म् शब्द वेदों का निचोड़ है—ऐसा कठोपनिषद कहता है।[१७]

रमेश—मित्रो, श्री नानकदेवजी का जन्म ही वेदपाठी परिवार में हुआ ऐसा गुरु गोविन्दसिंह अपनी वाणी में लिखते हैं।[१८]

दिनेश—चर्चा लम्बी होती जा रही है। संक्षेप में इस सारे वार्तालाप का आशय बतलाओ।

सोमेश—मैं तो आपकी चर्चा से यह समझ पाया हूँ कि भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक परम्पराओं में वेद को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। इसी कारण यहांका प्रत्येक धर्म-मत-सम्प्रदाय अपना सीधा सम्बन्ध वेद से जोड़ने का प्रयास करता है।

मोहन—आपका आशय ठीक है। इसी वेद की रक्षा के लिए शंकर दक्षिण भारत से, कुमारिल भट्ट उत्तर से तथा मंडन मिश्र पूर्वीय भारत से आगे बढ़े थे। वर्तमान युग में यतिप्रवर दयानन्द सरस्वती ने पश्चिमी भारत से आकर उसी वेद का पुनरुद्धार किया।

दिनेश—मित्रो, भोजन का समय हो गया है। अब चलना चाहिए। शेष बाद में।

---

११ अ विस्तृत अध्ययन हेतु—वेदों का यथार्थ स्वरूप (धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, कांगड़ी)।

१२. यज्ञों के वास्तविक स्वरूप के लिए विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए—

'वैदिक भारत में यज्ञ' (श्री देवराज विद्यावाचस्पति, गुरुकुल झज्झर)।

१३. शंकर दिग्विजय (मध्वाचार्य) अध्याय ६, ९, १०.

१४. मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे (यजु० अ० ३६ मं० १८)।

१५. १६, १८ (i) वाणी गुरु गोविन्दसिंह (भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला) पृ० १६६—१७० (ii) विचित्र नाटक (अध्याय ६)।

१७. कठोपनिषद (द्वितीय वल्ली, श्लोक १५)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा दृश्य

स्थान—वैदिक पुस्तकालय

सोहन—मुझे तो इस चर्चा से एक लाभ हुआ है कि जातियों के इतिहास को समझने के लिए राजनीतिक-भौगोलिक आदि कारणों के साथ उनके सांस्कृतिक एवं दार्शनिक विकास को जानना अत्यावश्यक है अन्यथा उनके साथ हम उचित न्याय नहीं कर सकते।

नरेश—नृ-तत्त्व विज्ञान (Anthropological studies) आजकल इसी दिशा की ओर प्रयास कर रहा है।

सोहन—तो फिर भारतीय इतिहास को समझने के लिए वैदिक संस्कृति एवं दर्शन को जानना आवश्यक होगा?

मोहन—इसमें कोई सन्देह नहीं। कारण, वेद यहाँकी सभ्यता एवं संस्कृति के आधार हैं। यहाँ वेदपाठियों की हजारों शाखाएँ-प्रशाखाएँ होती थीं। १९ भिन्न-भिन्न रीतियों से वेद पाठ होता था। एक मन्त्र को आठ-या दस प्रकार से उच्चारण करने के ढंग हैं।[२०] आज भी यह परिपाटी—यह परम्परा मिल जायगी।

नरेश—मैं तो यही सुनता आ रहा हूँ कि वेद कर्म-कांड की पुस्तकें हैं। जादू-टोने, जंत्र-मंत्र, देवियों-देवताओं तथा राजाओं और रानियों की बातें इनमें भरी पड़ी हैं। मेरा एक पश्चिमी मित्र तो कहता था ये व्यर्थ की बकवास हैं—ग्वालों एवं गड़रियों के गीत हैं।[२१]

सोहन—इतिहास में भी पढ़ा था कि वैदिक यज्ञों में लोग पशुबलि दिया करते थे तथा बड़े ठाठ से मांस खाते थे और सुरापान करते थे। जाति-पाँति तथा भेद-भाव भी मानते थे।[२१अ]

मोहन—भाई, सोहन ने तो चलो इन बातों पर विश्वास कर लिया परन्तु नरेश तो विज्ञान का छात्र है। विज्ञान तो प्रत्येक विषय को आलोचनात्मक ढंग से देखता है। विज्ञानवाले स्वयं इससे पीछे हटें यह शोभा नहीं देता।

दिनेश—वेद पर भी बहुत अनुसन्धान हुआ होगा?

मोहन—हाँ भाई, अब तक वैदिक साहित्य पर लगभग बीस-पचीस हजार पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं।[२१ब] भारतीय एवं पश्चिमी प्राच्यविद्या-विशारद (Orientalists and Indologists) इस विषय में खोज में लगे हुए हैं। दूसरे, जो इस विषय का विशेषज्ञ हो वही ठीक-ठीक बतला सकता है।

नरेश—यह विशेषज्ञ वाली बात ठीक है, क्योंकि विज्ञान में भी लोग एक-एक शाखा के वेत्ता हैं।

दिनेश—विज्ञान की ही बात नहीं मित्र! यह तो युग ही विशेषज्ञों का है। इतिहास, राजनीति, दर्शन, साहित्य प्रत्येक विषय के अध्येता हैं। जैसे, हिन्दी साहित्य के लिए आचार्य शुक्ल तथा अंग्रेजी के लिए डा० जॉनसन प्रामाणिक माने जाते हैं।

सोहन—इतिहास में भी एक-एक युग के विशिष्ट विद्वान् माने जाते हैं। जैसे, मुगल काल के लिए यदुनाथ सरकार तथा हिन्दूकाल के राधाकुमुद मुकर्जी एवं काशीप्रसाद जायसवाल आदि प्रामाणिक माने जाते हैं।

नरेश—भाई मोहन, आप भी अपनी सूची सुना दें। क्यों इतने व्याकुल हो रहे हो?

मोहन—हिन्दी विश्वकोष[२२] के अनुसार श्रीपाद दामोदर सातवलेकर वेद के सबसे प्रामाणिक विद्वान् हैं और सातवलेकर[२३] का कहना है कि दयानन्द से पहले आधुनिक समय में किसी ने वेद की ओर हमें ध्यान नहीं दिलाया। उन्हींके शब्दों में दयानन्द सचमुच ऋषि थे, क्योंकि उन्होंने हिन्दुओं के पतन का सच्चा

---

१९. वैदिक वाङ्मय का इतिहास—प्रथम भाग—वेदों की शाखाएँ (पं० भगवद्दत्त, बी० ए०)

२०. अष्ट विकृतियाँ या आठ पाठ—(१) जटा (२) माला (३) शिखा (४) रेखा (५) ध्वज (६) दण्ड (७) रथ तथा (८) घन (वैदिक साहित्य और संस्कृति—बलदेव उपाध्याय पृ० ३३-३७।)

२१. वैदिक सम्पत्ति (पं० रघुनन्दन शर्मा) विस्तार के लिए देखिए।

२१अ. विस्तृत अध्ययन हेतु देखिए वही।

२१ब. Vedic Bibliography (R. N. Dandekar) in three vols. (तीन खंडों में) vol. iii published in 1973.

२२. (i) हिन्दी विश्वकोष खंड ११ नागरी प्रचारिणी सभा काशी प्रथम सं० १९६९, पृ० १५२-५३ (ii) श्री सातवलेकर ने अक्षरशः दयानन्द की वेदप्रक्रिया का अनुसरण किया है (वही पृ० १४९-५२)।

२३. वैदिक व्याख्यान माला (श्रीपाद दामोदर सातवलेकर) देखिए १७वाँ व्याख्यान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण देखा तथा उन्नति का सच्चा मार्ग-वेद मार्ग-बताया।[२४]

सोमेश—मैंने तो यह भी सुना है कि अरविन्द घोष उनके भाष्य को सबसे प्रामाणिक मानते हैं।[२५]

सोहन—फिर तो वेद के बारे में हमें अपने पूर्वग्रह को बदलना पड़ेगा।

नरेश—हमें इस बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। विज्ञान अनुसन्धान के आधार पर प्रकाश में आये हुए नये तथ्यों को निष्पक्ष भाव से मान लेता है।

मोहन—वैदिक साहित्य की तो बात ही क्या? प्राच्यविद्या के समस्त अंगों का विस्तार से अध्ययन हो रहा है। हमें अब कूप-मंडूक बनने अथवा अपने तक सीमित रहने की आवश्यकता नहीं है।

दिनेश—भाइयो, नरेश और मोहन का कहना ठीक ही है। कारण, आजकल प्रत्येक विषय का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाता है। इतिहास, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, साहित्य आदि भी वैज्ञानिक विषय कहलाते हैं। प्रत्येक विषय को विज्ञान या शास्त्र कहा जाता है, केवल मूल विज्ञान, जैसे भौतिक विज्ञान या जीवविज्ञान या रसायन विज्ञान आदि ही विज्ञान नहीं।

नरेश—मोहन, आप ही इस विषय पर कुछ कहें। मेरे पास तो इतना समय नहीं है। यह विज्ञान ही पीछा नहीं छोड़ता।

सोमेश—इसको तो जब भी कहो तब कहता है, भाई, प्रयोगात्मक कार्य हैं। कभी मेढक काटने में लगा रहता है तो कभी किसी अन्य प्रयोग की बातें कहने लगता है।

नरेश—भई, आप लोग ही डींग मारा करते हैं कि दुनिया में हमारी हस्ती नहीं मिटी।[२६] देखें आज तुम्हारी हस्ती। हमें भी उसकी शक्ल सूरत तो दिखाओ।

---

२४. वही।

२५. बंकिम, तिलक, दयानन्द, अरविन्द—पांडिचेरी, पृ० ६०।

२६. 'यूनान मिस्र रोमां सब मिट गये जहाँ से। सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' की ओर संकेत।

महेश—बात तो ठीक है। बताओ तो सही। तुम्हारी संस्कृति में वेद का क्यों इतना महत्त्व है?

मोहन—बन्धुओ, वेद सबके लिए है। देश, काल, जाति, भेद-भाव के बन्धनों से रहित हैं।[२७] वे सामान्य शैली में अपनी बात कहते हैं। सबको सम्बोधित करके, किसी को विशेषतया लक्ष्य करके नहीं।[२८]

सोहन—हम तो यही पढ़ते आये हैं कि वे आर्यों अथवा भारतवासियों के लिए हैं।

मोहन—मित्र, ऐसी बात नहीं। वे समस्त मानव समाज के लिए हैं।[२९] जीवन और जगत् के प्रति वेद का दृष्टिकोण सर्वांगीण है, एकांगी नहीं। जीवन की व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, आध्यात्मिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय आदि विभिन्न दिशाओं पर वेद अपने विचार व्यक्त करता है।[२९अ]

नरेश—और कौन-सी मुख्य बातें हैं?

मोहन—सृष्टि विज्ञान,[३०] दर्शन,[३१] काव्य[३२] तथा जगत् के बारे में वेद में महत्त्वपूर्ण विवेचन मिलता है। गीता के कर्मयोग का सारा दर्शन यजुर्वेद के[३३] एक

---

२७. यजुर्वेद (२६।२) 'यथेमां वाचं कल्याणीमाव दानि जनेभ्यः।'

२८. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (स्वामी दयानन्द) वेदोत्प धर्म विषयः।

२९. 'शृण्वन्तु विश्वेऽमृतस्य पुत्राः····'।

२९ अ. दृष्टव्य वैदिक साहित्य और संस्कृति (बलदे उपाध्याय) संस्कृति खंड।

(i) स्वाध्याय सुमन स्वाध्याय सन्दोह, वेदज्योति ('जनज्ञान' दिल्ली, अगस्त १९६९)।

(ii) वेदांग आर्योदय (अगस्त १९६६); (वेद मंत्र के संकलन)।

(iii) वेद प्रवचन (पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम०ए०

३०, ३१, ३२, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका। अध्याय सृष्टिविद्याविषयः।

(i) सत्यार्थप्रकाश (आठवाँ समुल्लास)।

(ii) ऋग्वेद पुरुषसूक्त (१०।९०); हिरण्यगर्भ सू (१०।१२१) नासदीय सूक्त (१०।१२९)।

(iii) उरुज्योति——डा० वासुदेवशरण अग्रवाल।

३३. यजुर्वेद (१७।१२)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्र में निहित है। जीवन की सभी प्रकार की सम्भव उन्नति की ओर वेद संकेत करता है।[३४]

नरेश—यह तुम्हारा यज्ञ क्या है? 'स्वाहा' 'स्वाहा' क्यों करते रहते हो? लोगों को तो खाने को घी नहीं मिलता और उसे तुम आग में फूँकते रहते हो?

मोहन—भाई, वेद का यज्ञ विराट् भावना का प्रतीक है। व्यक्ति अपने तक सीमित न रह जाय, अहंकार तथा स्वार्थ की स्वाहा करके सार्वभौम बन जाय। लोग इसको तो भूल गये और लगे बेचारे पशुओं की बलि करने। बलि अहंकार एवं स्वार्थ की करनी थी, करने लगे इसके विपरीत।

सोमेश—विश्वशान्ति भी चाहते हैं कि नहीं तुम्हारे वेद?

मोहन—वेद का शान्तिपाठ का मन्त्र नहीं सुना कभी?[३४अ] उसमें द्युलोक (नीलगगन) से लेकर धरती पर्यन्त सर्वत्र (सब पदार्थों में) शान्ति की कामना की गयी है।

दिनेश—और कुछ शेष रह गया हो तो वह भी कह डालिए। फिर ये श्रोता नहीं मिलेंगे।

मोहन—विश्वशान्ति की ही बात नहीं; वेद तो सृष्टि में जितने भी प्राणी हैं उन सब के लिए मित्रता के भाव के लिए कहता है।[३५] भौतिक जगत् भी हमारे लिए हितकारी रहे।[३६] चारों वेदों में विश्वशान्ति, विश्व-कल्याण एवं वसुधैव कुटुम्बकम् के अनेक उपाय एवं विचार निर्दिष्ट किये गये हैं।[३७]

सुरेश—तुमने जो पूर्ण जीवन या जीवन की सभी प्रकार की उन्नति की बात कही उसका क्या मतलब है?

सोहन—अब यह सम्मेलन खत्म भी करोगे कि और विरस करोगे?

दिनेश—क्या काका हाथरसी के महामूर्ख सम्मेलन[३८] में चलने की सलाह है? या विश्व चूहा सम्मेलन[३९] में भाग लेना है?

मोहन—मेरे कहने का तात्पर्य था कि वेद भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति का पोषक है। वेद सांसारिक या भौतिक उन्नति का विरोधी नहीं, अपितु वह इसके साथ आत्मिक अभ्युदय भी चाहता है। इन दोनों में संतुलन ही वेद का जीवन के प्रति सर्वांगीण दृष्टिकोण है।[४०]

नरेश—एक बात तो बतलाओ। विज्ञान के युग में तुम्हारे वेद किस परमाणु बम को रोकेंगे? उनके पास कौन-सी आई० सी० बी० एम० (Inter Continental Ballistic Missiles) हैं।

दिनेश—तुम्हारे प्रक्षेपास्त्रों (missiles) पर फिर विचार करेंगे। अब यहाँ से एक-दो एक करो।

तीसरा दृश्य

स्थान—विज्ञान संकाय; समय-संध्या

सोमेश—कहो बन्धुवर, तुम्हारी कौन-सी समस्या है? रोटी, कपड़ा और मकान? या परिवार, नियोजन?

महेश—मेरे ख्याल में तो इसे नौकरी नहीं मिली।

दिनेश—इसकी समस्याएँ या तो न्यूमेरिकल्स (numericals)[४१] हैं या केमिकल प्रापर्टीज (Chemial properties)[४२] हैं या डी० एन० ए०, आर० एन० ए० (DNA, RNA) से[४३] सम्बद्ध होंगी।

रमेश—तुम्हीं बतला दो सुरेश, तुम्हारे पास तो समाज-शास्त्र का डिप्लोमा है।

सुरेश—भाई, बात यह है कि आज का सामाजिक वातावरण विषाक्त दिखायी देता है। मानवजाति विज्ञान की अत्यधिक उन्नति होने पर भी अशान्त हैं। सभी क्षेत्रों में कलह, फूट, द्वेष, संघर्ष एवं स्वार्थ का साम्राज्य है। मनुष्य समाज मानसिक रोग से पीडित है।

नरेश—तब तो आपको कोई मानसरोग-विशेषज्ञ या मनस्-चिकित्सक का परामर्श लेना पड़ेगा।

---

३४. वैदिक उदात्त भावनाएँ—श्री जगदीश विद्यार्थी, एम० ए०। प्रकाशक—गोविन्द राम हासानन्द, नयी दिल्ली।

३४अ. यजुर्वेद, ३८. १७।

३५. ३६. ३७. वैदिक उदात्त भावनाएँ। अध्याय १, २, ४, ११, १७, २८, ३०।

३८. महामूर्ख सम्मेलन। (काका हाथरसी)

३९. वही पृ० ३७।

४०. (i) यजुर्वेद ४०वाँ अध्याय (ii) वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व (सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार) विशेषतया अध्याय १५ तथा उपसंहार पृ०, ३४४—३६८।

४१, ४२, ४३. हास्यव्यंग्य के प्रसंग में—फिजिक्स, केमिस्ट्री, तथा बाइलोजी की ओर संकेत DNA, RNA-जीव विज्ञान (Genetics) की शब्दावली। नोबल पुरस्कार विजेता डा० खुराना की खोज इसी दिशा में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमेश—बात यह है कि इस मशीन युग में मनुष्य का कोई महत्त्व नहीं रह गया है। उसकी धार्मिक, नैतिक तथा हार्दिक भावनाओं का कोई स्थान नहीं रहा।

सोहन—लगता तो ऐसा ही है। हम इतिहास के एक गंभीर मोड़ पर खड़े हुए हैं?

सुरेश—ज्यों-ज्यों विज्ञान उन्नति के शिखर पर पहुँच रहा है त्यों-त्यों मनुष्य समाज अधिक व्याकुल एवं अशान्त होता जा रहा है। एक दूसरे के प्रति प्रेम, सहानुभूति लुप्त होती जा रही है।

मोहन—वेद की भी यही भावना थी कि हम मानवसमाज में परस्पर मिलकर चलें।[४४] हम एक दूसरे की मनोभावनाओं को समझें। हमारे विचारों में एकता हो, हम अपने हृदयों को एक करने—एक दूसरे से मिलाने—का प्रयास करें।[४५]

दिनेश—आप लोगों के कहने का भाव यह है कि हम वैज्ञानिक उन्नति तो कर रहे हैं परन्तु नैतिक एवं आत्मिक उन्नति की ओर ध्यान कम दे रहे हैं।

सोमेश—बात तो ठीक है। विज्ञान मनुष्य के लिए है, मनुष्य विज्ञान के लिए नहीं। जब मानव या आत्मा की ओर हम ध्यान नहीं दे रहे तब इन मशीनों का क्या लाभ?

सुरेश—जब तक मनुष्य की उन्नति नहीं होगी, इन्सान जब तक सामाजिक नहीं बनेगा[४६] तब तक सच्ची शान्ति नहीं हो सकती।

दिनेश—संयुक्त राष्ट्र-संघ, मेरे ख्याल में, इसी दिशा में एक प्रयास है। इसकी सफलता असफलता समस्त विश्व-समाज पर निर्भर है।

नरेश—मैंने तो वेद के बारे में पूछा था और आप संयुक्त राष्ट्रसंघ को बीच में घसीट लाये। कहिए मोहन भाई, आपके वेद क्या फरमाते हैं?

मोहन—मेरे विचार में वेद के पूर्ण जीवन—भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में ही आज के युग की समस्या का समाधान है। वेद भौतिक उन्नति का विरोध नहीं करते, परन्तु साथ ही आत्मा की, मानव की उन्नति भी आवश्यक बतलाते हैं।

सोमेश—तो फिर रोटी, कपड़ा और मकान की बात छोड़ दें? आप तो आसमान की कहते हैं, धरती की नहीं।

मोहन—मित्र, मेरे कथन का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि हम अपनी भौतिक एवं आर्थिक समस्याओं को भूल जायँ या उनका हल न निकालें। मेरा अभिप्राय तो दोनों में सामंजस्य से है।

रमेश—धर्म का सार भी यही है कि हम इन्सान की कदर करें। आत्मा की कीमत पहचानें। मानव के हित की ओर ध्यान दें। जब तक मनुष्य की आत्मा शांत एवं संतुष्ट नहीं होगी तब तक विश्व में संघर्ष बना रहेगा। विश्व को शान्ति का सन्देश उन्हीं लोगों ने दिया था जो वास्तविक धर्म, अर्थात् आत्मिक तथा नैतिक धर्म, के धनी थे। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, सुकरात, ईसा, मुहम्मद, नानक, कनफ्यूसियस, जरथुस्त्र, टालस्टाय, शंकर, दयानन्द, विवेकानन्द उन्हींमें से थे।

नरेश—आपने तो पूरा भाषण ही झाड़ दिया।

सोमेश—अब चलना भी है कि नहीं? समय काफी हो गया है। चन्द्रमा की किरणें उजेला कर रही हैं।

दिनेश—तो फिर क्या? अच्छा ही तो है। चलो आपको इस चाँदनी में अज्ञेयजी[४७] के प्रिय शिष्य 'धैर्य-धनगदहे' के दर्शन कराते हैं जो कहीं बेचारा 'मूत्र-सिंचित-मृत्तिका' के वृत में तीन टाँगों पर अपने गुरुजी की प्रतीक्षा कर रहा होगा।

---

४४. ५५. ऋग्वेद संगठन सूक्त (१०।१९१।२, ३, ४)

४६. Man is a social animal.

४७. तारसप्तक के सम्पादक, प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक अज्ञेय की एक कविता के कुछ अंश ससम्मान, केवल हास्य-विनोद का पुट देने के लिए।

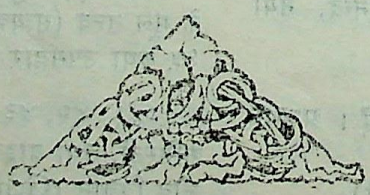

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्खिनी हिन्दी में प्राप्त व्रजभाषा काव्य

डा० परमानन्द पांचाल

उत्तरी भारत में जिस समय सूर, तुलसी और मीरा की स्वर-लहरियाँ गूँज रही थीं, केशव और बिहारी की शृंगारिक रचनाओं से सर्वत्र मादकता व्याप्त थी, उसी समय 'नवरस' और 'सबरस' जैसी रचनाओं से दूर दक्षिणापथ का जन-मानस भी रस-विभोर हो रहा था। कुतुब मुश्तरी, मैना सतवंती, फूल बन तथा चन्द्रबदन व माहियार जैसे प्रेमाख्यानों से दक्खिनी हिन्दी के साहित्य के भांडार को भरा जा रहा था।

ख्वाजा बन्दा नवाज गेसू दराज (१३२२-१४२३ ई०) से लेकर वली (१७३० ई०) तक अनेक लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से हिन्दी के इस रूप को समृद्ध किया था। निजामी, लुत्फी, शाह हुसेनी, इब्राहीम आदिलशाह, जानम, अब्दुल, नस्रती, मुल्ला वजही, गवासी, नवई, इब्ननिशाती और कुल्ली कुतुबशाह जैसे न जाने कितने कवियों ने दक्खिनी हिन्दी को अक्षुण्ण साहित्य प्रदान किया था।

दक्खिनी हिन्दी पर जहाँ खड़ीबोली का प्रभाव है वहीं व्रज और अवधी का भी स्पष्ट प्रभाव है। दक्खिनी हिन्दी के अनेक कवियों की रचनाओं को देखने पर तो यहाँ तक भ्रम होता है कि ये रचनाएँ दक्खिनी की हैं या व्रजभाषा की। दक्खिनी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (१५८०-१६८६ ई०) की कालजयी रचना 'नवरस' के विषय में तो यह उक्ति निरापद रूप से चरितार्थ होती है। इसमें कितने ही रूपक तो निश्चय ही बेजोड़ हैं, जिन्हें पढ़कर सहसा रीतिकालीन कवियों की याद आ जाती है। 'नवरस' में प्रकृति-चित्रण के ये अनूठे उपमान देखिये :—

गणपति मूरत हस्त मेघ मद बरसत पानी
दंत दामिनी घंट घोर मुंडान माल विधुबानी।

(मघा नक्षत्र गणेश के समान है। बिजली उनका दाँत है। गरज घंटे हैं और इन्द्र-धनुष सरस्वती का मस्तक है।)

बिहारी की नायिका का चित्रण 'लिखन बैठ जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर' द्वारा भी नहीं हो पाया था। उसी प्रकार इब्राहीम की नायिका का सौंदर्य भी लहरों की भाँति प्रतिपल बदल रहा है। भला कौन चितेरा उसका चित्रण करे—

पूनम रात की मकर चाँदनी
या झमके मेघ सत सौदामिनी
चितारी चित न रुके हुए पानी
ज्यों मौज पे मौज आवे पानी

नायिका का एक और सुन्दर रूप देखिए—

सोम सेत मध स्याम मानो नैन सुन्दर रूप लछन
बादर आँचर ता पर हरत लागे कब प्रकट दसे बदन।

श्वेत चन्द्र में कालिमा ऐसी प्रतीत होती है मानों वह कोई सुन्दर स्त्री है। बादल उसके मुख पर ऐसा लग रहा है जैसे उसके मुख पर कोई आँचल, जो हवा के कारण कभी उड़ जाता है और कभी उसे ढक लेता है।

यही कारण है कि डा० श्रीराम शर्मा इब्राहीम आदिलशाह की इस रचना को दक्खिनी की रचना स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं।

आदिलशाही परिवार के ही आठवें सुल्तान अली आदिलशाह द्वितीय 'शाही' (१६५६-१६७२) के काव्य पर व्रज का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित है। उन्होंने दोहे और गीत ही नहीं लिखे अपितु कवित्त और सवैये तक लिखे हैं। संगीत की अनेक राग-रागनियों में उन्होंने अपने भावों को पिरोया है। उनके शब्द संगीत-लहरियों पर थिरकते नजर आते हैं। उनकी नायिका की एक अनोखी चितवन तो देखिये—भरे भौन में वह केवल नैन ही सौं बात नहीं करती; वह तो नैनन-सैनन और बैनन तीनों ही का अद्भुत समन्वय करती हुई दीख पड़ती है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े बड़े नैनन तें, थोड़े थोड़े सैनन सौं
भरे भरे बैनन तें कहे मोसों बात है
खड़े खड़े देखन तें, चल चल केनन सों
हँस हँस लाज करे मुड़ मुड़ जात है।
गोरे गोरे दंडन में कारे कारे फूहे सोहैं,
आँचर को ओट गात धर के लजात है।
पेखत मदन रूप पेम को समुंदर कर
जहाज लाज मोति भर ल्यात है।

नायिका का सौंदर्य और लावण्य और उसके अंगों के लिए उपमान खोज पाना भी कठिन है। उसके बुलाक का मोती कवि को घगची प्रतीत होता है—

तिरया बेसर कौ मुकता गुंज फल भयो
स्याम दसन लाल अधर मिल ऐसा रंग कियो
कबरी फारीच कहूँ कहूँ फुब नेके
लागत हमें जैसे उड़गन धन रह्यो
मदन रूप जहाँ रूप सूँ अटक्यों,
ताके उपमान साँच कह्यो।

'शाही' ने हिन्दू धर्म की पौराणिक कथाओं से भी उपमानों को चुना है। सागर मन्थन से प्राप्त चौदह रत्नों को नायिका के सौंदर्य का रूपक तैयार करने में किसे उक्ति वैचित्र्य से काम लिया है। रमणी के नख-शिख वर्णन में सभी रत्न एक स्थान पर समाविष्ट हो गये हैं—

जगत समुंदर मथ्यो चितराई रमणी कर सिंध
बलक तीर दहन रंभा पुतारी लज्या लच्छमी लिये अवतार
कटाछ तुरंग से अमृत पक काजर नै को चन्दर केतो नाग
मोह सुरा कौस्तभ केके डोरी पारजात देह मलता संख सवा
मदन हस्त निरखन धन्वन्तरी काम धेन सो दिष्ट दुख निवा

शाही के काव्य में अनेक बेजोड़ दोहे भी हैं, जिन्हें लि संकोच व्रजकाव्य की थाती कहा जा सकता है—

तन तिहारो चंदना और मुक तिहारो चाँद
नैन हमारे चकोर ज्यों रहे प्रीत बाँद

× × ×

पिया बिछुरत तम लोक पड़े और नैना को सुख नाँ
शुभ दिन तभी हुएगो पिया आवें मुआ ठाँव

इसी प्रकार एक दो नहीं दक्खिनी हिन्दी के अनेक कवि ने परम्परागत व्रज काव्य की लीक पर चलकर अपनी कवि कामिनी के रूप सौंदर्य में चार चाँद लगाये हैं। आवश्यक इस दिशा में समुचित शोध की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता का वाहन

श्री अरविन्द मालवीय

हमारी सरकार ने 'गरीबी हटाओ' अभियान बड़ी धूम-धाम से चलाया है। गरीबी हटी या नहीं, यह तो गरीब जानते हैं या सरकार या फिर भगवान्। हाँ, इतना हम जरूर जानते हैं कि विश्व की या भारत जैसे देश की गरीबी हटाने का अभियान उस परोपकारी व्यक्ति ने शुरू किया था जिसने साइकिल ईजाद की थी।

तेल-पानी के बिना चलनेवाली यह सवारी सबसे सस्ती, सर्वसुलभ तथा मनचाही है। सँकरे से सँकरे तथा हर प्रकार के ऊबड़-खाबड़, ऊँचे-नीचे रास्ते से होकर यह चल सकती है। बच्चे, बूढ़े, जवान, औरत, मर्द सब इसे बिना किसी प्रशिक्षण अथवा प्रयत्न के सीख सकते हैं। हल्की यह इतनी है कि कभी-कभी यह स्वयं ही चालक के ऊपर पर सवार हो जाती है, बजाय चालक को अपने ऊपर सवार होने देने के। यही नहीं, असंख्य प्राणियों की जीविका ही इस पर निर्भर होती है। इस पर लोग साग-सब्जियों आदि की अपनी चलती-फिरती दूकान लगाते हैं तथा अपना पेट पालते हैं। अब चाहे डाक्टर कितना ही कहें कि इससे फेफड़ों, पेट तथा टाँगों को नुकसान पहुँचता है पर रोटी के लिए कुछ-न-कुछ कष्ट तो मनुष्य को सहना ही पड़ता है। चाहे बरसात में साइकिल चलाते भीगना और कीचड़ से लथपथ होना पड़े, जेष्ठ-आषाढ की कड़ी धूप भी चाहे सहनी पड़े, धूल-गर्द, लू, सर्दी की बर्फीली हवा सब कुछ चाहे बर्दाश्त करना पड़े, फिर भी यह सच्चा जनता का वाहन है और है गरीब का सच्चा दोस्त।

आप निश्चय ही यह जानने को जिज्ञासु होंगे कि जनता के इस सस्ते वाहन का विकास कैसे हुआ, कौन था वह उपकारी व्यक्ति जिसने इस वाहन का आविष्कार कर हमारा तथा विशेष तौर पर भारत जैसे गरीब देश की जनता का भला किया।

प्रारम्भिक रूप तथा विकास

साइकिल का प्रारम्भिक रूप देखकर उसके वर्तमान रूप की कल्पना करना असम्भव है। दोनों में कोई साम्य नहीं। गत शताब्दी के लगभग उत्तरार्द्ध में, जब इसका आविष्कार हुआ, इसका रूप बड़ा बैडोल था और यह बच्चों के खेल-सी लगती थी। एक पहिया सिर तक ऊँचा था और दूसरा हाथ भर भी न था। लकड़ी के किसी गोल ढाँचे पर लकड़ी या लोहे की हाल चढ़ी रहती थी। इस पर सवारी करना न केवल हिम्मत का काम था अपितु एक कठिन तपस्या थी। लकड़ी या लोहे की हाल वाले पहियों के कारण लगनेवाले हिचकोलों से शरीर की हड्डी-हड्डी बज उठती थी तथा अंजर-पंजर ढीला हो जाता था। इसी कारण तब इसका नाम हड्डीतोड़क या अस्थिभंजक (बोनशेकर) रखा गया। वायवीय टायर (न्यूमैटिक टायर) तथा ट्यूब से रहित टायर के आज के जमाने में यह बात पुरानी कथा कल्पना मात्र रह गयी है।

ठेलवाँ साइकिल

सन् १८३० के लगभग जर्मनी में कार्लसर रूहे नामक व्यक्ति ने ठेलवाँ साइकिल का प्रदर्शन किया। इसमें एक सीध में दो पहिये जुटे थे। उनके बीच पहियों के आश्रय पर एक लकड़ी का ढाँचा था। उसी के बीच ढाँचे की गद्दी बैठने को थी। आदमी उन पहियों के बीच ढाँचे की गद्दी पर बैठा दोनों पैर ढाँचे के दोनों ओर भूमि पर टेकता था और अपना बोझा कुछ-कुछ ढाँचे पर साधकर पैरों को बारी-बारी से भूमि पर आगे बढ़ाकर रखता था। यद्यपि पैदल चलने में इससे दुगुना समय लग सकता था और लकड़ी की हाल से युक्त ठेले की यह साइकिल बहुत आराम देह नहीं थी, फिर भी इसका अनेक देशों में अनुकरण हुआ।

इंग्लैण्ड में सन् १८३९ में कर्क मैकलिन नामक लोहार ने दो पहियों की एक साइकिल बनायी जिसमें भूमि पर पैर रखकर ठेलने की आवश्यकता नहीं होती थी। पिछले पहिये में दो छड़ें लगी थीं जिन्हें साइकिल पर बैठनेवाला व्यक्ति अपने पैरों से आगे-पीछे कर सकता था जिससे पहिया घूम सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैडल

सुधार होते-होते जर्मनी के स्वीनफर्ट नामक मिस्त्री ने आगे के पहिये में पैडल लगाने की युक्ति निकाली। अगला पहिया बहुत ही विशालकाय तथा पिछला पहिया छोटा बनाया, जिससे अगले पहिये का पैडल एक बार घुमाने से चक्के की भारी गोलाई साइकिल को अधिक दूर तक ले जा सके। कम-से-कम परिश्रम से अधिक-से-अधिक तेज चलने की चिन्ता का ही यह परिणाम हो सकता था। बाद में कुछ अन्य आविष्कारों ने ढाँचे के बीच में पैडल, दांतेदार चक्के, चेन, फ्रीह्वील का आविष्कार कर साइकिल को आधुनिक रूप देने का सफल प्रयत्न किया।

डनलप की देन

वास्तव में साइकिल को आरामदेह तथा निरापद वाहन बनाने का श्रेय जॉन डनलप को है। डनलप का स्मरणीय कार्य साइकिल के लिए अनुपम वरदान था। उन्नीसवीं सदी तक यूरोप में सड़कों की दशा बड़ी असन्तोषजनक थी। ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर चलने से न सिर्फ झटके लगते थे अपितु गाड़ी तथा उसमें बैठनेवाली सवारियों को भी खतरा रहता था। डनलप को अपने चिकित्सा के व्यवसाय के सिलसिले में प्रायः यात्रा करनी पड़ती थी तथा ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। वे सोचा करते थे किस प्रकार भयानक झटके को शान्त किया जाय। उन्होंने सोचा कि पहिये के आरा (स्पोक्स) को, जिसे हम धुरे के स्थान से पहिये की गोलाई तक भुजारूप में फैली-सी देखते हैं, किसी युक्ति से लचकदार या चपटी अथवा कुंडलित कमानी के रूप से बनाया जाय तो गाड़ी के चलने पर चक्के के ऊँचे-नीचे पड़ने से चक्के का सारा बल उन आरों की लचक ढो सकता है, किन्तु ऐसी व्यावहारिक युक्ति न हो सकने से उन्होंने सोचा कि पहिये की गोलाई, छोर या हाल को ही धक्के के शोषण का आधार बनाने का प्रयत्न किया जाय। पहिया अपनी गोलाई के छोर या हाल के तल पर ही भूमि या सड़क का स्पर्श करता है। अतएव धक्का उत्पन्न करने के स्थान को ही धक्के की समस्या दूर करने का केन्द्र बनाया जाय।

आज हम तुरन्त सोच बैठते हैं कि नली रूप में रबड़ लेकर उसमें हवा भर देना और पहिये में ऊपरी छोर पर काठ या लोहे की हाल की जगह उसे लगा देना बड़ी सुगम युक्ति है जिससे पहिये में धक्के का स्पर्श उसी स्थल पर कराया जा सके। केवल ऊपरी घर्षण की रक्षा के लिए हवा भरी नली के ऊपर टायर रूप का कोई गोल आवरण यथेष्ट हो सकता है। सन् १८८७ के पूर्व यह बात कल्पना से बाहर थी। इसका प्रयोग तो एक नूतन आविष्कार कहा जा सकता है जो न केवल साइकिल के लिए अपितु पहिये से चलनेवाली सब गाड़ियों के लिए अपूर्व वस्तु है, और इसका श्रेय डनलप को है। उन्होंने अपने उद्यान में रबड़ की नली बनायी। उसकी ठीक नाप का भाग काटकर दोनों छोर जोड़ दिये। एक नली गोल अँगूठी की तरह बन गयी। भीतर वायु भरने के लिए उसमें एक पतली नलिका भी जुटी रखी गयी। इसके मार्ग में पम्प द्वारा हवा भर दी गयी। छोटी नालिका का मुख बन्द कर हवा को बन्दी-सा बना दिया गया। हम आज ऐसी नली का साइकिलों, मोटरों, जहाज आदि में प्रयोग कर इसे ट्यूब कहते हैं। साथ ही डनलप ने रबड़ की इस वायुपूर्ण नली के ऊपर कैनवेस का पर्दा रखकर भूमि की रगड़ से बचत की युक्ति भी निकाली। उन्होंने जिस टायर को अपने हाथों बनाया था, एडिनबरा के रायल स्काटिश म्यूजियम में उसे आज भी देखा जा सकता है।

डनलप की इस देन से साइकिल की सवारी पर्याप्त निरापद हो गयी। डनलप ने एल्डिन नामक सज्जन से साझा कर लिया तथा उन्हें द्विचक्री तथा छः चक्री (बाइसिकिल) साइकिलों के बनाने के लिए निर्देश तथा सहायता प्रदान की। इनमें हवा भरी रबड़ नली (न्यूमैटिक टायर) की व्यवस्थावाले पहिये लगे थे।

पेनी-फार्दिंग और 'सेफ्टी' साइकिल

साइकिलों में पहले नीची बैठक रखी जाती थी। उनका नाम 'सेफ्टी साइकिल' पड़ा था, परन्तु अगले पहिये को बहुत ऊँचा और पिछले पहिये को नीचा रखने की व्यवस्थावाली साइकिल में अगले पहिये पर बैठक होने से बहुत ऊँचाई पर बैठना पड़ता था। अंग्रेजी सिक्कों में एक आने के बराबर पेनी सिक्का (बहुवचन पेंस) होता है। पेनी के समक्ष फार्दिंग मूल रूप में तो चौथाई होता ही है, आकार में भी पेनी का चौथाई होता है। इस बड़े-छोटे आकार की तुलना में अगला पहिया बहुत बड़ा और पिछला छोटा होने से उस साइकिल का नाम ही 'पेनी-

[शेष पृष्ठ ३३७ पर देखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के प्राचीन आयुध

डॉ० रामनारायणसिंह 'मधुर'

हमारे प्राचीन मनीषी भीरु अथवा समर-विरोधी नहीं थे। कारण, त्रिगुणात्मिका सृष्टि में मानव की द्वन्द्वात्मक त्रिकासेषणा और अज्ञानान्धकार से अभिभूत शक्तियों पर विजय प्राप्ति के हेतु ज्योतिशक्ति को युद्ध का सदा ही उपक्रम करना पड़ा है। इसीलिए आर्य ऋषियों-महर्षियों ने समस्त विश्व में मंगल एवं शांति की प्रतिष्ठा के लिए जहाँ यज्ञादि की कल्पना की, वहीं आसुरी शक्तियों का आक्रमण होने पर विविध शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर समर-भूमि में कौशल दिखलाने का निर्देश करना भी नहीं भुलाया। आयुध, उसके भेदोपभेद, लक्षण, प्रयोग अथवा परिचालन की चर्चा प्राचीन ग्रंथों में बहुलता से प्राप्त होती है। यहाँ कुछ विशिष्ट आयुधों की चर्चा ही अभीष्ट है।

धनुष-बाण—धनुष और बाण नाम के जिस आधुनिक शस्त्र से हम परिचित हैं वही रूप वैदिक युग में भी रहा हो यह संभव हो सकता है। धनुष और बाण के साथ तूणीर (तरकश) का विधान भी किया गया है। धनुष बनानेवाले का नाम 'धनुषकार' और बाण बनानेवाले का नाम 'इषुकार' बतलाया गया है। प्राचीन भारत में बाण चलाने की कला अत्यन्त उत्कृष्ट थी और संहारक भी। उस समय हजारों प्रकार के बाण होते थे। कर्ण, नालीक, वार्स्तक, सुधी, कार्पश, गवास्थिज और गजास्थिज—ये सात प्रकार के बाण निन्दनीय माने जाते थे। समर-भूमि में इनका परिचालन क्रूरतापूर्ण एवं मानवता के विरुद्ध समझा जाता था। उस समय शब्दवेधी बाण भी थे। इसीको राजा दशरथ ने धोखे में श्रवणकुमार पर चला दिया था। पृथ्वीराज चौहान भी इसके चलाने की विद्या में पारंगत था।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम बाण चलाने में अत्यन्त प्रवीण थे। इसीलिए उन्हें धनुर्धर भी कहा गया है। अर्जुन भी इस विद्या में निपुण थे।

असि—असि नामक आयुध सम्प्रति तलवार के रूप में परिचित है। वेद में इस आयुध का उपयोग द्वन्द्व-युद्ध में बतलाया गया है। प्राचीन काल की तलवार चलाने की इस कला का प्रचलन आज भी भारत के कोने-कोने में है। विजयादशमी के अवसर पर हिन्दुओं में और मुहर्रम के अवसर पर मुसलमानों में तलवार चलाने की कला का प्रदर्शन होता है।

महाभारत काल के धृष्टद्युम्न तलवार चलाने की कला में अत्यन्त प्रवीण थे। जब द्रोणाचार्य से उनका युद्ध हुआ था तब उन्होंने इस कला का अद्भुत प्रदर्शन किया था। उन्होंने इक्कीस विधियों से तलवार चलाकर द्रोणाचार्य को आश्चर्य में डाल दिया था। प्रदर्शन-भूमि में अंग-प्रत्यंग से तलवार चलाने को 'भारत' कहा जाता है। विचित्रता से तलवार चलाने को 'कौशिक' कहा गया है। ढाल की आड़ में तलवार चलाने की कला को 'सात्वत' कहा गया है। तलवार चलाते हुए एक ही दिशा में आगे बढ़ना 'प्लुत' कहा गया है।

वज्र—यह इन्द्र का विशेष आयुध बतलाया गया है। 'ऋग्वेद' में एक स्थान (१०।४८) पर बतलाया गया है कि वज्र का निर्माण त्वष्टा ने लोहे से किया था। ऋग्वेद में ही अन्यत्र उल्लेख है कि विश्वकर्मा ने दधीचि ऋषि की हड्डियों से वज्र का निर्माण किया। इस आयुध के प्रयोग का जैसा वर्णन है उससे लगता है कि यह आग्नेयास्त्र था।

वज्र से ही मिलता-जुलता 'सुक' नामक आयुध था। इसके प्रयोक्ता इन्द्र थे, पर मुख्यतः इसे रुद्र का आयुध कहा गया है। निघण्टु में 'हेति' को भी वज्र के समान आयुध बतलाया गया है। यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय के बारहवें मंत्र से यह संकेत मिलता है कि हेति नामक आयुध बाण की तरह धनुष की डोरी से छोड़ा जाता था। इसके प्रयोक्ता इन्द्र, सोम, वरुण, बृहस्पति आदि बतलाये गये हैं।

ऋष्टि—यह आधुनिक भाले जैसा होता था। इसके अंतर्गत 'राम्भिणी' और 'वाशी' भी आते हैं। इसके सात भेद बतलाये गये हैं। शूल, शक्ति, भिन्दिपाल ऋष्टि की तरह लौह-निर्मित अस्त्र होते थे। शूल लोहे का नुकीला आयुध माना गया है। यह लोहे के अतिरिक्त लकड़ी का भी होता है। कुरुक्षेत्र प्रदेश में इसका उपयोग अब भी होता है, जिसे 'जेली' कहा जाता है। शक्ति का आकार-प्रकार कनेर की पत्ती जैसा होता था।

अश्म—अश्म का अर्थ है पत्थर। कुछ ऐसे आयुध थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके द्वारा शत्रुओं पर पत्थरों की वर्षा की जाती थी। सम्भवतः अश्म इसी प्रकार का हथियार था।

दंतमुष्टि और शार्ङ्ग—दंतमुष्टि की व्याख्या से पता चलता है कि यह आयुध 'बघनखा' जैसा होता होगा। व्याख्या यह है—'दन्तो गज दन्तः तेन निर्मितो मुष्टिः छुरिकामुष्टिः।' शार्ङ्ग पशुओं की सींग से निर्मित प्रहारास्त्र था।

पाश और परशु—पाश वरुणदेव का आयुध बतलाया गया है। पाश का शाब्दिक अर्थ फंदा है। साम्य, व्याम्य, संदेश्य, विदेश्य, दैव और मानुष ये छः भेद पाश के माने गये हैं। वास्तव में शत्रु पर फेंककर उसे फँसाने का यह एक फंदा था। धर्मपाश, कालपाश, वरुणपाश, नागपाश के नाम प्रसिद्ध हैं। हनुमानजी को नागपाश में ही बाँधकर अशोकवाटिका से रावण के सम्मुख मेघनाद ले गया था।

परशु—उस समय का युद्धोपयोगी आयुध था। परशुराम का तो यह प्रिय आयुध था। अन्य देवगण भी इसका प्रयोग करते थे।

खट्वांग—महिषासुर मर्दिनी का एक आयुध खट्वांग भी था। साधारण अर्थ में इसे खटिया का पाया समझा जा सकता है। परन्तु इसका वास्तविक अर्थ हाथों में 'नरकंकाल' और गले में नरमुंडों की माला धारण किया गया है। यह व्याख्या इस श्लोक में की गयी है—

विचित्र खट्वांगधरा नरमालविभूषणा।
द्वीपिचर्म-परीधाना शुष्कमांसाति भैरवी॥

अर्थात् भगवती दुर्गा के शरीर पर जो मांस था वह एकदम सूख गया था, केवल अस्थि और चर्म शेष रह गया था। वे व्याघ्रचर्म का परिधान धारण किये हुए थीं। उनके हाथों में नरकंकाल था और गले में नरमुंडों की माला।

नरकंकाल भी माँ दुर्गा का एक आयुध था। कहते हैं कि देवी ने कुछ असुरों को असि से मारा और कुछ को खट्वांग से। उन्होंने अनेक असुरों को शूल-प्रहार से विदीर्ण कर दिया। इस प्रकार उन्होंने असुरों को मार-काटकर खट्वांग अर्थात् कंकालावशिष्ट बना दिया।

राम-रावण की लड़ाई में ऐसे विचित्र शक्तिशाली आयुधों का वर्णन मिलता है कि अकल्पनीय लगने लगता है। वानर दाँत, नख, लात, हाथ, पत्थर, वृक्ष आदि से हथियारों का काम लेते थे। हनुमान ने वृक्ष उखाड़कर ही मेघनाद के रथ को चकनाचूर कर दिया था। वानर मूसल और मुद्गर का प्रयोग भी करते थे। किन्तु रावण ने कि हथियारों का उपयोग राम की सेना पर किया था, उसकी सामरिक शक्ति का परिचय मिलता है। ग्रिफिथ के अनुसार ये एक प्रकार के लड़ाकू (सामरिक) इंजन थे। रावण ने कुक्कुटमुख, मकरमुख, सर्पमुख तथा बाराहमुख जैसे विध्वंसक यंत्रों का प्रयोग किया था। साधारण अस्त्रों को व्यर्थ करने वाले अस्त्रों को दिव्यास्त्र कहते थे। विश्वामित्र ने राम लक्ष्मण को अपने आश्रम में दिव्यास्त्र का ज्ञान कराया था जो नव प्रकार के थे। इनमें दंडचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र विष्णुचक्र तथा ऐंद्रचक्र नामक पाँच चक्र थे। अस्त्रों में वज्र शैवास्त्र, ब्रह्मशिरा, एषीक, नारायण, आग्नेय, वायव्य हयशिर तथा क्रौंच थे। गदा में मोदकी तथा शिखरी के नाम उल्लेखनीय हैं। पाश में धर्मपाश, कालपाश और वरुणपाश थे। अशनी में शुष्क तथा आर्द अशनी के नाम तो शक्ति में कंकाल और कपाल के नाम। बारह प्रकार के गांधर्व अस्त्र हैं तथा नौ प्रकार के पैशाच। इसके अतिरिक्त वैद्याधर अस्त्र हैं। मेघनाद ने लक्ष्मण पर जो शक्ति फेंकी थी, उससे आठ घंटे तक आवाज निकलती रही। राम ने रावण का अन्त पैतामह अस्त्र से किया था, जो पहाड़ों को भेदने की क्षमता रखता था।

महाभारतकाल के आयुधों में अत्यधिक प्रगति हुई। पांडव किसी न किसी विशेष शस्त्र में निष्णात् थे। अर्जुन धनुष चलाने में, भीम गदा चलाने में (दुर्योधन भी इस कला में दक्ष था), नकुल, सहदेव तलवार चलाने में प्रवीण थे। कृष्ण सुदर्शनचक्र के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। इस काल युद्ध-विद्या की विधिवत् शिक्षा होती थी। द्रोणाचार्य पांडवों एवं कौरवों को अस्त्र-शस्त्र संचालन की शिक्षा थी। वे समस्त युद्धास्त्रों के ज्ञान में पारंगत थे। महाभारत के विराटपर्व से ज्ञात होता है कि अर्जुन ने ऐन्द्रास्त्र द्रोण, कर्ण, भीष्म, कृपाचार्य, अश्वत्थामा के सम्मिलित आक्रमण को निष्फल कर दिया था। अर्जुन ऐन्द्रास्त्र अतिरिक्त पाशुपतास्त्र तथा सम्मोहन अस्त्र से भी परिचित थे। सम्भवतः पाशुपतास्त्र छोटा-मोटा बम ही था। सम्मोहन अस्त्र विषैली गैस छोड़नेवाला अस्त्र था, जिससे सब बेहोश हो जाते थे। शत्रु का केश पकड़कर दूर फेंकने वाला, उबलता तेल, गुड़ और बालू फेंकनेवाला, सर्प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरे घड़े फेंकनेवाला, राल-द्रव्य फेंकनेवाला, पत्थर, तलवार, छुरी तथा गर्म गोले एक साथ शत्रु पर फेंकनेवाला अस्त्र भी उस समय था। (दे० महाभारत उद्योगपर्व)। मेघनाद ने जैसी शक्ति का प्रयोग लक्ष्मण के ऊपर किया था, वैसी ही शक्ति का प्रयोग घटोत्कच और कर्ण के बीच युद्ध-क्षेत्र में हुआ था। 'भृगिका' जैसे अस्त्रों से सज्जित होकर शाल्व कृष्ण की अनुपस्थिति में द्वारकापुरी पर चढ़ आया था। 'भृगिका' आधुनिक तोप की तरह का एक अस्त्र था, जिससे गोल पत्थर फेंके जाते थे।

वेद आदि ग्रन्थ विश्वपुस्तकालय की सर्व प्राचीन निधि हैं। भारतीय समाज वेदों को अपौरुषेय, उसकी वाणी को परम शक्तिमान के अमोघ आदेश के रूप में स्वीकार करता है। वैदिक ऋषियों ने मानव-कल्याण के लिए युद्ध भी आवश्यक समझा जाता था। तत्सम्बन्धी कौशल की प्राप्ति राष्ट्रीय युवकों के लिए अनिवार्य निश्चित की थी। उन्होंने रणविद्या का अभ्यास तथा शस्त्रास्त्रों के परिचालन कौशल को आवश्यक मानकर ही धार्मिक पुरुषों को शस्त्रास्त्र धारण करने का आदेश दिया था—"हे राजपुरुषो, तुम्हारी सेना विशाल, समृद्ध तथा प्रशंसनीय होनी चाहिए, जिससे अपने शत्रुओं पर तुम निरन्तर विजय प्राप्त कर सको। तुम्हारे धनुष-बाण, तलवार, भाले आदि शस्त्र तथा शतघ्नी, भुशुंडी आदि अस्त्र इतने शक्ति सम्पन्न हो जायँ कि शत्रु-दल को पराजित करने और उनका प्रतिरोध करने में पूर्णतया समर्थ रहें।" (ऋग्वेद—१-३९-२)। रामायण, महाभारत के पश्चात् रचित संस्कृत के लाक्षणिक अथवा अन्य प्रबंधात्मक महाकाव्यों (जैसे शिशुपालवधम्, किरातार्जुनीयम्, नवसाहसांक और विक्रमदेवचरित्र आदि) में वीर-भावना के साथ शस्त्रास्त्रों की चर्चा बहुलता के साथ हुई है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि संसार की सभी जातियों के ऊर्ध्व पुरुष हजारों वर्ष तक ढाल-तलवार, धनुष, हाथी-घोड़ा के अलावा अन्य किसी अस्त्र की कल्पना कठिनाई से कर पाये थे। पत्थर और धातुओं के युग से बारूदयुग तक आने में मानव को एक लम्बा समय लगा है।

जनता का वाहन

[पृष्ठ ३३४ का शेषांश]

फार्दिंग' पड़ा था। एल्डिन ने पेनीफार्दिंग की जगह सेफ्टी साइकिल में न्यूमैटिक टायर लगाकर बेचना शुरू किया। विज्ञापन में भी सेफ्टी शब्द से यह प्रकट किया कि इन साइकिलों में पहिये छोटे बड़े नहीं हैं तथा इनमें सीट बेतुकी या ऊँची नहीं है। यह सेफ्टी साइकिल कालान्तर में इतनी साधारण हो गयी कि इसका सेफ्टी विशेषण उड़ गया और पेनीफार्दिंग पुरानी साइकिल की याद भर रह गयी। एल्डिन द्वारा निर्मित साइकिल पहले-पहल ३००० मील तक चलायी गयी किन्तु न तो इसका टायर कटा-फटा और न उसे अलग करने की आवश्यकता ही हुई।

एल्डिन द्वारा निर्मित साइकिल में परिवर्तन और सुधार होते गये। आज साइकिल-दौड़ के लिए साइकिल अलग आती है जिसमें ठोस टायर, पतले छोटे पहिये तथा रफ्तार बढ़ाने-घटाने का विशेष यन्त्र होता है। बच्चों, स्त्रियों आदि के उपयोग के लिए भी विशेष तौर पर बनी साइकिल आती है। बूढ़ों तथा अपाहिजों की अलग साइकिल (त्रिचक्री) मिलती है। साइकिल आज न केवल शौक का एक माध्यम है अपितु अधिकांश जनता की नित्यप्रति आवश्यकता का अन्तरंग अंग है, उसकी जीविका का साधन है।

विद्यालय के छात्र तथा शिक्षक, बाजार के व्यापारी, दफ्तरों के बाबू तथा चपरासी, अखबार बेचनेवाले, डाकखानों के डाकिये तथा मध्य वित्त के अगणित नागरिकों की इस सस्ती, सुगम, तीव्रगामी सवारी का निर्माण हमारे देश में अब बहुतायत से होने लगा है। आज से बीस-पच्चीस वर्ष पूर्व इसका भी, अन्य वस्तुओं की तरह, बाहर से आयात होता था, किन्तु अब देश की बनी साइकिलें न केवल उत्तम होती हैं अपितु इतनी संख्या में बनने लगी हैं कि देश की आवश्यकता को पूरी करने के साथ बहुतायत से इनका निर्यात भी होता है और कई देशों में इनकी भारी मांग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलबरूनी तथा संस्कृत (१)

मूल लेखक—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

अनुवादक—श्री वाहिद काज़मी

अबू रहमान मुहम्मद इब्ने अहमद अलबरूनी या केवल अलबरूनी सन् ९७३ ई० में ख़ेवा में पैदा हुए और कदाचित् अफ़ग़ानिस्तान के ग़ज़नी नगर में सन् १०४३ ई० में परलोकगामी हुए। उनके समय में रियासत ख़ेवा का नाम ख्वारिज्म (Khwarizm) था, जिसे उससे पहले लोग ख़ुरासान (Chorasmia) कहते थे। अलबरूनी का नाम साहित्य एवं ज्ञान के जगत् में अत्यन्त महान् विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध और प्रशंसित है। विविध ज्ञान-विज्ञान का यह विशेषज्ञ एक साथ गणितशास्त्र, प्राणि-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, तर्क शास्त्र, मानस शास्त्र, हिकमत तथा अन्य कई लौकिक विद्याओं का अच्छा जानकार था। भारत तथा यहाँके हालात से उसे बड़ी रुचि थी। यहाँके ज्ञान तथा विद्याओं पर उसकी गहरी दृष्टि थी। मध्ययुगीन अभारतीयों में ऐसे विद्वान् कम पाये जाते हैं। एक ओर उसमें सार्वभौम विद्वत्ता थी, तो दूसरी ओर सौजन्य, भद्रता तथा यथार्थप्रियता। इन्हीं गुणों के कारण अलबरूनी को विश्व के सर्वोत्तम मानसिक प्रतिभाएँ रखनेवालों में गिनना होगा।

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् एडवर्ड ज़काओ (Edward Sachaw) ने अलबरूनी की दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकों को संकलित किया और आधुनिक युग उनका इसलिए कृतज्ञ है कि उन्होंने विशेष रूप से भारत के सम्बन्ध में उसकी मूल अरबी में लिखी पुस्तकों को अंग्रेजी में अनूदित और प्रकाशित किया। अलबरूनी की विद्वत्तापूर्ण महानता और उनकी प्रतिष्ठा से एडवर्ड परिचित था। अलबरूनी की आधुनिकप्रियता और उसके कारणों से भी वह अवगत था और उसने खुले दिल से इसको स्वीकार भी किया है। ज़काओ ने अलबरूनी को न केवल विद्वान् वरन् महान् पुरुष के रूप में भी स्वीकारा है और वह उचित रूप से इसका अधिकारी है। पुस्तकों के उच्चकोटि के होने में तो कुछ सन्देह ही नहीं, किन्तु स्वयं लेखक के व्यक्तित्व को उभारने में भी ज़काओ का हाथ है। भारत एवं भारतीय-तत्त्वज्ञों की दृष्टि में अलबरूनी की प्रतिष्ठा तथा सम्मान होने चाहिये, क्योंकि उसने सर्वप्रथम भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का वैज्ञानिक अवलोकन किया तथा उसकी व्याख्या की है। दीर्घकाल बीत जाने के उपरान्त भी मैं समझता हूँ कि लोग धीरे-धीरे इस ओर ध्यान दे रहे हैं। उसकी मृत्यु के लगभग नौ सौ वर्ष बाद योरप, अमेरिका तथा एशिया के विद्वानों ने उसकी स्मृति को ताज़ा करने के लिए उत्साह बढ़ाया है। पेरिस में एशियाई विद्याओं पर जो कान्फ्रेंस जुलाई सन् १९४८ ई० में हुई उसमें अलबरूनी का सहस्र वर्षीय जन्म दिन मनाया गया। इसके पश्चात् कलकत्ते की ईरानी सोसाइटी ने भी अलबरूनी-दिवस मनाया।

हम मात्र इस आधार पर अलबरूनी के कायल तथा प्रशंसक नहीं कि वे बहुत बड़े विद्वान् थे तथा विविध विद्याओं पर अधिकार रखते थे, बल्कि हम उनका इसलिए अधिक सम्मान करते हैं कि उनका व्यक्तित्व भी यथार्थ प्रिय तथा न्यायप्रिय था। धार्मिक आस्थाओं तथा भावनाओं के विचार से वे बिल्कुल ही भिन्न वातावरण तथा समाज की उपज हैं, किन्तु उन्होंने किसी दूसरी जाति की सभ्यता एवं संस्कृति को तुच्छ नहीं समझा। वे ऐसे सीमित धार्मिक वातावरण में पले थे जिसके अनुसार मानों वही सत्य के ठेकेदार थे, शेष अन्य धर्मों अथवा उनकी सभ्यता एवं संस्कृति का कोई सम्मान और मूल्य ही न था, किन्तु स्वयं अलबरूनी अत्यन्त व्यापक दृष्टिवाले तथा स्वतन्त्र विचार के थे। वे न कमज़र्फ़ थे, न संकीर्ण। भारत के विषय में अलबरूनी की अरबी पुस्तक का जो शीर्षक है उसका अर्थ है—'इस्लाम पर विश्वास रखनेवाले की ओर से एक पुस्तक, जिसमें पूर्ण स्वीकृति तथा परित्यक्त दोनों प्रकार की वस्तुओं में हिन्दू-दर्शन का सम्पूर्ण विवरण है।' इस नाम के होते हुए भी पुस्तक में विवाद तथा आक्रमण करके किसी विशेष जीवन-दर्शन को दूसरे पर प्रधानता नहीं दी गयी है और न ही लेखक ने हिन्दू जीवन-दर्शन पर कीचड़ उछाली है। यह पुस्तक उसी युग की है जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू भारत में आये हुए तुर्की मुसलमानों से युद्ध-क्षेत्र में पराजय पर पराजय पा रहे थे और हिन्दू समाज हार रहा था। इस पृष्ठभूमि में देखा जाय तो एक मुसलमान विद्वान् के मन में स्वधर्मियों की श्रेष्ठता तथा प्रधानता की अनुभूति कोई अस्वाभाविक नहीं है। बहुत सम्भव है कि अलबरूनी का यह विचार रहा हो कि इस्लामी-दर्शन हिन्दू-दर्शन से श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण है। फिर भी किसी स्थान पर उन्होंने दयानतदारी एवं न्याय का पल्ला नहीं छोड़ा। हिन्दू समाज, उसके रीति-रिवाज, रंग-ढंग, हिन्दुओं के विचार तथा भावनाएँ, जीवन-व्यवस्था, साहित्य एवं ज्ञान को असभ्य अथवा अज्ञानपूर्ण या काफ़िरों का तरीका कह कर उसका उपहास या अपमान नहीं किया, वरन् उन्होंने विश्व के अन्य देशों — जैसे, यूनान या इस्लाम से पूर्व के अरब के वातावरण, समाज तथा उस युगर के रस्म-रिवाजों से हिन्दू समाज की तुलना की और इस बात पर बल दिया है कि हिन्दू भी उससे ज्ञान तथा बुद्धि में पीछे नहीं हैं। यदि उनकी अरबी पुस्तक पढ़कर लोगों के दिलों में हिन्दू समाज के प्रति घृणा-भाव उपजता तो वे हर संभव उपाय से दूर करने का प्रयत्न करते तथा अपनी गवेषणाओं से सिद्ध कर देते कि भ्रान्ति एवं घृणा दोनों अनुचित तथा निराधार हैं। धार्मिक आस्थाओं और सभ्यता एवं संस्कृति के सम्बन्ध में अलबरूनी की इस निरपेक्षता के लिए हम भारतवासियों, विशेषतः हिन्दुओं, को उनका कृतज्ञ होना चाहिए और न केवल हिन्दुओं को वरन् समूचे विश्व के यथार्थप्रिय व्यक्तियों को अलबरूनी के प्रति सम्मान और श्रद्धा रखना अनिवार्य है। विद्वत्ता के अतिरिक्त बहुत-सी मानव-विशेषताओं तथा मान्यताओं के विचार से भी अलबरूनी का बहुत उच्च स्थान था। उनकी स्पष्टवादिता तथा न्याय-प्रियता का भी उपमान नहीं है।

अलबरूनी अपने युग के अद्वितीय विद्वान् तथा मनुष्य थे। निःसन्देह वे अपने प्रगतिकाल (अनुमानतः सन् १०४० ई०) के अधिकतर विद्वानों पर वरीयता रखते थे और प्रत्येक देश से उनका सम्बन्ध, प्रत्येक जाति से नाता तथा समस्त मनुष्यों से उनको प्रेम था। उस युग के चीनी तथा भारतीय विद्वानों की दृष्टि केवल अपने-अपने देश तक सीमित थी। इन दोनों देशों के विद्वानों में कोई ऐसा न था जो पाश्चात्य देशों, इस्लामी जगत्, प्राचीन यूनान तथा रोम की महान् सभ्यताओं से परिचित होता। दूसरी ओर इटली तथा समूचे पश्चिमी योरप में भी अन्धकार का दौरदौरा था। लैटिन भाषा के द्वारा ईसाई धर्म का न्यूनाधिक ज्ञान और कुछेक प्राचीन पुस्तकों का अध्ययन भी गिने-चुने विद्वानों ने किया था। बस यही उस युग के पश्चिमी योरप में ज्ञान की प्रगति थी। पूरबी योरप के ईसाई ग्रीक अर्थात् बाईजैंटाइन (Bygantine) विद्वान् भी अरब तथा अन्य एशियाई देशों के साहित्य से अपरिचित थे। मुसलमान जब अरब, सीरिया, मिस्र, उत्तरी अफ्रीका, स्पेन तथा सिसली प्रायद्वीप तक पहुँचे तब योरप में अन्तर्राष्ट्रीय रूप से ज्ञान को बढ़ावा मिला और अलबरूनी में यह अन्तर्राष्ट्रीय भावना पूर्ण रूप से उभरकर सामने आयी। अलबरूनी की मातृ-भाषा फारसी थी, मगर तुर्की भाषावाले देश का निवासी होने से तथा तुर्की अमीरों के नगर ग़ज़नी में आकर बस जाने से उन्होंने तुर्की भाषा सीखी।

यह बात समझ में आती है कि ज्ञान-पिपासु होने के कारण उन दिनों फ़ारसी-तुर्की भाषाओं की जो भी पुस्तकें उन्हें उपलब्ध हो सकीं उनका उन्होंने ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। अरबी भाषा इस्लामी जगत् की धार्मिक तथा साहित्यिक भाषा थी और अलबरूनी अरबी भाषा में दक्ष भी थे। अंग्रेज़ी भाषा के भारतीय लेखक जितनी अंग्रेज़ी जानते हैं, अरबी भाषा पर अलबरूनी को कम से कम उतनी दक्षता अवश्य प्राप्त थी, बल्कि कदाचित् उससे कहीं अधिक ही रही होगी। अरबी भाषा में अनूदित पुस्तकों से ही अलबरूनी ने प्राचीन यूनान अथवा मध्य-युगीन ईसाई-यूनान और सीरिया के ज्ञान एवं दर्शन का अधिकांश, साथ ही गणित शास्त्र, नक्षत्र विज्ञान, चिकित्सा तथा भारतीय जीवन-दर्शन पढ़ा। इस्लामी सभ्यता के दूसरे युग में बग़दाद नगर ज्ञान एवं साहित्य का महत्त्व-पूर्ण केन्द्र-स्थल था, जिसने दूर और निकट के देशों से प्राचीन साहित्य के भांडारों को अपने अंचल में समेटकर अरबी भाषा में अन्य शास्त्रों की बड़ी सम्पदा एकत्र कर ली थी। अलबरूनी ने प्लेटो (Plato) की पुस्तकों से उनके विचारों को एक बार पुनर्जीवित कर दिया था। उन प्राचीन यूनानी लेखकों की पुस्तकों के अतिरिक्त सीरियायी भाषा के अनुवादों से भी अलबरूनी ने लाभ उठाया था। दूसरी ओर उन्होंने पूरी लगन के साथ कपिल, व्यास, वराह-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिहिर तथा संस्कृत पुराणों से भी ज्ञान-प्राप्ति की थी। उस समय के भारत, अरब, तुर्किस्तान तथा अन्य इस्लामी देशों का यूनान से सीधा सम्पर्क न था, केवल अरबी भाषा के द्वारा उस स्वतन्त्र तथा उन्नतिशील देश (यूनान) से अपने सम्बन्ध स्थापित करना तथा उसके ज्ञान, साहित्य के भांडार से जानकारी प्राप्त करना भी सन् १०४० ई० में कोई साधारण या सरल कार्य न था। आधुनिक अन्वेषणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि उस समय के सारे सभ्य संसार में केवल अलबरूनी ऐसा विद्वान् था जिसने इतनी निपुणता तथा परिश्रम के साथ यूनानी-दर्शन एवं संस्कृति का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया था।

अलबरूनी की वय के लगभग चौदह वर्ष (४४ वर्ष से ५८ वर्ष की वय तक) सुल्तान महमूद ग़ज़नवी के शासन-काल में व्यतीत हुए, लेकिन कुछ राजनीतिक कारणों से उनको सम्राट् की कृपादृष्टि या सभा में कोई प्रतिष्ठा अथवा स्थान प्राप्त न हो सका, यद्यपि बहुत-सी हैसियतों से वह इस योग्य तथा इसके अधिकारी थे। सुल्तान महमूद के दरबार में अलबरूनी की कोई पहुँच क्यों न हुई और वे सम्राट् की कृपा से क्यों वंचित रहे—इसके कारणों तथा आधारों पर जकाओ ने भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। एक शत्रु रियासत की ओर से अलबरूनी को प्रतिभू (ज़ामिन) के रूप में महमूद के दरबार में भेजा गया था। वहाँ उनके पांडित्य के कारण लोग उनका सम्मान तो करते थे किन्तु राजनीतिक कारणों के आधार पर उनको शाही अनुग्रह तथा कृपा प्राप्त न हो सकी। सुल्तान महमूद शक्तिशाली सम्राट् था। वह धार्मिक अन्धविश्वासों तथा लूटपाट का समर्थक था। इन्हीं दो इच्छाओं की पूर्ति के लिए उसने भारत पर अनेक आक्रमण किये थे और पड़ोसी हिन्दू रियासतों को बुरी तरह लूटकर अत्यधिक हानि पहुँचायी थी। इन रियासतों के सहस्रों व्यक्तियों को उसने कत्ल किया तथा उन्हें दास बनाकर वह अपने साथ ले गया। कई समृद्ध नगरों को उजाड़ तथा मन्दिरों को ध्वस्त करके अतुल संपदा लूटकर ले गया। स्पष्ट है कि उन आक्रमणों के कारण हिन्दू नागरिकों के दिलों में उसके लिए न कोई आदर था और न वे तुर्की सैनिकों को अच्छी दृष्टि से ही देखते थे, प्रत्युत 'तुर्क' शब्द से ही उनको घृणा हो गयी थी।

सन् १०२१ ई० में महमूद ने पंजाब को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। देश की अधिकतर आबादी हिन्दुओं पर आधारित होने पर भी यह देश दारुल-इस्लाम (इस्लाम का घर) बन गया, जहाँ इस्लाम के प्रचार में कोई रुकावट शेष न रही और प्रत्येक मुसलमान के लिए रियासत भर में यात्रा करना सुगम हो गया। ऐसा वातावरण अलबरूनी के लिए भी हितकर सिद्ध हुआ। वह भारत आया और यहाँ रहकर उसने हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति का अध्ययन किया। इससे पहले उसको नक्षत्र विज्ञान तथा गणित के विषय में हिन्दुओं की कुछ पुस्तकों का अरबी अनुवाद मिल गया था और उन्हीं अनुवादों के कारण वह भारतीय विद्याओं की ओर आकर्षित हुआ था। यह वही समय (सन् १०१७ ई०) था जब उनको जमानत के रूप में महमूद के दरबार में रहना पड़ा था। उन दिनों ग़ज़नी नगर एशिया की विशाल इस्लामी सत्ता की राजधानी था। महमूद जैसे शक्तिशाली सम्राट् के कारण निःसन्देह मध्य युग तथा मध्य एशिया के सारे इलाकों के लोग आकर ग़ज़नी में बस गये थे। ग़ज़नी की आबादी में भारतीयों की अच्छी खासी संख्या थी। जो अगणित भारतीय युद्धबन्दी ग़ज़नी में बसे थे उनमें सैनिकों के अतिरिक्त कारीगर, ज़मींदार, राजा तथा विद्वान् आदि थे। उनमें अधिकांश के भाग्य में लौटकर भारत आना संभव नहीं हुआ। जिनको किसी प्रकार यहाँ आने का अवसर भी मिला उनको उस समय के भारतीय हिन्दू समाज में स्थान न मिला। पराजित भारतीय समाज इतना शिथिल हो गया था कि यहाँके हिन्दू तुर्कों की छाया तक से दूर रहना चाहते थे। उन युद्धबन्दियों को, जो तुर्कों के संग रह आये थे, हिन्दुओं ने इसलिए न अपनाया कि वे तुर्कों के हाथ का भोजन कर चुके थे। अत्यन्त प्राचीनकाल से अफ़ग़ानिस्तान में हिन्दू जा बसे थे और वे भी सुल्तान महमूद की प्रजा में सम्मिलित थे। इन लोगों से युद्धबन्दियों की तरह का बर्ताव नहीं किया जाता था और मुसलमानों के शासनकाल के प्रारंभिक युग तक ये पूरी तरह अपनी सभ्यता एवं अपने साहित्य के अनुयायी तथा संरक्षक रहे। अनुमान किया जा सकता है कि भारतीय युद्धबन्दियों और अफ़ग़ानिस्तान की हिन्दू-प्रजा में निश्चित ही ऐसे लोग थे जो तुर्की शासन के एक प्रतिष्ठित विद्वान् के हृदय में अपने देश, धार्मिक विचार और दर्शन की प्रतिष्ठा तथा गुण-ग्राहकता देखकर प्रसन्न होते थे और इस प्रकार ग़ज़नी में रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर अलबरूनी ने संस्कृत तथा पश्चिमी पंजाब की उस समय प्रचलित भाषा (जिसे अफ़ग़ानिस्तान के हिन्दू निवासी भी समझते थे) सीखना प्रारंभ कर दिया था। कदाचित् पंजाब में तुर्की शासन स्थापित होने के उपरान्त उन्होंने पंजाब के कई स्थानों का भ्रमण भी किया था। वहाँके ब्राह्मणों तथा अन्य विद्वानों से भेंट भी की और उन लोगों ने ज्ञान एवं साहित्य के कार्यों में अलबरूनी की सहायता भी की। उसी समय हिन्दुओं के विशेष तीर्थस्थल मुल्तान में दूर-दूर से हिन्दू यात्री सूर्य देवता के दर्शनार्थ आते थे और उस तीर्थस्थल में कुछ-न-कुछ संस्कृत भाषा का प्रचलन अवश्य रहा होगा और कदाचित् इसी कारण अलबरूनी ने भी कुछ दिनों तक मुल्तान में निवास किया।

अलबरूनी किस सीमा तक संस्कृत के ज्ञाता थे, ज़काओ ने इस पर प्रकाश डाला है; किन्तु इस भाषा से उनकी जानकारी के सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता कि वह अपना काम चलाने भर की संस्कृत अवश्य जानते थे। इटली के विद्वान् और तमिल भाषा-विज्ञ कंस्टेंटियस बास्की (Constantius Bascki), फ्रांसीसी विद्वान् एबे दुबोइ (Abbe Dubois), चार्ल्स विल्किन्स (Charles Wilkins) तथा विलियम जौंस (William Jones) इत्यादि ने भारत में रहकर संस्कृत के विषय में शोधकार्य किये हैं। उन्हीं विद्वानों की भाँति अलबरूनी ने भी अपने कार्यों में ब्राह्मणों, शास्त्रियों अथवा पंडितों की सहायता ली होगी। अनुमान है कि अलबरूनी ने अपने शोध कार्यों के लिए एक ही समय में एक या एक से अधिक संस्कृतज्ञ ब्राह्मणों से सहायता ली होगी। यह भी संभव है कि यही लोग उन पुस्तकों का अनुवाद भी करते रहे हों जो अलबरूनी के अध्ययन के लिए आवश्यक थीं। ये अनुवाद निश्चय ही उसी भाषा में होते रहे होंगे जिससे दोनों ही परिचित रहे हों। वह भाषा या तो पंजाब की प्रचलित भाषा थी (जिसको अलबरूनी जानता था) अथवा फ़ारसी। ये ही दोनों भाषाएँ अलबरूनी के संस्कृत शास्त्रों से अवगत होने का माध्यम थीं। तात्पर्य यह कि इन्हीं भाषाओं से अलबरूनी ने कुछ संस्कृत पुस्तकों का अध्ययन किया और सामग्री जुटाकर फिर उसे फ़ारसी तथा अरबी में रूपान्तरित कर दिया। कहा जाता है कि उन्होंने संस्कृत भाषा में भी कुछ पुस्तकें लिखीं अथवा उनका अनुवाद किया था। इसका ढंग कदाचित् यह रहा होगा कि अलबरूनी अपने विचार पंडितों के सम्मुख व्यक्त करते होंगे और फिर वे लोग उन्हीं बातों को संस्कृत में लेखबद्ध कर देते होंगे। ज़काओ ने अलबरूनी के संस्कृत ज्ञान के सम्बन्ध में रोचक ढंग से प्रकाश डाला है। यह ज़काओ के लिए ही संभव था, क्योंकि वह स्वयं अरबी तथा संस्कृत दोनों भाषाएँ जानते थे।

सन् २२१–६४२ ई० में ईरान में कुछ संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद मध्ययुगीन फ़ारसी अर्थात् पहलवी भाषा में हुआ। उन दिनों वहाँ सासानियों का शासन था। तदुपरांत उन पुस्तकों का सीरियानी, अरबी, यूनानी तथा पहलवी भाषा में अनुवाद किया गया। अब्बासी ख़लीफ़ाओं के युग में बग़दाद में गणित, ज्योतिष और चिकित्सा की जिन संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद हुए उनमें अधिकांश का आधार सासानी पुस्तकें थीं। पश्चिमी एशिया तथा ईरान में भारतीय-दर्शन की गूँज यूनानियों के उत्थान से पूर्व ही पहुँच चुकी थी। हज़रत मसीह के जन्म से कम-से-कम पाँच सौ वर्ष पूर्व से अनेक भारतीय विद्वान् साधु, संन्यासी एक स्थान से दूसरे स्थान की सदैव यात्राएँ करते रहते थे और सुदूरवर्ती देशों में जाने की समस्त कठिनाइयों तथा विषमताओं की तनिक चिन्ता न करते थे। वर्तमान समय में भी इसी प्रकार भ्रमण करनेवाले भारतीय पंडित अथवा संन्यासी कभी-कभी भारत के बाहर दृष्टिगोचर होते हैं। वे लोग पाश्चात्य देशों की यात्राओं पर जाते रहे और उनमें कुछ यूनान भी जा पहुँचे थे। वे विदेशों में जाकर वहाँके विद्वानों से मिलते तथा उनसे धर्म और दर्शन के संबंध में विचारों का आदान-प्रदान करते थे। ऐसे ही एक भारतीय दार्शनिक का उल्लेख हम प्राचीन यूनानी साहित्य में भी पाते हैं जो सन् ४०० ई० पू० एथेंस नगर में पहुँचा था और जिसने यूनानी दार्शनिक सुकरात (Socrates) से भेंट की थी। विश्वविजेता सिकन्दर महान् भारत से लौटते समय कॉलानॉस (Kalanos) अर्थात् कल्याण नामक भारतीय पंडित को अपने साथ ले गया था, मगर यह पंडित 'यी-लिन' नगर तक ही पहुँचा था कि स्वयं को अग्नि की भेंट करके परलोकगामी हो गया।

अशोक महान् ने (सन् ३०० ई०पू०) दक्षिणी तथा पूरबी योरप के अलावा कई एशियाई देशों (जैसे, सीरिया, मैसीडौन, एप्रिस, मिस्र तथा उत्तरी अफ्रीका के कीरन, साइरन आदि) में बौद्धमत के प्रचारार्थ भिक्षुओं को भेजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। ये लोग भारतीय जीवन-सिद्धान्त का प्रचार मौखिक रूप से करते थे, और इसी प्रचार के कारण उन देशों में भारतीय दर्शन की कुछ बातें पहुँच गयी थीं। इन पंडितों ने संस्कृत या किसी अन्य भारतीय भाषा की पुस्तकों का उन देशों की भाषाओं (प्राचीन फ़ारसी, सीरियानी, यूनानी) में भी अनुवाद किया था अथवा नहीं—इसके बारे में इसलिए कोई कुछ नहीं बता सकता कि आज तक उस समय की ऐसी कोई पुस्तक प्राप्त नहीं हुई है। सन ६०० ई० में ईरान के शाही वंश वालों के साथ भारत के गुप्तवंश के राजाओं तथा दक्षिण के चालुक्य शासकों का सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित हुआ। तब से पहलवी भाषा में भारतीय पुस्तकों का विधिवत् अनुवाद होने लगा। विशाल तथा शक्तिशाली सासानी शासन के उत्थान काल में ईरान ने ज्ञान और साहित्य के क्षेत्र में स्पष्ट प्रगति की। उस समय यदि एक ओर यूनानी एवं सीरियानी भाषाओं से चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन आदि की पुस्तकों का पहलवी भाषा में अनुवाद किया गया तो दूसरी ओर संस्कृत साहित्य, दर्शन, तर्क तथा चिकित्सा की पुस्तकों का भी अनुवाद होने लगा। पहलवी भाषा की धार्मिक पुस्तक 'दीन-कीरत' से ज्ञात होता है कि यूनान देश से दर्शन के विद्वान् पालहोरम फ़िलिस्फी (Pāl Hòrom Filisafy) आया था अर्थात् रोम अथवा अन्य जाति से आये हुए दार्शनिक यूनानी विद्वानों ने प्राचीन यूनान या हिलास तथा नये रोमन शासकों के प्रभाव से ईरान में इन शास्त्रों की नींव डाली और इस प्रकार ईरानियों की सभ्यता एवं उनके साहित्य को आगे बढ़ाया। कई भारतीय विद्वानों ने भी अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के कारण पाल हिन्दू कान्दनक (Pal Hindu Kandanak) सासानी शासकों के दरबार में प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त किया। इनका विस्तृत उल्लेख एच० डब्ल्यू० बेली की अंग्रेजी पुस्तक 'नवीं शती की पुस्तकों में ज़रथुस्त्रीय समस्याएँ' (Zoroastrian Problems in the 9th Century Books) में दिया है। ये वही पुस्तकें हैं जिनमें 'पंचतन्त्र' आदि की कथाएँ सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त उन पुस्तकों में कुछ ऐसी भी हैं जिनमें तुर्की दर्शन का उल्लेख मिलता है। उस युग में जो भारतीय विद्वान् ईरान आते-जाते थे उनके लिए वहाँका सामाजिक एवं धार्मिक वातावरण अनुकूल था।

ईरान में उस समय के प्रचलित धर्म ज़रतुश्त और हिन्दू धर्म की कुछ बातें मिलती-जुलती हैं। जैसे, अग्नि-पूजा। सासानीयुगीन हिन्दुओं में छूतछात की इतनी अधिकता न थी। तुर्की मुसलमानों के आगमन के उपरांत ये आर्य और अनार्य जातियों के भेद-भाव खुलकर सामने आये और जात-पाँत सम्बन्धी प्रतिबन्ध उभरे। तुर्कों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज में इतनी कट्टरता नहीं थी। इसी कारण भारतीय पंडित बड़ी सुगमता से ईरान जाते और वहाँसे स्वदेश लौटने पर पुनः हिन्दू समाज में स्थान पाते थे। हमें यह स्मरण रखना पड़ेगा कि हज़रत ईसा के जन्म के एक दो सौ वर्ष के भीतर ईरानी 'यांग' नामक पुरोहित [यूनानी भाषा में जिसे मैगी (Magai) या मगस (Magos)] कहते थे भारत से एकदम नये सिरे से 'मिहिर' नाम लेकर सूर्य की उपासना लेकर आये और वे लोग हिन्दू समाज में 'मग ब्राह्मण' अथवा शाकद्वीपी ब्राह्मण कहलाये। (मिहिर शब्द वैदिक 'मित्र', अवेस्ता में मिथ्र, पहलवी में मेह्र है)। ईसा से पूर्व इस सम्बन्ध में भारतीय ब्राह्मण और भी खुला दिल रखते थे। मगर ईरान में इस्लाम फैलने के पश्चात् (साधारणतः जिस धर्म में दूसरे किसी धर्म के विचारों तथा उसके जीवन-दर्शन से सहानुभूति नहीं पायी जाती, और इस्लाम के अतिरिक्त शेष धर्मों, जातियों एवं उनके जीवन-दर्शन को काफ़िरों का धर्म तथा सभ्यता कहकर व्यक्त किया गया है) ईरान की दशा शुरू से ही बदल गयी। जो कुछेक भारतीय विद्वान् बगदाद जैसे मुस्लिम आबादीवाले नगर में जाते रहे हैं कदाचित् वे वहींके होकर रह गये और हमें ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि इस प्रकार बग़दाद में बसनेवाले भारतीयों ने इस्लाम स्वीकार किया। इन घटनाओं से अनुमान लगाया जा सकता है कि जो लोग किसी-न-किसी प्रकार इस्लामी देशों में जा बसे थे वे साधारणतः लौटकर स्वदेश नहीं आये और यदि आये भी तो हिन्दू समाज में (इस्लाम फैलने के पश्चात्) उन्हें सरलता से स्थान नहीं मिलता था—विशेष रूप से जब से भारतीय सीमाओं पर तुर्क तथा ईरान के मुसलमानों ने आक्रमण शुरू किये।

इन बाधाओं और कठिनाइयों के होते हुए भी विदेशों का भ्रमण करने की इच्छा के आधार पर एवं व्यापारिक उद्देश्यों से पश्चिम एवं उत्तर के देशों में जाकर बसने का पुराना क्रम सिंध, राजस्थान, पंजाब तथा कश्मीर के संघर्ष-प्रिय भारतीयों—हिन्दू तथा सिख व्यापारियों—में अब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेष है। ये लोग अफ़गानिस्तान, मध्य एशिया, तुर्किस्तान (काशग़र, यारक़न्द, खोतन, समरक़न्द) कीस, बानोम वा बाकू, जार्जिया, आर्मीनियाँ, इराक़, सीरिया, मिस्र इत्यादि में जाते तथा स्वदेश से सम्बन्ध स्थापित रखते हुए विदेशों में मन्दिर आदि का निर्माण करके अपने धार्मिक कार्यों को भी चलाते रहे।

यही नहीं कि ग़ज़नी भारत से समीप है, बल्कि यह स्थान इस विचार से महत्त्वपूर्ण है कि यहाँ रहकर अलबरूनी जैसे ज्ञान-प्रेमी ने भारत तथा यहाँके ज्ञान एवं साहित्य के विषय में सच्ची जानकारी तथा ठीक परिचय दिया है। यद्यपि वह पक्के मुस्लिम विद्वान् थे और हिन्दू धर्म या उसके दर्शन से उनका कोई सम्बन्ध न था, और न कुछ धार्मिक श्रद्धा थी तथापि जिस लगन और तल्लीनता के साथ उन्होंने भारतीय ज्ञान प्राप्त किये उसके आधार पर निःसन्देह वह हिन्दू ज्ञान एवं साहित्य के मन्दिर में प्रविष्ट होने के योग्य थे।

अलबरूनी ने अपनी सब पुस्तकों में कहीं भी 'संस्कृत' शब्द प्रयुक्त नहीं किया है। यही नहीं, उन्होंने एक बार भी 'प्राकृत' शब्द अथवा 'अपभ्रंश' का भी प्रयोग नहीं किया है। मध्ययुग के भारतीय पंडितों का साधारण रूप से यह विचार था (और आज भी पुराने विचारों वाले पंडितों का यही विचार है) कि संस्कृत तथा दूसरी बोली-जानेवाली भाषाएँ अलग-अलग भाषाएँ नहीं हैं बल्कि एक ही आदि संस्कृत भाषा के विविध रूप हैं। अलबरूनी ने भी इसी धारणा को स्वीकार कर लिया था। (केवल स्वर या उच्चारण के परिवर्तन से विभिन्न प्राकृत अथवा अपभ्रंश शब्दों को संस्कृत में बदलना सरल था या इसके विपरीत भी संभव था?) अलबरूनी के देहान्त के कोई सौ वर्ष के भीतर उत्तरी भारत (कदाचित् काशी) के निवासी पं० दामोदर ने संस्कृत सीखनेवालों के लिए 'अव्यक्ति, व्यक्ति प्रकरण' नामक एक पुस्तक लिखी थी जिसमें उसने उपर्युक्त धारणा के विषय में बहुत कुछ लिखा है और कहा है कि जिस प्रकार पापी ब्राह्मणी प्रायश्चित्त करने से पुनः ब्राह्मणी हो सकती है उसी प्रकार प्रचलित अपभ्रंश शब्द भी उन्नत करके संस्कृत भाषा में प्रविष्ट हो सकते हैं। (नियमों के प्रतिबन्ध के कारण) उस युग के संस्कृत शब्दों तथा सामान्य बोलचाल के शब्दों में जो अन्तर है अलबरूनी उससे अपरिचित हैं। इसी कारण उन्होंने जगह-जगह संस्कृत शब्दों के बदले उन्हीं शब्दों के साथ प्राकृत तथा भाषा के शब्दों का प्रयोग भी किया है। संस्कृत उच्चारण के सम्बन्ध में भी वह सतर्क नहीं रहे। उनके उच्चारण में भारत की विभिन्न भाषाओं की मिलावट प्रकट है। इसका कारण यह हो सकता है कि जिन पंडितों से उनका सम्पर्क रहा और जिनसे उन्होंने अपने पुस्तक-लेखन कार्यों में सहायता ली उनमें एक ही प्रकार का संस्कृत उच्चारण प्रचलित नहीं था। एडवर्ड ज़काओ ने भी इस ओर संकेत किया है तथा बताया है कि ये पंडित भारत के विभिन्न भागों के निवासी थे।

प्रश्न यह है कि ये सब पंडित भारत के किन-किन भागों के निवासी थे। ज़काओ ने अलबरूनी की पुस्तकों में जितने संस्कृत तथा अन्य भारतीय शब्दों का प्रयोग हुआ है, उनकी पूरी सूची दे दी है। साथ ही उन शब्दों का ठीक उच्चारण एवं प्रयोग भी दिया है। उस युग में अरबी अक्षर नुक़ते के बिना लिखे जाते थे। अलबरूनी ने इन्हीं दोषयुक्त और अपूर्ण अक्षरों से संस्कृत शब्दों को लिखा है। अलबरूनी की उन पुस्तकों तथा लेखों से हमको सन् ११०० ई० में पश्चिमी पंजाब की संस्कृत तथा स्थानीय भाषाओं के उच्चारण के विषय में एक साथ जानकारी प्राप्त हो सकती है।

अलबरूनी की पुस्तकों में जगह-जगह उच्चारण का मतभेद प्रकट होता है। उन्होंने जो शब्द प्रयुक्त किये हैं वे किसी एक स्थान के उच्चारण के अनुसार नहीं हैं। न उनमें पश्चिमी पंजाब या मध्य देश से अनुकूलता है और न अंतिम वेद से। संस्कृत को उसके उच्चारण तथा स्वराघात (लहज़ा) के साथ स्वयं भारतीय नागरिक भी नहीं बोल पाते थे और जब कोई अभारतीय उसको बोलता या लिखता था तब उसके वक्तव्य या लेख में यह दोष और भी स्पष्ट दीखता था। अतः अलबरूनी के लेखों में भी यही कमी मौजूद है। उसकी पुस्तकों में ढाई हज़ार से अधिक भारतीय शब्द अरबी लिपि में लिखे पाये जाते हैं। इस आधार पर उनमें दो प्रकार की कमियाँ पैदा हो गयी हैं—एक तो उच्चारण तथा स्वराघात में अंतर है, दूसरे बिन्दु (नुक़ते) से रहित अक्षरों में लिखे हुए बहुत से शब्द जो या तो शुद्ध रूप से पढ़े नहीं जा सकते अथवा यदि पढ़े भी जाते हैं तो अर्थ तथा अभिप्राय के विचार से शुद्ध नहीं होते।

[क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविस्मरणीय-राहुलजी

श्री भंवरलाल नाहटा

गौर वर्ण, चौड़े ललाट, आकर्षक व्यक्तित्ववाले महापण्डित राहुल सांकृत्यायन को कौन भूल सकता है ? उनकी वाणी में माधुर्य, चिर अनुभव और गंभीर अध्ययन की छाप सहज परिलक्षित होती थी। हमारे साथ उनका २० वर्ष का अच्छा संबंध था। अपने अध्ययन द्वारा उन्होंने प्राकृत पाली अपभ्रंश से राष्ट्रभाषा हिन्दी का सीधा संबंध बतलाया और उसके ज्ञान के लिए उन भाषाओं का परिशीलन अनिवार्य प्रतिपादित किया।

उनकी सूझ-बूझ और कल्पना-शक्ति गजब की थी। उनको घटनाओं की गतिविधि, उनके अतीत से संबंध एवं भविष्य के परिणाम की अभिव्यक्ति की क्षमता गहरे चिन्तन और स्थिर मस्तिष्क के बल पर प्राप्त हुई थी। 'वोल्गा से गंगा' की प्रस्तावना इसका स्पष्ट उदाहरण है। उनमें इतनी बहुश्रुतता थी कि उन्होंने मानों शास्त्र घोलकर पी लिये हों। लिखने बैठते तो लेखनी अविश्रान्त गति से चलती और रातभर में एक पुस्तक लिखकर समाप्त कर देते। भूल प्रत्येक व्यक्ति से होती है और संशोधन की गुंजायश भी रहती है। इस बात को वे मानते थे और कभी कोई आलोचना करता तो उसके औचित्य को बड़े प्रेम से स्वीकार करते थे। २० वर्ष पूर्व की बात है। एक बार आपने 'श्री जिनदत्तसूरीजी वृत्त' अपभ्रंश काव्य के पद्य पर आलोचना करते हुए 'कज्जउ करइ बुहारी बुड्ढी' का अर्थ 'घर में बड़ी-बूढ़ी औरतें काम करती हैं' लिख दिया था। मैंने उनकी भूल बताते हुए यह अर्थ किया था—बँधी हुई बुहारी (झाड़ू) कचरा साफ कर देती है (एकता का उदाहरण—अकेले तृण और समूह पर)। इस विषय का एक नोट लिखकर श्री मोहनसिंह सेंगर को दिया और उन्होंने 'विशाल भारत' में प्रकाशित कर दिया। जब राहुलजी को यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने इसके लिए प्रसन्नता व्यक्त की।

उनके साथ रहने का अवसर मिला मुझे वैशाली में। तब वे महावीर जयन्ती समारोह के सभापति होकर गये थे और बिहार के राज्यपाल श्री अणे प्रधान अतिथि थे। श्रमण संस्कृति से राहुलजी को अगाध प्रेम था। उन्होंने वैशाली तथा भगवान् महावीर का महत्त्व बड़े ओजस्वी शब्दों में व्यक्त किया था। १५ हजार लोगों की उपस्थिति में आपने प्रवचन किया। जैन समाज की ओर से मुझे भी अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया गया। जब हम लोग छोटे शामियाने के नीचे स्नान-पूजा का अनुष्ठान कर रहे थे तब वे भी अपनी विद्वन्मण्डली के साथ आकर सम्मिलित हुए और धूप में खड़े रहकर भगवान् के जन्माभिषेक में सम्मिलित हुए। रात की सभा में इस अवसर को स्मरणीय और सौभाग्यपूर्ण बतलाया। दिन में हम लोग बावन तालाब स्थित मन्दिर की जैन प्रतिमाओं के अवलोकनार्थ गये तथा एक प्राचीन स्तूप जैसे ध्वस्त टिब्बे पर गये, जहाँ ऊपर किसीकी कब्र बनी हुई थी। राहुलजी ने उसकी ईंटों का विभिन्न काल बतलाते हुए उसकी प्राचीनता प्रमाणित की। संस्कृत साहित्य में आये हुए तिलक वृक्षों का वर्णन करते हुए उन्हें प्रत्यक्ष दिखाकर कहा कि ये वृक्ष नगर प्राचीर की भाँति ग्रामों के चतुर्दिग फैले रहते थे। मुजफ्फरपुर के वास्तविक नाम की बात चली तो उन्होंने कहा कि वहाँकी लीची बहुत प्रसिद्ध है और लीची को संस्कृत में मोदफल कहते हैं और उसीके नाम पर प्रसिद्ध मोदफलपुर को मुसलमानों ने मुजफ्फरपुर कर दिया।

जैन साहित्य के सम्बन्ध में बात चलने पर आपने कहा कि इतना समृद्ध और सर्वाङ्गपूर्ण होते हुए भी प्रचार के अभाव में इसे उचित न्याय नहीं मिल पाया। जैन धर्मावलम्बियों को संकुचित विचार त्यागकर इस अमृत को दोनों हाथ लुटाना चाहिए। ज्ञानविज्ञान की इस अमूल्य निधि को ज्ञान भाण्डारों में छिपाकर रखना अपराध है। बौद्ध साहित्य की भाँति संसार की सभी भाषाओं में इसका अनुवाद प्रचार किया जाना चाहिए। भगवान् महावीर का जीवन-चरित्र भी लाखों की संख्या में छपकर विश्व भर में प्रचारित होना चाहिए। क्या ही अच्छा हो, बुद्धचर्या की भाँति महावीरचर्या भी संकलित होकर प्रकाश में आये। इन विचारों को आपने मुझको एक पत्र में लिखा और साथ ही यह आग्रह किया कि यदि आप इस काम को हाथ में ले लें तो मैं अपना पूरा समय और सहयोग दे सकता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य प्रचार के लिए आपने कहा कि समाज को इसका महत्त्व समझने में देर लगेगी और जमाना बहुत आगे निकल जायगा। अतः आप लोग अपने सीमित साधनों से भी इसकी सुन्दर भूमिका तैयार कर सकते हैं। आपने सुझाव दिया कि जो भी ग्रन्थ आपके पास या ज्ञान भाण्डारों में हैं उन्हें शुद्ध टाइप करवा के साइक्लोस्टाइल की मशीन में उनकी सौ-सौ प्रतियाँ निकलवा लें और ग्रंथ का शीर्षक तथा आवरण पृष्ठ प्रेस में छपाकर ग्रन्थमाला का रूप दे दें। ज्यों-ज्यों वे तैयार हों संसार के समस्त विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों को भेज दें। इस प्रकार वे विद्वानों के हाथ में जायँगे, वे उस पर शोध कार्य करेंगे, थीसिस लिखेंगे और सहज में ही जैन साहित्य का अच्छा प्रचार हो जायगा। इसका महत्त्व तब मालूम होगा जब इस ग्रन्थमाला के सौ-पचास ग्रन्थ निकल जायँगे। यह एक अलभ्य और अनुपम ग्रन्थमाला कहलाने लग जायगी। आपके इन विचारों को हम कार्य रूप में परिणत न कर सके। तब उन्होंने हमें उलाहना दिया और ३१-८-५२ को हमारी पुस्तक 'ज्ञानासार ग्रन्थावली' के प्राक्कथन में भी इसका उल्लेख किया।

राहुलजी का हमारे ऊपर बड़ा स्नेह था। उनके हैपी वैली, मंसूरी के स्थायी पते से तो पत्र-व्यवहार होता ही था पर जब कभी वे कलकत्ता आते तब एक कार्ड डाल देते कि मैं यहाँ 'ज्योति ब्रदर्स' के यहाँ ठहरा हूँ, आप आकर मिलिए। मैं उनके पास जाता और अरसे तक वार्तालाप होता रहता। एक बार मेरे किये हुए अपभ्रंश के हिन्दी अनुवाद को देखकर उन्होंने कहा कि यह अति उत्तम कार्य है और अन्वेषण कर प्रकाश में लाना बड़ा आवश्यक है। उनके पास शिलालेखादि प्राचीन सामग्री भी प्रचुर मात्रा में थी। कोंगड़ा के राजवंश के (जैन राजाओं के) शिलालेखादि की बात चलने पर आपने मुझको वे लेख दिखाये थे। कलकत्ता के माहेश्वरी भवन में एक दिन उनका भाषण था। उसमें उन्होंने राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में बहुमूल्य विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि सभी भाषाएँ एक दूसरी की भगिनी हैं और जलवायु के अनुसार परिवर्तन हो जाने पर भी गहरा विचार किया जाय तो क्रियापद के भेद के सिवा उनमें कोई अन्तर ही नहीं रह जाता। लिपि भिन्नता भी एक दीवार है। उसके एक होने पर हम पुनः एक दूसरे को सहज ही आत्मसात् कर सकते हैं। राजस्थानी भाषा का विकास होना अनिवार्य है। इससे देश की एकता में वृद्धि होगी क्योंकि इसका प्राचीन साहित्य अत्यन्त समृद्ध है और सभी इतर भाषाओं से सम्बन्धित कड़ियों से परिपूर्ण है।

राहुलजी सरस्वती के वरदपुत्र थे। उन्होंने अथक परिश्रम करके हिन्दी साहित्य की सेवा की थी। उन्होंने दिन रात यंत्र की तरह काम किया जिससे उनके मस्तिष्क में विस्मृति छा गयी। जब मैंने उन्हें कलकत्ता के छात्र निवास में एक अधिवेशन में आने पर देखा तब मुझे चिन्ता हुई। उसके बाद कई महीनों तक असफल चिकित्सा के बाद वे अपनी कीर्ति चिर स्थायी कर परलोकगामी हो गये।

राहुलजी के कार्ड का एक नमूना यहाँ दिया जा रहा है—

फोन नं०:—३३-६४१४

प्रिय नाहटा जी,

मैं २१ जनवरी को यहाँ आया, २७ जनवरी को पंजाब मेल में चला जाऊँगा।

आपका

राहुल सांकृत्यायन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विश्व प्रति-पदार्थ का भी

श्री श्याममनोहर व्यास

ईश्वर की यह सृष्टि अपरम्पार है। भगवान् ने कहा है, "नान्तं न मध्यं—" जिसका न अन्त है और न मध्य। वह कल्पना से परे है। यह विश्व पदार्थ अर्थात् द्रव्य से निर्मित है। पदार्थ अणु और परमाणु से बना है। पदार्थ भी भिन्न-भिन्न तत्त्वों में विभाजित है। प्रत्येक तत्त्व के परमाणु भार एवं रासायनिक गुण भी भिन्न-भिन्न हैं। परमाणु के तीन मौलिक कण हैं—प्रोटान, न्यूट्रान और इलेक्ट्रान। प्रत्येक तत्त्व के नाभिक में न्यूट्रान और प्रोटान होते हैं तथा बाहरी कक्ष में इलेक्ट्रान। इलेक्ट्रान ऋणविद्युन्मय होता है एवं प्रोटान धन-विद्युन्मय।

असीम ऊर्जा की उपलब्धि

पदार्थ नाशवान है। इसके नष्ट होने पर ऊर्जा प्राप्त होती है। ऊर्जा उत्पन्न करने का सबसे आधुनिक साधन ताप नाभिकीय प्रक्रिया है। हाइड्रोजन बम इसी प्रक्रिया का परिणाम है। जब हाइड्रोजन के दो नाभिक टकराकर एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं तब हीलियम तत्त्व का एक नाभिक बन जाता है। जैसा कि इस सूत्र से ज्ञात है—

$$H + H = He.$$

इस प्रक्रिया में हाइड्रोजन के ये नाभिक अपना थोड़ा-सा पुंज खो देते हैं जो ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। थोड़ी मात्रा का पुंज भी भारी मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न करता है। जैसा कि आइन्स्टीन के ऊर्जा सम्बन्धी समीकरण से विदित होता है—ऊर्जा = पुंज × (प्रकाश की गति)^2 अर्थात् $E = m \times c^2$। प्रकाश की गति एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेण्ड है। यदि हाइड्रोजन के ये दोनों नाभिक एक-दूसरे के टकराने के पश्चात् थोड़ा-सा पुंज अर्थात् संहति नष्ट होने के बदले पूर्ण रूप से एक-दूसरे को ध्वस्त करें तो उससे जो ऊर्जा निकलेगी वह ताप नाभिकीय प्रक्रिया से हजारों-लाखों गुना अधिक होगी। नाभिकीय विज्ञान में यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

प्रति-कणों की खोज

कुछ वर्ष पूर्व वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया कि द्रव्य के साथ प्रति-द्रव्य का अस्तित्व भी है। जिन पदार्थों की भविष्यवाणी सन् १९२८ में सापेक्षतावादी क्वांटम सिद्धान्त के द्वारा की गयी थी वे प्रति-पदार्थ कहलाये। सन् १९३२ में कास्मिक किरणों में प्रति-इलेक्ट्रान अर्थात् पॉजीट्रान की खोज हुई। आगे चलकर सन् १९५५ में प्रति-प्रोटान एवं प्रति-न्यूट्रान की खोज हुई। इलेक्ट्रान के प्रति-कण पॉजीट्रान पर धनात्मक आवेश होता है। यदि ऐसे कण एक-दूसरे से टकरा जायँ तो वे विपरीत गुणों के कारण एक-दूसरे को नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। न्यूटन के सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार क्रिया की प्रति-क्रिया होती है और ध्वनि की प्रति-ध्वनि उसी प्रकार पदार्थ का प्रति-पदार्थ होता है। यह तथ्य सर्वप्रथम केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के गणित के प्राध्यापक डिराक ने प्रस्तुत किया। डिराक ने क्वांटम भौतिकी, सापेक्षतावाद के सिद्धान्तों के आधार पर अणु के प्रतिद्वन्द्वी प्रति-अणु की कल्पना की। ब्रह्माण्ड में पदार्थ के साथ प्रति-पदार्थ भी अपना काम कर रहा है।

यदि एक डिब्बे में गोलियाँ खचाखच भर दी जायं तो फिर न तो वह हिल-डुल सकेंगी और न गिनी जा सकेंगी। इसी प्रकार यदि विश्व में अणु खचाखच भरे हों तो वे वैसी गति नहीं कर सकते जैसी अब करते हैं और न उनका अस्तित्व ही अनुभव किया जा सकेगा। अतएव जितना श्रेय अणु को है उतना ही प्रति-अणु को भी है। यदि दोनों में किसी एक का अस्तित्व समाप्त हो जाय तो विश्व में फिर किसी प्रकार की कोई हलचल दिखायी न पड़ेगी। तब अणु गतिशील न रहकर स्थिर बने बैठे होंगे।

प्रयोगशाला में प्रति-द्रव्य का निर्माण

संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के वैज्ञानिकों ने शक्तिशाली नाभिकीय त्वरकों की सहायता से प्रयोग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाला में प्रति-द्रव्य प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। इस प्रकार की एक भट्टी (अभिक्रियक) में नाभिकीय कणों को तीन हजार करोड़ इलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा प्रदान करके प्रति-ड्यूट्रान प्राप्त किया। रसायन विज्ञान के अनुसार ड्यूट्रान भारी हाइड्रोजन का नाभिक है। सितम्बर सन् १९७१ में सोवियत संघ की भौतिक प्रयोगशाला में वैज्ञानिकों ने प्रति-हीलियम नामक एक अत्यन्त जटिल प्रति-द्रव्य प्राप्त किया। इसी प्रक्रिया में प्रति-ड्यूटेरियम भी प्राप्त हुआ। सोवियत वैज्ञानिकों ने सब मिलाकर पचास हजार प्रति-कण प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। इतके होते हुए भी प्रति-कणों को किसी उपयोगी कार्य में लगाने के लिए वैज्ञानिकों को अभी और भी अथक प्रयास करना पड़ेगा।

वैज्ञानिकों के लिए कठिनाई

आज वैज्ञानिकों के लिए सबसे बड़ी कठिनाई है—रासायनिक क्रिया द्वारा पर्याप्त संख्या में प्रति-कण प्राप्त करना और उन्हें सुरक्षित रखना। प्रति-पदार्थ कणों के बारे में एक बात ध्यान में रखने योग्य है। वे अकेले अपना अस्तित्व बनाये नहीं रख सकते। वे उत्पन्न होकर और अन्य कणों के साथ संयोग कर स्वयं विलुप्त हो जाते हैं। उनकी इस विचित्र लीला के कारण ही विद्युत् चुम्बकीय विकिरण की ऊर्जा इस विश्व को प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो रही है। यदि प्रति-पदार्थ को नियन्त्रित किया जा सके तो विश्व में ऊर्जा की समस्या ही नहीं रहेगी। द्रव्य और प्रति-द्रव्य के टकराव से प्राप्त ऊर्जा परम्परागत रासायनिक प्रक्रियाओं से प्राप्त ऊर्जा से करोड़ों गुना अधिक होगी। यह संभावना अभी बहुत दूर है। कारण, अभी प्रति-कणों को सुरक्षित रखना सम्भव नहीं हो पाया। यदि ऐसा सम्भव हो गया तो हम पृथ्वी पर एक अलग सूर्य तक का निर्माण करने में सफल हो जायँगे। कारण कि हमारे सौरमण्डल का केन्द्र सूर्य स्वयं एक विशाल नाभिकीय अभिक्रियक है।

प्रति-विश्व का अस्तित्व

प्रति-द्रव्य के अध्ययन के फलस्वरूप यह तथ्य सामने आया है कि इस विश्व का प्रतिद्वन्द्वी प्रति-विश्व भी है। अन्तरिक्ष से प्राप्त रेडियो तरंगों से ज्ञात हुआ है कि सुदूर अन्तरिक्ष में कहीं प्रति-द्रव्य भारी मात्रा में उत्पन्न हो रहा है। इसलिए वैज्ञानिकों का अनुमान है कि बाहरी अन्तरिक्ष में कहीं ऐसा विश्व है जो पूर्णरूप से प्रति-द्रव्य से बना हो।

वैज्ञानिक आल्फवेन और क्लीन के अनुसार विश्व प्रारम्भ में पदार्थ की चतुर्थ अवस्था 'प्लाज्मा' के रूप में था, जिसमें द्रव्य एवं प्रति-द्रव्य मिले हुए थे। पश्चात् वे एक-दूसरे से पृथक् हो गये और अब उनके बीच की दूरी विश्व की त्रिज्या के लगभग सौवें भाग के बराबर है। इस फैलते हुए विश्व का प्रमाण विभिन्न तारागणों के स्पेक्ट्रम में मिलता है।

वैज्ञानिकों को जानकारी मिली है कि 'साइग्लेस' और 'विर्गो' नीहारिकाओं में द्रव्य एवं प्रति-द्रव्य के बीच प्रक्रिया हो रही है और फलस्वरूप नये आकाशीय पिण्डों का निर्माण तथा असीम ऊर्जा का प्रादुर्भाव हो रहा है।

हमारी नीहारिका में पदार्थ का ही बाहुल्य है। यह सम्भव है कि कुछ तारे प्रति-पदार्थ से बने हों। उन तारों में विद्यमान तत्त्वों के गुण हमारे तत्त्वों से भिन्न होंगे। जिस दिन हमारी नीहारिका (गैलेक्सी) और प्रति-पदार्थ से निर्मित नीहारिका में संघर्ष होगा उस दिन प्रलय निश्चित है; परन्तु यह अभी दूर की बात है। इसकी कल्पना ही की जा सकती है, सम्भावना नहीं। यह सत्य है कि इस ब्रह्माण्ड में प्रति-द्रव्य से निर्मित विश्व का भी अस्तित्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

सुकेशी

प्रो० रामस्वरूप खरे, एम० ए०, बी० एड्०, साहित्यरत्न

न जाने क्यों आज वह अधिक उदास था। जीवन के बीस वसन्त देख चुकने पर भी वह उसे न भुला सका था। रह-रहकर उसकी स्मृति हृदय-पटल पर हरी हो उठती। सारे प्रयत्न विफल। उसने बहुत चाहा कि अपना मन किसी अन्य काम में लगा दे। पुस्तक के पृष्ठ खुले के खुले रह गये। कुछ पढ़ न सका।

अकस्मात् उसे अपने वचन स्मरण हो आये। शीघ्र ही तैयार होकर चल पड़ा बस-अड्डे की ओर। भाग्य की बात। अविलम्ब बस मिल गयी। वह चुपचाप उसमें जा बैठा।

बस हवा से बातें करती हुई अपने गन्तव्य स्थल की ओर बढ़ी जा रही थी। पर दिनेश कहाँ जाय? सोचा ही न था। जहाँ तक बस जाती थी वहाँ तक का कण्डक्टर ने टिकट बना दिया। दिनेश दस का नोट देकर शान्त बैठा रहा।

वह वहाँ न मिली। अत्यधिक क्रोध आया दिनेश को उस पर और स्वयं पर भी। पर कहे किससे? किसे बताये कि मुझे किससे मिलना था। वैसे दिनेश पहले दो वर्ष रह चुका था इसी शहर में।

वह इसी शहर में अध्यापिका थी। बीस-बाइस की होगी। मदभरी आकर्षक आँखें, चन्दा-से गोरे मुख पर अठखेलियों करती हुई लम्बी सघन एवं काली केश-राशि। नीली साड़ी में वह अत्यधिक सुन्दर लगती थी।

दिनेश जब उसे पढ़ाया करता, जाने उसे क्या आनन्दानुभूति होती। अधिक रात व्यतीत होने तक अध्ययन-अध्यापन का क्रम चलता रहता। कभी-कभी तो दिनेश को सुकेशी के घर ही रुकना पड़ता। वह उसकी माँ के अनुरोध को टालने में अपने को असमर्थ पाता।

एक दिन दिनेश को तेज बुखार हो आया। बेचारी सुकेशी सारी रात उसके सिरहाने बैठी जागती रही उसके सन्तप्त भाल पर अपना स्नेहिल और मृदुल हाथ रखे।

सुकेशी की माँ भागी-भागी गयी। डाक्टर को ले आयी। वे इंजेक्शन लगाकर यह कहते हुए चले गये कि घबड़ाने की कोई बात नहीं, कल इसी समय तक दिनेश बिल्कुल स्वस्थ हो जायगा।

सुकेशी फूली न समायी अपने दिनेश को पूर्ववत् स्वस्थ और हँसता हुआ देखकर। उधर दिनेश को कल ही अपने काम पर पहुँच जाना था। वह सुकेशी की विनय को ठुकराता हुआ चला आया। जब वह रिक्शा पर बैठ गया तब सुकेशी बोली—"यह रूमाल रह गया, इसे लेते जाइये।"

दिनेश ने कहा—"अरे हाँ, मैं तो भूल ही गया था। धन्यवाद।"

रिक्शा स्टेशन की ओर बढ़ चला। सुकेशी और उसकी माँ तब तक अपलक निहारती रहीं उसे जब तक रिक्शा आँखों से ओझल न हो गया।

गाड़ी में दिनेश सो न सका। उसकी आँखों के सामने सुकेशी की वृद्धा माँ भोजन की थाली सजाये, यह कहती दिखायी देती कि बेटा, थक गये होगे, थोड़ा-सा खाना खा लो, फिर काम करना। रोज ही दिनेश चाहते हुए भी उसे मना नहीं कर पाता था। कभी सुकेशी सन्तरे की कलियाँ खिलाती हुई दृष्टिगोचर होती तो कभी आग्रह करती हुई महाविद्यालय से अपने (सुकेशी के) घर होकर लौटने का आग्रह करती हुई।

दोनों के हृदय में इस घनिष्ठता से सहज ही आकर्षण की एक छोटी-सी लता अंकुरित हो उठी।

जब सुकेशी ने एक दिन सन्तरा खिलाया तब उसने उसकी उँगली में चुटकी काट ली थी। वह स्तम्भित-सा रह गया। सुकेशी आँखों ही आँखों मुसकरा भर दी थी।

उसकी माँ एक सप्ताह को बाहर गयी थी। घर में थी सुकेशी की दीदी और छोटी बहिन सुषमा। दिनेश उस दिन वहीं ठहरा। रात में सुकेशी को भोजन बनाना था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने दीदी के साथ ही दिनेश को भी रसोईघर में बुला लिया। सबने भोजन बनाने में हाथ बटाया। यहाँ तक कि दिनेश ने रोटी बनायी और सुकेशी आदि ने खाना खाया।

सुकेशी आज इतनी मस्त थी कि उसे यह पता ही न चला कि जो घी वह चावल में डाल रही है, वह सारा नीचे गिरा जा रहा है। पर उसे क्या ? वह तो अपलक दिनेश के भोले-भाले आकर्षक व्यक्तित्व पर मुग्ध हो चुकी थी।

अतीत की यह स्मृति लिये पटरी के दोनों ओर की तरुराजि के साथ बढ़ी जा रही थी गाड़ी दिल्ली की ओर।

ज्यों ही दिनेश ने अपना मुख ढकने के लिए रूमाल निकाली उसमें कुछ लिपटा-सा प्रतीत हुआ। देखा कि उसमें तो कुछ बँधा है।

उसे खोलते ही दस-दस के दस नोट नीचे गिर पड़े और साथ ही एक पत्र भी। उसमें लिखा था—"क्या सम्बोधन करके लिखूँ—कुछ समझ में नहीं आता। अपरिचित ही सही। मेरे लिए तुमने अपना सारा आदर्श, व्यक्तित्व दृढ़ रखते हुए कभी भी अपने में कमजोरी नहीं आने दी। सदैव अपनी मर्यादा में रहे। इस अवस्था में नव-यौवना का सामीप्य पाकर आजकल के नवयुवक पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं। पर तुम ठहरे संन्यासी ! ऐसी भी विरक्ति किस काम की ? मेरे पढ़ाने में तुमने कितना परिश्रम किया—यह मेरा हृदय ही जानता है। यह जानते हुए भी कि मैं बुरी तरह से बदनाम हूँ तुम बराबर आते रहे। जैसे कदाचित् कोई नियमित रूप से किसी मन्दिर में जाता रहा हो अपने आराध्य के दर्शनों का अभिलाषी मात्र बनकर, किसी कामना की याचना करने नहीं, अपितु अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए।

यात्रा में अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। मुझे अन्यथा मत समझ बैठना। यह तुच्छ भेंट स्वीकार कर लेना अन्यथा मुझे सन्तोष न होगा। पहुँचने पर यदि उचित समझना तो कुशल-समाचार दे देना।

तुम्हारे ही शब्दों में

तुम्हारी अपनी—

—कल्पना।"

नियति का एक प्रचण्ड झोंका आया और सहज ही ठण्ढी कर गया इस स्नेहिल—प्रदीप की बाती को !

× × × ×

बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। दिनेश सुकेशी की स्मृति को न भुला सका। उसका वह पत्र उसके पास थाती के रूप में सुरक्षित था। दिनेश अर्धविक्षिप्त हो चुका था। चाहे जब वह स्टेशन आता और जो भी गाड़ी खड़ी होती उसपर बैठ जाता निरुद्देश्य। फिर कहीं जाकर उतर जाता। कभी किसी अन्य गाड़ी में चढ़ जाता। पागल हो चुका था वह। अब उसे न समाज का भय था और न अपनी झूठी मर्यादा का।

सारा देश घूम डाला। पहाड़ों की धूल छान डाली। तीर्थ-स्थलों पर गया। तीर्थ-यात्रा करने नहीं—कौतुकवश, सहज इच्छा के कारण।

पुण्य-सलिला भागीरथी का पावन प्रवाह देखकर कुछ मन रम गया था उसका। पड़ाव डाल दिया वहीं। पूर्णिमा की शुभ्र ज्योत्स्ना सर्वत्र छिटक रही थी। स्फटिक-सी धवल-शिला पर उसे एक दिव्य आकृति का आभास हुआ। दिनेश ने सुना। वह कह रही है—

"तुम कौन ?"

"अनाम हूँ।"

"यहाँ क्यों आये ?"

"निरुद्देश्य !"

"कौन हो तुम ?"

"एक पागल।"

"दिनेश, तुमने अपना सब कुछ खोकर अपने प्राप्य को पा लिया है। तुम्हें कोई क्या दे ? अब तुम सच्चे प्रेम के अधिकारी बन गये। देखो, मेरी ओर। मुझे पहचानने की कोशिश करो। मैं तुम्हारी साकार कल्पना हूँ।"

ज्यों ही दिनेश ने अपने नेत्र ऊपर उठाये, वह दिव्य आकृति अदृश्य हो चुकी थी।

किंकर्तव्य विमूढ-सा खड़ा रह गया दिनेश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुट्टी

मूल लेखक—श्री मारेमण्ड सीतारामय्या

अनुवादक—श्री एस० कृष्ण बाबू

सपने में तो क्या, दोनों आँखें खोलकर भी मैंने कभी यह नहीं सोचा कि कुट्टी एक नायिका बन जायगी और उसके बारे में मुझे एक कहानी लिखनी होगी और लिखूँगा। नायिका का परिचय दिये बिना कहानी को पाठकों से जबर्दस्ती पढ़वाना कानून के मुताबिक बड़ा कसूर है। मानवता के स्तर पर सोचें तो बहुत भयानक लगता है। परिचय दिये बिना कहानी को एक कदम भी और आगे बढ़ाना पाप है। उसी पाप से बचने के इरादे से लेखक कुट्टी को आपके सामने ला रहा है। कुट्टी कीमती लोगों का पालतू कुत्ता नहीं। अभी-अभी प्रेम में फँसे हुए, घुँघराले बालों वाले तरुण की आराध्या देवी, फूल-जैसी कोमल युवती का प्यारा नाम नहीं। तेनालि रामलिंग कवि के समय में उसके बराबर चमक कर भी इतिहास के पन्नों में अंकित कोई सीता महालक्ष्मी-जैसी मिट्टी का हीरा नहीं। सौन्दर्य के साथ सब कुछ रहते हुए भी सभी की कामनाएँ पूरा करने से इनकार करनेवाली कोई परदे के पीछे की अभिनेत्री नहीं। फूफी की आखिरी लाड़ली और मेरी साली। ऐसा सुनते ही यदि आपकी आँखों के सामने गुलाबी रंग, ब्रासो (गहरे-पीले रंग की) साड़ी, मैचिंग ब्लाउज के साथ पहनकर वेणी में भरपूर बेला के फूल सजकर, चमकनेवाली बड़ी-बड़ी आँखों से उछलने-कूदनेवाली एक हरिणलोचनी आ चमके तो लेखक क्षन्तव्य है। हमारी कुट्टी पिंक यलो (गुलाबी-पीली) साड़ियाँ पहननेवाली जिद्दी लड़की नहीं। रंग-विरंगी ब्रासो साड़ियों की बात तो छोड़ दें, वह तो मामूली लहँगे पहनने की उम्र की भी नहीं है। एक वाक्य में अगर कहना चाहें तो 'स्कर्ट' (कमर के नीचे तक लंहगा जैसा नारी-परिधान) पहने शहर भर में घूमनेवाली ऐसी लड़की है जिससे कोई खतरा नहीं। हाल ही में आनर्स क्लास में दूसरे टर्म की फीस चुकाकर, इकतीस भागोंवाली हमारी बिल्डिंग में 'थ्री फॉर ट्वेंटी थ्री' कहकर चक्कर काटनेवाली चाकू है। इतना इतिहास रखनेवाली कुट्टी इस कहानी की प्रमुख पात्री कैसे बनी, उसे न कहकर पाठकों को दुविधा में रखने से अब कोई लाभ नहीं, पर ऐसा करने से पचास रुपये की चेक पाने का भाग्य तो इस पत्रकार के हाथ से खिसक जायगा। बस।

× × ×

इतवार के दिन हमारी बिल्डिंग में बच्चों का शोर किसी कोने के गाँव के मछली बाज़ार से कम नहीं होता। वहाँ आप रामायण के किष्किन्धा काण्ड का 'टेक्निकलर' सिनेमा मुफ्त में प्रत्यक्ष देख सकते हैं। उसमें बालि और सुग्रीव होते हैं, जाम्बवान और हनुमान रहते हैं। उस मेल-मिलाप पुराण में दिखायी पड़नेवाले गरुत्मन्त, शेषशायी और गणपति भी नज़र आते हैं। उन सभी में आप चाहे किसी भी नाम से कुट्टी का नामकरण करें, पर मैंने तो लाड़ से उसे 'शूर्पणखा' का नाम दिया है। इतवार का नेतृत्व हमारी शूर्पणखा करती है। उसके नेतृत्व में हमारी बिल्डिंग के बच्चे, आजकल के नेता जिस तरह अपनी-अपनी पार्टी से चिपककर रह जाते हैं, उस तरह न रहकर सब एक ही बात पर ऊँचे स्तर का प्रदर्शन करते हैं। बाहर उसी तरह का प्रदर्शन हो रहा है। उस खेल का नाम 'लन्दन' है। महाराष्ट्र राज्य के नासिक-त्र्यंबक में जन्म लेकर, आन्ध्र की सीमाओं को छूनेवाली गोदावरी की तरह वह खेल, 'कॉन्वेंट' के स्तर पर शुरू होकर 'दुंपला स्कूल' तक बह गया। खेल बड़े मजे में चला है। 'एल-ओ-एन-डी- ओ-एन' 'लण्डन' चिल्लाकर दूर पर दाई के पास खड़ी हुई एक लड़की तुरन्त पीछे मुड़ गयी। बस! उस दाई के पास पहुँचनेवाले बच्चे पत्थरों की तरह अडिग रह गये। कुछ बच्चे राजेश खन्ना की अदा में, कुछ 'मेक्लीन टूथ पेस्ट' के विज्ञापन के लिए मुँह खोलकर फोटो खिचवानेवाली की अदा में, कुछ पद से च्युत होकर लौट जानेवाले नेता की अदा में और कुछ 'भामा हूँ—मैं सत्यभामा हूँ' की अदा में देखने में बड़े सुन्दर लग रहे हैं। कोई न हिलता, न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुलता। उभर आनेवाली हँसी के झोंकों को बाहर आने-वाले निश्वासों से मिलाकर रोक रहे हैं। आँखें घुमाकर चोर की चाल पहचान रहे हैं। चोर एक-एक के पास जाकर उनको बातों से हिलाने का विफल प्रयत्न कर रही है। पन्द्रह मिनट बीत गये। कोई नहीं हिलता। वह लड़की नाराज हो जाती है।

"कोई नहीं हिलेगा तो मैं रोऊँगी। कोई हिलो न।" वह चिल्ला उठी। किसी ने उसकी बात न सुनी।

"सारा मुँह लाल करके, बरसने के लिए तैयार आँखों से कितनी देर तक मैं चोर बनकर रहूँ? कोई हिलो न।" वह फिर चिल्ला उठी।

नहीं। ज़रा भी कोई नहीं हिला।

"अरी कुट्टी, ज़रा तुम्हीं हिलो! मैं किसीको 'आउट' नहीं कर पा रही हूँ।" कुट्टी के पास जाकर वह लड़की कहने लगी।

शूर्पणखा बड़ी चतुर थी। इतनी आसानी से हारने वाली न थी।

"क्या घट जायगा तुम्हारा? क्या परसों मैंने तुमको मिठाई नहीं खिलायी? फिर....मेरे पिताजी लाल पेंसिल लायेंगे। वह तुमको दे दूंगी। जरा हिलना, कुट्टी।" पुरानी दोस्ती की याद दिलाकर पेंसिल का लालच दिखाने लगी।

शूर्पणखा फिर भी नहीं हिली।

इतने में कुछ बच्चे दौड़कर पाला (धैया) के पास पहुँच गये।

उस लड़की को रोना आ गया। उसने चारों तरफ देखा। पाला (धैया) तक पहुँचे हुए बच्चे हँसने लगे। बाकी बच्चे पत्थरों की तरह अडिग खड़े रहे। कुट्टी अपने हठ से इस संसार को भूल गयी। उस लड़की ने क्या सोचा, यह भगवान् जाने, पर एकाएक वह लड़की जोर से कुट्टी के गाल पर थप्पड़ मारकर अपने घर की ओर भागने लगी। कुट्टी रो पड़ी। मैंने ऐसी घटना की कल्पना भी नहीं की थी। मुझे बहुत गुस्सा आया। क्या वह इतनी जोर से मेरी कुट्टी को थप्पड़ मारेगी! तुरन्त मैंने घर की ओर भागनेवाली उस लड़की का हाथ पकड़कर रोक लिया। उसका नाम सुमा था। सुमा के बाप से मैं पहले से ही अप्रसन्न था। उसी बाप के लक्षण इस बेटी में भी आ गये क्या?

"अकारण तुमने हमारी कुट्टी को क्यों मारा? खेलना नहीं आता तो न खेलना चाहिए। लेकिन मारना क्यों? अभी से इतनी नटखटी अच्छी नहीं है।" मैं सुमा के सिर पर चपत मारकर इतने जोर से चिल्लाने लगा कि उसका बाप भी सुन सके। जैसे भी हो, मुझे उससे झगड़ा करना था।

सुमा रोने लगी। इतने में उसका बाप बाहर आया। "क्यों रो रही हो?" उसने पूछा।

"जीजा ने मारा है।" मेरी तरफ हाथ उठाकर सुमा ने कहा।

कुट्टी मुझे 'जीजा' पुकारती है, इसलिए बिल्डिंग के सभी बच्चों के लिए मैं 'जीजा' बन गया हूँ। सभी मुझे उसी तरह पुकारते हैं।

"छोटे बच्चों के खेल में आपका हस्तक्षेप करना उचित नहीं।" मेरी तरफ देखते हुए उसने क्रोध से कहा।

"जब तक वे खेलते हैं तब तक उसमें दखल देना उचित नहीं, लेकिन झगड़ना शुरू करेंगे तो डाटना हमारा कर्त्तव्य है।" ज़रा जोर से मैंने कहा। पहले ही मैं बता चुका हूँ कि मैं उससे जलता था!

"क्या आपका मुँह डाटने मात्र से तृप्त नहीं होता? आपने हाथ क्यों चलाया?"

"खेल में कुट्टी को थाप्पड़ मारने के कारण।"

"अगर सुमा से खेलना पसन्द नहीं है तो अपनी कुट्टी को घर में ताले में बन्द कर दो।"

"मुझे कोई जरूरत नहीं। अपनी सुमा को ही आलमारी में रखकर बन्द कर लो। नहीं तो ठीक तरह खेलना सिखाकर भेजो।"

"मैं ऐसा नहीं करूँगा। दूसरों के बच्चों के लिए मुझे अपने बच्चों को छिपाने की क्या जरूरत है?"

"किसको है जरूरत? मुझे?" आवाज को ज़रा ऊँचा कर मैं एकवचन का प्रयोग करने को उद्यत हो गया।

"बीवेयर! यू आर क्रॉसिंग दि लिमिट्स।" वह अंग्रेजी में धमकाने लगा।

एकवचन है, या बहुवचन–हम इसका निर्धारण नहीं कर सकते। वह तो नाराज़ है, इसलिए एकवचन ही में होगा। हमने जो कुछ अंग्रेजी सीखी–'सॉरी, एक्स्यूज़, थैंक्स, प्लीज़' जैसे ओठों पर रहनेवाले शब्द अपनी शान दिखाने के लिए और साथ ही गालियाँ देने में भी अच्छी तरह काम आते हैं। मैं किसी तरह उससे कम नहीं हूँ।

"मुझसे बेकार बातें मत करो। बच्चों को अनुशासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पालने में असमर्थ, तुम्हें मुझे कोई सलाह देने की जरूरत नहीं।"

"तुम तो बड़ी-बड़ी बातें बना रहे हो। बच्चों का पालन करना सड़क पर जानेवाली लड़कियों पर टीका-टिप्पणियाँ करना जैसा काम नहीं है। इस बात का ध्यान रखो।"

यह बातचीत अंग्रेजी में चली।

वह मेरी 'टीनेज नेचर' का उलाहना दे रहा था। मुझमें विद्रोह जाग उठा।

"अच्छा! ऐसी बात है? अब समझ गया। हाँ, आजकल आपके दफ्तर में काम करनेवाली निर्मला देवी ने आपके साथ घूमना क्यों बन्द कर दिया है?" व्यंग्य से मैंने शुद्ध तेलुगु में कहा।

निर्मला नाम की युवती और यह व्यक्ति बहुत घुल-मिलकर रहते थे। उस घनिष्ठता के आधार पर इसने एक दिन अँधेरा होने के बाद, पार्क में उसके हाथ को अपनी छाती से लगाकर—'निम्मी, तुम मेरे सपनों का फल हो। मेरी हृदय की रानी हो। मेरे सपनों की कल्याणी हो। तुम्हारे बिना मैं, बिना पानी के तालाब की मछली हूँ। किनारे पर तड़पनेवाली, मछली हूँ। सब कुछ होते हुए भी, तुम्हारे न होने से मेरे लिए यह दुनिया सूनी-सी लगती है। विश्वास करो। यह सच है।' ऐसी सिनेमा की बातें करने लगा। निर्मला ने चपत मारी। ये सारी बातें मैंने आसपास के लोगों की फुसफुसाहट से जान ली थीं। निर्मला की इस भेंट के बारे में सुनकर मैं बहुत खुश हुआ। मैंने समझा कि इस धरती पर एक भला काम हो गया। उसकी सूरत अजंता-शिल्प जैसी थी और इसका बंदर का-सा मुँह। इन दोनों का घनिष्ठता से घूमना! मैंने तभी सोचा कि कभी न कभी इसे इसका फल जरूर भोगना पड़ेगा। मेरा शाप सच निकला।

जब मैंने निर्मला की बात शुरू की तब वह मुँह खोल न सका। अपनी बेटी को जल्दी-जल्दी अपने घर के अन्दर खींचकर उसने जोर से दरवाजा बन्द कर दिया। उससे भी अधिक नाराज होकर मैंने भी कुट्टी का हाथ पकड़कर और भी जोर से दरवाजा बन्द कर लिया, जिससे वह सुन सके।

अब तक की 'स्पेशल शो' के खतम होते ही सारे बच्चे खेल से विलीन हो गये।

× × ×

दो दिन यों ही बीत गये।

इन दो दिनों में मैं उससे कुछ नहीं बोला। उसकी छाया दीखते ही दरवाजा बन्द कर देना, उसकी आहट पाते ही मुँह मोड़ लेना या जहाँ तक हो सके उस पर व्यंग्य करना शुरू किया। वह भी उसी तरह करने लगा। हम बड़े लोगों ने तो बातें बन्द कर दीं किन्तु कुट्टी और सुमा एक-दूसरे से मिलने के लिए तरस रही थीं। लेकिन हम दोनों ने उनको बाहर आने से बिलकुल मना कर दिया।

कुट्टी में पहली-सी चंचलता अब दिखायी नहीं देती। कुछ चिन्ता में डूबी-सी वह कुरसी में बैठकर खिड़की से सुमा के घर की ओर देखती रहती। एक-दो बार सुमा के जोर से रोने और उसकी पीठ पर किसीके मारने की आवाज सुनते ही मुझे मालूम हो गया कि कुट्टी के साथ खेलने के लिए सुमा का हठ करना ही इसका मूल कारण है। तीसरे दिन कुट्टी ने ठीक से खाना नहीं खाया। वह हर छोटी-छोटी बात पर खीजने लगी। इसका कारण तो मुझे मालूम था, किन्तु मैं चुप रह गया।

फुर्तीली शूर्पणखा के न रहने से बाकी सब बच्चे झुंड से बिखरी हुई चिड़ियों की तरह विकल हो गये। एक हफ्ते में बच्चों के खेल बन्द हो गये। हमारी बिल्डिंग में बिलकुल सन्नाटा छा गया। पहले दिन तो वह अच्छा ही लगा, लेकिन दूसरे दिन मैं किसी कमी का अनुभव करने लगा। बच्चों के खेलते समय जो शान्ति मिलती है, वही सच्ची शान्ति है। उनकी चुप्पी तथा निष्क्रियता अशान्ति ही बढ़ाती है, सच्ची शान्ति नहीं दे सकती। हम सब उनकी चीख-चिल्लाहट, खेल-कूद, शोर-गुल, प्रेम-दुलार के आदी हो गये थे। अब उनके बिना सब कुछ सूना-सा लगता है। पहले तो निश्चित रूप से मैंने समझा कि वह मेरी व्यक्तिगत भावना है, लेकिन किसी पड़ोसी के यह कहने से कि 'क्यों जी, हमारी बिल्डिंग में कोई परिवर्तन दिखायी दे रहा है। किसी चीज की कमी हमें स्पष्ट दिखायी दे रही है न' मैंने समझ लिया कि यह हमारी बिल्डिंग की समष्टिगत भावना है।

शाम को ऐसे निष्क्रिय वातावरण से निराश कुट्टी को लेकर पास के किसी तालाब के किनारे जा पहुँचा। कुट्टी बहुत खुश होकर मेरे साथ चली आयी थी—यह उस तालाब के पास पहुँचते ही मुझे मालूम हो गया। वहाँ किनारे पर सुमा और उसके बाप बैठे थे। मैं जल्दी-जल्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुट्टी को लेकर उनसे दूर जा बैठा। कुट्टी ने इतनी जोर से बोलना शुरू किया कि सुमा सुन सके—

'जीजा, आज मैंने तो खाना नहीं खाया है न ?'

'किसी ने तो तुम्हें मना नहीं किया।'

'पिताजी, आप जो लाल रंग की पेंसिल लाये हैं, वह बहुत अच्छी है न ?' सुमा चिल्लाने लगी।

लाल रंग कुट्टी बहुत पसंद करती थी।

वे दोनों एक-दूसरे से बोलने के लिए तरस रही थीं। उन दोनों के बीच लकीर खींचकर हद में रखना घृणित कार्य है। मैंने उनकी उत्सुकता को रोकना नहीं चाहा। मुझे मौन देखकर कुट्टी ने जरा धीरज से सुमा की ओर दिखाते हुए कहा, 'क्या वह कमल अच्छा नहीं है, जीजा ? बहुत अच्छा है न ?'

'हाँ।'

'क्या उसे तोड़ेंगे ?'

'नहीं।'

'क्यों नहीं, जीजा ?'

'मैंने न कह दिया। बस। चुप रहो।'

एक मिनट के बाद ही छप की आवाज सुनायी पड़ी। मैंने सिर घुमाकर देखा। कुट्टी का प्यारा कमल तोड़ने के लिए सुमा पानी में कूद पड़ी थी। इस आकस्मिक कार्य को देखकर घबराया हुआ सुमा का बाप अपनी जगह से पानी की ओर देखता रह गया। और मैं उस दूसरे किनारे की ओर दौड़ा। मुझसे पहले ही कुट्टी दौड़कर वहाँ जा पहुँची। मेरा हाथ पकड़ डर से झुकी पानी की ओर ताकने लगी।

उसे तैरना नहीं आता था। वह यह जानता था कि मैं बहुत अच्छी तरह तैर सकता हूँ। मैं किनारे पर खड़ा होकर देख रहा था। सुमा कमल तोड़कर, जोर से हमारी तरफ फेंककर झट पानी में डूब गयी। पानी के ऊपर लगातार बुलबुले निकल रहे थे। लाल कमल पानी पर तैर रहा था। सुमा सहायता के लिए हाथ पानी के बाहर हिला रही थी। पानी के ऊपर लहरों से स्पष्ट हो गया कि सुमा पानी पी गयी और छटपटा रही है।

'पानी में कूदकर सुमा को बचाओ, जीजा।' कुट्टी घबराहट से चिल्लाने लगी।

मैंने उसकी तरफ देखा। मैंने सोचा कि वह मेरी मदद माँगेगा। लेकिन उसने मुँह नहीं खोला।

बोलने के लिए उसमें इतनी खुददारी (आत्मसम्मान) है तो मदद करने की मुझे क्या जरूरत है ? उसने कहा था न कि 'यू आर क्रासिंग दि लिमिट्स।' इसका फल अच्छा ही निकला।

कुट्टी मेरा हाथ छोड़कर अचानक सुमा के बाप के पास जाकर, उसका हाथ हिलाते हुए बोली, 'जीजा तैरना अच्छी तरह जानते हैं। उनसे सुमा को बचाने को कहिए।'

उसने एक बार मेरी तरफ देखकर सिर झुका लिया।

मैंने सोचा कि वह इस बार मुझसे जरूर बोलेगा। लेकिन मेरी आशा निराशा हो गयी। इससे उसपर मेरा क्रोध और भी बढ़ गया।

पानी के ऊपर बड़े-बड़े बुलबुले जोर-जोर से निकलने लगे। सुमा साँस लेने के लिए छटपटा रही थी। पानी की लहरें किनारे से टकरा-टकराकर आवाज कर रही थीं। सारे तालाब में हलचल होने लगी। उन लहरों के बीच हाथ की उँगलियाँ और बिखरे हुए बाल तैरते हुए दिखायी दे रहे थे।

कुट्टी ने हम दोनों की ओर फिर देखा। एक बार इस ओर से उस ओर हमारे बीच में आ खड़ी हुई।

मैं पीछे मुड़कर सड़क की ओर आगे बढ़ा। तभी कुट्टी एकदम पानी में कूद पड़ी। अचानक मैं निश्चेष्ट खड़ा रह गया।

सोचने के लिए समय न था। झट किनारे पर कुर्ता फेंककर मैं भी पानी में कूद पड़ा।

पानी में कूदती हुई कुट्टी की 'अम्मा' कहकर पुकारने की आवाज और मेरे पानी में कूदने का छपाका दोनों मिलकर चारों ओर गूँज उठे।

दो-तीन क्षणों में पूरी तरह से डूबी हुई सुमा को अपनी पीठ पर लादे मैं एक हाथ से कुट्टी को किनारे खींच लाया। उसने चुपचाप सुमा को मेरी पीठ से उतार किनारे पर लिटाया और उसके पेट को दबाते हुए मुँह से पानी निकालना आरम्भ कर दिया।

कुट्टी को मैंने वहीं बिठा दिया। वह विकल होकर कराहती हुई वहीं लेट गयी। मेरा दिल धड़कने लगा। मैंने कुट्टी के मुँह को अपनी ओर घुमाया। उसका सिर धीमे से एक ओर लुढ़क गया।

उसे अपने कंधे पर उठाकर मैं तेजी से अस्पताल की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर चल पड़ा। और मेरे पीछे वह होश में आयी हुई सुमा को लेकर आ रहा था।

× × ×

'आपकी कुट्टी की टाँग टूट गयी है।' डाक्टर की यह बात मेरा मन मसोसने लगी।

'हे भगवान्! मुझे यह दण्ड क्यों? नन्ही बच्ची पर है क्या तुम्हारी निर्दयता! यदि मेरी टाँग टूट जाती तो मुझे इतनी चिन्ता न होती, लेकिन इस भले मनवाली को इतनी छोटी उम्र में····हाय! कैसी विडंबना है! यदि वह हमेशा के लिए लँगड़ी हो जायगी तो क्या होगा!' इस विचार से मेरा मन काँपने लगा।

'डाक्टर साहब, इसका पैर जल्दी ही ठीक हो जायगा या नहीं?' मैंने डरते-डरते पूछा।

'हे भगवान् कुट्टी के साथ अन्याय न करो।' डाक्टर के जवाब देने के पहले ही मैंने भगवान् से सैकड़ों बार प्रार्थना की।

'कोई चिन्ता नहीं। सिमेंट के प्लास्टर की पट्टी बाँध दी है। 'सिंपुल फ्राक्चर' है। आप कुट्टी को देख सकते हैं। छिछले पानी में जोर से कूदने के कारण यह घटना घटी है। इसमें डरने की कोई बात नहीं।' यह कहते हुए डाक्टर चला गया।

उत्सुकता से मैं अन्दर गया। कुट्टी सफेद बिस्तर पर पाँव फैलाकर बैठी थी! ओठों पर तृप्ति के साथ मुसकराहट चमक रही थी। आँखों में बिजली चमक रही थी। बायें पाँव में सिमेंट के प्लास्टर की पट्टी बँधी थी।

मैं कुट्टी के पास गया। थोड़ी देर के बाद मैंने पूछा, 'कुट्टी, तुम पानी में क्यों कूद पड़ी?'

'सुमा जो डूब रही थी।'

'वह डूब जाती तो तुम्हारा क्या बिगड़ता? उसने 'लण्डन' खेल में तुमको मारा था न?'

'मारा तो क्या हो गया? उसने मिठाई भी तो खिलायी थी! उसने मारा तो एक ही बार था। अगर मैं चोर बन जाती तो वैसा क्यों करती?'

'तो····सुमा पर तुम नाराज नहीं हो?'

'नहीं।' उसने सिर हिलाते हुए कहा।

'तब मार खाकर तुमने क्यों रोना शुरू किया था?'

'क्यों? क्या मारा था न! इसलिए।'

'तब फिर क्यों उससे बोलना चाहती हो?'

'ऐसा क्यों पूछते हो? तुम कुछ नहीं जानते! उससे बोलना चाहिए। बस। जीजा, मैं एक बात पूछूँ? हूँ, जवाब दो। सुमा पानी में क्यों कूद पड़ी थी? क्या मेरे लिए कमल तोड़ने के लिए नहीं? ऐसी स्थिति में उस डूबनेवाली को बचाये बिना कैसे रह सकती थी?'

'उसका बाप तो बचाने की कोशिश किये बिना टुकुर टुकुर देखता क्यों खड़ा रहा?'

'शायद उनको तैरना नहीं आता होगा। इसीलिए खड़े रह गये।'

'तुमको भी तो तैरना नहीं आता। तब तुम क्यों नहीं खड़ी रही?'

'मैं तैरना नहीं जानती तो क्या हुआ? सुमा तो डूब रही थी। थोड़ी देर और हो जाती तो मर जाती। ऐसी हालत में कैसे खड़ी देखती रह सकती थी? उस समय मैं बिल्कुल भूल गयी थी कि मुझे तैरना नहीं आता। झट कूद पड़ी। जीजा, क्या मैंने गलती की थी?' भोले मुँह कुट्टी बोली।

'गलती की? नहीं कुट्टी, बिल्कुल नहीं। तुमने सच्चे मानव के रूप में काम किया। भगवान्, तुम हो! जरूर हो। मुझे दिखायी दे रहे हो। देखो-देखो····इस कुट्टी के भोले मुँह पर तुम्ही हो। उन ओठों की मुसकराहट में तुम्ही हो। वह देखो, उसके त्याग में तुम झलक रहे हो। अब सभी जगह तुम्ही तुम दिखायी दे रहे हो। इस बिस्तर पर पड़ी हुई लड़की, तीसरे दर्जे आनर्स में पढ़नेवाली कुट्टी नहीं, तुम ही हो। बिल्कुल तुम ही हो भगवान्।' मैं अपने आप सोचने लगा। नहीं, ये बातें मेरे हृदय के कोने-कोने में गूँजने लगीं।

कुट्टी का मुख चमक रहा था। उस प्रकाश की ओर मैं देख नहीं सकता था। अगर लगातार आँख जमाकर उसकी ओर देखता रहूँ तो अन्धा हो जाऊँगा। मैंने सिर झुका लिया।

नन्हे बच्चों की मित्रता निःस्वार्थ होती है। वे झगड़े के मूल-कारणों को याद रखते हैं, किन्तु बड़ों की तरह उन कारणों से उलझे नहीं रहते। वे मूर्त्त मानव हैं। देवत्व उनमें विद्यमान रहता है। वे प्रायः भगवान् ही होते हैं।

मैंने क्या किया? जीने-मरने के बीच में छटपटाने वाली एक नन्हीं-सी बच्ची की रक्षा करने के योग्य होते हुए भी उसके बाप को मौन देखकर उस बच्ची को पानी में डूब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। यह सचमुच हत्या ही थी। हत्या से भी बढ़कर। अगर कुट्टी उस समय पानी में न कूदती तो क्या हुआ होता? एक पकने योग्य फल सूखे पत्ते की भाँति झर गया होता।

आखिर उस आदमी ने क्या किया? यह जानते हुए भी कि उसकी ही बच्ची के प्राण पखेरू उड़कर हवा में मिल जाने के लिए पंख फड़फड़ा रहे हैं और वह आत्माभिमान और हठ से बेवकूफ बना चुप खड़ा देखता रहा। यह क्या था? हम किस युग के आदमी हैं? आज तक हमने कैसी सभ्यता की प्राप्ति की है? क्या वेष-भूषा और ठाट-बाट ही इस बीसवीं सदी की सभ्यता के एकमात्र अंग हैं। फैशन में 'रॉकेट्' है और व्यवहार में 'प्रस्तर-युग'। क्या हम आदमी हैं, या पत्थर, या मशीन? हाय! मेरी भी कैसी जिन्दगी है? बच्चों के बराबर भी प्यार और अनुराग मुझमें नहीं है। यह सब सोचते-सोचते मैं अपने व्यवहार पर लज्जित होने लगा।

इतने में किसी आहट को सुनकर मैंने अपना सिर उठाया।

सामने देखा, सुमा और उसके बाप को। और देखी सुमा के हाथों में लाल रंग की पेंसिल।

दौड़कर सुमा कुट्टी के पलंग के पास जा पहुँची।

'कुट्टी, यह लाल रंगवाली पेंसिल तुमको पसंद है न? इसीलिए मैं इसे ले आयी हूँ सिर्फ तुम्हारे लिए। यह लो। फिर कभी वापस न माँगूँगी।' सुमा ने पेंसिल कुट्टी के हाथ में रख दी। बहुत प्रेम से कुट्टी ने उसे ले लिया।

'क्या तुमको गुस्सा है कि मैंने लण्डन खेल में मारा था? मैं क्या करती? अपने दुःख को न रोक सकी। इसीलिए तुमको मार दिया। फिर कभी नहीं मारूँगी। सच कहती हूँ। मेरी बात मानो।'

'नहीं, तब तो मुझे गुस्सा नहीं आया था। लेकिन फिर जब तुम मेरे घर नहीं आयी, तब जरूर गुस्सा आया था। आगे कभी मुझसे बोलना बन्द न करना।' कुट्टी बोली।

मैं उनके भोलेपन और मित्रता की मिठास देख विचलित हो गया। पहले उससे माफी माँगना है। मैं उसकी तरफ बढ़ा।

'माफ कीजिए। बहुत बेवकूफी से आपके साथ बर्ताव किया है मैंने। आपके इस उपकार को कैसे चुकाऊँ। हमारी सुमा को आपने प्राण-दान दिया है। अपने व्यवहार से मैं शर्मिन्दा हूँ।' मेरे बोलने से पहले ही उसने शुद्ध तेलुगु में कह दिया। उन बातों में सभ्यता से सिखायी गयी 'एक्स्यूज़, सॉरी थैंक्स्' जैसी साधारण तोते की-सी बातें नहीं थीं। ये सब उसके ओठों से निकली हुई बातें भी नहीं थीं, बल्कि हृदय की गहराई से निकली हुई मानवता की बातें थीं।

'मैं जो अपने आप सोच रहा था, उसीको आपने कह दिया। बच्चों के खेल-कूद में दखल देकर बेवकूफी से झगड़ते हुए मामले को बढ़ाना बड़े लोगों की गलती है। बच्चे तो उस क्षण की बातें भूलकर, दूसरे ही क्षण खुशी-खुशी एक दूसरे के साथ मिल जाते हैं और हम लोग उन्हीं बातों को पकड़कर दुश्मनी बढ़ाते रहते हैं।' मैंने कहा।

'जी हाँ।'—वह भी मुझसे सहमत हुआ।

दूर से हमारी बिल्डिंग में बच्चों का 'एल-ओ-एन-डि-ओ-एन' कहकर चिल्लाने की आवाजें सुनायी पड़ने लगीं। फिर हमारा वह पुराना वातावरण हो गया जिसके हम आदी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण—मूल लेखक डॉ० एल० पी० टेसीटरी। अनुवादक—डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी। प्रकाशक—आनन्द प्रकाशन, छापातय दीवानी मिसिल, फैजाबाद, पृष्ठ संख्या—१०९ मूल्य—१२·५०।

गोस्वामी तुलसीदास विश्व के उन कवियों में से हैं, जो जीते जी मिथक तो बने ही रहते हैं, मरने के बाद भी उन पर विवादों की कभी समाप्त न होने वाली शृंखला चलती है। जीवन के पूर्वार्द्ध तक तो गोस्वामीजी को भयंकर विरोध सहना पड़ा था, लेकिन विश्वनाथ-मन्दिर में ग्रन्थ-परीक्षा के बाद भारतीय जन-जीवन ने उन्हें अपने हृदय में स्थापित कर लिया। सैकड़ों वर्षों से उनके ग्रन्थों पर अधिकाधिक चिन्तन और मंथन हो रहा है।

जिन अंग्रेज विद्वानों ने हिन्दी के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है उनमें डॉ० टेसीटरी का नाम अग्रणी है। टेसीटरी ने अपनी थीसिस 'रामचरितमानस एवं वाल्मीकि रामायण' में विस्तृत विवेचना के बाद यह सिद्ध किया है कि रामचरित-मानस का मुख्य उपजीव्य वाल्मीकि रामायण है। मानस के बालकाण्ड के सातवें श्लोक—'नानापुराण निगमागम सम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि' का भाष्य करके उन्होंने 'यद् रामायणे' पद का विवेचन किया है।

तुलसी का यह श्लोक काफ़ी विवादास्पद है। इस पर विचार करते समय इसके विभिन्न पहलुओं पर स्वाभाविक रूप से ध्यान जाता है।

१. 'नाना पुराण निगमागम सम्मतं' क्या है—राम-कथा का ढाँचा या इस ढाँचे में पिरोये गये तत्त्व? तुलसी के इस दोहे का रहस्य क्या है?

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिनहिं न सपनेहु खेद बरनत रघुबर बिसद जस॥

२. 'यद् रामायणे' पद से किस रामायण की ओर तुलसी ने संकेत किया है?

३. 'क्वचिदन्यतोऽपि' पद से तुलसी का तात्पर्य क्या है?

डॉ० टेसीटरी ने अपने इस ग्रन्थ में 'यद् रामायणे' से वाल्मीकि का अर्थ ग्रहण किया है। उन्होंने विस्तृत रूप से दोनों में साम्य प्रदर्शन किया है और यह सिद्ध किया है कि वाल्मीकि रामायण ही रामचरितमानस का मुख्य उपजीव्य है।

राम-कथा की परंपरा में वाल्मीकि का वही स्थान है जो नृत्य के आदि में पखावज की पहली थाप का। जिस प्रकार नृत्यारम्भ पखावज की पहली थाप से होता है उसी प्रकार रामकथा की परंपरा का सुव्यवस्थित रूप वाल्मीकि से प्रारम्भ होता है। प्रसन्न राघवकार जयदेव ने इसी तथ्य की अभिव्यक्ति इस श्लोक में की है—

भास्वद्वंशावतंसकीर्तिरमणीरङ्गःप्रसङ्गःस्वन-
द्वात्रिप्रथमध्वनिर्विजयते वल्मीकिजन्मा मुनिः
पीत्वा यद्वदनेन्दुमण्डलगलत्काव्यामृताब्धेः किम-
प्याकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षति॥

(प्रसन्नराघवम्—प्रथम अङ्क

लेकिन आश्चर्य है कि ऐसे वाल्मीकि का नाम तुलसी ने अपनी कथा-परंपरा के उल्लेख में नहीं लिया है। 'यद्रामायणे' पद के भाष्य के समय हमें तुलसी की निम्न लिखित पंक्तियों पर निश्चित रूप से ध्यान देना होगा। तुलसी ने अपनी कथा-परंपरा का निर्देश करते हुए लिखा है—

जागबलिक जो कथा सुहाई,
भरद्वाज मुनिबरहिं सुनाई।
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी,
सुनहुँ सकल सज्जन सुख मानी।
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा,
बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा।
सोइ सिव कागभुसुंडिहिं दीन्हा
राम भगति अधिकारी चीन्हा।
तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा।
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा,

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकरखेत।

इस तथ्य का उल्लेख उन्होंने अनेकशः किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचरितमानस मुनि भावन।
बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥
रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥

ग्रन्थ के अन्त में भी उन्होंने स्पष्ट किया है—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शम्भुना दुर्गमं

इस परंपरा में कहीं भी वाल्मीकि का उल्लेख नहीं है।

वाल्मीकि को तुलसी ने प्रणाम-निवेदन में यों स्मरण किया है—

बंदउँ मुनि पद कंज रामायन जेहि निरमयेउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित॥

तुलसी को यह विश्वास था कि जो कथा मैं कहने जा रहा हूँ वह अलौकिक है, अद्भुत है। इसीलिए उन्होंने इस कथा को सुनने के बाद आश्चर्य न करने का निवेदन किया था—

जेहि यह कथा सुनी नहिं होई।
सुनि आचरज करै जनि सोई॥

तुलसी द्वारा प्रदत्त कथा-परंपरा में भुशुण्डि का उल्लेख है। प्राप्त न होने के कारण भुशुण्डि रामायण का अस्तित्व अब तक अस्वीकृत था। अद्यतन सूचना के अनुसार इसकी चार पाण्डुलिपियाँ डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह को मिली हैं। यह ग्रन्थ अब इनके संपादन में छप रहा है। प्रस्तुत अनुवाद की भूमिका डॉ० सिंह ने लिखी है। उसमें उन्होंने मानस एवं भुशुण्डि की पंक्तियों का समानान्तर विवेचन किया है। वे लिखते हैं—"इन तथ्यों के प्रकाश में यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि तुलसी के मानस तथा अन्य ग्रन्थों पर वस्तु विन्यास एवं शैली की दृष्टि से जितना प्रभाव भुशुण्डि रामायण का है इतना न वाल्मीकि का है और न अध्यात्म का।" पृ० (७)

ग्रियर्सन ने भी टेसीटरी की इस कृति की समीक्षा करते हुए स्वीकार किया है कि तुलसी के मानस के उपजीव्य में वाल्मीकि भी हैं। टेसीटरी और ग्रियर्सन के मतों में "ही" और "भी" का फर्क है। ग्रियर्सन की वह पूरी समीक्षा भी इस अनुवाद के परिशिष्ट में संकलित है।

मुझे ऐसा लगता है कि हमें तुलसी द्वारा निर्देशित 'शम्भुनाकृतं रामायणम्' को नज़र अंदाज़ नहीं करना चाहिए। भुशुण्डि रामायण भी अप्राप्य होने के कारण अस्तित्वहीन मानी जाती थी। उसके प्रकाशन के बाद 'शम्भुनाकृतं रामायणम्' के अनुसंधान में सहायता मिलेगी। तुलसी के 'यद्रामायणे' पद का गंतव्य 'शम्भुनाकृतं रामायणम्' ही है जो 'भुशुण्डि रामायण' की तरह संभव है कभी किसी अनुसंधित्सु के द्वारा प्राप्त कर लिया जाय।

डॉ० टेसीटरी के इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को हिन्दी में अनूदित करके डॉ० राधिकाप्रसाद त्रिपाठी ने शोध की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन दिया है। एतदर्थ उन्हें जितना भी साधुवाद दिया जाय कम है।

अन्त में ग्रियर्सन के शब्दों में मैं अपनी बात समाप्त कर रहा हूँ, "यद्यपि मैंने टेसीटरी महोदय से मतभेद व्यक्त किया है, तो भी मैं तुलसी के अध्येताओं को इस निबन्ध का अध्ययन करने की जोरदार सस्तुति करता हूँ। यह निबन्ध महत्त्वपूर्ण तुलनाओं एवं व्यंजक टिप्पणियों से युक्त है तथा इसे रघुवंश का कीर्तिगान करनेवाले उन महा-कवियों के पारस्परिक सम्बन्धों पर होने वाले भविष्य के सभी अनुसंधानों में आवश्यक रूप से महत्त्व दिया जाना चाहिए।" पृ० (१०१)—महेन्द्रनाथ पाण्डेय

बोलता हुआ सच—लेखक रामगोपाल परदेशी; प्रगति प्रकाशन आगरा-३। मूल्य दस रुपये।

श्री रामगोपाल परदेसी की ९१ मुक्त कविताएं इस पुस्तक में संकलित हैं। इन कविताओं की विशेषता यह है कि ये गेय हैं। बहुत कुछ गज़ल और कव्वाली के समान गायी जा सकती हैं। 'रूप से उनकी महक कर गीत यह मैंने लिखा था' पंक्ति गीत के समान है। प्रायः सभी गीतों में यह गुण है। उनमें ताज़गी और प्रवाह भी है जैसा कि उर्दू की शायरी में आम तौर से मिलता है। गज़ल को सामने रखकर उसकी नकल भलेहीन की कीगयी हो, परन्तु लेखक गज़ल की धुन से प्रभावित अवश्य है। इसी कारण अपने आप ही वैसी ही धुन उसके गीतों से फूट निकली है। उनमें दार्शनिकता नहीं, रंगीनी तथा सरसता है। भाषा सरस और साफ है। ऐसे गीत कवि सम्मेलनों में बहुत प्रशंसा प्राप्त करते हैं और ये उसी स्तर के हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

निम्नलिखित संस्मरण मेरे पूज्य पिताजी (स्व० पंडित चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा) की एक नोटबुक से ज्यों का त्यों उद्धृत किया जा रहा है :

पं० जगन्नाथ शर्मा राजवैद्य अपने समय के पीयूषपाणि वैद्य तो थे ही, साथ ही बड़े लेखक और हिन्दी प्रेमी थे। उन्होंने बीसों वृहत्काय पुस्तकें आयुर्वेद पर लिखी थीं। वे 'आयुर्वेद' नामक मासिकपत्र भी निकालते थे। पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी की मृत्यु के बाद उनके निकाले 'प्रयाग समाचार' साप्ताहिक को चलाने लगे जिसकी गणना उस समय 'बंगवासी' और 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के साथ होती थी। उसके सम्पादक पंडित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल थे। राजवैद्यजी पिताजी के अनन्य मित्रों में थे। यह कथा कई सदी पुरानी है और राजवैद्यजी ने इसे एक रामानन्दी वैरागी से सुना था।

"ईश्वर की सर्वव्यापकता समझनेवालों का एक अतीव सुन्दर उपाख्यान। प० जगन्नाथ शर्मा राजवैद्य कथित।

श्री अयोध्याजी की हनुमानगढ़ी में वहाँके एक महन्त श्री रामचन्द्रजी भगवान् का मानसिक पूजन कर रहे थे। पूजन करते-करते जब पुष्पमाला धारण करवाने लगे तो उस समय पुष्पमाला श्री भगवान् रामचन्द्रजी के मुकुट में उरझ गयी। महन्तजी लाख प्रयत्न करते हैं किन्तु माला गले में नहीं जाती। इसी समय एक वृक्ष के नीचे एक हीन जाति का पुरुष खड़ा था। उसने कहा, "महाराज! आप किस झंझट में पड़े हैं—डोरा को तोड़कर माला को गर्दन में बाँध दीजिए—माला को भगवान् धारण कर लेंगे।" यह सुनते ही महन्तजी ने अपनी आँखों को खोला और अपने शिष्यों से पूछा यह बात किसने कही थी, तो सब शिष्य कहने लगे, महाराज! एक जाति का चमार कबीर नाम का युवक जो बिना देखे यहाँ चला आया था और उस पेड़ के नीचे खड़ा था। उसी ने आपके ध्यान में विघ्न डाला और अभी भाग गया है। महन्तजी ने कहा, तुम सब लोग तुरन्त उसका पता लगाओ। गुरुजी की आज्ञा पाते ही ६०-७० शिष्य चारों तरफ दौड़े और कुछ शिष्यों ने कबीरदास को एक वृक्ष की आड़ में खड़ा पाया। शिष्य उसको दुर्वाच्य कहकर बोले, एक तो बिना आज्ञा चर्मकार होकर भीतर चला आया और फिर हमारे गुरुजी के ध्यान में विघ्न डाला। चलो तो गुरु के पास। कैसी तुम्हारी दुरुस्ती होती है। इतना कह ही रहे थे कि देखते क्या हैं कि उनके गुरु स्वयं खड़ाऊँ पहिने चले आते हैं। आते ही कबीर को छाती से लगाया और मन्दिर को ले गये। वहाँ उनको स्नान कराया, भोजन करवाने का प्रबन्ध किया। भोजन आने पर दोनों ने मिलकर भोजन किया। एक हीन वर्ण के मनुष्य के साथ भोजन करते गुरु को देख चेला बहुत बिगड़े और गुरु को छोड़ भाग गये। जब चेले भाग गये तब गुरु ने अपने भृत्यों को आज्ञा दी कि जाओ धोबियों के जितने गधे मिलें उन सबको यहाँ ले आओ। स्वामी की आज्ञा को शिरोधार्य कर नौकर गधों की खोज में निकले और १०० गधे पकड़ लाये। गधों को देखकर गुरु ने आज्ञा दी कि सबको खूँटों से बाँध दिया जाय और लम्बे-लम्बे उनके माथे पर तिलक लगाकर, गले में माला पहिनाकर प्रत्येक गधे के सामने एक-एक पत्तर में मालपुआ, पूड़ी इत्यादि ऊनम-उत्तम पदार्थ रख दिये। इसी प्रकार होते-होते जब कई दिन बीते, सब नगर के प्रतिष्ठाप्राप्त महानुभाव महन्तजी के पास आये और विनीत भाव से निवेदन किया। हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक प्रार्थना की, महाराज! यह आपका कर्तव्य देखकर नगर-निवासियों को बड़ा आश्चर्य हुआ है। यह बड़ी विलक्षण घटना है। कहिए यदि आप हमको इस योग्य समझें। इन महानुभावों की बात को सुनकर महन्तजी बोले—"कुछ तो नहीं है, हम पहिले नकली १०० गधों को भोजन करवा थे। अब नकली गधों के भाग जाने पर १०० असली गधों को भोजन करवाते हैं। हमको गधों को खिलाना है—चाहे नकली खावें, चाहे असली खावें, गधे दोनों ही हैं। हमारे शिष्यों को जब यह ज्ञात हुआ कि हम मानसिक पूजन कर रहे हैं उस समय एक मनुष्य आकर हमारी मानसिक दशा सुधारने का उपदेश दे सकता है। वह क्या हीन वर्ण में उत्पन्न होने के कारण त्याज्य है? जिसको इतना भी नहीं है वह गधा है। सो हमारे नकली गधों के भाग जाने पर हमने असली गधों को पाला है। जब यह बात सबको प्रगट हुई तब सब शिष्य आकर गुरु के चरणों पर गिर पड़े और क्षमा के प्रार्थी हुए।"

(जिस नोटबुक में यह प्रसंग लिखा है उसके आरंभ में लिखा है Stray Notes 2. 9. 03.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमाज़

श्री कृष्णगोपाल श्रीवास्तव

मुसलमान-धर्म के मूल में दो मुख्य सिद्धान्त हैं। एक तो यह कि 'परमात्मा अनेक नहीं' केवल एक है। और दूसरा यह कि मुहम्मद उसके पैगम्बर हैं'। सभी सच्चे मुसलमान इन दोनों सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं। किन्तु जो मुसलमान नहीं हैं उनको पहला सिद्धान्त जितनी जल्दी ग्राह्य हो सकता है उतनी जल्दी शायद दूसरा सिद्धान्त मान्य नहीं हो सकता। अस्तु, जो कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमानों को इन दोनों का अटल विश्वास है। वे प्राण देकर भी इन दोनो सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहते हैं। उनका यह विश्वास नमाज़ के समय सबसे बढ़िया ढङ्ग से व्यक्त होता है। इसी लिए कहा गया है कि नमाज़ मुसलमान-धर्म के पाँच आधारभूत स्तम्भों में से एक है।

नमाज़ का बाहरी ढङ्ग भी बड़ा विस्मयजनक और प्रभावोत्पादक है। ईश्वर की उपासना और प्रार्थना तो सभी धर्मवाले करते हैं किन्तु उनकी पद्धतियों में अन्तर है। हिन्दू लोग प्रायः एकान्त स्थान में आँख बन्द करके मध्योपासन करते हैं और ईसाई घुटने टेक ईश्वर का स्मरण करते हैं। यहूदी लोगों के यहाँ खड़े होकर प्रार्थना करने की प्रथा है। किन्तु इनका ढङ्ग सबसे निराला है। इसके लिए कुछ नियम बने हुए हैं।

जैसे एक नियम यह है कि यदि उपासक अशुद्ध होगा तो उसकी प्रार्थना नहीं स्वीकार की जायगी। इसलिए नमाज़ के पहले शुद्धता की आवश्यकता है। बड़े बड़े उत्सवों पर तो सारे शरीर को शुद्ध करने का आदेश है, किन्तु साधारण नमाज़ के समय हाथ-पैर और मुँह को धोने से ही काम चल सकता है। यदि पानी का अभाव होता है तो उसके स्थान में बालू से सफ़ाई करने की आज्ञा है। स्वच्छता के नियम यहूदियों के नियमों से बहुत मिलते हैं।

धर्मनिष्ठ मुसलमान को प्रतिदिन पाँच वक्त नमाज़ पढ़ने का आदेश है—(१) सूर्य निकलने के पहले और में; (२) दोपहर के बाद सूर्य ढलने के समय; (३) मध्याह्न और सन्ध्याकाल के मध्य में; (४) सूर्यास्त के कुछ समय बाद और (५) रात में सोने के पहले।

ठीक इन समयों पर इमाम लोग मसजिद की मीनारों से 'अल्लाह ओ अकबर' की आवाज़ लगाकर लोगों को इसकी सूचना देते हैं। प्रार्थनाओं का रूप बँधा हुआ है, वे छोटी छोटी होती हैं, उनमें विचार भी थोड़े होते हैं, किन्तु वे कई बार दुहराये जाते हैं। यह भी एक आवश्यक नियम है कि कोई स्त्री इन प्रार्थनाओं को न सुन सके। प्रार्थनायें अरबी-भाषा में पढ़ी जाती हैं और उपासक का मुँह मक्का की ओर रहता है।

सबसे पहले एक चटाई अथवा दरी बिछाई जाती है जिसको 'जानमाज़' कहते हैं। उसी पर खड़े होकर नमाज़ पढ़ी जाती है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उपासक को आठ प्रकार से उठना-बैठना पड़ता है। सबसे पहले खड़े होकर वह कहता है—मैं आज प्रातःकाल (मध्याह्न, सायङ्काल जैसा समय हो) क़िबला की ओर मुँह करके सच्चे हृदय से ईश्वर के प्रति दो रकोह (प्रार्थनायें) सुनाना चाहता हूँ।

फिर वह अपनी दोनों हथेलियाँ इस प्रकार मुँह के पास लगाता है कि उसके अँगूठे कान को छूने लगते हैं और उस दशा में कहता है—ख़ुदा सर्वोपरि है।

इसके बाद तीसरी अवस्था में वह अपनी छाती पर पहले बायाँ और उसके ऊपर दाहना हाथ रखता है। उसकी आँखें पृथ्वी की ओर झुकी रहती हैं। उस दशा में उपासक कहता है—ए ख़ुदा, तू स्वयं पवित्र है, तू स्वयं यश है, तू स्वयं महत्ता है। तेरे नाम भी महत् हैं और तेरी महत्ता भी महत् है। इसके साथ क़ुरान के प्रथम प्रकरण की कुछ आयतें भी पढ़ी जाती हैं।

चौथी अवस्था में हाथ घुटनों पर रक्खे जाते हैं और उँगलियाँ पृथक् पृथक् रहती हैं और सारा बदन आगे की ओर झुका रहता है और फिर उपासक तीन बार ये शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुहराता है—'मैं अपने स्वामी की पवित्रता का, जो महान् है, हृदय से वन्दना करता हूँ'।

पाँचवीं अवस्था में वह यह कहता हुआ कि ईश्वर महान् है घुटने के बल बैठ जाता है।

छठी दशा में उसका माथा और नाक पृथ्वी को छूने लगते हैं और वह तीन बार कहता है कि मैं अपने सर्वोपरि स्वामी की पवित्रता की वन्दना करता हूँ। बस, पहली प्रार्थना यहीं समाप्त हो जाती है और दूसरी प्रार्थना के प्रारम्भ में क़ुरान के प्रथम प्रकरण की बहुत सी आयतें पढ़ी जाती हैं, किन्तु उपासक क्रमशः उन्हीं अवस्थाओं को दुहराता रहता है।

जब दूसरी प्रार्थना भी समाप्त हो जाती है तब उपासक सातवीं स्थिति ग्रहण करता है। इसके द्वारा वह अपने विश्वास का साक्ष्य देना चाहता है। दाहने हाथ की तर्जनी उठा कर वह कहता है, परमात्मा अनेक नहीं, वरन् एक है और मुहम्मद उसके पैग़म्बर हैं।

इसके बाद आठवीं स्थिति आती है। पर अन्तिम स्थिति है, इसको मुञ्जत अर्थात् विनती कह सकते हैं। इसमें उपासक क़ुरान के उत्तमोत्तम विनयपूर्ण आयतें पढ़ता है।

चाहे कोई मुसलमान अकेला नमाज़ पढ़ता हो और चाहे अपने भाइयों के साथ मसजिद में, नमाज़ पढ़ते समय उसके हृदय में अवश्य भक्ति और श्रद्धा का उद्रेक होता है। मसजिदों में नियमित रूप से प्रत्येक शुक्रवार को मध्याह्न के समय सार्वजनिक नमाज़ होती है। उसमें बहुत से मुसलमान सम्मिलित होते हैं, किन्तु उसमें और एकाक की नमाज़ में कोई अन्तर नहीं होता। हाँ, इमाम जो सार्वजनिक नमाजों में अगुवा का काम करता है और ओर से लोगों को कुछ उपदेश रूप में सुनाता है।

किन्तु इमाम कोई नियमित मुल्ला नहीं होता और न उसका काम ही केवल उपदेश देना होता है। वह प्राय जीवन-निर्वाह के लिए अन्य व्यवसाय किया करता है। वास्तव में इस्लाम-धर्म ने उपदेष्टा लोगों का कोई सङ्घ स्थापित नहीं किया है, कोई भी योग्य नमाज़ का अगुवा बन सकता है। इसलिए इमाम की गद्दी का कोई महत्व नहीं, न तो उसे कोई धार्मिक अधिकार ही है और वह की बात में इस दर्जे से उतारा जा सकता है। एकान्त प्रार्थना के समान दो एक अवसरों को छोड़ कर स्त्रि मसजिद में भी किसी सार्वजनिक नमाज के समय उपस्थि नहीं रह सकतीं।

पर मुसलमानों में भी ऐसी बहुत सी जमातें हैं अपना अधिकांश समय भगवद्भजन और ईश्वराराधना व्यतीत करती हैं। इन जमातों के लोग साधुओं की त रहते हैं। पेट भरने के लिए इन्हें भिक्षा माँगनी पड़ती है

मुसलमान धर्म में शाखायें भी बहुत सी हो गई हैं किन्तु ये वास्तव में लोगों के परस्पर गृह-कलह के कु के अतिरिक्त और कुछ नहीं कही जा सकतीं। इनका म भेद बहुत ही सूक्ष्म है।*

*अँगरेजी से।

प्रकाशक—बी० पी० श्रीवास्तव, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स प्रेस), इलाहाबाद
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।.....'

डॉ० रामकुमार वर्मा, भू०पू० अध्यक्ष हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप में किया है। मैं इसके देश-व्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।.....'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० बेचीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य २० रुपये है।

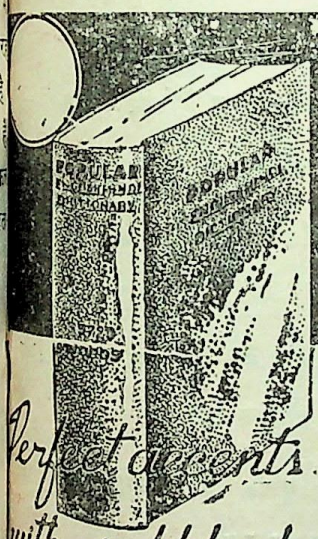

पापुलर
इंग्लिश
हिन्दी
डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य
१०) रुपये

हिन्दी, अंगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। सभी के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोर सीरीज़ उपन्यासमाला

किशोरों या उदीयमान भावी युवकों को प्रेरणा, उत्साह, साहस और मनोरंजन की विशद सामग्री उपस्थित करनेवाले उपन्यासों का अनुवाद अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं से हिन्दी में कराकर हमने हिन्दी किशोर पाठकों के लिए सुलभ किया है।

समुद्र-गर्भ की यात्रा —(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य ३ रुपये

वर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य ३·००

उड़ते अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय। मूल्य ३·२५

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य ५·५०

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी। मूल्य ३·२५

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभात किशोर मिश्र। मूल्य ३·२५

दृढ़प्रतिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य ३·२५

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य ३·२५

चन्द्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य ३·२५

चन्द्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस्० केलकर। मूल्य ५ रुपये

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त। मूल्य ५ रुपये

गुलीवर की यात्राएं—(मू० ले० जोनाथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री दो भागों में। मूल्य ५ रुपये प्रत्येक

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कौशल श्रीवास्तव। मूल्य ५·००

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी। मूल्य ३·२५

स्विस परिवार राबिंसन—(मू० ले० जोहान्न वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य ५·००

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य ३·२५

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० पुरुषोत्तम वत्स। मूल्य ५·००

प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय और अपनी संतान को उत्तम शिक्षा प्रदान करने का संकल्प रखनेवाले माता-पिता के निजी पुस्तक संग्रहों के लिए ये पुस्तकें बेजोड़ ही हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

प्राचीनतम हिन्दी मासिक पत्रिका
(संस्थापित सन् १९००)

जून १९७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' से पुरस्कृत

गुप्त साम्राज्य का इतिहास

लेखक

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सुविख्यात लेखक एवं प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान्

डा० वासुदेवशरण उपाध्याय

गुप्त सम्राटों का काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। गुप्त काल में सारे वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति अपने विकास के उच्च शिखर पर थी। धन्य था वह युग जब शिक्षा, साहित्य ही नहीं ललित कला को भी उन महान् गुप्त सम्राटों ने विकसित कर अपनी आदर्श शासन-प्रणाली को इतिहास की एक अमर निधि बना दिया। विद्वान् लेखक की इस रचना के समकक्ष हिन्दी ही नहीं अँगरेजी में भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। सभी इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। अनेक विश्वविद्यालयों की एम० ए० कक्षाओं की परीक्षाओं के लिए यह पाठ्य पुस्तक बन गयी है। स्नातकों ने ही नहीं जनता ने भी इस ग्रन्थ का स्वागत किया है। ग्रन्थ का तीसरा संस्करण दो भागों में छप कर तैयार है।

प्रथम भाग	१०·०० रुपये
द्वितीय भाग	१२·५० रुपये

इतिहास की दो नई पुस्तकें

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास

डॉ० ओमप्रकाश

हिन्दी भाषा में प्राचीन भारतीय इतिहास पर मौलिक रूप से लिखी गई पुस्तकों का प्रायः अभाव सा है। इतिहास के गहन एवं विस्तृत विवेचन को लक्ष्य में रखते हुए विद्वान् लेखक ने यथासंभव आधुनिकतम शोधों और मतों का समावेश करते हुए इस पुस्तक की रचना की है। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कथन की पुष्टि उचित पाद टिप्पणियों द्वारा की गई है। इतिहास के विद्वज्जगत् द्वारा प्रशंसित पुस्तक का प्रकाशन हमारे लिए भी गौरव की बात है। इतिहास के अन्य मौर्यकाल का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी इस पुस्तक को यथाशीघ्र मँगाकर लाभ उठावें। मूल्य १२·०० रुपये

भारत का प्राचीन इतिहास

लेखक—प्रो० नगेन्द्रनाथ घोष एम० ए०

संशोधक—ओमप्रकाश एम० ए० डी० फिल०

यह पुस्तक इतिहास जगत् में प्रायः दशाब्दियों से लोकप्रिय रही है मगर यह सर्वांशतः संशोधित संस्करण नवीनतम ऐतिहासिक उपलब्धियों, अनुसंधानों के परिणामों को ध्यान में रखते हुए प्रकाशित हुआ है। कलेवर पहले से दुगुना हो गया है। इस संस्करण की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं—राजनीतिक इतिहास के नवीन एवं ग्राह्य मतों के अनुसार वस्तु परिवर्तन, उनके सांस्कृतिक अंगों पर विशेष प्रकाश, पाँच विशेष प्रकार के मानचित्रों का समावेश और विवादात्मक विषयों को परिशिष्टों में देना आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जो विद्यार्थियों की ऐतिहासिक ज्ञानवृद्धि के प्रकाशस्तंभ हैं। जब पुस्तक मँगाकर लाभ उठावें। मूल्य १२·५० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

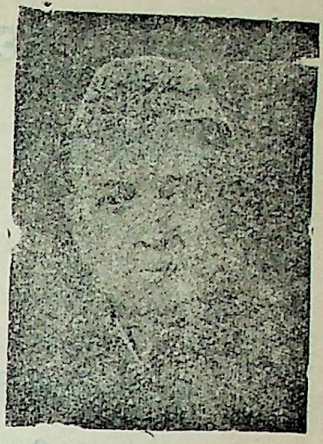

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये:—सी० वाई० चिन्तामणि भू० पू० मिनिस्टर क्या कहते हैं:—

प्रोफेसर पी० एन० सिंह प्रयाग के अद्भुत ज्योतिषी, हस्तरेखा-शास्त्री तथा प्रसिद्ध तांत्रिक हैं। मेरा उनसे पांच वर्ष से अधिक का परिचय है। वे अत्यन्त सभ्य महानुभाव हैं। उनका आचरण बहुत उत्तम एवं विश्वसनीय है। उन्होंने मेरे जीवन में घटनेवाली अनेक घटनाओं के सम्बन्ध में मुझसे सूचित कर दिया था और उनकी भविष्य-वाणियाँ उल्लेखनीय रूप से सत्य सिद्ध हुईं। उनकी तांत्रिक शक्ति की परीक्षा वांछनीय है। मैंने उनकी गुप्त एवं संचित एकाग्र-शक्तियों का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन कई बातों में किया है और उन सभी में उन्हें आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है। मेरी आन्तरिक कामना है कि उन्हें हर प्रकार से सफलता होती रहे।

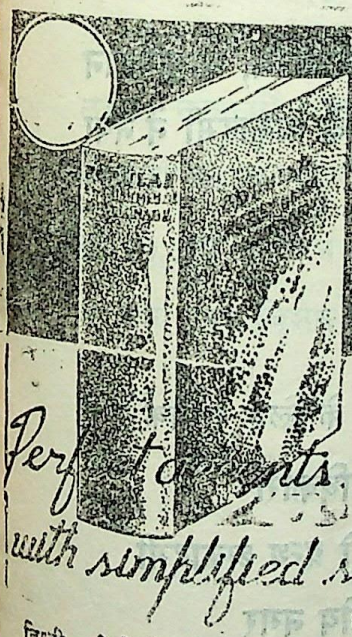

POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best
Of 20th Century

पापुलर
इंग्लिश
हिन्दी
डक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य
१०) रुपये

हिन्दी, अंगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी के शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान

1—बाईस विषयों के 180 ग्रन्थों का प्रकाशन

2—मानक शब्दावली का उपयोग

3—सहज सुबोध शैली

4—श्रेष्ठतम विद्वानों का सृजनात्मक सहयोग

5—भाषायी एकरूपता

पाँच वर्षों की अल्प अवधि में मानविकी, विज्ञान, इंजीनियरिंग, आयुर्विज्ञान तथा कृषि संकायों के प्रामाणिक ग्रन्थ प्रकाशित करके अकादमी ने नया मानदण्ड स्थापित किया है।

समस्त जानकारी के लिए सम्पर्क करें

विक्रय-अधिकारी

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

97 मालवीय नगर

भोपाल

462003

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण समृद्धि के लिए बिजली

बिजली वैज्ञानिक खेती को एक नया आयाम देती है, कृषि उत्पादन को बढ़ाती है, लघु उद्योगों को ऊर्जा प्रदान करती है इस प्रकार लाखों में समृद्धि लाती है।

ग्राम विद्युतीकरण निगम

राज्य बिजली बोर्डों व ग्रामीण बिजली सहकारी समितियों की खेतों, ग्रामीण उद्योगों व देहाती घरों में बिजली के विस्तार हेतु आसान किस्तों पर वित्तीय सहायता देता है।

ग्राम विद्युतीकरण निगम ने 31 मई, 1975 तक देश के 18 राज्यों में पाँच ग्रामीण बिजली सहकारी समितियों सहित 972 परियोजनाएँ स्वीकृत की हैं। ऋण की कुल सहायता 443 करोड़ रुपये से अधिक स्वीकृत की गयी है। ये परियोजनाएँ पूरी होने पर 82000 से अधिक गाँवों, लगभग 69 लाख नलकूपों और लगभग 108,695 कृषि आधारित लघु उद्योगों को बिजली प्रदान करेगी। इनके अतिरिक्त ग्राम विद्युतीकरण निगम ने देश की 10,577 हरिजन बस्तियों में सार्वजनिक स्थानों तथा सड़कों पर बिजली के लिए 110 विशेष परियोजनाएँ स्वीकृत की हैं।

ग्राम विद्युतीकरण निगम लिमिटेड
(भारत सरकार का संस्थान)

तार : 'रेक्ट्रिक'
पोस्ट बॉक्स नं० 3823,
डी-5, एन० डी० एस० ई०-11,
नई दिल्ली-110049

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	३६५
२—श्रीमद्भागवत में सूर्यगति की मीमांसा—डा० दामोदर झा, आचार्यत्रय, एम० ए०, विद्यावारिधि (पी० एच० डी०)	३७३
३—अलबरूनी तथा संस्कृति (२)—अनु० श्री वाहिद काज़मी	३७८
४—फूल से कोमल, वज्र से कठोर समीक्षक : श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी—श्री नर्मदाप्रसाद खरे	३८५
५—नायक नगले की तीर्थ-यात्रा—डा० रामस्वरूप आर्य	३८८
६—'ध्वनि' के अर्थ एवं उनके उत्पत्ति-स्रोत—श्री शोभा सत्यदेव	३९०
७—गांधी : मानवता के लिए अपरिहार्य—प्राध्यापक सुरेशचन्द्र झा 'किंकर', एम० ए०	३९३
८—ऊर्जा-संकट और समाधान—श्री शुकदेवप्रसाद	३९८
९—मराठी के शीर्षस्थ कवि—भास्कर रामचन्द्र तांबे—श्री रामसिंह यादव, एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न	४०३
१०—बाबा हरीदास : रचनाएं (१)—श्री राम-प्यारे त्रिपाठी	४१०
११—एक सहृदय समीक्षक का जन्म—डा० महेन्द्रनाथ पाण्डेय	४१५
१२—तुलसी काव्य में अभिचार-चर्चा—डा० गोवर्धननाथ शुक्ल	४१९
१३—खोज में—अनुवादक श्री नारायणचन्द्र भारती	४२३
१४—प्रतिशोध—श्री मनमोहन गुप्त	४२९
१५—नवीन प्रकाशन	४३३
१६—मनोरंजक संस्मरण	४३५

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

सरस्वती के लेखकों के प्रति

१—सरस्वती में भारत की चालू या वर्तमान राजनीति पर छोड़कर सभी विषयों के लेख प्रकाशित होते हैं। व्यक्तिगत आक्षेपोंवाले लेख भी नहीं छापे जाते।

२—सरस्वती में वे ही लेख छापे जाते हैं जो अन्यत्र न छपे हों। जो लेख अन्यत्र छपने को भेजे गये हों उन्हें 'सरस्वती' के लिए न भेजा जाय।

३—लेखकों को चाहिए कि लेखों की प्रतिलिपि अपने पास रख लें। डाक में या कार्यालय में उनके खो जाने के लिए 'सरस्वती' जिम्मेवार न होगी यद्यपि उन्हें सुरक्षित रखने का पूरा प्रयत्न किया जाता है।

४—स्थानाभाव के कारण स्वीकृत लेख भी कभी-कभी विलम्ब से छपते हैं।

५—सामान्यतः लेख दो-ढाई हज़ार शब्दों से अधिक का न होना चाहिए। बड़े लेख, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने पर, कभी-कभी छापे जाते हैं।

६—अनुवादित लेखों को भेजने के पहले (यदि लेखक को मरे ५० वर्ष से अधिक नहीं हो गये) मूल लेखक या उसके वारिस से अनुवाद करने की अनुमति लेना आवश्यक है। इन लेखों के अन्त में अलग एक कोष्ठक में अनुवादक यह प्रमाणित करने की कृपा करें कि यह अनुमति प्राप्त कर ली गयी है।

७—लेख कागज की एक ओर स्पष्ट और बड़े या मझोले अक्षरों में लिखा या टंकित हो। संस्कृत या अन्य भाषाओं के उद्धरण बहुत स्पष्ट और शुद्ध होने चाहिए तथा उनके नीचे कोष्ठक में उनका अनुवाद भी देना आवश्यक है।

८—लेख के अन्त में लेखक कृपया अपना पूरा पता अवश्य लिख दें।

९—'सरस्वती' व्यावसायिक पत्रिका नहीं है और वह साहित्य तथा हिन्दी प्रेमी लेखकों के सहयोग से घाटे पर चल रही है। अतएव उसके लिए लेखकों को पारिश्रमिक देना सामान्यतः संभव नहीं है। किन्तु प्रकाशित लेखों के लेखकों को ग्राहक समझकर उन्हें एक वर्ष वह निःशुल्क भेजी जायगी।

१०—यदि लेखक लेखों की प्राप्ति-स्वीकृति चाहते हों तो अपना पता जवाबी पोस्ट कार्ड पर लिखकर लेख के साथ संलग्न कर दें।

११—लेख, कहानी, कविता, संस्मरण आदि तथा सम्पादक से संबंधित पत्र "श्रीनारायण चतुर्वेदी, सम्पादक, 'सरस्वती', ५३ खुर्शेद बाग लखनऊ-४" तथा समालोचना की पुस्तकें और प्रबंध या ग्राहक संबंधी पत्रादि व्यवस्थापक 'सरस्वती', इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्रा० लि०, ३६, पन्नालाल रोड, इलाहाबाद के पते पर भेजें। समालोचना की दो पुस्तकें भेजना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

वर्ष ७६
पूर्ण संख्या ९०६

इलाहाबाद : जून १९७५ : ज्येष्ठ २०३२ वि०

खण्ड १
संख्या ६

सम्पादकीय

भारत का पहला उपग्रह—लोग भारत को विकासशील देश कहते हैं और हम भी उनके स्वर में अपना स्वर मिलाकर अपने को विकासशील देश कहते हैं। यों तो प्रत्येक देश विकासशील है क्योंकि सभी 'उन्नत' देश भी नित्य कोई न कोई आविष्कार करके अपना विकास करते हैं। 'विकासशील' शब्द के साथ एक हीनता की भावना चिपकी हुई है जो हमारे आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचाती है। हम विकसित देश हैं। इसका प्रमाण यह है कि हमने अपने बल पर अणु विस्फोट करके संसार को चकित कर दिया। और अब हमने सर्वथा भारतीय अभियन्ताओं द्वारा सुनियोजित और निर्मित उपग्रह छोड़कर विश्व के उन्नत राष्ट्रों की तरह अंतरिक्ष युग में प्रवेश कर लिया है। हम कितने ही वर्षों से तरह-तरह के सैनिक और असैनिक विमान बना रहे हैं। हमने उच्च श्रेणी के टैंक और लोकोमोटिव बनाने की क्षमता प्राप्त कर ली है और दिनोंदिन उन्हें उन्नत कर रहे हैं। ईस्पात, तरह-तरह की छोटी-बड़ी मशीनों, ट्रैक्टर, मोटर बनाने में हमारी क्षमता बढ़ रही है। २७ वर्ष पहले हम सुई भी बाहर से आयात करते थे। आज हम अपनी मशीनें, मोटरें, हथियार, ईस्पात, शक्कर, कपड़े, मोटर साइकिल, साइकिल आदि सैकड़ों आधुनिक चीजें बनाते ही नहीं, निर्यात भी करते हैं। हमने अपने देश में तेल के भांडारों का पता लगा कर उसका उत्पादन करना ही नहीं आरंभ कर दिया, हम उसे साफ करके उससे पेट्रोल, मिट्टी का तेल तथा अन्य कितनी ही वस्तुएँ बनाकर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहे हैं। इन २७-२८ वर्षों में प्रायः शून्य से आरम्भ कर हमने जो भौतिक उन्नति की है वह आश्चर्यजनक ही नहीं, हमारे लिए गौरव की बात है। एशिया में चीन और जापान को छोड़कर कोई देश इन बातों में हमारी समा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नता नहीं कर सकता। यही नहीं, हमारे बनाये सामान की माँग अमरीका और यूरोप के उन्नत देशों तक में है। हमारी सेना ने तीन युद्धों में अपना रण-कौशल दिखाकर अपनी शक्ति और योग्यता का परिचय दे दिया है। इसका श्रेय हमारी सरकार और हमारे अभियन्ताओं तथा कुछ कल्पनाशील पूँजीपतियों को है। अतएव हम अपने को 'विकासशील' कहकर इस आश्चर्यजनक उन्नति की ओर से आँखें बन्द कर लेते हैं। अवश्य ही देश में अनेक ज्वलन्त समस्याएँ हैं, किन्तु वे किस देश में नहीं हैं? वहाँ उनका रूप दूसरा हो सकता है, किन्तु सभी देशों के सामने अपनी-अपनी कठिनाइयाँ हैं। हमारे सामने भी वे हैं। किन्तु इनसे देश के विकसित देश होने में बाधा नहीं पड़ती। हम सरकार की कितनी ही आलोचना क्यों न करें, किंतु उसने भौतिक क्षेत्र में जो देश की आशातीत उन्नति की है, उसकी उपेक्षा करना अन्याय ही नहीं, अपने को धोखा देना भी होगा।

भारतीय उपग्रह भारत में तैयार हुआ। भारतीय अभियन्ताओं ने उसकी परिकल्पना की। स्वयं उसे बनाया। किन्तु आकाश में छोड़ने के लिए जिस प्रक्ष्येप प्रेषक यन्त्र की आवश्यकता होती है वह अभी हमने नहीं बनाया। यह नहीं कि हम उसे बना नहीं सकते, किन्तु तीसरे-चौथे वर्ष एक उपग्रह छोड़ने के लिए करोड़ों रुपये लगाकर उस यन्त्र का बनाना बुद्धिमानी नहीं है। समय आने पर हम उसे भी बना लेंगे, क्योंकि हमारे अभियन्ता उसे बनाने में समर्थ हैं। इसलिए हमने उसे अपने अभियन्ताओं के साथ रूस भेजा जहाँ के यन्त्र से वह अन्तरिक्ष में छोड़ा गया।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के आचार्य डा० मुरलीधर जोशी ने हमारी प्रार्थना पर अंतरिक्ष विज्ञान पर एक लेख लिखने की कृपा की है। एतदर्थ हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। किन्तु हमें अत्यन्त खेद है कि इस अंक की सारी सामग्री छप जाने के बाद प्राप्त होने के कारण वह लेख हम विवश होकर अगले अंक में प्रकाशित करेंगे। हमें विश्वास है कि उस लेख से हमारे पाठकों का ज्ञानवर्द्धन और मनो-रंजन होगा।

कुछ लोगों ने उस उपग्रह के नाम को 'आर्यभट' और कुछ ने 'आर्यभट्ट' कहा है। 'भट' का अर्थ 'योद्धा' और 'भट्ट' का 'विद्वान्' है। वह विद्वान् ब्राह्मणों के नाम के पीछे लगाया जाता था, जैसे, कुमारिल भट्ट। आर्यभट्ट प्रकाण्ड विद्वान् थे। अतएव हमारी सम्मति में उनका वास्तविक नाम 'आर्यभट्ट' था, और उनके नाम पर होने के कारण इस उपग्रह को 'आर्यभट' न कहकर 'आर्यभट्ट' कहना चाहिए।

हम आर्यभट्ट के निर्माता अभियन्ताओं को उनकी अभूतपूर्व सफलता पर हार्दिक बधाई देते हैं। भारत को अन्तरिक्ष युग में लाने का श्रेय उन्हीं को है। उनका नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

डा० नगेन्द्र की षष्ठिपूर्ति—गत मास हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् डा० नगेन्द्र ने अपने जीवन के ६० वर्ष पूरे कर लिये। यह समाचार पढ़कर हमें आश्चर्य हुआ। उनकी देहयष्टि, मुख की कान्ति, दिन भर कार्य में व्यस्त रहने की आदत और शक्ति तथा उनके काले केश देखकर विश्वास नहीं होता कि वे साठ वर्ष के हो गये हैं। हमें वे 'सदा-बहार' मालूम पड़ते हैं। हम उन्हें उस समय से जानते हैं जब वे आगरा कालिज में विद्यार्थी थे। जैसे अधिकांश बच्चों को 'मीज़िल्स' और 'चिकन पाक्स' निकलना आवश्यक है, वैसे ही अधिकांश साहित्यकारों को किशोरावस्था या तरुणाई में 'कविता निकलना' भी अनिवार्य है उस समय उन्होंने अपनी कविताओं का एक छोटा संग्रह छपाया था और हमें भेंट किया था। उनकी प्रतिभा से आकर्षित होने के कारण हमने वह संग्रह सहेजकर रख लिया और वह अब भी हमारे पास है। फिर हम जब आकाशवाणी में डिप्टी डाइरेक्टर जनरल थे और बुखारी की 'हिन्दुस्तानी' को 'हिन्दी' बनाने का उस लंका में प्रयास कर रहे थे तब सौभाग्य से नगेन्द्रजी भी वहाँ थे और एक समानधर्मा को पाकर हमें वैसी ही प्रसन्नता हुई जैसे विभीषण से मिलने पर हनुमानजी को। किंतु 'ब्राडकास्टिंग हाउस' में न तो वे बहुत दिनों रह सके, और न हम। अंतर यह था कि हम ५५ वर्ष के होकर सेवानिवृत्त हो गये और वे उदीयमान होने के कारण अपनी प्रतिभा के बल पर विश्वविद्यालय में आचार्य हो गये। शीघ्र ही उन्होंने प्रतिभाशाली और सफल प्राध्यापक के रूप में ख्याति प्राप्त कर ली। किंतु उनकी उफनती प्रतिभा प्राध्यापक के सीमित दायरे में बंद नहीं हो सकती थी। दिल्ली के हिन्दी जगत् में उन्होंने अपनी प्रतिभा और हिन्दी-हित के कार्यों से अपना सिक्का जमा

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया। और जो अनोखी बात हुई वह यह कि 'हिन्दी प्रोफेसर' होते हुए भी अपनी प्रतिभा, कार्यक्षमता और प्रभावी व्यक्तित्व के कारण वे 'सरकार' में भी पूछे जाने लगे। उन्होंने इतने दिनों में विविध क्षेत्रों में हिन्दी की जो बहुमुखी सेवा की है, उसको सामान्यतः लोग नहीं जानते, और उनके अभिनंदन ग्रन्थ में भी कहीं-कहीं उसका स्पर्श मात्र किया गया है। वे अध्यापन कार्य के प्रति अत्यन्त सजग रहे। लाख काम छोड़ देंगे, पर क्लास में पढ़ाने अवश्य जायँगे। उनके विद्यार्थी उनके शिक्षण से इतने प्रभावित रहते हैं कि उनका 'क्लास' 'कट' नहीं करते। इतना व्यस्त जीवन होने पर भी विद्याप्रेमी ब्राह्मण के अध्ययन और स्वाध्याय को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। सतत अध्ययन करने और ईश्वरदत्त विश्लेषण और संश्लेषण की अद्भुत प्रतिभा के कारण उन्होंने 'रस सिद्धान्त' के समान गौरव-ग्रन्थ लिखा जो हिन्दी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनूठा है। उनकी कृतियों और सम्पादित पुस्तकों का गुण और परिमाण देखकर आश्चर्य होता है।

हिन्दी में अभिनन्दन इतने होने लगे हैं कि उनकी गंभीरता और गौरव पर लोग शंका करने लगे हैं। हमें स्वयं इन अभिनंदनों और अभिनंदन ग्रन्थों से 'ऐलर्जी' है। किंतु प्रत्येक नियम के अपवाद होते हैं। हमें यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि दिल्ली में उनकी षष्ठिपूर्ति का समारोह किया गया और राष्ट्रपति भवन में महामहिम राष्ट्रपति ने उन्हें वह अभिनंदन ग्रन्थ भेंट किया। इस अवसर पर श्री जैनेन्द्रजी, श्री अक्षय कुमार जैन, केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डा० नूरुल हसन तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० मेहरोत्रा ने डा० नगेन्द्र के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालकर उनकी प्रशंसा की। महामहिम राष्ट्रपति ने भी उनके कार्य की प्रशंसा करते हुए ठीक ही कहा—"डा० नगेन्द्र ने मौजूदा दुनिया के हालात में एक ओर अपनी परम्पराओं को भी अच्छी तरह समझा है, और दूसरी ओर विदेश के प्रभावों को भी जाँचा-परखा और आत्मसात् किया है। संतुलन उनकी बहुत बड़ी शक्ति है।" हमारी सम्मति में डा० नगेन्द्र के कृतित्व के उद्देश्य और भावना का यह बहुत सही मूल्यांकन है।

इस अवसर पर उन्हें जो अभिनन्दन ग्रन्थ दिया गया वह बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसका दूसरा या मुख्य खंड 'तुलनात्मक साहित्य शास्त्र' पर है जिसके डा० नगेन्द्र विशेषज्ञ हैं और जो इनका प्रिय विषय है। इस संक्षिप्त टिप्पणी में उस ग्रन्थ के साथ न्याय नहीं किया जा सकता। उस पर हम अलग एक स्वतंत्र लेख देने का प्रयास करेंगे।

नगेन्द्रजी हमसे २२ वर्ष छोटे हैं। हमें विश्वास है कि हमारी वय तक पहुँचते-पहुँचते वे हिन्दी और साहित्य शास्त्र को और भी अधिक मूल्यवान कृतियाँ दे चुके होंगे। हमें उनके जन्मजात विद्या प्रेम, साहित्यिक प्रतिभा और क्रियाशीलता में अखंड विश्वास है।

बाबू श्यामसुंदरदास की जन्मशती—यह वर्ष बाबू साहब की जन्मशती का है। हम उनकी पौत्री का लिखा हुआ उनका संक्षिप्त जीवन-चरित्र प्रकाशित कर उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित कर चुके हैं। बाबू साहब ने काशी नागरी प्रचारणी सभा की स्थापना और दीर्घकाल तक हिन्दी की जो सेवा की वह हिन्दी आन्दोलन के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी। उन्होंने महामना मालवीयजी के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश की कचहरियों में नागरी लिपि के उपयोग का सरकारी आदेश निकलवा कर हिन्दी आन्दोलन की प्रथम सफलता प्राप्त की थी। उच्च साहित्य और अभिधान ग्रन्थों का सभा द्वारा निर्माण करा कर उन्होंने आधुनिक हिन्दी साहित्य और वाङ्मय की नींव डाली। यदि हम साधन-सम्पन्न होते तो बाबू साहब की स्मृति में इस अवसर पर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के अनुरूप एक विशेषांक निकालते। किन्तु इस महँगी और आर्थिक संकट के समय सरस्वती' ऐसी साधनहीन पत्रिका इतनी असहाय हो गयी है कि वह उसे निकालने में अपने को असमर्थ पाती है। हिन्दी में कितनी ही साधन सम्पन्न संस्थाएँ हैं, किन्तु जहाँ तक हम जानते हैं, अभी तक उनमें से किसी ने उनका विस्तृत जीवन चरित्र भी नहीं निकाला। हिन्दी के किसी अधिकारी विद्वान् ने भी हमारी जानकारी में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर कोई सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ नहीं लिखा। बाबू साहब से परिचित अब भी कुछ लोग जीवित हैं। यदि कोई संस्था चाहती तो उनका सहयोग प्राप्त कर सकती थी। उन्हें अपनी सेवाओं के बावजूद बहुत विरोध का सामना करना पड़ा। फिर सी उनका उद्दाम हिन्दी प्रेम कभी धूमिल नहीं हुआ। हमारे एक मित्र से एक बार किसी ने बाबू साहब की चर्चा की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कहा—"श्यामसुन्दरदास! यह व्यक्ति का नहीं, एक संस्था का नाम है।" उन्होंने अपना आत्म-चरित लिखा था और उससे उनकी जीवन के संध्याकाल की उनकी भावनाओं और उनकी कड़ुआहट का कुछ आभास मिलता है। वे 'सरस्वती' के प्रथम सम्पादक थे। हमारे लिए यह विशेष गर्व की बात है। हम इस अवसर पर उनका पुण्य-स्मरण कर उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

श्री बदरीनाथ मंदिर की बनी हुई दीवालों के गिराने का आदेश—हमें यह जान कर खेद और आश्चर्य हुआ कि उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्रीजी ने जयश्री ट्रस्ट द्वारा निर्मित श्री बदरीनाथ मंदिर की दीवालें तोड़ने का आदेश दिया है और इस काम के लिए व्यय का आकलन करने के लिए लोक निर्माण विभाग के मुख्य अभियन्ता को आज्ञा भी दी है। हमारे आश्चर्य के कारण कई हैं। (१) उत्तर प्रदेश सरकार ने वित्त मंत्री की अध्यक्षता में इस संबंध में सिफ़ारिश करने के लिए एक समिति बना दी थी। उसका न तो अभी कार्य समाप्त हुआ है और न उसने कोई प्रतिवेदन ही दिया है। अपनी बनायी संबंधित समिति की रिपोर्ट मिलने के पहले दीवालों के ढहाने का आदेश देना आश्चर्यजनक है। (२) ये दीवालें ठोस सीमेंट कांक्रीट की हैं। ये बारह फुट गहरी और बाइस फुट ऊंची तथा डेढ़ फुट चौड़ी हैं। इनकी लंबाई भी काफी है। ये डाइनोमाइट से नहीं उड़ाई जा सकतीं। इन्हें छेनियों से काटना होगा। इन दीवालों के अतिरिक्त सारी दीवालों पर पड़ा आर० सी० सी० लिंटल भी तोड़ना पड़ेगा। इस कार्य में लाखों रुपये लगेंगे, जो सार्वजनिक कोष से दिये जायंगे। इस व्यय या अपव्यय को प्रदेश के आर्थिक संकट के समय करने का औचित्य समझ में नहीं आता। (३) यह निर्माण कानून से बनी हुई मंदिर की स्वायत्तशासी प्रबंध समिति की अनुमति से किया गया था और तत्कालीन संबंधित मंत्री श्री वैद्य ने भी इसकी स्वीकृति दे दी थी। इस परिस्थिति में तत्कालीन संबंधित मंत्री द्वारा अनुमोदित और स्वायत्तशासी प्रबंध समिति के निर्णय को इस प्रकार उलट देना आश्चर्यजनक है। स्वयं इस सरकार द्वारा इस संबंध में विचार करने के लिए गठित समिति की रिपोर्ट की प्रतीक्षा किये बिना ऐसा आदेश देना कहाँ तक उचित और शोभनीय है? (४) यह स्पष्ट नहीं किया गया कि इन दीवालों और नींवों को नष्ट करने के बाद उनके बनाने की कोई सरकारी योजना है, या ये नींवें खुली छोड़ दी जायँगी और अर्द्ध-मंडपहीन अधूरा मंदिर ऐसा ही पड़ा रहेगा। हमें बहुत संदेह है कि सरकार अपने व्यय से मंदिर का पुनर्निर्माण करेगी। जयश्री ट्रस्ट मंदिर की प्रबन्ध समिति द्वारा स्वीकृत नक्शे पर काम आरंभ कर लाखों रुपये बरबाद कर चुका तथा व्यर्थ के विवाद में पड़कर अपने हाथ जला चुका है। इसमें संदेह है कि वह दुबारा इस प्रकरण में हाथ डालेगा। उसने केदारनाथ मंदिर के अनुकरण पर उसका नक्शा बनाया था। वह लाल पत्थर की जगह दीवालों पर स्थानीय पत्थर लगाने को भी राजी था। किंतु मुख्य मंत्री "उत्तराखंड शैली" और स्थानीय पत्थर के उपयोग की रट लगाये हुए हैं। हमें पर्सी ब्राउन तथा अन्य अधिकारी विद्वानों की पुस्तकों में भी उत्तराखंड शैली के मंदिरों की विशेषता का कोई वर्णन नहीं मिला। उस अविकसित और यातायात की अपार कठिनाइयों के युग में वहाँ जो मंदिर बनाये गये उनमें कोई भी बहुत प्राचीन नहीं है। उन्हें श्रद्धालु लोगों ने पूर्णरूप से हिन्दू मंदिर कला के अनुसार नहीं बनाया। बहुतों में तो केवल गर्भगृह ही है—कोई मंडप तक नहीं है। बदरीनाथजी का मंदिर अखिल भारतीय महत्त्व का है, और यदि इस साधन-सम्पन्न युग में, जब यातायात के साधन सुलभ हो गये हैं, वह अपने महत्त्व के अनुरूप शास्त्रीय ढंग से और विशाल नहीं बनाया जाता तो वह हिन्दू समाज के लिए लज्जा की बात होगी। हमें आश्चर्य है कि मुख्यमंत्री जी में, जो भारत की एकता की बात कहते नहीं थकते, इतना क्षेत्रीय आग्रह है कि वे उस मंदिर को 'उत्तराखंड' का पुराना अविकसित रूप देने पर जोर दे रहे हैं। हम उनसे आग्रह करते हैं कि वे अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें और बनी हुई लाखों रुपयों की दीवालों को न तुड़वाएँ। सुना है कि जयश्री ट्रस्ट उनके ऊपर लाल पत्थर के स्थान पर स्थानीय पत्थर लगाने को तैयार है तथा मुख्य मंत्रीजी के इच्छानुसार नक्शे में छोटे-मोटे परिवर्तन करने को भी तैयार है।

सबसे महत्त्व की बात यह है कि अलकनंदा नदी मंदिर के पास नीचे कटाव कर रही है। उसे मंदिर की प्रबंध समिति या कोई निजी संस्था नहीं रोक सकती। यह काम उसी प्रकार सरकार ही कर सकती है जिस प्रकार वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के घाटों के नीचे के कटाव को रोकने का काम उत्तर प्रदेश सरकार ने किया था। बनी हुई दीवालों को तोड़ने में लाखों रुपयों का व्यय न करके यह सरकार उस रुपये से अलकनंदा के कटाव को रोकने का अत्यावश्यक काम करे तो वह देश की जनता की कृतज्ञता अर्जित कर सकेगी।

श्री बालकृष्ण राव का स्वर्गवास—प्रथम जून को हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, लेखक और समीक्षक श्री सी० बालकृष्ण राव का स्वर्गवास हो गया। उनकी आयु केवल ६१ वर्ष की थी और वे कुछ सप्ताह पूर्व ही आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपति के पद से मुक्त होकर अपने घर इलाहाबाद लौट आये थे। मृत्यु के दो-तीन सप्ताह पूर्व उनकी घातक बीमारी का पता लगा और वे चिकित्सा के लिए दिल्ली के चिकित्सा संस्थान में चले गये थे। किन्तु डाक्टरों का पूर्ण प्रयास उन्हें न बचा सका। मूलतः वे आंध्र थे, किन्तु उनके प्रसिद्ध पिता श्री सी० वाई० चिन्तामणि 'लीडर' के सम्पादक होकर प्रयाग आये थे और वहीं बस गये थे। श्री बालकृष्ण राव का प्रयाग ही में जन्म हुआ और वहीं उनकी शिक्षा हुई। वे आई० सी० एस० की परीक्षा में सफल होकर उत्तर प्रदेश में कई जिलों में कलक्टर के पद पर रहे। बाद में वे भारत सरकार की सेवा में चले गये। वहाँ कई वर्ष सेवा करने के बाद पारिवारिक कारणों से उन्होंने सेवा से त्याग-पत्र दे दिया और वे प्रयाग लौट आये।

श्री बालकृष्ण राव की सारी शिक्षा हिन्दी क्षेत्र में हुई और उन्हें हिन्दी का असाधारण ज्ञान हो गया। कविता में उनकी रुचि थी और स्व० हितैषीजी के प्रभाव से उन्हें हिन्दी काव्य का अच्छा ज्ञान हो गया। सेवा-मुक्त होने पर उन्होंने अपना समय हिन्दी लेखन, पत्रकारिता, समाज-सेवा और शिक्षा की सेवा में लगाना आरम्भ किया। राजनीति में भी उन्होंने कुछ दिनों काम किया, किन्तु वह उनकी प्रकृति के अनुकूल न था। उसे उन्होंने शीघ्र छोड़ दिया, किन्तु उसके कारण वे इलाहाबाद नगर महापालिका के महापौर (नगरप्रमुख) चुन लिये गये थे। प्रयाग में उनके व्यक्तित्व के कारण उनका घर एक साहित्यिक केन्द्र बन गया था। उन्होंने समीक्षा गोष्ठियों का जो क्रम चलाया वह बहुत सफल रहा। वे उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ एकाडमी के अध्यक्ष भी कुछ दिनों रहे। इसके बाद पहले वे गोरखपुर विश्वविद्यालय के और फिर आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहे। इन दोनों स्थानों में आजकल की अनुशासनहीनता के युग में भी वे अपने कार्य में सफल रहे।

श्री राव मूलतः कवि और समीक्षक थे। उनकी कविताएँ छायावाद और नयी कविता के बीच की कड़ी हैं। उनके कई काव्य-संकलन प्रकाशित हुए जो उनके काव्य के विकास के अभिलेख हैं। अंग्रेजी में पारंगत होने के कारण उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण जटिल अंग्रेजी कविताओं का सफल अनुवाद भी किया था। उनकी समीक्षक की दृष्टि पैनी थी और वे गहराई में जाते थे। आधुनिक सभी वादों का गहन अध्ययन करने के कारण आधुनिक कृतियों की उनकी समीक्षा बड़े उच्च-स्तर की होती थी। उनका गद्य प्रवहमान और मधुर संस्कृतनिष्ठ हिन्दी गद्य का परिनिष्ठित रूप माना जाता था। वे अन्य साहित्यकारों की तरह हिन्दी प्रचार के काम से विरक्त नहीं रहते थे। वे उसमें खुलकर भाग लेते थे। राजर्षि टण्डन द्वारा स्थापित उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मथुरा अधिवेशन के वे अध्यक्ष थे। उनका अध्यक्षीय भाषण उनके हिन्दी के प्रचार और उसे उसका न्यायसंगत स्थान दिलाने के लिए प्रभावशाली उद्बोधन है। वे प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकाडमी के भी कई वर्ष अध्यक्ष रहे। उनके कार्यकाल में उस संस्था में (जो कई वर्षों से सुप्तावस्था में थी) नया जीवन आ गया और उन्होंने उसे अनेक नई गतिविधियों के द्वारा साहित्य सर्जन और हिन्दी विद्वानों के लिए विचारों के आदान-प्रदान का एक प्रभावशाली मंच बना दिया था।

श्री राव स्वभाव से विनम्र और मिलनसार थे, और उनके 'साहित्यकार' में आई० सी० एस० की गंध भी नहीं थी। उनकी प्रौढ़ विद्वत्ता और उनके बहुमुखी अनुभव की हिन्दी संसार को बड़ी आवश्यकता थी, और जब वे अपना सारा समय हिन्दी की सेवा को देना चाहते थे तब कराल काल ने उन्हें हमसे असमय छीन लिया। उसके निधन से हिन्दी संसार की महान् क्षति हुई है। हम उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना व्यक्त करते हैं।

प्रोफेसर नीलकंठ शास्त्री का स्वर्गवास—अभी हाल में प्राचीन इतिहास के महान् विद्वान् मदरास के डा० नीलकंठ शास्त्री का स्वर्गवास हो गया। वे भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन इतिहास के प्रथम पंक्ति के विद्वानों में थे। उनका जन्म एक तैलगू भाषी ऐसे ब्राह्मण परिवार में हुआ था जिसमें संस्कृत के पठन-पाठन की परम्परा थी और जिसमें अनेक विद्वान् हुए। वे तिरुनेलवेली ज़िले के रहनेवाले थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा तमिल भाषी मदरास में हुई, और इस कारण संस्कृत के अतिरिक्त उन्होंने तमिल भाषा पर भी असाधारण अधिकार प्राप्त कर लिया था। मदरास में अध्यापन करते हुए उनकी इतनी ख्याति हो गयी कि वे १९०८ में काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में भारतीय इतिहास के प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। किन्तु वहाँ दो वर्ष रहने के बाद वे चिदम्बरम् के मीनाक्षी कालिज में प्रोफेसर होकर चले गये। इसका कारण यह था कि वे भारतीय इतिहास में दक्षिण के प्रदेशों के इतिहास का विशेष अध्ययन कर रहे थे जो वाराणसी में रहकर करना कठिन था। दक्षिण भारत का इतिहास अपेक्षतया उपेक्षित था। उन्होंने दक्षिण के इतिहास पर दो पुस्तकें लिखीं। एक पाण्ड्यवंश पर, और दूसरी चोलवंश पर। इन दोनों ही राजवंशों के राज्य दक्षिण भारत के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और वैभवशाली राज्य थे, और इनके शासन काल में दक्षिण अपने वैभव के शिखर पर पहुँच गया था। ये दोनों पुस्तकें—विशेषकर चोलवंश पर लिखी पुस्तक—अपने विषय में आज भी सबसे अधिकृत पुस्तकें मानी जाती हैं और उन्होंने डा० नीलकण्ठ शास्त्री की धाक इतिहासज्ञ के रूप में सारे भारत में बैठा दी। १९२९ ई० में मदरास विश्वविद्यालय ने उन्हें अपने यहाँ भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व के प्रोफेसर के पद पर बुला लिया, जिसपर वे सेवामुक्त होने तक रहे। दक्षिण-पूर्व एशिया (कम्बोडिया, चम्पा आदि) में जिसे विशाल भारत भी कहते हैं, दक्षिण के राजवंशों ने राज्य स्थापित किये थे। उनमें सबसे प्रसिद्ध विजयवंश का साम्राज्य था जो वहाँ कई शतियों तक बड़ी कुशलता से शासन करता रहा और जिसने वहाँ हिन्दू संस्कृति और धर्म को फैलाया। डा० नीलकण्ठ शास्त्री ने उस विजय साम्राज्य पर एक भाषण-माला दी थी जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और जिसे पढ़कर हमें अपने पूर्वजों के उद्यम, साहस और विदेशों में जाकर लोकहितकारी शासन करने की क्षमता का अच्छा परिचय मिलता है। इस भाषणमाला से उन देशों में पाये जानेवाले हिन्दू अवशेषों—शिला लेखों, मंदिरों आदि का भी ज्ञान होता है। वास्तव में दक्षिण भारत के इतिहास का अनुसंधान कर उस पर प्रकाश डालने और उसे अध्येताओं के लिए सुलभ करने में शास्त्रीजी का कार्य सदैव याद रखा जायगा। उनमें सच्चे इतिहासज्ञ की निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ दृष्टि थी और वे पूरा अध्ययन करके तथा पूरी जानकारी और प्रमाण प्राप्त कर और उनका निर्मम परीक्षण करके ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचते थे। उत्तर भारत में दक्षिण भारत के गरिमापूर्ण इतिहास का ज्ञान बहुत कम है और हमें उसका इतिहास बहुत सतही ढंग से पढ़ाया जाता है जिससे हम दक्षिण के गौरवशाली इतिहास से प्रायः अपरिचित रह जाते हैं। राष्ट्रीय एकता के लिए उत्तर में भी उसका अच्छा अध्ययन आवश्यक है। शास्त्रीजी ने दक्षिण के इतिहास को जिस वैज्ञानिक ढंग से लिखा है उससे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। वास्तव में भारत के मौलिक इतिहास लेखकों में उनकी गणना होगी। ऐसे इतिहासज्ञ के स्वर्गवास से देश ने एक महान् और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् को खो दिया है। किन्तु भारत को उन पर सदैव गर्व रहेगा और उनकी कृतियाँ भविष्य की पीढ़ियों को दक्षिण के गौरवशाली इतिहास के अध्ययन में सहायता ही न देती रहेंगी, प्रत्युत वे उन्हें उसके अधिक अध्ययन और शोध के लिए प्रेरणा भी देती रहेंगी।

बोलती किताबें—साक्षरता और संस्कृति पर्याय नहीं हैं, किन्तु आजकल संसार में जो देश जितना निरक्षर होता है वह उतना ही पिछड़ा समझा जाता है। जब छपाई की कला का आविष्कार नहीं हुआ था तब पुस्तकें बड़े परिश्रम से हाथ से लिखी जाती थीं और केवल धनी लोगों को उपलब्ध थीं। भारत में कथाओं, साधु-सन्तों के प्रवचनों, पंडितों के उपदेशों और घूमते-फिरते महात्माओं एवं संन्यासियों के द्वारा रामायण, भागवत, पुराणों तथा काव्यों का प्रचार जनता में होता था जिससे उनके सांस्कृतिक स्तर और अपने वाङ्मय के ज्ञान का विस्तार होता था। वेद तो वेदपाठियों से सुनकर ही याद किये जाते थे। इसीलिए वे 'श्रुति' कहलाते थे। कविता याद रखना अपेक्षतया सरल है। इसलिए इस देश में आयुर्वेद, ज्योतिष, अभिधान, गणित आदि के ग्रन्थ पद्य ही में लिखे जाते थे। दर्शन आदि के लिए 'सूत्र' की शैली अपनायी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती थी। सूत्रों की व्याख्या पंडितों से सुनकर लोग उनका तत्त्व समझते थे।

चीन में छपाई की कला का आरम्भ हुआ। वहाँ लकड़ी के पट्टों पर एक पूरा पृष्ठ उत्कीर्ण कर दिया जाता और उस पर स्याही लगा कर उसे कागज पर दबाकर उसकी प्रतियाँ निकाल ली जाती थीं। यह प्रथा तिब्बत में भी पहुँच गयी थी। यूरोपवाले भी इसकी नकल करने लगे थे। किन्तु इस प्रणाली से किसी पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ के लिए पट्टिका का उत्कीर्ण करना अत्यन्त कठिन और समय साध्य काम था। वह इतना खर्चीला भी था कि बहुत कम पुस्तकें छप पाती थीं।

सन् १४३८ ई० में जर्मनी के गुटनबर्ग नामक एक अनोखी सूझ-बूझ के व्यक्ति ने प्रत्येक अक्षर के लिए अलग सांचे बनाये, और उनसे एक-एक अक्षर के अनेक टाइप ढाले। इन टाइपों को मिलाकर पुस्तक का पृष्ठ तैयार कर लिया जाता, और जब वह छप जाता तब उन टाइपों को खोल कर उनसे दूसरा पृष्ठ तैयार कर लिया जाता। इससे छपाई की कला में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। उसने इस प्रणाली से सबसे पहले लैटिन भाषा में बाइबिल छापा और उसे १४५६ में तैयार करके प्रकाशित किया। उसकी प्रतियाँ अब अप्राप्य हैं। कोई तीस वर्ष पूर्व किसीके पास एक प्रति मिल गयी थी। न्यूयार्क के एक धनी ने उसे एक लाख बीस हजार डालर (प्रायः ९ लाख साठ हजार रुपयों) में खरीद लिया था।

तब से छपाई की कला ने बड़ी उन्नति की है। आज तो वह हमारे जीवन का अभिन्न अंग हो गयी है। उसके बिना न तो हमें समाचार-पत्र ही मिल सकते हैं और न पुस्तकें ही।

किन्तु पुस्तकों और समाचार-पत्रों की भरमार के कारण हमारी आँखों पर विशेष जोर पड़ता है और धीरे-धीरे वे कमजोर होने लगती हैं। कागज की कमी के कारण एक पृष्ठ में अधिक से अधिक सामग्री देने की उत्सुकता के कारण छापे के अक्षरों का आकार छोटा होता जा रहा है। जिस टाइप में आप यह टिप्पणी पढ़ रहे हैं, वह आकार में १२ पॉइंट का है। इससे भी छोटे १०, ८ और ६ पॉइंट के टाइप बनते हैं। एक अनुभवी व्यक्ति ने कहा है कि size of type is in inverse proportion to literacy. (अक्षर का आकार साक्षरता के विपरीत अनुपात में होता है)। अतएव कम पढ़े-लिखे लोगों के लिए पुस्तकें बड़े अक्षरों में छापी जाती हैं। किन्तु पढ़े-लिखे लोगों के लिए जो पुस्तकें छपती हैं वे दिनोंदिन छोटे अक्षरों की होती जाती हैं। हमें अब १२ पॉइंट के अक्षर पढ़ने में भी कष्ट होता है। अभी १६ पाइंट के काले अक्षर चल जाते हैं। किन्तु जो लोग बराबर १२ पाइंट के अक्षरों के दस-बीस पृष्ठ नित्य पढ़ते रहेंगे, उनकी आँखों की ज्योति के अपेक्षतया कम अवस्था ही में कमजोर हो जाने का बड़ा खतरा है।

हाल में एक जापानी प्रकाशक की आँखों की ज्योति मंद हो गयी। उसने पुस्तकों को अच्छे वाचक से टेप रिकर्डर में भरवा लिया। अब वह आराम से लेटकर, या आरामकुर्सी या सोफ़े पर बैठकर उन पुस्तकों को सुनकर उनका आनन्द लेता है। उसका कहना है कि छपी पुस्तकों के पढ़ने में जो समय लगता है, उससे कम समय उन्हें सुनने में लगता है, और आँखों पर जोर नहीं पड़ता। टेप रेकर्ड की पुस्तकें तैयार करना आजकल की पुस्तकों का मूल्य देखते हुए बहुत महँगा भी न होगा। यदि वाचक सावधानी से चुना जाय तो अर्थ और भाव स्पष्ट होते जायेंगे। बूढ़े, निरक्षर और कमजोर निगाह के लोग एकान्त में बैठ कर, हेडफोन लगाकर, उन्हें शांतिपूर्वक आनन्द से सुन सकेंगे।

इसमें संदेह नहीं कि यह विचार बहुत उपयोगी है। इसके कार्यान्वियन में कठिनाइयाँ भी बहुत हैं। कोश तथा संदर्भ की पुस्तकों के लिए यह एकदम बेकार है। किन्तु मनोरंजन और सामान्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए ये बोलती पुस्तकें वरदान हो सकती हैं। किन्तु भारत में उद्योगी व्यक्तियों की इतनी कमी है कि हम शायद ही हिन्दी में 'बोलती पुस्तकें' देख-सुन सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक का निवेदन

इस अंक के साथ मेरे 'सरस्वती' के सम्पादन के बीस वर्ष पूरे होते हैं। "दिवस जात नहिं लागहि बारा।" मुझे पता भी न लगा कि ये बीस वर्ष कैसे बीत गये। मेरे ऐसे सरकारी फाइलों को पीटने में कार्यरत जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति के लिए किसी भी साहित्यिक कार्य का करना अत्यन्त कठिन था—'सरस्वती' ऐसी महान् परम्पराओं वाली गंभीर साहित्यिक पत्रिका का सम्पादन तो अकल्पनीय बात थी। किंतु जिस भगवान् की कृपा से "मूक होंहि बाचाल, पंगु चढ़हिं गिरिवर गहन", उन्हींके अहेतुक अनुग्रह से मैं इस 'सरस्वती' रूपी नाव को इतने दिनों खेता रहा। भगवान् के अनुग्रह के अतिरिक्त मुझे अनेक छोटे-बड़े हिन्दी प्रेमियों का सहयोग भी मिलता रहा, जो इस अर्थ-प्रधान युग में भी विशुद्ध हिन्दी प्रेम और सेवा भाव से (पारिश्रमिक के लिए नहीं) मेरे साथ सहयोग करते रहे। उनकी सहायता के बिना मैं कुछ नहीं कर सकता था। "निज भुजबल भरोस मोहिं नाहीं।" इन बीस वर्षों में 'सरस्वती' ने जो अच्छा काम किया है और हिन्दी को जो अच्छा मासिक साहित्य दिया है उसका शत-प्रतिशत श्रेय 'सरस्वती' के इन्हीं कृपालु सेवकों को है। मुझे भय है कि मेरी अनुभवहीनता और अकुशल सम्पादन ने 'सरस्वती' को शायद उतना ऊँचा नहीं उठने दिया जितना हमारे विद्वान् लेखकों के कारण उसे उठना चाहिए था।

इन बीस वर्षों में मुझे सम्पादन के सिलसिले में अनेक मीठे-कड़ुए अनुभव हुए हैं। मेरे पास बहुधा प्रशंसात्मक पत्र आते हैं, किंतु मैंने कभी उन्हें प्रकाशित नहीं किया, क्योंकि मैं जिस युग का हूँ उसमें आत्मप्रशंसा का प्रचार 'शिष्ट' नहीं समझा जाता था। मेरे पास भर्त्सना के भी कुछ पत्र आये। उनसे मैं विचलित नहीं हुआ, कभी पत्र-प्रेषकों का समाधान या क्षमायाचना भले ही कर ली हो। मैंने सामान्यतः उन्हें 'प्रसाद' रूप ही में ग्रहण किया। अवश्य ही मेरे पास 'सरस्वती' के सम्पादन के अतिरिक्त और भी अनेक काम रहते हैं जो मुझे व्यस्त रखने को आवश्यकता से अधिक हैं। फिर भी मैं सम्पादन के लिए समय निकाल लेता रहा हूँ। सम्पादक के रूप में मेरे अनुभव बड़े विविधता-पूर्ण और मनोरंजक हैं। इस कार्य में मुझे हिन्दी के बहुत से छोटे, मझोले और बड़े लेखकों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। इस संपर्क ने ज्ञानवृद्धि और अनुभव के विस्तार के साथ मेरा मनोरंजन भी किया। यदि कभी मौज आयी तो केवल अपना और मित्रों का मनोरंजन करने के लिए मैं उन अनुभवों को लिख डालूँगा, और यदि स्वयं न लिख सका तो श्री श्रीविनोद शर्मा से उन्हें लिख देने का आग्रह करूँगा। किंतु यह 'विचार' मात्र है। जब बड़े-बड़े 'योजनाचार्यों' के इरादे असफल हो जाते हैं तब यदि मेरा 'विचार' बुद्बुद् की तरह नष्ट हो जाय तो कोई आश्चर्य की बात न होगी।

अब मैं ८२ वर्ष का हूँ और शायद मैं अपने 'कोटे' (quota) से अधिक अपनी मातृभाषा की सेवा कर चुका हूँ। किंतु 'रामकाज कीन्हे बिना मोहि कहाँ बिश्राम!' संन्यास ग्रहण करने की इच्छा ७० वर्ष के होने पर उत्पन्न हुई थी, जो ७५ पर और प्रबल हो गयी। किंतु 'बिनु हरि कृपा' वह कैसे संभव है? अतएव कह नहीं सकता कि घोड़ा टम-टम में जुते हुए ही एक दिन गिर पड़ेगा, या भार वहन से मुक्ति पाकर वह शस्य श्यामल मैदान में चरते-चरते जीवन से विदा लेगा। 'जो कछु रचि राखी नँदनन्दन, टारि सकै ना कोय।'

'सरस्वती' के सम्बन्ध में अपने लेखकों, पाठकों और हिन्दी प्रेमियों से कुछ गम्भीर बातें कहनी हैं। किंतु इस अवसर पर मैं उनके सम्बन्ध में कुछ न कहूँगा। इस समय तो मैं इंडियन प्रेस के दिवंगत स्वामियों और वर्तमान संचालकों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मेरे काम में कभी इशारे से भी हस्तक्षेप नहीं किया। सम्पादक के रूप में मुझे पूर्ण स्वतन्त्रता रही है। मेरा ऐसा व्यक्ति जब सरकारी सेवा में भी अनुशासन को पूरी तरह से मानता हुआ किसी प्रकार के अंकुश को बर्दाश्त नहीं कर सकता था, तब अवैतनिक सम्पादक के रूप में यदि अंकुश का आभास भी होता तो मैं कब का यह कार्य छोड़ चुका होता। प्रेस के सरस्वती के विभाग के कर्मचारियों का भी मैं उनके हार्दिक सहयोग के लिए आभारी हूँ। इनसे भी अधिक कृतज्ञ मैं 'सरस्वती' के लेखकों का हूँ। हिन्दी के बड़े से बड़े लेखकों से लेकर उदीयमान लेखकों तक ने मुझे जो स्नेह और सहयोग दिया तथा मेरे प्रति जो सद्भावना दिखलायी वह मेरे लिए आश्चर्य की वस्तु थी। मैं नहीं जानता था कि इस आपाधापी के युग में भी इस देश में, और विशेषकर हिन्दी लेखकों और हिन्दी प्रेमियों में प्रेम, सौहार्द और सद्भावना इतनी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। इस बोध ने मेरे सारे परिश्रम, सारी कठिनाइयों, सारी कटुताओं का परिहार करके मुझे वह 'पारिश्रमिक' दिया है जो सुर-दुर्लभ है। इसीलिए मैं चिन्ताओं, कठिनाइयों और कठिन परिश्रम के इन बीस वर्षों को वरदान और भगवान् के प्रसाद रूप में स्वीकार करता हूँ, और उन सब मित्रों, पाठकों, हिन्दी प्रेमियों और हितैषियों के प्रति कृतज्ञता से नत हूँ जो इतने दिनों मेरे सम्बल रहे। मेरी एकमात्र अभिलाषा यही है कि उनका मेरे प्रति यह सौहार्द मेरे जीवन के अंत तक बना रहे।

'सरस्वती' चिरजीवी हो! हिन्दी कागजी राजभाषा न होकर वास्तविक राजभाषा बनकर देश को वाणी दे और उसे एक करे! हिन्दी के प्रति हिन्दीभाषी अनुरक्त हों, अहिन्दी देशवासी अपनी मातृभाषा की उन्नति करते हुए राष्ट्रभाषा हिन्दी को 'अपना' समझें! अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उसका प्रचार और आदर हो तथा राष्ट्रसंघ में उसको सम्माननीय स्थान मिले! हिन्दी साहित्य में तत्त्वबोध के लिए शास्त्रीय वाद-विवाद हों, हिन्दी के वाङ्मय को सर्वांग-पूर्ण और अद्यतन बनाने में हिन्दी के समर्थ विद्वान् लगे रहें और हिन्दी देश में एकता और प्रेम की वाहिका बनी रहे! यही मेरी कामना है—और यही 'सरस्वती' के जीवन का उद्देश्य है।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भागवत में सूर्यगति की मीमांसा

डा० दामोदर झा, आचार्यत्रय, एम० ए०, विद्यावारिधि (पी०एच०डी०)

सूर्यगति के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में विशद वर्णन मिलता है। पंचम स्कन्ध में कहा गया है कि अन्तरिक्ष लोक के मध्य में स्थित ग्रह और नक्षत्रों के अधिपति सूर्य तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं। वह उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् नामवाली क्रमशः मन्द, शीघ्र और समान गतियों से चलते हुए सवनानुसार मकरादि राशियों में ऊँचे, नीचे और समान स्थानों में जाकर दिनरात को बड़ा, छोटा अथवा समान करते हैं—

स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिः मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिः गतिभिः आरोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिषु अहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते। (२१।३)

अभिप्राय यह कि उत्तरायण, दक्षिणायन और वैषुवन गतियों में सूर्य का क्रमशः आरोहण, अवरोहण और समान स्थान होता है। संभवतः श्रीमद्भागवत के इस अंश की रचना तब हुई थी जब सूर्य का उच्च मिथुन राशि में था। अतः उत्तरायण, दक्षिणायन तथा वैषुवन सूर्य की क्रमशः आरोहण, अवरोहण और समान गति की स्थापना पूर्णतः वैज्ञानिक है।

इसी प्रकार यहाँ मकरादि, कर्कादि एवं वैषुवन सूर्य की स्थिति में देवासुर क्रम से दिनरात्रिमान को दीर्घ, ह्रस्व एवं समान कहा गया है। यहाँ दीर्घ का अभिप्राय वृद्धचुन्मुख और ह्रस्व का अभिप्राय ह्रासोन्मुख है क्योंकि वास्तविक रूप में उत्तरायण के बहुत से दिनों की अपेक्षा दक्षिणायन के बहुत से दिन बड़े होते हैं।

उत्तरायण एवं दक्षिणायन की प्रचलित परिभाषा के अनुसार मकर और कर्क की संक्रान्तियों से क्रमशः उत्तरायण तथा दक्षिणायन होते हैं (द्रष्टव्य—बृहत्संहिता, आदित्यचार २-३)। उत्तरायण तथा दक्षिणायन क्रमशः देवों तथा असुरों का दिन होता है। देव तथा असुर क्रमशः उत्तर तथा दक्षिण ध्रुव में रहते हैं। अतः दोनों का क्षितिजवृत्त विषुववृत्त ही है। वस्तुतः जब सूर्य विषुव से उत्तर हो तब देव दिन तथा जब दक्षिण हो तब असुर दिन होता है। मकर कर्क की संक्रान्तियों में क्रमशः देवासुरों की अर्धरात्रि होती है। संहिताकारों ने अर्धरात्रि से ही दिनारम्भ मानकर उत्तरायण एवं दक्षिणायन के आरम्भ से ही देवासुरों का दिनारंभ कहा है (द्रष्टव्य—सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, त्रिप्रश्न वासना ८,९, ११)। श्रीमद्भागवत में भी यही मत स्वीकृत है। शतपथ ब्राह्मण में देवासुरों के अहोरात्र के सम्बन्ध में वास्तविक स्थिति का ही निम्नांकित रूप में उल्लेख है—

वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः। ते देवा ऋतवः शरद्धेमन्तः शिशिरस्ते पितरो·····। स [सूर्यः] यत्रोदगावर्तते। देवेषु तर्हि भवति·····। दक्षिणावर्तते पितृषु तर्हि भवति। (माध्य० श० ब्रा० २. १. ३)

यद्यपि इन वाक्यों में उदगयन तथा दक्षिणायन शब्दों का प्रयोग नहीं है तथापि **उदावर्तते** तथा **दक्षिणावर्तते** पदों का अर्थ विषुव से उत्तर तथा दक्षिण में भ्रमण करना है। उपर्युक्त वाक्यों में वसन्तादि तीनों ऋतुओं को देवऋतु तथा शरदादि तीन ऋतुओं को पितृ वा असुरों की ऋतु कहा गया है। अर्थात् ये उत्तर तथा दक्षिण गोल हैं। प्रचलित परिभाषा में उत्तरायण तथा दक्षिणायन में देवासुरों का क्रमशः दिन होता है। अतः प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में उत्तरायण तथा दक्षिणायन की परिभाषा वास्तविक एवं विज्ञानसम्मत ही थी, परन्तु परवर्ती काल में प्रचलित परिभाषा का सूत्रपात हो गया। श्रीमद्भागवत में उपर्युक्त **मकरादिषु राशिषु** पदों से निःसन्देह प्रचलित परिभाषा की ही पुष्टि की गयी है। श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने प्रमादवश श्रीमद्भागवत की परिभाषा को शतपथ ब्राह्मण की परिभाषा के समान ही माना है (द्रष्टव्य—भारतीय ज्योतिष, हिन्दी संस्क० सन् १९६३ ई०, पृ० ४७)

दिनमान एवं रात्रिमान

दिन एवं रात्रि के मान के विषय में श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि सूर्य जब मेष तथा तुला में रहता है तब दिनमान एवं रात्रिमान समान होते हैं। वृषादि पाँच राशियों में सूर्य रहने पर दिन बड़े होते हैं और प्रति मास एक घटी के क्रम से रात्रि घटती है—

यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाहोरात्राणि समानानि भवन्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदा वृषादिषु पंचसु च राशिषु चरति तदाह्न्येव वर्धन्ते ह्रसति च रात्रि रात्र्येकैका घटिका रात्रिषु । यदा वृश्चिकादिषु पञ्चसु वर्तते तदाहोरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ।। (श्री० भा० ५।२१।४,५)

उपर्युक्त सन्दर्भ में जिस स्थिति का वर्णन है वह वस्तुतः सायन मेषादि एवं सायन तुलादि में ही घटित होती है। अर्थात् तभी दिनरात्रि समान होते हैं। वृषादि पाँच राशियों के विपरीत वृश्चिकादि पाँच राशियों में दिन छोटे होते हैं तथा रात्रियाँ बड़ी होती हैं।

दक्षिणायन के आरम्भपर्यन्त दिन बढ़ते हैं तथा उत्तरायण के आरंभपर्यन्त रात्रि बढ़ती है—**यावद् दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यावदुदगयनं रात्रयः** (श्री० भा० ५।२१।६)। यहाँ यह कथन स्पष्ट है, परन्तु इससे पूर्व जो वचन उद्धृत किया गया है उसमें कहा गया है कि वृषादि पाँच राशियों में दिनमान बढ़ता है तथा रात्रिमान घटता है। वस्तुतः मिथुनान्त तक ही दिनमान बढ़ता है तथा रात्रिमान घटता है। इसी प्रकार वृश्चिक से पाँच राशियों में नहीं, बल्कि धनुरन्त तक ही रात्रिमान बढ़ता है तथा दिनमान घटता है। श्रीमद्भागवत का कथन तब ठीक हो सकता था जब उत्तरायणारंभ मेषादि से होता, परन्तु यह श्रीमद्भागवतकार को अभिमत नहीं था, क्योंकि उसने मेष और तुला में दिनरात्रि को समान होने का उल्लेख कर स्पष्टतः यह निर्देश कर दिया है कि मेष और तुला राशियाँ विषुवत् के पास ही हैं। अतः श्रीमद्भागवत के वाक्य की अर्थसङ्गति के लिए वर्धन्ते पद का अर्थ '३० घटी से बड़े होते हैं' तथा ह्रसति का अर्थ '३० घटी से छोटा होता है' करना चाहिए।

मेरु पर्वत पर दिन-रात्रि

श्रीमद्भागवत में मेरु पर्वत की परिधि का मान नव करोड़ इक्यावन लाख योजन बतलाया गया है। मेरु के पूर्व में इन्द्र की देवधानी, दक्षिण में यम की संयमनी, पश्चिम में वरुण की निम्लोचनी और उत्तर में चन्द्रमा की विभावरी नाम की पुरियाँ हैं। इन पुरियों में सूर्य क्रमशः उदय, मध्याह्न, सायं और अर्धरात्रि करते हैं। वहाँ पर सदा मध्याह्न कालिक रवि ही रहते हैं। इसका कारण यह है कि मेरु पर्वत के ठीक ऊपर आकाश में ध्रुव है। अतः जिस किसी भी समय रवि पर किया हुआ ध्रुवप्रोत वृत्त ध्रुव-स्थान एवं खमध्य में जाने से याम्योत्तर वृत्त ही होता है। सूर्य जिस स्थान पर उदित होते हैं उसके ठीक दूसरी दिशा में अस्त होते हैं। इसी प्रकार जहाँ पर सूर्य मध्याह्न के याम्योत्तर में रहते हैं उसके ठीक दूसरी दिशा में अर्धरात्रि रहने से लोग सोये रहते हैं। इन्द्र की पुरी से यम की पुरी में आने तक सूर्य को पन्द्रह घटी समय लगता है। इसी तरह और पुरियों में भी सूर्य भ्रमण करते हैं। अन्य सोमादि ग्रह नक्षत्रों के साथ ज्योतिश्चक्र में उदय होते हैं तथा नक्षत्रों के साथ ही अस्त होते हैं। सूर्य एक मुहूर्त में चौंतीस लाख आठ सौ योजन का अतिक्रमण अपने वेदमय रथ से करते हैं। (श्री० भा० ५।२१।७-१२)

ऊपर जहाँ पर सूर्य के भ्रमण एवं मेरु की विस्तृति योजन संख्या में बतलायी गयी हैं वहाँ केवल उनकी संख्या आधुनिक गणना से ठीक नहीं जँचती। और सब उदय-अस्त की व्यवस्था कल्पनानुसार ठीक ही वर्णित है।

अयन, ऋतु, मास और पक्ष

श्रीमद्भागवत यह स्पष्ट करता है कि एक ही भगवान् सूर्य अपने को द्वादश विभाग कर लेते हैं। वे ही द्वादश आदित्य हैं और प्रति मास एक एक आदित्य के रूप में उदित होते हैं। इसका सयुक्ति प्रतिपादन आगे द्वादशादित्यों के प्रसंग में किया जायगा। वे ही द्वादश आदित्य वसन्त आदि छः ऋतुओं में ऋतुगुण पैदा करते हैं। अन्तरिक्ष में आकाशगोल के काल चक्र में स्थित सूर्य संवत्सर के द्वादश अवयव (विभाग) रूप राशिसंज्ञक द्वादश मासों का भोग करते हैं। अर्थात् एक राशि का भोगकाल एक मास कहलाता है। एक मास में दो पक्ष (शुक्ल और कृष्ण) होते हैं। यहाँ चान्द्रमास एवं सौरमास में अभेदोपचार माना गया है। शुक्ल-कृष्ण पक्ष चान्द्रमास के ही होते हैं, सौरमास के नहीं। मास शब्द का अर्थ भी तो चान्द्र ही होता है। एक चान्द्रमास पितरों के दिन-रात के समान होता है। यहाँ पर प्रथम **दिवा** शब्द का फिर **नक्त** शब्द प्रयोग है। कृष्णपक्ष में पितरों का दिन होता है तथा शुक्लपक्ष में उनकी रात्रि होती है। अतः यहाँ संभवतः कृष्णादि मास की ओर संकेत है। उत्तरी भारत में, जहाँ श्रीमद्भागवत की रचना हुई है, कृष्णादि मास ही प्रचलित है।

सौरमान से सवा दो नक्षत्रों का एक मास बतलाया है—'मास..... .....संवत्सरावयवमुपदिशन्ति।' संवत्सर के छहों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाग, अर्थात् सूर्य के आकाशचक्र के छठे विभाग (दो राशि) के भोग करने को ऋतु कहते हैं। सूर्य जितने काल में आकाशचक्र के आधे भाग का भ्रमण करते हैं उसे अयन कहते हैं। (श्री० भा० ५।२२।३-६)

संवत्सर

यह, नक्षत्र एवं तारों के मण्डल में स्थित सूर्य जितने काल में परमाणु से लेकर पूर्ण आकाशचक्र का भ्रमण कर लेते हैं वही संवत्सर (वर्ष) होता है। इसे ही संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर कहते हैं (श्री० भा० ३।११।१४)। श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध (५।२२।७) में भी पुनः इसी बात का उल्लेख किया गया है। वेदाङ्गज्योतिष में पंचवर्षीय युग का विशद विवेचन उपलब्ध होता है। उसके आरम्भ में पँचवर्षीय युग के प्रतिपादन का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया गया है—

पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्क्षयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः॥
प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः॥

(ऋग्वेद ज्योतिष, श्लो० १-२)

वेदाङ्गज्योतिष में पंचवर्षीय युग का यद्यपि विशद विवेचन हुआ है फिर भी उसमें उनके नामों का उल्लेख कहीं नहीं है। वेदाङ्गज्योतिष की सोमाकर कृत टीका में उद्धृत गर्ग के वचनों में पाँचों वर्षों के नाम क्रमशः संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर हैं। इन वर्षों के स्वामी क्रमशः अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा और मृत्यु बतलाये गये हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में इनके स्वामी क्रमशः अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा और वायु हैं। वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में क्रमशः अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा, प्रजापति और रुद्र को इनका स्वामी माना है (द्रष्टव्य-दीक्षित का भारतीय ज्योतिष, १९६३ ई० का हिन्दी-संस्करण पृ० ९८)।

सूर्य का संवत्सर रूप एक चक्र का रथ

श्रीमद्भागवत में संवत्सर रूप एक चक्रवाले सूर्य के रथ की कल्पना कई स्थानों में है। एक स्थान (५।२०।३०) पर कहा गया है कि मेरु पर्वत के चारों ओर घूमनेवाले सूर्य-रथ का संवत्सररूप पहिया देवताओं के दिन और रात अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन के क्रम से सदा चला करता है।

सूर्य के रथचक्र का कई स्थानों में कालचक्र के नाम से भी वर्णन हुआ है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक उल्लेखनीय है—

न तेऽजराक्षभ्रमिरायुरेषां
त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व।
षण्नेम्यनन्तच्छदि यत्त्रिणाभि
करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत्॥

(श्री० भा० ३।२१।१८)

अर्थात्—यह कालचक्र बड़ा प्रबल है। ब्रह्म ही इसके घूमने की धुरी है। अधिक मास सहित तेरह मास ही अरे हैं। तीन सौ साठ दिन जोड़ हैं। छः ऋतुएँ नेमि (हाल) हैं। अनन्त क्षण, पल आदि इसमें पत्राकार धाराएँ (अरे) हैं तथा तीन (ग्रीष्म, वर्षा और शीत) चातुर्मास्य इसके आधारभूत नाभि हैं। यह अत्यन्त वेगवान् संवत्सर रूप कालचक्र जगत् की आयु का छेदन करता हुआ घूमता रहता है। परन्तु यह भगवद्भक्त की आयु का छेदन नहीं कर सकता।

चतुर्थ स्कन्ध में इस कालचक्र को एक अन्य रूपक में बाँधा गया है। वहाँ पर पुरञ्जन की कथा पूर्णतः कालचक्र के रूपक पर ही आधारित है। उस रूपक-कथा के सम्बन्ध में कहा गया है कि जिसके द्वारा काल का ज्ञान होता है वह संवत्सर ही चण्डवेग नामक गन्धर्व-पति है। उसके अधीन जो तीन सौ साठ गन्धर्व-गन्धर्वियाँ हैं वे रात्रि हैं। ये बारीबारी से चक्कर लगाते हुए मनुष्य की आयु हरते हैं (श्री० भा० ४।२७।१३-१४ तथा २९।२१)।

एकादश स्कन्ध में भी इसी तरह की एक रूपक-कल्पना का उल्लेख निम्नलिखित श्लोक में उपलब्ध होता है—

सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः
कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम्॥

(श्री० भा० ११।६।१५)

कालचक्र के उपर्युक्त तेरह अरों की जगह कहीं-कहीं बारह अरों की ही कल्पना है। ऐसे स्थलों में अधिमास का ग्रहण नहीं किया गया प्रतीत होता।

एक अन्य स्थान (श्री० भा० ५।२१।१३) में कहा गया है कि सूर्य के रथ का एक चक्र है जिसमें द्वादश अरे (द्वादश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मासरूप), छः नेमि अर्थात् हाल (छः ऋतु रूप) और तीन नाभियाँ (ग्रीष्म, वर्षा और शीत के चातुर्मास्य रूप) हैं। उसे संवत्सरात्मक चक्र मानते हैं—

यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति।

सूर्य के एकचक्री रथ की यह कल्पना अत्यन्त प्राचीन वैदिक संहिता से ली गयी है। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद के निम्नलिखित मन्त्र द्रष्टव्य हैं—

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थुः॥

(ऋ० सं० १।१६४।११)

अर्थात्—आदित्य का सत्य का बारह अरों वाला चक्र द्युलोक के चारों ओर सतत भ्रमण करते हुए भी नष्ट नहीं होता है। अग्ने, इस चक्र पर पुत्रों के ७२० जोड़े (३६० दिन और ३६० रात) आरूढ़ रहते हैं।

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः॥

(ऋ० सं० १।१६४।४८)

अर्थात्—बारह परिधि, एक चक्र और तीन नाभि इन्हें कौन जानता है? उस चक्र में शंकु की तरह ३६० चंचल अरे लगे हैं।

इस तरह का रविरथ चक्र है। उसके अक्ष का एक भाग मेरुपर्वत के शिखर पर है और दूसरा मानसोत्तर गिरि पर। इन्हीं दोनों पर्वतों में लगा हुआ रविरथ चक्र तेल निकालने के यन्त्र अर्थात् कोल्हू के चक्र की तरह घूमता रहता है। (श्री० भा० ५।२१।१३)।

सूर्य-रथ के बड़े अक्ष में लगे हुए मूल वाला दूसरा अक्ष है। उसका मान बड़े अक्ष के चतुर्थांश के समान है। उस रथ का ऊपरी भाग ध्रुव पर लगा हुआ है। जैसे तैलयन्त्र का अक्ष लगा होता है वैसे ही यह अक्ष भी लगा हुआ है (श्री० भा० ५।२१।१४)। रथ का नीड (बैठने का स्थान) ३६ लाख योजन विस्तृत है। इसके चतुर्थांश का अर्थात् नव लाख योजन विस्तृत रथ का जूआ है, जिसमें गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति त्रिष्टुप् और जगती इन सात वैदिक छन्दों के नामवाले सात घोड़े अरुण नामक सारथि द्वारा जुते हुए आदित्यदेव को खींचते रहते हैं (श्री० भा० ५।२१।१५)।

ऋग्वेद के दो मन्त्रों (ऋ० सं० १।१६४।१-२) की व्याख्या करते हुए यास्काचार्य (सातवीं शती ई० पूर्व) ने सूर्य के रथ में जुते सात घोड़ों की कल्पना को सूर्य की रश्मि में विद्यमान सात वर्णों (रंगों) का रूपक बतलाया है (निरुक्त ४।२६)। अतः श्रीमद्भागवत की उपर्युक्त कल्पना का आधार वैदिक है।

यद्यपि सूर्य की रश्मि में सात भेदों के रहने का उल्लेख इतने प्राचीन समय (सातवीं शती ई० पूर्व) में मिलता है फिर भी पाश्चात्य विद्वान् सूर्य की रश्मि में इन सात भेदों की खोज करने का श्रेय सत्रहवीं शती के पाश्चात्य विद्वान् न्यूटन को देते हैं। यह भी एक विडम्बना ही है। उपर्युक्त वैदिक प्रमाण के आधार पर इसका श्रेय वैदिक ऋषियों को ही दिया जाना उचित है।

श्रीमद्भागवत आगे उल्लेख करता है कि भगवान् सूर्य भूमण्डल के नौ करोड़ एक्यावन लाख योजन लंबे मण्डलाकार घेरे में प्रत्येक क्षण में दो हजार दो योजन की दूरी पार कर लेते हैं। (श्री० भा० ५।२१।१९)।

सूर्य के बिम्ब के विषय में कहा गया है कि इसका विस्तार (व्यास) अयुत (दश हजार) योजन है (श्री० भा० ५।२४।२)। आधुनिक गणना से यह संख्या बहुत अधिक है। भास्कराचार्य ने रवि का बिम्ब-व्यास ६५२२ योजन माना है (सि० शि० गणिताध्याय, चन्द्रग्रहणाधिकार श्लो० ५)।

एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि बादल सूर्य से ही उत्पन्न और प्रकाशित होते हैं (श्री० भा० १२।४।३२)।

द्वादशादित्य

श्रीमद्भागवत में द्वादशादित्य की कल्पना का उल्लेख ऊपर हो चुका है। द्वादशादित्य की कल्पना अन्य पुराणों में भी है। श्रीमद्भागवत में चैत्रादि द्वादश मासों के नाम क्रमशः मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभ, नभस्य, इष, ऊर्ज, सह, पुष्य, तप और तपस्य बतलाये गये हैं। तैत्तिरीय संहिता (१।४।१४) में भी मासों के ये ही नाम मिलते हैं। वहाँ पर पुष्य का नाम सहस्य रखा गया है, जो मासों के अन्य नामों के सादृश्य के आधार पर तर्कसंगत ही है। श्रीमद्भागवत में पुष्य नाम नक्षत्रमूलक होने से वह ठीक ही है, परन्तु ऋतुसम्बन्धी अन्य नामों से यहाँ उक्त मेल नहीं बैठता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वादशादित्य की कल्पना से द्वादश आदित्य नहीं समझना चाहिए। आदित्य तो एक ही है, परंच भूगति के कारण द्वादश मासों में सूर्य के बिम्बगोल के द्वादश विभागों का पृथ्वी के विभिन्न भागों से सीधा सम्बन्ध रहने से सूर्य-बिम्ब के द्वादश विभागों को द्वादशादित्य मान लिया गया है। इस बात को श्रीमद्भागवत भी स्पष्ट करता है—

एक एवहि लोकानां सूर्य आत्माऽऽदि कृद्धरिः।
सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः॥ (श्री०भा० १२।११।३०)

भिन्न-भिन्न पुराणों में तथा श्रीमद्भागवत के ही भिन्न-भिन्न स्थलों में द्वादशादित्यों के भिन्न-भिन्न या कुछ हेर-फेर के साथ नाम बतलाये गये हैं। श्रीमद्भागवत (६।६।३९) में द्वादशादित्यों के नाम क्रमशः विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र और उरुक्रम बतलाये गये हैं। दूसरे स्थान (१२।११।३३--४४) पर मधु आदि मासों में क्रमशः धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा और विष्णु नामक आदित्यों का उल्लेख है।

श्रीमद्भागवत आदित्य (सूर्य) को एक भी बतलाता है तथा द्वादश भी। यह ऊपर से थोड़ा शंकास्पद मालूम पड़ता है। परंच सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की परिक्रमा करने की बात ध्यान में रखने पर यह रहस्य-कथन उचित एवं वैज्ञानिक प्रतीत होता है। पृथ्वी बारह मासों में सूर्य की एक परिक्रमा कर लेती है। अतः स्पष्ट है कि बारह मासों में सूर्य-बिम्ब के बारह विभागों में प्रतिमास एक-एक विभाग के सामने पृथ्वी रहती है और सूर्यबिम्ब के उसी विभाग से उसे पूर्ण प्रकाश मिलने से सीधा सम्बन्ध रहता है। अतः यह प्रतीत होता है कि इसी रहस्य को ध्यान में रखते हुए एक ही सूर्य को द्वादश रूप में कल्पित किया गया है।[1]

---

१. खगोलवेत्ताओं का कहना है कि हमारे सूर्य के अतिरिक्त कई सूर्य हैं और एक महासूर्य भी है, जिसकी परिक्रमा अनेक सौर मंडल किया करते हैं। वाल्मीकि ने 'आदित्य हृदय' में भी द्वादश सूर्यों की बात कही है। हमारे खगोलवेत्ताओं के अनुसार द्वादश सूर्य हैं। अतएव हमारे मत से विद्वान् लेखक का उपर्युक्त स्पष्टीकरण क्लिष्ट कल्पना मालूम होती है। —सम्पादक सरस्वती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलबरूनी तथा संस्कृति (२)

मूल लेखक—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

अनुवादक—श्री वाहिद काज़मी

भारत के विषय में अलबरूनी की स्वयं हस्तलिखित पुस्तक की (जिसे उसने सन् १०३१ ई० में पूर्ण किया) प्रतिलिपि सन् ११६९ ई० में हुई। प्रतिलिपिकर्त्ता भी संस्कृत से अनिभिज्ञ था। अलबरूनी ने जिन शब्दों को प्राचीन विधि के अनुसार नुक़्ते से रहित अक्षरों में लिखा है, उन्हें प्रतिलिपिकर्त्ता ने आधुनिक अरबी तथा फ़ारसी लिपि के अनुसार नुक़्तेवाले अक्षरों से लिखने का प्रयास किया है। इसी कारण स्वर बदल गये हैं और बहुधा शब्द अशुद्ध तथा अर्थहीन हो गये हैं। उदाहरणार्थ, मूल रूप से एक ही आकृतिवाले अक्षर के नीचे एक नुक़्ता लगाने से 'बे' (ब), दो नुक़्ते ऊपर लगाने से 'ते' (त) और तीन नुक़्ते नीचे लगाने से 'पे' (प) बन जाता है। इसी तरह एक और अक्षर पर नुक़्ता न होने से 'हे' (ह), एक नुक़्ता लगाने से 'ख़े' (ख) तथा मध्य में एक नुक़्ता देने से 'जीम' (ज) और तीनों ही नुक़्तों से 'चे' (च) का उच्चारण होता है। इन्हीं नुक़्तों के द्वारा 'दाल' (द) 'ज़ाल' (ज़) तथा 'सीन'(स) एवं 'शीन' (श, ष) का अन्तर पैदा हो जाता है। अलबरूनी के समय में नुक़्ता का उपयोग नहीं होता था। अतएव किसी विदेशी भाषा को पढ़ना अत्यन्त दुष्कर था। उदाहरणार्थ, एक के बाद एक अर्थात् क्रमशः प्रयुक्त 'हे-बे-शीन' इन तीन अक्षरों को 'हब्श' भी पढ़ा जा सकता है और 'जश्न' भी। जहाँ तक सम्भव हुआ है अलबरूनी की इस पुस्तक में नुक़्तों तथा अन्य लक्षणों द्वारा संस्कृत शब्दों को ठीक कर दिया गया है, किन्तु शायद भारतीय भाषा की कुछ ध्वनियों—जैसे, प, च, ग आदि—के सम्बन्ध में सतर्कता नहीं बरती गयी और भारतीय भाषा के महाप्राण वर्ण ख, घ, थ, ध आदि के विषय में भी असावधानी बरती गयी है। अलबरूनी ने साधारणतः संस्कृत भाषा की 'ध' ध्वनि के स्थान पर अरबी के 'दाल' का प्रयोग किया है, यद्यपि इस अरबी अक्षर के लिए अंग्रेजी में This Them Them Both इत्यादि के th के समान अथवा dh की भाँति ध का ही उच्चारण है। भारतीय स्वरों को शुद्ध रूप से अरबी वर्णमाला में किस प्रकार बोला जाता है यह अलबरूनी को ज्ञात न था। उन्होंने ट तथा ड के लिए त तथा द का प्रयोग किया है और जहाँ 'दाल' का उच्चारण 'ड़े' (ड़) की भाँति है वहाँ 'रे' (र) का प्रयोग किया है (अर्थात् ड़ के बजाय र)। जैसे 'कोड़ो' Krb, 'वाड़ी' b'yry आदि; किन्तु वे बीच के ण (अरबी में 'नून') के विषय में विशेष सतर्क थे। इसका कारण यह है कि इस 'ण' का स्वर अब भी समूचे पंजाब तथा सिंध में प्रचलित है तथा ईरानी परिवार की भाषा पश्तो में भी इसका प्रयोग होता है। कभी-कभी अरबी वर्णमाला में इसे प्रकट करने के लिए अलबरूनी ने AN+R या R+N लिखा जैसे 'पानी' को P'nen (एक दो स्थानों पर गलती से P'nat भी लिखा गया है) अथवा 'वणिज' या 'पणिज' के लिए brnj इत्यादि। संस्कृत के 'न' के बदले उन्होंने 'ण' ही लिखा है। उदाहरणार्थ, 'भानु' या 'भानव' को bh'n या bhuu, संस्कृत उच्चारण के दीर्घ या ह्रस्व स्वरों का अत्यन्त असावधानी से प्रयोग किया गया है तथा बहुधा ह्रस्व स्वरों को प्रकट नहीं किया गया है। जैसे 'बारु' को b'r लिख दिया गया है।

अलबरूनी ने अपनी पुस्तकों या अनुवादों में साधारणतः जिस उच्चारण शैली का अनुकरण किया है उसके विषय में कुछ बातें कही जा सकती हैं। उन्होंने संस्कृत के 'व' के लिए b, व b ब b लिखा है, w (व) का प्रयोग नहीं किया तथा कहीं-कहीं 'व' का लक्षण 'वाव' या केवल 'व' के लिए w (वाव) लिख दिया है। प्रायः अनेक स्थानों पर 'व' की पहचान अरबी में नहीं है और इससे सिद्ध होता है कि इसके उच्चारण के लिए उन्होंने प्राकृत या भाषा का प्रयोग किया है। अलबरूनी की पुस्तकों में 'ट' 'उ' के समान है इन दोनों के अन्तर को प्रकट नहीं किया गया। उदाहरणार्थ, 'वलिम्बन' 'blmb, 'अभियुक्त' 'bykt, 'ढई' bbbh, संस्कृत शब्द 'सरस्वती' को दो प्रकार से, अर्थात् srst या Srstr लिखा गया है। 'वैश्वानर' को byof'nr तथा 'नंदकिशोर' को nudkysfr अथवा nrdky लिखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस जगह 'शब्र' तथा 'सब' में जो अन्तर है उसका उच्चारण ₹ से किया गया है। अर्थात्, 'श' तथा 'स' के प्रभाव से 'व' (v) f (फ़) की ध्वनि में परिवर्तित हो गया है। यह बात विचारणीय है कि अलबरूनी गंगा के काँठे में बसनेवालों की भाँति 'ब' (v, w) के लिए दीर्घ या पूर्ण स्वर वाला 'ब' (b) लिखते हैं। पता नहीं कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। कदाचित् उन्होंने पंजाब तथा सिंध की अपेक्षा गंगा के काँठे के उच्चारणों को अधिक मानक माना अथवा यह भी हो सकता है कि उन्होंने जिस ब्राह्मण से सहायता ली हो वह ऐसा ही प्रयोग करता रहा हो और अलबरूनी की दृष्टि में वही ब्राह्मण भाषा-विज्ञ था। योरपीय भाषा में 'व' (की ध्वनि, जिसे उच्चारण करते समय जीभ की नोक पहले दाँतों को स्पर्श करती है, फिर पीछे हट जाती है) के लिए मिस्र तथा अन्य स्थानों में आजकल अरबी लिपि में 'फ़' का प्रयोग किया जाता है और अलबरूनी की पुस्तकों में यह अक्षर एक या दो बार आया है। जैसे, मेवाड़ के लिए मेफ़ार।

(कदाचित् सन् ७०० ई० के पश्चात्) मध्य युग में उत्तरी भारत के बहुत बड़े प्रदेश में पश्चिमी अथवा शौरसेनी अपभ्रंश ने साहित्यिक भाषा का स्थान ले लिया था। तब संस्कृत का 'ष' सामान्य रूप से 'ख' की भाँति बोला जाने लगा। यह उच्चारण इतना प्रचलित हुआ कि बहुधा उत्तर भारत में 'ख' का प्रयोग उठ गया तथा ख का काम ष से लिया जाने लगा। शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह ने जब फ़ारसी में संस्कृत उपनिषद् का अनुवाद कराया तब 'उपनिषद' शब्द को फ़ारसी में 'उपनिखद' लिखा गया; मगर अलबरूनी ने संस्कृत के ष' के लिए भी s(सीन)का ही प्रयोग किया है तथा 'ख' के लिए अरबी लिपि के x और k; kh (ख) केवल कुछ जगह आया है। जैसे, 'शीशऐ हैयत' skht और 'शक़ऐ हैयत' के लिए Sikhahita। इस प्रकार की वर्त्तनी से ज्ञात होता है कि अलबरूनी ने 'ष' का प्राचीन उच्चारण (अर्थात् 'ख' उच्चारण में बदलने से पहले) प्रकट करने का विशेष प्रयास किया है। मध्ययुगीन उत्तर भारत में संस्कृत 'श' का स्थान प्राकृत 'स' ने ले लिया, किन्तु अलबरूनी ने संस्कृत श को अरबी 'शीन' में प्रकट किया है। यह बात स्मरण रखनी होगी कि हिन्दी, पंजाबी, हिंदकी (या हिंदकी) तथा सिंधी आदि में 'श' ने 'ख' का स्थान नहीं लिया, बल्कि प्राकृत 'स' बन गयी। गंगा के काँठे के प्राचीन आर्य भाषा का श, ष, स प्राकृत में आकर 'स' रह गया (अर्थात् 'सीन'), किन्तु पंजाबी तथा सिंधी में 'स' के स्थान पर 'ह' (छोटी 'हे') पाया जाता है। जैसे संस्कृत शब्द 'वंगश्ति' (?) या 'वंश' हिंदी में 'वंश' किंतु पंजाबी में 'विंह' (?) है। संस्कृत शब्द 'देश' हिंदी में 'देस' तथा सिंधी में 'डेहु', संस्कृत शब्द 'संतोशा' (?) मराठी में 'संवन' पंजाबी में 'लुह' और संस्कृत शब्द 'आषाढ़' हिंदी में 'असाढ़' तथा पंजाबी में 'हाड़' हो गया। संस्कृत 'पौष' हिंदी में 'पूस' या 'पौस' पंजाबी में 'पूह' है, संस्कृत शब्द 'निराश' पंजाबी में 'निराह' बन गया है।

एक ओर जब संस्कृत अक्षर व (v या w) के लिए b की ध्वनि है तो दूसरी ओर य के स्वर के लिए उन्होंने ज़े का प्रयोग किया है। यह प्रणाली उन्होंने जन सामान्य को दृष्टिगत रखते हुए अपनायी है। उदाहरणार्थ, 'यवन' या 'जवन' j' w, bn 'याज्ञवल्क्य' jiblk इत्यादि।

अलबरूनी ने संस्कृत 'ज्ञ' का उच्चारण 'ग्य' सुना था और अब भी यही उच्चारण लगभग समूचे उत्तर भारत में प्रचलित है। दक्षिण भारत में भी कई स्थानों पर यह उच्चारण फैल चुका है। उन्होंने 'यज्ञ' को 'जकम:' लिखा तथा 'याज्ञवल्क्य' को j'ublk अथवा j'aibulk दोनों तरह लिखा है। साधारणत: 'ज्ञ' के लिए उन्होंने ni लिखा है और केवल एक जगह sn अर्थात् 'ञ न' लिखा है, suh संस्कृत 'ज्ञ' है। अनेक स्थानों पर उन्होंने त (t) के बदले d (द) का प्रयोग किया है। जैसे मित्य mts, mds आदि (इसके अलावा इस अक्षर का एक और उच्चारण 'मच्छ' का भी उन्होंने प्रयोग किया है, जिसके लिए mi या me लिखा है।)

उपर्युक्त उदाहरणों से इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि अलबरूनी ने प्राचीन अरबी लिपि द्वारा संस्कृत शब्दों को लिखने का किस प्रकार प्रयास किया। कुछ छोटी-मोटी बातें भी हैं जिनका निर्णय करते समय भी भारतीय भाषाओं का उच्चारण तथा अरबी लिपि इन दोनों बातों पर दृष्टि रखकर उनकी तुलना करनी आवश्यक है। सन् १००० ई० के लगभग जिस समय नवीन भारतीय भाषाएँ उभर रही थीं तथा मध्य युग में संस्कृत ने एक स्थायी भाषा का रूप धारण कर लिया था उस समय हिन्दी आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य भाषाओं के उच्चारण पर विमर्श करने के लिए अलबरूनी की पुस्तकों से बड़ी सहायता मिलती है।

अलबरूनी की समझ में यह बात आ गयी थी कि हिन्दुओं की साहित्यिक भाषा बोलचाल की भाषा से अलग है; लोग प्राकृत, अपभ्रंश तथा भाषा में बातचीत करते हैं, किन्तु साहित्यिक तथा दार्शनिक विचारों को प्रकट करने के लिए संस्कृत ही प्रयोग की जाती है। विभिन्न प्रकार की प्राकृतों या अपभ्रंशों या नयी आर्य-भाषाओं के भेद की अलबरूनी को कोई विशेष जानकारी न थी। उन्होंने कदाचित् पश्चिम भारत तथा अफ़गानिस्तान के हिन्दुओं से संस्कृत सीखी थी और दोनों स्थानों की भाषाएँ एक ही प्रकार की थीं तथा सिंधी भाषा भी इनसे अधिक भिन्न नहीं थी। उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात तथा राजस्थान की भाषाओं के विषय में उन्हें कोई ऐसी विशेष जानकारी न थी। उस युग में शौरसेनी अपभ्रंश सम्पूर्ण आर्य-भारत में संस्कृत के साथ साथ उन्नति करते हुए विशिष्ट साहित्यिक भाषा बन चुकी थी। कहीं-कहीं अलबरूनी ने अचेतन रूप से बोल-चाल की भाषा का भी प्रयोग किया है। ऐसे शब्दों में हमें उत्तर पश्चिम सीमा क्षेत्रों का आर्य भाषा के उच्चारण तथा स्वराघात के सम्बन्ध में भी ठीक ज्ञान हो जाता है। प्राकृत 'स' की ध्वनि (शब्द के बीच या कभी-कभी प्रारंभ में भी) 'ह' में बदल जाती है। अलबरूनी द्वारा प्रयुक्त किये गये ऐसे कुछ शब्द इस प्रकार हैं—'क्रोह' (Krwh) जिसका संस्कृत रूप 'क्रोध' है। 'विवाह' byh (ब्याह) 'बेवाह' का संस्कृत 'विवाह' है। 'आहाड़ी' (ahry) संस्कृत 'आषाढ़िका' है, इत्यादि। संस्कृत की वर्ण की नासिका से निकलनेवाली अल्पप्राण की ध्वनि, ह्रस्व स्वर की ध्वनि दीर्घ ध्वनि में ध्वनि या नासिका से बदल जाती है और 'कोमल' ध्वनि देनेवाली द्वित्व वर्ण (यथा द्द, ट्ट, क्क, आदि) ह्रस्व ध्वनि में बदल जाती हैं। जैसे, (अलबरूनी की पुस्तकों से) संस्कृत 'संख्य' (sng), 'वसन्त' (bhand बहज़) 'सामन्त' (smnd सामंद)। पंजाबी शब्द 'चिनाब', प्राकृत 'चनाह', 'चन्दहाया', संस्कृत 'चन्द्रभागा' अथवा 'चुंधिभाया' (?), फ़ारसी 'आब' (पानी) से 'चिनाब' या 'चेनाब' शब्द ने जन्म लिया। सन् १००० ई० से पहले सिन्धी में महाभारत की कथा का अनुवाद हुआ तथा उत्तर पश्चिम के सीमा क्षेत्रों के शब्द 'कोंदी' (?) के अनुसार हैं। इसी से संस्कृत 'पाण्डव' प्राकृत में 'पाण्डु' तथा सिंध और उत्तर पश्चिम की भाषाओं में 'पन्न' तथा यही 'पन्न' अरबी में फन्न (fun) लिखा गया है। हम देखते हैं कि जो संस्कृत तथा प्राकृत शब्द, अलबरूनी की प्रमुख पुस्तकों में, अरबी लिपि में हैं वे भारत आर्य-उच्चारण के ऐतिहासिक उत्थान पर प्रकाश डालने के लिए अत्यन्त लाभप्रद तथा मूल्यवान हैं। आवश्यकता है कि विभिन्न स्थानों एवं भाषाओं के संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के जिन शब्दों का अरबी तथा अन्य देशीय भाषाओं में प्रयोग किया गया है उन सबको एकत्र किया जाय। शब्दों का यह भांडार प्राचीन भाषाओं के विवेचन के लिए उपयोगी हो सकता है।

हमें यह ज्ञात है कि अलबरूनी ने संस्कृत से कितनी तथा किन-किन पुस्तकों का अनुवाद किया था। ज़काओ ने इस बात पर प्रकाश डाला है, कि अलबरूनी का कारनामा 'अलतेहक़ीक़-उल-हिंद' (नामक उनकी पुस्तक) है और उन्होंने कम-से-कम तीन पुस्तकों का संस्कृत में अनुवाद किया था—

१. युक़लीद (नामक यूनानी विचारक) का गणित शास्त्र।

२. टाल्मी (Ptalmy नामक यूनानी विद्वान्) की भूगोल पर लिखी एक पुस्तक।

३. एरिस्टौलिब नामक पुस्तक, जो समुद्र में दिशा ज्ञात करने के विषय पर है।

ज़काओ ने लिखा है कि 'कदाचित् उन्होंने इन पुस्तकों को पढ़कर पंडितों को सुनाया तथा उनके अर्थ समझाये और फिर पंडितों ने जो कुछ समझा उसे संस्कृत काव्य में लेपिबद्ध कर दिया। ऐसा विदित होता है कि अरबी तथा इस्लामी ग्रन्थों का इस प्रकार संस्कृत में अनुवाद करने पर अलबरूनी के सम्बन्ध काश्मीर तथा मध्य भारत के हिन्दू पंडितों से स्थापित हुए थे, परन्तु खेद है कि उन संस्कृत अनुवादों का आज कोई भी चिह्न शेष नहीं है।

अलबरूनी संस्कृत में अनुवाद किस प्रकार करते थे इससे यह भी स्पष्ट होता है कि वह हिन्दुस्तान तथा उसकी साहित्यिक भाषा संस्कृत से केवल गहरी रुचि ही नहीं रखते थे बल्कि वे बहुत पुराने मानव मित्र भी थे और उनकी दृष्टि में प्रत्येक जाति को अपने हित के लिए स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करने का अधिकार था।

सन् १०१७ ई० में सुलतान महमूद के दरबार में अलबरूनी, अपने देश की ओर से प्रतिभू के रूप में आने को विवश हुए। वे ज्ञानवान थे। इसलिए साधारणतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका सम्मान किया जाता था, किन्तु सुल्तान महमूद की ओर से अलबरूनी को अपने ज्ञान, साहित्य-सृजन एवं अन्वेषणों के लिए कुछ विशेष सहायता न मिली, और न उन्हें प्रोत्साहित किया गया। अपने शोध कार्यों को जारी रखने के लिए उन्हें धन के अभाव से कई बार कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिसका उन्होंने उल्लेख भी किया है। हमको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि सुल्तान महमूद के दरबार में एक और ख्यातिप्राप्त व्यक्ति था, जिसे संसार फ़िरदौसी के नाम से जानता है। सुल्तान से सहायता मिलने की आशा पर उसने 'शाहनामा' जैसी महान् पुस्तक की रचना की, किन्तु अन्त में फ़िरदौसी की आशा सफल नहीं हुई और उनके हृदय को भारी आघात पहुँचा। ज्ञान एवं साहित्य से सम्बन्ध न रखने और इनके प्रति अपने प्रधानमन्त्री के विरोध के कारण सुल्तान महमूद ने अपने युग के इन दो महान् विद्वानों का सम्मान नहीं किया, जिस पर दोनों ने ही क्षोभ एवं दुःख प्रकट किया है।

सुल्तान महमूद अत्यन्त व्यस्त शासक था। वह उदार हृदय होने के साथ-साथ युद्ध-प्रिय तथा बहादुर आदमी था। इस्लाम तथा तुर्क जाति के इतिहास में वह द्वितीय वीर पुरुष है जो एक ओर इस्लाम को दूसरे देशों में फैलाना चाहता था तथा दूसरी ओर युद्ध एवं लूटमार से धन एकत्र करने का इच्छुक रहता था। इन दो बातों के आधार पर उसने भारत पर आक्रमण किया। जिस प्रकार फिरंग(फ्रांस) तथा जर्मनी के ईसाई जिहाद पर विश्वास रखते थे, ठीक उसी प्रकार (इन लोगों से एक शती पूर्व) सुल्तान महमूद भी जिहाद पर पूर्ण विश्वास रखता था। उसका विश्वास था कि स्वयं उसका तथा उसकी तुर्की सेना का अल्लाह की दृष्टि में आदर का स्थान है और वे लोग अल्लाह की ओर से लड़नेवाले सैनिक हैं। हिन्दुओं से युद्ध करके, उन्हें कत्ल करके, उनको लूटकर, उनके मन्दिरों तथा देवी-देवताओं की मूर्तियों को तोड़कर, उन्हें बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन को बाध्य करके तथा मुसलमानों की दृष्टि में उनकी प्रतिष्ठा और मर्यादा को नष्ट करके सुल्तान महमूद अपने विचारानुसार अल्लाह की इच्छा तथा उसके आदेशों को पूरा कर रहा था। अल्लाह की इसी सेवा के लिए उसने शताब्दियों की एकत्र की हुई भारतीय सम्पदा को लूटा और सहस्रों हिन्दुओं (स्त्रियों और पुरुषों) को दास बनाकर ले जाना ही अपना पुरस्कार समझा। इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उसने उस समय के आधुनिकतम युद्धास्त्रों से लैस तुर्क सैनिकों की विशाल वाहिनी लेकर भारत के छोटे-छोटे, निर्बल तथा पतनशील हिन्दू राज्यों पर आक्रमण किये और उन्हें अपने साम्राज्य में विलय कर लिया। इन छोटे-छोटे हिन्दू राज्यों के पास आवश्यकतानुसार न सेना थी, न आधुनिक युद्ध सामग्री। ये सुल्तान महमूद के सामने से तृण की भाँति उड़ गये। अलबरूनी ने इस विषय में विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि 'सुल्तान महमूद की वीरता के कार्य विचित्र थे तथा उनके सामने हिन्दुओं का अस्तित्व 'कुछ नहीं' से अधिक नहीं था और उनकी बातें बूढ़ों के मुँह की मनगढ़ंत कहानियों की भाँति थीं। तीन वर्ष तक महमूद ने भारत-भूमि पर जो आक्रमण किये, लूटमार तथा विनाश किये उनसे देश की प्रगति के मार्ग नष्ट हो गये। हिन्दू जाति तथा भारत के इतिहास में महमूद की यह लूटपाट और आक्रमण सर्वाधिक विनाशकारी थे और यह असंभव था कि हिन्दुओं के हृदयों में उस मूर्ति-भंजक के प्रति कोई आदर का भाव होता। कारण, एक राष्ट्र के रूप में महमूद ने उनको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था। प्रो० मुहम्मद हबीब (इतिहास विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय) ने भी लिखा है कि 'तुर्की ढंग' अपनाकर भारत में इस्लाम के प्रचार का प्रयास केवल विफल ही साबित न हुआ, अपितु उसका प्रतिकूल प्रभाव हुआ। वध तथा लूटमार के इन कामों के सम्बन्ध में ईरान के विख्यात सूफ़ी विचारक तथा कवि जलालुद्दीन 'रूमी' (देहान्त सन् १२७४ ई०) ने यों व्यंग्य किया है—'हिन्दू यकीं हस्ती रा तुर्काना तु नरमा कुन'।

धीरे-धीरे ईरान और तुर्क के मुसलमान यह समझ पाये कि महमूद के 'तुर्काना तरीक़े' अर्थात् लूटपाट, वध एवं विनाश से भारत के किसी वर्ग के लोगों को इस्लाम की ओर आकर्षित करना संभव नहीं है। एक और मार्ग से भी इस्लाम आगे बढ़ रहा था और वह था शान्ति का मार्ग। हिन्दू नागरिकों को (विशेषतः निम्नवर्गीय लोगों को) सहानुभूति, प्यार एवं स्नेह से इस्लाम की मूलभूत बातों को समझाया जा सकता था और साथ ही विभिन्न उपायों एवं आदर, सत्कार से उन्हें सहमत करके इस्लाम की ओर लाया जा सकता था। इस प्रणाली ने, जिसे 'सूफ़ियाना तरीक़ा' कहते हैं, इस्लाम को फैलाने में निःसन्देह बहुत बड़ा कार्य किया है। सूफ़ियों ने अपनी विनम्रतापूर्ण बातों व प्रत्येक धर्म का उचित सम्मान,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवित्र जीवन और उपासना एवं सेवा द्वारा लोगों के हृदयों को मोह लिया। मुसलमानों की राजधानी से दूर, बहुत दूर हिन्दुओं तथा जैनियों में इस्लाम के प्रचार के लिए यह सूफ़ियाना ढंग बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ। इसीलिए आगरा, देहली, लखनऊ, जौनपुर जैसे केन्द्रीय स्थानों तथा उनके निकटवर्ती क्षेत्रों में केवल १५ से २० प्रतिशत तक मुसलमान हैं और इसके विपरीत इन केन्द्रों से कोसों दूर पश्चिमी बंगाल के कुछेक ज़िलों में ८० प्रतिशत तक लोगों ने इस्लाम स्वीकार किया है।

सन् १०१४ ई० तक सुल्तान महमूद ने हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध किये और अंततः पंजाब को अपने साम्राज्य में मिला लिया। पंजाब को अपनी सल्तनत में सम्मिलित कर लेने के पश्चात् हिन्दुओं तथा उनके धर्म, जाति, सभ्यता एवं संस्कृति के इस महाशत्रु और मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट करने-वाले इस विदेशी सम्राट् सुल्तान महमूद ने वहाँकी हिन्दू प्रजा के लिए एक नया सिक्का चलाया। इस नये सिक्के पर उसने जो लेख खुदवाया वैसा लेख इतिहास में न इससे पूर्व कभी देखा गया न इसके पश्चात् किसी मुस्लिम बादशाह ने उस पर अमल किया। अरब के मुसलमान ख़लीफ़ा या बादशाहों के युग से जो इस्लामी सिक्के इस्लाम-जगत् में प्रचलित हुए उनमें (अरबी भाषा में) इन उल्लेख मिलता है—(१) कलमा, (२) सुल्तान का नाम, (३) टकसाल का नाम या स्थान तथा (४) हिजरी सन्।

भारत में सुल्तान महमूद ने जो सिक्के चलाये उनमें हम दो भाषाओं का प्रयोग पाते हैं, जो विचारणीय है। सिक्के के एक ओर उपर्युक्त विवरण अरबी में है तथा दूसरी ओर उसका पूर्ण संस्कृत अनुवाद है और यही विशेष रूप से उल्लेखनीय तथा विचारणीय है। जिस मुसलमान ने आजीवन हिन्दुओं से युद्ध किये हों और जिसके मन में हिन्दू धर्म एवं सभ्यता के लिए कोई स्थान न रहा हो उसने धर्म की पवित्रात्मा (कलमा) को इन काफ़िरों की देववाणी, अर्थात् संस्कृत भाषा में अनुवाद कराया—यह विस्मयजनक वास्तविकता है। इस सिक्के में कलमे का अनुवाद यों है—'अव्यक्तमेकं मुहम्मद अवतार नृपति महमूद।' यह शाब्दिक अनुवाद नहीं है तथा कट्टर मुस्लिम विद्वान् इस अनुवाद को नहीं स्वीकारेंगे—विशेष रूप से कलमे का दूसरा अंश। कारण यह है कि ईसाई तथा हिन्दू जिस प्रकार अवतार को मानते हैं ठीक उसी प्रकार मुसलमान नबी मुहम्मद सल्अम को अवतार स्वीकार नहीं करते। हज़रत मुहम्मद पूर्ण मानव थे और स्वयं उन्होंने बार बार इसका उल्लेख किया है। फिर भी सन् १००० ई० से ११०० ई० तक इस्लाम-जगत् में (विशेषतः ईरान, अफ़-गानिस्तान तथा तुर्किस्तान में) नबी मुहम्मद सल्अम की हैसियत लगभग एक देवता की बन गयी थी। इस्लामोदय के तीन-चार सौ वर्ष के पश्चात् कुरआन के सरल तथा सब की समझ में आ जानेवाले अर्थ एवं अभिप्राय पर आधृत धार्मिक दर्शन में विभिन्न मतामत पैदा किये जाते रहे तथा विचित्र परिवर्तन सामने आते रहे। यह सब सूफ़ियों के कारण हुआ। भारत तथा अन्य देशों में भी नबी मुहम्मद सल्अम की मानवता पर पूर्ण विश्वास पाया जाता है। मीलाद-शरीफ़ तथा इसी प्रकार के धार्मिक जलसों तथा मजलिसों में इस्लामी आस्था के विचार से इस जगत् के उदय (सृष्टि-रचना), हज़रत मुहम्मद के जन्म तथा जीवन का और अंत में प्रलय के दिन का वर्णन वाइज़ (धर्म का उपदेष्टा) अवश्य करता है। फिर वह 'नूर-ए-मुहम्मदी' के बारे में बताता है कि अल्लाह ने नूरे मुहम्मदी को युगों-युगों तक बिहिश्त में रखने के पश्चात् उसी नूर (मुहम्मदी ज्योति) से फ़रिश्ते तथा अन्य प्राणी उत्पन्न किये; अन्त में वही ज्योति इस धरती पर आयी तथा वही हज़रत बीबी आमिना के गर्भ से मुहम्मद के रूप में प्रकट हुई। ये धार्मिक कथाएँ (नबी मुहम्मद सल्अम का जन्म तथा जीवन की कहानियाँ) भक्ति-कथाओं की भाँति भारत में आ पहुँचीं तथा समस्त श्रद्धालु मुसलमान इनका सम्मान भी करते हैं। अब यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो हज़रत मुहम्मद सल्अम को अवतार कहना अनुचित नहीं है। उस ज़माने में जनता के बीच घूमनेवाले विद्वानों एवं इस्लाम के प्रचारक सूफ़ियों के लिए हिन्दुओं को इस्लाम के निकट ले आना संभव था। उनके लिए हज़रत मुहम्मद के जन्म तथा जीवन-कथा को यहाँ के नागरिकों अर्थात् हिन्दुओं के विश्वास एवं विचारों के साँचे में ढालकर उनके लिए स्वीकार्य बना लेना ही नहीं अपितु उन्हींके रंग में रँगकर प्रस्तुत करना सहज था जिससे तथ्य उनकी समझ में आ जाय।

कलमे के संस्कृत अनुवाद पर बाद को विचार करूँगा। सुल्तान तथा ज़र्ब का नाम तथा सन् एवं तारीख आदि सिक्के पर अत्यन्त सावधानी से सही संस्कृत में अनुवाद हुआ है—अयंटंकं महमूदपुरे घट्टे आहत (हिजिरिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४१८), अर्थात् यह 'टंक' अर्थात् रुपया 'महमूदपुरे' अर्थात् लाहौर की 'घट्टे' अर्थात् टकसाल में 'आहत' अर्थात् 'तैयार हुआ' है। 'नृपति' महमूद जिनायन सत्वकति (?) 'जिन' अर्थात् 'विजेता'। यानी 'हजरत मुहम्मद के आमीन हिजरी' इन शब्दों को बड़े चिंतन-मनन के पश्चात् संस्कृत किया गया है। सन् हिजरी का पूरा नाम 'हिजरीना नबवी' है जिसका संस्कृत अनुवाद 'आमीन' या 'धर्मगुरु की हिजरत' या 'निर्गमन' है। दोनों भाषाओं में लिखे हुए इन सिक्कों के (सन् ४१२ हिजरी तथा सन् ४१९ हिजरी, अर्थात् सन् १०२१ ई० तथा सन् १०२७ ई० के) कई नमूने मिलते हैं। उनमें कुछ अन्तर भी है। इन सिक्कों में एक में 'बिस्मिल्लाह' का अनुवाद 'अव्यक्त नाम' अर्थात् 'व्याख्या-रहित' अथवा 'बेमिसाल परवरदिगार' किया गया है।

कलमा 'लाइलाहइलिल्लाह मुहम्मद-र-रसूलिल्लाह' का संस्कृत अनुवाद करके सिक्के चलाना कठमुल्लाओं की दृष्टि में अन्य धर्मवालों पर मेहरबानी ही थी। उस युग में धर्म पर विश्वास करनेवाले मुसलमानों के हृदयों में अरब जाति की सभ्यता पर गर्व तथा अभिमान था। इसके अतिरिक्त वे अरबी भाषा के साथ विधर्मियों अर्थात् हिन्दुओं की भाषा को स्थान देना पसन्द नहीं करते थे। इसलिए कौतूहल होता है कि जिस सुल्तान महमूद गजनवी ने जीवन के लगभग तीस साल हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध लड़ने में व्यतीत किये हों उसके मन में कैसे इस नयी जाति के लिए दया-भाव उपजा, और उसने इस्लाम की आत्मा (कलमा) को इन हिन्दुओं तक उनकी 'देववाणी' में पहुँचाया। शाही सिक्कों पर 'काफिरों' की भाषा अंकित कराने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों उसने हिन्दुओं की जातीय सभ्यता को पोषित करने का कार्य किया। यह भी असम्भव नहीं कि उसके इस प्रयास में राजनीति छिपी रही हो। कदाचित् महमूद अपनी नयी (हिन्दू) प्रजा को शत्रु बनाकर नहीं रखना चाहता था, क्योंकि नयी रियासत (पंजाब) में हिन्दुओं की आबादी कम न थी। यह भी असम्भव नहीं कि यह पग उठाने में केवल सहानुभूति ही रही हो।

परन्तु हम यह भी स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते कि इस संस्कृत अनुवाद के पीछे हिन्दू जाति तथा सभ्यता से जो भी सहानुभूति तथा मनुष्यता का नाता रहा हो उसके लिए भी अलबरूनी ही हमारे निकट सराहनीय हैं।

जहाँ तक पता चलता है सुल्तान महमूद के दरबार में अलबरूनी जैसा और कोई विद्वान् नहीं था। हिन्दुओं की भाषा को सिक्कों पर लिखाकर जो आदर प्रदान किया गया उससे हिन्दुओं के शास्त्रों तथा सभ्यता से एक लगाव का अनुमान होता है। इस सम्बन्ध में भारत से आये हुए किसी ब्राह्मण अथवा पंडित का हाथ दिखायी नहीं देता। यद्यपि इतिहास इस बात पर सहमत है कि सुल्तान महमूद साहित्य एवं ज्ञान से बड़ी रुचि रखता था और नाना प्रकार से इसका प्रमाण भी मिल जाता है। एक बार कुछ तुर्की सैनिकों ने भारत के एक राजपूत राजा की राजधानी में कुछ मतवाले हाथियों को पकड़कर अपनी बहादुरी के कौशल दिखाये थे। उनके इस वीरतापूर्ण कार्य को हिन्दी अर्थात् उस समय की अपभ्रंश भाषा में (कविता में) लिपिबद्ध करके उसका प्रचार किया गया। उस राजपूत राजा ने बाद में उस कविता को सुल्तान महमूद की सेवा में भेजा था। सुल्तान उस भाषा (अपभ्रंश) से परिचित न था। इससे उसने कुछ पंडितों से उसका अनुवाद सुना और वह बड़ा प्रसन्न हुआ। तात्पर्य यह कि यह बात किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होती कि सिक्कों पर संस्कृत लेख किसी ब्राह्मण के परामर्श से लिखा गया।

इस सम्बन्ध में यदि किसी ने सुल्तान महमूद को परामर्श दिया होगा तो वह अलबरूनी ही हो सकते हैं और जिस प्रकार अरबी के कुछ शब्दों का संस्कृत में अनुवाद किया गया उसमें भी अलबरूनी के चिन्तन-मनन का ही स्पष्ट प्रभाव है। अरबी शब्द 'नबी' या 'रसूल' के स्थान पर संस्कृत 'जिन' का प्रयोग किया गया है। अलबरूनी ने 'किताब-उल-हिन्द' में 'जिन' शब्द का दो बार प्रयोग किया है तथा इसे 'बुद्ध' शब्द के बदले प्रयोग किया है। उनका विचार था कि गेरुआ वेश धारण किये हुए बौद्ध भिक्षुओं की संस्था को बुद्ध ने स्थापित किया है और सम्भवतः उन्होंने समझा हो कि कम प्रयुक्त शब्द 'जिन' (विजेता) अन्य किसी उपयुक्त तथा प्रयोग के योग्य शब्द के न मिलने के कारण 'नबी' अथवा 'रसूल' का स्थान हो सकता है। कलमे के प्रथम अंश में भी हमको अलबरूनी का ही हाथ दिखायी देता है। 'ला इलाहिल्लिल्लाह' का अनुवाद उन्होंने 'अव्यक्तम् एकम्' किया अर्थात् 'जो रूप है वह केवल एक है एवं स्वरूप-विहीन है।' शाब्दिक रूप से यह अनुवाद ठीक नहीं है, किन्तु अलबरूनी के विचार से अवश्य सफल तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयोगी है। अरबी शब्द 'इलाह' का अर्थ है 'कोई सम्मान्य तथा आदरणीय वस्तु, जिसे देखा या स्पर्श किया जा सकता हो,' अर्थात् 'मूर्ति के समान कोई आकृति का देवता।' इस शब्द से अरबी में किसी दैवी शक्ति का विचार उत्पन्न नहीं होता, किन्तु 'अल्लाह' शब्द एकदम इसके प्रतिकूल है। 'अल्लाह' कोई अगोचर शक्ति या देवता नहीं है और न वह कोई विशेष रूप या आकृति ही का स्वामी है। एक दैवी शक्ति या देवता जिसका कोई विशिष्ट रूप न हो एकमात्र (वादिद) वही एक शक्ति है तथा दूसरा कोई 'इलाह' यानी स्वरूपधारी देवता उस जैसा नहीं हो सकता। अतः 'एकम्' अर्थात् स्वरूपविहीन देवता ही वाहिद (एकमात्र) देवता है। यह कहने से इस्लाम-धर्म की व्याख्या हो जाती है और इससे प्रकट हो जाता है कि देवता या मूर्ति का विरोध किया गया है कि 'एकलम् सम्' तथा 'एकम् अव्यक्तम्' अर्थात् 'एकमात्र (जो केवल एक हो) ही सत्य है' एवं 'एकमात्र ही निरुपम है।' अलबरूनी ने अपनी पुस्तक में 'अव्यक्तम्' शब्द का इस प्रकार अरबी अनुवाद किया है—Sy-bl, S: wrth, bykta, अर्थात् रूप-रहित अथवा निराकार। 'अव्यक्त' शब्द के विविध अर्थों में यही मूल अर्थ है। 'अल्लाह' शब्द का 'अव्यक्त' ही शुद्ध तथा सोद्देश्य अनुवाद है—इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता; परन्तु यदि इस वास्तविकता पर बल दिया जाय कि अल्लाह का एक गुण यही है कि वह निराकार है तो फिर संस्कृत शब्द 'अव्यक्त' ही उपयुक्त तथा सार्थक रूपान्तर है।

'अल्लाह' के लिए संस्कृत शब्द का जिस किसी ने भी चयन किया हो इसमें सन्देह नहीं कि उसने इस सिलसिले में अपने चिन्तन-मनन का प्रमाण दिया है। चीन देश के प्रसिद्ध विचारक लावत-सी की पुस्तक 'लावने किंग' को संस्कृत में अनूदित करने का प्रयास (असम के राजा भाष्कर वर्मा के लिए) सन् ७०० ई० में किया गया था। चीन के विद्वानों ने चीनी-सम्राट् की इच्छा से इसकी ओर ध्यान दिया था। तब चीनी शब्द 'ताओ' (जो लावत-सी के दर्शन का आधार है) का अनुवाद करने के सम्बन्ध में युयिनत्साव जैसे संस्कृत विद्वान् तथा लावत-सी-दर्शन के दूसरे विद्वानों में काफ़ी मतभेद उत्पन्न हुए थे। आजकल भी दो भिन्न भाषाओं में धर्मों के विशिष्ट विचारों या शब्दों का अनुवाद करना कठिन हो जाता है। अलबरूनी ने संस्कृत दर्शन के शब्दों को अरबी में अनूदित करने के कार्य में बहुत बड़ी सफलता पायी थी और यह कोई सरल कार्य न था। इससे उनके ज्ञान की गहराइयों का भली प्रकार पता चलता है। यह कोई सामान्य बात नहीं है, बल्कि हर प्रकार से प्रशंसनीय है। युनानी, इस्लामी तथा हिन्दू-दर्शन की परस्पर तुलना करना भी कोई सरल कार्य नहीं है। इस विचार से अलबरूनी को 'धार्मिक दर्शन के तुलनात्मक ज्ञान' का विशेषज्ञ ठहराया जा सकता है।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए यह स्पष्ट करने में कोई कठिनाई नहीं है कि सुल्तान महमूद गजनवी के सिक्कों पर 'अल्लाह' शब्द के बदले 'अव्यक्त' का प्रयोग अलबरूनी ने ही किया था। यह भी कहा जा सकता है कि अलबरूनी के प्रयत्नों का ही फल है कि अरबी लिखावट का पूर्ण अनुवाद संस्कृत में कर दिया गया। इस प्रकार हमारे सम्मुख अलबरूनी के चरित्र का एक और पक्ष प्रकाशित हो जाता है। वह संस्कृत तथा भारत से प्रभावित तो हुए ही थे, साथ ही वह इस विचार के समर्थक भी थे कि प्रगतिशील सभ्यताओंवाले सभी मनुष्य अपनी सभ्यता एवं संस्कृति की सुरक्षा के अधिकारी हैं। विश्व की समस्त जातियों को अपनी-अपनी सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा का अधिकार मिलना चाहिये और यह अनिवार्य भी है। गौतम बुद्ध की भी यही इच्छा थी कि संसार का प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी भाषा में शिक्षा प्राप्त करे। एक विशेष भाषा को धार्मिक भाषा अथवा शासकीय भाषा निर्धारित करके सब लोगों पर उसे भारी बोझ की भाँति लाद देने की चेष्टा बहुधा देखने में आयी है, किन्तु यह विस्मयजनक बात है कि सन् ११०० ई० के प्रारम्भिक काल में पंजाब पर तुर्कों के शासन के साथ-साथ पंजाब के भारतीयों को अपनी भाषा में इस्लाम के मौलिक सन्देश से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस व्यक्ति की न्यायप्रियता से यह अधिकार मिला था वह महान् पुरुष तथा विद्वानों का शिरमौर निःसन्देह अलबरूनी है। यद्यपि उसके देहावसान को लगभग एक सहस्र वर्ष बीत गये हैं तथापि आज के सभ्य संसार के सब लोगों का कर्त्तव्य है उसका सम्मान करना। अलबरूनी समस्त मानव संसार के हितैषी थे। प्रत्येक दृष्टि से वह इसके अधिकारी हैं कि उनको सारे मनुष्यों के हित तथा कल्याण का समर्थक एवं उनकी प्रगतियों का मार्गदर्शक स्वीकार किया जाय। मनुष्यों के बौद्धिक विकास के मार्ग में उनका व्यक्तित्व उस (मंदार) के समान था, है तथा रहेगा।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Chennai. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूल से कोमल, वज्र से कठोर समीक्षक : श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी

श्री नर्मदाप्रसाद खरे

जबलपुर में, दादा पं० माखनलाल चतुर्वेदी के साथ मैंने पं० ब्रजकिशोर चतुर्वेदी के दर्शन किये थे। जब हम उनके निवास-स्थान (राबर्टसन कालेज के सामने के बँगले) पर पहुँचे तब वे पूजा पर बैठे थे। पूजा से उठने पर उन्हें दादा के आगमन की खबर मिली। वे बिना एक क्षण का विलम्ब किये, तत्काल ड्राइंग-रूम में आ गये। सहज भाव से बोले, "आपको अधिक देर तक तो प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी? मैं अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी पूजा के लिए कुछ समय निकाल ही लेता हूँ।"

"अभी कुछ देर पहले ही हम लोग आये हैं। मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आप पूजा-पाठ में आस्था रखते हैं, अन्यथा हाईकोर्ट के जज का पूजा-पाठ से क्या वास्ता?"—दादा ने कहा। इसके बाद चतुर्वेदीजी की जिज्ञासा भरी दृष्टि मुझ पर पड़ी। दादा ने मेरा परिचय दिया। अधरों पर हल्की-सी मुस्कान आयी और वे अत्यन्त ममत्व से बोले, "मैं इनकी कविताएँ पढ़ता रहता हूँ। 'वीणा' के मुख-पृष्ठ पर इनका एक बहुत प्यारा गीत प्रकाशित हुआ था।" इसके बाद मेरी ओर मुखातिब हुए—"आपका कोई कविता-संग्रह छपा है?" "जब दादा का कोई कविता-संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ, तब मेरे कविता-संग्रह का सवाल ही कहाँ उठता है?" मैंने अत्यन्त विनम्रता से उत्तर दिया।

इसके बाद वे दादा से उनकी नयी काव्य-कृतियों से लेकर 'कर्मवीर' की आर्थिक स्थिति, स्वास्थ्य और घर-परिवार की छोटी-छोटी बातें खोद-खोदकर पूछते रहे। एक छोटा भाई अपने बड़े भाई से बहुत दिनों के बाद भेंट होने पर जिस विनम्रता और आत्मीयता से सुख-दुःख की बातें पूछता है, उसी भाव से बहुत देर तक दोनों के बीच वार्तालाप होता रहा।

मैं 'वीणा' में चतुर्वेदीजी की काव्य की भाषा सम्बन्धी समीक्षात्मक लेख-माला पढ़ चुका था। उन्होंने आधुनिक

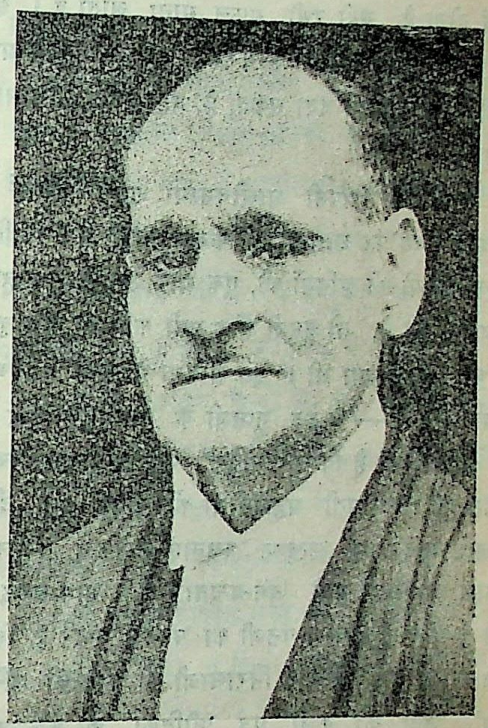

स्वर्गीय पं० ब्रजकिशोर चतुर्वेदी

कवियों की कृतियों की बिना किसी लाग-लपेट के निष्पक्ष समीक्षा की थी। अनेक स्थलों पर तो तिलमिला देनेवाली चुटीली भाषा का प्रयोग किया था। विचार भी क्रान्तदर्शी थे। लेकिन ऐसा उग्र और उद्‌भट विद्वान् इतना विनम्र भी हो सकता है—इसकी मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी।

चतुर्वेदीजी की काव्य-समीक्षा सम्बन्धी कुछ मान्यताएँ थीं। उन्हींकी कसौटी पर वे काव्य-कृति का परीक्षण करते थे—चाहे वह प्रसाद की 'कामायनी' हो अथवा दिनकर की 'रसवंती'। भाषा और भाव दोनों पर अपने मौलिक और निष्पक्ष विचार व्यक्त करने में उन्हें तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती थी। उनका स्पष्ट मत था—"कवि उस रथी के सदृश होता है जो रथ में जुते हुए घोड़ों को सम गति से चलाने का प्रयत्न करता है। यदि कोई घोड़ा तीव्र गति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से चंचल होकर भागने का प्रयत्न करता है तो लगाम खींच कर उसको रोकता है, यदि दूसरा घोड़ा मन्द पड़ता दिखायी देता है तो उसको चाबुक मारकर तेज करता है। उसको सड़क का भी विचार करना पड़ता है और गन्तव्य स्थान का भी। सभी घोड़ों को काबू में करके अपने इच्छानुसार नियमित गति से रथ को जो गन्तव्य स्थान पर ले जाने में समर्थ होता है, वही रथी सफल माना जाता है। इसी प्रकार शब्द और अर्थ का सामंजस्य करके जो कवि अपने भावों को हृदयग्राही बना सकता है, वही सफल कवि माना जाता है।"

चतुर्वेदीजी अपनी आलोचनाओं द्वारा कवियों के सुकुमार हृदय पर आघात नहीं करना चाहते थे। इसीलिए अनेक कवियों की कृतियों की, एक ओर उन्होंने मुक्त हृदय से प्रशंसा की है, तो दूसरी ओर उसी कवि की अन्य कृति की कटु आलोचना भी। इस सम्बन्ध में उनके ये विचार विचारणीय हैं—"श्रद्धेय गुप्तजी के पलासी के युद्ध की मैंने प्रशंसा की है किन्तु 'साकेत' मुझे साधारण रचना प्रतीत हुई। श्रीमती महादेवीजी की 'यामा' एवं 'दीपशिखा' सुन्दर एवं उत्कृष्ट रचनाएँ हैं किन्तु बंगाल के अकाल पर लिखी गयी 'बंग-वन्दना' में न भाव अच्छे आ पाये हैं और न भाषा। पंतजी का 'पल्लव' सुन्दर है, किन्तु 'गुंजन' मुझे नहीं जँचा। निरालाजी की 'राम की शक्ति-पूजा', 'जुही की कली' एवं 'गीतिका' के कुछ गीत बड़े सुन्दर हैं, किन्तु 'तुलसादास' ने मुझे प्रभावित नहीं किया।" इस तरह की दो टूक बातें कहने में उन्हें रंचमात्र भी संकोच नहीं हुआ। उनके अन्य आलोच्य कवियों में प्रमुख हैं—हरिऔध, माखनलाल चतुर्वेदी, गोपालशरणसिंह, सियारामशरण गुप्त, बच्चन, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, सोहनलाल द्विवेदी, शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि।

कविता की भाषा में सहज प्रवाह और स्वाभाविकता होनी चाहिए। प्रत्येक कवि की अपनी अलग भाषा और शैली होती है। यदि सभी एक ही साँचे में ढली भाषा का प्रयोग करने लगें तो फिर वैविध्य कहाँ रह जायगा। चतुर्वेदीजी ने बिना किसी राग-द्वेष और पूर्वाग्रह के शब्द-दोष, व्याकरण-दोष तथा भाषा-दोष आदि देखने का यत्न किया है। उनकी स्पष्ट मान्यता है—"प्रत्येक कवि की अपनी शैली होती है। कोई संस्कृत-गर्भित भाषा को अपनाता है तो कोई सरल भाषा को। मैंने तो केवल यह देखने का प्रयत्न किया है कि कवि ने अपनी रुचि के अनुसार जो शैली अपनायी है उसमें कविता में स्वाभाविकता रही या नहीं और भाषा में कृत्रिमता तो नहीं आ गयी, भाषा-प्रवाह ठीक रहा या नहीं और भाषा और भाव का सामंजस्य भी ठीक रहा या नहीं। न तो मैं हिन्दी को संस्कृत के ढाँचे में ढालना चाहता हूँ और न संस्कृत भाषा को तोड़-मरोड़कर हिन्दी बना डालने के पक्ष में ही हूँ।"

चतुर्वेदीजी ने अपने मत की सार्थकता और पुष्टि के लिए ऐसे अचूक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं कि पाठक के मन में वे तीर की तरह चुभ जाते हैं। उन्होंने एक स्थान पर ग्रामीण विषय पर लिखी निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

प्रलयकारी रणचण्डी-सी, नेत्र-युग्म निज मीचे,
चली भैंसिया महद् वेग से रस्सी-खूँटा खींचे।
सद्योजातः पिल्ला कूका—खौफनाक यह सौदा।
गोबर आज लिखेगा सिर पर जीवन-मृत्यु मसौदा।

इन पंक्तियों पर चतुर्वेदीजी की निम्न टिप्पणी नीर-क्षीर-विवेचना से परिपूर्ण है—"ऊपर की पंक्तियों में तुक मिल गयी है, भाषा-प्रवाह भी है, अलंकार भी आ गये हैं, व्यंजना-शक्ति भी है, परन्तु भाषा के सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया है। क्या हमारे कवि-गण इस समस्या को सुलझाकर भाषा की रक्षा करने को उद्यत होंगे?"

शब्दों के पुनरुक्ति दोष की ओर संकेत करते हुए चतुर्वेदीजी क्षुब्ध होकर लिखते हैं—"अवगुंठन शब्द को निराला, पंत, बच्चन और महादेवीजी ने इतने बार प्रयोग किया है कि प्रतीत तो यह होता है कि छायावाद का प्राण यही हो। 'यामा' में १०० बार से भी अधिक इस शब्द का प्रयोग हुआ है—कहीं कहीं प्रयोग उत्तम है, कहीं-कहीं मध्यम और कहीं-कहीं अधम, परन्तु इतना अधिक प्रयोग कानों को थका डालता है।"

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त को आड़े हाथ लेते हुए, चतुर्वेदीजी 'यशोधरा' पर चर्चा करते हुए, 'आधुनिक कविता की भाषा' के पृष्ठ ६ पर लिखते हैं—"सिद्धार्थ के मुँह से एक संस्कृत और गंवारू भाषा मिश्रित कविता कहलाकर पुस्तक का आरम्भ किया गया है। इसमें क्या भाव है, हमारी समझ में नहीं आया। सिद्धार्थ कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घूम रहा है कैसा चक्र
वह नवनीत कहाँ जाता है, रह जाता है तक्र।

इसका अंतिम पद्य है—

बाहर से क्या जोड़ूँ-जाड़ूँ
मैं अपना ही पल्ला झाड़ूँ
तब है, जब वे दाँत उखाड़ूँ
रह भव सागर नक्र।

जोड़ूँ-जाड़ूँ, पल्ला झाड़ूँ, दाँत उखाड़ूँ, तक्र, चक्र और भवसागर नक्र का एक अजीब समा जुटाया गया है।"

चतुर्वेदीजी जहाँ एक ओर इतनी तीखी भर्त्सना करते हैं, वहीं दूसरी ओर जो कविता उन्हें प्रभावित करती है, उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। 'कामायनी' पर उनके ये विचार दृष्टव्य हैं—"प्रथम सर्ग का भाषा-प्रवाह देखकर जहाँ प्रसन्नता होती है, वहाँ प्रसादजी का इतना विशद अध्ययन देखकर आश्चर्य भी होता है। प्रलय तो किसने देखी होगी? प्रलय की केवल कल्पना ही की जा सकती है। और प्रलय की कल्पना, प्राचीन ग्रन्थों में किये गये प्रलय-वर्णन का अध्ययन करके ही की जा सकती है। प्रथम सर्ग लिखने में न जाने प्रसादजी को कितना श्रम उठाना पड़ा होगा। प्रथम सर्ग के अनन्तर भाषा का सुन्दर प्रवाह हमें इडा, रहस्य और आनन्द-विषयक सर्गों में भी मिलता है।"

उक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि चतुर्वेदीजी काव्य में किसी भी प्रकार की निरंकुशता सहन नहीं कर सकते थे। उन्होंने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के चरण-चिह्नों पर चलकर आधुनिक काव्य-कृतियों की समीक्षा की थी। वे हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी और अंग्रेजी के प्रकाण्ड पण्डित थे। इसलिए सप्रमाण अपने मत की पुष्टि करते थे। वे स्वयं सुकवि भी थे। कवि-हृदय था उनका। वे भाषा अथवा भाव के चित्य प्रयोग से आहत हो उठते थे। यह सत्य है कि उन्होंने हिन्दी के बड़े से बड़े कवि की असंगतियों, त्रुटियों और कमजोरियों पर कुठाराघात किया, किन्तु उनका हृदय राग-द्वेष से मुक्त था। वे वास्तव में फूल से कोमल और वज्र से कठोर समीक्षक थे। आज हिन्दी में एक भी उनके समान निष्पक्ष समीक्षक दिखायी नहीं देता। प्रत्येक समीक्षक किसी न किसी शिविर से स्पष्ट रूप से प्रतिबद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायक नगला की तीर्थ-यात्रा

डा० रामस्वरूप आर्य

यों तो बहुत समय से पं० पद्मसिंह शर्मा के ग्राम नायक नगला जाने की इच्छा थी किन्तु अकस्मात् ही इसकी पूर्ति हुई २२ मार्च १९७४ ई० को। संयोग इस प्रकार बना। उस दिन पं० पद्मसिंह शर्मा के सुपुत्र पं० रामनाथ शर्मा बिजनौर आये हुए थे। सौभाग्यवश प्रसिद्ध हिन्दी साहित्य-सेवी पं० रमेशचन्द्र दुबे भी उस दिन यहीं थे। पं० रामनाथ शर्मा कई बार नायक नगला आने का आग्रह कर चुके थे। इधर पं० रमेशचन्द्र दुबे के साथ मैं भी पं० पद्मसिंह शर्मा स्मृति-ग्रंथ के संपादन में सहयोग कर रहा था। हम पं० पद्मसिंह शर्मा की प्रामाणिक जीवनी के लिए सामग्री-संकलन के हेतु नायक नगला जाना भी चाहते थे। स्मृति-ग्रंथ के प्रधान संपादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का भी आदेश था कि एक बार आप लोगों को नायक नगले की तीर्थ-यात्रा अवश्य करनी चाहिए। अतएव उस दिन लगभग चार बजे सायंकाल हम लोगों ने मोटर कार से नायक नगले की ओर प्रस्थान किया। नायक नगला ग्राम, बिजनौर जिले के चाँदपुर कस्बे से उत्तर की ओर लगभग चार कोस की दूरी पर स्थित है।

× × ×

कार क्षिप्रगति से आगे बढ़ रही थी। पक्की सड़क छोड़कर जब वह खेतों के बीच के मार्ग से गुजरने लगी तब मेरा मन अतीत की कल्पनाओं में खो गया। यह वही मार्ग तो था जहाँ कभी पंडितजी से मिलने के लिए हिन्दी साहित्य के अनेक महारथी जाते थे। पंडितजी के आवास काल में नायक नगला सचमुच साहित्यिक तीर्थ बन जाता था। ज्ञात हुआ कि एक बार जगद्गुरु शंकराचार्य भी नायक नगला पधारे थे।

धीरे-धीरे संध्या का अंधकार बढ़ता जा रहा था। पं० रामनाथ शर्मा ने दूर एक वृक्ष की ओर संकेत करके बताया—"वह जो पीपल का पेड़ दिखायी दे रहा है वहीं हमारा पैतृक घर है।" और कुछ मिनट बाद ही हम घर के समीप खड़े थे। यहाँ सड़क के समीप ही एक बड़ा कुआँ है, जो पं० पद्मसिंह शर्मा के पितामह ने बनवाया था। इसका पानी बहुत ठंढा है। कहते हैं इसके पीने से तिल्ली भी कट जाती है।

घर के अन्दर खाटें बिछाकर हमें उस पीपल के वृक्ष से थोड़ी ही दूर पर बिठाया गया जिसकी घनी छाया में बैठकर कभी पं० पद्मसिंह शर्मा काव्य-गोष्ठी जमाते अथवा ग्राम के बच्चों को पढ़ाया करते थे। पं० रामनाथजी ने ग्राम के कुछ लोगों को इकट्ठा कर लिया था। इनमें प्रौढावस्था के श्री वेदप्रकाशजी भी थे जो पं० पद्मसिंह शर्मा के भतीजे हैं। उन्होंने बताया कि पंडितजी इसी पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर मुझे रामचरितमानस पढ़ाते थे। उन्होंने स्मृति पर जोर डालते हुए निम्नलिखित पंक्तियाँ सुनायीं जो पंडितजी अकसर गुनगुनाया करते थे—

ये ख़ूब क्या है ये ज़ीस्त क्या है,
जहाँ की असली शरिस्त क्या है।
बड़ा मज़ा हो तमाम चेहरे,
अगर कोई बेनक़ाब कर दे।
कहो तो रोज़े हयात कह दूँ,
हक़ीक़ते क़ायनात कह दूँ।
वह बात कह दूँ जो पत्थरों के
दिलों को आब आब कर दे।
ख़िलाफ़ तक़रीर कर रहा हूँ,
फिर एक तक़सीर कर रहा हूँ,
फिर एक तदबीर कर रहा हूँ,
ख़ुदा करे कामयाब कर दे।
तेरे करम के मामले को,
तेरे करम पर ही छोड़ता हूँ।
मेरी ख़ताएँ शुमार कर ले,
मेरी सज़ा का हिसाब कर दे।

इसी बीच पं० रामनाथ शर्मा को क़ायम चाँदपुरी की चार पंक्तियाँ याद आ गयीं, जो पंडितजी ने उन्हें कंठाग्र करायी थीं—

गुज़र गया जो अहदे इसरत,
फिर उसके आने की रख न हसरत,
क़ायम इसी को समझ ग़नीमत,
जो वक़्त पेशे निगाह अब है।

पं० पद्मसिंह शर्मा क़ायम चाँदपुरी के कलाम के प्रशंसक थे। उन्होंने उन पर एक लेख भी लिखा था जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तानी एकेडेमी की शोध-पत्रिका 'हिन्दुस्तानी त्रैमासिक' में प्रकाशित हुआ था।

पं० पद्मसिंह शर्मा महाकवि पं० नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' के अभिन्न मित्र थे। एक बार पंडितजी ने शंकरजी को निम्नलिखित शेर सुनाया था—

रुख़े रौशन के आगे शमअ रख के वो कहते हैं,
इधर आता है या देखें उधर परवाना जाता है,

इस पर महाकवि शंकर ने शर्माजी को भारतीय रंग में रंगा यह दोहा सुनाया—

एक ओर तेरो वदन चंद दूसरी ओर।
जाय न कितहूँ बीच में नाचत फिरत चकोर।

इसी प्रकार 'रसलीन' के

अमी हलाहल मद भरे स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत इक बार॥

के जोड़ पर महाकवि शंकरजी ने पंडितजी को निम्नलिखित दोहा सुनाया था—

बाल युवा और वृद्ध को सुधा सुरा, विष दैन।
काढ़े कंचन कलश कुच रूप-सिंधु मथि मैन॥

पं० पद्मसिंह शर्मा अपने यहाँ आनेवाले सज्जनों को अपनी पुस्तक भेंट कर दिया करते थे। एक बार उनके एक हितैषी मित्र ने उन्हें समझाया कि पंडितजी क्या आप अपनी सभी पुस्तकें मुफ्त ही बाँट देंगे? इस पर पंडितजी ने कहा था—

बिके मुफ़्त में हम ज़माने के हाथों।
जो सोचा तो यह भी थी क़ीमत ज़ियादा।।

इसी चर्चा के दौरान पं० रामनाथ शर्मा पुरानी स्मृतियों में खो गये। उनकी स्मृति में सहसा पंडितजी के जीवन के अंतिम क्षणों की झाँकी कौंध गयी। सन् १९३२ ई० में इधर भयंकर प्लेग फैला था। पं० पद्मसिंह शर्मा उसीसे आक्रांत हो गये थे और उसीसे ७ अप्रैल १९३२ को उनका प्राणान्त हुआ था। जब उनकी दशा खराब होने लगी तब उन्होंने यह शेर कहा था—

दुनिया की मुसीबतों से जो दम घुट गया।
इसलिए महदूद से मुक़ाम को छोड़ कर क़ायम चले गये॥

उनके शरीर में खुश्की और जलन बढ़ती जा रही थी, जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियों में की थी—

भूली हुई हैं डारें[1] हिरनों की चौकड़ी सब।
जाएँ बताओ किस सूं[2] दौं[3] लग रही है बन में॥

१—पंक्तियाँ २—दिशा ३—दवाग्नि

रात्रि घिरती आ रही थी। हम लोग पं० पद्मसिंह शर्मा के उस कक्ष को देखने के लिए उत्सुक थे जहाँ बैठकर वे अध्ययन करते थे। उस दिन बिजली खराब होने के कारण हम लालटेन के मद्धिम प्रकाश में ही पंडितजी के कुछ पुराने कागज-पत्रों को उलट-पलटकर देखते रहे। पंडितजी का पुस्तालय इस समय क०मु० हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय में सुरक्षित है। फिर भी बचे-खुचे कागज-पत्रों में हमें पं० पद्मसिंह शर्मा के हाथ के लिखे कुछ पृष्ठ मिले, जो अत्यंत जर्जर अवस्था में थे। इनसे ज्ञात हुआ कि शर्माजी लेखादि लिखते समय किस प्रकार सामग्री पहले स्लिपों पर सजा लेते थे।

रात्रि के लगभग नौ बजे थे। हम लोगों को घर लौटने की जल्दी थी। इस पर पंडित रामनाथजी ने निम्नलिखित पंक्तियाँ जड़ दीं—

आने में है न आना जाने में है न जाना।
जाने की धुन समाई आए हो जिस घड़ी से॥

हम लोगों ने कार की ओर पैर बढ़ाये तब पं० रामनाथजी ने निम्नलिखित शेर सुना डाला—

वो घर आये हमारे यह ख़ुदा की क़ुदरत।
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं॥

वहाँसे चलते हुए एक बार फिर हमने अपने आराध्य पं० पद्मसिंहजी शर्मा के निवास-स्थान 'काव्य कुटीर' को हसरत भरी निगाह से देखा। उनकी बैठक पर एक छोटा सा बोर्ड लटका था, जिस पर लिखा था—नायक नागला शाखा डाकघर। उसके पास ही एक और छोटे से पट पर अंकित था—'प्रवेश निषेध'। पं० पद्मसिंह शर्मा के पौत्रश्री सतेन्द्रकुमार इस डाकघर को चलाते हैं। जो द्वार कभी सभी का स्वागत करने के लिए खुला रहता था आज उस पर 'प्रवेश निषेध' का पट्ट लगा है। समय की गति को क्या कहें!

इस समय विद्यालय के नाम पर नायक नगला में एक प्राइमरी स्कूल है। ग्रामवासी इसे जूनियर हाई स्कूल बनवाने के लिए प्रयत्नशील हैं। पं० रामनाथ शर्मा ने बताया कि राष्ट्रपति डा०राजेन्द्रप्रसादजी ने, जो पं० पद्मसिंह शर्मा को अपना साहित्यिक पथप्रदर्शक मानते थे, पंडितजी के पैतृक भवन के सुधार एवं वहाँ वाचनालय की स्थापना के लिए चार हजार रुपये की राशि स्वीकृत की थी, किन्तु वह आज तक प्राप्त न हो सकी। यह जानकर किस हिन्दी-प्रेमी को दुःख न होगा कि पंडितजी के ग्राम में उनकी स्मृति में कोई छोटा सा वाचनालय अथवा पुस्तकालय भी नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ध्वनि' के अर्थ एवं उनके उत्पत्ति-स्रोत

श्री शोभा सत्यदेव

सामान्य अर्थ में 'ध्वनि' शब्द या आवाज को कहते हैं। साहित्यशास्त्र में इसके विशेष अर्थ की कल्पना ने ध्वनि को एक विशिष्ट सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है। इस सम्प्रदाय के आदि-प्रवर्त्तक आचार्य आनन्दवर्द्धन हैं, जिन्होंने अपने विश्रुत ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' में इसके विशेष अर्थ की विवेचना करते हुए ध्वनि-सम्प्रदाय की स्थापना की और ध्वनि को काव्यात्मा के पद का अधिकारी घोषित किया। आचार्य आनन्दवर्द्धन ने बताया कि जिस प्रकार कामिनी के शरीर में आङ्गिक सौन्दर्य के अतिरिक्त लावण्य नामक विशेष सौन्दर्य प्रस्फुटित होता रहता है, जो उसके अङ्गों के सौन्दर्य से सर्वथा पृथक् होता है, उसी प्रकार काव्य में भी वाच्यार्थ से पृथक् प्रतीयमान अर्थ की सत्ता विद्यमान रहती है जो वाच्यार्थ की अपेक्षा कहीं अधिक चमत्कार-जनक होती है। वही ध्वनि है—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु॥

'ध्वनि' शब्द 'ध्वन् शब्दे' धातु से 'इ' प्रत्यय लगने पर निष्पन्न होता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति आचार्यों ने पाँच प्रकार से की है—

(१) **ध्वननं ध्वनिः**—किसी वस्तु या अर्थ की ध्वनि हुई यह कहने के लिए इसी व्युत्पत्तिवाले ध्वनि शब्द का प्रयोग होता है।

(२) **ध्वनति इति ध्वनिः**—अर्थात् ध्वनित करनेवाला (व्यंजक) ध्वनि है। यह कर्तृवाच्य कृदन्त है।

(३) **ध्वन्यते यः सः ध्वनिः**—जो ध्वनित हो वह ध्वनि है। यह कर्मवाच्य कृदन्त है। प्रतीयमान अर्थ के लिए इसका प्रयोग होता है। 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः' में इसी व्युत्पत्ति वाले ध्वनि शब्द का प्रयोग है।

(४) **ध्वन्यतेऽनेनेति ध्वनिः**—जिसके द्वारा ध्वनित किया जाय, वह ध्वनि है। यह करणवाच्य कृदन्त है। इस व्युत्पत्ति से शब्द शक्ति को ध्वनि कहते हैं।

(५) **ध्वन्यते यस्मिन् सः ध्वनि**:—जिसमें ध्वनन कार्य सम्पन्न हो वह ध्वनि है। यह अधिकरण वाच्य कृदन्त है। इस व्युत्पत्ति से उस काव्य को ध्वनि कहते हैं जिसमें व्यंग्यार्थ की मुख्यता रहती है।

पतंजलि ने महाभाष्य में ध्वनि को शब्द का पर्याय माना है—'**प्रतीत पदार्थको लोके ध्वनिः शब्दः इति उच्यते**।' अर्थात् अर्थबोधक ध्वनि ही लोक शब्द की संज्ञा पाती है।

आनन्दवर्द्धन ने 'ध्वन्यालोक' में बताया है कि ध्वनि शब्द का प्रयोग चार अर्थों में हो सकता है—'**वाच्य वाचक सम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्यो व्यंजकत्वसाम्याद् ध्वनिरित्युक्तः**।' अर्थात् (१) वाच्य एवं वाचक, (२) उससे ध्वनित अर्थ, (३) ध्वनन व्यापार तथा (४) इनकी समष्टि काव्य इन सब को ध्वनि संज्ञा दी जा सकती है।

यद्यपि ध्वनि-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य आनन्दवर्द्धन माने जाते हैं तथापि उनके इस सिद्धान्त की उत्पत्ति के स्रोत उनके पूर्ववर्ती साहित्य में विद्यमान हैं। इस शब्द की उत्पत्ति का प्रथम स्रोत व्याकरण है। वस्तुतः व्याकरण ही समस्त विद्याओं का मूल है। आनन्दवर्द्धन ने 'ध्वनि' का इतिहास बताते हुए कहा है कि विद्वान् वैयाकरणों ने ध्वनि का सम्यक् आम्लान या व्याख्यान बहुत पहले ही कर दिया था; परन्तु उनके अनुयायी आलंकारिकों ने उस सूक्ष्मेक्षित का पर्याप्त पल्लवन नहीं किया था। ध्वनि-सिद्धान्त के सूक्ष्म संकेत वैयाकरणों के स्फोट-सिद्धान्त में निहित हैं।

स्फोट-सिद्धान्त वैयाकरणों का प्रसिद्ध सिद्धान्त है। स्फोट का शाब्दिक अर्थ है—प्रकाशक। अर्थात् स्फोट ऐसा पदार्थ है जिससे अर्थ फूटता या प्रकाशित होता है—'स्फुटति अर्थोऽस्मादिति स्फोटः।' पातंजल-महाभाष्य की व्याख्या के प्रसङ्ग में प्रदीपकार कैयट ने कहा कि स्फोट-सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन वाक्यपदीय में किया गया है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में स्फोट के विषय में अपनी कल्पना प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया है कि जब वक्ता कोई शब्द उच्चारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है तब उस उच्चारण के स्थान और करण के संयोग और विभाग से जो प्रथम वर्ण प्रस्फुटित होता है, वह स्फोट है। उस स्फोट के आघात से दूसरा शब्द उत्पन्न होता है, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा····इसी क्रम से शब्दलहरी की शृंखला सी बन जाती है और श्रोता के कानों तक पहुँचनेवाली जो शब्दज शब्द-सन्तति होती है वह ध्वनि की संज्ञा से अभिहित होती है—

यः संयोगवियोगाभ्यां करणैरुपजन्यते।
सः स्फोटः शब्दजाः शब्दाः ध्वनयोन्यैरुदाहृताः॥

और अधिक स्पष्ट करने के लिए वाक्यपदीयकार बताते हैं कि जिस प्रकार घण्टे पर आघात करने से पहले शब्द उत्पन्न होता है फिर उस शब्द की झङ्कार होती है और अन्त में उसकी गूँज कुछ क्षणों तक वातावरण में गुंजायमान रहती है और शब्द लहरियों के आघात से उत्पन्न यह अनुरणन ही ध्वनि कहलाती है, उसी प्रकार वाच्यार्थ-बोध के पश्चात् उससे सम्बद्ध जो व्यंग्यार्थ-बोध होता है, उसे भी ध्वनि कहा जा सकता है।

आनन्दवर्द्धन के पूर्ववर्ती आचार्यों ने यद्यपि कहीं ध्वनि शब्द का उल्लेख नहीं किया है तथापि उनकी कृतियों में ऐसे पदों का प्रयोग प्राप्त होता है जिससे यह ज्ञात होता है कि वे भी वाच्यार्थ से पृथक् प्रतीयमान अर्थ को अधिक महत्व देते हैं। कारण, वह अधिक चमत्कारपूर्ण होता है। रसवादी आद्याचार्य भरत ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नाट्य-शास्त्र' में अनेक स्थानों पर शब्द और अर्थ द्वारा अर्थ-विशेष की व्यंजना का उल्लेख किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त भावित और भावना को विद्वानों ने व्यंग्य और व्यंजना के अर्थ में ग्रहण किया है। रस-निष्पत्ति को भी रस व्यंजना या रसाभिव्यक्ति के अर्थ में स्वीकार किया गया है।

आचार्य भामह ने 'काव्यालंकार' में अलङ्कारों के लक्षण में अनेक स्थानों पर चमत्कारिता को प्रधानता दी है। अलंकारों के विवेचन में ध्वनि-विषयक पदावली का प्रयोग भी किया है। प्रतीतितः, व्यंज्यते, गम्यते, विभाव्यते आदि ऐसे पद हैं जो व्यंजना के प्रसङ्ग में ही प्रयुक्त होते हैं। अतः विद्वानों ने स्वीकार किया है कि इस प्रकार की पदावली भामह की व्यंग्यार्थ-प्रियता की ओर संकेत करती है। कवियों को उपदेश देते हुए आचार्य भामह ने व्यंजना-चारुता को महत्त्व दिया है—

क्रमागतं श्रुतिसुखं शब्दमर्थ्यमुदीरयेत्।
अतिशेतेह्यलङ्कारमन्यं व्यञ्जन चारुता॥

अर्थात् ऐसे शब्द कहने चाहिए जो परम्परागत, श्रुतिसुखद और अर्थ-युक्त हों। व्यञ्जन की चारुता अन्य अलंकार को अतिशयित कर जाती है।

आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श' में काव्य का लक्षण बताया है—'शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली।' काव्यादर्श के व्याख्याकार श्री रंगाचार्य रेड्डी ने 'इष्टत्व' की व्याख्या 'चमत्कारपूर्वक-वर्णनाभिलाषः' और अर्थ की व्याख्या 'वाच्य लक्ष्यव्यङ्ग्यभेदेन त्रिविधः' की है। तात्पर्य यह कि दण्डी के काव्य-लक्षण में ध्वनि के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। दण्डी ने उदारता गुण के लक्षण में 'प्रतीयते' पद का प्रयोग किया है। इस 'प्रतीयते' पद में भी विद्वानों ने व्यञ्जना स्वीकार की है। डॉ० एस० के० वैलवलकर ने काव्यादर्श के अंग्रेजी अनुवाद में 'उदार' एवं 'प्रतीयते' शब्दों के अनुवाद व्यंग्यपरक किये हैं।

वामन ने अपने काव्य-सिद्धान्त को रीति और गुण के आधार पर प्रस्तुत किया है। अपने विवेचन में वे प्रसंगवश अभिधा और लक्षणा का उल्लेख करते हैं, परन्तु व्यञ्जना का कहीं नाम नहीं लेते। फिर भी उनके विवेचन में कुछ ऐसे तथ्य प्राप्त होते हैं जो व्यञ्जना के बिना उपपन्न नहीं हो सकते। जैसे, वामन के अनुसार ओजगुण में अर्थ की प्रौढ़ता अनिवार्य तत्त्व है और प्रौढ़ता का एक रूप यह भी है कि वाच्यार्थ साभिप्राय हो अर्थात् उससे अर्थान्तर का उपक्षेप होता हो। यह अर्थान्तर का उपक्षेप व्यञ्जना ही तो है। इसी प्रकार समाधि गुण की विवेचना में वामन ने अर्थ के दो भेद किये हैं—सूक्ष्म और स्फुट। सूक्ष्म के पुनः दो भेद बताये हैं—भाव्य एवं वासनीय। भाव्य नामान्तर से व्यंग्य ही प्रतीत होता है। कारण, वामन के अनुसार भाव्य अर्थ वह है जो भावात्मक संवेदनीय तत्त्व भावक द्वारा अवधानपूर्वक ग्रहण किया जाता है। वासनीय अर्थ भी 'वस्तुरूप व्यंग्य' का नामान्तर है, क्योंकि वह भी अभिधा और लक्षणा से भिन्न है।

रुद्रट ने अपने 'काव्यालङ्कार' में 'ध्वनि' शब्द का कहीं उल्लेख नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि वे ध्वनि के सैद्धान्तिक रूप से सर्वथा अपरिचित ही थे। परन्तु उनके अलंकार विवेचन में व्यंग्यार्थ की मान्यता स्वीकार होने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण मिलता है। परिसंख्या, गम्योपमा, समासोक्ति, अन्योक्ति एवं वाक्यमूलक अर्थश्लेष आदि अलंकारों में रुद्रट को अर्थान्तर प्रतीति मान्य है। रुद्रट द्वारा कल्पित 'भाव' नामक अलंकार में आचार्य मम्मट ने ध्वनि का चमत्कार देखा है और उसे अलंकार न मानकर गुणीभूत व्यंग्यकाव्य का एक भेद माना है।

उपर्युक्त पूर्ववर्ती साहित्य के संकेतों से तथा व्याकरण के स्फोटवाद से ध्वनि को ग्रहण कर आचार्य आनन्दवर्द्धन ने ध्वनि-सम्प्रदाय की स्थापना की। उनके ध्वनि-सिद्धान्त को मम्मट का प्रबल समर्थन प्राप्त हुआ। मम्मट ने अपने विवेचन में सर्वत्र ही 'ध्वनि' और 'रस' को महत्त्व दिया है। काव्य के भेद बताते हुए मम्मट व्यंग्यार्थ प्रधान काव्य को उत्तम काव्य की संज्ञा से अभिहित करते हैं—

'इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः'

अर्थात् काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ के अधिक चमत्कारजनक होने पर उत्तम काव्य होता है, जिसे काव्य-मर्मज्ञों ने ध्वनि कहा है। आचार्य विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ ने भी अपने काव्य-सिद्धान्तों में चमत्कृति को प्रधानता देकर मम्मट का अनुसरण किया। इस प्रकार संस्कृत साहित्य क्षेत्र में ध्वनि-मत का प्रचार होता रहा। हिन्दी में कुलपति मिश्र, कुमार मिश्र, श्रीपति, देव, भिखारीदास, सूरति मिश्र तथा प्रतापसाहि आदि कुछ रीतिकालीन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में मम्मट तथा विश्वनाथ के आधार पर ध्वनि-विषयक मान्यताओं का विवेचन किया।

वस्तुतः ध्वनि-सिद्धान्त एक व्यापक और पूर्ण सिद्धान्त है जिसका मूल लक्ष्य प्रतीयमान अर्थ है। काव्य-सौन्दर्य को उद्घाटित करने में प्रतीयमान अर्थ ही सबसे अधिक समर्थ है क्योंकि यह चमत्कारजनक होता है। वाच्यार्थ से भिन्न इस प्रतीयमान अर्थ को पश्चिमी विद्वानों ने अतिरिक्त अर्थ (Extra meaning) के रूप में महत्त्व दिया है। महाकवि डाइडन की उक्ति 'जितना श्रवणगोचर होता है उससे अधिक अर्थ कवि का तात्पर्य होता है' (More is meant than meets the ear) प्रकारान्तर से ध्वनि की महत्ता ही प्रतिपादित करती है।

इस प्रकार ध्वनि के उत्पत्ति-स्रोत व्याकरण तथा प्राचीन अलंकार-ग्रन्थ थे जिनसे प्रेरणा प्राप्त कर आचार्य आनन्दवर्द्धन ने इसको नवीन रूप दिया, जो सर्वथा मौलिक और स्पृहणीय था। इसीलिए परवर्ती आचार्यों ने उनका समर्थन किया और ध्वनि-सिद्धान्त सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित हो सका।

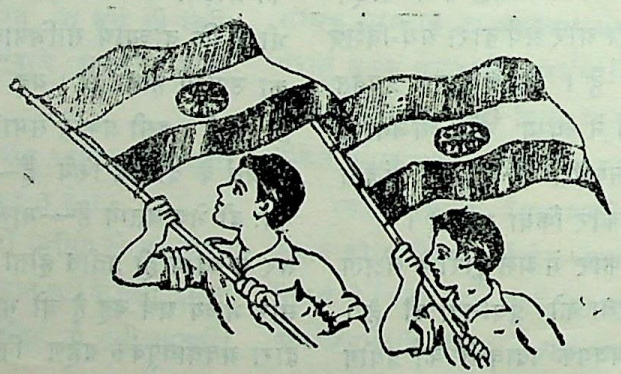

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी : मानवता के लिए अपरिहार्य

प्राध्यापक सुरेशचन्द्र झा 'किंकर', एम० ए०, स्पेशल ऑनर्स, साहित्यरत्न, डिप०-इन-एड०, बी० एल०

आज हमारे देश के प्रत्येक क्षेत्र में कितनी असमानता, कितनी अनीति, कितना असामंजस्य है, यह किसीसे छिपा नहीं है। आप किसी भी क्षेत्र को ले लीजिए—चाहे वह धार्मिक क्षेत्र हो या राजनीतिक, शिक्षा का क्षेत्र हो या सामाजिक—हर क्षेत्र में अनीति-अन्याय, जातिवाद-सम्प्रदायवाद, भाई-भतीजावाद का बाजार गरम है।

धार्मिक क्षेत्र में धर्म के नाम पर आये दिन न जाने कितनी अमानुषिक, अशोभनीय घटनाएँ हमें देखने-सुनने को मिलती हैं। धर्म की आड़ में आज भ्रष्टाचार, दुराचार, कदाचार, अनाचार, व्यभिचार, पापाचार सातवें आसमान को छू रहे हैं। धर्म का नाम ले-ले आज कितने ढोंगी-पाखण्डी बाह्यडम्बरों और ढकोसलों का सहारा लेकर धर्म-भीरु भोली जनता का टट्टी की ओट में शिकार खेल रहे हैं; धर्म की दुहाई देकर धर्मनिष्ठ जनता का दोहन और शोषण कर रहे हैं। आजकल तो भगवान् का आधुनिक अवतार-पर-अवतार हो रहा है। तथाकथित अवतारी भगवान् के पास आज बेशुमार बाग-बंगले, हेलीकोप्टर, चेली-चेले, विपुल सुख-साज, धन-भाण्डार, बैंक-बैलेंस आदि की कमी नहीं। सब भाँति इनके आसुरी व्यवहार चल रहे हैं। ये आसुरी व्यवहार वाले आज भगवान् के अवतार बन बैठे हैं। ये ही आज समाज-सुधारक, मार्ग-प्रदर्शक, उपदेशक तथा धर्म के ठेकेदार बने हुए हैं। हमारे देश के लिए यह कितना बड़ा दुर्भाग्य, कितनी बड़ी विडम्बना है कि आज जो सबसे बड़ा चरित्रहीन है वही समाज को चरित्र का पाठ पढ़ा रहा है!

राजनीति के क्षेत्र में भी यही हालत है। आज के कतिपय नेता वोट प्राप्त करने के लिए भोली-भाली जनता को झूठा आश्वासन देकर, तरह-तरह के सब्ज़-बाग दिखला-कर गुमराह कर रहे हैं। ये अधिकतर स्वयंभू नेता छल-छद्म का सहारा लेकर हमारे भाग्य-विधाता बन बैठे हैं। चुनाव के समय नीचे से लेकर चोटी तक के नेता अन्याय, अनीति, अमानुषिकता, झूठ-फरेब का सहारा लेकर चुनाव के मैदान में कूद पड़ते हैं। 'नोट लो, वोट दो' का नारा गूँजने लगता है। मोटर कार, जीप, रिज़र्व्ड बस, ट्रक, टमटम, इक्के तथा रिक्शा सभी दौड़ने लगते हैं। चुनाव की सरगर्मी के कारण धरती की धूल उड़कर इस कदर आसमान में छा जाती है कि दिन में सूरज मलिन हो जाते हैं और रात में चाँद एवं तारे फीके लगने लगते हैं। चुनाव के दरम्यान शराब-कबाब का ऐसा दौर चल पड़ता है कि अधनंगे एवं अधभूखे गरीबों के चन्द क्षणों के ठाट-बाट के सामने पुराने जमाने के बड़े-बड़े जमींदारों और नवाबों के ठाट-बाट भी ठिकाने लग जाते हैं। राष्ट्रीय खजाने का खुलकर इस तरह दुरुपयोग किया जाने लगता है कि उसे देखकर स्वयं अमानुषिकता भी लजा जाती है। यहाँ तक कि शहर के होटलों को भी कुछ दिनों के लिए रिजर्व्ड कर लिया जाता है सुरा-सुन्दरियों के लिए, ताकि बड़े-बड़े वोटों के ठेके लेनेवाले मुल्लाओं को आसानी से फँसाया जा सके। ये तथाकथित नेता रक्षक का चोला पहनकर भक्षक बन जाते हैं। इन नेताओं की राजनीति सत्य, अहिंसा और प्रेम को नहीं जानती। न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य, उचित-अनुचित में कोई अन्तर नहीं समझती। आज की इस राज-नीति का नीति-न्याय से कोई संबंध नहीं रह गया है। परन्तु राजनीति तभी राजनीति है जब वह नीतिमय हो, धर्ममय हो। नीति-धर्म से विहीन राजनीति राजनीति नहीं रह जाती, किन्तु वह वेश्या बन जाती है जिसके सामने ऊँच-नीच, भद्र-अभद्र, साधु-असाधु सब समान होते हैं। नीति-न्याय से हीन इस प्रकार की राजनीति समाज के लिए कलंक और कोढ़ है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी आज अधिकांश शैक्षणिक संस्थाओं में शिक्षण के नाम पर अशिक्षण ही दिया जा रहा है। जीवन के लिए शिक्षण न रहकर आज शिक्षण के लिए जीवन हो गया है। मानव-जीवन के सर्वांगीण विकास का नाम ही शिक्षण है। इसका नितान्त अभाव हर विद्यार्थी में देखा जाता है। ज्ञान-प्राप्ति के लिए शिक्षार्थी आज अध्ययन नहीं करते, किन्तु येन केन प्रकारेण परीक्षा पास करना ही उनका उद्देश्य रह गया है। परीक्षा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन में निरीक्षण-कार्य करनेवाले शिक्षकों को छुरा दिखाकर खुले आम नकल करना, नम्बर (मार्क्स) बढ़वाने के लिए परीक्षकों को तरह-तरह की धमकियाँ देना, आज के विद्यार्थियों का जन्मसिद्ध अधिकार हो गया है। ऐसा लगता है कि स्कूल, कालिज एवं युनिवर्सिटी आज निकम्मे, बेकार विद्यार्थियों को पैदा करने के कारखाने बन गये हैं। इन कारखानों से निकले हुए विद्यार्थी किसी भी काम के नहीं रह जाते। इनकी शिक्षा से सेवा, श्रम तथा श्रद्धा का कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। राष्ट्रीय सच्चरित्रता, सेवापरायणता, विनय-नम्रता को आज के विद्यार्थी अपना भूषण नहीं, दूषण समझ रहे हैं। 'विद्या ददाति विनयम्' की जगह आज 'विद्या ददाति अविनयम्' चरितार्थ हो रहा है। आज कल गुरुजनों के साथ विद्यार्थियों का व्यवहार बड़ा ही चिन्तनीय बनता जा रहा है। गुरु के सामने अकड़कर बोलना, अशिष्टता तथा अभद्रता से उनके साथ पेश आना, बात-बात में अपमान करना, उसके सामने ही फिल्मी गानों का राग अलापना, सिगरेट का धुआँ उड़ाना, सड़कों पर चलती हुई लड़कियों के साथ छेड़खानी करना आज साधारण बात हो गयी है। छोटी-छोटी बात पर ही स्कूल-कालिज का बहिष्कार करना, हड़ताल पर उतर जाना, पत्थरों और बोतलों का प्रहार, पुलिस के साथ हाथापाई, बस, ट्राम, ट्रेन आदि में आग लगा देना तथा राष्ट्रीय सम्पत्ति को निर्ममता-पूर्वक नष्ट कर देना आज के विद्यार्थियों का पुरुषार्थ बन गया है। आज विद्यार्थी (विद्या + अर्थी) का अर्थ 'विद्या का चाहने-वाला अर्थात् अर्जन करने वाला' नहीं किन्तु विद्यार्थी (विद्या + अर्थी) 'विद्या की अर्थी' हो गया है। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध बड़ा ही शोचनीय और दयनीय बनता जा रहा है। आज के विद्यार्थियों में राष्ट्रीय चरित्र का नितान्त अभाव दिखायी पड़ रहा है।

अब सामाजिक क्षेत्र को देखिए। आज समाज में सर्वत्र समष्टिगत भावना की जगह व्यष्टिगत भावना ही पनप रही है। समाज से भाई-चारे एवं बन्धुत्व के भाव लुप्त हो रहे हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का आज के समाज में कहीं नामोनिशान नहीं रह गया है। सेवा, परमार्थ, प्रेम, परोपकार, त्याग आज कहीं देखने-सुनने को भी नहीं मिल रहे हैं। सर्वत्र लोभ-स्वार्थ, ईर्ष्या-द्वेष, छल-कपट, जाति-पाँति, भाई-भतीजावाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद का ही नजारा दिखायी पड़ रहा है। आज समाज में बाल-विवाह, बेमेल-विवाह, दहेज-प्रथा, बलि-प्रथा का बोलबाला है। गरीबी एवं भ्रष्टाचार का कोढ़ समाज को पंगु बना रहा है। इस कोढ़ में महँगाई खाज के समान सिद्ध हो रही है। पाश्चात्य भोग-रोगवादी वैज्ञानिकता एवं भौतिकता की आँधी में हमारी भारतीय संस्कृति के पाँव लड़खड़ा रहे हैं। आज क्या गाँव और क्या शहर सभी जगह यंत्रों और मशीनों ने स्थान ले लिया है। कुटीर उद्योग-धन्धों की जगह आज बड़े-बड़े कारखाने खड़े हो रहे हैं। बेकारी और भुखमरी की समस्या दिनोंदिन जटिल होती जा रही है। समाज में अनास्था और विद्रोह के स्वर जोर पकड़ रहे हैं। शील-मर्यादा, धर्म-अध्यात्म, आस्तिकता-नैतिकता, ईमान-इंसानियत को जंग लग गयी है। आज के इस सिने-जगत् एवं परिवार-नियोजन ने भारतीय संस्कृति पर धावा बोल-कर समाज का जनाजा ही निकाल दिया है। परिवार-नियोजन एवं पाश्चात्य अंधानुकरण ने आज भारतीय संस्कृति की रीढ़ तोड़ दी है। आज अधिकांश पढ़ी-लिखी तथा सर्विस में लगी महिलाएँ वैवाहिक बन्धन को बला समझ रही हैं। माता बनने से मुकर रही हैं। स्वच्छन्द भोग-विलास के मुक्त गगन में तितली बनकर लम्बी उड़ानें भरने में कतिपय महिलाएँ गौरव और शान समझ रही हैं। वह दिन भी अब बहुत दूर नहीं जान पड़ता जब गुरुजनों तथा पण्डित-पुरोहितों को भी इन तथाकथित महिलाओं को आशीर्वाद देते समय पुरानी परिपाटी—'अष्टपुत्रा भव' छोड़नी पड़ेगी और नयी परिपाटी—'नष्टपुत्रा भव' अपनानी होगी।

इस तरह समाज के हर क्षेत्र में मानवता के नाम पर आज दानवता, पशुता, बर्बरता का ही निर्लज्ज प्रदर्शन हो रहा है। मानवता सिसकियाँ भर रही है। अतः इस संकट-मय समय में, इस चारित्रिक संक्रांतिकाल में मानवता की रक्षा के लिए आज गांधी अपरिहार्य है। प्रश्न है : गांधी क्यों ? उत्तर है : क्योंकि हमें उनकी जरूरत है।

नोबेल शान्ति पुरस्कार विजेता डा० मार्टिन लूथर किंग ने एक बार कहा था—"मेरा धार्मिक विश्वास ईसा मसीह में है और अन्याय के प्रति अहिंसक प्रतिरोध के लिए मैं गांधीजी का ऋणी हूँ। यदि मनुष्य को जिन्दा रहना है तो गांधी अपरिहार्य है।" कुछ दिन पूर्व विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग के अध्यक्ष डा० डी० एस० कोठारी ने सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की एक बैठक में कहा था कि भविष्य गांधी का है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों की बात एक ही है—गांधी की हमें जरूरत है। आज हम जिन परिस्थितियों में रह रहे हैं, उनमें विचारों, आदर्शों पर अमल नहीं किया जा रहा है। यदि मनुष्य को जिन्दा रहना है और प्रगति करनी है तो गांधीवाद से बेहतर कोई दूसरा मार्ग नहीं है। यहाँ गांधी से मेरा मतलब उस व्यक्ति से नहीं जो भारत के पोरबन्दर शहर में २ अक्तूबर, १८६९ को पैदा हुआ और ३० जनवरी १९४८ को शहीद हो गया। मेरा मतलब उस गांधी से है जिसका सारा जीवन मनुष्य-मनुष्य के बीच की खाईं पाटने एवं प्रेम का सेतु बनाने में बीता। मेरा मतलब उसकी पूरी जीवनधारा, विचार-सिद्धान्त, सेवा-कार्य और उसके जीवन-संदेश से है। उन्होंने अन्तिम दिनों में कहा था—"मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।"

आधुनिक युग के महान् वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने गांधी-जी के विषय में लिखा था—"आगे आनेवाले लोग मुश्किल से ही यह विश्वास करेंगे कि कोई ऐसा हाड़-मांस का व्यक्ति वाकई इस दुनिया में हुआ था।" इस कथन से ध्वनि यह निकलती है कि भावी जनता उन्हें देवता मानेगी। बात भी वस्तुतः वैसी ही है। सत्य, अहिंसा और प्रेम के पुजारी महावीर, गौतम बुद्ध, ईसामसीह आदि जब ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकते हैं तब सत्य, अहिंसा और प्रेम के अनन्य पुजारी गांधी भी देवत्व को प्राप्त करें तो आश्चर्य ही क्या? किसी शायर ने कितना उचित कहा है—

इज्जत मिले उसे जो निकल जाय वतन से,
सर पै चढ़े वह फूल जो निकल जाय चमन से।।"

यह बात गांधीजी के प्रति पूर्णतः चरितार्थ होती है। आज कोटि-कोटि जन-समूह गांधीजी के चरणों में नतमस्तक है। गौतम बुद्ध के उपरान्त, लगभग ढाई हजार वर्ष बाद आज जनता ने किसीको सच्ची इज्जत दी है तो एकमात्र गांधी को। हमारे देश में गौतम बुद्ध के बाद यदि कोई दूसरी महान् आत्मा पैदा हुई है तो वह एकमात्र गांधी है।

उनके जीवनीकार लुई फिशर ने लिखा है कि गांधी के पारदर्शी शीशे के फ्रेम में बड़ी घड़ी की तरह हैं। इनसे न केवल दिन के समय का ही पता नहीं चलता, बल्कि उसके भीतरी कार्य और चक्रों के चालन का भी पता चलता है।

गांधी-शताब्दी मनाने के लिए शताधिक देशों में

गांधी-शताब्दी समिति का गठन किया था। यह किसी राज्याध्यक्ष के सम्मानार्थ सरकारी श्रद्धांजलि नहीं थी, बल्कि महान् विभूति के प्रति जन-समाज की श्रद्धांजलि थी जो मानव-जाति के प्रति समर्पित थी। उनके प्रति श्रद्धांजलि थी जिन्होंने अनेक बुराइयों, दासता, उपनिवेश-वाद और साम्राज्यवाद से मानवता को मुक्ति दिलाकर मनुष्य-मनुष्य के बीच अनेक संबंधों के उच्चतर मूल्यों की स्थापना की थी।

हमें गांधी की जरूरत है। कारण, हम मानवीय उच्चतर मूल्यों को बढ़ाना चाहते हैं। हम अपने राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करना चाहते हैं। देश-बन्धुत्व के सूत्र में हम स्वयं को बाँधना चाहते हैं। हम आत्म-विकास करना चाहते हैं। गांधी जन-जीवन और व्यक्तिगत जीवन में नैतिक गुणों के प्रतीक हैं। साथ ही उनमें मानवीय समस्या जनित स्थिति में सुधार लाने की, व्यावहारिक मार्ग दिखाने की क्षमता है। हर व्यक्ति में प्रच्छन्न रूप से अदम्य क्षमता विद्यमान है। आवश्यकता है उस प्रच्छन्न क्षमता को प्रत्यक्ष करने की, उसे प्रज्वलित करने की। जो लोग मानवता को जगमगाना चाहते हैं, व्यक्ति और समुदाय का उन्नयन करना चाहते हैं उनके लिए यह आवश्यक है कि वे अपना गांधीकरण कर लें, मानवीकरण कर लें। इसके लिए सर्वप्रथम हमें संकुचितता के दायरे से निकलना होगा। अपना जीवन परमार्थमय बनाना होगा। इस परमार्थत्व के लिए हमें स्वतंत्रता, आत्म-सम्मान, उदात्त चरित्र एवं सेवा-भावना की बड़ी ही जरूरत है। दुनिया में कोई भी ऐसा काम नहीं जो हम नहीं कर सकते हों। हम भी बुद्ध और गांधी, सुभाष और सरदार-पटेल, राधाकृष्णन और राजेन्द्रप्रसाद, जवाहर लाल और लालबहादुर, विनोबा और जयप्रकाश बन सकते हैं। जन्म से ही कोई बड़ा नहीं होता। कर्म और पुरुषार्थ ही उसे बड़ा बनातेहैं। कोई महापुरुष जन्म से ही महान् नहीं थे, किन्तु जीवन को पुरुषार्थमय बनाकर, सेवा में लगाते हुए कर्ममय बनाकर वे बड़े हुए हैं। साधारण मनुष्य से असाधारण व्यक्ति बने हैं। गांधीजी ने ठीक ही कहा था—"मैं कोई ऐसा महात्मा नहीं हूँ कि दूसरा कोई मेरे जैसा बन ही नहीं सकता। मेरा जीवन कई ऐसी बातों से बना है जो अपने आप में सामली हैं और जिन्हें साधारण व्यक्ति भी कर सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसलिए जो कुछ मैंने प्राप्त किया है, वह आप लोग भी प्राप्त कर सकते हैं।"

गांधी के सामने सम्पूर्ण मानवता थी जिसके भोजन, वस्त्र, आवास और सुरक्षा की जरूरतों पर उन्होंने कहा था—"भूखे के लिए रोटी पहले, भगवान् का भजन बाद में है; पर रोटी ही सब कुछ नहीं है।" उनका कहना था कि भूख, अन्याय, अज्ञान और शोषण को पहले खत्म किया जाय। उनकी सबसे अधिक चिन्ता गरीबों और निम्न वर्गों के लिए थी। खेत-खलिहान और कल-कारखानों में काम करनेवाले गरीब किसानों-मजदूरों के लिए थी। उन्होंने सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे का भी उतना ही समर्थन किया जितने से समस्त मानव-समाज का कल्याण हो सके। उन्होंने इसे 'सर्वोदय' नाम दिया। उन्होंने वर्ग और जाति से रहित समाज की कल्पना की। वे जन्म या रक्त के कारण किसी को प्राथमिकता, उच्चता या विशेषाधिकार देने के पक्ष में नहीं थे। इतना ही नहीं वे रंग, लिंग, धर्म, भाषा और संस्कृति के आधार पर भी किसीको ऊँचा नहीं समझते थे। उन्होंने सम्पूर्ण मानव-समाज के भाई-चारे की कल्पना की थी। वे शोषण, विषमता या अन्याय रहित आर्थिक समानता के द्वारा वर्गहीन समाज बनाना चाहते थे। गांधीजी के बारे में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे अपने विचारों को अमली रूप देने की दिशा में प्रयत्नशील रहते थे। वे साधन और साध्य में अन्तर नहीं मानते थे। वे सत्य के गहन आचरण से अहिंसा तक पहुँचे थे। उनका कहना था—'जो तलवार की जीत में विश्वास रखता है, उसका अन्त तलवार से ही होता है। हिंसा से हिंसा पनपती है। हिंसा के द्वारा जो लक्ष्य प्राप्त किया जाता है वह दूषित और नाशवान् होता है। शुद्ध साधनों के जरिए ही शुद्ध लक्ष्य (साध्य) प्राप्त किया जा सकता है। साधन ही साध्य का औचित्य है। तलवार के जोर से अगर कोई आदमी कुछ ले लेता है तो उससे बड़ी दूसरी तलवार से वह छीन लिया जाता है। मारकर मरने में कोई बहादुरी नहीं है। न मारकर मरनेवाला ही सच्चा शहीद है। "अहिंसा-अस्त्र के प्रयोग में जीत तो जीत है ही, हार भी जीत सिद्ध होती है। गांधीजी का कहना था—"हिंसा की सन्तान आत्महत्या कर लेगी और नष्ट हो जायगी, यदि वह हिंसा से मुँह न मोड़ लेगी। अहिंसा की परीक्षा सदा हिंसा के बीच और दया की निर्दयता के बीच होती है, सत्य की असत्य के बीच और प्रेम की द्वेष के बीच होती है। यही शाश्वत नियम है।" प्रेम के सम्बन्ध में श्री राल्फ वाल्डो ट्राइन ने ठीक ही कहा है कि प्रेम करो तो तुम्हारे हृदय में प्रेम की सरिता बहेगी और तुम्हारी अत्यन्त आवश्यकता के समय पर तुम्हें बल मिलेगा। ईश्वर पर विश्वास रखो तो तुम्हारे वचनों और कार्यों में ऐसे हृदय विश्वास करेंगे। समाज-सुधार और प्रेम के प्रसङ्ग गांधीजी ने कहा था कि गुनहगार को भी आत्मीयता से उसमें सज्जनता उत्पन्न करने की शक्ति जिनमें है ही लोग कामयाब हो सकेंगे। जो स्वयं पवित्र और तेजस्वी हैं और साथ-साथ क्षमावान् हैं, उदार हैं और मानवोचित आत्मीयता से सबकी ओर देखने के आदी हैं, उनके द्वारा यह काम (सुधार-कार्य) होगा। काम आसान नहीं किन्तु भव्य है। ईश्वर ने हमें खाने-पीने, और मौज उड़ाने के लिए नहीं, बल्कि पसीना बहाकर रोजी-रोटी प्राप्त करने के साथ-साथ प्राणिमात्र की सेवा के लिए बनाया है। उसका जीवन धन्य है जो अच्छे कर्मों तथा प्रेम के लिए उत्सर्ग हो जाय। कहा भी गया है, 'सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति।' अर्थात् इस शरीर का नाश अवश्यंभावी है, अच्छा हो यदि श्रेष्ठ कार्य के लिए इसका विनाश हो। गांधीजी का कहना था कि जीवन महत्त्वाकांक्षा है। इसका लक्ष्य पूर्णता की साधना है। उसीको आत्म-साक्षात्कार कहते हैं। हमारी दुर्बलता और अपूर्णताओं के कारण आदर्श को नीचे नहीं उतारना चाहिए।.....जो अपना भाग्य अहिंसा से प्रेम के साथ जोड़ लेता है वह दिनोंदिन विनाश को घटाता है और उसी अनुपात में जीवन और प्रेम बढ़ाता है। जो हिंसा अर्थात् घृणा के नियम का अनुसरण है वह विनाशचक्र को विस्तृत करता है और उसी अनुपात में मृत्यु और घृणा को बढ़ाता है।

गांधी मानवता के लिए अहिंसा के माध्यम से ही की खोज, प्राप्ति और स्थापना करना चाहते थे। समाज में सारे मानवीय और भौतिक साधनों का भावी पीढ़ी को स्वस्थ विकास के साधन और अवसर के लिए करना चाहिए। यही गांधी की शान्ति है। विनाश और घृणा से भरे वातावरण या सशस्त्र-क्रान्ति सर्वथा भिन्न है।

आज अखिल विश्व का व्यक्ति भयग्रस्त है। एक दूसरे से आशंकित है। प्रत्येक राष्ट्र युद्ध, हिंसा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अशान्ति से मुक्ति चाहता है, जो सम्पूर्ण मानवता के हित के लिए है। युद्ध के प्रति गांधीजी की चिन्तन-धारा की प्रशंसा आज सम्पूर्ण संसार में है। वे एक विश्व-सरकार बनाना चाहते थे, जो नीति निर्धारित ही करती। कोई सेना न रहती और न अस्त्र का ही खतरा रहता। आज मनुष्य यह अच्छी तरह समझ गया है कि उसकी दुर्दशा का कारण उसका भाग्य नहीं, अपितु मनुष्य-मनुष्य के बीच की भयंकर असमानताएँ हैं। आज तमाम विश्व के शक्तिशाली राष्ट्र भी यह महसूस कर रहे हैं कि सम्पन्नता और सह-अस्तित्व ही ऐसा कानून है जिससे स्थायी शान्ति कायम हो सकती है। अगर अहिंसा और शान्तिपूर्ण तरीकों को न अपनाया गया तो विनाश अवश्यंभावी है, जिसे दुनिया की कोई ताकत बचा नहीं सकती। यहाँ भी गांधीजी के अहिंसा के शस्त्र का आग्रह अवश्य सार्थक होगा।

कुटीर-उद्योग और छोटे-छोटे घरेलू उद्योगों पर गांधीजी ने जोर दिया था। उन्होंने अनुभव किया था कि देश तभी सम्पन्न हो सकता है जब गाँवों की दशा सुधरे। भारत की ८५ प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है। गाँव के किसान-मजदूर ही राष्ट्र की रीढ़ हैं। जब तक हम राष्ट्र की इस रीढ़ को मजबूत नहीं बनाते तब तक हमारा विकास कतई होने का नहीं।

आर्थिक विकास और मशीनों के बारे में गांधीजी ने स्पष्ट चेतावनी दी थी। उन्होंने कहा था कि ऐसा नहीं कि हम मशीनों के गुलाम और शोषण के साधन बन जायँ। औद्योगीकरण के विषम विकास के साथ ही मनुष्य कच्चे माल की कमी की समस्या को झेल रहा है। गांधीजी ने राष्ट्र के तमाम नागरिकों को अपना कर्त्तव्य-पालन छोड़कर केवल अपने अधिकारों पर ही बल देने के खिलाफ चेतावनी दी थी। वर्तमान हिन्दू-धर्म में जो कुछ भी नैतिकता की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता उसके खिलाफ उन्होंने विद्रोह किया था। उन्होंने बलि-प्रथा, दहेज-प्रथा बेमेल-विवाह, बाल-विवाह, छुआछूत आदि का डटकर विरोध किया था। उन्होंने छुआछूत का भूत भगाकर ही दम लिया। इस तरह वे धार्मिक दृष्टि से विवेकशील थे। इस प्रकार का धर्म विश्वास और जीवन-पद्धति के रूप में होगा जिसे कोई भी व्यक्ति सत्य और नैतिकता की कसौटी पर कसने के बाद अपना सकता है। अतः गांधीजी के नये जीवनीकार श्री रोबर्ट पैने के अनुसार उनकी असली और सबसे बड़ी शक्ति नित्य जीवन के सत्य की अथक तलाश और उस सत्य को स्थापित करने के लिए दूसरे को चोट पहुँचाये बिना मरने की तत्परता में निहित है। गांधीजी का कहना था कि अगर खून बहाना ही हो तो वह खून हमारा अपना ही हो। आइए, बिना किसीकी हत्या किये हम शान्ति और सहज से मरें।

जन्म और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जन्म के हास उल्लास से भरे व्यापार में ही मृत्यु का गरल दन्त छिपा रहता है। गीता कहती है—'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।' अर्थात् जन्म लेनेवाले के लिए मृत्यु और मरनेवाले के लिए जन्म अवश्यंभावी है। जीवन की परिभाषा और कुछ भी नहीं। मृत्यु की पूर्ण तैयारी ही जीवन की सच्ची परिभाषा है। वह आत्मा महात्मा है, वह पुरुष महापुरुष है जो जीवन भर मृत्यु की अच्छी तैयारी में लगा रहता है। उसीका जीवन धन्य है जिसने मृत्यु की अच्छी तैयारी की है। गांधीजी जीवन भर अपनी मृत्यु की भव्य और सुन्दर तैयारी में ही लगे रहे।

गांधीजी सर्वप्रथम और सर्वाधिक मनुष्य थे। वे हममें ही एक थे। उनमें भी शरीर तथा मन से सम्बद्ध सारी कमजोरियाँ थीं, जो हमें बरबस लुभाती हैं। उनकी खोज अपनी कमजोरियों को इतना जानने की नहीं थी जितनी अपनी भीतरी उच्चतर शक्तियों को जानने के लिए थी। उन्होंने अपने प्रारंभिक जीवन में ही यह जान लिया था कि अगर कोई सत्य को जानना चाहता है और उसकी कीमत चुकाने की परवाह किये बिना ही उस पर चलता है तो उसे असीम संतोष प्राप्त होता है।

जब गरीब हमारे दरवाजे पर भूखे और नंगे मर रहे हैं तब हम आन्तरिक धर्मनिष्ठा में लीन नहीं हो सकते। गीता कहती है कि हम संसार में रहें और उसकी रक्षा करें। काका कालेलकर के शब्दों में, 'गांधीजी का जीवन, उनका जीवन-कार्य और उनका आत्म-बलिदान तीनों उस रत्न के समान हैं जिसके अनगिनत पहलू हैं। उनका परीक्षण तो भविष्य में आनेवाली पीढ़ियाँ ही कर सकेंगी। आज हमारा काम केवल निरीक्षण करने का है। यह काम भी इतने विविध पहलुओं से किया जा सकता है कि जिन्हें गांधीजी का थोड़ा सा सहवास प्राप्त हुआ है ऐसे सभी समकालीन व्यक्ति इसमें हाथ बँटा सकते हैं।'

[शेष पृष्ठ ४०५ पर देखिये]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्जा-संकट और समाधान

(१) ऊर्जा-संकट

श्री शुकदेवप्रसाद

आज से करोड़ों वर्ष पूर्व इस धरा पर मानव का अविर्भाव हुआ। तब वह जंगलों में रहता था, वस्त्र के नाम पर पेड़ों की छाल पहनता था एवं कच्चा मांस खाता था। समय के साथ धीरे-धीरे जंगलों में नंग-धड़ंग घूमने वाला असभ्य आदिमानव सभ्य होता गया। नयी सभ्यताओं का विकास हुआ और मानव के नित्यप्रति के उपयोग के हेतु नयी-नयी आवश्यकताएँ आती गयीं। फलस्वरूप तमाम चीजें आविष्कृत हुईं और त्वरित गति से मानव बीसवीं शती के विज्ञान युग में आ पहुँचा। लेकिन अबाध रूप से चलते समय ने एकाएक तथाकथित सभ्य दुनिया को ऐसी चुनौती दी कि उसके पाँव शिथिल हो गये। लगा कि उसका त्वरित विकास रुक सा गया और वह चुनौती थी—ऊर्जा-संकट की।

आज सारा विश्व ऊर्जा-संकट के दौर से गुजर रहा है। क्या सभ्य मानव ने कभी कल्पना की थी कि ऐसी भी कभी स्थिति आ सकती है? बेशक नहीं। यदि पहले से इस भावी संकट के बारे में सोचा गया होता तो अब तक उसके समाधान के लिए आवश्यक कदम उठाये गये होते। लेकिन चूँकि वह अब विवश है, अतः इस बला से छुटकारा पाने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहा है। यहाँ हम कुछ महत्त्व-पूर्ण संभावनाओं एवं उपलब्धियों पर विचार करेंगे।

ऊर्जा संकट की तो बात हम बाद में करेंगे पहले आइए हम समझ लें, ऊर्जा क्या है। यदि सच पूछा जाय तो ऊर्जा को हमारे जीवन का अभिन्न अंग कहना उचित होगा। खाने-पीने से लेकर दफ्तर आने-जाने तक और उसके बीच में होने वाले समस्त कार्यों के सम्पादन में ऊर्जा की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कहा जा सकता है कि जिसमें ऊर्जा है वही कार्य कर सकता है। अतः ऊर्जा और कार्य में सम्बन्ध है। सर्वप्रथम १८०७ में भौतिकविद् टामस यंग ने 'कार्य कर सकने की क्षमता' को 'ऊर्जा' की संज्ञा दी।

मोटर, गाड़ियों आदि के संचालन में ऊर्जा का उपयोग तो आप जानते ही हैं। साथ ही साइकिल चलाने या अन्य कार्यों में—जैसे भोजन पकाने (ईंधन), चलने-फिरने, खेलने-कूदने, कपड़े साफ करने आदि में—ऊर्जा अवश्य खर्च होती है। यहाँ तक कि भोजन के पाचन में भी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इन कार्यों के लिए ऊर्जा के कई स्रोत प्रयुक्त होते हैं या यों कह सकते हैं कि ऊर्जा के विभिन्न रूप हैं। यथा, यांत्रिक ऊर्जा (स्थितिज एवं गतिज), रासायनिक ऊर्जा, प्रकाश एवं ऊष्मा, विद्युत् ऊर्जा, ध्वनि एवं चुम्बकत्व ऊर्जा आदि। ऊर्जा के इन विभिन्न कार्यों का आपस में परिवर्तन हो सकता है। लेकिन वह कभी नष्ट नहीं होती। इस सम्बन्ध में १६९९ में डच वैज्ञानिक हाइजिन्स ने 'ऊर्जा संरक्षण का सिद्धान्त' प्रतिपादित किया था। उसके अनुसार ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती है, लेकिन एक प्रकार की ऊर्जा दूसरे में परिवर्तित हो सकती है। जैसे, कोयले के जलने से उसमें संचित रासायनिक ऊर्जा ताप के रूप में प्रकट होती है।

ईंधन में निहित ऊर्जा से गरमी मिलती है जिसका उपयोग भोजन बनाने में, यानों को चलाने में होता है। ईंधनों में निहित द्रव्य को आक्सीजन से क्रिया कराते हैं। फलतः ऊर्जा उत्पन्न होती है। यह रासायनिक ऊर्जा है। इसी प्रकार बैटरियों में निहित ऊर्जा से प्रकाश प्राप्त करते हैं एवं उसे तमाम उपकरणों के संचालन में उपयोग करते हैं। यहाँ तक कि पेड़ पौधे भी अपना भोजन सौर ऊर्जा की मदद से बनाते हैं। हीटर को प्लग से जोड़ देने पर विद्युत् ऊर्जा ताप के रूप में मिलती है। ऊर्जा के विभिन्न रूपों में 'यांत्रिक ऊर्जा' ही प्रमुख है। यह ऊर्जा किसी वस्तु में उसकी स्थिति-विशेष के कारण होती है। अर्थात् किसी गतिशील वस्तु की ऊर्जा एवं स्थित वस्तु में निहित ऊर्जा को यांत्रिक ऊर्जा कहते हैं। मशीनों, इंजनों का संचालन, कील ठोंकना, चलना, मारना, साइकिल चलाना आदि इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्जा के उदाहरण हैं। यह ऊर्जा दो प्रकार की होती है—किसी वस्तु की स्थिति के कारण ऊर्जा (स्थितिज ऊर्जा) और किसी वस्तु के गतिशील होने के कारण ऊर्जा (गतिज ऊर्जा)। किसी स्थित वस्तु के गतिशील हो जाने से उसमें निहित स्थितिज ऊर्जा गतिज ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। इसी प्रकार किसी वस्तु के दहन अर्थात् आक्सीकरण से उत्पन्न ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा कहलाती है। जैसे, कोयले (कार्बन) को जब आक्सीकृत किया जाता है, कार्बन की आक्सीजन के साथ क्रिया की जाती है तब ऊर्जा उत्पन्न होती है। जीवधारियों में भी इसी प्रकार कार्य करने के लिए ऊर्जा भोजन के आक्सीकरण के फलस्वरूप प्राप्त होती है।

ऊर्जा कोई पदार्थिक वस्तु नहीं होती है। इसमें न तो कोई भार होता है और न यह स्थान घेरती है, परन्तु इससे काम लिया जाता है। ऊष्मा, प्रकाश, ध्वनि, चुम्बकत्व और विद्युत् इसके भिन्न-भिन्न रूप हैं। ऊर्जा भौतिक वस्तु है और उसकी नाप-तोल तथा उसके प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है। ऊर्जा की इकाइयाँ 'अर्ग' और 'जूल' हैं। प्रो० अलबर्ट आइन्सटीन के अनुसार ऊर्जा एवं द्रव्यमान परस्पर परिवर्तनीय हैं। इसके लिए उन्होंने 'द्रव्यमान-ऊर्जा सम्बन्ध' स्थापित किया—$E = mc^2$। यहाँ E=ऊर्जा, m=द्रव्यमान एवं c=प्रकाशवेग। इस समीकरण के अनुसार एक ग्राम द्रव्यमानवाली किसी वस्तु को पूर्णरूपेण ऊर्जा में परिवर्तित करने पर ९×१०^{२०} अर्ग (९ अरब खरब अर्ग) ऊर्जा उत्पन्न होगी।

सर्वप्रथम मानव को ऊर्जा पाषाण युग में पत्थरों की रगड़ से उत्पन्न 'अग्नि' से मिली। इस ज्ञान के आधार पर, जो आदिम मानव पहले कच्चे मांस खाया करता था अब उसे भूनकर खाने लगा। पत्थरों को रगड़कर अग्नि पैदाकर जंगलों में प्राप्त खर-पतवार, लकड़ी इत्यादि को जलाकर वह ठंढक से बचता था और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। धीरे-धीरे वनस्पतियों से प्राप्त तेल, पशुओं से प्राप्त वसा, घी आदि को गलाकर प्रकाश उत्पन्न करने का काम लिया जाने लगा। सभ्यता के विकास के साथ उसने ऊर्जा के और साधनों को ढूँढ़ा निकाला। इसमें फॉसिल ईंधन उल्लेखनीय है। फॉसिल प्रेट्रोल और कोयला आज से करोड़ों वर्ष पहले पृथ्वी में दबे पड़े जीवधारियों एवं पेड़-पौधों के अवशेष मात्र हैं। अत्यधिक दबाव के कारण वनस्पतियाँ चट्टानों के बीच दबकर कोयले में परिवर्तित हो गयीं। जो जीव महासागरों की अतल गहराइयों और उसके तल में डूब गये थे उनके अवशेष कीचड़ जैसे पदार्थ में परिवर्तित हो गये और इसी कीचड़ से आज हम मिट्टी का तेल, पेट्रोलियम, डीजल, तारकोल आदि प्राप्त करते हैं जिसका हमारे नित्य प्रति के जीवन में अत्यन्त उपयोग होता है।

ऊर्जा का दूसरा महान् स्रोत सूर्य है, जो अविरल गति से ऊर्जा की अनन्त राशि बरसा रहा है, लेकिन इसे हम भंडारित करने में पूर्ण रूपेण सक्षम नहीं हो पाये हैं। पेड़-पौधे एवं अन्य जीवधारी इससे ऊर्जा प्राप्त करते हैं।

गत शताब्दी से पदार्थ के परमाणुओं की रचना में कृत्रिम साधनों से परिवर्तन कर ऊर्जा उत्पन्न करने में वैज्ञानिक सफल हुए हैं। वह परमाणु-ऊर्जा कहलाती है। लेकिन अभी उच्च स्तर में इसका उपयोग करने में हम सक्षम नहीं हुए हैं।

सभ्य मानव ने ऊर्जा के सीमित भांडारों की परवाह किये बिना ही औद्योगीकरण को उच्चस्तर पर बढ़ावा दिया है। अतः ऊर्जा की खपत दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। साथ ही मानव उत्तरोत्तर विलासप्रिय भी होता गया। अपना हर कार्य स्वयं न करके कल-पुर्जों से करने लगा, जिनके संचालन के लिए ऊर्जा आवश्यक है। कुछ धनी-मानी एवं विकसित राष्ट्रों में प्रत्येक कार्य प्रायः यांत्रिक मानव द्वारा ही होते हैं। यह ऊर्जा के दुरुपयोग के सिवा और कुछ नहीं है।

स्पष्ट है कि ऊर्जा की खपत दिनोंदिन बढ़ती जा रही है और चूँकि हमारे पास ऊर्जा के प्राकृतिक भांडार समिति हैं अतः यदि ऊर्जा के खर्च पर नियन्त्रण न लगाया गया तो कोई २०० वर्षों में विश्व का समस्त प्राकृतिक ऊर्जा भांडार समाप्त हो जायगा।

इधर अरब-इजराइल युद्ध ने तो समूचे विश्व का ध्यान इस पर केन्द्रित करा दिया। यह संयोग ही था। अच्छा हुआ पूरे विश्व में इस समय ऊर्जा-संकट से मुक्ति के लिए वैज्ञानिक प्रयत्नशील होकर शोध में रत हैं।

आज हम कितनी गति से ऊर्जा खर्च कर रहे हैं—यह आंकिक तालिका से स्पष्ट है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	व्यावसायिक ईंधन					गैर व्यावसायिक ईंधन			
वर्ष	कोयला	लिग्नाइट	पेट्रोलियम	जल-विद्युत्	परमाण्विक	गोबर	लकड़ी	वनस्पति व्यर्थ	कुल योग
१९६८-६९	६९५·०	२२·५	८४३·०	१५२·०	—	१९७·०	१३५१·०	३२६	३५८६·५
१९७३-७४	९३५·०	४०·०	१५२६·०	२२६·३	४२·३	२२६·०	१५५१·०	३५१	४८९७·६
१९७८-७९	१३००·०	६३·५	२१४०·०	३५०·०	१०१·५	२४९·०	१७०५·०	३८०	६२७९·०
१९८०-८१	१४५०·०	६६·५	२५३०·०	४३५·०	१२६·०	२५८·६	१७८२·२	३९२	७०४०·४
१९८३-८४	१७८०·०	८६·५	३२९०·०	६२४·०	२००·०	२५५ ०	१७५०·०	३९५	८३६५·०
१९८५-८६	२०००·०	१००·०	३८००·०	७५०·०	२५०·०	२५०·०	१७००·०	४००	९२५०·०

(एसोसियेटेड चेम्बर्स ऑफ कामर्स ऐण्ड इण्डस्ट्री ऑफ इण्डिया, १९७४ के सौजन्य से)

(२) सौर-ऊर्जा

हमारे नित्य प्रति के जीवन में सूर्य का बहुत महत्त्व है। यदि सूर्य का अस्तित्व न होता तो पृथ्वी पर जीवन सम्भव न था। वनस्पतियों का जीवन भी उसी पर निर्भर है। ये वनस्पतियाँ सूर्य प्रकाश की उपस्थिति में वायु से कार्बन डाइ-आक्साइड लेकर अपना खाद्य तैयार करती हैं और बदले में आक्सीजन निष्काषित कर वायुमंडल को विषाक्त होने से बचाती हैं। हम भी अपना खाद्य इन्हीं वनस्पतियों से लेते हैं। यदि सूर्य न होता तो इन पौधों का अस्तित्व न होता और इनके अभाव में हमें खाद्य सामग्री न मिल पाती और वातावरण इतना विषाक्त हो जाता कि एक मिनट भी जिंदा रहना असम्भव हो जाता।

यदि हम सूर्य द्वारा अविरल गति से विकीर्णित ऊर्जा का सदुपयोग कर सकें तो सूर्य ऊर्जा-संकट के समाधान में बहुत हद तक सहायक हो सकता है। सूर्य ऊर्जा का असीमित भांडार है। वह प्रतिपल ऊर्जा की अनन्त राशि का उत्सर्ग कर रहा है। उसका कुछ भाग तो वातावरण द्वारा सोख लिया जाता है तथा शेष भाग धरती पर पहुँचता है। लेकिन उस सम्पूर्ण ऊर्जा का सदुपयोग करना सम्भव नहीं है। यदि हम समुचित रूप में सौर ऊर्जा का उपयोग कर सकें तो पृथ्वी पर सभी वर्तमान कल-कारखानों को एक वर्ष तक चलाने के लिए कुल ऊर्जा का मान सूर्य से पृथ्वी पर पहुँचनेवाली तीन मिनट की कुल ऊर्जा के बराबर होगा। इसी उदाहरण से आप सूर्य द्वारा प्रदत्त ऊर्जा के विपुल भांडार की कल्पना कर सकते हैं। इसी प्रकार ऊर्जा के अन्य स्रोतों— यथा, ईंधन, परमाणु ऊर्जा आदि—द्वारा प्रदूषण को बढ़ावा मिलता है जो धन जन दोनों के लिए खतरनाक है किन्तु सौर ऊर्जा से वातावरण प्रदूषित भी नहीं होता है। अतः सूर्य का अस्तित्व प्रकृति द्वारा धरती को अमूल्य वरदान है।

वैसे तो सूर्य ऊर्जा को भांडारित करने के फुटकर प्रयास बहुत पहले से ही किये जा चुके हैं लेकिन उच्च स्तर पर उसके उपयोग का अभी तक कोई प्राविधान नहीं था। इधर विश्व के कई राष्ट्रों में उसके नियन्त्रण सम्बन्धी प्रयोग किये गये हैं। उनमें कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों की चर्चा यहाँ प्रस्तुत है।

सूर्य : विपुल ऊर्जा का भांडार

सूर्य एक गोले के समान है जिसकी त्रिज्या लगभग ४,३०,००० मील है। केन्द्र का ताप लगभग २ करोड़ डिग्री से० तथा बाहरी भाग का ताप लगभग ६००० डिग्री से० होता है। सूर्य के केन्द्र में इतना उच्च ताप कैसे आता है, इसकी वैज्ञानिक व्याख्या १९३८ में अमेरिकन वैज्ञानिक सर एच० ए० वेथे ने की। उन्होंने बताया कि सूर्य पिण्ड में हाइड्रोजन परमाणु होते हैं जो आपस में नाभिकीय संगलन द्वारा हीलियम परमाणु का निर्माण करते हैं। इसके साथ ही पर्याप्त ऊर्जा उत्पन्न होती है। चार हाइड्रोजन परमाणुओं के आपसी संगलन (फ्यूजन) द्वारा हीलियम के एक परमाणु का उत्पादन होता है और ऊर्जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मुक्त होती है। हीलियम परमाणु का द्रव्यमान चारों हाइड्रोजन परमाणुओं के संयुक्त द्रव्यमान से कुछ कम होता है। द्रव्यमान की यह कमी आइन्सटीन के 'द्रव्य-ऊर्जा सम्बन्ध' ($E=mc^2$) द्वारा ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। सूर्य के केन्द्र का ताप इतना अधिक होने के कारण सूर्य पर उपस्थित समस्त तत्त्वों के परमाणुओं की कक्षाओं से इलेक्ट्रान निकल जाते हैं और वे नाभिक अवस्था में रह जाते हैं। ये नाभिक अत्यंत तीव्रगामी होते हैं। अतः इनकी परस्पर टक्कर से इनका स्वतः संगलन होता रहता है और अपार ऊर्जा उत्पन्न होती है। संगलन की क्रिया निरंतर होती रहती है। सर वेथे के अनुसार सूर्य पर दो प्रकार का नाभिकीय संगलन होता है—'प्रोटॉन-प्रोटॉन चक्र' तथा 'कार्बन-नाइट्रोजन चक्र'। इन सभी संगलनों में हमेशा चार परमाणु मिलकर हीलियम परमाणु की उत्पत्ति करते हैं। इस क्रिया के फलस्वरूप निर्मुक्त ऊर्जा से सूर्य का ताप हमेशा बना रहता है तथा विकिरण द्वारा सूर्य से ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। इस उत्सर्जित ऊर्जा का कुछ भाग वायुमंडल में अवशोषित हो जाता है और शेष अनवरत रूप से हमें प्रकाश और ताप के रूप में मिलता है।

अनुमानतः सूर्य से लगभग $३·८ \times १०^{३३}$ अर्ग ऊर्जा प्रति सेकेण्ड उत्सर्जित होती है तथा सूर्य से अगले ९×१०^{७} वर्षों तक ऊर्जा की प्राप्ति होती रहेगी।

सूर्य-प्रकाश से विद्युत् उत्पादन

ऊर्जा संकट के दौर से गुजरते समय ऊर्जा के समाधान के हेतु सारे विश्व के वैज्ञानिक हल ढूँढ़ रहे हैं। सौर ऊर्जा से इस संकट से मुक्ति मिल सकती है। इसके अतिरिक्त इतनी सस्ती कोई चीज शायद ही मिले जो ऊर्जा संकट के समाधान में प्रयुक्त हो सके। वैज्ञानिकों ने सूर्य की धूप से विद्युत् उत्पन्न करने की विधि ज्ञात कर ली है और इसका उपयोग भी हो रहा है। सौभाग्य से हमारा देश संसार के उन थोड़े से देशों में एक है जिनके पास विपुल मात्रा में सौर ऊर्जा है। सौर ऊर्जा के उपयोग के सम्बन्ध में भारत की राष्ट्रीय भौतिक विज्ञान प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों ने काफी कार्य किया है तथा सौर ऊर्जा से चलनेवाले सौर चूल्हा (सोलर कुकर), पानी गरम करने का सौर उपकरण, पानी शुद्ध करने का उपकरण आदि का निर्माण किया है।

सूर्य की धूप से बिजली उत्पन्न करने के लिए सोलर सेल्स (सौर-बैटरियों) का विकास किया गया है। सौर बैटरियों के बनाने के लिए सिलीकॉन नामक पदार्थ काम में लाया जाता है। सूर्य विकिरण से प्रभावित होकर ये ऊष्मा उत्पन्न करते हैं जो विद्युत् में परिवर्तित होकर बैटरियों में संचित होती रहती है। रात के समय या सूर्य के न निकलने पर इन आवेशित बैटरियों का प्रयोग किया जाता है।

सौर ऊर्जा के उपयोग

अन्तरिक्ष अनुसंधान—अन्तरिक्ष अनुसंधान के हेतु सौर ऊर्जा का योगदान महत्त्वपूर्ण है। चूँकि लम्बी अवधि तक यान अन्तरिक्ष की यात्रा करते रहते हैं अतः उनके संचालन के हेतु पर्याप्त ईंधन नहीं जुटाया जा सकता है। इस समस्या को सौर बैटरियों के द्वारा हल कर लिया गया है।

सौर बैटरियों का सबसे बड़ा उपयोग स्काई लैब (अन्तरिक्ष प्रयोगशाला) में हुआ है। गत वर्ष अमेरिका द्वारा पृथ्वी की कक्षा में अन्तरिक्ष अध्ययन के हेतु कई लैब की स्थापना की गयी थी। स्काई लैब के लिए निर्मित विद्युत् उत्पादन प्रणाली में ३,१२,००० सौर-बैटरियाँ लगी थीं। इस प्रणाली की विद्युत् उत्पादन क्षमता लगभग १२ हजार वाट थी जो तीन शयन कक्षवाले औसत आकार के पाँच मकानों की आवश्यकता पूरी करने के लिए पर्याप्त है।

इंडियन साइंटिफिक सैटेलाइट प्रोजेक्ट, बंगलौर द्वारा निर्मित प्रथम भारतीय उपग्रह आर्यभट्ट को, जो रूस के किसी प्रक्षेपण केन्द्र से प्रक्षिप्त किया गया है ऊर्जा सूर्य द्वारा प्राप्त हो रही है। सिलीकान सौर सेल एवं निकेल कैडमियम बैटरियों द्वारा निर्मित इसकी विद्युत् प्रणाली से कुल ५० वाट विद्युत् उत्पन्न होगी जिससे इसके सारे यंत्र और उपकरण चल सकेंगे।

इस प्रकार अंतरिक्ष अध्ययन में प्रयुक्त होने वाले सभी यानों, उपग्रहों आदि के जीवन पोषण के लिए विद्युत् सूर्य द्वारा ही प्राप्त की जा रही है।

सौर जल शुद्धि उपकरण (सोलर डिस्टीलेशन प्लांट)—इस उपकरण का निर्माण भारत की राष्ट्रीय भौतिक विज्ञान प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों ने किया है। इस समय इसका उपयोग कई स्थानों पर किया जा रहा है। महाराष्ट्र के [illegible] क्षेत्र में एक स्थान पर खारे समुद्री पानी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौर ऊर्जा द्वारा शुद्ध करके पीने योग्य बनाया जा रहा है। इस उपकरण में काले काँच की छतों के नीचे ट्रे लगी होती है जिसमें गंदा या खारा पानी एक नल से आता है। काले काँच की छतें सूर्य ऊष्मा को सोखकर पानी का भाप बनाती हैं और ढलानवाली छत से यह भाप दूसरी नलियों में जल ले जाती है।

इस विधि का उपयोग गंदे या खारे पानी को शुद्ध करके पीने योग्य बनाने में किया जाता है। हमारे देश के कुछ गाँवों में पोखरों का पानी पीने के काम में लाया जाता है, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त हानिकर है। यह उपकरण ऐसे जलों को शुद्ध करने के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

सौर शक्ति से जैविक पदार्थों का ऊर्जा में परिवर्तन—हमारे वैज्ञानिक पानी में उगनेवाली काई से सौर शक्ति द्वारा ऊर्जा बना रहे हैं। काई से मीथेन तथा हाइड्रोजन गैस बना सकते हैं, जो हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। हमारे देश में प्राकृतिक गैस के भांडार नहीं हैं लेकिन पानी की तो कमी नहीं है। अतः हम इस विधि से पानी में काई उगाकर इस समस्या को हल कर सकते हैं।

सौर ऊर्जा से चालित घड़ियाँ—सौर ऊर्जा से चलने वाली पहली हाथ घड़ी 'सिन्क्रोनर' अमरीकी बाजार में उपलब्ध है। इसके ऊपर रखे हुए सौर सेल अन्दर रखी हुई बैटरियों को चार्ज करते हैं। सिन्क्रोनर के निर्माताओं के अनुसार इस घड़ी को चौबीस घंटे में सिर्फ एक बार दस-पंद्रह मिनट के लिए धूप में रखना पड़ता है। धूप की अनुपस्थिति में साधारण बल्ब से भी काम चल सकता है।

इसके अतिरिक्त सौर ऊर्जा से चालित अन्य कई उपकरणों का निर्माण किया गया है। भारतीय वैज्ञानिकों ने सौर ऊर्जा के उपयोग से अनाज और इमारती लकड़ी सुखाने के उपकरण का निर्माण किया है। ऐसे प्रयोग भारत के अतिरिक्त अन्य राष्ट्रों में भी सफल हुए हैं एवं बहुत से उपकरण विकसित किये जा रहे हैं। फ्रांस जैसे राष्ट्र में ऐसे पंप बना लिये गये हैं जिन्हें सौर ऊर्जा से परिचालित किया जाता है। उपर्युक्त विवरण से सौर ऊर्जा के विविध उपयोग स्पष्ट हैं। इनमें सबसे बड़ी उपलब्धि सूर्य से विद्युत् प्राप्त करना है। यदि वैज्ञानिकों ने इस दिशा में और कार्य किया तो वह दिन दूर नहीं जब गाँवों और शहरों में सौर-बिजलीघरों द्वारा विद्युत् पहुँचायी जायगी।

(३) परमाणु ऊर्जा

"कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो।" (मैं लोकों का नाश करनेवाला महाकाल हूँ।) गीता के ये वचन डॉ० ओपेन हाइमर के मस्तिष्क में विद्युत् की भाँति उस समय कौंध गये जिस समय उन्होंने १६ जुलाई १९४५ को प्रथम परमाणु बम के विस्फोट का अवलोकन किया। पलक मारते ही हजारों सूर्यों की चमक जैसा प्रकाश समस्त आकाश में छा गया। विस्फोट से उत्पन्न हुई तेज आँच से लोहे का बना परीक्षण स्थल पिघलकर वाष्प में परिणत हो गया और आस-पास की वनस्पतियाँ जल-भुन कर समाप्त हो गयीं।

इस सफल परीक्षण के लगभग २२ दिन बाद ही ६ अगस्त १९४५ को हिरोशिमा और इसके तीन दिन बाद नागासाकी पर क्रमशः धड़ाके हुए। देखते-देखते दोनों शहर तहस-नहस हो गये। लाखों नर-नारी सदा के लिए मौत की गोद में सो गये और कितने ही प्राणियों का जीवन त्रस्त हो गया। ये दोनों धड़ाके थे—अमेरिका द्वारा जापान के उपर्युक्त दो प्रमुख शहरों पर डाले गये परमाणु बमों के।

परमाणु बमों की इस महाप्रलयकारिणी विध्वंसक शक्ति को देखकर समस्त विश्व भय से काँप उठा। लेकिन इस परमाणु शक्ति के उपयोग का दूसरा पहलू भी है। हम परमाणु ऊर्जा का उपयोग विध्वंसक कार्यों में न कर संरचनात्मक कार्यों में करें। आइए परमाणु के भीतर निहित इस ऊर्जा के विपुल भांडार का अवलोकन करें।

परमाणु है क्या ?

परमाणु की परिकल्पना बहुत पुरानी है। सर्वप्रथम भारतीय महर्षि कणाद ने 'वैशेषिक दर्शन' में परमाणु की परिकल्पना निम्न प्रकार की :—

"परमाणुः परमसूक्ष्म अवयवः स्वयं निरवयवो अतीन्द्रियो नित्यः।" अर्थात् परमाणु पदार्थ का सूक्ष्मतम, अविभाज्य, आरम्भिक, अनश्वर एवं शाश्वत अवयव है।

पदार्थ की रचना अत्यन्त सूक्ष्मतम कणों या परमाणुओं से होती है। परमाणु मिलकर अणु बनाते हैं और अणुओं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलकर पदार्थ की रचना होती है। इसकी भी व्याख्या महर्षि कणाद के वैशेषिक दर्शन में मिलती है।

महर्षि कणाद का यह सिद्धान्त जान डाल्टन के आधुनिक परमाणुवाद से मिलता-जुलता है। उनके अनुसार-परमाणु पदार्थ का अत्यन्त सूक्ष्म कण है जो अविभाज्य है। लेकिन वैज्ञानिक अर्नेस्ट रदरफर्ड के प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया कि परमाणु और भी सूक्ष्मकणों से मिलकर बना है। आज यह सर्वविदित है कि परमाणु प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉन, पोजीट्रॉन, मेसान आदि अत्यन्त छोटे कणों से बना है।

परमाणु सौरमण्डल जैसा

परमाणु की रचना सौरमण्डल की भांति है। जैसे सूर्य के चारों ओर अन्य ग्रह कक्षाओं में घूमते हैं वैसे ही परमाणु के नाभिक (केन्द्रक) के चारों ओर निश्चित कक्षाओं में इलेक्ट्रॉन चक्कर काटते हैं। परमाणु के नाभिक में प्रोटान और न्यूट्रॉन होते हैं। प्रोटान इकाई द्रव्यमान (यूनिट मास) एवं इकाई धन आवेशवाला कण है। न्यूट्रॉन इकाई द्रव्यमान वाले शून्य आवेशित कण हैं। इलेक्ट्रान इकाई ऋण आवेश वाले कण हैं। इनका द्रव्यमान नगण्य (लगभग हाइड्रोजन परमाणु के नाभिक के भार का १/१८३६वाँ भाग) होता है। पूर्ण रूप से परमाणु उदासीन होता है। अतः केन्द्रक में स्थित धन आवेशों का मान ऋण आवेशों के बराबर होता है।

प्रकृति में पाये जानेवाले प्रत्येक तत्त्व की रचना उपर्युक्त कणों से होती है। किसी तत्त्व के नाभिक में प्रोटॉन और न्यूट्रॉन की कुल संख्या ही उस तत्त्व का परमाणु भार कहलाती है तथा परमाणु के नाभिक में उपस्थित प्रोटॉनों की संख्या या कक्षाओं (आरबिट्स) में उपस्थित इलेक्ट्रानों की संख्या उस तत्त्व का परमाणु क्रमांक (एटामिक नम्बर) कहलाता है।

कुछ ऐसे तत्त्व भी प्रकृति में पाये जाते हैं जिनके कई रूप होते हैं। जिन तत्त्वों की परमाणु संख्या समान हो, पर परमाणु भार भिन्न हों, वे समस्थानिक परमाणु कहलाते हैं। ऐसे तत्त्वों के विभिन्न परमाणु की परमाणु संख्या समान होती है अर्थात् प्रोटॉनों या इलेक्ट्रानों की संख्या समान होती है, लेकिन परमाणु भार भिन्न होता है। यह न्यूट्रॉनों की संख्या में भिन्नता के कारण होता है। उदाहरणार्थ, हाइड्रोजन, यूरेनियम के समस्थानिक।

हाइड्रोजन के तीन समस्थानिक हैं, जिन्हें क्रमशः साधारण हाइड्रोजन, ड्यूटेरियम तथा ट्राइटियम कहते हैं। इन तीनों समस्थानिकों की परमाणु संख्या (एक) समान है लेकिन परमाणु भार क्रमशः ०, १. २ हैं अर्थात् साधारण हाइड्रोजन के नाभिक में कोई न्यूट्रॉन नहीं होता है तथा ड्यूटेरियम एवं ट्राइनियम में क्रमशः १ एवं २ न्यूट्रॉन होते हैं।

इसी प्रकार यूरेनियम के मुख्य दो समस्थानिक हैं, जिन्हें क्रमशः यूरेनियम–२३५ एवं यूरेनियम–२३८ कहते हैं। इन दोनों समस्थानिकों का परमाणु क्रमांक ९२ है, लेकिन परमाणु भार क्रमशः २३५ एवं २३८ हैं। दोनों समस्थानिकों (आइसोटोप्स) में प्रोटॉनों की संख्या बराबर अर्थात् ९२ है, लेकिन न्यूट्रॉनों की संख्या क्रमशः १४३ और १४६ है।

परमाणु ऊर्जा का रहस्य

किसी परमाणु की नाभिकीय संरचना को जब बदला जाता है—चाहे उन्हें विखंडित किया जाता हो या दो नाभिकों को जोड़ा जाता हो—तब भिन्न तत्त्वों के नाभिक जन्म लेते हैं। साथ ही इस प्रक्रिया में ऊर्जा का उत्सर्जन भी होता है। वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्सटीन ने अपने 'द्रव्य-ऊर्जा सम्बन्ध' द्वारा बताया है कि द्रव्य एवं ऊर्जा का आपस में परिवर्तन हो सकता है। यह निम्न सूत्र से स्पष्ट है :—

$E = mc^2$ (E = ऊर्जा, m = द्रव्यमान एवं C = प्रकाश वेग)

इस समीकरण के अनुसार यूरेनियम के एक परमाणु के विखंडन में ३×१०^{८} इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा निर्मुक्त होती है। अतः परमाणु द्वारा इस प्रकार उत्सर्जित ऊर्जा को परमाणु ऊर्जा कहते हैं। लेकिन इसे नाभिकीय ऊर्जा कहना उचित होगा, क्योंकि यह ऊर्जा नाभिक के विखंडन से प्राप्त होती है। वैसे व्यावहारिक रूप में इसे परमाणु ऊर्जा ही कहते हैं।

परमाणु ऊर्जा उत्पादन के सिद्धान्त

(१) **नाभिकीय विखंडन**—१९३८ में आटोहान तथा स्ट्रासमान नामक दो जर्मन वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया कि जब यूरेनियम पर तीव्र न्यूट्रॉनों की बौछार की जाती है तब वह बेरियम एवं क्रिप्टन इन दो खंडों में विभाजित हो जाता है। कुछ न्यूट्रॉन भी निकलते हैं और साथ ही ऊर्जा भी निर्मुक्त होती है। इस घटना का नाम उन्होंने नाभिकीय विखंडन (न्यूक्लिअर फीजन) रखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस घटना में न्यूट्रॉनों की बौछार से यूरेनियम परमाणु का नाभिक बेरियम तथा क्रिप्टन में परिवर्तित हो जाता है एवं ऊर्जा उत्पन्न होती है। यूरेनियम नाभिक का द्रव्यमान विखंडन में प्राप्त खंडों के द्रव्यमानों से अधिक होता है। विखंडन से पहले और अन्त में द्रव्यमानों का जो अंतर रहता है वह ऊर्जा में रूपान्तरित हो जाता है। विखंडन प्रक्रिया में अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ, यदि हम यूरेनियम के विखंडन की क्रिया में निर्मुक्त ऊर्जा की गणना करें तो ज्ञात होता है कि यूरेनियम के एक नाभिक के विखंडन से २०० × १०^{६} इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा उत्पन्न होती है।

यूरेनियम—२३५ पर मन्दगामी न्यूट्रॉनों की बौछार करने पर यह नाभिक दो खंडों में विभक्त होता है। इस प्रक्रिया में ऊर्जा उत्सर्जन के साथ ३ न्यूट्रॉन उत्सर्जित होते हैं। अनुकूल परिस्थितियों के पाने पर ये न्यूट्रॉन अन्य नाभिकों से टकराकर उनका विखंडन कर सकते हैं। इस प्रकार नाभिकों के उत्तरोत्तर विखंडन से एक शृंखला प्रतिक्रिया बन जाती है जिससे ऊर्जा के मान में वृद्धि होती जाती है।

परमाणु भट्ठियों में कृत्रिम उपायों द्वारा इस प्रक्रिया को नियंत्रित किया जाता है तथा इससे उत्पन्न ऊर्जा लाभदायक कार्यों में प्रयुक्त की जाती है। लेकिन यह प्रक्रिया जब नियत्रित नहीं की जाती है तब इतनी तीव्र गति से होती है कि इसका अनुमान लगाना कठिन हो जाता है और कुछ ही क्षणों में उत्पन्न अत्यधिक ऊर्जा से प्रचण्ड विस्फोट होता है। परमाणु बम इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

(२) **नाभिकीय संगलन**—जब दो हल्के नाभिक संयुक्त होते हैं तब एक भारी नाभिक बनता है, जिसका द्रव्यमान हल्के नाभिकों के सम्मिलित द्रव्यमान से कम होता है। द्रव्यमानों का यह अंतर ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। हल्के नाभिकों के इस प्रकार संयुक्त होने की क्रिया को 'नाभिकीय संगलन' (न्यूक्लिअर फ्यूजन) या 'ताप नाभिकीय प्रतिक्रिया' कहते हैं। सूर्य में यही क्रिया निरंतर होती है एवं हाइड्रोजन बम इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

परमाणु ऊर्जा से विद्युत्

परमाणु को विद्युत् में परिवर्तित करके ऊर्जा संकट को टाला जा सकता है। इस कार्य के लिए विश्व के कई राष्ट्रों में परमाणु बिजलीघर भी स्थापित किये गये हैं। नाभिकीय विखंडन की 'नियंत्रित शृंखला प्रतिक्रिया' द्वारा नाभिकीय रियेक्टर या परमाणु भट्ठी में ऊर्जा उत्पन्न की जाती है। नाभिकीय विखंडन से प्राप्त गतिज ऊर्जा को तापीय ऊर्जा में बदलते हैं। इसकी मदद से पानी को भाप में परिवर्तित करते हैं और उससे टरबाइन जनरेटर चला कर विद्युत् पैदा की जाती है। इस प्रकार उत्पन्न विद्युत् को नित्यप्रति के कार्यों में प्रयुक्त करते हैं।

परमाणु भट्ठी में पहले से ही उपस्थित कुछ न्यूट्रॉन यू-२३५ का विखंडन शुरू करते हैं जिससे अत्यन्त तीव्रगामी न्यूट्रॉन निकलते हैं जो रिएक्टर में रखे हुए ग्रेफाइट, भारी पानी आदि मंदकों, से टकराकर मन्दगति प्राप्त करते हैं और ये न्यूट्रॉन दूसरे यू-२३५ का विखंडन आरम्भ करते हैं। इस प्रकार शृंखला प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है। आवश्यकता पड़ने पर परमाणु भट्ठी की दीवार में लगे कैडमियम की छड़ों को अन्दर खिसकाकर एकदम रोक देते हैं। ये कैडमियम छड़ न्यूट्रॉन कणों को शोषित कर लेते हैं। अतः क्रिया बन्द हो जाती है। इस प्रकार प्राप्त ऊर्जा का उपयोग अणु परिवहन, चिकित्सा, रेडियो समस्थानिकों का निर्माण, प्लास्टिक बहुलीकरण, खाद्य परीक्षण एवं उन्नत फसलों के निर्माण तथा विद्युत् उत्पादन में करते हैं।

स्पष्ट है कि नियंत्रित ढंग से परमाणु ऊर्जा का योग ऊर्जा समाधान में अति सहयोगी है।

नाभिकीय रियेक्टर में ईंधन के रूप में यूरेनियम तथा प्लूटोनियम प्रयुक्त होते हैं। प्लूटोनियम मानव निर्मित पदार्थ है। जब यूरेनियम पर न्यूट्रॉनों की बौछार की जाती है तब वह पहले नेप्चूनियम और बाद में प्लूटोनियम में बदल जाता है। यूरेनियम के ३ समस्थानिक हैं—यूरेनियम २३८, यूरेनियम-२३५ और यूरेनियम-२३३। प्राकृतिक यूरेनियम में इनमें से प्रत्येक की मात्रा क्रमशः ९९·३%, ०·७% एवं ००८% होती है।

भारत में परमाणु ईंधन एवं परमाणु शक्ति का विकास

परमाणु शक्ति द्वारा ऊर्जा उत्पादन के लिए यूरेनियम बुनियादी वस्तु है। भारत में यूरेनियम जादूगड़ा तथा नरवापहाड़ इन दो स्थानों में उपलब्ध है और इनके भांडार हैं लगभग ८१ हजार टन यूरेनियम मौजूद है। इसके अतिरिक्त

CC-0. MP Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरेनियम सिंहभूमि, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हिमाचल-प्रदेश और उत्तर प्रदेश में भी पाया जाता है।

एक अनुमान के अनुसार भारत में यूरेनियम के भाण्डार पाँच हजार से दस हजार मेगावाट क्षमतावाले बिजलीघरों के लिए पर्याप्त हैं। यूरेनियम के बाद थोरियम भी एक महत्वपूर्ण पदार्थ है, जो परमाणु शक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक है। विश्व भर में सबसे अधिक थोरियम का उत्पादन भारत में होता है।

परमाणु ऊर्जा के सदुपयोग के लिए परमाणु रिएक्टर एवं बिजलीघरों की स्थापना की गयी है। भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्राम्बे में, पूर्णिया, साइरस, जरलीना एवं अप्सरा परमाणु रिएक्टरों की स्थापना की गयी है। इनके अतिरिक्त परमाणु बिजलीघरों की भी स्थापना की गयी है। तारापुर परमाणु बिजलीघर ने १९६९ के जुलाई में ३८० मेगावाट की क्षमता से उत्पादन आरम्भ कर दिया था, राजस्थान परमाणु बिजलीघर अन्तिम चरण में है। मद्रास के निकट कलपक्कम में तीसरा परमाणु बिजलीघर के स्थापित किये जाने की संभावना है। चौथा परमाणु बिजलीघर उत्तर प्रदेश में नरोरा में स्थापित किया जायगा।

गांधी : मानवता के लिए अपरिहार्य

[पृष्ठ ३९७ का शेषांश]

गांधीजी ने मानवता के लिए ही जन्म लिया, मानवता के लिए ही वे जिये और मानवता के लिए ही सीने में तीन गोलियाँ खाकर शहीद हो गये। गांधी का जीवन ही मानवतामय था। उनका कहना था कि मानवता की सेवा के द्वारा ही मैं ईश्वर के साक्षात्कार का प्रयत्न कर रहा हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि ईश्वर न तो स्वर्ग में है और न पाताल में, किन्तु हरेक के हृदय में है।

अतः हमें सत्याग्रही बनकर प्रेम और अहिंसा को अंगीकार करना है। हिंसा और द्वेष को प्रेम और अहिंसा से जीतना है। गांधीजी ने कहा था कि सत्याग्रही न्याय नहीं माँगेगा। न्याय का अर्थ है जैसे को तैसा। सत्याग्रह का अर्थ है, 'शठं प्रति अपि सत्यं।' हिंसा के सामने अहिंसा, क्रोध के सामने अक्रोध, अप्रेम के सामने प्रेम।

गांधीजी ने कहा था कि इतिहास के प्रारंभ से लेकर आज के समय तक यदि हम दृष्टिपात करें तो हम पायेंगे कि मनुष्य दृढ़तापूर्वक अहिंसा की ओर बढ़ता जा रहा है। यदि हमारा विश्वास है कि मानव-जाति अहिंसा की ओर दृढ़ता से बढ़ रही है तो यह निष्कर्ष निकलता है कि उसे इसकी ओर और आगे बढ़ना है। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने एक बार गांधीजी के विषय में कहा था—"आत्मा आत्मा को पुकार रही है और यद्यपि गांधीजी का देहावसान हो गया है किन्तु वे संसार में पुनर्जीवन फूंकने के पवित्र कार्य में संलग्न हैं।"

यद्यपि गांधीजी का पार्थिव शरीर आज नहीं रहा तथापि उनकी आत्मा प्रत्येक आत्मा को पुकार-पुकारकर कह रही है, 'उठो, मानवता की सेवा के लिए, विश्व-बन्धुत्व के लिए, सत्य, अहिंसा और प्रेममय समाज की नव-रचना के लिए। कटिबद्ध होकर सेवा-क्षेत्र में संलग्न हो जाओ।'

अगर हम मानवता की रक्षा तथा सेवा करना चाहते हैं, देश और विश्व का कल्याण करना चाहते हैं, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः.....' को चरितार्थ करना चाहते हैं, और अगर हम यह चाहते हैं कि शान्ति-युग का पदार्पण हो एवं मनुष्यमात्र सुख-शान्ति से जी सके तथा मानवता का अस्तित्व और योग-क्षेम बना रहे तो आज नगर-नगर और गाँव-गाँव में गांधी अनिवार्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी के शीर्षस्थ कवि—भास्कर रामचन्द्र तांबे

श्री रामसिंह यादव, एम० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न

भास्कर रामचन्द्र तांबे आधुनिक मराठी कविता के अग्रज और केशवसुत के बाद मराठी के शीर्षस्थ कवि हैं। कविवर तांबे उन महाप्राणों में थे जिनकी मानवीय आस्था के चरण कभी नहीं डगमगाये और महाराष्ट्र से दूर रहकर भी उन्होंने एक से अधिक समूची इकाइयों को प्रभावित करके सार्थक किया। सरकारी नौकरी में होते हुए भी कांग्रेस के जन आन्दोलन, लोकमान्य तिलक एवं महात्मा गांधी के प्रति अपने ओजस्वी काव्य के द्वारा आदर समर्पित कर उनकी प्रतिभा राष्ट्रप्रेम का परिचय देती रही।

प्रतिभा, अध्ययन, परिश्रम के साथ ही एक और महत्त्व-पूर्ण तत्त्व तांबेजी की कविता से सम्बद्ध है—भाव प्रवणता। विशुद्ध रूप से तांबे भाव-कवि हैं। उनकी कविताओं में बुद्धिमता, विद्वता, व्यक्तिगत मनीषा, बहुमुखी प्रतिभा, कला और संस्कृति, राष्ट्रीयता, सामाजिकता, ज्ञान तथा सुन्दर भावानुभूति सभी संहत हैं। स्वयं उन्हींके शब्दों में—'मेरे जीवन की अवस्थाओं के अनुसार मेरे काव्य का विकास होता गया। मेरी काव्य रचना मेरी भावधारा का खरा प्रतिबिम्ब है, सच्चा आविष्कार है।'

तांबेजी का जन्म मध्यभारत (अब मध्यप्रदेश) की ग्वालियर रियासत में गुना जिले के एक ग्राम मुंगावली में २७ अक्टूबर, १८७३ को हुआ था। वे मुख्यतया उज्जैन, देवास, इन्दौर, प्रतापगढ़ और ग्वालियर में रहे। उनके पिता का नाम रामचन्द्र पंत तथा माता का नाम यमुना-बाई था। माता का पीहर देवास में था। उनकी पत्नी वारू बाई रतलाम की थीं। मराठीभाषी होकर भी, उन्होंने अपनी सारी जिन्दगी हिन्दी क्षेत्र मध्य भारत में गुजारी। प्रारम्भिक शिक्षा उनकी मुंगावली में हुई थी। माध्यमिक शिक्षा के लिए उन्हें अपने मातृकुल की शरण लेनी पड़ी। वे उज्जैन से २३ मील पैदल चलकर देवास पहुँचे। परेशानियाँ आयीं, पर वे घबराये नहीं। वहाँ जाकर माध्य-मिक स्कूल में प्रविष्ट हुए। बचपन से ही वह परिश्रमी और मेधावी छात्र थे। माध्यमिक कक्षाओं में पढ़ते समय ही उन्होंने अंग्रेजी के शेक्सपीयर, वर्डस्वर्थ, कोलरीज, बायरन, शेली, कीट्स, टेनिसन, ब्रुक, आर्नोल्ड, ब्राडले, हडसन तथा संस्कृत के मम्मट, पंडितराज जगन्नाथ और विश्वनाथ के ग्रन्थों को आद्योपान्त पढ़ लिया था। हिन्दी और मराठी पर आपका अच्छा अधिकार था।

१८९३ में तांबे ने मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तथा आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए वे इन्दौर के होल्कर कालेज में प्रविष्ट हुए। किन्तु वही हुआ जो अक्सर महापुरुषों के साथ होता आया है। घर की आर्थिक विपन्नता के कारण वे कालेज की पढ़ाई नहीं कर सके। फलतः उनके मंसूबों पर पानी फिर गया। इतना ही नहीं, परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी उन पर आ पड़ी। वे नौकरी के लिए निकले।

सबसे पहले वे देवास महाराजा के राजकुमार के निजी शिक्षक बने। उसके बाद १८९४ से १९३७ तक विभिन्न स्थानों पर कई पदों पर रहे—राजकुमारों के ट्यूटर, इन्दौर की रेजीडेन्सी में अन्य रियासतों के वकील, पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी, रियासत के दीवान और अन्त में ग्वालियर रियासत के रजिस्ट्रार आफ एक्जामिनेशन्स के पद पर रहे। हर ओहदे पर आपने अत्यन्त योग्यता, स्वाभि-मान और निडरता से काम किया। सेवा-निवृत्ति के पहले ही ग्वालियर के महाराजा ने उन्हें राजकवि के सम्माननीय पद पर सुशोभित कर दिया था। कवि की हैसियत से तांबेजी इस शती के दूसरे दशक से लेकर मृत्यु (७ दिसम्बर, १९४१) तक मराठी साहित्य एवं काव्य जगत् में नक्षत्र की भाँति बराबर छाये रहे।

व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

अपनी उम्र के अट्ठारहवें वर्ष (१८९१) से, बल्कि उससे भी पहले से, वे कविताएँ रचने लगे थे, पर मान्यता मिली उन्हें कोई पन्द्रह-बीस साल बाद। इसके कारण थे, महाराष्ट्र से दूर होना तथा उनका स्वभाव। इसके अति-रिक्त प्रसिद्धि एवं प्रचार से बहुत हद तक वे विमुख थे। यही नहीं, अपनी कविताओं के प्रति लापरवाह भी थे। जब सूझी तब किसी कापी के पन्ने या कोरी सतह पर कविता लिख दी। साफ करना या संकलित करना, सँभालकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना उनकी प्रकृति में नहीं था। लेकिन उनकी स्मरण शक्ति अद्भुत थी। कविताएँ उन्हें याद रहती थीं। अतः कई बार अनेक रसिक एवं कविमना मित्रों ने उनसे साग्रह कविताएँ सुनीं और उन्हें लिपिबद्ध किया। ऐसे कविमना मित्रों में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध कवि वा० गो० मायदेव, इन्दौर के रा० अ० कालेले तथा पटवर्धन (माधव जूलियन) और पंडित के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने तांबे की कविताओं को संकलित, सम्पादित एवं प्रकाशित कराकर मराठी साहित्य का गौरव बढ़ाया है।

काव्य रचनाएँ

कवि तांबे बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार थे। अपनी मान्यताओं को उन्होंने कभी दबाया नहीं। उनकी मान्यताएँ स्पष्ट थीं, पर उनकी अभिव्यक्ति कभी उग्र नहीं रही। संस्कृत, हिन्दी, मराठी और अंग्रेजी के वह ज्ञाता थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजली का उनके काव्य पर अत्यधिक प्रभाव था। शेक्सपीयर के सानेट तथा संस्कृत के कवि मम्मट की टीका के अध्ययन से इस शास्त्र को वे अपने काव्य में लाये। इतना ही नहीं। अपने प्रिय कवि जयदेव के पदों की गेयता को अपनी कविता में लाकर उन्हें नाद मधुर व गेय प्रधान बनाया।

अपनी कविताओं को सरस, संप्रेषणीय, स्वाभाविक, स्थायी, अकलुष एवं गेय बनाने के साथ ही उन्होंने गीतों में वर्णित भाव के अनुकूल राग और ताल की सुन्दर योजना की है। यथा, 'डुमडुमत डमरू ये' वीर रस के भावगीत के लिए शंकर राग की योजना की। 'नववधु प्रिया' करुण-ललित राग में रचा, 'जो जो जो जो रे', सारंग राग में, 'नदी तिरी उसी' शोकगीत को जोगी जैसे अनुकूल राग में रचकर उसकी रसभीनता बढ़ायी। उनकी कविताओं का आधार आस्तिक्य है, नग्न भौतिकता नहीं। उनकी दृष्टि में रसों का सफल निर्वाह करना कविता की उत्कृष्टता की कसौटी है। कविवर तांबे के काव्य का एक और दिलचस्प पहलू है। वह व्यक्तिनिष्ठ काव्य के कट्टर समर्थक थे। उनकी दृष्टि शुद्ध कलानंदवादी भाव कवि की थी।

तांबे ने सभी प्रकार के गीतों की रचना की है। उनकी कविताएँ भावगीतों से ओत-प्रोत हैं। फिर भी हम उन्हें नाद मधुर भावगीत, नाट्यगीत, प्रेमगीत, रहस्यपूर्ण गीत, मृत्यु-विषयक या आशावादी गीत तथा सामाजिक और राष्ट्रीय गीतों को श्रेणी में विभक्त कर सकते हैं। कविवर तांबे के कुछ गीत यहाँ दिये जा रहे हैं जिनमें उनकी अलौकिक काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है। उनके ये गीत आज भी उतने ही सम-सामयिक एवं स्थायी हैं जितने उनके समय में थे।

प्रेमगीत

प्रेम का अस्तित्व अनेक रूपों में है। प्रेम ईश्वर की प्रतिमा है। प्रेम कभी बेकार नहीं जाता। वह जीवन की अभिव्यक्ति है। प्रेम तो मनुष्य की संस्कृति का सार है। संस्कृत कवियों ने 'शृंगारः प्रथमोरसः' कहा है। तांबे ने भी प्रेम को अपने काव्य में प्रथम स्थान दिया है। शृंगार उनकी कविताओं का स्थायी रस है। किन्तु उसमें वैषयिक भावना या उद्दीप्ति का नग्न प्रदर्शन नहीं होता है बल्कि नारी के सौन्दर्य के प्रति अधिक सम्मान है। यथा—

ज्योतिर्मय ही सखिची कांति
वाटे की मुखावी स्वांती
झोंकांडी दे न येचि हाती
ही माया निज संहराहरा

सत्यं-शिवं-सुन्दरम् का अनुभव कवि नारी के दिव्य आभायुक्त चेहरे की जगमगाती ज्योति रूपालोक में कर लेता है। कितनी नरमी, रस और कोमलता है। इस मृदुता एवं पावनता का कारण है उनका अत्यन्त परितृप्त दाम्पत्य सुखी जीवन। उन्होंने स्वयं कहा भी है—

"All my love songs could be produced because of my love for my own wife. In her absence, I could never have been able to dash out a single line of love."

(पत्नी के प्रति प्रेम के कारण ही मेरे समस्त प्रेम गीत रचे जा सके हैं। उसके अभाव में मैं प्रेम की एक पंक्ति भी कभी व्यक्त न कर पाता।)

यह इस बात का प्रमाण है कि तांबे की कविता का प्रेरणा-स्रोत उनकी पत्नी थी। प्रेम-विहीन संसार की उपमा वह एक निष्प्राण, नीरस बाँस से देते हैं—

तुज वीण निरस मी बांस। तसा जगतात।
रस जसा भरे जीवसा मधुर कवनात
प्रभुची विहरसी सखे सदा हृदयांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यापरी मधुप सुन्दरी । मधुर कमलांत
त्यापरी गुंतके हृदय तुझया प्रणयांत ।

जीवन-सत्य का संधान, स्वच्छन्दता और आदर्शवाद ही तांबे के प्रेमगीतों की विशेषता है । उनमें सब अवस्थाओं (विवाह-पूर्व, नव विवाह, प्रौढावस्था और वृद्धावस्था) का यथार्थ सुरुचिपूर्ण चित्रण रससिद्ध कवि ने किया है ।

रहस्यपूर्ण गीत

रहस्य साधना आत्मा की उस अवस्था का काव्यमय प्रकाशन है, जिसमें वह माध्यम या प्रतीकों के सहारे परमात्मा के मिलन का पूर्ण सुख प्राप्त कर लेती है । प्राचीन भक्त कवियों की जिज्ञासा भरे रहस्यपूर्ण गीतों की भाँति कवि तांबे ने भी इस प्रकार के रहस्यपूर्ण गीतों की संरचनाएँ की हैं । उन्होंने जीव और शिव के परस्पर सम्बन्ध को अथवा भक्त की अपने आराध्य के प्रति ललक, मिलन की उत्कंठा आदि गूढ़तम भावनाओं को अभिव्यंजित किया है । इसमें वे सूफी कवि जायसी और संत कबीर की श्रेणी में आते हैं ।

'नववधु प्रिया' नामक उनकी प्रसिद्ध कविता में इसी भावना के दर्शन होते हैं :—

नववधु प्रिया मी बावरते ! लाजते, पुढे सरकते, फिरते
कव्ठे मला तू प्राण सखां जरी
कव्ठे तूज आधार सुखां जरी
तुजवांचुनि संसार फुका जरी
मन जवव्ठ याक्या गागरते ।

नवोढा अपने प्रिय से कहती है, मैं यहाँ घबराती हूँ । शरमाकर आगे आती हूँ । आप ही मेरे सर्वस्व हैं । तुम्हारे बिना संसार व्यर्थ है । जानती हूँ, फिर भी मन घबराता है, धीरज नहीं है । घर-माया-मोह की ओर मन खींचता है । यही दशा एक भक्त की भी है । कितना सुन्दर साम्य तूलिका है । अन्त में मार्ग मिल जाता है । नववधू कहती है—

अता तूच भय लाज हरी रे
धीर देऊनी ने नवरी रे
भरोत भरती नेत्र जरी रे ?
कव्ठ पव्ठभर मात्र । खरे घर ते ।

अर्थात्, हे प्रियतम, मेरी लाज रखकर तुम ही धीरज बंधा सकते हो । चाहे मेरी आँखों में आँसू आयें, दिल में वेदना भी उत्पन्न हो परन्तु मेरा घर वही है । तांबे की यह रहस्य भावना उस असीम के प्रति जिज्ञासा लौकिक सम्बन्धों पर आधरित है और भावना का अनूठा संयोग है ।

आशावादी गीत

तांबे धार्मिक एवं श्रद्धालु प्रकृति के कवि थे । प्रभु के अस्तित्व को उन्होंने हमेशा स्वीकारा तथा उसके बल पर कभी निराशा का अनुभव नहीं किया । जो अपने आप में जिया और भोगा उसीके अनुसार आशावादी बनने के लिए अन्यों को प्रोत्साहित किया । उनके ये (मृत्यु-विषयक आशावादी) गीत अंग्रेजी कवि ब्राउनिंग के गीतों की भाँति ओजस्वी नहीं हैं, किन्तु सारगर्भित और अमरता का सन्देश देते हैं । बानगी देखिए—

यापरी असे जीवन ! सखेगे चंचल अमुचे क्षण
ते संध्या मेघावरीं । चमकती किरण क्षणभरी ।
परि जाति कुणिकडे सांग आम्हाला चटका लावून ।

जीवन क्या है ? सायंकालीन मेघ पर क्षण भर चमकने वाली सूर्य किरणों के सदृश अर्थात् क्षण-भंगुर । उसमें संकट है । आपा-धापी से बड़े-बड़े साधक, तपस्वी, योगी और सम्राट् भी नहीं बच सके हैं । यहाँ तक कि जिनका दास साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण बना उन पाण्डवों को भी राज-पाट छोड़कर, दास होकर दूसरों की सेवा करनी पड़ी—

दास जयांचा झाला श्रीहरि ।
तयां पांडवां सुटली नगरी ।
दास बनुनि राबती परक्या घरी ।
मनोदुर्ग फुटले ! जगी या भोग कुणा सुटले ?

फिर हम तो अकिंचन प्राणी हैं । कवि का आशावाद जीवन तक ही सीमित नहीं, वह मृत्यु के प्रति भी उदार एवं आशावादी है—

मना वृथा का भिशी मरणा,
दार सुखाचे ते हरि करुणा ।

संसार मृत्यु से ही सचमुच जगता है । उनकी यह संवेदना प्रगतिवाद-छायावाद के बहुत निकट है । 'मरणात खरोखर जग जगते ।' तात्पर्य यह कि खोने के बाद ही कुछ मिलता है । मृत्यु में ही अमरता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूल गव्ठे फव्ठ गोड जाहले
बीज बुरे डोलात तरू डुले
तेल तव्ठे, बघ ज्योति पाझव्ठे
का मरणि अमरता ही न खरी।

पुष्प के झरने के बाद फल आता है। बीज के नष्ट हो जाने के बाद वृक्ष दिखलायी देता है। तेल जलता है तभी ज्योति मिलती है। मरण में ही अमरता है।

सामाजिक तथा राष्ट्रीय गीत

राजकवि तांबे ने राष्ट्रीय एवं सामाजिक कविताएँ भी लिखी हैं। वे क्रांतिकारी कवि नहीं थे, फिर भी उन्होंने अपने और आसपास के जीवन से आँखें कभी नहीं मूँदीं, जन जीवन से वे कतराये नहीं। अपने समय में लोकमान्य तिलक द्वारा चलाये जा रहे उग्र स्वाधीनता आन्दोलन में उनका सहयोग कविता के माध्यम से कम नहीं रहा। देशवासियों में उन्होंने जागरण का शंखनाद किया। भारतमाता, मातृभूमि और राष्ट्रीयता का महत्त्व प्रतिपादित किया। 'रुद्रास आह्वान' उनके क्रान्तिगीत का अप्रतिम उदाहरण है—

डुम डुमत डमरू ये, खणाखणत शूल ये।
शंख फुंकीत ये, येई रुद्रा।

अंग्रेजी हुकूमत के बढ़ते हुए अत्याचारों के विरोध में उन्होंने रुद्र यानी शिवजी के भयानक रूप का आह्वान किया था। आकाश फोड़कर, सूर्य को कौंधते हुए और पहाड़ों को उड़ाते हुए कौन देव आ सकता है सिवा रुद्र के! तभी उन्होंने क्रान्तिरूप रुद्रास से कहा—

पाड सिंव्हासनें ही पालथी
ओढ हत्तीं वरूनि मस्त नृप खालती
मुकुट रंकास दे, करटि भूपा प्रति
झाड खट्खट् तुझें खड्ग रुद्रा।

सिंहासन उलट दो। उन्मत्त शासकों को फेंक दो। गरीबों (जनता जनार्दन) के सिर पर राजमुकुट पहना दो। शांति का पाठ क्षुद्र कीड़ों का रोना है, जलाशय पर का बुदबुदा है, जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। हमें तो प्रज्ज्वलित क्रान्ति चाहिए। नृसिंह का भयानक रौद्र रूप। क्या तांबे के ये विचार और ये कविताएँ क्रान्तिकारिता की परिभाषा में नहीं आती है? क्रान्तिवीरों को मातृभूमि पर न्योछावर होने की प्रेरणा वे इस प्रकार देते हैं—

घाबरू नको, बावरू नको! क्षण भीतीने गांगरू नको।
जरी घुठीने डोव्ठें मिटतीं धूम्र मेघ कष्टी घुरघुरती
सैरा-वैरा सैनिक पव्ठती। तरी रणांगणातून फिरूं नको।

आँखें बन्द हो जायें, शरीर धूल में मिल जाय, कंठ अवरुद्ध हो जाय, चाहे जो हो जाय, रणभूमि से भागो मत। क्योंकि 'स्वातंत्र्याची आंस घरावी' अर्थात् स्वतन्त्रता के यज्ञ के सामने सब बेकार व निरर्थक है। अंग्रेजो सत्ता पर व्यंग्य कसते हुए उन्होंने 'आजादी' के प्रति भविष्यवाणी की थी—जो १५ अगस्त, १९४७ को पूरी हुई—

या भविष्याचिया दिव्य करागिरा
कोण रोधील? दे कोण कर सागरा।

सामाजिक क्रान्ति के बिना सर्जनात्मक प्रवृत्ति और आत्माभिव्यक्ति की निष्कृति की इच्छा अधूरी रह जाती है। कवि सुलभ संवेदना के वशीभूत तांबे ने सामाजिक अन्याय, रूढ़िवादिता पर भी रचनाएं की हैं, किन्तु अधिक नहीं। विधवा जीवन पर 'विधवे चा आत्मयज्ञ' शीर्षक करुण रसार्द्रता से ओतप्रोत उनकी एक गंभीर कविता प्रस्तुत है—

या विधवांवारी दया करा हो कळव्ठूनि बोले
कोंदण हरपे दीन हिरकणी कोफ्यात लोव्ठे
असे वाटते मज दगडा कधि बधुनि तिचे डोव्ठे
ती चंद्राची कोर हो जिला लाजावे रति ने
कव्ठाहीन लागले दिसाया हाय काव्ठगती ने।

कवि कहता है कि विधवा पर दया करो। जिस तरह जडित न रहने पर कीमती नग इधर-उधर पड़ा रहता है उसी तरह विधवा की गति है। उसकी आँखें देखकर पत्थर भी पिघल जायगा। उसकी सुन्दरता के आगे द्वितीया का चन्द्रमा भी फीका लगता है और स्वयं रति भी लजाती है। वही बेचारी काल के दुष्प्रभाव से कलाहीन है।

इस प्रकार कविवर भास्कर रामचन्द्र तांबे ने विविध विषयों पर काव्य रचनाएं की हैं। उनकी कविताओं में राजनीतिक अन्याय का निषेध, सामाजिक कुरीतियों के प्रति आक्रोश, शुद्ध प्रेम तथा आध्यात्मिकता का सुन्दर समन्वय है। इसके लिए उनका गहरा दर्शन है बाल सुलभ विनोद, गेयता और प्रामाणिकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबा हरीदास : रचनाएँ (१)

श्री रामप्यारे त्रिपाठी

यों तो बाबा हरीदास ने कई मौलिक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, परन्तु जिस रचना के कारण वह प्रकाश में आये, वह है रामचरितमानस की टीका। टीका का नाम तो 'रत्नावली' है परन्तु अपनी शैली के कारण वह 'शीला वृत्ति' के नाम से ख्यात हुई। टीका के स्रोत तथा उसकी विशिष्टता के प्रति टीकाकार का कथन है :

श्री स्वामी रघुनाथ गुर, जुगलानन्य प्रकास।
जानुकिदास सुमाधवो, सीतासरन बिलास॥
सीतासरन बिलास, दास हरि के जे औरौ।
सबही निज मति सोधि, बोधि जहँ लगि मन दौरौ॥
पाठ अर्थ करि ठीक, लीक स्रुति संतन केरी।
श्रीमानस रामैन, बैन तुलसी के हेरी॥
गुप्त प्रगट मनि मानि कछु, भरि पराग रस बास।
श्री स्वामी रघुनाथ गुर, जुगलानन्य प्रकास॥

(टीका हस्तलिखित प्रति, भूमिका अंश।)

'पाठ अर्थ करि ठीक' तथा 'बैन तुलसी के हेरी' शब्द विचारणीय हैं। यद्यपि टीका के हस्तलेख की भूमिका में बाबाजी ने लिखा था कि 'श्रीमानस रामा-ऐन में जो असुद्ध पाठ होइ गये हैं, सो निसारि कै सुद्ध पाठ राखे, तुलसीदास जी के बचन हेरि कै····यहिमा पुराचीनी पोथिन से देखि कै औ महात्मन की सलाह ते, सुद्ध कीन गइ है सो उलट-पलट ना करब, जेहि बिधि लिखा है, वैसन राखब' फिर भी प्रकाशित संस्करण में हस्तलेख के प्रतिकूल मूल तथा टीका दोनों में शब्दों के संस्कृत रूप कर दिये गये हैं, जिससे टीका का सौंदर्य ही जाता रहा है। यद्यपि टीका के दो संस्करण हो चुके हैं तथापि मूल प्रति से पाठ मिलाकर पुनः संपादन और प्रकाशन की आवश्यकता अभी बनी हुई है। पहला संस्करण श्री मुन्नालाल ने बाबाजी के जीवन काल में सन् १९०६ ई० में मुंशी नवलकिशोर के छापेखाने से प्रकाशित कराया था, और दूसरा संस्करण श्री गौरीशंकर शाह ने सन् १९३५ ई० में शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस, लाटूट (लाटूश) रोड, लखनऊ से प्रकाशित कराया। प्रथम संस्करण की प्रतियाँ अब देखने को भी नहीं मिलतीं। दूसरे संस्करण की प्रतियाँ बाबाजी के भक्तों के पास मिल जाती हैं। केवल टीका अंश सर्वप्रथम चन्दापुर के राजा जगमोहन सिंह ने छपाया था, जिसकी कोई प्रति देखने को नहीं मिल सकी।

बाबाजी का हस्तलेख सुपाठ्य तथा सुंदर नहीं था। उनके हाथ का लिखा टीका सम्बन्धी एक बड़ा पत्रा उपलब्ध है, शेष नष्ट हो गये। कहते हैं कि बाबाजी इसी प्रकार लिखते थे, और बाद में उसे सुपाठ्य लिखा जाता था। इस उपलब्ध पत्रे पर भी बीच में बाबाजी के अतिरिक्त दो अन्य व्यक्तियों के हस्तलेख हैं। कुछ अंश श्री भगवंत लाल का लिखा है, और कुछ एक अन्य व्यक्ति का लिखा है जिसके हाथ की लिखी पूरी टीका अभी उपलब्ध है। टीका की यही प्रति मूल प्रति माननी चाहिए। इससे दो प्रतियाँ श्री भगवंतलाल ने तैयार की थीं, और वे भी उपलब्ध हैं। इन हस्तलेखों में 'मानस' के मूल पाठ के उन्हीं अंशों को रखा गया था, जिनकी टीका की गयी थी। बाद में प्रेस कापी के लिए पूरे मानस का मूल सटीक तैयार किया गया। यह भी सजिल्द उपलब्ध है। इस प्रकार टीका के चार हस्तलेख प्राप्त हैं।

बाबाजी ने पूरे मानस की टीका न करके विशिष्ट स्थलों की ही टीका प्रस्तुत की है। टीका की भाषा बोल-चाल की अवधी है, जिसमें भाषाविज्ञानियों के लिए भी बड़े काम की सामग्री सुरक्षित है। सुन्दर मौलिक भावों एवं प्रत्येक सोपान के आरम्भ तथा अंत में स्वीकृत छंदों से युक्त होने के कारण टीका कथा-वाचकों एवं भक्तों के लिए बड़ी उपयोगी है। रामचरितमानस की प्रायः सभी प्राचीन टीकाओं के भावों का संग्रह करनेवाले 'मानस-पीयूष' के लेखक श्री अंजनीनन्दन शरण ने इस टीका के प्रति कितना सटीक उल्लेख किया है--'आपने रामचरित-मानस की जो टीका की उसमें बड़े विलक्षण भाव जहाँ-तहाँ पढ़ने में आये, जो आपके ही हृदय से निकले थे। कहीं किसी अन्य टीका में वे भाव नहीं देखने में आये। मूल पाठ पूरे मानस का दिया है, पर टीका यत्र-तत्र-जहाँ औरों से विलक्षण भाव सूझा है, वहीं की—है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीसे आप अपनी टीका को 'शिला' या 'शीला' कहते थे, और शीला वृत्ति टीकाकार कहे जाते थे।'

(कल्याण के मानसांक में प्रकाशित लेख। पृ० ९१९)

'मानस' में जहाँ 'बहु विधि समुझाई', 'समुझाई' या 'बुझाई' आदि के प्रसंग आये हैं बाबाजी द्वारा उनकी विशद टीका प्रस्तुत की गयी है। प्रायः पाँच-पाँच प्रकार से 'समुझाई-बुझाई' का भाव समझाया गया है। 'समुझाई-बुझाई' प्रसंग की चौपाइयों की टीका का एक अलग हस्तलेख भी है। इसमें २४ पत्रे हैं। 'अथ, अर्थ रत्नावली लिख्यते' से इसका प्रारंभ किया गया है, और इसमें सोपान के क्रम से संकलन है। टीका का यही अंश 'समुझाई' कहा जाता है। 'शीला' एवं 'समुझाई' के महत्त्व के सम्बन्ध में 'शीला' के उत्तर-कांड के मूल हस्तलेख के अंत में प्रतिलिपिकार का यह उल्लेख है : 'अर्थ लिखि गये अरथ रत्नावली जो संकावली में नहीं बने ॥ १२ ॥ अरु समुझाई तव सब लिखि गई समुझाई में ॥'

(उत्तरकांड की मूल टीका, पत्रा-संख्या २१)

वस्तुतः कथित 'समुझाई' टीका का अंशमात्र है, कोई स्वतन्त्र रचना नहीं।

टीका के प्रत्येक सोपान के प्रारम्भ तथा अंत में 'रामचरितमानस' की प्रशस्ति सम्बन्धी घनाक्षरी छंद दिये गये हैं तथा 'मानस' अथवा तुलसीदास की प्रशस्ति में दोहे भी हैं। इनका अपना स्वतन्त्र महत्त्व है। अपनी विनय-पटुता दिखाते हुए 'शीला' के प्रति बाबाजी का एक घनाक्षरी छंद द्रष्टव्य है, जिसमें 'मानस' के प्राचीन टीकाकारों का भी उल्लेख है :

महाराज स्वामी श्री रामचरन औध माहिँ,
कीन्हेव रामायन को तिलक सो अनूप है।
दूसर श्री राम बकस, तीसर पंजाबी कहि,
चौथो हरिहरप्रसाद कीन्हेउ सो खूप है॥
पंडित श्री राम के गुलाम नाम मिरजा पुर,
बरने बहु भाव अर्थ दरसत हरि रूप है।
कासी में बंदन संकावलि सब रासिये,
दासहरी 'सीला' हरि लीला सुख-भूप है॥

('शीला' की भूमिका, हस्तलिखित, पत्रा-संख्या १)

बाबाजी के कहने का तात्पर्य है कि पूर्व के टीकाकार कोई किसान 'मानस' के भावों की खेती तो काट ले गये, मैंने मजूर के रूप में 'शीला' एकत्र की है। अपनी विनम्रता दिखाते हुए बाबाजी ने आगे लिखा है :

कोटिनि सेस अनेक जुग, करैं रमायन अर्थ।
तबहूँ पार न पावते, दासहरी असमर्थ॥
ज्यों चातिक की सक्ति नहिँ, गहै स्वाति सब नीर।
दास हरी कछु मुख परै, हरै प्यास की पीर॥

(वही, पत्रा-संख्या १)

यहाँ बाबाजी की विनयशीलता दर्शनीय है। टीका के अन्त में उसका रचना काल एवं नाम देते हुए हस्तलेख में टीकाकार ने लिखा है :

बनइस सै येकतालिसौ, संवत फागुन मास।
कृष्न पक्ष एकादशी भौमवार सुखवास॥
सुभग अर्थ रत्नावली, श्री रामायन केरि।
संपूरन भै दास हरि, कही जथामति मेरि॥

(हस्तलिखित, उत्तरकांड, पत्रा-संख्या २१)

यह अंश प्रकाशित संस्करण में नहीं छपा है। इससे प्रकट है कि 'शीला वृत्ति रत्नावली' की रचना ९२ वर्ष की वय में देहावसान से ३३ वर्ष पूर्व पूर्ण हुई थी। जो लोग गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत् १५५४ वि० इसलिए मानने से हिचकते हैं कि ऐसा मानने से 'मानस' का रचनाकाल ७७ वर्ष की वय में मानना होगा, उन्हें इस प्रकार की असंगति को निराधार समझना चाहिए।

टीका के अन्त में बाबाजी ने उसके शोधक तथा लेखक का भी उल्लेख यों किया है :

अर्थ भाव भासब कथा, सो पराग रस बास।
दास हरी मति जस भरी, तसि करि प्रकट प्रकास॥
तस करि प्रगट प्रकास, आस मारुति पद रज की।
धुनि अवरेब कवित्त, जाति गुन अक्षर सज की॥
सिव परसन तेहि सोधि, बोधि संतन मन भाएव।
स्रोता सुनि सुनि रसिक, असिक है सबहि सुनाएव॥
भगिवंतलाल मन मधुप के, आलन और सुपास।
अर्थ भाव भासब कथा, सो पराग रस बास॥

(हस्तलेख, उत्तर कांड, पत्रा-संख्या २१)

श्री शिवपरसन सिंह जेहवा के क्षत्रिय थे। ये बड़े कुशाग्र बुद्धि थे। बाबाजी टीका में इनकी सम्मति लिया करते थे। इनके शोधन के पश्चात् श्री भगवंतलाल इसे सुन्दर अक्षरों में लिखते थे। ये ग्राम शमसपुर हलोर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कायस्थ थे, और पटवारी थे। कहते हैं निलंबन की अवधि में उन्होंने पूरी 'शीलावृत्ति' टीका का हस्तलेख तैयार किया था। इनकी लिखी शीलावृत्ति की दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं। ये बड़े सुन्दर अक्षर लिखते थे।

'शीला' टीका के इतने परिचय के पश्चात् टीका की शैली एवं भाषा की सामान्य जानकारी के लिए उससे एक उदाहरण देना आवश्यक प्रतीत होता है। 'मानस' की सुप्रसिद्ध सतपंच चौपाई सम्बन्धिनी पंक्तियों की टीका इस प्रकार है :

सात हू पाँच चौपाई मनोहर हैं ।। जानि जो उर में धरै ।। तव दारुन अबिद्या अरु पंच जनित बिकार कहे काम क्रोध लोभ मोह मद—ई पाँच करिकै जो उतपन्न है बेकार ।। सो ताको श्री रघुपति हरैंगे ।।१।। पुनः सात प्रथम कहा अरु पाँच पीछे कहा सो हेत यह है की अबिद्या जो है माया ताके सात आवर्न हैं पिंड ब्रह्मांड में सात चौपाई करि सात आबरन टूटि गये अरु पाँच चौपाई से पेंच बेकार कामादिक पेंच जनित बेकार श्री रामजी हरैंगे ।।२।। पुनः सात पाँच मिलि बारह होत हैं ।। अरु बारही रासि में सर्व जीव हैं ।। जहान में सो बारह चौपाई सर्व जीव को मंगल कारी हैं ।।३।। पुनः बारह मास को बर्ष होत है। सो एक एक चौपाई एक एक मास के पाप हरत है जीवन के ।।४।। पुनः बारह चौपाई बारह भक्ति देने वाली हैं ।। श्रवन ।। कीर्तन ।। बिष्नु स्मरण ।। पद सेवन ।। अर्चन ।। बंदन ।। दास्य ।। साष्य ।। आत्म निबेदन ।। नौ ई भई ।। पुनः प्रेमा ।। परा ।। अनपायइनी ।। तीनि ये मिलि बारहौ भक्ति देती हैं बारह चौपाई ।।५।। पुनः दश इन्द्री अरु सुभाउ चित्त को सुद्ध करि रामजी का मिलावत हैं बारह चौपाई ।।६।। पुनः बारह बानी को साधु करि देत हैं बारह चौपाई ।। सील संतोष छमा धीरज अहिंसा सम दम सौच दया दान तप निर्मानता ये सुभ लक्षण बारह ।। श्लोक ।। सील तोष छमा धीर्जं अहिंसा सम दम सुचिः ।। दानं दया अमानश्च तपः यैदि षट लक्षणम् ।।७।। अरु थोरी बात कहि बड़ो काम सरै। तौ पदारथ की चोखाई होती है। अरु बहुत बात कहि काम थोरा सरबक है। तव पदारथ की निउनता होती है। तेहि हेत थोरी बार है चौपाई कहा है।। अरु सात पाँच की लोकवार्ता है।। तेहि हेत सात पाँच चौपाई कहा है। अरु सात सत को कछु भेद नहीं है। बड़े छोटे अक्षर को तत्प्रमान ।। चले सहित सिय सरधनु पानी ।। अरु हाथ को पानि कहना ठीक है ।। छोटे से कठौता भरि आनि पानि गंगाजी को ।। इहाँ पानी कहिना ठीक है। सो सतपंच जव सत कहे सव अरु पांच कहे तव बहुती चौपाई होती हैं। औरी चोखाई छंटनी में परी जात हैं। जानौ एक सै पांचै चौपाई चोखी हैं ।। अरु बहुती चौपाई कहिने से पदारथ की चोखाई में बिरोध पावत है। थोरही कहे से चोखाई होत है वस्तु की तेहि हेत बारहै चौपाई कहा है ।।

(उत्तरकांड, हस्तलिखित पत्रा सं० १८, १९)

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि इस टीका का विशेष महत्त्व भक्तों एवं कथा-वाचकों के लिए है। इसकी भाषा का अध्ययन साहित्य की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। टीका की मुख्य विशेषता भावों की नवीनता एवं मौलिकता में है। अन्य टीकाकारों के भावों की पुनरावृत्ति नहीं की गयी है।

'मसल-विवेक'—३१५ सवैया छंदों की एक अनूठी एवं अनुपम रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रति में २९ पत्रे हैं। प्रारम्भ में संग्रह का नाम 'मसल-विवेक' दिया है, अंत में कोई फलश्रुति अथवा पुष्पिका नहीं है। 'मसल-विवेक' के ५९ छंद (छंद संख्या १७२ से २३०) बाबाजी के एक अन्य संग्रह में भी मिलते हैं, जिसमें २४८ छंद संगृहीत हैं, और जिसका कोई नाम नहीं दिया हुआ है। दूसरे संग्रह के इन छंदों की अंतिम पंक्तियों में 'कहि दास हरी' के स्थान पर केवल 'दासहरी' पाठ मिलता है। 'मसल-विवेक' के छंद संख्या १४९ के 'कहि दास हरी' तक का कागज तथा हस्तलेख भिन्न प्रकार का है, तथा उसके बाद छंद संख्या १५० के 'कहि दास हरी जग है पसरी जि' तक का कागज तथा हस्तलेख भिन्न प्रकार का है। इसके पश्चात् फिर पहले जैसा कागज तथा हस्तलेख है। बीच का हस्तलेख भगवंत लाल का प्रतीत होता है। इसकी पत्रा संख्या १४ व १५ है। पत्रा-संख्या १३ व १४ के बीच में पहले प्रकार के कागज के एक पत्रे का थोड़ा अंश सिलाई के पास अभी लगा है। इसी प्रकार पत्रा-संख्या १४ व १५ के बीच में पत्रा-संख्या १३ व १४ के समान एक पत्रे के कागज का थोड़ा अंश लगा है। इससे अनुमान होता है कि छंद संख्या १४९ के आगे कुछ अन्य रचनाएँ संगृहीत थीं, जिन्हें निकाल कर दो नवीन पन्ने लगाये गये हैं। छंद संख्या १७२ से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छंद प्रारम्भ हो जाते हैं, जो दूसरे संग्रह में भी हैं। अनुमान है कि इस दूसरे संग्रह में उपलब्ध ५९ छंदों की रचना पहले हुई थी। जब उस प्रकार के और भी छंद पर्याप्त मात्रा में बन गये तब उन ५९ छंदों को भी इस संग्रह में सम्मिलित कर लिया गया।

गाँव की बोली में चलती हुई मसलों (लोकोक्तियों) को लेकर इनकी रचना की गयी है। सभी छंदों में भक्ति-सदाचार का उपदेश दिया गया है, और प्रत्येक छंद के अंतिम चरण में एक लोकोक्ति प्रयुक्त हुई है। ग्रामीण कहावतों को लेकर भक्ति-भाव पूर्ण यह रचना प्रस्तुत करके बाबाजी ने अभूतपूर्व कार्य किया है। जायसी के 'मसला-नामा' के पश्चात् अवध जनपद की लोकोक्तियों पर यह सफल रचना है। इसमें आयी हुई मसलों के प्रयोग अत्यन्त भव्य, सजीव और लोक-जीवन के प्रतिनिधि हैं।

'मसल विवेक' प्रथम बार 'शीला वृत्ति' टीका के दूसरे संस्करण के साथ उसके अंत में प्रकाशित हुआ था। दूसरी बार स्वतंत्र पुस्तिका के रूप में शंकरबक्स सिंह ने अनिल प्रिंटिंग प्रेस, ३१-बी कचेहरी रोड, इलाहाबाद से सन् १९७२ ई० में प्रकाशित कराया है। प्रथम संस्करण में देशी शब्दों के कहीं-कहीं संस्कृत रूप कर दिये गये थे, तथा कुछ छापे की भी त्रुटियाँ हो गयी थीं। दूसरा संस्करण प्रथम संस्करण के आधार पर छापा गया, मूल हस्तलेख से संशोधन नहीं किया गया, और उसमें छापे की बहुत-सी भूलें हो गयी हैं। इस रचना से एक उदाहरण प्रस्तुत है :

तजि पारस नाम सुधा परसा
झरसा मुखकै निति माँगत खोंची।
दिन रैन सदा दुख ऐन परचो
हहरचो कहरचो न मरचो नित सोची।
पुनि अंत बस्यो जमधाम हराम
सिझावहि चाम पलो खग नोची।
कहि दासहरी बिगरी सगरी खल
अंत रहेउ मोची कर मोची॥
(छंद संख्या ६)

हमारा विश्वास है कि यदि सरकार इस पुस्तक को प्रकाशित कराकर पाठशालाओं तथा विकास खंडों में इसके वितरण की व्यवस्था करा दे, तो इससे जनता को चरित्र-निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण मार्ग-प्रदर्शन होगा। इस पुस्तिका का प्रकाशन बाबाजी के भक्तों द्वारा कराया गया है परंतु, इसके प्रचार-प्रसार की कोई समुचित व्यवस्था न हो सकी। आशा है कि अच्छे प्रकाशक कभी क्रमशः इसके प्रकाशन एवं प्रचार की ओर ध्यान देंगे।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सहृदय समीक्षक का जन्म

डा० महेन्द्रनाथ पाण्डेय

एक अच्छा मालिक मिलने के कारण महिषदेव को वैसे तो किसी प्रकार की कोई कमी नहीं थी, लेकिन इधर कुछ दिनों से उन्हें एक विचित्र एकरसता का अनुभव होने लगा है। जीवन के चलते ढर्रे से उन्हें कुछ ऊब होने लगी है। उन्हें कुछ परिवर्तन चाहिए। जीवन में कुछ नया होना चाहिए। मनुष्यों की संगति में उन्हें कुछ अधिक रहने का सुअवसर तो नहीं मिला, लेकिन जो भी मिला है, उससे उनका अनुभव है कि सृष्टि का यह सर्वोच्च प्राणी भी इस एकरसता से पीडित है। उस दिन कोने में खड़े होकर मुशायरे में उन्होंने एक शेर सुना था। उसमें भी कुछ इसी तरह की बात कही गयी थी :

शामें किसी को माँगती हैं आज भी फ़िराक़
गो ज़िन्दगी में अब कहीं कोई कमी नहीं।

कमी तो महिषदेव की ज़िन्दगी में भी नहीं थी, लेकिन फिर भी····। मालिक उनका काफी उदार था। उनकी थोड़ी सी सेवा पर ही प्रसन्न रहता था। वह महीने-दो-महीनों में कुछ 'झाड़न बहारन' इकट्ठा करता था और महिषदेव उसे चौकड़ी भरते हुए उचित स्थान पर गिरा आते थे। मालिक ने प्रसन्न होकर उनके खान-पान एवं रहन-सहन की स्थायी व्यवस्था कर दी थी। अब उन्हें नित्यप्रति की जरूरतों की कोई फिक्र नहीं थी, लेकिन चूंकि 'तुष्टात्माविनश्यति' अतः महिषदेव ने नारा दिया—'जीवन आगे को बढ़ना है'। नयी दुनिया, नयी गलियाँ, नये लोग, नया तेवर, नयी अभिरुचि, नयी अभिव्यक्ति, नयी परतें, नयी लहरें, अनजाना प्रदेश, अनजानी जगह—'लाइफ' कुछ 'एडवेंचरस' होनी चाहिए। लेकिन यह नव्य परिवर्तन हो तो कैसे हो? महिषदेव चिन्तित थे। कल अचानक उन्हें आशा की एक किरन दिखायी पड़ गयी। उन्होंने सड़क के किनारे एक भीड़ देखी। सिंह, भालू, चीता, बकरा, गाय, कोकिल, सारस, हंस, मैना आदि सभी एक-एक करके वहाँ आते थे और 'पूर्णकाम' होकर लौटते थे। सड़क के किनारे 'जम्बूक ज्योतिषी' ने हस्त-रेखा परीक्षण-केन्द्र खोल रखा था। 'जम्बूक ज्योतिषी' त्रिकाल को भेद करके भविष्यत् के गह्वर में छिपी सफलता रूपी कामिनी का केश खींचते हुए यजमान के आगे रख देते थे और कहते थे, 'वत्सराज, जाओ अब मौज करो'। महिषदेव को भी अपनी 'भाग्य भामिनी' को पाने का यही सर्वोत्तम अवसर दिखायी दिया। आज वे भी जम्बूक ज्योतिषी से अपनी प्रिया का पता पूछेंगे।

"आइए, आइए, महिषदेवजी! अरे भाई, आपको तो बहुत पहले ही यहाँ आना चाहिए था। मैंने तो आपको उसी दिन पहचान लिया था, जिस दिन आप 'रिफरेंसेज' के कचरों से लदी गाड़ी में नधे चले जा रहे थे। आपको देखने के बाद मुझे लगा कि एक कलाकार गलत स्थान पर फिट हो गया है। अरे भाई! आपके भाग्य की रेखाएँ तो सीधे ब्रह्मा से होड़ लगाती हैं। आप तो साहित्य-समीक्षक होने के लिए पैदा हुए हैं। आप उसे छोड़कर कहाँ इस गलत स्थान पर फिट हो गये हैं?"

'लेकिन, शास्त्रीजी, इसीके कारण रोटी रोजी की स्थायी व्यवस्था हो सकी है।"

"तब तो और भी ठीक है। आप निश्चिंत भावेन साहित्य-सेवा कीजिए। कलम उठाते ही सरस्वती—'विधि भवन बिहाई'—आपके जिह्वाग्र पर आ धमकेगी।"

इसके बाद जम्बूक शास्त्री ने उन सहृदय महिषदेवों की एक सूची उन्हें दिखायी जो जम्बूक शास्त्री की राय पर अमल करके सोफा सेटों में डूब गये थे। जम्बूक शास्त्री के इस रहस्योद्घाटन से महिषदेव को अपार हर्ष हुआ। उनके दिल में उमंगों की हिलोरें उठने लगीं। महिषदेव ने खुरचारी मारी। जम्बूक शास्त्री को धूल-धूसरित किया और किलकारी मार करके दौड़ पड़े। वे ७० मील की 'स्पीड' से कमल के तालाब की ओर जा रहे थे। उधर तालाब में कमलों की मंजुल पाँत सजी थी, मृणालों का मधुर बंधन बँधा था, भँवरों की मोहक गुनगुन हवा में तैर रही थी मराल डूब-डूबकर क्षीर (मृणाल-रस) सेवन में संलग्न थे। बगल के रसाल वन में कोकिल पंचम स्वर में टेर रहा था। उमंगों के वेग में महिषदेव छपाक से तालाब में कूद पड़े। कमल-सर के निवासी सहृदय रसिक इस आकस्मिक अकल्पित वज्राघात के लिए तैयार नहीं थे। छपाक की ध्वनि सुनते ही राजहंस आकाशगामी हो गये। कोकिल ने उनकी मेघ निर्घोष चिग्घाड़ को सुन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर चुप्पी साध ली। भँवरे बेचारे किसी भाँति प्राण बचा कर पलायित हुए, लेकिन वह दीन मीन आखिर कहाँ जाय। वह बेचारा कीचड़ में धँसकर महिषदेव के पाद-प्रहार से बच-बचकर किसी भाँति अपनी प्राण-रक्षा करता रहा। महिषदेव ने पूरे तालाब को मथ डाला। जमकर मड़िया-सेवन करने और अमर सन्तोष से जीवन-यापन करने लगे।

साहित्य के क्षेत्र में एक सहृदय समालोचक जन्म ले चुका है। ये अल्पप्राण मराल, काले कोकिल, गुनगुनाते भँवरे और गन्धवाही पवन, मेरी अनुपस्थिति में इस 'नीर-नीरज मण्डितम्' सरोवर के 'विशिष्ट शुभचिन्तक' बन गये थे। लेकिन अब ऐसा नहीं होगा। सरोवर के मर्म का उद्-घाटन अब होकर ही रहेगा। सरोवर का मर्म अब कोई पिटारे में नहीं बंद रख सकेगा। साहित्य की दुनिया में यह धींगामुस्ती अब नहीं चलेगी। लोगों ने मन्दिर में बड़ा कूड़ा जमा किया है। महिषदेव इस सरस्वती मन्दिर की स्वच्छता के लिए सफाई-अभियान चलायेंगे। सरस्वती-मन्दिर की सफाई के लिए यदि उन्हें मेहतर का भी रोल अदा करना पड़ा तो वे करेंगे। साहित्य का मर्म अब अनुद्घाटित नहीं रहने पायेगा। "इस कोकिल को पंचम स्वर में टेरने की कला मैंने दी थी। भँवरों को गुनगुनाने का अन्दाज मैंने सिखाया था। मराल के अन्दर नीर-क्षीर विवेक मैंने ही पैदा किया था। गन्धवाही मलय का सौ-पचास बड़े लोगों से परिचय मैंने ही कराया था। लेकिन ये सब के सब गद्दार हो गये हैं। इन सबने कभी यह नहीं बताया कि मेरे भीतर एक सहृदय समीक्षक तड़फड़ा रहा है। च्च च्च! इस बेचारे समीक्षक को काफी दिनों तक अज्ञातवास झेलना पड़ा। लेकिन अब ?····अब ऐसा नहीं होगा। **वासंती निशा में, दृग बंद किये, शिथिल पत्रांक में, विजन वन वल्लरी पर सोयी हुई सुहागिन जुही की कली अब मेरे इशारे पर मुसकरायेगी। निराला के निर्दय नायक की निपट निठुराई का बदला अब मैं लेकर ही दम लूँगा। उजड्ड कहीं का! निर्दयतापूर्वक झोंकों की झड़ियों से सुन्दर सुकुमार देह को झकझोरने की क्या जरूरत थी ?** मधुमास में जब पीले-पीले, लाल-लाल, सरस रसाल पक रहे होंगे, झीलों में जब जल होगा और उस जल के ऊपर मृणाल की फुनगी पर कमल कोरकों की सजी पाँत होगी, तब मैं उसमें अविरोध जल-विहार करूँगा।" महिषदेव ने अलेक्जेंडर सेल्कर्क के स्वर में स्वर मिलाते हुए घोषणा की :

आई एम मोनार्क आफ आल आई सर्वे
माई राइट देयर इज नन टू डिस्प्यूट।

(जहाँ तक दृष्टि है जाती अकण्टक राज्य है मेरा।
न प्रतिद्वन्द्वी यहाँ कोई अवन अधिकार है मेरा॥)

महिषदेव की टिप्पणियाँ छपने लगीं। पत्रिकाओं के सुघर अंकों के लिए सम्पादकों के पास बधाई-पत्र जाने लगे। सहृदय बन्धुओं से परिचय की मीनार ऊँची से ऊँची होने लगी। अग्रज समालोचकों से परिचय गाँठने के लिए नवनीतमय इंटरव्यू उन्होंने लिया। विश्व-साहित्य के अधुनातन साहित्यकारों की नामानुक्रमणिका जिह्वाग्र पर उपस्थित हुई। घर में अँधेरा रहे तो रहे मस्जिद में अँधेरा हर्गिज नहीं होगा। साधना के मार्ग में परिवार सब से बड़ा अवरोधक तत्त्व है। तुलसी यदि रत्ना के चक्कर में रह गये होते तो 'रामलला नहछू' भी नहीं लिख पाते। सूरदास ने परिवार का झंझट पाला ही नहीं। ये बाल-बच्चे साथ थोड़े जायँगे। मरने के बाद सुकृत ही साथ देगा। अतः सुकृत-सर्जन के लिए माया, ममता और मोह से निःसंग होना होगा।

'सब कर ममता ताग बटोरी' महिषदेव ने कलम उठा ली है। कलम उठाते ही सरस्वती ने अपना माथा उनके आगे झुका दिया। सीता के विनीत स्वरों में वे भी अहर्निश महिषदेव से प्रार्थना करती रहती हैं—'हरु मम दुख भारा'। महिषदेव के प्रसारकामी गुणों पर लुब्ध होकर लक्ष्मी बराबर उनके सामने 'ट्रे' में चाय सजाये खड़ी रहती हैं। इस धरती का कोई भी सुन्दर फूल ऐसा नहीं होना चाहिए जो महिषदेव के गुलदस्ते में न सजे। यदि वह सीधे नहीं सजेगा तो टेढ़े ही सही, सजेगा अवश्य। इधर गन्धवाही मलय और पीयूषवर्षी कोकिल ने कुछ अकड़ दिखायी है। महिषदेव ने ऊपर ऊपर तो कोई प्रतिक्रिया नहीं प्रदर्शित की, लेकिन इनको ठीक करने के लिए उन्होंने व्यवस्था कर दी है। मलय के लिए वायु-प्रदूषण की व्यवस्था की है और कोकिल के पीछे कौवा छोड़ दिया है। कौवे को उन्होंने एक दिन बुलाकर समझाया कि भले मानुष, 'का चुप साधि रहा ?' तुम्हारे छान्दस के आगे इस कोकिल के कंठ की इतनी प्रशंसा ? कहाँ तुम्हारी साहित्यक शब्दावली, समृद्ध भाषा और कहाँ कोकिल का कोमल जनाना स्वर ? तोबा तोबा! यह भी कोई सुनने की चीज है! देखो, तुम कोकिल का पीछा करो। वह जब पंचम स्वर में टेरे तब तुम तत्काल उसका पीछा करो। जोर-जोर से अपनी आवाज बुलन्द करो। बाजे गाजे के साथ शोभा-यात्रा निकालो। भविष्य तुम्हारा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसी काव्य में अभिचार-चर्चा

डा० गोवर्धननाथ शुक्ल

रामचरितमानस निस्संदेह लोक-काव्य के रूप में जनमानस में प्रतिष्ठित है। इस कालजयी ग्रन्थ के नैतिक मूल्यों के प्रति श्रद्धा समादर के घनघोर वातावरण में राम-रावण-संघर्ष के एकाधिक दृष्टिकोणों में विभिन्न मान्यताओं का संघर्ष यदि नितान्त विलुप्त नहीं हुआ है तो गौण अवश्य कर दिया गया है। वस्तुतः मूल मान्यताओं का संघर्ष ही चिर चर्चित होकर महाकाव्य को जन्म देता है। नैतिक मूल्य समय-समय पर न्यूनाधिक बदलते रहते हैं। किन्तु जिन नैतिक मूल्यों के मूल में सृष्टि की स्थिति और विश्व के आदर्श निहित रहते हैं वे ही टिक पाते हैं, शेष मिटते और मरते रहते हैं। मानव आस्था अथवा उपासना की मूल मान्यताओं के क्षेत्र में भी यही सिद्धान्त काम करता है। मूल मान्यताओं अथवा आस्थाओं के संघर्षों का इतिहास ही महाकाव्य होता है। उसके प्रणयन के मूल में सृष्टि-स्थिति और लोक-कल्याण वाली मान्यताओं का स्वर प्रधान होता है। महाकाव्य की कारयित्री प्रतिभा का बीज प्रायः भूत-दया अथवा विश्व-करुणा ही है। अतः विश्व के महाकाव्यों के उपक्रमों में प्रायः कारुण कठोर करुणा मुदिता मृदुता त्रैकालिक सत्य है। अतः महाकाव्यों का उपसंहार सदैव 'सत्यमेव जयते' रहा है। 'करुणा' का भाव हृदय सिन्धु का दैवी उपहार अथवा आभूषण है। इसलिए इसे संस्कृत कवि भवभूति ने तो मूर्धन्य रस माना था।[1] प्रत्येक महाकाव्य के उपक्रम में इस मूल भाव की नितान्त प्रतिष्ठा दिखायी जाकर उपसंहार में प्रतिष्ठा अथवा स्थापना दिखाना विश्व कवियों की चेष्टा रही है।

तुलसी के 'मानस' का भी लगभग यही स्वरूप है। बालकाण्ड में पहले रावण की उत्पत्ति दिखाकर रामावतार का प्रयोजन और औचित्य बाद में दिखाया गया है। तुलसी रावण की उत्पत्ति ही दिखाकर आगे बढ़ जाते तो भी मानस महाकाव्य की क्रमबद्धता और प्रसंग परम्परा में कोई त्रुटि नहीं पड़ती, परन्तु तुलसी को उतना मात्र अभीष्ट नहीं था। उन्होंने रावण की दुर्धर्षता, अजेयता के लिए उसकी कठोर तपस्या का भी उल्लेख किया है। यह तप विविधतायुक्त 'परम उग्र' था, जिसका वर्णन तुलसी को अभीष्ट नहीं। पार्वती, मनु-शतरूपा के तप का पूरा विवरण देनेवाले तुलसी रावण के तप का वर्णन नहीं करते। एकदम विधाता को वर देने के लिए उपस्थित कर देते हैं। वैष्णवी साधना में आस्था रखनेवाले तुलसी रावण के अभिचारमय तप की चर्चा नहीं करते। निश्चय ही यह तप स्वार्थ-सिद्धि और परपीड़ा का लक्ष्य वाला था।[1] इस तप के परिणामस्वरूप ही स्वयं रावण और उसके सब साथी कृपा-रहित, हिंसक, पापी और विश्व-परितापी थे।[2] अभिचारमय तप के प्रभाव से उसके पास रम्य आवास, रमणीय मनोवेगी यान, अनन्त सुंदरियाँ, अनगिनती संतति, अतुल संपत्ति, अपार जन बल आदि सब कुछ था। इस भौतिक विलास-वैभव के साथ यदि किन्हीं वस्तुओं का अभाव था तो वे थीं—नैतिकता, भूतदया, स्वार्थरहित कोमलता। रावण अपने समस्त परिकर सहित अघरूप था।[3]

रावण ने यावन्मात्र विश्व के जो साधन जुटाये थे वे सब अपनी अभिचार-साधना के बल पर। तुलसी ने इस अभिचार सिद्धि का विस्तृत वर्णन तो नहीं किया किन्तु इसका संकेत अवश्य दिया है। वे लिखते हैं :

काम-रूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिनके धरम न दाया॥[4]

रावण का देव-सृष्टि से अकारण विरोध और हठपूर्वक द्रोह सबसे[5] ही उसके विनाश के कारण थे। रावण की इस महती दुर्बलता से तीन व्यक्ति विशेष रूप से परिचित

---

१. एको रसः करुण एव। उत्तर रामचरित। तृतीय अंक।

१. हम काहू के मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुई बारे। बा० दो० १७७।

२. बालकाण्ड। दोहा १७६।

३. भये सकल अघ रूप। बाल० दो० १७६।

४. बाल० दो० १८०।

५. हठि सबही के पंथहि लागा। बाल० दो० १८१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे—१ मंदोदरी, २ विभीषण और ३ मंत्री माल्यवान। इन तीनों ने ही रावण को प्रारंभ में ही स्पष्ट चेतावनी भी दे दी थी। मन्दोदरी ने कहा था—

'सुनहु नाथ, सीता बिनु दीन्हें
हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें।[1]

मंदोदरी को रावण के उन हिमायतियों का पता था जिन्हें उसने अभिचार उपासना पद्धति से अपना वरदायक बना लिया था। अभिचार यज्ञ एवं उपासना पद्धति के अधिष्ठाता भी ब्रह्मा और शंकर ही हैं। अतः मंदोदरी ने स्पष्ट रूप से रावण के उपास्यों का उल्लेख कर कह दिया कि सीता को दिये बिना वे भी तुम्हारा भला न कर पायेंगे।

विभीषण ने उसके अप्रतिम वैभव का बखान करके भी उसकी अभिचार साधना के लक्ष्य भूत-द्रोह को उसके विनाश का कारण बता दिया। विभीषण ने कहा—

चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठै नहिं सोई।[2]

माल्यवंत ने भी विभीषण का ही समर्थन किया। अतः विभीषण और माल्यवंत को तो रावण ने प्रथम उपदेश के समय ही नगर और दरबार से निष्कासित कर दिया। प्रियतमा ज्येष्ठा, श्रेष्ठा पत्नी होने के कारण मंदोदरी से वह कुछ न कह सका और उसके कान्ता उपदेश को बातों में उड़ाकर दरबार में जा बैठा।

प्रसिद्ध लोकोक्ति 'घर का भेदी लंका ढहावे' में विभीषण पर आक्षेप ध्वनित है, परन्तु यह सत्य है कि विभीषण यदि समय-समय पर राम को रावण की अभिचार-साधना-सिद्धि की सूचना न देता रहता तो राम के लिए रावण-विजय भयंकर समस्या अवश्य बन जाती। विभीषण न केवल रावण की उक्त तांत्रिक साधना के रहस्य को जानता था अपितु मेघनाद की अभिचार-साधना सिद्धि से भी परिचित था।[3] यही कारण था कि युद्ध की प्राणान्तक विषम परिस्थिति हो जाने पर मेघनाद आत्म-विश्वास खो बैठा और मनोबलहीनता की असहाय स्थिति में उसने युद्ध क्षेत्र में अपने चाचा विभीषण का बड़ा अपमान किया। खिसियाया हुआ निरुपाय व्यक्ति जिस प्रकार गाली-गलौज पर उतर आता है, मेघनाद ने भी उसी प्रकार किया।[1]

रामायणीय युद्ध महाभारतीय युद्ध से अधिक भयंकर नहीं। महाभारत काल तक आते-आते अनेक भयंकर जन-समूह घाती शस्त्रास्त्रों का आविष्कार हो चुका था। रामायणकालीन युद्ध, वृक्षों, पाषाणों, शिलाओं[2] का सीधा-सादा युद्ध है। राजवंशीय लोग अथवा अभिजात वर्ग अवश्य लाठी, बल्लमों, तलवारों, भालों, मुद्गरों, बरछों, धनुषबाणों, फरसों का प्रयोग करता था।[3] किन्तु महाभारत-काल तक आते-आते अनेक शस्त्रास्त्रों का आविष्कार और आविर्भाव हो चुका था। युद्ध में कूटनीति का गहरा प्रवेश हो चुका था। रामायणकालीन युद्धों में विजय के लिए आध्यात्मिक बल और आराध्य के कृपासंपादन की भावना प्रबल होती थी। धर्म बुद्धि के ये प्रयोग द्विधा विभक्त थे। वैदिक परंपरानुयायी इष्ट मनाने में अभिचार साधनों का प्रयोग नहीं करते थे। सत्य और नैतिकता का उन्हें आन्तरिक बल होता था। इष्टों में प्रायः दुर्गा, शंकर ही विशेष रूप से विजय के लिए प्रार्थित होते थे। इस प्रार्थना में सात्विक पूजा और नमन प्रणतियाँ सम्मिलित थीं। अवैदिक पद्धति के अनुयायी विजय के लिए इष्टदेव के समक्ष हिंसात्मक बलिपूजा एवं अभिचार-साधना का प्रयोग करते थे।[4] इस अभिचार साधना में मारण, मोहन, आकर्षण, उच्चाटन, स्तम्भन, वशीकरण सभी कुछ होता था। बीज मंत्र के जप सहित होम की अनेक विधियाँ उद्देश्य के अनुसार रहती थीं। अवैदिकों के अभिचार-साधना के देवता वैदिक देवताओं से भिन्न हुआ करते थे। इनके उपासना-स्थल सर्वसाधारण की पहुँच से दूर श्मशान, एकान्त खँडहर, निर्जन वन, अरण्य में स्थित शिवालय, सुदूर नदी-तट आदि होते थे।

वाल्मीकि रामायण में मेघनाद जब पहली बार पराजित

---

१. सुन्दरकाण्ड, दोहा ४६।
२. सुन्दर०, दोहा ३८।
३. इहाँ विभीषण मंत्र बिचारा।
सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥
मेघनाद मख करे अपावन।
खल, मायाबी, देव सतावन॥ लंका०, दो० ७५।

१. कहाँ विभीषन भ्राता द्रोही।
आजु सबहिं हठि, मारौं ओही॥ लंका० दो० ५०

२. सुस्कंध विटपैः शैलैः शिलाभिश्चमहाबल :
हनूमान् कदनं चक्रे रक्षसां भीमकर्मणाम्॥
(बा० ७।१८२।१८)

३. जघान कपिशार्दूलान्सुबहुनू दृढ़ विक्रमः।
शूलैः अशिनिभिः खड्गै पट्टिशैः शूल मुद्गरैः। (बा० ६।८२।१७)

४. इष्टदेव सै बलरथ पायउँ।
सो बल तात न तोहि दिखायउँ॥ (लंका० दो० ७२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है तब से वह हवन की इच्छा ये निकुम्भिला देवी के मंदिर में जाता है और देवी के सान्निध्य में बड़े विधि-विधान से अग्नि में हवन करता है।[1] तुलसी ने निकुम्भिला देवी और उसके चैत्य की चर्चा तो नहीं की है किन्तु मेघनाद के इस शोणित पूर्ण अपावन यज्ञ की सूचना विभीषण के द्वारा राम को अवश्य दिलवायी है।[2] विभीषण भलीभाँति जानता था कि यदि मेघनाद को अभिधार-यज्ञ में सफलता मिल गयी तो वह जीता न जा सकेगा।[3] अतः उस हिंसात्मक अभिचार-साधना को खण्डित करना रण नीति की दृष्टि से परमावश्यक था। परिणामतः वैसा किया भी गया।[4] इस अभिचार यज्ञ के युद्ध का स्वरूप बड़ा बीभत्स और भयानक होता था। इसमें विष्ठा, मवाद, रुधिर, केश, अस्थियों की वर्षा से शत्रु का उच्चाटन किया जाता था।[5] मेघनाद ने अपने प्रथम युद्ध में ऐसा किया भी है।[6] इसी कारण तुलसी ने उसे मायावी लिखा है। वह मायामय युद्ध करता है। उसके रथादि उपकरण भी मायामय हैं।[7]

मेघनाद के युद्ध का जैसा रूप मानस में चित्रित हुआ है लगभग वैसा ही रावण का भी है। अभिचार-साधना-पद्धतियाँ प्रायः वंश-परंपरा क्रम से चलती हैं। रावण को जो अभिचार-सिद्धियाँ प्राप्त थीं, वे मेघनाद ने भी प्राप्त की थीं। कुंभकर्ण का युद्ध मानस में घोर पौरुषमय होते हुए भी सीधा-सादा चित्रित हुआ है। कुंभकर्ण विचारों से था भी वैष्णव। परन्तु पेटू और निद्रालु होने के कारण उसे अभिचार सिद्धियों के पचड़े में पड़ने के लिए न अवकाश था और न आवश्यकता ही। अतः अभिचार-साधना-निर्भर युद्ध की विधि केवल रावण और मेघनाद को सिद्ध थी। राम से प्रथम युद्ध में पराजित होते ही रावण अपावन यज्ञ की तैयारी में लग जाता है।[1] और विभीषण तुरन्त उसकी सूचना राम को दे देते हैं।[2] सूचना पाते ही वानर-सेना रावण का यज्ञ-विध्वंस उसी प्रकार कर देती है जिस प्रकार उसने मेघनाद के यज्ञ का किया था। इस यज्ञ के विध्वंस होने से ही रावण का मनोबल गिर गया।[3] रावण का यह अंतिम रण-प्रयास था और इसीमें उसकी संपूर्ण सेना और परिवार का संहार हो चुका था। एकाकी रह जाने की इस चरम मरणान्त निराशा में रावण ने पुनः अभिचार-सिद्धि-जन्य माया का आश्रय लिया था[4] और इस प्रकार एक दुर्धर्ष युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। इस युद्ध में वानरी सेना को अनेक राम, लक्ष्मण दीखने लगे थे। परन्तु यह अभिचार सिद्धि जन्य माया एक ही वैष्णवी बाण से समाप्त हो गयी।[5] रावण के माया-मय युद्ध का तुलसी ने बड़े विस्तार से वर्णन किया है। यदि वह अनंत राम लक्ष्मण पैदा कर सकता था तो उसी माया से वह अनन्त रावणों को भी पैदा कर लेता था।[6]

---

१. स होतुकामो दुष्टात्मा गतश्चैत्यं निकुम्भिलाम्।
निकुम्भिलायाधिष्ठाय पावकं जुहुवेन्द्रजित्॥
यज्ञभूम्यां ततोगत्वा पावकस्तेन रक्षसा।
हूयमानः प्रजज्वाल होम शोणितभुक्तदा।
सार्चिः पिनद्धोदृशेहोमशोणिततर्पितः॥ वा० रा० ६।८२।२३

२. मेघनाद मख करइ अपावन।
खल मायावी देव सतावन॥ (लंका० दो० ७५)

३. जो प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि।
नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि॥ (लंका० दो० ७५)

४. जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा।
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा॥ (लंका० दोहा ७६)

५. विष्ठा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुं उपल बहु छाँड़ा॥
(लंका० दो० ५२)

६. खल मायावी देव सतावन॥ (लंका० दो० ७५)

७. मेघनाद मयामय रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास॥
(लंका, दोहा ७२)

---

१. उहाँ दसानन जागि करि लाग करै कछु जग्य।
राम बिरोध बिजय चह, सठ हठ बस अति अग्य।
(लंका० दो० ८४)

२. इहाँ बिभीषण सब सुधि पाई।
सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई॥ (लंका दो० ८५)

३. एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुं हारई।
(लंका० दो० ७५)

४. रावण हृदय बिचारा भा निसिचर संघार।
मैं अकेल कपि भालु बहु माया करौं अपार।
(लका० दो० ८८)

५. माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सफल मर्कट अनी।
(लंका० दो० ८९)

६. अंतरधान भयउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका।
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहं तहं प्रगट दसानन तेते।
(लंका० सो० ९६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण के 'पाखण्ड' भरे युद्ध का तुलसी ने बड़ा सजीव वर्णन किया है। इसमें बैतालों, भूतों, पिशाचों की उपस्थिति, योगिनियों, मानव कपाल, शोणितपान आदि उन सब तत्त्वों का उल्लेख है जिनकी चर्चा श्मशान साधना में हुआ करती है। वामाचार अथवा अभिचार-साधनाओं में ऐसी अनेक बातें होती हैं जिसमें हिंसात्मक बलि और दुर्धर्षपूर्ण कार्य किये जाते हैं जो भैरवी साधक करते हैं। तुलसी ने राम-रावण युद्ध की चर्चा में रावण के इस पक्ष का पूरा-पूरा संकेत दिया है।

तुलसी ऐसी अवैदिक अमंगलकारिणी साधनाओं के घोर विरोधी थे। इनके लिए किये गये श्रम को निष्फल सिद्ध करने के लिए वे वैष्णवी तेज को कई गुना अधिक बताते हैं। अतः उनके राम उस सब माया को एक निमेष में दूर कर देते हैं—**माया हरी हरि निमिष महँ हरषी सकल भरद्वाज-अनी।**

तुलसीकालीन भारत में इस अभिचार साधना का बोलबाला रहा होगा। वैयक्तिक स्तर पर की जानेवाली यह साधना भौतिक मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए बड़ी आकर्षक लगती रही। संभव है वैष्णवी साधना की अपेक्षा इसमें सिद्धियाँ सद्यः फलदायिनी और साधक को तोष देने वाली होती हों, परन्तु वे व्यवहार में अत्यन्त जटिल, अपावन, भयानक, लगभग असाध्य नहीं तो दुस्साध्य अवश्य ही थीं। फिर भी जन मानस उनके प्रति अपने भीतर आकर्षण संजोये रहता था। तुलसी की पैनी दृष्टि इस तथ्य से अपरिचित नहीं थी। अतः अपने नितान्त एकान्त वैयक्तिक साधना के वैष्णव ग्रंथ 'विनयपत्रिका' में उन्होंने लिखा है कि यदि यह वीर साधना ही किसीको करनी है तो वह इसे वैष्णवी बाना पहनाकर करे। वे कहते हैं :

बीर महा अवराधिए साधे सिधि होय।
सकल काम पूरन करै, जानै सब कोय।
बेगि बिलंब न कीजिए, लीजे उपदेस।
बीज मंत्र जपिये सोई, जो जपत महेस।
प्रेम बारि तर्पन भलो, घृत सहज सनेहु।
संसय समिध, अग्नि छमा, ममता बलि देहु।
अघ उचाट मन बस करै, मारै मद मार।
आकरषै सुख संपदा, संतोष बिचार॥
जिन्ह यहि भाँति भजन कियौ, मिले रघुपति ताहि।
तुलसिदास प्रभु पथ चढ्यो, जो लेहु निबाहि॥
(विनय : पद १०८)

प्रस्तुत पद में तुलसी ने अभिचार-साधना को वैष्णवी चोला पहनाने की सफल चेष्टा की है। बीज मंत्र (राम नाम) का जप, जिसे वैष्णव शिरोमणि महेश जपते हैं। तर्पण मार्जन-प्रेम जल का, सहज स्नेह का घृत, संशय की समिधा, क्षमा की अग्नि और ममता की बलि के इस सात्विक होम का विधान करने का परिणाम होगा—सुख संपदा का आकर्षण, पापों का उच्चाटन, मन का वशीकरण, और काम तथा अभिमान का मारण। यह सब इस वैष्णवी अभिचार साधना से संपन्न होगा। तात्पर्य यह कि तुलसी देश में फैली इस अभिचार साधना से पूर्णतः परिचित थे। अतः वे अपने ग्रंथों में उसके अमंगलकारी परिणाम का दिग्दर्शन कराकर उसके सात्विक वैष्णवी रूप की प्रतिष्ठा चाहते थे।

कार्य-कारण दृष्टि से यदि मानस को देखें तो उसका प्रधान 'कार्य' रामावतार एवं 'कारण' रावणावतार है। राम की उत्पत्ति से पूर्व रावण की उत्पत्ति एवं अभ्युदय को प्रमुख प्रसंगों में ध्यान रखते हुए तुलसी यह सिद्ध करना चाहते हैं कि रावण जो पूर्व जन्म में प्रतापभानु था अपनी स्वार्थमयी धर्म-बुद्धि और एकान्त उत्कर्ष की सिद्धि अभिचार साधना के सहारे ही करना चाहता था। इसी कारण वह कपटी तापस 'एक तनु' के चक्कर में आ गया और उस कपट मुनि ने उसे अपनी माया से अश्व के सहित राजधानी पहुँचा दिया।[1] तब उसे उस पर अपार श्रद्धा हो गयी। कपट मुनि को अभिचार सिद्धि तो थी ही क्योंकि जिस रसोई के कारण प्रतापभानु का सर्वनाश हुआ वह मायामय थी और जिसका वास्तव में कोई अस्तित्व ही नहीं था।[2] तेजस्वी ब्राह्मणों के सामने भोज्य पदार्थ आने से पूर्व ही आकाशवाणी का हो जाना अभिचार के खोखलेपन को सिद्ध कर देता है। तुलसी इस प्रकार की साधनाओं के भयंकर दुष्परिणामों से परिचित थे। वे इन्हें धर्म-साधना स्वीकार नहीं करते। अतः धर्म मान्यता श्रीमद्भागवतानुसारिणी कैतव प्रोज्झित धर्मवाली है,[3] जिसमें व्यष्टि, समष्टि दोनों का ही कल्याण निहित है। अवैदिक अविचारमय स्वार्थ साधक धर्म साधना का वे नितान्त निषेध करते हैं। कैतव रहित धर्म साधना में ही पूर्ण अहिंसा की प्रतिष्ठा, विश्व करुणा एवं विश्व मंगल की सिद्धि है। ऐसे धर्म के दर्शक ग्रंथ ही सच्चे विश्व काव्य अथवा महाकाव्य कहे जाते हैं।

---

१. वस्तुतः कपटी मुनि 'एक तनु' ने प्रतापभानु को केवल अपनी बातों में फंसाकर सुला दिया था और आश्वस्त कर दिया था कि 'मैं तप बल तोहि तुरग समेता, पहुँचैहहुँ सोवतहि निकेता,' और तीसरे दिन तुम्हारे पुरोहित का रूप धारण कर तुमसे मिलूंगा। राजा के सो जाने पर एक तनु का परम मित्र कालकेतु निशाचर आया। उसी ने शूकर का रूप बनाकर प्रतापभानु को भटका दिया था। उसके सौ पुत्र और दस भाई राजा ने युद्ध में मार डाले थे। इससे वह उससे वैर मानता था। कालकेतु ने ही सोये राजा को ले जाकर रानी के पास सुला दिया था और उसके घोड़े को हयगृह (घुड़साल) में बाँध दिया था। उसी ने मायामय रसोई बनायी थी। (मानस बाल० दोहा १६९—७३)—सम्पादक।

२. मायामय तेहि कीन्ह रसोई।
बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥ (बा०, दो० ७३)

३. श्रीमद्भागवत १।१।२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती कहानी

खोज में.....

(गुजराती कहानी 'खोवायेली पत्नी' का लेखक की अनुमति से अनुवाद)

मूल लेखक—श्री नाथालाल दवे

अनुवादक—श्री नारायणचन्द्र भारती

'अरी जमना, दियासलाई कहाँ रखी है ?' मकन दादा ने पूछा। बीड़ी सुलगानी थी। दियासलाई नहीं मिल रही थी। रसोईघर से कोई उत्तर नहीं आया। फिर ऊँची आवाज में बोले, 'अरी, बहरी है ? क्या सुनायी नहीं देता ?'

'क्या बात है जो इस समय शोर मचा रहे हो ?'

'मैंने तुझसे कितनी बार कहा कि मेरी दियासलाई न लिया कर। तू एक भी चीज ठिकाने से नहीं रखती।'

'अब चुप भी रहो। अपने को तो सँभालना आता नहीं और दूसरों को सीख दे रहे हैं। पचास बरस से तुम्हें और तुम्हारे घर को सँभाल रही हूँ। नहीं तो यह सारा घर ढूह हो जाता। दियासलाई वह पड़ी है चौखट की ताक पर। चुंधी आँखों से दिखायी नहीं देता तो हाथ फेरकर तो देख लेते।'

बूढ़े मकन ने दियासलाई लेकर बीड़ी सुलगायी। फिर वह टूटी खाट पर बैठ गया।

'तेरी कसम जमना, तू बहुत बड़बड़ाती है। भगवान् ने औरतों की जीभ क्या बनायी है। आरी के समान काटती है। तेरे एक ही ताने से कहाँ जा मरूँ की नौबत आ जाती है, फिर तू तो पचासों ताने देती है।' थोड़ी देर चुप रहकर फिर बोला, 'ईंधन है या खेत से लाना पड़ेगा ?'

'वह तो लाना ही पड़ेगा। नहीं तो कल शाम को चूल्हे में क्या अपना सिर जलाऊँगी ?'

'फिर वही ? बकवास करते-करते ही क्या चिता पर चढ़ना है ?'

'ठीक ही तो है। जल्दी ही इस जंजाल से छूट जाऊँगी। तुम्हारे जैसों के पल्ले पड़कर और क्या भली बात होगी ?'

उजाड़-से गाँव में इस गरीब खेतिहर मजदूर का घर है। छप्पर टूटा-सा है। टूटे और झुके हुए किनारे से फूस टूटकर झड़ रहा है। पहले गाय रखी थी। अकाल के दिनों में बेच देनी पड़ी। घर में पुरानी घड़ौंची और एक पुराना-सा सन्दूक है। उसका पीतल काला पड़ गया है। रसोई में मिट्टी के बरतन हैं और है जमना का बनाया हुआ मिट्टी का एक कुठला, जिसमें वह दूध या मट्ठा रखा करती है। छप्पर के खम्भे में बकरी बँधी है। आँगन के कोने में पुराना पीपल का पेड़ है। घर की खिड़की के किवाड़ भी आँधी-पानी के थपेड़ों से सड़-गल गये हैं।

मकन पचहत्तर वर्ष का है। जमना भी पैंसठ-सत्तर की होगी। पचास वर्ष पहले जमना ब्याहकर इस घर में आयी थी। आने के बाद उम्र का हिसाब धीरे-धीरे विस्मृत होता गया। मकन पढ़ा-लिखा नहीं है। उसको आँखों से कम दिखायी देता है। श्रवण-शक्ति भी कम हो गयी है। शरीर सूखने लगा है। बुढ़ापा अपना कार्य-क्षेत्र विस्तृत कर रहा है। जमना भी सूखकर ठूँठ-सी हो गयी है। कमर झुक गयी है, सारे बाल सफेद हो गये हैं। आँगन, रसोई और मुहल्ले में चक्कर काटते समय बड़बड़ाया करती है।

गाँव के पास ही मकन का खेत है। उसमें बबूल और झड़बेरी की झाड़ियाँ उग आयी हैं। जमीन बंजर हो गयी है। मकन मजदूरी करके पेट पालता है। खेतों में कपास की जड़ें खोदता, मूँगफली निकालता, खाद डालता और कपास बीनता है। बुढ़ापे के कारण लोग उसे हलका काम देते हैं। गरीबी से परिपूर्ण एवं विविधता-हीन जीवन में सामान्य दम्पति के बीच जैसा प्रेम होता है, वैसा ही इन दोनों के बीच भी है। रूखा-सूखा खाकर बूढ़े-बुढ़िया दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-निर्वाह करते और एक दूसरे की सार-संभाल रखते हैं। फुरसत में मकन दादा चबूतरे पर बैठे ऊँघते रहते और माला फेरते-फेरते कहते, 'जाही बिधि राखै राम ताही बिधि रहिए।'

लगभग पचास वर्ष से गृहस्थी की गाड़ी चलाते आ रहे थे। दो पुत्रों के बाद एक पुत्री हुई थी। एक के बाद एक दोनों पुत्र स्वर्गवासी हो गये। लड़की गङ्गा पड़ोस के गाँव में किसी पटेल के पुत्र को ब्याही जा चुकी थी। ब्याह के बाद जमाई बहू को लेकर शहर चला गया था। वहाँ दोनों हीरा घिसनेवाली मशीन में मजदूरी करने लगे। वहीं गङ्गा को तीन-चार सन्तानें हो गयीं। सभी अपढ़ थे। पत्र-व्यवहार का चलन होता भी तो कैसे? बूढ़े जमना और मकन इस पुराने गाँव के जीर्ण घर में पड़े रहते। उनका संसार सीमित हो गया था।

सर्दियों के दिन थे। बहुत रात बीते जमना कराहने लगी। उसे ज्वर हो आया था। ठंढी हवा चल रही थी। खटिया पर हाथ-पैर समेटे मकन दादा पड़े थे। ज्वर में बुढ़िया बोलने लगी, 'अजी, मुझे पानी पिलाओ। मैं अब रहूंगी नहीं। हाय राम, मेरी न जाने क्या गत होगी! अरे, तुम सुनते हो कि नहीं?'

मकन ने उठकर उसे पानी पिलाया और कहा, 'अब चुपचाप पड़ी रह। सवेरे सरकारी दवाखाने से दवा ले आऊंगा।'

'अब दवा की जरूरत ही क्या है? हे राम, अब तुम्हारा क्या होगा? तुम्हारी रोटी कौन बनायेगा?'

'जमना, तू इसकी फिकर मत कर। शान्ति रख। राम का नाम ले।'

'अजी, एक बार मेरी गङ्गा को बुला दो। उसके बच्चों का मुँह तो देख लूँ।'

'तू घड़ी-एक सो जा। सबेरे ही चिट्ठी लिखवा दूंगा।'

बूढ़ा मकन पास बैठ गया। पत्नी के गरम माथे पर हाथ रखा। ठंढे पानी की पट्टी रखी। दूसरे दिन शीशी भरकर तीन कोस दूर दवाखाने से दवा ले आया। स्कूटर पर आकर डाक्टर भी देख गया। मकन ने गाँव के मास्टर को बुलाकर गङ्गा को पत्र लिखवा दिया। किन्तु दूसरी रात को ही ज्वरग्रस्त जमना ने स्वर्ग को प्रयाण कर दिया।

अंतिम क्रिया-कर्म के समय गङ्गा आ गयी थी। बूढ़ा मकन छप्पर के खंभे के सहारे चुपचाप उदास-सा बैठा माला फेरता रहा। पुत्री और जमाई ने कहा, 'हमारे साथ ही चलो दादा। यहाँ तुम्हें दिक्कत रहेगी।'

मकन दादा बोले, 'नहीं, मुझे खाना बनाना आता है। दो रोटी बना ही लूँगा। इस उमर में मुझसे शहर में नहीं रहा जायगा।'

गङ्गा और जमाई चले गये।

यहाँ वही पुराना घर, पुराना पास-पड़ोस रह गया। घर में वही पुराना सन्दूक, घड़ौंची, रजाई और बिस्तर लटकाने का बाँस और सड़े-गले चौखटवाली खिड़की और दरवाजा। बूढ़ा मकन इन सब का ऐसा अभ्यस्त हो गया था कि इस उम्र में इन्हें छोड़कर बेटी के घर जाकर जीवन बिताना उसे ठीक नहीं लगा।

× × ×

अब बूढ़ा मकन अकेला पड़ गया। अपने हाथों दो टिक्कड़ सेंक लेता और पड़ोसी वल्लभ पटेल के यहाँसे मट्ठा ले आता। वल्लभ की बहू भी किसी समय रोटी और साग दे जाती। खाकर बूढ़ा खटिया पर पड़ा या चबूतरे के किनारे बैठा रहता। समय बिताने के लिए माला फेरता रहता।

एक-दो बार वह फावड़ा लेकर खेत में गया भी, किन्तु झड़बेरी की दो-चार झाड़ियाँ खोदते ही साँस फूलने लगी। इस उम्र में ज्यादा मेहनत नहीं हो सकती। दिन कटता नहीं। शाम होने को ही नहीं आती। रात कटनी मुश्किल हो जाती। बार-बार जमना की याद आती। जमना होती तो ऐसा नहीं होता। सोने और जागने का कोई नियम ही न रहा। जब मरजी होती खटिया में लेट जाता। फिर रात में दो बजने से पहले ही बूढ़ा उठ बैठता और माला फेरने लगता। इसी तरह छह-सात महीने बीत गये।

एक रात नयी घटना हो गयी। रात में खिड़की की साँकल बजी। खटिया में गुदड़ी बिछाकर हाथ का तकिया करके बूढ़ा मकन सोया हुआ था। आधी रात बीतने पर वह जाग गया। चाँदनी रात थी। पीपल के पेड़ पर चाँद झुक आया था। चाँदनी में पत्ते झलमला रहे थे, घर की छत की खपरैल पर, आँगन में, चारों ओर चाँदनी बिछी हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकन दादा ने रसोई की तरफ देखा। खिड़की से चाँदनी अन्दर आ रही थी। कुठले की ओर देखते ही चौंक उठे, छाती धड़कने लगी। यह क्या? कुठले के पास ही रसोई में किसी स्त्री की आकृति खड़ी थी। कौन है? जरूर वह जमना ही है। इस समय दूसरा और कौन हो सकता है। बूढ़े ने आँखें मलीं। फिर देखा। हाँ, वही साड़ी, वही अँगिया! 'जमना, क्या तू फिर आ गयी?' गला खखारकर फिर धीमे से पूछा, 'जमना बोलती क्यों नहीं?'

कोई उत्तर नहीं। टकटकी बाँधे मकन दादा देखते रहे। फिर खटिया से उठे। उनकी कमजोर आँखों ने स्त्री का आकार पहचान लिया था। धड़कते हृदय से वह अन्दर जाकर देखते हैं। चाँदनी के दो-चार निशान, खिड़की, जाली, मिट्टी का कुठला। वापस लौटकर खटिया पर बैठ गये।

बूढ़े मकन विचारने लगे। मरा हुआ क्या वापस लौटता है? परलोक से क्या प्राणी आ सकता है? मेरे ऊपर जमना का कितना प्रेम था। उसका बस चलता तो वह वापस लौटे बिना नहीं रहती। उसके बिना घर की क्या हालत हो गयी है। अनाज नहीं, आटा नहीं, बर्तन टूट-फूट गये हैं। कपड़े मैले हो गये हैं। कपड़ों में थेगली कौन लगाये? कुएं से गागर भरकर कौन लाये? कुरता और फेंटा कौन धोये? छत की कड़ी टूट गयी है। गिरने ही वाली है। दूध दुहने के आलस में बकरी भी बेच दी है। यों सोचते हुए वे सबेरे तक जागते रहे, विचारने लगे कि वह जमना ही थी। इतने दिन बाद वह मेरी कुशल पूछने आयी थी। मुझे भरोसा तो था ही कि वह आये बिना नहीं रहेगी।

दूसरी रात भी वह जाग गये। आँगन के पास पीपल के पेड़ के नीचे सफेद छाया सी दिखायी दी। वे उठे। पेड़ के नीचे गये, किन्तु वहाँ खड़े हुए बैलों के जुए पर सूखती हुई पुरानी चादर देखकर वापस लौट आये। इस प्रकार दस-पन्द्रह दिन बीत गये।

एक दिन स्वप्न में उन्हें दिखायी दिया कि जमना आ गयी है। खटिया पर सिरहाने की तरफ बैठी है। दन्तहीन पोपला मुँह नहीं है। बल्कि चेहरा भरा-भरा-सा है। माथे पर स्नेहपूर्ण हाथ रखकर पूछ रही है, 'कहाँ, कैसे हो? अपने गाढ़ भी करते हो या बिलकुल ही भूल गये?'

चौंककर मकन दादा जाग गये। आँखें मलने लगे। चारों ओर देखा। ठंडी हवा बह रही है। पीपल के पत्ते हिल रहे हैं। सारे आँगन में शान्ति है। सारा गाँव सो रहा है। उन्हें लगा कि जरूर जमना आयी थी और चली भी गयी। उससे बातें करने का थोड़ा भी मौका मिलता तो कहते, 'जमना, अब तू मत जा। तेरे बिना मेरा निभाव नहीं, तू आ गयी है तो अब मेहरबानी करके यहीं रह जा। देख न, तेरे बिना मेरी क्या हालत हो गयी है?'

पचहत्तर साल की उम्र। इस उम्र में शरीर के साथ ही मनुष्य का मन कमजोर हो जाता है। कल्पना और वास्तविकता का पार्थक्य समाप्त हो जाता है। अपनी कल्पना ही सत्य है—यही मन मान बैठता है। अकेली जिन्दगी की दुर्दशा भोगते हुए मकन दादा मानने लगे कि उनकी पत्नी का उन पर अपार प्रेम है। इसी प्रेम के कारण प्रति दिन रात को सार-संभाल करने के लिए ही वह आती है। रात-दिन यह विचार उनके मन में चक्कर काटता और धीरे-धीरे न जाने कैसे उनको इस बात का भान ही न रहा कि जमना गुजर गयी है। मानो मन से मृत्यु की बात ही उड़ गयी।

जमना के जीवित रहते एक दिन दोनों थोड़ी सी बात पर लड़ पड़े थे। जमना ने धमकी दी कि मैं अपनी मौसी दीवाली के यहाँ चली जाऊँगी, तभी तुम्हें आटा-दाल का भाव मालूम होगा। मेरे नहीं रहने पर ही तुम्हें मेरी कीमत मालूम होगी। तभी समझ में आयेगा कि कितने बीसी सौ होते हैं। अब उसके वे शब्द बूढ़े मकन को बार-बार याद आने लगे और उन्हें लगा कि वह जरूर अपनी मौसी दीवाली के यहाँ गयी होगी, चलो चलकर देखें तो सही। वह नाराज हो गयी है तो उसे समझा-बुझाकर वापस लौटा लाना मेरा फर्ज है। उसके बिना मैं कितना परेशान हूँ। यदि उसे मेरी दशा मालूम होगी तो वह जरूर वापस लौट आयेगी।

इस तरह विचार करते-करते बूढ़े मकन एक दिन सचमुच ही जाने के लिए तैयार हो गये। मौसी दीवाली का गाँव घाँटीला तीन कोस दूर था। बीच में नदी पड़ती है। बूढ़े ने जूतियाँ पहन लीं। सिर पर साफा बाँध लिया। हाथ में लाठी ले ली और वे कन्धे में चादर लेकर चल पड़े।

वल्लभ पटेल बैलों को जोड़कर खेत की ओर जा रहा था। बोला 'मकन दादा, इस समय किधर चले?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुमने कहीं जमना को देखा है ?'

'कौन जमना ?'

'क्यों ? मेरी घरवाली । और कौन ?' बूढे ने कहा ।

'यह क्या दादा ? उन्हें गुजरे तो छः महीने हो गये । तुम भी कैसी बात करते हो ?'

'अरे वल्लभ ! तू मजाक रहने दे । वह तो नाराज होकर अपनी मौसी के घर गयी है । मैं उसे लाने घाँटीला जा रहा हूँ । वह बड़ी गुस्सैल है । यों ही नहीं आयेगी ।'

वल्लभ को बड़ा आश्चर्य हुआ । किन्तु इस समय उसे खेत में जाने की उतावली थी । 'हे-हे' कहते हुए उसने बैलों की पूँछ मरोड़ी और वह जोड़ी को लेकर चला गया ।

बूढ़े मकन दोपहर में घाँटीला पहुँच गये । मौसी दीवाली भी वृद्धा थी । बोली, 'अरे मकन, तुम ?'

'जमना यहीं है न ? उसे समझा-बुझाकर वापस लिवाने आया हूँ ।' मौसी आश्चर्य से देखती रही । बोली, 'रोटी तैयार है । तुम जीमने चलो ।'

जीमते हुए मकन दादा बोले, 'नाराज होकर जमना यहाँ आ गयी है । वह अब वापस लौट चले तो बस ! मैंने बहुत बाट देखी; किन्तु वह तो पक्की जिद्दी है न ? तब मैंने सोचा कि खुद गये बिना वह नहीं आयेगी । इसीलिए आज जल्दी उठकर चला आया ।'

बूढ़े को किस तरह समझाया जाय ? मौसी दीवाली ने खटिया बिछा दी । बोली, 'थक गये हो । जरा कमर सीधी कर लो ।'

जीमने के बाद बूढ़े मकन लेट गये । तब मौसी दीवाली उनसे कहने लगी, 'अब जमना नहीं आयेगी ।'

'क्यों नहीं आयेगी ? दो आदमियों के बीच झगड़ा तो होता ही है । जहाँ दो बरतन होंगे तो बजेंगे ही । किन्तु इस तरह कोई क्या घर उजाड़ देता है ? उसे मेरे पास बुलाओ । मैं उसे शान्ति से समझाऊँगा ।'

'लेकिन मकन भाई, जमना यहाँ नहीं है ।'

'यहाँ नहीं है ? तो वह कहाँ गयी ?' बूढ़े मकन विचार में पड़ गये । तो वह जरूर अपनी बुआ के पास सताधार गाँव गयी होगी ।

किस तरह समझाया जाय ? यह मौसी के लिए समस्या हो गयी । शाम होने आयी और मकन दादा जाने के लिए तैयार हो गये ।

'देखना ठीक तरह से घर जाना और शान्ति से रहना । राम का नाम लिया करो । बेकार के चक्कर छोड़ दो ।' मौसी ने सलाह दी । कारण उन्हें पूर्ण विश्वास था कि बूढ़े मकन घर लौट जायँगे ।

अनुमति लेकर मकन दादा चल पड़े, किन्तु उन्होंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि घर न जाकर यहाँसे सीधे सताधार गाँव जाऊँगा और उसकी बुआ के यहाँ जमना की खोज करूँगा ।

× × ×

गीर वन का पथरीला रास्ता । बबूल और करील के काँटे । बैसाख की लू चल रही है । गरम धूल के बगूले उठ रहे हैं । लाठी लेकर मकन दादा धीरे-धीरे चले जा रहे हैं । जूतियाँ फट गयी हैं । मैले और फटे कपड़ों से कुहनी और घुटने बाहर दिखायी दे रहे हैं । साफे का छोर गर्दन में लिपटा है । भूख और थकावट से आँखें धँस गयी हैं । पैर लड़खड़ा रहे हैं । फिर भी मन में एक धुन लेकर वह चले ही जा रहे हैं ।

रास्ते में छोटे-छोटे गाँव आते हैं । घर-घर पूछते जाते हैं, 'क्या जमना यहाँ आयी है ?' जवाब नहीं मिलता । सोचते हैं सामने घर में जमना बैठी है । इसलिए घर के छप्पर के आगे खड़े होकर मकन दादा ऊँची आवाज में पुकारते हैं, 'जमना !....ओ जमना !....अरी ओ जमना !....' उत्तर की आशा में कुछ क्षण रुककर फिर आगे चल देते हैं ।

छोटे बालक कुतूहल से उन्हें देखते रह जाते हैं । रास्ते में कोई नदी या बावड़ी आती है तो मकन दादा अँजुरी भरकर पानी पी लेते हैं । कोई दे तो रोटी का टुकड़ा खा लेते हैं और पेड़ के नीचे मैली चादर बिछाकर सो जाते हैं ।

सताधार गाँव में भी जमना का पता नहीं लगा । अब उनकी खोज की सीमा विस्तृत होती गयी । किसी दूर के रिश्ते के चाचा, मामा या किसी सगे-सम्बन्धी के गाँव बूढ़े ने याद किये और हर एक गाँव में जाकर जमना को खोजने का कार्यक्रम मन में ही निश्चित कर लिया । गीर के गाँव-गाँव में मकन दादा घूमने लगे ।

मितियाला का जंगल, तुलसी श्याम की झाड़ी, जमरी नदी के किनारे जामुन और खिरनी के पेड़ों की वनराजि, भीमचास का तालाब, सेजावेजा की कोठी, नान्दीला पहाड़ी के आसपास के झोंपड़े तथा मालण नदी के तटवर्ती कितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही गाँवों में मकन दादा भटकते फिरे। इस बूढ़े किसान के कपड़े फट गये हैं। बाल बिखरे हैं। भूख-प्यास की याद नहीं। आँखें धँस गयी हैं, पैर लड़खड़ाते हैं, किन्तु मन में एक मात्र 'जमना-जमना' की ही रटन है।

चलते-चलते वह रावल नदी के किनारे पहुँचे। गीर प्रदेश के घने जंगल के बीच रावल नदी बहती है। ऊँची चट्टानों के बीच गहरी खाई में काला, गहरा, नीला जल भरा हुआ है। किनारे खिरनी, शीशम, सागवन और धवा के घने वृक्ष खड़े हैं। कहीं-कहीं करमदी के ढहों में मृगराज सोये पड़े हैं। मकन दादा ने नदी में हाथ-पैर धोये। मुँह पर पानी के छींटे दिये। अँजुरी से पानी पिया। दो दिन की भूख थी। शरीर में कमजोरी थी, तो भी पैरों में जरा ताकत सी आयी।

नीचे उतरती हुई शाम के उजाले में धीरे धीरे रावल नदी के किनारे चढ़कर वह ऊँची जगह पर आ गये। काली चट्टान के किनारे-किनारे वे आगे बढ़े। चारों ओर हरी-भरी वनराजि फैली थी। बीच-बीच में गुलमोहर और अमलतास के लाल-पीले फूल दिखलायी दे रहे थे। आसपास की पहाड़ियों ने सन्ध्याकालीन नीलवर्ण धारण कर लिया था। कलरव करते पक्षी अपने-अपने नीड़ों की ओर जा रहे थे।

एक साफ शिला पर चादर बिछाकर मकन दादा बैठ गये। घड़ी भर राम का नाम लिया और बाद में कमर सीधी करने के लिए लेट गये। इस शांत, निर्जन स्थान की ठंडी हवा के कारण उनको शान्ति मिल रही थी। मानो जमना पास ही हो। वह कहीं आसपास में ही बैठी है—इस विचार से जमना का सान्निध्य अनुभव कर रहे थे। आकाश में एक के बाद एक तारे प्रकट होने लगे। वृक्षों की रेखाएँ विलीन होने लगीं। विस्तृत अन्धकार में उत्तुंग चट्टान के नीचे से नदी के प्रवाह की धीमी आवाज आ रही थी।

आधी रात बीतने पर नींद पूरी करके मकन दादा जाग पड़े। आकाश में चाँद चमक रहा था। चारों ओर के वृक्ष चाँदनी में झिलमिला रहे थे। सफेद कोहरे से रावल नदी का विशाल पाट ढक गया था। इस समय भूख, थकावट और कमजोरी के साथ ही उनके मन की कल्पना, पत्नी से फिर मिलने का चाव, इतने दिन की भटकन आदि ने उनपर कुछ ऐसा सम्मिलित असर किया कि उन्हें लगा, मानो सामने वृक्षों की झिलमिलाती चाँदनी में जमना ही खड़ी है।

'जमना !·····ओ जमना !·····अरी ओ जमना ! ·····।' बूढ़े ने पुकारा। आश्चर्यचकित दृष्टि से वे उस वन-राजि की ओर देखते रहे। 'नजदीक आ !·· आ न !····· अरी जमना ! मैं मकन तुझे बुला रहा हूँ।'

पहाड़ की ठंडी हवा से मकन का मस्तिष्क शांत और स्वस्थ हो गया था। चाँद के उजाले में गुलमोहर और अमलतास के लाल-पीले फूल देखते-देखते बूढ़े मकन को पचास वर्ष पहले की अपने विवाह की प्रथम रात्रि की याद आयी। जमना तब व्याह की चुनरी ओढ़े, दिये की मंद रोशनी में दरवाजे की चौखट के पास खड़ी थी। हरे अतलस की अँगिया, गले में हँसली, हाथ में हाथी दाँत की नक्काशी-दार चूड़ियाँ, माथे में रोली की लाल बिन्दी के बीच अभ्रक की चमकीली बिन्दी बाहर की चाँदनी के समान ही चम-चमा रही थी।

हलके हाथों उसकी ठोढ़ी को उचकाकर लज्जा से अरुणाभ जमना के मुख की ओर देखकर मकन ने कहा था, 'जमना, जरा सामने तो देख ! कुछ बात तो कर ! इस तरह शरमाती क्यों है ?' तब नव-वधू के विशाल निर्मल नयन झुक गये थे।

हाँ, इस चमकती चाँदनी में वही जमना है ! सामने ही खड़ी है ! फिर से मिलने आयी है।·····हवा की लहर आयी। वृक्ष की छाया में वह मानव-छाया मानो हिलने लगी है। मकन दादा खड़े हो गये और पुकारने लगे 'जमना !···ओ जमना ! रुक जा ! जाना मत !'

मकन दादा दोनों हाथ फैलाये आगे बढ़ने लगे, किन्तु वह मौन सुन्दर आकृति भी चाँदनी में मानों आगे-आगे खिसकती जा रही है—वृक्ष से आगे ···झाड़ी से आगे···नदी किनारे की चट्टान की ओर····। चाँदनी में उसका आँचल फहरा रहा है। वृक्षों के नीचे छायामय प्रकाश में उसके बेल-बूटे उभर रहे हैं।

मकन दादा हाँफते हुए आगे बढ़े। उन्होंने फिर पुकारा 'जमना ! ओ मेरी जमना ! तू वापस लौट आ।' और एक कदम आगे बढ़ते ही ऊँची चट्टान से उनका पैर फिसल गया।

दूसरे दिन सवेरे निकट के जंगली गाँव के ग्वाले गाय-भैंसों को पानी पिलाने नदी के किनारे आये। उन्होंने देखा कि पास ही चट्टान पर पुरानी जूतियाँ पड़ी हैं। एक गाँठ-दार टेढ़ी लाठी भी पास ही गिरी पड़ी है। चट्टान के नीचे जामुन के पेड़ पर एक मैली सी चादर लटक रही है। झाड़ी के नीचे सूखे पत्तों की शय्या पर किसी बूढ़े की निष्प्राण देह पड़ी हुई है। कोई बोला, 'अरे, कोई बेचारा अनजान बूढ़ा चट्टान से गिरकर सुरगबासी हो गया है।'

उस अपरिचित अनजान ग्वाले को क्या पता कि पचास वर्ष पहले विवाह की प्रथम शुभ रात्रि को दीपक के झिल-मिलाते प्रकाश में जिस नव-वधू के सौन्दर्यमण्डित मुख को जिसने प्रथम दर्शन किया था, उसी प्यारी जमना और मकन का इतने संकट सहने के बाद आज फिर से शारीरिक मिलन हुआ है और स्वर्ग के किसी स्वर्णिम द्वार पर उनके मिलन की मधुर शहनाई अब भी गूँज रही है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिशोध

श्री मनमोहन गुप्त

आज से पचास वर्ष पूर्व, चाहे किसी भी कारण से क्यों न हो, औरतों के विषय में लोगों के मन में यह धारणा बनी हुई थी कि उनमें जेवर पहनने तथा उन्हें पहनकर अन्य औरतों को दिखाने का शौक अत्यधिक मात्रा में विद्यमान रहता है—चाहे वह रूपसी हों अथवा कदाकार। रूप हो किन्तु जेवरों से लदी न हों तो, कहते हैं, औरतों में उनकी उतनी कद्र नहीं होती थी जितनी जेवरों से लदी होने के कारण कुरूपा की होती थी। अर्थात् औरतों में ऊँचे घराने की कहलाने के लिए गहने भी आवश्यक थे। गहने ही पहले ऐश्वर्य के प्रतीक थे—कम-से-कम औरतों के लिए।

कहते हैं इन दिनों यह बात लोप होती जा रही है, यद्यपि इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी नहीं मिलता। भले ही जेवरों के वजन के दामवाली मोटर पर लद के आनेवाली की इज्जत हो। पहले औरतें घर से नहीं निकलती थीं। इसलिए वे यह नहीं जान पाती थीं कि किस घर की औरत कौन है। फलतः जेवरों को देखकर ही वे यह धारणा बना लेती थीं कि अमुक औरत कैसे घराने की होगी।

शास्त्र में भी कहा है कि गृहिणी से ही गृह का सम्मान बढ़ता है। गृह की लक्ष्मी को देखकर ही लोग गृह के विषय में धारणा बनाते आये हैं। आज भी जिस घर की औरतें मोटरकार में बैठकर ही घर से बाहर निकलती हैं, उन्हींकी अधिक इज्जत होती है। फिर उनमें भी जिनके पास अधिक रुपयों के जेवर हों उनकी और भी अधिक प्रतिष्ठा होती है। भले ही वह जेवर संख्या तथा वजन में कम हों। जैसे, हीरों की अँगूठी या नौलखा हार।

यह हुई सामाजिक बातें। व्यक्तिगत बातों पर इनका इतना प्रभाव पड़ा कि साधारणतः औरतें जेवरों की प्रेमी बन गयी हैं। इस प्रेम का जहाँ अतिरेक हुआ वहीं लोभ का नग्न रूप दिखायी देने लगता है। भले ही पतिदेव का प्राणान्त हो जाय किन्तु पत्नी को जेवर चाहिए ही। चाहे सन्तानों के कपड़े बनें अथवा न बनें माँ के शरीर में जेवर होना आवश्यक है। चाहे अन्य सामाजिक बातों का स्तर नीचा हो किन्तु जेवरों का स्तर उस अनुपात में सदा ऊँचा रहता है।

ऐसी ही जेवरों की लोभी सँझिली जीजी थी। कुलीन वंश के ब्राह्मण की लड़की। छोटी वय में शादी हो चुकी थी। न तो उसे पति के सम्बन्ध में, न विवाह या ससुराल के सम्बन्ध में कोई ज्ञान था और न ही उसे पति-पत्नी के सम्बन्धों का कोई बोध था। आसपास की परिस्थिति से वह जितना बोध प्राप्त कर सकती थी वह बोध के स्थान पर अबोध ही अधिक था। औरतों को पति के अतिरिक्त और किसीके आगे हाथ नहीं फैलाना चाहिए, किन्तु वह बाल्यकाल से ही लोगों के आगे हाथ फैलाने की विद्या अर्जन करती जाती थी। पिता-माता में इतनी शक्ति न थी कि अपनी सन्तति का प्रतिपालन कर सकें और न सामर्थ्य ही थी कि वे उनकी इच्छा की पूर्ति कर सकें। फलतः सन्तानों को भी कमाने का माध्यम बना रखा था। उस युग में सरकार जन्म-नियंत्रण के अभियान भी नहीं चलाती थी और न बाजार से ही ऐसी चीजें प्राप्य थीं जिनसे लोग सदा बालब्रह्मचारी-से ही बने रहें। ईश्वरेच्छा पर ही जन्म-मृत्यु की लगाम लगी हुई थी। उसी पर जन्म-मृत्यु की गाड़ी चला करती थी।

फलतः एक-एक करके सँझिली जीजी की माँ की गोद में सात लड़कियों के पीछे एक लड़का खेलने लगा। वह बेचारी स्वयं सधवा बनती थी, बच्चे खिलाती थी, अन्यों के घर में खाना पकाती थी और ऊपर से बच्चे भी पैदा करती थी। पतिदेव, कभी-कभार एकआध यजमान के यहाँ क्रिया करम कराकर कुछ लाते थे। यों बारहों महीने कई शिव मन्दिरों में भोलेनाथ को स्नान कराने से लेकर भोग चढ़ाकर कुछ प्रसाद तथा कई ताँबे के पैसे लाकर पत्नी के हाथ में धर देते थे।

सँझिली जीजी के पिता थे तो गरीब, किन्तु कुल-ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तलवार की धार से भी तेज थे। कुलीनता की रक्षा के लिए लड़कियों की शादी श्मशान-यात्री के साथ, चार पत्नीवाले भिखारी के साथ, स्वयं जिसे शत्रु समझते थे, उसके साथ या जेलयात्री के साथ भी करने में नहीं हिचकते थे। बस, लड़का उच्च कुल का होना चाहिए। उससे कम में चाहे स्वयं इन्द्र, कार्तिकेय अथवा कामदेव भी आ जायँ तो उनसे अपनी बिटियों का ब्याह करके बे नाक नहीं कटा सकते थे। रही कुमारी पुजवाने की बात, हाथ फैलाने की बात या दूसरे के घर नौकरानी बनने की बात। उसमें क्या? पुजवाना, भिक्षा माँगना या रोटी पकाना तो ब्राह्मणोचित कार्य ठहरा। इसमें लज्जा की क्या बात है? जो अपनी पत्नी से दूसरे के घर रोटी पकवाकर घर खर्च चलवाता हो उसे बेटियों से रोटी पकवाने में लज्जा काहे की?

जिस अवस्था में सँझिली जीजी ने रोटी पकाने का काम आरम्भ किया था उसमें उस पेशे को न करने पर भी काम चल सकता था, किन्तु उसे बचपन से ही जेवरों की लालच ने ऐसा धर दबाया कि उसने तय कर लिया था कि तुरन्त पैसा कमाना चाहिए। यों चौदह या पन्द्रह वर्ष की वय से ही वह नौकरी करने लगी थी।

यह जिन दिनों की बात है उन दिनों गिन्नी तेरह रुपये में मिलती थी एवं सोने का भाव बीस के अन्दर-अन्दर था। किन्तु सोना सस्ता होने से क्या होता है, खाना पकाने की तनख्वाह भी तो बारह-चौदह आने से लेकर डेढ़-दो रुपये तक थी। सँझिली जीजी को जेवर के लालच के कारण कोई तनख्वाह थोड़े ही अधिक देता? उसके इन्कार करने पर दस और तैयार रहतीं। वैसी परिस्थितिवाली लड़की अकेले वही तो न थी। हजारों कुलीन ब्राह्मण परिवार ठीक उसी परिस्थिति में थे।

सँझिली जीजी ने कब शादी की थी और कब से नौकरी शुरू की इसका प्रत्यक्ष ज्ञान मुझे बिल्कुल न था। सब सुनी हुई बातें थीं। मेरी उनकी घनिष्ठता का सीधा सम्पर्क तो अचानक ही एक दिन हो गया।

नवरात्रि के दिन थे। रोज सबेरे उठकर अपने घर से दुर्गाजी के मन्दिर जाया करता था। कभी दल बाँधकर, कभी अकेले। घर से मन्दिर प्रायः चार मील पड़ता था। जाते-आते रास्ते में पड़नेवाले नींबू के बगीचों में, रखवारों की आँखें बचाकर, घुस जाया करता। छोटा-बड़ा जो भी हाथ आता, तोड़कर जेब में डाल लेता। कभी-कभी पकड़ा जाते-जाते बच भी जाता था और कभी-कभी मेरी भली-भाँति ठुकम्मस भी हो जाती। किन्तु उससे क्या? कान सहलाते-सहलाते या पीठ को तानतूनकर दस कदम चलते-न-चलते फिर गलती कर बैठता। यानी किसी और के बाग में घुस पड़ता। पकड़ गया तो फिर थोड़ा-सा प्रसाद रखवालों के हाथ से प्राप्त करता। अवश्य यदि हिसाब जोड़ा जाय तो अपराध को देखते हुए दस प्रतिशत से अधिक प्रसाद प्राप्ति की नौबत न आती।

इसे बालापन ही कहना चाहिए। कारण, घर तक तो वे नींबू ला नहीं पाता था। पिताजी या दादी को पता लगता तो दूसरे दिन से जाना ही बन्द हो जाता। ऊपर से ठोकाई जो होती उसकी कोई गिनती ही नहीं। न मालूम उस चोरी में क्या आनन्द आता था कि सँभालते-सँभालते भी अपने को रोक न पाता था। यदि नींबू के बदले कच्चे-पक्के आम या अमरूद होते तो जैसे-तैसे खाते-फेंकते घर तक जेब साफ हो जाती, किन्तु नींबुओं को तोड़ना-ही-तोड़ना होता था। कच्चे-पक्के नींबुओं को खाने से क्या प्रयोजन?

फलतः जेबवाले नींबुओं को, जाते या आते समय, समस्त साथवालों को दे देता और अकेले होता तो रास्ते में जो भी एक्का, बग्घी या टमटम मिलती उनमें चुपके से लुढ़का देता। उनमें बैठकर जानेवालों में किसीके सरपर कट् से जाकर लगता या गोद अथवा छाती में लगता। मैं छोटा-सा तो था ही, किसी राह चलतू की आड़ में छिप जाता। जिसको लगता वह इधर-उधर देखता, कोई दिखायी न पड़ता और यदि किसीको देख लेता तो उनकी चाल-ढाल से वैसा कोई सन्देह उठने की सम्भावना नहीं दिखायी पड़ती। इससे या तो निरुद्देश्य दो-चार गाली बकता चला जाता या कुछ भी नहीं कहता। हाँ, नींबू हाथ आ जाने पर प्रेम से रख लेता था।

इसी प्रकार एक दिन नींबू तोड़े। दर्शन करके अकेले ही वापस आ रहा था। उस दिन के नींबू अच्छे बड़े-बड़े थे। इससे लोकाने के बदले उन्हें जरा जोर से फेंकना पड़ता था। निशाना तो मेरे अचूक होते थे। घोड़ों के टाप की आवाज सुनते ही झट जेब में हाथ जाता। एक नींबू निकाल लेता और ठीक रेंज (Range) में पड़ते ही 'टक्' करके फेंकता। यों अब तक कई फेंक चुका था। इतने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पालकी गाड़ी बगल से गुजरने लगी। वह अचानक आ गयी थी इसीसे ध्यान न रहा कि फेंकने के बाद छिपूँगा कहाँ। झटके से एक नींबू दे मारा। गाड़ी के अन्दर जिसे लगा उसने झाँककर देखा होगा। तभी तो गाड़ी आगे जाकर रुक गयी। इतने में दूसरी गाड़ी गुजरने लगी। मैं उसमें फेंकने में व्यस्त था। इसीसे ध्यान नहीं रहा कि आगे की गाड़ी रुक गयी है। दूसरी गाड़ी में झुककर ज्योंही छिपते-छिपते आगे बढ़ा त्योंही रुकी हुई गाड़ी के साईस ने मुझे कप् से पकड़ लिया। रंगे हाथ पकड़ लिया गया। जेब में कई नींबू तो थे ही।

घबड़ाते हुए मैंने पूछा—क्यों····क्यों····पकड़ रहे हो?····मैं····मैं····

साईस ने और झटके से खींचते हुए कहा—अबे चल् ···मैं···· मैं वाले। अभी····

तब तक बिल्कुल गाड़ी के बगल में पहुँच गया। अन्दर से नारीकण्ठ की आवाज आयी—ऐ साईस! क्यों वैसे घसीट रहा है लड़के को?

कहते-कहते हाथ बढ़ाकर गाड़ी से झुककर मेरा हाथ अपने हाथ में लेती हुई उस नारी ने कहा—आ छोटे! गाड़ी के अन्दर चला आ।

मैंने अवाक् होकर देखा कि वह नारी और कोई न थी, सँझिली जीजी ही थी। होश को ठिकाने लगाने में कुछ समय लगा।

सँझिली जीजी, हाँ, सँझिली जीजी ही। मेरे घर के बगल में रहनेवाली, गरीब कुलीन ब्राह्मण के घर की बेटी सँझिली जीजी ही तो है।

अभी ठीक से विश्वास भी नहीं कर पाया था कि इतने में सँझिली जीजी ने कहा—तू क्या रोज आता है? ···कल भी तूने ही नींब फेंका था?

क्या उत्तर दूँ—सोच ही रहा था कि इतने में फिर वह बोली—गाड़ी में····ऐसे जेवर आदि पहनकर जाती हूँ यह देखकर ही तू नीबू मारता है न?

अब भी कोई उत्तर न ठीक कर पाया था कि उन्होंने आगे प्रश्न किया—अभी किसीसे कहा तो नहीं ?····हाँ, कहना नहीं···। कहते-कहते बड़े प्यार से अपनी बगल में बैठा लिया। गाड़ी अपनी चाल से आगे बढ़ती चली जा रही थी। इतने में मेरी निगाह सामनेवाली गद्दी पर बैठे एक काले से तगड़े व्यक्ति की ओर पड़ी। मोटे ओंठ, और उनसे भी मोटी नाक के नीचे फाड़ते हुए लम्बे-लम्बे दाँतों को निकालते हुए मुस्कराकर उन्होंने सँझिली जीजी से पूछा—यह लड़का····शायद तुम्हारे पड़ोस में रहता है····अभी इसे पता नहीं कि इस प्रकार के अपराधों के लिए फाँसी की सजा मिल सकती है ····। यह कहकर, सूअर जैसी 'घुँत्-घुँत्' आवाज करते हुए वह हँस पड़ा।

पता नहीं सँझिली जीजी ने आँखों से क्या इशारा किया कि उसने बात का रुख बदलते हुए कहा—लगता है यह पड़ोस के किसी अच्छे घर का लड़का है।

तुरन्त सँझिली जीजी ने मुझे अपने अंग से सटाते हुए कहा—खाली यही नहीं····बहुत अच्छा···बड़ा तेज····क्या पढ़ने में····क्या खेलने में···और सबसे बड़ी बात यह कि किसीकी बात मानने में और भी बढ़ा-चढ़ा है।··· आप यदि इसके साथ दो-चार दिन मिलियेगा तो आपसे आप इसे इतना प्यार करने लगियेगा कि जी चाहेगा दिन-रात इसे पास-पास ही रखें।

यह सुनकर वह ऐसे 'फीः! फीः!' करके हँस दिये कि उनके मुँह के अन्दर के पान के दो-चार सुपाड़ी के टुकड़े छटककर निकल गये। आगे कहा—जब तो बड़ा अच्छा है····इसे अपने यहाँ ले चलो।

—सो तो लिये ही चल रही हूँ····आज वहीं खाना खायगा···फिर मेरे ही साथ घर जायगा ··अच्छा हुआ जो मिल गया···।

कहते-कहते उसने और पास खींच लिया। मुझसे उस सामनेवाले दैत्यवंश को देखा नहीं जा रहा था इसीसे सँझिली जीजी की गोद में मैंने आँखें छिपा लीं। मेरे सिर पर आहिस्ते-आहिस्ते उँगलियों से सहलाती हुई सँझिली जीजी ने कहा—है बड़ा जिद्दी। जरा में जिद्दिया जाता है.. नाजुक दिलवाला है···

यद्यपि इनमें सभी बातें मेरे लिए खपती थीं तथापि उस समय मैंने उल्टा ही व्यवहार करना आरम्भ किया।

मेरे सम्बन्ध में इसी प्रकार की बातें चलती रहीं कि गाड़ी उस दैत्यवंश के बँगले के अहाते में दाखिल हुई। बगीचे की सड़क पार करके जब गाड़ी बँगले के दरवाजे के सामने रुकी तब हम सब उससे उतरे। बँगले के अन्दर दाखिल होते हुए उस दैत्यवंश ने कहा—आओ···आओ···अन्दर आओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ घबड़ाते हुए, कुछ परेशान होकर मैंने सँझिली जीजी के मुँह की ओर देखा। तब तक में वह बोलीं—चलो भैया····अन्दर जाओ····

कहते-कहते जरा मुस्कराकर धीरे से बोलीं—भारी भरकम, काले-कलूटे को देखकर घबड़ाओ नहीं····वे उतने ही सीधे-सादे हैं।

मुझे स्वयं ही हाथ पकड़कर ले जाकर उनके हाथ में सौंप दिया। उस दैत्यवंश ने जब मेरा हाथ अपने बड़े-बड़े पंजों में लिया तब मुझे लगा कि रुई की गद्दी के अन्दर मेरा हाथ धँस गया है। ऐसा मुलायम था उनका हाथ।

इस बार मेरी रुकी हुई आवाज खुली। मैंने कहा—आपके हाथ तो बड़े मुलायम हैं····आप क्या हाथ से····

आगे कुछ कहने के पूर्व ही वे बोल पड़े—You are right, my boy. The same opinion is carried by every body. हाँ····तुम्हें अंग्रेजी आती है न? मैं बचपन में अंग्रेजी स्कूल में पढ़ता था····Understand?

मैंने कहा—मैं अंग्रेजी पढ़ता जरूर हूँ, मगर अंग्रेजी स्कूल में नहीं। मगर····हाँ····आपने जो कुछ कहा····सब समझ गया····

इतने में हम लोग तीन सीढ़ी चढ़कर बड़े हाल में दाखिल हुए हाल खूब सजा हुआ था। उसी हाल में होकर ऊपर सीढ़ी जाती थी। उस सीढ़ी की ओर बढ़ते हुए उन्होंने कहा—Understand? यह जो मकान देखते हो इसे नये तरीके से सजाना है। Understand? इस मकान को मैंने खरीद लिया है। Understand? यह राजा गुलजारी मल का था। Uuderstand? अब इसमें मैं रहूँगा।····तुम बराबर आया करो। बराबर। Understand? मैं मन-हूसियत पसन्द नहीं करता। प्राणवान वातावरण चाहता हूँ—full of life. Understand? मैं बचपन में English स्कूल में पढ़ा हूँ। ओ····ओ····ओ····। वहाँ बिल्कुल जीवनी-शक्ति भरी हुई है। और सब मुर्दे हैं, मुर्दे। मैं बहुत advanced लोगों में हूँ बिल्कुल advanced? पीढ़े पर बैठकर मैंने खाना भी छोड़ दिया है। बिल्कुल अंग्रेजी ढंग से खाना खाता हूँ। मेज पर। Understand?

बीच में ही मैंने कहा—तो आप साँड़ खाते हैं क्या?

झट हाथ छोड़कर जरा दूर छटक गये। कहा—नहीं नहीं। ऐसा नहीं करता। Understand? खानपान में अभी वैसा नहीं करता।

मैंने अति साधारण भाव से कहा—आप साँड़ नहीं खाते तो मेज पर कैसे खाने लगे? O good Good! मेज पर खाने से और साँड़ खाने से क्या सम्बन्ध?

जब उन्होंने ऐसा कहा तब मैंने कहा—क्यों? दादी ने तो मुझसे कहा है कि लोगों में साँड़ खाते-खाते जब उसके खाने का असर होता है तब वे उसके जैसे मोटे ताजे भी हो जाते हैं एवं फिर साँड़ की तरह गला ऊँचे रखकर खाना पसन्द करते हैं। इसीसे साँड़ खानेवाले ही मेज पर बैठकर खाना खाते हैं····अच्छा अंग्रेज लोग साँड़ नहीं खाते?

सुनते ही वे बोल पड़े—गलत। बिल्कुल गलत। तुम्हारी दादी ने तुम्हें बहुत गलत समझाया है। Understand? बहुत गलत। मैंने कभी साँड़ नहीं खाया।

मेरे लिए जैसे कोई नयी बात हो, ऐसा चेहरा बनाते हुए मैंने कहा—तो फिर क्या मैंने बहुत गलत समझा था? आपका शरीर भी साँड़ जैसा यों ही बन गया और आप मेज पर भी खाना खाने लगे।

सुनते ही वे बड़े जोर से अट्टहास कर उठे। एक छलाँग में मेरे पास आकर उन्होंने मुझे ऊपर उठा लिया और कहा—खूब रही! खूब रही! तुम बड़ी मजेदार बातें सुनाते हो····मैं साँड़ जैसा लगता हूँ····हा····हा····हा····साँड़ जैसा!

कहकर नीचे उतारकर मुझे फर्श पर खड़ा करते हुए बोले—मगर····मगर····साँड़ जैसा लगता भी होऊँगा तो बिल्कुल काला साँड़। है न?

गौर से देखते हुए मैंने कहा—ऊँ····ऊँ····ऊँ····आप आपने साँड़ नहीं खाया और फिर भी ऐसे हैं और मेज पर खाते हैं····तब····ओ····ओ··आप काला भैंसा हैं।

इस बार वे मुझे ऊपर उठाकर छाती से लगाते हुए बोले—ठीक! ठीक! तुमने ठीक कहा। ठीक कहा। मैं काला भैंसा हूँ।

वे बड़े प्रसन्न थे। मुझसे बोले—आज से मैं तुम्हारा भैंसा दादा हूँ····

मुँह बिगाड़ते हुए मैंने कहा—दादा, न पादा! भैंसे को कोई दादा कहता है?

कहते-कहते मैं घूमकर पीछे हट गया और फिर दौड़ करके एकदम सीढ़ी से ऊपर चढ़ने लगा। देखकर वे बोले—बात का फैसला नहीं हुआ और तुम भाग गये?

इतने में कपड़े वगैरह बदलकर उधर से आती हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संझिली जीजी ने पूछा—किस बात का फैसला आप छोटे से करा रहे हैं ?

उसकी ओर फिरते हुए मेरे तथाकथित दैत्यवंश ने कहा—वह इनकी मेरी आपस की बात है····इसमें तुम न पड़ो। Understand ?

तुरन्त मैंने कहा—क्यों सँझिली जीजी, तुम्हीं कहो कि काला भैंसा भी कभी दादा होता है ? ये कहते हैं कि मुझे भैंसा दादा कहा करो।

सुनते ही संझिली जीजी का चेहरा सूख गया। इत्ता सा चेहरा बनाकर वह गिड़गिड़ाकर रह गयीं। इतने में मैंने कहा—यदि आप दौड़कर मुझे छू लें तो मैं आपको लंगूर दादा कहूँगा।····चेहरा भी लंगूर····मोटका लंगर वैसा है····और फिर मान लूँगा कि आप दो पैरवाले लंगूर हैं····आइये····भागकर आइये····।

सुनते ही सँझिली जीजी डाटती हुई बोल उठीं—छोटे, यह क्या होता है सुनूं ?····

उनकी बातों की ओर ध्यान न देकर सचमुच लंगूरत्व की परीक्षा में उत्तीर्ण होने की मंशा से वे तथाकथित दैत्यवंश, दो दो सीढ़ी लाँघते हुए मुझे छूने के लिए बढ़े। बड़ी देर तक हम दोनों में धमाचौकड़ी चलती रही। आखिर वे थककर खड़े हो गये एवं बोले—हारा।

झट मैंने कहा—छिः,छिः, लंगूर लायक भी आप नहीं हैं।

संझिली जीजी अवाक् होकर हम लोगों के इस अध्याय को देखने लगी। क्या किससे कहेगी कुछ ठीक न कर पायी। जैसी आयी थी वैसी ही खड़ी रहीं।

मैं भी हांफता रहा। हाँफते-हाँफते ही मैंने कहा—आप दैत्य हैं।

सुनते ही वे बोल पड़े—मंजूर····मुझे दैत्य ही कहा करो।

दाँतों तले उँगली रखकर संझिली जीजी जैसे स्वप्न देख रही थीं। उनका स्वप्न भंग तब हुआ जब मैंने कहा—इस दैत्य के साथ दौड़ते-दौड़ते मुझे प्यास लग आयी····

आगे कुछ कहने के पूर्व ही दैत्यवंश ने कहा—गलत। आज ही तुम्हारी मेरी पहली मुलाकात हुई। प्रथम पान सादा पानी से आरम्भ नहीं होगा। मैं तुम्हें नीबू का शरबत पिलाऊँगा। विलायती लेमनस्क्वाश। समझो कि ताजा नीबू का शरबत। understand ?

झट मैंने जेब से मुट्ठी भर नीबू निकालकर कहा—मेरे पास बहुत से नीबू हैं।

O good God ! फिर क्या ····जाओ हरकरण से कहो कि ऊपर के कमरे में syrup वाली बोतल ले आवे। और तुम घड़े का ठंढा पानी ले आओ। understand ?

ऐसा संझिली जीजी को हुकुम सुनाकर वे मुझे ऊपर वाले कमरे में ले गये। थोड़ी देर में हरकरण शर्बत की बोतल ले आया एवं संझिली जीजी पानी ले आयीं। दैत्यवंश ने अपने हाथ से दो गिलास शर्बत बनाया। एक गिलास मैंने पिया एवं दूसरा उसने।

नियमानुसार वे दोनों अपना-अपना काम करके चले गये। केवल हम दोनों उस कमरे में रह गये। शर्बत पीकर जब मन में संतोष एवं मस्तिष्क शीतल हुआ तब मैंने कहा—आप बड़े अच्छे हैं।

मुझे ऐसा कहते सुनकर वे बोले—बड़ी जल्दी तुम्हारी राय बदल गयी ?

मैंने कहा—मैं आपको खराब थोड़े ही समझता हूँ··· केवल आपकी शकल दैत्य···।

अट्टहास करते हुए उन्होंने कहा—इसे कैसे बदलूं ? ····कोई उपाय बता सकते हो ?

झट मैंने पूछा—उबटन लगाते हैं आप ?

इस बार और जोरों से वे अट्टहास कर उठे। फिर कहा—यदि उसे लगाने से मैं गोरा हो जाता तो अब तक न मालूम कब गोरा हो गया होता।····यह रंग तो पक्का है, पक्का।

इसी प्रकार की बाल-सुलभ कितनी ही बातें उनसे होती रहीं। खूब दिलचस्पी के साथ वे भी उत्तर देते रहे एवं मैं भी खूब खोद-खोदकर प्रश्न करता तथा कल्पना के घोड़े दौड़ाता रहा।

× × ×

[क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

साबित्री—अनुवादक श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह; प्रकाशक, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६। मूल्य १२ रु०।

साबित्री के मूल लेखक श्री अरविंद हैं। पुस्तक इतनी जटिल है कि बहुत से पाठक तो इसका पढ़ना प्रारम्भ करके बीच में ही छोड़ देते हैं। और कुछ पूर्व के कुछ पृष्ठ छोड़कर पढ़ना प्रारम्भ करते हैं। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद कई दृष्टियों से सराहनीय है। एक तो इतनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक हिन्दी साहित्य को उपलब्ध हुई, दूसरे इसका रस उन पाठकों को भी मिल सकता है जो इसको मूल में पढ़ने के असमर्थ हैं। इतनी जटिल पुस्तक का अनुवाद करना सरल काम नहीं, वह भी ऐसा अनुवाद जो बोधगम्य हो। इस पुस्तक में अनुवाद जैसी कोई वस्तु नहीं लगती। भाषा सरसता का प्रवाह बनाये रखती है। ऐसी पुस्तक का वही अनुवाद कर सकता है जो श्री अरविन्द की दार्शनिकता में पूरी तरह से पगा हो।

इस भावानुवाद में अनुवादक ने संक्षेप में पूर्ण कथा और उसके भीतर निहित भावना सरल शब्दों में व्यक्त की है।

साबित्री का कथानक महाभारत में १८ श्लोकों में दिया गया है। उसीसे प्रेरणा लेकर श्री अरविंद ने उसको ११ पर्वों और ४१ सर्गों में महाकाव्य के रूप में समाप्त किया। इसे उन्होंने अपने आश्रम के एकान्तवास में अन्तिम रचना के रूप में लिखा था। उनका कथन है कि यह अन्तः-प्रेरित काव्य है और ऐसा लगता है कि जैसे इसकी पंक्तियाँ ऊपर से उतरी चली आ रही हैं और मुझसे लिखवायी जा रही हैं। लेखक ने उस महाकाव्य के ११ अध्याय कर दिये हैं। ११ पर्वों के संक्षिप्त रूप ये ग्यारह अध्याय लगते हैं—वे इस प्रकार हैं—सृष्टि का आरंभ, विश्वयात्री, दिव्य आद्या-शक्ति, जन्य और खोज, प्रेम, विश्वभवन का यात्री, योग, मृत्यु, शाश्वत रात्रि, दुहरा प्रकाश, शाश्वत दिवस।

यह भावानुवाद इस कारण सरल हो गया है कि इसमें आये प्रत्येक प्रतीकात्मक शब्द का अर्थ भावानुवाद में भली भाँति समझा दिया गया है। यह भावानुवाद हिन्दी साहित्य के लिए अमूल्य निधि है। लेखक को यह जटिल विषय इतना सुगम बनाने के लिए बधाई है।

काफी का एक कप—लेखक विपिन चतुर्वेदी; प्रकाशक, हिन्दी अकादमी, हैदराबाद। मूल्य २ रु०।

इस पुस्तक में आठ कहानियाँ हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इसे लिखने में भारत-चीन और भारत-पाकिस्तान युद्ध से लेखक ने प्रेरणा ली है, क्योंकि ये सभी कहानियाँ युद्ध सम्बन्धी हैं। लेखक फौजी डाक्टर है और स्वभावतः उसने युद्ध क्षेत्र में नर्सों के जीवन तथा कार्यकलाप, उनके बाहर से सहायता देनेवाले ट्रक ड्राइवरों के कार्य आदि को अपनी रोचक कहानियों की विषय-वस्तु बनाया है।

ये बड़ी सफल कहानियाँ हैं। इनका सबसे उल्लेखनीय पक्ष है वास्तविकता। युद्ध-क्षेत्र के हर पहलू का वर्णन बड़ी बारीकी से किया गया है। ये कहानियाँ लेखक की सृजनात्मक शक्ति और वास्तविक चित्रण की क्षमता पर प्रकाश डालती हैं। दूसरी बात यह है कि युद्ध की कथाएँ प्रायः एकांगी हो जाया करती हैं। या तो उनमें युद्ध की वीरता का प्रदर्शन नाटकीय ढंग से किया जाता है या युद्ध की बर्बरता और नृशंसता का चित्रण पढ़ने को मिलता है। इन कहानियों की विशेषता यह है कि युद्ध से सम्बन्धित होने पर भी बीभत्सता से बचाकर कथाओं को रोचक ढंग से कहा गया है। अवश्य उत्साह का वर्णन आया है, पर वह नाटकीय नहीं लगता—नितान्त स्वाभाविक रूप में आया है। करुणा का भी चित्रण है, किन्तु इस रूप में कि वह एक स्वाभाविक दुखद घटना लगती है जो जीवन में घटती ही रहती हैं, ऐसी करुणा नहीं लगती जो जीवन में विचित्र या काल्पनिक लगे।

युद्ध की कहानियाँ होते हुए भी इनमें विषय की इतनी विभिन्नता है कि पाठक को ऊब नहीं उठती। कहानियों की भाषा सरस और वार्तालाप स्वाभाविक हैं।

'दूसरी तो है' कहानी में कारुणिक चित्रण बड़ी फौजी आन के साथ निबाहा गया है। एक सैनिक अफसर की टाँग टूट गयी है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाम को जब मेजर गणेशन आये तब सन्त का बोल निकला 'पर, मेरी टाँग गयी।'

मेजर गणेशन मानों तय करके आये थे कि मायूसी का माहौल किसी भी कीमत पर पैदा नहीं होने देंगे। उन्होंने अपनी टोपी उतार कर उसके पैताने कम्बल पर रक्खी और पास पड़े स्टूल पर बैठते हुए बोले 'अबे, एक ही तो गयी है।'

सन्त धीरे से बोला 'हाँ सर एक ही गयी है।'

मेजर गणेशन नीचे झुककर बोले—'तेरा दिल तो टाँग में नहीं था न? अपनी जगह पर है न?'

'हाँ सर, दिल तो अपनी जगह पर ही है।'

'बस, ये ही बड़ी चीज है।' मेजर गणेशन सच में आश्वस्त होकर बोले 'टाँग! टाँग के साथ दिल नहीं जाना चाहिये। वह अपनी जगह मजबूती से रहे, फिर भले ही दोनों चली जायें परवाह नहीं।'

इस प्रकार किसी कारुणिक दृश्य को सँभालना एक कुशल लेखक का ही सामर्थ्य है।

सारी पुस्तक अत्यन्त रोचक और प्रेरणाप्रद है। नवयुवकों के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण है और सेना के जवानों और अफसरों के लिए तो विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण है।

आल्हा ऊदल—लेखक चन्द्रशेखर मिश्र; प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-१। मूल्य २·२५ रुपये।

यह ६८ पृष्ठों की पुस्तक दस से चौदह वर्ष की अवस्था के बालक और बालिकाओं के लिए लिखी गयी है। इसकी भाषा सरल है और उसमें विशेषता यह है कि कथा के साथ प्रचलित 'आल्हा खण्ड' के अंश भी स्थान-स्थान पर दे दिये गये हैं। आल्हा' की कथा के साथ इनके आने से रोचकता आ जाती है। 'आल्हा ऊदल' की गाथा गाँवों में बहुत गायी जाती है। 'आल्हा' के लोकप्रिय जन-काव्य होने के कारण उसका कथानक सरल भाषा में अवश्य लोकप्रिय होगा।

इस कथा को पढ़ने से उस समय के राजपूतों की वीरता का ज्ञान तो होता ही है; इसका भी ज्ञान होता है कि वे अपने वचन और आन के कितने पक्के थे। साथ ही इसका भी ज्ञान होता है कि वे लोग इतने वीर होने पर कान के कितने कच्चे थे। और आपस में ही किस प्रकार जूझकर अपनी वीरता का दुरुपयोग करते थे। उनका अपना चरित्र कितना भी उज्ज्वल क्यों न हो, उन्हें दूसरे के चरित्र पर शंका, सन्देह बड़ी जल्दी हो जाता था। इसमें वे अपनी कितनी शक्ति खोते थे। पुस्तक के तरुण पाठक यह शिक्षा अवश्य ग्रहण करेंगे कि निर्मूल से निर्मूल बात दूसरों के कथन से कितनी संदिग्ध लगने लगती है और उस पर विश्वास करने का परिणाम कितना भयंकर हो सकता है।

ऐतिहासिक तथ्यों की सच्चाई पर कथा में पूरी दृष्टि रखी गयी है। पुस्तक में चित्र भी हैं। चित्रोंवाली पुस्तक बालकों को सदैव आकर्षित करती है। किन्तु इस पुस्तक के अधिकांश चित्र निर्जीव से लगते हैं। एक-दो अपवाद भी हैं। किन्तु ऐसे प्रकाशनों में चित्रों की सजीवता पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है, क्योंकि बालकों के लिए चित्रों का महत्त्व कथा से कम नहीं होता।

सब मिलाकर पुस्तक बहुत रोचक और १० से १४ वर्षों के बालक-बालिकाओं के लिए बहुत आकर्षक और रोचक है। एक लोकप्रिय जनकाव्य के कथानक को सरल और रोचक भाषा में प्रस्तुत कर बालकों को ग्रामीण क्षेत्रों में गाये जानेवाले इस काव्य को सुनने और समझने में बड़ी सहायता मिलेगी।

सोनमेघ—लेखिका मनोरमा 'मधु', मधुकलश प्रकाशन कानपुर, मूल्य ७ रुपये।

कवयित्री मनोरमा 'मधु' की हर मुक्तक कविताओं का यह संग्रह सोनमेघ के नाम से प्रकाशित किया गया है। सोनमेघ इस संग्रह की प्रथम कविता का नाम है। सभी कविताएँ बड़ी सरस और भावना प्रधान हैं। साथ ही इन कविताओं का विशेष गुण है संगीत। इनमें दार्शनिकता कम है, संगीत तत्त्व अधिक है। इनमें प्रवाह है। जैसे,

उड़ी चुनरिया मौसम के उल्लास में!
सोनमेघ घिर आये मन-आकाश में!!

तथा—

नींद टूटी, स्वप्न सारे छल गया पापी सबेरा
चाँद की अन्तिम किरण पकड़े प्रभाती गा रही हूँ।

तथा—

अनमना है आज सब कुछ प्यार के रामेश्वरम् में
सेतु सारे तोड़ सागर की शरण में जा रही हूँ।

ये उदाहरण भावनाओं की मधुरता तथा सरस भाषा तथा में संगीत इन तीनों के सुन्दर उदाहरण हैं। इस पुस्तक में संगृहीत सभी कविताएँ सरस हैं और काव्य-प्रेमियों को आनन्द देने वाली हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक प्रसंग

उर्दू की 'किश्ती' 'कस्बी' बनी

सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्त शर्मा ने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह पर सन् १९१७ ई० में 'हिंदी पत्रों का इतिहास' लिखना आरम्भ किया था, जो उनकी विषम परिस्थितियों के कारण पूर्ण न हो सका। इसमें हिन्दी की अनेक पत्र-पत्रिकाओं के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी दी गयी है। ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। श्रद्धेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के सौजन्य से इसकी हस्तलिखित मुझे देखने को मिली। 'सरस्वती' के पाठकों के लिए इससे एक मनोरंजक प्रसंग प्रस्तुत है—

'जिस समय गवर्नमेन्ट ने शिक्षा कमीशन नियत किया था उस समय कमीशन के सभापति डाक्टर हंटर के अविचार से हिन्दी को सरकार में आदर प्राप्त न हुआ, परन्तु जब श्रीमान् सर मैकडानल साहब संयुक्त प्रान्त के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर नियत होके आये तब उन्होंने हिन्दी भाषा और नागराक्षरों के अपूर्व गुणों पर ध्यान देकर आज्ञा दी कि इस प्रान्त की अदालतों के समस्त कागजात हिन्दी और उर्दू दोनों में छपकर प्रकाशित हुआ करें। तदनुसार अदालती कागज-पत्र दोनों प्रकार की लिपियों में प्रकाशित होने लगे। परन्तु अदालत के मुहर्रिर नाजिर और वकीलों को बहुत काल से उर्दू लिखने का अभ्यास पड़ा था। उन्होंने इस आज्ञा का ऐसा दुरुपयोग किया। हिन्दी में खानापूरी न करके केवल उर्दू में खानापूरी करके समन आदि भेजने लगे। इस दुर्दशा और हठ को देखकर उक्त छोटे लाट साहब ने आज्ञा दी कि जो मनुष्य हिन्दी न जानता हो उसे सरकारी अदालतों में कोई नौकरी न दी जाय। इस आज्ञा से संयुक्त प्रान्त के निवासी हिन्दी पढ़ने लगे और काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के उद्योग से नागरी लिपि की अर्जियाँ भी अदालत में स्वीकृत होने लगीं।

इधर तो इस प्रकार से हिन्दी का कुछ भाग्योदय हुआ दूसरी ओर संयुक्त प्रान्त के सीमावर्ती बिहार प्रान्त में भी उर्दू लिपि का एकछत्र राज्य वर्तमान था। यद्यपि उस समय बिहार प्रान्त बंगाल में मिश्रित था तो भी बंगाल के समान कोई प्रान्तीय लिपि प्रचलित न थी। एक बार वहाँ के छोटे लाट सर रिवर्स टामसन बिहार में दौरा करने को आए। उन्होंने मुकामाघाट के प्रबन्धकर्ता को उर्दू के हुक्मनामे में लिख भेजा कि जलसे का सामान ठीक रखा जाय और मौके पर किश्तियाँ तैयार रहें। पढ़े बालों ने उसे पढ़ा कि "मौके पर कस्बियाँ तैयार रहें।" बस इसके अनुसार प्रबन्धकर्त्ता ने गंगा के घाट पर रंडियों को बुलाके महफिल तैयार कर ली। जब लाट साहब घाट पर पहुँचे तब देखा कि घाट पर एक भी किश्ती नहीं है और जहाँ तहाँ नाच हो रहे हैं। लाट साहब इस कुप्रबन्ध को देखकर बड़े रुष्ट हुए परन्तु सरिस्तेदार ने हाथ जोड़कर कहा कि हुजूर उर्दू में 'किस्ती' और 'कस्बी' एक ही प्रकार से लिखी जाती है इस कारण प्रबन्धकर्त्ता का दोष नहीं, उर्दू लिपि का दोष है। लाट साहब ने उसी समय आज्ञा दी कि सरकारी दफ्तरों से उर्दू को निकाल दिया जाय और उसके स्थान में हिन्दी अक्षर प्रचलित किये जायँ। इसके अनुसार बिहार में कैथी लिपि का प्रचार किया गया। अब जब से बिहार प्रान्त बंगाल से पृथक् किया गया है तबसे वहाँ के सरकारी दफ्तरों में और प्रजा में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का प्रचार हुआ है परन्तु संयुक्त प्रान्त अभी तक उर्दू की आपत्ति में फंसा हुआ है।

—रामस्वरूप आर्य

प्रकाशक—बी० पी० श्रीवास्तव, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

मुद्रक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध नवीनतम संस्करण

मेघदूत : राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित : डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित

इस ललित काव्य का अनुवाद जिस मनोयोग से राजा लक्ष्मणसिंह ने किया उसी सामर्थ्य का कौशल डॉ० श्यामसुंदरदास ने संपादन में दिखाया है। बड़े आकार-प्रकार की इस कलात्मक पुस्तक की साज-सज्जा विख्यात कलाकार असितकुमार हालदार के चित्रों से की गई है। संस्कृत-हिन्दी छंदों के साथ-साथ भाषा में अर्थ देकर व कठिन संस्कृत शब्दों के सरल रूप देकर ग्रंथ को अनुपम बनाया गया है। यह नवीन संस्करण अब पुनः उपलब्ध हो गया है। शीघ्र कला-काव्य-प्रेमी पाठक आर्डर भेजने की कृपा करें।

मूल्य १२·०० रुपये

कुमारसंभव : पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

कुमारसंभव महाकवि कालिदास की अमर रचनाओं में एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। यह पुस्तक उसका छायानुवाद है। माता पार्वती के जन्म से लेकर महादेव शिव के साथ वन में विहार करने तक की सभी मनोरम कथायें सरल भाषा में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे महारथी विद्वान् लेखक ने दी हैं। यह कथा और उसकी भाषा दोनों ही ललित हैं। पढ़ने में उपन्यास का आनन्द मिलता है।

नवीन सजधज के साथ मुद्रित संस्करण का मूल्य ५·०० रुपये

पुरातत्त्व निबंधावली : श्री राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् राहुल जी द्वारा प्रणीत ये अप्राप्य लेख जगह-जगह से इकट्ठा करके पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये गये हैं। विषय की उपयोगिता पर पुरातत्त्व के विद्यार्थियों से हमें कुछ कहना नहीं। अब तक हमारे देश में पुरातत्त्व पर क्या हुआ है और क्या आवश्यकता है इस पर विद्वान् लेखक ने भली भाँति प्रकाश डाला है। यथास्थान में कलात्मक चित्र खुदाई में से मिले, उनका परिचय देते हुए इन दुर्लभ चित्रों को भी छापा गया है।

बड़े आकार में पुनः मुद्रित संस्करण का मूल्य १४·०० रुपये

अपभ्रंश पाठमाला : श्री नरोत्तमदास स्वामी एम० ए० विशारद

अपभ्रंश भाषा का साहित्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। और भाषा विज्ञान की दृष्टि से तो उसका गौरव अद्वितीय है। साहित्यशास्त्री जानते हैं कि आर्यवंशीय भाषाओं की जननी अपभ्रंश ही है। प्रथम भाग में मूल संकलन है, दूसरे भाग में मूल पाठों का शब्दार्थ, भावार्थ आदि दिया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन से पाठकों की संगृहीत अंशों में पर्याप्त गति हो सकेगी और अपभ्रंश के साहित्य का रसास्वाद साधारण कोष और व्याकरण की सहायता से, वे स्वतः ही कर सकेंगे। परीक्षार्थियों के लिए यह दोनों पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगी।

प्रथम भाग का मूल्य ७·०० रुपये : द्वितीय भाग का मूल्य ९·०० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई साज-सज्जा में सरस्वती सीरीज़

इस सीरीज़ की पुस्तकों ने हिन्दी पुस्तक-जगत् में अपनी लोकप्रियता, सुलभता और विविध विषयता से धूम मचा दी थी। वे ही अब आकर्षक नये रूप-रंग में छापी गई हैं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल ३·०० रुपये। इन सुलभ, लाभप्रद तथा मनोरंजक पुस्तकों का अभाव किसी भी पुस्तकालय या घरेलू पुस्तक-संग्रह में खटक सकता है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री ब्रजेश्वर वर्मा एम० ए०
पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी
सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय
मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०
दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—
संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी
वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की आज भी सुलभ कुछ पुस्तकें

प्रत्येक का मूल्य केवल १·५० रुपये

ये पुस्तकें अल्प मूल्य में आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन का अत्यंत सुगम आधार हैं

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ
घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साधी
निष्कलंकिनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्यांगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

प्राचीनतम हिन्दी मासिक पत्रिका
(संस्थापित सन् १९००)
जुलाई १९७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' से पुरस्कृत

गुप्त साम्राज्य का इतिहास

लेखक

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सुविख्यात लेखक एवं प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान्

डा० वासुदेवशरण उपाध्याय

गुप्त सम्राटों का काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। गुप्त काल में सारे वृहत्तर भारत में भारतीय अपने विकास के उच्च शिखर पर थी। धन्य था वह युग जब शिक्षा, साहित्य ही नहीं ललित कला को भी उन गुप्त सम्राटों ने विकसित कर अपनी आदर्श शासन-प्रणाली को इतिहास की एक अमर निधि बना दिया। विद्वान् की इस रचना के समकक्ष हिन्दी ही नहीं अँगरेजी में भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। सभी इतिहासकारों ने इस की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। अनेक विश्वविद्यालयों की एम० ए० कक्षाओं की परीक्षाओं के लिए यह पाठ्य पु बन गयी है। स्नातकों ने ही नहीं जनता ने भी इस ग्रन्थ का स्वागत किया है। ग्रन्थ का तीसरा संस्करण दो भागों छप कर तैयार है।

प्रथम भाग	१०·०० रुपये
द्वितीय भाग	१२·५० रुपये

इतिहास की दो नई पुस्तकें

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास

डॉ० ओमप्रकाश

हिन्दी भाषा में प्राचीन भारतीय इतिहास पर मौलिक रूप से लिखी गई पुस्तकों का प्रायः अभाव सा है। इ के गहन एवं विस्तृत विवेचन को लक्ष्य में रखते हुए विद्वान् लेखक ने यथासंभव आधुनिकतम शोधों और म समावेश करते हुए इस पुस्तक की रचना की है। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कथन की पुष्टि उचित पाद टिप्पणियों द्वारा है। इतिहास के विद्वज्जगत् द्वारा प्रशंसित पुस्तक का प्रकाशन हमारे लिए भी गौरव की बात है। इतिहास मौर्यकाल का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी इस पुस्तक को यथाशीघ्र मँगाकर लाभ उठावें। मूल्य १२·००

भारत का प्राचीन इतिहास

लेखक—प्रो० नगेन्द्रनाथ घोष एम० ए०

संशोधक—ओमप्रकाश एम० ए० डी० फिल०

यह पुस्तक इतिहास जगत् में प्रायः दशाब्दियों से लोकप्रिय रही है मगर यह सर्वांशतः संशोधित संस्करण तम ऐतिहासिक उपलब्धियों, अनुसंधानों के परिणामों को ध्यान में रखते हुए प्रकाशित हुआ है। कलेवर पहले है। इस संस्करण की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं—राजनीतिक इतिहास के नवीन एवं ग्राह्य मतों के अनुसार वस्तु उनके सांस्कृतिक अंगों पर विशेष प्रकाश, पाँच विशेष प्रकार के मानचित्रों का समावेश और विवादात्मक वि परिशिष्टों में देना आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जो विद्यार्थियों की ऐतिहासिक ज्ञानवृद्धि के प्रकाशस्तंभ हैं। मूल्य १२·५० पुस्तक मँगाकर लाभ उठावें।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद, तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

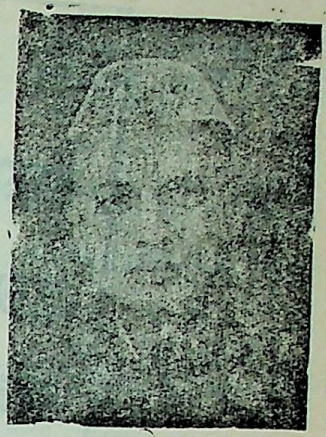

देखिये :—श्री बी० मलिक, बैरिस्टर एट्-लॉ, (भूतपूर्व) चीफ जस्टिस हाईकोर्ट, इलाहाबाद क्या कहते हैं :—

मेरे पूर्ववर्ती चीफ जस्टिस श्री के० वर्मा के सम्बन्ध में इलाहाबाद के ज्योतिषी तथा हस्तरेखा-विशारद श्री पी० एन० सिंह ने अनेक भविष्यवाणियाँ की थीं और वे सभी भविष्यवाणियाँ सत्य सिद्ध हुईं। भू० पू० चीफ जस्टिस श्री के० वर्मा ने ही मुझे श्री पी० एन० सिंह का परिचय कराया है। मुझे यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि श्री पी० एन० सिंह मुझे ऐसे सज्जन प्रतीत हुए जिन्होंने अपने विषयों का गहरा अध्ययन किया है और अपने शास्त्र का उन्हें पूर्ण ज्ञान है।

अभी तक मेरे सम्बन्ध में श्री पी० एन० सिंह ने जो भी भविष्यवाणियाँ की हैं, वे सत्य सिद्ध हुई हैं। मैं उनकी सफलता की कामना करता हूँ।

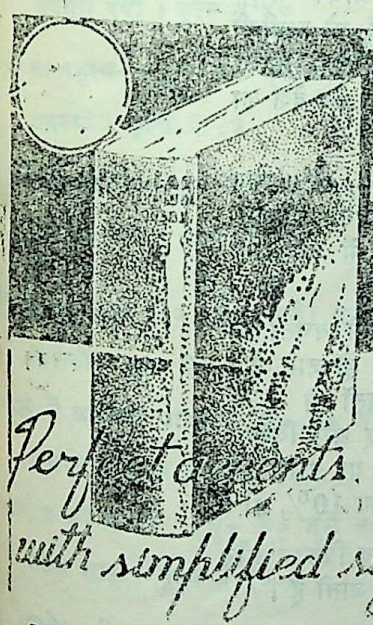

POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best Of 20th Century

पापुलर
इंग्लिश
हिन्दी
डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य
१०) रुपये

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय बचतों से सब का भला क्यों ?

क्योंकि . . . .

राष्ट्रीय बचत संगठन छोटी से छोटी बचत को भी छोटा नहीं समझता। बच्चों के बचत बैंक, 'संचयिका' द्वारा बच्चों में बचत की आदत डाली जाती है ताकि वे बड़े होकर भी नियमित रूप से बचत करते रहें। वेतन और मजदूरी पाने वाले व्यक्तियों को स्रोत पर ही आय में से कटौती कराने की सुविधा प्रदान की गई है। इससे उनके लिए बचत करना आसान हो जाता है।

यह संगठन 4,000 महिला सामाजिक कार्यकर्ताओं को खाली समय में गृहिणियों और अपने काम में लगे लोगों से बचत का धन जुटाने और कुछ आय अर्जित करने का अवसर देता है।

इस संगठन के 40,000 से भी अधिक अधिकृत एजेन्ट हैं, जो देश भर में घर-घर जाकर छोटे बड़े बचतकर्त्ताओं से मिलते हैं और उनकी समस्याओं को हल करते हैं।

गांवों में एक लाख से अधिक बचत बैंक पोस्टमास्टर हैं, जो ग्रामीणों में बचत की आदत डालने का प्रयत्न करते हैं। डाकघर बचत बैंक देश का सबसे बड़ा बचत बैंक है।

डाकघर बचत बैंक की 12 बचत योजनाएं हैं। आप अपनी सुविधानुसार इनमें से किसी में धन लगा सकते हैं।

लाखों लोगों की छोटी बचतों से करोड़ों रुपये इकट्ठे हो जाते हैं। पिछले वर्ष छोटी बचतों से 474 करोड़ रु० इकट्ठे हुए और विकास कार्यों में लगाए गए। यह राशि इस वर्ष के योजना खर्च का 10% थी।

राष्ट्रीय बचतें राष्ट्रीय विकास और रक्षा कार्यों में लगाई जाती हैं।

राष्ट्रीय बचतों में पूंजी लगाइए

राष्ट्रीय बचत संगठन
पोस्ट बाक्स नम्बर 96, नागपुर

davp 75/26

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोर सीरीज़ उपन्यासमाला

किशोरों या उदीयमान भावी युवकों को प्रेरणा, उत्साह, साहस और मनोरंजन की विशेष सामग्री उपस्थित करनेवाले उपन्यासों का अनुवाद अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं से हिन्दी में कराकर हमने हिन्दी किशोर पाठकों के लिए सुलभ किया है।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य ३ रुपये

नर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य ३·००

उड़ते अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय। मूल्य ३·२५

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य ५·५०

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी। मूल्य ३·२५

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभात किशोर मिश्र। मूल्य ३·२५

बुद्धप्रतिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य ३·२५

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य ३·२५

चन्द्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य ३·२५

चन्द्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस्० केलकर। मूल्य ५ रुपये

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त। मूल्य ५ रुपये

गुलीवर की यात्राएं—(मू० ले० जोनाथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री दो भागों में। मूल्य ५ रुपये प्रत्येक

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० क० कौशल श्रीवास्तव। मूल्य ५·००

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी। मूल्य ३·२५

स्विस परिवार राबिंसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य ५·००

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य ३·२५

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन० वत्स। मूल्य ५·००

प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय और अपनी संतान को उत्तम शिक्षा प्रदान करने का संकल्प रखनेवाले माता-पिताओं के निजी पुस्तक संग्रहों के लिए ये पुस्तकें बेजोड़ ही हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	५
२—उतरो जय बन, उतरो रथ बन !—श्री कुबेरनाथ राय	१३
३—भारत का प्रथम उपग्रह आर्यभट—डॉ० मुरली मनोहर जोशी	१९
४—प्रबुद्ध साहित्यकार बालकृष्ण राव—डॉ० श्रीधर मिश्र	२३
५—प्रताडना—अनु० श्री शिवचरण	२६
६—दक्षिण-पूर्व एशिया में संस्कृत—अनु० श्री बाबूराम वर्मा	२८
७—वर्षा सब के मन भाये—श्री अजयकुमार ठाकुर	३७
८—संस्कारहीन संस्कृति का उदय—श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव	३८
९—डॉ० नगेन्द्र अभिनंदन-ग्रन्थ—श्री विवेक चूडामणि	४२
१०—श्रीमती सोनू कोचर की दृष्टि में भारतीय नारी—डॉ० हरगुलाल	४४
११—शेरशाह सूरी का आश्चर्यजनक उत्थान—श्री फूलचन्द त्रिपाठी	४६
१२—सम्भावनाओं की दस्तकें : बाल-रंगमंच—प्रो० नरनारायण राय	५२
१३—श्रीमती सुचेता कृपलानी—श्री मुकुन्दीलाल	५५
१४—चक्रवातों से आहत मारिशस—श्री बा० विष्णुदयाल	५९
१५—अन्तिम क्षण—अनु० श्री रा० र० सरवटे	६१
१६—प्रतिशोध (२)—श्री मनमोहन गुप्त	६७

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

सफेद दाग़

बवासीर-एक्ज़ीमा-दमा श्वास की दवा

इनका विवरण मुफ्त मँगायें

वैद्य बी० आर बोरकर (सस्व)

मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

छेड़छाड़

'श्री विनोद' शर्मा की व्यंग्य कविताओं का संग्रह

रचनाएँ साहित्यिक और ऐतिहासिक हैं। इस संग्रह में घंटाघर, करेलालोचनी, एक अदबी खत, आलू का पेड़, अधकचरा, महाश्वेता, रघुपतिसहाय के लिए आल्हा और विनोद शर्मा की मरम्मत आदि विशिष्ट रचनाएँ पाठकों को हँसाती-गुदगुदाती हैं। पुस्तक सचित्र सजिल्द है। अच्छे कागज पर सुन्दरता से छापी गई है। इसकी रचनाएँ बहुचर्चित हैं पर सार्वजनिक रूप में अब प्रकाश में आ रही हैं। मूल्य केवल ६·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

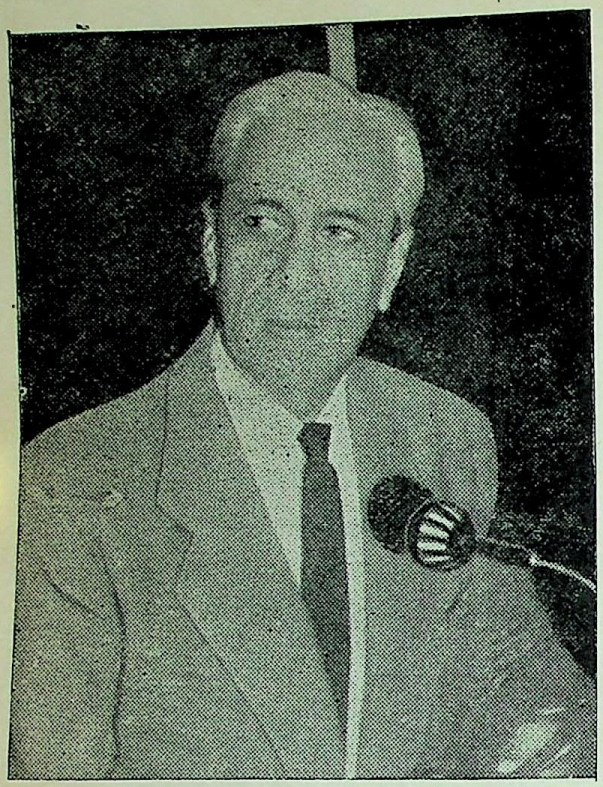

प्रोफेसर सतीश धवन
अंतरिक्ष आयोग के अध्यक्ष जिन्होंने 'आर्यभट उपग्रह' तैयार किया।

प्रोफेसर यू० आर० राव
निदेशक, भारतीय वैज्ञानिक उपग्रह कार्यक्रम जो 'आर्यभट उपग्रह' का संचालन कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

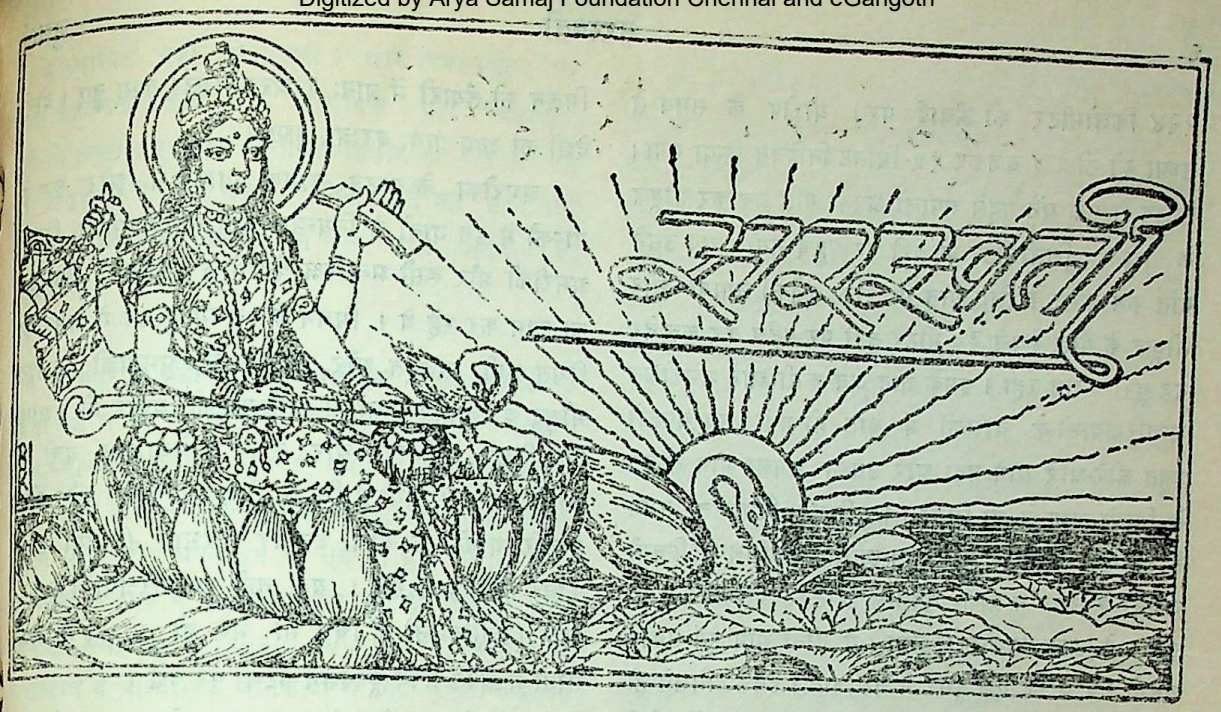

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

वर्ष ७६
पूर्ण संख्या ९०७

इलाहाबाद : जुलाई १९७५ : आषाढ़ २०३२ वि०

खण्ड २
संख्या १

सम्पादकीय

एक ऐतिहासिक चमत्कार—इस विज्ञान के युग में आये दिन छोटे-बड़े चमत्कारों (मिराकिल्स) के समाचार मिलते हैं। वायुयान के निर्माण से आरम्भ कर मनुष्य वायु-मंडल के ऊपर अन्तरिक्ष के रहस्यों का पता लगाने में लग गया। अन्तरिक्षयानों का निर्माण इन चमत्कारों की शृङ्खला में दूसरा मील का पत्थर था। फिर तो मनुष्य इन यानों के द्वारा चन्द्रमा पर उतरा और उसने ऐसे अन्तरिक्षयान छोड़े जो अरबों किलोमीटर दूर स्थित सौरमंडल के ग्रहों के फोटो और उनकी अन्य वैज्ञानिक जानकारी पृथ्वी पर भेजने में सफल हुए। अन्तरिक्ष में परिक्रमा करते हुए अपने अन्तरिक्षयान का अपने दूसरे अन्तरिक्षयान से जोड़ने का प्रयोग रूस और अमरीका दोनों ही अलग अलग कर चुके हैं। किन्तु १७ जुलाई को अन्तरिक्ष विज्ञान में सर्वोन्नत दो प्रतिस्पर्द्धी देशों के अन्तरिक्षयानों का अन्तरिक्ष में परिक्रमा करते हुए जुड़ना, दोनों का मिलकर परिक्रमा करना और एक यान के चालकों का दूसरे यान में परिक्रमा के समय जाना वास्तव में एक अनोखा और ऐतिहासिक चमत्कार है।

इस ऐतिहासिक घटना का पूरा विवरण तो किसी अधिकारी वैज्ञानिक से लिखवाकर हम अलग प्रकाशित करेंगे, किन्तु इस समय पाठकों को इतना बतलाना ही पर्याप्त है कि अमरीका का अन्तरिक्ष यान अमरीका के केप कनैडी अन्तरिक्ष उड़ान संस्थान से उड़ा। इसका नाम 'अपालो' था। यह ग्रीक भाषा में सूर्य का नाम है। रूस के यान का नाम 'सोयूज़' था और वह रूस के अन्तरिक्ष उड्डयन स्थान से छोड़ा गया था। दोनों ही कई दिन अन्तरिक्ष में पृथ्वी की परिक्रमा करते रहे। दो दिन अपालो सोयूज़ के पीछे कई सौ किलोमीटर उड़ता रहा। मंगल (२२ जुलाई) के दिन दोनों का मिलन पश्चिमी जर्मनी के ऊपर (प्राय:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२४ किलोमीटर की ऊँचाई पर) योरोप के समय से संध्या को ठीक ४ बजकर १५ मिनिट निश्चित किया गया। मिलन से एक घंटे पहले अपालो अपनी गति बढ़ाकर सोयूज़ के पीछे ३८ किलोमीटर की दूरी पर पहुँच गया। अब उसने गति कम करने के लिए यान में रोक (ब्रेक) लगायी और सोयूज़ के पीछे केवल ३० मीटर दूरी पर पहुँच कर कुछ देर वह दूरी बनाये रहा। इसके बाद जब रूसी और अमरीकन अन्तरिक्षयानों के चालकों में बात हो गयी तब अपालो बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ा और उसका अगला भाग सोयूज़ के पिछले भाग से जा मिला। यह मिलन निर्धारित समय से ६ मिनट पहले ही हो गया। इसलिए यह मिलन पश्चिमी जर्मनी के ऊपर न होकर पुर्तगाल के निकट अटलांटक महासागर के ऊपर आकाश में हुआ। ये दोनों भाग इस प्रकार बनाये गये थे कि एक दूसरे में बैठ जायं। इनके मिलते ही दोनों यानों के बीच के धातु के पर्दे हटा दिये गये और दोनों के बीच में वैसा ही सुरंगनुमा स्थान निकल आया जैसा हमारे देश की रेलों के उन डिब्बों के बीच निकल आता है जिनमें आवागमन का मार्ग बना दिया जाता है। अपालो के कमांडर जनरल स्टैफर्ड ने रूसी कमांडर एलेक्सी लिनोव का अभिवादन किया, दोनों ने हाथ मिलाये और प्रत्येक ने अपने देश का राष्ट्रध्वज दूसरे को भेंट किया। इसके बाद दो अमरीकन अन्तरिक्ष यात्री सोयूज़ में गये। तीसरा अपालो में बना रहा। इसके बाद रूसी अन्तरिक्ष यात्री अपालो में गये। दोनों यानों के यात्रियों ने दोनों अन्तरिक्षयानों के सफल मिलन के प्रमाण-पत्र पर हस्ताक्षर किये और मिल कर भोजन किया। ये दोनों यान मिलकर पृथ्वी की कई परिक्रमाएँ करने के बाद अलग होकर अन्तरिक्ष से उतर कर अपने अपने देश लौट कर अपने अन्तरिक्ष अड्डों पर उतर आये।

इन दोनों में से प्रत्येक यान में तीन अनुभवी अन्तरिक्षवेत्ता थे जो कई बार अन्तरिक्ष यात्राएँ कर चुके हैं। इन छहों ने दो वर्ष मिलकर इस यात्रा और इस मिलन की तैयारी की थी और ये एक दूसरे के यान से भली भाँति परिचित हो गये थे। अमरीकन कमांडर ने रूसी कमांडर का अभिवादन रूसी भाषा में और रूसी कमांडर ने अमरीकन कमांडर का अंग्रेजी भाषा में किया। ये दोनों ही अन्तरिक्षयान पुराने हैं और कई बार अन्तरिक्ष यात्रा कर चुके हैं। इनका मूल्य छोड़कर इस ऐतिहासिक अन्तरिक्ष मिलन की तैयारी में प्रायः ५ अरब डालर व्यय हुए। दोनों देशों का व्यय प्रायः बराबर हुआ।

अमरीका के हूस्टन नामक स्थान में और रूस के मास्को में इन यानों के नियन्त्रण कक्ष बनाये गये थे, जिनमें अमरीकी और रूसी अन्तरिक्ष वैज्ञानिक मिलकर नियन्त्रण का काम कर रहे थे। मिलन के समय हूस्टन में अमरीका स्थित रूसी राजदूत और मास्को में अमरीकी राजदूत मौजूद थे जिन्होंने अन्तरिक्ष यात्रियों को बधाई दी। आधुनिक विद्युत्, ट्रांजिस्टर और लेसर परिचालित यंत्रों की इतनी उन्नति हो गयी है कि इन नियंत्रण केन्द्रों और दोनों अन्तरिक्षयानों के बीच बराबर दूरभाष (रेडियो टेलिफ़ोन) संपर्क बना रहा। यही नहीं, अन्तरिक्षयानों ने दूरदर्शन (टेलीविज़न) के चित्र भी भेजे जो योरोप में लाखों लोगों ने अपने-अपने दूरदर्शन पटलों पर देखे।

रूस और अमरीका में अणुबम, हाइड्रोजन बम, प्रक्षेपास्त्र और अन्तरिक्ष की खोज में दशकों से प्रतिस्पर्द्धा चली आती है। दोनों इन बातों की नयी खोजों तथा उपकरण बनाने में खरबों रुपये प्रतिवर्ष व्यय करते हैं और अपनी खोजों को गुप्त रखते हैं। सौभाग्य से रूस और अमरीका में सद्भावना का जो श्रीगणेश हुआ है (वास्तविक सद्भावना अभी दूर है क्योंकि वह मारक और घातक शस्त्रास्त्रों के नियंत्रण पर निर्भर है, जिसकी शीघ्र आशा नहीं है) वह अन्तरिक्ष विज्ञान के लिए बड़ा लाभदायक होगा। एक तो दोनों देशों के चोटी के अन्तरिक्ष वैज्ञानिक मिल कर नयी खोजें कर सकेंगे और दूसरे अभी जो व्यय एक देश को करना पड़ता है वह दोनों देशों में बँट जायगा। विज्ञान के एक क्षेत्र में दोनों देशों के चोटी के वैज्ञानिकों के निकट सम्पर्क में आने और सहयोग करने से दूसरे क्षेत्रों में भी ऐसे सहयोग का रास्ता खुलेगा और इससे दोनों देशों का मनमुटाव यदि एकदम दूर न हुआ तो कम अवश्य हो जायगा, जो विश्वशान्ति के लिए परमावश्यक है।

भारत वैज्ञानिक क्षेत्र में सदा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का पक्षपाती रहा है। उसने इसके प्रमाणस्वरूप अपने बनाये उपग्रह को छोड़ने के लिए रूस से सहयोग लिया। विकासशील देशों को विज्ञान के क्षेत्र में ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से उन्नति करने में सहायता मिलेगी जिससे विश्व का कल्याण होगा, क्योंकि जब तक उन्नत और अविकसित देशों में आर्थिक विषमता है तब तक संसार में शान्ति पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से स्थापित नहीं हो सकती। और विकासशील देश बिना वैज्ञानिक उन्नति किये 'आधुनिक' और 'विकसित' नहीं हो सकते। इसलिए अन्तरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में रूस और अमरीका ने जो सहयोग दिखाया है वह सभी देशों में, और विभिन्न विज्ञानों में फैले तभी मानवता का कल्याण है।

जबलपुर में महारानी दुर्गावती का अपूर्व स्मारक—यों तो देश में महान् व्यक्तियों की मूर्तियाँ अनेक स्थानों में उनके स्मारक के रूप में लगायी गयी हैं, किन्तु जबलपुर नगर निगम द्वारा स्थापित महारानी दुर्गावती का स्मारक देश में अपूर्व और अपने ढंग का एक ही है। उसका चित्र हम अप्रैल के अंक में प्रकाशित कर चुके हैं, किन्तु उसके उद्घाटन समारोह का विवरण तथा मूर्ति के निर्माण आदि के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी न मिल सकने के कारण हम उस पर उस समय अपनी टिप्पणी नहीं लिख सके। महारानी दुर्गावती भारतीय इतिहास में अपूर्व वीरांगना हुई हैं। वे भी झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई की तरह रण में लड़ती हुई वीरगति को प्राप्त हुई। अपने राज्य को अकबर के समान महान् शक्तिशाली सम्राट् से बचाने के लिए उन्होंने कई वर्ष युद्ध किया और कई बार मुग़ल सेनाओं को परास्त किया, किन्तु अकबर ऐसे शक्तिशाली और साधनसम्पन्न सम्राट् के सामने वे कब तक ठहर सकती थीं। उन्होंने अंतिम युद्ध में हिरन नदी के किनारे लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की। वे उस समय हाथी पर सवार होकर अपनी सेना का संचालन कर रही थीं। उनकी वीरता की गाथा लोकगीतों में आज भी गायी जाती है और उनकी वीरता से प्रभावित होकर एक सहृदय अंग्रेज अधिकारी ने उन पर जो अंग्रेजी में कविता लिखी थी, उसे हम प्रकाशित कर चुके हैं। वे देश की उन थोड़ी सी वीरांगनाओं की अग्रिम पंक्ति में हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता के लिए लड़ते हुए युद्ध में प्राण विसर्जन किये। जहाँ उन्होंने बलिदान किया था वहाँ एक स्मारक चबूतरे के रूप में शतियों से बना है, जहाँ श्रद्धालु लोग जाकर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। नगर निगम ने कई वर्ष पूर्व उसे समाधि का रूप दिया था। उसी समाधि पर जाकर स्थानीय स्वतन्त्रता सेनानियों ने पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र और स्व० सेठ गोविन्ददास की अध्यक्षता में स्वाधीनता प्राप्त करने की शपथ ली थी।

किन्तु वह समाधि मात्र थी और जंगल में, नगर से दूर थी। उनका कोई उपयुक्त स्मारक न था। १९६४ में जब जबलपुर नगर निगम के महापौर श्री पन्नालाल श्रीवास्तव थे तब नगर निगम ने जबलपुर में उनका एक भव्य स्मारक बनाने का निर्णय किया और उसका शिलान्यास मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र ने किया। बड़ी कल्पनाशीलता से मूर्ति के निर्माण की योजना बनायी गयी जिसमें हाथी पर सवार वे अन्तिम युद्ध करते हुए दिखायी गयी हैं। इसे बनाने का काम जयपुर के कुशल शिल्पी श्री नारायणलाल जैमिनी को सौंपा गया। खेद है कि मूर्ति समाप्त होने के पहले ही वे दिवंगत हो गये, किन्तु वे उसे समाप्तप्राय कर चुके थे। इस मूर्ति में काले पत्थर के विशाल हाथी पर वे हाथ में भाला लिये आरूढ हैं। आगे अंकुश लिये उनका महावत दिखाया गया है। महारानी तथा महावत की मूर्तियाँ तथा हौदा और झूल सफेद संगमरमर की हैं। सारी मूर्ति का वजन प्रायः २०० मन है और यह २० फुट ऊँची है। कलाकार ने यह अत्यन्त भव्य और सुन्दर कलाकृति बनायी है। यह प्रतिमा नगर के मोतीलाल नेहरू उद्यान में स्थापित की गयी है।

नगर निगम के वर्तमान महापौर श्री परांजपे ने अपने सहयोगियों के सहयोग से इसके उद्घाटन का बड़ा भव्य और कल्पनाशील आयोजन किया। उसका अनावरण करने के लिए बाँगला युद्ध के विजेता अवकाशप्राप्त लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा को आमंत्रित किया गया था और इस वीरांगना के स्मारक-उद्घाटन के अवसर पर मुख्य भाषण देने के लिए हिन्दी की प्रसिद्ध लेखिका और कवियित्री महीयसी श्रीमती महादेवी वर्मा को मुख्य अतिथि के रूप में बुलाया गया था। महारानी दुर्गावती के उद्घाटन पर इन दोनों को निमंत्रित करना बहुत उपयुक्त था और इन दोनों की उपस्थिति ने इस समारोह को अपूर्व गौरव और भव्यता प्रदान की। श्री परांजपे ने स्वागत भाषण दिया। इस प्रकार का ऐतिहासिक यह समारोह अपने ढंग का एक ही था।

इस अवसर पर जनरल अरोड़ा और महीयसी महादेवी वर्मा के जो भाषण हुए वे बड़े मार्मिक थे। वास्तव में वे इतने महत्त्वपूर्ण और प्रेरणास्पद थे कि उनकी लाखों प्रतियाँ छपाकर जनता में वितरित होनी चाहिए। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातों के अतिरिक्त जनरल अरोड़ा ने कहा कि रानी दुर्गावती शत्रु की शक्ति और अपनी सीमाओं को जानती थीं। फिर भी उन्होंने लड़ने-मरने का निर्णय किया। उनके जीवन की यह शिक्षा सभी के लिए है कि कठिन से कठिन स्थिति में हौसला नहीं छोड़ना चाहिए। उनके और अन्य राष्ट्रनायकों के बलिदान से हमें यह शिक्षा लेनी चाहिए कि उसूलों (सिद्धान्तों) के लिए कुर्बानी ही से हम आगे बढ़ेंगे। आगे चलकर उन्होंने कहा कि अंग्रेजी शासन काल में भारतीयों को जो इतिहास पढ़ाया गया उसमें दुर्गावती जैसी वीरांगना का नाम भी नहीं आया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही उन लोकनायकों को इतिहास में प्रतिष्ठित करने के प्रयास किये गये हैं। बहादुरी और आत्म-बलिदान के लिए रानी दुर्गावती को जितना ऊँचा स्थान दिया जाय वह कम है।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने अपने भाषण में बड़े मार्मिक शब्दों और प्रेरक शैली में भारतीय नारी की महिमा और उसके जीवन मूल्यों का परिचय दिया, किन्तु उन्होंने चेतावनी देते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा कि उनकी पाषाण प्रतिमाएँ बना देने मात्र से तब तक उन मूल्यों की प्रतिष्ठा जीवन में नहीं उतरेगी जब तक हमारे हृदयों में उन आदर्शों की प्रतिमा स्थापित नहीं की जाती जिनके लिए भारत की चिर बलिदानी नारियों ने अपने प्राणों की बार-बार सहज ही आहुति दी है।

वास्तव में यह स्मारक और इसका अत्यन्त सफल आयोजन जबलपुर के नगर निगम, उसके महापौर श्री परांजपे, उनके सहयोगियों, वहाँ के साहित्यकारों और नागरिकों के उत्साह और कर्मठता का परिणाम था। उन्होंने इस भव्य स्मारक और नये ढंग के समारोह से देश के सामने एक अनुकरणीय उदाहरण रख दिया है। हम उन सबको हार्दिक बधाई देते हैं।

इस अवसर पर नगर निगम ने जो स्मारिका निकाली है वह बड़ी सुन्दर और संग्रहणीय है।

कविवर सुमित्रानन्दन पंत के पैतृक भवन का सरकार द्वारा अधिग्रहण—हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उत्तर प्रदेश सरकार ने युगप्रवर्तक कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के पैतृक भवन को (जिसमें उनका जन्म हुआ था) अधिग्रहण कर लिया है और वह कवि के स्मारक के रूप में सुरक्षित रखा जायगा तथा उसमें उनकी कृतियों, हस्तलिपियों एवं उनसे सम्बन्धित अन्य वस्तुओं का संग्रहालय बनाया जायगा। कविवर पन्त का हिन्दी काव्य में ऐसा ऊँचा स्थान है कि उ० प्र० सरकार के कार्य की हम हृदय से सराहना करते हैं और उसे उसकी कल्पनाशीलता के लिए बधाई देते हैं। शायद कविवर पन्त इतिहास में प्रथम महाकवि या महान् साहित्यकार हैं जिनके जीवन-काल ही में ऐसा अपूर्व सम्मान किया गया हो। इसके लिए हम उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं।

हमने कई वर्ष पूर्व सुझाव दिया था कि उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा आधुनिक हिन्दी के पिता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मकान का कम से कम वह बाहरी भाग जो उनका बैठकखाना और उनका पुस्तकालय 'सरस्वती भंडार' था अधिग्रहण करके उसे राष्ट्रीय स्मारक बना दिया जाय। किन्तु इस पर ध्यान नहीं दिया गया। प्रयाग में चार हिन्दी-सेवकों और साहित्यकारों की विभूतियाँ हुई जिनके पैतृक-या निवास-स्थानों को अधिग्रहण करके उन्हें राष्ट्रीय स्मारक बनाया जाना चाहिए। वे चार विभूतियाँ ये थीं—खड़ीबोली के आदि कवि और आचार्य पंडित श्रीधर पाठक, जिनका 'पद्मकोट' बिकाऊ है और यदि वह किसी निजी धनी ने ले लिया तो उसका फिर मिलना कठिन होगा। दूसरी विभूति हैं 'हिन्दी प्रदीप' के सम्पादक और आधुनिक हिन्दी गद्य और पत्रकारिता की अपूर्व त्याग और निष्ठा से सेवा करनेवाले पं० बालकृष्ण भट्ट। इनका मकान जीर्णावस्था में है और अपेक्षतया छोटा है। शेष दो हिन्दी के परम उन्नायक थे—महामना मालवीयजी और राजर्षि टंडन। इन दोनों की सेवाएँ हिन्दी के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी इतनी अपूर्व हैं कि इनके लिए अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। उन भवनों को जिनमें इनका जन्म हुआ था, राष्ट्रीय स्मारक के रूप में सुरक्षित रखना चाहिए। प्रयाग में राजर्षि की एक मूर्ति स्थापित हो गयी है किन्तु लज्जा की बात है कि अनेक प्रयासों के बावजूद महामना की एक मूर्ति तक प्रयाग में नहीं लग सकी। इसी प्रकार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के दौलतपुर (रायबरेली) स्थित मकान को भी राष्ट्रीय स्मारक बनाना आवश्यक है—विशेषकर इसलिए कि उन्होंने अपनी पत्नी की जो पूरे आकार की मूर्ति अपने घर के सामने स्थापित की थी उसके स्थायी रखरखाव की बड़ी आवश्यकता है। कविवर पन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सहयोगी निराला का मकान उन्नाव जिले के एक गाँव में है और जीर्णावस्था में है। पन्त, प्रसाद और निराला छायावाद की वृहत्त्रयी थे। अब जब सरकार ने कविवर पन्त के जन्म-भवन का अधिग्रहण करके एक अत्यन्त शुभ परम्परा का श्रीगणेश किया है तब उसे जारी रखना चाहिए और एक ऐसी योजना बनानी चाहिए कि आठ-दस वर्षों में राज्य के प्रमुख साहित्यकारों के पैतृक भवनों को लेकर उनमें उनके वैसे ही स्थायी स्मारक धीरे-धीरे बनाये जा सकें।

हम जान बूझ कर इस समय राज्य के महान् संस्कृत पंडितों और विद्वानों के स्मारक बनाने की चर्चा करके समस्या को जटिल नहीं करना चाहते, यद्यपि उनकी स्मृति का यथोचित स्मारकों द्वारा सम्मान करना आवश्यक है।

हमें अपने राज्य के उर्दू के महान् कवियों और साहित्यकारों का भी ध्यान रखना है। महाकवि ग़ालिब आगरा में पैदा हुए थे। यदि ग़ालिब जन्मशती समिति ने उस भवन को, जहाँ वे पैदा हुए थे, अधिग्रहण करके वहाँ उनका स्मारक नहीं बनवाया तो यह काम उत्तर प्रदेश को करना चाहिए। हाल के उर्दू कवियों में हमें अकबर इलाहाबादी और चकबस्त के नाम याद आते हैं, जिनके स्मारक बनने चाहिए। महाकवि नज़ीर का स्मारक आगरे में बन गया है और वहाँ प्रतिवर्ष उनकी मज़ार पर उनका उर्स होता है। उसके पास की कुछ जमीन शहर के श्रीरंगमन्दिर की है जो उसे उसके विस्तार के लिए दे रहा है। हमें बतलाया गया है कि मौलाना हाली और शिबली के स्मारक किसी न किसी रूप में बन गये हैं। यदि न बने हों तो वे भी बनने चाहिए। इसमें उत्तर प्रदेश सरकार की बनायी उर्दू एकाडमी को पहल करनी चाहिए जिसे सरकार से प्रचुर अनुदान मिलता है, और हमें विश्वास है कि इन स्मारकों के लिए सरकार भी एकाडमी की थोड़ी-बहुत सहायता करेगी। हिन्दी की शायद कोई संस्था नहीं है जिसे सरकार से इतनी सहायता मिलती हो और जो इन महत्त्वपूर्ण कामों को कर सके। पुरुषोत्तम टंडन द्वारा स्थापित उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपने सीमित साधनों से प्रयाग में सरस्वती के सम्पादक आचार्य द्विवेदी की एक आवक्ष कांस्य प्रतिमा स्मारक के रूप में स्थापित की है और इस वर्ष उसने पं० बालकृष्ण भट्ट की आवक्ष प्रतिमा स्थापित करने की योजना बनायी है, किन्तु उसके साधन अत्यन्त सीमित हैं और उसे सरकार से कोई नियमित अनुदान नहीं मिलता। इसलिए वह या अन्य हिन्दी संस्थाएँ उपर्युक्त प्रस्तावित स्मारक नहीं बनवा सकतीं। फिर उन महापुरुषों के जन्म-भवनों का अधिग्रहण सरकार ही कर सकती है। वह हिन्दी की संस्थाओं के लिए बड़ा दुष्कर है।

हमें विश्वास है कि उत्तर प्रदेश की उदार और कल्पनाशील सरकार इन सुझावों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी।

आनन्द मार्ग या आतंक मार्ग—पूर्वी भारत में कुछ वर्षों से एक रहस्यपूर्ण संगठन बना था जो 'आनन्द मार्ग' के नाम से जाना जाता था। उसके प्रतिष्ठाता रेलवे के एक बंगाली कर्मचारी थे। उनमें विलक्षण प्रतिभा रही होगी क्योंकि थोड़े ही दिनों में उन्होंने अपने व्यक्तिगत आकर्षण से सैकड़ों पढ़े-लिखे लोगों पर जादू करके उन्हें अपना अनुयायी बना लिया। ध्यान देने की बात यह है कि वे अनुयायी सामान्यतः शिक्षित व्यक्ति थे और कितने ही सरकारी अधिकारी भी यदि उनके पूर्ण अनुयायी नहीं बने तो उनके भक्त अवश्य हो गये। स्थापक ने अपना नाम 'आनन्दमूर्ति' रखा और अपने 'पंथ' का नाम 'आनन्द मार्ग'। ऊपर से उसका उद्देश्य समाज-सुधार और आध्यात्मिक विकास था, किंतु वास्तव में उसका असली उद्देश्य समाज और सरकार-विरोधी था। वह पूर्णरूप से हिंसा में विश्वास करता था। जब उनके कुछ अनुयायियों की आँखें खुलीं (क्योंकि वे उस संस्था के अंतरंग कार्यकलापों और उद्देश्यों को जान गये थे) तब उन्होंने उसे छोड़ने का निश्चय किया। इस पर कहा जाता है कि आनन्दमूर्ति ने उनकी हत्या करने के आदेश दिये और यह भी कहा जाता है कि उनके कुछ अंध अनुयायियों ने उनकी हत्या कर भी दी। ऐसी एक घटना का पता लगने पर कुछ आनंदमार्गी पकड़े भी गये। उनमें से एक मुखबिर बन गया और उसने बहुत सी गम्भीर और चौंकानेवाली बातें बतलायीं। मुक़दमा सेशन में चल रहा है। और वास्तविकता तो उसके निर्णय के बाद ही मालूम होगी। इसी बीच आंतरिक संकट की घोषणा के बाद आनंदमार्ग भी अवैध संस्था घोषित कर दी गयी और उसके अनेक कार्यालयों पर छापे मारे गये। उनमें से बिहार के एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यालय में कुछ कागज मिले जिनसे पता लगता है कि आनन्दमार्गियों ने बिहार की विधान सभा को विस्फोटक पदार्थों से उड़ा देने की योजना बनायी थी और तीन विश्वस्त आनन्दमार्गी इस घृणित कार्य के लिए नियुक्त भी कर दिये गये थे। इस संस्था का वास्तविक उद्देश्य राजनीतिक मालूम पड़ता है क्योंकि इसने 'प्राउटिस्ट' नामक एक राजनीतिक दल भी बनाया था। 'आनन्दमार्ग' ऐसा आकर्षक नाम रख कर वह हिंसा और अपराधों के कार्य में लीन था। उसे अवैध घोषित करके सरकार ने बड़ा उत्तम कार्य किया है। जो मुकदमा चल रहा है उससे उसके असली स्वरूप का पता देशवासियों को चल जायगा। वास्तव में वह 'आनन्दमार्ग' न हो 'आतंक मार्ग' है। उसका शीघ्रातिशीघ्र जड़-मूल से नष्ट करना देश और समाज के हित में परमावश्यक है।

किन्तु एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इस अपराध करने वाली संस्था में इतनी बड़ी संख्या में शिक्षित लोग कैसे सम्मिलित हो गये। उसकी शाखाएँ यद्यपि मुख्य रूप से बंगाल और बिहार में हैं तथापि अनेक अन्य प्रान्तों में भी उसकी अनेक शाखाएँ फैल गयी थीं। यह एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक समस्या है। हमारी शिक्षा-प्रणाली हमें विभिन्न विषयों से सम्बन्धित कम या अधिक ज्ञान तो दे देती है किन्तु हमारे सही प्रकार के स्वतन्त्रचिंतन और विवेक को विकसित नहीं करती। यही नहीं, हमारे समाज में कोई ऐसी बातें हैं जिनसे इन अपराधमूलक संस्थाओं के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है। वास्तव में यह समाज-शास्त्रियों (सोशियोलाजिस्ट), मनोविज्ञानिकों और शिक्षा-शास्त्रियों का क्षेत्र है। उन्हें इस समस्या का अध्ययन कर उन तत्त्वों का पता लगाना चाहिए जिनसे ये समाजविरोधी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती और पनपती हैं। इतना ही पर्याप्त नहीं है। उन्हें उनके रोकने और नष्ट करने के व्यावहारिक उपाय भी खोजने होंगे। तभी उनके अध्ययन की सार्थकता हो सकती है।

कैंसर का भयानक रोग—हमें जब अपने मित्र और हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक श्री बालकृष्ण राव की मृत्यु का अचानक समाचार मिला तब हम स्तब्ध रह गये थे। बाद में पता लगा कि उनकी मृत्यु फेफड़ों में कैंसर हो जाने से हुई। दुर्भाग्य की बात यह हुई कि मृत्यु से कुछ पूर्व तक उनकी बीमारी का पता ही नहीं लगा, और जब मृत्यु से प्रायः दो सप्ताह पूर्व उसका पता लगा तब रोग असाध्य हो चुका था। इसी प्रकार चार-पाँच वर्ष पूर्व हिंदी के विद्वान् और कवि कानपुर के डा० सत्यनारायण पांडेय के यकृत (लिवर) के कैंसर का पता उनकी मृत्यु से केवल तीन दिन पहले ही लगा था जब वे कोमा (Coma) में थे।

गत वर्ष फ्लोरेंस (इटली) में कैंसर के विशेषज्ञों का एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था। उसमें सब देशों से लगभग पाँच हजार इस रोग के विशेषज्ञ आये थे। उसमें बतलाया गया कि उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार प्रति वर्ष ३५ लाख और ४० लाख के बीच व्यक्ति इस रोग की बलि होते हैं। इस रोग से पीडितों की संख्या संसार में प्रतिवर्ष ५० लाख से भी अधिक होती है। ये अनुमानित आँकड़े हैं। शायद वास्तव में मरनेवालों और रोगियों की संख्या इससे भी अधिक है।

शायद इस समय संसार में हृदय-रोग के बाद कैंसर ही सबसे अधिक घातक रोग है। हृदय रोग की रोकथाम के लिए बहुत से कारगर उपाय निकाले भी गये हैं। उसके कारणों का पता लग चुका है और उसकी रोक, और रोग का आक्रमण होने पर उसकी चिकित्सा में भी काफी उन्नति हुई है, यद्यपि अभी सम्पूर्ण रूप से उस पर नियन्त्रण नहीं किया जा सका। वास्तव में वह आधुनिक सभ्यता की आपाधापी और भागदौड़ का परिणाम है। सभ्यता की उन्नति का यह भीषण मूल्य मनुष्य चुका रहा है।

किन्तु कैंसर का न तो अभी तक वास्तविक कारण और न उसकी चिकित्सा का ही कोई उपाय मालूम हो सका है। सभी उन्नत देशों में इस रोग पर अनुसंधान हो रहे हैं। अनेक संस्थान केवल इसी रोग के अध्ययन के लिए खोले गये हैं। प्रति वर्ष उन पर अरबों रुपये व्यय हो रहे हैं। मानव ने प्रकृति के अनेक रहस्यों का पता लगा लिया है और कभी न कभी वह इस रोग के कारण का भी पता लगा लेगा। निदान होने पर चिकित्सा के उपाय भी निकल आयेंगे। पर जो वर्तमान स्थिति है, उससे वह दिन दूर मालूम होता है।

कैंसर क्या है? इसे समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि हमारे शरीर के सभी भाग—चमड़ा, यकृत, फेफड़ा, यहाँ तक कि मांस-पेशियाँ भी—छोटी-छोटी कोशि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोशिकाओं (Cells) से बने हैं। यदि मांस का टुकड़ा नंगी आँखों से देखा जाय तो वह सपाट मालूम होगा। अणुवीक्षण यंत्र (माइक्रास्कोप) के आविष्कार के बाद चीज़ों की बनावट देखना सम्भव हो गया, क्योंकि उसके नीचे किसी वस्तु को रख कर देखने से वह १०० गुना तक बड़ी दिखायी पड़ सकती है। सन् १७०० से कुछ पहले रॉबर्ट हुक्स नामक एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने अपने समय के अविकसित अणुवीक्षण यंत्र से देखा कि मांस का टुकड़ा असंख्य छोटी-छोटी कोठरियों नुमा वस्तुओं से बना है। उस समय ईसाई मठों में ईसाई संन्यासी जिन छोटी-छोटी कोठरियों में रहते थे, उन्हें सेल (Cell) कहते थे। मांस के टुकड़ों में जो छोटे-छोटे भाग हुक्स को देख पड़े वे उन्हीं कोठरियों से मिलते-जुलते देख पड़े। इसलिए उसने उन्हें 'सेल' का नाम दिया और अंग्रेजी में उन्हें इसी नाम से जाना जाने लगा। हिन्दी में इन्हें कोशिकाएँ कहते हैं। १८३७ में दो जर्मन वैज्ञानिकों ने बहुत अनुसंधान करके यह निश्चय किया कि जानवरों और वनस्पतियों के सभी जीवित तन्तु इन्हीं कोशिकाओं से बने हैं। मनुष्य ने यह नया रहस्य जाना कि हमारे मांस-पिंड, यकृत, फेफड़े, आँतें, चमड़ी आदि सभी इन कोशिकाओं से बने हैं। ये एक दूसरे से अभिन्न रूप से मिली रहती हैं। वास्तव में प्रत्येक जीवित वस्तु इन्हीं कोशिकाओं से बनी है। यह सिद्धान्त प्राणिशास्त्र का मूलाधार है।

इसके बाद वैज्ञानिकों ने कोशिकाओं का और सूक्ष्मता से अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि प्रत्येक कोशिका की जेब खोल होती है जिसके भीतर एक चिपचिपा पदार्थ भरा रहता है जिसे प्रोटोप्लाज़्म कहते हैं। इस प्रोटोप्लाज़्म के बीच में बीज की तरह एक वस्तु होती है जिसे न्यूक्लियस कहते हैं। प्रोटोप्लाज़्म सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। उसका अध्ययन अब भी पूरी तरह नहीं हो पाया क्योंकि वह अत्यन्त जटिल रासायनिक पदार्थ है। ये कोशिकाएँ ही जीवन की आधार हैं। ये बराबर संख्या में बढ़ती रहती हैं और जब बेकार हो जाती हैं तब उनकी जगह अपने आप उनकर नयी कोशिकाएं लेती रहती हैं। इन्हीं से शरीर को शक्ति और गर्मी मिलती है। किन्तु शक्ति और गर्मी उत्पन्न करने के लिए उन्हें बराबर दो वस्तुएँ मिलती रहनी चाहिए—भोजन और आक्सीजन। ये दोनों वस्तुएँ हमारी रक्तवाहिनी नाड़ियाँ (जो आकार में पतले सूत से भी पतली होती हैं) उन्हें पहुँचाती हैं। सारे शरीर में इन सूक्ष्म रक्तवाहिनी नाड़ियों का जाल बिछा हुआ है। शरीर का कोई बाहरी या भीतरी भाग ऐसा नहीं है जिसकी कोशिकाओं तक ये नहीं फैली हैं।

प्राकृतिक रूप से शरीर के तन्तुओं की कोशिकाएँ एक निर्धारित प्राकृतिक क्रम से बढ़ती और विकसित होती हैं। किन्तु कभी-कभी किसी कारण वे असामान्य और अप्राकृतिक रूप से बढ़ने लगती हैं। यह कारण अभी तक नहीं मालूम हुआ, किन्तु सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि यदि किसी मांसपिंड या मांसतन्तु या चमड़ी के तन्तुओं को बहुत दिनों तक सीड़ लगती रहे, या वे बहुत दिनों तक सूजे रहें या अन्य किसी कारण से (जैसे अत्यधिक धूम्रपान से) बहुत दिनों प्रभावित हों तो वे अप्राकृतिक रूप से बढ़ने लगते हैं और उस स्थान पर एक घातक गुल्म (ट्यूमर) उत्पन्न हो जाता है। इसे ही कैंसर कहते हैं। किन्तु वह बढ़ने लगता है और ये अप्राकृतिक रूप से उत्पन्न कोशिकाएँ आस-पास के मांस तन्तुओं या अवयवों में फैल कर उन्हें भी दूषित करके उनमें कैंसर उत्पन्न कर देती हैं। कभी-कभी ये कैंसर की कोशिकाएँ रक्तवाहिनी नाड़ियों में पहुँच जाती हैं और मूल स्थान से दूर शरीर के किसी दूसरे अंग में एकत्र होकर वहाँ की कोशिकाओं को दूषित कर उनमें भी कैंसर उत्पन्न कर देती हैं। इन कैंसरी कोशिकाओं से सारे शरीर में एक प्रकार का विष फैल जाता है जिससे साल-छः महीने में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

यदि आरम्भ ही में कैंसर का पता लग जाय तो सामान्यतः सर्जन दूषित या कैंसर युक्त भाग को काट कर निकाल देता है और इस कारण वह शरीर के अन्य भागों में फैलने नहीं पाता। आधुनिक डाक्टरों ने आरम्भिक रोगियों का कैंसर नष्ट करने में एक्सरे, रेडियम और कोबाल्ट थिरापी (चिकित्सा-प्रणाली) का सफल उपयोग किया है। किन्तु शल्य चिकित्सा या रेडियम आदि आरम्भ ही में कारगर होते हैं।

दुर्भाग्य से आरम्भ में कैंसर का पहचानना बड़ा कठिन है क्योंकि आरम्भिक अवस्था में रोगी को कोई पीडा नहीं होती। किन्तु बेहतर यही मुँह है यदि ओंठ, ह या गले में कोई छोटा सा घाव भी एक-दो सप्ताह अच्छा न हो, या शरीर के ऊपर या भीतर कहीं भी गुल्म मालूम हो और महीने में शरीर का भार (वजन) घट रहा हो तो उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी विशेषज्ञ डाक्टर को शीघ्र ही दिखा कर उसका परीक्षण कराना चाहिए।

इस देश में मुँह का कैंसर अत्यधिक पान खाने, मैनपुरी की तमाखू खाने, मुँह में बराबर तमाखू पीने का 'पाइप' लगाये रहने से होता है। हम चिकित्सा विज्ञान से कोरे हैं। अतएव कुछ अधिक नहीं कह सकते। जिज्ञासुओं को किसी विशेषज्ञ या अच्छे डाक्टर ही से अधिक जानकारी प्राप्त हो सकती है।

कैंसर के सम्बन्ध में कई भ्रम हैं। उनका निराकरण करना आवश्यक है: (१) आरम्भिक दशा में वह अच्छा हो सकता है। (२) यह छूत की बीमारी नहीं है क्योंकि यह कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न नहीं होता। (३) यह वंश-परम्परागत होनेवाला रोग नहीं है। यदि किसी के पूर्वज को यह रोग था तो यह आवश्यक नहीं है कि उसे भी या उसकी संतान को यह रोग हो। किन्तु यदि दो पीढ़ी पहले किसी को यह रोग हुआ हो तो उसे सावधानी अवश्य बरतनी चाहिए। (४) यदि कोई घाव हो या गुल्म उत्पन्न हो जाय या बड़ा मसा हो तो उसे कभी रगड़ना या छेड़ना न चाहिए। उसे डाक्टर को अवश्य दिखाना चाहिए।

यह रोग जीवन के आरम्भ में नहीं होता। अधिकतर ज्यादा उम्र के लोगों को होता है। वृद्धावस्था में इसकी अधिक सम्भावना होती है। किन्तु फिर भी ३५ वर्ष की अवस्था या उससे अधिक के लोगों को इस विषय में सावधानी रखनी चाहिए।

स्त्रियों की छाती में कैंसर बहुधा होता है। इस समय अमरीका के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति दोनों की पत्नियाँ इस रोग से पीडित हैं किन्तु शीघ्र निदान हो जाने के कारण उनकी उपयुक्त चिकित्सा हो सकी। अनुसंधानकर्ताओं का कहना है कि छरहरे बदन की स्त्रियों को यह छाती का कैंसर बहुत कम होता है। मोटी स्त्रियों को इसकी अधिक आशंका रहती है। संसार में सबसे अधिक छाती का कैंसर नार्वे-स्वीडन में होता है जहाँ के भोजन में चर्बी की मात्रा सबसे अधिक होती है। चिकनाई दो तरह की होती है: एक तो पशु से उत्पन्न, जैसे चर्बी, मलाई और घी। दूसरी वनस्पति से निकाली गयी, जैसे, तिल, सरसों, गरी, मूँगफली आदि के तेल। अनुसंधानकर्ताओं की धारणा है कि पशुजन्य चिकनाई की भोजन में अधिकता से कोरेस्टल अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है। वह किसी प्रकार स्त्रियों के हार्मोन्स से मिलकर ऐसे हार्मोन के यौगिक उत्पन्न कर देते हैं जिनमें कैंसर उत्पन्न करने की प्रवृत्ति होती है। इस धारणा को इस तथ्य से पुष्टि मिलती है कि जापान की स्त्रियों में छाती का कैंसर बहुत ही कम होता है और उनके भोजनों में चर्बी का अंश नाम मात्र को होता है। जो भी हो, सौभाग्य से हमारे देश में महिलाओं को छाती के कैंसर की शिकायत बहुत ही कम सुनी जाती है।

श्री भारतभूषण अग्रवाल का स्वर्गवास—हमें यह जान कर बहुत दुःख हुआ कि हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और लेखक श्री भारतभूषण अग्रवाल का स्वर्गवास हृदय की गति रुक जाने से २३ जून को शिमला में सहसा हो गया। वे केवल ५६ वर्ष के थे। वे इस समय एक फैलोशिप प्राप्त कर देश विभाजन के साहित्य पर प्रभाव पर शोध कर रहे थे। वे आकाशवाणी में भी कई वर्ष रहे। उनका जन्म मथुरा में हुआ था और वहीं उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। कुछ दिनों अध्यापन का कार्य करके वे आकाशवाणी में चले गये जहाँ कई वर्ष रहे। वे अच्छे लेखक थे और आधुनिक कवियों में उन्होंने अपना अच्छा स्थान बनाकर कवि के रूप में बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली थी। वे कवि ही नहीं, विचारक भी थे और हमें आशा थी कि वे जिस विषय का इस समय अध्ययन कर रहे हैं उस पर हिन्दी को एक प्रामाणिक ग्रन्थ देंगे। उनकी असामयिक मृत्यु से हिन्दी की बड़ी हानि हुई है। उनकी अंतिम कविता (जो 'वीणा' के जून के अंक में छपी है) बड़ी आत्मपरक है। वह यह है:

एक युग से मैं विरस जीवन बिताता आ रहा हूं
सब तरह लगता बड़ा सुनसान,
कोई शब्द तक आता नहीं है
गहन तम का पर्त मन पर छा गया है
इतना जान लेना,
अन्त तक मैंने न पथ से हार मानी।

इससे उनके जीवन के अंतिम दिनों की मानसिक अवस्था और आत्म-विश्वास टपक रहा है। संवेदनाशील कवियों की मानसिक दशा का यह छोटा किन्तु मार्मिक चित्रण है और साथ ही परिस्थितियों से कभी न हार मानने का संकल्प भी है। हम उनके शोक संतप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना व्यक्त करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतरो जय बन, उतरो रथ बन !

श्री कुबेरनाथ राय

महाकवि बाणभट्ट जब राज-सम्मान पाकर अपने शोणतटवर्ती ग्राम प्रीतिकूट[1] लौटे तब उस दिन उनके पुर-जन, परिजन और पुराने लुहेड़े मित्रों के बीच बड़ी चहल-पहल रही। उस दिन बड़ी रात गये कवि बाण सोये। सवेरा होते न होते उनका लँगोटिया यार सूचीवाण आ धमका। उसने कण्ठ फाड़कर दो श्लोकों[2] का प्रातः मंगल-ध्वनि के रूप में पाठ कर दिया। वे श्लोक स्वस्तिवाचन या देव-वन्दना को "प्रातः स्मरामि....." नहीं थे, बल्कि सीधे से तुरत जगे घोड़ों के वर्णन थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे श्लोक उक्त बालबन्धु द्वारा 'राम-राम' के बहर में, सवेरे-सवेरे हास-परिहास के रूप में ही पढ़े गये थे और इस संदर्भ से अलग काटकर देखने पर उनकी जो साहित्यिक महिमा हो, परन्तु सूची भट्ट ने बाण के प्रति प्रकारान्तर में यही निवेदन किया था—"हे बालबन्धु, तुम्हारे सभी 'घोड़न' अर्थात् हिप्पी बन्धु जग गये और तुम भी अब शय्या त्याग करो !" हिप्पी संस्कृति के आगमन के पूर्व ही, बहुत पहले से बाण की जन्मभूमि भोजपुरी-प्रदेश में 'घोड़न' शब्द, हठी-उजड्ड-लंठ के अर्थ में चालू हो गया था। आज का बहुप्रचलित 'हिप्पी' शब्द भी लैटिन 'हिप्पो' से आता है जिसका अर्थ होता है 'घोड़ा'। बाण जब नवयौवन से ग्रस्त थे तब इन्हीं बन्धुओं के साथ अपनी 'हिप्पी'-दिनचर्या का आस्वादन करते थे। अब बाण 'उत्तरापथनाथ' हर्षवर्द्धन की राज-सभा से लौटे हैं। वे अब बहुत कुछ बदल चुके हैं। तो भी पुराने मित्र ने अपनी आदतवश उनकी 'प्रभाती' का पाठ घोड़ा-गीतिका के ही रूप में कर दिया। इस प्रकार ये दो श्लोक प्रकारान्तर से बाणभट्ट के प्रति 'सुप्रभातम्, घोड़न मित्र !' या 'गुड मार्निङ्ग, सर हिप्पी' (Good Morning, Sir Hippy) जैसे अभिवादन हैं। महाराज हर्षवर्द्धन ने जब बाण को पहले पहल देखा, तब उनके मुँह से अचानक निकल पड़ा था, 'महान् अयं भुजंगः' परन्तु बाण वस्तुतः 'भुजंग' अर्थात् अंगनाभोगी लम्पट नहीं थे। कवि भुजंग नहीं होता, वह तो स्वभाव से कभी सिंह होता है, तो कभी पक्षिराज घोड़ा। बाण के मित्र जानते थे कि बाण स्वभावतः कपिञ्जल के रूपान्तर हैं, भोक्ता नहीं, दृष्टा हैं और उनका काम है महाश्वेता और कादम्बरी को पीठ पर वहन करना। कवि भोक्ता नहीं, दृष्टा होता है। वह द्वितीय

१—सम्भवतः बाणभट्ट का प्रीतिकूट ग्राम भोजपुर मण्डल के आरा जिला में था। कुछ पण्डितों की धारणा है कि वर्त्तमान 'पीरो' गाँव, जिसमें बाणभट्ट के सगोत्र अब भी निवास करते हैं, पुराना प्रीतिकूट है। बाणभट्ट के अनुसार यह गाँव शोण के तट पर था। परन्तु शोण का तट इधर-उधर हटता रहा है। नदी की बाण-भूमि का निवासी होने से इन्हें 'बाणभट्ट' कहा जाता रहा होगा, 'बाण' शब्द के श्लेषार्थ के साथ ! ('बाण' अर्थात् 'पूँछ कटा')

२—उक्त दोनों श्लोक इस प्रकार हैं :

उत्पादद्भ्रि प्रसार्य त्रिकनतिविततं द्राघयित्वाङ्गमुच्चै-
रासज्याभुग्नकण्ठो मुखमुरसि सटा धूलिधूम्रा विधूय ।
घासप्रासाभिलाषादनवरतचलत्प्रोथतुण्डस्तुरङ्गो
मन्दं शब्दायमानो विलिखति शयनादुत्थितः क्ष्मां खुरेण ।।
हुर्वंन्नाभुग्नपृष्ठो मुखनिकटकटिः कंधरामातिरश्चीं
लीलाहन्यमानं तुहिनकणमुचा चञ्चता केसरेण ।
निद्राकण्डूकषायं कषति निबिडितश्रोत्रशुक्तिस्तुरङ्ग-
स्तद्वज्रत्पक्ष्माग्रलग्नप्रतनुबुसकण कोणमक्ष्णः खुरेण ।।
(हर्षचरित ३।५-६)

अर्थात्—घोड़ा सोकर उठ गया, पिछाड़ी पैरों को तानकर, पीठ को खलाकर, अपने अंगों को जोर से फैलाकर (अँगड़ाई लेता हुआ), ग्रीवा को झुका 'हिक्के' (छाती) से मुँह को रगड़कर अपनी धूम्रधूसरवर्णी अयाल को झाड़कर, घास लेने की इच्छा से अपने थूथन को फड़काता हुआ मंद-मंद ध्वनि से हिनहिना रहा है (अर्थात् हूँफ रहा है) और खुरों से जमीन खोद रहा है ।।५।। जिसके कान की सीपी भरी हुई है ऐसा घोड़ा अपनी पीठ को सिकोड़कर मुँह के पास कमर को ले जाकर फिर ग्रीवा टेढ़ी करता है और आँख के कोने को खुर से खुजलाता है। अपनी चमकीली चंचल अयाल से ओस के फुहारे मुँह पर झाड़ रहा है और काँपती उनींदी बरौनियों में अब भी भूसा का कण चिपका हुआ है ।।६।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुपर्ण है।[1] कवि बाणभट्ट सारा जीवन महाश्वेता-आविष्ट रहे और 'चण्डीशतक' लिखते समय भी उन्होंने भगवती महिष-मर्दिनी की छवियों पर महाश्वेता और कादम्बरी को ही आरोपित किया। समर-भूमि में शर-संधान करती हुई देवी को उन्होंने ऐसी शब्दावली में व्यक्त किया है गोया वह शर-संधान न होकर कटाक्ष लीला हो और वह संग्राम महिषासुर की तामसी सेना के साथ उग्र समर न होकर ललित कान्ता भगवती का खटकामुखी नृत्य हो। शर-संधान करते समय कलाई की झनकती चूड़ियों, क्रुद्ध ऊर्ध्वश्वास के कारण टूटते कंचुक बन्ध, हिलते स्तनमण्डल और समर-भूमि का चतुर्दिक क्षिप्र अवलोकन करती हुई नाचती बंकिम दृष्टि की छवियाँ देवी के जिस रूप को पाठक के मन में उपस्थित करती हैं वह "कालाभ्राभ्यां कटाक्षै अरिकुल भयदां" वाले देवी-रूप से जरा भी मेल नहीं खाता और यह कविता कवि के नायिका-आविष्ट मन का प्रमाण है एवं उनके अवचेतन स्थित व अन्दर निहित 'कपिंजल-इन्द्रा-युध-हिप्पी' चरित्र का द्योतक है। वे अपने मानस के आच्छोद-सरोवर में मन की एकान्त घड़ियों में प्रति रात्रि घोड़े का वेश धारण करके अम्बु-पान के लिए उतरते थे इस लोभ से कि शायद महाश्वेता के पद्म-पलाश-अम्बक अर्थात् 'चक्षु' या 'दृष्टि' का पान करने को भी मिल जाय। अपने यौवन-ज्वार के दिनों में मित्रों के साथ सात घाटों का निषिद्ध अम्बु और सत्ताइस चेहरों का अम्बक[2]-मधु पान करनेवाले बन्धु बाण जब घर लौटे हैं, तब क्या आश्चर्य यदि उनके बालसखा सूचीभट्ट घोड़ा-वर्णन द्वारा ही उनका 'प्रातः स्मरामि....." सम्पन्न कर दें।

'हर्षचरित' पढ़ते समय मुझे लगता है कि बाण घोड़े के बड़े शौकीन थे। उन्होंने 'हर्षचरित' (द्वि० उ०) में राजा की 'मन्दुरा' (अस्तबल) का बड़ा सुन्दर और सजीव वर्णन किया है। उस वर्णन में घोड़ों की तरह-तरह की नस्लों की चर्चा है। जैसे, **स्थान के अनुसार**—'वनायुज' (वजीस्तान की बाना घाटी में उत्पन्न), आरट्टज (पंजाबी), कम्बोज (मध्यएशिया की बंक्षु घाटी में उत्पन्न) भारद्वाजी (गढ़वाली), सैंधव (सिन्धी) और पारसीक, **रंग-रूप के अनुसार**—शोण (लाल कुम्मैत), श्याम (मुश्की या कस्तूरी), श्वेत (सब्जा) पंजा (समंद), हरित (नील सब्जा) तित्तिरकलमाष (तीतर-पंखी), **शुभ लक्षणों के अनुसार**—पंचभद्र (पाँच भौंरीवाले), मल्लिकाक्ष (शुक्ल चक्षु) और कृत्तिकापंजर (सफेद चित्ती-दार) आदि। राजकीय मन्दुरा के वे घोड़े लम्बोतर मांस-हीन दृढ़ मुखाकृति वाले, गोल घाँटी या कण्ठवाले, छोटे कान वाले तथा यूपस्तम्भ की तरह ऊर्ध्व खड़ी ग्रीवावाले थे, उनका 'हिक्का' उभरा हुआ था, उनके सूम लोहे जैसे कठोर थे, उनका उदर देश अंत्रहीन तथा कसा हुआ था, उनके पुट्ठे उभरे हुए थे और 'बालधी' (पूंछ) धरती चूमती थी। वे सबके सब शुभलक्षण वाजि थे और उन्हें राजवल्लभ होने का सौभाग्य प्राप्त था। जब वे खुर टेककर विश्राम करने लगते थे तब आधी जाँघ टटाने लगती थी मारे थकावट के। वे आँखें मूँदकर कुछ सोचते हुए से लगते थे—यद्यपि चिन्तन मुद्रा जैसी भंगिमा के बावजूद वे खड़े-खड़े सो रहे थे। वे पहले हूँफते थे (स्खलित हुंकार भरते), फिर मन्द-मन्द हिनहिनाते थे, फिर सूमों का धरती पर ताडन करके अपनी हरी घास के अभिलाष को व्यक्त करते थे। इस प्रकार बाण ने क्षुधा, निद्रा और हिनहिनाहट का जीवन्त चित्र उपस्थित किया है। वास्तव में बाणभट्ट रईस, भूस्वामी ब्राह्मण थे इसलिए घोड़े-हाथी, लाव-लश्कर से उनका पर्याप्त परिचय था। उन्होंने अपनी वंशपरम्परा तथा कुल-समृद्धि का स्पष्ट परिचय 'हर्षचरित' में दिया है। अतः घोड़े से यह लगाव स्वाभाविक है। बाण अश्व-मेध करने-करानेवालों अर्थात् आर्यों की वंशपरम्परा में थे। अतः घोड़े के प्रति आकर्षण उनके अवचेतन में नस्लगत उत्तराधिकार के रूप में दृढ़ था।

घोड़ा आर्यों का प्रियतम पशु था। बाणभट्ट का घोड़ा 'रोमाण्टिक' घोड़ा है। वह महाश्वेताओं के जगत् में विहार करता है और नायिकाओं को अपनी पीठ पर वहन करता है। परन्तु इस घोड़े से भिन्न है वैदिक आर्य का तेजस्वी घोड़ा जो साक्षात् धावमान गरुड या तेजस्वी सूर्य जैसा है। इतिहास के प्रसव-क्षण में ही इक्कीस नदियों के त्रिसप्त-सिन्धु देश में घुसने के पूर्व ही आर्यों का घोड़ा एशिया के

१—उपनिषदों की प्रसिद्ध उक्ति: 'एक ही शाखा पर दो सुपर्ण पक्षी बैठे हैं : एक पिप्पल का भक्षण कर रहा है और दूसरा उसे सिर्फ देख रहा है, एक भोक्ता है और दूसरा है साक्षी।' (श्वेताश्वतर उप० ४।६, अथर्व, ९।१४।२० तथा ऋक् १।१६४।२०)

२—**अम्बक**=आँख, जैसे 'त्र्यम्बक' (त्रि+अम्बक) अर्थात् त्रिलोचन, शिव (आप्टे : संस्कृत डिक्श०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोरण द्वार पर कश्यप समुद्र के उत्तर में प्रथम प्रथम हिन-हिना गया। गैरिक वर्ण या सुन्दर पीताभ मधुवर्ण, मधु-मिश्रित सोने में ढाली हुई पुष्ट देह, अंग-अंग से ओज की बिनगारी छूटती हुई। गोया कोई तेजस्वी ऋचा ही जीव धारण करके उतर पड़ी है! और ऐसे शक्तिधर जीव के माध्यम से ही आर्य पितर विश्वव्यापी-विस्तार करने में समर्थ हो सका।

आर्य पितर ने विधाता की इस अपूर्व भद्र और तेजस्वी कल्पना को लगाम पहनाकर अपना लिया और इसे 'हरि' की संज्ञा दी। और यह पीतारुण या अरुणवर्ण का द्योतक रहा होगा, क्योंकि 'हरित' का आदि अर्थ है 'रंगीन'। जैसे आज भी कई भाषाओं में 'एक रंगा' या 'रंगीन' (राङ्गा) का अर्थ 'लाल' ही होता है। उन्होंने देखा कि यह जीव युद्ध में वैसे ही धावमान है जैसे इन्द्र का वज्र तो उन्होंने इसे 'वाजि' की संज्ञा दी। 'वाज' का अर्थ होता है 'शक्ति' या 'वेग' (<वेज)। इसकी आशुगति देखकर इसे 'अश्व' कहा गया और शीघ्रगामी होने से इसकी संज्ञा हुई 'तुरंगम्'।

'हरिअश्व' से ही कहीं पर 'हर्यश्व', कहीं 'हय', कहीं 'हस्प' (फारसी), कहीं पर 'हार्स' (अंग्रेजी) कहलाया। 'निरुक्त' में दिये गये निघण्टु के अनुसार वैदिक भाषा में इसे 'वह्नि', तार्क्ष्य (गरुड), अशु, अरुण, श्येन, सुपर्ण, पतंग, नर हंस आदि भी कहा गया है। परन्तु ये शब्द इसकी काव्यगत उपाधियाँ हैं। इसकी 'तार्क्ष्य' संज्ञा इसकी अद्भुत कलाबाजी और क्षमता द्योतक है। इसे 'वह्नि' कहा गया है और बाद में भी मान्यता रही है कि घोड़ा, अग्नि और कुमारी का मुँह जूठा या अपवित्र नहीं होता है।

इसके लिए प्रयुक्त 'हरि' शब्द ही बाद में एक ओर क्रमशः इन्द्र, आदित्य और अन्त में विष्णु का द्योतक बना और दूसरी ओर वानर, मृग और सिंह का द्योतक हुआ। तेजस्वी होने के कारण इसे पतंग, हंस, अरुण, अंशु कहा गया था और नदी पर नदी लाँघते हुए, मरुस्थलों और गिरि संकटों को पार करते हुए, एक दूसरे के साथ 'बगमेल' चलते हुए आर्य तरुणों के घोड़ों की उपमा वैदिक कोविदों ने "हंसों की पांत" या "झपटते श्येनों या गरुडों" से दी है। परन्तु इन सारे शब्दों और उपमाओं से महत्त्वपूर्ण संज्ञा है 'दधिक्रा' जो वैदिकोत्तर काल में लुप्त हो गयी। यह शब्द 'सूर्य' और 'घोड़ा' दोनों के लिए आता है।

सूर्य की अरुण वर्ण वाजि के रूप में कल्पना करने के कारण ही 'रश्मि' शब्द का अर्थ 'लगाम' और 'किरण' दोनों रूपों में विकसित हुआ। 'दधिक्रा' शब्द का प्रथम अर्थ है : जो (सवार को) 'दधत्' (धारण करके) 'क्रामतीति' (लाँघता है या पार करता है), दूसरा अर्थ है जो सवार को धारण करके 'क्रदतीति (हिनहिनाता है), तीसरा अर्थ भी यास्क मुनि ने अपने निरुक्त' में दिया है—'दधत् आकारी भवति' अर्थात् जो सवार को धारण करते ही अपना असली 'आकार' ग्रहण करता है, जिसके व्यक्तित्व का पूर्ण प्रकाशन तब होता है जब वह किसी सवार को लेकर शान से गर्दन उठाकर उछलता है—गोया धारणीधर वासुकि नाग ही फण काढ़ कर उछला हो तभी इस जीव का व्यक्तित्व स्पष्ट होता है और इसका यह रूप सारे दृश्य पर हावी इस तरह हो जाता है गोया सवार भी इसके रूप का एक प्रसाधन या शृंगारमात्र हो, और पूरे दृश्य का प्रधान 'हीरो' यही हो।

जिस प्रकार ब्राह्मण जब ध्यानासीन होता है तब वह तेज से तपने लगता है, क्षत्रिय जब कवच पहनकर खड़ा हो जाता है तब वह तेज से तपने लगता है, उसी प्रकार घोड़ा जब सवार को पीठ पर लेकर आक्रमणकारी सर्प की तरह 'फणन्' करता है—फण काढ़े सर्प की तरह उछलता है तभी उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व और ओज 'आकार' ग्रहण करके स्पष्ट होता है।

वक्र सर्पिल पथ पर फणन्' करते हुए, मोड़ लेते हुए सवार सहित घोड़े को देखकर ही यास्क मुनि ने 'दधिक्रा' के 'दधत् आकारी भवति' अर्थ की कल्पना की है। ऋग्वेद ने उदात्त कण्ठ से 'अश्व' और 'दधिक्रा' की स्तुति की है। इस स्तोत्रगान के पीछे वैदिक कवि की वह धारणा है जिसके अनुसार यह जीव मामूली चौपाया नहीं, बल्कि रहस्यमय शक्तियों का आधान है। यह साक्षात् 'इन्द्र' है, 'विष्णु' है, 'यज्ञ' है, 'प्राण' है और 'इन्द्रिय' है। अवश्य ही, यह रहस्यबोध 'मिस्टिक' रूमानी या सूफी किस्म का नहीं। इसका उद्देश्य है बल प्राण और ओज की उपासना और आहरण।

यह यज्ञ-शक्ति का प्रतीक है जिसके मेध से सर्वोच्च तेज का मनुष्य अपने अन्दर आहरण करता है। देवता से आविष्ट पशु होते हुए भी इसकी महिमा के वैदिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत तरल वाष्पकण्ठ उच्छ्वास या रोमाञ्च कण्टकित वपु भक्तों भी प्रार्थनाएँ नहीं हैं।

भारतीय धर्म में इस मुद्रा का प्रवेश आर्येतर प्रभाव से आया है। जब मूल आर्य द्रविड निषाद किरात के साथ मानस-योग स्थापित करके नव्यआर्य बना तब भगवान् और भक्त के बीच भावुकता, पूजा, पुष्पाञ्जलि, भावाञ्जलि, मानस-महोत्सव, नेत्रों से परस्पर को चाटना, पुरुष-प्रकृति भाव आदि सम्बन्ध स्थापित हुए।

वर्त्तमान हिन्दू धर्म मूलतः आर्येतर द्रविड-निषाद-किरात धर्म है। इसकी मुद्रा भावप्रधान है। परन्तु वैदिक धर्म की मुद्रा सिंह मुद्रा है। इसीसे वैदिक स्तवों को पढ़ते समय लगता है कि उगते सूर्य की प्रकाश धारा में स्नान करते हुए सिंहों की पाँत सम्मुख खड़ी है और अपने दोनों पंजों को ऊपर उठाकर अपने विकराल मुख फाड़कर 'ओऽम्!' का उच्चारण कर रही है, उनके रेशमी वर्ण अयाल और उनकी मधुवर्णी देह देवता के पीतारुण प्रकाश में झलमला रही है। सिंहों की ये पाँतें कुभा-सरस्वती-सिन्धु में स्नान करके कण्ठ-स्थान से नहीं मस्तक-स्थान से उच्चारित स्वरों का परम पावन प्रकाश के प्रति उद्गान कर रही हैं।

वैदिक साहित्य में एक प्रसंग आया है कि किस प्रकार 'यज्ञ' रूपी अश्व को, जिसके रोम रोम से चिनगारी फटती थी, जब ऋक्-साम और यर्जुर् अपने नियंत्रण में नहीं ला सके तब अथर्ववेद को यह कार्य सौंपा गया और अथर्ववेद के माध्यम से इस हुताशन की भाँति तेजस्वी अश्व का नियमन किया गया।

'वाक्' ने प्रथम ऋग्वेद से कहा 'इस अश्व को भद्र-करो'। ऋग्वेद गया, परन्तु अश्व के रोम-रोम से चिनगारी फूट रही थी और अपने को असमर्थ पाकर लौट आया। तब 'वाक्' ने साम से कहा, पर फिर वही बात। तब 'वाक्' ने तेजस्वी यजुर्वेद को आज्ञा दी कि तुम अश्व को नियन्त्रित करके उसे भद्र करो। पर यजुर्वेद भी अश्व के मुख, नासिका, पैरों तथा रोम-रोम से झरती चिनगारी के कारण असफल लौट आया। अन्त में 'वाक्' ने अथर्ववेद को आदेश दिया—'जाओ और इस तेजस्वी अश्व को निमंत्रित करके भद्र करो।' अथर्ववेद गया और अश्व के रोम-रोम से निकलते अग्नि स्फुलिङ्ग शान्त हो गये।

इस प्रकार अथर्ववेद के माध्यम से 'वाक्' ने यज्ञरूप अश्व को भद्र और शान्त कर [illegible] आयी इस कथा को यास्क के 'निरुक्त' में उद्धृत किया गया है। 'अश्व' अभिमंत्रित होकर साक्षात् 'यज्ञ' पुरुष बन जाता है। 'यज्ञ' ही आर्यों के 'कर्म' और 'उपासना' का मौलिक कल्प था।

इस कथा का तात्पर्य यही है कि किस प्रकार यहाँ आर्येतर लोकायत संस्कृति ने, जिसका आधान और प्रवक्ता है अथर्ववेद, प्रचण्ड उद्धत, उग्रतेजा और निरन्तर गतिमान 'अन्तर्राष्ट्रीय' वैदिक संस्कृति को धीर, भद्र, सौम्य तथा 'भारतीय' बनाया, वैदिक घोड़े के वेग का शमन करके उसका भारतीयकरण कर दिया।

ऋग्वैदिक आर्य से लेकर शक-आर्य तक हजार-हजार वर्षों तक लोकायत संस्कृति के माध्यम से उग्रतेजस्वी वैदिक घोड़े को भद्र और देशी संस्कार दिया गया तब कहीं जाकर वह अपना असली स्वभाव भूलकर रोमैण्टिक एवं तरल स्वभाववाले नायकों का सहचर बना। सूर्य चन्द्र को वहन करनेवाला घोड़ा महाश्वेता और कादम्बिनी का, और बाद में लोककथाओं की स्वर्णकेशी रानियों का वाहन बना। यह घोड़ा वस्तुतः कवियों की कल्पना शक्ति और प्रतिभा का घोड़ा है जो कभी 'दधिक्रा' और 'तार्क्ष्य' रूप धारण करता था तो अब बाणभट्ट के युग में इन्द्रायुध बन कर बड़ी मौज में आकर महाश्वेताओं और कादम्बरियों से जान-पहचान कर बैठा है।

इस प्रकार इसने धीरोदात्त और धीरोद्धत रूप को छोड़कर धीर ललित रूप धारण कर लिया और महा-कवियों ने अपनी प्रतिभा की कंघियों से इसके सुनहले अयालों को श्रमपूर्वक सँवारना प्रारम्भ कर दिया। अन्त में यह रह गया शोभा की वस्तु, नायकों के जुलूस का शृंगार मात्र। अवश्य ही वीरगाथा युग के हिन्दी काव्यों में एक बार पुनः 'हीरोइक' अर्थात् शौर्य-प्रधान भूमिका में यह आया। परन्तु इसका देवत्व तब तक समाप्त हो चुका था। यह देवता तो क्या देवताओं का वाहन भी नहीं रहा। यह शूरवीरों का वाहन अवश्य बना। परन्तु इसे वैदिक गरिमा पुनः प्राप्त न हो सकी। लोकायत संस्कृति ने ऋद्धि और श्री को तेज और बल से ज्यादा महत्त्व दिया। अतः जो मंत्र घोड़े में देवत्व का आरोपण करके अश्वमेध के अवसर पर गाया जाता था वह हाथी की मुखाकृतिवाले थुल-थुल वपुवाले देवता के लिए निश्चित हो गया।

[illegible] तात्पर्य प्रसिद्ध वैदिक मंत्र 'गणानांत्वां गणपति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवामहे ...'' से है। विष्णु के हयग्रीव अवतार की चर्चा भी पुराणकार उसी तरह करते हैं जिस तरह "उड़ा हुआ सत्तू पितराय नमः।" हमारी संस्कृति के केन्द्र में 'शूर' के स्थान पर 'पण्डित' का प्राधान्य स्थापित हो गया। फल हुआ, शूरवीर घोड़े की जगह पर भारी मस्तकवाले बुद्धिमान हाथी के प्रतीक की स्थापना। इन्द्र देवराज हैं, तो रहें। अग्रपूज्य बने लम्बी शुण्डवाले गजानन। घोड़ा हमारी संस्कृति और साहित्य में अस्त गौरव एवं महिमा-भ्रष्ट जीव हो गया।

रवीन्द्रनाथ अतीत के अस्त हुए गौरव का प्रतीक उर्वशी को मानते हैं और उस उर्वशी के लिए रुदन करते हैं: "फिरिबे ना. फिरिबे ना से अस्त गेछे गौरवशशी" अस्ताचलवासिनी उर्वशी !" मैं वैदिक अतीत का प्रतीक मानता अपनी रूप राशि से विश्व को भी सुन्दर बनाती हुई 'ऊषा' को और अतुलवेग से धावमान् वैदिक 'तुरंग' को। मुझे भी कम वेदना नहीं होती कि वे ऊषाएँ अब नहीं लौटेंगी और वे तेजपुंज अश्व पुनः हमारी कविता में आक्षितिज धावमान नहीं होंगे।

किसी भी जाति की जिजीविषा, आशा और महत्त्वाकांक्षा की प्रथम अभिव्यक्ति जिस कला के माध्यम से होती है वह है कविता और वही जाति जब गिरने लगती है तब पहले पहल उसकी कविता में ही 'हर्दा-गेरुई' लगती है। सारी कलाओं में सर्वप्रथम कविता ही क्षयग्रस्त और विकलांग होने लगती है। शेष कलाओं की बारी बाद में आती है। बीचबीच में जैसे-जैसे स्वस्थ या अस्वस्थ मौसम और हवा का आगमन होता रहता है वैसे-वैसे कविता की फसल भी हरित या जर्द रूप धारण करती रहती है। यदि आज की भारतीय कविता विकल, उन्मत्त, प्रमत्त, विक्षिप्त और स्वाँगपूर्ण है तो यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि आज का भारतीय मन विकल, उन्मत्त, प्रमत्त, विक्षिप्त और स्वांगपूर्ण है। ऐसे में जिजीविषा, तेज और साहसिकता के प्रतीकों और मृत्यु तथा काम को पराजित करनेवाले वीरों के लिए जगह नहीं।

आज हमारा क्रोध भी विक्षिप्त प्रलाप से ज्यादा रचनात्मक नहीं, तो ऐसी अवस्था में नये हीरोइक युग या शौर्य युग के गान कविता के कण्ठ से कैसे फूटेंगे ? कविता सारी ललित कलाओं में सर्वाधिक ईमानदार विधा है। वह झूठ नहीं बोल सकती।

बार-बार हमें प्रेस और आकाशवाणी के माध्यम से, दीवाल पर लगे पोस्टरों के माध्यम से बताया जाता है कि हम महान् हैं और महान् नेताओं के युग में जी रहे हैं जिसमें हमारी जययात्रा अपनी चरम मंजिल पर पहुँचनेवाली है। कुछ ऐसी ही भाषा और ऐसा ही विज्ञापन पश्चिम में उस समय भी दिया गया था, जिस समय रूस और चीन में प्रगतिशील सरकारों की स्थापना हुई थी। सरकारी अमलातंत्र में अन्य विधाओं का उपयोग जैसा चाहा, किया गया। परन्तु वहाँकी कविता अपनी अनुभूतिगत ईमानदारी को बनाये रही। वह चुप रही और समाजवादी युग की महान् भौतिक उपलब्धियों से नितान्त अप्रभावित रहकर आज भी संकेत दे रही है कि उन तंत्रों की भौतिक सफलता में कहीं न कहीं खोट है, कहीं न कहीं मनुष्य वहाँ अत्यन्त दीन, आर्त्त और बेबस है और अपने मन को अकृत्रिमतापूर्वक अभिव्यक्त करने में असमर्थ है।

रूस के समाजवादी साहित्य में काव्यगत दरिद्रता और अनुर्वरता इस बात का प्रमाण है कि कहीं-कहीं पर वहाँ पर बड़ी मर्मान्तक कमी है जो जीवन के स्रोत पर ही अपनी अंजलि लगाकर सारे प्राणरस का पान कर डालती है। अन्यथा वहाँके इस स्वर्णयुग का दस्तावेज कोई महाकवि अवश्य प्रस्तुत करता। होमर न सही, वाल्टह्विटमन जैसा भी कोई आता !

बर्ट्रैण्ड रसेल ने एक स्थल पर लिखा है कि आज विश्व दो प्रकार के मनोभावों से पीडित है : क्रोध और जडिमा। (अवश्य ही इन दो के अतिरिक्त एक तीसरा मनोभाव है पाप-तृषा, जिसकी सन्तुष्टि में अमेरिका की आधुनिक ह्रासोन्मुख तरुण पीढ़ी अपना 'पाप-स्वीकार का साहित्य' (Confessional Literature) लिख रही है)। रसेल की यह उक्ति यूरोप के वामपंथी जगत् और दरिद्र एशिया के सन्दर्भ में ठीक ही लगती है। एक ओर है अपार क्रोध (जिसने मनुष्य को 'अबनार्मल' कर रखा है) और इसी से 'क्रूरता' (जो कायरता का ही दूसरा रूप है) ही प्रगतिशील हिंसा और शूरता कहकर विज्ञापित हो रही है। नाज़ी 'प्रोग्रोम' और कमूनिस्ट 'पर्ज' इसी वृत्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं।

दूसरी ओर है 'जडिमा'। यह जडिमा मुमुक्षा या डेथविश (Death Wish) का ही एक रूपान्तर है। "कोउ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृप होउ हमहिं का हानी !" 'हमारा भाग्य तो नहीं पलट सकता ! अतः विरोध की भाषा से हमारा क्या सरोकार।' यह मनोभाव तब आता है जब भीतर साहस और जिजीविषा की आखिरी बूँद भी चुक जाती है।

यह 'जडिमा' मरण की इच्छा का ही रूपान्तर है। यह अवस्था है उस जन-साधारण की जो समाजवादी देशों में अमला तंत्र के अंदर जीने के लिए वाध्य है। विश्व के वाम-पंथी इलाकों में या तो विक्षिप्त सामूहिक क्रोध है नहीं तो मरणोपम सामूहिक जडिमा। दूसरी ओर दक्षिणपंथी विश्व में व्यक्तिवादी संस्कृति अपने रुग्णतम रूप—पाप-तृषा में प्रवेश कर चुकी है। दोनों स्थितियाँ साहस और जिजीविषा (जीने की उत्कट इच्छा) के विपरीत पड़ती हैं। बामपंथ 'मनुष्य' को अस्वीकार करता है, उसे जड मशीन से ज्यादा नहीं मानता तो दक्षिण पंथ 'मनुष्यता' को अस्वीकार करता है या उसको सड़क का भिखारी मानकर एक कौड़ी फेंक देता है।

मैं जानता हूँ कि साहस और जिजीविषा का प्रतीक वैदिक अश्व अब पुनः त्रिसप्तसिन्धु को लाँघता हुआ इतिहास की खोपड़ी पर धावमान नहीं हो सकता, "भुवन-मोहिनी कन्याओं जैसी एक पाँत में उतरती हुई ऊषाओं" का पुनः आगमन नहीं हो सकता; शिशुता और वयःसन्धि से मुक्त, जन्म से ही प्रस्फुटितयौवना अप्सराओं का जन्म अब मानस समुद्र के मंथन द्वारा असम्भव है; अब पुनः सरयू के तट पर अश्वमेध यज्ञों के यूप काष्ठ नहीं गड़ सकते और न पाटलीपुत्र की गंगा में अवभृथ स्नान करने ही कोई उतर सकता है। वह अतीत दुबारा लौट नहीं सकता। अतः अतीत के पुनरुत्थान का स्वप्न देखना गलत है—चाहे वह वैदिक अतीत हो, या नव्य हिन्दू अतीत हो या मुगल अतीत हो। व्यतीत को भविष्य नहीं बनाया जा सकता। परन्तु अतीत से साहस और जिजीविषा अर्थात् जीने में रस-बोध को प्राप्त किया जा सकता है।

अतीत हमारी मनोभूमि का अंग बन चुका है। वह अवचेतन और ऊर्ध्वचेतन में स्थित है। वह विचारों का उत्प्रेरण और स्फुरण कर सकता है। परन्तु देह धारण करके हमारी वर्तमान भौतिक आकृति में वह फिर उतर नहीं सकता। आज मनुष्य को सर्वाधिक आवश्यकता है साहस, करुणा और श्रम इन तीन मूल्यों की—'करुणा' की जगह पर 'प्रेम' का भी नाम ले सकते हैं, क्योंकि वस्तुतः करुणा प्रेम का ही रूपान्तर है।

वैदिक अश्व जिस जिजीविषा (अर्थात् जीने की उत्कट इच्छा) का प्रतीक है उसको यदि हम आधुनिक संदर्भ में आरोपित करें तो यह तीन मूल्यों में अपने को विभाजित करती है और वे हैं—साहस, करुणा (या प्रेम) और श्रम। कोई भी विरोध का दर्शन जो इन तीनों में किसीकी उपेक्षा करता है, अधूरा है और वंचक है। हमें वैरी प्रकृति के विरुद्ध लड़ना है अतः 'श्रम' चाहिए। हमें अपने अन्दर के अमंगल और शैतान के विरुद्ध लड़ना है अतः प्रेम या करुणा चाहिए। हमें अधिकार लोभी के अन्याय के विरुद्ध लड़ना है अतः विरोध का 'साहस' चाहिए।

हमें यदि जिजीविषा वरण करनी है, किसी क्रोध या जडिमा (मृत्यु के प्रति समर्पण) या पाप-तृषा का शिकार नहीं बनना है तो हमें, और हमारे युग को इन तीन मूल्यों को स्वीकार करना पड़ेगा और नये शौर्य का मानदण्ड इन तीनों के द्वारा निर्धारित होगा। तभी वे अतीत के वैदिक अश्व नयी आकृति धारण करके, नया नाम रूप धारण करके, अवतरित होंगे और उनकी टापों की ध्वनि से धरती-आकाश भर जायँगे।

ये घोड़े किसी मरुत या इन्द्र या आदित्य के वाहन न होकर स्वयं मरुत-वेग, इन्द्र-महिमा और आदित्य-तेज को धारण कर लेंगे। ये नये घोड़े हमारे मानस में विहार करनेवाले वैदिक तुरंगों के सगोत्र तो होंगे परन्तु ये उनसे भिन्न चाल, भिन्न छन्द में चलेंगे क्योंकि इन्हें सर्वथा नये पन्ने पर नाचना है—उस नये पन्ने पर जिसका पूर्ववर्ती पन्ने से तथ्यगत सम्बन्ध तो है परन्तु यह पूर्ववर्ती पन्ने की 'कार्बन-कापी' नहीं। यह पन्ना बीसवीं शती का पन्ना है जिस पर साहस, करुणा (प्रेम) और श्रम की कविता अवतरित होगी।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का प्रथम उपग्रह आर्यभट

डा० मुरली मनोहर जोशी

भारत अब अंतरिक्ष युग में प्रवेश कर चुका है। प्रथम भारतीय भू-उपग्रह 'आर्यभट' पृथ्वी की प्रदक्षिणा ९६.४१ मिनट प्रति परिक्रमा के वेग से निरन्तर कर रहा है। इस संदर्भ में भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों द्वारा इस भू-उपग्रह का निर्माण एवं सोवियत रूस की सहायता से इसका प्रक्षेपण उल्लेखनीय है। गतवर्ष पोकरन में किये गये सफल नाभिकीय विस्फोट के पश्चात् इस वर्ष भू-उपग्रह के सफल प्रक्षेपण से न केवल भारतीय वैज्ञानिकों की प्रतिभा को ही अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई, बल्कि समूचा देश भी गौरवान्वित हुआ है। आइये 'आर्यभट' की अंतरिक्ष यात्रा के विषय में कुछ विस्तार से अध्ययन किया जाय।

भारत का अंतरिक्ष प्रकल्प—उपग्रह 'आर्यभट' का जन्म भारत के अंतरिक्ष अनुसंधान के प्रकल्पों के अंतर्गत किये गये सुनियोजित प्रयोगों का परिणाम है। यद्यपि १९६० में ही स्व० डा० विक्रम साराभाई ने अंतरिक्ष विज्ञान के आगामी एक दशक के लक्ष्यों की रूपरेखा प्रस्तुत कर दी थी, तथापि अनेक कारणों से, जिनमें राष्ट्रीय संसाधनों का संकट प्रमुख था, यह सभी कार्यक्रम निश्चित समय पर पूरे नहीं हो सके। अतः अहमदाबाद में अगस्त १९७२ में 'भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान एवं उसके प्रयोग' पर आयोजित राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी ने अंतरिक्ष विज्ञान संबंधी कार्यक्रमों पर विचार किया तथा वर्तमान पंचवर्षीय योजना की अवधि के लिए २०० करोड़ रुपयों के विनियोग का प्रस्ताव प्रमोदित किया। दूर-दर्शन एवं दूर-सचार के लिए भारत का एक राष्ट्रीय भू-उपग्रह का निर्माण करना इस कार्यक्रम का केन्द्रीय लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया। इस निर्णय के परिणाम-स्वरूप बंगलोर के निकट पीन्या नामक स्थान पर भारतीय वैज्ञानिक उपग्रह प्रकल्प (ISSP) को भारतीय भू-उपग्रह निर्माण करने का कार्यभार सौंपा गया।

यद्यपि मूलरूप से उपग्रह के निर्माण का उत्तरदायित्व वैज्ञानिक प्रकल्प का ही था फिर भी भारत के अनेक सार्वजनिक एवं निजी संस्थानों के सहयोग के बिना यह आयोजन पूरा नहीं हो सकता था। वस्तुतः उपग्रह के निर्माण में हिन्दुस्तान वैमानिकी सीमित (HAL), निरीक्षण इलैक्ट्रानिकी का नियंत्रक संस्थान (CIL), भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र (BARC), केन्द्रीय मशीन उपकरण संस्थान (CMTI) तथा भारत का इलैक्ट्रानिक निगम (ECI) जैसे सार्वजनिक प्रतिष्ठानों तथा हेडगे एवं गोले जैसे निजी संस्थानों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। एक प्रकार से देखा जाय तो 'आर्यभट' भारत के सभी राष्ट्रीय क्षेत्रों के सहकार का फल है। यह स्वयं अपने में एक बड़ी उपलब्धि है जिसमें निजी एवं सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के कृत्रिम भेदभाव भुलाकर राष्ट्रीय स्तर पर समवेत प्रयत्न हुए। यदि ऐसा ही दृष्टिकोण अन्य समस्याओं के प्रति भी अपनाया जाय तो उनके निराकरण में भी देश सफल हो सकेगा।

आर्यभट की रचना—संलग्न चित्र में प्रदर्शित उपग्रह आर्यभट की आकृति २६ फलकोंवाले हीरे की भाँति है तथा उसका वर्ण, नील-जम्बुकी है। यह कुल मिलाकर १११ सेमी ऊँचा है। इसका व्यास १४७ सेमी है तथा तोल में यह ३६० किलोग्राम के लगभग है। आर्यभट के बाह्य आवरण की रचना भारतीय वैमानिकी सीमित के कुशल कारीगरों द्वारा की गयी है तथा इसके इलेक्ट्रानिक उपकरणों का बड़ा भाग भारत के विभिन्न इलैक्ट्रानिक उद्योगों में ही निर्माण किया गया है। अंतरिक्ष अनुकूलित सभी इलैक्ट्रानिक उपकरण तथा उपग्रहों में लगनेवाले यांत्रिक उपकरणों का एक भाग अभी हमारे देश में प्राप्य नहीं है। अतः आर्यभट की निर्माण सामग्री का ९० प्रतिशत तो पूर्णतः स्वदेशी है किन्तु १० प्रतिशत के लगभग विदेशों से आयात किया गया है। इस उपग्रह में +१००° सेन्टीग्रेड से −१००° सेन्टीग्रेड तक ताप एवं शीत सहन करने की क्षमता है, जिसका परीक्षण भी भारतीय वैज्ञानिकों ने भारतीय प्रयोगशालाओं में ही किया है। इस उपग्रह के छब्बीसों फलकों पर अतिसूक्ष्म आकार के सौर कोशाणु (Solar Cells) जड़े हुए हैं जो सौर ऊर्जा को विद्युत् ऊर्जा में रूपांतरित कर देते हैं, जो उसके अन्दर रखी हुई रासायनिक बैटरियों में संचित कर ली जाती है।

उपग्रह के अन्दर नियंत्रक प्रणालियों के अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन प्रकार के उपकरण रखे हुए हैं—एक प्रकार के उपकरण तो वे हैं जिनकी अभिकल्पना भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संघटन (ISRO) द्वारा की गयी है और जो आकाश में पायी जानेवाली एक्स-किरणों का अध्ययन करेंगे। दूसरे प्रकार के उपकरण टाटा मौलिक अनुसंधान संस्थान (TIFR) बम्बई द्वारा निर्मित किये गये हैं और जिनका कार्य तीव्र सौर क्रियाओं द्वारा उत्पन्न उच्च ऊर्जा वाली गामा किरणों एवं न्यूट्रान कणों का परीक्षण करना है। भौतिकी अनुसंधान प्रयोगशाला (PRL) अहमदाबाद के वैज्ञानिकों ने तीसरे प्रकार के उपकरण बनाये हैं, जिनके द्वारा आयन मंडल में विद्यमान इलैक्ट्रोन कणों तथा रात्रि के समय आकाश में पायी जानेवाली अति बैंजनी किरणों के विषय में सूचना एकत्र की जा सकेगी। आप प्रश्न पूछ सकते हैं कि इन उपकरणों को ही आर्यभट में क्यों रखा गया। यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है और इसका उत्तर समझने के लिए आर्यभट के प्रक्षेपण के उद्देश्य एवं आकार के महत्त्व को सदा ध्यान में रखना होगा।

सर्वप्रथम तो इस तथ्य पर ध्यान दीजिये कि किसी भी उपग्रह का आकार एवं भार उसके प्रक्षेपण वाहन की क्षमता पर निर्भर करता है। जिस रूसी प्रक्षेपण वाहन पर सवार होकर आर्यभट अन्तरिक्ष यात्रा पर गया है उसके आकार एवं भारवहन की क्षमता की सीमाओं के कारण आर्यभट अपने उपकरणों सहित ४०० किग्रा से अधिक भारी तथा १४७ सेमी से अधिक चौड़ा नहीं बनाया जा सका। अतः यांत्रिक अंगों के अतिरिक्त बहुत कम स्थान शेष बचता था जिसमें वैज्ञानिक उपकरण लगाये जा सकें। दूसरे, इस तथ्य पर भी विचार कीजिये कि आर्यभट का उद्देश्य बहुत सीमित है। इस उपग्रह का मुख्य उद्देश्य यह परीक्षण करना है कि क्या भारतीय वैज्ञानिक उपग्रह निर्माण एवं उपग्रह का दूर नियंत्रण तथा उससे प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करने में सक्षम हैं। अतः केवल इसमें वही वैज्ञानिक उपकरण रखना अभीष्ट था जो उपग्रह की ऊँचाई से उन आसूचनाओं को संप्रेषित कर सकें जिनका विश्लेषण भी संभव हो। एक बार यह सिद्ध हो जाय कि भारतीय वैज्ञानिक उपग्रह का नियंत्रण कर सकते हैं तथा उससे प्राप्त कूट संकेतों का अर्थ निर्वचन कर सकते हैं तब फिर अन्य वांछित उपकरणों को भी उपग्रह में रखा जा सकता है।

कार्यकारी सिद्धान्त—पृथ्वी के प्राकृतिक उपग्रह के रूप में आप चन्द्रमा से सुपरिचित हैं। यह पृथ्वी की परिक्रमा किस सिद्धान्त पर करता रहता है? यह पृथ्वी पर गिर क्यों नहीं पड़ता? इन प्रश्नों का उत्तर ज्ञात करने के पूर्व कुछ वैज्ञानिक नियमों को समझना आवश्यक है। यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि सभी पार्थिव पिंडों के मध्य गुरुत्वीय आकर्षण बल लगता है और जब आप किसी वस्तु को पृथ्वी तल से ऊपर की ओर फेंकते हैं तब वह गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे की ओर गिरने लगती है। दूसरा वैज्ञानिक नियम भ्रमणशील पिंडों के सम्बन्ध में यह है कि जब कोई पिंड किसी वृत्तीय कक्षा में चक्कर लगता है तब उस पर एक अपकेन्द्रीय बल लगता है, जिसकी प्रवृत्ति पिंड को केन्द्र से दूर फेंकने की होती है। ध्यान दीजिये—गुरुत्वाकर्षण की प्रवृत्ति पिंडों को पृथ्वी के केन्द्र की ओर ले जाने की है, या यों कहें कि वह उन पर अभिकेन्द्रीय बल उत्पन्न करता है, जबकि पृथ्वी के चारों ओर भ्रमण करने से पिंड पर अपकेन्द्रीय बल लगता है। अब यदि कोई पिंड पृथ्वी के चारों ओर इतनी दूर पर भ्रमण करने लगे कि उस पर कार्यरत अभिकेन्द्र एवं अपकेन्द्री बल तुल्य हो तब वह पिंड नियत कक्षा में निरन्तर गतिशील रहेगा। चन्द्रमा इसी सिद्धान्त पर पृथ्वी की परिक्रमा करता है। अतः यदि आप किसी पिंड को उपग्रह बनाना चाहते हैं तो उसे एक निश्चित ऊँचाई पर ले जाकर इतने वेग से फेंकना होगा कि उस पर लगनेवाला गुरुत्वीय बल, अपकेन्द्री बल द्वारा संतुलित किया जा सके। यह वेग पिंड के द्रव्यमान, पृथ्वी से उसकी ऊँचाई आदि पर निर्भर करता है। आर्यभट को पृथ्वी से ५६० किलोमीटर ऊँचाई तक ले जाकर लगभग २९००० किलोमीटर प्रति घण्टे के कक्षीय वेग से फेंकना पड़ा। इतने विशाल वेग से प्रक्षेपण करने के लिए बड़े शक्तिशाली क्षेप्यास्त्र की आवश्यकता है जो अभी भारत में नहीं बनाया जा सका है। यही कारण था कि हमें अपना उपग्रह सोवियत रूस के किसी अड्डे से छोड़ना पड़ा। प्रक्षेपण केन्द्र अभी गुप्त ही रखा गया है। उपग्रह आर्यभट पृथ्वी की परिक्रमा वृत्तीय कक्षा में नहीं कर रहा, बल्कि दीर्घवृत्तीय कक्षा में कर रहा है। पृथ्वी से उसकी निकटतम दूरी ५६४ किलोमीटर एवं अधिकतम दूरी ६२४ किलोमीटर है।

जीवन-काल—मानव निर्मित उपग्रहों के सम्बन्ध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

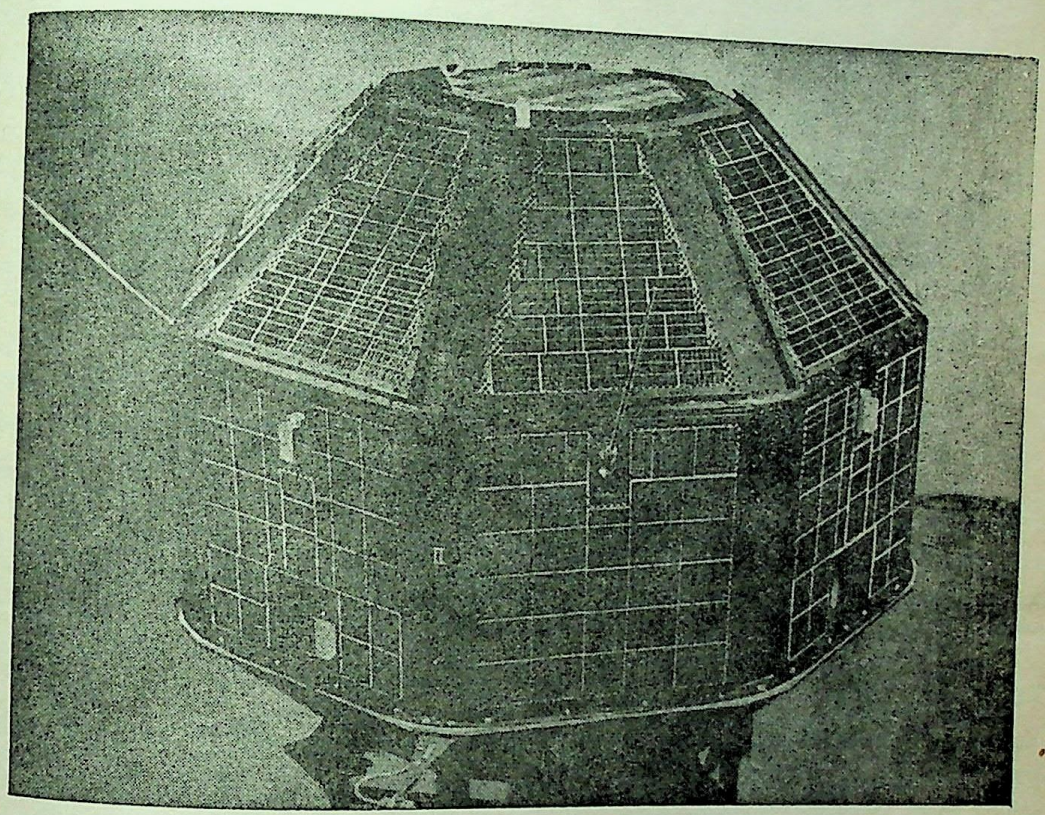

आर्यभट उपग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महत्त्वपूर्ण विषय उनका जीवन काल है। क्या एक बार फेंका हुआ उपग्रह अनन्त काल तक भ्रमण करता रहेगा? नहीं। प्रत्येक कृत्रिम उपग्रह का जीवन-काल निश्चित होता है, जिसके पश्चात् उसकी कक्षा के आकार में परिवर्तन होने लगता है। किसी भी उपग्रह की कक्षा के आकार का स्थायीकरण उसमें लगी नियंत्रक व्यवस्था द्वारा किया जाता है। इस नियंत्रक व्यवस्था की कार्यप्रणाली बड़ी रोचक है। कक्षा के स्थायित्व के लिए यह आवश्यक है कि उपग्रह अपने अक्ष के चारों ओर उसी तरह चक्रण करे जिस तरह लट्टू अपने अक्ष पर चक्कर लगाता है। अतः उपग्रह में एक दूसरे के सम्मुख गैस बेलन रखे रहते हैं, जिनसे छूटनेवाले गैस के फव्वारे उपग्रह में चक्रण उत्पन्न कर देते हैं। जब तक बेलनों में गैस भरी रहेगी तब तक उपग्रह में चक्रण बना रहेगा। पहले यह समझा जाता था कि आर्यभट का जीवन काल छः मास का ही होगा, परन्तु अब यह अनुमान किया जाता है कि दो से ढाई वर्ष तक गैस बेलन कार्यशील रहेंगे। अतः आर्यभट का जीवन-काल कुछ बढ़ जायगा। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि रूस द्वारा प्रक्षेपित प्रथम उपग्रह स्पुतनिक की आयु केवल ९२ दिन थी, कुछ संचार उपग्रह—यथा, इंटेलसैट—५ वर्षों तक जीवित रहे और अमरीका द्वारा फेंका वेन्गार्ड प्रथम कई शताब्दियों तक पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता रहेगा।

नियत्रंक तथा पथ-निरीक्षण—उपग्रह आर्यभट स्वचलित यंत्रों द्वारा नियंत्रित किया जाता है। रूस में मस्कवा, तथा भारत के श्रीहरिकोट स्थित केन्द्रों द्वारा आर्यभट को आदेश दिये जाते हैं। यद्यपि एक बार अपनी भ्रमण कक्षा में पहुँचाकर उपग्रह पर बहुत कम नियंत्रण रह जाता है फिर भी उसके भीतर रखे हुए उपकरणों को आदेश देकर आप उनसे कार्य अवश्य ले सकते हैं। प्रक्षेपण के प्रथम तीन दिन तो केवल मस्कवा केन्द्र से ही आर्यभट को नियंत्रित किया गया, किन्तु अब उसका नियंत्रण श्रीहरिकोट केन्द्र द्वारा भी हो रहा है। आर्यभट में लगे उपकरण ३६ आदेशों का पालन कर सकते हैं। ज्ञातव्य है कि प्रक्षेपण के प्रथम पाँच दिनों तक तो कोई कठिनाई नहीं हुई और सभी उपकरण पूरा-पूरा कार्य करते रहे, किन्तु उसके बाद यह पता चला कि तीनों प्रयोगों को करने के लिए आवश्यक सभी उपकरणों को प्राप्त नहीं हो पा रही है। अतः यह प्रयोग बन्द कर देने पड़े।

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि उपग्रह पर निगाह कैसे रखी जाती है। उपग्रह पथ निरीक्षण की दो प्रमुख विधियाँ हैं—(१) प्राकाशिक एवं (२) रेडियो। प्राकाशिक विधियों में एक विधि नेत्रों द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन करना है जो सदा संभव नहीं हो पाता, क्योंकि उपग्रह अत्यंत, अल्पकाल तक तथा सूर्य, उपग्रह एवं द्रष्टा की विशेष स्थितियों में ही दृष्टिगोचर हो सकता है। प्रत्यक्ष दर्शन के लिए यह आवश्यक है कि उपग्रह पर सूर्य की किरणें पड़ रही हों तथा पृथ्वी से देखने पर उसकी पृष्ठभूमि काली दिखायी दे रही हो। किन्तु दूरदर्शी की सहायता से विषम परिस्थितियों में भी उसका चित्रण किया जा सकता है। आधुनिक दूरदर्शियों में ऐसे स्वचलित उपकरण लगे रहते हैं जो नियत कक्षाओं में भ्रमणशील पिंडों का चित्र खींचते रहते हैं। भारत में नैनीताल स्थित वेधशाला एवं अमेरिका की स्मिथसोनियन संस्थान के सहयोग से आर्यभट के पथ का चित्रण होता रहता है। निरीक्षण की रेडियो विधि इस बात पर निर्भर करती है कि उपग्रह द्वारा संप्रेषित रेडियो संकेत ग्रहण कर लिये जायँ तथा उनके आधार पर पथ का निर्धारण कर लिया जाय। आर्यभट १३६ मेगा साइकिल आवृत्ति के रेडियो संकेत 'बीप-बीप' ध्वनि के रूप में प्रसारित करता है और जिस किसीके पास भी उपयुक्त रेडियो संग्राहक हो वही इन संकेतों को सुन सकता है। किन्तु आर्यभट सदा 'बीप-बीप' नहीं करता। उसका रेडियो संप्रेषण तब ही क्रियाशील होता है जब श्रीहरिकोट केन्द्र में लगा एक बटन दबा दिया जाय। अतः आर्यभट का रेडियो पथ निरीक्षण हर समय नहीं किया जाता। जब नियंत्रण केन्द्र चाहता है तब ही रेडियो सम्पर्क स्थापित हो सकता है, अन्यथा फोटोग्राफी विधि से ही पथ-निरीक्षण होता है। पथ-निरीक्षण के कार्य में फ्रांस की प्रयोगशालाओं से भी सहायता ली जा रही है।

जब जब उपग्रह आर्यभट श्रीहरिकोट नियंत्रण केन्द्र से सम्पर्क करता है तब तब ३२० शब्द प्रति सेकेंड के हिसाब से सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। प्रत्येक परिक्रमा में लगभग १० मिनट तक ही उपग्रह आर्यभट श्रीहरिकोट केन्द्र के निरीक्षण क्षेत्र में रह पाता है। अतः उतनी देर तक ही केन्द्र तथा इसमें रेडियो संकेतों का आदान-प्रदान हो पाता है। इस अल्प अवधि में भी लगभग २००००० शब्दों की सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं, जिनकी व्याख्या कम्प्यूटर द्वारा की जाती है।

जन सामान्य एवं आर्यभट—यह भी विचारणीय है कि क्या अंतरिक्ष अनुसंधान निर्धन राष्ट्रों के लिए बौद्धिक विलास मात्र तो नहीं है। क्या ऐसे उपागम वास्तव में जनसामान्य के लिए कुछ अर्थ रखते हैं? कहीं निर्धन जनता की गाढ़ी कमाई इन प्रयोगों में नष्ट तो नहीं होती? वस्तुतः यह सभी बहुत गंभीर प्रश्न है, जिन पर सुधी जनों को उपयुक्त निर्णय लेना है। भू-उपग्रह अब मात्र वैज्ञानिक कुतूहल की ही वस्तु नहीं रह गयी है, अपितु इसे व्यावहारिक उपयोग में भी लाया जा रहा है। विज्ञान की यह शाखा बहुत व्यापक क्षेत्र में कार्य कर रही है। संचार साधन के रूप में उपग्रह, जिसे अंग्रेजी में 'टेलस्टार' कहते हैं, विश्व भर में सम्पर्क स्थापित करा रहे हैं। शिक्षा एवं जन-सम्पर्क के लिए भी उपग्रह बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। भारत जैसे देश में, जहाँ अशिक्षितों की संख्या ४० करोड़ के लगभग है, वयस्क शिक्षा के लिए इसको काम में लाया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में दूरदर्शन केन्द्रों द्वारा पाठ्यक्रमों के प्रसारण की योजना भी अंतरिक्ष वैज्ञानिकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा प्रस्तावित है। ऋतुविज्ञान के क्षेत्र में तो उपग्रहों का योगदान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। आनेवाले झंझावातों, समुद्री तूफानों तथा ऋतु विपर्यय की सूचना समय रहते मिल जाने से लाखों नागरिकों की प्राण-रक्षा अब संभव है। भू-सम्पदा सर्वेक्षण उपग्रह (ERTS) तो दुर्गम क्षेत्रों के सर्वेक्षण द्वारा उनमें छिपी अपार सम्पदा की सूचनाएँ दे रहा है। यह उल्लेखनीय है कि इस उपग्रह के संदेशों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि पाकिस्तान में तांबे की खानें हैं तथा बँगला देश में समुद्र तटवर्ती क्षेत्र के तट पर नयी भूमि उपलब्ध हो रही है। है न आश्चर्य की बात? ऊपर आकाश में सैकड़ों मील पर चक्कर लगानेवाला नन्हा सा उपग्रह पृथ्वी के गर्भ में छिपे रहस्यों को प्रगट कर रहा है।

उपग्रहों का प्रक्षेपण अब राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गया है। अन्य देशों के जासूस उपग्रह प्रतिदिन हमारी भूमि के इंच-इंच क्षेत्र का सूक्ष्म अन्वेषण कर रहे हैं और उनके आधार पर हमारी दुर्बलताओं का मूल्यांकन कर रहे हैं। इसके निराकरण का एक ही उपाय यह है कि हम भी शक्तिशाली उपकरणों से सन्नद्ध उपग्रहों की शृंखला आकाश में भेज दें तथा शत्रु देशों की तैयारी का पता लगाने का यत्न करें। अतः भले ही व्यय साध्य हो पर सुरक्षा का मूल्य तो चुकाना ही पड़ेगा।

महान् भारतीय वैज्ञानिक आर्यभट—भारत ने अपने प्रथम उपग्रह का नामकरण जिस महान् वैज्ञानिक की स्मृति में किया है उसका जन्म ४७६ ई० में पाटलिपुत्र के निकट कुसुमपुर में हुआ था। सरस्वती के उस वरद पुत्र ने २३ वर्ष की अल्प वय में ही अपने महान् ग्रंथ आर्यभटीय की रचना द्वारा गणित के क्षेत्र में यशपताका फहरा दी थी। अपने जन्म एवं विद्याध्ययन के संबंध में उन्होंने स्वयं लिखा है—

षष्टयब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः
अधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः ॥

(आर्यभटीय, कालक्रिया १०।)

ब्रह्म कु शशि बुध भृगु रबिकुज गुरु कोण भगणान्नमस्कृत्य।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥

(आर्यभटीय गणित १)

इस महान् गणितज्ञ ने पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा का सिद्धान्त विश्व में सर्वप्रथम प्रतिपादित किया। महान् यूरोपीय गणितज्ञ कोपिनकस से १००० वर्ष पूर्व आर्यभट ने सूर्यकेन्द्रित ग्रहमंडल की परिकल्पना प्रस्तावित की थी। किन्तु दुर्भाग्य है कि अभी तक विश्व में इस प्रणाली के जन्मदाता के रूप में कोपर्निकस को ही श्रेय दिया जा रहा है। उद्भट गणितज्ञ आर्यभट ने पृथ्वी एवं चन्द्रमा के व्यास की गणना की, उसने समय विभाजन का वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया, पंचांगों को शुद्ध किया, ग्रह एवं नक्षत्रों से संबद्ध बहुत-सी गवेषणाएँ कीं और बहुत बड़ी एवं लम्बी संख्याओं को शब्दों द्वारा संक्षिप्त रूप में निरूपण करना भी उसी ने सिखाया। आधुनिक बीजगणित का जन्मदाता भी आर्यभट ही था और द्विघात समीकरण का हल भी उसी ने सर्वप्रथम प्रस्तुत किया। आधुनिक गणित में जिन्हें अनिर्धार्य समीकरण कहा जाता है, कुट्टक समीकरण के नाम से उनके हल भी सर्वप्रथम उसी ने प्रस्तुत किये। 'आर्यभटीय' के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज से १५०० ई० पूर्व गणित का इतना गहन अध्ययन मात्र २३ वर्ष की वय में करनेवाला वह महापुरुष कितना मेधावी था। इतना ही नहीं। वह लिखता है कि जो कुछ भी इस ग्रंथ में लिखा है वह यद्यपि पूर्ववर्ती विद्वानों की कृपा से प्राप्त किया है, फिर भी मैंने उस ज्ञान में यथावश्यकता संशोधन कर दिया है—

सदसज्ज्ञाना समुद्रात् समुद्धृतं देवताप्रसादेन।
सज्ज्ञानोत्तमरत्नं मया निमग्नं स्वमतिना वा ॥

(आर्यभटीय गोल ४८, ४९)

समय की अर्धरात्रि से गणना करने की पद्धति का प्रचार भी आर्यभट ने ही किया था और आकाशीय पिंडों की सापेक्ष गतियों का भी सूक्ष्म अध्ययन उसने किया था।

आर्यभट द्वारा प्रसारित 'बीप-बीप' संदेश को भले ही हम न समझ पायें किन्तु भारतीय विज्ञान के पुनर्जागरण के संदेश को हम अवश्य समझ सकते हैं। पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ उपग्रह आर्यभट अपनी प्रत्येक प्रदक्षिणा में हमें यह संदेश दे रहा है कि भारत के पुत्रो, उठो और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारत की सम्पदा का पुनः अन्वेषण करो, मानसिक दासता के बंधनों से मुक्त होकर स्व का साक्षात्कार करो तथा भारतीय मेधा, प्रतिभा एवं साधनों के आधार पर विज्ञान को नयी दिशा प्रदान करो। उठो और केवल याचक बनकर विश्व भर का उच्छिष्ट मात्र मत संग्रह करते रहो। भारत के भाग्याकाश में एक नहीं शत सहस्र आर्यभटों की भाँति जाज्वल्यमान नक्षत्र बनकर ज्ञान एवं सम्पदा से युक्त नवीन भारत की रचना करो। निश्चय ही जब भारत अपने अगले उपग्रह का प्रक्षेपण करेगा तब आर्यभट द्वितीय भारतीय भूमि से भारतीय राकेट पर आरूढ होकर ही अंतरिक्ष यात्रा को प्रस्थान करेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धांजलि

प्रबुद्ध साहित्यकार बालकृष्ण राव

डॉ० श्रीधर मिश्र

२ जून को प्रातःकाल मैं 'नवभारत टाइम्स' पढ़ रहा था। दूसरे पृष्ठ पर 'सी० बी० राव का देहान्त' शीर्षक देखते ही मेरा माथा ठनका। मैं एक ही साँस में पढ़ गया—"नयी दिल्ली, १ जून (प्रेट्र)—इलाहाबाद और गोरखपुर विश्वविद्यालयों के भूतपूर्व कुलपति और इलाहाबाद के भूतपूर्व महापौर श्री सी० बी० राव का आज प्रातःकाल यहाँ अखिल भारत चिकित्सा विज्ञान संस्थान के भवन में निधन हो गया।" इस मनहूस, हृदय-विदारक समाचार को पढ़कर मैं सन्न रहा गया, अवाक्, किंकर्त्तव्यविमूढ क्योंकि अभी २५ मई के ही 'धर्मयुग' में मैंने पढ़ा था कि हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयाग के तत्त्वावधान में आयोजित 'आलोचना और आधुनिक संदर्भ' गोष्ठी की उन्होंने अध्यक्षता की थी। मैं देखता हूँ कि चारों ओर राव साहब का प्रभापूर्ण व्यक्तित्व उभर आया—वह गौर मुखमंडल, उन्नत एवं प्रशस्त ललाट, पतले-पतले होंठ, जिन पर पान की लालिमा तथा मधुर स्मित से दिव्य रश्मि विकीर्ण होती थी। उनके व्यक्तित्व तथा कार्य से सम्बद्ध कई स्मृतियाँ जीवन्त हो उठीं।

कुछ स्मृतियाँ

सबसे पहले सन् १९५४-५५ में इलाहाबाद में 'परिषद्' के अवसर पर राव साहब का मैंने दर्शन किया था। उन दिनों इलाहाबाद में उनकी बड़ी चर्चा थी। डा० रामेश्वर मंगल सिंह 'सुमन' के कविता-पाठ को लेकर उनमें तथा प्रो० विजयदेव नारायण साही में तीखी झड़प हो गयी। तब राव साहब ने ही दोनों को शांत किया।

सन् १९६७ में अपने प्रबन्ध के प्रकाशन के सम्बन्ध में उनसे मिलने मैं उनके निवास स्थान 'अमरावती', ९ टैगोर मार्ग, इलाहाबाद गया था। वहाँका सारा वातावरण शान्त, निर्मल, मोहक था। प्रवेश करते ही वहाँके गुलमों के फूलों ने स्वागत किया। बायीं ओर ड्राइंग रूम में भाभी साहिबा श्रीमती उमा राव के दर्शन हुए। दायीं ओर राव साहब का अध्ययन कक्ष, जिसमें चारों ओर बड़ी-बड़ी आलमारियों में पुस्तकें तथा मध्य में मेज कुर्सी। मेरे प्रबन्ध 'भोजपुरी लोक साहित्य : सांस्कृतिक अध्ययन' के सम्बन्ध में बातें होने लगीं। जब मैंने 'डोमकच' के सम्बन्ध में बतलाया तब वे बड़े प्रसन्न हुए। चार दिनों में उन्होंने प्रबन्ध आद्योपांत पढ़ा। मेरे शोध कार्य से वे संतुष्ट हुए। तभी से मेरे प्रति उनका एक अग्रज का सा स्नेह-व्यवहार रहा। मुझे कार्य करने के लिए वे हमेशा प्रोत्साहित करते रहे, जिसे मैं अपने जीवन की बहुमूल्य निधि मानता हूँ।

सन् १९६८-६९ में जब वे बम्बई आये थे तब खालसा कालेज के स्टाफ क्लब में उनका भाषण रखा गया था। हिन्दी के सम्बन्ध में उनके ओजपूर्ण विचार सुनकर अहिन्दी-भाषी प्राध्यापक बड़े प्रभावित हुए। सायंकाल हम लोग फिल्म डिविजन वृत्तचित्र देखने गये, जिसका आयोजन श्री बी० बी० चन्द्र, निदेशक फिल्म डिविजन (अब अतिरिक्त क्षेत्रीय अधिकारी, फिल्म सेंसर बोर्ड) ने किया था, जिसमें प्रमोद पति की प्रसिद्ध फिल्म 'एक्सप्लोरर' तथा चन्द्र की फिल्म 'आस्था' भी थी, जो कुम्भ मेले पर बनी थी। दोनों की प्रयोगशीलता की इन्होंने सराहना की। मुझसे रास्ते में कहते रहे कि दोनों (मेरी तथा चन्द्र) की खूब जोड़ी है—एक इल्मवाला तो दूसरा फिल्मवाला। दोनों में समन्वय आवश्यक है। मेरी यही कामना है कि मेरे दोनों प्रिय उन्नति करते रहो। राव साहब का व्यक्तित्व बहुमुखी था, तो हृदय विशाल।

उनका अंतिम दर्शन सन् १९७१ में गोरखपुर में हुआ, जब वे वहाँके विश्वविद्यालय के कुलपति थे। उनसे मिलने मैं कुलपति आवास ही गया। वहाँ विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार महोदय भी बैठे थे। पूज्य राव साहब ने मेरा जो परिचय कराया उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्ट्रार महोदय से कहा, "आप डा० श्रीधर मिश्र हैं; बम्बई में प्राध्यापक हैं। मैंने इलाहाबाद में आपको अपने भाई डा० चन्द्रा (प्रसिद्ध नेत्र विशेषज्ञ डा० डी० बी० चन्द्र) से मिलाया था। आप उनके अनुज हैं, यानी हम दोनों के अनुज, दोनों के प्रिय।" उनके प्रत्येक शब्द से उनका स्नेह झलकता था, प्रेम टपकता था। भाई साहब जहाँ भी रहते स्नेह, अपनापन की धारा प्रवाहित होती रहती थी। उस धारा के असामयिक एवं आकस्मिक तिरोहित हो जाने से सभी स्तब्ध हैं, जो स्वाभाविक है।

जीवन-यज्ञ

बालकृष्ण राव प्रसिद्ध उदारवादी नेता एवं पत्रकार सर सी० वाई० चिन्तामणि के पुत्र थे। इनका जन्म सन् १९१३ में इलाहाबाद में हुआ। इन्होंने सन् १९३७ में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से आई० सी० एस० की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। सन् १९५४ में आई० सी० एस० के सम्माननीय पद से त्यागपत्र देकर इन्होंने स्वतंत्र साहित्यकार के रूप में हिन्दी साहित्य के सर्जन एवं राष्ट्रभाषा की सेवा का बीड़ा उठाया, जिसका जीवन-पर्यंत निर्वाह किया। कितना बड़ा त्याग राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा के लिए! राव साहब का व्यक्तित्व विलक्षण, प्रतिभासम्पन्न एवं त्यागमय था।

साहित्य-साधना

तेलुगु-भाषी होते हुए भी प्रारम्भ से ही इनकी रुचि हिन्दी साहित्य में रही। इनकी पहली कविता 'माधुरी' में सन् १९२८ में प्रकाशित हुई। १९३१ में इनका प्रथम काव्यसंग्रह 'कौमुदी' प्रकाशन में आया। 'कवि और छवि' १९४७ में प्रकाशित हुआ। इन पर छायावाद का प्रभाव है, फिर भी इनकी अपनी मौलिकता है। सन् १९५० के बाद इनमें प्रयोगशीलता के लक्षण मिलने लगते हैं, एवं १९५५ तक ये नयी कविता के स्तंभ माने जाने लगे। 'रात बीती', 'अपनी बात', 'अर्द्धशती' आदि रचनाएँ इनकी मौलिकता प्रकट करती हैं। 'सावधान, जननायक' में इनकी चेतना अभिव्यक्त हुई—

सावधान; भक्तों की टोली आ रही है पूजा-द्रव्य लिये
बचो अर्चना से, फूलमाला से, अंधी अनुशंसा की हाला से
बचो वंदना की वंचना से, आत्मरति से,
बचो आत्मपोषण से, आत्मा की क्षति से।

वास्तव में इनकी कविताओं में छायावाद की सूक्ष्मता एवं प्रौढता मिलती है, साथ ही नयी पीढ़ी की चेतना भी है। इनके समीक्षात्मक निबंध इनके गम्भीर अध्ययन एवं साहित्यिक सूझ-बूझ के परिचायक हैं।

कुशल प्रशासक

बालकृष्ण राव ने सन् १९३७ से १९५४ ई० तक आई० सी० एस० अधिकारी के रूप में अनेक महत्त्वपूर्ण पदों का दायित्व वहन किया। प्रारम्भ में ये विंध्य प्रदेश के कमिश्नर थे तथा बाद में आकाशवाणी के उप-महानिदेशक और महानिदेशक। इस पद पर कार्य करते समय इन्होंने व्यापक योजना बनाकर हिन्दी के अनेक साहित्यकारों का सहयोग आकाशवाणी के लिए प्राप्त किया। वस्तुतः आकाशवाणी में हिन्दी से सम्बद्ध विभिन्न योजनाओं का मुख्य श्रेय इन्हें ही है। इन्होंने भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय में उप सचिव एवं संयुक्त सचिव के पदों का कार्यभार भी सफलतापूर्वक निभाया।

राष्ट्रभाषा-उन्नायक

सन् १९५४ में आई० सी० एस० से त्यागपत्र देकर राव साहब ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा का व्रत लिया, क्योंकि ये हिन्दी की सेवा राष्ट्र की सेवा मानते थे। हिन्दी की समृद्धि एवं राष्ट्रीय विकास को ये एक-दूसरे का पूरक मानते थे। इसीलिए सारे कष्टों तथा अभावों को सहते हुए इन्होंने राष्ट्रभाषा के उन्नयन के लिए कार्य किया। सन् १९६० में इनके सम्पादन में इलाहाबाद से 'कादंबिनी' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। सन् १९६१-६२ में ये इलाहाबाद महापालिका के मेयर चुने गये थे। इनके ही प्रयत्न से महाप्राण निराला की अर्थी सजाकर मोटर पर निकली थी और उस अंतिम यात्रा की शूटिंग भी हुई थी। इनके ही सम्पादन में सन् १९६३ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से 'माध्यम' मासिक पत्रिका निकली। यह केवल हिन्दी की ही पत्रिका नहीं थी, इसे राव साहब ने भारतीय भाषाओं की पत्रिका का रूप दिया था। इसका 'आन्ध्र विशेषांक' तो भारतीय पत्रिकाओं के इतिहास में निराला है। उन्होंने मासिक पत्रिकाओं के सम्पादकों के लिए एक प्रतिमान स्थापित किया। केन्द्रीय हिन्दी शिक्षा मंडल, आगरा, उत्तर प्रदेश ग्रंथ अकादमी, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग आदि संस्थाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए इन्होंने एक आदर्श स्थापित किया। ये बड़े जीवट के व्यक्ति थे।

काँटों भरा कुलपति-पद

आजकल कुछ लोग कहते हैं कि यदि किसी शिक्षा-शास्त्री को दंड देना हो तो उसे किसी विश्वविद्यालय का कुलपति बना देना चाहिए और यदि उसे तिल-तिल कर मारना हो तो उसे यू० पी० या बिहार के किसी विश्वविद्यालय का कुलपति बना देना चाहिए। विश्वविद्यालयों में नाना प्रकार के भ्रष्टाचार व्याप्त हैं, तो छात्रों की अनुशासन-हीनता की कोई सीमा नहीं। मैं इन बातों को नहीं मानता था, किन्तु पूज्यवर राव साहब के निधन से मेरा विचार बदल गया। सन् १९७० में वे गोरखपुर विश्वविद्यालय के कुलपति हुए। उस समय उन्होंने कहा कि मेरी आकांक्षा है कि मैं यह प्रमाणित करके दिखा दूँ कि प्रशासन सम्बन्धी समस्त कार्य हिन्दी में हो सकते हैं। हिन्दी का प्रयोग करके हम शिक्षा का उच्चतम स्तर प्राप्त कर सकते हैं। वर्तमान स्थिति में भारतीय व्यक्तित्व का सम्पूर्ण संभाव्य विकास, शिक्षा एवं सृजनात्मक चिंतन क्षेत्र की प्रगति स्वभाषा के माध्यम से ही संभव है। इस कार्य में ये रात-दिन लगे रहे, क्योंकि इनके लिए यह एक मिशन था। गोरखपुर विश्वविद्यालय की उन्नति एवं श्रीवृद्धि में ये इतने लीन हो गये कि सब को भूलने लगे, क्योंकि ये एक समर्पित व्यक्ति थे। जून ७० में मेरी पत्नी का देहान्त हो गया, जिससे मैं सदा व्यथित रहता। वह व्यथा अब तो जीवन-पर्यन्त की हो गयी। उन दिनों इनके कई सांत्वना के पत्र आये। इन सारी बातों से सम्बन्धित सन् १९७१ में इनका एक पत्र आया, जिससे इनकी मनःस्थिति पर प्रकाश पड़ता है, जो इस प्रकार है—

कुलपति भवन,
गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर
१४-२-७१

प्रिय भाई श्रीधर जी,

क्षमा करें आपके २० दिसम्बर के पत्र का उत्तर अब दे रहा हूँ। इस कार्य में दम लेने की फुरसत नहीं मिलती। इतना ही बहुत है कि दो महीने बाद एक निजी पत्र लिखने के लिए दो क्षण मिल गये।

आपकी अंतर्वेदना की कल्पना कर सकता हूँ। कोई कहे तो क्या कहे। आशा करता हूँ कि क्रमशः आप अपने को अधिकाधिक व्यवस्थित कर सकेंगे।

शुभैषी
बालकृष्ण राव

जब से ये आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति हुए तब से तो विश्वविद्यालय के कार्यों में इतने व्यस्त रहने लगे कि अपने प्रियों से जैसे कट से गये। साहित्य इनका जीवन था। उससे भी दूर होते गये। इस बीच इन्होंने साहित्य समारोहों में भाग तो लिया किन्तु शायद ही कुछ लिखा हो। अभी अप्रैल में ही मैंने इन्हें लिखा था कि आपके कुलपति होने से विश्वविद्यालयों का तो बड़ा कल्याण हुआ किन्तु साहित्य की बड़ी क्षति हुई; उसका साधक उससे दूर हो गया।

हार्दिक श्रद्धांजलि

जब मैंने पढ़ा कि केवल इकसठ वर्ष की अवस्था में ही इनकी मृत्यु हुई तब मेरी आत्मा से यों ही निकल पड़ा—राष्ट्र, राष्ट्र-भाषा एवं उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों के सुधार के लिए श्रद्धेय राव साहब शहीद हो गये। इनके जैसे स्वस्थ व्यक्ति का इस वय में मरना मैं एक चिन्तनीय स्थिति मानता हूँ। ये तो 'मर्द साठा, तब पाठा' कहावत को चरितार्थ करनेवाले थे, इनकी आभा अमित थी, किन्तु हुआ दूसरा ही। दिनकर ने 'कवि की मृत्यु' शीर्षक कविता में लिखा है—

नीचे की महफिल उजड़ गयी
कल से चमक उठेगी सभा सितारों की।

मैं अनुभव करता हूँ कि राव साहब स्वर्ग में भी राष्ट्र, राष्ट्रभाषा एवं विश्वविद्यालयों के उन्नति-कार्यों में लग गये होंगे। उस प्रबुद्ध साहित्यकार, कुशल प्रशासक एवं समर्पित शिक्षाशास्त्री को हम सबकी हार्दिक श्रद्धांजलि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रताडना

लेखक—स्वामी विवेकानन्द

(अनुवादक—श्री शिवचरण)

ओ ! अंग्रेजों का अन्धानुकरण करनेवालो !

.....इसे तुम लोग भी अच्छी तरह समझ लो, जो भीतर-बाहर से साहब बने बैठे हो तथा यह कहकर चिल्लाते घूमते हो कि हम लोग नर-पशु हैं, हे योरोपवासियो, हमारा उद्धार करो। और यह कहकर धूम मचाते हो कि ईशु आकर भारत में बैठे हैं। ओ बन्धु, यहाँ ईशु भी नहीं आये, जिहोवा भी नहीं आये और न आयेंगे ही। वे इस समय अपना घर सँभाल रहे हैं। हमारे देश में आने का उन्हें अवसर नहीं है।

इस देश में वही पुरातन उमापति शिवजी बैठे हैं, वही कालीमाई पूजित हैं और वंशीधारी वंशी बजाते हैं। यह पुरातन शिव नन्दी पर सवार होकर भारतवर्ष से एक ओर सुमात्रा, बोर्नियो, सेलीविस, आस्ट्रेलिया, अमेरिका के किनारे तक डमरू बजाते हुए एक समय घूमे थे, दूसरी ओर तिब्बत जापान, चीन, साईबेरिया पर्यन्त पुरातन शिव ने अपने नन्दी को चराया था, अब भी चराते हैं। यह वही महाकाली हैं जिनकी पूजा, चीन, जापान में भी होती है। जिन्हें ईशु की माँ मेरी समझकर ईसाई भी पूजा करते हैं।

यह जो हिमालय पहाड़ है इसके उत्तर में कैलास है। वहाँ पुरातन शिव का निवास-स्थान है। उस कैलास को दस सिर और बीस हाथवाला रावण भी नहीं हिला सका था। फिर उसे हिलाना क्या किसी पादरी के बस का काम है ? वे पुरातन शिव फिर डमरू बजायेंगे। महाकाली पशु बलि लेंगी और श्रीकृष्णजी फिर वंशी बजायेंगे। यही इस देश में हमेशा होगा।

वे हिमालय के समान अडिग हैं। कोई भी प्रयास—चाहे वह ईसाई पादरियों का हो या अन्य धर्मोपदेशकों का हो—उन्हें हिलाने में कभी समर्थ नहीं हो सकेगा। यदि तुम्हें अच्छा नहीं लगता तो हट जाओ। तुम दो-चार लोगों के लिए क्या सारे देश को अपना सर्वनाश करना होगा ? इतनी बड़ी दुनिया तुम्हारे सामने फैली पड़ी है। जहां कहीं अन्यत्र, तुम्हारे मनमाने विचरण के लिए पर्याप्त क्षेत्र उपलब्ध हो वहाँ जाकर क्यों नहीं अपने लिए स्थान खोजते हो ? ऐसा तो कर ही नहीं सकोगे। साहस कहाँ है ? इस बूढ़े शिव का अन्न खायेंगे। इसीसे विश्वासघात करेंगे और ईशु की जय मनायेंगे। धिक्कार है ऐसे लोगों को जो साहबों के सामने जाकर गिड़गिड़ाते हैं कि हम अति नीच हैं, हम बहुत क्षुद्र हैं; हमारा जो कुछ है सब खराब है। किन्तु इसके लिए मैं कहता हूँ कि हाँ, यह सब तुम्हारे बारे में सत्य हो सकता है, क्योंकि तुम सत्यवादी होने का दावा करते हो और हम तुम पर अविश्वास करें भी क्यों ? किन्तु तुम अपने 'हम' के भीतर सम्पूर्ण राष्ट्र को क्यों समेट लेते हो ? बताओ तो यह कहाँका शिष्टाचार है ?

आओ मनुष्य बनो

.....और तुम लोग क्या करते हो ? जीवन भर लम्बी-लम्बी डींगें हाँकना। ओ बकवादियो, तुम हो क्या ? आओ इन लोगों को देखो और जाकर लज्जा से अपना मुँह छिपा लो। ओ भ्रष्ट बुद्धिवालो, तुम्हारी तो देश के बाहर निकलते ही जाति चली जायगी। अपनी खोपड़ी पर सैकड़ों वर्षों के दृढ अन्धविश्वासों का कूड़ा-कर्कट लादे बैठे, सैकड़ों वर्षों से केवल आहार की शुद्धि-अशुद्धि के झगड़े में ही अपनी समस्त शक्ति नष्ट करनेवाले, सैकड़ों युगों के सामाजिक उत्पीडन से जिनकी सारी मानवता का कचूमर निकल चुका है, भला बताओ तो सही कि तुम कौन हो ? और तुम इस समय कर ही क्या रहे हो ?....मूर्खो, पुस्तकों को हाथ में लिये केवल समुद्र-तट पर विचरण कर योरोपीय पूर्वजों के मस्तिष्कों की अपचित जूठन को बिना समझे रहना, तीस रुपये की मुंशीगीरी के लिए अथवा बहुत हुआ तो वकील बनने के लिए जी-जान से तड़पना—यही तो तरुण भारत की सर्वोच्च महत्त्वाकांक्षा है। तिस पर प्रत्येक छात्र के झुंड के झुंड बच्चे भी पैदा हो जाते हैं, जो भूख से बिलबिलाते और उसके पैरों के चारों ओर चिपककर रोटी के लिए चिल्लाते हैं। क्या समुद्र में इतना भी पानी नहीं रहा कि उसमें तुम, तुम्हारी पुस्तकें, तुम्हारे गाउन, पैंट और तुम्हारी विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ आदि सब डूब सकें ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ भारत के उच्च वर्गोंवाले !

.....तुम आर्य पूर्वजों से अपने वंशानुक्रम का चाहे जितना ढोल पीटो, प्राचीन भारत का चाहे जितना गौरव गान करो, अपनी कुलीनता पर चाहे कितना गर्व करो, किन्तु ओ भारत के उच्च वर्गवालो, क्या तुम समझते हो कि तुम जीवित हो ? तुम अब दस सहस्र पुरानी ममी' (सुरक्षित शव) मात्र रह गये हो। भारत में अब भी जीवन का जो थोड़ा बहुत लक्षण शेष है वह उनमें है जिन्हें तुम्हारे पूर्वजों ने 'चलती-फिरती लाशें' कहकर पुकारा था। वास्तव में तुम्हीं 'चलते-फिरते शव' हो। तुम्हारे ये ढाँचे सब इतने निर्जीव और पुराने हो चुके हैं कि इनको अजायबघरों में रखा जायगा, जिनको आनेवाली पीढ़ी देखेगी। तुम्हारे रीति-रिवाजों, रहन-सहन को देखकर कोई भी प्रत्यक्षदर्शी यह सोचने के लिए विवश हो जाता है कि मानों वह बूढ़ी दादी की कहानी सुन रहा हो। और जब कोई तुमसे व्यक्तिगत भेंट करके घर वापिस लौटता है तब उसके मन में विचार उठता है कि मानों किसी चित्र-संग्रहालय में रखे पुराने चित्रों को देखकर वापस चला आ रहा हो। इस माया के नाशवान जगत् में, ऐ भारत के उच्च वर्गवालो, तुम ही वास्तविक माया और रहस्य हो, मरुस्थल की मरीचिका हो। तुम भूतकाल हो, उसकी समस्त विविधताओं की खिड़की का प्रतिनिधित्व करते हो। अब वर्तमान काल में जो कुछ तुम्हारा अस्तित्व दीख रहा है वह अजीर्ण के कारण उत्पन्न निशाचरण के अतिरिक्त कुछ नहीं है। तुम भविष्यत् के शून्य अस्थि-मांस से रहित निरस्तित्व मात्र हो। ओ स्वप्न-लोक के जन्तुओ, तुम और अधिक जीवित ही क्यों हो ? तुम अतीत भारत के मांस-रहित, रक्त-रहित कंकाल मात्र हो। क्यों नहीं तुम स्वयं को राख बनाकर हवा में विलीन हो जाते ? ओह ! तुम्हारी अस्थिवत् उँगलियों पर अभी भी अमूल्य हीरों की अँगूठियाँ हैं, और तुम्हारे दुर्गन्धयुक्त शव के अन्तर में तुम्हारे पूर्वजों द्वारा संचित विशाल खजाने पड़े हैं। अब तक तुम्हें सौंपने का अवसर नहीं मिल सका होगा। अब शीघ्र ही तुम अपनी इस सम्पत्ति को अपने उत्तराधिकारियों को सौंप दो। अरे ! जितना शीघ्र हो सके तुम स्वयं को शून्य में विलीन कर दो, अन्तर्धान हो जाओ और अपनी जगह नवीन भारत को उठने दो—हल की मुठिया पकड़े किसानों के झोपड़ों से, मछुओं-मोचियों और भंगियों के झोपड़ों से, कारखाने में काम करनेवाले और खानों में कोयला, पत्थर खोदनेवाले मजदूरों से उसे वनों, उपवनों और पर्वतों से निकलने दो। इन गरीब लोगों ने सहस्रों वर्षों तक शोषण झेला है, बिना चूँ-चपड़ किये तुम्हारे अत्याचारों को सहा है। और परिणाम-स्वरूप इनमें अद्भुत सहन शक्ति आ गयी है। सहस्रों वर्षों से इन्होंने अनन्त विपदाओं को सहा है। इसने इन्हें अटूट जीवन शक्ति प्रदान की है। मुट्ठी भर अनाज पर जीवित रहकर ये समस्त संसार को उलट सकते हैं। इन्हें रोटी का केवल आधा टुकड़ा मिल जाने दो, फिर समस्त संसार भी इनकी कर्म शक्ति को नहीं रोक सकेगा। इसके अतिरिक्त इनमें शुद्ध और नैतिक जीवन से उत्पन्न वह अद्भुत बल है जो संसार में अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता। यह शान्तचित्तता, यह सन्तोष, यह स्नेह, यह मौन, यह अनवरत कर्मशक्ति और संकट की घड़ी में सिंह-साहस का परिचय, तुम और कहाँ पा सकोगे ? ओ अतीत के कंकालो, ये हैं तुम्हारे सामने तुम्हारे भावी उत्तराधिकारी। यह है आने वाला भारत। इन खजानों को, इन अमूल्य रत्नजटित अँगूठियों को जितनी शीघ्र हो सके उनके सामने फेंक दो और हवा में विलीन हो जाओ। फिर कभी दिखायी न देना। केवल अपने कान खुले रखो। तुम अन्तर्धान हुए नहीं कि तुम अपने कानों से पुनर्जाग्रत भारत के जन्म की घोषणा सुनोगे, जो लक्षावधि मेघ गर्जनाओं के समान सम्पूर्ण विश्व में प्रतिध्वनि कर उठेगी। यह प्राचीन मातृभूमि एक बार पुनः जागकर अपने सिंहासन पर विराजमान है—पहले से कहीं अधिक गौरव और वैभव से प्रदीप्त। शान्त और मंगलमय स्वर में उसकी पुनर्प्रतिष्ठा की घोषणा समस्त विश्व में करो। जय माँ !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण-पूर्व एशिया में संस्कृत

लेखक—डा० रमेशचन्द्र मजूमदार
अनुवादक—श्री बाबूराम वर्मा

इस अभिपत्र में मैं दक्षिण-पूर्व एशिया, विशेष रूप से इन्दोचीन और इन्दोनीसिया, में संस्कृत अध्ययनों का संक्षिप्त ब्योरा देना चाहता हूँ। इस बात का प्रचुर निश्चित साक्ष्य विद्यमान है कि इन्दोचीन, मलय प्रायद्वीप, थाईदेश (पूर्व नाम स्याम), कम्बुज, लाओस और चम्पा, जिसे अब वियत-नाम कहते हैं तथा इन्दोनीसिया के जावा, सुमात्रा, बाली और बोर्नियो में संस्कृत का गम्भीरता से अध्ययन किया जाता था तथा इन्दोनीसिया के अन्य द्वीपों में भी संस्कृत-ज्ञान बहुत विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ था।

इस साक्ष्य का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है—(१) मौलिक संस्कृत ग्रन्थ, (२) संस्कृत अभिलेख, (३) स्थानीय विभाषाओं में रचित साहित्यिक ग्रन्थ और अभिलेख जिनसे संस्कृत साहित्य की विभिन्न शाखाओं से गहरा परिचय दिखायी पड़ता है, (४) स्थानीय विभाषाओं में संस्कृत महाकाव्यों तथा अन्य श्रेणियों के संस्कृत ग्रन्थों द्वारा प्रदत्त विषयों पर आधारित संस्कृत ग्रन्थ और (५) विभिन्न स्थानीय विभाषाओं में लिखे गये ग्रन्थों और अभिलेखों में पाये जानेवाले संस्कृत से लिये गये शब्द।

अब मैं इन्दोचीन और इन्दोनीसिया के विषय के इन विभिन्न श्रेणियों में आनेवाले साक्ष्य का अलग-अलग विवेचन प्रस्तुत करता हूँ।

१—मौलिक संस्कृत ग्रन्थ

चम्पा के राजा जय हरिवर्म्मन के १०७९ शाके के माइसन स्टीली अभिलेख में **पुराणार्थ** नामक ग्रन्थ का नाम आया है। इसमें कहा गया है कि राजा शिवानन्दन और उरोज की एकता **पुराणार्थ** द्वारा पुष्ट है जिसे "इस संसार में उपयोगी जानकारी की खान (शब्दशः पर्वत)" माना जाता है। इन्द्रवर्म्मन द्वितीय के ७९७ शाके के डाँग डुओंग स्टीली अभिलेख में वर्णन किया गया है कि उरोज को सम्भवतः चम्पा का प्रथम राजा बनाकर स्वयं शिव ने किसी प्रकार धरती पर भेजा था। स्पष्ट है कि **पुराणार्थ** चम्पा में लिखा गया पुराणशैली का ग्रन्थ था।

इसी प्रकार, इन्दोचीन के, विशेषकर कम्बोदिया के अभिलेखों से हमें ज्ञात है कि इस क्षेत्र में भी संस्कृत ग्रन्थ काफी संख्या में थे। विख्यात ग्रन्थों के अतिरिक्त, जिनका उल्लेख बाद में किया जायगा, विद्वान् अंशतः भिन्न नामवाले कुछ ग्रन्थों की पहचान करने में सफल हुए हैं। उदाहरणार्थ, कम्बोदिया के कुछ अभिलेखों में शैवसन्दर्भों में **परमेश्वर** का उल्लेख है। इसकी पहचान **परमेश्वरागम** से की गयी है, जिसे लिंगायत अपने आधारभूत ग्रन्थों में मानते हैं, जिस पर उस सम्प्रदाय का संस्थापक, बारहवीं शताब्दी का वासव निर्भर करता था। इस ग्रन्थ की रचना कदाचित् आठवीं शताब्दी में हुई।

विनाशिख, नयोत्तर, संमोह और **शिरश्छेद** नामक चार शास्त्रों का उल्लेख देवराज मत के आधार के रूप में एक लम्बे अभिलेख में किया गया है, जिसकी स्थापना जयवर्म्मन के शासन-काल में हुई और जिसने कम्बुज में, उसके विदेशियों के काफी लम्बी अवधि तक अधीन रहने के उपरान्त स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की थी। जयवर्मन ने अभिचार कर्म में कुशल, हिरण्यदाम नाम ब्राह्मण को तान्त्रिक अनुष्ठान के लिए आमन्त्रित किया, जिससे कम्बुज देश आगे जावा का पराधीन न बने और इसका शासक सर्वप्रभुता सम्पन्न रहे। इस ब्राह्मण ने तान्त्रिक अनुष्ठान सम्पन्न किया और देवराज मत चलाया, जो कम से कम २५० वर्षों तक राज्य-धर्म बना रहा, जिसका वर्णन अच्छी संस्कृत में रचे हुए १३० पंक्तियों के अभिलेख में किया गया है। ऊपर बताये ग्रन्थों की, जो इस मत का आधार थे, पहचान डा० प्रबोधचन्द्र बागची ने की है। उनके अनुसार **नयोत्तर** सम्भवतः **नय** और **उत्तर** सूत्र के थे, जो **निश्वासतत्त्व संहिता** के अंश थे, जो आठवीं शती की पांडुलिपि के रूप में उपलब्ध हैं, और जिसकी रचना सम्भवतः छठी-सातवीं ईस्वी में हुई थी। **शिरश्छेद** की सबसे अधिक सम्भावना मूल **जयद्रथयामल** ही होने की है तथा **विनाशिख** इसीका परिशिष्ट प्रतीत होता है। मूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्योह, जिस पर उसी नाम के बाद के तन्त्र रचे गये, अभी ढूंढा जाना बाकी है। ये सभी ग्रन्थ मुखर शैव तान्त्रिक ग्रंथ के हैं।

२—संस्कृत अभिलेख

इन्दोचीन में उच्च स्तर की संस्कृत-विद्वत्ता का सर्वोत्तम साक्ष्य वहाँ पर प्राप्त बहुसंख्यक संस्कृत अभिलेखों से मिलता है, जो काल के प्रहार सहकर अब तक बचे हुए हैं।

१—शैव और वैष्णव प्रतिमाओं के सहित चौथी शताब्दी का एक संस्कृत अभिलेख स्याम में पेचबुरी के निकट मुंग सी टेप में मिला है।

२—चौथी अथवा पाँचवीं शताब्दी के बहुत से अभिलेख मलय प्रायद्वीप के विभिन्न भागों से प्राप्त हुए हैं। उनमें से विशेष उल्लेख्य हैं। उनमें एक में मिट्टी की पट्टिका पर बुद्ध संस्कृत के तीन श्लोक हैं जो सम्भवतः महायान के तांत्रिक सम्प्रदाय के सूत्र के अंश हैं। दूसरे का सम्बन्ध चन्द्रकेतुगढ़ मृत्तिका (बंगाल में मुर्शिदाबाद से दक्षिण-पश्चिम ६ मील दूर) के महानाविक बुद्धगुप्त से है।

३—एक अत्यधिक रोचक अभिलेख लाओस (लाव) में मिला है, जिसमें इस क्षेत्र में स्थापित किये गये पवित्र लिंग, कुरुक्षेत्र की पावनता पद्य में वर्णित है।

४—वियतनाम नामवाले क्षेत्र में, जिसे प्राचीन काल में चम्पा कहा जाता था, लगभग १२५ संस्कृत अभिलेख मिले हैं जिनमें सबसे प्राचीन, वो चन्ह का, लगभग तीसरी शताब्दी ईस्वी का है।

५—इस समय कम्बोदिया कहे जानेवाले भाग में, जिसे हिन्दू कम्बुज देश के नाम से जानते थे, सबसे अधिक संख्या में अभिलेख मिले हैं। १९५३ में मैंने उस समय तक मिले लगभग २०० संस्कृत अभिलेख प्रकाशित किये थे। तब से बहुत से और अभिलेख मिले हैं। फ्रांसीसी विद्वान् ने ये सभी प्रकाशित किये हैं।

दक्षिण-पूर्व एशिया में संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य के प्रचार का सर्वोत्तम साक्ष्य कम्बुज के अभिलेखों में मिलने के कारण मैं उनका कुछ विस्तृत विवरण उपस्थित करना चाहूँगा।

अब तक मिले अभिलेखों में प्राचीनतम अभिलेख भवर्मन की (जिसने लगभग ४७५ से ५१४ ईस्वी तक शासन किया) अग्र-महिषी कुल प्रभावती का जारी किया हुआ है। इसमें पाँच संस्कृत पद्य हैं जिनमें चार शार्दूल-विक्रीडित छंद में हैं। महिषी का वर्णन यह है—

शक्रस्येव शची नृपस्य दयिता स्वाहेव सप्तार्चिषह,
रुद्राणीव हरस्य लोकविदिता सा श्रीरिव श्रीपतेः।

इस पवित्र स्थापना का लक्ष्य यों वर्णित है—

ज्ञात्वा भोगम-अनित्य बुद्बुदसमां स.....
आरामं स-तटाकं-आलय युतम.. .....

इन पद्यों का पढ़नेवाला जरूर निश्चिन्त हो जायगा कि इनका रचयिता कोई नौसिखिया नहीं है तथा इस प्रदेश में संस्कृत का पठन-पाठन जरूर शताब्दियों पूर्व आरम्भ हो चुका था। कम्बुज में सबसे बाद का संस्कृत अभिलेख उस नरेश ने जारी किया जिसका राज्यारोहण १३२७ ई० में हुआ। अतः यह निष्कर्ष निरापद होगा कि कम्बुज में संस्कृत अध्ययन का इतिहास लगभग १००० वर्ष तक रहा। यह भी अनुमान किया जा सकता है कि इस समय ज्ञात लगभग २०० अभिलेख कुल संख्या के अल्पांश ही हैं, क्योंकि बहुत से अभिलेख इस दीर्घ अवधि में नष्ट हो गये होंगे।

मोटे तौर से कहा जाय तो कम्बुज अभिलेख सुन्दर, प्रायः दोषरहित काव्य शैली में रचे गये हैं और कुछ बहुत लम्बे हैं। नृप यशोवर्म्मन के चार अभिलेख क्रमशः ५०, ७५, ९३ और १०८ पद्यों के हैं तथा २० से अधिक पद्यों वाले तो कितने ही हैं। राजेन्द्रवर्म्मन के एक अभिलेख में २१८ तथा दूसरे में २९८ पद्य हैं और इनमें प्रत्येक अभिलेख को, मेघदूत से काफी बड़ा, लघुकाव्य माना जा सकता है तथा बादवाला आकार में उसके दुगुने से अधिक और गीतगोविन्द से भी बड़ा है।

इन पद्यों में लगभग सभी संस्कृत छन्द सफलतापूर्वक प्रयुक्त हुए हैं और वे संस्कृत साहित्यशास्त्र और छन्दःशास्त्र के अतिविकसित नियमों और परम्पराओं से पूर्ण परिचय प्रकट करते हैं।

इन अभिलेखों में देखी गयी साहित्य शैली की निम्नलिखित विशिष्टताओं की ओर ध्यान दिलाया जा सकता है।

१—**श्लेष**—इसका उदाहरण हान चेर मन्दिर अभिलेख के तीन पद्यों में उपलब्ध है। दवीं पंक्ति में कर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ हाथ और सूर्यकिरण है। इसी प्रकार निम्नांकित दो पंक्तियों में कला और राग शब्दों का ऐसा ही प्रयोग है—

अवाप्य षोडशकला शशांको याति पूर्णताम्।
असंख्यापि यो लब्ध्वा न पर्याप्त कदाचन ॥१५॥
रागान् दधति भूपानाश्चूडा रत्न-मरीचयः।
यस्य पाद-नखेष्वमनागसि न चेतसि ॥१८॥

२—अनुप्रास अर्थात् एक ही या उसी पंक्ति में एक से वर्ण या शब्द की बारम्बार आवृत्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं। नीचे इसके अच्छे उदाहरण दिये गये हैं :—

क—धर्मप्रिया धर्म इमं रक्षताधर्मरक्षसात्।
ख—स्मरारिदेव्या विजितं स्मरस्य विकृष्टचापस्य शरैस सहांगे।
भस्मीकृते या स्वकृते रुषेव स्मराभिधेयं कुरुते स्मराम्।
ग—भूपेन्द्रो भूपतिभूमि भूषणो भूरिभानुयाः।
घ—गुणैर अगणितैर गौरैर अपि गौरीगुरुंगिरिम्
यो गौरवन नु गमयेद गणना कान्यसद्गुणे ॥

३—भारतीय अभिलेखों में पाये जानेवाले रूढ वचन—

क—आसीद आसिन्धुभूपाल मौलीलालित शासनः
ख—द्विषदविध्वंसिनो यस्य याने वलविमरद्दजं राजो
जित्वार्ककतेजांसि

४—समास-प्रणाली

क—श्री भरत्ताशंखचक्रासिशरवसुमति शक्ति चापांकपाणिर
ख—वन्यद्विपेन्द्रा हतसिन्धुरस्थवीरेन्द्रचंपाधिपराजसिंहः

सुदेश ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि निरन्तर समास प्रणाली, अत्युक्ति और अनुप्रास का व्यवहार संस्कृत साहित्यशास्त्रियों के अनुसार गौड देश (बंगाल) में प्रचलित गौडी रीति में किया जाता है और उनका विचार है कि राजा ईशानवर्म्मन द्वितीय का शक संवत् ८३२ का वटथिपेडी अभिलेख, जिसमें ये सभी विशेषताएँ हैं, सम्भवतः गौड देश में शिक्षित व्यक्ति की रचना है। यदि यह स्वीकार किया जाय तो यह भारत और इन्दोचीन में बहुत निकट तथा सतत सम्पर्क सिद्ध करेगा। पूर्वी भारत में प्रचलित चौखूंट शीर्ष या तथाकथित नागरी लिपि के साथ कम्बुज में भारत की पूर्वकालीन ब्राह्मी लिपि से विकसित किये गये तत्कालीन अभिलेखों में प्रयुक्त स्थानीय लिपि रूपों की सुदेश के मत से तुलना से भी यही बात सिद्ध होती है।

स्वयं अभिलेखों से भी इन्दोचीन में संस्कृत अध्ययन और उसके ज्ञान का सर्वोत्तम और प्रत्यक्ष साक्ष्य मिलता है। उनसे कुछ परोक्ष साक्ष्य भी उपलब्ध होता है जिसका निम्न श्रेणियों में संक्षेप उल्लेख किया जा सकता है।

कम्बुज के अभिलेखों में बारम्बार वाङ्मय की विभिन्न शाखाओं में प्रवीण राजाओं, अधिकारियों तथा व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। इनके अंतर्गत सम्मिलित हैं—(१) चार वेदों का सामान्यतः और ऋक्, यजु, साम और अथर्व वेदों का, जिन्हें कभी-कभी मंत्र कहा गया है, विशिष्टतः ब्राह्मण और तैत्तिरीय सूत्र, (२) षड् वेदांग, (३) छह दर्शन सामान्यतः तथा योग, वैशेषिक, न्याय, सांख्य और वेदान्त नामतः, (४) व्याकरण तथा पाणिनि और पतंजलि विशेष रूप से उल्लिखित, (५) धर्मशास्त्र, विशेषकर मनु और याज्ञवल्क्य, (६) अर्थशास्त्र, (७) ज्योतिष, (८) फलित ज्योतिष (होरा शास्त्र), (९) धनुर्वेद, (१०) गन्धर्व वेद (संगीत), (११) बौद्ध, पाशुपत और पांचरात्र सम्प्रदाय का धार्मिक साहित्य और शैव तन्त्र।

व्याकरण के अंतर्गत प्रकृति, प्रत्यय, आदेश, गुण, वृद्धि और आगम की ओर संकेत मिलते हैं। श्रीनिवास कवि ने दो राजाओं की सेवा की थी। उसके बारे में कहा गया है कि यह 'ब्राह्मण अपने देश के वेदज्ञों का शिरमौर था', 'वेदोच्चार उत्साही' और 'चतुर्वेदज्ञाता' था। यह कहना कठिन है कि यह ब्राह्मण स्थानीय था अथवा भारत से नया आव्रजित।

८८३ शाके के प्रि रूप में इस्टील पर उत्कीर्ण २१ पंक्तियों के सबसे लम्बे संस्कृत अभिलेख में ये छन्द उपयोग किये गये हैं : श्लोक, वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उप जाति, वसंततिलका, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा और आर्या। महाकाव्य और पुराणों की गाथाओं और पुराकथाओं के अतिरिक्त इसकी पंक्ति संख्या ६४,२० और ८३ में क्रमशः अथर्ववेद, रामायण व महाभारत की ओर संकेत किया गया है तथा पाणिनि का तो छह बार उल्लेख किया गया है। इसकी चार पंक्तियाँ (१६४, १९ २११ और २९०) रघुवंश की चार पंक्तियों की दूरस्थ ध्वनि प्रतीत होती हैं जिनमें कहीं-कहीं कालिदास के शब्दों को ही रख दिया गया है; पंक्ति २२१ में मनोहर नामक नये काव्य का तथा पंक्ति २७५ में योगाचार सम्प्रदाय का उल्लेख है। अन्य अभिलेखों में प्रवरसेन और मयूर की सेतुबन्ध और सूर्याष्टक का कर्त्ता कहा गया है तथा गुणाढ्य को प्राकृत का कवि बताया है और कथासरित्सागर में उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारे में दी गयी कथा की ओर संकेत है। कामसूत्र के रचयिता के रूप में वात्सायन तथा नीति का ग्रन्थ रचना करनेवाले के रूप में विशालाक्ष का भी उल्लेख है। सुश्रुत के आयुर्वेद ग्रन्थ का उल्लेख आया है। राजा यशोवर्म्मन के ८१७ शाके के नोम सन्दक अभिलेख की निम्नलिखित पंक्तियों में पाणिनि की ओर संकेत है—

सद्धर्म निरतेर यस्य पदं राज्येन् चक्रिरे।
उपसर्गाः क्रिया योगे ते प्राग् धातोर्म्मुनेर इव ॥

यशोवर्म्मन के प्रसत कोमनप अभिलेख की ये पंक्तियाँ स्मृति से उद्धृत हैं :—

आचार्यवद गृहस्थोपि माननीयो बहुश्रुतः।
अभ्यागतगुणानाञ्चपरा विद्येति मानवाम् ॥
वित्तं बन्धुर्वयः कर्म्म विद्याभवति पंचमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥

राजा यशोवर्म्मन के लोले अभिलेख की नीचे उद्धृत पंक्तियों में याज्ञवल्क्य (योगीश्वर) का प्रधान स्रोत मनु-संहिता होने की ओर चतुर उल्लेख है—

प्रजानुशासनो धर्मर योगीश्वरप्रायणम्।
राजन्यवन्द्यचरणो यो, भून्मनुरिवापरः ॥

यशोवर्म्मन के पूर्वी बारे अभिलेख में कवि भारवि और सम्भवतः वस (बन्धु) (पंक्ति ३१) का उल्लेख है। पंक्ति [illegible] में, ऊपर बताये गुणाढ्य और विशालाक्ष के अतिरिक्त [illegible] का उल्लेख है जो अपने प्रतिद्वन्द्वी भीमक पर विजयी [illegible] और कल्याण नामक पूर्व के रचयिताओं में एक के रूप [illegible] भी कदाचित् जिन का उल्लेख है। यदि बार्थ के प्रमाण पर [illegible] प्रस्थापना स्वीकार कर ली जाय तो भारत से बाहर [illegible] मत होने का यही एक मात्र उल्लेख रहेगा।

चतुर्दश प्रकार विद्या का उल्लेख प्रि रूप अभिलेख (पंक्ति १३५) में है और सम्भवतः इसका आशय चार वेद, छह वेदांग, पुराण, मीमांसा, न्याय और धर्म से है।

दोनों महाकाव्य इन्दोचीन में बहुत लोकप्रिय थे और [illegible] के साहित्य, कला तथा संस्कृति के अन्य पक्षों पर, [illegible] में सामाजिक गुण और नैतिक विचार भी सम्मिलित [illegible] इन्होंने बहुत अधिक प्रभाव डाला है। छठी शताब्दी के [illegible] काण्टेल (कम्बोदिया) अभिलेख में कहा गया है कि [illegible] ब्राह्मण सामवेद ज्ञाताओं में अग्रणी है जिसकी पत्नी, राजा भववर्म्मन की बहिन ने, जो दूसरी अरुन्धती है, त्रिभुवनेश्वर मंदिर बनवाया। उसने मन्दिर को रामायण, पुराण और सम्पूर्ण महाभारत की एक प्रति प्रदान की और उनके नित्य प्रति पाठ की व्यवस्था की। सातवीं शताब्दी ई० के मध्य के अन्य अभिलेख प्रसत प्राह थाट (कम्बोदिया) में कहा गया है कि भवज्ञान ने महाभारत के आदिपर्व के सम्भव अध्याय की पांडुलिपि मन्दिर में रखायी। महा-काव्यों की लोकप्रियता का पता उनमें आयी घटनाओं के अभिलेखों में बारम्बार प्रचुर उल्लेख किये जाने और अङ्कोरवाट एवं अन्य मन्दिरों के बहुसंख्य मूर्तिशिल्प चित्रणों से भी चलता है। किन्तु इन्दोचीन में रामायण को प्राप्त अत्यधिक आदर का सर्वोत्तम साक्ष्य राजा प्रकाश धर्म (६५३-८७) के त्रा किइयु अभिलेख में मिलता है। इसमें वाल्मीकि के सम्मान में मन्दिर बनाने का आलेख है। उन्हें विष्णु का अवतार कहा गया है।

ये अभिलेख राजाओं और मन्त्रियों के गुणों की ओर संकेत करके इन्दोचीन में संस्कृत के प्रसार का उल्लेखनीय साक्ष्य भी प्रस्तुत करते हैं। इनमें बताया गया है कि महा-विजेता और शक्तिशाली सम्राट् यशोवर्म्मन (८८९-९०० ई०) ने स्वयं पतंजलि के महाभाष्य की टीका लिखी तथा उसका एक मंत्री होरा शास्त्र में पारंगत था। चंपा (वियेत-नाम) के अभिलेखों में अनेक विद्वान् राजाओं के उल्लेख हैं। राजा भद्रवर्म्मन को, जिसका शासनकाल पाँचवीं शताब्दी ई० का आरम्भिक समय है, चारों वेदों में पारंगत बताया गया है। जय इन्द्रवर्म्मन प्रथम (९६०-९७२ ई०) को सुज्ञात छहों दर्शन, बौद्ध दर्शन, काशिका वृत्ति सहित पाणिनि व्याकरण, आख्यान और शैवों के उतरकल्प का विद्वान् बताया गया है। राजा श्री जयइन्द्रवर्म्मन चतुर्थ (११६८-११८० ई०) व्याकरण, होरा शास्त्र, महायान दर्शन और धर्मशास्त्र—विशेषकर नारदीय और भार्गवीय धर्म शास्त्र—में निष्णात था। साहित्यिक सक्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि ६०५ ई० में जब एक चीनी जनरल ने चम्पा पर आक्रमण करके राजधानी का ध्वंस किया तब वह अपने साथ १३५० बौद्ध ग्रंथ ले गया।

अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है कि राजकुमारों की आरम्भिक शिक्षा विख्यात धर्माचार्यों के यहाँ होती थी और ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ राजकुमार और राजपरिवार के व्यक्ति स्वयं पुरोहित और आचार्य बने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्दोचीन में संस्कृत-विद्वत्ता के उच्चस्तर के बने रहने का प्रधान कारण भारत और इन्दोचीन के विद्वानों के बीच नियमित सम्पर्क था। यह बात भारत से इन्दोचीन में उच्च अधिकारियों के आने अथवा वहाँ जाने के यदाकदा उपलब्ध उल्लेखों से सूचित होती है। चीनी आलेखों से हमें पता है कि कम्बोदिया के राजा ने २४०–२४५ ई० के बीच अपना दूत भारत भेजा जो एक वर्ष की यात्रा के बाद गंगा के मुहाने पर पहुँचा। गंगाराज नामक चंपा का एक राजा गद्दी त्यागकर अंतिम जीवन गंगातट पर बिताने भारत चला गया। कम्बोदिया के अभिलेखों में आर्यदेश से अनेक विद्वान् ब्राह्मणों के इन्दोचीन में आकर बसने के उल्लेख हैं जिनमें कुछ का विवाह राजकुमारियों से हुआ। इनमें एक ब्राह्मण दिवाकर भट्ट को कालिन्दी तट पर जनमा हुआ बताया गया है जो कृष्ण की बाल्यक्रीडाओं से पुनीत हुई है। किन्तु इस तरह का सर्वोत्तम उदाहरण एक राजा के पौत्र, दूसरे राजा के मामा तथा तीसरे राजा, इन्द्रवर्म्मन के गुरु शिवसोम का है। प्रसत कन्दल डोम से मिले इस राजा (इन्द्रवर्म्मन) के अभिलेख में शिवसोम के विषय में निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं :—

येनाधीतानि शास्त्राणि भगवच्छंकराह्वयात्।
निश्शेषसूरिमूर्द्धालिमालालीढांघ्र हृपंकजात्॥

इसका अर्थ है शिवसोम ने शास्त्रों का अध्ययन भगवत् शंकर से किया, जिनके चरण-कमल का स्पर्श सब मुनियों के सिर करते हैं। फ्रांसीसी विद्वान् सुदेश ने, जिसने यह अभिलेख संपादित किया है, ठीक ही अनुमान किया है कि इसका सन्दर्भ निस्सन्देह भारत के प्रसिद्ध शंकराचार्य से है तथा भगवत् पद से इस अनुमान की पुष्टि होती है।

भारतीय दृष्टि से इस अभिलेख का वास्तविक महत्त्व उनकी समझ में नहीं आया। क्योंकि, जैसा मैंने चालीस वर्ष पूर्व दिखाया था, शंकराचार्य की तिथि का जहाँ तक हमें ज्ञात है, एक मात्र प्रामाणिक साक्ष्य इसी अभिलेख से मिला है। इन्द्रवर्म्मन ने ८७७ से ८८९ तक शासन किया, उसके गुरु शिवसोम का शंकराचार्य से मिलना नवीं शताब्दी के लगभग मध्य में माना जा सकता है। यह भी कम अचरज की बात नहीं है कि जिन शंकराचार्य की तिथि काफी लम्बे समय से विवाद का विषय चली आ रही थी, उनकी तिथि संबंधी एक मात्र प्रामाणिक साक्ष्य, भारत से हजारों मील दूर उत्कीर्ण संस्कृत अभिलेख में मिला। यद्यपि भारत और इन्दोचीन के विद्वानों के बीच ऐसे सम्पर्कों के उदाहरण कम ही हैं, फिर भी अकेला यही उदाहरण इन्दोचीनवासियों द्वारा भारत की साहित्यिक, धार्मिक और आध्यात्मिक संस्कृति अपनाये जाने की विशदता को सन्तोषजनक ढंग से स्पष्ट कर देता है।

इन्दोनीसिया में संस्कृत अध्ययन

इन्दोनीसिया के उच्च वर्ग में संस्कृत का अध्ययन कदाचित् उतना ही गहन और लोकप्रिय था जितना इन्दोचीन में, किन्तु साहित्य का वाहन बनने के लिए यहाँ की स्थानीय भाषाएँ इन्दोचीन की अपेक्षा बहुत पहले से और काफी सीमा तक यथेष्ट विकसित हो चुकी थीं। परिणामस्वरूप यद्यपि दोनों प्रदेशों में संस्कृत राजभाषा रही, और प्रारम्भ में राज-आलेखों में व्यवहार की गयी, तथापि इन्दोनीसिया में मिले संस्कृत अभिलेखों की संख्या बहुत कम है और काफी पहले से इसका स्थान स्थानीय विभाषाओं ने ग्रहण कर लिया है। किन्तु संस्कृत का प्रभाव चलता रहा—यह संस्कृत से ग्रहण किये गये शब्दों, साहित्य शास्त्र, छन्दःशास्त्र और मात्र संस्कृत विषयों के विस्तृत व्यवहार से भली भाँति स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रक्रिया से विस्तृत भारत-जावी साहित्य की अभिवृद्धि हुई जिसका समकक्ष साहित्य इन्दोचीन में नहीं है। अतः हम इन्दोनीसिया के संस्कृत अध्ययन पर निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विचार करेंगे :—

(१) संस्कृत अभिलेख, (२) जावी अनुवाद के सहित या उससे रहित संस्कृत ग्रंथ और (३) भारत-जावी या प्राचीन जावी साहित्य।

१—**संस्कृत अभिलेख**—इन्दोनीसिया के विभिन्न द्वीपों में संस्कृत के निम्नलिखित अभिलेख मिले हैं :—

क—लगभग ४०० ई० के सात संस्कृत अभिलेख महाकाम नदी पर कोटेई जिले में बोर्नियो के महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह मुआरा कमन में मिले हैं, जो आजकल शिर काटने वालों के लिए बदनाम हैं। ये अभिलेख पत्थर के सात बलियूपों पर खोदे हुए हैं, जिसमें वप्रकेश्वर में यज्ञ कार्य करने तथा ब्राह्मणों को दान दिये जाने का आलेख है। इतने पुराने ब्राह्मण यज्ञ-याग के पुरालिपि में अंकित प्रमाण भारत में भी बहुत कम मिले हैं। बलि का नाम इस श्लोक में दिया गया है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री मूलवर्म्मा राजेन्द्रो यष्ट्वा बहुसुवर्णकम् ।
तस्य यज्ञस्ययूपोयम् द्विजेन्द्रस् सप्रकल्पितः ।।

यह अभिलेख निसंदिग्ध रूप से सिद्ध करता है कि पाँचवीं शताब्दी से, पूर्व संभवतः बहुत पूर्व, इस दूरस्थ बोर्नियो द्वीप में संस्कृत का अध्ययन किया जाता था तथा संस्कृत साहित्य में पारंगत बहुत से ब्राह्मण यहाँ बसे हुए थे। सभी अभिलेख संस्कृत पद्य में रचित हैं, प्रयुक्त छन्द आर्या और अनुष्टुप हैं तथा भाषा पर्याप्त शुद्ध है। पद्य सुरूप भारतीय, संभवतः दक्षिण भारत मूल की, लिपि में लिखे हैं तथा पंक्तियों की पत्थर पर व्यवस्था इस प्रकार की गयी है कि प्रत्येक चरण एक पंक्ति में आ जाय, भारतीय अभिलेखों की तरह नहीं जिनमें पंक्तियाँ पद्यों को विचारे बिना लिख दी जाती हैं।

ख—तिथिक्रम के विचार से इसके बाद चार चट्टान अभिलेख आते हैं, जो सभी पश्चिमी जावा के बटाविया जिले में हैं। उसी क्षेत्र में पाँचवाँ अभिलेख होने की सूचना है परन्तु यह अभी तक पढ़ा नहीं गया।

इनमें तीन अभिलेख राजा पूर्णवर्म्मन के हैं और चौथा भी सम्भवतः उसीका है। सभी संस्कृत पद्य में लिखित हैं तथा दो पर उनके पास पदचिह्न उत्कीर्ण हैं। इनमें एक में उसका वर्णन इस प्रकार है—

विक्रान्तस्यावनिपतेः श्रीमतः पूर्णवर्म्मनः
तारुमनगरेन्द्रस्य विष्णोरिव पदद्वयम् ।।

जावा के अन्य संस्कृत अभिलेखों का विस्तृत परिचय देना आवश्यक नहीं। मध्य जावा के शक संवत् ६५४ (मूलेन्द्रयरस) का चंगल में मिला लम्बा अभिलेख, जिसमें भारतीय अभिलेखों के समान ज्योतिष विवरण भी है, उल्लेख्य है। इसमें महाराज संजय का विवरण इस प्रकार है—

यस्मिन्चास्ति सागरोर्म्मि रशनां शैलस्तनीम् मेदिनीम् ।
येते राजपथे जनोनचकितश्चोरैरन चान्यैर भयैः ।।

पूर्वी जावा के दिनाय का अभिलेख शक संवत् ६८२ में अगस्त्य प्रतिमा की स्थापना का स्मारक है। यह अभिलेख पल्लव लिपि में है जिसे दक्षिण भारत की पल्लव लिपि का स्थानीय विकास माना जा सकता है, जिसमें लिखे जावा के प्रारम्भिक अभिलेख मिलते हैं। पेरेंग अभिलेख (७८५ शक) का आरम्भ अग्रांकित स्तवन से हुआ है—

यत उत्पन्नं विश्वं यत्र च जातं विलीनमपि यत्र ।
तस्मै नमो भगवते शिवाय शिवकारणे तुभ्यम् ।।

इसका उपसंहार निम्नलिखित प्रार्थना से हुआ है, जैसा प्रायः भारतीय अभिलेखों में नहीं देखा जाता—

जगतां शिवमस्तु सदा गोद्विजराज्ञां तथा शिवस्तानाम् ।
अतिभक्तिदानधर्मा भवन्तु न आराति रागे ऋषयाः ।।

सुमात्रा के राजा का ६९७ शक संवत् का एक अभिलेख मलय प्रायद्वीप में लिगोर में मिला है जिसमें छह विभिन्न छन्दों—यथा, शिखरिणी, हारिणी, पुष्पिताग्रा, आर्या, उपेन्द्रवज्रा और स्रग्धरा—की दस पंक्तियाँ हैं।

शक संवत् ६९७ का एक बहुत महत्त्वपूर्ण पाषाण अभिलेख बहुत वर्षों तक इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता में था। यह संस्कृत में रचित, परन्तु प्राचीन जावी लिपि में लिखित था तथा इसमें जावा के महानतम सम्राट् ऐरलांग (१०२३-१०४२ ई०) का वर्णन था। इसमें इन छन्दों की ३६ पंक्तियाँ हैं—आर्या, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, मंजुभाषिणी, मालिनी और स्रग्धरा। इसका आरम्भ त्रिमूर्ति की वन्दना से हुआ है तथा प्रत्येक देव नाम पर श्लेष है—ब्रह्मा, जिसमें प्रलय के समय तीन गुण हैं, विष्णु जो अगणितविक्रम है, जिसे संसार में त्रिविक्रम कहा जाता है, शिव जिसे स्थाणु कहा जाता है, जो वास्तव में अतित्वर है।

शक संवत् १२११ का अक्षोभ्य रूप में राजा कृतनागर की प्रतिमा की पीठिका पर खुदा अभिलेख भी है। इसमें १९ पंक्तियाँ हैं।

२—संस्कृत ग्रन्थ

क—अब हम दूसरी श्रेणी, अर्थात् मूल संस्कृत ग्रन्थ, लेंगे। पहला ग्रन्थ अमरमाला है जिसमें अमर कोश के समान जीव और निर्जीव पदार्थों और देवों के पर्याय दिये गये हैं।

ख—सिल्वाँ लेवी ने दिखाया है बालि में चतुर्वेद नाम से सूचित संस्कृत ग्रन्थ नारायणार्थवशीर्षोपनिषद् ही है, जिसके चारों खण्डों के नाम ऋक्, यजुष्, साम और अथर्ववेद शिरस् हैं।

ग—बालि के एक अन्य ग्रन्थ का नाम वेद परिक्रमा सार-सहिता किरण है। इसमें दैनिक पूजा का वर्णन है और संस्कृत मंत्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घ—एक **ग्रन्थमाला** में स्तोत्र हैं जो मुख्य देवताओं—जैसे, शिव, विष्णु, बुद्ध, सूर्य, वायु, वरुण और यम—को ही नहीं, बल्कि अन्य छोटे ब्राह्मण और बौद्ध देवताओं—जैसे, उमा, गंगा, गणपति, सोम, पृथ्वी, रवि, वासुकि, श्री और सरस्वती—को भी संबोधित हैं। पितरों, ओम् आदि को संबोधित स्तोत्र भी हैं। इनमें कुछ के मूल संस्कृत मिल गये हैं तथा कुछ की रचना संभवतः जावा या बाली में हुई है। इनमें कुछ स्तोत्र बहुत सुन्दर हैं और सिल्वाँ लेवी के अनुसार वे "भारत में भी श्रेष्ठ माने जाने योग्य हैं।"

ङ—**बुद्धवेद**—यह ब्राह्मणीय वेद का बौद्ध समकक्ष है तथा इसमें बौद्ध पुरोहित की दैनिक पूजा का पूरा विवरण है। लेवी के अनुसार इसके पद्य और मंत्र किसी तन्त्र, संभवतः शैव तन्त्र, से लिये गये हैं।

च—**नीति या धर्म सम्बन्धी फुटकर पद्य**—इसमें एक पद्य का उल्लेख किया जा सकता है जो भारत में आजतक भली भाँति ज्ञात है—**ओम अहल्या द्रौपदी सीता दारा** (तारा के स्थान पर) **मन्दोदरी तथा पंचकन्या स्मरेन्नित्यम्।** इसमें कुन्ती की जगह सीता रखना ध्यान देने योग्य है। दशशील नामक इस पद्य में हिन्दू आदर्श जीवन का सार आ गया है—

आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दम आर्जवम्।
प्रीतिः प्रसादो माधुर्य मार्दवं च यमा दश॥

छ—**भुवन कोश**, जिसे ज्ञान-सिद्धान्त-शास्त्र भी कहा तथा **परम रहस्य** के रूप में बताया गया है, संस्कृत पद्य ग्रन्थ है, जिनके बाद उनका प्राचीन जावी में अनुवाद है। इसमें पुराणों और वेदान्त शैली में सृष्टिरचना और अध्यात्म तथा सांख्य और योग दर्शन के अनुसार बारह तत्त्वों का वर्णन है। इसके काफी बड़े भाग में तान्त्रिक रहस्यवाद है।

ज—**भुवन संक्षेप**—यह संस्कृत ग्रन्थ का प्राचीन जावी भाषा में अनुवाद है, जिसमें बीच-बीच में मूल संस्कृत श्लोक भी दिये हुए हैं। इसमें शून्यवाद का विवेचन है कि मोक्ष का अर्थ सभी वस्तुओं और विचारों का अनस्तित्व है।

झ—**तत्त्व सङ्ह्याङ् महाज्ञान**—यह संस्कृत पद्य में लिखा प्राचीन जावी अनुवाद और टीका से युक्त ग्रन्थ है। इसमें आये विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के धार्मिक क्रिया-कलाप के दायरे का वर्णन करनेवाले निम्न पद्य की ओर ध्यान दिलाया जा सकता है—

अप्सु देवो द्विजातीनां ऋषीनां दिवि देवता।
शिला खण्डइचलोकानां मुनीनां आत्मा देवता॥

ञ—**बृहस्पति तत्त्व**—यह यत्र तत्र संस्कृत श्लोक मिश्रित प्राचीन जावी ग्रन्थ है। इसमें विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की गणना की गयी है तथा बताया गया है कि मृत्यु के बाद इस जीवन में किये गये कर्मों का क्या परिणाम होता है। इसमें हस्तिन्याय का उल्लेख है। उस प्रसिद्ध कथा में भगवान् द्वारा विभिन्न भावों की अपूर्णता को समझाने के लिए अन्धों द्वारा किया गया हाथी का वर्णन बताया गया है। इसमें चौबीस तत्त्वों, आठ ऐश्वर्यों, तीन प्रकार के प्रमाणों, आठ सिद्धियों, पंच तन्मात्राओं, पंच महाभूतों, अहं और षड्रसों का भी उल्लेख है। स्व० प्रा० रघुवीर की सुपुत्री डा० सुदर्शना देवी सिंहल ने इसका संपादन व अनुवाद किया है।

ट—**सङ्ह्याङ्कमहायानिकन**—यह नवीं शताब्दी में रचित महायान ग्रन्थ है, जो मूल संस्कृत ग्रन्थ का स्वतन्त्र अनुवाद जैसा है, जिसमें बीच-बीच में मूल संस्कृत श्लोक भी दिये गये हैं। महायान बौद्धमत के आधारभूत सिद्धान्तों को बतानेवाला यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

ठ—**कमहायानल मन्त्रनय** नामक महायान ग्रन्थ में छोटी प्रस्तावना के बाद ४१ संस्कृत श्लोक और उनके बाद उनकी प्राचीन जावी में टीका दी गयी है। मंत्रनय की पहचान बौद्धमत के मन्त्रयान से की गयी है जो उसका योग प्रभावित अवस्था में हुआ तान्त्रिक विकास है। इसकी शिक्षा है कि **काम, वाक्** और **चित्त** के रहस्य के ज्ञान से बुद्धत्व प्राप्त हो सकता है।

उपर्युक्त साहित्यिक ग्रन्थों और संस्कृत अभिलेखों के वर्णन से यह भली भाँति स्पष्ट है कि जावा और बालि में बहुत से संस्कृत ग्रन्थ लाये और नियमित रूप से अध्ययन किये जाते थे। भारत से सम्पर्क टूट जाने से संस्कृत अध्ययन में तेजी से कमी हुई और संस्कृत ग्रन्थ लगभग लुप्त हो गये। किन्तु बालि ही एक मात्र ऐसा क्षेत्र है जहाँ अभी तक हिन्दू बसते हैं और जहाँ के पुरोहित अब भी मन्त्रोच्चार करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—भारत-जावी या प्राचीन जावी साहित्य

अब हम प्राचीन जावी साहित्य का वर्णन करेंगे, जो जावा की साहित्यिक सक्रियता के समूचे क्षेत्र में संस्कृत की आश्चर्यजनक भूमिका का सर्वोत्तम उदाहरण है। मोटे तौर से, प्राचीन जावी साहित्य की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—इसकी कविता संस्कृत छंदःशास्त्र के नियमों का अनुसरण करती हैं, इसकी कथावस्तु संस्कृत साहित्य से ली हुई है तथा संस्कृत शब्दों का उपयोग करने और संस्कृत श्लोक उद्धृत करने की ओर इसका बहुत झुकाव है। प्राचीन जावी कोश में संस्कृत शब्दों की संख्या प्राचीन जावी के शब्दों के लगभग बराबर है।

दोनों महाकाव्यों और उनकी विषय वस्तु पर आधारित बहुत सी काव्य-कृतियों के प्राचीन जावी अनुवाद जिन्हें काकविन (कवि से) कहते हैं, इस साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश है।

जावा में रामायण के १२०० विभिन्न संस्करण हैं जिनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध योगीश्वर का संस्करण कहा जाता है, जिसकी रचना संभवतः दसवीं शती के पूर्वार्द्ध में हुई। तुलनात्मक अध्ययन द्वारा दिखाया जा चुका है कि रामायण काकविन का दो तिहाई अंश भट्टिकाव्य का अनुकरण है तथा शेष भाग भी संस्कृत महाकाव्य का अनुवाद नहीं, उसका अनुकूलन है। **उत्तरकाण्ड काकविन** स्वतन्त्र ग्रन्थ है परन्तु इसे संस्कृत बाल्मीकि रामायण का पद्यमय अनुकूलन माना जा सकता है।

रामायण पर आधारित कई प्राचीन जावी काव्य-रचनाएँ या काकविन मिलते हैं। इनमें एक **सुमनसान्तक** (पुष्पों से मृत) है जिसकी कथावस्तु कालिदास द्वारा रघुवंश में अमर बनायी हुई इन्दुमति की मृत्यु कथा से ग्रहण की गयी है। यह बारहवीं शती के प्रथम दशक की रचना है। **हरिश्रय** में विष्णु का वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, माली और सुमाली से हुआ युद्ध वर्णित है। **अर्जुन विजय** में रावण और अर्जुन सहस्रबाहु का युद्ध वर्णित है। इसकी रचना १३७८ ई० के बाद की है।

यह उल्लेखनीय है कि रामायण काकविन में अनेक संस्कृत छन्द उपयोग किये गये हैं तथा यह सुझाया गया है कि जैसे भट्टिकाव्य व्याकरण की शिक्षा देने के लिए लिखा गया है वैसे ही प्राचीन जावी रामायण की रचना जावा-वासियों को विभिन्न संस्कृत छन्द सिखाने के उद्देश्य से की गयी है।

महाभारत भी जावा में रामायण से कम लोकप्रिय नहीं था। इस महाकाव्य की प्राचीन पाण्डुलिपियों की प्रस्तावना में, वसन्ततिलका छन्द में रचित पद्य में अट्ठारह पर्वों की सूची दी गयी है। यह सूची कलकत्ता और बम्बई संस्करणों तथा समालोचित संस्करण की सूचियों से मिलती है. अन्तर केवल इतना है कि अनुशासन पर्व को स्वतन्त्र पर्व नहीं माना गया, उसे शांतिपर्व में लिया गया तथा शल्यपर्व और सौप्तिक पर्व के बीच में नया **गदापर्व** रखा गया है। यह जानना चाहिए कि भारत में भी, महाभारत के एक संस्करण में २४ पर्व तक है और जावाई संस्करण भारत में प्रचलित कोई पुराना पर्व विभाजन ही माना जा सकता है। प्राचीन जावी महाभारत मूल संस्कृत महाकाव्य का अनुवाद नहीं है। यह अंशतः उसका संक्षिप्त अनुकरण और अंशतः उसका संघनित और यदाकदा ही मूल का शाब्दिक अनुवाद है। कभी-कभार इसमें मूल संस्कृत पद्य भी जोड़ दिये गये हैं।

काकविन कही जाने वाली बहुसंख्यक काव्य कृतियों की कथावस्तु, जैसा ऊपर बताया गया है, महाभारत से ली गयी हैं। प्रथम मौलिक कृति **अर्जुन विवाह** है, जिसने पूर्व जावा के कदिरि के शक्तिशाली शासक ऐरलांग के वंश के राजाओं के संरक्षण में इस श्रेणी के साहित्य के स्वर्णयुग का सूत्रपात किया। इसकी रचना म्पु कण्व ने ऐरलांग (१०१९-१०४२) के संरक्षण में की। इसमें महाभारत की वह घटना ली गयी है जिसमें निवातकवच के विरुद्ध देवताओं के युद्ध में अर्जुन ने देवताओं की सहायता की थी।

कदिरि युग के आरम्भ की ही अन्य काव्यकृति भी है। यह है त्रिगुण रचित **कृष्णायन**। इसमें कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण और परिणामतः जरासन्ध से युद्ध की प्रसिद्ध घटना वर्णित है।

अब हम प्राचीन जावी साहित्य के सबसे सम्पन्न युग, अर्थात् जयभय के शासनकाल (लगभग ११३५-११५७ ई०) पर आते हैं। इस युग की सबसे महान् कृति, जिसे सर्वदा प्रसिद्धि प्राप्त रही, **भारत युद्ध** है, जो उद्योग पर्व, भीष्म पर्व, द्रोण पर्व, कर्णपर्व और शल्यपर्व पर आधारित स्वतन्त्र रचना है। दूसरे शब्दों में, यह भारत के महाकाव्य के उन भागों पर आधारित है जिनका सम्बन्ध युद्ध से है। यह सरल, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकाव्य शैली में रचित है तथा विख्यात समालोचकों के अनुसार, वैभव में यह यूनानी महाकाव्यों की टक्कर की है। इसकी रचना कदिरि के महाराज जयभय के आदेश पर म्पु सदह ने ११५७ में की। एक परम्परा के अनुसार महाराजा कवि से रुष्ट हो गया और इसे म्पु पनुलुह ने पूरा किया। जिस म्पु पनुलुह ने जयभय के शासन काल में भारत युद्ध पूरा किया, उसी ने उसी शासनकाल में **हरिवंश** नामक अन्य काव्य की भी रचना की। अपने भारतीय पूर्वरूप की भाँति इस ग्रन्थ में कृष्ण द्वारा रुक्मिणीहरण और तदुपरान्त जरासन्ध तथा पाण्डवों का, जिन्होंने कृष्ण की सहायता की, युद्ध वर्णित किया गया है। अन्तिम घटना मूल भारतीय कृति में नहीं है।

कदिरि दरबार की शानदार परम्पराओं को कामेश्वर द्वितीय (११८५ ई०) ने बनाये रखा। उसके संरक्षण में लिखा गया सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ **स्मरदहन** है। यह ग्रन्थ स्मर या कामदेव को शिव द्वारा भस्म कर देने की प्रसिद्ध घटना पर आधारित है, जिसका वर्णन बड़े ही कौशल से कालिदास ने अपनी अमर कृति **कुमार संभव** में किया है।

कामेश्वर द्वितीय के शासन काल से ही प्रसिद्ध **भौम-काव्य** को सम्बद्ध किया जाता है। इसमें इन्द्रादि देवताओं की पृथ्वी-पुत्र भौम या नरक से हार और अन्ततः कृष्ण के हाथों उसकी मृत्यु का वर्णन किया गया है।

बालि में बहुत लोकप्रिय कृति, **नवरुचि** में भीम के कर्तृत्व का वर्णन है।

महाकाव्य साहित्य के उपरान्त पुराणों का उल्लेख करना होगा। **ब्रह्माण्डपुराण** निस्सन्देह इस श्रेणी के प्राचीन जावी साहित्य की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है। प्रस्तावना समेत यह भारतीय पुराणों का ढंग पूरी तरह अनुकरण करता है। इसमें बताया गया है कि जब अधिसीभकृष्ण पृथ्वी का शासक था तब व्यास का शिष्य रोमहर्षण नैमिषारण्य आया और उसने व्यास रचित पुराण का पाठ किया। यह मूल संस्कृत पाठ का निकटता से अनुसरण करता है, पर वर्तमान पाठ से कुछ भिन्न है तथा भाषा और शैली में यह प्राचीन जावी महाभारत जैसा ही है। इसमें संस्कृत शब्द प्रचुरता से प्रयुक्त हैं तथा कुछ पृष्ठों पर संस्कृत और जावाई शब्दों का अनुमान ४:९ है। यह ब्रह्माण्डपुराण पर आधारित १८ पर्वों का काकविन है।

इसके अतिरिक्त विषयवस्तु के विचार से पुराण श्रेणी की बहुत सी गद्य कृतियाँ और भी हैं।

इनके अतिरिक्त विभिन्न विषयों का विस्तृत प्राचीन जावी साहित्य और है जिसे यहाँ विस्तार से बताना सम्भव नहीं है। कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें एक **सार समुच्चय** है, जो पिछले दिनों नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। यह ५१७ पद्यों का स्मृति के ढंग का ग्रन्थ है। उनमें ३२१ को इसके सम्पादक स्व० डा० रघुवीर ने महाभारत के समालोचित संस्करण में तथा कुछ को पंचतन्त्र-हितोपदेश में ढूँढ़ निकाला है।

इस श्रेणी के कुछ ग्रन्थ और हैं। जैसे, **श्लोकान्तर**, जिसे प्रा० रघुवीर की पुत्रवधू श्रीमती शारदा रानी ने संपादित किया है, ८३ पद्यों का है। प्रत्येक पद्य की प्राचीन जावी टीका है; **नीतिसार**, जो १२० संस्कृत पद्यों का संग्रह है, जिनमें नीति, उपदेश आदि दिये गये हैं, **व्रतिशासन** जो ३७ संस्कृत पद्यों का है। (इसे भी श्रीमती शारदा रानी ने संपादित किया है)।

ऊपर दिये गये प्राचीन जावी साहित्य के अति संक्षिप्त वर्णन से ही जावा और बालि में संस्कृत अध्ययन की प्रकृति, विस्तार और गुणों का अच्छा परिचय मिल जायगा। यद्यपि शेष इन्दोनीसिया के विषय में हमारे पास ऐसा प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है तथापि इन्दोनीसिया के विभिन्न भागों के संस्कृत से लिये गये शब्दों के अध्ययन से परोक्ष साक्ष्य उपलब्ध होता है। योरोपीय विद्वानों के प्रमाणों के आधार पर एक आधुनिक लेखक ने इसका सार इस प्रकार दिया है—

"संस्कृत से लिये गये शब्दों ने जावा के शब्द-समूह को ही नहीं, मलक्का, पलेमबांग और सुमात्रा से लगे भागों, बोर्नियो के एक भाग, सेलीबीज के तटीय प्रदेश और उससे लगे अन्तर्प्रदेश की शब्दावली को भी आक्रान्त किया है। उत्तरी गिनी के पैपुअन जैसे दूरस्थ लोगों की भाषा में भी कुछ संस्कृत शब्द हैं। तथापि यह स्वीकार किया जाता है कि प्राचीन जावानी में उसका आघात दूर-दूर तक हुआ। खोण्डा ने बताया है कि जुइनबाल के प्राचीन जावी-डच कोश में ६७९० संस्कृत शब्द हैं जबकि प्राचीन जावी शब्दों की संख्या ६९२५ से अधिक नहीं है। दक्षिणी सेलीबीज के बुगिनी शब्दसमूह में व्यापार, बर्तनों, धर्म, आगम, प्रशासन और सामाजिक जीवन सम्बन्धी कुछ शब्द संस्कृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हैं। मध्य सेलीबीज की बारी भाषाओं में विमानी, रोटिनी, मंगाराय (फ्लोरेंस), सासक (लम्बक) और बुसंग (मध्य सेलीबीज) में अनेक संस्कृत ऋण शब्द हैं। फिलीपाइन की ओर बढ़ने पर टगलॉग में लगभग २५० संस्कृत शब्द हैं, जिनमें अधिकांश का सम्बन्ध व्यापार, वाणिज्य और भौतिक वस्तुओं से है।"

यदि हम जावा के पश्चिम की ओर पड़नेवाले द्वीपों की ओर दृष्टिपात करें तो एशीहनीज शब्द-समूह में हमें बहुत से संस्कृत शब्द मिलेंगे। खोण्डा का कथन है कि कारो बातक में १५५ और टोबा बातक में १७५ भारतीय शब्द हैं। इन लोगों में सप्ताह के दिनों के भारतीय तथा ज्योतिष और पालि के कुछ पारिभाषिक शब्द प्रचलित होना महत्त्व की बात है। आगे दक्षिण जाने पर नीसा द्वीप में कम से कम ६० संस्कृत शब्द हैं। पड़ोस के मेंटावे और सिमालूर द्वीपों में भी, निसा होते हुए, कुछ संस्कृत शब्द पहुँचे हैं। मदगास्कर जैसे दूर बसे द्वीप ने भारतीय दास नाम ग्रहण किये हैं। इस प्रदेश के संस्कृत अध्ययनों के अन्य प्रमाणों में इन्दोनीसिया में भारतीय लिपि के ग्रहण किये जाने का भी उल्लेख किया जा सकता है।

इन्दोनीसिया और मलयेशिया में लिखने की कला प्रारम्भ में दक्षिण भारत से ली गयी, जैसा इन स्थानों के अभिलेखों के अध्ययन से प्रमाणित होता है। पल्लव ग्रन्थ लिपि से प्राचीन जावी लिपि विकसित हुई, जिसकी प्राचीनतम विशेषताएँ ७६० ई० के दिनाय अभिलेख में दिखायी देती है। पूर्व-नागरी लिपि भी आठवीं शताब्दी में दिखायी पड़ती है और प्राक्बंगला लिपि उससे कुछ शताब्दी बाद, परन्तु ये थोड़े समय और थोड़ी जगह ही सीमित रहीं और मलय-इन्दोनीसी जगत् की राष्ट्रीय लिपि के विकास को स्थायी रूप से प्रभावित नहीं कर सकीं। जावा में परिवर्तित पल्लव ग्रन्थलिपि से सुन्दानी, मदुरी और बालि लिपियाँ विकसित हुईं। मध्यकाल की सुमात्रा लिपि भी इसीसे विकसित हुई। बातक लेखन इन्दोनीसी ग्रन्थ लिपि का ही विभेद है। दक्षिण सुमात्रा की रेयांग और लम्पंग लिपियाँ प्राचीन जावी लिपियों से बहुत मिलती-जुलती हैं, जिनका विकास पल्लव ग्रन्थ लिपि से हुआ था।*

*सरस्वती विहार, नई दिल्ली से प्रकाशित स्टडीज इन इण्डो-एशियन आर्ट ऐण्ड कल्चर, खण्ड २ में छपे अंग्रेजी लेख 'संस्कृत इन साउथ-ईस्ट एशिया' के मूल लेखक डा० रमेशचन्द्र मजूमदार और सरस्वती विहार के अध्यक्ष, डा० लोकेशचन्द्र से अनुमति प्राप्त कर 'सरस्वती' के लिए अनूदित। अनु०

वर्षा सब के मन भाये

श्री अजयकुमार ठाकुर

काले बादल नभ पर छाये।
रङ्ग खुशी के जग में लाये।
चमक रही बिजली रहरहकर,
रिमझिम रिमझिम गीत मनोहर,
हरे भरे हैं वृक्ष सरोवर,
देवराज से आशिष पाये।
बीरबहूटी के सिंदूर से
दिशा-सुहागिन सजी हुई है,
धरा तृप्त है, मोर मगन हैं,
वर्षा ऋतु सब के मन भाये।

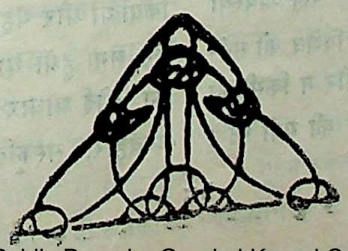

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कारहीन संस्कृति का उदय

श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव

विगत कुछ वर्षों से अब यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आने लगा है कि स्वतन्त्र भारत के लिए जाने-अनजाने रूप से एक नयी और अनूठी संस्कृति की नींव डाली जा चुकी है। नयी मान्यताओं, आस्थाओं और व्यवहार-पद्धतियों को स्वीकार कर उनका इस प्रकार अनुसरण किया जा रहा है कि धीरे-धीरे वह परम्परा का रूप ग्रहण करती जा रही हैं। महात्मा गान्धी ने खादी की अत्यन्त सामान्य वेषभूषा अपना कर, प्रार्थना सभाएँ आयोजित कर तथा सत्य अहिंसा का नाम लेकर भले ही प्राचीन भारतीय संस्कृति से जुड़े रहने का प्रमाण देने की कोशिशें की हों किन्तु वास्तविकता यह है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति के विघटन और नयी तथा सर्वथा संस्कारहीन संस्कृति की स्थापना का प्रारम्भ गान्धीजी और उनके आन्दोलनों से ही हुआ है। समूचे देश को एकता के सूत्र में बाँधने का श्रेय गान्धीजी को दिया जाता है, किन्तु यह तथ्य विचारणीय है कि सहयोग के स्थान पर असहयोग, कानून पालन के स्थान पर कानून तोड़ने की नीति, श्रमपूर्वक काम करने के बजाय हड़ताल और अनुशासन एवं मर्यादा को भंग कर आन्दोलनों का मार्ग अपनाने की नीतियाँ इस देश को महात्मा गान्धी से ही प्राप्त हुई हैं। गान्धीजी के युग में यदि समाज संगठित हुआ तो केवल आन्दोलनों, हड़तालों और कानून तोड़ने के लिए हुआ। उस समय अथवा उसके पश्चात् अब तक यह देखने-समझने का अवसर ही नहीं मिला कि व्यवस्था बनाये रखने अथवा रचना के लिए भी वह संगठित हो सकता है। उनके द्वारा संचालित अवज्ञा-आन्दोलन का भारतीय मानस पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि अब किसी भी व्यक्ति अथवा वर्ग के निर्देशों का पालन पथभ्रष्ट और पतित होने का लक्षण समझा जाने लगा है।

वर्ण-व्यवस्था में परवर्ती काल में उत्पन्न दोषों को स्वीकार करते हुए यह असन्दिग्ध है कि वर्ण-व्यवस्था की कल्पना मूलतः न तो व्यक्ति अथवा वर्ग विशेष को सर्व-प्रभुता सम्पन्न देवता बनाने के लिए और न किसी को अस्पृश्य अथवा पतित बनाने के लिए ही की गयी थी। दो वर्णों के बीच कभी भी ऐसी विद्वेष की भावना नहीं रही जितनी वर्तमान समय में दो राजनीतिक दलों में देखी जा रही है। उच्च वर्ग के व्यक्तियों द्वारा निम्न वर्ग के प्रति जो व्यवहार-नीति अपनायी जा रही है वह ब्राह्मणों द्वारा शूद्रों के प्रति अपनायी गयी नीति से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है। वस्तुतः वर्ण-व्यवस्था के व्याज से व्यक्ति और जन-समुदाय के लिए ऐसी मर्यादा और कर्तव्य की रेखाएँ खींची गयी थीं जिनके द्वारा भारतीय समाज सैकड़ों-सहस्रों वर्ष तक पूर्ण व्यवस्थित होकर चलता रहा है। उसमें उत्पन्न दोषों को सहज ही दूर किया जा सकता था, किन्तु इसके विपरीत उस व्यवस्था को भंग कर दिया गया। प्रायः सभी विचारक इस बात को स्वीकार करते हैं कि अस्पृश्यता-निवारण और हरिजन-उद्धार की नीति समाज-सुधार अथवा वर्गहीन समाज की स्थापना के उद्देश्य से नहीं, वरन् इस कारण अपनायी गयी थी कि स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में हरिजनों का पूरा सहयोग प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार एक महत् राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति अवश्य हुई, किन्तु पहले जातियों की छोटी-बड़ी कड़ियों के गुम्फन से जो समाज एक शृंखला के रूप में विद्यमान था वह टूट गया और सभी व्यक्ति कड़ियों की भाँति इकाइयों के रूप में बिखर गये। राजनीतिक स्वार्थों के मोह में समाज और संस्कृति को उपेक्षित एवं तिरस्कृत छोड़ दिया गया। राजा राममोहन राय, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, लाला लाजपत राय जैसे दो-चार महापुरुषों को यदि छोड़ दिया जाय तो पूरी उन्नीसवीं शताब्दी और वर्तमान शती के सात दशकों में एक भी ऐसा नेता अथवा महापुरुष इस देश को नहीं मिला जो समाज के सुधार अथवा संस्कृति के विकास की दिशा में अपनी उँगली-उठाकर कुछ संकेत भी करता। पराधीनता के अभिशापों ने भारतीय समाज को स्वातन्त्र्य आन्दोलन की ओर अग्रसर किया था और यह सच है कि गुलामी का कलंक हमारे माथे पर लगा हुआ था, किन्तु इस बात से पूर्णतया सहमत होने का कोई आधार दिखायी नहीं देता कि उस समय चरित्र, व्यवहार, संस्कृति तथा अन्य मानवीय गुणों की दृष्टि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी भारतीय समाज खोखला हो चुका था। वस्तुतः यह भारतीय चरित्र, व्यवहार, संस्कृति का ही परिणाम रहा है कि हमारा स्वातन्त्र्य आन्दोलन सफल हुआ था और विडम्बना यह है कि राजनीतिक उद्देश्य के लिए इन्हींकी आहुति दे दी गयी।

प्राचीन संस्कृति के अनुसार सत्कर्म अथवा दुष्कर्म का निर्णय परहित अथवा परपीडन एवं मानवीय गुणों पर आधारित नैतिकता के नियमों के अनुसार किया जाता था। पुण्य और पाप के रूप में कर्म को अनेक प्रकार से परिभाषित कर स्वर्ग एवं नरक की कल्पना के द्वारा आचरण-व्यवहार की मर्यादा-रेखाएँ खींची गयी थीं। मात्र इन शब्दों ने तथा स्वर्ग नरक के आकर्षण और भयावहता की कल्पना ने ही हजारों वर्षों तक भारतीय समाज को मर्यादा, नैतिकता, अनुशासन की परिधि में रखा, उसे स्वार्थ-त्याग और जन-सेवा की प्रेरणा दी तथा ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, प्रवञ्चना, झूठ, बेईमानी आदि दोषों से मुक्त रखा। यह सभी व्यवस्थाएँ किसी राजाज्ञा और कानून के द्वारा नहीं वरन् संस्कृति के प्रति जागरूक ऐसे प्रज्ञा-प्रवण विचार-शील महापुरुषों द्वारा दी गयी थीं जिन्होंने लोकानुग्रह के महा-यज्ञ में स्वयं अपने जीवन को होम दिया था। बाह्य पदार्थों के संश्लेषण विश्लेषण मूलक प्रयोगों की तो बात ही नहीं, उन्होंने स्वयं अपने जीवन को प्रयोगशाला मान कर छोटे-बड़े सभी कर्मों का जन्म-जन्मान्तरों तक 'एक्सपेरीमेन्ट' किया था और मनसा किये जाने वाले कर्मों तक को 'एक्स-पेरीमेन्ट' की प्रक्रिया से परख कर उनकी निष्पत्तियाँ प्राप्त की थीं। इन निष्पत्तियों के आधार पर ही आचरण और व्यवहार की नीतियाँ निर्धारित की गयी थीं और इस प्रकार उनको अवैज्ञानिक नहीं माना जा सकता। वर्तमान नयी संस्कृति ने उन निष्पत्तियों को जब पाखण्ड कहना प्रारम्भ किया तब सभी व्यवस्थाएँ भी उसी की लपेट में आकर ध्वस्त हो गयीं।

राजनीति, अधिकार, साधन और सम्पन्नता ही वर्तमान भारतीय संस्कृति के पुरुषार्थ चतुष्टय हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति में धर्म को दुःख-निरोध का साधन तो माना ही गया था, 'धर्मादर्थश्च कामश्च' तथा 'यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः स धर्मः', जैसे सिद्धान्त वाक्यों से स्पष्ट है कि उसे अर्थ और काम प्राप्ति के साधन रूप में भी स्वीकार किया गया था। वर्तमान समय में एक तो अर्थ एवं काम की व्यापकता को नष्ट कर उनका अत्यन्त संकुचित अर्थ ग्रहण किया गया और दूसरे धर्म तथा मोक्ष को पाखण्डियों का व्यापार घोषित कर दिया गया। यहाँ इस बात को मैं अवश्य कहना चाहूँगा कि विज्ञान के नाम पर धर्म को झूठा करार देने की बात निहायत ही बेतुकी और बचकानी है। पाखण्ड और बाह्याडम्बर को ही धर्म मानकर उसके सम्बन्ध में जो चाहे कहा जाय, किन्तु यदि धर्म को उसके वास्तविक अर्थ में ग्रहण किया जाय तो कहा जा सकता है कि विज्ञान का न तो उससे किञ्चित् विरोध है और न उसमें इतना सामर्थ्य ही है कि वह धर्म की ओर आँख उठाकर भी देख सके। वस्तुतः भारतीय मनीषियों द्वारा कर्मवाद और जन्मान्तर के धरातल पर ही मानव-धर्म का भवन खड़ा किया गया था, किन्तु जब जाने-अनजाने रूप से इनको पाखण्ड कहा गया तब इसका सीधा मतलब है कि हमने इस बात को मानने से ही इनकार कर दिया है कि सत्कर्मों के अच्छे और दुष्कर्मों के बुरे परिणाम हो सकते हैं। पश्चिम की साजिशों में उलझ कर हमने अपने आप को सभी प्रकार से बौना स्वीकार किया और उसके सभी संकेतों को 'ह्विप' के रूप में स्वीकार करना हमारे चरित्र का अंग बनगया है।

सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा समग्र जीवन की चिरस्थायी व्यवस्था ही धर्म है। इसके विपरीत देश काल और अवसर के अनुरूप स्वार्थ सिद्धि के लिए नित नयी नीतियों की परिकल्पना ही राजनीति है। संक्षेप में, धर्म व्यवस्था का और राजनीति अव्यवस्था का पर्याय है। धर्म-निरपेक्ष रहने का सिद्धान्त स्वीकार करते समय ही मानों भारतीय समाज ने व्यवस्था के प्रति निरपेक्ष होकर रहना स्वीकार किया था। गान्धीजी को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उन्होंने राजनीति को राजमहलों और प्रासादों से निकालकर सड़क तक, सामान्य व्यक्ति तक, ला दिया। यद्यपि यह सत्य है किन्तु यह भी सत्य है कि इसीके दुःखद परिणामों को वर्तमान समाज भोग रहा है। यदि धर्म-निरपेक्ष रहने के स्थान पर राजनीति-निरपेक्षता की नीति अपनायी गयी होती तो निश्चय ही उसके कुछ दूसरे और अपेक्षाकृत सुखद परिणाम देखने को मिलते।

सूक्ष्म स्थूल एवं मन वचन कर्म के सम्बन्ध में गम्भीर पर्यालोचन के पश्चात् ही अनैतिकता, दुराचरण और अपराध के दण्ड की कल्पना की गयी थी। वर्तमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति में पाप तो कुछ है ही नहीं, ऐसी सभी व्यवहार-क्रियाओं की वरीयता को भी नकार दिया गया है जिनके आधार पर नैतिकता अथवा मानवीय कर्तव्यों को परिभाषित किया जा सके। संविधान एवं अगणित कानून संहिताओं के होते हुए भी एक भी ऐसा कर्तव्य विधान नहीं है जो मानव-समाज को उसके नैतिक दायित्वों का बोध करा सके। नयी संस्कृति में नैतिकता नाम का कोई तत्त्व स्वीकार ही नहीं किया गया। व्यवस्था-निर्धारण के सभी अधिकार संविधान और कानून के हाथों में सौंप दिये गये। कहने की आवश्यकता नहीं कि संविधान की रचना का उद्देश्य मात्र उस व्यवस्था की कल्पना तक सीमित था जिसके द्वारा सर्वाधिकार सम्पन्न प्रभुसत्ता अर्थात् राजतन्त्र के स्थान पर गणतन्त्र प्रणाली पर आधारित शासन का स्वरूप परिकल्पित किया जा सके। इस क्रम में नैतिकता एवं आचार सिद्धान्तों के सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता ही नहीं समझी गयी। यही कारण है कि संविधान एवं कानून की छोटी-बड़ी किताबों के सभी पन्ने पलटने के पश्चात् भी अब कहीं भी यह व्यवस्थाएँ नहीं मिलतीं कि हमें सच बोलना चाहिए; कुसंग त्याज्य है; माता-पिता की सेवा करनी चाहिए, लोक-कल्याण के लिए स्वार्थ का परित्याग करना चाहिए अथवा किसीके अहित की कामना करना भी गर्हणीय है। यदि जनहित को पचास ठोकर मारते हुए हम केवल स्वार्थ-सिद्धि में ही लीन रहते हैं और केवल कानून की पेचीदगियों से बचते रहते हैं तो नयी संस्कृति में किसी भी नियम के अनुसार उसकी भर्त्सना करने के लिए अपने होंठ हिलाने की भी सामर्थ्य नहीं। उसने इन सब बातों को युग के अनुरूप आचरण मानकर स्वीकार कर लिया है। इस स्थिति में यह कहना असमीचीन नहीं कि वर्तमान संस्कृति को मनुष्य का कोई भी नैतिक दायित्व स्वीकार नहीं। यदि छात्र गरु को और पुत्र अपने वृद्ध असहाय माता-पिता को मनचाहे रूप से खरी-खोटी सुनाकर चल दे तो वह कोई अपराध तो है ही नहीं, नैतिकता के नाम पर उसकी भर्त्सना करने के लिए भी नयी संस्कृति के पास कोई बहाना नहीं। मानव इतिहास स्वयं इस बात का साक्षी है कि कठोर से कठोर कानून को भी अपराधों पर काबू पाने में आज तक सफलता नहीं मिली और दुष्कर्म एव अनैतिकता की प्रवृत्ति को नियंत्रित रखने का श्रेय केवल आचार-संहिताओं को रहा है।

नयी संस्कृति में राजनीति और अधिकार को सर्वोच्च वरीयता प्रदान की जा चुकी है। जिस प्रकार पहले धर्म को अर्थ, काम और मोक्ष की उपलब्धि का उपाय माना जाता था उसी प्रकार अब समस्त उपलब्धियों का साधन राजनीति और अधिकार है। 'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' जैसा आचार-दर्शन नयी संस्कृति को मान्य नहीं। सत्ताधिकार सम्पन्न मंत्री अथवा विधायक के सामने बड़े से बड़े विद्वान् की इज्जत दो कौड़ी की भी नहीं। संस्कृति और आचार परम्परा के रूप में अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि शासकीय अथवा अशासकीय किसी भी छोटे-बड़े आयोजन में मंत्री की उपस्थिति आवश्यक है। श्राद्धादिकों में प्रयाग के पण्डों और अन्य उद्यापन कार्यों में पुरोहितों का जो स्थान था वह अब राजनयिकों को दे दिया गया है। यदि यह परम्परा राजनीतिक कार्यों के लिए ही अपनायी गयी होती तो कोई आपत्ति न होती, किन्तु राजनीति के शाप से भयभीत सभी वर्गों ने सभी कार्यक्षेत्रों के लिए इसे स्वीकार कर लिया है और सामाजिक, सांस्कृतिक साहित्यिक कैसा भी आयोजन क्यों न हो, उसमें राजनीतिक नेताओं की उपस्थिति पण्डितों और पुरोहितों की भाँति सिद्धिदायक मान ली गयी है। जो लोग 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' और 'मालविकाग्नि-मित्रम्' का नाम तक नहीं जानते तथा 'अभिग्यान सकुन' और 'माल विकास आश्रम' कहकर भाषण देते हैं उनके बगैर कालिदास से सम्बद्ध आयोजन भी संभव नहीं होता। फूहड़पन से भरे बेसिर-पैर के भाषण होते हैं फिर भी उन्हें मार्गदर्शक उपदेश मानकर उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन वर्तमान आचार-विधान का नियम बन गया है। महर्षि सातवलेकर, महर्षि कार्णे, पूज्यपाद स्वामीजी पीताम्बरापीठ, डा० भगवानदास, आचार्य नरेन्द्रदेव, पंडित गोपीनाथ कविराज, राहुल सांकृत्यायन, आचार्य रघुवीर जैसी महान् विभूतियों से नयी संस्कृति को कोई सरोकार नहीं। पद की प्रतिष्ठा ही वर्तमान संस्कृति का सर्व स्वीकृत सिद्धान्त है।

वर्गहीन समाज की स्थापना नयी संस्कृति का प्रमुख उद्देश्य रहा है। प्रारम्भ में इस लक्ष्य की परिधि जाति एवं सम्प्रदायगत भेद तथा आर्थिक असमानता की समाप्ति तक सीमित थी। समाज में इनके अतिरिक्त छात्रवर्ग, अध्यापक वर्ग, अधिकारी वर्ग, कर्मचारी वर्ग, पुरुष वर्ग, नारी वर्ग, मजदूर वर्ग आदि अगणित अन्य वर्ग भी होते हैं, जिनके सम्बन्ध में सोचने-विचारने की आवश्यकता ही नहीं समझी गयी और न इस पर विचार किया गया कि वर्गहीन समाज की स्थापना के आन्दोलनों का इन वर्गों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। प्राचीन संस्कृति के अनुसार प्रत्येक वर्ग किसी दूसरे वर्ग के अनुशासन में रहता था और आचार-संहिताओं में सभी वर्गों के लिए शेष अन्य वर्गों के प्रति कुछ दायित्व निर्धारित रहते थे। नयी संस्कृति कानून और कायदे से परे आचारमूलक किसी मर्यादा को स्वीकार नहीं करती और न किसी वर्ग का किसी दूसरे वर्ग के प्रति कोई दायित्व ही मानती है। समान अधिकार के आन्दोलनों ने इस प्रवृत्ति की जड़ों को पानी दिया है जिससे मर्यादा की सभी रेखाएँ धुलकर साफ हो गयीं। अब किसी भी व्यक्ति अथवा वर्ग का किसी के प्रति कोई दायित्व नहीं माना जाता और न किसी प्रकार की आचार मर्यादा के अनुसरण के लिए ही किसी को बाध्य किया जा सकता है। इस दिशा में आयोजित आन्दोलनों ने छात्र और अध्यापक, रोगी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रेतक, उत्पादक और उपभोक्ता, न्यायाधीश और अप-राधी तक के बीच का भेद भी समाप्त कर दिया है।

लंगड़े कायदे-कानूनों और काम-काज की पद्धति ने नयी संस्कृति में कुछ ऐसे तत्त्वों का समावेश कर दिया है जिन्होंने हमारे आचार-व्यवहार को सर्वथा नया रूप प्रदान किया है। 'पाप' से छुटकारा पाने के साथ ही अर्थ क्षेत्र में बेईमानी, झूठ, भ्रष्टाचार जैसी प्रवृत्तियों को नयी संस्कृति का ही एक अंग मान लिया गया है। यदि कोई व्यक्ति अपने निर्धारित वेतन से दसगुनी अधिक आय लाकर देता है तो उसके माता-पिता अथवा परिवार का कोई भी सदस्य उसके आचरण पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं करता। नयी संस्कृति इसको गर्हणीय मानने के स्थान पर इसका अभिनन्दन ही करती है। उसमें इसे कौशल अथवा चातुर्य के रूप में स्वीकृति दे दी गयी है। उस व्यक्ति का दायित्व बस इतना ही रहता है कि वह कानून के किसी पतले से छेद में उलझ न जाय। श्रम की प्रतिष्ठा गिरने तथा सर-कारी नौकरी के लिए अभ्यर्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि के मूल में सबसे बड़ा कारण यही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी नंगी आँखों से यह देख लिया है कि बिना किसी धन की पूँजी लगाये और बिना श्रम किये भी आय की जा सकती है। इस स्थिति में कोई भी व्यक्ति श्रम करने की बेवकूफी भला क्यों करेगा। बेईमानी के सहारे संग्रह वर्तमान संस्कृति में किसी प्रकार हेय नहीं समझा जाता, वरन् इसके विपरीत कठोर श्रम करते हुए घसिटती हुयी बिताना अथवा गरीबी को चिपटाये रहना मन्द भाग्य होने का प्रमाण समझा जाने लगा है। ईमानदारी, त्याग, तपस्या अब ऐसे प्रभावहीन मुखौटे की भाँति रह गये हैं जिसे समाज किञ्चित् भी प्रतिष्ठा देने को तैयार नहीं।

पिछले तीन-चार दशकों में भारतीय समाज को ऐसी परिस्थितियों से गुजरने के लिए मजबूर होना पड़ा है कि उसके मन में अपरिग्रह के स्थान पर परिग्रह के प्रति लगा-व आस्था दृढ़ होती गयी है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के प्रति अपने दायित्वों को स्वीकार कर उनके पालन के प्रति सचेष्ट रहे तो सभी को मानसिक शान्ति मिलती है, तमाम चिन्ताओं से मुक्ति भी मिल जाती है। नयी संस्कृति में किसी का किसी के प्रति कोई दायित्व न होने के परिणामस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही अपने लिए सब कुछ करना पड़ता है। प्रथमतः व्यवस्था के प्रति लोगों का विश्वास प्रायः समाप्त हो गया है और फिर परिवार, पड़ोस, कुटुम्ब, जाति आदि की संस्थाएँ पूर्णतया खँडहर हो चुकी हैं। इस स्थिति में पति-पत्नी, पिता-पुत्र तक परस्पर एक दूसरे का विश्वास खो बैठे हैं। आज प्रत्येक व्यक्ति संग्रहशील बनने के लिए बुरी तरह से मजबूर हो गया है और इस प्रकार नयी संस्कृति में परिग्रह को कर्तव्य के रूप में स्वीकृति मिलती जा रही है।

नयी संस्कृति 'सन्तोष ही परम सुख' के स्थान पर 'संतोष प्रगति में बाधक है' जैसे सिद्धान्त वाक्यों को आदर्श मानती है। इसने स्पर्द्धा की भावना को इतना उग्र बना दिया है कि अपने ही सहगामियों की लाशों से खाइयों को पाटकर आगे बढ़ने की लालसा हमारा चरित्र बन गया है। दया, करुणा, सहानुभूति, शम, दम जैसे मूल्यों का अब कोई महत्त्व नहीं और ऋषियों के तथा तुलसी, कबीर जैसे संतों के सिद्धान्त अर्थहीन हो गये हैं। यदि कोई दुश्चरित्र व्यक्ति अपने सभी आचरणों पर आवरण डालकर बदनामी से बचा रहता है तो नयी संस्कृति उसकी आरती उतारने के लिए सदैव प्रस्तुत है। 'बद अच्छा बदनाम बुरा' उसका आचरण सिद्धान्त है। असहमति, अविश्वास, सन्देह और विरोध भावनाओं से सम्पृक्त व्यक्ति ही नयी संस्कृति में दूर-द्रष्टा, जागरूक और बुद्धिजीवी समझा जाने लगा है। यदि विश्वास के साथ सहमति प्रकट करते हुए सभी विरोधों का परित्याग कर दिया जाय तो हम सदा-सदा के लिए अनु-यायी अथवा 'वालन्टियर' की स्थिति में ही बने रहेंगे। हम में स्वयं भले ही कोई गुण न हो, किन्तु दूसरों को दोषी सिद्ध करना अथवा मिथ्या दोषारोपण करने से स्वयं को गुणवान सिद्ध करने की नयी प्रणाली स्थापित की जा चुकी है। किसी भी गुण को सर्वमान्य मूल्य के रूप में उतनी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती जितनी दूसरों को दोषी और अप-राधी सिद्ध करने को प्राप्त है। प्रगतिवादियों ने समझौता और सुधारवाद को हेय बताकर विकास और क्रान्ति की नयी परिभाषाएँ दी हैं तथा लगातार परिवर्तन की इतनी जोरदार वकालत की है कि व्यवस्था और स्थिरता के मूल्य भी विघटित हो चुके हैं। किसी भी मूल्य को सार्व-देशिक अथवा सार्वजनीन मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी। मूल्य स्थिर होने के पश्चात् जिस संस्कृति का निर्माण होता है वस्तुतः वही सच्ची और सही संस्कृति हो सकती है। प्राचीन संस्कृति नष्ट होती जा रही है और मूल्यों के अभाव में किसी नयी संस्कृति का सही रूप परिकल्पित नहीं किया जा सका।

आज का भारत एक संस्कृति-विहीन राष्ट्र है। यहाँ जो नयी परम्पराएँ डाली जा रही हैं उनको देखते हुए यही कहा जा सकता है कि हम संस्कारहीन संस्कृति को जन्म देकर उसे पोषित करने में जुटे हुए हैं।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० नगेन्द्र अभिनंदन-ग्रंथ

श्री विवेक चूडामणि

हिंदी के मूर्धन्य समीक्षक डा० नगेन्द्र का जीवन अनवरत शास्त्र-चिंतन एवं साहित्य-साधना का इतिवृत्त है। ज़मींदार परिवार में जन्म लेकर अर्ध-सामंतीय वातावरण में पलने-वाले बालक ने किशोरावस्था की देहली पर पहुँचते-पहुँचते साहित्याराधन का जो लक्ष्य अपने लिए स्थिर किया वह पहले तरुण नगेन्द्र के कवि-कंठ से काव्य-रूप में मुखरित हुआ और फिर चिंतन-मनन, अध्ययन-अध्यापन तथा लेखन-भाषण के द्विकूलों के बीच निरंतर आगे बढ़ती उनकी साधना ने सुधी समीक्षक के रूप में प्रौढि प्राप्त की। प्रस्तुत अभि-नंदन-ग्रंथ कवि नगेन्द्र से आचार्य नगेन्द्र तक की कीर्तिगाथा को, रसस्रष्टा से रसद्रष्टा तक की इस सारस्वत यात्रा को, रेखांकित करने का सुरुचिपूर्ण प्रयास है।

षष्टिपूर्ति के अवसर पर आचार्य नगेन्द्र को अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट कर महामहिम राष्ट्रपति ने हिंदी का सम्मान किया है। हिंदी-साहित्य की विविध विधाओं की श्रीवृद्धि करने के साथ नगेन्द्रजी ने हिंदी के प्रचार, प्रसार एवं उन्नयन को प्रेरणा तथा बल प्रदान किया है। उनके ग्रंथ, उनके द्वारा संस्थापित तथा अनुशासित संस्थाएं और उनके द्वारा निष्पन्न अनेक योजनाएँ दूरदर्शिता, आयोजन-क्षमता तथा कार्य-कुशलता की साक्षिणी हैं। एक ही व्यक्ति में लेखक, अध्यापक, संपादक और संयोजक के गुणों के सन्निवेश ने उनके व्यक्तित्व को विशेष गरिमा से मंडित कर दिया है। लगभग चार दशकों में व्याप्त अपनी साहित्य-साधना से डा० नगेन्द्र ने देश के मनीषियों में अन्यतम स्थान अर्जित कर लिया है। अतः राष्ट्रीय स्तर पर अभिनंदन उनके कृतित्व के पूर्णतया अनुरूप है।

पौने आठ सौ पृष्ठों का यह महद्ग्रंथ दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड—'व्यक्तित्व'—दो उपखंडों में विभक्त है : व्यक्तित्व और कृतित्व। 'व्यक्तित्व' की चित्र-शाला के चित्र सगे-संबंधियों, इष्ट-मित्रों, अध्यापक-अध्येताओं तथा सहयोगी-सहकर्मियों द्वारा अंकित हैं। इसी लिए उनमें आत्मीयता और निश्छलता, सहजता और सजीवता का सुखद संयोग है। 'अनुशासनप्रिय पिता', 'परिवार के पूरे अर्थ में गृहपति', 'संस्कारी छात्र,' 'दुर्लभ मित्र', इंतिहा दर्जे के सफल अध्यापक', 'तेजस्वी प्रोफेसर,' 'कुशल प्रशासक' और 'हिंदी भाषा एवं साहित्य के सर्वस्वीकृत स्तंभ' के क्रमशः उभरते इन छविचित्रों में उनकी 'प्रकृत और अर्जित नगेन्द्रता' को शब्दबद्ध किया गया है। इस चित्रावली में नगेन्द्रजी की संवेदनशीलता, संकल्प-शक्ति, निष्ठा, अंतर्दृष्टि, विद्वत्ता, कर्मठता और समवधानता के गहरे-उजले रंग हैं और सहृदयता, रागात्मक प्रवृत्ति, विनोदप्रियता की ताज़गी भी मौजूद है। इतना ही नहीं, 'मुखौटे और मन'—कठोर मुद्रा और भीतरी स्निग्धता—का अंतर उभारकर यह भी उजागर कर दिया गया है कि 'हिमनग सरीखे इस प्रबल प्रभावशाली व्यक्तित्व में कठोर हिम-खंड के नीचे कितनी अतल जलराशि हिलोरें ले रही हैं।'

'कृतित्व' के अंतर्गत पंद्रह लेख संकलित हैं। अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित इन लेखों में डा० नगेन्द्र के कृतित्व का सिंहावलोकन मात्र न होकर उसका सूक्ष्म विश्लेषण मिलता है। यहाँ उनके भावुक कवि-हृदय की सरस अभि-व्यक्तियों का मार्मिक विवेचन है और उनकी प्रौढ़ समीक्षात्मक रचनाओं का अनुशीलन भी। साथ ही भारतीय रसशास्त्र तथा पाश्चात्य काव्य-चिंतन के इतिहास के आलोक में डा० नगेन्द्र के योगदान का मूल्यांकन भी किया गया है। सर्वत्र प्रयत्न यही रहा है कि स्वच्छ दृष्टि से डा० नगेन्द्र की उपलब्धियों का मूल्य-निर्धारण कर साहित्येतिहास से उनका स्थान आरेखित कर दिया जाय।

डा० नगेन्द्र का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान सिद्धांत-विवेचन के क्षेत्र में है। भारतीय रस-सिद्धांत के विकास में उनकी देन अद्वितीय है। युग-युग से चिंतित रस-सिद्धांत के पुनराख्यान द्वारा डा० नगेन्द्र ने रस-तत्त्व को मानवीय अनुभूति और मानव-संवेदना के शाश्वत आधार पर प्रतिष्ठित करके कलात्मक सत्य तक पहुँचने का सशक्त प्रयत्न किया है। काव्यशास्त्र के क्षेत्र में डा० नगेन्द्र की विशिष्ट देन है पाश्चात्य सिद्धांतों की भारतीय दृष्टि से पुनर्व्याख्या। मनोविज्ञान के प्रकाश में काव्य-रचना और समीक्षा तर्कसंगत दृष्टियों का स्थापन साहित्यशास्त्र को उनका प्रमुख अवदान है, जो केवल हिंदी-काव्यशास्त्र को ही समृद्ध नहीं बनाता, अपितु भारतीय साहित्यशास्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नयी दिशा प्रदान करता है। 'इतना ही नहीं, त्यात्य एवं पौरस्त्य समीक्षाशास्त्र के सिद्धांतभूत त्वों का मंथन कर उन्होंने साहित्यालोचन की समर्थ ली का विकास किया है। हिंदी-आलोचना के क्षेत्र में डा० न्द्र ही ऐसे आलोचक हैं, जिन्होंने साहित्यशास्त्र के ानिक, युगसीमित एवं प्रकरणिक मान-प्रतिमान की ह सार्वभौम और सार्वकालिक मूल्य-मान स्थापित करने अनवरत प्रयत्न किया है। उनकी सुनिश्चित मान्यता —'भारत तथा पश्चिम के दर्शनों की तरह यहाँके काव्य-त्व भी एक दूसरे के पूरक हैं और पुनराख्यान आदि के रा उनके आधार पर हमारे साहित्य की परंपरा के कूल संश्लिष्ट आधुनिक काव्यशास्त्र का निर्माण सहज व्य है।'

दूसरे खंड में 'तुलनात्मक साहित्यशास्त्र' पर निबंधों विस्तृत संकलन है, जिससे ग्रंथ के आपेक्षिक महत्त्व और व का निःसंदेह विस्तार हुआ है। तुलनात्मक साहित्य-त्र के क्षेत्र में डा० नगेन्द्र का योगदान अत्यन्त व्यापक महनीय है। उनकी आलोचना में जिस सारग्राहिणी ज्ञा, तत्त्वान्वेषिणी मेधा तथा औदार्य का दर्शन होता वह उनके तुलनात्मक अध्ययन का ही परिणाम है। त एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के समन्वय से ही गंभीर तथा आदर्श साहित्य-त्र का निर्माण संभव है। डा० गणपतिचन्द्र गुप्त तथा इन्द्रनाथ चौधुरी के निबंधों में इस समन्वयकारी तुल-क साहित्यशास्त्र के इतिहास एवं इसकी सार्थकता का ही सफल विवेचन हुआ है।

इस खंड के अन्तर्गत डा० भगीरथ मिश्र, प्रो० रा० जोग तथा डा० के० ना० वाटवे के क्लासिकी निबंधों योजना ग्रंथ को महत्त्वपूर्ण रूप प्रदान करती है। प्रो० ने अपने निबंध में करुण रस के आस्वाद का विवेचन हुए उसे दुःखमिश्रित सुख माना है। कदाचित् यह मत को मान्य न हो, फिर भी विषय की उपस्थापना गंभीर है। डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के निबंध विज्ञान और भारतीय काव्यशास्त्र' में नवीन उप-यों एवं विचारों की सुचिंतित उपस्थापना है। शैली न समीक्षा की वह प्रणाली है जो काव्य-तत्त्व का भाषा तत्त्वों के आधार पर करती है। भारतीय शास्त्र में विभिन्न संप्रदायों के प्रवर्तक शैलीविज्ञान की न्यता से सहमत रहे हैं कि काव्य शब्दार्थ के विशिष्ट के आधार पर ही पारिभाषित किया जा सकता है; काव्य-विश्लेषण के लिए व्याकरणिक उपकरणों को -रूप में ग्रहण करना उपयोगी होता है। परन्तु डा० शिवमूर्ति पांडेय ने अपने निबंध 'काव्य-शैली के गुण-दोष' में यह स्पष्ट किया है कि मात्र भाषा-शास्त्रीय संदर्भ में काव्य-शैली पर किया गया विचार काव्य के मर्म का उद्घाटन नहीं कर सकेगा। काव्य-शास्त्रीय शैली-विचार का संदर्भ साहित्यिक होता है, मात्र भाषा-शास्त्रीय नहीं। उधर डा० सियाराम तिवारी ने पाश्चात्य और भारतीय दृष्टि से शैली का विवेचन करते हुए उसे संपूर्ण काव्य का पर्याय मान लिया है। इससे एक ओर जहाँ भाव, बुद्धि एव कल्पना तत्त्व का तिरस्कार हुआ है, वहाँ दूसरी ओर काव्य-शैली का वास्तविक रूप स्पष्ट नहीं हो पाया, जो वस्तुतः भाव और भाषा का सायुज्य है।

'काव्यानुभूति का स्वरूप' निबंध में डा० (श्रीमती) निर्मला जैन ने काव्यानुभूति की अलौकिकता को लोक संबद्ध, साथ ही लोक-भिन्न मानते हुए पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र के संदर्भ में उसकी आनन्दात्मकता एवं ज्ञानरूपता का प्रांजल विवेचन किया है। इस खंड में श्री रमेश कुंतलमेघ के दो निबंध संकलित हैं। एक में उन्होंने ओषधि-मनोविज्ञान के संदर्भ में भरत के रसानंद एवं अरस्तू के विरेचन-सिद्धान्त में दर्शन, मनोविज्ञान तथा वैद्यक के चमत्कारी प्रभाव के अन्वयन की खोज की है तथा दूसरे में पाश्चात्य त्रासदी और भारतीय नाट्य-रूपों में वर्गसघर्ष के प्राचीन एवं प्रच्छन्न रूप का अन्वेषण किया है। लेखक का निष्कर्ष है कि पाश्चात्य त्रासदी एवं संस्कृत नाटकों में कुलीनतंत्रवाद की प्रतिष्ठा है एवं इन्कलाबी लोकानुभव के शुक्लपक्ष का संपूर्ण निषेध है। हमारी दृष्टि में प्राचीन साहित्य को आज की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी चिंतनधारा में ढालने का लेखक का यह प्रयत्न बहुत सफल नहीं हुआ। स्थान, पात्र और काल के महत्त्व को भूलना अमनोवैज्ञानिक है।

डा० राजवश सहाय 'हीरा' ने अपने निबंध में भारतीय एवं पाश्चात्य अलंकार-सिद्धान्त का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है। डा० शांतिस्वरूप का साहित्यिक विधाओं पर निबंध सूचनापरक है, किंतु प्रख्यात पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का उन्होंने उचित उपयोग नहीं किया। डा० शंभूनाथ सिंह का निबंध 'महाकाव्य का स्वरूप' मौलिक एवं सारगर्भित है। बाकी निबंध भी सुखपाठ्य हैं।

'डा० नगेन्द्र अभिनन्दन-ग्रंथ' का यह खंड निश्चय ही तुलनात्मक साहित्य-शास्त्र का आधार ग्रंथ माना जायगा।

ग्रंथ के प्रकाशक ने इस बात का बराबर ध्यान रखा है कि ग्रंथ अभिनंदित व्यक्ति और उसकी आराध्य भाषा के अनुरूप हो। डा० नगेन्द्र और उनके व्याज से हिंदी भाषा एवं साहित्य के प्रति प्रकाशन-संस्थान की यह श्रद्धा भी कम अभिनंदनीय नहीं है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के सदर्भ में

श्रीमती सोनू कोचर की दृष्टि में भारतीय नारी

डॉ० हरगुलाल

आधुनिक युग नारी के सर्वतोमुखी विकास का काल है। आज नारी घर की चहारदीवारी से बाहर कला, विज्ञान, तकनीकी ज्ञान, समाज-सुधार आदि में अपूर्व योग-दान कर रही है। उसकी उपेक्षा करनेवाले युग को हम बहुत पीछे छोड़ आये हैं। नये युग की प्रभाती में उसके गीत गाये जाने बहुत जरूरी हैं। अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष उसके विकास का परिमापक है। यू० एन० ओ० द्वारा आयोजित मैक्सिको में अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में श्रीमती सोनू कोचर ने भारत की ओर से भाग लिया है। उनके विचार जानने इसीलिए मैं उनके कार्यालय आजाद भवन, नई दिल्ली गया और भारतीय नारी की महत्ता के सम्बन्ध में उनके विचार सुनकर दंग रह गया।

श्रीमती कोचर आचार-विचार से पूर्णतः भारतीय हैं। वे उन महिलाओं में हैं जो पढ़ी-लिखी, प्रशिक्षित और उच्च पद पर आसीन होने के कारण अनेक बार विदेश गयी हैं और भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करने के साथ उन्होंने भारतीयता के चिरन्तन मूल्यों को भी पुनर्स्थापित करने में सम्यक् योग दिया है। आप भारतीय महिलाओं में आई० एफ० एस० (भारतीय विदेश सेवा) में नियुक्ति पानेवाली दूसरी महिला हैं। इन्होंने आक्सफोर्ड के समर विल कॉलेज में प्रशिक्षण प्राप्त किया। श्रीमती इंदिरा गांधी ने भी इसी कॉलेज में शिक्षा ग्रहण करके वहाँके छात्र-जीवन का प्रतिमान विकसित किया था। श्रीमती कोचर अब तक अनेक उच्च पदों पर—जैसे, पेरिस में भारतीय दूतावास में दो वर्ष तक द्वितीय-तृतीय सचिव के रूप में, यूनेस्को की प्रशासकीय समिति में, विदेश मंत्रालय में यूरोप, पाक, पश्चिमी एशिया एवं उत्तरी अफ्रीका आदि से सम्बद्ध रहकर, सात वर्ष तक अवर सचिव, उपसचिव तथा निदेशक के रूप में, दो वर्ष आणविक विभाग, बम्बई की विस्फोट पदार्थों के मामलों की उपसचिव एवं अधीक्षक तथा चेयरमैन की विशेष सहायिका के रूप में और लंदन में अपने पति (महानिदेशक, इंडिया सप्लाई मिशन) के साथ तीन वर्ष राष्ट्रमंडलीय सचिवालय में—कार्य कर चुकी हैं। २१ जनवरी १९७४ में भारत सरकार ने आपको संयुक्त सचिव का पद देकर 'भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्' की सचिव नियुक्त किया। तब से आप इस संस्था का संचालन बहुत ही सौहार्दपूर्ण ढंग से कर रही हैं।

ऐसी अनुभवी और उत्तरदायी महिला का यह कहना है कि विदेशी महिला की तुलना में भारतीय नारी अधिक सुखी है। हमारे देश में नारी को बहुत सम्मान मिलता है। हमारे समाज में जो आदर उसे दिया जाता है वह और कहीं नहीं है। तभी तो चैक महिलाओं के शिष्ट मंडल ने हरियाणा की नारी के जीवन को देखकर कहा था—हम जिन अधिकारों के लिए पुरुष से लड़ रही हैं भारतीय नारी को वे अधिकार बिना माँगे मिल रहे हैं। निश्चय ही उनका संकेत भारतीय नारी के गृह-लक्ष्मी रूप की ओर था। भारत और विदेश की नारी में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि एक को उसके गुणों के कारण पूजा जाता है और दूसरी को उसके आकर्षण के कारण विलास की सामग्री माना जाता है। तभी तो विदेश की नारी का जीवन अशान्त और अस्थिर है। भारत की नारी जीवन भर एक पुरुष के साथ रहकर अपने दुःख को हँसते-हँसते सहन कर जाती है, जब कि विदेशी महिला यौनाचार की स्वतन्त्रता में अनेक पुरुषों के साथ रहकर भी सच्चे साथी के लिए भटकती है।

मेरे यह कहने पर कि भारत अब भौतिक युग में प्रवेश कर रहा है, क्या इसका सीधा प्रभाव हमारे देश की नारी के आचार-विचार पर नहीं पड़ेगा, उन्होंने मन में गहरी वेदना सँजोकर कहा—बड़े दुःख की बात है कि विदेशी कामुकता (सैक्स) का जो अतिवादी दृष्टिकोण लेकर चल रहे हैं धीरे-धीरे उन्हींकी विचारधारा भौतिक सुख-साधनों की समृद्धि के साथ हमारे देश में पनप रही है। इससे बड़ा देश का दुर्भाग्य और क्या होगा? हमारे देश की फिल्में कामुक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृश्यों को उभाड़ना अपनी सफलता मानती हैं, जब कि विदेश की फिल्में इससे किनारा करने लगी हैं। कितना अजीब है कि हम दूसरों से सीख न लेकर उनकी भूल का अनुकरण करने में लग जाते हैं। यों हमारे देश में काम करनेवाली महिलाओं को विदेश में काम करनेवाली महिलाओं की तरह सुविधाएँ नहीं हैं, न लंच पैकिट है, न यातायात की सुविधाएँ हैं, न ट्रेण्ड नर्सें (प्रशिक्षित परिचारिकाएँ) हैं और न 'चिल्ड्रन केयर होम्स' (बाल-रक्षानिकेतन) हैं, फिर भी संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली का वृद्ध ससुर या सास बच्चों को अच्छी तरह देख सकते हैं। हर मामले में पश्चिम की तरफ देखने का अर्थ होगा अपने को भूलना, जो किसी भी रूप में ठीक नहीं है।

दहेज-प्रथा उनकी दृष्टि में भारत की नारी का सबसे बड़ा अभिशाप है। यों तो दहेज के समर्थक इसका सम्बन्ध और प्रचलन प्राचीन काल से सिद्ध करते हैं, परन्तु सही बात तो यह है कि पहले दहेज देने में स्वेच्छा से काम लिया जाता था और अब दहेज लेने में दबाव को प्रधानता दी जाती है। हर तरह से लड़कीवाले को निचोड़ना वर पक्ष अपना प्राथमिक कर्त्तव्य मानता है। पैसेवाला ब्लैक मनी (काला धन) लड़की की शादी में लगाकर गरीब माँ-बाप के लिए दहेज का भाव काफी ऊँचा कर देता है। दुःख की बात तो यह है कि पढ़ा-लिखा युवक भी अपने स्तर के अनुसार शादी की माँग करके दहेज माँगता है। इस प्रथा को नारी ही रोक सकती है। क्यों नहीं एक माँ अपने जवान बेटे को तमाचा लगाकर यह कहती है कि मुझे दहेज नहीं बहू चाहिए। पर अजीब बात यह है कि अपनी बारी आने पर हर माँ अपने लिए और नाते-रिश्तेदारों के लिए स्वयं कीमती कपड़ों और आभूषणों की माँग करती है। वह सोचती है कि जब मैंने दहेज दिया है तब अपनी बारी आने पर मैं दहेज क्यों न लूँ। उसकी इस विचारधारा को अगर हमने बदल दिया तो दहेज एक दिन में खत्म हो जायगा।

उच्च पद पर कार्य करते हुए भी श्रीमती कोचर घर का कार्य स्वयं करती हैं। बच्चे को स्नान कराने से लेकर पश्चिमी 'डिश' (विलायती ढंग का भोजन) बनाने का कार्य वे बड़े चाव से करती हैं। वे कभी-कभी सोचती हैं कि अपने बच्चे के विकास में मैं उतना समय नहीं दे पा रही जितना सामान्य माँ दे पाती है। इसके लिए उनके मन में कचोट निरन्तर बनी रहती है। उनका विचार है कि भारतीय परिवार में एक-दूसरे के लिए त्याग बहुत बड़ी चीज है। हमारे परिवारों का यह त्याग संसार भर में बेजोड़ है। उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन से उदाहरण देकर कहा कि पति के बिना, अकेले ही विदेश जाने का अवसर मैंने त्याग दिया, क्योंकि मैंने सोचा कि विदेश जाना प्रमुख नहीं, घर को देखना नितान्त आवश्यक है। भारत की नारी सचमुच गृहलक्ष्मी है और इस नाते घर के प्रति उसका महान् दायित्व है।

उनकी दृष्टि में भारतीय नारी एक शक्ति है। वह दुर्बल नहीं है। देश को ऊँचा उठाने में उसका भी हिस्सा है। वह गार्गी और मैत्रेयी की परम्परा में है। यह बात अलग है कि पन्द्रहवीं शती के बाद उसके जीवन में पर्दा-प्रथा का समावेश हो गया और उसका कार्य-क्षेत्र सीमित हो गया, पर अब सामाजिक ढाँचे के निर्माण में नारी का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है। पारसी परिवार में जन्मी-पली भारत की एक महान् नारी से विचार-विमर्श करके मन पुलक से भरा था। बहुत दिनों से अटकी 'प्रसाद' की पंक्ति मन में पुनः ताजी हो गयी—'नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजतनग-पगतल में।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेरशाह सूरी का आश्चर्यजनक उत्थान

(सन् १५४० से १५४५ ई०)

श्री फूलचन्द त्रिपाठी

सूर एक क़बीले का नाम था जो अफ़ग़ानिस्तान में रहता था। ये लोग अपने को मुहम्मद ग़ोरी का वंशज मानते थे। शेरशाह के पूर्वज इसी क़बीले के थे। अतएव वह भी सूर कहलाते थे। जब शेरशाह ने दिल्ली में अपने नये राजवंश की स्थापना की तब वह सूरवंश के नाम से विख्यात हुआ। शेरशाह हिन्दुस्तान की उन महान् विभूतियों में है, जिसने साधारण कुल में जन्म लेकर अपनी महान् प्रतिभा के बल से जीवन के क्षितिज में क्रमशः ऊँचे उठकर राजपद के मध्याह्न पर पहुँचकर अपने गौरव के आलोक को दिग्-दिगन्त में प्रसारित किया था। हिन्दुस्तान में द्वितीय अफगान साम्राज्य स्थापित करने का श्रेय उसीको प्राप्त है और इस कार्य को उसने उस समय सम्पन्न किया जिस समय अफगानों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो चुकी थी और वे निराश हो चुके थे।

प्रारम्भिक जीवन

शेरशाह का बचपन का नाम फरीद खाँ था। जब उसने एक शेर का वध किया, तब उसका नाम शेरखाँ पड़ गया और जब उसने हमायूँ को परास्त कर दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार कर लिया तब वह शेरशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

फ़रीद के पितामह का नाम इब्राहीम और पिता का हसन था। इब्राहीम अफगानिस्तान के रौह नामक स्थान का निवासी था। वह घोड़ों का व्यापार किया करता था। इससे उसे अधिक आमदनी नहीं होती थी। इससे उसका जीवन अर्थ-कष्ट में व्यतीत होता था। जब बहलोल लोदी ने अफगानों को भारत में आने के लिए आमंत्रित किया तब इब्राहीम ने उस निमंत्रण का स्वागत किया। वह अपने पुत्र के साथ हिन्दुस्तान चला आया। उसने हिसार फिरोज़ा में जमाल खाँ नामक एक अफगान अफसर के यहाँ नौकरी कर ली। जमाल खाँ ने उसे कुछ गाँव जागीर में दे दिये जिनसे वह अपना खर्च आसानी से चला सके। अपनी कर्तव्यपरायणता से वह धीरे-धीरे उन्नति करने लगा। वह ५०० घोड़ों का सरदार बन गया। हिसार फिरोज़ा या नारनौल में ही हसन की अफगान पत्नी से फ़रीद का जन्म हुआ। फ़रीद की जन्म तिथि का निश्चित पता इतिहास के विद्वान् अब तक नहीं लगा पाये। कुछ विद्वान् सन् १४७२ ई० और कुछ लोग सन् १४८६ ई० उसकी जन्मतिथि मानते हैं।

इब्राहीम की मृत्यु के बाद हसन अपने पिता की जागीर का मालिक बना। उसकी चार पत्नियाँ थीं। उनमें एक अफ़ग़ानी थी और शेष तीनों नौकरानियाँ थीं। अफगान स्त्री से उसके दो पुत्र थे। पहला फ़रीद और दूसरा निज़ाम। शेष तीन स्त्रियों के चार पुत्र थे। हसन का अपनी सबसे छोटी पत्नी से अधिक प्रेम था। उसके सुलेमान तथा अहमद नामक दो पुत्र थे। इनके प्रति भी हसन का विशेष स्नेह था।

कुछ दिनों के बाद जमाल खाँ पूर्वी प्रान्तों का सूबेदार बनाकर भेज दिया गया। हसन भी अपने परिवार के साथ जमाल खाँ के यहाँ चला गया और बिहार सूबे के सहसराम कस्बे (शाहाबाद) में बस गया। उसके मालिक जमाल खाँ ने उसे सहसराम और खवासपुर-टाँडा जागीर में दे दिया। यद्यपि हसन बड़ी जागीर का मालिक था तथापि उसका पारिवारिक जीवन बड़ा कलहपूर्ण था। वह फ़रीद के सौतेले भाइयों पर विशेष कृपा रखता था और उसकी उपेक्षा किया करता था। अतएव फ़रीद अपने पिता से खिन्न हो गया। एक दिन चुपके से वह रियासत जौनपुर चला गया। जौनपुर उस समय मुस्लिम संस्कृति का महान् केन्द्र था। वहाँ अरबी और फ़ारसी के बहुत बड़े-बड़े विद्यालय और नामी-नामी विद्वान् थे। फ़रीद के सामने घोर अर्थ-कष्ट था, पर उसमें अपूर्व साहस था। जौनपुर प्रान्तीय सरकार की राजधानी था।

फ़रीद एक विद्यालय में भरती हो गया। वह वहाँ कई वर्षों तक रहा। उसकी बुद्धि और स्मरण शक्ति विलक्षण थी। उसके अध्यापक उसकी योग्यता और प्रतिभा से अत्यन्त प्रसन्न और आश्चर्य-चकित थे। वह अपने समय का सदुपयोग करता था। थोड़े ही दिनों में उसने फ़ारसी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और कुछ अरबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा भी सीख ली । यद्यपि उसने कई विषयों का अध्ययन किया था तथापि उसे इतिहास और महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ने का विशेष शौक था । प्रान्त की राजधानी में रहकर उसने सैनिक तथा प्रशासकीय विभागों का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया । उसने अनेक फकीरों, साधु-सन्तों तथा विद्वानों से भी अपना सम्पर्क बना लिया तथा समय निकालकर वह उन लोगों से मिलता रहता । फ़रीद ने अपने व्यक्तिगत गुणों का भी पूर्ण परिचय दिया और बुद्धिमत्ता, सद्व्यवहार, परिश्रमशीलता, व्यवहार-कुशलता तथा पौरुष के बल से उसने जौनपुर में बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली ।

फ़रीद का सुयश हसन के कानों में पहुँचा । वह अपने ऐसे प्रतिभावान पुत्र की उपेक्षा करने पर बहुत पछताया । हसन के मित्रों ने भी उसे बहुत समझाया-बुझाया और कहा कि इस सुयोग्य पुत्र को अपने पास बुलाकर जागीर का प्रबन्धक बना दो । हसन जौनपुर गया । फ़रीद से मिला और उससे घर चलने का अग्रह किया । जौनपुर के प्रसिद्ध व्यक्तियों ने पिता-पुत्र में मेल करा दिया । हसन फ़रीद को साथ लेकर सहसराम आया और उसने उसे जागीर का प्रबन्ध सौंप दिया ।

फ़रीद ने जागीर का प्रबन्ध हाथ में लेते ही उसमें सुधार करना आरंभ कर दिया । उसके पूर्व जागीर में बार-बार उपद्रव हुआ करते थे । कभी-कभी अराजकता भी फैल जाती थी । फ़रीद ने बड़ी कठोरता के साथ उपद्रवियों का दमन किया और जागीर में पूर्ण शांति स्थापित की । उसके सुप्रबन्ध से किसान और ज़मींदार सभी प्रसन्न थे । उसने जागीर की आमदनी भी बढ़ा दी । जागीर के सुप्रबन्ध तथा उसकी सम्पन्नता को देखकर हसन अत्यन्त हर्षित हो उठा, परन्तु फ़रीद की सौतेली माँ के हृदय में ईर्ष्या की अग्नि प्रज्वलित हो उठी । उसने हसन से अनुरोध किया कि मेरे पुत्रों को भी एक बार जागीर का प्रबन्ध करने का अवसर दिया जाय । फ़रीद ने लगभग २० वर्ष तक जागीर का प्रबन्ध किया था । हसन ने अपनी पत्नी की बात मान ली और फ़रीद से कहा कि तुम अपने भाइयों को भी कुछ दिन जागीर का प्रबन्ध करने दो । फ़रीद को यह बात बहुत बुरी लगी । उसने पिता की इस बात का विरोध करना चाहा, पर सोच-विचारकर जागीर का प्रबन्ध पिता को सौंप दिया और कहीं अन्यत्र जाकर अपनी भाग्य-परीक्षा करने की तैयारी की । सहसराम से वह सरकार जौनपुर के नत्थूपुर परगने में स्थित दरगाह ग्राम में रहनेवाले प्रसिद्ध सन्त अहमदशाह वादया उर्फ मीराशाह के पास चला आया । वह जौनपुर में पढ़ते समय उनसे कई बार मिल चुका था । उसने उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया । मीराशाह ने उसे धैर्य धारण करने को कहा । साथ ही यह शुभाशीष दिया कि तुम प्रयत्न करते रहो, शीघ्र ही तुम्हें सफलता मिलेगी और तुम बड़े बादशाह बन जाओगे । फकीर के दर्शन और सुभाशीष से फ़रीद को कुछ शांति मिली । वह दरगाह सन् १५१९ ई० की शरद ऋतु में २० नवंबर को आया था और १० दिन तक फकीर की सेवा में रहा था । मीराशाह ने फ़रीद से ईश्वर प्रार्थना कराकर अपनी तपस्थली की लौह जंज़ीर में सूत की एक गाँठ लगवा दी थी और कहा था कि जब तुम बादशाह हो जाना तब यहाँ आकर इस गाँठ को खोल देना । फ़रीद ने इसे स्वीकार कर लिया ।

दरगाह से फ़रीद आगरे को रवाना हो गया । वहाँ पहुँचकर उसने दौलत खाँ के यहाँ नौकरी कर ली । उसकी सेवाओं से दौलत खाँ अत्यन्त प्रसन्न हो गया । दौलत खाँ ने सुल्तान इब्राहीम लोदी के पास पत्र भेजकर यह प्रार्थना की कि वह हसन की सहसराम की जागीर फ़रीद को दे दें । सुल्तान ने दौलत खाँ की प्रार्थना यह कहकर अस्वीकार कर दी कि फ़रीद ने अपने पिता की शिकायत करके बड़ा बुरा काम किया है । परन्तु फ़रीद का भाग्य एकाएक जाग उठा । सन् १५२० ई० में हसन का शरीरान्त हो गया । इसकी सूचना पाते ही उसने आगरे से सहसराम के लिए प्रस्थान कर दिया । वहाँ पहुँचते ही उसने अपने भाइयों को मार भगाया और अपने पिता की जागीर पर अधिकार स्थापित कर लिया । परन्तु उसके भाई भी चुप नहीं बैठे, कुचक्र रचते रहे । उन्हें चौंद के जागीरदार मुहम्मद खाँ सूर का भी संरक्षण तथा समर्थन प्राप्त हो गया जो बड़ा प्रभावशाली व्यक्ति था । इससे फ़रीद बड़ी संकटापन्न स्थिति में पड़ गया ।

अपने भाइयों के कुचक्र को काटने के लिए फ़रीद ने बिहार के शासक बहादुर खाँ नूहानी के यहाँ नौकरी कर ली जिसके प्रभाव का प्रयोग कर वह अपने भाइयों के कुचक्र को निष्फल बना सकता था । अपनी योग्यता तथा परिश्रमशीलता से फ़रीद ने नये स्वामी को मुग्ध कर लिया । इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

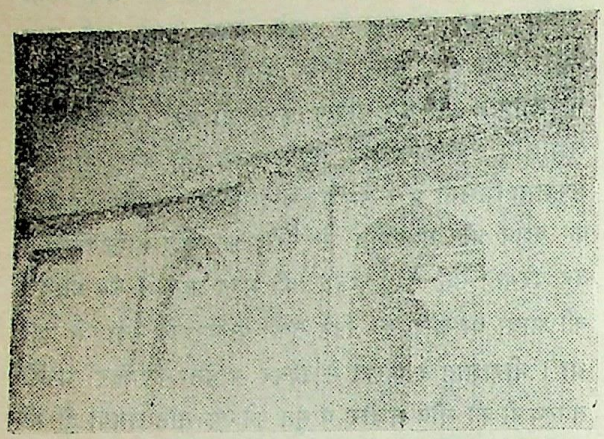

शेरशाह सूरी की पुत्री माहबानू की समाधि का कमरा

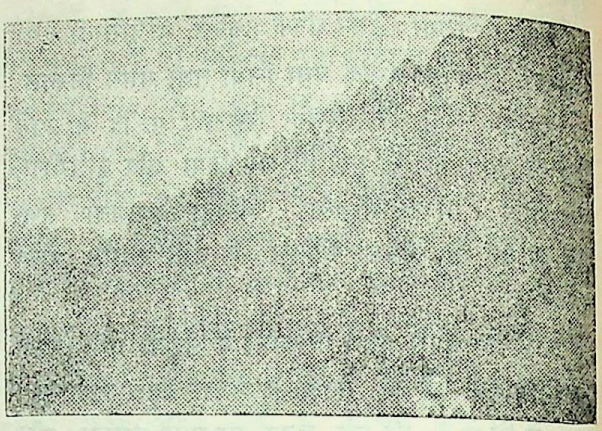

शेरशाह के बनवाये किले की दक्षिणी मीनार

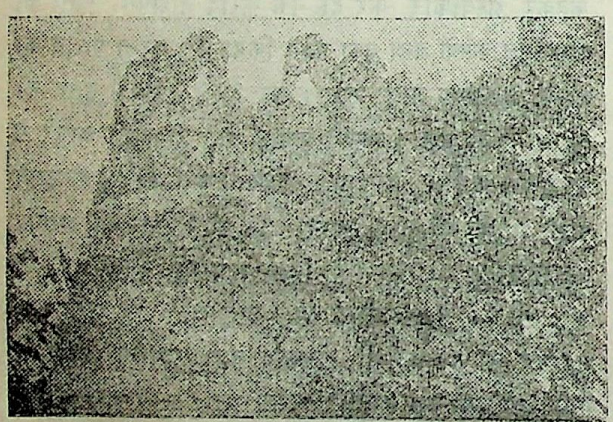

किले का भीतरी पश्चिमी भाग

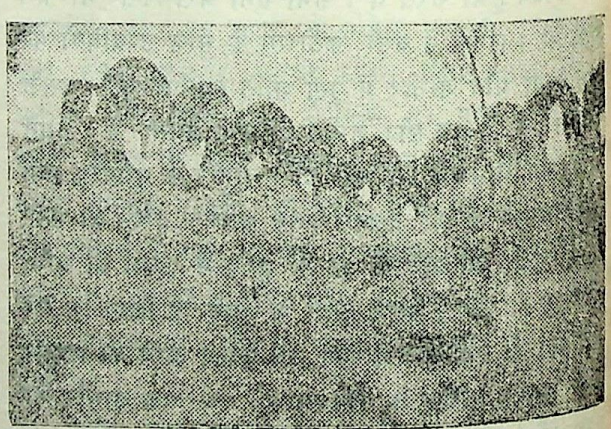

किले के भीतर का उत्तरी भाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय फ़रीद ने एक शेर का शिकार किया। अपने सेवक की वीरता तथा साहस से प्रसन्न होकर बहादुर खाँ ने उसे शेरखाँ की उपाधि से विभूषित कर दिया। तभी से फ़रीद खाँ शेरखाँ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। थोड़े ही दिन बाद शेरखाँ शाहजादा जलाल खाँ का नायब तथा शिक्षक नियुक्त कर दिया गया। इससे उसके प्रभाव तथा उसकी प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हो गयी।

एक बार शेरखाँ छुट्टी लेकर अपनी जागीर पर चला गया, परन्तु अकारण वह अधिक दिनों तक रुक गया। इससे उसके शत्रुओं ने लाभ उठाने का प्रयत्न किया। मुहम्मद खाँ सूर ने बिहार के सुल्तान को भड़काया। वह शेरखाँ से नाराज़ हो गया। जब शेरखाँ आया तब मुहम्मद खाँ ने उससे कहा कि जागीर में अपने भाइयों को भी हिस्सा दो। शेरखाँ ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इससे अप्रसन्न हो कर मुहम्मद खाँ ने उसकी जागीर पर आक्रमण कर दिया। स्थिति को सँभालने में अपने को असमर्थ पाकर शेरखाँ भाग खड़ा हुआ और उसने जुनैद बर्लस के यहाँ नौकरी कर ली जो उन दिनों मुग़ल बादशाह बाबर के पूर्वी प्रान्तों का गवर्नर था। अपने नये स्वामी की सहायता से शेरखाँ ने मुहम्मद खाँ को मार भगाया। वह फिर अपनी जागीर का स्वामी बन गया। जुनैद शेरखाँ से इतना प्रसन्न हो गया कि वह उसे अपने भाई खलीफा के पास आगरे ले गया, जो बाबर का प्रधान मंत्री था। खलीफा ने शेरखाँ को मुग़ल सेना में रख लिया। इस नौकरी पर शेरखाँ १५ महीने तक रहा। इस प्रकार मुग़लों के सैनिक संघटन, उनकी रणपद्धति तथा उनकी शासन-व्यवस्था का उसने अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। बाबर भी शेरखाँ की प्रतिभा से बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने उसकी जागीर में उसकी पुनर्स्थापना कर दी।

अब शेरखाँ ने बड़ी तन्मयता के साथ अपनी जागीर का प्रबन्ध करना शुरू किया, परन्तु वह अधिक दिनों तक वहाँ रह न सका। बिहार के शासक बहादुर खाँ का परलोक-वास हो गया और उसके स्थान पर उसका अल्पवयस्क बालक जलाल खाँ शासक हुआ जिसका शिक्षक शेरखाँ रह चुका था। जलाल खाँ की माँ दूदू उसकी संरक्षिका बन गयी। दूदू ने शेरखाँ को बुला भेजा और उसे नायब के पद पर नियुक्त कर दिया। इस पद पर रहकर शेरखाँ ने कूटनीति तथा शासन-कला का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया, जो उसके लिए भविष्य में लाभदायक सिद्ध हुआ।

शेरखाँ की लड़ाइयाँ

बिहार में शेरखाँ की शक्ति तथा उसका प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ता गया और थोड़े ही दिनों में वह राज्य का सर्वेसर्वा बन गया। इससे नूहानी अफ़ग़ानों को बड़ी ईर्ष्या पैदा हो गयी और वे उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे।

बंगाल के शासक के साथ संघर्ष—असन्तुष्ट नूहानी अफ़ग़ान बिहार से भागकर बंगाल पहुँचे। उन्होंने वहाँके शासक नसरतशाह से बिहार पर आक्रमण करने की याचना की, जिससे वे फिर अपनी खोयी हुई शक्ति प्राप्त कर लें। नसरतशाह ने इस सुअवसर से लाभ उठाने का प्रयत्न किया और बिहार पर आक्रमण कर दिया। परन्तु शेरखाँ ने बंगाल की सेना को परास्त कर दिया और उसे मार भगाया। नसरतशाह के मरने के बाद उसके पुत्र महमूद ने भी बिहार पर आक्रमण किया परन्तु शेरखाँ ने सूरजगढ़ के युद्ध में उसे बुरी तरह हराया। भारतीय इतिहास के विद्वान् सूरजगढ़ के युद्ध को शेरखाँ के लिए बहुत ही लाभप्रद बताते हैं। इस युद्ध में शेरखाँ को युद्ध का बहुत-सा सामान मिला। इसने नहानियों की शक्ति नष्ट-भ्रष्ट कर दी। इससे बंगाल के शासक की दुर्बलता का पता लग गया। शेरखाँ की महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में इससे बड़ी सहायता मिली और वह बिहार का स्वतन्त्र शासक बन गया।

अब शेरखाँ ने बंगाल पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। सन् १५२५ ई० में उसने बंगाल के शासक को परास्त कर उससे तेरह लाख दीनार वसूल किये। सन् १५३७ ई० में शेरखाँ ने फिर बंगाल पर आक्रमण कर गौड पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। महमूदशाह ने भागकर हुमायूँ की शरण ली।

चुनार पर अधिकार—चुनार का दुर्ग बड़ा ही सुदृढ तथा अभेद्य समझा जाता था। अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण यह पूर्व का फाटक माना जाता था। यह दुर्ग इब्राहीम लोदी के सरदार ताजखाँ के अधिकार में था। वह अपनी पत्नी लाद मलिका के वश में था। एक रात ताज खाँ की अन्य पत्नी से उत्पन्न उसके बड़े पुत्र ने लाद मलिका पर आक्रमण कर उसे घायल कर दिया। उसने अपने पिता की भी हत्या कर दी। वह चुनार से भाग खड़ा हुआ। शेरखाँ ने इस सुअवसर से लाभ उठाया। उसने दुर्ग पर अधिकार कर लिया और लाद मलिका से विवाह कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया। उसे दुर्ग में बड़ी सम्पत्ति मिली। इससे शेरखाँ की शक्ति में बड़ी वृद्धि हो गयी। सन् १५३८ ई० में जब शेरखाँ बंगाल में व्यस्त था तब हुमायूँ ने इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

रोहतासगढ पर अधिकार—चुनार के हाथ से निकल जाने के कारण शेरखाँ को बड़ी क्षति पहुँची। इसकी पूर्ति करना आवश्यक था। फलतः शेरखाँ की दृष्टि रोहतास के दुर्ग पर पड़ी। वहाँका राजा चिन्तामणि शेरखाँ का मित्र था। अतएव शेरखाँ ने थोड़े समय के लिए उससे दुर्ग माँग लिया और अपनी स्त्रियों-बच्चों को वहाँ भेज दिया। राजा के अफसरों को हटाकर अपने अफसर-नियुक्त कर दिये और दुर्ग पर स्थायी रूप से अधिकार कर लिया। शेरखाँ का यह कार्य बड़े विश्वासघात का था। इससे उसके चरित्र पर भारी कलंक लगता है। परन्तु उस युग की राजनीति में इस प्रकार के कार्य बहुत सामान्य थे। अपनी शक्ति वृद्धि के लिए दुर्ग पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना शेरखाँ के लिए आवश्यक था, चाहे वह इस कार्य को बाहुबल से करता या कूटनीति से।

हुमायूँ से संघर्ष—हुमायूँ के साथ शेरखाँ का प्रथम संघर्ष चुनार के दुर्ग के लिए आरम्भ हुआ। अन्त में दुर्ग पर हुमायूँ का अधिकार स्थापित हो गया। इसके बाद जब हुमायूँ गौड में था तब शेरखाँ ने मुगल साम्राज्य पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। जब हुमायूँ गौड से लौटा तब शेरखाँ ने रास्ते में चौसा के युद्ध में उसे बुरी तरह परास्त किया। इसके बाद फिर कन्नौज और बिलग्राम के युद्धों में उसने उसको हराया। इस प्रकार उसे राज्य से निष्कासित कर मुगल साम्राज्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। अब शेरखाँ ने शेरशाह की उपाधि धारण की, अपने नाम का खुतबा पढ़वाया, अपने नाम के सिक्के चलवाये और वह अपने साम्राज्य के संघटन तथा विस्तार के कार्य में संलग्न हो गया।

साम्राज्य का संघटन—दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के बाद शेरशाह के सामने दो तात्कालिक समस्याएँ थीं। पहली थी सीमा की सुरक्षा की और दूसरी थी मुगलों के प्रत्यागमन को रोकने की। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए ये दोनों कार्य आवश्यक थे और शेरशाह इन्हींमें जुट गया।

सबसे पहले उसने पश्चिमोत्तर प्रदेश की ओर ध्यान दिया। यहाँ पर धक्करों की बड़ी खूँखार जाति रहती थी, जिसकी मुगलों के साथ बड़ी सहानुभूति थी। अतएव शेरशाह ने उनके पास अपनी अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव भेजा। वह ठुकरा दिया गया। फलतः शेरशाह ने उनके प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। उनके गाँवों को जलाकर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। वहाँ पर स्थायी रूप से शान्ति स्थापित करने के लिए रोहतास नामक स्थान पर शेरशाह ने टोडरमल्ल खत्री के निरीक्षण में एक सुदृढ दुर्ग के निर्माण करने की आज्ञा दी। यह दुर्ग रोहतासगढ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसमें शेरशाह ने युद्ध की सामग्री इकट्ठा कर दी और कुशल सैनिकों की एक सेना रख दी। इस प्रकार पश्चिमोत्तर प्रदेश में स्थायी रूप से शान्ति बनाये रखने की व्यवस्था शेरशाह ने कर दी।

इसके बाद शेरशाह मौका निकालकर अपने परिवार के सहित सन्त मीराशाह (सैयद अहमद बादया) की दरगाह में, जो ग्राम दरगाह, परगना नत्थूपुर, थाना मधुबन, जिला आजमगढ़, उत्तर प्रदेश में है, उपस्थित हुआ। शेरशाह अब बादशाह हो गया था। अतः उसके आगमन पर यहाँ बहुत धूमधाम से तैयारी होने लगी। वह सन्त मीरा की दरगाह में उपस्थित हुआ और उस सिद्ध महात्मा को बताया कि आपका शुभाशीर्वाद पूरा हुआ, मैं सचमुच बादशाह हो गया। मीराशाह ने परमात्मा की कृपा बतायी और कहा कि बेटा अब तुम प्रजा का कल्याण करने में दत्तचित्त हो जाओ। शेरशाह ने सन्त मीराशाह को वचन दिया कि मैं प्रजा को सुख शान्ति देने में ही अपना जीवन व्यतीत करूँगा। दरगाह में शेरशाह का शुभागमन जेठ सुदी १० के बाद प्रथम बृहस्पतिवार को सन् १५३९ ई० में हुआ था। सन्त मीराशाह ने बादशाह और उसके पूरे परिवार को खूब शुभाशीष दिये। शेरशाह की पुत्री ने इसी अवसर पर मीराशाह का प्रथम दर्शन किया था। वह डेढ़ वर्ष बाद फिर वहाँ गयी और सन्त की सेवा में लग गयी। बाद में शेरशाह की आज्ञा से उसके निवास के लिए दरगाह में किला बनाया गया और उसने पुत्री के जीवन-निर्वाह के लिए पाँच सौ ग्रामों की माफी दे दी। ये ग्राम जौनपुर सरकार के परगना सिकन्दरपुर पूर्वी, सिकन्दरपुर पश्चिमी, नत्थूपुर सगड़ी, चकेसर और घोसी में थे, जिनका उल्लेख माफीनामों में है। कुछ माफीनामे नष्ट हो चुके हैं और कुछ मौजूद हैं।

किले के प्रबन्धकों की वंशावली आगे दी जा रही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्होंने माहबानू और सन्त मीराशाह की अपूर्व सेवा की थी। माहबानू और सन्त मीराशाह की समाधि पर अब तक जेठ और आषाढ में हर वृहस्पतिवार को लगातार सात दरगाहें लगती हैं। इन दरगाहों में पाँचवीं दरगाह सबसे बड़ी होती है जिसमें कम से कम ६०-७० हज़ार नर-नारी हिन्दू-मुसलमान इकट्ठे होते हैं।

माहबानू की सुशीलता और जनता के साथ उसके उत्तम व्यवहार की प्रशंसा अब तक होती है। बादशाह शेरशाह की इस सुपुत्री की समाधि की पूजा हिन्दू-मुसलमान सभी भक्तिपूर्वक करते हैं। इस विदुषी महिला के हाथ की लिखी कुरान की एक छोटी पुस्तक उसके समाधि-गृह के प्रबन्धक के पास आज तक रखी है जिसकी भी लोग पूजा करते हैं।

शेरशाह की मृत्यु २२ मई सन् १५४५ ई० को कालिंजर के दुर्ग में बारूदखाने में आग लगने से हुई थी। उसने अपने बड़े पुत्र आदिल खाँ को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था, पर उसकी मृत्यु के बाद दरबार के अमीरों ने उसके छोटे पुत्र इस्लामशाह को गद्दी पर बैठा दिया। इस्लामशाह का असली नाम जलाल खाँ था। इस्लामशाह अपने बड़े भाई को कैद करके अपना सिंहासन निष्कंटक बनाना चाहता था। आदिल खाँ अपनी बहिन के पास उपर्युक्त दरगाह चला आया और उसने इस्लामशाह की नीचता का वर्णन सुनाया। माहबानू को इस्लामशाह के इस दुर्व्यवहार से बड़ा दुःख हुआ। इस्लाम शाह ने उस क्षेत्र के राजाओं (भझौली और मधुबन के नरेशों-राजा प्रसाद मल्ल और माधव मल्ल) को दिल्ली बुलाया। उनसे कहा कि आप लोग आदिल खाँ को अपने यहाँ छिपाये हुए हैं। उसे मेरे जिम्मे कीजिए। राजाओं ने कहा कि वह हम लोगों के यहाँ आये थे और थोड़े दिन रहकर अपनी बहिन माहबानू के पास चले गये थे। वहाँसे पता नहीं, कहाँ गये।

इस्लामशाह ने दोनों राजाओं को दिल्ली में कैद कर लिया। जब यह खबर भझौली और मधुबन पहुँची तब उन राजाओं की रानियों ने एक-एक प्रार्थनापत्र और अपनी-अपनी सिंदूर की डिबियों को माहबानू के पास सविताराय भट्ट कवि के हाथ भेजा। उस भट्ट ने माहबानू को सारी स्थिति बतायी और उनसे इस्लामशाह के नाम एक पत्र लिखवाकर राजाओं को तुरन्त छोड़ देने को कहा।

माहबानू ने अपने भाई इस्लामशाह को पत्र लिखकर राजाओं को निर्दोष बताया और उनको मुक्त करवा दिया। माहबानू के इस सज्जनतापूर्ण सद्व्यवहार का बयान आज भी इस क्षेत्र की जनता करती है। माहबानू परम दयालु, सुशिक्षित, परोपकारी, ईश्वर भक्त और आदर्श महिला थी। उसके इन्हीं गुणों के कारण स्थानीय जनता आज भी बिना किसी धार्मिक भेदभाव के उसकी दरगाह पर श्रद्धा से जाती है।

इस लेख में शेरशाह के राज्य के प्रबन्ध और शासन प्रणाली के प्रशंसनीय सुधारों का वर्णन नहीं किया गया। उसके लिए एक स्वतन्त्र लेख अपेक्षित है। इसमें तो उसके उत्थान की रूपरेखा मात्र देने का प्रयत्न किया गया है और यह उसकी पुत्री माहबानू के चरित्र की भूमिका के रूप में है। मकबरे का वर्णन अगले लेख में किया जायगा।

शेरशाह सूरी की वंशावली

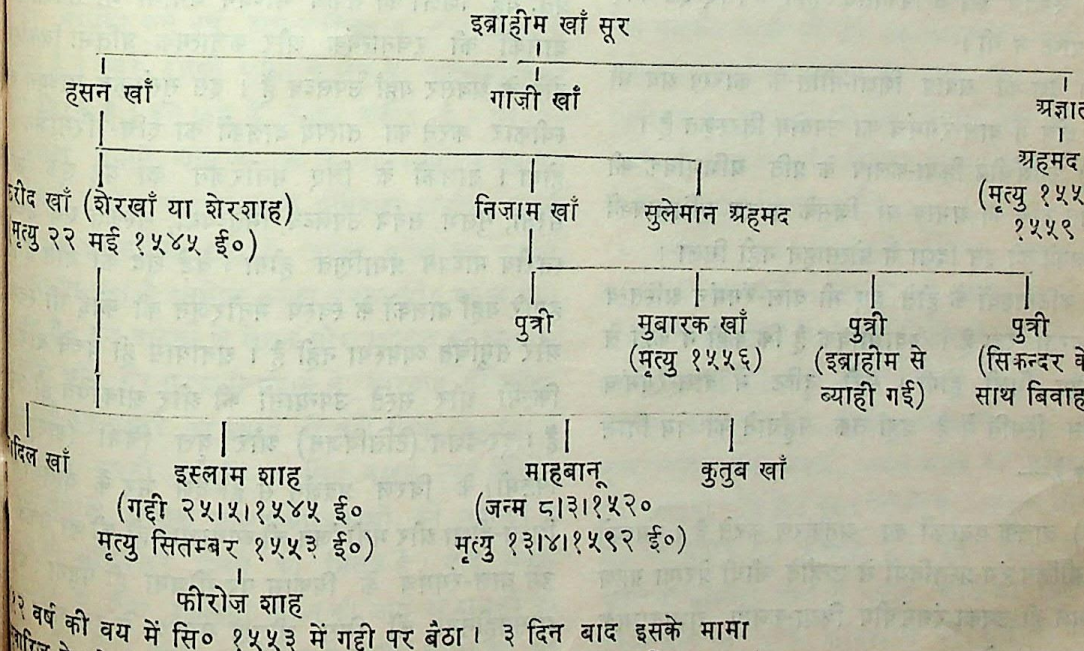

१२ वर्ष की वय में सि० १५५३ में गद्दी पर बैठा। ३ दिन बाद इसके मामा मुबारिज ने इसे मारकर गद्दी ले ली और अपना नाम महमद शाह आदिल रखा।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभावनाओं की दस्तकें : बाल-रंगमंच

प्रो० नरनारायण राय

आधुनिक हिन्दी रंगमंच के संदर्भ में 'बाल-रंगमंच' से सम्बद्ध चिंतन एक नयी बात है। अपने मनोरंजन के लिए बच्चे अपनी रुचि और परिश्रम से जो प्रस्तुति आयोजित करते हैं, आवश्यकतानुसार जिसे वयस्कों का सहयोग भी मिलता है वह समस्त व्यापार 'बाल-रंगमंच' के अन्तर्गत आता है। बाल-रंगमंच बालकों की रचनात्मक और कलात्मक रुचि को पोषित और परिवर्द्धित करता है। स्वतन्त्रता-पूर्व तक वयस्कों के रंगमंच की ही स्थिति दृढ़ नहीं थी तो बाल-रंगमंच का विकास क्या होता। स्वातंत्र्योत्तर भारत में बाल-विकास की दो विभिन्न योजनाएँ कार्यान्वित की गयी हैं बाल-रंगमंच उनका एक स्वल्प विकसित अंग है। स्वतंत्र भारत में भी अब तक बाल-रंग-मंच का उचित विकास नहीं हो पाया है। इसके कई कारण हैं—

(१) बाल-रंगमंच पर रंग-चिंतकों का ध्यान सबसे बाद में गया।

(२) साहित्यिक और कलात्मक रंगमंच के सुदृढ होने पर ही बाल-रंगमंच का विकास संभव था।

(३) स्वतंत्र रूप से विकसित होने के लिए इसे कोई परम्परा प्राप्त न थी।

(४) देश की सदोष शिक्षा-नीति के कारण अब भी शिक्षा के क्षेत्र में बाल-रंगमंच का उपयोग तिरस्कृत है।

(५) रंगमंचीय क्रिया-कलाप के प्रति अभिभावक की परिमार्जित रुचि का अभाव था जिसके कारण अभिभावकों द्वारा बालकों को इस दिशा में प्रोत्साहन नहीं मिला।

इन कठिनाइयों के होते हुए भी बाल-रंगमंच अस्तित्व निर्माण करता रहा है। स्वाभाविक है कि कहीं न कहीं से इसे प्रेरणा मिली होगी। मेरी दृष्टि में बाल-रंगमंच आज जिस स्थिति में है वहाँ तक पहुँचाने का श्रेय निम्न स्रोतों को है—

(१) बालक वयस्कों का अनुकरण करते हैं। वयस्कों द्वारा आयोजित रंग-प्रस्तुतियों से उन्होंने सीधी प्रेरणा ग्रहण की है, भले ही उनका रंगमंचीय क्रिया-कलाप अभावात्मक ही क्यों न रहा हो।

(२) सभी क्षेत्रों में लोक-नाट्यों की परंपराएँ उपलब्ध हैं। अपनी अनुकरण की सहज प्रकृति के कारण बालकों ने इन प्रस्तुतियों से भी प्रेरणाएँ ली होंगी।

(३) जन-संपर्क विभाग और आकाशवाणी (ए० आई० आर०) द्वारा गठित प्रादेशिक नाट्य-संगीत दलों के परिक्रामी अर्थात् चल-प्रदर्शनों से भी बाल रंगमंच को विकास की प्रेरणा मिली है।

४. उत्सवों, पर्वों, त्यौहारों और मेले आदि में नाटक कम्पनियाँ, लोक नाट्य मंडलियाँ और कठपुतली नाच आदि के प्रदर्शन हुआ करते रहे हैं। बालकों के अंतर्मन पर इसके भी प्रभाव पड़े।

बच्चे किसी भी देश के भविष्य होते हैं। उनका विकास यदि उचित ढंग से हो तो शक्ति संपन्न, उन्नत और प्रगतिशील देश की सृष्टि की जा सकती है। बाल-रंगमंच इस दृष्टि से अत्यधिक उपयुक्त और आकर्षक, सफल और सशक्त विधा है, जो बालकों के चरित्र-निर्माण, रुचि-संस्कार ज्ञान-वृद्धि और प्रतिभा-विकास के लिए सहायक सिद्ध होगा। शिक्षा के लिए अपेक्षित प्रेरणा इसमें विद्यमान है। अतः यह शिक्षा का सफल माध्यम बनाया जा सकता है। बालकों की रचनात्मक और कलात्मक प्रतिभा विकसित होने के अवसर यहाँ उपलब्ध हैं। इस सुसंस्कृत माध्यम को स्वीकार करने का तात्पर्य बालकों का रुचि-परिमार्जन भी होगा। बालकों के लिए मनोरंजन का यह एक मात्र सस्ता, सुलभ, सर्वत्र उपलब्ध, मितव्ययी, संस्कृत एवं उच्च-स्तरीय माध्यम प्रमाणित होगा। बड़े खेद की बात है कि हमारे यहाँ बालकों के स्वस्थ मनोरंजन की कोई भी स्वस्थ और समुचित व्यवस्था नहीं है। अनायास ही बच्चे बाजारू फिल्मों और सस्ते उपन्यासों की ओर आकर्षित हो जाते हैं। दूर-दर्शन (टेलिविजन) और वृत्त चित्रों (डाक्यूमेंट्री फिल्मों) के विरल प्रदर्शन से ही देश भर के बालकों की शिक्षा-दीक्षा और मनोरंजन की व्यवस्था नहीं की जा सकती। हमें बाल-रंगमंच के विकास पर सोचना ही पड़ेगा। अनु-शासनहीनता की जिस भीषण समस्या से हम आज जूझ रहे हैं बालकों के लिए रंगमंच की व्यवस्था कर उसको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी हम काफी हद तक सुलझा सकते हैं। पूरा रंगमंचीय आयोजन अनुशासन की शृंखला है और बाहर से थोपे गये अनुशासन की तुलना में आत्मानुशासन उनके लिए अधिक हितकर होगा।

स्पष्ट है कि बाल-रंगमंच का महत्त्व कई दृष्टियों से है और काफी अधिक है। अतः विचारणीय है कि इतना महत्त्वपूर्ण होकर भी बाल-रंगमंच आज भी इतना अविकसित क्यों है। इसका उत्तर यही है कि इसके विकास में कई समस्याएँ रोड़े अटकाती रही हैं। यदि उन समस्याओंके समाधान की ओर अग्रसर हुआ जाय तो संभव है कि बाल-रंगमंच समुचित रूप से विकसित हो सके। दूसरे शब्दों में, बाल-रंगमंच के विकास की संभावनाएँ अभी भी सुरक्षित हैं। रंगमंच के अन्तर्गत चार तत्त्व आते हैं—पांडुलिपि, प्रस्तुति, अभिनय और दर्शक। अतः हमें इन चारों पक्षों के आधार पर बाल-रंगमच की समस्याएँ ढूंढनी होंगी।

पांडुलिपि—सम्प्रति बाल-रंगमंच पर अभिनय किये जानेवाले नाटकों का अभाव है। यह पहली और सबसे गम्भीर समस्या है। इस अभाव के कई कारण हैं। जैसे, बाल नाटक विशेष शैली का और अधिक सावधानी से लिखा नाटक है। अतः उसकी रचना कठिन कार्य है—कठिन इसलिए कि कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा से इसका सम्बन्ध कम एवं बाल-मनोविज्ञान तथा शिक्षा से अधिक है। दूसरे, इसकी रचना के क्षेत्र में नाटककारों की रुचि विरल है। इस क्षेत्र में उनका अभाव है। इने-गिने नाटककार समाने आते हैं जब कि यह सामूहिक सहयोग का क्षेत्र है। चूँकि बाल नाटक के अधिकतर पांडुलेख संस्था विशेष तक ही सीमित रहते हैं, उनका मुद्रित रूप सामने नहीं आ पा रहा है इसलिए उनका प्रचार और प्रसार अति सीमित है। इन नाटकों के लेखन और प्रकाशन की व्यवस्था सरकारी और गैर-सरकारी प्रयास से कारवाने की अपेक्षा है। कोई इस प्रकार का प्रयास भी नहीं किया जा रहा है कि बालक अपनी प्रस्तुति के लिए नाटक स्वयं लिखें। रंग-प्रस्तुति के इच्छुक बालक-बालिकाओं को वयस्कों के नाटक ही अधिकतर खेलने को मिलते हैं। यदि शिक्षा संस्थानों में ऐसी इकाइयाँ गठित की जायँ जो बालकों को रचना की ओर प्रवृत्त करें तो ये समस्याएँ काफी हद तक सुलझ सकती हैं। शिक्षा के माध्यम के रूप में बाल-रंगमंच को स्वीकृति दी जाय और शिक्षा विभाग द्वारा सारी व्यवस्थाएँ करवायी जायँ तो न केवल शिक्षा का स्तर बदलेगा अपितु बाल-रंगमंच बाल-विकास के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्रमाणित होगा।

प्रस्तुति—रंगमंचीय प्रस्तुतियों के लिए साजसज्जा, परिधान, मंच, दृश्यबंध एवं रंगशालाओं की आवश्यकता पड़ती है। यदि रंग-प्रस्तुति का आयोजन बालक अपने प्रयास से करते हैं तो उन्हें इनमें से किसीकी भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। कल्पना उनकी सहायता करेगी। खुला मंच, कागज की नाव, टोपी और ऐसी ही अन्य सारी व्यवस्थाएँ भी हो सकती हैं। वस्तुतः प्रस्तुति की समस्या तब उठती है जब हम इसे बालकों के स्व-मनोरंजन की वस्तु मात्र न मानकर इसे इसके सम्पूर्ण महत्त्व के साथ स्वीकृत करते हैं और इसके शैक्षिक महत्त्व को प्राथमिकता देते हैं। बाल-रंगमंच को व्यवस्थित रूप से स्थापित करने में हमें इन सारी समस्याओं से जूझना होगा। इसका एक सरल उपाय है सरकारी अनुदानों द्वारा समस्त शिक्षण संस्थाओं में मंचीय व्यवस्था करवाना। अधिकतर शिक्षण संस्थाओं के अपने सभा-भवन, हॉल या मंडप होते हैं, थोड़े हेर फेर से उन्हें रंगशाला बनाया जा सकता है और बहुधा बनाया भी जाता है। अन्य उपकरणादि के लिए उन्हें अनुदान मिले। अथवा वे अपने साधनों से उनकी व्यवस्था करें। 'वोकेशनल गाइडेंस ब्यूरो' की ही एक शाखा या ऐसी ही एक इकाई इस स्तर पर गठित की जाय जो बाल-रंगमंच के आयोजन में पूर्वाभ्यास, निर्देशन, मंचीय व्यवस्था, पुरस्कार आदि की व्यवस्था करे। निश्चय ही इस प्रकार की व्यवस्था से बाल-रंगमंच विकसित होगा।

अभिनय—बाल-रंगमंच के अभिनय पक्ष से भी कुछ समस्याएँ सम्बद्ध हैं। बालकों को अभिनय की शिक्षा-दीक्षा देने की हमारे यहाँ कोई व्यवस्था नहीं है। किसी-किसी शिक्षण संस्था में कोई उत्साही शिक्षक इस ओर भले ही रुचि रखते हों, लेकिन विधिवत् उन्हें अभिनय, नृत्य, संगीत और संवाद, भाषण आदि का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था नहीं है। दूसरे शब्दों में, निर्देशक और निर्देशन का अभाव मूल समस्या है। दूसरी ओर यदि उन्हें अपने इच्छानुसार अभिनय प्रस्तुत करने को स्वतंत्र छोड़ दिया जाय तो उनकी अभिव्यक्ति की शैली में मौलिकता और नवीनता चाहे आये चाहे न आये लेकिन अभिनय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलात्मक रूप से वे कभी भी परिचित न हो सकेंगे। इन परिस्थितियों में बाल-रंगमंच का शैक्षिक महत्त्व शून्य ही रहेगा। बालकों द्वारा किसी अवसर-विशेष पर विद्यालय में सामान्य रूप से जो अभिनय प्रस्तुत किया जाता है वह कई स्तरों पर आपत्तिजनक है। पहले तो बालकों की प्रतिभा का कोई मौलिक स्तर नहीं दीखता, क्योंकि पूरे अभिनय पर शिक्षक निर्देशक हावी रहता है, दूसरी ओर प्रदर्शन का उपयोग जिस उद्देश्य से होता है वह भी आपत्तिजनक है।

इन सारी समस्याओं का निदान है, सरकारी प्रयास से शिक्षा विभाग द्वारा बाल-रंगमंच को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्थापित और विकसित करने का संकल्प लेना। शिक्षा विभाग अलग इकाई का गठन करे जिसमें शिक्षा-विद्, नाटककार, निर्देशक आदि सदस्य रहें और वे राज्य स्तर पर बाल-रंगमंच की स्थापना और विकास के लिए कार्यक्रम की रूप-रेखा तैयार करें। इस संदर्भ में कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं—

(१) सरकारी अनुदान की राशि से विद्यालयों में रंग-शाला का निर्माण किया या कराया जाय।

(२) राज्य स्तर पर विद्यालयों में बाल-रंगमंच निर्देशक नियुक्त किये जायँ जिसमें रंगमंच व्यवस्था से लेकर अभिनय और निर्देशन तक की योग्यता हो।

(३) एक परिक्रामी दल का गठन किया जाय जो राज्य स्तर पर बाल रंगमंच की प्रगति और समस्याओं का अध्ययन करे एवं तदनुसार सरकार को आवश्यक कार्रवाई के लिए सम्मति दे।

(४) प्रदर्शनों की प्रतियोगिताएँ आयोजित की जायँ और उनके लिए उचित पुरस्कारों की व्यवस्था हो।

(५) बाल नाटकों की रचना और उनके प्रकाशन की दिशा में उचित व्यवस्थाएँ की जायँ।

यह अति सामान्य रूप-रेखा है, केवल दिशा की ओर संकेत भर है।

अभी परिस्थिति यह है कि जो बच्चे उच्चकोटि की संस्थाओं में शिक्षा पाते हैं, उनके अभिभावकों को भी बाल-रंग-मंच की इस अवस्था के प्रति चिंतनशील होना चाहिए, लेकिन सामान्य रूप से वे इस ओर ध्यान नहीं देते क्योंकि शहरों में रहने के कारण उन्हें अपने बच्चों के मनोरंजन के अधिकतर साधन सुलभ होते हैं। लेकिन जो अस्सी प्रतिशत जनता गाँवों में बसती है उसके बच्चों की शिक्षा-दीक्षा एवं मनोरंजन की क्या व्यवस्था है, इस पर विचार होना चाहिए, क्योंकि भारत की सही तस्वीर वही होगी। इस आधार पर अनुमान सहज ही व्यक्त किया जा सकता है कि स्वतन्त्र भारत की आनेवाली पीढ़ी कितनी खोखली और पीछे होगी, क्योंकि उनके उपयुक्त विकास के लिए कोई स्तरीय और वास्तविक प्रयास है ही नहीं। उनके लिए पाठ्य-क्रम और पुस्तकें प्रस्तावित हैं लेकिन उनकी प्रतिभा, कलात्मक रुचि एवं रचनात्मक विकास के लिए कोई महत्त्व-पूर्ण और उल्लेखनीय व्यवस्था नहीं है। एकाध खेल-कूद के सामान के अलावा उनके मनोरंजन का कोई स्वस्थ साधन नहीं है। अनायास ही बालक और किशोर वर्ग बाजारू फिल्मों के शिकार बनते हैं। इन परिस्थितियों में कोई भी जागरूक अभिभावक अपनी सन्तान के भविष्यत् के प्रति कितना आशावान् हो सकता है—यह सहज ही में सोचा-समझा जा सकता है।

वह समय आ गया समझना चाहिए जब जनता और प्रशासन समवेत रूप से देश के भविष्य के प्रति सचेत हों और बाल-विकास की दिशा में बुनियादी कदम उठाए जायँ। देश के विकास में बाल-विकास, पंचवर्षीय योजना से कम महत्त्व की चीज नहीं। अन्य विकसित देशों की तुलना में जहाँ बाल रंगमंच को उसका महत्त्व प्राप्त है, हमारी प्रगति नितांत बौनी है।

बाल-रंगमंच हमारे यहाँ एकदम नयी चीज नहीं है। काफी दिनों पहले से ही विद्यालयादि में लड़के रंगमंच पर अभिनय प्रस्तुत करते रहे हैं। बात नयी है बाल-रंगमंच के उपयोग और महत्त्व की। आज हम बाल-रंगमंच की उपयोगिता और महत्त्व पर विचार करने की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं—यह इंगित करता है कि इसके विकास के लिए पृष्ठभूमि तैयार हो रही है। दूसरे शब्दों में, बाल-रंगमंच के विकास की संभावनाएँ दस्तक दे रही हैं। बाल-रंगमंच के विकास की दिशा में समर चटर्जी द्वारा स्थापित 'चिल्ड्रेन्स लिटिल थियेटर' पहला पुख्ता कदम था। इसने बाल-रंगमंच के शैक्षिक उद्देश्य पर भी उतना ही ध्यान रखा जितना उसके स्वस्थ मनोरंजन और कलात्मक प्रतिभा जगानेवाले पक्ष पर। पूर्णतः शैक्षिक उद्देश्य से दिल्ली में चल रहा 'शिव निकेतन' अन्य महत्त्वपूर्ण कड़ी है, जिस विद्यालय में शिक्षा का माध्यम बाल रंगमंच रहा है। विष्णु प्रभाकर जैसे श्रेष्ठ नाटककार ने बालोपयोगी नाटक लिखे। शांता गांधी जैसे रंगकर्मी ने अहमदाबाद के आदिवासियों के बीच बाल-रंगमंच के कई सफल प्रयोग किये। ये सारी बातें इस ओर इंगित करती हैं कि बाल-रंगमंच विकास-मान है। लेकिन इसकी प्रगति बड़ी धीमी है। आवश्यकता है संगठित प्रयास और प्रशासनिक सहयोग की। यद्यपि यात्रा की एक लम्बी दूरी इसे तय करनी है, फिर भी शीघ्र ही अपेक्षित गति से यात्रा प्रारंभ हो जायगी इसकी आशा मात्र व्यक्त की जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमती सुचेता कृपलानी

श्री मुकुन्दीलाल

संसार के इतिहास में कृपलानी दम्पति-जैसे उदाहरण शायद ही मिलें। इन दोनों ने स्वदेश-प्रेम, देश-सेवा, आत्म-त्याग, राजनीति, जीवन की सादगी और सुजनता में सर्वोच्च श्रेणी के दाम्पत्य व्रत का पालन आजीवन किया।

महात्मा गांधी के व्यक्तित्व का विकास दक्षिण अफ्रीका में हुआ। उन्होंने वहाँके आदिम निवासी जूलू लोगों और भारतवासियों की सेवा में अपने सार्वजनिक जीवन का प्रथम चरण व्यतीत किया, वहाँके गोरे निवासियों के हाथों अकथनीय कष्ट सहन किये तथा भारतवासियों को सत्याग्रह द्वारा देश-सेवा और आजादी हासिल करना सिखाया। गांधीजी की विलक्षण युक्ति, सेवावृत्ति और साधना का ज्ञान प्राप्त कर मैंने सन् १९१० से १९१२ तक 'स्त्रीदर्पण' द्वारा जनता को उनके कारनामों का परिचय कराया। १९१३ में मेरे मित्र दानवीर, देश-भक्त शिवप्रसाद गुप्त ने उस लेखमाला को 'कर्मवीर गांधी' शीर्षक से पुस्तकाकार अभ्युदय प्रेस द्वारा छपवाया था।

कृपलानी दम्पति को गांधीजी के नेतृत्व में बिहार और पूर्वी बंगाल (नोआखाली) में अपनी नैसर्गिक सेवा-भावना और स्वदेश-प्रेम का परिचय देने का सुअवसर (परोक्ष रूप में) मिला।

नोआखाली काण्ड

महात्मा गांधी भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम में बुरी तरह व्यस्त थे। जब उन्हें नोआखाली के अमानुषिक कार्यों और अत्याचारों का समाचार मिला तब उन्होंने पूर्वी बंगाल में पदार्पण किया। उनके नेतृत्व में जनसेवा करने के लिए कई समाज-सेवक तैयार होकर उनके साथ पूर्वी बंगाल (अब बाँगला देश) गये। यहाँ पर मेरा ध्येय मात्र सुचेता कृपलानी के कार्यों का चित्र 'सरस्वती' के पाठकों के सामने प्रस्तुत करना है। इसीलिए मैं पहले नोआखाली में सुचेताजी ने जो काम किया है उसका उल्लेख 'द लास्ट फेज आफ महात्मा गांधी', प्रथम खण्ड (The Last Phase of Mahatma Gandhi, Vol. I) के आधार पर करूँगा।

सात नवम्बर १९४६ को गांधीजी के नोआखाली प्रवेश करने पर सुचेता कृपलानी उनसे चौमुहानी में

श्रीमती सुचेता कृपलानी

मिलीं। वे नोआखाली में पहले से ही काम कर रही थीं। तब उनके पति कृपलानी कांग्रेस के अध्यक्ष थे। वहाँ "मृतक शव और सड़ान की इतनी दुर्गन्ध थी कि मुँह पर रूमाल लगाकर कीचड़ (गाँव) में चलना होता था। वहाँ चारों ओर का मुसलिम समाज घृणा, क्रोध और अवहेला से ओतप्रोत था। हिन्दू शरणार्थी प्रतिदिन सैकड़ों की तादाद में गांधी सेवा-संघ के पास आते थे। काम करने को आदमी वेतन देने पर भी नहीं मिलते थे। स्थानीय नवयुवक स्वयं सेवक हताश थे। उनका साथ वहाँके लोग नहीं देना चाहते थे। एक हिन्दू युवक ने गांधीजी से कहा कि वर्त्तमान स्थिति में लोगों (हिन्दू शरणार्थियों) को कैसे आश्वासन दिया जा सकता है? गांधीजी ने उत्तर दिया—"मरना सीखने से। मिलिटरी और पुलिस से मदद की आशा न करो।" एक दूसरे व्यक्ति (हिन्दू शरणार्थी) ने कहा, "हम किस पर भरोसा करें—सरकार, (सुहरावर्दी की सरकार), मुस्लिम लीग या कांग्रेस पर?" महात्माजी ने कहा—"अपने-अपने स्थानों पर डटे रहो। हम किसीको हानि नहीं पहुँचने देंगे। केवल खुद मर मिटेंगे।" (पृष्ठ १९-२१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त उदाहरण यह दिखाने के लिए दिया गया है कि सुचेताजी तथा अन्य स्वयंसेवकों को महात्मा गांधी के नेतृत्व में नोआखाली में किस स्थिति में जन-सेवा करनी पड़ती थी।

सुचेताजी ने महात्मा गांधी को बताया कि जब हमारा दल हिन्दुओं की रक्षा को जाता था तब हमारे साथ के (मदद में चलनेवाले) सिपाही खुद सीटी बजा देते थे जिससे अत्याचारी मुसलमान भाग जाते थे। (पृ० २५)।

सराहनीय साहस

उपर्युक्त पुस्तक के द्वितीय खण्ड के नोआखाली कांड वाले अध्याय में लिखा है—"सुचेता कृपलानी ने अपने संगठन कार्य की भावना का सदुपयोग पीडित और दुःखी निस्सहाय, गरीब शरणार्थियों की सेवा में किया। वह सिंहनी की भाँति साहसी दिलेर थी। लोग उससे भयभीत रहते थे और उसका आदर करते थे।"

सुचेता कृपलानी अपने साहस, कार्य-कुशलता और देश-सेवा की लगन के कारण ही संयुक्त प्रदेश के मुख्य मंत्री-पद पर नियुक्त हुईं।

नोआखाली में सुचेताजी के अन्य सहयोगी

सुचेताजी नोआखाली में महात्मा गांधी के जाने से पहले ही अत्याचार पीडित हिन्दू शरणार्थियों की सेवा में संलग्न थीं। महात्माजी के साथ उल्लेखनीय स्वयंसेवक थे—सुशीला नय्यर। इन्होंने महिलाओं के लिए स्कूल खोल रखा था। ये महिलाओं के लिए प्रार्थना-सभा करती थीं। युवतियों को सुशीला से बड़ा धैर्य मिला। उनके लिए उन्होंने एक बाजार भी खोला था। वे मुसलमान स्त्रियों की सेवा उसी प्रकार करती थीं जिस प्रकार हिन्दू स्त्रियों की। कनु गांधी और उनकी भार्या ने भी वहाँ बड़ी सेवा की। ठक्कर बापा का तो कहना ही क्या! जब तक वे गांधीजी के साथ नोआखाली में रहे बड़ी सेवा करते रहे। महात्माजी के साथ साधन बोस, अमिय चक्रवर्ती, अम्मतुस्सलाम आदि थे। इस सेवा में अत्यन्त लगनशील थीं सुशीलाजी। वे नोआखाली में सबसे पहले पहुँचीं और सबसे बाद में लौटीं। महात्माजी के जीवन के सर्वोच्च मानव-सेवा के कार्य दक्षिण अफ्रीका और पूर्वी बंगाल (नोआखाली) में हुए।

प्रारम्भिक जीवन

भारतवर्ष में मुगलशासन से पहले और उसके अंतिम चरण में भारतीय परिवार एक प्रान्त से जाकर दूसरे प्रान्त में सदा बसते रहे। उनमें सबसे अधिक प्रवासी बंगाली रहे हैं। हिन्दुस्तान के सभी भागों में आकर बंगाली बस गये हैं। सुचेताजी के पूर्वज अम्बाला में आकर बस गये थे। उनके पिता डॉ० मजूमदार ब्रह्मसमाजी थे। उनकी कन्या-रत्न सुचेता का जन्म सन् १९०८ में हुआ था। उनके जन्म के समय पंजाब में राजनीतिक उथल-पुथल मची हुई थी। उसी साल सरदार अजीतसिंह और लाला लाजपतराय ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध घोर आन्दोलन आरम्भ किया था। उसी साल लाला लाजपत राय को अंग्रेजी सरकार ने मांडले की जेल में रख दिया था। बर्मा तब भारत का एक प्रान्त था। अंग्रेजों ने बर्मा को सन् १९३५ की सुधार घोषणा के अनुसार हिन्दुस्तान से अलग कर दिया था। मांडले जेल से अपने पिता को आश्वासन देते हुए लालाजी ने एक पत्र में लिखा था—"पिताजी, मेरे द्वीपान्तर कारावास के कारण चिंता न कीजिये। इस संसार में जो कुछ होता है वह सब भलाई के लिए होता है।" उनका यह पत्र मैंने विद्यार्थी जीवन में पढ़ा था। इन शब्दों को मैं कभी नहीं भूला। संकट के समय या किसी भी दुर्घटना में मैं इन शब्दों को याद करता हूँ। मेरा अनुभव है कि लालाजी के इन शब्दों से जीवन-यात्रा में बहुत बड़ी मदद मिलती है। उक्त वाक्य वेदना को शान्त और मन को प्रफुल्लित कर आनन्द प्रदान करते हैं।

हमारे देश में आधुनिक राजनीतिक जागृति सन् १८८५ में कांग्रेस के जन्म से प्रारम्भ हुई। भाग्यवशात् मेरा जन्म भी पर्वतीय प्रदेश गढ़वाल में इसी साल हुआ। सन् १९०५ में बंगाल के विभाजन के कारण स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। १९०० में भूमि-सम्बन्धी कानून संशोधन के कारण पंजाब में आन्दोलन शुरू हुआ। उन्हीं दिनों इस विलक्षण भारतीय नारी सुचेता कृपलानी का जन्म पंजाब में हुआ। सुचेता ने अपनी तीव्र बुद्धि का परिचय विद्यार्थी जीवन से ही देना आरम्भ कर दिया था। इतिहास और राजनीति शास्त्र में एम० ए० परीक्षा में प्रथम पद प्राप्त करने के कारण सुचेता को दो स्वर्ण पदक मिले। वे बनारस विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हुईं। वहीं उनके भावी पति कृपलानी भी विधान और राजतन्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के इतिहास के प्रोफेसर थे। दोनों को अपनी मनोवृत्ति के अनुसार स्वदेश-प्रेम की भावना और देश-सेवा की आकांक्षा की पूर्त्ति के साधन शिक्षा विभाग अर्थात् विश्व-विद्यालय की चहारदीवारी के अन्दर नहीं मिले। उन्हें लगा कि महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस द्वारा भारत की आजादी के लिए जो लड़ाई चल रही है उसमें अपना सारा जीवन लगा देना चाहिए। सुचेता और कृपलानी का जीवन-ध्येय एक था। उनमें परस्पर प्रेम भी हो गया। अस्तु, दोनों (एक बंगाली और एक सिंधी) ने सिविल मैरिज कर दाम्पत्य जीवन स्वीकार किया। नवविवाहित दम्पति के सम्मानार्थ मेरे आक्सोफर्ड काल के मित्र प्रोफेसर महताब सिर साहेब सिंह शहानी ने पुरानी दिल्ली में अपने निवास-स्थान पर भोज दिया। मैं भी उस भोज में उपस्थित था। पहले पहल वहीं मुझे सुचेता और कृपलानी के दर्शन मिले। तब से अब तक मैं उनका बड़ा गुणग्राहक रहा हूँ। उनकी मैत्री को मैं अपना परम सौभाग्य और गौरव समझता हूँ।

राजनीतिक क्षेत्र में

सुचेताजी ने १९५० में ऑल इण्डिया कांग्रेस के सेक्रेटरी का पद ग्रहण कर कांग्रेस के दफ्तर और संगठन का काम अपने हाथ में लिया। सन् १९५८ से १९६० तक वे अखिल भारतीय कांग्रेस की जनरल सेक्रेटरी रहीं। सुचेताजी ४० वर्ष की अवस्था में कांग्रेस वर्किंग कमेटी की सदस्या चुनी गयीं। कांग्रेस के उक्त पद के लिए इस अल्प अवस्था में एक महिला का चुना जाना बहुत बड़ी बात है। वे कान्स्टीट्यूशन एसेम्बली की सदस्या भी रहीं।

राज्यशासन में

सन् १९५१ में सुचेता और कृपलानी कांग्रेस दल से अलग हो गये। वे किसान मजदूर दल में सम्मिलित हो गये। इससे उनका विचार-स्वातंत्र्य और समाजवाद में निष्ठा सूचित होती है। किन्तु जब कांग्रेस ने भी अपना ध्येय समाजवाद मान लिया तब सुचेताजी पुनः कांग्रेस में आ गयीं, गोकि कृपलानीजी कांग्रेस के विरोध में ही डटे रहे। इस तरह पति-पत्नी दोनों अलग-अलग दलों द्वारा अपने विचारों के अनुसार देश-सेवा में जुटे रहे। १९६० में सुचेताजी उत्तर प्रदेश के शासन दल (कांग्रेस) की ओर से राज्य के मंत्रिमंडल में आ गयीं और श्रममंत्री की हैसियत से अपनी योग्यता का परिचय देने लगीं। उसके बाद श्रीचन्द्रभानु गुप्तजी के मुख्यमंत्री का पद त्यागने के बाद वे १९६३ में उ० प्र० की मुख्यमंत्री चुनी गयीं। मैं भी उस समय (१९६२-१९६७) यू० पी० एसेम्बली का सदस्य था। मैंने उनकी राजनीति, संगठन शक्ति और जनसेवा-कार्य को नजदीक से देखा है। मैंने उनके साथ कुमायूँ और गढ़-वाल में भ्रमण भी किया है। यू० पी० एसेम्बली में उस समय असन्तोष और विरोधी भावनाओं का प्रभुत्व था। ऐसे कठिन समय में सुचेताजी ने चार साल तक बड़ी दूर-दर्शिता, लगन और उदारता से शासन किया और कांग्रेस की एकता व बहुमत को कायम रखा। गुप्तजी और उ० प्र० के अन्य नेताओं को उनसे जो आशा थी उसे उन्होंने पूरा किया।

१९६७ के चुनाव में सुचेताजी लोकसभा में कांग्रेस के अग्रगण्य नेताओं में एक हो गयीं। उस समय उनके पति कृपलानीजी विरोधी दल में थे। इस पर एक पत्रकार के पूछने पर सुचेताजी ने उत्तर दिया था—"वास्तव में मैं और कृपलानीजी दोनों गांधीजी के अनुयायी हैं। कृप-लानीजी कांग्रेस की त्रुटियों पर सेवादृष्टि से आक्षेप करते हैं; मैं उनके विचारों से सहमत हूँ।"

१९६१ में जब कांग्रेस में मतभेद हुआ और श्रीमती इन्दिरा गांधी ने नया कांग्रेस दल बनाया तब बहुत से कांग्रेसी उनके साथ हो गये, किन्तु सुचेताजी ने पुरानी कांग्रेस को नहीं छोड़ा। १९६१ से वे सत्ताधारी कांग्रेस के विरोध में हो गयीं। यदि वे नयी कांग्रेस में चली आतीं तो इसमें जरा भी संदेह नहीं कि वे लोकसभा में उपनेता और उप-प्रधान मंत्री पद पर होतीं। यह सुचेता का बहुत बड़ा त्याग है जिसकी तुलना अरुणा आसफअली के त्याग से की जा सकती है। सुचेता ने पुरानी कांग्रेस के आधार-भूत नियमों और रीति पर आरूढ रहना श्रेयस्कर समझा। काश हमारे देश में सुचेता और अरुणा की तरह आत्म-त्यागी वीरांगनाएँ और होतीं जो उनकी तरह राजपदों की ओर पीठ फेर जनता की सेवा में लगी रहतीं!

शासन मण्डल के बाहर

सुचेताजी अपने स्वतंत्र विचार और युवा अवस्था के ध्येय पर जमी रहीं। इसलिए कृपलानीजी को उनके इस व्यवहार से बड़ा आनन्द हुआ। अब दोनों के विचारों में फिर समता आ गयी। दोनों दम्पति मिलकर लोकसेवा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य में जुट गये। पहले वे तिब्बती शरणार्थियों की सेवा में लगे। उनका सम्पर्क लोक-कल्याण-समिति से भी रहा। सुचेता कस्तूरबा स्मारक निधि की प्रथम मंत्री नियुक्त हुईं। बाद में वे गांधी स्मारक निधि की आजीवन उपाध्यक्ष रहीं।

भारतीय नेताओं ने उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की

उपाध्यक्ष जेटी महोदय ने उनके निधन पर कहा—"श्रीमती सुचेता कृपलानी देश में कई राजनीतिक उच्चपदों पर आरूढ रहीं। वहाँ उन्होंने अपनी अद्वितीय योग्यता और लगन का परिचय दिया। उनके निधन से देश ने एक महान् राष्ट्रीय कार्यकर्त्री और बहुत बड़ी देशभक्त महिला को खो दिया।" पुरानी कांग्रेस के संसदीय नेता एस० एन० मिश्र ने कांग्रेस दल की ओर से उनकी मृत्यु पर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा—"उनकी मृत्यु से हमारे देश ने बहुत उच्चकोटि की महिला को खोया है। इस शताब्दी में हमारे देश में सुचेता के समान दूसरी कोई महिला नहीं हुई। उनका जीवन गरिमा, मर्यादा, प्रशान्ति, अपूर्व विश्वास और अकथनीय साहस का प्रतीक था।" गुजरात के राज्यपाल श्री विश्वनाथन ने कहा—"श्रीमती कृपलानी की मृत्यु के कारण हमारे देश ने एक ऐसी महिला को खोया है जिसने अपना सारा जीवन समाज को अर्पित कर दिया था। वे स्वतंत्रता-संग्राम में अग्रगण्य, परम देश-भक्त और बड़ी मिलनसार थीं।" गृह-मंत्री ब्रह्मानन्द रेडी ने कहा—"श्रीमती कृपलानी ने कांग्रेस नेता के रूप में उ० प्र० के मुख्य मंत्री पद पर रहकर दिखा दिया कि वे कितनी बड़ी संघटनकर्त्री एवं योग्य प्रशासक थीं।" आंध्र देश के मुख्य-मंत्री श्री राव ने संवेदना प्रकट करते हुए कहा—"श्रीमती कृपलानी भारत की बहुत बड़ी पुत्री थीं। वे अपने देश-प्रेम, समाज-सेवा और विलक्षण साहस के लिए सदा स्मरण की जायँगी।" गुजरात के भूतपूर्व मुख्य मंत्री श्री हीरेन्द्र देसाई ने शोक प्रकट करते हुए कहा—"सुचेता कृपलानी आजीवन महात्मा गांधी के बताये हुए मार्ग पर चलनेवालों में प्रमुख थीं।" इसी भाँति राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद, प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी और उ० प्र० के मुख्य मंत्री श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा ने भी सुचेताजी की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए कहा कि "उनकी मृत्यु से भारत की जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होनी आसान नहीं है।" इन्दिराजी, राष्ट्रपति, मन्त्रिमण्डल के सब सदस्य कृपलानीजी के निवासस्थान पर समवेदना प्रकट करने गये। यमराज ने ६६ वर्ष की आयु में सुचेताजी को उनके कार्यक्षेत्र से अलग करके हमारे देश के साथ बड़ा अन्याय किया है। वे तन-मन से जनता की सेवा में लगी हुई थीं। ऐसी आत्म-त्यागी, निस्स्वार्थ महिला भारत में दूसरी नहीं।

उपसंहार

मैंने शुरू में लिखा है कि महात्मा गांधी का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य दक्षिण अफ्रीका और पूर्वी बंगाल में हुआ। सुचेताजी का भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य नोआखाली में हुआ। महात्मा गांधी अपने नोआखाली के काम को इतने महत्त्व का समझते थे कि जब कांग्रेस वर्किंग कमिटी के सामने भारत विभाजन और पूर्ण स्वातंत्र्य का प्रश्न आया तब पंडित नेहरू और सरदार पटेल ने गांधीजी को कई पत्र लिखे कि आप दिल्ली या कम-से-कम कलकत्ते चले आयें जिससे इस सम्बन्ध में आपसे विचार-विमर्श किया जा सके; किन्तु गांधीजी ने नोआखाली छोड़ने से इन्कार कर दिया। उन्होंने लिखा कि जब तक मैं यहाँ वह काम ठीक से नहीं करता जिसके लिए मैं यहाँ आया हूँ तब तक मैं दूसरा काम भी ठीक नहीं कर सकता। प्रत्येक व्यक्ति सारे देश की सेवा तभी ठीक से कर सकता है जब वह अपनी जिम्मेदारी का काम ठीक तरह से करे। स्वधर्म पालन में किसी व्यक्ति का मर जाना श्रेयस्कर है, लेकिन परधर्म का पालन अच्छा नहीं (देखिये Last phaze. Vol. p. 207)। सुचेताजी ने महात्मा गांधी की उक्त सिखावन का पालन किया। इसीलिए आज उनकी प्रशंसा करते हुए उनकी मृत्यु पर आँसू बहा रहा हूँ। सुचेताजी की मृत्यु ऐसे समय हुई जब देश को इस अद्वितीय महिला की अत्यन्त आवश्यकता थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्रवातों से आहत मारिशस

श्री बा० विष्णुदयाल

चीनी के अभाव के कारण उसका दाम खूब चढ़ गया है। इस वस्तु का उत्पादन करनेवाले इस द्वीप (मारीशस) में इस अप्रत्याशित मूल्य के कारण उल्लास था जबकि अचानक विगत ६ फरवरी को बवण्डर आया।

यहाँ फरवरी मास चक्रवात के अनुकूल रहा तो सही, किन्तु इस महीने विशेष का अन्त ही उसे पसन्द रहा। केवल एक बार १८१५ में ता० ६ फरवरी को यह देश चक्रवात से आहत हुआ था।

यहाँ प्रत्येक १५ वर्ष में एक भयंकर तूफान आता रहा है। १९४५ में मकर संक्रान्ति के अवसर पर और १९६० में २८ फरवरी को यह अतिथि पधारा था।

१९६० वाले बवण्डर का नाम 'कैरोल' था तो इसका नाम 'जेवेंज़' है।

मारिशस में कभी भी पेड़-पौधे पत्ते से विहीन नहीं होते, क्योंकि यहाँ नाम मात्र की सर्दी होती है। जेवेंज़ ने लहलहाते गन्ने के खेतों तथा बगीचों को श्रीहीन कर दिया था।

आजकल मारिशस की यात्रा करनेवाले पर्यटकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। मनोरम प्राकृतिक दृश्यों की यहाँ कमी नहीं है।

जब यह द्वीप निर्जन था तब भी शोभायुक्त था। यह आबाद हुआ और २४० साल से इसके मुख्य बाग में संसार के अनेक देशों से पौधे लाकर रोपे जाते हैं। देश की जनसंख्या इसका ज्वलन्त उदाहरण है कि पूर्व और पश्चिम कैसे मिल सकते हैं तो बाग के पेड़-पौधे बतलाते हैं कि कैसे विभिन्न देश एक साथ रह सकते हैं। प्रसिद्ध फ्रेंच यात्री सोनरा तक ने यहाँ पौधा लाकर हम पर कृपा की थी। वृक्षों के मित्र सोनरा जब यहाँ पधारे थे तब भारत में सात साल रह चुके थे। वे वेदप्रेमी भी थे।

अपने बाग पर गर्व करनेवाले मारिशसीय बवण्डर के चले जाने पर यही देखने को उत्सुक थे कि कौन से वृक्ष और पौधे बच गये हैं। इतने वृक्ष उखड़कर जमीन पर गिर गये थे कि बाग पेड़ों की श्मशान भूमि में परिवर्तित हो गया था। लोगों को बाग की ओर जाने से रोकना पड़ा। एक मास में कम से कम २० हजार दर्शक बाग देखने उत्तर मारिशस के जिले पांप्लेमुस में पहुँचते थे। युग-युग तक किये गये परिश्रम पर पानी फिर गया। न जाने कब पहले की तरह फिर सुन्दर दिखायी देगा।

विनष्ट वृक्षों के बीच एक पीपल का पेड़ था जिसकी ओर बहुत लोग आकृष्ट होते थे। उसे हमने हमेशा के लिए खो दिया है।

अभी-अभी दिसम्बर में कटनी समाप्त हुई है। गन्ने के पौधे अभी बहुत छोटे थे। तूफान ने सबको सुला दिया।

हजार घर टूट-फूट गये और दस हजार मारिशसीय शरणार्थियों को सरकारी स्कूलों के भवनों में शरण दी गयी।

वर्षा लगातार होती रही जिससे बाढ़ आ गयी। कई लोगों ने मेज पर या अलमारी पर कई घंटे बिताये। पुरानी दीवारें जल का आघात सह न पायीं। राजधानी पोर्ट लुई में कैथलिक सम्प्रदाय द्वारा संचालित कन्या विद्यालय उत्तुङ्ग दीवारों से घिरा था। एक १८ वर्षीय प्रवासी भारतीय युवक, जिनका नाम राम था, वहाँसे गुजर रहे थे। दीवार धमाके के साथ गिरी और वे बेचारे पत्थरों के नीचे दबकर तत्काल मर गये। २३० साल पहले आस-पास में ही राम नाम के ही एक प्रवासी की अकाल मृत्यु हुई थी। उन दिनों मुट्ठी भर प्रवासी भारतीय इस देश में पाये जाते थे, जिसका नाम फ्रांस का द्वीप था। इस चक्रवात में सब मिलाकर ९ व्यक्ति मरे।

६ ही दिन बाद ता० १२ फरवरी को आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द का १५०वाँ जन्मदिवस मनाया गया जब देश भर में उदासी छायी हुई थी।

बवण्डर के समय पोतस्थल पर स्थित छोटे जहाजों को हवा ने रुद्र रूप धारण कर चुंगी विभाग की इमारतों पर फेंक दिया जिससे जहाज तथा इमारतें नष्ट हुईं। जो भी जहाज मारिशस के निकट थे वे द्रुत गति से हमारे पोत-स्थल पर पहुंचे और उनसे हमें सामयिक सहायता प्राप्त हुई।

वृक्षों को जेवेंज़ ने उखाड़कर मार्गों के बीच सुला दिया था। जो पेड़ समूल नष्ट न हुए उनकी शाखाएँ टूट गयी थीं। वृक्ष ही तो पक्षियों को आश्रय देते हैं। उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय पक्षियों की दुर्दशा देखी नहीं जा सकती थी। पिछले दिनों भारतीय कौवे राजधानी में दिखायी देते थे। उनमें से दो-तीन ही बच पाये। फ्रेञ्च साहित्यकारों ने इस पक्षी की निन्दा की है। फ्रेञ्च में ऐसा मुहावरा है जिससे पता चलता है कि काक घृणित है। भारतीयों ने तो इससे काम लिया था। प्रत्येक जहाज पर दिशा-काक हुआ करते थे जो दूर से जान लिया करते थे कि जमीन निकट आ गयी है। जो इस द्वीप के प्रथम निवासी हुए उन्होंने यहाँके वनों में भारतीय काक देखे थे। इससे सिद्ध होता है कि जब यह देश निर्जन था तब भारतीय जहाज हमारे समुद्र में आया करते थे।

तूफान के आने पर यह डर बना रहता है कि कहीं मुर्गीभक्षक नाम का पक्षी दोदो के समान ही विलुप्त न हो जाय। विश्व भर में यह केवल यहाँ अभी तक पाया जाता है। दो ही तीन मुर्गीभक्षक इस समय विद्यमान हैं।

मानव विचलित हुए, पशु-पक्षियों की दशा दयनीय हो गयी। विश्वविख्यात बाग उजड़ सा गया।

एक सागर पक्षी माउंट ओरी ग्राम की नदी में आ पहुँचा। १९०१ में युवा बैरिस्टर गांधी बार-बार इस गाँव से गुजर कर उसके समीपवर्ती नगर में जाया करते थे। उसी मशहूर ग्राम की नदी में आया हुआ पक्षी थका हुआ था। भारी-भरकम देह, जिस पर वायु के झकोरे लगते रहे थे, ढो नहीं पा रहा था। वह बालकों का खिलौना हो गया। वे उसे दिन-रात खिला-पिला रहे हैं। पक्षी नये वातावरण से खुश है। उसका चित्र देखा जाय तो दोदो का सहसा स्मरण हो आता है।

इस द्वीप के नौ जिलों में से एक का नाम है काली नदी। थोड़े दिन के लिए यह नाम एक दम उपयुक्त प्रतीत हुआ। उसके एकमात्र नगर में मल-मूत्र राजमार्ग में एकत्र हो गया था। सड़ जाने पर दुर्गन्ध निकलती थी। उसके आस-पास कोई रुकने का साहस नहीं करता था।

उत्तर मारिशस के अनेक ग्रामों में जल जमा हो गया है। मच्छरों को इससे अच्छा अवसर कब मिलता? न जाने कितने ग्रामीण मच्छरों के शिकार होकर बीमार पड़ेंगे।

काली नदी जिले के ही लघु ग्राम कानोत में कुल ९५ घर थे। मारिशस में लगभग ५०० ऐसे ग्राम हैं। कानोत के ९५ घरों में से केवल ६ बच गये हैं।

आबाद होने से पहले मारिशस एक महा वन था। वह आबाद हुआ और जनसंख्या बढ़ती गयी। जिस अनुपात में मनुष्यों की तादाद बढ़ी उसी अनुपात में वन के वृक्ष घटे। उन्हें ढहाते रहना हमारा मुख्य कार्य रहा। यहाँ अंग्रेजों से पहले फ्रांसीसियों का शासन था। उससे पहले डचों का आधिपत्य रहा जिन्होंने जंगलों में पाये जाने-वाले आबूनस के सभी वृक्षों को काट गिराया था। उन्होंने धन कमाया। वृक्ष घटे जिसके परिणामस्वरूप पानी का अभाव हुआ। जो यत्र-तत्र लघु वन रह गये हैं, उन्हें चक्र-वात ने उसी भाँति विनष्ट किया जिस भाँति कोई बड़ी सेना किसी बलहीन सेना पर टूटकर उसे छिन्न-भिन्न कर देती है।

हम जल से भी आहत हुए। चीनी का व्यवसाय मुख्य मारिशसीय व्यवसाय है। तम्बाकू का व्यवसाय छोटे व्यवसायों में है। वह प्रगति करता रहा है। पत्ते गोदाम में पड़े थे। बवण्डर के चले जाने पर गोदामों को खोला गया तब पता चला कि पत्तों का दो तिहाई हिस्सा खराब हो गया है।

मारिशस के समीप अनेक लघु द्वीप विद्यमान हैं जिन पर जो कुछ पशु-पक्षी बच रहे हैं उन्हें बचाने की चिन्ता हो रही है, क्योंकि उन्हींके कारण वे द्वीप महत्त्व रखते हैं। उन्हींके समान मारिशस और फ्रेञ्च टापू रेइन्यों में 'वन पक्षी' या 'वन मुर्ग' नामवाली चिड़िया है जिसका मधुर गान कर्णप्रिय है। 'केला पक्षी' केवल मारिशस में है। हम सावधान न रहे तो ये दोनों विलुप्त हो जायँगे।

फरवरी के चक्रवात के बाद पशु-पक्षी प्रेमी उन छोटे द्वीपों की सुध लेने लगे हैं। उनमें एक विचित्र प्रकार का सर्प है। वन्य जीवन की रक्षा का प्रश्न यहाँ भी उठा है। दोदो के विलुप्त होने के कारण जो बदनामी हुई वैसी ही बदनामी से बचने की कोशिश की जा रही है।

१ मास १० दिन व्यतीत हुए और दूसरा बवण्डर, जिसका नाम 'इनेस' है, हम पर पिल पड़ा। यह मैदागास्कार से होकर आया था, जहाँ बाढ़ आ गयी थी। इसके आगमन ने एक कमी की पूर्ति की। उत्तर मारिशस में जल का अभाव था जो दूर हुआ। 'इनेस' तूफान वस्तुतः प्रति-चक्रवात था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम क्षण

लेखक—श्री रगेश मंत्री
अनुवादक—श्री रा० र० सरवटे

सुबह के साढ़े तीन बजे थे। रेलगाड़ी की आवाज आयी और अना जाग उठी। उसे लगा कि इसी तरह उठूं और गाड़ी में जाकर बैठ जाऊं। पर आँखों पर नींद थी। बदन भारी हो गया था। नित्य की भाँति रेलगाड़ी आयी, अना की झोपड़ी के सामनेवाले छोटे स्टेशन पर दो मिनट रुकी और चल दी। अना को लगा कि और एक अवसर चला गया। ऐसा कितने दिन चलेगा ?

गत एक वर्ष से प्रति दिन सुबह यही हुआ करता। अना तपेदिक के अस्पताल में एक साल तक थी। पर वह अस्पताल कोई भव्य इमारत न थी। बल्कि वह पचास-साठ छोटी-छोटी झोपड़ियों की एक बस्ती थी। अना के तपेदिक ने जब जोर पकड़ा तब उसे बंबई से बानसेलवाडी के अस्पताल लाया गया था और उसे एक स्वतंत्र झोपड़ी दे दी गयी थी। उस झोपड़ी में अना रात-दिन एक खटिया पर सोई रहती और उसकी बूढ़ी माँ उसकी सेवा-सुश्रूषा किया करती। आसपास के रोगग्रस्त वात वरण से अना बिलकुल ऊब उठी थी। हर दिन रात को सोते समय वह निश्चय करती कि कल सुबह गाड़ी के आते ही मैं उठूंगी और किसीसे कुछ कहे बिना यहाँसे भाग जाऊँगी। सीधे बंबई पहुँचूंगी और अपने प्रेमी जार्ज से मिलूंगी।

आज तक यह हो नहीं पाया था। पर एक दिन सवेरे यह हो गया था।

उस सुबह साढ़े तीन बजे अना जागी। तब उसे ऐसा दिखायी दिया कि मेरा शरीर किसी गूढ़ और प्रबल शक्ति से भर उठा है। उस सुबह उसकी आँखों में नींद नहीं भरी, बदन भारी नहीं हुआ। उलटे उसे लगा जैसे मेरा शरीर प्रचण्ड विद्युत् शक्ति निर्मित करनेवाला धड़धड़ाता यंत्र है और यदि इस विद्युत् शक्ति का उपयोग न किया जाय तो अतिरिक्त से यह तड़क जायगा।

अना झट से उठी। उसने अपने हाथ हवा में फेंके। खटिया पर बैठकर पैर ताने। जाझ नृत्य की तरह उसने कमर मटकायी। उसे जँच गया कि सचमुच ही मेरा शरीर आज एक विशाल बेकाबू शक्ति हो गया है। मैं मन में लाऊँ तो हवा में भी उड़ सकती हूँ—ऐसा भी उसे एक क्षण के लिए लगा। अपनी इस विचित्र कल्पना पर स्वयं उसे ही हँसी आ गयी। उठने पर क्या करूँगी—यह वह हजारों बार तय कर चुकी थी। इसलिए उसे उस विषय में कोई विचार न करना पड़ा। उसने अपने सैंडल हाथ में लिये। अंधेरे में टटोलते-टटोलते वह अलमारी के पास गयी और उसमें रखा माँ का मनीबेग उसने हस्तगत किया। बिलकुल हलके हाथ से उसने दरवाजे की कुंडी खोली।

इसी समय रेलगाड़ी की आवाज रुकी। अब गाड़ी खुलने में सिर्फ दो मिनट की देर थी। इतनी अवधि में अस्पताल का कम्पाउंड पार करना, स्टेशन तक का रास्ता तय करना और गाड़ी में बैठना, ऐसे अनेक काम अत्यंत शीघ्रता से अना को करने पड़े। वह नंगे पाँव दौड़ने लगी। दरबान की परवा न कर, उसने कूदकर कम्पाउंड का फेंसिंग लाँघा। तभी उसे गाड़ी के खुलने की आवाज सुनायी पड़ी। उसने स्टेशन की ओर देखा। गाड़ी हिल गयी थी। पर अना निराश नहीं हुई। आज उसके शरीर में असीम बल आ गया था। एक हाथ में पर्स और दूसरे में सैंडल्स लिये वह अत्यंत वेग से दौड़ी और प्रयत्न की पराकाष्ठा करके उसने चलती गाड़ी के एक डिब्बे का हैंडल पकड़ लिया।

अना ने डिब्बे का दरवाजा खोलकर भीतर प्रवेश किया तो उसने पाया कि उस सेकंड क्लास के डिब्बे में वह अकेली प्रवासिनी है। उसने सैंडिल पैरों में पहने, मनीबैग बेंच पर पटका और छुटकारे की साँस लेकर उसने अपनी देह उस नरम गद्दे पर फैला दी। एक वर्ष में उसका दौड़ने का ही नहीं बल्कि चलने तक का भी अभ्यास छूट गया था। इसलिए अचानक किये हुए श्रम के कारण वह तनिक थक गयी थी। पर पाँच-दस मिनट का विश्राम कर लेने पर उसे लगा कि मुझे जो अवर्णनीय शक्ति आज प्राप्त हुई है, उसकी तुलना में यह श्रम कुछ भी नहीं।

वह उठी। उसने टायलेट रूम का दरवाजा खोला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल्ली की, और दर्पण में देखा। वह हँस पड़ी। कितनी घामड़ दिख रही थी वह! और फिर भी कितनी नाजुक और कितनी सुन्दर दिखती थी! फीका, लाल-सा गौर वर्ण, लोलक जैसा लम्बा-सा चेहरा, माथे पर बिखरे हुए, चेहरे से खिलवाड़ करनेवाले फीके पीले रंग के बाल, मटमैले लाल रंग की झलकवाली आँखें, जैसे खोदकर बनायी गयी पतली कमानीदार भवें, सीधी नाक, मुखर और आकर्षक अधर—बस, अपने सौन्दर्य पर वह मुग्ध हो गयी। उसे लगा कि इस अस्त-व्यस्त सौन्दर्य को देखने के लिए जार्ज को यहाँ होना था। वह मेरे निर्लज्ज केशों को पीछे हटा देता और धीरे-से मेरे होठों पर....

अना पीछे मुड़ी। उसने गद्दे पर पड़ा पर्स उठाया। उसमें पाउडर, शीशा, छोटी कंघी और लिपस्टिक थी। प्रसाधन की यह सामग्री पर्स से निकालते समय एकदम उसके ध्यान में आया कि पर्स में पैसे कितने हैं यह भी देख लेना चाहिए। उसने नोट गिने। वे पचपन रुपये के थे। एक-दो रुपये की रेजकारी भी थी। बंबई जाने के लिए इतने पैसे काफी होंगे इस विचार से उसे संतोष हुआ, और वह प्रसाधन के कार्य में मग्न हो गयी।

परन्तु उसका कार्य पूरा भी नहीं हुआ था कि मिरज जंक्शन आ गया, और गाड़ी रुकी। अस्त-व्यस्त पड़ी हुई प्रसाधन की चीजें उसने पर्स में रखीं और वह गाड़ी से उतरी। उसने एक पोर्टर को थोड़ा इनाम देकर बंबई का दूसरे दरजे का टिकट मँगवाया। फिर गाड़ी छूटने के लिए कितनी देर है इसकी पूछताछ की। तब उसे मालूम हुआ कि अभी उसे पूरे पौन घंटे तक स्टेशन पर ही समय बिताना होगा। उसने स्टेशन पर गर्म काफी पी, सिगरेट का पैकट खरीदा और एक सिगरेट जलायी। उस गरमाहट से वह काफी उत्तेजित हो गयी। उसके शरीर में आज सोकर उठने के बाद से जो असीम शक्ति खेल रही थी वह उसे चुप बैठने नहीं दे रही थी। उसे लगा कि स्टेशन के उस विशाल जीने से जोर से दौड़ूँ। जिस तरह बेहद क्रीडाशक्ति रखनेवाले बच्चों को ऐसा हो जाता है कि क्या करें और क्या न करें उसी तरह अना की अवस्था हो गयी थी। हरिन की चपल उछालों की तरह जीने की सीढ़ियों पर दौड़नेवाली अना को देखकर, किसीको इस पर विश्वास ही न होता कि तीन वर्ष तपेदिक से बीमार रहनेवाली और पिछले एक वर्ष तक बिस्तर से बँधी पड़ी रह चुकी है।

दूसरों की बात ही क्या, स्वयं उसे भी यह सच नहीं लग रहा था। वह स्वयं से कहने लगी—'मैं तपेदिक से बीमार पड़ी हूँ ऐसा भयंकर स्वप्न देखा था मैंने। पर अब वह स्वप्न समाप्त हो गया है—सत्य शुरू हो गया है। अब बंबई पहुँची कि जार्ज को चाँदनी रात में—जुहू बीच—चर्च—शादी काकटेल पार्टी—'

गाड़ी की कर्कश सीटी हुई तब अना उस सुख-स्वप्न से जागी! उसने दूसरे दरजे का डिब्बा खोजा और दरवाजा खोला। भीतर मध्यम वय का एक पुरुष, एक स्त्री और एक छोटा बच्चा—इतने प्रवासी थे। उस परिवार से एक पूरी बेंच भर गयी थी। अना दूसरी बेंच के एक सिरे पर बैठ गयी और खिड़की से बाहर की गड़बड़ी की ओर देखने लगी। इसी समय एक मनुष्य जल्दी-जल्दी डिब्बे में चढ़ा। भीतर के मुसाफिरों की ओर देखकर वह तनिक ठिठका। फिर उसने अना की ओर देखकर अदब से अंग्रेजी में पूछा, 'क्या मैं यहाँ बैठ सकता हूँ?' अना ने औपचारिक स्मित करके कहा, 'हाँ, हाँ, बैठिये न!'

उस नये प्रवासी की उम्र तीस के करीब होगी। उसकी व्यवस्थित पोशाक और कलाकार जैसा दिखनेवाला चेहरा देखकर अना को अच्छा लगा। उसके सामान में चित्रों के रँगने का एक फलक दिखायी दिया। तब तो अना ने पूछ ही दिया, 'आप चित्रकार हैं शायद?'

इस प्रश्न से वह थोड़ा लज्जित हुआ। पर उस मुक्त वातावरण से उसके मन को संतोष भी हुआ। उसने उत्तर दिया, 'पेशे से चित्रकार नहीं हूँ, पर चित्रकला का विद्यार्थी हूँ मैं।'

'ग्लेड टु मीट यू। मेरा नाम अना—अना लेंसबरी। बम्बई जा रही हूँ मैं। आप?'

उसको इस अकल्पित मेल-जोल करने की प्रवृत्ति पर पहले तो उसे आश्चर्य हुआ, पर यह ध्यान में आते ही कि वह यूरोपीय है, उसका आश्चर्य कम हो गया। वह बोला—'मैं भी बम्बई ही चल रहा हूँ। मेरा नाम है एस० टी० गोरे।'

अना ने कहा, 'अच्छा हुआ। आपका साथ काफी देर तक मिलेगा मुझे।'

अब क्या बोले यह प्रश्न उसके सामने खड़ा हुआ और इस प्रश्न का कोई उत्तर न मिलने के कारण उसने खिड़की के बाहर निगाह डाली। इस समय तक झटपुटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया था। पूर्व दिशा प्रकाशित हो गयी थी और कुहरे की पतली तह वातावरण में फैली हुई थी।

अमा ने एक सिगरेट जलायी और पैकट उसके सामने बढ़ाया। उसने भी धन्यवाद देकर एक सिगरेट जलायी। उसके इस प्रेम-भरे आतिथ्य के कारण गोरे को खुशी हो रही थी। साथ ही वह अभिभूत हुआ जैसा भी लग रहा था। धुएँ के एक-दो गुब्बारे हवा में छोड़कर गोरे ने पुनः उसकी ओर देखा। वह एकाग्रता से सूर्योदय की ओर देख रही थी। वहाँ देखते-देखते ही वह बोली, 'क्या आप सच मानेंगे, मिस्टर गोरे ? मैं एक साल बाद आज प्रथम बार ही सूर्योदय देख रही हूँ। ह्वाट ए वंटरफुल साईट !'

'बहुत ही सुन्दर है आज का दृश्य। मैं चित्रकार होता तो इस सूर्य को इसी तरह पकड़कर रख लेता। पर खैर, छोड़िए इसे। मुझे अचंभा होता है, सच, आपने एक साल तक सूर्योदय नहीं देखा ? क्यों भला ?'

'बिस्तर से उठने की मनाही जो थी मुझे एक साल तक। उस कालेपानी की सजा से आज अचानक छुटकारा हुआ है मेरा।'

'माफ कीजिए। मैं समझा नहीं।'

'वह एक लम्बी कहानी है। वह कोई रोमांचकारी नहीं। लेकिन सच है।'

'फिर सुनाइए न !'

'एक शर्त्त पर।'

'कौन-सी ?'

'मेरी सत्य कथा के समाप्त होने पर आपको मेरा एक चित्र खींचकर देना होगा मुझे।'

'दूँगा। पर एक शर्त्त पर। अगर चित्र बुरा बना तो आप नाराज न होंगी।'

'नाराज होने की क्या जरूरत ? आपको जब मुझ जैसा खराब माडल मिलेगा तो चित्र सुन्दर कैसे बनेगा ? यही कहना चाहते हैं न आप ?' अना ने चेहरे पर शरारत भरी मुस्कराहट लाकर कहा।

'नहीं, नहीं। माडल के सौन्दर्य को कागज पर उतारने के लिए मेरे हाथ असमर्थ होंगे इसलिए यह शर्त्त रख रहा हूँ मैं।'

'ठीक। अच्छा, अब सुनिए मेरी कहानी।'

ऐसा कहकर अना ने और एक सिगरेट उसे दी और एक स्वयं उसने ली। अपनी कहानी वह शुरू कर रही थी कि उसका ध्यान डिब्बे में बैठे दम्पति की ओर गया। उस सज्जन की ओर मुड़कर वह बोली—'माफ कीजिए, साहब। हम लोगों की गप्पों से आपको तकलीफ तो नहीं हो रही है ?'

'नहीं, नहीं। यह आप क्या कह रही हैं ? उलटे आप लोगों की ये दिल खोलकर होनेवाली गप्पों को मैं ही आपकी इजाजत के बगैर सुन रहा हूँ। अपने गप्प-क्लब का मेम्बर हमें भी बना लीजिए न आप।' सज्जन बड़ी आत्मीयता के स्वर में बोले।

'यू आर वेलकम !' ऐसा कहकर अना ने सिगरेट का पैकट उनके आगे बढ़ाया।

सिगरेट लेकर वे सज्जन बोले, 'मेरा नाम दवे। यह मेरी पत्नी, सरल और यह हमारा छोटा पुत्र रतन।'

सरलाबाई ने अना को नमस्ते किया और अना ने भी भारतीय ढंग से दोनों कर जोड़कर उसका उत्तर दिया। रतन की ओर देखकर अना बोली, 'ह्वाट ए लव्वली चाईल्ड' और फिर उसे लगा कि मुझे इस तरह लगातार सिगरेट पीते देखकर सरलाजी मन में क्या कहती होंगी। वह अफसोस के स्वर में उनसे बोली, 'मुझे सिगरेट पीते देखकर आपको बड़ा अजीब-सा लगता होगा। है न ? पर पिछले तीन वर्षों से मुझे सिगरेट छूने को भी नहीं मिली। उसका बदला ले रही हूँ मैं आज !' सरलाबाई कुछ न बोलीं, पर समझौते की मुस्कराहट उनके चेहरे पर फैल गयी।

'आप बीमार थीं क्या ?' डाक्टर दवे ने उससे पूछा।

'यही तो सब मजा है !' अना कहने लगी, 'मेरे पापा से तीन-चार साल पहले किसी ने कहा कि इसे तपेदिक हुआ-सा दिखता है। पापा के छक्के छूट गये। वे मुझे बम्बई के एक-दो डाक्टरों के पास ले गये। स्क्रीनिंग हुआ। एक्स-रे फोटो लिये गये। सब की राय यह रही कि तपेदिक शुरू हुए काफी दिन हो गये हैं। मुझे यह बात सच नहीं लग रही थी। मैं पापा से कह रही थी कि आप कोई चिन्ता न करें। मुझे उत्साह मालूम होता है। आगे पढ़ने को जी चाहता है। खेलने-कूदने को मन करता है। सर्वसाधारण युवतियों को जो लगता है, वह सब मुझे लगता है। फिर आपकी यह व्यर्थ की दौड़धूप किसलिए ? पर पापा ने सुना नहीं। मेरी पढ़ाई बन्द कर दी। मैं फर्स्ट इयर इन्टर में थी उस समय।'

अना ने एक दीर्घ साँस छोड़ी। वह खिड़की के बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखने लगी। फिर उसने अपनी कहानी शुरू की। वह इस अभिनय से जैसे वह डिब्बे के मुसाफिरों से कुछ कहती न थी, बल्कि पीछे दौड़नेवाले वृक्षों और अपने आसपास घूमने-वाली टेकड़ियों और स्पष्ट हो रहे सूर्य प्रकाश को ही वह अपनी कहानी सुना रही थी।

'और जार्ज! जार्ज मेरा मित्र! उसका नाम जार्ज फर्नांडिस। उससे मैं कहती, 'तुम राजा जैसे शोभा देते हो, इसीलिए तुम्हारा नाम जार्ज रखा गया है न?' वह कहता, 'तुम देवी जसी नाजुक हो सो!' मैं कहती, 'जार्ज, मैं तुम्हें शोभा नहीं दूँगी, जी। तुम मेरा पीछा छोड़ दो।' वह कहता, 'अना तुम क्या शोभा की चीज हो? तुम्हें फर्नीचर अथवा सजावट की चीज के रूप में मैं नहीं ले जाऊँगा अपने घर। मैं ले जाऊँगा अपनी प्रिय पत्नी के रूप में—मिसेज फर्नांडिस के नाते ले जाऊँगा मैं तुम्हें।'

डाक्टर दवे को उसका यह स्वगत भाषण कुछ अजीब सा लगा। गोरे को भी ऐसा न लगा कि वह मामूली स्त्री की तरह बोल रही है। डाक्टर उसकी ओर ध्यानपूर्वक देखने लगे—जिस तरह पेशेन्ट की हलचल की तरफ देखते हैं। प्रथम परिचय में ही अपनी निजी और नाजुक बातें इस तरह कहनेवाली युवती उन दोनों को ही निराली और तनिक भयप्रद लगी।

पर अना का उनकी ओर ध्यान नहीं था। वह उनकी दुनिया में थी ही कहाँ? वह इस समय जार्ज के साथ जुहू बीच पर थी, यूरेशिया होटल की अटारी पर डांस देख रही थी, रविवार की सुबह वह जिस चर्च में जाती उसमें थी, सिनेमा में थी, मलबार हिल के बाग में थी, रात को निर्जन हुई फोर्ट की लम्बी-चौड़ी सड़क पर थी, हजारों मनोहारी स्थानों पर वह थी। वह कह रही थी, 'जार्ज, नहीं जी, तुम मुझसे विवाह न करो। लोग कहते हैं कि यह बीमार है। मुझे तपेदिक हो गया है। तपेदिक—फेफड़ों का क्षय! इस बीमारी में बहुत से लोग मर जाते हैं। क्यों तकलीफ उठा रहे हो मेरे लिए? मैं अब अच्छी नहीं होऊँगी। शायद अब फिर कभी भी तुम्हारे हाथ में हाथ डाले नहीं घूमूँगी, नहीं दौड़ूँगी, डांस नहीं करूँगी। तुम आओगे तो तुम्हें बाहों में भरने के लिए मेरे हाथ भी ऊपर नहीं उठ पायेंगे। आगे चलकर मुँह से शब्द नहीं फूटेगा—तुमसे बात नहीं कर सकूँगी। और—और एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम्हारा सुन्दर चेहरा देखने के लिए अपनी पलकें उठाने की भी शक्ति मुझमें नहीं रहेगी। प्यारे, मैं डूब रहा हुआ जहाज हूँ। इस जहाज पर तुम कदम मत रखो, पीछे हटो—पीछे हटो....'

अना की आँखें बन्द हो गयीं। उसके हाथ से सिगरेट छूटकर गिर पड़ी। उसने पीछे सिर टिका लिया, और उसकी साँस जल्दी-जल्दी और कुछ अजीब-सी चलने लगी। उसकी आँखों से गिरनेवाले आँसू डिब्बे के अन्य मुसाफिरों ने देखे। उन्होंने एक दूसरे की ओर देखा। उस गूढ वातावरण में कुछ चमत्कारी, भयानक और चिन्तनीय है ऐसा उन सब लोगों को लगा। लेकिन कोई बोला नहीं। क्या बोलें—यह किसीको सूझ भी नहीं पड़ रहा था।

अना आँखें बन्द किये कुछ देर चुप रही। उसके चेहरे पर विकलता और आर्तता दिख रही थी। पर कुछ पल बीत जाने पर उसकी आँखों से बहनेवाले आँसू रुक गये। निराशा धीरे-धीरे कम होने लगी। रबर के मुड़े हुए गुब्बारे में हवा भरने पर वह जिस तरह खिल उठता है, उसी तरह उसका क्लेशमय चेहरा चमकने लगा। बीच ही में वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर शरमाई और एकदम उसने अपनी हँसती आँखें खोल दीं। उसके अंगों में नयी शक्ति का प्रवाह शुरू हो गया। छुटकारे की साँस लेकर वह बोली, 'ओ! पर अब मैं बिलकुल मुक्त हो गयी हूँ। अब मुझे कोई रोग नहीं। तपेदिक तो छोड़ ही दीजिए, मामूली जुकाम और खाँसी भी नहीं। आई एम ए परफेक्ट वूमेन नाऊ। आप जानते हैं क्या? मैंने जार्ज को खबर भी नहीं दी कि मैं उससे मिलने आ रही हूँ। एकदम सरप्राईज़ विज़िट देनेवाली हूँ मैं! पहले एक बार जब मैं बीमार थी, तब उसने मुझे एक नाटक पढ़कर सुनाया था। उसकी नायिका बहुत बीमार रहती है, परन्तु अपने प्रेमी के सहारे और अपने विशुद्ध प्रेम के बल पर वह बिलकुल अच्छी हो जाती है, और उन दोनों का विवाह हो जाता है। उस समय यह सच नहीं लगा था मुझे। पर अब वह जँच गया।'

कुछ समय पहले की अना की निराशा और विवशता जितनी अकल्पित थी उतना ही इस समय का उसका उत्साह भी अचानक और अमर्याद था। उसका चेहरा इतना आनन्द-मय हो गया था और वह अपनी कहानी इतने उत्साह से कहने लगी थी कि उसकी द्रुत गति से बढ़नेवाली उन भावनाओं को देखकर डाक्टर दवे उसकी ओर शक की निगाह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखने लगे। उसके तपेदिक के बारे में वे उससे कुछ सवाल करना चाहते थे। यदि सम्भव हो तो उसकी जाँच भी करूँ ऐसा भी बेकाबू मोह उनके मन में उत्पन्न हुआ। पर शिष्टाचार की खातिर उन्हें अपनी यह उत्सुकता, जो वाजिब थी, रोक लेनी पड़ी।

'अब जल्दी ही मेरा विवाह होनेवाला है। मैं जो कह रही हूँ, वह क्या आप लोगों को झूठ लग रहा है? स्वयं देखेंगे आप। ऐसा क्यों? हम विवाह का निमंत्रण ही भेजेंगे आप लोगों को। पर आप लोगों को जरूर आना चाहिए जनाब।' अना ने बोलते-बोलते हँसकर उन तीनों की ओर देखा। विवाह का विषय निकालते ही शर्म से लद जानेवाली हमारी हिन्दू लड़कियाँ और स्वयं के विवाह के बारे में परायों से इतनी आत्मीयता से दिल खोलकर बात करनेवाली यह युवती—इसका फर्क उन तीनों मुसाफिरों को महसूस हुए बिना न रहा। परन्तु इसके बाद अना ने जो किया और जो उद्‌गार निकाले, उसके कारण तो उन्हें सौम्य आश्चर्य का धक्का ही लगा।

अना अपनी जगह से उठी। वह श्रीमती दवे के पास गयी। 'इस बच्चे को थोड़ी देर के लिए ले लूँ?'—ऐसा कहकर उसने नन्हें रतन को गोद में ले लिया। उसे लेकर वह फिर अपने स्थान पर जाकर बैठ गयी और उसका चुम्बन लेकर उससे तोतले और लाड़-भरे बोल बोलने लगी—'लालन, हमारी भाषा समझते हो क्या?' फिर डाक्टर दवे की ओर मुड़कर वह बोली, 'यदि माँ को कभी तपेदिक हो गया हो तो उसे ऐसे हट्टे-कट्टे और सुडौल लड़के होते हैं क्या, डाक्टर?'

'यह तपेदिक की किस्म पर अवलम्बित है'—डाक्टर ने व्यवसायी उत्तर दिया।

'छोड़िये इसे! मुझे क्या उसका? मुझे तपेदिक थोड़े ही हुआ है?' अना अपने आप बुदबुदाने लगी—'नहीं-हर! तपेदिक नहीं, कुछ नहीं। खासी तन्दुरुस्त हूँ मैं। ए वन है मेरा स्वास्थ्य। और मेरा जार्ज भी सुन्दर और सुदृढ़ है। मुझे अच्छे, सुन्दर, हट्टे-कट्टे और नीरोग बच्चे होंगे।'

इस वाक्य को सुनकर डिब्बे के उन तीन मुसाफिरों को लगा कि यह लड़की अपना संतुलन खो रही है। परन्तु उसे उस तरह की सूचना देना उनकी शक्ति के बाहर था। डाक्टर के मन का शक बेशक जोर पकड़ने लगा।

इसके बाद अना विशेष बोली नहीं। उसने बच्चे को कसकर सीने से चिपका लिया। उसके होठों पर अपने होंठ एक-दो बार टिकाये और वह शून्य मन से खिड़की के बाहर देखने लगी। जैसे उसका कुछ खो गया है इस तरह का अभिनय किया उसने। फिर बीच ही में उसने रतन के नरम हाथ धीरे से दबाये। वह अपने आपसे बोली, 'जार्ज, मेरे प्यारे, मुझे माफ कर दो।'

उस तन्द्रा में एक-दो क्षण बीत जाने पर अना फिर होश में आयी। चौंककर उसने अन्य मुसाफिरों की ओर निगाह डाली। श्रीमती दवे को उनका बच्चा देकर वह बोली, 'इस पर ख्याल रखिए, समझीं? जब जवान होगा तो लड़कियों को तंग करेगा यह!' श्रीमती दवे हँसी। अना भी मुस्करायी। उसकी आँखों में शरारत नजर आने लगी। वह अपने स्थान पर जाकर बैठ गयी और दूर की टेकड़ी की ओर देखने लगी। उसके चेहरे पर संतोष की झलक दिखने लगी। गृहस्थी की छोटी-मोटी आनन्दमयी घटनाओं से होनेवाले संतोष की अपेक्षा वह संतोष गूढ था-गहरा था। उसे ऐसा लगने लगा कि शरीर का उत्साह और शक्ति कम हो रही है, पर एक नयी ही संतोष-वृत्ति उसके हृदय में प्रवेश करने लगी।

अना ने अपनी भारी पलकें कष्ट से उठायीं। उसके सामने डा० दवे की धुँधली आकृति थी। वह भारी स्वर में बोली, 'डाक्टर, मैं थक गयी हूँ। सो जाऊँ क्या?' डाक्टर उठे। उसके पास जाकर वे बोले, 'हाँ। सो जाइए। मुझे पहले से ही लग रहा था कि आपको आराम की जरूरत है। क्या आप होल्डाल नहीं लायीं?'

'नहीं।' गलित गात्र हुई अना ने गरदन हिलाकर उत्तर दिया। 'फिर थोड़ा ठहर जाइए आप' अपना होल्डाल खोलते हुए डाक्टर बोले। उन्होंने ऊपर की बर्थ पर गद्दी फैलायी, और वे अना से बोले, 'हूँ, अब उठिए ऊपर बिस्तर लगा दिया है। पूना आते तक आप आराम से सोइए अब।'

अना ने आँखें खोलीं। वह किसी तरह उठी। डाक्टर द्वारा दिये गये सहारे से वह बर्थ पर गयी। पर सोने से पहले वह गहरे स्वर में बोली, 'डाक्टर, सचमुच मेरा विवाह होनेवाला है, समझे? और मैं सचमुच ही बीमार नहीं—जार्ज—माई लव····जार्ज····'

दोपहर के लगभग पूना का विशाल स्टेशन नजदीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने लगा। तब गाड़ी के मुसाफिर अपना सामान समेटने-लपेटने लगे। अना को यथासंभव अधिक विश्रान्ति मिले इसलिए डा० दवे ने उसे अभी तक नहीं जगाया था। पर अब गाड़ी बदलनी थी। इसलिए उन्होंने पुकारा, 'मिस, उठिए—पूना आ गया।' फिर भी बर्थ पर कोई हलचल न हुई। तब डाक्टर के मन को एक भयंकर शक छू गया। त्योंही उनका अभ्यस्त हाथ अना की कलाई पर पड़ा। उन्होंने नब्ज देखी और भयचकित स्वर में वे चिल्लाये—'माई गाड! अना मर गयी है! शी इज डेड!'

यह सुनते ही गोरे तड़ाक-से उठकर खड़े हो गये। श्रीमती दवे का कलेजा धक-से हो गया। डाक्टर एक क्षण के लिए करुण भावना के शिकार हो गये, और उसके बाद उनका चेहरा गम्भीर दिखने लगा—व्यावसायिक डाक्टर जैसा।

'डाक्टर, यह ऐसा कैसे हो गया?' गोरे ने चकित होकर पूछा।

'मुझे बड़ी देर से बारीक शक हो रहा था कि इस लड़की की बोल-चाल अलग है—जरा सूचक प्रतीत होती है। पर मुझे यकीन नहीं हो पा रहा था। अब मेरे मन में सारी कड़ियाँ जुड़ गयी हैं।' डाक्टर अपनी राय शांति से दे रहे थे, 'यह लड़की कई सालों से तपेदिक से बीमार थी। इसका रोग और उसकी अवस्था घातक थी। परन्तु बिल-कुल अंतिम क्षण में अना को लगने लगा कि मैं सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गयी हूँ। बुझने से पहले दिया बड़ा-बड़ा होता जाता है न, उसी तरह।'

'क्या जिंदगी है, देखिए? अजीब—बिलकुल अजीब! और वह लगातार कह रही थी—मेरा विवाह होनेवाला है। सच पूछा जाय तो मुझे उसकी बातें अधिक साहस की और जरा वाहियात लगीं।' गोरे बोले।

'पर उन बातों के पीछे कितना करुण सत्य छिपा था—आप जानते हैं क्या? मनुष्य की अनेक आशाएँ आकांक्षाएँ जीवन भर पूरी नहीं होतीं। परन्तु बिलकुल अन्तिम क्षण में उसे लगता है कि अभी तक मुझे जो प्राप्त नहीं हुआ, वह अब निश्चय ही मिलेगा।' डाक्टर ने प्रायः सभी कड़ियाँ जोड़ ली थीं। वे आगे बोले, 'पर मेरी समझ में यह नहीं आता कि ऐसे अंतिम क्षण में अना को सफर करने की इजाजत किसने दी?'

पर इस बात का उन लोगों को कभी भी पता न चला। गाड़ी की रफ्तार धीमी होने लगी। तब डाक्टर ने गोरे से कहा, 'स्टेशन मास्टर को इसकी खबर देनी चाहिए और उसका पता अगर उसके पर्स में हो तो देखना चाहिए।'

अना का पर्स निकालने के लिए डाक्टर उसके बर्थ पर खोजने लगे। तब उनका ध्यान उसके चेहरे पर गया। वे स्तमित ही हो गये। अना के मुख पर जैसा शांति, संतोष और तेज उन्होंने देखा, वैसा उन्हें आज तक किसी भी मृतक के चेहरे पर देखने को न मिला था। उनके मन में विचार आया—यदि अस्पताल में होती तो भी यह लड़की एक दो दिन में मरने ही वाली थी। उस समय दुःख और निराशा से इसका चेहरा डरावना दीख पड़ता। परन्तु अन्तिम क्षण में नयी दिव्य शक्ति प्राप्त हो जाने के कारण कि मेरी सारी आकांक्षाएँ पूर्ण होंगी—इसका यकीन हो गया इसे! इस मधुर और सुखद विचार में ही यह सदा के लिए सो गयी।

अनेक वर्षों तक अना तपेदिक से लड़ी, परन्तु जार्ज के प्रति मेरे प्रेम का फूल खिलेगा—इस पूर्ण विश्वास से उसने अन्तिम साँस ली।

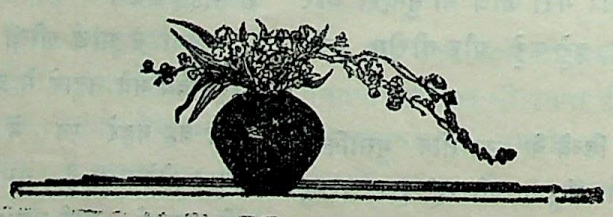

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिशोध (२)

श्री मनमोहन गुप्त

[क्रमागत]

मैंने उस समय का भोजन वहीं किया। उन्होंने बार-बार पूछ-पूछकर छककर भोजन कराया। परोसनेवाली सँझिली जीजी ही थीं। जब भोजन करके सँझिली जीजी के साथ चलने लगा तब उन्होंने पूछा—तो फिर आशा रखता हूँ कि शाम को भी तुम अपनी सँझिली जीजी के साथ मेरे यहाँ आओगे ?

मैंने कहा—आप पतंग उड़ा लेते हैं ?

—खूब, खूब ! मैं तो ऐसे पतंग उड़ाता हूँ जैसे इस शहर में कोई भी नहीं उड़ा पाता। Understand ? कोई नहीं।....मेरे पास बड़ी-बड़ी पतंगें हैं। आना तो उड़ाकर दिखाऊँगा।

यह कहकर उन्होंने मुझे विदा करते समय बड़े जोर से हाथ मिलाया। मैं सँझिली जीजी के साथ बँगले से बाहर निकला। निकलते ही मैंने उनसे पूछा—तुमने इनकी पतंगें देखी हैं ? ये खूब उड़ाते हैं ?

अनभिज्ञता ज्ञापन करती हुई सँझिली जीजी ने कहा, मैंने तो कभी देखीं नहीं....मगर हाँ....इनके पास क्या है, क्या नहीं है—यह कहना मुश्किल है। कभी किसीको इनका भेद नहीं मालूम पड़ सकता है।

मैंने कहा—होगा....हें: !....मुझे क्या करना है....आज शाम को आऊँगा....न देखूँगा तो ऐसा पदाऊँगा कि भैंसा जैसा शरीर पिचका दूँगा....पेट फाड़ दूँगा....देखना तुम....।

बीच में ही सँझिली जीजी बोल पड़ीं—तू हमेशा बच्चा ही रहेगा ? दस-ग्यारह का हो गया, मगर अभी तक नहीं सीख सका कि किससे कैसे पेश आना चाहिए.... बहुत बढ़ जाता है....आज उन्हें ऐसा परेशान किया....

दुतकारते हुए मैंने कहा—तुम्हारा सिर। कुछ समझती न बूझती....यों ही बड़बड़ाये जाती है....उस दैत्य को तो मार-मारकर ही ठीक करना पड़ेगा।....देखा नहीं कि भीम ने दैत्यों की क्या....

—रहने दे। रहने दे। वे तुझसे उम्र में कितने बड़े हैं। उन्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए....

—शेः ! शेः ! होंगे बड़े तो अपने घर के बड़े होंगे.... मेरे बाप का क्या ! मैं तो....

मेरा मिजाज बिगड़ता जा रहा है—यह देखकर सँझिली जीजी ने बात का रुख बदलने के लिए कहा—ठीक ही तो है....तुम उन्हें ठीक कर देना....ऐसे लोगों को तो तू ही ठीक कर सकता है....

—ऐसे वैसे क्या....? तुम मुझे क्या समझती हो ? मैं इनके बाप जैसों को भी पदा मार सकता हूँ।

धीरे-धीरे पारा और चढ़ता जा रहा था, जिसे वह नहीं चाहती थी। घर तक पहुँचने से पूर्व वह मुझसे दो-चार अपने मतलब की बातें करना चाहती थीं। इसीसे कहा—तूने उसका नाम बिलकुल ठीक रखा....

तुरन्त मैं खिल पड़ा। कहा—है न सँझिली जीजी ? ....लगता है न दैत्य जैसा ?....मगर आदमी है बहुत भला। ....दैत्य इतने भले थोड़े ही होते हैं....! इसीसे ..इसीसे.... सोच रहा हूँ....सोच रहा हूँ कि उन्हें....उन्हें.....उन्हें किस नाम से पुकारा जाय ?

कहते-कहते रुक गया एवं संझिली जीजी से प्रश्न किया—उन्हें तुम क्या कहती हो ?

मुसकराहट के साथ सँझिली जीजी ने कहा—मुझे पुकारने की जरूरत ही नहीं होती।....कोई काम पड़ता है तो रामकरण से कह देती हूँ। मेरा उनका सम्बन्ध ही कितना है। बस खाना पकाकर खिलाकर चली जाती हूँ। यह तो आज तू रहा इसीसे उनके सामने चली गयी, नहीं तो सामने जाती ही नहीं।

यह मानने को मैं तैयार न था। इसलिए मैंने सिर हिलाकर कहा—धत् झुट्ठी ! तुम तो उनके संग मन्दिर भी जाती हो। और झूठमूठ मुझे बहका रही हो....ऐं ?

जिस बात को वह भुलाना चाहती है वही बात मेरे दिमाग में बिल्कुल ताजी है—यह देखकर उसने कहा—वही तो मैं तुझे सुनाना चाहती हूँ। तू सुन लेगा तो कहेगा कि क्यों ऐसा हुआ ?....चल हम लोग घाट किनारे बैठकर बातें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लें। फिर घर चलेंगे। बात कुछ लम्बी है। पूरी बात सुन लेगा तभी समझ पायेगा।

इन्कार करते हुए मैंने कहा—यों ही देर हो गयी है। दादी बैठी होंगी बेचारी। मैं जाकर कहूँगा कि मैंने खा लिया है। तभी दादी खायेंगी। अभी सीधे मैं तुम्हारी रामकहानी सुनने नहीं जाऊँगा।

मुझे ऐसा कहते सुनकर वह बोली—ठीक है। तू कह कर आ। मैं गली के मोड़ पर खड़ी रहूँगी। मगर मेरे विषय में कुछ न कहना। बस, खाना मना कर आ।

तुरन्त मैंने पूछा—तो क्या यह भी नहीं कहूँगा कि सँझिली दीदी जहाँ काम करती है वहीं खाया?

—हाँ, हाँ। सो तो कहना ही पड़ेगा। बस, इतना कहना कि मन्दिर से आते समय रास्ते में वह मिल गयी। पकड़कर साथ ले गयी। खाना खिलाकर अपने साथ कहीं लिये जा रही है। इसीसे केवल कहने के लिए आया हूँ—बस इतना कहकर चला आ। आजकल तो छुट्टी के दिन हैं। मना थोड़े करेंगी? हाँ, मगर गाड़ी, जेवरों या कपड़ों की बात न करना। कहना है तो इतना ही कह सकते हो कि मैं जैसी अभी हूँ वैसी ही उस समय मिली थी।

बात करने के ढंग का एक खाका-सा बताकर वह आगे बढ़ी। कुछ ही देर में हम लोगों की गली का मोड़ आ गया। वह वहीं रुक गयी। मैं भागता हुआ घर गया। दो-चार मिनट में ही वापस आ गया। फिर सँझिली जीजी के साथ एक अत्यन्त एकान्त घाट पर जाकर बैठा। कुछ समय तक मौन रहने के बाद भी जब सँझिली जीजी को कुछ बोलते हुए न देखा तब मैंने कहा—झूठमूठ यहाँ बुला लायी। कुछ बोलती ही नहीं।

मौन भंग करती हुई वह गिड़गिड़ाकर ही रह गयी। कुछ बोली नहीं। यह देखकर मैंने फिर कहा—आखिर मुझे यहाँ बुला क्यों लायी? जब कुछ कहना ही नहीं है तब····

बीच में ही वह बोल पड़ी—मुझे बात ही ढूँढ़े नहीं मिल रही ·····क्या कहूँ?

मैंने और झल्लाकर कहा—बताती क्यों नहीं कि इतना जेवर कहाँ पाया?

—वही तो कह नहीं पा रही हूँ।···· कारण वे जेवर मेरे हैं ही नहीं।

बीच में ही रोककर मैंने कहा—तो क्या किसी ने दिये हैं तुम्हें? या तुमने चोरी की? क्या बात है?

—न तो मुझे किसी ने दिये हैं और न मैंने चोरी ही की है।

—तो तुमने बनवाये हैं? कुछ समझ में ही नहीं आता।

इस बार कुछ परेशान-सा चेहरा बनाती हुई सँझिली जीजी ने कहा—असल में मैं अब तक उस आदमी को ही नहीं समझ पायी तो क्या बताऊँ····

—धत् तेरी बेवकूफ की! मैंने तो देखते ही पहचान लिया और तुम इतने दिनों में भी उसे नहीं जान पायी?···· वह या तो दैत्य होंगे या····या···या?—कहते-कहते मैं चुप हो गया। थोड़ा सा रुककर पूछा—यह जरा बताना तो कि तुम उनको किस नाम से पुकारती हो?····वे हैं कौन?

थूक निगलती हुई सँझिली जीजी ने कहा—कभी पुकारने की जरूरत ही नहीं पड़ी। घड़ी के काँटे की तरह उनके काम होते हैं। ठीक समय से सब काम ऐसे चला जाता है कि किसीसे किसीको बात करने की जरूरत ही नहीं पड़ती तो बुलाने की कौन कहे।····मैं तो मैं···मुझसे पुराना नौकर भी उनसे नहीं बोलता। सिर्फ काम की बात रहती है। वे ऐसा काम बताते हैं कि आगे कुछ कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती।

एक भी बात मेरे गले के नीचे नहीं उतरी। मैंने कहा—ऐसा भी कभी हुआ है? आखिर उसके विषय में जब नौकर बात करते हैं तब कुछ नाम धाम तो बताते होंगे?

ऐसा कहकर जब मैंने उत्तर सुनने के लिए मुँह उठाया तब वह बोली—सब लोग बाबू साहब ही कहते हैं। मैं भी उनके विषय में कोई बात होती है तो वही कहती हूँ।

स्वस्ति की साँस लेते हुए मैंने कहा—तो यही क्यों नहीं कहती कि बाबू साहब कहती हूँ।····मैं तो कभी भी ऐसा न कहूँ, हें: ! न बाबू साहब न हाथी! साहब? साहब? देखने पर तो काला भैंसा सा लगता है····और कहती है साहब!

जीभ काटती हुई सँझिली जीजी ने कहा—ऐसा मत बोलो, भैया। वे देवता हैं।

झट जैसे मुझे कोई बात खटकी। मैंने कहा—बस, बस हो गया।····उतने अच्छे आदमी को दैत्य या भैंसा कहना ठीक नहीं।····कितने ही देवता हों, हैं तो वे काले-काले ही।····जैसे काल भैरव को ही लो।····अब मैं भी उन्हें देवता····नहीं नहीं····कहते-कहते रुक गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर कुछ सोचकर कहा—देवभैरव ! हाँ, हाँ, देवभैरव कहा करूँगा । देवभैरव बाबू !····ठीक है न ?

संझिली जीजी मुस्कराती हुई बोलीं—तू तो जो भी कहेगा उसीको वे मान लेंगे ।····चाहे देवभैरव कह चाहे दैत्य भैरव । ये सबमें राजी हो जायँगे । उन्हें तो मैंने कभी नाराज होते देखा ही नहीं । वे सदा प्रसन्न रहते हैं ।

अभी तक उस विषय पर कोई बात ही नहीं हुई थी जिस पर बात करने के लिए हम यहाँ आये थे । हुई भी तो इतनी ही कि उनका नाम क्या है । मुझे पूर्ण सन्तोष था कि मेरा दिया हुआ नाम सँझिली जीजी को भी पसंद आ गया है । मैंने कहा—अब सब बातें तो हो गयीं । मैं चलता हूँ घर । निबट-निबटाकर फिर वहीं चलना है न । खूब पतंग उड़ाऊँगा ।

यह कहते-कहते मैं ज्यों ही खड़ा हुआ सँझिली जीजी त्यों ही बोली—भूलना नहीं । जेवरों या अच्छे-अच्छे कपड़ों के विषय में कोई बात मुँह से नहीं····

—हाँ । हाँ । मैं समझ गया । चींटी तक को पता नहीं चलेगा कि तुम खूब जेवर और साड़ी झाड़े गाड़ी पर देवभैरव के साथ मन्दिर जाया करती हो····बस इतना ही तो चाहती हो ?····आओ पिट्टी दो—कहकर मैंने ज्यों हाथ बढ़ाया सँझिली जीजी ने हाथ पर थपोड़ी मारने के बदले हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचकर मेरा मुँह चूम लिया ।

× × ×

शाम को जब देवभैरव बाबू के बँगले में पहुँचा तब पहले ही रामकरण से मुलाकात हो गयी । मुझे देखते ही उसने कहा—आ गये भैया ? जाओ, बाबू साहब आज दोपहर भर नहीं सोये । तुम्हारे लिए ढेर सी पतंगें लाये, डोर लाये, परेता लाये । बैठे-बैठे पतंगों में डोर बाँधते रहे । कई बार बाहर निकलकर पूछ गये कि तुम आये कि नहीं ।

फिर क्या था । मैं और तेजी से मकान के अन्दर दाखिल हुआ । हाल में पैर रखते ही घोषणा के रूप में बोला—मैं आ गया····किधर हैं जी ?

बिल्कुल ऊपर के कमरे से बोलते हुए उन्होंने आवाज लगायी—आओ, सीधे ऊपर चले आओ । मैं यहाँ हूँ । पतंग बाँध रहा हूँ । Understand ?

मैं फुदकते-फुदकते ऊपर पहुँचा । आवाज देकर जिस कमरे के ठीक कमरे के सामने जा पहुँचा । सचमुच उन्होंने पतंगों का ढेर लगा रखा था । मुझे देखते ही बोल पड़े—वह देखो कोने में पतंगों के लिए कई परेते रखे हैं । उनमें जो चाहो उठा लो । जो-जो पतंगें उड़ानी हैं उन्हें भी ले लो । चलो छत पर चलें । बड़ी देर से तुम्हारा रास्ता देख····

मैंने बीच में ही कहा—बेवकूफ कहीं के !····दोपहर को आता तो मार न खाता ?

थोड़ा-सा सिर खुजलाते हुए उन्होंने कहा—हाँ···· हाँ ।····बड़ी गलती हो गयी थी····मैं भूल ही गया था कि बच्चों को दोपहर को पतंग नहीं उड़ानी चाहिए । मैं बड़ा बेवकूफ हूँ ? है न सही ? भूल कर बैठता हूँ ।

और भी न जाने क्या-क्या कहते जाते किन्तु बीच में ही मैंने कहा—वह परेता, वह जो गुलाबी रंग का है वह चाहिए ।

तुरन्त उसे लाकर मेरे हाथ में देते हुए बोले—अब पतंग····?

बात पूरी होने से पूर्व ही मैंने उँगली से एक गुलाबी पतंग दिखाते हुए कहा—उसे उठा लाइये ।

झटपट उसे लाकर परेते में जोड़कर बोले—चलो अब····

हम दोनों छत पर जा पहुँचे । छोड़इया देने के लिए उन्होंने कहा—तुम उस कोने में जाओ । मैं छुड़इया दूँगा । एक दम उस कोने में····पश्चिम वाले····

बीच में ही मैंने कहा—मैं····उड़ा थोड़े ही पाता····? आप बढ़ा दें तो मैं पकड़ूँगा । मुझे पकड़ने में बड़ा मजा आता है ।

कुछ चिन्तित सा मिनमिनाकर बोले—मैं····मैं····हाँ मैं····मैं तो····

डपटकर मैंने कहा—अब आप पश्चिम के कोने में जायँ और मैं ही छोड़इया दूँगा ।····मगर बढ़ाकर मुझी को दीजियेगा ।

सुनकर उन्होंने कहा—मैं····तो उड़ाना नहीं जानता हूँ । अब क्या होगा ?

सचमुच बात बड़ी चिन्ता की खड़ी हो गयी । दोनों कुछ समय तक मौन रहे । फिर मैंने खूब उत्साह के साथ चुटकी बजाकर कहा—रामकरण जरूर जानता होगा । उसको बुलाइये । वह बढ़ा देगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विरुक्ति न करके उन्होंने आवाज लगायी। भागता हुआ रामकरण आया। दुर्भाग्यवश वह भी नहीं जानता था। फिर उसीके जरिये साईस, माली सबसे पुछवाया गया। माली का लड़का उड़ाना जानता था। कुछ देर में रामकरण माली के लड़के को साथ लेकर आया। उसने पतंग खूब बढ़ा दी। फिर मेरे हाथ में देकर वह कायदा आदि समझाने लगा। उसी दिन पतंग को गोता खिलाने से लेकर उतारना तक मैंने सीख लिया। दूसरे दिन फिर आने की आज्ञा देते हुए मेरे देवभैरव बाबू ने माली के लड़के के हाथ में एक चवन्नी थमा दी।

जब दिन कुछ डूब गया तब मैंने कहा—कल शाम को आऊँगा, अब जा रहा हूँ····रोज पतंग उड़ाने की बात इसी छत पर रही।

खूब प्रसन्न चित्त से जब चलने को तैयार हुआ तब देव भैरव बाबू ने कहा—क्यों ?···कल सबेरे आओगे न ! एक साथ मन्दिर चला जायगा।

मुँह बिगाड़ते हुए मैंने कहा—धत् ! मैं कोई बुड्ढा हूँ जो गाड़ी में लदकर चलूँगा····भागते हुए चलने में जो मजा आता है—कहते-कहते रुक गया। फिर कहा—मानता हूँ कि आपकी घर की गाड़ी है। किराया न लगेगा, मगर···· मगर····और एक बात है····

इस बार जब चुप हो गया तब उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—बात यह है कि····वही····नीबू चुराना न होगा··· है न ?

आवाज नीची करके मैं दो कदम आगे बढ़ गया। फिर हाथ से झुकने के लिए इशारा किया। उन्होंने निहुरकर मेरे मुँह के पास अपना कान कर दिया। फिसफिसाकर मैंने कहा—सँझिली जीजी को पता न चले। वह जान लेंगी तो घर में कह देंगी····बस मैं और आप····और कोई न जानने पावे···एक बाग में पीछे की ओर बहुत बड़े-बड़े नीबू लगे हैं····आज वहींसे तो तोड़ा था। कल बड़ी जेबवाला कोट पहनकर जाऊँगा और ढेर से नींबू तोड़कर···बस फिर क्या।

यह सुनते ही उन्होंने भी फिसफिसाकर कहा—मैं भी चलूँगा····हो ?

बड़े जोर से पीछे ढकेलते हुए मैंने कहा—धत् ! बड़े होने पर कोई नींबू थोड़े ही चुराता है····आप तो ऐसी बातें करते हैं—कहते-कहते मैं 'खी खी' करके हँस पड़ा। वे भी हँस पड़े। फिर उन्होंने कहा—लड़कों को चुराना चाहिए यह किसने कहा ?

इस प्रश्न का कोई उत्तर मेरे पास न था। मैं गिड़गिड़ाता रहा। इतने में उन्होंने कहा—चुराना तो किसी को नहीं चाहिए।····मगर बचपन में उसका जैसा आनन्द आता है····वह मुझे भी लेना है····मैं तुम्हारे साथ जरूर चलूँगा····मुझे भी ले चलना। जरूर····

तब तक मैंने कहा—मगर पकड़ जाइयेगा तो बड़ी मार पड़ेगी····

बात मेरी सच थी। कुछ समय तक वे चुप रहे। फिर बोले—हें: !

अब टालने का कोई उपाय न था। दूसरे दिन सबेरे मन्दिर जाते समय इधर से ही होकर जाने का निश्चय करके हम दोनों नीचे आये। नीचे आकर देखा कि सँझिली जीजी नीचे के हाल में दो गिलास दूध लिये खड़ी हैं। मुझे देखते ही गिलास मेरे हाथ में देते हुए बोलीं—लो भइया ·····दूध पी लो।

दूसरा गिलास उधरवाली मेज़ पर रख दिया। देवभैरव बाबू की ओर कनखियों से देखते हुए मैंने कहा—ये क्या रोज इस समय दूध पीते हैं ?

मुझे ऐसा कहते सुनकर वे बोले—तुम नहीं पीते हो ?

मैंने कहा—पीता हूँ····मगर रात को, खाना खाने के बाद····

उन्होंने कहा—सो तो मैं भी पीता हूँ।···और अभी भी पीता हूँ····

यह सुनकर मैंने कहा—तभी तो काल भैरव जैसे मोटे हैं····

कहते-ही-कहते सँझिली जीजी की ओर देखते हुए मैंने कहा—क्यों सँझिली जीजी, मैंने कैसा बढ़िया नाम बताया ?···

इतने में कथित देवभैरव बाबू की ओर मुँह घुमाकर कहने लगा—यह जो सँझिली जीजी और आपके यहाँ के सब नौकर हैं न····ये सब बड़े गदहे हैं···यह तो और गदही है··· मुझसे कह रही थी कि सब लोग साहब कहते हैं···बाबू साहब !··शेः शेः····काला भूत और साहब····क्यों बाबा···· क्या साहब लोग ऐसे ही भूत जैसे होते हैं ? कहते-कहते जरा रुक गया। फिर कहा—मगर आप बड़े भले हैं।····काले देव जैसे हैं तो क्या ? देवता जैसे भले भी तो····

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर सँझिली जीजी की ओर देखकर कहा--क्यों सँझिली जीजी, मुझमें तुममें यही सब बातें हुई थीं न ?···· बताती क्यों नहीं ?

कुछ बताने के बदले वह तो जैसे जमीन में धँसी जा रही थीं। परिस्थिति को सँभालते हुए देवभैरव बाबू ने कहा—तुम कहो न····मैं जब न मानूँ तब तो किसीकी गवाही की जरूरत होगी····कहो न····सब सही है।

आश्चर्य दिखाते हुए मैंने कहा—वाह रे ! हम दोनों ने मिलकर आपका नाम दैत्य वंश या दैत्य भैरव अथवा काला साहब न रखकर देवभैरव रखा और यह मूर्त्ति सी बनी खड़ी रहेंगी ?····कुछ कहेंगी ही नहीं तो····

इसी समय सँझिली जीजी तेज़ कदमों से दूसरे दरवाज़े से निकल गयीं। यह देखकर मेरी बातें भी वहीं रुक गयीं। देवभैरव बाबू ने कहा—वह देखो लजाकर चली गयी। तुमने उससे मेरे विषय में जो बातें की थीं उन्हें दोहराने लगे तो वह बेचारी लजा गयी।

यह सुनकर मैंने कहा—मुझे मना थोड़े किया था। ····ऐसी बात थी तो मनाकर देतीं ? क्यों है न ?····मैं किसीसे चूँ तक न करता। जिस बात के लिए मना कर दिया है····कहते-कहते झट दूधवाले गिलास को उनके हाथ में थमाते हुए, अपने गले को अपने हाथ से घोंटने की मुद्रा दिखाते हुए कहा—मेरा कोई गला घोंट देगा तब भी···· जीभ निकालकर काटते हुए कान पकड़कर नकारात्मक सिर हिलाते हुए कहा—एक रत्तीभर बात भी किसीके कान में जाने नहीं दूँगा····। आप पूछकर देखिये कि मैं बताता हूँ कि नहीं ?

वे झट बोल पड़े—सो मैं जानता हूँ····इसीसे पूछूँगा ही नहीं।

मेरे कान खड़े हो गये। मैंने कहा—आप कैसे जान गये ? अभी तो आपने पूछा ही नहीं ?

इसका वे क्या उत्तर देते। यों ही कह दिया--तुम्हारे जैसे लड़के बात के पक्के होते हैं।

बात मेरी प्रशंसापूर्ण थी। इसीसे मुझे बड़ा सन्तोष मिला। मैंने कहा—चलूँ। रात हो जायगी तो पिताजी नाराज होंगे। हाँ, यों तो वे कुछ कहेंगे नहीं। आजकल नवरात्रि है न। मगर मन्दिर जाने पर वह बात लागू होगी। यहाँ नहीं।

मैं चलने को तैयार हो रहा हूँ यह देखकर उन्होंने कहा— दूध तो पी लो।

एक साँस में सारा दूध गटक गया। फिर बाहर की ओर भागते हुए कहा--खूब सवेरे आऊँगा। अँधेरा रहते। तैयार रहियेगा।

उन्होंने क्या उत्तर दिया यह सुने बिना ही फाटक के बाहर जा पहुँचा। सीधे घर पहुँचकर साँस ली। वहाँ देखा कि पिताजी योगवाशिष्ठ पढ़ने में मग्न हैं। जब हम लोगों को पढ़ाना न होता तब वे ऐसी ही किसी किताब में निमग्न रहते। सीधे पहुँचा दादी के पास। दादी उस समय खाना पका रही थी। मैंने भूमिका के बिना ही एक बनावटी डकार ली। उसे सुनते दादी ने पूछा--मतलब ?

आँखें बनाते हुए एक और बनावटी डकार लेकर कहा—मतलब तो साफ है—क्षुधा घटन्ती····पेट भरन्ती···· रोटी कम खन्ती··· दूध, रबड़ी मलाई सेवन करन्ती····बड़ी मौज होन्ती··· तुम समझन्ती कि नहीं समझन्ती ?

अरे रहने दे अपनी पंडिताई····ठीक-ठीक बोल। बात क्या है ?

फिर मैंने सीधे न कहकर घुमा-फिराकर कहना आरम्भ किया--तुम दादी····पण्डित की दादी होन्ती और नाही समझन्ती····दूध रबड़ी, मलाई से मैं तृप्त होन्ती ··

मुस्कराती हुई दादी ने कहा--बड़े तेरे ससुर दूध, रबड़ी, मलाई लिये बैठे हैं न, जो तुझे दूध, रबड़ी, मलाई खिलाकर पेट भरवा देंगे ·· ?

बीच में ही बाधा देते हुए मैंने कहा—केवल दूध, रबड़ी, मलाई ही नहीं····पतंग परेता, सब देन्ती मैं खूब पतंग उड़ावन्ती····

सिर हिलाकर सन्देहात्मक रूप से माथा डुलाती हुई दादी ने कहा--तभी मैं देर से हजरत की आवाज़ नहीं सुन रही हूँ ? नहीं तो अकेले ही मुहल्ले को सिर पर उठाये फिरा करते हो····अच्छा बता कि वह किसका लड़का है जो तुझे····?

मुँह से बात छीनते हुए मैंने कहा—वह लड़का थोड़े ही है····वह है····वह है····काला देव··· बिल्कुल काल भैरव बाबा के चचा····मगर देव जैसे भले····

—यही तो मैं पूछ रही हूँ कि तेरे प्रति इतने सदय कैसे हुए ?

भौंहें चमकाते हुए मैंने कहा—तुम अकल की बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोटी हो····इतने पर भी तुम समझ नहीं पायी कि वे देव जैसे अच्छे बाबा काल भैरव जैसे देखने में हैं तो उसका नाम देवभैरव के अलावा क्या हो सकता है ?

—तो बता न कि किसी देवभैरव बाबू ने तुझे पतंग वगैरह दी और दूध, रबड़ी, मलाई खिलायी ।

पास खिसकते हुए मैंने कहा—इत्ती देर में तुम समझी ।

और पास खींचती हुई दादी ने कहा—मगर····न मालूम कौन है····नये आदमी से सदा सावधान रहना चाहिए । जब तक किसीको तीन साल तक न परखे तब तक उससे कुछ लेना और खाना नहीं चाहिए····

झट मैंने कहा—अरे तुम भी उनसे मिलो तो एक मिनट में दोस्ती हो जाय । फिर वे तो सँझिली जीजी के जान-पहचान के हैं····तभी तो····कहते-ही-कहते मुझे रुकते देखकर दादी ने कहा—तभी तो के बाद ?

जीभ काटते हुए मैंने कहा—आगे न बताऊँगा····मुझे मना है बताना····कहकर मैं रुक गया । यह देखकर दादी ने कहा—मना है तो इतना भी क्यों बताया ?

विज्ञ जैसे सिर हिलाते हुए मैंने कहा—जितना मना नहीं है उससे आगे की बात तो मैंने थोड़े कही ? पूछ लेना सँझिली जीजी से····

दृढ़ता का भाव दिखाती हुई दादी ने कहा—हाँ, हाँ, मेरा छोटू कभी भी विश्वासघातकता नहीं कर सकता···· हाँ तो आज तू अपनी सँझिली जीजी के यहाँ खा आया···· रात को नहीं खायगा ? यही बात है न ?

नकारात्मक स्वर में सिर हिलाते हुए मैंने कहा—पेट भरकर थोड़े खाया है । एक गिलास दूध पिया है । बस उतना कम खाऊँगा····बाकी तो खाऊँगा ही ।

हँसती हुई दादी ने कहा—इसीमें दूध, रबड़ी और मलाई भी हो गयी ?

गोद में बैठने का उपक्रम करते हुए मैंने कहा—जिसका एक खाना उसका दस गुण गाना और जिसको खिलाना उसको मुँह में नहीं लाना ।

जरा दूर सरकती हुई दादी ने कहा—ठीक है····मैंने जो सिखाया उसे गठिया लिया····मगर तुझे मना किया कि जब मैं चौके में होऊँ तब बाहर के कपड़ों से मेरे पास न आना····न छूना यह तो तू भूल ही गया ?

कान पकड़ते हुए मैंने कहा—तुम····तुम····तुम····इतनी अच्छी हो····इतनी प्यारी हो कि मैं तुम्हारी सब बातें याद रखते हुए भी तुम्हारी गोद की बात में गलती कर ही बैठता हूँ·····अच्छा अब जल्दी से खाना पकाकर बाहर आओ तो मैं····कहते-कहते स्वस्ति की साँस लेते हुए आँखों को ऊपर चढ़ाकर बन्द कर लिया । फिर जहाँ खड़ा था उससे जरा पीछे हटकर बैठ गया । दादी अपना काम करते-करते कहने लगी—तो सँझिली जहाँ नौकरी करती है उन्हींके साथ तेरी जान-पहचान हो गयी है ?·····हाँ, वह भी कह रही थी कि वे बड़े भले आदमी हैं····बिलकुल गौ ·····

मैं ताली देकर नाच उठा, ठीक कहा ! ठीक कहा !

इतनी खुशी का कारण न समझ कर अवाक् होती हुई दादी ने कहा—क्या, ठीक कहा ?

उससे भी अधिक प्रसन्न होकर मैंने कहा—यही जो अभी कहा····अभी अभी···· गौ गौ ।·····कल से मैं उन्हें गौ बाबू ही कहूँगा । यह 'देवभैरव बाबू' नाम बड़ा लम्बा है । तुमने जो कहा वह कितना छोटा नाम है ।····बहुत अच्छा नाम है····छोटा सा नाम ।

डाटती हुई दादी से कहा—छीः-छीः ।····उतने बड़े आदमी से मजाक ?····और फिर जब उनका नाम जनम से देवभैरव है तो तू क्या बदल देगा ?

आगे और कुछ कहने से पूर्व ही मैंने कहा—धत् तेरी की····तू तो समझती ही नहीं···मैंने कोई नाम थोड़े ही पूछा····? यह नाम तो मैंने ही रखा····

बीच में ही दादी ने कहा—तूने रखा ?····तू कैसे उनका नाम रख सकता है ? पहले उन्होंने धरती छुई कि तूने जो तू उनका नाम धरेगा ?

जरा दृढ़ता दिखाते हुए मैंने कहा—मैंने ही तो रखा । उनका नाम कोई जानता थोड़े ही है ? सब बाबू साहब कहते हैं····न साहब, न हाथी····काला भूत····

झिड़कती हुई दादी ने कहा—छीः ! गुरुजनों से अवज्ञा ?····और तुझे भी नाम से क्या लेना देना है····तू सीधे ताऊजी कहना····

अवज्ञासूचक स्वर में मैंने कहा—ताऊजी काहे के···· बाबू के बाप से भी बड़े होंगे···· और मैं ताऊजी कैसे कहूँगा ?

बाबू के बाप के कहने पर दादी जरा झेंप गयी । बोली हाँ हाँ, तूने अपने बाबू के बाप की नार काटी थी न जो बता दिया कि उनसे बड़े ···? खैर फिर तू उन्हें दादाजी कहना अण्ड बण्ड न कहना । उससे अपमान करना होता है । मान लिया कि वे बहुत भले आदमी हैं····कुछ कहते नहीं ····मगर दूसरों की सज्जनता का गलत उपयोग नहीं करना चाहिए । कल से 'भले दादा' कहना हाँ ? तू राजा बेटा है ।

बात समझ में आ गयी । मैंने मानते हुए कहा—हूँ ।

[क्रमशः

× × ×

प्रकाशक—श्री० पी० श्रीवास्तव, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन प्रेस) इलाहाबाद
CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध नवीनतम संस्करण

मेघदूत : राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित : डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित

इस ललित काव्य का अनुवाद जिस मनोयोग से राजा लक्ष्मणसिंह ने किया उसी सामर्थ्य का कौशल डॉ० श्यामसुंदरदास ने संपादन में दिखाया है। बड़े आकार-प्रकार की इस कलात्मक पुस्तक की साज-सज्जा विख्यात कलाकार असितकुमार हालदार के चित्रों से की गई है। संस्कृत-हिन्दी छंदों के साथ-साथ भाषा में अर्थ देकर व कठिन संस्कृत शब्दों के सरल रूप देकर ग्रंथ को अनुपम बनाया गया है। यह नवीन संस्करण अब पुनः उपलब्ध हो गया है। शीघ्र कला-काव्य-प्रेमी पाठक आर्डर भेजने की कृपा करें।

मूल्य १२·०० रुपये

कुमारसंभव : पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

कुमारसंभव महाकवि कालिदास की अमर रचनाओं में एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। यह पुस्तक उसका छायानुवाद है। माता पार्वती के जन्म से लेकर महादेव शिव के साथ वन में विहार करने तक की सभी मनोरम कथायें सरल भाषा में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे महारथी विद्वान् लेखक ने दी हैं। यह कथा और उसकी भाषा दोनों ही ललित हैं। पढ़ने में उपन्यास का आनन्द मिलता है।

नवीन सजधज के साथ मुद्रित संस्करण का मूल्य ५·०० रुपये

पुरातत्त्व निबंधावली : श्री राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् राहुल जी द्वारा प्रणीत ये अप्राप्य लेख जगह-जगह से इकट्ठा करके पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये गये हैं। विषय की उपयोगिता पर पुरातत्त्व के विद्यार्थियों से हमें कुछ कहना नहीं। अब तक हमारे देश में पुरातत्त्व पर क्या हुआ है और क्या आवश्यकता है इस पर विद्वान् लेखक ने भली भाँति प्रकाश डाला है। यथास्थान में कलात्मक चित्र खुदाई में से मिले, उनका परिचय देते हुए इन दुर्लभ चित्रों को भी छापा गया है।

बड़े आकार में पुनः मुद्रित संस्करण का मूल्य १४·०० रुपये

अपभ्रंश पाठमाला : श्री नरोत्तमदास स्वामी एम० ए० विशारद

अपभ्रंश भाषा का साहित्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। और भाषा विज्ञान की दृष्टि से तो उसका गौरव अद्वितीय है। साहित्यशास्त्री जानते हैं कि आर्यवंशीय भाषाओं की जननी अपभ्रंश ही है। प्रथम भाग में मूल संकलन है, दूसरे भाग में मूल पाठों का शब्दार्थ, भावार्थ आदि दिया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन से पाठकों की संगृहीत अंशों में पर्याप्त गति हो सकेगी और अपभ्रंश के साहित्य का रसास्वाद साधारण कोष और व्याकरण की सहायता से, वे स्वतः ही कर सकेंगे। परीक्षार्थियों के लिए यह दोनों पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगी।

प्रथम भाग का मूल्य ७·०० रुपये : द्वितीय भाग का मूल्य ९·०० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SARASWATI—Reg. No. A. D. 17

Yearly Subscription : Rs. 24.00 July 1975
Single Copy : Rs. 2.00

नई साज-सज्जा में सरस्वती सीरीज़

इस सीरीज़ की पुस्तकों ने हिन्दी पुस्तक-जगत् में अपनी लोकप्रियता, सुलभता और विविध विषयता से धूम मचा दी थी। वे ही अब आकर्षक नये रूप-रंग में छापी गई हैं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल १·०० रुपये। इन सुलभ, लाभप्रद तथा मनोरंजक पुस्तकों का अभाव किसी भी पुस्तकालय या घरेलू पुस्तक-संग्रह में खटक सकता है।

अमरकन्द की सुन्दरी—श्री ब्रजेश्वर वर्मा एम० ए०
पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
अणुभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी
सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय
मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०
दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—
संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी
वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की आज भी सुलभ कुछ पुस्तकें

प्रत्येक का मूल्य केवल १·५० रुपये

ये पुस्तकें अल्प मूल्य में आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन का अत्यंत सुगम आधार हैं

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ
घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलंकिनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्यांगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

इंडियन प्रेस (प्रकाशन) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन

(संस्थापित सन् १९००)

31/12/15

समापन अंक

अगस्त १९७५ से

दिसम्बर १९७५ तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध नवीनतम संस्करण

मेघदूत : राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित : डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित

इस ललित काव्य का अनुवाद जिस मनोयोग से राजा लक्ष्मणसिंह ने किया उसी सामर्थ्य का कौशल डॉ० श्यामसुंदरदास ने संपादन में दिखाया है। बड़े आकार-प्रकार की इस कलात्मक पुस्तक की साज-सज्जा विख्यात कलाकार असितकुमार हालदार के चित्रों से की गई है। संस्कृत-हिन्दी छंदों के साथ-साथ भाषा में अर्थ देकर व कठिन संस्कृत शब्दों के सरल रूप देकर ग्रंथ को अनुपम बनाया गया है। यह नवीन संस्करण अब पुनः उपलब्ध हो गया है। शीघ्र कला-काव्य-प्रेमी पाठक आर्डर भेजने की कृपा करें। मूल्य १२·०० रुपये

कुमारसंभव : पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

कुमारसंभव महाकवि कालिदास की अमर रचनाओं में एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। यह पुस्तक उसका छायानुवाद है। माता पार्वती के जन्म से लेकर महादेव शिव के साथ वन में विहार करने तक की सभी मनोरम कथायें सरल भाषा में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे महारथी विद्वान् लेखक ने दी हैं। यह कथा और उसकी भाषा दोनों ही ललित हैं। पढ़ने में उपन्यास का आनन्द मिलता है।

नवीन सजधज के साथ मुद्रित संस्करण का मूल्य ५·०० रुपये

पुरातत्त्व निबंधावली : श्री राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् राहुल जी द्वारा प्रणीत ये अप्राप्य लेख जगह-जगह से इकट्ठा करके पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये गये हैं। विषय की उपयोगिता पर पुरातत्त्व के विद्यार्थियों से हमें कुछ कहना नहीं। अब तक हमारे देश में पुरातत्त्व पर क्या हुआ है और क्या आवश्यकता है इस पर विद्वान् लेखक ने भली भाँति प्रकाश डाला है। यथास्थान में कलात्मक चित्र खुदाई में से मिले, उनका परिचय देते हुए इन दुर्लभ चित्रों को भी छापा गया है।

बड़े आकार में पुनः मुद्रित संस्करण का मूल्य १४·०० रुपये

अपभ्रंश पाठमाला : श्री नरोत्तमदास स्वामी एम० ए० विशारद

अपभ्रंश भाषा का साहित्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। और भाषा विज्ञान की दृष्टि से तो उसका गौरव अद्वितीय है। साहित्यशास्त्री जानते हैं कि आर्यवंशीय भाषाओं की जननी अपभ्रंश ही है। प्रथम भाग में मूल संकलन है, दूसरे भाग में मूल पाठों का शब्दार्थ, भावार्थ आदि दिया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन से पाठकों की संगृहीत अंशों में पर्याप्त गति हो सकेगी और अपभ्रंश के साहित्य का रसास्वाद साधारण कोष और व्याकरण की सहायता से, वे स्वतः ही कर सकेंगे। परीक्षार्थियों के लिए यह दोनों पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगी।

प्रथम भाग का मूल्य ७·०० रुपये : द्वितीय भाग का मूल्य ९·०० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक का वक्तव्य

इंडियन प्रेस ने साहित्य की उच्च स्तर की पत्रिका द्वारा हिन्दी की सेवा करने के लिए सन् १९०० में 'सरस्वती' का प्रकाशन आरम्भ किया था। उसके प्रकाशन में विशुद्ध सेवा-भावना थी, व्यावसायिक दृष्टि कभी नहीं रही। वह सदैव घाटे पर निकलती रही। इस घाटे की पूर्ति हम अपनी पाठ्यपुस्तकों की बिक्री की आय से करते रहे।

इधर पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण के कारण धीरे-धीरे हमारी पाठ्यपुस्तकें समाप्त होने लगीं, और 'सरस्वती' के घाटे की पूर्ति का वह स्रोत प्रायः सूख गया है। इधर कुछ वर्षों से छपाई, चित्र, कागज आदि का मूल्य इतना बढ़ गया है कि 'सरस्वती' के प्रकाशन का घाटा बेतरह बढ़ गया है। दुर्भाग्य से न तो सरकार ही ने 'सरस्वती' को किसी प्रकार का प्रश्रय दिया और न हिन्दी क्षेत्र के विद्यालयों और महाविद्यालयों ने ही उसकी ओर ध्यान देकर उसे संरक्षण दिया। प्रयत्न करने पर भी हमें सरकार से विज्ञापन प्रायः नहीं मिल सके। इसके ऊपर हमारे सम्पादक ने भी त्यागपत्र दे दिया और नये वैतनिक सम्पादक की नियुक्ति की समस्या उठ खड़ी हुई। हम कई वर्षों से अत्यधिक घाटा उठाकर भी उसे हिन्दी की सेवा की भावना से प्रकाशित करते रहे, किन्तु दुर्भाग्य से स्थिति अब इतनी विषम हो गयी है और घाटा इतना बढ़ गया है कि हम उसे उठाने में अपने को एकदम असमर्थ पाते हैं।

अतएव अपनी हार्दिक इच्छा के एकदम विरुद्ध, और बड़े दुःख के साथ हमें 'सरस्वती' का प्रकाशन बन्द करना पड़ रहा है। पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण एवं सरकार तथा हिन्दी शिक्षण संस्थाओं की उपेक्षा ने हमें इसके लिए विवश कर दिया है। 'सरस्वती' ने अपने ७६ वर्ष के जीवन-काल में हिन्दी की जो सेवा की है उसके सम्बन्ध में हमें कुछ कहना न तो शोभा देता है और न निजी शिष्टता ही हमें ऐसा करने देती है। हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता के इतिहासज्ञ और हिन्दी प्रेमी एवं साहित्यमर्मज्ञ उसे भली भाँति जानते हैं और वे ही उसे कहने के अधिकारी हैं। अवश्य ही हमारे लिए यह गर्व और संतोष का विषय है कि हम 'सरस्वती' का प्रकाशन कर इतने दिनों तक हिन्दी के गम्भीर साहित्य की ऐसी सर्वमान्य सेवा कर सके। हमें विश्वास है कि हमारे कृपालु पाठक हमारी विवशता समझ कर हमें इस अत्यन्त कटु निर्णय के लिए क्षमा करेंगे।

हम सरकार से पत्रिका के सहायतार्थ पत्र-व्यवहार कर रहे हैं। यदि हमें सरकार से उपयुक्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ तो हम पत्रिका को शीघ्र ही प्रकाशित करना पुनः शुरू करने का प्रयत्न करेंगे।

मैनेजिंग डाइरेक्टर
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्रा० लिमिटेड
इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक का विदाई का संदेश

१० अगस्त, १९७५ को मैंने 'सरस्वती' के स्वामी इंडियन प्रेस (प्रकाशन) के संचालक को यह पत्र लिखा—"प्रिय देबू बाबू, मुझे यह सूचित करते अत्यन्त खेद है कि कुछ परिस्थितियों के कारण मैं जनवरी, १९७६ से 'सरस्वती' का सम्पादन न कर सकूंगा। मैं आशा करता हूं कि इस सूचना से आपको उचित प्रबन्ध करने का समुचित समय मिल जायगा।" इस समय यह बतलाने का अवसर नहीं है कि मैंने यह निर्णय क्यों लिया। 'सरस्वती' में बराबर घाटा होते रहने और संस्थान की आय के अन्य स्रोतों के प्रायः सूख जाने से वे पहले ही से उसे बन्द करने का विचार कर रहे थे। उत्तर में उन्होंने लिखा कि 'सरस्वती' में वैसे ही भारी घाटा हो रहा है जिसकी पूर्ति करना पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण से असम्भव हो गया है, अतएव उसे दिसम्बर तक क्यों चलाया जाय, क्यों न अगस्त के अंक के साथ उसे बन्द कर दिया जाय? पत्रिका को निकालते रहने या बन्द कर देने का अधिकार उनको है। किन्तु मैं मानसिक रूप से उसे बन्द कर देने—और अगस्त के अंक ही से उसे बन्द कर देने के लिए बिल्कुल तैयार न था। यदि मैं यह जानता तो एक उपयुक्त 'समापन' अंक निकालता। पर तब तक अगस्त का अंक प्रायः तैयार हो चुका था। मेरे आग्रह पर उन्होंने उस अंक में कुछ पृष्ठ बढ़ाकर यह अगस्त-दिसम्बर का अंक निकालने की कृपा की है। इससे कम से कम औपचारिक रूप से 'सरस्वती' के ७६ वर्ष पूरे हो गये।

मैंने अपने बीस वर्ष के सम्पादन की समाप्ति पर हाल ही में, जो 'निवेदन' प्रकाशित किया था, उसके बाद इस समय मैं और कुछ कहना नहीं चाहता।

मेरा यह चरम दुर्भाग्य है कि नियति के निर्मम और रहस्यमय विधान के कारण मुझे हिन्दी की सबसे पुरानी, ऐतिहासिक और समादृत साहित्यिक मासिक पत्रिका की समाप्ति का शोक-संवाद देने का अत्यन्त अप्रिय और कटु कार्य करना पड़ रहा है।

'सरस्वती' ने जितने दिनों हिन्दी की सेवा की, उतने दिनों अभी तक और किसी पत्रिका ने नहीं की। उसकी हिन्दी की दीर्घकालीन सेवा ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण है। खड़ीबोली काव्य, कहानी और गद्य के विकास में उसका अपूर्व योगदान है। ये सेवाएँ हिन्दी के इतिहास में उसकी स्मृति को अमर बनाये रहेंगी।

मिस्र की मिथिक में 'फ़ीनिक्स' नामक एक पक्षी की चर्चा है जो जीर्ण हो जाने पर स्वयं अग्नि उत्पन्न कर उसमें भस्म हो जाता था, किन्तु अपनी राख से वह फिर उत्पन्न हो जाता और नया जीवन पाकर दीर्घ काल तक गगन-विहार करने लगता था। काश, फ़ीनिक्स की तरह 'सरस्वती' भी पुनर्जीवित हो सकती!

अपने कृपालु लेखकों, पाठकों, हितैषियों और सहयोगियों के प्रति उनके सहयोग, प्रेम और कृपा के लिए हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए उन्हें मैं बिदाई का भावभीना नमस्कार निवेदित करता हूँ।

"सरस्वती श्रुति महती महीयताम्"

श्रीनारायण चतुर्वेदी

लेखकों और प्रकाशकों को सूचना

मेरे पास १९७५ में प्रकाशनार्थ आये हुए कितने ही लेख जमा हैं। टिकट लगे लिफाफे के साथवाले लेख लौटा दिये जायँगे। शेष लेखों में से जो टाइप किये लेख आये हैं उनकी प्रतिलिपि प्रेषकों के पास होगी। उन्हें छोड़ कर हस्तलिखित लेखों को यथासम्भव शीघ्र उनके लेखकों को लौटा देने का प्रयत्न करूंगा। कविताओं की संख्या इतनी अधिक है कि उनका लौटाना दुष्कर है। भविष्य में मेरे पास कोई लेख न भेजे जायँ।

'सरस्वती' में समालोचनार्थ जो पुस्तकें अभी तक मेरे पास आयी हैं उनमें से तीस-चालीस की समालोचनाएँ तैयार थीं, पर छप न सकीं। शेष में से जिन पर लेखक या प्रकाशक मेरी व्यक्तिगत सम्मति चाहेंगे, वह भेज दूंगा।

भविष्य में वे ही पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ मेरे पास भेजी जायँ जिन्हें लेखक, सम्पादक या प्रकाशक व्यक्तिगत रूप से मुझे भेजने की कृपा करना चाहते हैं या जिन पर मेरी सम्मति चाहते हैं।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

५३, खुर्शेदबाग, लखनऊ-४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध विद्युत् क्षमता को अत्यन्त मितव्ययिता से उपयोग में लाकर विद्युत् मंडल को सहयोग दें

बिजली की बचत करें और बची हुई बिजली उद्योग एवं कृषि में उत्पादन हेतु लगावें.

मंडल की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ—

विद्युत् स्थापित क्षमता—772·5 मेगावाट

एवं

पाँचवीं योजना में 1067 मेगावाट तक

अतिरिक्त वृद्धि प्रस्तावित

राज्य के संतुलित विकास हेतु पिछड़े जिले में

विद्युत् विकास के विशेष प्रयास

पंपों के विद्युतीकरण हेतु लाइन बिछाई गई—1,70,000

(लगभग एक लाख सत्तर हजार)

विद्युतीकृत ग्राम एवं शहर—	11,141
विद्युतीकृत हरिजन बस्तियाँ—	2,380
उपभोक्ताओं की संख्या—	9,00,000
	(लगभग नौ लाख)

राज्य की आर्थिक समुन्नति हेतु

सदैव तत्पर

मध्यप्रदेश विद्युत् मंडल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो दशकों की सेवा और संग्राम की समीक्षा

हिन्दुस्तान स्टील। जन्म १९५४ साल। भारत का यह एक सबसे बड़ा उद्योग है। भारत के औद्योगिक विकास में हमारी भूमिका कुछ हद तक सफल ज़रूर रही है। कारण हमने भारतीय उद्योग को आत्मनिर्भर बनाने में अपना हाथ बंटाया, राष्ट्रीय श्रमशक्ति का उन्नयन किया तथा प्राकृतिक सम्पदों का सदुपयोग किया।

उन्नतशील उद्योग

उत्पादन आरम्भ होने से लेकर चालू वर्ष के ३१ मार्च तक देश के विभिन्न उद्योगों में राउरकेला, भिलाई तथा दुर्गापुर इस्पात कारखानों से १२८ लाख टन लौहपिंड, १० लाख टन इस्पात पिंड, ७३ लाख टन 'सेमिस', तथा २२० लाख टन विक्रेय इस्पात की आपूर्ति की गई है।

हमारे इस्पात की आपूर्ति का आनुमानिक हिसाब इस प्रकार है—प्रतिरक्षा के लिये ३ शतांश, रेलवे २०, अन्यान्य सरकारी विभाग २२.५ उद्योग २२, स्टाकिस्टों के लिये (हमारे निजी स्टॉकयार्ड सहित) २२.५ शतांश।

आलोच्य अवधि में दुर्गापुर मिश्र इस्पात कारखाना से २०.६ हज़ार टन मिश्र इस्पात पिंड, १८८.२ हज़ार टन विक्रेय मिश्र इस्पात सामग्री की आपूर्ति के फलस्वरूप विभिन्न उद्योगों को इससे उपकार हुआ। विक्रय की कुल राशि रु. ८८ करोड़ के करीब है।

इसके अतिरिक्त हमारे इन कारखानों से ५६ लाख टन कोक कोयला, १० लाख टन रसायन पदार्थ तथा ५३.४ लाख टन अन्य 'बाइप्रॉडक्ट्स, जैसे माल भी सम्पृक्त उपभोक्ताओं को प्रेषित किया गया।

हमने देश की कृषि उपज की वृद्धि में अपना हाथ बंटाया। हिन्दुस्तान स्टील ने देश के कृषि कार्यों के लिये लगभग १८ लाख टन 'सोना' खाद और ५५० हज़ार टन 'राजा' खाद दिया।

इन सामानों के विक्रय से अर्जित कुल आमदनी की रकम (निर्यात के अलावा) करीब ३५९४ करोड़ रुपया है।

विक्रय

वितरण व्यवस्था को सफल बनाने के लिए हमने एक केन्द्रीय विक्रय विभाग तथा सारे देश में २० शाखा कार्यालय तथा स्टॉकयार्ड खोल रखा है ताकि उपभोक्ताओं को कम समय में उचित मूल्य पर इस्पात प्राप्त हो सके। विक्रय से अर्जित कुल राशि का अंक ३८८६ करोड़ रुपया है। इसके अन्तर्गत निर्यात की राशि २४१ करोड़ रुपया (एफ.ओ.बी.) है।

इसके अतिरिक्त अक्टूबर, १९७२ से ३१ मार्च १९७४ तक की अवधि में हमने बोकारो इस्पात कारखाना में उत्पादित ५ लाख टन लौहपिंड का विक्रय किया जिसका मूल्य है ३१.५ करोड़ रुपया। इसके अलावा ११ करोड़ रुपया का लौहपिंड निर्यात (एफ.ओ.बी.) किया गया।

श्रमशक्ति

वर्तमान में हिन्दुस्तान स्टील में काम करनेवालों की संख्या करीब १,३०,००० है। प्रशिक्षण तथा प्रोत्साहन देकर इस जनशक्ति को तकनीकी अनुशासनों की ओर आकर्षित किया गया। देश में इस्पात उद्योग के विकास के लिये ऐसे लोगों की ज़रूरत है।

आत्म निर्भरता

भारतीय इस्पात उद्योग के विकास के लिये विदेशी सहायता न लेनी पड़े इस उद्देश्य से हमने सेन्ट्रल इंजीनियरिंग एण्ड डिज़ाइन ब्यूरो बनाया। यह प्रतिष्ठान अभियंत्रना तथा तकनीकी परामर्शदान के क्षेत्रों में अपने को पूर्णरूप से प्रतिष्ठित करने में सफल हुआ है। आज यह ब्यूरो एक नयी कम्पनी बन गयी है जिसका नाम है, मेटलर्जिकल एण्ड इंजीनियरिंग कन्सल्टेन्ट्स (इंडिया) लिमिटेड (MECON)।

लाभ-हानि

हिन्दुस्तान स्टील चालू होने के बाद से लेकर ३१ मार्च, १९७४ तक हमारी वित्तीय स्थिति संबंधित कुछ आँकड़े इस प्रकार हैं :

कुल आमदनी	४२८४ करोड़ रु०	
अबतक दिये गये		
उत्पादन शुल्क	२८६ ,, ,,	
रेल माल	५४४ ,, ,,	
अतः शुद्ध आमदनी	३४५१ ,, ,,	
कुल खर्च	२८९६ ,, ,,	
मिश्रित बचत	५५५ ,, ,,	
कारखाने में जमा मालों का मूल्य	१५१ ,, ,,	
कुल मिश्रित बचत	७०६ ,, ,,	
सरकारी कर्ज़ पर ब्याज	२६६ ,, ,,	
शेष शुद्ध बचत	४३७ ,, ,,	
(–) कुल अवमूल्यन	६८३ ,, ,,	
	(–) २४६	

पिछले १९७३-७४ वित्तीय वर्ष में हमने ४.७१ करोड़ रुपयों का लाभ किया जिससे अवमूल्यन के मद में हमारी हानि घटकर २४६ करोड़ रुपया हो गया है। यह राशि हमारी कुल हानि की मोट रकम है। कम्पनी की निजी मुद्रा स्थिति से हमने सक्रिय पूंजी सम्पर्कित मांगों की पूर्ति की और संयोजन-संतुलन के मद में, ११८ करोड़ रुपयों का पुनः विनियोग किया। इसके अतिरिक्त दीर्घकालीन सरकारी कर्ज़ के मद में हमने सरकार को १७० करोड़ रुपया वापस दे दिया। फिलहाल, सरकार द्वारा दिये गये कर्ज़ का कुल अंक ३७४ करोड़ रुपया है।

अभी हमें अवमूल्यन तथा सरकारी कर्ज़ के ऊपर ब्याज के मदों में, तरतीब से सालाना ६९ करोड़ और २४ करोड़ रुपयों का प्रबंध करना पड़ता है। पिछले साल कच्चामाल तथा अन्य 'इनपुट' सामानों के मूल्य में ३९ करोड़ रुपयों की वृद्धि हुई है। जबकि १९७३-७४ में उत्पादन शुल्क के रूप में हमें १०१ करोड़ रुपये देना पड़ा। गत वर्ष इस मद में दिये गये रुपयों का अंक केवल ९६ करोड़ रुपया था। इसके बावजूद भी हमारा प्रति टन इस्पात उत्पादन मूल्य विदेशी उत्पादन मूल्य से कहीं कम है।

अंत में

हिन्दुस्तान स्टील की उम्र २० साल है। देश के औद्योगिक-जीवन की दृष्टि से नवीन—पर अपने अनुभव से प्रवीण है। हमें बहुत सी समस्याओं का सामना करके आगे बढ़ना पड़ रहा है। सामने और भी कठिन दिन आने वाले हैं। उत्पादन बढ़ाने में हमें कुछ विशेष मसलों का सामना करना पड़ेगा, जैसे कच्चे मालों की कमी, परिवहन समस्याएँ तथा बिजली शक्ति के अभाव आदि।

हमारी जवानी एवं आत्म विश्वास हमें सफलता ला देगी। भविष्य के और संग्राम से जूझने के लिये हम अपने को मज़बूत बना रहे हैं। इस प्रयास में पहला महत्वपूर्ण कदम है 'स्टील अथारिटि ऑफ इंडिया' का गठन। हमें पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में हम और भी तत्परता के साथ देश की सेवा कर सकेंगे।

हिन्दुस्तान स्टील

HT-HSL.8069

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—
प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,
तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

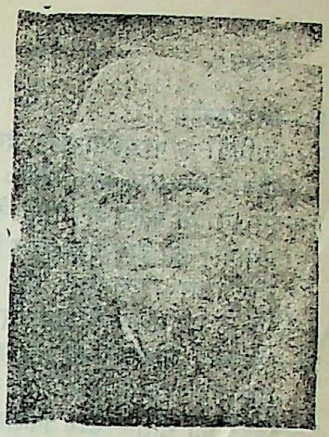

देखिए :—कवि सम्राट् श्री सुमित्रानन्दन पंत जी क्या कहते हैं :—

श्री ज्योतिषाचार्य प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायणसिंह जी से मिलने का सौभाग्य मुझे दो बार मिला है। विगत जीवन के सम्बन्ध में मैंने जो प्रश्न पूछे उसका उत्तर भी मुझे बिलकुल ही ठीक मिला। आपको देश-विदेश के विद्वान् तथा प्रमुख व्यक्तियों से जो प्रशंसापत्र मिले हैं वह आपके चमत्कारिक गुणों के अनुरूप ही हैं। आप एक सफल सिद्ध तांत्रिक भी हैं। मुझे विश्वास है कि आपके बनाये हुए यंत्र तथा कवच भी आपकी वाणी की तरह ही अपना विशेष चमत्कार रखते हैं।

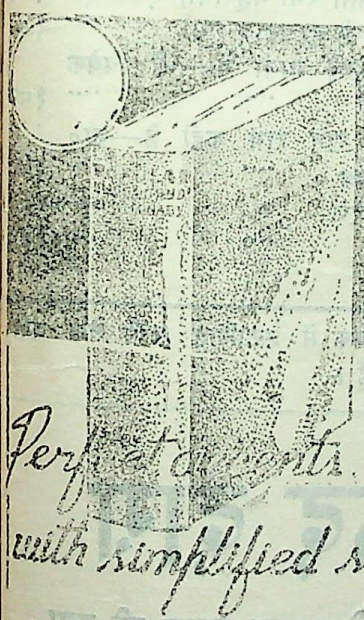

POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best
Of 20th Century

पापुलर
इंग्लिश
हिन्दी
डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य
१०) रुपये

हिन्दी, अंगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी के शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	७७
२—योगियों के परम आराध्य देव : गणपति विनायक—प्रो० बी० आर० शर्मा	८५
३—निराला के काव्य में नारी के रूप-सौंदर्य का प्रभाव—श्री डा० रामशंकर द्विवेदी, एम० ए०, डी० फिल०, एल्-एल० बी०	८९
४—एक-से जंगल—श्री अमरनाथ 'मोहन'	९१
५—एशियाई भाषाओं को समर्पित विद्वान् विलियम कैरे—डा० शिवमंगल राय	९२
६—कुहरे का गीत—डा० किशोर काबरा	९५
७—बाबा हरीदास : रचनाएँ (२)—श्री रामप्यारे त्रिपाठी	९६
८—माया मिली न राम—श्री गोरखनाथ, एम० ए०	१०१
९—परिणीता—श्री ब्रजकिशोरप्रसाद 'किशोर'	१०४
१०—विज्ञापन की बाज़ी—श्री वाहिद काज़मी	१०५
११—तीन कविताएँ—श्री भवानीशंकर	१०८
१२—प्राणिज तथा वानस्पतिक तैल—प्रो० पुरुषोत्तम दास स्वामी, एम० एस्-सी०, एम० एस०, विशारद	१०९
१३—बँगला के अमर कवि मधुसूदन—श्री निशीथ कुमार राय	११५
१४—कोई सुनता नहीं—डा० महेन्द्रनाथ पाण्डेय	११८
१५—वर्षा-गीत—श्री भँवरसिंह सहवाल 'व्याघ्रपज्ज'	११९
१६—अनुभूतियाँ	१२०
१७—तीन रेखायें—श्री आशोपुरी	१२१
१८—हुए तुम दोस्त जिसके दुश्मन उसका आस्माँ क्यों हो ?—श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१२२
१९—माहबानू की समाधि से सम्बद्ध मुग़ल बादशाहों के दानपत्र—श्री फूलचन्द्र त्रिपाठी 'वियोगी'	१२५
२०—प्रतिशोध (३)—श्री मनमोहन गुप्त	१२८
२१—काश !—श्री बालकृष्ण गर्ग	१३१
२२—सौत—अनुवादक—श्री रा० र० सर्वटे	१३२
२३—स्वर्गीय हरिशंकर शर्मा स्मृत्याञ्जलि—डा० विनयमोहन शर्मा	१४१
२४—भारतरत्न—डा० राधाकृष्णन—श्री मुकन्दी लाल, बैरिस्टर	१४३
२५—साहित्य में आधुनिकता और श्लील-अश्लील का सवाल—श्री गौरीशंकर (जी० एस०) भट्टाचार्य	१४७
२६—अलक उड़ी सी—श्री विनोद शाही	१४८
२७—आधुनिक प्रौद्योगिकी (टैकनालाजी) और मानव समाज—श्री शंकरसहाय सक्सेना	१४९
२८—हिन्दू और जैन—श्री परिपूर्णानन्द वर्म्मा	१५३
२९—निरालाजी का स्वाभिमान और उनकी उदारता—श्रीप्रभुदयाल मीतल	१५८
३०—संस्कृत-दिवस—श्रीमती कमला रत्नम्	१६०
३१—कुछ काँटे कुछ फूल—श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह	१६२
३२—शिल्प में विष्णु के वराह अवतार का निरूपण—श्री मारुतिनन्दनप्रसाद तिवारी	१६३
३३—क्रान्ति और साहित्य—प्रो० सिद्धेश्वरप्रसाद, केन्द्रीय ऊर्जा उपमन्त्री	१६६
३४—दीपावली की ऐतिहासिकता—श्री श्यामनोहर व्यास, एम० एस्-सी०	१६९
३५—वाल्मीकि की उपमाएँ—डा० जयशंकर त्रिपाठी	१७१
३६—मीनारों की बातें—डा० कमलाकांत हीरक	१७५
३७—हमराही—श्रीमती रमा मेहरोत्रा, एम० ए०	१७६
३८—भगवत् कृपा—श्री हरप्रसाद शर्मा	१७८
३९—जीवन में सब कुछ माता है—श्री विवेक (मारिशस)	१८२
४०—उस अमराई ने राम राम कही है—डा० विद्यानिवास मिश्र	१८३
४१—मनोरंजक संस्मरण	१८८
४२—नवीन प्रकाशन	१८९

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

सफेद दाग़

बवासीर-एक्ज़ीमा-दमा श्वास की दवा

इनका विवरण मुफ्त मँगायें

वैद्य बी० आर बोरकर (सत्व)

मु० पो० मंगरूलपीर, जिला अकोला (महाराष्ट्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

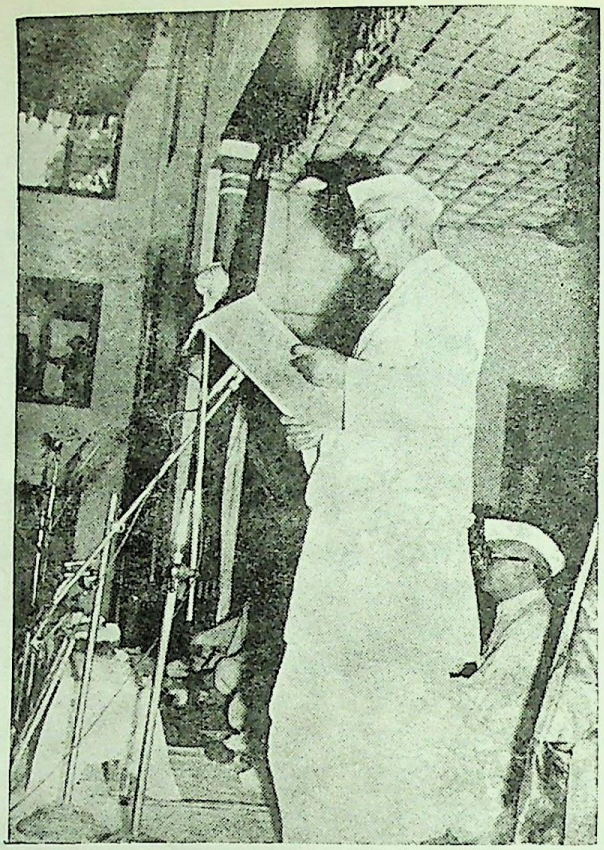

उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा अमरोहा में आयोजित श्री शेवड़े के सम्मान-समारोह में उ० प्र० विधान सभा के अध्यक्ष प्रो० वासुदेवसिंहजी श्री शेवड़े की प्रशस्ति पढ़ते हुए।

श्री शेवड़ेजी अपने सम्मान का उत्तर देते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

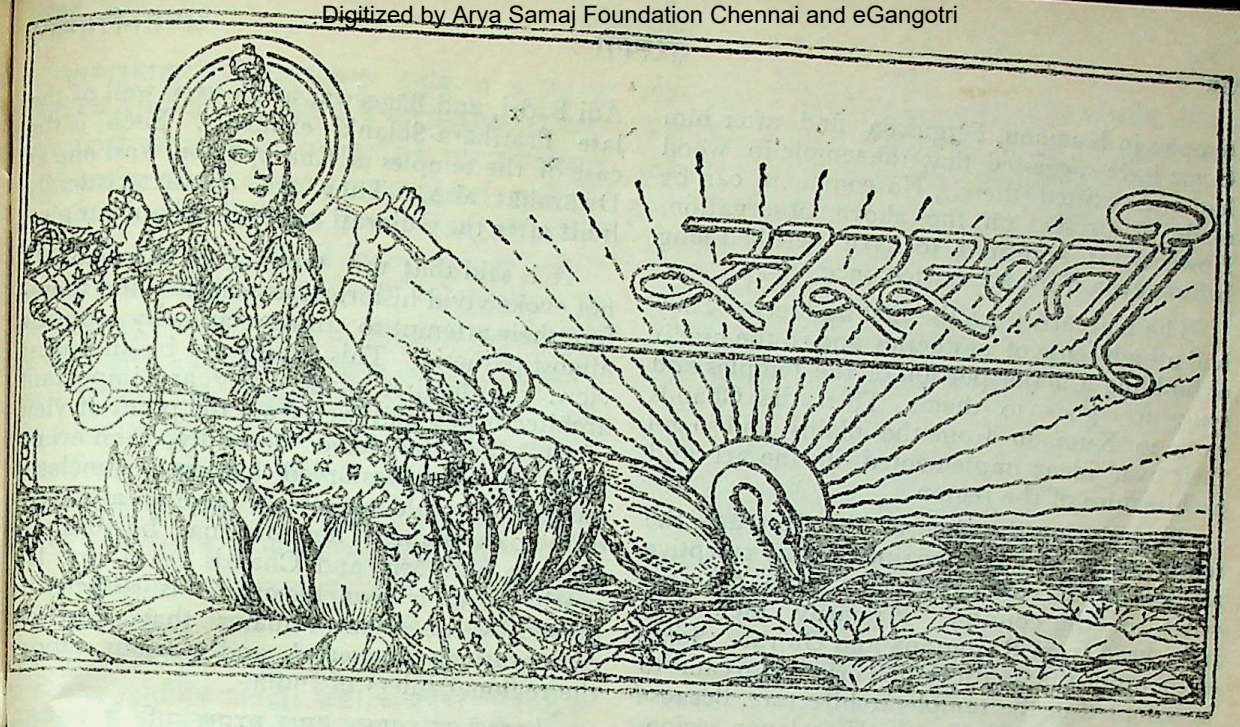

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

वर्ष ७६
पूर्ण संख्या ९०८-९१२ } इलाहाबाद : अगस्त-दिसम्बर १९७५ : श्रावण-मार्गशीर्ष २०३२ वि० { खण्ड २
संख्या २-६

सम्पादकीय

उत्तराखण्ड की मन्दिर-शैली—हमने श्री बदरीनाथ मन्दिर संबंधी अपनी टिप्पणी में लिखा था कि हमें मन्दिर संबंधी किसी मानक पुस्तक में उत्तराखण्ड मन्दिर शैली के बारे में कहीं कुछ पढ़ने को नहीं मिला। अभी हाल में एक मित्र ने चौखम्भा संस्कृत स्टडीज़ माला की एक पुस्तक की ओर हमारा ध्यान दिलाया। उसका नाम है 'दि आर्किओलॉजी आफ़ कुमाऊँ।' इसके लेखक डा० कान्तिप्रसाद पोटियाल हैं। वास्तव में यह उनका पी-एच० डी० का शोध-निबन्ध है। उन्होंने इस पुस्तक में सारे उत्तराखण्ड (कुमाऊँ और गढ़वाल) के पुरातत्त्व का विद्वतापूर्ण अध्ययन किया है। इसमें वहाँके मन्दिरों का भी विशदता से वर्णन किया गया है तथा उनका इतिहास भी दिया गया है। अपने विषय पर यह अकेली पुस्तक है। इसके तृतीय अध्याय (आर्किटेक्चर) में मुख्यतः उत्तराखण्ड के मन्दिरों का वर्णन है। विद्वान् लेखक ने उनका बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन किया है। उनका निष्कर्ष है कि उत्तराखण्ड छः प्रकार (टाइप) के मन्दिर पाये जाते हैं। वे विभिन्न कालों में विभिन्न प्रभावों के कारण अलग-अलग शैलियों में बनाये गये थे। बंगाल के पाल राजाओं के प्रभाव से बंगाल की शैली, दक्षिण के मन्दिरों की शैली, गुजरात, राजस्थान आदि की शैलियों के प्रभाव से वे मंदिर अनेक प्रकार के हैं। उन्होंने उत्तराखंड शैली की चर्चा भी नहीं की क्योंकि इन मन्दिरों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि विभिन्न कालों के बाहरी प्रभावों का समन्वय करके उत्तराखंड में कोई ऐसी समन्वित शैली विकसित नहीं हुई जिसे उत्तराखंड शैली कहा जा सके। इस अध्याय के अन्त में विद्वान् लेखक ने अपने गम्भीर अध्ययन का जो निष्कर्ष (कन्क्लूज़न) निकाला है, वह उन्हींके शब्दों में यहाँ दिया जा रहा है :—

Kumaon-architecture thus brings before us a fascinating story from its beginning to the end. Though the beginning had commenced comparatively late, it cannot be denied that after the Gupta period onwards upto the 15th-16th century A.D., the Hindu architecture in Kumaon remained highly colourful in its each and every detail. Before the beginning of stone

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

temples in Kumaon, Fergusson and after him Goetz have suggested that the temple in wood had once existed there. No comment can be made at present on the above observation. However, it appeared to have perished long before, even if it had existed once.

The Katyūris were the first builders. They had a high sense of aesthetics and so the credit of building a major portion of the temples and sculptures goes to them. Then the Chands came to Kumaon from the plains and so got their own ideas implemented in the art and architecture of the region.

Even during the time of the Katyūris, the temples of Kumaon remained highly receptive to assimilate varied elements from different parts of the country. Primarily, they were influenced from Rajputana and Gujrat. Some elements of the South Indian origin also came to be adopted in the temple architecture. Because of a great attraction for the Himalayan region, from the political and cultural point of view and because of its being a celebrated holy place, thousands of people continued visiting this land from the most ancient past. The continuous flow of pilgrims as well as that of other people helped in the absorption of alien ideas in the art and architecture of Kumaon.

In the initial stage of the movement of ideas the temples in Kumaon followed the basic principles of the Nāgara type of temple. Thus the early temples at Jāgeśwar bear several elements of the Gupta period. At the same time the wagon vaulted type got eminence in Kumaon more than in any other place in India. It originated from the Buddhist Stupa and was adopted in the subsequent centuries in temples of the South and the North equally. Another type at Jāgeśwar, having stepped walls, goes in greater conformity with the Pāpānātha temple at Pattadakal. In the case of Pāndukeśvar temple, as already suggested, the art pattern of the Pālas of Bengal appeared to have influenced greatly.

But the most remarkable period, which has left deeper marks on the architecture of Kumaon, begins after the 10th-11th century A.D. The temples after this period are fashioned more or less on the Pratihāra style. The type had a flourishing centre, particulary at Osia in Rajputana and later on it spread throughout the States of Rajputana, Gujrat, Madhya Pradesh and even in the Uttar Pradesh. The pediments, the Kakshāsanas, the niches and even the porches at Baijnāth, Dwārahāt, Katārmal, Ādi Badri, and Bāgeśwar speak very well of the late Pratihāra-Solanki elements. Such is the case of the temples at Champāwat and one at Dwārahāt also. They are characteristically built after the Gujarati and Rajasthani temples.

It is said that the temples of Kumaon do not evoke vivid historical association and therefore their attempt to arouse curiosity appears almost pathetic. This seems to be an unjust view. In the first place, they are important architecturally and even from the point of view of art, which they have. Secondly, when everything was being destoryed by the iconoclasts, the temples could survive to give us a glimpse of the past glory. Though it may be admitted that the Katyūris and Chands have not left much of their own history, it is sufficiently proved by the extant remains that they were comparatively powerful and glorious among the regional rulers of India.

(कुमाऊँ का स्थापत्य हमारे सम्मुख आदि से अन्त तक एक आकर्षक वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। यद्यपि इसका प्रारम्भ अपेक्षाकृत विलम्ब से हुआ था तथापि इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि गुप्तकाल के पश्चात् पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं ईसवी शताब्दियों तक कुमाऊँ की हिन्दू स्थापत्य कला प्रत्येक प्रकार से बहुत सौन्दर्यमय रही है। फर्गुसन तथा उनके पश्चात् गोट्ज़ का मत है कि पाषाण मन्दिरों के प्रारम्भ से पूर्व कुमाऊँ में काष्ठ मन्दिर निर्मित होते थे। परन्तु इस समय इस मत के विषय में कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती। यदि कभी काष्ठ मन्दिरों का अस्तित्व था भी तो बहुत काल पूर्व ही वे नष्ट हो गये होंगे।

कत्यूरी वंश के शासक मन्दिरों के प्रथम निर्माता थे। उनकी सौन्दर्य-भावना बहुत विकसित थी। इसलिए अधिकांश मन्दिरों और प्रतिमाओं के निर्माण का श्रेय उन्हींको है। उनके पश्चात् चंद वंश मैदानी क्षेत्र से कुमाऊँ में आया और उसने इस क्षेत्र की कला और यहाँके स्थापत्य में अपने विचारों का समावेश कराया।

कत्यूरियों के समय में भी कुमाऊँ के मन्दिरों में देश के विभिन्न भागों के विचार पूर्णतया सम्मिश्रित होते रहे थे। विशेषरूप से राजपूताना तथा गुजरात का प्रभाव इन पर अधिक पड़ा। दक्षिण भारत की कुछ बातें भी कुमाऊँ के मन्दिरों के स्थापत्य में अपना ली गयी थीं। हिमालय-क्षेत्र के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक आकर्षण के कारण और उसके प्रसिद्ध तीर्थस्थल होने के कारण बहुत प्राचीन काल से सहस्रों व्यक्ति यहाँ आते रहते थे। तीर्थयात्रियों तथा अन्य लोगों के निरन्तर आने-जाने से कुमाऊँ की कला तथा उसके स्थापत्य में बाहिरी विचारधारा के सम्मिश्रण में पर्याप्त सहायता मिली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारधाराओं के प्रारम्भिक प्रवाह में कुमाऊँ के मन्दिरों में नागर-शैली के मन्दिरों के मूल सिद्धान्तों का अनुकरण किया गया। इस प्रकार जागेश्वर के आरंभ के मंदिरों में गुप्तकालीन मन्दिरों की अनेक विशेषताएँ पायी जाती हैं। साथ ही साथ कुमाऊँ में, भारत के अन्य स्थानों की अपेक्षा, गाड़ियों की मण्डलाकार छत के समान छतवाले मन्दिरों की शैली को अधिक प्रधानता दी गयी। इसका मूल-स्रोत बौद्ध स्तूप था और बाद में आनेवाली शताब्दियों में यह शैली उत्तर तथा दक्षिण भारत के मन्दिरों में समान-रूप से अपनायी गयी। जागेश्वर में एक प्रकार का मन्दिर और है जिसकी दीवारें सीढ़ीदार हैं। यह पट्टदकल के पापनाथ मन्दिर से अधिक समानता रखता है। जैसा पहले कहा जा चुका है, पाण्डुकेश्वर मन्दिर में बङ्गाल के पाल-वंश की कला शैली का प्रभाव लक्षित होता है।

परन्तु कुमाऊँ के स्थापत्य पर जिस काल की छाप सबसे गहरी पड़ी है उसका आरम्भ दसवीं-ग्यारहवीं ईसवी शताब्दी के पश्चात् होता है। इस काल के बाद के मन्दिरों का निर्माण न्यूनाधिक प्रतिहार शैली के अनुसार हुआ है। इस शैली का प्रसिद्ध केन्द्र विशेषकर राजपूताना में ओसिया था और कालान्तर में इसका प्रसार राजपूताना, गुजरात, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश तक में हो गया। बैजनाथ, द्वाराहाट, कटारमल, आदि बदरी और बागेश्वर के मन्दिरों के अलंकृत त्रिकोणीय अग्रभाग, कक्षासन, आले और देवोढ़ियों तक में बाद की प्रतिहार-सोलंकी शैली की विशेषताएँ भली भाँति दृष्टिगोचर होती हैं। चम्पावत के मन्दिरों और द्वाराहाट के एक मन्दिर में भी यही विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। उनका निर्माण गुजराती और राजस्थानी मन्दिरों के आधार पर विशेषरूप से हुआ है।

यह कहा जाता है कि कुमाऊँ के मन्दिर स्पष्ट ऐतिहासिक भावनाएँ नहीं जाग्रत करते, इसलिए उनका जिज्ञासा उत्पन्न करने का प्रयत्न दयनीय लगता है। परन्तु यह दृष्टिकोण न्यायोचित नहीं प्रतीत होता। प्रथमतः उनमें स्थापत्य सम्बन्धी तथा कला सम्बन्धी महत्त्व है। द्वितीयतः जब मूर्तिभंजकों द्वारा सभी मन्दिरों को नष्ट किया जा रहा था तब ये मन्दिर अतीत के गौरव की झलक देने के लिए बचे रह सके। यद्यपि यह सत्य है कि कत्यूरियों और चन्दों का अधिक इतिहास उपलब्ध नहीं रह गया है तो भी वर्तमान अवशेषों से यह अच्छी तरह प्रमाणित हो जाता है कि भारत के क्षेत्रीय शासकों में वे अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली और गौरवान्वित शासक थे।)

इस प्रामाणिक सम्मति से यह स्पष्ट हो गया है कि उत्तराखंड के मन्दिर-निर्माता सदैव उदार भावना से प्रेरित रहे और वे समय-समय पर भारत के अनेक भागों की मन्दिर शैलियों के महत्त्वपूर्ण अंग और विशेषताएँ अपनाते रहे। बंगाल, दक्षिण, गुजरात, राजस्थान और उत्तर प्रदेश (के प्रतिहारों) की मन्दिर शैलियों को उन्होंने अपनाया और इनके आधार पर अपनी कोई विशिष्ट मन्दिर-निर्माण शैली विकसित नहीं की। अतएव यह कहना भ्रमपूर्ण है कि उत्तराखंड नाम की कोई विशिष्ट मन्दिर शैली है। आज जब यातायात की सुविधाएँ बढ़ गयी हैं तब देश की भावनात्मक एकता के हित में आवश्यक है कि बदरीनाथजी के समान अखिल भारतीय महत्त्व के मन्दिर में नागर शैली की प्रधानता देते हुए देश के सभी मन्दिरों की शैलियों का समन्वय किया जाय जिससे उसमें पहुँचने पर भारत के प्रत्येक भाग का यात्री उसमें अपनी भावना की प्रतिच्छाया देखकर संतुष्ट हो।

शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय की जन्मशती—मई में नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक, हिन्दी के अपूर्व उन्नायक और साहित्यकार तथा 'सरस्वती' के भूतपूर्व सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास की जन्मशती थी। यह उचित ही था कि इसका आयोजन नागरी प्रचारिणी सभा करे। उसने काशी में तो एक लघु रस्मी आयोजन किया किन्तु मुख्य आयोजन दिल्ली में किया जहाँ राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने उसका उद्घाटन और उपराष्ट्रपति श्री जत्ती ने उसका समापन किया। अनेक केन्द्रीय मन्त्री भी उसमें सम्मिलित थे। बाबू साहब को इस अवसर पर अभूतपूर्व राजकीय सम्मान मिला। ऐसा मालूम होता है कि हिन्दी के समारोह तब तक सफल और प्रतिष्ठित नहीं समझे जाते जब तक उनमें महत्त्वपूर्ण राजपुरुष उदघाटनकर्ता, समापनकर्ता या अध्यक्ष के रूप में योगदान न दें। साहित्यकारों ने भी उसमें भाग लिया था। कई विचारगोष्ठियाँ भी आयोजित की गयी थीं। सब मिलाकर उत्सव शानदार रहा।

सितम्बर में बँगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की जन्मशती पड़ी थी। कलकत्ते में बँगला के साहित्यकारों और प्रेमियों ने उस जन्मशती को मनाया। उसकी अध्यक्षता बँगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री वलाई चन्द्र मुखोपाध्याय (वनफूल) ने की। उसमें बँगला के साहित्यकारों और बँगला साहित्यप्रेमियों ने बड़े उत्साह से भाग लिया। वह आयोजन साहित्यकारों और बँगला एवं शरत् प्रेमियों का था। उस अवसर पर शरत् बाबू की प्रतिमा की स्थापना की गयी, उनके गृह को राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित कर स्मारक के रूप में उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध किया गया, नेशनल लाइब्रेरी (राष्ट्रीय पुस्तकालय) में उनकी पुस्तकों और अनेक भाषाओं में किये गये उनके अनुवादों की भव्य प्रदर्शनी की गयी और कलकत्ता विश्वविद्यालय में शरत् बाबू के नाम पर बँगला साहित्य की एक चेयर (पीठ) की स्थापना के लिए प्रस्ताव किया गया। शरत् बाबू के २० उपन्यास, ३ नाटक, २३ निबन्ध और एक बड़ा निबन्ध तथा ६ बचपन की कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने शताधिक साहित्यिक महत्त्व की कहानियाँ भी लिखीं। वे तीन अधूरे उपन्यास और दो अधूरी कहानियाँ छोड़ गये हैं। भारत की प्रायः सभी भाषाओं में उनके उपन्यासों के अनुवाद हो चुके हैं। हिन्दी में तो अनेक प्रका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकों ने उनके उपन्यासों के अलग-अलग संस्करण निकाले हैं। नेशनल लाइब्रेरी ने इन सबकी एक विवरणात्मक सूची तैयार कर उस समय प्रकाशित की। ये सभी आयोजन बँगला साहित्यकारों और बँगला प्रेमियों के उत्साह और परिश्रम से बड़े भव्य रूप से सम्पन्न हुए और बंगलाभाषियों में इस उत्सव से शरत् बाबू के कर्तृत्व के प्रति उत्साह और जिज्ञासा की एक नयी लहर दौड़ गयी। इस जयन्ती समारोह के कई ठोस परिणाम हुए। उनकी मूर्ति की स्थापना, उनके गृह का राष्ट्रीयकरण और कलकत्ता विश्वविद्यालय में उनके नाम पर बँगला कथा साहित्य के अध्ययन के लिए एक पीठ (चेयर) की स्थापना इस जयन्ती की ठोस उपलब्धियाँ हैं। इस अवसर पर साहित्यकारों ने शरत् बाबू पर जो भाषण दिये, वे अत्यन्त गम्भीर और विचारोत्तेजक थे। शरत् बाबू के समान साहित्यकार का उनके समानधर्मा साहित्यकारों और उनके पाठकों द्वारा ऐसा सम्मान वास्तव में बड़ा मर्मस्पर्शी, भव्य और प्रेरणाप्रद था। 'सरस्वती' भी इस महान् बँगला साहित्यकार के सम्मान में श्रद्धा से नत है।

काश! हिन्दी के ठेकेदार भी राजपुरुषों की बैसाखी छोड़कर इस जयन्ती की तरह 'साहित्यिक' जयन्ती किया करते, और ऐसे अवसरों पर कुछ वैसे ही ठोस काम अपने ही बलबूते पर करते जैसे कि बँगला के आत्मनिर्भर साहित्यकारों ने बँगलाभाषी जनता की सहायता से शरत-जयन्ती में कर दिखाये!

सभी नामपट (साइन बोर्ड) तमिल में—हमें 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में यह समाचार पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई—"मदरास, १७ सितम्बर (यू० एन० आई०)—आज तमिलनाडु के मुख्यमंत्री श्री करुणानिधि ने आदेश जारी किया कि राज्य के सभी संस्थानों को अपने नामपट तमिल भाषा में लगाने होंगे।

एक सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार श्री करुणानिधि ने पंचायत, नगरपालिका और कारपोरेशन कानून के नियमों में आवश्यक संशोधन करने की आज्ञा दी है।

मुख्यमन्त्री ने कहा है कि यदि आवश्यक हो तो तमिल शब्दों का अनुवाद अन्य भाषाओं में भी लिखा जा सकता है किन्तु वह तमिल शब्दों के बाद ही लिखा जा सकेगा।"

विश्व हिन्दी सम्मेलन में कई विदेशी प्रतिनिधियों ने भारत में अंग्रेजी नामपटों की तीखी आलोचना की थी। स्वर्गीय श्री लोहिया की प्रेरणा से उत्तर भारत के कई स्थानों में अंग्रेजी नामपटों पर तारकोल पोतने का अभियान समाजवादी पार्टी ने चलाया था। उस समय कितने ही अंग्रेजीपरस्तों ने उसकी निन्दा की थी। अंग्रेजी के ये नामपट देश में अंग्रेजी का वर्चस्व ही विज्ञापित नहीं करते, प्रत्युत देश में अंग्रेजी का वातावरण भी बनाते हैं। किन्तु खेद है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारें इस मामले में उदासीन हैं। अब जब तमिलनाडु ने इस दिशा में एक आवश्यक और वांछनीय कदम उठाया है तब क्या हम कम से कम हिन्दी के गढ़ कहे जानेवाले उत्तर प्रदेश की सरकार से आशा करें कि वह भी अपने राज्य में अपनी राजभाषा हिन्दी के पक्ष में ऐसा ही कदम उठायेगी? उत्तर प्रदेश ही नहीं, सभी राज्य सरकारों को अपनी राजभाषाओं के पक्ष में ऐसा ही नियम बनाना चाहिए। केन्द्रीय सरकार अपनी मुख्य राजभाषा हिन्दी घोषित करती है। क्या वह भी अपनी राजभाषा के हित में ऐसा ही नियम बनायेगी जिससे दिल्ली में आनेवाले बहुसंख्यक विदेशियों को कनाट-प्लेस आदि स्थानों में अंग्रेजी नामपटों के बाहुल्य से यह भ्रम न हो जाय कि भारत की भाषा अंग्रेजी है? यदि सरकार स्वयं ऐसी कार्रवाई करे तो अंग्रेजी नामपटों पर तारकोल पोतने के समान अशोभनीय काण्ड न हों तथा जनता को संतोष हो।

उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा श्री शेवड़े का सम्मान—गत वर्ष नागपुर में विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की पहल पर महाराष्ट्र सरकार की सहायता तथा अन्य हिन्दीभाषी राज्यों और महाराष्ट्र की जनता द्वारा आयोजित किया गया था। वह अत्यन्त सफल रहा। इसका बहुत बड़ा श्रेय उसके महामन्त्री श्री अनन्त गोपाल शेवड़े को था। हिन्दीभाषियों की ओर से उसे सफलतापूर्वक करने के लिए और अहिन्दी भाषियों, विशेषकर महाराष्ट्र की जनता के प्रति (जहाँ वह हुआ था) कृतज्ञता प्रकट करने के लिए हिन्दी के हृदय स्थल उत्तर प्रदेश के हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने प्रतीक रूप में श्री शेवड़े का सम्मान करने के लिए एक विशेष समारोह करके उन्हें अपने हिन्दी प्रचार के सर्वोच्च पदक 'राजर्षि स्वर्ण पदक' से विभूषित किया। माननीय श्री कमलापति त्रिपाठी ने उसकी अध्यक्षता करना स्वीकार कर लिया था, किन्तु अचानक बीमार हो जाने के कारण वे स्वयं न आ सके। उन्होंने अपना लिखित भाषण रेल राजभाषा निदेशक श्री शिव सागर मिश्र के द्वारा भेज दिया था जो उन्होंने पढ़ा, तथा अपने स्थान पर अध्यक्षता करने के लिए केन्द्रीय उपमंत्री श्री शुकदेवप्रसाद को भेज दिया था। श्री शेवड़े का विधिवत् सम्मान एक कश्मीरी शाल उनके कंधे पर डालकर और पदक प्रदान कर केन्द्रीय उपमन्त्री श्री सिद्धेश्वर प्रसादजी ने किया। सम्मेलन के अध्यक्ष श्री भगवती चरण वर्मा ने इस आयोजन का उद्देश्य बतलाया। श्री शेवड़े की प्रशस्ति सम्मेलन के उपाध्यक्ष और उ० प्र० विधान सभा के अध्यक्ष प्रो० वासुदेव सिंहजी ने पढ़ी। उसमें श्री शेवड़े की हिन्दी साहित्य की दीर्घकालीन उच्च कोटि की साहित्यिक सेवाओं का वर्णन करके उनके विश्व हिन्दी सम्मेलन के संगठन और संचालन की प्रशंसा की गयी थी। उसमें कहा गया था कि 'उनको सम्मानित कर प्रतीक रूप में उनके माध्यम से वह (सम्मेलन) महाराष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जनता, साहित्यकारों और सरकार के प्रति सफलता-पूर्वक विश्व हिन्दी सम्मेलन करने के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करता है।' श्री शेवड़े ने बड़े भावभीने और प्रेरणाप्रद शब्दों में कृतज्ञता व्यक्त करते हुए हिन्दी के शीघ्र व्यावहारिक रूप से राष्ट्रभाषा होने का विश्वास प्रकट किया। श्रीमती कमला रत्नम् ने बड़े मार्मिक शब्दों में सम्मेलन की ओर से अतिथियों और दर्शकों को धन्यवाद दिया। उनके प्रेरक भाषण से समारोह का समापन हुआ।

पूर्वाह्न में 'हिन्दी माध्यम की समस्याओं' पर एक विचार गोष्ठी हुई जिसकी अध्यक्षता सम्मेलन के अध्यक्ष श्री भगवतीचरण वर्मा ने की। विषय का प्रवर्तन डा० उदयनारायण तिवारी ने किया। उसमें भाग लेने वालों में 'निरन्तर' के सम्पादक श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी आदि कई विद्वान् थे। समारोह का आरम्भ अमरोहा में प्रतिष्ठित तुलसीदासजी की विशाल प्रतिमा के पूजन से हुआ। यह विशाल प्रतिमा राज्य में तुलसीदासजी की सबसे बड़ी प्रतिमा है। वहाँ से नगर में मोटरों की विशाल पंक्ति में एक शोभा यात्रा निकली। रास्ते में नागरिकों ने १४ सितम्बर (हिन्दी दिवस) के उपलक्ष में १४ स्वागत द्वार बनाये थे। इस समारोह में प्रयाग, काशी, लखनऊ, आगरा, कानपुर तथा आसपास के जिलों से प्रायः डेढ़ सौ साहित्यकार, हिन्दी के प्रोफेसर और हिन्दीप्रेमी अधिकारी पधारे थे। सूरीनाम, गुयाना और फ़ीजी के भी प्रतिनिधि उपस्थित थे। समारोह कुन्दनलाल डिग्री कालिज के विशाल 'हॉल' में हुआ था जिसमें ऊपर नीचे प्रायः दो हज़ार महिलाएँ और पुरुष उपस्थित थे। इस अत्यन्त सफल समारोह में हिन्दू और मुसलमान नागरिकों ने बड़े उत्साह से भाग लिया। इसकी सफलता का मुख्य श्रेय वहाँके प्रसिद्ध नागरिक डा० केशवकृष्ण गोयल को था, जिनके अनवरत परिश्रम और कल्पनाशील नेतृत्व ने उसमें किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होने दी और वह बड़ी भव्यता और गरिमा से सम्पन्न हो सका। श्री शेवड़े का इस प्रकार भव्य सम्मान कर राजर्षि टंडन द्वारा स्थापित उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपनी कल्पना, जागरूकता और सूझबूझ का परिचय दिया।

उपग्रह द्वारा दूरदर्शन से ग्रामीणों को शिक्षा देने और रुचिपूर्ण मनोरंजन करने का प्रयोग—कुछ ही दिन पहले भारत ने अपना बनाया एक उपग्रह पहली बार अंतरिक्ष में छोड़ा था। उसे अंतरिक्ष में पहुँचाने के साधन हमारे पास नहीं थे। इसलिए वह रूस के प्रक्षेप्य यन्त्र से छोड़ा गया। यह बात नहीं है कि हम प्रक्षेप्य यन्त्र बना नहीं सकते, किंतु उनके बनाने में अत्यधिक व्यय होता है और हमें रूस ने उसे अंतरिक्ष में छोड़ने की सुविधा दी जिससे हमारा अनावश्यक व्यय बच गया। अब भारत ने एक नया प्रयोग किया है जिसका शुभारंभ प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने पहली अगस्त को किया। यह प्रयोग है एक विशेष प्रकार के उपग्रह की सहायता से देश के ६ राज्यों के २४०० गाँवों में दूरदर्शन के द्वारा ग्रामीणों और विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करना, और साथ ही उनका सुरुचिपूर्ण मनोरंजन करना।

दूरदर्शन (टेलीविज़न) इस देश में अधिकांश लोगों के लिए नयी वस्तु है। जिस प्रकार हम आकाशवाणी से गीत, वार्ता और समाचार सुनते हैं, उसी प्रकार हम दूरदर्शन यन्त्र से चलचित्र देखते हैं। ये चलचित्र पृथ्वी से विद्युत् तरंगों द्वारा आकाश में स्थित एक उपग्रह से टकराते हैं और वह उपग्रह उन तरंगों को पृथ्वी पर निश्चित स्थानों में भेज देता है जहाँ वे दूरदर्शन यन्त्र के पटल या पर्दे पर उसी प्रकार सरलता से देखे जा सकते हैं जिस प्रकार हम रेडियो यंत्र से आकाशवाणी के समाचार सुनते हैं। इस प्रयोग के लिए जो उपग्रह काम में लाया जा रहा है वह हमें अमरीका से मिला है, किंतु अगले वर्ष तक हमें आशा है कि हम स्वयं अपना बनाया उपग्रह आकाश में स्थापित कर सकेंगे और यह योजना और अधिक ग्रामों में पहुँच सकेगी जिससे अधिक ग्रामीणों और विद्यार्थियों को लाभ पहुंचेगा।

इस उपग्रह से टकराकर उसकी तरंगें आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, बिहार और राजस्थान के कुछ भागों ही में पहुँच पाती हैं। किन्तु इन भागों में २४०० गाँव आ जाते हैं। इनमें औसत से प्रत्येक ६ गाँवों के लिए एक दूरदर्शन यन्त्र दिया गया है, अर्थात् सरकार ने अपने व्यय से ४०० गाँवों में ये यन्त्र लगाये हैं तथा इनके रख-रखाव और देख-भाल का भी प्रबन्ध किया है। आस-पास के गाँववाले दूरदर्शन यन्त्र केन्द्र पर आकर निश्चित समय पर इनके द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों को देख सकते हैं। सवाक् चलचित्रों की तरह इनमें आवाज भी आती है और ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि जिस क्षेत्र में यह यन्त्र लगाया गया है उसमें वहींकी भाषा में वार्ता आये। इस प्रकार वे चलचित्रों के साथ अपनी भाषा में गीतों, कहानियों, वार्ताओं, नृत्यों आदि का आनन्द ले सकते हैं।

किन्तु इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है। ये ग्रामीणों को स्वास्थ्य, सफाई, गृहकार्य, परिवार-नियोजन और खेती की उन्नत विधियों की आवश्यक बातें भी बतलायेंगे। इसके अतिरिक्त ये विद्यार्थियों को भी पूरक शिक्षा देंगे जो उन्हें उनके विद्यालयों में नहीं मिल सकती। ग्रामीणों और विद्यार्थियों के लिए कार्यक्रमों के समय उनकी सुविधा का विचार करके निश्चित किये गये हैं।

वास्तव में यह व्यापक प्रौढ़ या जन शिक्षा की योजना है जिससे पुरुषों और स्त्रियों दोनों को अपने-अपने काम करने, रोगों से बचने तथा कृषि की उन्नति करने के उपाय उन्हींकी भाषा में चलचित्रों द्वारा सिखाये जायँगे। इतने व्यापक आकार में देश में पहली बार इस प्रकार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल और उपयोगी आयोजन किया गया है। सरकार ने इस बात के जानने का भी प्रबन्ध किया है कि गाँववालों तथा विद्यार्थियों पर इन चलचित्रों की क्या प्रतिक्रिया होती है, वे इनसे कितना लाभ उठाते हैं और कार्यक्रमों में क्या त्रुटियाँ हैं। इस जानकारी से वह इन कार्यक्रमों को अधिक उपयोगी बना सकेगी।

भारत ऐसे विविध भाषा-भाषी विशाल देश में यह योजना चलाकर भारत सरकार ने एक बड़ा उपयोगी, कल्पनाशील और साहस का कार्य किया है। इसके लिए वह हमारी बधाई की पात्र है। हम इस प्रयोग के परिणामों को उत्सुकता और सहानुभूतिपूर्वक देखेंगे। हम इस प्रयोग की सफलता की कामना करते हैं।

बिहार उड़ीसा का जलप्लावन—इस वर्ष भारत के कई भागों में इन्द्रदेव ने कोप किया और कई राज्यों में बाढ़ें आयीं जिनसे कृषि और जनता की अपार क्षति हुई। किन्तु बिहार और उड़ीसा इस वर्ष जलप्लावन के सबसे बड़े शिकार हुए। विशेषकर बिहार में तो शायद ऐतिहासिक भूकम्प के बाद वहाँकी जनता पर ऐसी विपत्ति कभी नहीं आयी जैसी इस वर्ष के जलप्लावन से आयी। उत्तरी बिहार का बहुत बड़ा भाग जलप्लावन की चपेट में आगया और लाखों बीघों की फसल नष्ट हो गयी। लाखों लोग बेघरबार हो गये। यही दशा उड़ीसा के अनेक भागों की हुई। किन्तु सबसे भीषण और नाटकीय जलप्लावन का दृश्य बिहार की राजधानी पटना में देखने में आया। वहाँ दानापुर से लेकर पटना नगर के आधे से अधिक भाग तक जल ही जल दिखायी पड़ता था। सड़कें पानी में डूब गयी थीं। राजभवन और विधानसभा के भवन पानी से घिर गये थे। पटना का आधुनिक भाग जल से बुरी तरह प्रभावित हो गया था। इन स्थानों में पानी की गहराई तीन फुट से लेकर दस फुट तक थी। बहुत से मकानों के नीचे के खंड पानी से भर गये थे। यातायात ठप हो गया था। लोग अपने घर की छतों या ऊपरी खण्ड में बन्दी हो गये थे। उन्हें दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएं—जैसे, दूध, शाक, खाद्यपदार्थ भी—मिलनी बंद हो गयी थीं। नगर का विशाल मैदान, जिसमें बड़ी-बड़ी सभाएँ होती हैं, झील बन गया था। जलप्लावन इतना अचानक और इतने वेग से आया कि लोग अपने बचाने का कोई प्रबन्ध न कर सके। अपने घरों में बन्दी लोगों को आवश्यक खाद्यपदार्थ पहुँचाने के लिए सरकार ने हैलीकाप्टरों की सहायता ली। प्रायः एक सप्ताह पटना के नागरिकों को यह यंत्रणा भोगनी पड़ी। प्रधान मन्त्री से लेकर देश का सामान्य नागरिक तक इन लोगों की दयनीय दशा से द्रवित हो गया। केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने सेना की सहायता से लोगों को राहत पहुँचाने का प्रशंसनीय कार्य किया, और सारे देश की जनता ने प्रधान मन्त्री के सहायता कोष में करोड़ों रुपये देकर बिहार और उड़ीसा की जनता के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की।

देश में प्रतिवर्ष कहीं न कहीं बाढ़ आती है, किन्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, असम और उड़ीसा इसके प्रायः प्रतिवर्ष शिकार होते हैं। सरकार ने नदियों के किनारे-किनारे बाँध बनाकर बाढ़ रोकने का प्रयत्न किया। उसने एक बाढ़नियंत्रण आयोग भी स्थापित किया है। किन्तु बाढ़ों को, या उससे होनेवाली क्षति को रोकने में वह अभी तक सफल नहीं हुई। विज्ञान की उन्नति के इस युग में बाढ़ पर नियंत्रण न पा सकना आश्चर्य की बात है। शायद हमारे अभियन्ता और वैज्ञानिक अभी तक रोग का ठीक निदान नहीं कर पाये। तब चिकित्सा कैसे संभव है? इस वर्ष के भीषण जलप्लावन से अधिकारियों को सचेत होकर उसे रोकने के स्थायी और प्रभावशाली उपाय करने चाहिए।

दिवंगतों के प्रति श्रद्धांजलि—यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमें अपने सम्पादन काल के अन्तिम सम्पादकीय की समाप्ति पर एक साथ आधे दर्जन महान् पुरुषों और हिन्दी के मनीषियों तथा उन्नायकों को श्रद्धांजलि अर्पित करनी पड़ रही है।

डाक्टर बलदेवप्रसाद मिश्र—७७ वर्ष की आयु में डा० मिश्र का निधन हिन्दी संसार—विशेषकर मध्य प्रदेश—के लिए अपूरणीय क्षति है। हिन्दी में ऐसे कम ही लोग होंगे जिन्हें जीवन के इतने विविध क्षेत्रों में कुशलतापूर्वक कार्य करने का अवसर मिला हो। उन्होंने प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, उपकुलपति, एक राज्य के दीवान, विधान सभा के सदस्य, नगरपालिका के अध्यक्ष आदि पदों को विभूषित किया, और वे जिस पद पर रहे उसका उन्होंने गौरव बढ़ाया; किन्तु मूलतः वे अध्यापक और साहित्यकार थे। उन्होंने प्रायः पचास ग्रन्थ लिखे। उनकी विधाओं की विविधता देखकर आश्चर्य होता है। उन्होंने महाकाव्य, खंडकाव्य, काव्यान्तर, नाटक, कहानी, निबन्ध आदि लिखकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का सिक्का जमा दिया था। किन्तु रामचरितमानस और रामचरित्र उनके प्रिय विषय थे और उनके वे सर्वमान्य अधिकारी विद्वान् माने जाते थे। तुलसी-दर्शन, साकेत-संत (महाकाव्य), मानस में रामकथा, भारतीय संस्कृति को गोस्वामीजी का योगदान, मानस माधुरी, मानस मंथन इस विषय पर उनके गहन अध्ययन और मौलिक चिन्तन के साक्षी हैं। वास्तव में हिन्दी संसार में वे रामचरितमानस के सर्वमान्य व्याख्याता थे और उसे तथा तुलसीदास को समझने और उनके संदेश को प्रबुद्ध पाठकों को सुलभ करने में उन्होंने जो काम किया वह उनकी कीर्ति को चिरस्थायी रखेगा। इतने बड़े विद्वान् होने और इतने उच्च पदों पर रहने पर भी वे अत्यन्त सरल प्रकृति के थे। अहंकार उनको छू तक नहीं गया था। उनके पत्रों में विनम्रता टपकी पड़ती थी। हमने जब 'सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे' वाली **अर्द्धाली पर अन्य छः विद्वानों के साथ उनसे भी अपने विचार**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखने को कहा तब उन्होंने जिस विनम्र भाषा में उसकी स्वीकृति भेजी उसे पढ़कर हम गद्गद और आश्चर्यचकित रह गये। उनसे मिलकर ज्ञानगंगा में स्नान करने की शुद्धता का अनुभव होता था। उन्हींके समान संतत्व प्राप्त विदग्ध साहित्यकारों के लिए कहा गया है कि उनके यश-शरीर को जरा-मरण का भय नहीं है। हम उनकी स्मृति के बड़े आदर और बड़ी विनम्रता से नतमस्तक हैं।

श्रीमती रमा जैन का स्वर्गवास—हमें यह जानकर अत्यन्त खेद हुआ कि श्रीमती रमा जैन का स्वर्गवास गत मास हो गया। वे प्रसिद्ध उद्योगपति श्री रामकृष्ण डालमिया की पुत्री थीं। कल्पनाशील डालमियाजी ने उन्हें दिल्ली के वातावरण से हटाकर किशोरावस्था में स्वर्गीय श्री जमनालालजी बजाज के यहाँ सात्विक वातावरण में रहने के लिए भेज दिया था, जहाँ उन्होंने गांधीवादी आदर्शों के साथ जीवन का व्यावहारिक प्रशिक्षण भी प्राप्त किया। उनकी नैसर्गिक प्रतिभा ने वहाँ विकसित होने का पूरा अवसर पाया। उनका विवाह प्रसिद्ध उद्योगपति साहू शान्तिप्रसाद जैन से हुआ जिनके घर का वातावरण रूढ़िवादी था, किन्तु श्रीमती रमा जैन ने उस वातावरण को बहुत कुछ बदल दिया। उनमें अपूर्व प्रबन्ध और संगठन-शक्ति थी तथा वे दृढ़ संकल्प की महिला थीं। वे जिस कुशलता से गृह का प्रबन्ध करती थीं उसी कुशलता से उद्योग-धन्धों और सार्वजनिक संस्थाओं के प्रबन्ध में भी भाग लेती थीं। भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना करके उन्होंने उच्च हिन्दी साहित्य के प्रकाशन में बहुमूल्य योगदान दिया। किन्तु उनका सबसे उल्लेखनीय और चिरस्मरणीय कार्य एक लाख रुपये वार्षिक का ज्ञानपीठ पुरस्कार है जो इस देश में साहित्य का सबसे बड़ा पुरस्कार है। उनकी दृष्टि व्यापक और सार्वदेशिक थी। इसलिए उन्होंने यह पुरस्कार भारत की चौदहों भाषाओं के साहित्य के लिए खोल दिया था। उनके स्वर्गवास से देश ने एक जागरूक, कल्पनाशील और उदारहृदया महिला को खो दिया। हम उनके शोक संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं, किन्तु उन्हें इस बात से कुछ सान्त्वना मिलनी चाहिए कि उनके दुःख में देश के अनेक प्रबुद्धजन सहभागी हैं, और ज्ञानपीठ हिन्दी संसार में, तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार देश के साहित्यिक जगत् में उनकी स्मृति सदैव आदर के साथ बनाये रखेंगे।

श्री दुलारेलाल भार्गव—७५ वर्ष की आयु में श्री दुलारेलाल भार्गव का लखनऊ में अचानक स्वर्गवास हो गया। वे हिन्दी संसार में एक पुच्छल तारे की तरह आये और उन्होंने सारे हिन्दी संसार को आकर्षित कर लिया। पहले 'माधुरी' और फिर 'सुधा' का सम्पादन कर उन्होंने हिन्दी साहित्य जगत् में धूम मचा दी। लखनऊ में जन्म लेकर भी वे व्रजभाषा के अनन्य भक्त थे और उन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक दोहा शैली को अपनाया। जब महाराज वीरसिंह जू देव ने व्रजभाषा काव्य के लिए 'देव-पुरस्कार' की स्थापना की तब पहला पुरस्कार उनकी 'दुलारे दोहावली' को मिला। वे कवि होने के साथ ही प्रकाशक भी थे और उन्होंने अपनी प्रथम दिवंगता पत्नी के नाम पर 'गंगा पुस्तकमाला' की स्थापना कर कई सौ पुस्तकें निकालीं और वे मुंशी प्रेमचन्द, निरालाजी आदि उस समय के चोटी के साहित्यकारों की कुछ पुस्तकें प्रकाशित करने में सफल हुए। उनमें ऊँचे दर्जे की कल्पना थी और वे हिन्दी के अनन्य भक्त थे। कुछ दिनों के लिए वे दिल्ली चले गये और वहाँ जाकर उनकी साहित्यिक और प्रकाशन गतिविधियाँ रुक गयीं, जिन्हें वे वहाँसे लौटने पर फिर सक्रिय नहीं कर पाये। उन्होंने प्रकाशक और सम्पादक के रूप में हिन्दी की जो सेवाएँ कीं उनके लिए वे बहुत दिनों याद रखे जायेंगे।

पंडित कन्हैयालाल मिश्र का स्वर्गवास—छपते-छपते यह दुखद समाचार मिला कि भारत के प्रसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ न्यायविदों की पहली पंक्ति के अधिवक्ता, उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व एडवोकेट जनरल पं० कन्हैयालाल मिश्र का लम्बी बीमारी के बाद स्वर्गवास हो गया। वे अप्रतिम वकील तो थे ही, साथ ही अनेक सामाजिक और शैक्षणिक गति विधियों में सक्रिय भाग भी लेते थे। वे बड़े हिन्दीनिष्ठ थे और व्यस्त रहते हुए भी हिन्दी की सेवा करते थे। वे पिछले हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यकारी उपाध्यक्ष थे और उन्होंने सम्मेलन के उद्धार की बड़ी चेष्टा की। उनके निधन से न्याय, शिक्षा और समाज सेवा जगत् की अपूरणीय क्षति हुई है। हिन्दी को तो उनके निधन से जो हानि पहुँची है वह अकथनीय है। वे 'सरस्वती' के बड़े प्रशंसक थे और उसके हीरकजयन्ती समारोह में उन्होंने बड़ी रुचि ली थी। हम उनके शोक संतप्त परिवार से समवेदना व्यक्त करते हुए उनकी स्मृति के प्रति विनम्र भाव से श्रद्धानत है।

श्री श्रीगोपाल नेवटिया—हमें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि 'नवनीत' के संस्थापक और सम्पादक श्री श्रीगोपाल नेवटिया का केवल ६८ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। वे मूलतः उद्योगपति थे, किन्तु वे उन अत्यन्त अल्पसंख्यक—जिनकी संख्या अँगुलियों पर गिनी जा सकती है—उद्योगपतियों में थे जिन्हें व्यवसाय के अतिरिक्त साहित्य में भी (विशेषकर हिन्दी साहित्य में) गहरी रुचि थी। व्यवसायी होने के कारण वे व्यावहारिक थे और उनमें ऊँचे दर्जे की सूझ-बूझ थी। उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दी में 'डाइजेस्ट' की तरह का कोई मासिक पत्र नहीं है जिसकी उपयोगिता समझना कठिन नहीं है। अतएव उन्होंने 'नवनीत' का सार्थक नाम देकर हिन्दी में डाइजेस्ट के ढंग का एक मासिक पत्र निकाला। वे इतने कल्पनाशील थे और उनमें इतनी सुरुचि थी कि 'नवनीत' अपने बाह्य और आन्तरिक आकर्षण के कारण हिन्दी के सर्वाधिक समादृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लोकप्रिय मासिक पत्रों में गिना जाने लगा। उन्होंने उसके स्तर को प्रबुद्ध पाठकों को ध्यान में रखकर स्थिर किया और यह दिखला दिया कि हिन्दी में उच्च स्तर का मासिक साहित्य यदि ठीक ढंग से प्रस्तुत किया जाय तो लोकप्रिय हो सकता है। 'नवनीत' की स्थापना और सम्पादन कर नेवटियाजी ने हिन्दी और हिन्दी पत्रकारिता की जो ठोस सेवा की है वह उनकी कीर्ति को अक्षय रखेगी। उनके निधन से हिन्दी मासिक साहित्य को गहरा धक्का लगा है, किन्तु हमें आशा है कि 'नवनीत' उनके निर्धारित मार्ग पर चलकर हिन्दी की सेवा करता रहेगा जिससे उनकी आत्मा को तृप्ति और शान्ति मिलेगी।

पं० रामबालक शास्त्री—७४ वर्ष की आयु में काशी में संस्कृत के विद्वान् और उसके उन्नायक पं० रामबालक शास्त्री का काशीवास हो गया। हमने यह समाचार बड़े खेद से पढ़ा। शास्त्रीजी एक विद्यालय में संस्कृत के अध्यापक थे, किन्तु उनमें संस्कृत के प्रचार की आग थी। साधनहीन होने पर भी उन्होंने अनेक वर्षों तक संस्कृत का एक पत्र निकाला और आकाशवाणी में संस्कृत-समाचार-प्रसारण के लिए उन्होंने वर्षों अनवरत प्रयत्न किया। प्रसन्नता की बात है कि वे जीवन में अपने प्रयत्न को फलीभूत होते देख गये। किन्तु संस्कृत के इतने बड़े पक्षधर होते हुए भी उन्हें हिन्दी से भी प्रगाढ़ प्रेम था। पुराने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थायी समिति के वे सदस्य थे और वहाँ हमने उनकी हिन्दी-निष्ठा को निकट से देखा था। वे हिन्दी के मामले में 'समझौतावादी' न थे और स्पष्ट भाषा में अपने विचार व्यक्त करते थे। उनका जीवन सादगी का आदर्श था। वे बहुधा जूता भी नहीं पहनते थे और कपड़े भी उतने ही जितने परमावश्यक समझते। इस सादगी के साथ वे बड़े सरल हृदय भी थे। कभी-कभी उनका तेज उग्ररूप में भी प्रकट होता किन्तु वे शीघ्र ही शान्त हो जाते और उनके मन में किसी प्रकार का कलुष नहीं रहने पाता था। उनके निधन से संस्कृत का एक विद्वान् और उन्नायक और हिन्दी का एक बड़ा समर्थक चला गया।

श्री कामराज—अविभाजित कांग्रेस के आधे दर्जन चोटी के नेताओं और बाद में तथाकथित 'सिंडिकेट' के एक प्रमुख सदस्य तथा कांग्रेस-विभाजन के बाद संगठन कांग्रेस के एक प्रमुख नेता श्री कामराज नाडर का देहान्त अक्तूबर मास में मदरास में हो गया। वे वर्षों तमिलनाडु के मुख्यमन्त्री भी रहे और वर्तमान वित्तमन्त्री श्री सुब्रह्मण्यम् उनके मन्त्रिमंडल में थे। श्री कामराज तमिलनाडु में कांग्रेस के स्तंभ थे। अंग्रेजी में निष्णात न होते हुए भी अपनी सहजबुद्धि, लक्ष्य की स्पष्टता, संगठनशक्ति और योग्यता के कारण वे अपने राज्य की ही नहीं, भारत की राजनीति पर अनेक वर्ष छाये रहे। उनका जीवन अत्यन्त सादा था। वास्तव में वे जनता के आदमी थे और जनता की नाड़ी को भली भाँति समझते थे। कांग्रेस संगठन को मजबूत बनाने के लिए उन्होंने मंत्रियों को अपने पदों से त्यागपत्र देकर संगठन का कार्य करने की योजना बनायी थी जो 'कामराज योजना' के नाम से जानी जाती थी; किन्तु दुर्भाग्य से वह असफल रही। कांग्रेस विभाजन के बाद वे संगठन कांग्रेस में बने रहे और उन्होंने तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम की नीतियों के विरुद्ध कांग्रेस को शक्तिशाली बनाने में अपना सारा समय और शक्ति लगा दी थी। संगठन कांग्रेस में रहते हुए भी शासक कांग्रेस के नेताओं से उनके सम्बन्ध अच्छे थे। उनकी दृष्टि तमिलनाडु के कितने ही नेताओं की तरह क्षेत्रीय न होकर अखिल भारतीय थी। उनकी मृत्यु से कांग्रेस ने एक अत्यन्त योग्य, दूरदर्शी और शक्तिशाली नेता को खो दिया।

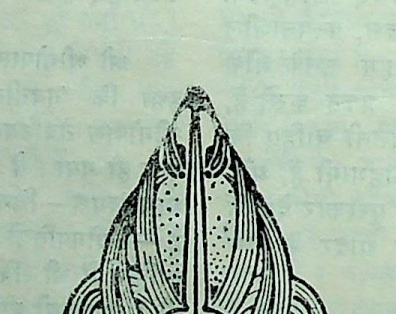

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगियों के परम आराध्य देव : गणपति विनायक

प्रो० बी० आर० शर्मा

भारतीय संस्कृति तथा भारतीय विचारधारा के अनुसार मानव का परम लक्ष्य परम तत्त्व की प्राप्ति करना है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि आत्मानुभूति करना अर्थात् आत्मा और परमात्मा का एकाकार करना ही मानव जीवन का चरम उद्देश्य है। चौरासी लाख योनियों में मनुष्य योनि ही ऐसी है जिसमें भगवान् को पाया जा सकता है। भारतीय दर्शन के अनुसार यह समूचा संसार उस परम तत्त्व की ही अभिव्यक्ति है और इसे हम परम पिता परमात्मा का साक्षात्कार या प्रत्यक्षीकरण भी कह सकते हैं। वह परमात्मतत्त्व सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तथा सर्वव्यापक है। परमात्मा की सर्वव्यापकता से अभिप्राय है कि कोई भी ऐसी जगह नहीं और कोई भी ऐसी गति-विधि नहीं है जहाँ भगवान् विद्यमान न हों। अतः हम कह सकते हैं कि परमात्मा प्रत्येक चीज में है और प्रत्येक चीज परमात्मा में है। मानव परमात्मा की शक्तियों का सच्चा प्रतिनिधि है और अध्यात्म विद्या के अनुसार समूचे विश्व का बीजरूप मनुष्य में निहित है। शायद इसीलिए ईसा मसीह ने कहा था कि यदि आप समूचे ब्रह्माण्ड को जानना चाहते हैं तो अपने आपको जानो। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अपने आपको जानना ही प्रभु-प्राप्ति है। यह स्थिति प्राप्त करने पर मनुष्य सर्वज्ञ बन जाता है और त्रिकालदर्शी भी हो जाता है। इस स्थिति में आकर मनुष्य माया-जाल से मुक्त हो जाता है और प्रकृति के नियमों से भी ऊपर उठ जाता है। इसलिए वास्तविक आत्मानुभूति करना ही मानव का प्रमुख ध्येय है।

आत्मानुभूति तथा प्रभु-प्राप्ति के कई रास्ते तथा अनेक ढंग हैं। इनमें तीन मार्ग विशेष हैं जो हमें इस परम लक्ष्य तक ले जाते हैं। ये मार्ग हैं—योग मार्ग, कर्म मार्ग तथा भक्ति मार्ग। इन तीनों मार्गों में परस्पर बहुत ही निकट का सम्बन्ध है और आगे चलकर ये तीनों मार्ग एक हो जाते हैं और हमें अपने एक ही लक्ष्य-विन्दु तक ले जाने में सक्षम हैं। इन तीनों मार्गों को राजयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग के नाम से भी जाना जाता है। इन तीनों मार्गों में योग का विशेष महत्त्व है।

योग का अर्थ है मिलन अथवा ऐक्य। यहाँ योग का वास्तविक अभिप्राय है आत्मा तथा परमात्मा का सम्मिलन। योग का उद्देश्य भी वह स्थिति है जब मानव मन उस सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, अखण्ड, अनन्त, अव्यक्त परमब्रह्म से एकाकार हो जाता है। इस स्थिति में पहुँच कर भेदभाव की सारी दीवारें गिर जाती हैं और मनुष्य समदर्शी बन जाता है। यही परमानन्द की स्थिति है जो मानव जीवन का परम लक्ष्य है। योग मार्ग भी है और मंजिल भी। योग में साधन, साध्य तथा साधक का अद्भुत सम्मिश्रण है। योग कई प्रकार का है। जैसे, राजयोग, हठयोग, भक्तियोग, कर्म योग आदि।

गणपति विनायक की षट्चक्र साधना योग का प्रमुख आधार माना गया है। गणपति मूलाधार चक्र के स्वामी हैं। इस मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी शक्ति (दिव्य शक्ति) सर्पिणी के आकार में सोयी रहती है। यह सर्पाकार शक्ति स्वयंभूलिंग को आवेष्ठित करके प्रसुप्तावस्था में पड़ी रहती है। अतः योगी मन्त्र रूपी हथौड़े से कुण्डलिनी पर प्रहार करके उसे जगाता है। तत्पश्चात् योगी अपने सतत साधना अभ्यास तथा दीर्घ प्रयत्नों से इस कुण्डलिनी शक्ति को परम रन्ध्र चक्र में पहुँचाता है। परम रन्ध्र चक्र मनुष्य के शरीर में अन्तिम चक्र है, जो मनुष्य के मस्तक में नाक से ठीक ऊपर स्थित है। जब कुण्डलिनी शक्ति परम रन्ध्र चक्र में पहुँच जाती है तब वही परमानन्द की स्थिति होती है और इस स्थिति में मनुष्य त्रिकालज्ञ तथा त्रिकालदर्शी बन जाता है। इसी स्थिति को आत्मा-नुभूति तथा निर्वाण भी कहा गया है। यही वह स्थिति है जब आत्मा और परमात्मा दोनों एकाकार हो जाते हैं। नारद पुराण योग के बारे में पर्याप्त प्रकाश डालता है।[1]

चक्र—हमारे शरीर में अनेक प्रकार की असंख्य नाड़ियों का जाल है। इनमें सुषुम्ना तथा इडा का प्रमुख स्थान है। सुषुम्ना तथा इडा जहाँ भी आपस में एक दूसरे को काटती हैं वहाँ एक चक्र बन जाता है। मनुष्य शरीर में

---

१. नारद पुराण। पूर्व भाग। अध्याय ६५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार के छः चक्र हैं। इन चक्रों का योग साधना में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(१) **मूलाधार चक्र**--मूलाधार चक्र का रंग लाल है। यह कुण्डलिनी के आराम करने का स्थान है। यहाँ पर ए तथा र के आकार में वायु तथा अग्नि के बीच कुण्डलिनी प्रसुप्तावस्था में रहती है।

शिवसंहिता स्पष्ट रूप से संकेत करती है कि मूलाधार चक्र के आधार पद्म का ध्यान मात्र करने से योगी के समस्त पाप समूहों का नाश हो जाता है—

मूल पद्मं यदा ध्यायेद् योगी स्वयम्भूलिंगकम्।
तदा तत्क्षणमात्रेण पापौघं नाशयेद् ध्रुवम्॥[1]

(२) **स्वाधिष्ठान**--मनुष्य के शरीर के दूसरे चक्र का नाम अधिष्ठान अथवा स्वाधिष्ठान है। स्वाधिष्ठान कमल के आकार का बना हुआ है। यह माना जाता है कि स्वाधिष्ठान नामक चक्र पर ध्यान केन्द्रित करने से साधक सुन्दरता पाता जाता है और शीघ्र ही दिव्य सौन्दर्य से सम्पन्न हो जाता है।

(३) **मणिपूर चक्र**—तीसरे चक्र का नाम मणिपूर चक्र है। साधना में संलग्न योगी इस चक्र का भी विशेष ध्यान करते हैं। ऐसा माना जाता है कि मणिपूर चक्र का ध्यान धरने से योगी की समग्र इच्छाओं तथा कामनाओं की परिपूर्ति होती है। इसलिए इच्छापूर्ति के हेतु साधक इसी चक्र का ध्यान करता है।

(४) **अनाहत चक्र**—मानव शरीर के चौथे चक्र का नाम है अनाहत चक्र। अनाहत चक्र का आकार कमल का है। ऐसी धारणा है कि अनाहत चक्र पर ध्यान धरने से योगी रोग तथा शोक पर सहज ही विजय प्राप्त कर लेता है। कुछ लोगों का विचार है कि अनाहत चक्र के ध्यान मात्र से मनुष्य त्रिकालज्ञ बन जाता है।

(५) **विशुद्ध चक्र**—मनुष्य शरीर के पाँचवें चक्र का नाम विशुद्ध चक्र है। ऐसी मान्यता है कि विशुद्ध चक्र पर ध्यान लगानेवाला योगी चारों वेदों के ज्ञान का ज्ञाता बन जाता है। इस प्रकार के योगी का क्रोध भी बड़ा भयंकर होता है। विशुद्ध चक्र का ध्यान करनेवाला योगी जब कभी क्रुद्ध होता है तब उसके क्रोध से समूची सृष्टि कम्पायमान हो जाती है।

१. शिवसंहिता ५।१६।

(६) **आज्ञा चक्र**—शरीर का छठा चक्र आज्ञा चक्र है। यह अन्तिम तथा बहुत ही महत्त्वपूर्ण चक्र है। इसे ब्रह्मरन्ध्र के नाम से भी जाना जाता है। इसका स्थान मनुष्य के मस्तक में उसकी नाक से ठीक ऊपर होता है। आज्ञा चक्र पर ध्यान केन्द्रित करने से साधक साक्षात् परम ब्रह्म विश्वनाथ के दर्शन प्राप्त करता है और वह आधि-व्याधि तथा हर प्रकार के दुःख-शोक से ऊपर उठ जाता है। इस स्थिति में पहुँचने पर योगी के ऊपर सांसारिक मायाजाल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। शिवसंहिता इस सम्बन्ध में स्पष्ट कहती है— पुमान् परमहंसो यं यज्ज्ञात्वा नावसीदति॥[1]

शिव संहिता का कथन है कि इन ऊपर वर्णित छः चक्रों का ध्यान करते-करते योगी ब्रह्मरन्ध्र चक्र में स्थित सहस्र पद्म से प्रवाहित अमृत का पान करता है। कुण्डलिनी शक्ति यानी जीव शक्ति इस कैलास में पहुँच कर परम शिव का साक्षात्कार करती है। इस साक्षात्कार के होने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है और वह अमर पद में प्रतिष्ठित हो जाता है—

अत ऊर्ध्वं दिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम्।
ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदम्॥
कैलासो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति।[2]

नारद पुराण मूलाधार चक्र का बहुत सुन्दर वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहता है कि मूलाधार चक्र में चार दलों का कमल है। इस कमल का रंग बन्धूक पुष्प के समान लाल है। इस कमल के चारों दलों में व, श, ष, स—ये चार अक्षर अंकित हैं। इस कमल पर मूषक-वाहन गणपति विनायक अपनी शक्ति सहित विराजमान हैं। यह पुराण गणपति के हाथों में स्थित प्रतीकों के बारे में संकेत करते हुए कहता है कि इन मूषक-वाहन गणपति के हाथों में क्रमशः पाश, अंकुश, सुधा पात्र तथा मोदक हैं तथा वे प्रसन्न मुद्रा में दिखायी देते हैं—

मूलधारे वादि सान्त बीज युक्ते चतुर्दले।
बन्धूकाभै स्वशक्त्या तु सहितायुधाय च॥
पाशोंकुशसुधापात्र मोदकोल्लासपाणये॥[3]

१. शिवसंहिता, ५।१३। २. वही, ५।१९६-१९७।
३. नारद पुराण, पूर्व: तृतीय ६५।८१-८२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग साधना के पथ पर अग्रसर होने वाले योगी को सर्वप्रथम योग साधना के आधार मूलाधार चक में स्थित गणपति विनायक का ध्यान करना परमावश्यक है। मूलाधार के स्वामी गणपति की कृपा से ही साधक परमानन्द की स्थिति प्राप्त करता है। गणपति विनायक पुराण पुरुषोत्तम तथा परमब्रह्म हैं। गणेश पुराण इस दिशा में स्पष्ट संकेत करता है—

पूर्णानन्दः परानन्दः पुराण पुरुषोत्तमः।[1]

गणेश पुराण में गणेश का तात्त्विक विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि वे माया से ऊपर हैं तथा अव्यक्त शक्ति हैं। इन गणपति के ध्यानमात्र से समस्त माया के प्रपंचों तथा सांसारिक भ्रान्तियों का अन्त हो जाता है।[2]

गणेश को परम ब्रह्म माना गया है। गणपति को योग प्रतिपाद्य परम तत्त्व भी कहा गया है जिनका वेद भी पार नहीं पा सकते। पुराणों ने उनके ब्रह्मस्वरूप, चिदानन्द स्वरूप तथा निर्गुण रूप का वर्णन किया है—

परमब्रह्मस्वरूपाय निर्गुणाय नमो नमः।
चिदानन्दस्वरूपाय वेदानामप्यगोचरः॥[3]

यौगिक साधना की दृष्टि से गणपति की महत्ता का वर्णन करते हुए गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद् ने उन्हें मूलाधार चक्र का देवता बताया है। यह उपनिषद् गणपति विनायक को क्रिया, ज्ञान तथा इच्छा तीनों प्रकार की शक्तियों में व्याप्त मानता है—

त्वं मूलाधार स्थितोसि नित्यम्।
त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो
ध्यायन्ति नित्यम्।[4]

यही उपनिषद् अन्यत्र कहता है कि जो योगी गणपति का ध्यान-पूजन करते हैं वे सर्वश्रेष्ठ हैं—

आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्।
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥[5]

साधना-जगत् में गणपति की महानता के बारे में ब्रह्मा ने भी प्रकाश डाला है। वे कहते हैं कि जहाँ तक योग साधना का सम्बन्ध है वहाँ गणपति ही सर्वस्व हैं। वे सत्-असत् तथा व्यक्त-अव्यक्त स्वतः ही हैं—

सदसद् व्यक्तमव्यक्तं सर्वहि गणनायकः।[1]

दसवीं शताब्दी में लिखित शंकर दिग्विजय का सुप्रसिद्ध टीकाकार गणपति सूरि भी गणपति का सम्बन्ध मूलाधार चक्र से स्थापित करता है। वह कहता है कि मूलाधार चक्र में स्थित गणपति का ध्यान योगी अवश्य करता है। इस चक्र की बनावट चार दलोंवाले कमल जैसी है तथा इसका रंग स्वर्णिम है।

किं च हेमनिभे चक्रे मूलाधारे चतुर्दले।
गणेशोस्ति.....॥[2]

सन्त गरीबदास भी अपनी रचना में इसी प्रकार के विचार प्रकट करते हुए कहते हैं—

मूल चक्रे गनेस बासा रक्त बरन जहँ जानिये।[3]

संत कीनाराम प्रसिद्ध अघोरी संत थे। उन्होंने भी गणपति को मूलाधार चक्र का देवता माना है और उनके यौगिक स्वरूप का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। उन्होंने यह विश्वास भी दिलाया है कि गणपति का दर्शन-मात्र करने से ध्यानी परम ज्ञानी तथा प्रकाण्ड पण्डित बन जाता है—

मूलचक्र वश गूद मझारा।
चारि पत्र जनु अगिनि अँगारा॥
ताहि कमल महँ योनि तृकोना।
ता महँ पुरुष बसै गहि मौना॥
'रा' अक्षर का दीपक जोती।
तेहि महँ पुरुष कान्ति उद्योती॥
नाम गणेश अरुण तन सोई।
ताहि लखत बड़ पण्डित होई॥
मानसिक पूजा तहँवा कीजे।
लडुआ धूप गणेश ही जैदी॥[4]

---

१. गणेशपुराण : २।१५।१०३। २. वही। उत्तर-खण्ड ३१।१४-१५। ३. वही। २।३७।४। ४. गणपत्यर्थ-वशीषोपनिषद् ६। ५. गणपत्युपनिषद्। (?)

१. गणेशपुराण।१।१२।९। २. धनपतिसूरि : शंकर दिग्विजय टीका : १५।३५०। ३. सन्त गरीबदास : एक उक्ति। ४. कीनाराम : पोथी विवेकसार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य शंकर भी गणपति के अचिन्त्य योगी स्वरूप का चिन्तन करते हैं। कहते हैं कि गणपति की दन्तकान्ति अति रमणीय है तथा वे योगियों के मन में वास करते है। वे कहते हैं—

नितान्तकान्त दन्तकान्तिमन्तकान्तकात्मजं
अचिन्तरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्तनम्।
हृदन्तरे निरन्तरं वसन्तमेव योगिनां।
तमेकदन्तमेव तं विचिन्तयामि संततम्॥[1]

गणपति विनायक बहुत प्राचीन काल से ही महान् से महान् योगियों द्वारा अपार श्रद्धा के साथ पूजे जाते रहे हैं। गणेश पुराण का उपासना खण्ड सूचित करता है कि योगेश्वर विष्णु ने जो स्वयं सिद्धि प्रदान करने की क्षमता रखते हैं किसी समय सिद्धिक्षेत्र पर दीर्घावधि तक गणपति विनायक का घोर तप किया। यह पुराण इस बात का भी संकेत करता है कि विष्णु ने गणपति विनायक को प्रसन्न करने के लिए अपनी तपस्या में परम षडाक्षर मन्त्र का उच्चारण किया था—

प्राणानायम्य मूलेन ध्यात्वा देवं गजाननम्।
आवाहनादि मुद्राभिः पूजयित्वा मनोमयैः॥
द्रव्यैर्नाना विधैश्चैव षोडशैचोपचारकैः।
जजाप परमं मन्त्रं विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः॥[2]

गणपति विनायक ज्योतिस्वरूप परम ब्रह्म हैं। जहाँ उन्हें विकारों का आदि कारण माना गया है वहाँ वे कला को उत्पन्न करनेवाले भी हैं। गणेशपुराण का कवि उन्हें प्रणाम करते हुए कहता है—

प्रकाशस्वरूपं नमो वायुरूपं
विकारादिहेतुं कलाकालभूतम्।
अनेक क्रियानेकशक्तिस्वरूपं।
सदा शक्ति रूपं गणेशं नमामः॥[3]

गणपति विनायक शिव-पार्वती के पुत्र ही नहीं, बल्कि परमब्रह्म हैं। वे समय-समय पर अवतार धारण करते रहते हैं। वे साधकों तथा योगियों के हमेशा ही परम पूज्य रहे हैं। यहाँ तक कि योगियों के योगी महादेव भी उनका पूजन-वन्दन करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि विवाह से पूर्व योगेश्वर शिव तथा जगत्जननी पार्वती ने हिमाचल के भवन के विवाह-मण्डप में गणपति विनायक का पूजन वन्दन किया था—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जिय जानि॥[1]

दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के बीच लिखी गयी गणपति के उपासकों की सुप्रसिद्ध पुस्तक गणेश गीता, योग की गरिमा के बारे में स्पष्ट संकेत करती है—

ध्यायन्तः परमं ब्रह्म चित्तं योगवशीकृते।
भूतानि स्वात्मना तुल्यं सर्वाणि गणयन्ति ते॥[2]

इसी ग्रन्थ में आगे चलकर योगी को सुख प्राप्ति का आदेश करते हुए सभी प्रकार के कर्मों का त्याग करने को कहा गया है—

मनसा सकलं कर्म त्वक्त्वा योगी सुखं वसेत्।[3]

स्वयं योगियों के ईश्वर भगवान् शंकर पार्वती को समझाते हुए गणपति की महानता का बखान करते हैं। वे उनकी महिमा का वर्णन करते हुए उनको ईश्वर, भुवनेश्वर तथा परमब्रह्म भी मानते हैं। वे यह भी कहते हैं कि स्वयं परमात्मा ने गणपति के रूप में पार्वती का पुत्र बनना पसन्द किया है—

लीलाविग्रहवानेषः स्वप्रकाशो गुणातिगः।
शुद्ध सत्वमयः सर्वजीवेशो भुवनेश्वरः॥
परमात्मा गुणातीतः पुत्रतां ते समागतः॥[4]

सुप्रसिद्ध बालयोगेश्वर संत ज्ञानेश्वर ने गणपति को ओंकार का स्वरूप माना है। और। हम मानते हैं कि ओंकार ही इस विश्व का मूल है। ज्ञानेश्वर कहते हैं कि ओंकार स्वरूप गणपति की प्राप्ति सद्गुरु की कृपा से ही हो सकती है। वे गणपति के ओंकार स्वरूप का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

अकार चरणयुगल। उकार उदर विशाल।
मकार महामंडल। मस्तकाकारे॥
हे तिन्ही एक वटलें। ते थे शब्द ब्रह्म कवललें
ते मियाँ। गुरुकृपा न मिलें। आदि बीज।[5]

सभी साधकों, सभी योगियों, सभी जिज्ञासुओं तथा सभी भक्तों के लिए विश्वव्यापी एवं विघ्नविनाशक गणपति देव की साधना तथा पूजा का निर्देश करते हुए गणपति पुराण कहता है—

अनादि निधनो देवो जगद्व्यापी गजाननः।
अयमेव सदा पूज्यः सर्वविघ्नविनाशनः॥[6]

---

१. शंकराचार्य : श्रीगणेशपंचरत्नः ।५। २. गणेश पुराण : १।१८। ६-७। ३. वही। उपासनाखण्ड ।१३।११।

१. रामचरितमानस १।१००। २. गणेशगीता, १।१६ ३. वही, ४।१२। ४. गणेशपुराण, २।८२।५,८ ।५. संत ज्ञानेश्वर : ज्ञानेश्वरी : प्रथम अध्याय : १९-२०। ६. गणेश पुराण। २।१२५ (३०-३१)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला के काव्य में नारी के रूप-सौन्दर्य का प्रभाव

श्री डॉ० रामशंकर द्विवेदी, एम० ए०, डी० फिल०, एल-एल० बी०

सौन्दर्यानुभूति की गम्भीरता, सरलता, उदात्तता, ऊर्जस्विता, मोहकता और सरलता द्रष्टा की चिति पर पड़े उसके प्रभाव से ग्रथित रहती है। यह निराला पर पड़े सौन्दर्य के प्रभाव-विवेचन से देखा जा सकता है।

निराला की सौन्दर्य-चेतना अत्यन्त विकसित थी। जीवन और जगत् के विविधमुखी सौन्दर्य का उच्छलन उनके काव्य का विषय है। उनके सौन्दर्य-बोध में रूप की रेखाओं की भास्वरता कम, उसके प्रभाव की व्यंजना अधिक है। कहीं-कहीं तो दोनों इतनी घुल-मिल गयी हैं कि उनकी पार्थक्य रेखा ही समाप्त हो जाती है।

निराला के काव्य में रूप-सौन्दर्य का प्रभाव नारी और पुरुष दोनों पर समान रूप से पड़ता है। नारी पुरुष को देख विवश, उन्मत्त और पुलकित हो जाती है। अपार रूप सौन्दर्य से उसके नेत्र थक जाते हैं। वह अलसपग मग में ठगी-सी रह जाती है। उसकी व्याकुलता बढ़ जाती है। उस क्षण का वह पूर्ण उपभोग करना चाहती है। न कर पाने पर पछताती है—'सुमन भर न लिये, सखि वसन्त गया।' यहाँ रूप का प्रभाव ऐन्द्रिय धरातल से प्राणिक चेतना तक फैला हुआ है। यौवन के आने से देह विटप काँप कर खिल उठता है, चितवन लाज से युक्त हो जाती है और भाव-सुमन छा जाते हैं, हृदय का हरण करने वाला प्रणय समीर बह उठता है, मन कल्पना के गगन में विहार करने लगता है। भाव-लहरियों की छलछलाहट का अनुभव कर सखियाँ चुपचुप बातें करने लगती हैं—उनके तन-मन लहरा उठते हैं (परिमल, पृ० ४१)। निराला अन्यत्र भी यौवन को माया जैसा सम्मोहक, सौन्दर्य को नयनों का मनोहर स्वप्न कहते हैं। वैयक्तिक धरातल पर जब इस सौन्दर्य का पान किया जाता है तब द्रष्टा-दृश्य की पार्थक्य रेखा समाप्त हो जाती है—'मिल गये एक प्रणय में प्राण, रुक गया तब प्रिय मेरा गान।'

रूप को देखना, आँखों का निर्निमेष हो जाना, उसके प्रभाव का चेतना के गुह्य तलों में अनुभव करना, हृदय का पिघल जाना, शरीर का जड-स्तब्ध रह जाना—निराला के काव्य में नारी-रूप का प्रभाव इन्हीं सोपानों पर व्यक्त हुआ है। नारी-रूप का प्रभाव सदा विक्षोभकारी हो—ऐसा नहीं है। **परिमल** की 'बहू' शीर्षक कविता में उसके मर्यादित, शीतल, मधुर और मंगलकारी प्रभाव की व्यंजना की गयी है—'किन्तु नहीं चंचल प्रवाह उद्दाम वेग' (पृ० १४६)। वह सोने की जंजीर है, उसी से मन को बाँध लेती है। किन्तु वह मन में कभी अधीरता उत्पन्न नहीं करती। यहाँ वस्तु के प्रकार, उसके स्वभाव और गुणवत्ता के अनुसार उसका प्रभाव भी परिवर्तित हो गया है।

निराला की नारी के सौन्दर्य का द्रष्टा कोई पुरुष नहीं स्वयं नारी है। एक-दो स्थलों को छोड़कर, यदि कवि को उसका द्रष्टा माना जाय तो वह सौन्दर्य के प्रभाव का विश्लेषण स्वयं नारी के मन को केन्द्र में रखकर करता है जब कि रवीन्द्र की नारी के रूप-सौन्दर्य का द्रष्टा पुरुष है या कवि स्वयं। फिर, कवि उसके सौन्दर्य के विविध मुखी प्रभाव को स्वयं विश्लेषित करता है अपनी चेतना के समस्त गुह्य द्वारों को खोलकर। निराला में ऐसा नहीं है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि निराला ने नारी के रूप-सौन्दर्य की प्रभाव-गरिमा को विस्मृत किया हो, यद्यपि नारी के रूप-सौन्दर्य का प्रभाव उनके यहाँ विशुद्ध प्राण चेतना तक सीमित है, रूप से अरूप की ओर जाने की गति उनके यहाँ बहुत कम है।

शेफालिका में यौवन-उभार का प्रभाव यह पड़ा कि उसकी कंचुकी के सब बन्द खुल गये हैं। उसके तृषित कपोलों में चुम्बन का मूक आह्वान समाया हुआ है। प्रिय आकाश उसके सहारे दुःख-शोक-जर्जर संसार पारकर, प्रणय के सप्तम सोपान पर आरोहित हो उसी अमर विराम में लीन हो जाना चाहता है। इस तरह निराला में नारी का रूप काम की लालसा जाग्रत कर उसकी तृप्ति की ओर ले जाता है। यह सौन्दर्य के प्रभाव का एक प्रकार हुआ। दूसरा, 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति-पूजा' में मिलता है जहाँ उसकी दिशा उदात्तता की ओर है।

परिमल की 'स्मृति-चुम्बन' कविता में कवि ने यत्र-तत्र रूप के प्रभाव का विश्लेषण किया है। रूप का आकर्षण, स्वर्णिम प्रभा से युक्त रूप के आकाश में नेत्रों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़ जाना, रूप-पान में विभोर हो सुप्ति-मोह में डूब जाना, रूप का नेत्रों के द्वार से हृदय पर छा जाना, फिर उसे बार-बार देखने, उसका बार-बार आस्वादन करने की लालसा से भर जाना, आदि सौन्दर्य के प्रभाव को ही द्योतित करते हैं। निराला सौन्दर्य को दूर से कम, बिलकुल पास से, सटकर अधिक देखते हैं। इसलिए इनके काव्य में रूप का प्रभाव आलिंगन, चुम्बन, मधु-पान और तन्मय होने में होता है। रवीन्द्र की तरह दूर खड़े होकर मानसी प्रतिमा का आनन्द लेने में उन्हें कोई रुचि नहीं।

'पंचवटी प्रसंग'-३ और-५ में सौन्दर्य के अग-जग-व्यापी प्रभाव के साथ-साथ उसे द्रष्टा की मनस्थिति के परिवेश में निरूपित किया गया है। शूर्पनखा स्वयं अपने सौन्दर्य के प्रति सजग है। प्रकृति की सारी सौन्दर्य-राशि उसके सौन्दर्य को देख सिर झुका लेती है। उसके नेत्रों का प्रभाव आनन्द-रस उत्पन्न करने में होता है। उसके प्यारे मुख-मण्डल से कान्ति और सुषमा का पराग चारों और बिखरता रहता है, ऋषि-मुनियों का धैर्य छूट जाता है, भौंरे पास खिंचे चले आते हैं। अपने इसी सौन्दर्य से वह राम को लुभाना चाहती है, क्योंकि राम के श्यामल कान्त वपु को देख उसका मन डोल गया है। किन्तु, राम का मन सहज, स्वस्थ और विकारों से रहित रहता है। इस पर शूर्पनखा को राम का वही विश्व-मन-भावन सौन्दर्य हलाहल विष लगने लगता है। जिसे उसने गुलाब समझा था, वह निर्गन्ध कुसुम निकला। इस तरह प्रयोजन बदल जाने पर दृष्टि बदल जाती है और दृष्टि में परिवर्त्तन आते ही सौन्दर्य का बोध बदल जाता है। सौन्दर्य-बोध की प्रक्रिया और सौन्दर्य की धारणा के शास्त्रीय विवेचन से यह सहज ही अनुमेय है कि सौन्दर्य के सम्यक् अवबोध के लिए एक विशेष प्रकार का रुख (एटीच्यूड) चाहिए, प्रयोजन-रहित दृष्टि चाहिए। तभी हम वस्तु में निहित सौन्दर्य का वीक्षण कर सकते हैं। शूर्पनखा की दृष्टि काम से आविल थी इसलिए वह राम के सौन्दर्य का ठीक-ठीक आस्वादन नहीं कर सकी।

'राम की शक्ति-पूजा' में राम का असमर्थ, निराश और संशयग्रस्त मन सीता के दिव्य सौन्दर्य के ध्यान से विजिगीषु वृत्ति से भर जाता है। नारी-सौन्दर्य का ऐसा प्रभाव सौन्दर्य के प्रति उनकी उदात्त दृष्टि का परिचायक है। 'है अमा निशा उगलता गगन घन अन्धकार' जैसे परिवेश में सीता की छवि विद्युत् के समान कौंध जाती है, नेत्र निर्निमेष हो जाते हैं, विदेह के उपवन का दृश्य याद आता है, राम के हृदय में प्रेम की सरिता उमड़ पड़ती है। प्रभाव से राम-सीता ही नहीं सम्पूर्ण प्रकृति अभिभूत हो जाती है, राम का मन तुरीय कम्पन से भर जाता है :—

काँपते हुए किसलय, झरते पराग-समुदय
गाते खग-नव-जीवन-परिचय,-तरु मलय-वलय
ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय, ज्ञात छवि प्रथम स्वीय
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।

(अनामिका, पृ० १५५)

राम का सम्पूर्ण शरीर सिहर उठा। क्षर भर के लिए वे अपने को भूल गये। उन्हें धनुर्भंग के क्षण याद आये और उनका मन अपूर्व शक्ति से भर उठा। भुजदण्ड फड़क कर धनुर्भंग के लिए उठ गये। नारी का सौन्दर्य पुरुष के पौरुष को जगाकर उसे ऊर्जा से भर सकता है—यह प्रभाव निरूपण का नवीन आयाम है। क्योंकि अब तक नारी के रूप-सौन्दर्य का प्रभाव पुरुष के पौरुष को विगलित करने में होता रहा है। यहाँ निराला की सौन्दर्य-दृष्टि के साथ उनका शक्ति-दर्शन लोक-मंगल से जुड़ कर सौन्दर्य के प्रभाव की नवीन दिशा खोलता है। नारी के रूप-सौन्दर्य के ऐसे ही प्रभाव का निरूपण कवि ने 'तुलसीदास' में किया है, जहाँ रत्नावली योगिनी शारदा के रूप में उदित होती है। सीता का सौन्दर्य राम में शक्ति-संचार करता है तो रत्नावली का सौन्दर्य तुलसी में पहले काम, बाद में वैराग्य और निर्वेद।

रत्नावली के अनुपम सौदर्य-चन्द्र से तुलसी का मानस-चकोर पुलकित हो एकटक उसी ओर देखने लगा— उसे सम्पूर्ण कामनाओं की वही सीमा प्रतिभात होने लगी :—

पुलकित प्रतिपल मानस चकोर
देखना मूलदिक् उसी ओर
कुल इच्छाओं का वही छोर जीवन भर।

(तुलसीदास, पृ० ३४)

उसके नेत्र मीन केतन लगते हैं, जो पुरुष देह को विजित कर फहरा रहे हैं। उनसे प्रीति की प्रखर ज्योति पाकर अनेक भाव रूपी वर्णों से तुलसी का मन दीप्त हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक-से जंगल

श्री अमरनाथ 'मोहन'

हर तरफ उगते हुए ये
एक-से जंगल
हँसी के सूखे हुए झरने
दर्प के आहत हुए अरने
पाँव गहरे धँस गये
आकंठ है दलदल
हर तरफ उगते हुए ये
एक-से जंगल।
गुजरते हैं पास से साये
नाम अपना बिना बतलाये
धमनियों में हो रही
पेंबस्त हलचल
हर तरफ उगते हुए ये
एक-से जंगल।
ताड़-से लम्बे हुए संदेह
दूब की कुचली हुई है देह
हर तरफ आवाज देता
क्षुब्ध-कोलाहल
हर तरफ उगते हुए ये
एक-से जंगल।

उठा। (वही पृ० ३८)। दूसरी ओर, बिखरी छूटी शफरी अलकों वाली योगिनी का रूप देखकर, उसके धिक्कृति-पूर्ण वचन सुनकर तुलसी के मन का काम (शृंगार भाव) जल गया, जडता छूट गयी, ज्ञान का प्रबल संस्कार जाग उठा (वही पृ० ५४)। रत्नावली सरस्वती रूप में प्रतिभात होने लगी। कवि उसकी ज्ञान-ज्योति से बँधकर ऊर्ध्व देश में उठने लगा—चेतना का उदात्तीकरण हो गया। उसका मन आनन्द से भर उठा—'आनन्द रहा, मिट गये द्वन्द्व बंधन सब' (वही पृ० ५५)। चारों ओर लहरें कण-कण ध्वनि कर उठीं, भावाकुल होकर शब्द जग उठे, कानन मण्डल गूँजने लगा (वही पृ० ५७)।

निराला में प्रभाव की दृष्टि से नारी के रूप-सौन्दर्य के यही आयाम मिलते हैं—कहीं आँखें फँसकर रह जाती हैं, पैर काँप उठते हैं (अर्चना, पृ० ५३)। दूसरी ओर जब से उसकी छबि में नयन नहा आये हैं संसार के सब रूप बह गये हैं (वही पृ० ३१)। 'गीतिका' के 'कहाँ उन नयनों की मुसकान' से नवीन परिचय का आयाम खुल गया है। पल्लवित तनु की तन्वी ज्योति से जीवन के सब पात जगमगा उठे हैं, सहस्र सुखों की स्मृतियाँ जाग गयी हैं (गीतिका पृ० ३१)। इस तरह निराला के काव्य में नारी के रूप-सौन्दर्य का प्रभाव तन्मयकारी और उदात्त दिशा की ओर ले जाने वाला होता है।

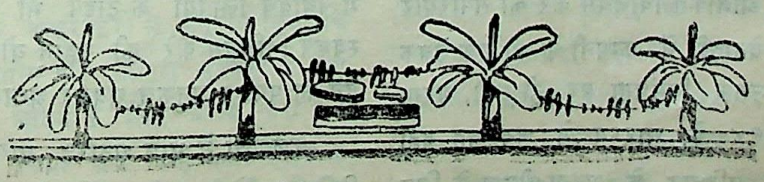

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशियाई भाषाओं को समर्पित विद्वान् विलियम कैरे

डॉ० शिवमंगल राय

नार्थम्पटन शायर के एक निर्धन चर्मकार कुल में सन् १७६१ में उत्पन्न, गाँव के ही स्कूल-स्तर तक शिक्षा प्राप्त तथा चौदह वर्ष की ही अल्पवय में अति अल्प वेतन पर जूते की दुकान में नौकरी करने को विवश होकर भी विलियम कैरे अपनी महती आकांक्षाओं के कारण शीघ्र ही थामस स्काट, राबर्ट हाल, डॉ० राइलैण्ड, स्युक्लिफ, और एण्ड्रयूज फुल्लर जैसे महान् धार्मिक (प्रोटैस्टेण्ट) नेताओं के सम्पर्क में आ गया। अपनी प्रतिभा और लगन के कारण स्वाध्याय के बल पर सन् १७९१ आते-आते उसने स्वयं को इस स्थिति में उपस्थित कर दिया कि सबको ही उसके ३० मई, १७९२ के भाषण से प्रभावित होकर बैप्टिष्ट मिशनरी सोसाइटी की स्थापना का निर्णय करना पड़ा। २ अक्टूबर, १७९२ को श्रीमती वालिस के निवास-स्थल पर हुई बैठक में उस निर्णय को औपचारिक रूप देते हुए उसके कार्य सम्पादन के लिए एण्ड्रयूज फुल्लर, डॉ० राइलैण्ड, जान स्युक्लिफ, रैनाल्ड हाल और विलियम कैरे की समिति का भी गठन करना पड़ा। साथ ही बंगाल से कुछ दिन पूर्व लौटे मि० थामस के सुझाव पर विलियम कैरे और थामस दोनों को ही प्रथम बैप्टिष्ट मिशन की स्थापना के उद्देश्य से कलकत्ता भेजने का निर्णय लेना पड़ा।

डेन्मार्क के जल-पोत 'क्रोन प्रिंसेसा मेरिया' से मि० थामस और अपनी पत्नी तथा बच्चों के साथ-साथ ११ नवम्बर, १७९३ को कलकत्ता पहुँचते ही विलियम कैरे को नये ढंग की कठिनाइयों का सामना करने को विवश होना पड़ा। थामस की फिजूल-खर्ची, बच्चों की बीमारी तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार से कभी भी भारत छोड़ इंग्लैण्ड लौट जाने के आदेश के जारी हो जाने की सम्भावना से निरन्तर आतंकित विलियम कैरे को सपरिवार सुन्दरवन अवस्थित देवार्ता में कम्पनी के ही एक सेवक मि० शार्ट के यहाँ, उसके निमंत्रण पर ही सही, शरण लेनी पड़ी। सन् १७९४ के आरम्भ में जब वह वहाँ झोपड़ी बनवाने और परिवार के भरण-पोषण के लिए खेती की व्यवस्था का उपाय कर रहा था तब माल्दा जिलान्तर्गत मदनावती से उसे नील की एक फैक्टरी के प्रबन्ध करने का आमंत्रण मिला। उसने तत्काल ही उसे स्वीकार भी कर लिया। आर्थिक संकट और दैवी आपदा से मुक्त होते ही वह अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने को कटिबद्ध हो गया।

ईसा मसीह के सन्देशों को लोगों तक पहुँचाने के लिए उसने बँगला के ज्ञान की आवश्यकता का तीव्र अनुभव किया और शीघ्र ही वह बँगला तथा संस्कृत के अध्ययन में संलग्न भी हो गया। थोड़े ही दिन बाद उसने 'बाइबिल' का बंगला में अनुवाद करना आरम्भ कर दिया। जोसुआ मार्शमैन और विलियम वार्ड ने श्रीरामपुर के डेनिश गवर्नर से वहाँ स्थायी रूप में बसने, स्कूल खोलने, प्रेस स्थापित करने तथा धर्मोपदेश देने की अनुमति सन् १७९९ में प्राप्त कर विलियम कैरे से सक्रिय सहयोग करने का अनुरोध किया। उसने मदनावती का त्याग कर श्रीरामपुर में ही आकर अपने कार्य का आरम्भ कर दिया। १६ जनवरी, १८०० ई० को श्रीरामपुर में ही प्रथम बैप्टिष्ट मिशन की स्थापना हुई और उसके ही तत्त्वावधान में विलियम कैरे के चार सौ रुपये में कलकत्ता से खरीदे हुए प्रेस को भी स्थापित कर दिया गया। सन् १८०१ में कैरे का बँगला अनुवाद छपा और उसी वर्ष उसे कलकत्ता के सन् १८०० में स्थापित फोर्टविलियम कालेज में बँगला विभाग (बाद में संस्कृत और महाराष्ट्री विभाग के भी) के प्राध्यापक अध्यक्ष का पद भी उपलब्ध हो गया। इससे विलियम कैरे को भारत की विविध भाषाओं के विद्वानों के निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिल गया। चार्ल्स विल्किंस और मनोहर के प्रयत्नों से श्रीरामपुर मिशन के तत्त्वावधान में विविध लिपियों के टाइप भी ढलने लगे। परिणामस्वरूप विलियम कैरे की महान् योजना को क्रियात्मक रूप देने का पर्याप्त अनुकूल अवसर अनायास मिल गया।

कलकत्ता में मात्र अठारह मास के ही प्रवास काल में विलियम कैरे ने अपने चतुर्दिक के हिन्दुओं और मुसलमानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को, पूर्व की घृणा के बदले, एक टेबुल पर अपने साथ बैठकर खाते देखकर अत्यन्त उत्साह और उनमें उनकी ही भाषा के माध्यम से ईसा मसीह के सन्देशों को यथा-शीघ्र प्रसारित करने की आवश्यकता का तीव्र अनुभव किया। सन् १८०६ आते-आते वह अपने साथियों के सहयोग से संस्कृत, हिन्दुस्तानी, फारसी, मराठी, गुजराती, उड़िया, कर्नाटी, तेलिंगा, बर्मी, असमिया, भूटानी, तिब्बती, चीनी और मलय भाषाओं में बाइबिल और धार्मिक गुटकों के अनुवाद कार्य में संलग्न हो गया। उसकी दृष्टि में श्रीरामपुर केवल अनुवाद कार्य के ही लिए नहीं, एशियाई भाषाओं के शिक्षण केन्द्र के लिए भी सर्वथा उपयुक्त था, क्योंकि कलकत्ता के समीप होने के कारण वहाँ विविध भाषाओं के देशी विद्वान् सहज में उपलब्ध थे। यह ऐसे स्थान पर स्थित था जिसके दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में उड़ीसा, कर्नाटक और महाराष्ट्र, उत्तर-पश्चिम और उत्तर में हिन्दुस्तान (उन दिनों बिहार और उत्तर प्रदेश को ही असली हिन्दुस्तान कहा जाता था), नेपाल, भूटान और तिब्बत, तथा उत्तर-पूर्व और पूर्व में असम, ब्रह्मा, चीन और मलाया अवस्थित थे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार श्रीरामपुर के धर्म-प्रचारकों की गति-विधियों को कठोर दृष्टि से देखती थी। सन् १८०६ में मिशन की ओर से प्रकाशित एक पैम्फलेट में छापे की भूल के कारण कम्पनी की सरकार का आक्रोश भड़क उठा। उस आक्रोश का भड़कना स्वाभाविक भी था क्योंकि उस समय तक कम्पनी की सरकार की स्थिति बहुत नाजुक थी। पैम्फलेट की जरा सी भी भूल हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्म पर आघात कर उन्हें कम्पनी सरकार के भी विरुद्ध भड़काने का कारण बन सकती थी। इसीलिए, सरकार ने मिशन के धर्म-प्रचारकों को भाँति-भाँति की यातना देना आरम्भ कर दिया। डेनिश सरकार द्वारा मिशन को मिलने वाली सुरक्षा के कारण जब कम्पनी सरकार स्वयं श्रीरामपुर मिशन का उन्मूलन न कर सकी, तब उसने अपनी कोर्ट के डाइरेक्टरों से अनुरोध किया कि वे अपनी शक्ति का उपयोग कर ब्रिटिश सरकार से इन धर्म-प्रचारकों को भारत छोड़ने के लिए बाध्य करा दें। डाइरेक्टरों ने ऐसा ही किया और उन्हें अपने प्रयास में सफलता की आशा भी हुई, किन्तु विस्काउण्ट मिलेविले, लार्ड ग्रांट, मार्क्विस वेलेजली, लार्ड टैनमथ, राबर्ट हार्ले, एण्ड्रयू फुल्लर और सिडनी स्मिथ ने इन धर्म-प्रचारकों का प्रभावशाली समर्थन कर कम्पनी की कोर्ट के डाइरेक्टरों को विफल मनोरथ कर दिया। सऊदी के अनुसार तो अकेले विलियम कैरे और उसके बेटे ने मात्र चौदह वर्षों में धर्म-प्रचार का कार्य मूर्ति-पूजकों (हिन्दुओं) में इतना अधिक कर दिया जितना संसार भर के शाहजादों, शाहंशाहों, विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थाओं ने प्रयास तक नहीं किया। ऐसे विषम संघर्ष के काल में भी विलियम कैरे विश्वकोश के संकलन तथा अपने साथियों और देशी विद्वानों के साथ बाइबिल तथा धार्मिक गुटकों के अनुवाद कार्य में निरन्तर संलग्न रहा। अभी कम्पनी सरकार के साथ सन् १८०६ से ही चलते रहनेवाले संघर्ष का पूर्ण अन्त भी नहीं हुआ था कि सन् १८१२ में मिशन के प्रेस में भयंकर अग्नि-काण्ड हो गया और उसमें लाखों की सम्पदा के साथ विलियम कैरे के 'विश्व-कोश' का बहुत बड़ा भाग भी जल कर भस्म हो गया। अवशेष ३१२ पृष्ठों की पाण्डुलिपि में १३ भाषाओं के २१८४१ शब्द हैं। यदि वह विश्व-कोश अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध होता तो विलियम कैरे एशियाई भाषाओं के प्रथम और महानतम सर्वेक्षक के रूप में सम्मानित होता। इस अग्नि-काण्ड से कैरे को मर्मान्तिक पीड़ा हुई, फिर भी उसने मिशन के कार्यों में किंचित् शिथिलता नहीं आने दी। जब लार्ड वेलेजली ने सन् १८१३ की जून में ब्रिटिश संसद में श्रीरामपुर के ईसाई (बैप्टिष्ट) धर्म प्रचारकों की शान्ति-प्रियता, सदाचरण शीलता और विद्वत्ता की प्रभावशाली ढंग से प्रशंसा की तब कम्पनी के डाइरेक्टरों और उसकी सरकार को भी निराश होकर मिशन विरोधी अपने दृष्टि-कोण में परिवर्तन करना पड़ा। उसके बाद तो श्रीरामपुर मिशन का कार्य और भी तीव्र गति में सम्पादित होने लगा। उस समय तक मिशन की सन् १८०९ में स्थापित अपनी 'मिल' में कागज भी प्रचुरता से बनने लगा था।

सन् १८१५ आते-आते कटवा (१८०४), रंगून (१८०७), दीघा (पटना के समीप, १८०९), बालासोर (१८१०), आगरा (१८११ और पुनः १८१४), पटना (१८१२), बम्बई (१८१२), चटगाँव (१८१२), पण्डुवा (बंगाल, १८१३) और इलाहाबाद (१८१४) में मिशन के केन्द्र स्थापित हो गये और उनसे सम्बद्ध स्कूल भी खोले गये। श्रीरामपुर मिशन प्रेस ने उन स्कूलों के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंचलिक भाषाओं में पाठ्य-पुस्तकें छपायी गयीं और शिक्षा तथा आंचलिक भाषाओं में ही धर्मोपदेश के भी माध्यम से देशी लोगों में धर्म-प्रचार का कार्य किया गया। इन सब कार्यों के साथ बाइबिल तथा धार्मिक गुटकों के अनुवाद और प्रकाशन का क्रम भी गतिमान बना रहा। इसीकी प्रतिक्रिया में सन् १८२६ आते-आते संस्कृत (दो जिल्द), बंगला, महाराष्ट्री, हिन्दी (पाँच जिल्द), उज्जयिनी, मागधी, भूटानी, उड़िया, असमिया, बलूची, मुल्तानी, कश्मीरी, बीकानेरी, गुजराती, कोशली, तेलंगा, बुन्देलखण्डी, हड़ौती, कन्नौजी, कोंकणी, मारवाड़ी, नेपाली, कर्नाटी, डोंगरी, खासी, अवधी, भटनेरी, ब्रज-भाषा, गढ़वाली, जयपुरी, कमायुनी, मलय, मालदेवियन, मनीपुरी, पल्पा, फारसी, पश्तो, पंजाबी, मेवाड़ी, सिन्धी, चीनी, सिंहली और जापानी भाषाओं में बाइबिलें तथा अन्यान्य धार्मिक गुटकों के अनुवाद भी प्रकाशित हुए। इन सम्पूर्ण अनुवाद कार्यों का बहुत अधिक श्रेय बहु-भाषा ज्ञानी विलियम कैरे को ही था, क्योंकि योजना बनाने से लेकर अनूदित ग्रन्थों के प्रकाशन और वितरण तक का लगभग सम्पूर्ण कार्य उसीकी देख-रेख में होता था। इन कार्यों के अतिरिक्त अकेले विलियम कैरे ने बंगला सम्भाषण, बँगला व्याकरण, महाराष्ट्री व्याकरण, संस्कृत व्याकरण, पंजाबी व्याकरण, कर्नाटी व्याकरण, (पाँच जिल्दों में) संस्कृत शब्द-कोश तथा (तीन जिल्दों में) बँगला शब्द-कोश की भी रचना की। जोसुआ मार्शमैन के सहयोग से उसने संस्कृत की वाल्मीकि रामायण का 'द रामायन आफ वाल्मीकि' के नाम से (तीन जिल्दों में) अंग्रेजी में अनुवाद भी किया।

विलियम कैरे द्वारा अथवा उसकी देख-रेख में उसके जीवन के अवसान काल (सन् १८३४) तक हिन्दी में भी जो अनूदित बाइबिल, धार्मिक गुटके, ऐतिहासिक तथा भविष्य-कथन सम्बन्धी ग्रन्थ छपे, उनकी भी भाषा का स्वरूप न एक था और न एक हो सकना सम्भव ही था, क्योंकि उस समय तक 'हिन्दुस्तानी' अथवा 'हिन्दी' नाम से लोकप्रिय हिन्दुस्तान की सम्पर्क भाषा का स्वरूप ही भ्रम का शिकार बन रहा था। किन्तु इस तथ्य पर विचार के पूर्व विषय को हृदयंगम बनाने के उद्देश्य से कम से कम दो सम्बद्ध उद्धरण प्रस्तुत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है :—

'तुम्हारे एक दिन या दोय दिन वा पाँच दिन या दस दिन वा बीस सिरिफ। खावगे नहीं मगर तमाम महीने तलक ही तुम्हों के नाक से वह निकलने तक वा वह तुम्हों को नाचीज होने तक भी खावगो क्योंकि तुम्हों के बीच रहनहारे यिहुह को तुम्होंने नाचीज कर जाना है वा उसके साम्ने तुम रोये हो वा यिह कहा है क्यों हम मिसर से निकलें।'

(विलियम कैरे, न्यू-टेस्टामेण्ट, सन् १८११, पृष्ठ ३४३)

× × ×

'और किसी स्थान में उनके प्रार्थना करते में यह भया जो उनके निबड़ते में ही उनके शिष्यों के किसी ने उनके पास कहा है प्रभु योहन ने अपने शिष्यों को शिखलाया अप् हमें प्रार्थना करणें शिखलाओ। तब उन्ने उन्हें कहा जब तुम प्रार्थना करो तब कहो हे हमारे पिता जे स्वरगों में हो अप्का नाम, पवित्तर किआ जावे अप्का राज आवे अप् का इच्छा स्वर्ग में जैसी तैसी ही धरती पर किई भई होवे।'

(चेम्बरलेन, न्यू-टेस्टामेण्ट, सन् १८२३, पृष्ठ १८०)

ऊपर के दोनों अवतरणों की भाषा में समय की दृष्टि से केवल बारह वर्ष का अन्तर होकर भी स्वरूप की दृष्टि से बहुत अधिक अन्तर है। विलियम कैरे को खड़ीबोली हिन्दी भाषा में अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग है जब कि चेम्बरलेन की उसी खड़ीबोली हिन्दी में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग लगभग नहीं के बराबर है। उस समय तक व्याकरण के व्यवस्थित नियम नहीं बन पाये थे। अतएव उनकी भाषा में वाक्य-रचना और विराम-चिह्नों की भूलों पर विचार न करना ही उचित है। विलियम कैरे की भाषा उर्दू की ओर उन्मुख है तो चेम्बरलेन की भाषा आधुनिक हिन्दी की ओर। इस भेद का मूल कारण यह है कि सन् १८१०-११ तक 'हिन्दुस्तानी' अथवा 'हिन्दोस्थानी' वा 'हिन्दी' नाम से प्रसिद्ध हिन्दुस्तान की सम्पर्क-भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में किसी भी, मुख्यतः विदेशी, विद्वान् का दृष्टिकोण स्पष्ट न था। फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी विभाग के प्राध्यापक-अध्यक्ष तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार की भाषा-नीति के आचार्य डा० गिलक्राइस्ट ने हिन्दुस्तान की सम्पर्क-भाषा 'हिन्दुस्तानी' के तत्काल प्रचलित तीन स्वरूपों को तीन शैली (१) दरबारी अथवा फारसी शैली, (२) हिन्दुस्तानी शैली तथा (३) हिन्दवी शैली के रूप में ग्रहण कर हिन्दुस्तानी शैली (अर्थात् अरबी-फारसी शब्दों से रहित खड़ीबोली हिन्दी जिसे नागरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुहरे का गीत

डा० किशोर काबरा

सो गये ।

सो गये गाँव कुहरा ओढ़कर
सब सो गये ।
राह भूले आरती के स्वर
कहीं पर खो गये ।

दूर मंदिर के शिखर से मोर बोला—
मैं यहाँ हूँ ।
ताड़ पर आसन जमाये भोर बोला—
मैं कहाँ हूँ ?

कुछ धुएँ के बीज नभ के बीच
उजले हो गये ।

बादलों के चूर्ण से सूरत ढकी
जुड़वाँ दलों की,
भीगती जाती मसें उठते हुए
दूर्वादलों की
पलक से पानी गिरा सब फलक
धुँधले हो गये ।

अथवा फारसी लिपि में लिखा जाता था और उनके अनुसार तो उसे रोमन लिपि में ही सर्वाधिक कुशलता से लिखा जा सकता था) पर ही विशेष बल दिया। कालेज में हिन्दुस्तानी-विभाग के पाठ्य-क्रम में पुस्तकें भी इसी आधार पर रखी गयीं। अतएव विलियम कैरे का डा० गिलक्राइस्ट की 'हिन्दुस्तानी शैली' को ही हिन्दुस्तान की महान् सम्पर्क भाषा मानकर उसीमें 'न्यू-टेस्टामेण्ट' का अनुवाद करना अस्वाभाविक नहीं था। फोर्ट विलियम कालेज और कम्पनी सरकार का हिन्दुस्तान की सम्पर्क-भाषा के सम्बन्ध में यही दृष्टिकोण विलियम प्राइस के कार्य-काल (मुख्यतः १८२४-२५) तक बना रहा, जबकि विलियम कैरे के निर्देशन में कार्य-रत श्रीरामपुर मिशन सत्य के अन्वेषण के प्रति सदैव ही प्रयत्नशील बना रहा। मिशन के ही तत्त्वावधान में चेम्बरलेन ने सन् १८११ और १८१५ के बीच आगरा, गाजीपुर और पटना की स्थिति का अध्ययन कर इस सत्य का अन्वेषण कर लिया कि उन क्षेत्रों में रहनेवाले भारी बहुसंख्यक हिन्दू थे और उनकी आंचलिक भाषा भिन्न-भिन्न होकर भी सम्पर्क और शिक्षण के माध्यम की भाषा अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग से मुक्त खड़ीबोली हिन्दी थी तथा यह कि पटना के आस-पास के हिन्दू उनके धार्मिक-गुटकों के अनुवादों से इसलिए घृणा करते थे कि उनकी भाषा खड़ीबोली हिन्दी में अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग थे। चेम्बरलेन ने श्रीरामपुर मिशन के अपने बन्धुओं को इस आशय की सूचना ही नहीं दी, उस भाषा में न्यू-टेस्टामेण्ट और धार्मिक-गुटकों का अनुवाद भी किया और विलियम कैरे ने भी इस तथ्य को हृदयंगम कर सन् १८२१ में अपने 'न्यू-टेस्टामेण्ट' के अनुवाद का संस्करण न प्रकाशित कर चेम्बरलेन के ही 'न्यू-टेस्टामेण्ट' को, उसके आग्रह पर कैथी लिपि में तथा सन् १८२३ में नागरी लिपि में छपवाया। इस प्रकार कैरे के प्रयास और प्रोत्साहन से आधुनिक हिन्दी की ओर उन्मुख तब तक की उपेक्षित अरबी फारसी शब्दों के मिश्रण से मुक्त खड़ीबोली हिन्दी को महत्त्व की दृष्टि से अपने सही रूप में प्रथम बार प्रकाश में आने का अवसर मिला। बँगला भाषा के गद्य का तो उद्भव भी विलियम कैरे से ही माना जाता है।

वस्तुतः विलियम कैरे की सम्पूर्ण गति-विधियाँ ईसा मसीह के सन्देशों को ही एशिया महाद्वीप के जन-जन तक पहुँचाने में केन्द्रित थीं और इसी लक्ष्य पर उसका सम्पूर्ण जीवन समर्पित था, किन्तु उसके धर्म के प्रति इस समर्पण में भी संकीर्णता नहीं, एक अद्भुत व्यापकता थी जिसकी परिधि में रहकर भी वह एशिया महाद्वीप की लगभग पचास भाषाओं (जिनमें केवल भारत की ही लगभग चालीस भाषाएँ थीं) के भी प्रति अपने समर्पण का अभूतपूर्व परिचय दे गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबा हरीदास : रचनाएँ (२)

श्री रामप्यारे त्रिपाठी

[जून के अंक से आगे]

भक्ति विलास—यह बाबा हरीदास की अन्य महत्त्वपूर्ण रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रति में ६७ पत्र हैं। तीन दोहों में गुरु-वंदना के पश्चात् 'सिंहावलोकन' सवैया से ग्रन्थ का प्रारंभ होता है। अंत में छंदों की संख्या, रचना का स्वरूप एवं रचना-काल इस प्रकार दिया गया है :—

कबित पाँच सै पाँच हैं, सिंघालोकनि छंद।
'भक्तिविलास' प्रकास मै, हरन मोह भ्रम फंद॥
बहु ग्रंथन को सार लै, तुलसी कृत मत खास।
कबित सवैया, झूलना, घनअच्छरी बिलास॥
बनइस सै अरतीस को, सम्वत है सनिवार।
श्रावन सुक्ल यकादशी, ग्रंथ पूर श्रुति सार॥

'शीला' टीका के पूर्ण होने से तीन वर्ष पूर्व यह 'भक्ति विलास' बन चुका था। जैसा बाबाजी ने स्वयं कहा है, इसकी रचना बहुत से ग्रंथों का सार लेकर की गयी थी, जिसमें तुलसी कृत 'रामचरितमानस' मुख्य है। बानगी के लिए गणेश-वंदना संबंधी प्रथम छंद उद्धृत किया जाता है। 'सिंहावलोकन' में 'भक्ति-विलास' का आनंद लें :—

गन के पति है मति के गति के
धन सम्पति दानि तनो मन के।
मन के सुनि कर्म कठोर किये
हिय चोर न जोर चले तन के॥
तन के सब रोग वियोग गये,
हरिदास न भास बिषै बन के॥
बन के रुह पाय उमा सुत से
जिन ध्याय न पाय सुखै गन के॥

सिंहावलोकन में प्रत्येक पद के अन्त में जो शब्द आता है, वही अगले चरण के आरम्भ में प्रयुक्त होता है। विशेषता यह होती है कि दूसरी बार प्रयुक्त वही शब्द पहले प्रयुक्त शब्द के अर्थ से भिन्न अर्थ लेकर आता है। इसके अतिरिक्त जिस शब्द से छंद प्रारम्भ होता है, उसी पर उसकी समाप्ति होती है। 'सिंहावलोकन' में जितनी और जैसी रचना बाबाजी ने की है, उतनी और वैसी रचना स्यात् किसी भी अन्य कवि ने नहीं की है। इन छंदों में कला और भाव का मणिकांचन योग देखते बनता है। सभी छंद भक्ति रसमय हैं।

'सिंहावलोकन' छंद की विशिष्टता के कारण ग्रंथ का वास्तविक नाम 'भक्ति विलास' दब गया, और 'सिंहावलोकन काव्य' ऊपर आ गया। यहाँ तक कि प्रकाशित संस्करण में ग्रंथ का नाम 'भक्ति विलास' के नीचे 'अथ सिंहावलोकन' बड़े मोटे अक्षरों में छपा है, यद्यपि हस्तलिखित प्रति में प्रारंभ में ही 'अथ भक्ति विलास ग्रंथ लिख्यते' दिया हुआ है। 'भक्ति विलास' का प्रकाशन बाबाजी के 'चित्र काव्य', 'प्रश्नोत्तरी' तथा 'भक्ति विनोद' के साथ एक ही संग्रह में संवत १९९५ वि० में मुंशी रामनारायण लाल श्रीवास्तव, रजिस्ट्रार कानूनगो ने जी० पी० फाइन आर्ट प्रेस, प्रेमनगर, कानपुर से कराया था। प्रकाशित संस्करण में छापे की इतनी और ऐसी त्रुटियाँ हैं कि पढ़ते समय वे सुस्वाद भोजन में कंकड़ियों के समान खटकती हैं। अब इसकी प्रतियाँ भी अप्राप्य हैं।

हस्तलिखित प्रति में प्रारंभ के तीन दोहों में गुरुवंदना है। प्रकाशित प्रति में गुरुवंदनावाले दोहे नहीं हैं। प्रकाशित प्रति में ५२३ छंद संगृहीत हैं। छंद संख्या १ से १८, २४ से २७ तथा ३६ नहीं हैं। इस प्रकार इसमें छंदों की संख्या ५०० है, जो अंत में इस प्रकार दी भी गयी है :—

है प्रमान संत पंच को, सिंघालोकनि छंद।
बरनत सीता राम जस, हरन मोह भ्रम फंद॥

(प्रकाशित संस्करण, पृष्ठ २०४)

इस दोहे से पूर्व रचनाकाल वाला उपर्युक्त दोहा ज्यों का त्यों दिया हुआ है। हस्तलेख का दूसरा दोहा तथा अंत के [illegible] के परिचय संबंधी तीन दोहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित संस्करण में निकाल दिये गये हैं। हस्तलिखित प्रति के छंद संख्या १५ तथा ४९५ से ५०५ तक के १२ छंद प्रकाशित प्रति में नहीं मिलते। इसी प्रकार प्रकाशित संस्करण के छंद संख्या ७४, १३५, १७३, १७४, ५०३, ५०४ तथा ५०५ ये ७ छंद हस्तलिखित प्रति में नहीं मिलते। शेष ४९३ छंद दोनों में समान हैं, परंतु प्रकाशित संस्करण में हस्तलेख की तुलना में छंदों का क्रम एकदम परिवर्तित कर दिया गया है। गणेशवंदना वाला प्रथम छंद प्रकाशित प्रति में छंद संख्या १५० पर चला गया है। इसी प्रकार हस्तलिखित प्रति के प्रारंभ के सूर्य, शिव, गंगा, हनुमान, शेष, भरत, सीता तथा कौशल्या आदि की वंदना के छंद बहुत पीछे कर दिये गये हैं। पता चला है कि 'सिंहावलोकन' छंदों की एक हस्तलिखित प्रति और थी जो श्री शिवबहादुर सिंह, प्रधानाचार्य राजकीय दीक्षा विद्यालय, शिवगढ़ ले गये थे। वह प्रति इस समय मैनपुरी में है। बिना उसे देखे, उसके बारे में कुछ कहना संभव नहीं है। इतना निश्चित प्रतीत होता है कि छंदों का यह उलट-फेर बाबाजी का किया-कराया नहीं है। हस्तलेख से शोधकर एक अच्छा संस्करण निकालने की आवश्यकता है।

भक्ति विनोद साहित्यिक दृष्टि से बाबा हरीदास की सर्वोत्तम रचना है। सं० १९९५ में 'भक्ति विलास' के साथ ही एक ही संग्रह में इसका भी प्रकाशन हुआ था। बाबाजी के २४८ छंदों की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त है, जिसमें ३४ पत्र हैं। संग्रह में नाम नहीं दिया है। प्रारम्भ में 'अथ कवित्त लिख्यते' दिया हुआ है। अन्त में कोई फलश्रुति या पुष्पिका नहीं है। इसे 'विनयपत्रिका' कहा जाता है। हैं भी इसके अधिकांश छंद तुलसीदासजी की 'विनयपत्रिका' के ढंग के। ११६ छंदों का एक और भी हस्तलिखित संग्रह उपलब्ध है। इस संग्रह का भी कोई नाम नहीं दिया है। श्रीगणेशायनमः के पश्चात् घनाक्षरी छंद से संग्रह प्रारंभ हो गया है। अंत में न कोई फलश्रुति है, न पुष्पिका और न इति ही लगायी गयी है। हस्तलेख में २१ पत्र हैं। इसे बाबाजी की 'कवितावली' कहते हैं। इन्हीं दोनों संग्रहों को क्रम से मिलाकर 'भक्ति विनोद' नाम से प्रकाशित किया गया है। दूसरे संग्रह के सात छंद (संख्या ११ से १७ तक) प्रथम संग्रह में भी क्रम से छंद संख्या ५३, ५४, ४१ तथा ५५ से ५८ पर मिल जाते हैं। प्रकाशित संस्करण में ये एक बार ही आये हैं, अर्थात प्रथम संग्रह के छंद उसी रूप में रखे गये हैं, और दूसरे संग्रह के छंदों को प्रथम संग्रह के साथ प्रकाशित करते समय इन सात छंदों को छोड़ दिया गया है। इस प्रकार 'भक्ति विनोद' के छंदों की संख्या ३५७ हो गयी है। यह पता नहीं चलता कि 'भक्ति विनोद' नाम स्वयं बाबाजी का दिया हुआ है, या संग्रह के संपादक का। बस इतना ही कहा जा सकता है कि जैसे तुलसीदास की 'रामगीतावली' में उनके अन्य १०८ पदों को मिलाकर 'विनयपत्रिका' का रूप मिल गया, कुछ उसी प्रकार दो संग्रहों को मिलाकर बाबाजी का 'भक्ति विनोद' भी बना है।

'भक्ति विलास' के प्रकाशित संस्करण के २३ छंद (छंद संख्या १ से १८, २४ से २७ तथा ३६) सिंहावलोकन नहीं हैं। ये सभी भक्ति सम्बन्धी हैं, और 'भक्ति विनोद' के छंदों के मेल में हैं। इन्हें 'भक्ति विनोद' में मिला देना सर्वथा समीचीन लगता है। ये न तो 'भक्ति विलास' के वर्तमान हस्तलेख में मिलते हैं, और न इनका कोई अन्य हस्तलेख ही उपलब्ध है। अनुमान है कि भूल से इन तेईस छंदों के पत्रे पहले 'मसल विवेक' में छंद संख्या १४९ के आगे लगे थे, जो बाद में उससे निकाल लिये गये, और अब अप्राप्य हो गये हैं। निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है, परन्तु इनका उपयुक्त स्थान 'भक्ति विलास' में नहीं, 'भक्ति विनोद' में ही है। इन्हें 'भक्ति विनोद' में मिला देने से उसके छंदों की संख्या ३८० हो जायगी।

'भक्ति विनोद' के ५९ छंद (छंद संख्या १८० से १८९, १९३ से २००, २०३ व २०४, २०६ से २०९, २१२ से २१७, २१९ से २४४ तथा २४६ से २४८) 'मसल विवेक' में भी छंद संख्या १७२ से २३० पर मिल जाते हैं। जब ये 'मसल विवेक' में ग्रहण कर लिये गये हैं तब इन्हें 'भक्ति विनोद' से निकाल देना ही उपयुक्त लगता है। इन्हें निकाल देने से 'भक्ति विनोद' के छंदों की संख्या ३२१ रह जायगी।

'भक्ति विनोद' में कुछ और भी ऐसे छंद संकलित हैं, जिनका इस संग्रह से सीधा सम्बन्ध नहीं है। उदाहरणार्थ, मानस-प्रशंसा के दो छंदों (छंद संख्या ४६ व ४७) तथा रामचरितमानस की कथा की उद्धरणी के पाँच छंदों (छंद संख्या ४८ से ५२) का सम्बन्ध इस संग्रह की विषय-वस्तु से नहीं है। छंद संख्या ४७ व ४८ से ५२ 'शीला टीका' में भी हैं। ऐसे छंदों को बाबाजी की स्फुट रचना के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में अलग से संगृहीत करना अधिक उपयुक्त होगा। कहने का तात्पर्य यह कि 'भक्ति विनोद' के वैज्ञानिक सम्पादन-प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है।

'भक्ति विनोद' बाबाजी की सर्वोत्तम कृति है। अतः इसकी विषयवस्तु का कुछ विस्तृत परिचय देना उपयोगी प्रतीत होता है। इसके प्रारम्भ के ११ छंदों में गणेश, सूर्य, शिव, शिव-परिवार, गंगा, यमुना तथा चित्रकूट की वन्दना की गयी है। तुलसीदास की भाँति इन सभी से रामभक्ति की याचना की गयी है। १२ से ३१ तक बीस छंद हनुमानजी की स्वतंत्र विनय के हैं। इनमें अंत में उनसे भी राम-भक्ति माँगी गयी है। छंद संख्या ३२ में राम के परिवार की वन्दना है। तैंतीसवें छंद से राम की प्रशंसा व विनय के छंद चलने लगते हैं। छंद संख्या ४१ एवं ४२ में राम का कृष्ण रूप दर्शनीय है। छंद संख्या ४१ यहाँ उद्धृत किया जाता है :—

बंदि राम धाम छबि, अनंग अंग वारि डारि,
कृष्न रूप खूप बदन, मदन देखि लाज ही।
गहे धनुष बान कर, कृपान छबि निधान राम,
बाम दिसा जनकजा, अनूप रूप राज ही॥
बंसी कर अधर मधुर, गान तान करत हरत,
चित्त नित्त राधिका सुगोषिका समाज ही।
दास हरी आस सीय, राम चरन कमल अमल,
देहु भक्ति ज्यों गरीब को सुधा सुनाज ही॥

छंद संख्या ४३ में अवध-वन्दना है। अगले दो छंदों में सरयू की वन्दना की गयी है। छंद संख्या ४६ तथा ४७ में 'रामचरितमानस' की प्रशंसा है, फिर पाँच छंदों में 'मानस' की राम-कथा की संक्षिप्त उद्धरणी 'सप्ताप्रबन्ध' नाम से प्रस्तुत की गयी है। इन्हीं सात छंदों की 'सप्त छंदी रामायण' है। छंद संख्या ५३ और ५४ 'ध्यान के कवित्त' हैं। अगले चार छंद राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न की 'सवारी के कवित्त' हैं। ये चारों छंद बड़े सुन्दर हैं। छंद संख्या ५९ से पुनः राम की विनय चलने लगती है। राम-नाम-महिमा के कई छंद हैं। छंद संख्या ७६ में जनकजी की वन्दना के साथ राम के परिवार के समस्त नारी-समाज की वन्दना है। अगले दो छंद गुरु-वन्दना एवं गुरु-महिमा के हैं। इस प्रकार इस रचना की शैली तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' से मिलती-जुलती है। जिनकी वन्दना 'विनयपत्रिका' में रह गयी है बाबाजी ने उसकी भी पूर्ति कर दी है। छंद संख्या ८४ में मनसिज-महिमा द्रष्टव्य है :—

मनसिज मन मथनो करै, हरै बुद्धि अरु ज्ञान।
प्रकृत जनन की का गन्यो, हन्यो संभु उर बान॥
हन्यो संभु उर बान, मान नारद को तोरचो।
पारासर बिधि जीति प्रीति कन्या सो जोरचो॥
सिंगी रिषि तजि जोग भोग रम्भा सो कीन्ह्यो।
सुरनर नाग बिराग जोग लोगन दुख दीन्ह्यो॥
दास हरी हरि सरन गहु, संतन संग अमान।
मनसिज मन मथनो करै, हरै बुद्धि अरु ज्ञान॥

छंद संख्या ८५ से पद मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। प्रारम्भ में राम-भजन का उपदेश है। रसना से राम नाम भजने, मन को राम-चरन में बसाने के उपदेश के कई पद हैं। मतवाले मनुवाँ को सम्बोधित करते हुए बाबाजी कहते हैं :—

मनुवां मतवाला छकि नाम अमी प्याला।
झुकि-झुकि परत धरत पग डगमग सुधि नहि तन हाला॥
उतरत नहि छिन नेक एक पल झूँम झूँम साला॥
भरि-भरि स्वास अमी रस पीवत मीन बिहग चाला।
दासहरी हरि रस जन माते तिनहि न डेर काला॥
(छंद संख्या ९६)

इस प्रकार के कई पद बने हैं। पदों की टेक द्रष्टव्य है :—

१. सुरतिया नाम लगी निसिबार।
२. मन तुम नाम गहो यहि भाँती।
३. सुमिरन सो लागि रही मतिया।
४. सुमिरन सो माति रह्यो मनुवां।
५. सुमिरन धुनि लागि रही मन मां।

राम-नाम सुमिरन में उन्मत्त बाबाजी अपने श्रोताओं एवं पाठकों को भी उन्मत्त कर देते हैं। कौन है जो इन पदों को पढ़-सुनकर झूम न जायगा? त्रिकुटी महल में बाबाजी की अनहद नाद की तान भी सुनने योग्य है :—

भजु राम नाम अराम है बसु जाम मन चित लाय॥
स्वासा सुरति गति मीन बिहंग पपील ढील न पाय॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिकुटी महल में बैठि कै मन ऐंठि डोरी बाँधि।
जग आस नास बतास खास प्रकास दीपक साधि॥
धुनि लागि अनहद तान धुनि सुनि भये उमन मस्तान।
सुर किहेव रंक नरेस बेस कलेस देस न सान॥
सिव संत मत श्रुति सार यह निरधार जग सो जानि।
कहि दास हरि तजि आस भजि सियराम सारंगपानि॥
(छंद संख्या १०१)

बाबाजी कबीर की पंक्ति में खड़े होकर 'त्रिकुटी महल में अनहद नाद' सुनते-सुनते झट बाबा तुलसीदास की पटरी पर आ जाते और सारंग पानि राम के भजने का उपदेश देने लगते हैं।

इसके आगे राम की प्रशंसा, राम-नाम महिमा, रामभजन का उपदेश के छंद आते हैं। छंदसंख्या १५९ से १६३ में सीता माता की विनय करते हुए अपनी कहानी सुनाकर अविलम्ब जानिधि राम से समझा-बुझाकर मुक्त करने की प्रार्थना की गयी है। १६४वें छंद में शेषनागजी की वन्दना है। छंद संख्या १६५ में लखनलाल से विनय है। आगे के दो छंदों में हनुमानजी को सम्बोधित किया गया है। छंद संख्या १६८ से १७२ तक पुनः अम्बा सीता से विनय करते हुए रामभक्ति की याचना की गयी है :—

दास हरी आस जग बिहाय बास चाहत मन मधुकर
सिय रामचरन पंकज रस पान की।
(छंद संख्या १७२)

आगे पुनः राम की विनय तथा राम नाम भजन के उपदेश हैं। छंद संख्या १७७ में पूरे शिव-परिवार की विनय और उनसे राम-भक्ति की याचना की गयी है :

सूलपानि अरु कपाल रुद्र बटुक भैरवगन,
दास हरी आस 'रामभक्ति देहु' भावने॥

छंद संख्या १७८ में हरिस्मरण का उपदेश तथा १७९ में राम की प्रभा का वर्णन है। इसके पश्चात् छंद संख्या २४८ तक 'मसल विवेक' के छंद संगृहीत हैं। इन छंदों को 'मसल विवेक' में ठीक ही मिला लिया गया है, अब इन्हें इस संग्रह में भी बनाये रखने का कोई औचित्य नहीं है।

छंद संख्या २४९ से दूसरे संग्रह के छंद प्रारम्भ हो जाते हैं। २४९ से २५७ तक राम के सौंदर्य का वर्णन है। अगले छंद में चारों भाइयों की क्रीड़ा का चित्रण है। इन छंदों को या तो कहीं प्रारम्भ में रखना उपयुक्त लगता है, अथवा इस संग्रह के छंदों को अलग ही रखना ठीक होगा। ऐसा कर देने से छंदों के क्रम में स्वाभाविकता आ जायगी।

छंद संख्या २५८ से आगे रामभजन के उपदेश के कई छंद हैं। आगे चलकर संसार की असारता के छंद मिलते हैं। इस विषय का एक छंद अवलोकनीय है :—

मातु पिता सुत बंधु तिय जहँ लगि जगत सनेह।
उपजत बिनसत छिनहि छिन ज्यों अकास को मेह॥
ज्यों अकास को मेह देह नाते सब ऐसे।
झरि तरिवर सों पात जात तीरथ जल जैसे॥
ज्यों नभ की फुलवारि वारि कुहिरा हित हानी।
भजु मन सारंग पानि जानि यह मन क्रम बानी॥
दास हरी भव फाँस यह अंध कूप सम गेह।
मातु पिता सुत बंधु तिय जहँ लगि जगत सनेह॥
(छंद संख्या २८५)

छंद संख्या २९१ में यमुना की वन्दना है। छंद संख्या २९२ में परत्रिय-त्याग की चेतावनी ध्यान देने योग्य है :—

सिंघिया कुचिला संखिया करिहारी बिष जौन।
बिछखोपरा बिष बीछि अहि देखत चढ़ै न तौन॥
देखत चढ़ै न तौन पौन संग उड़ि नहि लागै।
नारि नैन अरु बैन मैन देखत सुनि जागै॥
सिंगी रिषि बिधि संभु परासर नारद जोगी।
इनहुन तन बिष मात बात क्या नर नित भोगी॥
दास हरी हरि स्वास भजु तजु परतिय बिष भौन।
सिंघिया कुचिला संखिया करिहारी बिष जौन॥

छंद संख्या ३०५ में अनसूया-आत्रिक दर्शन के फल का वर्णन है। छंद संख्या ३२८ से ३३२ तक साधु वेषधारी छली साधुओं तथा गुरुओं की भर्त्सना की गयी है। उनमें एक छंद प्रस्तुत है :—

हरि को रचि बेष बनाय ठटी सो टटी,
छल खूप छरे दल साजी॥
नाम लगा सो ढगा खग जीवनि,
बोल रसा सो लसा सब राजी।
नाम सो प्रीति प्रतीति नहीं,
बहु रीति बिसै बिष प्रीति न भाजी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दास हरी न तरी भव सो,
बहु जोनि परी हहरी नित पाजी ॥
(छंद संख्या ३३०)

छंद संख्या ३४५ से ३५७ तक मुसलमानों को संबोधित करके सच्चे मन से अल्लाह की इबादत करने का उपदेश दिया गया है। इस विषय का एक छंद प्रस्तुत है :—

साँचा मन अल्लाह सों करु आबादति रोज।
घट ही में मक्का अहै रहै रैन-दिन खोज ॥
रहै रैन-दिन खोज मौज यहि काल गंवावै।
रोजा करै नमाज लाज तजि पियहि रिझावै ॥
सब घट बसे खोदाय पाय पर पीर हमेसै।
मेहर धरै दिल बीच मीच पर तजै कलेसै ॥
दास हरी परवर दिगार तेहि मिलै पास ही वोज।
साँचा मन अल्लाह सों करु आबादति रोज ॥
(छंद संख्या ३५२)

ठीक है, सच्चा साधु जाति-पाँति की सीमा में कहाँ बँध सकता है। उसके लिए हिन्दू-मुसलमान सब बराबर हैं।

बाबाजी के छंदों में गोस्वामी तुलसीदासजी के भावों तथा उनकी शब्दावली का ग्रहण द्रष्टव्य है। उनके छंदों को पढ़ते समय गोस्वामीजी की 'विनयपत्रिका' के पद बरबस स्मरण हो आते हैं। भावों और शब्दों को ग्रहण करते हुए, बाबाजी ने अपनी मौलिकता भी बनाये रखी है—यह स्तुत्य है। जो हो, बाबाजी में गोस्वामी तुलसीदास की छाया स्पष्ट दीखती है।

चित्र काव्य—बाबा हरीदास ने चौपड़, कमल तथा छत्र की रेखाकृतियाँ बनाकर उनके भीतर छंदों की भावपूर्ण रचना की है। दस चौपड़बंध, पाँच कमलबंध, तथा पाँच छत्रबंध छंद रचे हैं। 'चित्र काव्य' में भी भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। स्थानाभाव से चित्रकाव्य का कोई उदाहरण देना सम्भव नहीं हो रहा है।

बाबाजी ने पहेलियाँ भी बुझाई हैं, और उन्हींको 'प्रश्नोत्तरी' कहा जाता है। आठ छंद 'बहिर्लापिका' तथा दस 'अन्तर्लापिका' के मिलते हैं। 'बहिर्लापिका' में आये प्रश्नों के उत्तर निकालने के लिए शब्द अलग से खोजने पड़ते हैं, तथा 'अन्तर्लापिका' के प्रश्नों के उत्तर छंद के अन्दर ही आये शब्दों से निकल आते हैं। 'बहिर्लापिका' का एक छंद उद्धृत है :—

का गुर खुस होइ देत, तार में काह बजावत।
का तप करि फल होत, तुरुक क्या नाम कहावत ॥
दंत कथै का कही, जगत को नाम कहा है।
कासो बनि पकवान, खाय दिज सुखै लहा है ॥
दासहरी त्रै बरन जो, आदि अत तजि उर धरो।
तौ भव सिंधु अपार को, पार पलै में ह्वै तरो ॥

प्रश्नों के उत्तर में आसीस, सितार, अराम, जमन, मसल, जहान तथा मइदा शब्द आते हैं। इनके मध्यवर्ती वर्णों को एकत्र करने पर 'सीताराम सहाइ' का आशीर्वचन निकलता है। इस प्रकार बाबाजी ने पहेलियों में भी भक्ति भाव भरकर उसके प्रचार का विधान किया है।

इनके अतिरिक्त बाबाजी के कुछ स्फुट छंद मिलते हैं। जैसे, 'अमृत धुनि', 'लघु अक्षरी', 'चित्र काव्य' 'गतागत काव्य' तथा कुछ कुंडलिया छंद। बाबाजी की एक रचना 'भक्तमाल' कही जाती है, जिसका पता न चल सका।

बाबाजी ने कुछ 'कूट' भी मौखिक रूप से कहे थे। ऐसे दो छंदों का पता चला है। वे नीचे दिये जाते हैं :—

१. बन बस तपसी, मन बस गाउँ।
छूट न दुनिया, यह परि काउँ ॥
२. यक दिन यक तर बास करत हैं,
ग्राम नहीं उन जाना हो।
पवन रूप कै मौन भए,
सर नीचे पग असमाना हो।
दास हरी नहिं ठीक परी,
है पिया मिलन पथ आना हो ॥

कितने खेद की बात है कि ऐसे सुन्दर छंद अब अप्राप्य हो गये हैं। प्रयास करने पर सम्भव है, कुछ मिल जायँ। बाबाजी की रचनाओं के परिचय तथा उनके उदाहरण से पाठक विचार करें कि उनका साहित्य में क्या स्थान हो सकता है। हमारी समझ में, 'रामभक्ति शाखा' के कवियों के अध्ययन में बाबाजी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध होते हैं। क्या ही अच्छा होता कि बाबाजी की कृतियों का सुसंपादित संस्करण निकल जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माया मिली न राम

श्री गोरखनाथ एम० ए०

मनुष्य के जन्म लेने का उद्देश्य मात्र भोग-विलास के लिए उछल-कूद करते हुए अन्ततः चिर-निद्रा में निमग्न हो जाना नहीं है। वह जवानी के क्षणों में सुखद सपनों का संसार सजा कर रँगीली जिन्दगी जीते हुए जीवन की सान्ध्य-वेला में निर्विकार होकर शान्तिपूर्वक मृत्यु को वरण करना चाहता है, जिससे परलोक के अपार आनन्द से वंचित न रह जाय। लौकिक-पारलौकिक सुखों में सामंजस्य एवं समरसता ही भारतीय जीवन की उल्लेखनीय विशेषता रही है। यद्यपि इसमें परलोक-सिद्धि को प्रमुख स्थान दिया गया है तथापि संसारिक सुखों को हिकारत की नजर से नहीं देखा गया है। अमरत्व के स्थायी सुखों की कामना करनेवालों का सांसारिक जीवन नीरस एवं शुष्क नहीं होता था। प्रायः बहुसंख्यक विचारकों ने बाल्यावस्था से लेकर आगे की दूरी क्रमशः एक के बाद एक करके तै करने के पक्ष में तर्क दिये हैं। लौकिक लीलाओं को क्रमानुसार सम्पन्न करते हुए अमरत्व का सुख लाभ करना अथवा मोक्षस्थ होने की कामना करना प्रत्येक दृष्टि से उपयुक्त था। इसमें अन्यत्र ध्यानाकर्षण अथवा चित्त के बिखराव की सम्भावनाएँ सदा के लिए जाती रहती थीं तथा उद्देश्य की प्राप्ति भी सुनिश्चित हो जाती थी। इसकी अपेक्षा बीच के विराम स्थलों को लाँघकर आगे पहुँचने की चेष्टा करनेवालों को बड़ी सतर्कता के उपरान्त भी भ्रमित होने का भय बना रहता था। उन्हें एड़ी-चोटी का पसीना एक करने के उपरान्त क्षितिज का दर्शन होता था। इस स्थिति में लौकिक सुख नश्वर, क्षणभंगुर, अस्थायी, कष्टकर, महत्त्व-हीन अथवा अभोग्य होने के साथ ही सत्य है और प्राप्तव्य भी है। अतः मुमुक्षुओं को सांसारिक यात्रा से गुजरना ही है। इसे और नहीं तो नखलिस्तान ही सही बनाकर इसी में डूबना ही है। उल्लेखनीय है कि आज भी यह चिन्तन-प्रणाली निस्तेज नहीं हुई। यह इसकी सजीवता का ही प्रमाण है कि सांसारिकता से उकताकर प्रव्रज्या प्राप्त लोगों को संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता है। उन पर लांच्छन लगाते समय रहम नहीं किया जाता। गार्हस्थ्य जीवन का भोग करने में असमर्थ व्यक्ति सामाजिक अप्रतिष्ठा के शिकार होकर हीन भावनाओं के थपेड़े सहते हैं। इनकी अपेक्षा क्रमशः उत्तरोत्तर वय बढ़ने के साथ लौकिक लीलाओं को रचाकर श्वेतकेश व्यक्ति धर्मनिष्ठ होने का गौरव प्राप्त करता है। वह मसीहा बन जाता है तथा अन्त में ब्रह्मलीन होकर अर्चागृहों में अर्घ्य प्राप्त करता है।

भारतीय संस्कृति की मशाल जलानेवालों ने पार-लौकिक सुखों को उतने ही श्रद्धा-भाव से देखा है जितना वे सांसारिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति के अभिलाषी रहे हैं। मनुष्य जहाँ एक ओर मोक्ष की अपूर्व निधि एवं अमरत्व के अपार सुख की कल्पना करते थे, वहीं उनके लौकिक जीवन का प्रत्येक क्षण प्रीतिकर रसों से सराबोर था। पारलौकिक सुखों की दिव्य दुनिया में प्रवेश करने के पूर्व भोगे हुए भौतिक सुखों की समृद्ध पृष्ठभूमि बना ली जाती थी। लोकोत्तर के लिए पारपत्र दिलाने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। यह मार्ग प्रशस्त करने में सहायक होता था। इसके अन्तर्गत अर्थ-संग्रह, भोग-विलास, आदर्श नागरिक की तरह जीवन-यापन एवं सर्व कामनाओं की परितुष्टि जनित आनन्द के अम्बार सहित इस दुनिया से प्रव्रजन करने का महत्त्व था। अवस्थानुसार प्रथमतः सांसारिकता से रागात्मक सम्बन्ध दृढ़तर होता जाता था और चरम विन्दु पर पहुँचने के पश्चात् वह लगाव क्रमशः क्षीण होने लगता था। अरण्यसेवन के लिए प्रव्रजन का काल इसी सम्बन्ध-क्षीणता की अंतिम परिणति था। अनास्थावादी धर्मों में भी कर्मान्त की महिमा प्रदर्शित है किन्तु इनमें सांसारिक यात्रा के अनन्तर लक्ष्य से च्युत होकर लौट आने की सन्देहास्पद स्थिति बराबर बनी रहती है, क्योंकि ये स्वाभाविक रूप से जाग्रत होनेवाली कामनाओं को दबाकर आगे बढ़ते हैं। इनकी अपेक्षा शास्त्रीय धर्मानुरागी वीतराग मुमुक्षु सतत आगे ही बढ़ता जाता था।

यहाँ प्रसंगवश पुरुषार्थ एवं आश्रम व्यवस्था की उपयोगिता पर विचार करना आवश्यक है। इनमें लौकिक-पारलौकिक सिद्धि के साधन समाहित किये गये हैं। पुरुषार्थों में अंतिम मोक्ष है। यह जीवन का एकमात्र, अन्तिम साध्य है। ऐहिक क्रिया-कलाप की आखिरी परिणति है और सांसारिक यात्रा का अभीष्ट लक्ष्य है। धर्म, अर्थ एवं काम ये शेष पुरुषार्थ इस मोक्षोपलब्धि के सहायक मात्र हैं जो त्रिवर्ग कहे गये हैं। इनका यथावत् उपभोग एवं आस्वादन उन सभी लोगों के लिए परमा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वश्यक है, जो महालक्ष्य की साधना में निरत हैं। इसी कारण समुच्चयवाद चिर नवीन बना हुआ है। इसका तात्पर्य है यथासमय त्रिवर्ग की भरपूर प्राप्ति करते हुए, आश्रम-व्यवस्था के अन्तर्गत निश्चित विश्रामस्थलों पर ठहरते हुए, महासिद्धि की ओर गमन। पुरुषार्थों की यथानुकूल प्राप्ति पर ही विचारकर जीवन को चार भागों में विभाजित किया गया है। संन्यास भौतिक जीवन की अन्तिम क्रियाओं का द्योतन करता है, जब मनुष्य सम्पूर्ण लोकैषणाओं से अपने को विरक्त करके रात-दिन महालक्ष्य के ही विषय में चिन्तन-मन्थन करता रहता था। पूर्ण वैराग्य के लिए अत्यावश्यक था कि सांसारिक उपलब्धियों का इच्छापूर्ण भोग करके रोम-रोम को प्रफुल्लित बना लिया जाय। आकर्षण की चरम स्थिति से ऊबे बिना मन में विकर्षण का स्थायी भाव नहीं उत्पन्न हो सकता। जब तक ऐसा न होगा तब तक मुमुक्षु की साधना में स्थिरता एवं गम्भीरता के अभाव का खटका लगा रहेगा। इसी अतुष्टि के कारण तपश्चर्या की कठिन अग्नि में तपे श्वेतकेश भी जीवन की सांध्य वेला में रागी बनते देखे गये हैं। ऐसा इसलिए भी हुआ कि वे बीच के आश्रमों को लाँघकर आगे बढ़ गये थे। सर्व कामनाओं से तृप्ति प्रदान करानेवाला आश्रम गार्हस्थ्य है, जिसमें पूर्वार्जित परिणामों की बदौलत ऐश्वर्य-भोग करते हुए मनुष्य भविष्यत् की सफलताओं की नींव सुदृढ़ करता था। इसके पूर्व ब्रह्मचर्य में शिक्षा-ग्रहण तथा इसके पश्चात् वानप्रस्थ में उत्तरदायित्वों से मुक्त होने से सम्बद्ध कार्य किये जाते थे।

गार्हस्थ्य के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी विवाहिता भार्या के साथ चलते हुए धर्म, अर्थ एवं काम की यथावत् प्राप्ति करता था। यही वह काल है, जब त्रिवर्ग की प्राप्ति अल्प समय में साथ-साथ की जा सकती है—एकै साधे सब सधै। जिस प्रकार त्रिवर्ग की सफलता सुखी गार्हस्थ्य जीवन में समाहित है, ठीक उसी प्रकार इनमें केन्द्रित अर्थ का व्यक्ति के उत्थान में महत्त्वपूर्ण योग रहता है (अर्थ एवं प्रधानः इति कौटिल्यः)। मानव-जीवन के निर्धारित लक्ष्यों में अर्थ का स्थान प्रमुख नहीं है, किन्तु दूसरे प्राप्तव्यों को हस्तगत करने के मार्ग में विशेष रूप से सहायक होने के कारण इसकी महत्ता अपार है। इसी कारण सदा से यह जन-जन को आकृष्ट करता आ रहा है। अर्थ की इसी विशेषता के कारण प्राचीन आचार्यों ने मुक्त भाव से इसकी महिमा का यशोगान किया है और सभी वर्ग के लोगों के लिए इसे प्राप्तव्य बताया है। अर्थ के ही माहात्म्य के कारण विद्याएँ अधिकाधिक रूप से धनोपार्जन में फलवती हों—इस पर बल दिया जाता था (अर्थकरी च विद्या)। युवकों को जहाँ आन्वीक्षकी, त्रयी एवं दण्डनीति की शिक्षा दी जाती थी, वहीं वार्ता की अनिवार्य शिक्षण-व्यवस्था का उद्देश्य उन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी एवं सुविधा-सम्पन्न गृहस्थ बनाना था। उल्लेखनीय है कि वार्ता के अन्तर्गत कृषि, पशुपालन, वाणिज्य एवं कुसीद अर्थात् ब्याज पर धन के लेन-देन की शिक्षा-दीक्षा दी जाती थी। वाणिज्य-व्यवसायी तथा अन्य आर्थिक क्रियाओं के जानकार व्यक्ति शिक्षित युवकों को प्रशिक्षण भी देते थे। इस प्रक्रिया की विकसित कड़ी के दर्शन हमें बौद्ध साहित्य में होते हैं, जहाँ प्रत्येक युवक युवती के लिए जीविकोपार्जन के निमित्त किसी न किसी शिल्प की अच्छी जानकारी हासिल करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। युवकों के लिए तो इसे अनिवार्य घोषित किया गया है। इसमें निपुण होने पर ही उनका विवाह हो सकता था। यह ध्यान देने की बात है कि युवक प्रायः बीस वर्ष के आस-पास तक शिक्षा समाप्त कर तथा धनोपार्जन के लिए सक्षम बनकर गृहस्थ बनने को आतुर होते थे। इस प्रकार धन कमाते हुए गृहस्थ उससे धार्मिक कृत्यों का सम्पादन और कामनाओं की तृप्ति करते हुए सुखपूर्वक जीवन का रस लेते थे (धनाद्धर्मं ततः सुखम्)। प्रसिद्ध कामशास्त्री वात्स्यायन ने सुझाव दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति को धनोपार्जन के ढंग ग्रहण कर युवावस्था में विवाह करना चाहिए और आदर्श नागरिक (नगरवासी विलासप्रिय व्यक्ति) की भाँति रससिक्त जीवन व्यतीत करना चाहिए। स्मरण रखना है कि यही लौकिक जीवन का अभीष्ट भी है। यही वह मूल तत्त्व है जिससे पारलौकिक सफलताओं की निश्चितता मिलती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जरावस्था के झाँकने तक व्यक्ति यौवन का प्रत्येक सुख भोग लेता था। शनैः शनैः स्वाभाविक रूप से भोगे गये सुख की स्मृतियाँ धुँधली पड़ती जाती थीं, जो अन्ततः उसके चित्त की स्थिरता में सहायक होती थीं। इसके बादवाले समय में वह उत्तरदायित्वों से मुक्त होने तथा मोक्षस्थ होने से सम्बद्ध बहुविध क्रियाओं के अभ्यास में प्रवृत्त होता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन अतीतकालीन मान्यताओं को वर्तमान की कसौटी पर कसने पर ऐसा प्रतीत होता है कि आज भी ये पुरानी नहीं हुई हैं। जिस प्रकार इनसे अतीत रोशन हुआ था, उसी प्रकार इनकी सम्यक् प्रतिष्ठा से वर्तमान भी खिल-खिला सकता है। इनकी उपादेयता सर्वविदित है, किन्तु आज हमारे जीवन की प्रकृति ही उलट गयी है। इनकी वेगवती धारा हमारे अज्ञान एवं दिग्भ्रान्त जीवन में उलझ गयी है। पुरुषार्थों एवं आश्रमों के आदर्श अपने विगत वैभव को सँजोये हुए हैं, किन्तु उनकी निश्चितता तथा स्टेशनों पर ठहराव की अवधि का संतुलन बिगड़ गया है। समुच्चयवादिता के आदर्श द्युतिमान हैं, किन्तु व्यक्ति फलने-फूलने के समान अवसर से वंचित हुआ जा रहा है। इस प्रवंचनात्मक प्रवृत्ति के लिए मुट्ठी भर लोगों द्वारा परिचालित व्यवस्था भी कुछ हद तक दोषी कही जा सकती है। 'सब्बं दुःखं दुःखं, सब्बं सुक्खं सुक्खं,' 'मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्,' आदि की चिर प्रतिष्ठित गूँज अब स्वार्थ-पीडित लोगों में फुरफुरी नहीं पैदा कर रही है। विद्याओं का पठन-पाठन अब और ताम-झाम से हो रहा है किन्तु अर्थकरी की गौरव गरिमा मिटती जा रही है। इन स्थितियों में ऐश्वर्य भोग की लालसा से कठिन तपश्चर्या करते हुए लोग प्रतीक्षा में ही अवधि गुजार देते हैं किन्तु सफलता की सरस्वती अदृश्य हो गयी है। अतः पराजित मन लिए वे 'मा फलेषु कदाचन्' की रट लगाते हुए छलाँग लगाने पर विवश हो जाते हैं। आज कुण्ठा, संत्रास, भय, निराशा आदि के चक्रव्यूह में गिरफ्तार मानव-मन लौकिक-पारलौकिक उन पारम्परिक जीवनादर्शों को भूलता जा रहा है। उनके स्थान को राशन-पानी की समस्या ने बेनामा करा लिया है। ऐसा नहीं है कि सभी के सभी दखिनहा (दक्षिणी पवन, जो लता-गुल्म को झलसाने के लिए पूर्वांचल में प्रसिद्ध है) के मारे हुए हैं। जो स्वस्थ हैं वे अपने अतीत में मुड़ने की अपेक्षा पश्चिम से आगत हिंसा, क्रूरता, सेक्स, नग्नता आदि के अन्धड़ में पड़ रहे हैं। यही लोग नाना प्रकार के कर्माकर्मों की परिसमाप्ति के पश्चात् मन्दिरों को सशरीर समर्पित होते हैं (सकल कर्म करि····)।

आज भी प्रत्येक नवयुवक ब्रह्मचर्य में विद्याध्ययन से ही अपनी इहलीला प्रारम्भ करता है, किन्तु इसकी उद्देश्यहीनता रूपी दलदल में धँसने से बिरले ही बचते हैं। प्रायः जीवन का बहुमूल्य समय इसीमें खप जाता है। जिस तरह बरसा हुआ निस्तेज मेघ अपने हलकेपन के कारण आकाश में निरर्थक भटकता रहता है, उसी प्रकार दीप्तिविहीन ये उदसे लोग शेष समय डोलते रहते हैं। इस अनन्त पयोधि में कहीं कोई मैनाक उभरकर नहीं आता। चक्रव्यूह का अन्तिम द्वार तोड़कर निकलने में असमर्थ बना बहुसंख्यक वर्ग मजबूरन शोधार्थी बनता है—'अर्था न सन्ति न च मुंचति मां दुराशा।' जहाँ की शास्त्रीय परम्परा अर्थ को जीवन का अत्यावश्यक तत्त्व मानती है वहाँके इन बेचारे शोधार्थियों के पास इसीका अपार संकट है। इस आपद्ग्रस्त स्थिति में धार्मिक कृत्यों का कोई सन्दर्भ ही नहीं आता। हाँ युवावस्था में दुष्ट काम अवश्यमेव शरसंधान करके बेधता रहता है। किन्तु इनकी विवशता कुछ कालिदास के यक्ष-प्रकार की है। काम तब तक मनोहारी नहीं होता जब तक वह अर्थ-प्रवाह से सींचा न जाय। इसीलिए काम के अतिशय दबाव के कारण यदा-कदा ये ताक-झाँक करते हैं। और नहीं तो 'सेक्स फ्रस्ट्रेशन' के शिकार होकर रोगी बन जाते हैं। इन दुश्चिन्ताओं के निवारण के हेतु ये मद्य, गाँजा, चरस आदि का सेवन करते हैं और 'फ्रेश' होकर द्यूत क्रीडा रचाते हैं। गम को भुलाने के लिए प्रयोग करने को प्राप्त रसायन को भी पी लेते हैं और थोड़ी देर के लिए इस घुटनभरी दुनिया से निराले बन जाते हैं। भाड़ में जाय प्रयोग और भाड़ में जाय प्रयोगशाला।

इसी समय जब अर्थ पिशाच डाल-डाल छलाँग लगाता रहता है और लाख कोशिशों के होने पर भी पकड़ में नहीं आता, समाज इन पर जुल्म ढाहने में कुछ उठा नहीं रखता। असमय गृहस्थ बनने की स्थिति कितनी आत्मघाती है इसे वही समझ सकता है जो इससे गुजरा हो। हाय! दो-दो आश्रमों का गुरुतर भार, जब एक की ही गठरी नहीं चलती। युवक चरमरा जाते हैं। दिन-रात शास्त्रों की दुहाई देनेवाले ही शास्त्रोलंघन करने में नहीं चूकते। अनर्थकरी विद्या का अन्तहीन क्रम और अर्थ-संग्रह के हेतु चल रहे जीवन-मृत्यु के संघर्ष में उलझकर धर्म और काम ने अपनी प्रकृति बदल दी है। पहले जहाँ ये जीवन यात्रा को सुरुचि-सम्पन्न कर महालक्ष्य की सिद्धि का दावा करते थे, वहीं अब थके-माँदे लोगों को पथ-भ्रष्ट करने पर उतारू हैं। अर्थ-संकट झेलनेवालों के जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणीता

श्री ब्रजकिशोरप्रसाद 'किशोर'

तुम मिली तो मिला जीवन
जिसमें समाविष्ट थे
सत्य, शिव, सुन्दर
दिव्य दर्शन से जिनके
तृप्त लोचन हैं।
× × ×
तुम मिली तो मिला हृदय
जो करुणार्द्र था,
संसर्ग से जिसके
कलुष पाषाण अन्तर का
शीतल हुआ।
× × ×
तुम मिली क्या, मिला
अद्भुत रस,
दुर्लभ था जो
जिसका आस्वादन कर
शुष्क जीवन-द्रुम
पल्लवित हो उठा।
× × ×
तुम मिली बस, मिला सर्वस्व
अधीर सरिता को
मिला भूला किनारा,
मिली विरहिणी निशि को
निविड तम में चाँदनी,
मिला चाँद प्यारा।
होम करने पर तुली थी जो
(सरिता और निशि)
जीवन को
विरह-यज्ञ में
तट के, चाँद के
आज मंत्र-मुग्ध हैं,
आनन्दविभोर हैं।

में धर्म का तो पहले से ही सफाया है। इसके साथ ही काम की भी कम दुर्दशा नहीं है। इसी भाग-दौड़ की स्थिति में भोग-वय की इति हो जाती है। तीस के उपरान्त स्त्रियाँ भी भोग्या न रहकर प्रौढा हो जाती हैं, जिनमें आकर्षण के वे रस नहीं रह जाते। ढलती उम्र में जब अर्थपिशाच फुसलाने पर हाथ आता है तब ये सम्भोगवयगता संगिनियों के साथ धर्म-काम के क्षेत्र में अवतरण करते हैं। किन्तु समय कभी का निकल गया होता है। लोहा अरुण से सेवर हो गया होता है। चोट करने से कोई फलाफल नहीं। अब पछताये होत क्या?

ऋण का खाता खुला ही रह गया। जीवनपर्यन्त अर्धमृत बने रह गये। नीरस भौतिक जीवन से मुक्ति मिलने पर भी सुगति की कोई आशा नहीं। 'भवति विनिपातः शतमुखम्'। इन्हें आवागमन की दारुण यातना भोगना ही लिखा है। मानवोचित उद्देश्यों से वंचित इन्हें धोबी के कुत्ते की जिन्दगी जीना ही बदा है। न यहीं लोक सध पाया और न उसी लोक की कोई आशा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञापन की बाज़ी

श्री वाहिद काज़मी

यों तो शब्द-कोष नाम ही एक विशद शब्द-भांडार है, किन्तु यदि शब्दों की सार्थकता पर गहन विचार किया जाय तो 'बाज़ी' शब्द शायद सबसे अधिक सार्थक शब्द कहलाने का अधिकारी हो सकेगा। कारण, इसका प्रयोग 'खेलने', 'खाने', 'जीतने', 'हारने', 'लेने', 'बदने' में ही नहीं 'खोने', 'पिटने', 'पीटने' वा 'मारने' तक में किया जाता है। भला कहिये इससे अधिक सार्थकता और क्या हो सकती है ?

अभी कुछ अधिक दिन नहीं बीते जब लखनऊ की नवाबी तथा देहली की सुल्तानी का ठाठ उठा नहीं था और लोग बाज़ी का उपयोग अपने शौक के लिए भी किया करते थे। जैसे, मुर्गबाज़ी, कबूतरबाज़ी, तीतरबाज़ी, बटेरबाज़ी, पतंगबाज़ी। किन्तु भ्रान्तिवश आप आतिशबाज़ी को भी इसी श्रेणी में न गिन जाइयेगा। आधुनिक युग में अनेक शब्दों के अर्थ बदल गये हैं या उन्हें किसी और रूप में अपनाया जाने लगा है। अतः जब यह देखा गया कि किसी बाज़ी का शौक़ करने या उसका उपयोग करने पर आर्थिक लाभ के स्थान पर नामवरी के सिवाय कुछ और प्राप्त नहीं होता तब धीरे-धीरे इस प्रकार की बाज़ियों का लोप होता गया और अब तो शायद इनके मूल रूप को पुरानी पुस्तकों में ही देखा जा सकता है।

आजकल जो बाज़ियाँ प्रचलित की गयीं या हो गयी हैं वे हैं नज़रबाज़ी, फिल्मबाजी, फबतीबाज़ी, हुल्लड़बाज़ी, धोखेबाज़ी जैसी बाज़ियाँ। इनसे कुछ प्राप्त है या नहीं यह तो ठीक से कहा नहीं जा सकता लेकिन एक आधुनिक बाज़ी अवश्य ऐसी है जिससे यदि कुछ न हो यह अलग बात है, किंतु यदि कुछ होगा तो 'शुद्ध लाभ' ही, हानि की कोई आशंका नहीं है। यह बाज़ी इतनी अधिक उपयोगी है कि लोगों ने एक स्वर से इसका महत्त्व स्वीकार करके इसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नाना प्रकार से प्रयुक्त करना शुरू कर दिया है। यही है विज्ञापन की बाज़ी।

जी हाँ 'सिविलाइज़्ड (सभ्य) तथा 'कल्चर्ड' (संस्कृत) कहे जाने वाले हम सफ़ेद पोश लोग भले ही इसे 'पब्लिसिटी' कहकर इस शब्द के सौन्दर्य में चार चाँद लगा दें लेकिन है यह भी एक बाज़ी ही है और यह उतनी ही प्रभावक है जितनी कोई सिद्धि या मंत्र।

मेरे एक पड़ौसी थे। देखने-भालने में काफ़ी समझदार भी लगते थे, किन्तु न जाने क्यों उन्हें लेखक बनने की अजीब धुन सवार थी। मुझे नहीं पता कि लेखक बनने की उनमें कुछ प्रतिभा थी या नहीं, (क्योंकि मैंने कभी उनकी कोई रचना नहीं पढ़ी) किन्तु जब भी वह मेरे पास कुछ उदास तथा अनमने भाव से आते तब तब उनके कुछ बोलने से पहले ही मैं अनुमान लगा लेता कि उनकी कोई रचना किसी 'निर्दयी' संपादक ने वापस करके उनके कोमल मन को भारी आघात पहुंचाया है और अब वह इस दर्दनाक घटना का सविस्तर ब्यौरा प्रस्तुत करना चाहते हैं। इसलिए मैं पहले से ही इन संपादकों का रोना रोते हुए उन्हें धीरज बँधाने लगता था।

लेकिन एक बार उन्होंने मुझे घेर ही लिया। बगल में दबी अपनी एक रचना निकालकर बोले, "ज़रा देखिये जी! आखिर इस कहानी में ऐसी क्या बुराई है जो संपादक ने इसे वापस कर दिया है ?"

मैंने सरसरी तौर से उस कहानी पर दृष्टि डाली और मुझ पर यह रहस्य खुलते देर न लगी कि उनमें लेखन-प्रतिभ हो या न हो, किन्तु वे किसी पत्रिका में प्रेस की स्याही से छपा अपना नाम देखने के बड़े उतावले थे। शायद उनके अनुसार उनमें लेखक बनने के लिए यही सबसे आवश्यक गुण था।

मैंने उन्हें समझाया—'आपके विरुद्ध इन संपादकों और प्रकाशकों ने शायद कोई षड्यंत्र रचा है।'

'हाय !' वह चौंके 'क्यों-फिर क्या किया जाय ?'

'प्रतिशोध लीजिये' मैंने झट अपना मत व्यक्त किया।

'प्रतिशोध !' उनकी उत्सुकता की सीमा न रही। 'सो कैसे ?'

'आप निरन्तर प्रयास करते रहिये, किन्तु फिर भी कोई रचनाएँ नहीं छापे तो आप इस हठधर्मी और अन्याय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरुद्ध अपनी रचना प्रकाशित करने की आकांक्षा को कम न होने दीजिये और इसके लिए दूसरे उपाय कीजिये।'

'अर्थात् ? जैसे ?' वह ध्यानपूर्वक सुनते हुए बोले।

"अर्थात् आप इश्तिहारी दवा विक्रेताओं तथा डाक्टरों को प्रमाण-पत्र लिखकर भेजना शुरू कीजिये। सुगन्धित तेलों से लगाकर शक्ति-वर्धक रसायनों और मर्दाना शक्ति बढ़ाने वाली गोलियों तक के विक्रेताओं को आप अपने निजी अनुभव लिख भेजिये। इससे कुछ बहस नहीं कि आपने कोई चीज़ प्रयोग की या नहीं ? मगर आप लिखें कि मैं बिल्कुल गंजा हो गया था। अमुक केशवर्धक तेल ने इतने अधिक बाल उगा दिये हैं कि तीसरे दिन क्षौर कर्म कराने पर विवश हूँ। शक्तिवर्धक रसायन के विषय में लिखिये कि मैं अपने छात्र-जीवन में इतना दुबला-पतला था कि यदि ज़रा तिरछा बैठ जाता था तो मास्टर साहब गलती से मेरी अनुपस्थिति लगा दिया करते थे, किन्तु अब इसके सेवन से मैं पहलवानों के सामने ताल ठोंकने को तैयार हूँ। खोई हुई शक्ति बढ़ाने वाली गोलियों के बाबत बताइये कि तमाम वैद्य-हकीम तथा डाक्टर जवाब दे बैठे थे, मैं आत्म-हत्या तक की बात सोचने लगा था, लेकिन भगवान् भला करे, इन गोलियों ने मुझे नया जीवन दिया है। कमर का दर्द, पेट की गड़बड़ी, रात-रात भर नींद न आना, चेहरे का पीलापन, आँखों के गिर्द काले गढ़े आदि सब इस प्रकार दूर हो गये जिस प्रकार गधे के सिर से सींग। तबियत में नौजवानी के जोश और यौवन के उत्साह ने मुझ साठ साल की उम्र से बहुत पीछे ढकेल दिया है। अब तो कॉलेज की रंगरेलियों में फिर से नाम लिखाने को जी करता है।

विश्वास रखिये, आपके ये अनुभव प्रत्येक उच्च स्तरीय पत्रिका में छपेंगे और आपका नाम देश के कोने-कोने में फैल जायगा। इस प्रकार आप धन तथा यश दोनों ही अर्जित कर सकेंगे और संपादकों से प्रतिशोध भी पूरा होता रहेगा।"

मेरे इस 'व्याख्यान' को वह बड़े ध्यान से सुनते रहे और कुछ देर बाद उठकर चले गये। फिर कभी उनसे भेंट न हो सकी। यह बहुत पहले की घटना है।

एक दिन बैठे ठाले न जाने क्या सनक उठी कि मैं नयी पुरानी पत्रिकाओं के एक ढेर से उलझा हुआ यों ही मन बहला रहा था कि एक विदेशी अंग्रेज़ी पत्रिका में दिये व्यक्तिगत विज्ञापनों के कॉलम में छपे इस विज्ञापन पर मेरी दृष्टि ठहर गयी—

वह सुन्दर, सुसंस्कृत स्मार्ट और सुगठित शरीर वाला नौ-जवान मुझसे शीघ्र भेंट करे जो पिछले शनिवार की रात्रि पिकेडली में मुझसे जबरन टकराया और मेरा चुम्बन कर लिया : अन्यथा मैं अपने मौजूदा प्रेमी से ही शादी कर लूँगी और 'फिर पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत।'

इस विज्ञापन का आशातीत फल निकला या नहीं यह नहीं कहा जा सकता, लेकिन इस प्रकार के अनेक रोचक तथा सरस विज्ञापन उन पत्रिकाओं में दिये हुए थे।

वैवाहिक विज्ञापनों के अन्तर्गत पेरिस के एक पत्र में इस प्रकार का विज्ञापन दिया हुआ था—

मैं एक बूढ़ा लखपति हूँ। शादियाँ मुझे रास नहीं आतीं। मैंने पिछले चालीस वर्षों में छह शादियाँ कीं। दो पत्नियाँ अपहृत हुईं, दो देहान्त कर गयीं और दो अपनी इच्छा से भाग गयीं। अब मैं एक सुन्दरी तथा कुँवारी लड़की से शादी करना चाहता हूँ। मैंने काफी धन-संपत्ति संग्रह कर रखी है। मैं वचन देता हूँ कि अपनी सारी दौलत उसके नाम लिख जाऊँगा। मेरे मरने में कुछ अधिक समय भी नहीं लगेगा क्योंकि मेरा डाक्टर कहता है कि आपका दिल कमजोर है। किसी भी वक्त हृद्गति रुकने से मेरी मौत हो सकती है।

एक साप्ताहिक पत्र में एक संभ्रांत महिला की ओर से यह विज्ञापन दिया गया था—

मैं एक दौलतमंद विधवा हूँ। मेरा शौहर बड़ी पाशविक प्रवृत्ति का आदमी था। उसने जबरन मुझ पर हुकूमत की और मेरा जीना दूभर कर डाला। भगवान् ने अपनी असीम अनुकंपा से मुझे उससे मुक्ति दिलायी। मेरी एक जवान लड़की है। स्वभाव से वह बड़े कोमल मन की है। उसके मिजाज में क्रोध, उत्तेजना, आवेश है ही नहीं। वह आवश्यकता से अधिक आज्ञाकारिणी और बुद्धिमती है। मुझे डर है कि शादी के पश्चात् उसका पति भी कहीं उस पर जुल्मोसितम के पहाड़ न तोड़े। मैं चाहती हूँ कि किसी खूंखार पशु का एक बच्चा खरीदकर उसे सधाने तथा ट्रेनिंग देने के लिए बेबी को सौंप दूँ। अगर वह उस दरिन्दे पर क़ाबू पाने में सफल हो जाती है तो मैं समझूँगी कि वह अपने पति के साथ सुखी रह सकेगी। दरिन्दे का बच्चा जितना भी खौफनाक होगा उतना ही अधिक उसका मूल्य दिया जायगा।

देखा आपने ? बुढ़िया ने क्या बात कह दी। सच है, मनुष्य अपने अनुभवों से ही कुछ सीख सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लन्दन की एक प्रसिद्ध पत्रिका के कुछ अंक हमारे सामने थे। हम उनके विज्ञापन देख रहे थे। एक जगह विज्ञापन यों दिया गया था—

एक उपहार, जिसकी कीमत कुछ भी नहीं। एक नन्हीं मुन्नी छोटी सी हसीन बिल्ली। उम्र दस सप्ताह। रंग रुई के गालों की भाँति नरम और सफ़ेद। शरीर इतना मुलायम कि उस पर हाथ फेरने से मन मस्तिष्क को शांति मिले। आँखें इतनी चमकीली जैसे आकाश में सितारे चमक रहे हों। घर वह इस तरह का चाहती है जहाँ न चूहे हों न चूहेदानी; और न कुत्ता ही हो। बच्चे हों तो अधिक उचित है, लेकिन दो से अधिक न हों और वे दोनों भी लड़कियाँ हों तो अति उत्तम। मकान अच्छे मुहल्ले में स्थित हो जहाँ धनवान व्यापारी या उपाधिप्राप्त व्यक्ति आबाद हों। रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो। कालीन, ग़लीचे, फर्श आदि सुकोमल हों। गृहस्वामी की आय कम से कम चालीस गिनी प्रति सप्ताह होनी आवश्यक है।

एक और पत्रिका में एक इस्टेट ब्रोकर द्वारा दिये गये किराये के लिए' विज्ञापन बार-बार नज़र से गुज़रे। एक में कहा गया था—

एक अच्छे इलाक़े की साफ़ सुथरी तथा नव-निर्मित बिल्डिंग की तीसरी मंज़िल। तीन बड़े कमरे और एक विशाल बरामदा भी। बगल के मकान में एक हसीन नाज़नीन नर्तकी रहती है। दोनों बरामदों के मध्य में कोई दीवार या नज़रों के लिए कोई ओट नहीं है। डांसर न केवल स्टेज पर अपितु घर में भी अर्धनग्न वस्त्रों में रहने में निपुण है। मकान के शयन कक्ष (बेड रूम) की खिड़की से उसके शयन कक्ष का नज़ारा स्पष्ट दिखायी पड़ता है। आम तौर से नर्तकी अपने बरामदे में सुबह के समय अर्धनग्न नृत्य या नृत्य का अभ्यास करती है। शरीफ इतनी है कि अपने पड़ौसी की ताक-झाँक या छेड़-छाड़ पर नाक-भौंह चढ़ाने या आपत्ति करने की उसे आदत नहीं है।

मकानों के एक अन्य विज्ञापन में विवरण इस प्रकार का दिया गया था—

बाजू के पड़ौसी सज्जन एक धनाढ्य व्यक्ति हैं। उनकी पत्नी का देहान्त हो चुका है। वह अकेले रहते हैं। बहुत ही शिष्ट तथा सत्कार करने वाले व्यक्ति हैं। बड़ी जल्दी ही घुल-मिल जाते हैं। औरतों से विशेष आत्मीयता से पेश आते हैं। पार्टियाँ देने के बड़े शौकीन हैं और प्रत्येक पार्टी में पड़ौसी को अवश्य बुलाते हैं। शराब के ऊंचे रसिया हैं। बढ़िया से बढ़िया तथा पुरानी से पुरानी शराब का स्टाक हमेशा घर में रखते हैं और अपने मेहमानों का उससे सत्कार भी करते हैं।

एक और विज्ञापन भी इन चुटीले विज्ञापनों से कुछ कम दिलचस्प न था। वह इस तरह से दिया था—

एक बड़ा शानदार फ्लैट। पड़ोस में एक बुढ़िया रहती है, जो शक्ल-सूरत से शैतान की ख़ाला प्रतीत होती है। आवाज़ अत्यन्त कर्णकटु। जब बोलती है तब डर लगता है और जब हँसती है तब दहशत का संचार होता है। ऊधमी से ऊधमी बच्चे भी उससे डरते हैं। समय समय पर वह अपने बरामदे में टहलती रहती है। इसलिए शरारती बच्चे भी घर से बाहर पैर नहीं रखते हैं। यों स्वयं वह बच्चों के पास नहीं आती, लेकिन दूर दूर से उन्हें डराया करती है।

रोज़गार के इच्छुकों की ओर से दिये गये विज्ञापनों की कोई कमी न थी। इस विषय के भी अनेक विज्ञापन पढ़ने को मिले। नमूने के रूप में केवल दो ही यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं। पहला इस प्रकार का था—

छात्र-जीवन में बेहद शरारती था। न सिर्फ अपने साथियों का बल्कि गुरुजनों तक का नाक में दम किये रहता था। कोर्स की पुस्तकें पढ़ने का कभी चाव ही न रहा। सो कोई डिग्री न ले सका। इसीलिए हर तरह का बड़ा विशद ज्ञान और अनुभव रखता हूँ। बेकार से बेकार तथा घटिया से घटिया वस्तु फ़ौरन बेच सकता हूँ। लोगों को मूर्ख बनाने में जवाब नहीं रखता। ज़बान कतरनी की भाँति चलती है और मौक़े के अनुसार शब्द स्वयं ही फिसले चले आते हैं। इतना धाराप्रवाह बोलता हूँ कि दूसरे को अपनी बात कहने का मौक़ा ही नहीं मिल पाता। योरुप की कई भाषाएँ अपनी मातृ-भाषा के समान बोल लेता हूँ। औरतों को अपनी ओर आकृष्ट करने में उस्ताद हूँ और उन्हीं के हाथों फालतू चीज़ें बेचकर मनमाने दाम वसूल करता हूँ। बस परीक्षा प्रार्थित है।

दूसरा विज्ञापन यह था—

मैं एक नवयौवना सुन्दरी हूँ। मेरा माप ३४-२२-३५ है, कद पाँच फुट सवा चार इंच, वज़न एक सौ दस पाउंड, चेहरा गोल तथा आँखें बड़ी, बड़ी कटीली, गहरी नीली हैं। जब चाहती हूँ मुस्कराती हूँ और जब दिल चाहता है क़हक़हे लगाती हूँ। मेरी मुस्कान और चितवन पर मर्दों के दिल लोटन कबूतर बन जाते हैं। मेरी आवाज़ वायलिन के स्वरों से मिलती हुई है। चाल ऐसी कि दिलों पर साँप लोट लोट जायँ। मतलब यह कि इन्हीं गुणों के कारण प्रत्येक मर्द मेरे करीब आना और मुझसे रोमांस की पैंगें बढ़ाना चाहता है। किसी आफ़िस के स्वागत कक्ष में, प्रायवेट सेक्रेट्री अथवा सेल्स गर्ल के रूप में सफलता की गारंटी तक दे सकती हूँ।

शायद मैं उपर्युक्त विज्ञापनों की लच्छेदार बातों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन कविताएँ

श्री भवानीशंकर

(१) अमृत-दीप

नागिनी हवाएँ जब
उगल रही होती हैं
जहरीला अंधकार,
अक्सर तब
अन्तरंग देहरी पर
नन्हा-सा अमृत-दीप
कोई रख जाता है।

(२) बाँसुरी

प्यार भी विस्मरण हो गया।
दर्द भी विस्मरण हो गया।
तुम बजाते रहे बाँसुरी,
शुद्ध अन्तःकरण हो गया।

(३) न जाने कब

तुम्हारे पास
प्यार की दियासलाई है,
मेरे भीतर एक दिया है
बुझा हुआ।
न जाने कब
तुम उसे जलाओगे!
न जाने कब मुझे
उजाले से मिलाओगे!

———

चटाखेदार संकेतों में ही खोया रहता कि इतने में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की एक अंग्रेजी पत्रिका मेरे हाथ पड़ गयी। आरंभ के कुछ ही पृष्ठ पलटते ही मेरी दृष्टि पूरे पृष्ठ पर दिये हुए एक छोटे से विज्ञापन पर ठहर गयी। तार का पता, दो चार फोन नम्बरों, ब्रांच तथा हैड आफिस के पतों के सहित लिखा था—

व्यापार, व्यवसाय, प्रेम, नौकरी, मकान, विवाह या किसी भी कार्य में शत-प्रतिशत सफलता पाने हेतु; दक्षिणी ध्रुव से उत्तरी ध्रुव तक अपने नाम का डंका पीटने के लिए और आशा से कहीं अधिक यश-कीर्ति तथा धन कमाने के लिए सदैव स्मरण रखें और सम्पर्क करें—इंटरनैशनल श्योर सकसेज़ पब्लिसिटी ऐंड एडवरटाईज़िंग ब्यूरो।

किन्तु जिस बात ने मुझे चकित कर डाला और जिसे मैं आँखें फाड़े देखता रहा वह न तो उस फर्म का नाम था, न विज्ञापन के शब्द, बल्कि सुनहरे अक्षरों में छपे 'प्रोपाइटर' शब्द के ऊपर दिया हुआ एक रंगीन चित्र था। यह चित्र मेरे पड़ौसी उन्हीं सज्जन का था, जिनकी चर्चा मैं प्रारंभ में ही कर चुका हूँ। अब मुझ पर यह भेद भी खुला कि यह सारे विज्ञापन इसी फर्म द्वारा प्रकाशित किये गये थे।

मैंने सोचा और मैं सोचता ही रह गया कि इसे कहते हैं अपनी प्रतिभा का सही उपयोग करना। एक हम हैं, चुग़द कहीं के, जो साहित्यिक और गंभीर लेखन के पचड़ों में दुबले हुए जाते हैं और कोई टके सेर को नहीं पूछता और एक वह है जो केवल कुछ शब्दों तथा वाक्यों को लिखकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त सस्था का मालिक बना बैठा है और वह भी इस तरह कि

'रिंद के रिंद रहे हाथ से जन्नत न गयी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणिज तथा वानस्पतिक तैल

प्रो० पुरुषोत्तमदास स्वामी, एम० एस्-सी०, एम० एस०, विशारद

प्राणिज एवं वानस्पतिक तैलों, वसाओं तथा मोम का उपयोग औद्योगिक कार्यों में पुरातन काल से होता आया है। चर्म को चिकना करके नरम बनाने में तैलों तथा वसाओं का उपयोग चर्म व्यवसाय में आदिकाल से ही होता रहा है। इसी प्रकार साबुन तैयार करने में तैलों तथा वसाओं का उपयोग काफी पुराने समय से चला आ रहा है। मुद्रण कला, पेंट व्यवसाय एवं संश्लेषित उद्यास उद्योग में भी तैलों की माँग काफी बढ़ चुकी है। इनके अतिरिक्त आजकल इनका उपयोग वनस्पति घी के बनाने में प्रचुर मात्रा में होने लगा है। वनस्पति घी तैलों के हाइड्रोजनीकरण द्वारा बनाया जाता है।

प्राणिज तथा वानस्पतिक तैल, वसाएँ तथा मोम वसाम्ल वर्ग के प्रांगारिक अर्थात् कार्बनिक अम्लों के ऐस्टर हैं। ऐस्टर अम्ल तथा अलकोहल के संयोग से बनता है और साथ ही उसमें पानी अलग हो जाता है। ये तैल तथा वसाएं विभिन्न प्रकार के वसाम्लों की ग्लिसरोल अर्थात् ग्लिसरीन के साथ प्रतिक्रिया के फलस्वरूप निर्मित ऐस्टर हैं। इनमें ग्लिसरीन अलकोहल है। मोम इन्हीं वसाम्लों के ऐस्टर हैं; पर इनके बनने में अलकोहल ग्लिसरीन न होकर कोई दूसरा होता है। वसाम्ल मुख्यतः इन चार वर्गों में विभाजित किये गये हैं :—

(१) संपृक्त अम्ल वर्ग। यथा, स्टियरिक अम्ल।

(२) तैलीय अम्ल वर्ग। यथा, ओलियक अम्ल। यह वर्ग अंशतः असंपृक्त है। इसमें हाइड्रोजन के दो परमाणुओं की कमी रहती है।

(३) असंपृक्त वर्ग। यथा, लिनोलियक अम्ल। इस वर्ग में चार हाइड्रोजन परमाणु कम होते हैं।

(४) अधि-असंपृक्त वर्ग। यथा, लिनोलेनिक अम्ल। इसमें छः हाइड्रोजन परमाणु कम रहते हैं।

संपृक्त अम्ल वर्ग के ग्लिसरीन ऐस्टर, जिन्हें ग्लिसराइड कहते हैं, ओलियक वर्ग के ग्लिसराइडों की अपेक्षा ऊँचे तापमान पर पिघलते हैं। वसा में ग्लिसरो स्टियरेट अधिक तथा ग्लिसरो ओलियेट कम होता है। तैल में ग्लिसरो ओलियेट ही मुख्यतः होता है। इसमें ग्लिसरो स्टियरेट बहुत कम मात्रा में रहता है। ग्लिसरीन त्रिहाइड्रिक वर्ग का अलकोहल है। इसके ऐस्टर बनाने में यदि एक ही प्रकार का अम्ल काम में लिया गया हो तो इस प्रकार निर्मित ऐस्टर—यथा, ग्लिसरो ट्राई स्टियरेट जिसे स्टियरीन कहते हैं, कठोर होता है। यह ७२° सेंटीग्रेड तापमान पर पिघलता है। यदि ऐस्टर के निर्माण में दो या अधिक विभिन्न अम्ल प्रयुक्तहुए हैं तो इस प्रकार बना ऐस्टर नरम होता है। ग्लिसरो डाई स्टियरेट-मोनोपामिटेट ६३° सेंटीग्रेट पर ही पिघल जाता है। ऐस्टर निर्माण की प्रतिक्रिया इस प्रकार होती है—

$$\begin{array}{l} CH_2OH \\ | \\ CHOH \\ | \\ CH_2OH \\ \text{ग्लिसरीन} \\ \text{(अलकोहल)} \end{array} + 3 \; C_{16}H_{32}O_2 \rightarrow \begin{array}{l} CH_2-OC.H_{32}C_{16} \\ | \\ CH-OC.H_{32}C_{16} \\ | \\ CH_2 \quad OC.H_{32}C_{16} \\ \text{ग्लिसरो ट्राई पामिटेट (ऐस्टर)} \end{array} + \begin{array}{l} 3\,H_{20} \\ \text{जल} \end{array}$$

पामिटिक अम्ल (वसाम्ल)

प्रत्येक वसा या तैल में कई वसाम्ल होते हैं। कभी-कभी तो यह संख्या छः से भी अधिक पहुँच जाती है। मिश्रित ऐस्टर जटिलता को और बढ़ा देते हैं। उदाहरण के लिए ग्लिसरो डाई स्टियरेट मोनोपामिटेट को लिया जा सकता है। इसी कारण बहुत से तैल एवं वसाएँ ऐसी हैं जिनका रासायनिक संघटन अभी निश्चित नहीं किया जा सका है।

आगे मुख्य वसाम्लों का उनके कुछ गुणों के सहित उल्लेख किया जाता है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग 'क'— नाम	संपृक्त श्रेणी के वसाम्ल सूत्र	द्रवणांक	सरल ट्राई ग्लिसराइड ऐस्टर का द्रवणांक	तैल या वसा
ब्युटिरिक अम्ल	$C_4 H_8 O_2$	द्रव	द्रव	मक्खन ४%
कैप्रिक अम्ल	$C_{10} H_{20} O_2$	३१·३°सें	द्रव	मक्खन, खोपरे का तैल
लौरिक अम्ल	$C_{12} H_{24} O_2$	४३·६	४७	खोपरे का तैल ४५%
माइरिसिटिक अम्ल	$C_{14} H_{28} O_2$	५३·८	५६·५	मक्खन २२%
पामिटिक अम्ल	$C_{16} H_{32} O_2$	६२·६	६५	खजूर का तैल, लार्ड
स्टियरिक अम्ल	$C_{18} H_{36} O_2$	६९·३	७२	सब वसाएँ
कारनौबिक अम्ल	$C_{24} H_{48} O_2$	७४	—	कारनौबा मोम
केरोटिक अम्ल	$C_{26} H_{52} O_2$	७८	७६·५	मधु मोम
मेलिसिक अम्ल	$C_{30} H_{60} O_2$	९०	८९	,,
वर्ग 'ख'—अंशतः असंपृक्त श्रेणी के वसाम्ल (इनमें दो हाइड्रोजन परमाणु कम होते हैं।)				
ओलियक अम्ल	$C_{18} H_{34} O_2$	१४	द्रव	जैतून का तैल, तिल तैल ७०%
ऐरूसिक अम्ल	$C_{22} H_{42} O_2$	३३	३१	मत्स्य तैल, राई का तैल
वर्ग 'ग'—असंपृक्त श्रेणी के वसाम्ल (इनमें चार हाइड्रोजन परमाणु कम होते हैं।)				
लिनोलियक अम्ल	$C_{18} H_{32} O_2$	—	—	बिनौले का तैल तथा सोयाबीन का तैल
वर्ग 'घ'—अधि-असंपृक्तश्रेणी के वसाम्ल। (इनमें छः हाइड्रोजन परमाणु कम होते हैं।)				
लिनोलेनिक अम्ल	$C_{18} H_{30} O_2$	—	—	अलसी का तैल १०%
आइसो-लिनोलेनिक अम्ल	$C_{18} H_{30} O_2$	—	—	अलसी का तैल ६०%

मुख्य वानस्पति तैल ये हैं :—बिनौले का तैल, अलसी का तैल, जैतून का तैल, तिल का तैल, मक्की का तैल, सरसों का तैल, मूँगफली का तैल, राई का तैल, खोपरे या नारियल का तैल, ताड़ का तैल तथा एरंड का तैल। निस्सारण का तरीका इन सब के लिए एक-सा है। छानकर तथा फटक कर साफ करने के बाद तिलहन को कुचलकर पहले ऊँचे किस्म के तैल के लिए ठंढा ही घानी में पेरा जाता है और फिर प्राविधिक किस्म के लिए गर्म करके दबाया जाता है। कुचले हुए पिंड में से विलेयकों की मदद से तैल को फिर निःसृत किया जाता है। खाने योग्य तैल की पहली किस्म का खाद्य के रूप में तथा दूसरी का प्राविधिक कार्यों में प्रयोग होता है। साबुन दूसरी किस्म से तैयार किया जाता है। खाने में प्रयुक्त तैल के लिए आकर्षक तथा उसमें अच्छी महक का होना जरूरी है। उसमें किसी प्रकार की दुर्गंध असह्य होती है। यह साधारणतः हलका पीला होता है। खाने के तैलों में तिल, सरसों, जैतून, मक्की, मूँगफली तथा बिनौले के तैल होते हैं। अलसी के तैल का मुख्य उपयोग वार्निश तथा पेंट व्यवसाय में होता है। राई का तैल स्नेहन कार्य के लिए और खोपरे तथा खजूर का तैल मुख्यतः साबुन बनाने में काम आता है। वानस्पतिक वसाएँ अधिकतर कृत्रिम होती हैं। ये बिनौले, तिल तथा खोपरे के तैल के हाइड्रोजनीकरण से बनायी जाती हैं।

प्राणिज तैल एवं वसाओं में ह्वेल मछली का तैल, मत्स्य तैल, लार्ड तथा लार्ड तैल, गाय, भेड़ तथा बकरी की चर्बी, मछली के जिगर के तैल, स्पर्म तैल, द्रव मोम आदि परिगणित होते हैं। मछलियों के तैल साबुन बनाने में, लार्ड तथा लार्ड का तैल खाद्य पदार्थ के रूप में; चर्बी तथा मछली-जिगर तैल, औषधनिर्माण में तथा स्पर्म तैल एवं द्रव मोम स्नेहन के लिए प्रयुक्त होते हैं।

इनके अतिरिक्त सुरभिमय तैल भी होते हैं जो आसवन द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। ये पेड़-पौधों के फूलों, पत्तियों, जड़ों, छालों तथा बीजों से तैयार किये जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। सुरभिमय तैलों का प्रयोग शृंगार प्रसाधन के अतिरिक्त सुगंधित साबुनों के निर्माण में भी किया जाता है।

तेलों में मिलावट की जाँच करने के लिए कई प्रकार के परीक्षण किये जाते हैं। मोगीने परीक्षण में गंधक के अम्ल को मिलाकर उससे उत्पन्न ताप को मापा जाता है। स्वफेनन परीक्षण में यह पता लगाया जाता है कि वसाम्ल के पोटैसियम लवण बनाने में कितना कॉस्टिक पोटैस लगता है। खनिज तैल, मिलाये गये प्राणिज या वानस्पतिक तैल में यह पदार्थ अधिक मात्रा में नहीं लगता। आयोडीन मान में असंपृक्तता का पता चल जाता है। आपेक्षिक घनत्व तथा वर्त्तनाङ्क ज्ञात करके तैल की शुद्धता की जाँच की जा सकती है। तैल का रंग हलका करने के लिए उसमें मुलतानी मिट्टी मिलाई जाती है। इसके लिए हड्डियों का कोयला, अवक्षिप्त बालुका आदि का प्रयोग भी किया जाता है। इसके बाद छन्ने से उसे छान लिया जाता है।

यहाँ पर विभिन्न प्रकार के वानस्पतिक एवं प्राणिज तेलों, वसाओं तथा मोम का विवेचन किया जायगा।

वानस्पतिक तैल

अलसी का तैल—यह तैल अलसी के बीजों से निकाला जाता है। इसके लिए कुचले हुए अलसी के बीजों को गर्म पानी में पीसा (पेरा) जाता है। खली के टुकड़े करके उसका चूरा बना लिया जाता है। इस प्रकार निःसृत तैल को छान लिया जाता है। यह छाना हुआ तैल ही कच्चा तैल कहलाता है। इसका रंग पीला-भूरा होता है। इसका परिशोधन ताप द्वारा तथा मुलतानी मिट्टी मिलाकर तथा छानकर किया जाता है। इसकी सांद्रता बढ़ाने के लिए तैल फूंका जाता है। उसे गर्म करके उसमें कुछ काल तक हवा फूंकी जाती है। इसके बाद इसे छान लिया जाता है। यह तैल हवा में रखे जाने पर कड़ा हो जाता है, पर सूखने की यह क्रिया बड़ी मन्द गति से होती है। अतः इसमें तीव्रता लाने के लिए शीशे, मैंगेनीज या कोबाल्ट के ऑक्साइड को थोड़ी मात्रा में मिलाकर कम किये गये दाब में तैल को गर्म किया जाता है। यह अलसी का उबाला हुआ तैल है जो कुछ घंटों में ही सूख जाता है। ताजे अलसी के तैल का खाद्य पदार्थ के तौर पर भी प्रयोग किया जाता है, पर अधिकतर इसे पेन्ट तथा वार्निश उद्योग में काम में लिया जाता है।

मूँगफली का तैल—मूँगफली में ४३-४६% तक तैल रहता है। इसे पीस (पेर) कर इस तैल को निकाला जाता है। इस तैल को तिल के तैल, सरसों के तैल या जैतून के तैल के स्थान पर काम में लिया जा सकता है, पर यह उतना अच्छा नहीं होता। प्रथम निस्सारण का तैल खाने में तथा दूसरे दो निस्सारणों का तैल, जो ऊँचे तापमान पर प्राप्त होता है, प्राविधिक कार्यों में प्रयुक्त होता है। इसको जमा कर वनस्पति घी बनाया जाता है।

जैतून का तैल—खाद्य पदार्थ के रूप में यह बड़ा अच्छा तैल है। इसकी महक मन को लुभानेवाली होती है। जैतून के फल में ३५-६०% तक तैल रहता है। फलों को पकने से ठीक पहले तोड़कर इकट्ठा कर लिया जाता है। ऊँचे किस्म का तैल बिना गर्म किये फलों को पेरकर निकाला जाता है। फलों को कभी तो गुठली सहित और कभी उसे निकालकर पेरा जाता है। जैतून के तैल का रंग हलका पीला होता है। निम्न कोटि के तैल का उपयोग साबुन बनाने में किया जाता है। प्राविधिक किस्म के तैल में वसाम्ल स्वतंत्र रूप से २०% तक होता है, पर उच्च कोटि के तैल में यह एक प्रतिशत से भी कम मात्रा में मिलता है। जैतून के तैल में मुख्यतः ओलियक अम्ल के ग्लिसरीन-ऐस्टर होते हैं। यह हवा में रखे जाने पर सूखनेवाले तैलों में से नहीं है।

सरसों का तैल—यह तैल स्वाद में कड़वा होता है। यह सरसों के बीजों को पेरकर निकाला जाता है। इसे अधिकतर खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयोग में लिया जाता है। तिल के तैल की अपेक्षा इसका प्रचलन अधिक है।

तिल का तैल—यह तिलों को पेरकर निकाला जाता है। ऊँचे किस्म के तैल का उपयोग रसोईघर में खाद्य पदार्थ तैयार करने में तथा वनस्पति घी बनाने में और निम्न कोटि के तैल का उपयोग साबुन बनाने में किया जाता है। इसकी खली पशुओं को खिलायी जाती है।

राई का तैल—यह तैल राई के बीजों के निस्सारण से बनता है। राई के बीजों में तैल की मात्रा ४०-४५% होती है। खली पशुओं को खिलायी जाती है। इस तैल में चिपचिपापन नहीं होता। अतः खनिज तैल में मिलाकर मिश्रित स्नेहक के रूप में इसका उपयोग किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मक्के का तैल—जब मक्के से श्वेतसार बनाया जाता है तब अष्टि उपफल के रूप में मिलती हैं जिन्हें पेरकर तैल प्राप्त किया जाता है और खली चारे के साथ पशुओं को खिला दी जाती है। मक्के की अष्टियों में ५०% तैल रहता है। इसका शीत विधि से निस्सारण किया जाता है। इसका रंग हलका पीला होता है तथा इसमें कुछ गंध रहती है। गंध को परिशोधन क्रिया द्वारा दूर किया जाता है। अच्छे किस्म का तैल खाने में तथा निम्न कोटि का तैल साबुन बनाने में और कुछ अंश तक पेंट तथा वार्निश तैयार करने में काम आता है।

ताड़ का तैल—ताड़ के ताजे फल को थोड़ा गर्म करने के बाद पेर करके तैल निकाला जाता है। यह मक्खन जैसा हल्का पीला होता है। इसे दक्षिण अफ्रीका के लोग खाने के काम में लेते हैं। तैल अधिकतर जमीन में छेद करके उसमें फल को डालकर सड़ाने के बाद फल को पेर कर या पानी के साथ उसे उबालकर प्राप्त किया जाता है। उबालने से तैल ऊपर उठ आता है और उसे अलग कर लिया जाता है। इस प्रकार का तैल मुख्यतः साबुन बनाने में प्रयुक्त होता है।

बिनौले का तैल—बिनौलों से निःसृत तैल का उपयोग अधिकतर वनस्पति घी बनाने में किया जाता है। बिनौलों में तैल की मात्रा २०%तक होती है। एक किलोग्राम कपास से दो (?) किलोग्राम बिनौले मिलते हैं। इसे कठोर साबुन के बनाने के काम में लिया जाता है। यह तैल हवा में रखे जाने पर धीरे-धीरे सूखकर कड़ा पड़ जाता है। इसे अर्ध-शोषक तैलों की श्रेणी में रखा गया है। कच्चे तैल का रंग लाल या भूरा होता है। इसे कास्टिक सोडे के घोल में मिलाकर गर्म करके परिशोधित किया जाता है। विरंजन के लिए मुलतानी मिट्टी मिलाकर इसे छान लिया जाता है।

खोपरे का तैल—नारियल के पेड़, भारत, फिलेपीन, दक्षिण अमेरिका, श्रीलंका आदि देशों में होते है। नारियल के फल को सुखाने पर खोपरा बनता है। इससे ६०° सेंटीग्रेड पर तैल का निस्सारण किया जाता है। यह खाद्य पदार्थ की तरह प्रयुक्त होता है। शृंगार प्रसाधन में भी इसे काम में लिया जाता है। खली का उपयोग जानवरों को खिलाने में किया जाता है।

सोयाबीन का तैल—सोयाबीन में तैल की मात्रा २०% होती है। इसकी खेती अधिकतर मंचूरिया में की जाती है। वहाँ तैल भी निकाला जाता है। तैल निस्सारण के लिए फलियों को भाप द्वारा गर्म किया जाकर पेरा जाता है। यह तैल भी अर्धशोषक तैलों में से है। इसका उपयोग वार्निश बनाने तथा साबुन निर्माण में किया जाता है।

एरंड का तैल—एरंड के पेड़ के बीजों को कुचलकर इस तैल का निस्सारण किया जाता है। इन बीजों में तैल की मात्रा ४५-५०% तक होती है। शीत प्रदाब विधि से निःसृत प्रथम श्रेणी के तैल का उपयोग दस्तावर दवा के तौर पर किया जाता है। अन्य श्रेणियों का तैल स्नेहन के लिए खनिज स्नेहकों के साथ मिलाकर काम में लिया जाता है। यह सूखनेवाला तैल नहीं है। लेकर तथा सैल्यूलायड में यह अभिघटक के रूप में प्रयुक्त होता है। एरंड के पौधे उष्ण कटिबंध के देशों में, जिनमें भारत भी है, उगाये जाते हैं। घुलनशील एरंड तैल, जिसे तुकी लाल तैल भी कहा जाता है। एरंड के तैल में समाहृत गंधक का अम्ल ३५° सेंटीग्रेड के नीचे मिलाकर बनाया जाता है। इसमें थोड़ा पानी मिलाया जाता है। हलका अम्ल नीचे की परत में बैठ जाता है जिसे हटा लिया जाता है। इसमें अब अमोनिया इतनी मात्रा में मिलाया जाता है कि वह अवशिष्ट अम्ल के निष्फलन के लिए तो काफी नहीं होता पर इससे तैल का पानी में साफ घोल बन जाता है। यह रँगने के लिए वस्त्रों को तैयार करने में प्रयुक्त होता है।

चीन काष्ठ तैल या तुंग तैल—इसके बीज छोटी नारंगी के आकार के होते हैं। इनमें ५३% तुंग तैल होता है। इन्हें घानी में पेरकर इनका ४०% तैल निकाल लिया जाता है। इस तैल को चीन देश में नावों की लकड़ी पर लगाकर उसे जल के लिए अभेद्य कर दिया जाता है। इसी कारण से इसे चीन का काष्ठतैल कहा जाता है। इस तैल का उपयोग वार्निश बनाने में किया जाता है। अलसी के तैल की अपेक्षा यह एक तिहाई अवधि में ही सूख जाता है और प्रकाश में इसका कुछ नहीं बिगड़ता। यह मुख्यतः ईलियोस्टियरिक अम्ल का ग्लिसरीन-ऐस्टर है।

प्राणिज तैल तथा वसाएँ

ह्वेल मछली का तैल—पहले इस तैल का उपयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलाने में किया जाता था। अब पेट्रोलियम से बने पदार्थों ने इसका स्थान ले लिया है। एक बड़ी ह्वेल मछली में १०० से १८० बैरल तैल निकलता है। इस तैल का उपयोग चमड़ी को चिपुड़ने, लालटेन या लैंप जलाने व साबुन बनाने में तथा खनिज तैल के साथ मिलाकर स्नेहक के तौर पर किया जाता है। इस तैल को हाइड्रोजनीकरण द्वारा वसा में भी परिणत किया जाता।

मत्स्य-तैल—साल्मन, हेरिंग तथा अन्य मछलियों के सब के सब या चुने हुए भाग को पानी में उबालने से तैल ऊपर उठ आता है और अलग कर लिया जाता है। बर्तन में बचे अवशिष्ट भाग का उपयोग खाद के रूप में किया जाता है। मत्स्य-तैल का प्रयोग सस्ते पेंट में अलसी के तैल के स्थान पर अंशतः किया जाता है। तैल की हाइड्रोजनीकरण से चर्बी बनाकर साबुन उद्योग में उसका उपयोग किया जा सकता है।

कॉड मछली का तैल—यह तैल कॉड मछली के जिगर से बनाया जाता है। जिगर को भाप द्वारा गर्म करके तैल का निस्सारण किया जाता है। प्रथम कोटि के तैल में ए तथा डी विटैमिन प्रचुर मात्रा में रहते हैं। अतः इसका उपयोग दवा के तौर पर किया जाता है। इस तैल का उपयोग चर्म-व्यवसाय में भी होता है। हैलिबट, ट्यूना तथा शार्क मछली के जिगर से भी तैल निकाला जाता है। औषध विज्ञान में ये तैल काफी महत्त्वपूर्ण माने गये हैं।

सूकर वपा तथा तैल—सुअर की चर्बी को पानी के साथ मिलाकर लोहे के बने बन्द बर्तन में दाब डालकर गर्म किया जाता है। पकाने के बाद द्रव को अलग से लेकर ठंढा किया जाता है। द्रव भाग सूकर वपा तैल तथा ठोस भाग सूकर वपा होती है। इस तैल को ओलियो भी कहते हैं। इससे ओलियो मार्जरीन बनाया जाता है जो विदेशों में मक्खन के स्थान पर प्रयुक्त होता है।

टैलो—टैलो से अभिप्राय मुख्यतः गाय की चर्बी से है। इसे भी सूकर वपा की तरह बनाया जाता है। भेड़ व बकरी की चर्बी से भी टैलो तैयार किया जाता है। इससे साबुन बनाया जाता है।

मक्खन—गाय के दूध में वसा विद्यमान होती है। दूध या दही से मंथन क्रिया द्वारा उत्पन्न छोटे-छोटे वसा कणों के एकत्र होकर मिलने से मक्खन बनता है। इसमें थोड़ा नमक मिला दिया जाता है। मक्खन का उपयोग खाने में किया जाता है। इसमें मक्खन वसा ६३% होती है। शेष भाग पानी तथा नमक है। मक्खन प्राप्त करने के लिए मथानी से दूध या दही को मथा जाता है या फिर केन्द्रापसारी पृथक् कारक यंत्र का उपयोग किया जाता है।

मोम

स्पर्म तैल—स्पर्म ह्वेल मछली के सिर के एक रंध्र में विद्यमान पदार्थ से यह तैल निकाला जाता है। इस तैल को ठंढा करने पर इसमें ठोस मोम जम जाता है, जिसे स्पर्मसेटी कहते हैं। इसका उपयोग औषधनिर्माण तथा मोमबत्ती बनाने में किया जाता है। इस तैल का प्रयोग हलके, तीव्रवेग चालित यंत्रों के स्नेहन के लिए भी होता है। राई के तैल के समान यह भी चिपचिपा नहीं होता। इस तैल में मुख्यतः सिटिल पामिटेट ऐस्टर होता है। सिटिल अलकोहल ग्लिसरीन की तरह ट्राई हाइड्रिक न होकर मोनोहाइड्रिक होता है।

कार्नुबा मोम—यह ताड़ के पेड़ की पत्तियों में पाया जाता है। ताड़ के ये पेड़ ब्रेजील में होते हैं। इसका द्रवणांक काफी अधिक ऊँचा अर्थात् १०५° सेंटीग्रेड है। इस मोम का उपयोग वार्निश तैयार करने, फर्निचर की पॉलिश करने तथा जूतों की पॉलिश बनाने में किया जाता है। यह कार्बन कागज में भी प्रयुक्त होता है। कार्नुबा मोम कठोरतम मोम है।

मधु-मोम—यह मधुमक्खी के छत्ते से प्राप्त होता है। इसे धोकर तथा विरंजित करके साफ किया जाता है। उद्योग एवं व्यवसाय में इसका अधिक महत्त्व नहीं है।

तैलों का हाइड्रोजनीकरण—तैलों का हाइड्रोजनीकरण उत्प्रेरक की विद्यमानता में किया जाता है। इस प्रकार द्रव तैल कठोर बनकर ठोस खाद्य पदार्थ बन जाते हैं। अधिकतर तिल, बिनौला व मूँगफली के तैलों का हाइड्रोजनीकरण होता है। मत्स्य तैल को परिदृढ़ करने के लिए भी इस विधि को अपनाया जाता है। फिर उससे साबुन व स्टियरिक अम्ल के स्थानापन्न पदार्थ बनाये जाते हैं।

व्यावसायिक प्रक्रिया में तैल में निकल धातु का महीन चूरा डालकर उसे १२०° से १५०° सेंटीग्रेड तक गर्म किया जाता है और उसमें हाइड्रोजन गैस फूँकी जाती है। चूरे के स्थान पर निकल धातु की जाली तैल में लट-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काई जा सकती है । तैल को खूब हिलाया जाता है। निकल के चूरे की मात्रा तैल के परिमाण का ०·५—१% होती है। इस काम के लिए धातु के स्थान पर उसका ऑक्साइड प्रयुक्त हो सकता है जो हाइड्रोजन गैस द्वारा शीघ्र ही धातु में अपचायित हो जाता है, पर अपचयन का कार्य अलग से कर लिया जाय तो अधिक ठीक रहता है। निकल की अपेक्षा पैलेडियम धातु अधिक अच्छा उत्प्रेरक है। इसका अनुपात तैल के एक लाख भाग में एक भाग होता है। इससे प्रतिक्रिया कम तापमान पर होने लगती है और जल्दी समाप्त हो जाती है। पर बहुत कीमती धातु होने के कारण इसका उपयोग बहुत कम किया जाता है।

इस प्रक्रिया में प्रयुक्त हाइड्रोजन गैस का शुद्धरूप में होना आवश्यक है और इसे तैल में उसी गति से डालना चाहिए जिस वेग से उसका शोषण हो रहा हो। इस क्रिया में असंपृक्त ग्लिसराइड हाइड्रोजन के परमाणुओं को लेकर संपृक्त बन जाते हैं। ग्लिसरोट्राई ओलियेट इस तरह-ग्लिसरोट्राई स्टियरेट में परिणत हो जाता है। हाइड्रोजनीकरण प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक असंपृक्तता पूर्णतः मिट नहीं जाती। इस तरह बनी वसा कठोर होती है जो सामान्य तापमान पर नहीं पिघलती, पर वनस्पति घी ऐसा होना चाहिए जो शरीर के तापमान से नीचे ताप पर ही पिघल जाय। इसलिए हाइड्रोजनीकरण वहीं रोक दिया जाता है जब अपेक्षित द्रवणांक वाली वसा बन जाती है ।

उत्प्रेरक के आधार के लिए डाई-ऐटममय मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। हाइड्रोजनीकरण प्रतिक्रिया ताप उत्क्षेपक है। अतः इसके शुरू हो जाने पर तैल के कुछ भाग को ठंढा करना आवश्यक हो जाता है। ऐसा उसे बाहरी प्रशीतन वेष्टन में ले जाकर किया जाता है।

प्रक्रिया के समाप्त हो जाने पर इस प्रकार बनी वसा को ठंढा करके छन्ना-संपीड में छाना जाता है और उसकी महक को पिघली वसा में कार्बन डाइ-ऑक्साइड मिलाकर तथा एक घण्टे तक १३०° सेंटीग्रेड तक गर्म करके दूर किया जाता है। महक को मिटाने के लिए अन्य उपयुक्त विधि का प्रश्रय भी लिया जा सकता है। अब ठढा करने पर नर्म ठोस अर्ध-संश्लेषित वसा बन जती है। उत्प्रेरक को तैल में मिलाकर फिर से काम में लिया जाता है।

यदि बिनौले के तैल का पूर्ण हाइड्रोजनीकरण कर दिया जाय तो उस तरह प्राप्त वसा ६२° सेंटीग्रेड तापमान पर पिघलती है। वनस्पति घी बनाने में हाइड्रोजनीकरण को ३४-३५° पर पिघलनेवाली वसा बन जाने पर रोक दिया जाता है।

सतत हाइड्रोजनीकरण विधि भी ढूँढ़ निकाली गयी है। इसका श्रेय बोल्टन तथा लक्ष को है। इस विधि में उत्प्रेरक का काम तार की बनी छबड़ी में रखे निकल धातु के तार या खरादन करते हैं। यह छबड़ी हाइड्रोजनीकरण यंत्र में डाल दी जाती है। ऊपर से गर्म तैल यंत्र में पहुँचता है और हाइड्रोजन के गैस नीचे से यंत्र में भेजी जाती है।

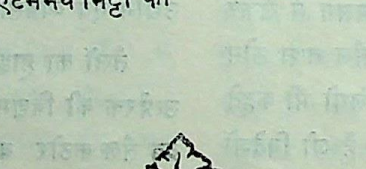

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बँगला के अमर कवि श्री मधुसूदन

श्री निशीथकुमार राय

बँगला साहित्य के अमर कवि माइकेल मधुसूदन दत्त ने आज से सौ साल पहले रावण के लिए आँसू बहाने का साहस किया था और अपनी अमर कृति मेघनाद वध द्वारा पाठकों के हृदय में राक्षस कुल के प्रति समवेदना का संचार किया था।

मधुसूदन मेधावी थे और बचपन से ही पढ़ाई में तेज थे। उनके पिता मुंशी राजनारायण अच्छे वकील थे और फारसी में माहिर थे। इसीलिए लोग उन्हें मुंशी कहा करते थे।

माइकेल मधुसूदन का जन्म जशोहर जिले के सागर दाँडी गाँव में २५ जनवरी १८२४ ई० को हुआ था। उनके पिता ने उन्हें कलकत्ते के हिन्दू स्कूल में दाखिल कर दिया था। हिन्दू स्कूल के प्रिंसिपल मि० रिचार्डसन मधुसूदन से स्नेह करते थे। उन्हींके प्रोत्साहन से मधुसूदन ने बहुत कम उम्र में ही इतनी अंग्रेजी सीख ली थी कि उसमें कविता लिख लेते थे और वह उन दिनों के पत्रों में प्रकाशित भी होती थी। वे इतनी अच्छी अंग्रेजी लिखते और बोलते थे कि कदाचित् अंग्रेज भी वैसा लिख और बोल न सकते थे। तथापि बाद में मधुसूदन ने मिल्टन को अपना आदर्श बनाया और अपने बेटे का नाम मिल्टन रखा था फिर भी बचपन में बायरन ही उनके आदर्श थे। वे स्वयं 'युरेशियन बायरन' कहलाते थे।

बायरन के समान वे भी बड़े प्रेमी थे और भाग्य का भी कि बायरन के सदृश उनका जीवन भी सार्थक सिद्ध नहीं हुआ था। दो छोटे भाइयों के मर जाने और माँ-बाप के अकेले पुत्र होने के कारण अधिक लाड़-प्यार में पलने से वे जिद्दी तथा उच्छृंखल स्वभाव के हो गये थे।

उनके हृदय में यह दृढ़ विश्वास था कि आगे चलकर वे अंग्रेजी का प्रसिद्ध कवि बनूँगा। जाने क्यों उन्हें गलत-फहमी थी कि यदि एक बार मैं किसी प्रकार यूरोप जा सकूँ तो अमर कवि बन जाऊँगा। मजे की बात यह है कि यूरोप जाने के बाद फिर उन्होंने उल्लेख योग्य कुछ नहीं लिखा और उनकी अमर कृतियाँ यूरोप जाने से पहले ही लिखी जा चुकी थीं।

यह भी नियति का परिहास था कि वे अमर कवि बने, पर अंग्रेजी में नहीं बल्कि उसी बँगला भाषा में जिसको वे करीब-करीब भूल चुके थे और जिसके प्रति उन्हें अवज्ञा थी। वे घर वालों को पत्र लिखने से कतराया करते थे, क्योंकि बँगला में पत्र नहीं लिख पाते थे।

हिन्दू स्कूल में एक ओर जहाँ उन्हें अंग्रेजी यत्नपूर्वक पढ़ायी गयी वहीं उनमें मातृभाषा एवं भारतीय संस्कृति तथा धर्म के प्रति अनास्था पैदा की गयी थी। शराब पीना, मांसादि खाना 'कलचर' का लक्षण समझा जाता था। उन दिनों बंगाल के अंग्रेजीदाँ नवयुवक अंग्रेजों के अवगुणों का अंधानुकरण करना फैशन समझा करते थे।

उन सस्ती के दिनों में मधुसूदन ने एक अशर्फी देकर अपने बाल अंग्रेजों की तरह कटवा कर सहयोगियों को चमत्कृत कर दिया था।

एक तो मधुसूदन बचपन से ही अंग्रेजी सहित्य की ओर झुके थे फिर हिन्दू स्कूल के अंग्रेज शिक्षकों के साथ और उनकी शिक्षा ने उनमें अंग्रेजियत कूट-कूटकर भर दी थी।

मधुसूदन ने अठारह साल की उम्र में ही अंग्रेजी में कविता लिखना आरम्भ कर दिया था। उनकी एक कविता से कुछ पंक्तियाँ सुनिये—

They ask me why I fade and pine
And seem oppressed with woe
They say what care now can be mine
To cloud my youthful brow.

मधुसूदन ने अंग्रेजी में सुन्दर गाथा 'कैप्टिव लेडी' (Captive Lady) लिखी थी। उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा उन दिनों मद्रास के एडवोकेट जनरल श्री नार्टन ने की थी।

परन्तु अंग्रेजी कविता लिखकर किसी भारतीय के लिए मशहूर होना या परिवार पालना असम्भव था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुसूदन को उन दिनों के लाट साहब ड्रिंक वाटर बेथून ने भी अंग्रेजी के बदले मातृभाषा में लिखने की राय दी थी। उनके सहयोगी और बचपन के मित्र गौरदास बसाक ने उन्हें ठीक ही लिखा था—We do not want another Byron or another Shelley in English, what we lack is, a Byron or Shelley in Bengali Literature. (हमको अंग्रेजी में दूसरे बायरन या शेली की आवश्यकता नहीं। हमें जिसकी कमी है वह है बँगला साहित्य में बायरन या शेली की।)

मधुसूदन के माँ-बाप ने उनकी शादी एक कायस्थ परिवार की लड़की से तय की थी, पर मधुसूदन अंग्रेज महिला से विवाह करना चाहते थे। उन्हें गलतफहमी थी कि ईसाई बनने से मैं शायद आसानी से विलायत जा सकूँगा। इन्हीं दो कारणों से अल्हड़ उम्र में उन्होंने जो कुछ किया उसका परिणाम उन्हें जीवन भर भोगना पड़ा था।

९ फरवरी १८४३ ई० को मधुसूदन ने अपना धर्म त्यागकर ईसाई धर्म अपना लिया। इसका फल यह हुआ कि उनके माँ-बाप, आत्मीय जन सभी ने उनको त्याग दिया। इस प्रकार समाज से बहिष्कृत होकर मधुसूदन सुदूर मद्रास चले गये। वहाँ पहले-पहल उन्हें पता चला कि अभाव किसे कहते हैं। वहाँ उन्होंने अध्यापन एवं संवादपत्र में नौकरी करके अपना खर्च चलाया। वहीं उन्होंने अपना पहला अंग्रेजी काव्य कैप्टिव लेडी (Captive Lady) लिखा था, जिसकी तारीफ वहाँके एडवोकेट जनरल मि० नार्टन ने की थी। उन्हींकी मदद से मधुसूदन ने वहाँ एक स्काच कुमारी रेबेका मैक्टामिस से शादी भी कर ली। पर यह विवाह सुखद नहीं हुआ और उन्होंने पत्नी को तलाक दे दिया। इसके बाद हेनरियेटा नामक महिला से उन्होंने विवाह किया था और उन्हींके साथ शेष जीवन बिताया।

उन दिनों कलकत्ते में बड़े-बड़े अफसरों, वकील-बैरिस्टरों को नाटक खेलने का शौक था। अंग्रेजी नाटक खेले जाते थे। वहाँके बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के मेम्बर मिण्टोरेन्स, बोर्ड के सेक्रेटरी पार्कर, बैरिस्टर ध्यूम आदि नाटक में भाग लेते थे। मि० रिचार्डसन अपने छात्रों को भी नाटक देखने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे। अंग्रेजी नाटक का मज़ा केवल अंग्रेजी जाननेवाले दर्शक ले सकते थे। इसलिए महाराजा यतीन्द्र मोहन, राजा ईश्वरचन्द्र सिंह आदि ने निश्चय किया कि बँगला नाटक खेले जाने चाहिए। पर खेलने लायक बँगला नाटक कहाँ? बँगला के नाटक अधिकतर रद्दी ही नहीं, बल्कि अश्लील भी थे। मधुसूदन ने जब बँगला में नाटक लिखने का बीड़ा उठाया तब लोग हँसे थे क्योंकि मधुसूदन बँगला भूल चुके थे।

पर मधुसूदन साधारण आदमी नहीं थे। किसी भाषा को सीख लेना उनके बायें हाथ का खेल था। छः यूरोपीय और चार स्वदेशी भाषाओं में वे इतना अधिकार रखते थे कि उन्हें केवल लिख-पढ़ ही नहीं सकते थे, बल्कि उनमें कविता भी रच सकते थे। उनका व्यक्तित्व महान् था और निःसन्देह वे संसार के श्रेष्ठ मनीषियों में एक थे। वे एक साथ चार-पाँच लिखनेवालों को बैठाकर चार-पाँच नाटक लिखवाते थे। प्रत्येक को एक-एक वाक्य कहते चलते थे। विभिन्न भावों को हृदय में सँजोकर एक साथ व्यक्त करना उन्हींके लिए सम्भव था।

मधुसूदन ने शीघ्र ही बँगला में पद्मावती, शर्मिष्ठा एवं कृष्णकुमारी नामक नाटक लिख डाले। अंग्रेजीदाँ मधुसूदन अब बँगला से इतने प्रभावित थे कि अपनी पुत्री का नाम उन्होंने शर्मिष्ठा रखा था। बँगला में उन्होंने 'सानेट' लिखे और एक नये छन्द अमित्राक्षर का प्रवर्तन किया। उन्होंने सरस्वती की वन्दना की—

रेखो मा दासेरे मने, ए मिनति करि पदे
साधिते मनेर साध, घटे यदि परमाद
मधुहीन कोरो ना गो तव मनः कोकनदे।

अर्थात् मा सरस्वती इस दास को याद रखना, यही बिनती तुम्हारे चरणों में करता हूँ। यदि हृदय की इच्छा को पूरा करने में भूल-चूक हो तो भी अपने कमलरूपी हृदय को मधुहीन न करना।

यहाँ मधु शब्द को दो अर्थ में लिखा गया है।

मधुसूदन का अमर काव्य 'मेघनाद वध' मेघनाद की मृत्यु पर आधारित है। इस काव्य में राक्षसों को भी इंसान के रूप में देखा गया है। विविध भाषाओं के गम्भीर अध्ययन से जो ज्ञान उन्होंने पाया था उसीका फल था कि बँगला में वे अमर कृतियाँ लिख सके। मेघनाद वध काव्य पाश्चात्य महाकाव्यों के ढंग पर रचित है।

इस काव्य में मेघनाद की माता चित्रांगदा देवी का

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित्र सर्वथा नवीन है। जब रावण चित्रांगदा को मेघनाद के मरने पर सान्त्वना देने चले और बोले—

विलाप कमु ए देवि साजे को तोमारे
देश वैरी नाशि रने पुत्रवर तव, गेछे चलि स्वर्ग पूरे
वीर माता तुमि। वीरकर्मे हत, पुत्र हेतु कि उचित क्रन्दन ?

अर्थात्, देवि, यह विलाप तुम्हें शोभा नहीं देता। देश के वैरी का नाश करके तुम्हारा बेटा रणक्षेत्र में मर कर स्वर्ग गया है। तुम वीर माता हो। वीरकर्म में निहत बेटे के लिए रोना क्या उचित है ?

इसके उत्तर में चित्रांगदा देवी ने जो कुछ कहा है वह भी बड़ा भावपूर्ण है। उन्होंने पति से कहा—

देश वैरी नाशे जे समरे, शुभक्षणे जन्म तार।
धन्य बले मानि हेन वीर प्रसूनेर प्रसु भाग्यवती
किन्तु भेवे देख नाथ, कोथा लंका तव, कोथा से अयोध्यापुरी।
किसेर कारने, कोन लोभे कहो राजा एसेछे ए देशे राघव।
तव हैम सिंहासन आसे जुझिछे कि दाशरथी
वामन हैया के चाहे धोरिते चाँदे ? तबे देश रिपु केन
तारे बल बलि ?

अर्थात्—जो देश वैरी का नाश समर में करता है उसका जन्म शुभ क्षण में होता है।
ऐसे वीर को गर्भ में धारण करनेवाली माता को मैं धन्य मानती हूं।
परन्तु सोच कर देखें नाथ, कहाँ लंका और कहाँ है अयोध्यापुरी।
किस कारण, किस लालच से, कहो राजा, राघव इस देश में आया है ?
क्या तुम्हारे स्वर्ण सिंहासन को लेने के लिए दाशरथी जूझ रहा है ?
वामन होकर भला कौन चाँद पकड़ना चाहेगा ? फिर उसे देशरिपु क्यों कहते हो ?

मधूसूदन अपनी सम्पत्ति बेचवा कर किसी तरह विलायत रिस्टरी पढ़ने गये। परन्तु वहाँ उन्हें अर्थाभाव के कारण ड़ी तकलीफें उठानी पड़ीं और विद्यासागर महोदय की कृपा से वे दुर्गति से छुटकारा पा सके। उन्होंने विद्यासागर को लिखा था—विद्यासागर का हृदय बंगाल की माताओं के हृदय-जैसा कोमल है।

वैरिस्टरी का पेशा उनके जैसे उदार-मना, स्वाधीन-चेता से चल नहीं सकता था। वे भी नहीं चला पाये। एक बार किसी मित्र के आत्मीय का काम करने पर जब वह फीस देने लगा तब उन्होंने नहीं ली। बोले, जैसे मित्र-वर के रिश्तेदार वैसे मेरे भी हैं। मैं आपसे पैसे नहीं ले सकता। पर उनके चले जाने के बाद मित्र से बोले, "भाई, पैसे की कमी के कारण आज घर में खाना नहीं पका। तुम अगर मेरी पत्नी को पाँच रुपये देकर भोजन बनवाने को कह देते तो मुझे समय से आहार मिल जाता।"

मधुसूदन का अन्तिम जीवन दरिद्रता में बीता। कितने ही दिन अनाहार एवं अर्धाहार से उन्होंने बिताये। पर अर्थाभाव उनकी प्रतिभा को म्लान नहीं कर सका। अन्त में वे खैराती अस्पताल में बीमारी की हालत में दाखिल हुए। उनकी पत्नी हैनरियेटा तीन दिन पहले ही स्वर्ग सिधार गयी थी और भग्नहृदय मधुसूदन तीन दिन के बाद २९ जून, रविवार सन् १८७३ ई० को महानिद्रा में सो गये।

यह कलंक बंगाल एवं भारतवासियों के माथे से कभी नहीं मिटेगा कि उनका युगप्रवर्त्तक कवि, वर्तमान बंगला भाषा का जनक गरीबी में घुल-घुलकर अनाथों के साथ दातव्य चिकित्सालय में मरा !

मधुसूदन अपनी समाधि पर उत्कीर्ण करने के लिए स्वयं ही लिख गये थे—

"पथिक, पल भर रुको यदि बंगाल में जन्मे हो—
यहाँ माता की गोद में जिस तरह शिशु विराम लेता है
उसी तरह
धरती के चरणों में महानिन्द्रा में सोया हुआ है उनका लाड़ला
बेटा दत्तकुल का मधुसूदन....."*

*आकाशवाणी—इलाहाबाद के सौजन्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई सुनता नहीं

डा० महेन्द्रनाथ पाण्डेय

पावस के आते ही कोकिल चुप हो गया। उसने देखा कि अब तो दादुरगण ही वक्ता हो गये हैं। जब मेरी कोई सुनता नहीं है तो क्यों न चुप्पी साध ली जाय ? और वह चुप हो गया। पंडितराज जगन्नाथ ने उसे सान्त्वना दी, मित्र कोकिल, चुपचुप इन दिनों के दर्द को पी जाओ। प्रतीक्षा करो उस दिन की जब कोई 'मिलदलिमालः आम्र-मंजरी विकसित होगी'। कोकिल के बहते आँसू थम गये। उसने सोचा, पंडितराज पते की बात बोलते हैं।

लेकिन आज की दशा विचित्र है। आज चौराहे-चौराहे, नुक्कड़-नुक्कड़ दादुरगण चिल्ला रहे हैं--"हमारी कोई सुनता नहीं है। इन फासिस्ट कोकिलों ने व्यवस्था को ऐसा मोड़ दिया है कि हम चीख भी नहीं पा रहे हैं। इन बुर्जुआ राजहंसों ने मृणालों पर आधिपत्य जमा रखा है।" आज चारों ओर से अजान सुनायी पड़ रही है—'मेरी कोई सुनता नहीं।'

कमल-सर में विहरनेवाले मरालों के प्राण आज संकट में हैं। दादुरों ने कमल-सर पर धावा बोल दिया है। वे योजनाबद्ध होकर चिल्ला रहे हैं, "दुनिया वालो, हमारी सुनो। वन्ली वी आर जिन्युइन। ये बुजुर्ग बुर्जुआ राजहंस ! इन्हें गोली मार दो। ये शोषक हैं। ये चुक गये हैं। ये रुकी हुई नदियाँ हैं। हम रज वीर्य में लिप्त इन बुजुर्गों को 'रिजेक्ट' करते हैं। (साठोत्तरी साहित्य में भाषा की ऐसी ऐयाशी खूब हो रही है) और वह वीणापाणि सरस्वती ....? उसका झोंटा पकड़कर खींच लो। उसकी वीणा को तोड़ दो। हरदम रोमाण्टिक तान ही बजाती है ! उसके मराल की गर्दन ऐंठ दो। वह बराबर सत्-असत् विवेक करता रहता है और थमा दो सरस्वती के हाथों में झाड़ू और बाल्टी। कल से सरस्वती को डोमड़ों की कालोनी में झाड़ू लगानी है। साहित्य देउवा को आदेश सुनाओ कि उसे कविता की टोकरी में भर भर के डोमड़ों की कालोनी का मल अपनी भैंसा गाड़ी में लादना है। उसे सामंती पूँजीवादी ठाट अब छोड़ना होगा।"

दादुरों के इस जेहाद को सुनकर महिषदेव सहायता के लिए दौड़े चले आये हैं। उन्होंने कमल-सर में उतर करके मड़िया मारना शुरू कर दिया है। सभी सहृदय रसिक शहीद हो गये हैं। सरस्वती भंगियों की कालोनी में झाड़ू लगा रही हैं !

कल पंडित विमलबुद्धिजी से मुलाकात हो गयी थी। वे दुखी थे, चिंतित भी। आज सोमारी नाई की आँखों में व्यक्त प्रतिहिंसा को उन्होंने भाँप लिया है। हुआ यह कि पंडितजी कालिदास की मेघमाला के साथ उड़ते हुए विरहिणी यक्षिणी से मिलने अलका जा रहे थे, तब तक सोमारी आ गया। अपना मुर्चाया हुआ छुरा जमीन पर पटकते हुए उसने कहा, "बाभन देवता, कबौ हमरियो पै तो पसीजो ? हमने आपको इतनी कविताएँ सुनायी हैं लेकिन आपने अब तक कभी सिर नहीं हिलाया। मेरी रचनाओं पर मेरी बिरादरी वालों को नाज है। पंडितजी ! ई ठीक ना करत हो। हम रजिस्टर्ड ना हई त का हो गइल ? हमरियौ रजिस्ट्रेशन करि लेव।"

सोमारी चला गया। पंडितजी जानते हैं कि सोमारी को कालिदास का बाप तक कहने वालों का अभाव नहीं है, लेकिन वे यह नहीं समझ पाते हैं कि कालिदास की मेघमाला के साथ उड़नेवाले अपने मन को वे कैसे सोमारी की रुक्ष, कन्फ्यूज्ड भ्रमित एवं अर्थहीन मृतप्राय तुकबन्दियों में बाँधें ? वे कैसे उस पर 'वाह-वाह' और 'आह-आह' करें। इधर सोमारी है कि गला फाड़-फाड़कर चिल्लाये जा रहा है—"मुझे कोई समझता नहीं। मेरी कोई सुनता नहीं। मुझपर कोई ध्यान नहीं देता। मुझे सिर्फ सुन करके समझना आसान नहीं है।"

ऐसे माहौल में मुझे याद आ रहे हैं वेद व्यास। उन्हें भी इस बात की पीड़ा थी कि कोई मेरी सुन नहीं रहा है। वेदव्यास बाँह उठा-उठाकर चिल्लाते रह गये कि सबके मूल धर्म का पालन करो लेकिन किसी ने सुना नहीं। क्रोध हँकड़ता ही रहा, 'सूच्यग्रं न दास्यामि।'

लेकिन वेदव्यास की और आज की पीड़ा में फर्क है। वेद-व्यास अपने युग के विवादी व्यक्तित्व थे। श्रीकृष्ण को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षा-गीत

श्री भँवरसिंह सहवाल 'व्याघ्रपज्ज'

मेघों के झुण्ड आये
आयी बरसात रे !
अल्हड़-सी बीजुरिया
नीर भरे मटके ले
थिर-थिर-थिर नचती है;
कजरी या गूजरिया
धुन पर वह बूँदों के
छन्द नये रचती है ।
आयी है सज धज कर
किसकी बारात रे !
नभ की यह छप्परिया
दुखड़े की दुकड़ी-सी
झर-झर कर झरती हैं;
वसुधा की विरहनिया
कोने में सिकुड़ी-सी
सी-सी सिहरती है ।
चुप-चुप वह सहती है
कितना संघात रे !
बादल की पाती है
जीवन की थाती है,
प्रीतम के दीपक-से
मनवा की बाती है
लाता पवन डाकिया
गाता गलियों में
आयी है याद कोई
भूली-सी बात रे !

भरी सभा में गाली बकनेवाला शिशुपाल था भी, लेकिन वेदव्यास के साथ ऐसी बात नहीं थी । उन्हें सुनते तो सभी थे, लेकिन उसे गुननेवाला कोई नहीं था । उनकी समस्या सुनने की नहीं, गुनने की थी । आज समस्या सुनने की है । जब सभी सुनानेवाले ही हैं तब कौन किसकी सुने और क्यों सुने ? सुनानेवालों के पास चूँकि 'इन्ट्रिंजिक वैल्यू' का अभाव है इसलिए ये चिल्ला रहे हैं । समानधर्मियों (?) का संघटन तैयार कर रहे हैं । इन्ट्रिंजिक वैल्यूवाले आदमी का चौतरफ बहिष्कार हो रहा है । ये दादुरगण कल से, छल से, बल से, चाहे जैसे भी हो, अपनी बात सुनायेंगे ही । आप यदि नहीं सुनना चाहते हैं तो स्थान छोड़िए । इनका सारा ध्यान स्थान पर ही केन्द्रित है । आपको यह बात भूल गयी है क्या, 'पंडित सोइ जो गाल बजावा ?' गोष्ठीबाजी और गोट्टीबाजी में बड़ा दम होता है । आज का मूल मंत्र है—'करी कूपद गाई सूपद ।'

चारों ओर वातावरण में उग आयी नागफनी । चिचियाते और टर्राते दादुरगण ! एक संवेदनशील आदमी क्या करे ? उसे सान्त्वना देते हुए रसखान ने कहा था :

सुनिये सबकी कहिये न कछू रहिये इमि या भव बागर में ।
करिये ब्रत नेत्र सचाई लिये जितते तरिये भव सागर में ।
मिलिये सबसों दुर्भाव बिना रहिये सत संग उजागर में,
रसखानि गोबिन्दहि यों भजिये जिमि नागरि को चित गागर में ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूतियाँ

फरवरी १९७१ में अपोलो १४ अभियान के सदस्य के रूप में मुझे चन्द्रमा पर चलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरी दिलचस्पियों ने बाह्य अवकाश से बढ़ फैलकर आन्तरिक अवकाश में समेट लिया। जब मैं चन्द्रमा पर उतरा तब इसका आरम्भ हुआ। असीम आकाश में तैरते हुए पृथ्वी ग्रह को निहारने के अद्भुत अनुभव से—विशाल काले आकाश में तैरते हुए छोटे से इस श्वेत नीलमणि के गजब के सौन्दर्य के दर्शन से। मैं धार्मिक अनुभूति-जैसी तीव्र अनुभूति से गुजरा, जिसमें दिव्य तत्त्व की उपस्थिति मुझे साक्षात-सी प्रतीत हुई। और मैंने जाना कि ब्रह्मांड में जीवन का अस्तित्व किसी अललटप प्रक्रिया पर निर्भर नहीं है। मैंने जाना कि ब्रह्मांड का कोई अर्थ है। कोई दिशा है। दृश्यमान सृष्टि के पीछे कोई अदृश्य आयाम (शक्ति) है जो इसे बुद्धि-संगत व्यवस्था और जीवन को कोई उद्देश्य प्रदान करती है।

फिर मेरे विचार पृथ्वी के नित्यप्रति के जीवन की तरफ मुड़े। मैंने अनुभव किया कि इस क्षण मनुष्य लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं, हत्याएँ और अपराध कर रहे हैं, झूठ बोल रहे हैं, धोखा दे रहे हैं और सत्ता एवं पद के लिए संघर्ष कर रहे हैं, जल एवं वायु को गँदला कर रहे हैं, विषयासक्ति और लालच के वशीभूत हैं। यह भी मुझे दुःखदायी रूप से स्पष्ट हुआ कि लाखों-करोड़ों मनुष्यों के गरीबी-बीमारी, दुःख-दैन्य और लगभग गुलामी की हालत भोगने का बहुत बड़ा कारण है आर्थिक शोषण, राजनैतिक शासन, धार्मिक एवं जातीय अत्याचार। तकनीकी के तमाम चमत्कारों के होते हुए भी विज्ञान मनुष्य की स्वार्थपरायणता से उत्पन्न इन समस्याओं से पार पाने में अब तक सफल नहीं हो सका है—शायद अपने वर्तमान रूप में वह सफल हो भी नहीं सकता है।

मनुष्य निरा मांसपिंड से अधिक कुछ और भी है। उसका ऐसा कोई आयाम है जो उसे व्यक्ति-सत्ता से परे परम व्यक्ति की कोटि में पहुँचा देता है।

—एडगर डी० मिशैल

(इंस्टीट्यूट आफ नोएटिक साइंसेज, पालो आल्टो, कैलीफोर्नियाँ, संयुक्त राष्ट्र अमरीका के संस्थापक और अध्यक्ष।) 'साइकिक एक्सप्लोरेशन' 'सैटर्डे रेव्यू' से उद्धृत।

× × ×

मैं नास्तिक नहीं हूँ, लेकिन बहुत से क्षेत्रों में लोग मुझे नास्तिक समझते हैं। ज्योतिर्जगत् और भौतिक विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान ज्यों-ज्यों बढ़ता जा रहा है त्यों-त्यों प्रभु का अस्तित्व स्पष्ट होता जा रहा है और वह समय दूर नहीं जब हम अपने प्रभु को इस ब्रह्माण्ड में ढूँढ़ निकालेंगे। **बिना धर्म के विज्ञान लँगड़ा है और बिना विज्ञान के धर्म अन्धा है।**

—(भौतिक विज्ञान में नोबुल पुरस्कार विजेता) डा० सी० बी० रामन्

× × ×

आजकल नास्तिकता बुरी तरह बढ़ रही है। हम सब को संघटित होकर इसका सामना करना चाहिए। विज्ञान के क्षेत्र में काम करनेवाले हम सब भाई हैं। असली विज्ञान का बीज बोनेवाला वही है जिसने इतने सुन्दर ढंग से सृष्टि की रचना की है और इसकी जानकारी करने के लिए हमको इतनी सुन्दर अनुभूति दी है।

—(स्विटजरलैंड के सुप्रसिद्ध प्राणि-विज्ञान-वेत्ता) डा० राहम

× × ×

जिस सबसे सुन्दर और गहन भाव की हमें अनुभूति होती है वह है रहस्यवादिता का संवेदन। सच्चे विज्ञान का बीज बोनेवाला वही है। जिस व्यक्ति के लिए यह भावना सर्वथा अपरिचित है और जो इसको देख कर चकित नहीं रह जाता और श्रद्धायुक्त विस्मय से सम्मोहित नहीं होता वह मृत व्यक्ति के समान है। वह जानता है कि जो हमारे लिए 'अभेद्य' है वह 'अस्ति' है। वह अपनी अभिव्यक्ति सर्वोच्च ज्ञान के रूप में और श्रेष्ठतम सौन्दर्य के रूप में करता है, जिसकी अनुभूति हमारी कुंठित क्षमता सबसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन रेखायें

श्री आशोपुरी

अतीत

अनायास,
बिन घन का
वज्रपात हुआ ।
कल्पना के तार
झन-झना उठे ।
अनुभूतियाँ,
कुंठित हो गयीं ।
गरल का घट
असमय में ही फूटा ।

वर्त्तमान

जीवन सलिला की
एक तरणी ।
आशा का प्रतिबिम्ब,
जीवन रूपी इमारत की
ठोस नींव ।
अतीत, भविष्य और वर्त्तमान की
एक अद्‌भुत कल्पना ।
थोड़ी सी सावधानी में,
नौका पार ।

भविष्य

प्रतीक्षा की बेला
पावस में वसन्त ,
सावन की विरहिणी की
यह तृप्ति ।

खोया-सा मन,
उजड़ा-सा चमन,
मन रूपी भौंरों का
यह पराग ।

आदिम रूप में करती है । यह ज्ञान और यह भावना ही सच्चे 'धर्म' के केन्द्र में ही होती है ।

—अल्बर्ट आइस्टीन

× × ×

प्रत्येक सत्य विद्या और प्रत्येक पदार्थ (ठोस, द्रव या गैस) का आदि मूल पर ब्रह्म परमेश्वर ही है । (प्रत्येक पदार्थ का आदि मूल न्यूट्रोन, प्रोट्रोन और इलैक्ट्रोन ही है ।)

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

× × ×

आधुनिक विज्ञान हमारे धर्म पर बड़ी तीव्र गति से हमला कर रहा है । इससे लोहा लेने में हमारे वेद ही समर्थ हैं । विज्ञान के नित्य नये निकलनेवाले चमत्काररूपी लोहे के हथौड़ों के प्रहारों से हमारी प्राचीन मान्यताएँ चीनी मिट्टी के ढेरों की तरह चूर-चूर हो रही हैं ।

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

अगर ईश्वर को खोजना है तो उसे मनुष्य के अन्दर खोजो । अन्य पदार्थों की अपेक्षा देवत्व मानव के अन्दर अधिक होता है और वह भी अन्धे, लँगड़े, लूले, दुर्बल, गरीब और निराश्रित मनुष्य के अन्दर ।

—रामकृष्ण परमहंस

ईश्वर सब लोगों के अन्दर है लेकिन संसार के लोग ईश्वर में नहीं हैं इसीलिए सब लोग दुखी हैं ।

—रामकृष्ण परमहंस

× × ×

मनुष्य ही ईश्वर का साक्षात् रूप, साकार मन्दिर है । अतः इसी की पूजा करनी चाहिए ।

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

दीन हीन निराश्रित प्राणी ही परमात्मा के सर्वप्रथम पूजनीय रूप हैं ।

—श्री गुरुजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए तुम दोस्त जिसके दुश्मन उसका आस्माँ क्यों हो ?

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

वेश्याओं का अस्तित्व सदैव रहा है। पहले भी यह संगीत, नृत्य, चित्रकला में तो पारंगत होती ही थीं, काव्य, पुराण आदि में भी निपुण होती थीं। इनके मादक-यौवन पर वशीभूत राज्यों के उच्चपदाधिकारी ही नहीं, शासक और राजकुमार भी इनकी अट्टालिकाओं में निःसंकोच जाते रहते थे। किन्तु ये जिसके मादक नयनों का सुरापान कर लेती थीं, उसीके रूप-यौवन और पुरुषत्व पर आत्म-समर्पण कर देती थीं।

रूप-लोलुप राज्याधिकारी, श्रीमंत, कलाकार, विद्वान् आदि इनकी रूपछटा पर न्योछावर होने आते थे, किन्तु असफल वापिस लौट जाते थे। इनके अस्तित्व पर राज्यों को गर्व होता था कि हमारे राज्य में भी ऐसी अनुपम विश्व-सुंदरियाँ विद्यमान हैं। ऐसी ही नगरवधुओं में आम्रपाली, कोशा आदि अनेक ख्यातिप्राप्त गणिकाएँ हुई हैं।

लेकिन सामन्ती युग के शासकों की रुचि जैसे-जैसे विलासिता की ओर बढ़ती गयी, वैसे-वैसे गणिकाएँ भी शारीरिक व्यवसाय करने लगीं।

१७०७ ई० में, औरंगजेब की मृत्यु के बाद से मुग़ल-शासन के नेस्तो नाबूद होने यानी १८५७ ई० तक डेढ़ सौ वर्षों में नाममात्र के नौ बादशाह राज्याधिकारी हुए। इन बादशाहों ने प्रजा की भलाई करने और शासन को सुचारु रूप से चलाने के बजाय अपना समस्त जीवन सुरापन और कहारियों, भटियारियों, मीरासिनों, कुंजड़िनों, डोमनियों और वेश्याओं के दामे फरेब में बरबाद कर दिया।

जहाँदारशाह (१७१२-१३ ई०)—लालकुँवर नाम की वेश्यापुत्री पर बुरी तरह आसक्त था। हर समय सुरापान में बदमस्त वह लालकुँवर के पहलू में पड़ा रहता था। परिणामस्वरूप डोम, मिरासी दरबार में छा गये। उसके एक भाई को सप्तहजारी और दूसरे को पंचहजारी अमीर बना दिया गया। लालकुँवर के संकेत पर शाही सिक्कों में उसका नाम अंकित कराया गया और शाहजादों की आँखें निकलवा दी गयीं। जहाँदारशाह की ग्यारह-बारह बेगमों में एक अनूपबाई कुलीन राजपूतनी भी थी। उसे लालकुँवर की निर्लज्जता न भाती थी। अतएव जब जहाँदारशाह और लालकुँवर आमोद-प्रमोद में लीन थे, उसने वहाँ पहुँचकर लालकुँवर के नाक-कान काट दिये और वह स्वयं महलों से निकल गयी।

फ़र्रुखसियर (१७१३-१७१९ ई०)—इसको एक बाजारी औरत ने तबाह कर दिया। इसे बादशाह ने नौलखा हार प्रदान किया। इसने वह हार अपने पूर्व प्रेमी हब्शी को दे दिया।

रफीउद्दौला—ये हज़रत तेरह साल के भी न होने पाये थे कि सात-आठ बेगमों के शौहर बन चुके थे।

मुहम्मदशाह रंगीला (१७१९-१७४८ ई०)—यह अपनी चहेती रखैल को इतना चाहता था कि उसके कुतुब-मीनार की सैर करने की इच्छा व्यक्त करने पर दिल्ली से कुतुब (१३ मील) तक मार्ग के दोनों तरफ खस की टट्टी लगायी गयी, बीच-बीच में फव्वारे बनाये गये। रास्ते में रूमी मखमल का फर्श बिछाया गया और इत्र का छिड़काव किया गया।

वाजिदअलीशाह—अवध के प्रायः सभी शासक इन वारांगनाओं के तीरे-नजर से घायल होते रहे हैं। लेकिन लखनऊ के अन्तिम शासक वाजिदअलीशाह ने तो विलासिता के हौज़ में ऐसी डुबकियाँ लगायीं कि स्वयं तो डूबे ही अवध प्रान्तीय शासन को भी ले डूबे—हम तो डूबेंगे सनम, तुमको भी ले डूबेंगे।

उनके हरम में अनगिनत वाराङ्गनाएँ, एवं कसबियाँ भरी हुई थीं। उनके चन्द नाम इस प्रकार हैं—अमीरन, मोतीखानम, साहबखानम, उम्दाखानम, नन्हीं बेगम, नज़म्मुलनिसाँ, वजीरनबाई, दिलवर हैदरी, यास्मिनपरी, सुलेमानपरी, इज्जतपरी, महबूबजान, झम्मनजान, मुन्ना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान, इमतियाज़परी, चुन्नीजान, गन्नाक़सवी, अजूबाजान, शरफराज़परी, सुलतानपरी, सरदारपरी, परखंदावशपरी आदि।

इन रूपसियों को गर्भवती होने पर मलफ़ए-महजूरा आज़मी, नवाब बादशाह महल, नवाब खुर्शीदमहल, नवाब अमीर महल, उमराव महल, निशात महल आदि खिताब देकर महल (बेगम) बनाकर अन्तःपुर में डाल लिया जाता था। वहाँ बन्दी जैसा जीवन व्यतीत करते-करते छटपटा कर पर्दे से बाहर स्वच्छ वातावरण में आने के लिए हरेक उत्सुक रहती थीं। स्वयं वाजिदअलीशाह ने लिखा है—"सब बेगमों, परियों की आदतें और बेवफ़ाइयाँ मुझ पर ज़ाहिर हो चुकी थीं। इस बिना पर ख्याल किया कि इन सबको रुपयों का लालच देकर पर्दे में ही रखा जाय। लेकिन उनमें चंद औरतें पर्दे के ख्याल से भागने लगीं। एक रोज़ जान-बूझकर अनजान बनकर सब बेगमों से मजाक़ में कहा—अगर तुम सब लोग अपने घरों को चली जाओ तो मैं परेशानी से छुटकारा पाऊँ। यह सुनते ही सब जाने को रज़ामंद हो गयीं। मुझे अफ़सोस है कि एक ने भी मेरा दामन न पकड़ा कि मैं तुम्हारे घर से न जाऊँगी। इसी ज़माने में मुझे उपदंश रोग हो गया। तमाम ज़ख्म आग की तरह जलते थे। उस बीमारी की हालत में नवाब मुग़ल साहिबा ने मुझे अपना हाथ लगाया तो वल्लाह मैंने अपनी आँखों से देखा कि उन्होंने अपने हाथ आटे और बेसन से बहुत धोये, मैं यह देखकर रो दिया। इससे ज़्यादा सितम यह हुआ कि उसने पास आकर कहा कि इस किस्म के मरीजों को लकड़ी में रोटी बाँधकर देते हैं। और मरीज़ के जिस्म को हाथ लगाना, नुकसानदेह होता है। इस वास्ते मैंने हाथ धोये थे।"

वाजिदअलीशाह गद्य-पद्य दोनों में निपुण थे। उनके रचे हुए बहुत-से ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। वे शास्त्रीय (क्लासिकल) संगीत और नृत्य के विशेषज्ञ थे। स्वयं बहुत अच्छा गाते थे और कई वाद्य-यंत्र बजा लेते थे, एवं नृत्य भी करते थे। वे ऐसी कितनी राग-रागनियों के रचयिता थे, जिनको गाकर आज भी ख्यातिप्राप्त गायक-गायिकाएँ प्रशंसित होती हैं। कत्थक नृत्य के वही आविष्कारक थे। उन्होंने कृष्ण-लीला को अभूतपूर्व ढंग से मंच पर प्रस्तुत करने के लिए लाखों रुपये व्यय किये। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

"एक रोज परियों को मैंने कृष्णलीला तैयार करने का हुक्म दिया। हिन्दुओं के मज़हब में इसकी पूजा की जाती है। इसमें कन्हैया और गोपियों की छवि बनायी जाती है। जैसा रहस्य (रास-लीला) मेरी सरकार में तैयार हुआ, ऐसा कहीं भी तैयार न हुआ होगा। सब परियों को उस्तादों ने तैयार किया है। यह एक फन है, जिसके विशेषज्ञ मेरी सरकार के सात व्यक्ति हुए हैं। उन्होंने कन्हैया और उनकी गोपियों की छवि तैयार की है। सुलतानपरी ने राधाजी का भेष बदला, माहरुखपरी ने कन्हैया की सूरत बनायी। सर पर मुकुट हाथ में बाँसुरी। यास्मिनपरी, इज्जतपरी, दिल-रुबापरी, हूरपरी वगैरह गोपियाँ बनीं। इनका नाच, संगीत मिसल लक्ष्मी और बरम (ब्रह्म) के हैं, जो कि नाम सात तालों के हैं। इस रास-लीला की तैयारी में लाखों रुपये खर्च हुए।"

वाजिदअलीशाह के अन्तःपुर में बेगमें तो पर्दे में रहती थीं, जिन कसबियों, रखैलों, वेश्याओं, लौंडियों आदि को गर्भ रह जाता था, उनको कोई खिताब देकर पर्दे में डालकर महल (उपपत्नी) का पद दे दिया जाता था ताकि नवाबजादों और नवाबजादियों की जननियों का परपुरुष से सम्बन्ध रखने का खतरा न रहे। ये गणिकाएँ संगीत, नृत्य आदि में तो निपुण होती ही थीं, बहुत सी गज़ल भी कह लेती थीं। वाजिदअली जब बन्दी बनाकर कलकत्ते भेज दिये गये, तब लखनऊ में छूट जानेवाली इन बीसियों महलों ने अपने पत्र नज़्म द्वारा लिखे थे।

इन वेश्याओं में कुछ ऐसी कला निपुण, संगीत-मर्मज्ञ, बा-अदब बज़हदार होती थीं कि उनकी एक झलक देखने के लिए अच्छे-अच्छे विद्वान् और रऊसा (रईस लोग) प्रतीक्षा करते रहते थे। ऐसी ही निपुणिकाओं में लखनऊ की चौधराइन थी, जिसकी रूप-सुधा का पान करने के लिए उर्दू के ख्यातिप्राप्त समालोचक मौलाना शरर, मुस्लिम नेता और प्रकांड पंडित मौलाना शिबली नेमानी, रियाज़ खैराबादी जैसे ख्यातिप्राप्त अदीब सामने की दूकान पर खस्ता सी दरी पर आकर बैठ जाते थे। अल्लामा नियाज़ फतहपुरी अपने यौवनकाल से पूर्व ही जब फारसी, अरबी और मुस्लिम ग्रन्थों में पारंगत हो चुके तब उनके पिता (कोतवाल लखनऊ) अदबो आदाब एवं महफ़िली शऊर सिखाने के लिए उनको चौधराइन के सुपुर्द कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये। इस तरह की गुणी गणिकाओं के यहाँ अनेक नवाब और रईस अपने-अपने फर्जन्दों को भेजा करते थे।

उक्त जादूगरनियों ने बादशाहों, राजाओं, नवाबों और जमींदारों को ही भेड़ नहीं बनाया, अपितु शहर के रईसों को भी अपने रूप-जाल में फँसाकर मछली की तरह तड़पाया। मेरी उम्र जब सत्रह-अठारह वर्ष की थी तब मैंने देखा था कि दिल्ली में पहाड़ी धीरज के बीसियों रईस उनके शिकार थे। उनमें एक का उल्लेख तो नवम्बर की 'सारिका' में 'मैं पापन ऐसी जली' शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है, केवल दो का संक्षिप्त उल्लेख यहाँ और कर रहा हूँ। एक लाला ने १९१८ ई० के इनफ्लुएंजा की प्राणलेवा महामारी में निराश्रित मृतकों को श्मशान घाट पहुँचाने के लिए कई लाख रुपये का कफन और ईंधन बाँटा। वही लाला दो-तीन वर्ष की तमाशबीनी में रोटियों के लिए भी मुँहताज हो गये। मुफलिस और निखट्टू लाला को उनकी माँ और पत्नी ने घर से निकाल दिया था। बेचारे तम्बाकू बेचकर किसी तरह गुज़र-बसर करते थे। रात को धर्मशाला में पड़ रहते थे। किन्तु उनका धर्मशाला में अड्डा जमाना धर्मशाला के व्यवस्थापक को पसन्द न आया। अतः उनका सामान सड़क पर फिकवा दिया गया। एक दिन रुँधे हुए गले से मुझसे बोले—"गोयलीयजी, इस धर्मशाला की ज़मीन अपनी तरफ से धर्मशाला बनाने के लिए मैं स्वयं खरीद रहा था, किन्तु मैं सोचता ही रहा और यह ज़मीन जैन-मन्दिर की ओर से खरीद ली गयी। बक़ौल असर लखनवी—

हम सोचते ही रहे और बहार खत्म हुई,
कि चमन में नशेमन बने कहाँ न बने॥

अगर उस वक्त खरीदकर धर्मशाला बनवा ली होती, तो आज धक्के देकर न निकलवाया जाता।"

दूसरे लाला पन्द्रह-सोलह वर्ष की उम्र में ही इश्क की पेंगें बढ़ाने लगे थे। एक नटनी क़ौम की रंडी को नौकर रख लिया था। जब अभिभावकों से अधाधुन्ध रुपया-पैसा मिलने में असुविधा हुई तब दादी अम्माँ की छिपायी हुई, डेढ़ सौ गिन्नियाँ उचका के ले गये और घरवालों को डराने के लिए छोटी सी शीशी में सफेद पानी भरकर जेब में रखकर जहर पीने की धमकियाँ देकर बाबा-दादी, माता-पिता को मिन्नत समाजत करने के लिए मजबूर कर दिया। इनकी पत्नी एक प्रतिष्ठित रईस वंश की पुत्री थी। लाला साहब आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर दिन के बारह बजे घर से फ़रार होते थे, और रात को चार-पाँच बजे उसमें प्रवेश करते थे। उनकी पत्नी जिस तरह बिलखती और रुदन करती थी, उससे हम पड़ौसियों की नींदें तो उचाट होती ही थीं, कलेजा भी मुँह को आने लगता था। दो-तीन वर्ष की तमाशबीनी के बाद वेश्याओं को नौकर रखना तो सम्भव न रहा, लेकिन ताक-झाँक, कूचए-हुस्न की सैर और सिगरेट में सुलफा भरकर ताउम्र पीते रहे, और अस्पताल में जाकर बेसरोसमानी में मृत्यु के ग्रास बने।

लगा न दिल को कहीं, क्या सुना नहीं तूने।
जो कुछ कि 'मीर' का इस आशिक़ी में हाल हुआ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माहबानू की समाधि से सम्बद्ध मुग़ल बादशाहों के दानपत्र

श्री फूलचन्द्र त्रिपाठी 'वियोगी'

उत्तर प्रदेश में आज़मगढ़ ज़िले की घोसी तहसील, परगना नत्थूपुर, थाना मधुबन में दोहरीघाट-बलिया रोड पर दरगाह कस्बे के पास पाताल गंगा के किनारे खजूर का बड़ा भारी जंगल है। उस जंगल के मध्य में लखौरी लाल ईंटों का एक छोटा सा दुर्ग बना हुआ है। वह लगभग दो मील की दूरी से ही दिखलायी देता है। इस क़िले के भीतर पश्चिमी भाग में एक कोठरी के मध्य में एक सुशिक्षित तपस्विनी मुस्लिम राजकुमारी की समाधि बनी हुई है। उसे 'माहबानू की कब्र' कहते हैं। उसके पूर्व एक कमरे में उसके आध्यात्मिक गुरु सन्त मीरा शाह की समाधि है। इस रौज़े पर ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष के दशहरे के बाद जो बृहस्पतिवार आता है उससे मेला शुरू होता है और फिर हर बृहस्पतिवार को लगातार सात मेले लगते हैं। ४०० वर्ष पूर्व इस क़िले के पास सरयू (घाघरा) नदी बहती थी। इस समय नदी की धारा यहाँ से दो मील उत्तर हट गयी है। क़िले के पास जो सरोवर है उसे पाताल गंगा कहते हैं। सरकारी नक़शे में भी उसे पाताल गंगा ही अंकित किया गया है। यहाँ पूजा-पाठ करनेवालों और स्नानार्थियों की भीड़-भाड़ सदैव लगी रहती है। इस सरोवर का पानी कभी सूखता नहीं। यहाँ एक सोता है जिससे सदैव जल निकलता रहता है। पाताल गंगा नाम कब पड़ा यह निश्चित रूप से मालूम नहीं, परन्तु क़िले से सम्बद्ध जो फ़ारसी में इतिहास मिला उसमें भी इसको पाताल गंगा ही लिखा गया है। इसके जल और मिट्टी के सेवन से कुत्ते, बन्दर, सियार, भेड़िया आदि के काटे रोगी अच्छे हो जाते हैं। यह बात सही है।

क़िले के भीतर पश्चिम की कोठरी में जो कब्र है उसे माहबानू की कब्र कहा जाता है। क़िले के प्रबन्धक यह बताते हैं कि माहबानू बादशाह शेरशाह सूरी की पुत्री थीं और वह आजीवन क्वाँरी ही रह गयीं। उन्हें युवाकाल ही संसार से वैराग्य हो गया था। अतः उन्होंने अपने पिता को कहकर यहाँ रहने वाले विख्यात तपस्वी सैयद अहमद-शाह बादपा के पास आकर निवास करना और भगवद् भजन करना आरम्भ किया था। वह यहाँ आमरण रहीं और बहत्तर वर्ष की आयु में उनका इस दुर्ग के भीतर ही शरीरान्त हो गया।

बादशाह शेरशाह ने अपनी प्रिय पुत्री को ब्याह करने और राजसी ठाट से जीवन बिताने के लिए बार-बार कहा, पर वह नहीं मानीं और लगभग पंद्रह वर्ष की वय में ही वह यहाँ चली आयीं। शेरशाह ने लाचार होकर उनको पाँच सौ ग्रामों की जागीर दे दी और पाताल गंगा के किनारे एक छोटा-सा दुर्ग बनवा दिया तथा वहाँ नौकर-चाकर रखकर सारी सुख-सामग्री का प्रबन्ध कर दिया। क़िले के निर्माण के पूर्व वहाँसे एक मील पश्चिम चोरहा नाला के पास पलाश के भयानक जंगल में माहबानू अपने उस्ताद सन्त मीरा शाह के साथ रहती थीं। क़िला बन जाने के बाद माहबानू और उनके गुरु उसमें चले आये। क़िले को आस-पास के लोग माहबानू का रौज़ा कहते हैं। यह क़िला शेरशाह सूरी की आज्ञा से उसके राजकर्मचारियों ने बनवाया था—इसमें सन्देह नहीं है। क़िले के भीतर लम्बी अवस्था के काफी मोटे-मोटे बड़े-बड़े वृक्ष हैं। उनमें वरुण, लाल चन्दन, पद्म काठ वगैरह के वृक्ष भी हैं, जिनकी फलियाँ, छालें और पत्तियाँ दवाओं में काम आती हैं। दुर्ग के दक्षिणी भाग में माहबानू का निवास-गृह था। उनके गुरु उत्तरी भाग में रहते थे। दुर्ग का प्रवेश-मार्ग पूर्व मुख है। क़िले के ऊपर जाने के लिए चालीस सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। उसके बाद बड़ा सा फाटक मिलता है। फाटक के आगे से कब्रों की कतारें शुरू होती हैं। ये क़िले के प्रबन्धकों की हैं जिनका वंश आज भी कायम है।

मुख्य फाटक से भीतर जाकर उत्तर की तरफ मुड़ने पर एक चहारदीवारी आती है। उसके भीतर मध्य कक्ष में एक चबूतरा बना हुआ है। वह चतुष्कोण पक्का है। कहा जाता है कि इसी चबूतरे पर बैठकर सन्त मीराशाह जनता को उपदेश देते थे। इस चबूतरे पर अब भी एक सफेद चादर और फूल माला पड़ी रहती है। क़िले की दक्षिणी दीवार में लोहे की एक मोटी लम्बी जंजीर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें मनौती माननेवाले लोग सूत की गाँठ बाँध देते हैं और कार्य सिद्ध हो जाने पर उसे खोल देते हैं तथा मीरा साहब और माहबानू की समाधि पर फूल-बताशा चढ़ाते हैं। क़िले के भीतर फूलपत्ती चढ़ाने के बाद भक्तगण दक्षिण के छोटे द्वार से बाहर निकल जाते हैं। कहा जाता है कि फरीद (शेरशाह) जब जौनपुर में पढ़ते थे और नौकरी करते थे तब सन्त मीरा शाह के पास कई बार दर्शनार्थ आये थे और उनसे बादशाहत पाने का आशीष प्राप्त कर चुके थे। उनके साथ उनकी पत्नियाँ पुत्रों-पुत्रियों को लेकर कई बार वहाँ आयी थीं।

मैं अपने बुजुर्गों से लगभग पचास वर्षों से माहबानू और सन्त मीरा शाह का नाम सुनता आ रहा हूँ। मैंने मेला भी कई बार देखा है। क़िले में भी सैकड़ों बार गया हूँ और उसके चित्र भी खींचे हैं। उसके प्रबन्धक के पास फारसी लिपि में लिखे दर्जनों शाही दानपत्र हैं। उनपर उस समय के बादशाहों और नवाबों की मुहरें और हस्ताक्षर हैं। मैंने सब दानपत्र पढ़े, उनकी नक़ल की और इस लेख के साथ उन्हें प्रकाशित कर रहा हूँ, जिससे पाठकों को यह पक्का सबूत मिल जाय कि माहबानू सचमुच बादशाह शेरशाह की पुत्री थीं। माहबानू ने अपनी जागीर में हज़ारों कूप, तालाब, पोखरे, सरायें, मसजिदें, दवाखाने बनवाये थे जो इस समय भी टूटी-फूटी हालत में मौजूद हैं। माहबानू के रौज़े के नाम मुग़ल बादशाहों, हिन्दू राजाओं और अवध के नवाबों के दिये हुए जो दानपत्र थे उनमें कुछ ही बचे हैं, शेष दुर्व्यवस्था के कारण सड़-गल गये हैं। जो शेष हैं उनके हिन्दी अनुवाद का सारांश नीचे दिया जा रहा है। साथ ही रौज़े के प्रबन्धकों की नामावलि भी—

माफीनामा नं० १

बादशाह गाज़ी आलमगीर बहादुर हाकिम फ़ज़ले अली खाँ

मुहर

सैयद भिखारी हुसेन प्रबन्धक रौज़ा माहबानू दरगाह सरकार जौनपुर को रौज़े के व्यय के लिए माफीनामा दिया गया।

तारीख माह शाबान सन ११५४ फसली।

माफीनामा नं० २

सैयद अली खाँ सन् ११७५ फसली

मुहर

ग्राम फतहपुर (जो घोसी से ४ मील पूर्व है) की माफी के सम्बन्ध में भूतपूर्व प्रमाण पत्रों के द्वारा ता० रबी अव्वल सन् ११७५ फसली, सैयद अली खाँ के समय में कानूनगो हल्का को आदेश दिया कि तुम्हारे प्रार्थनापत्र से मालूम होता है कि भूतपूर्व प्रमाणपत्रों के अनुसार सरकारी मालगुज़ारी से खारिज किया गया था। इसलिए इस गाँव की मालगुज़ारी सरकार से माफ़ की जाती है।

माफीनामा नं० ३

बादशाह गाज़ी आलमगीर हाकिम फज़ले अली खाँ

मुहर

बादशाह औरंगजेब के राज्य में परगना सिकन्दरपुर मशरकी व परगना सिकन्दरपुर मग़रबी सरकार जौनपुर सूबा इलाहाबाद में था। उस समय के हाकिम फज़ले अली खाँ के द्वारा हाकिमदेहा (तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी आदि) को आदेश दिया गया कि ग्राम हिराजपट्टी ताल्लुका जजौली तथा फतहाबाद में सात बीघा ज़मीन बगरज़ हर साल न्याज़ (पूजा के व्यय के निमित्त) रौज़ा माहबानू दरगाह के प्रबन्धक सैयद भिखारी शाह को दिया जावे। ११६२ फसली

माफीनामा नं० ४

बादशाह आलमगीर औरंगजेब हाकिम फज़ले अलीखाँ

मुहर

औरंगज़ेब बादशाह के राज्य में निम्नलिखित ग्रामों को हाकिम फज़ले अली खाँ द्वारा दिये गये देहा ताल्लुका दुवारी तप्पा अकबरपुर परगना सिकन्दरपुर के अन्तर्गत बगरज़ न्याज़ (पूजा के निमित्त) रौज़ा माहबानू दरगाह को सिकरीकोल, सारंगपुर कचिला, बखरिया, कमना वगैरह गाँव (सरकार जौनपुर, सूबा इलाहाबाद) माफ़ किये गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माफीनामा नं० ५

बादशाह आलमगीर औरंगज़ेब हाकिम हैदर बेग़ खाँ

मुहर

हाकिम हैदरबेग़ खाँ के द्वारा हाकिमदेहा (तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी) को आदेश दिया गया कि परगना नत्थूपुर सरकार जौनपुर सूबा इलाहाबाद में ग्राम आदमपुर व रामपुर बग़रज़ न्याज़ (पूजा के निमित्त) रौज़ा माहबानू दरगाह के मुन्तज़िम शाह सैयदअली को माफ़ी दिये गये। सन् ११७४ फसली

माफीनामा नं० ६

राजकुमार कुँवर बहादुर नन्हकू सिंह १२०० हिज़री

मुहर

हाकिमदेहा (तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी आदि) परगना सिकन्दरपुर मग़रबी सरकार जौनपुर सूबा इलाहाबाद में मौज़ा सिकरीकोल वग़ैरह के हाकिम माल को बज़रिये तहरीर सूचना दी जाती है कि भूतपूर्व प्रमाणपत्रों के अनुसार राजकुमार नन्हकूसिंह बहादुर ने भी पूजा के ख़र्च के निमित्त रौज़ा माहबानू दरगाह के मुन्तज़िम शाह नेयाज़अली बख़शीशअली पुत्र शाह शैफअली को निम्नलिखित मौज़े माफ़ी में दिये। यह हुकुम हाकिम माल को दिया जावे। मौज़ा सिकरीकोल, सारंगपुर, चन्दनपट्टी व बहादुरपुर, मनौली, हिराजपट्टी मैंसहा, करमा, कचिला, मेहदिया कुंड, कमना व दरियाबाद, शीतलपुर व खड़ीचा, बखरिया व हरपालपुर, गुलौरी दलपतपुर, लक्ष्मीपुर, पट्टी उफरौली, शिवनहाँ व भेलउर, रमऊपुर कुल २३ गाँव हैं। तारीख १ रमजान ११९३ फसली।

माफीनामा नं० ७

मु० शाह आलम बादशाह गाज़ी हाकिम यासीन खाँ

मुहर

बज़रिये तहरीर तारीख ११ रमज़ान १२१२ हिजरी बादशाह शाह आलम, मुहम्मद यासीन खाँ ने हाकिम हैदर अली खाँ को हुकुम दिया कि मौज़ा आदमपुर व रामपुर परगना नत्थूपुर सरकार जौनपुर सूबा इलाहाबाद को भूतपूर्व प्रमाण माफ़ी के अनुसार १२०५ फसली से बगरज़ पूजा के खर्च के निमित्त रौज़ा माहबानू दरगाह के मुन्तज़िम शाह बखशीश अली को मौज़ा आदमपुर, रामपुर दिया गया। इसमें कोई हस्तक्षेप न किया जावे।

माफीनामा नं० ८

ख़ादिम शरय काज़ी सैयद हसनअली

मुहर

काज़ी सैयद हसनअली द्वारा बादशाह आसिफ़-उद्दौला अवध ने वज़रिये तहरीर ता० १० रमज़ान सन् १२१० हिज़री को परगना घोसी व चकेसर के माल अधिकारियों को मौज़ा परिखापुर व आदमपुर बगरज़ एखराजात रौज़ा माहबानू दरगाह साबिक़ में दिये गये थे। उसके सम्बन्ध में बख़शीशअली साहब ने अर्ज़ी दी है कि उसकी मालगुज़ारी की वसूली में माल विभाग के अधिकारी विरोध करते हैं। यह शिकायत हुज़ूर बादशाह तक पहुँची है। इस पर यह हुकुम दिया गया है कि भूतपूर्व माफ़ी के अनुसार हुकुम बहाल रखा गया है और माल विभाग के अधिकारी वसूली में आज से कोई हस्तक्षेप न करें।

जिन ग्रामों का वर्णन ऊपर के दानपत्रों में आया है उनके अतिरिक्त और भी बहुत से गाँव शेरशाह सूरी की मृत्यु के बाद सूर वंश और मुग़ल वंश के बादशाहों ने माहबानू के रौज़े के ख़र्च के लिए दिये थे, जिनके नाम गत वर्ष खोज में मिले थे। जैसे, ग्राम गुरुम्हा (परगना नत्थूपुर) ज़िला आज़मगढ़, ताल पताछ, सूरजपूर, लठिया सलेहरापुर, मानो बरवा (ज़िला देवरिया) आदि।

माहबानू के प्रबन्धकों की कुछ वंशावली जो शाही फरमानों से मिली—

१—सैयद शाह महमूद,
२— ,, ,, निवाज,
३— ,, ,, शैफ अली,
४— ,, ,, भिखारी,
५— ,, ,, बख़्शीश अली,
६— ,, ,, अब्बास अली,
७— ,, ,, आरिफ अली,
८— ,, ,, मेहदी हसन,
९— ,, ,, फजल अहमद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिशोध (३)

श्री मनमोहन गुप्त

[क्रमागत]

दूसरे दिन खूब तड़के कथित देवभैरव बाबू के घर पहुँचा। देखा कि वे बिल्कुल तैयार बैठे हैं। मुझे देखते ही बोल पड़े--आओ, आओ, तुम्हारा ही रास्ता देख रहा था।

अब तक सँझिली जीजी भी, जो न मालूम कब आ गयी थीं, मुझे वहीं पर मिलीं। देवभैरव बाबू उनकी ओर मुड़कर बोले—तो तुम अपने जाने की तैयारी करो। मैं तो अपने मित्र के साथ जाऊँगा।

अवाक् होकर सँझिली जीजी ने कहा—तो क्या···· आप उतनी दूर····?

बीच में ही मैंने कहा—दूर काहे का? दौड़ते-दौड़ते जाऊँगा और वापस आ जाऊँगा।····हें। गाड़ी में जाने में मजा क्या है?····पैदल जाने में ही तो मजा है।

तब तक देवभैरव बाबू भी बोल उठे—और क्या? दौड़-भागकर जाने में जो मजा है, वह क्या गाड़ी में बैठ कर जाने में है?

देवभैरव बाबू का इतना उत्साह देखकर आगे कुछ कहने की हिम्मत सँझिली जीजी ने नहीं की। वह वहीं चुपचाप खड़ी रहीं। तब तक देवभैरव बाबू ने कहा—इसका अर्थ तुम भी पैदल न जाओगी? गाड़ी तैयार करके तुम अलग जाओ और हम लोग अलग जायँगे। हमारा-तुम्हारा अब आने-जाने में कोई साथ नहीं। अब तो मित्र मिल गये।····आः कहकर उन्होंने स्वस्ति की ऐसी साँस ली जैसे उस प्रकार से आनेजाने की कल्पना ही बड़ी सुखदायिनी हो। तब तक मैंने कहा—गाड़ी-वाड़ी में तो बुड्ढे अपंग चलते हैं। मैं तो कभी भी न जाऊँ····हाँ! सैर करने जाना अलग और मन्दिर में जाना अलग। मन्दिर में तो राजे-महाराजे भी पैदल ही जाते हैं।

आगे किसीको कुछ कहना नहीं था। जैसे पैदल जाना ही सर्वोत्तम है—यह बात स्वयंसिद्ध हो गयी किन्तु सँझिली जीजी को मेरा दिग्दर्शन पसंद नहीं आया। वह कुछ-कुछ अन्यमनस्क सी दिखायी पड़ीं। इसी समय देवभैरव बाबू ने कहा—तो चलो मित्र, हम लोग निकल पड़ें।

मैं तैयार था ही। दोनों घर से बाहर निकले। सँझिली जीजी अपने स्थान पर खड़ी की खड़ी ही रह गयीं। चलते समय देवभैरव बाबू ने इतनी निस्पृहता दिखायी कि लगा जैसे सँझिली जीजी से उनका कोई सम्बन्ध ही न हो। चलते समय अन्य किसी नौकर से भी उन्होंने कुछ न कहा।

जब सड़क पर कुछ दूर आ गये तब मैंने कहा—अब आपका नाम····नाम, नहीं मैं जिस नाम से पुकारूँगा वह है—भले दादा।

सुनते ही वे बोल पड़े—अपराध?

इस प्रश्न का गूढ़ अर्थ मैं नहीं समझा। झट मैंने कहा—"बुड्ढे हो चले हैं आप। मगर अभी भी अकल में भैंस ही रहे। अपराधी को कोई दादा और भले थोड़े ही कहता है? आप भले आदमी हैं और बाबू के बाबू की उम्र के हैं। इसीसे आप भले दादा हैं। दादी से राय ले ली। बल्कि उन्होंने ही ऐसा कहने को कहा है।····मैंने देवभैरव कहा तब वह बिगड़ गयी थी।"

यह सुनकर वे बोल पड़े—अच्छा, मेरे विषय में तुमने आपनी दादी से भी बातें की थीं? मगर····मगर मुझमें और तुममें कोई ऐसी बात तो तय नहीं हुई थी—कहते-कहते वे कुछ अन्यमनस्क-से हो गये। कुछ दूर तक हम दोनों मौन ही चलते गये। मुझे ऐसा लगा कि वे कुछ नाराज हो गये हैं। मैंने ही बात प्रारम्भ की। बात नहीं, बल्कि प्रश्न किया—तो क्या कुछ अन्याय कर दिया मैंने?

अपने प्रश्न पर भी उन्हें कुछ न कहते देख मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि वे नाराज हो गये हैं। बड़ी झेंप सी लगी। कुछ समय और मैं चुप रहा। मन ही मन अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पना को दौड़ाने लगा। अन्त में झेंप के बदले गुस्सा चढ़ने लगा। मिजाज गरम हो उठा। मैंने कहा—दादी को खराब समझनेवाले बड़े गदहे होते हैं। हमेशा दादी अच्छी बात ही कहती हैं।····आप उन पर नाराज हो रहे हैं?·····मैं नहीं बोलता। मैं साथ में घूमने भी नहीं चलता।

तुनककर मैं जा रहा हूँ—यह देखकर उन्होंने लपककर मेरा हाथ पकड़ लिया। हँसते हुए बोले—बस, बस। इस गदहे का इलाज हो गया, मित्र। सचमुच मैं गदहा ही हूँ। है न?

आपे से बाहर होते हुए मैंने कहा—ऐसा मैंने थोड़े ही कहा। मैं तो कह रहा था कि आप बहुत भले हैं। हाँ, जब दादी ने कहा है तब आप बहुत भले होंगे ही। आप दादी को नहीं जानते। वह कभी झूठ या गलत नहीं कहती हैं। हाँ, मगर····मगर····इस दुनिया में केवल मेरे लिए भले ही झूठ बोलें····वह मुझे अपने प्राणों से भी अधिक समझती हैं। कहती हैं कि प्राण बचाने के लिए झूठ बोलना शास्त्र में भी ठीक लिखा है। वह लाखों-करोड़ों शास्त्र पढ़ी हुई है।

न मालूम और भी कितनी ही बातें दादी की तारीफ में कहता ही जाता किन्तु दिन को चढ़ता देखकर उन्होंने कहा—चलो मित्र, चलते चलें और बातें भी करते चलें। नहीं तो वापस होते-होते बहुत देर हो जायगी।

दोनों आगे बढ़े। दादी के सम्बन्ध में ही बातें चल रही थीं। कुछ दूर ही चले होंगे कि मैं बाईं ओर के बगीचे की ओर देखते-देखते रुक गया। अभी भी मेरा हाथ भले दादा के हाथ में था। झटके से हाथ खींचते हुए मैंने कहा—छोड़िये····आगे बढ़कर ठहरिये····मैं अभी आता हूँ—कहते-कहते दो छलाँग में बाग़ के अन्दर। इधर-उधर घूम-फिरकर एकदम अदृश्य। वे चुपचाप, आगे बढ़ने के बदले, जहाँ के तहाँ खड़े रहे। मुझे जब बाग़ के अन्दर काफ़ी समय बीत गया और निकलता न देखकर उन्होंने अपने स्थान पर खड़े ही खड़े आवाज़ लगायी—मित्र! मित्रवर!

आगे आवाज़ लगाने से पूर्व ही मैं बाहर निकल आया। खूब गुस्से में दूर से ही कहा—मरने के लिए चिल्लाकर सारी धरती को क्यों सिर पर उठाये ले रहे हैं? आइये न····

मुझे पास देखकर वे आगे बढ़ आये। मुस्कराते हुए बोले—अरे मित्र, तुम तो यहाँ निकल आये!

मैं अत्यन्त चिड़चिड़ाते हुए बोला—मैंने कहा था नहीं कि आप आगे बढ़िये। आप वहीं खड़े-खड़े 'बेंएँ! बेंएँ!' कर रहे हैं?····कितना अच्छा मौका था! आज माली-वाली कोई नहीं था, मजे में दस-पाँच और नीबू ले लेता। सो नहीं····लगे चिल्लाने····

कुछ झेंपते हुए भले दादा बोले—सचमुच मुझसे गलती हो गयी। मैं क्या जानता था कि तुम नीबू लेने गये हो।

इसीसे तो बड़ों से दूर-दूर रहना ही अच्छा होता है। बड़ों को यह जानने की अकल कहाँ से मिले कि किसी शुभ कार्य में बाधा कैसे पड़ती है। होता नरेन तो एक इशारे पर चुपके से अन्दर दाखिल हो जाता और फिर आज बाग़ भर के नीबू हम दोनों की जेब में दिखायी पड़ते।····मैं क्या जानता था कि माली आज गायब रहेगा अन्यथा नरेन को भी ले ही आता। आपको थोड़े ही लाता····

मुस्कराते हुए उन्होंने कहा—सचमुच मैं बड़ा निकम्मा हूँ। हूँ न, मित्र—

कहते-कहते उन्होंने फूली हुई मेरी जेब को टटोला। फिर कहा—अरे बाप रे! इतने नीबू! करोगे क्या? खाने के लिए इतने तोड़े थोड़े ही जाते हैं!

मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने कहा—आप बड़े ईर्ष्यालु लगते हैं। मेरी जेब के नीबू देखकर आपको ईर्ष्या हो रही है!····अभी क्या। इससे भी अधिक लाता आप यदि बाधा न देते तो।····हाँ····बाधा न पड़ती तो आज बता देता कि मैं क्या कर····

बीच में ही वे बोल पड़े—मान लो कि सारे बाग के नीबू तुम्हारे हाथ लगते तो आखिर करते क्या?····क्या घर ले जाते?

झट मैंने कहा—आप बड़े बेवकूफ हैं····मैं घर ले जाने के लिए थोड़े तोड़ता हूँ····ये सब तो मैं बाँटते हुए जाता···· एक्का, बग्घी और भी सबको मैं बाँट देता। हाँ! यार-दोस्त मिलते तो उन्हें भी देता जाता।

इस बार उन्होंने कहा—अच्छा चलो····चलते-चलते बातें करता जाऊँगा।

हम दोनों आगे बढ़े। वे कहते गये—बुरा न मानो दोस्त····नीबू ऐसे तोड़ने को चोरी करना कहते हैं····

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाधा देते हुए मैंने कहा—कोई छिपाकर थोड़ ही लेता हूँ जो चोरी कहा जाय ?

जरा सिर हिलाते हुए उन्होंने कहा—छिपाते क्यों नहीं ? जिसका बाग है उससे छिपाना हुआ कि नहीं ? यदि छिपाना न हुआ होता तो उसके सामने लेने पर तुम्हें भय थोड़े लगता ? दुनिया के जिस किसी काम को करने में भय लगे उसीको पाप समझना चाहिए। यदि ऐसा न होता तो तुम्हें भय न लगता।

कुछ चिन्तित-सा हो मैंने कहा—शायद इसीलिए दादी ने ऐसे नीबू फेंकवा दिये थे और कहा भी था कि अब कभी ऐसी चीजें घर न लाना।

प्रश्नसूचक मुद्रा में मैंने आगे कहा—मगर दादा ने तोड़ने को तो मना नहीं किया था।

तुरन्त उन्होंने कहा—शायद उन्होंने सोचा होगा कि तुम समझ गये होगे, किन्तु तुम समझे नहीं····मुझे यही लगता है।

मैं चुप रहा। मन-ही-मन अपनी करनी के विषय में आलोचना करने लगा। अन्त में इसी निर्णय पर पहुँचा कि मैंने कोई पाप नहीं किया। क्षुद्रबुद्धि से उसकी सफाई के लिए तर्क उपस्थित करते हुए कहा—मगर जिसका बाग है वह भी तो सारे नीबू खा नहीं पायेगा। आखिर उसे भी तो किसीको दे देना पड़ेगा।

भले दादा गम्भीर होकर बोले—माली ने मेहनत की। उस मेहनत को उसके अतिरिक्त अन्य जो कोई भोगेगा उसीके लिए वह चोरी के बराबर है।····तुम्हारी मेहनत का फल ये सब नीबू नहीं हैं। इसीसे इन्हें लेना तुम्हारे लिए चोरी है।

बार-बार मुझे चोरी लगाने पर धीरे-धीरे मेरा मन अत्यन्त उदास हो रहा था, इसीसे मैंने पास के समस्त नीबुओं को वहीं बिखेर दिया।

आगे बढ़ते हुए भलेदादा ने कहा—इसमें पछताने की कोई बात नहीं। चलो अच्छा हुआ। महापाप से तुम्हारा पीछा छूटा। अब कभी ऐसी गलती न करना। यदि तुम्हारे जैसे बच्चे ऐसे काम करेंगे तो अन्य लोग ऐसा करने में हिचकिचायेंगे थोड़े।

इस समय मुझे लग रहा था कि जैसे भलेदादा बड़े महान् हैं। उनके सामने दुनिया के अन्य लोग तुच्छ हैं। कभी किसी ने ऐसी बात मुझे नहीं बतलायी। कुछ गंभीर भाव से मैं भलेदादा के पीछे-पीछे आगे बढ़ता गया। इतने में उन्होंने आरम्भ किया—बच्चे सबसे जल्दी किसी बात को ग्रहण करते हैं। उन्हें यदि प्रत्येक बात विस्तार के साथ समझायी जाय तो उनपर तुरन्त असर होता है।

यद्यपि भलेदादा की बातों में मुझे कोई रस नहीं आ रहा था तो भी उस समय मेरे ऊपर उनका बहुत प्रभाव पड़ा। मैं सोचने लगा कि अवश्य ही ये कोई अच्छी बात कह रहे हैं।

× × ×

इन दिनों कुछ सर्दी बढ़ गयी थी। इस कारण छुट्टी के दिनों में भी काफी धूप निकलने के बाद ही मैं भलेदादा के घर जाता था।

जिस दिन की यह घटना है उस दिन निर्धारित समय से कुछ पूर्व ही मैं भलेदादा के घर पहुँच गया। छुट्टियों के दिन उनके घर के नौकरों को सारे दिन छुट्टी रहती थी। वे या तो गंगास्नान आदि के लिए चले जाते थे अथवा अपने कमरों में पड़े रहते थे। सँझिली जीजी भी उनके यहाँ नौकरी ही करती थीं, परन्तु उनके लिए कोई छुट्टी निर्धारित न थी। बिना नागा वही अकेले आया करती थीं। उस दिन भी वह आयी हुई थीं।

यों तो मैं कहीं भी जाता तो मेरी आगमन-वार्ता लेकर आगे-आगे हवा भी दौड़ती थी, किन्तु भलेदादा के घर में अत्यन्त सभ्यता के साथ प्रवेश करता था। इसके लिए वे स्वयं कुछ हद तक जिम्मेदार थे। बड़ी निपुणता से धीरे-धीरे उन्होंने मेरी आदतों पर प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया था। उनका प्रभाव और कहीं भले ही परिलक्षित हो या न हो किन्तु भलेदादा के घर में उसका प्रभाव तो दिखायी ही पड़ता था।

धीरे-धीरे दबे पाँव मैं भलेदादा के कमरे में दाखिल हुआ। सामने ही उनका पलँग पड़ता था। देखा कि भलेदादा पैर लटकाये पलँग पर बैठे हैं एवं सँझिली जीजी उनकी गोद पर माथा रखे पाँव लटकाये पड़ी हैं। लगता था कि बगल में बैठे-बैठे गोद में माथा रख दिया था।

अब तक मुझमें इतना ज्ञान तो हो ही गया था कि इस मुद्रा में पड़े रहने का अधिकार किसी परस्त्री को नहीं होता। मैं सिहर उठा। उल्टे पाँव आहिस्ते से पीछे मुड़ा। शायद तब तक भलेदादा उस स्थिति में तल्लीन थे। इस कारण मुँह दरवाज़े की ओर होते हुए भी उन्होंने मेरी ओर ध्यान नहीं दिया। मैं आड़ में हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काश !

श्री बालकृष्ण गर्ग

म्लानता से पूर्व
स्मिति सुमधुर
रहती है सुमन-सहचरी
कंटकों के साथ भी।

काश,
हर जीवन में हो हास
आश—प्रकाश
संकटों के साथ भी !

———

एक बार सोचा कि वापस होऊँ, किन्तु वैसा न कर सका। मेरा ध्यान उधर ही लगा रहा। मन ही मन सोचा कि इसका अन्त कहाँ होता है–यह देखे बिना जाऊँगा नहीं। फिर क्या था। झट ऐसी जगह सीढ़ी के पास जाकर खड़ा हो गया जहाँ से साफ-साफ सब कुछ दिखायी दे सके।

दोनों उसी मुद्रा में बड़ी देर तक तन्मय रहे। धीरे-धीरे दोनों की उन्मत्तता बढ़ती गयी। इसी समय सँझिली जीजी ने आहिस्ते से कुछ कहा एवं वे उठ बैठीं।

साथ-साथ भलेदादा भी खड़े हो गये एवं दरवाज़े की ओर बढ़े। झटपट मैं छिप गया। भलेदादा सीधे नीचे गये एवं दरवाजा बन्द करने लगे। यह देखकर मेरे मन में भय सा लगने लगा। मैं झपटकर सँझिली जीजी के पास पहुँचा। मुझे देखकर वह अवाक् रह गयीं। मैंने फिसफिसाकर कहा—भाग चलो जीजी····वह राक्षस है। तुम्हें····खा जायगा···

यह सुनकर वह कुछ कहने ही जा रही थीं कि मैंने इशारे से कहा–भाग चलो····जल्दी करो। मैंने दरवाजा बन्द करते देखा है····कहते-कहते एकदम हाथ पकड़कर खींचा। उनके पास भी जैसे कुछ कहने को नहीं था। वह तेजी के साथ मेरे साथ हो लीं। झटपट उन्हें लेकर मैं वहीं छिप गया जहाँ पहले छिपा था। तब तक भलेदादा भी दरवाजा बन्द करके ऊपर की ओर आने लगे थे।

हम दोनों के पास से ही वे कमरे में दाखिल हुए। मैंने तुरन्त सँझिली जीजी का हाथ पकड़ नीचे का रास्ता लिया। एकदम उस दरवाजे के पास जाकर रुका जिसे भलेदादा ने अभी बन्द किया था।

क्षिप्रता से सँझिली जीजी ने उसे खोला। हम दोनों झटपट बाहर हो गये। आहिस्ते से दरवाजे को उढ़का दिया। एकदम एक प्रकार से भागते हुए हम दोनों सड़क पर पहुँचे। फिर तेज कदम और आगे बढ़ गये।

अब तक हम दोनों ने जैसे दम ही नहीं लिया था। अब जरा खुलकर साँस ली। मैंने कहा—मैं पहुँच गया था ····नहीं तो····तुम्हें····

आगे कुछ कहने से पूर्व सँझिली जीजी ने कहा—मुझे जरा दम लेने दे। मेरा तो दम निकल रहा है····चल···· घाट की ओर चलें। न जाने कैसा भय सा लग रहा है····

कुछ खीझकर मैंने कहा—अब भय काहे का ? यहाँ आया तो उसका सर ढेले मारकर तोड़ दूँगा।

न मालूम किस भय से सँझिली जीजी का चेहरा पीला पड़ गया था। वह हाँफती हुई मेरे पीछे-पीछे चलती गयीं।

बिल्कुल घरवाली गली के पास जब पहुँच गया तब सँझिली जीजी ने कहा—नहीं····रुक जा····अभी घर नहीं चलूँगी।····चल····जरा गंगा के किनारे बैठकर सुस्ता लूं····फिर घर चलूंगी।····तुझसे अनेक बातें करनी हैं।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी कहानी

सौत

लेखिका—सौ० वसुन्धरा पटवर्धन

अनुवादक—श्री रा० र० सर्वटे

वारू का विवाह आखिर तय हो गया और गाँव के बाहर गणेश-मन्दिर में उसके हाथ पीले हो गये। बैंड नहीं। मण्डप नहीं। बरात नहीं। घोड़ा नहीं—कुछ नहीं। विवाह होने के समय दो मिनट सब ने तालियाँ बजायीं और सब तरफ शांति फैल गयी। विवाह कराने के लिए ही वास्तव में पाँच-दस आदमी आये थे। मन्दिर में विवाह हुआ और लोगों ने घर जाकर खाना खाया। वारू की उम्र थी बीस। रूप बिलकुल साधारण। पैसा नहीं, घर-द्वार नहीं। मामा ने किसी तरह आखिर लड़की का विवाह कर दिया। वर को नारियल दिया और नमस्कार किया, खासा साष्टांग। उद्देश्य यह कि फिर लड़की मेरे घर न आये।

वर महोदय ने नमस्कार और लड़की दोनों को एक साथ ही स्वीकार कर लिया। उन्हें लड़की पसन्द थी। विवाह का यह समारोह भी पसन्द था। अधिक मान-सम्मान और धूमधाम वे चाहते ही न थे। क्योंकि वारू का यद्यपि यह पहला विवाह था फिर भी उनका यह दूसरा विवाह था। उनके पाँच साल की एक लड़की थी और पत्नी तपेदिक से घुल घुलकर मर गयी थी। लड़की को घर में रखकर, शम्भूराव विवाह के लिए आये थे। उनके प्राण लड़की में उलझे हुए थे। यादें बराबर पहली पत्नी की आ रही थीं। उसने मरते समय उनसे लगातार जताकर कह दिया था कि लड़की की उपेक्षा मत करना। ठीक से सँभालना। जहाँ तक सम्भव हो दूसरा विवाह करने की झंझट में मत पड़ना। हमारे भाग्य में इतना ही गृहस्थी-सुख था ऐसा समझना और जिन्दगी गुजारना। मैं ही क्या भरी हुई थाली पर से उठकर जा रही हूँ? क्या मुझे जाना अच्छा लग रहा है? पर 'जा' कहा तो जाना चाहिए। मैं चली पर लड़की का प्रेम कम न करना।

'नहीं करूँगा—नहीं करूंगा।' ऐसा चार-चार बार मुँह से कहकर शम्भूराव ने अपनी पत्नी को वचन दिया था। विवाह न करने का वचन नहीं दिया। पर उसका अर्थ करीब-करीब वही हो रहा था। लेकिन जवानी में अकेला रहना शम्भूराव को कठिन लगने लगा और लड़की को सँभालना भी मुश्किल होने लगा। घर में अपने अधिकार की एक स्त्री की जरूरत तीव्रता से महसूस होने लगी। अन्त में शम्भूराव ने विवाह करने का निर्णय लिया और आज उनका गणेश-मन्दिर में विवाह हो गया।

परन्तु शम्भूराव बड़े बेचैन हो गये थे। एक ओर उन्हें लग रहा था कि मैं गलती कर रहा हूँ तो दूसरी ओर उनका मन कह रहा था कि मैंने जो किया वह बिलकुल ठीक किया है।

उनकी इस बेचैन मनःस्थिति का पता जाहिरी तौर पर वारूबाई को नहीं था। विधुर के साथ ही क्यों न हो, पर किसी तरह उसका विवाह हो गया यही उसके लिए बड़ी खुशी की बात थी। अपने अधिकार का घर। अपने अधिकार की गृहस्थी। अपने अधिकार का मनुष्य! वारुबाई भीतर और बाहर आनन्द से भर उठी थी। उस आनन्दावेश में, मेरी सौत की एक लड़की है, मैं एक सौत पर आई हूँ इत्यादि हलकी बातें वह भूल गयी थी। विवाह हो गया। गृह-प्रवेश हुआ। शम्भूराव ने अपना घर दिखाया। घर की तालियाँ उसके जिम्मे कर दीं और लड़की को भी उसकी गोद में रख दिया।

परन्तु वारूबाई पर इन सभी बातों का प्रभाव न पड़ा। घर और तालियों से उसका मन जितना आकर्षित हुआ, उतना लता के अस्तित्व से नहीं हुआ। यानी उसे उसका विषाद हुआ हो, यह बात भी नहीं। परन्तु उसने लता की उपेक्षा ही की। उसका अस्तित्व उसके ध्यान में न आया। वारूबाई सहवास के कल्पना-साम्राज्य में मग्न हो गयी।

अब शाम हो गयी थी। लता की मौसी उसको अपने घर ले गयी और शम्भूराव और वारूबाई के वैवाहिक जीवन की पहली रात उदित हुई। आज रात की रसोई वारूबाई ने स्वयं बनायी। मामा के घर दोनों वक्त की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसोई वही बनाती थी। इस कारण रसोई बनाने में वह कुशल थी। परन्तु इतने वर्ष जो बनायी वह थी मामा के घर की रसोई। आज की रसोई उसके अपने अधिकार के घर की थी, और खानेवाला था उसका पति। रोज उसके मामा-मामी और उनके खचिया भर लड़के भोजन पर बैठते। ऐसी रसोई में क्या रस था। रसोई रसीली हो फिर खानेवाला भी उसी तरह रसिक और अपने अधिकार का मनुष्य होना चाहिए।

वारूबाई ने बहुत-सी चीजें बनायी थीं। मीठी, नमकीन आदि। आज की रसोई से वह यह अन्दाज लगाना चाहती थी कि साहब को कौन से पदार्थ अधिक पसन्द हैं। उसने थाली रखी। थाली के आसपास राँगोली निकाली। थाली के सामने अगरबत्ती जलाकर रखी।

परन्तु शम्भूराव बेचैन थे। उन्हें लगातार लता की माँ की याद आ रही थी। उसे जो वचन दिये थे, वे याद आ रहे थे। और उसका स्वभाव भी याद आ रहा था। वह स्नेहशील थी पर जिद्दी थी। क्रोधी थी। कोई बात उसके मन के अनुसार न होती तो उसका मिजाज एकदम बिगड़ जाता था। वह आज जिन्दा नहीं, पर उसकी आत्मा को क्या लग रहा होगा, इस कल्पना से ही वे बिलकुल हैरान हो गये थे। उनकी अवस्था वारूबाई के ध्यान में आ गयी थी परन्तु उसका कारण उसकी समझ में नहीं आ रहा था और वह उसका इतनी गम्भीरता से विचार भी नहीं करती थी। अपने अधिकार के घर और अपने अधिकार की गृहस्थी का ही उसे आनन्द हो रहा था और पहली रात की कल्पना से ही वह बेहोश जैसी हो गयी थी।

वारूबाई ने पति की थाली परोसी और उन्हें पुकारा। पति बोले, "तुमने अपनी थाली नहीं लगायी?"

वारूबाई ने सिर्फ गर्दन हिलायी। शम्भूराव को पहली पत्नी की याद हो आयी। भरी पंगत में उसके साथ बैठने और अपने हाथ से उसके मुँह में कौर देने का प्रसंग आँखों के सामने मूर्त हो उठा और उन्हें लगा कि इसे भी अपने हाथ से क्यों न खिलाऊँ? एक ही थाली में हम दोनों खायँ तो क्या हर्ज है? यहाँ आखिर देखनेवाला भी कौन है? सच पूछा जाय तो इस लड़की का विवाह भी शान से होना चाहिए था। क्यों नहीं होना चाहिए? मेरा विवाह दूसरा यह कोई उसका अपराध नहीं। शम्भूराव बोले, "आओ, हम एक ही थाली में खायें। ले आओ वे सब बर्तन यहीं।"

और उन्होंने स्वयं वारूबाई के लिए अपनी बगल में आड़ा पीढ़ा रखा, अगरबत्ती जलायी और भीतर से बर्तनों को लाने में उसे मदद दी। वारूबाई के शरीर पर लगातार रोमांच आ रहे थे। नख से लेकर शिख तक एक मीठी सिहरन उसके भीतर होती थी। लज्जा से लदी वह पीढ़े पर बैठी। शम्भूराव ने थाली के आसपास जल फेरा और हँसते-हँसते उससे पूछा, "तुम्हें किस चीज का कौर दूँ? मीठा पसंद है, या नमकीन?"

वारूबाई गालों में हँसी और कुछ न बोलकर, उसने थाली में रखी गुझिया की ओर उँगली दिखा दी। शम्भूराव ने गुझिया का एक टुकड़ा तोड़ा। वे उसे वारूबाई के होठों के नजदीक ले गये। परन्तु—परन्तु न जाने किस तरह वह हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ा। शम्भूराव ने फिर वही टुकड़ा उठाया और पुनः वे उसे वारूबाई के होठों के पास ले गये। परन्तु उनका हाथ अकारण ही हिल उठा और टुकड़ा नीचे गिर पड़ा। ऐसा क्यों हो रहा है, यह शम्भूराव के ध्यान में नहीं आ पा रहा था। वारूबाई की गृहस्थी का यह श्रीगणेश था और होठों तक पहुँचा हुआ कौर नीचे गिर रहा था। इसलिए शम्भूराव ने व्याकुल होकर कहा, 'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः।' ऐसा क्यों होना चाहिए भला? अब झट से कौर ले लो। तुम्हें मुँह खोलने में ही देर लग जाती है! शम्भूराव ने गुझिया का टुकड़ा बिलकुल वारूबाई के मुँह के भीतर ही डाल दिया।

और वारूबाई ने भी उसे झट से खाना शुरू कर दिया, पर एकाएक उसे जोर का ठसका लगा। ठसका इतना जबरदस्त लगा कि उससे गुझिया न ठीक से खायी जा रही थी और न थूकते ही बन पा रही थी। वह ठीक से साँस भी नहीं ले पा रही थी। ऊपर की साँस ऊपर, और नीचे की साँस नीचे। ऐसी उसकी हालत हो गयी। यह शम्भूराव को बड़ा विस्मयकारी लगने लगा। अन्त में एक बार पानी पीकर और एक बार बरेंडी की ओर देखकर जैसे-तैसे वह ठसका रोका। शम्भूराव बोले, "क्यों यह क्या हो रहा है तुम्हें?"

"कुछ अजीब सा हो रहा है।"

"मतलब?"

"ठीक से कह नहीं सकती। पर अजीब-सी बेचैनी लग रही है।"

शम्भूराव ने वारूबाई के कन्धे पर हाथ रखा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वारूबाई के शरीर पर सरसराकर रोमांच हो आया। वह रोमांच सुख का नहीं था, उत्सुकता का नहीं था। यदि भय का कहें तो उसका भी नहीं था। क्योंकि शम्भूराव के विषय में वारूबाई को भय नहीं लगता था। उलटे उनके प्रति तारुण्यसुलभ आकर्षण ही लगता था। परन्तु उनका स्पर्श होते ही वारूबाई के बदन पर, जिस तरह ठंढ में आ जाता है, उस तरह का रोमांच हुआ और वह उनसे दूर हट गयी। शम्भूराव को लगा कि नयी है, अपरिचित है। विवाह हो गया तो क्या हुआ ?

उन्होंने वारूबाई को बिस्तर पर सुला दिया। उसके बदन पर चद्दर ओढ़ा दी और वे स्वयं भी सो गये। कितनी ही देर तक उन्हें लता की और उसकी माँ की याद आती रही।

सुबह हुई। वारूबाई रात की सब बातें भूल गयी और कमर कसकर काम में लग गयी। गृहस्थी का उसे शौक था। मध्यम श्रेणी के गृहस्थों की गृहस्थी में जो चीजें अकसर होती हैं, वे सब उसके घर में थीं। उसने चीजें ठीक से जमायीं। सब तरफ झाड़-पोंछकर स्वच्छ कर दिया। उसने वे दो कमरे उस तरह बढ़िया सजा दिये, जिस तरह कोई झाँकी सजाता है। शम्भूराव और वारूबाई देहलीज में खड़े होकर घर की ओर देखते रहे। फिर उन्होंने एक दूसरे की ओर देखा। वारूबाई लज्जा से भरकर नीचे देखने लगी। दोनों की ही नजरों में आने वाली रात के सपने प्रकट हुए थे।

रात हुई और वारूबाई चद्दर झटकारने लगी। शम्भूराव चद्दर बिछाने लगे। पैताने ओढ़ने के कपड़े तह करके ठीक से रख दिये और एकाएक वारूबाई के बदन पर रोमांच हो आया। वह चौंक पड़ी।

"क्यों क्या हुआ ?"

"रोमांच हो रहा है बदन पर।"

शम्भूराव हँसे। वह रोमांच काहे का है, यह वे जानते थे। उनके बदन पर भी उसी प्रकार का मीठा रोमांच हो रहा था। वे कुछ न बोले। स्वयं से ही हँसते रहे।

परन्तु इस तरह बहुत देर तक वे हँस नहीं पाये। वारूबाई को एकाएक ठंढ लगने लगी। ठंढ के कारण उसके बदन में कँपकँपी भर गयी। दाँत बजने लगे। वह ठीक से खड़ी नहीं हो पा रही थी। अन्त में वह ओढ़कर बिस्तर पर पड़ रही। रात के बारह बजे तक उस कँपकँपी ने उसे बिलकुल थका दिया और आखिर वह बिलकुल थककर सो गयी।

अभी तक लता अपनी मौसी के घर ही थी। उसे अपने घर ले आने के विचार शम्भूराव के मन में आ रहे थे। परन्तु वारूबाई को अच्छा लगने पर लाऊँ, यह भी उन्हें लग रहा था।

तीसरे दिन भी वारूबाई को बिस्तर लगाते समय फिर उसी तरह की जोर की ठंढ लगने लगी। जिस तरह मलेरिया का ज्वर आने पर ठंढ लगती है और कितने भी वस्त्र ओढ़ने पर उसकी कँपकँपी नहीं जाती, उसी तरह वारूबाई की स्थिति हो गयी। रात को करीब बारह-एक बजे तक यही गड़बड़ी चलती रही और उसके बाद जिस तरह बीमार आदमी का बुखार पसीना निकल आने पर उतर जाता है और शरीर हलका पड़ जाता है, उसी तरह वारूबाई की अवस्था हो गयी। उसे गजब की थकावट लगी थी और वह सो गयी।

चौथे दिन भी यही हुआ। पाँचवें दिन भी यही और छठे दिन भी यही। शम्भूराव सोचने लगे कि इसे इस तरह ठंढ लगने की आदत क्या पहले से ही है ? उन्होंने इस सम्बन्ध में वारूबाई से कहा भी। उन्हें वारूबाई पर थोड़ा गुस्सा भी आया। परन्तु उसे ऐसी कोई आदत नहीं थी और शम्भूराव पर ही गुस्सा आ रहा था।

इधर मौसी राह देखती कि लता को ले जाने के लिए उसका बाप आज आता है कल आता है। अन्त में थककर उसी ने एक दिन लता को शम्भूराव के घर जाकर पहुँचा दिया। मन में वह भी थोड़ी नाराज हो गयी थी। नयी पत्नी की खुशी में शम्भूराव अपनी मातृविहीन लड़की को भूल गये ऐसा उसे लगा। वह उनसे बोली, "ठीक से सँभालना इसे समझे ? इसकी उपेक्षा मत करना।"

और ठमक से वह वापिस जाने लगी। जाते-जाते एकबार अपनी बहिन के स्थान पर विराजमान हुई वारूबाई की ओर उसने आँखें बड़ी करके देखा और फिर गर्दन को झटका देकर वह सीधी चल दी।

लता अपनी नयी माँ की ओर देखती दूर खड़ी थी। पिता भी उसे कुछ पराये से लग रहे थे। माँ की उसे पूरी तरह से याद न हो, फिर भी घर में एक नया व्यक्ति आया है, उस व्यक्ति का महत्त्व भी अधिक है और मुझे भी वह मानना चाहिए, ऐसा ज्ञान उसे हो रहा था। वह एक बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पिता की ओर और एक बार वारूबाई की ओर देखती रही और एकाएक उसे सिसकी भर आयी। पर उस उँगली बराबर लड़की ने उस सिसकी को किसी बड़े आदमी की तरह रोक लिया। उसके होंठ काँपने लगे। उन होंठों को उसने हाथ से पकड़ रखा। परन्तु उसके प्रयत्नों की परवाह न करके उसकी आँखों से पानी की बूँदें गाल पर फिसलने लगीं। उन्हें छिपाने के लिए वह वहाँ से भागना ही चाहती थी कि उसी समय वारूबाई ने उसे अपने नजदीक खींच लिया। अपनी गोद में उठाकर उसकी आँखें पोंछीं और उसकी चुम्मी लेकर वह बोली "रो नहीं बेटी! वह जैसी तुम्हारी मौसी है, उसी तरह मैं भी तुम्हारी मौसी ही हूँ। क्यों है न?"

लता ने गर्दन हिलायी। उसका रोना जाने कहाँ भाग गया। गोद से नीचे उतरकर उसने रुवासे स्वर में कहा, "मुझे दूध दे मौसी। मुझे भूख लगी है।"

वारूबाई ने लता को दूध दिया। खाने को दिया। उसकी कंघी-चोटी की। उसे नहलाया और बदन में कपड़े पहनाकर, खेलने भेज दिया।

शम्भूराव ने संतोष की साँस ली। वे अपने काम में लग गये और वारूबाई भी घर के कामों में व्यस्त हो गयी। शम्भूराव को अपने काम पर जाना था।

दोपहर को लता अपनी मौसी के पास ही सोयी। सोकर उठने के बाद मौसी ने उसे फिर दूध दिया और उसके सामने स्लेट-पट्टी रखकर कहा, "चलो अब हम थोड़ी पढ़ाई करें।

"पढ़ाई?" लता ने उछलते-कूदते और चड्डी संभालते पूछा।

"हाँ।"

"पढ़ाई किसलिए, मौसी?" लता ने अँगड़ाइयाँ लेते हुए पूछा।

"पढ़ाई अच्छी होती है।" वारूबाई ने प्यार से कहा।

"अच्छा।" सीधी बैठती हुई लता बोली।

"तो तू खूब खूब पढ़ना। शाला में जाना। कालेज में जाना। फटाफट अंग्रेजी बोलना। फिर विलायत जाना।"

"किसलिए?"

"पढ़ने के लिए।"

"वहाँ भी पढ़ायी ही करनी पड़ेगी?"

"हाँ। नहीं तो क्या मक्खन-डबलरोटी खाने जायगी?"

उसे अपनी गोद में बिठाकर वारूबाई ने कहा, "हाँ, अब लिखो—ग गणेश का—"

लता लिखने लगी। मौसी सराहना-भरी दृष्टि से देखने लगी। रोज यही पढ़ायी। यही कौतुक होता रहा। इस तरह एक महीना गुजर गया। महीना भर लता वारूबाई के साथ ही सोती रही और लता ने कभी अपनी मृत माँ और मौसी की याद की बात नहीं निकाली।

पर आज लता की मौसी आयी और उसे अपने साथ घर ले गयी। वह भी लता के प्रति वारूबाई का प्यार देख कर खुश हो गयी। कम-से-कम दो-चार दिन तो वारूबाई को स्वतन्त्रता मिले ऐसा उसे भी लग रहा था।

नहीं कहे फिर भी वारूबाई जवान थी। विवाह हुए एक महीना हो गया, फिर भी सहवास उसे नहीं मिला था। आज लता घर नहीं थी। इसलिए उसकी कल्पना से वह सहज ही खिल उठी। रात का स्वप्न-चित्र मन-ही-मन खींचने लगी। धीरे-धीरे शाम हुई। वारूबाई को रसोई बनाने की जल्दी पड़ी और वह काम में लग गयी।

सुबह शम्भूराव को खाते समय जरा जल्दी थी। उन्होंने जल्दी-जल्दी में ठीक से खाया नहीं था। इसलिए अब रात को वारूबाई पूरी रसोई ताजी बनानेवाली थी। मसाला भात, पंजाबी किस्म की सब्जी, पापड़, रायता, चटनी वगैरह वगैरह। शम्भूराव ने देखा तो बोले, "आज हमारे विवाह की वर्षगाँठ है शायद।"

रसोई का रंग और रुचि देखकर शम्भूराव खुश हो गये थे। लता की चिन्ता दूर हो जाने से वे मन ही मन निश्चिन्त हो गये थे। इस विवाह से लता की कुछ भी हानि नहीं हुई थी। उलटे उसका स्वास्थ्य सुधर गया था। उसमें पढ़ने की रुचि पैदा हो रही थी। उसके लिए भिन्न-भिन्न, प्रकार के कपड़े वारूबाई सिलवा रही थी और सबसे बड़ी बात यह कि लता का वारूबाई पर प्रेम हो गया था। मौसी के बिना उसका कोई काम न होता था। यह देखकर कि मेरी पत्नी ने मेरी लड़की को इतना प्यार दिया है शम्भूराव बहुत संतुष्ट थे। लता की माँ की आत्मा को इस कारण संतोष मिल रहा होगा ऐसा उनके मन में आया और उन्हें सचमुच ही संतोष की हँसी आयी। इस महीने भर में अपनी कर्तव्य-निष्ठा, दक्षता, स्नेहशीलता और सज्जनता से वारूबाई ने शम्भूराव का मन अपनी ओर खींच लिया था। शम्भूराव को वारूबाई के प्रति विशेष कोमलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न हो गयी थी। अपनी मृत पत्नी और उसकी लड़की को न्याय देने के प्रयत्न में मैं वारूबाई पर ही अन्याय कर रहा हूँ, ऐसी चिन्ता उन्हें लग रही थी। लता अब दो दिन के लिए अपनी मौसी के घर जा रही थी। इन दो दिनों में वारूबाई पर प्रेम की भरपूर वर्षा करने का उन्होंने निश्चय किया था। कल के नाटक के टिकट वे आज ही खरीद आये थे। खाना खाने के बाद उन्होंने वारूबाई को वे टिकट दिखाये और बोले, "कल मैंने आफिस से छुट्टी ले ली है और···" वे और भी बहुत कुछ कहना चाहते थे, पर उनके मुँह से आगे शब्द ही नहीं निकले।

वे अपने आप से ही हँस रहे थे। गुनगुना रहे थे। वारूबाई को तो लग रहा था कि सिनेमा की तरह नाचूँ, गोल-गोल घूमूँ और जोर-जोर से गाऊँ। खुशी से दोनों के मन, जिस तरह फूल खिलते हैं, उस तरह खिल उठे थे। आनन्दावेश में दोनों ने अपने-अपने सुख-दुःख एक दूसरे को बताये और मन से वे बहुत नजदीक आ गये। प्यारे मित्र जिस तरह प्रेम की बातें करते हैं, उस तरह उन्होंने कीं। इस मित्रता से उन्होंने कल्पना के लोक में कितने ही वर्ष पार कर दिये। विवाह हुए एक ही महीना हुआ था पर लग रहा था जैसे तीस वर्ष हो गये हों। बोलते-बोलते शम्भूराव ने वारूबाई का हाथ अपने हाथ में लिया और वे उसकी आँखों में देखने लगे। वारूबाई ने भी संकोच दूर कर अपनी पलकें उठायीं—

त्योंही वारूबाई का हाथ थरथर काँपने लगा। फिर दूसरा भी काँपने लगा और देखते-देखते सारा बदन ही थरथराने लगा। इस थरथराहट को कोई भी नहीं रोक पा रहा था। उलटे, शम्भूराव जब उसका हाथ पकड़ने लगे तब उसका हाथ और अधिक काँपने लगा। जिस तरह हवा से पेड़ के पत्ते थरथराते रहते हैं, उसी तरह वारूबाई का बदन बहुत देर तक काँपता रहा और जब यह थरथराहट रुकी तब उसकी आँखों में तूफान उठना शुरू हुआ। हवा साँय-साँय करने लगी। बिजलियाँ कड़कने लगीं। वृक्ष जड़ समेत उखड़कर गिरने लगे। बादल गरजने लगे और वारूबाई को बड़ा भयंकर लगने लगा। सच पूछा जाये तो इनमें कुछ भी नहीं हो रहा था। बाहर सर्वत्र शान्ति थी। लोग सोये थे। सारे शहर पर निद्रा का आवरण फैला हुआ था। परन्तु वारूबाई के सिर में अलबत्ता तूफान उठा था।

यह किस प्रकार रोका जाय, वारूबाई समझ नहीं पा रही थी। शम्भूराव से कहे तो कैसे? उसके मुँह से शब्द ही प्रकट नहीं हो रहे थे। वह सिर्फ सिर दाबे बैठी रही। शम्भूराव ने उससे कई तरह से पूछा। प्रेम से पूछा। क्रोध से पूछा। सहानुभूति से पूछा। नजदीक जाकर पूछा। परन्तु शम्भूराव के नजदीक आते ही वारूबाई इशारे से उनसे कहती "दूर हो—दूर रहो। तुम नजदीक आते हो तो सिर में जैसे पत्थर बरसने लगते हैं।"

शम्भूराव से कुछ करते धरते न बना। वे चिढ़े। गुस्सा हुए। दुखी हुए। विवाह करके मैंने यह एक पत्थर गले में बाँध लिया—ऐसा भी उन्हें लगा। कमरे के दूसरे सिरे पर बैठकर वे वारूबाई की ओर ठक से रहकर देखते रहे। वारूबाई सिर पकड़े बैठी हुई थी। नीचे देख रही थी। उसने सिर इस तरह से पकड़ रखा था और जमीन की ओर वह इस तरह देख रही थी कि उसका सिर गर्दन से फिसलकर कब नीचे आ गिरेगा इसका कोई ठिकाना नहीं। उस सिर के गिरने की राह देखते हुए ही मानों भयभीत चेहरे से शम्भूराव भी बिलकुल उसी तरह बैठे थे।

इसी समय वारूबाई बैठे-बैठे जमीन पर जोर से गिर पड़ी। उसे विलक्षण थकावट आ गयी थी और उसका बदन पसीने से तर हो गया था। माथे से, चेहरे से, केशों से पसीना चू रहा था। उसके सारे कपड़े जैसे वर्षा में भीगते हैं वैसे भीगकर तर हो गये थे और आँखें खोलकर शम्भूराव की ओर देखने की उसमें शक्ति ही नहीं बची थी। मन ही मन उसने अत्यन्त कष्ट का अनुभव किया। वह समझ नहीं पा रही थी कि ऐसा क्यों होता है। उसके ध्यान में यह बात आ गयी थी कि शम्भूराव के विचार से इस बीमारी की मुझे आदत ही है। वह यह नहीं समझ पा रही थी कि उनकी यह गलतफहमी किस तरह दूर करूँ। मैं इस सज्जन पुरुष की गृहस्थी में आकर एक उपद्रव ही बन रही हूँ इसका उसे भी दुःख होने लगा।

सवेरा हो गया था। वारूबाई को उठने में देर हो गयी थी। उससे पहले उठकर शम्भूराव ने चाय बनायी और वारूबाई को लाकर दी। उनका भी गुस्सा अब जाता रहा था और उन्हें वारूबाई पर रहम आ रहा था। वारूबाई को उन्होंने चाय दी तब वह लज्जा से बिलकुल पिघल गयी। वह बोली, "यह क्या? चाय बनाकर तुम्हें देना मेरा काम है। पर—वारूबाई हकलाने लगी। रात को उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो विलक्षण कष्ट हुए थे उनकी उसे याद हो आयी और उसकी आँखें बरस पड़ीं। सिसकियों के बीच वह शम्भूराव से कहने लगी, "मुझे ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। मेरे शरीर में कोई रोग नहीं। मैं अनाथ हूँ। अभागिनी हूँ। मामा-मामी के घर मैंने कष्ट में दिन काटे हैं पर मैं अत्यंत नीरोग हूँ। सिर-दर्द कैसा होता है यह भी मैं जानती नहीं।"

शम्भूराव बिलकुल सौम्यता से बोले, "मेरा तुम पर विश्वास है। मुझे कुछ भी नहीं लगेगा। आज हम डाक्टर के पास चलेंगे और तुम्हारी जाँच कराकर दवा ले आयेंगे। आज तक तुम्हें कोई बीमारी नहीं हुई तो इसका मतलब यह थोड़े ही है कि आगे भी कभी नहीं होगी।"

वारूबाई बोली, "पर यह बीमारी बड़ी विस्मयकारी है। तुम—तुम जब मेरे पास आते हो तभी मेरा शरीर काँपने लगता है। उसमें आनन्द नहीं होता, उत्साह नहीं होता, उत्सुकता नहीं होती। उलटे मुझे दुःख होने लगता है। कई प्रकार की वेदनाएँ शुरू हो जाती हैं।"

"शरीर को?"

"नहीं मेरे मन को—"

"मन को? तुम्हारे मन को?" शम्भूराव आश्चर्य-चकित हो गये। थोड़े चिढ़ने लगे थे। "यानी-यानी क्या मैं तुम्हें पसन्द नहीं?"

"नहीं, नहीं। ऐसा क्या कहते हो? तुम मुझे बहुत पसन्द हो। तुम पर—तुम पर—" वारूबाई और भी कुछ कहना चाहती थी, परन्तु उसका मुँह एकदम बन्द हो गया। किसी भी तरह वह खुलता नहीं था, परन्तु उसकी ओर से शब्द अलबत्ता सुनायी पड़ने लगे। आवाज भिन्न थी, बोलने की तर्ज अलग थी और ऐसा लग रहा था कि वारूबाई ही मुँह बन्द करके बोल रही है—"मुझे पहचाना नहीं?"

शम्भूराव पागल की तरह वारूबाई के मुँह की ओर देखते रहे। वारूबाई के होंठ पूरी तरह बन्द थे और वह भी वह बोलना सुन रही थी। भय से उसकी आँखें विस्फारित हो गयी थीं। चेहरा बदल गया था।

"मैं तुम्हारी पत्नी हूँ—पहली पत्नी।"

"पहचाना।" शम्भूराव एकदम जोर से बोले। बिगड़ कर बोलने की तर्ज और क्रोधी भाव दोनों उन्हें एकदम खींच गये। पर मरी हुई पत्नी को मुझसे क्यों बोलना चाहिए—यह वे नहीं समझ पा रहे थे। स्वयं उनके भी छक्के छूट गये थे। वे सिर्फ देखते रहे और आगे अब और क्या सुनना पड़ता है, इसका इन्तजार करते रहे। परन्तु धीरे-धीरे वारूबाई का चेहरा पहले जैसा साफ हो गया और वही बोली, "तुम्हें लगा होगा कि मैं ही बोल रही हूँ।"

"हाँ।" थोड़ा रुककर शम्भूराव ने पूछा, "तुम भी सुन रही थीं, क्या वह बोलना?"

"सुन रही थी का मतलब? तुम्हारी पहली पत्नी मेरी ही नाक से बोल रही थी।"

"नाक से?"

"बिलकुल मेरी नाक से आवाज आ रही थी।"

"क्या? यह क्या कह रही हो तुम?"

"झूठ नहीं कहती। मैं नहीं बोल रही थी। होंठ भी नहीं हिला रही थी। पर मेरी नाक से कोई बोल रहा था। नाक में शब्द प्रकट हो रहे थे और उन शब्दों का स्पर्श मेरी नाक को हो रहा था।"

शम्भूराव एक क्षण के लिए चुप रहे। वे आश्चर्य से दंग रह गये थे। फिर धीरे-धीरे बोले, "वह मुझसे बोल रही थी। है न? पर क्यों? मुझसे वह क्यों बोल रही थी?"

"यह मैं क्या जानूँ?" ऐसा कहकर वारूबाई ने कप-बसियाँ समेटीं और वह अपने रोज के काम में लग गयी। शम्भूराव अलबत्ता आश्चर्य में डूबे रह गये।

आज शम्भूराव ने आफिस से छुट्टी ले ली थी। उन्होंने नाटक के टिकट खरीदे थे। नाटक देखने जायँ या नहीं, ऐसा उनके मन में आ रहा था। परन्तु जब टिकट खरीद ही चुके हैं तब जाना ही चाहिए—ऐसा अन्त में उन्होंने निश्चय किया। इसके सिवा जो घटना घटी थी उस पर सुबह से उन्होंने काफी विचार किया और उन्होंने इस सब का यह निष्कर्ष निकाला कि यह सब मन का खेल है। वारूबाई से विवाह करते समय मेरे मन में लगातार वह थी, लड़की की चिन्ता थी और वारूबाई के मन में भी मुँह से न कहे तो भी सौत का विचार आया ही होगा। मैं सौत पर आयी हूँ ऐसा उसे लगता ही होगा। यह हलका-पन उसके मन को चुभता होगा। सौतें तंग करती हैं, तक-लीफ देती हैं—ऐसा उसने भी कहीं न कहीं सुना ही होगा। और यह सब उसी का नतीजा है। वह नाक से बोलती है और होंठों से बोलती है यह सब उसी के मन के खेल हैं।

शम्भूराव ने वारूबाई को पुकारा और अपने ये सारे विचार उसे समझाकर बताये। भिन्न-भिन्न प्रकार से उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जँचा दिया और वारूबाई ने भी यह सब समझ लिया, मान लिया। वारूबाई दूसरों का सुन लेनेवाली औरत थी, अपने ही विचारों का बिसान पीसनेवाली न थी। उसे भी लगा कि जैसा शम्भूराव कहते हैं वैसा ही मेरा मन अनजाने विचार करता होगा और मुझ पर उसका परिणाम होता होगा। इसलिए उसने आज तक जो बातें हुई थीं उन सब को अपने दिमाग से निकाल डाला बिलकुल और वह साफ मन से नाटक जाने के लिए तैयार हो गयी। दोपहर को उसने बढ़िया नींद ली और साढ़े चार का नाटक देखने के लिए वे टैक्सी से रवाना हो गये।

दोनों ने एक साथ बैठकर नाटक देखा। सिर्फ जब एक दूसरे का स्पर्श होता तब वारूबाई का बदन सिहर उठता। फिर भी वह बिलकुल अलिप्तता से अपनी कुर्सी पर बैठी रही और उसी तरह बैठे रहने को उसने शम्भूराव से भी कहा। शम्भूराव ने इस वक्त उसकी बात मान ली। नाटक का मजा किरकिरा न हो इसलिए दूसरी तरफ झुककर उन्होंने पूरा नाटक देखा।

और ये पति-पत्नी बड़े आनन्द से घर आये। आज भी लता अपनी मौसी के ही घर रहनेवाली थी। आज की रात इन दोनों की थी—यह आशा छूटी नहीं थी। वारूबाई भीतर जल्दी-जल्दी काम पूरा कर रही थी और शम्भूराव उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आज तक घटी घटनाओं के विचार उनके मन में आ रहे थे और कहते न थे फिर भी आज और क्या होता है इसकी धुकधुकी उन्हें लग रही थी। कमरे में सामने की ही दीवार पर शम्भूराव की पहली पत्नी का फोटो टँगा था। उस फोटो की ओर इच्छा न होते हुए भी शम्भूराव का ध्यान बारम्बार जा रहा था। नाक-नक्श से वह अच्छी थी। रंग भी उसका गोरा था। तुलना करने लगें तो वारूबाई की अपेक्षा वह अच्छी थी। पर उसका व्यक्तित्व बड़ा कठोर था। रूप था, पर स्वभाव उग्र था। चेहरे के भाव क्रोधी और मूर्खता के थे। उसकी तुलना में वारूबाई सौम्य थी। उसे रंग न मिला था। नाक-नक्श भी मामूली था। परन्तु चेहरा शान्त और समझदार था। शम्भूराव के मन में आया कि वह पत्नी मरी इसलिए मैं दुःख करता हूँ। परन्तु उसकी अपेक्षा यह कितना गुना समझदार और अच्छी है। वह पहली थी। लता की माँ थी। उसके साथ मैंने गृहस्थी की थी। इसलिए अब उसे भला-बुरा नहीं कहना चाहिए। पहली पत्नी को हमेशा अच्छी ही कहना चाहिए—ऐसी प्रथा है इसलिए! पर वारूबाई उससे सौ गुना अच्छी है। वारूबाई से ही मेरा पहला विवाह होता तो? उसके पास विशेष रूप न हो पर उसका चेहरा कितना शान्त और सौम्य है। घर कितनी अच्छी तरह रखती है। मेरी लड़की पर कितना प्यार करती है। कभी गुस्सा नहीं करती। लता की माँ को गुस्सा आता तो वह एकदम जाकर सो जाती। बर्तन पटकती। लड़की को लाकर मेरे सामने पटक देती। वारूबाई बेचारी कभी क्रोध नहीं करती। बर्तन नहीं पटकती—

जैसे एकाएक कोई प्रहार हुआ। शम्भूराव के विचार टूट गये। रसोईघर में जोर-जोर से बर्तन पटके गये और वे जैसे शम्भूराव के विचारों पर आकर गिरे। वे चौंक पड़े और फिर एक क्षण में दौड़ते हुए भीतर गये। "क्या हुआ जी?"

वारूबाई हाथ में रखे बर्तन को जोर से जमीन पर पटककर बोली, "कुछ नहीं।" और उसने दूसरा बर्तन उठाकर पटका।

"मतलब?" शम्भूराव को वारूबाई की यह हरकत देखकर आश्चर्य का धक्का लगा। "क्या हो गया है तुम्हें?"

वारूबाई ने शम्भूराव की ओर एक क्रुद्ध कटाक्ष फेंका और वह धड़ाम-से जमीन पर गिर पड़ी। वारूबाई बदल गयी थी। क्रोध से उसका सारा शरीर जल रहा था। आँखों में जैसे शोले दहक रहे थे। वह बीच-बीच में होंठ जकड़ रही थी। शम्भूराव सचमुच बेवकूफ जैसे देखते रहे। आज यह लता की माँ की तरह क्या कर रही है—यह वे समझ नहीं पा रहे थे। इसी समय वारूबाई एकदम उठकर बैठ गयी और शम्भूराव की ओर घूरकर देखती रही। देखते-देखते शम्भूराव के ध्यान में आया कि वारूबाई वारूबाई नहीं रही। वह लता की माँ हो गयी है। वह लता की माँ जैसी ही दिख रही है। उसके चेहरे के भाव और देखने का ढंग बिलकुल पहली पत्नी जैसा ही है।

यह विचार उनके मन में आया ही था कि वारूबाई एकदम उठी और एक कमरे के कोने में दोनों हाथ दोनों दंडों पर रखकर शम्भूराव की ओर देखती खड़ी हो गयी। उसने होंठों को कसकर बन्द कर लिया था और देखने के सिवा वह और कुछ नहीं कर रही थी। "वारू!" शम्भूराव ने धीरे से पुकारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं वारू नहीं।" वारूबाई की दिशा से शब्द सुनायी पड़े। परन्तु वारूबाई ने मुँह भी नहीं खोला।

"वारू नहीं?" शम्भूराव तनिक आगे बढ़कर बोले, "फिर?"

"अभी तक पहचान नहीं पा रहे हो मुझे? मैं—मैं लता की माँ हूँ।"

"फिर तुम आयी क्यों?"

"मैं इसी तरह आया करूँगी।" वारूबाई अभी तक उसी तरह दहकती निगाह से देखती खड़ी थी और उसने मुँह कसकर बन्द कर रखा था। परन्तु शम्भूराव को सवाल के जवाब अलबत्ता मिल रहे थे।

"आया करोगी--पर किस लिए?"

"तुम्हारी गृहस्थी पर देखरेख करने के लिए।"

"मेरी गृहस्थी को देखने की तुम्हें जरूरत नहीं। मुझे मेरी नयी पत्नी से अलग कर रही हो तुम?"

"तुम जिन्दगी भर इसी तरह उससे अलग रहोगे।"

"क्यों?"

"क्यों? इसका कारण है लता। मेरी लड़की!"

"पर उसे काहे की कमी है यहाँ? तुम्हारी अपेक्षा उसकी सँभाल अधिक अच्छी तरह से हो रही है अब।"

"आज हो रही है। पर कल?"

"मतलब?"

एकदम दो कदम आगे बढ़कर और दंड पर रखे हाथों को कमर पर रखकर वारूबाई जैसे गले में मिर्च चली गयी हो, वैसे बोली—'तुम्हारी दूसरी पत्नी के सन्तान हुई कि मेरी लड़की की घोर उपेक्षा होगी।"

"नहीं होगी।" शम्भूराव ऐसे कहने लगे जैसे वचन दे रहे हों।

"तुम्हारी बातों पर मेरा विश्वास नहीं।" वारूबाई के होंठ अभी तक बन्द ही थे और शम्भूराव से उनकी बातें अलबत्ता हो रही थीं, "तुम वारूबाई के कब्जे में चले जाओगे और मेरी लड़की को सौतेला बर्ताव मिलेगा। यह मैं नहीं चाहती।"

"यह नहीं होगा। मैं वचन देता हूँ।"

"वचन भले ही दो, पर मैं यह नहीं चाहती। मैं मरकर चली गयी। पर मेरी आत्मा चक्कर काट रही है। मैं इस प्रकार सुखविहीन, गृहस्थी-विहीन होकर छटपटा रही हूँ और तुम मजे से सुख भोग लोगे--नयी पत्नी के साथ गुलछर्रे उड़ाओगे? संभव नहीं। यह कदापि सम्भव नहीं।" ऐसा ऊँचे स्वर में चिल्लाकर वारूबाई खड़े-खड़े ही धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी। उसके बदन से पसीना बह रहा था और जिस तरह कोई आदमी दस-बीस मील की दौड़ लगाकर थक जाता है, उसी तरह की थकावट उसे आ गयी थी।

शम्भूराव एकदम नीचे बैठ गये। उन्होंने अपने सिर पर हाथ मारा। फिर विचार करके उन्होंने वारूबाई को एक गिलास पानी पीने को दिया। काफी बनाकर दी। थोड़ी देर वारूबाई आराम से पड़ी रही। फिर धीरे-धीरे बोली, "सुनते हो? इधर मेरे सामने आकर थोड़े अन्तर पर बैठ जाओ।"

शम्भूराव उसके नजदीक ही, पर थोड़े अन्तर पर बैठ गये।

"इस समय वह मेरे गले में आकर बैठी थी।"

"मतलब?"

"मतलब यह कि दोपहर को मेरी नाक से आवाज आ रही थी। नाक से शब्द प्रकट हो रहे थे। परन्तु इस समय अलबत्ता मेरे गले से आवाज आ रही थी। मैं बिलकुल ही नहीं बोल रही थी। मुँह हिलता नहीं था। मेरी जीभ तालू से जाकर चिपक गयी थी। परन्तु मेरे गले से सारे शब्द निकल रहे थे।"

"तुम्हें सुनायी देते थे?"

"हाँ। मुझे सब सुनायी पड़ रहा था। सब समझ में आ रहा था। पर मैं कुछ कर नहीं पाती थी। मैं मैं नहीं रह गयी थी। मेरे भीतर का व्यक्तित्व बदल गया था। मैं 'वह' हो गयी थी।" ऐसा कहकर वारूबाई ढाढ़ मारकर रोने लगी।

क्या किया जाय, शम्भूराव यह समझ नहीं पा रहे थे। वचन देने का कोई उपयोग नहीं था। लता के बारे में यकीन दिलाने से भी काम चलनेवाला न था। वह सिर्फ लता के बारे में ही वचन नहीं चाहती थी। वह चाहती थी कि शम्भूराव भी उसीकी तरह सुख और गृहस्थी-विहीन रहकर जिन्दगी काटें। अब इसके लिए क्या किया जाय? मैं इस वारूबाई से विवाह कर बैठा और इसे एक संकट से निकालकर दूसरे संकट में डाल दिया। शम्भूराव ने काफी सोचकर देखा और फिर उन्होंने यह निश्चय किया कि लता की माँ से बिलकुल नहीं डरना चाहिए। बिलकुल नहीं डरना चाहिए। डरने से वह पीछे लगती है। बस, अब सब डर छोड़ देना चाहिए।

दूसरे दिन सुबह शम्भूराव ने वारूबाई से अपना यह विचार कहा। वे बोले, "तुम घबराओ मत। तुम कोमल हो इसलिए वह तुम पर कब्जा जमा लेती है। तुम अपने में उसे आने मत दो। अपने व्यक्तित्व में उसे मत मिलने दो। वह आने लगे तब उसे धक्के मारकर निकाल देना। वह इसी तरह है पहले से। बड़ी जिद्दी, बड़ी क्रोधी और नासमझ! उसके इस स्वभाव के कारण मुझे कभी-कभी उसे पीट देना पड़ता था। कभी-कभी मैंने उसे कमरे में भी बन्द करके रखा था। इस सबकी उसे याद आती होगी और मेरे और तुम्हारे बीच जो कोमल नाता निर्मित हो गया है वह उससे देखा न जाता होगा, इसीलिए वह तुम्हें तकलीफ देती है। क्या समझीं? मन से उसका विचार, उसका श्रेष्ठत्व सम्पूर्ण रूप से निकाल डालो और उसका आक्रमण मत होने दो। तुम तुम हो! वारूबाई हो! वारूबाई शम्भूराव दातार हो, समझी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वारूबाई ने गर्दन हिलाई। शम्भूराव की बातों का और हिम्मत बँधाने का उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि कल ही रात को घटी घटना भी वह भूल गयी—उसकी भी हिम्मत लौट आयी। मन एकदम प्रसन्न हो गया। अचानक उसे हँसी आ गयी।

शम्भूराव मन में बोले, "कितनी मासूम लड़की है यह! मुझ पर कितना विश्वास है इसका! मन कैसा शीशे की तरह स्वच्छ है। मेरे विचारों से कितनी जल्द एकरूप हो जाती है! इसे सुखी करना ही चाहिए। इसे हमेशा आनन्द में ही रखना चाहिए।

शम्भूराव अपने काम पर चल दिये। वारूबाई कल की तकलीफ न कहे तो भी उससे बहुत थक गयी थी। शम्भूराव ने आज सुबह जो बातें उससे कही थीं उनका विचार करती हुई वह बिस्तर पर पड़ रही। उसे भी लग रहा था कि मेरा पति कितना अच्छा है! कितना स्नेहशील है! मुझ पर कैसा प्राणों से भी अधिक प्यार करता है! मैं हमेशा सुख में रहूँ—हमेशा खुश रहूँ, इसके लिए कितनी कोशिश करता है वह! संतोष से वारूबाई ने आँखें बन्द कीं और तुरन्त ही उसे नींद लग गयी।

शाम को शम्भूराव आफिस से जरा जल्दी लौट आये। वे पत्नी के लिए फूलों की वेणी लाये थे। नयी साड़ी लाये थे। वे बोले, "इसे पहनो। जूड़ा वेणी से सजाओ। हम आज घूमने चलेंगे।"

"कहाँ?"

"इससे तुम्हें क्या करना है? जहाँ मैं ले जाऊँगा वहाँ चलना होगा।"

"अच्छा।" वारूबाई हँसी।

"अथवा जहाँ तुम कहोगी वहाँ।"

"नहीं। जहाँ तुम कहोगे वहाँ।"

वारूबाई शम्भूराव के साथ बाहर निकली। सड़क आने पर शम्भूराव ने टैक्सी की और दोनों उसके भीतर जाकर बैठे। दोनों एक दूसरे से सटकर बैठे थे। ड्राईवर ने पूछा, "साब किधर?"

शम्भूराव बोले, "कहीं भी! शहर के बाहर—प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच। किसी अच्छे रास्ते से हमें पूरा एक घंटा घुमा दो।"

ड्राईवर ने गाड़ी चला दी। शम्भूराव और वारूबाई, जिस तरह बरात में बैठते हैं उस तरह एक दूसरे से सटकर बैठे थे। शम्भूराव ने धीरे-से वारूबाई का हाथ अपने हाथ में लिया। वारूबाई सिहर उठी। शम्भूराव बोले, "सिहरो मत। उस तरफ बिलकुल ध्यान मत दो। हम पति-पत्नी हैं। तुम्हारा हाथ पकड़ने में मुझे विधाता के बाप का भी डर नहीं।"

वारूबाई ने अपना हाथ उसी तरह उनके हाथ में रहने दिया। सिहरन का उठना बन्द हो गया।

परन्तु एकाएक आवाज आयी, "मैं यहीं हूँ।"

"क्या कहा?" शम्भूराव ने चौंककर वारूबाई से पूछा।

वारूबाई बोली, "मैंने कुछ भी नहीं कहा। उसने....." फिर कहा, "मैं यहीं हूँ।"

"मैं आनेवाली हूँ।" पुनः वही आवाज आयी।

शम्भूराव को जाने कहाँ का जोश चढ़ा!

वे एकदम चिल्लाकर बोले, "आ तो सही। इसके स्थान में अगर तू आयी तो मारे हंटरों के चमड़ी ही उधेड़ दूँगा तेरी। समझ क्या रखा है तूने! क्या मामूली नाते भी तू नहीं समझती? चल भाग, यहाँसे। मुँह न दिखाना फिर। याद रख।"

"ठीक है। जाती हूँ।" इतने शब्द सुनायी दिये और फिर वारूबाई बोली, "चली गयी। वह गयी।"

ड्राईवर बोला, "साहब किससे बातें कर रहे हैं? गाड़ी चलाऊँ या नहीं?"

"चलाओ, चलाओ!" शम्भूराव हँसकर बोले, "एक नाटक के भाषण कहकर सुना रहा था इसे" ऐसा कहकर वह विषय उन्होंने बदला और पूरे रास्ते तक वे वारूबाई से चिपके बैठे रहे। उसका हाथ उन्होंने कसकर पकड़ रखा। वारूबाई खुशी से बिलकुल फूल उठी थी। अँधेरा गहरा रहा था और रात्रि के चरण बढ़ रहे थे।

उसी रात का इन्तजार शम्भूराव भी कर रहे थे।

खाना हुआ। शम्भूराव ने रोशनी गुल की और उन्होंने वारूबाई के कन्धे पर हाथ रखा। उसे नजदीक खींचा।

नजदीक खींचा ही था कि दूसरे ही क्षण उन्होंने उसे दूर हटा दिया। क्योंकि दरवाजे में वह खड़ी थी। लता की माँ खड़ी थी। शम्भूराव ने हाथ में लकड़ी ली और वे उसे मारने के लिए दौड़े। परन्तु मार के दायरे में वह न आयी। वह दरवाजे से निकली और खिड़की में जाकर खड़ी हो गयी। शम्भूराव खिड़की की ओर दौड़े। पर खिड़की से कूदकर वह दूसरे दरवाजे में जाकर खड़ी हो गयी। रात भर वह यही करती रही। इधर से उधर नाचती रही। पर कमरा नहीं छोड़ रही थी और उसकी ओर शम्भूराव और वारूबाई दोनों सन्नाटे में आये देख रहे थे।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय हरिशंकर शर्मा स्मृत्यञ्जलि

डा० विनयमोहन शर्मा

सन् का ठीक-ठीक स्मरण नहीं है पर वह १९५० के लगभग हो सकता है। उस समय मैं नागपुर में था। विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष के नाते हिन्दी-परिषद् के वार्षिकोत्सव पर मैंने उन्हें और स्व० श्रीरामजी शर्मा को आमंत्रित किया था। वे दोनों ग्रैंडट्रंक एक्सप्रेस से नागपुर पहुँचे थे। पं० श्रीरामजी से तो मैं पहले भी कई बार मिल चुका था पर हरिशंकरजी के प्रथम बार ही दर्शन हुए थे। हम तीनों घर पहुँचे और रात में बहुत समय तक हिन्दी-साहित्य की गतिविधि पर चर्चा करते रहे। वह कविता में प्रगतिवाद का युग था। छायावादी कवि पंत भी मार्क्सवादियों के चक्कर में फँसकर 'साम्यवाद' का नारा बुलन्द करने लगे थे। कालाकाँकर से 'रूपाभ' के साथ ही कवि पंत के काव्य-रूप की 'आभा' आसमान से नीचे गिर कर धरती पर फैलने लगी थी। वे 'ग्राम्या' की रचना कर चुके थे। 'निराला' का 'कुकुरमुत्ता' काफी चर्चित हो रहा था। हम इन कवियों की प्रतिभा के प्रशंसक रहे हैं। पर हम तीनों को ऐसा लगा कि इनका 'काव्य' 'वाद' में फँसकर अपना 'रूप-आभ' खोता जा रहा है। 'निराला' के 'कुकुरमुत्ते' का व्यंग्य तत्कालीन काव्य-प्रवृत्ति के अनुरूप होने पर भी हमें ऐसा लगा मानों कवि कविता के साथ खिलवाड़ कर रहा है। पर आज के समीक्षक उससे 'नई कविता' का प्रारम्भ मान उसे ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान कर रहे हैं! हिन्दी की आलोचना में निष्पक्षता के स्थान पर जो 'परस्पर-प्रशंसा' की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी, उसकी ओर हरिशंकरजी तथा श्रीरामजी दोनों ने तीव्र रोष व्यक्त किया था। प्राचीन समीक्षकों की समीक्षा पढ़ने से पाठक कुछ सीखता भी था पर आज की समीक्षा में सीखने के योग्य कुछ भी नहीं होता। पाठक आलोच्य कृति के सामर्थ्य से अवगत नहीं हो पाता।

समारोह में कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता करते समय पं० हरिशंकरजी ने जो चौंकानेवाली बात कही वह यह थी कि हम कविता में ही बोलते हैं। उन्होंने कहा कि 'मैं किसी भी भाषा की कविता को हिन्दी-छन्दों में रूपान्तरित कर सकता हूँ।' अपने कथन को आपने शेक्सपियर, शेली आदि अंग्रेजी-कवियों की कविताओं को हिन्दी-छन्दों में गाकर सभा को चकित और मुग्ध कर दिया था। शर्माजी का छन्दों पर गजब का अधिकार था। आज की बेतुकी रचना को वे तुकबन्दी की श्रेणी में भी रखने को तैयार नहीं थे। वे 'लय' को काव्य का प्राण मानते थे। कविता में दुरूहता से भी उन्हें अरुचि थी। कविता वे उसी रचना को मानते थे जिसे सुनते ही श्रोता का हृदय और मस्तिष्क डोल उठे। उनकी रचनाओं में भावों और भाषा की सहज सरलता होती थी। वे जैसा बोलते थे, वैसा ही लिखते भी थे। आडम्बर उनके स्वभाव में नहीं था। उनके मित्रों, स्नेहियों और शिष्यों की संख्या अपार थी। उनके प्रति उनका अकृत्रिम व्यवहार रहता था। पर वे अपने घनिष्ट से घनिष्ट मित्रों के अनुचित कार्य का समर्थन नहीं करते थे। उन्हें 'विशाल भारत' के व्यंग्य-विनोद स्तम्भ में स्व० बाबू गुलाबराय और पं० बनासीदास चतुर्वेदी पर की गयी 'चर्चा' रुचिकर नहीं लगती थी। उन्होंने श्रीरामजी से उलझकर इन चर्चाओं की आवृत्ति रुकवा दी थी। पं० बनारसीदासजी का दिल्ली की राजसभा की गादी पर निष्क्रिय बैठा रहना भी उन्हें अच्छा नहीं लगता था। वे उनसे उसके माध्यम से हिन्दी की अधिक से अधिक सेवा कराना चाहते थे। इन सामान्य मत-भेदों के होते हुए भी हरिशंकरजी के हृदय में चतुर्वेदीजी के प्रति अपार स्नेह रहता था। इनके अस्वास्थ्य के समाचारों से व्याकुल हो उठते थे। स्नेही साहित्यकार अवस्था में छोटा होने पर भी उनके आदर का पात्र बनता था। उनके निवासस्थान पर साहित्यकारों का निरन्तर आवागमन रहता था और वे प्रत्येक की रुचि के अनुसार खानपान की उत्साह के साथ व्यवस्था करते थे। उनके पुत्र तथा पुत्र-वधुओं में भी आतिथ्य-सत्कार के भाव की लेशमात्र भी कमी नहीं दिखायी दी।

शर्माजी में आत्मसम्मान की भावना तो तीव्र थी पर आत्म-प्रशंसा अथवा आत्म-विज्ञप्ति उन्हें छू नहीं गयी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कभी स्वराजी सरकार के आगे सहायता के लिए हाथ नहीं फैलाया। मैं ऐसे साहित्य महारथियों को जानता हूँ जो अपनी देशभक्ति का मूल्य अनुदान की याचना के रूप में माँगते रहते हैं। मासिक वृत्ति एक नहीं, कई प्रान्तों की सरकारों से माँगने में संकोच नहीं करते। हरिशंकरजी ने कभी इस प्रकार का दैन्य प्रदर्शित न कर सच्चे साहित्यकार तथा देशभक्त के समान अपने आत्मसम्मान की रक्षा की।

हिन्दी-भाषा के सामर्थ्य में उनका अटूट विश्वास था। आगरे में जब खेर-भाषा-आयोग पहुँचा और उसके सम्मान में साहित्यकारों ने भोज का आयोजन किया तब शर्माजी भी उसमें सम्मिलित हुए। भोज के उपरांत गपशप होने लगी। एक सज्जन कह उठे, 'अजी, हिन्दी में शब्दों की बड़ी कमी है, उर्दू की शब्द-सम्पत्ति के सामने वह कहाँ ठहरती है?' शर्माजी से नहीं रहा गया। उन्होंने कहा, 'आप गलत कहते हैं। उर्दू की कोई शब्द-सम्पत्ति ही नहीं है। क्या आप कोई उर्दू का शब्द बता सकते हैं?' वे सज्जन जो शब्द उर्दू का कहते, शर्माजी उसे संस्कृत, फारसी अथवा अरबी का कहकर उन्हें चुप कर देते। शर्माजी ने स्पष्ट कहा—'उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है। उसकी न कोई स्वतंत्र शब्द-सम्पत्ति और न व्याकरण ही है। उसके शब्द या तो संस्कृत मूलक हैं या फारसी या अरबी-मूलक हैं।' शर्माजी के तर्कपूर्ण वक्तव्य से उपस्थित व्यक्ति आश्चर्यचकित रह गये। खड़ीबोली अपनी उपभाषाओं तथा देश की अन्य भाषाओं से शब्द, मुहावरे आदि ग्रहण कर उत्तरोत्तर सम्पन्न होती जा रही है, इस तथ्य को अधिकाधिक प्रचारित करने की आवश्यकता है।

शर्माजी हिन्दी के हरिश्चन्द्रकालीन महाकवि 'शंकर' के सुपुत्र होने के करण रिक्थ में ही काव्य का वरदान प्राप्त कर चुके थे। उनकी अनेक विषयों पर रचनाएँ उपलब्ध हैं। समसामयिक विषयों व्यक्तियों आदि पर उनके व्यंग्य भी बड़े चुटीले होते थे पर उनमें व्यक्तिगत आक्रोश नहीं होता था। शुद्ध सात्विक अभिव्यक्ति होती थी। आज के आडम्बरी नेताओं पर भी आपने करारे व्यंग्य किये हैं। उनकी 'घासपात' नाम की रचना देव-पुरस्कार से सम्मानित हो चुकी है।

शर्माजी आर्यसमाजी होते हुए भी समाजियों के समान कट्टर नहीं थे। आहार में वे प्रगतिशील समाजियों के समान मास-पार्टी में नहीं थे, घास-पार्टी में थे। सात्विक आहार-व्यवहार के हामी थे। उनकी धार्मिक दृष्टि उदार थी। 'आर्यमित्र' का वर्षों सम्पादन कर उन्होंने अपनी निष्काम राष्ट्रीय और उदार नीति के कारण पत्रकारिता का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया था। वे उसके वर्षों आदरी (अवैतनिक) सम्पादक रहे। निःशुल्क सेवा करने में उन्हें विशेष आनन्द आता था। उन्होंने कई नवयुवकों को हिन्दी पत्रकारिता में दीक्षित ही नहीं किया, उन्हें शुद्ध हिन्दी लिखना भी सिखाया। हिन्दी के कई लेखक उनसे प्रेरणा प्राप्त कर प्रतिष्ठित हो चुके हैं।

शुद्ध साहित्यकार होने पर भी अपनी राष्ट्रीय वृत्ति के कारण शर्माजी ब्रिटिश सरकार की आँखों में चुभा करते थे। तत्कालीन अनेक हिन्दी-साहित्यकार राष्ट्रीय कार्य भी करते थे और उनका उनके यहाँ स्वभावतः आना-जाना चलता रहता था। सन् १९४२ के आन्दोलन में तो पुलिस घर-घर में राष्ट्रीय व्यक्तियों को सूँघा करती थी और कारण-अकारण उन्हें पकड़कर जेल में ठूँस दिया करती थी। भारत-रक्षा-कानून में बिना मुकदमा चलाये किसी को भी कारागार में अनिश्चित काल के लिए डाला जा सकता था। शर्माजी ने भी आगरा में कुछ समय तक ब्रिटिश सरकार का आतिथ्य ग्रहण किया था। उस समय आगरे का केन्द्रीय कारागार कई प्रतिष्ठित नेताओं का 'घर' बना हुआ था। वहाँ राजकीय बन्दियों का बहुत-सा समय 'काव्य-शास्त्र-विनोद' में बीतता था। शर्माजी ने वहाँ 'कृष्ण-सन्देश' नामक छोटी सी काव्यकृति लिख डाली थी, जिसमें कृष्ण-चरित्र और उनका गीता-सन्देश संक्षेप में निबद्ध है।

शर्माजी सुन्दर हस्तलेखन में भी पटु थे। उनके पत्रों का प्रत्येक अक्षर सुवाच्य होता था। मैं जब अपने हस्तलेखन से उनके हस्तलेखन की तुलना करता हूँ तब दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर पाता हूँ। उनकी भाषा शीन-काफ से दुरुस्त होती थी। वे विदेशी शब्दों को, विशेषकर उर्दू के प्रचलित अरबी-फारसी के शब्दों को हिन्दी में तत्सम रूप में ही लिखने के पक्षपाती थे। इसीसे वे हिन्दी-लेखकों को उर्दू भाषा और साहित्य के अध्ययन की सलाह दिया करते थे क्योंकि उर्दू को वे हिन्दी से पृथक् भाषा नहीं मानते थे। उन्हें 'उर्दूवालों' से यह शिकायत रही है कि वे अपने लेखन में हिन्दी-शब्दों को ग्रहण नहीं करते और करते भी हैं तो अशुद्ध रूप में। इसके विपरीत हिन्दी-लेखक उर्दू में प्रचलित शब्दों-मुहावरों आदि को बड़े उत्साह से ग्रहण करते हैं और अपनी भाषा में लोच ले आते हैं। शर्माजी कवि, पत्रकार और लेखक के अतिरिक्त सुवक्ता भी थे और इन सबसे अधिक सहृदय भावक। उनके शरीरान्त से हिन्दी जगत् से एक सहृदय 'गुणग्राहक हिरानो है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतरत्न—डा० राधाकृष्णन

श्री मुकन्दी लाल, बैरिस्टर

बचपन से महान् पुरुषों के दर्शन करने की मेरी बड़ी इच्छा रही है और अवकाश मिलने पर सन् १९०४ ई० से अब तक मैं इस इच्छा की पूर्ति का प्रयत्न करता रहा हूँ। इसी तरह महापुरुषों की जीवनी का मैं अध्ययन करता रहा हूँ। सन् १९०४ ई० से मैंने हिन्दी में लिखना शुरू किया और मुझे याद है कि पहले-पहल मैंने साप्ताहिक 'गढ़वाली' में अपनी जन्मभूमि, गढ़वाल, के भविष्य के विषय में एक लेखमाला लिखी थी। तब मैं पौड़ी मिशन स्कूल में पढ़ता था। सारे गढ़वाल मण्डल में, एकमात्र इसी एक मिशन स्कूल में, आठवें दर्जे तक पढ़ायी होती थी। पीछे जब मैं म्योर कॉलेज, इलाहाबाद में एफ० ए० क्लास में दाखिल हुआ तब वहाँ महामना देशभक्त पंडित मदनमोहन मालवीय के दर्शन करने अक्सर जाया करता था। उन्होंने हिन्दी में साप्ताहिक पत्र 'अभ्युदय' का प्रकाशन आरम्भ किया। उनके भतीजे श्री कृष्णकांत मालवीय उसके सम्पादक थे। मालवीयजी ने मुझसे 'अभ्युदय' के लिए लेख लिखने को कहा। पहला लेख मैंने उक्त पत्र के लिए 'महाराष्ट्र का अभ्युदय' पर लिखा और दूसरा लेख, मुझे याद है, 'मोछिया रोग' पर लिखा था। यह व्यंग्यात्मक लेख था। यह फैशन, मूछों को सफाचट करना, वायसराय लार्ड कर्जन ने भारत में शुरू किया था और यह शिक्षित समाज में वैसे ही फैलने लगा था जैसे आजकल हमारे नवयुवकों में लम्बे बाल रखना और दाढ़ी व गलमोंछ रखने का फैशन चल पड़ा है।

इसके दो वर्ष बाद श्रीमती रामेश्वरी नेहरूजी ने मुझसे पत्र द्वारा मासिक पत्रिका 'स्त्रीदर्पण' के लिए लिखने को कहा। मैं तब 'ऑक्सफोर्ड केम्ब्रिज हॉस्टल' में, जो आनन्द भवन के समीप था, निवास करता था। तब नेहरू परिवार की महिलाएँ परदे में रहती थीं। श्रीमती रामेश्वरीजी नौकर के जरिए सम्पादकीय टिप्पणियाँ संशोधन के लिए मेरे पास भेजती थीं और लेख लिखने के लिए भी इसी तरह आग्रह करती थीं। आज ६५ वर्ष के बाद स्त्रियों की योग्यता की चर्चा हो रही है। मैंने पहला लेख सन् १९०९ ई० में 'स्त्रीदर्पण' के लिए इसी विषय पर लिखा था—'अबला कि सबला।' इस लेख में उन देशों के दृष्टान्त दिये थे जहाँ स्त्रियाँ पुरुषों के समान या उनसे अधिक काम घर से बाहर करती थीं। यह दिखलाया था कि महिलाएँ जिनको हम अबला (कमजोर) कहते हैं, दरअसल सबला (बलवती) हैं। एक दृष्टान्त मैंने बर्मा देश का दिया था, जहाँ स्त्रियाँ घर के बाहर व्यवसाय करती थीं और वही काम करती थीं जो भारतवर्ष में पुरुष करते हैं। इस लेख के बाद मैंने 'कर्मवीर गांधी' लेखमाला 'स्त्रीदर्पण' में प्रकाशित करनी शुरू की और ढाई साल तक यह लेखमाला निकलती रही। इस लेखमाला में मोहनदास करमचन्द गांधी के दक्षिण अफ्रीका में जनसेवा और आत्मत्याग के कामों और हिन्दुस्तानियों के हकों के लिए लड़ाई लड़ते हुए कई बार जेल जाने का जिक्र किया था। सन् १९१२ में परमदानी देशभक्त, मेरे मित्र, बनारस के शिवप्रसाद गुप्तजी ने इस लेखसंग्रह को पुस्तक के रूप में छपवाया था। सबसे पहला लेख 'सरस्वती' के लिए मैंने शिवप्रसाद गुप्तजी की जीवनी पर १९१२ में लिखा था, जिसे 'सरस्वती' के वर्तमान सम्पादक ने १९६२ में 'सरस्वती' की साठवीं वर्षगाँठ के अवसर पर प्रकाशित 'हीरक जयन्ती' अंक में उद्धृत किया था। इसके बाद मैं यदा-कदा 'सरस्वती' में देशभक्तों की जीवनियाँ श्रद्धाञ्जलि के रूप में लिखता रहा हूँ। अब तक स्व० श्रीप्रकाश, प्रेसीडेंट जाकिर हुसैन, मुख्यमन्त्री श्रीमती सुचिता कृपलानी की संक्षिप्त जीवनियाँ लिख चुका हूँ। आज मैं भारतरत्न राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन की जीवनी लिख रहा हूँ और इसके बाद मोहम्मद हफीज इब्राहीम की जीवनी 'सरस्वती' की भेंट करने का विचार था, किन्तु सुनने में आया है कि इस सर्वोत्तम हिन्दी की प्रथम मासिक पत्रिका का प्रकाशन बन्द करने का विचार है। काश हमारी सरकार इसे अपने हाथ में लेकर 'सरस्वती' का प्रकाशन जारी रखे!

मैं उन्हीं महापुरुषों और देशभक्तों की जीवनी 'सरस्वती'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए लिखता हूँ, जिनके प्रति मेरा प्रेम व श्रद्धा रहती है और जिनके दर्शन करने का अवसर मुझे मिला हो। भारतरत्न सर्वपल्ली राधाकृष्णन के दर्शन पहले-पहल मैंने तब किये थे, जब वे बनारस विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर थे। हमारे देश के आजाद होने पर शुरू में देश के शासन में उनकी सेवा का उपयोग नहीं किया गया था। मुझे याद है, मैंने चाहा था कि काश पंडित जवाहरलाल डा० राधाकृष्णन को कहीं भारत का एम्बेसेडर (राजदूत) बनाकर भेजें। यह मैंने इसलिए चाहा था कि मैं जानता था कि उस वक्त हमारे देश में उनके जैसा प्रकाण्ड विद्वान्, दार्शनिक व्यक्ति और कोई नहीं था। मेरी मनोकामना शीघ्र ही पूरी हुई। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें रूस में भारत का राजदूत बनाकर भेजा। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि भारत और रूस की मैत्री की बुनियाद डा० राधाकृष्णन ने ही डाली। और आज रूस हमारा परम मित्र तथा सहायक है।

इसके बाद तीन बार और मैंने डा० राधाकृष्णन के दर्शन किये। एक बार सन् १९६२ में, (जब मैं यू० पी० एसेम्बली का सदस्य था और वे हमारे देश के राष्ट्रपति थे) राष्ट्रपति भवन दिल्ली में मिला। उन्होंने हँसते हुए मुझसे कहा—'मुकन्दीलाल, तुम्हारी यू० पी० एसेम्बली में अनुशासन नहीं है। सदस्य हुल्लड़बाजी करते हैं।' मैं जब दूसरी बार उनसे राजभवन में मिला तब उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। उन्होंने मुझे अपने शयनकक्ष में बुलाया और पलंग में लेटे-लेटे ही मुझसे बातें कीं। मैंने मुस्कराते हुए कहा—'अब आपकी पार्लियामेंट में भी हुल्लड़बाजी और क्रमभंग होने लगा है।' उन्होंने इस बात को स्वीकार किया। इस विषय में मेरी धारणा और अनुभव है कि हमारे विधायकों की अनुशासन में रुचि नहीं है। उनमें लोकतन्त्र की भावना का अभाव है। मैं तो यह कहने को तैयार हूँ कि हमारे देश में ही डेमोक्रेसी (लोकतन्त्र) का अभाव है और अनुशासनहीनता का साम्राज्य है। प्राचीनकाल से कुछ गणराज्यों (रिपब्लिकों) के होते हुए भी हमारे देश में शासनकर्ता दण्डनीति का उपयोग करते आये हैं। हमको डण्डे के जोर से कार्य करने की आदत पड़ गयी है। इसका सबूत आजकल की आपत्कालीन व्यवस्था है, जिससे आमजनता को राहत मिली है और अराजकता, जिसके चिह्न दिखायी दे रहे थे, लोप होती जा रही है। ऐसा लगता है कि इसी दण्डनीति का शासन ही हमारी जनता के लिए लाभदायक है।

प्रकाण्ड विद्वान्, सर्वोच्च कोटि के आधुनिक शासनकर्ता भारतरत्न डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्म ५ सितम्बर, १८८८ ई० को वर्तमान आन्ध्रप्रदेश (जो पहले मद्रास प्रदेश का एक अंग था) में एक तेलगू ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्होंने सन् १९०७ में मद्रास के समीप तम्बरम् के क्रिश्चियन कॉलेज से बी० ए० पास किया था और वेदांत दर्शन पर निबन्ध लिखकर एम० ए० की उपाधि हासिल की थी।

प्रतीत होता है कि युवावस्था से ही उनकी प्रवृत्ति दर्शनशास्त्र और अध्यात्म विद्या, विशेषकर वेदांत की ओर थी। उन्होंने प्रेसीडेंसी कॉलेज मद्रास में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर का पद ग्रहण किया और दस वर्ष तक उस पद पर काम किया। इस बीच वे शास्त्रों, अध्यात्म विद्या, वेद, उपनिषद्, कुरान आदि का मनन करते रहे। दर्शनशास्त्र पर उनकी पहली पुस्तक सन् १९१८ में रवीन्द्रनाथ टैगोर का दर्शन (Philosophy of Ravindra Nath Tagore) प्रकाशित हुई। दो वर्ष के बाद उन्होंने दर्शनशास्त्र पर अंग्रेजी में एक और पुस्तक लिखी The reign of Religion in Contemporary Philosophy (समसामयिक दर्शन पर धर्म का शासन)। उसमें उन्होंने कहा कि साम्प्रदायिक मतभेदों को बढ़ावा देना अनुचित है, क्योंकि दार्शनिक मतभेद और उनकी व्याख्या करने में मनुष्य को परम पद पर पहुँचने में बाधा पड़ती है। सन् १९२१ में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से उनको हरबर्ड लेखमाला में दर्शनशास्त्र पर व्याख्यान देने के लिए निमंत्रण मिला। इस महान् पीठ से उन्होंने आठ व्याख्यान दिये थे। वे An Idealist view of Life (जीवन का आदर्शवादी दृष्टिकोण) शीर्षक में ३५० पृष्ठों की पुस्तक के रूप में छपे हैं। मैं इस व्याख्यानमाला को उनकी सर्वोच्च देन मानता हूँ। इसमें उनके दर्शनशास्त्र और नीति का सार है। इस व्याख्यानमाला के प्रथम अध्याय में 'मजहब के खिलाफ चुनौती' पर उनका प्रवचन है। वे कहते हैं कि मनुष्य का कोई काम ऐसा नहीं है जिसका कभी समाज ने समर्थन न किया हो और कभी उसकी निन्दा न की हो। समाज को नीति बदलने का हक है। कोई ऐसी शक्ति (ईश्वर) नहीं है जो समाज के लिए अकाट्य नियम बना सके। व्यक्ति को हम मिट्टी की मूर्ति की तरह जैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहें वैसा बना सकते हैं। हमारे विचार संघर्ष का नतीजा हैं। हम सब बड़े बालक हैं जिनके लिए ईश्वर एक प्रकार की दाई है। धर्म के जरिये मनुष्य आदर्श पद तक पहुँचने की कोशिश करता है। मनुष्य मजहब (धर्म) की शरण इसी-लिए लेता है कि उसके द्वारा वह ईश्वर (Supreme Spirit) और आदर्श पद को पहुँच सकता है। धर्म (Religion) आदिम काल से समाज के संगठन के लिए इस्ते-माल किया गया है। मजहब का इतिहास विभिन्न मतों के संघर्ष की कथा है। मजहब का ध्येय है कि वह ईश्वर और आदमी के बीच की खाई को पाटे और मनुष्य को भगवान् में मिलाये।

जो परिभाषा विभिन्न मत देते हैं, उससे ईश्वर का ध्यान (Conception) नहीं हो सकता है। प्रत्येक धर्म में ईश्वर के विभिन्न रूप दिये गये हैं। प्रारम्भिक युद्ध धर्मों में अनित्य ईश्वर नहीं माना गया है। दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, गांधी और टैगोर गीता के आधार पर कर्म को प्रधानता देते हैं। परिणामवादी (Pragmatist) सत्य को कल्पना मात्र मानते हैं, और कहते हैं कि सत्य प्रासंगिक है। विभिन्न मतों की आलोचना करते हुए डा० राधाकृष्णन इस मत पर पहुँचे हैं कि यदि हम ईश्वर (God) पर विश्वास न भी करें तो भी हमको इस तरह से पेश आना चाहिये कि मानों हम उस पर विश्वास करते हैं। यह मनुष्य के लिए हितकर है कि वह यह माने कि परमात्मा (ईश्वर) है। इस सम्बन्ध में उनके ही शब्द उद्धृत करना उपयोगी होगा—"Even if we do not believe, we must act as if we believed. It is useful to live as though there were a God. Social efficiency seems to require theistic belief. The idea of God is regulating one, a methodical fiction which helps us to regard objects of our thought as connecting part of a systematic whole.* (An Idealist view of Life. 1929. Pages 73-74) वे यह भी कहते हैं कि हमारे विश्वास से हमको मानसिक और शारीरिक सुख व शान्ति मिलती है। धार्मिक विश्वास से हमारे जीवन के संघर्ष में सुख मिलता है। उन्होंने यह भी कहा है कि ईसा मसीह के जीवन में सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने मानव प्रेम के लिए मृत्यु (Crucifixin) की यातना सही है। जीजस अपने इस कर्म से ईश्वर की सत्ता को साबित करते हैं। उन्होंने मानों यह दिखलाया है कि आदमी ईश्वर बन गया है अर्थात् मनुष्य परमात्मा में लीन हो गया है। डा० राधाकृष्णन ईसा मसीह को सत्य का परम रूप मानते हैं। अस्तु; डा० राधाकृष्णन के कथनानुसार मानव प्रेम और मनुष्य की सेवा मानो परमात्मा है। आधनिकता मन की एक प्रवृत्ति है। (What is called modernism is an attitude of mind)।

डा० राधाकृष्णन के जीवन का दूसरा ग्रन्थ जो उनकी कीर्त्ति को चिरायु रखेगा वह है उनका 'धम्मपद', जिसका प्रथम प्रकाशन सन् १९५० में आक्स-फोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस ने किया। उसके पृष्ठ ५७ के प्राक्कथन में बौद्धधर्म का निचोड़ आ गया है और धम्मपद के ४२३ पदों का जो अनुवाद उन्होंने पाली से अंग्रेजी में किया है वह अब तक के अनुवादों में सबसे उत्तम है। दृष्टान्त के लिए यहाँ पर मैं २१०वें पद के अन्तिम पद का हवाला देता हूँ—'नत्थि शान्ति परे सुखम्'। इसका अंग्रेजी अनुवाद मैक्स-मुलर ने किया–There is no happineas other than rest। राधाकृष्णन ने इसका उचित अनुवाद किया—There is no happiness higher than tranquility अर्थात् शान्ति का अनुवाद मैक्समुलर ने rest किया और डा० राधाकृष्णन ने Tranquility और राहुलजी ने इसका अर्थ किया कि शान्ति से बढ़कर सुख नहीं। भिक्षुधर्मरक्षित ने उस पद का अनुवाद किया—निर्वाण (शान्ति) से बढ़कर सुख नहीं। तात्पर्य यह है कि अंग्रेजी में डा० राधाकृष्णन ने उसका पर्याय शब्द Tranquility किया। यह उल्लेख इसलिए किया गया है कि डा० राधाकृष्णन ही ऐसे व्यक्ति हमारे विद्वानों में हुए हैं जिन्होंने संस्कृत और पाली शब्दों का ठीक अर्थ किया है और हमारे दर्शनशास्त्र और धार्मिक पुस्तकों का अंग्रेजी में सही अर्थ और ठीक व्याख्या की है। १९२९ के बाद उनको योरुप के अनेक विश्वविद्या-लयों, चीन, अमरीका और राष्ट्रसंघ में भारतीय दर्शन-

*यदि हमें ईश्वर पर विश्वास न हो तो भी हमें इस तरह पेश आना चाहिये कि हम उस पर विश्वास करते हैं। यह हमारे लिए हितकर है कि हम इस बात को मान लें कि ईश्वर है। सामाजिक स्थिति के लिए धर्म पर विश्वास करना चाहिये। यदि यह बात कल्पित ही हो कि ईश्वर इस संसार का संचालन करता है तो भी इस विश्वास के कारण हमारे विचार और सांसारिक जीवन में सहायता मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र और भारतीय संस्कृति पर प्रकाश डालने के लिए निमंत्रण आने लगे और सन् १९४८ से प्रायः प्रतिवर्ष निमंत्रण आते रहे। उन्होंने भारतीय सभ्यता का जो प्रदर्शन अपने व्याख्यानों द्वारा संसार में किया वह अद्वितीय है अर्थात् २० वर्ष तक वे भारतवर्ष के गैर सरकारी राजदूत रहे। १९४८ से १९५२ तक वे भारतवर्ष के रूस में राजकीय राजदूत रहे। रूस की धरती पर पैर रखने के दिन स्वयं स्टालिन ने उनका स्वागत किया और बार-बार उनसे मुलाकात की। आज रूस में जो संस्कृत और हिन्दी का प्रचार हो रहा है और महाभारत, रामायण और धर्मशास्त्रों के रूसी भाषा में जो अनुवाद हुए हैं वह उनकी कार्य-कुशलता के ही परिणाम हैं।

वे सन् १९५२ में रूस से भारतवर्ष बुलाये गये और सर्वसम्मति से भारत के उपराष्ट्रपति चुने गये। सन् १९५४ में उनको भारतरत्न से विभूषित किया गया। सन् १९५७ में उनको मंगोलिया सरकार की ओर से 'मास्टर आफ विजडम' (Master of Wisdom) की उपाधि मिली और सन् १९५९ में उनको Gothe Plaquatte मिला। सन् १९६२ में वे ब्रिटिश ऐकेडेमी के फेलो चुने गये। सन् १९३१ में उनको इङ्गलैंड की महारानी की ओर से Kighthood की पदवी मिल चुकी थी। धार्मिक विषयों में पारंगत होने के कारण उनको Temple Tom Foundation का पारितोषिक मिला था। वे बहुत बड़े आदर्श अध्यापक थे। इसलिए उनकी यादगार में उनका जन्मदिवस सारे देश में अध्यापक दिवस (Teachers Day) के रूप में मनाया जाता है।

वे सन् १९६२ से १९६७ तक भारतवर्ष के राष्ट्रपति रहे। राष्ट्रपति पद से अवकाश प्राप्त कर वे अपने घर मद्रास में रहा करते थे। मैंने उनके निवास-स्थान पर जाकर सन् १९७३ में उनके दर्शन किये थे। तब उनका स्वास्थ्य गिरने लगा था। उन्होंने बड़े प्रेम से मुझसे वार्तालाप किया था। उनकी पुत्रवधू उनकी सेवा करती थीं। जब वे राष्ट्रपति पद पर आरूढ़ थे तब उनके तीन प्रधान मंत्री रहे—नेहरू, लालबहादुर और श्रीमती इंदिरा गांधी।

भारतरत्न डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन बहुत बड़े अध्यापक, उपकुलपति, राजदूत, राष्ट्रपति और भारत के अद्वितीय विद्वान् ही नहीं थे बल्कि अद्वितीय वक्ता भी थे। राष्ट्रपति के रूप में उनके मुँह से निकले आखिरी शब्द थे—'हमारा नारा येनकेन प्रकारेण शक्ति या पद प्राप्त करना नहीं होना चाहिये, किन्तु हर तरह से सेवा करना होना चाहिये।"

उनको पूर्वी तथा पश्चिमी देशों का पुत्र और प्राचीन तथा आधुनिक सभ्यता का समीक्षक और विचारक माना गया है। जब उनकी मृत्यु १७ अप्रैल १९७५ को हुई तब उनके प्रति प्रधान मन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था कि राधाकृष्णन भारतीय दर्शन के अद्वितीय व्याख्याता थे, उन्होंने अपनी वाक्पटुता द्वारा सारे संसार को और हमको बताया कि भारतवर्ष में ज्ञान और संस्कृति का कितना भांडार है। आचार्य जे० बी० कृपलानी ने कहा कि राधाकृष्णन ऐसे राजनीतिक दार्शनिक थे जो कूटनीति के समर्थक नहीं थे। कभी-कभी वे प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू को भी डाट देते थे। उनकी समझदार सन्तुलित नीति से हमने पूरा फायदा नहीं उठाया। श्री के० के० बिरला ने कहा था कि वे केवल प्रकांड विद्वान् ही नहीं थे वरन् उनके विचार ताजे और प्रभावशाली होते थे। श्री कामराज ने उनको बहुत बड़ा अध्यापक, दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक बताया था। श्री गिरि ने कहा कि वे राष्ट्र की शक्ति के स्तम्भ थे। शेख अब्दुल्ला ने उनको अमूल्य रत्न कहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य में आधुनिकता और श्लील-अश्लील का सवाल

श्री गौरीशंकर (जी० एस०) भट्टाचार्य

विदेशी साहित्य में नबोकव-रचित एक ग्रंथ है, जिसका नाम है 'लोलिटा'। उसमें वर्णित हम्बर्ट अधेड़ उम्र का व्यक्ति है। लोलिटा की विधवा माँ उसकी पत्नी बनी है—तेरह-चौदह वर्ष की कुँवारी लोलिटा जिस हम्बर्ट को डैडी कहती है। लेकिन हम्बर्ट की प्रकृति ऐसी अद्‌भुत थी कि उसकी आँखों में लोलिटा ही नाचती रहती। लोलिटा से मिलन, शायद एक कन्या का भी जन्म होगा; वह भी बड़ी होगी, और बाद में उससे भी मिलन !

यह स्वाभाविक है कि युगीन अवसाद-क्षोभ-आशाउद्योगविज्ञान-उच्च-नीचों का भेद-भाव-दुर्नीति-मनोविकार एवं नर-नारियों के प्रेम-दुख-मोह-सुख-निराशा-आनंद के पर्याप्त आयात से साहित्य का नवजन्म हो। षड्‌रिपुओं के अधीन मनुष्यों का प्रेम कामानुभूति के रूप में भी अपना काम करना चाहता है, लेकिन यह कामानुभूति अगर उमड़ पड़े और लोलुप प्रेरणा से घिनौने यौन-कर्म का ज्वार उठाये तो यह 'काम' मन में बैठ जाता है। यह श्लील-अश्लील अर्थात् सुनीति-दुर्नीति का सवाल नहीं है; सवाल है मौलिक मूल्यबोध का। 'उर्वशी' काव्य में कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' कहते हैं—"तन का काम अमृत लेकिन यह मन का काम गरल है।" यह सच है कि साहित्य जीवन-वेद है, लेकिन प्रेम-कल्पना को अगर हम साकार रूप में देखना चाहें तो उस समय शालीनता काफी दूर तक घसीट लायी जाती है।

हम मानते हैं कभी-कभी किसी सांस्कृतिक क्रांति के दौरान हमारी चिंता बदलती है। उस समय साहित्य के कलाकार युग के वश में आ जाते हैं और व्यावहारिक मामलों से साहित्य इस तरह जुड़ जाता है कि महान् परम्परागत मूल्यों पर कुछ लोग भ्रूभंग करने लगते हैं। आज जिस दौर पर प्रगतिशील सभ्यता जा रही है अर्थात् वर्तमान मनुष्य-समाज जाता है वहाँ रूढ़िवादी धूमिल विचारों से समकालीन साहित्य-चिंता का सम्बन्ध कम होना ही चाहिए। इस चिंता के अनुसार अधिकांश लेखकों की ऐसी धारणा है कि बीते दिनों के परिप्रेक्ष्य में जो साहित्य बनाया गया है अथवा अब बनाया जाय वह क्रांतिकारी साहित्य-कर्म नहीं है, वह है साहित्य-विलास।

लेकिन समालोचकों का काम निष्पक्ष विचार करना है। हाल में हमारे मध्य ऐसे कहानीकार और समालोचक आये हैं, जिनका मत है कि साहित्य में प्रगतिवाद, मानवीय स्वतंत्रता व मानवीय विकार, तथा आधुनिक समाज की तरह-तरह की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नहीं चलेगा। उत्कट भोगवाद अर्थात् यौन-कर्म के पर्याप्त वर्णन से साहित्य का काम पूरा होना चाहिये। हम नहीं जानते कि यह वास्तव में प्रगति का नाम है या नहीं, पर यह जानते हैं कि निश्चय ही यह युग का दावा है।

जो भी हो, हमारे बौद्धिक स्तर पर आज ऐसी जिज्ञासा उभर रही है जो जानना चाहती है कि वास्तव में आधुनिकता क्या है और आधुनिक साहित्य की संज्ञा भी हम किसे दें ? वस्तुतः आधुनिकता किसी एक काल से सीमित नहीं है। आधुनिकता है एक अभिव्यक्ति, सजावट और शैली, एक शिल्पित स्वभाव। साहित्य न आधुनिक है और न प्राचीन। उदाहरणार्थ, कालिदास के मेघदूतम् को हम क्या कहेंगे—प्राचीन ? या आधुनिक ?

सोचना यह है कि मंगल अथवा सौंदर्य की संज्ञा क्या है। व्यक्ति के मानस की व्याख्या हम चाहे जिस ढंग से करें, कालजयी साहित्य का रूप ऐसा ही रहा है जिसमें मार्मिक सौंदर्य बोध का कोई रूपांतर नहीं हो पाता है। यह हमें ध्यान रखना होगा कि हम क्या लिख रहे हैं, और कैसे लिख रहे हैं। यह 'क्या' है मंगलबोध, और 'कैसे' है सौंदर्यबोध। वास्तविकता ही सत्य है। जो सुरुचि और संयम है, वही सौंदर्य है।

लेकिन जब कहानीकार सामाजिक अवमूल्यन को काफी सराहते हैं, अनैतिक एवं पक्षपात की दृष्टि से खंडित जीवन को देखना चाहते हैं, खोखली आधुनिकता की रोमानी से दमक उठते हैं, तब वे न तो दार्शनिक साहित्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलक उड़ी सी

श्री विनोद शाही

चरण उठे ज्यों बँधे ताल में
काँप गयी छायांकित शफरी, उर-प्रवाल में।
विरल धूम सी अलक उड़ी सी
कुटिल रेख में मेघ लड़ी सी
किरण कालिमा पहन पड़ी सी
नील-कंठ की भाल रेख, या स्वप्न-जाल में,
चरण उठे ज्यों बँधे ताल में।
चित्रित दृग, सर पद्मनाभ ज्यों
भौंह, किनारे खड़ी नाव ज्यों
पुतली मधुकर अग्र श्याम ज्यों
चितवन, जैसे हवा परागी, पुष्प-माल में,
चरण उठे ज्यों बँधे ताल में।
स्मित सा काँपा नेह अधर पर
क्रीडा चल दी मान डगर पर
बचपन की रेखा ज्यों कर पर
पलक उठी आरोहित स्वर सी, मध्य चाल में,
चरण उठे ज्यों बँधे ताल में।

कार हो सकते हैं, न रसभोक्ता; न श्रेष्ठ मनःसमीक्षक, न अमर कलाकार। आज हमारा वैभव बढ़ा, तकनीकी प्रत्यय बढ़ा, शान बढ़ी, परन्तु शांति नहीं बढ़ पायी है। हमारी कर्मक्षमता अगर दीख पड़ती है तो कर्मयोग का बड़ा ही अभाव है। गोर्की-अलबेयर कामू-दस्तयेवस्की-बर्नर्ड शा की रचनाओं में जिस तरह जीवन-दर्शन का स्वाद लाया गया है, तुलनात्मक दृष्टि से विश्व साहित्य की मंडियों में हमारे उपन्यास साहित्य का क्या वैसा समादर होगा ?

साहित्यकार अगर सोचें कि साहित्य न महान् है न 'पर्नोग्राफिक', साहित्य शिल्प है, एक रूपकर्म अर्थात् 'एक्सटर्नलाईजेशन,' तो यथार्थ में वे गलत हैं। यौनवादी साहित्यकार यह नहीं जानते कि मध्यपथ ही सही रास्ता है। कलात्मक स्तर में संकेत के सहारे सत्य को व्यक्त कर देना ही उचित काम है। भोग में जैसी शक्ति दीख पड़ती है, त्याग में भी वैसी शक्ति है, और सबसे बड़ी बात यह है कि भोग के माध्यम से त्याग की महिमा प्रकाशित होती है। उन्नीसवीं शती में फ्रांस में स्थूल भोगवाद के आधार पर 'क्रिटिकल रिअलिज़म' की ऐसी हवा चली कि कुछ नामी लेखक उछल पड़े। परन्तु आज उनका समादर बहुत कम होने लगा है। लोग यह भी शायद कहेंगे कि क्या महाभारत, कुमारसंभव, गीतगोविन्द और थोड़ा-बहुत दंडी के काव्यादर्श में संभोगलिप्सा, शृंगाररस की अधिकता नहीं है ? लेकिन वहाँ हमारी अभिज्ञा बड़ी विस्तृत हो पायी है या नहीं ? वहाँ आदिरस के मधुरभाव को अनियंत्रित यौन-भ्रष्टाचार से दूषित करने की इच्छा कहाँ है ?

यह नहीं भूलना चाहिये कि उपन्यासकार भी कवि तथा कलाकार है। साहित्य ने सार्वजनिक भूमिका निभायी है। 'साहित्य के पथ पर' नामक ग्रन्थ में रवीन्द्रनाथ ने कहा है—"भावसृष्टि और रससृष्टि, यही है साहित्य का मुख्य उद्देश्य। समय-समय पर भिन्न-भिन्न घटनाओं के आघात-प्रतिघात से मानवलोक में हृदयावेग की लहरें बहा करती हैं। ऐसे अवसर पर हमारे इंद्रियबोध का बड़ा ही विस्तार हो पाता है और हम भावरस के भोक्ता बनते हैं।" ऐसी स्थिति में कवि के रूप में कथाकार श्री और भव्य भाव का वितान रचते हैं। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि नाटककार शेक्सपीयर में रससिद्ध जीवन-मर्मज्ञ कवि शेक्सपीयर का भी वास था।

यह एक गम्भीर परिस्थिति है। संशयात्मक साहित्य-चिन्ता के कारण रास्ता नहीं दीखता है। कोई ग्रन्थ अश्लील दोष से दुष्ट है या नहीं—इसका निर्णय कभी-कभी कुछ लोग न्यायालय के अनुशासन से कराना चाहते हैं। इसी सिलसिले में वे लंदन के आवसीन पब्लिकेशन्स ऐक्ट (१९५९) और भारतीय फौजदारी की २९२, २९३ धाराओं का उपयोग करना चाहते हैं। पर कहना न होगा कि साहित्य दूसरी चीज है। शुद्ध रसपूर्ण स्तर पर यह स्थित है, साहित्य-सम्बन्धी भले-बुरे सवाल का नियन्त्रक स्वयं साहित्यकार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक प्रौद्योगिकी (टेकनालाजी) और मानव समाज

श्री शंकरसहाय सक्सेना

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप सर्वप्रथम ब्रिटेन में और तत्पश्चात् अन्य पाश्चात्य औद्योगिक देशों में जिस प्रौद्योगिकी (टेकनालाजी) को अपनाया गया उसको आर्थिक समृद्धि का एकमात्र आधार मानकर अन्य देश भी अपनाने लगे। संसार के अविकसित और विकासशील राष्ट्रों में यह मान्यता दृढ़ हो गयी कि यदि देश को समृद्ध बनाना है और आर्थिक समृद्धि का सुख भोग करना है तो धनोत्पादन के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाना आवश्यक है। यही कारण है कि उससे उत्पन्न होनेवाली समस्याओं और खतरों की ओर तनिक भी ध्यान न देकर सभी राष्ट्र आँख बन्द कर उसको अपनाने पर तुले हुए हैं। भारतवर्ष भी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त अपनी आर्थिक सम्पन्नता के लिए उसीके पीछे दौड़ रहा है। यद्यपि राष्ट्रपिता गांधी ने आधुनिक प्रौद्योगिकी से उत्पन्न होने वाली समस्याओं और खतरों को देख लिया था, और राष्ट्र को उनसे सावधान भी कर दिया था तथापि आर्थिक समृद्धि के लिए हमने जो पंचवर्षीय योजनाएँ स्वीकार कीं उनमें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आर्थिक विचारों की ओर ध्यान नहीं दिया।

यदि ध्यान से देखा जाय तो आधुनिक प्रौद्योगिकी मानव जाति के लिए एक भयंकर खतरा सिद्ध होगी और यदि मानव जाति शीघ्र ही उसका कोई वैज्ञानिक विकल्प स्वीकार नहीं कर लेती तो वह उसके लिए भयंकर अभिशाप सिद्ध होगी। अब कुछ पाश्चात्य विचारक और अर्थशास्त्री भी इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं और प्रौद्योगिकी से उत्पन्न होने वाली समस्याओं और खतरों से बचने के लिए वैज्ञानिक विकल्प को खोज निकालने की चर्चा होने लगी है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि प्रौद्योगिकी का केवल वर्तमान रूप दोषपूर्ण है उसको बदलने की आवश्यकता है और उसका वैज्ञानिक-विकल्प खोजना आवश्यक है।

हम यहाँ आधुनिक प्रचलित प्रौद्योगिकी से उत्पन्न होने वाली समस्याओं और खतरों का संक्षेप में वर्णन करेंगे जिससे यह स्पष्ट हो जाय कि वह मानव जाति के लिए कैसे अभिशाप है।

दूषितकरण (पोल्यूशन)—आज इस तथ्य को सभी स्वीकार करने लगे हैं कि आधुनिक प्रौद्योगिकी से विकसित देशों में जहाँ औद्योगीकरण हुआ हैं, वहीं जल-वायु दूषित होने का खतरा भी उत्पन्न हो गया है। भीमकाय कारखानों और निर्माणियों (फैक्ट्रियों) से जो धुआँ, दूषित जल तथा विषाक्त छीजन या क्षेप्य निकलती है वह वायु और जल को दूषित कर देती है। कारखानों की चिमनियों से निकला विषाक्त और दूषित धुआँ वायु को दूषित कर देता है और उस वायु में साँस लेने के कारण मनुष्य अनेक रोगों का शिकार होता है। योरप तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में बड़े औद्योगिक केन्द्रों में शीतकाल में जब कोहरा पड़ता है और कारखानों की चिमनियों से निकला दूषित धुआँ ऊपर न जाकर दब जाता है तब श्वास की बीमारियों तथा कैंसर आदि से मृत्यु संख्या साधारण से कई गुनी अधिक हो जाती है। धूम्र-कण केवल वायुमंडल को ही दूषित नहीं करते वरन् पेय जल, खाद्य पदार्थों, निवास-स्थानों को भी दूषित कर देते हैं। केवल कलकत्ता में ही प्रतिदिन तीन-चार टन धूम्रकण गिर जाते हैं। कानपुर जैसे औद्योगिक केन्द्रों में शीतकाल में जब कोहरा पड़ रहा हो तब जो श्वास घुटने लगती है, आँख तथा नासिका में जलन उत्पन्न हो जाती है वह विषाक्त और दूषित वायु का प्रत्यक्ष प्रमाण है। केवल कारखानों के धुएँ से ही वायु-मंडल दूषित नहीं होता। बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों में जो बड़ी संख्या में मोटर कारें, बस, ट्रक आदि चलते हैं वे भी वायु को दूषित करते रहते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में तो इस समस्या ने इतना गम्भीर रूप धारण कर लिया है कि अब वहाँ साइकिल का उपयोग किया जाने लगा है। बम्बई को दूषितकारण के प्रभाव से बचाने के लिए अत्यन्त व्यय-साध्य योजना बनायी गयी है।

कारखानों से केवल वायु ही दूषित और विषाक्त नहीं होती जल भी दूषित होता है। बहुत से उद्योगों में कारखानों से जो गंदगी प्रवाहित की जाती है उससे नदियों, झीलों और समुद्र का जल दूषित हो जाता है। संसार के कई भागों में समुद्र तथा झीलों की मछलियाँ खाना स्वास्थ्य के लिए खतरनाक हो गया है। क्योंकि उसमें बहुत अधिक मात्रा में धातु के अवशेष मिलते हैं। यह जल के दूषित हो जाने का परिणाम है। अणु विस्फोट चाहे सैनिक उपयोग के लिए हो अथवा शान्तिपूर्ण कार्यों अथवा ऊर्जा उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिए हो हानिकर और अवांछनीय विकिरण उत्पन्न करता है जो वायु तथा जल को दूषित कर देता है। ये धुआँ, गैस, विकिरण आदि सभी तत्त्व जल तथा वायु में एक हो जाते हैं और खाद्य पदार्थों को भी रासायनिक क्रिया के द्वारा स्वास्थ्य के लिए खतरनाक और दोषपूर्ण बना देते हैं। कारखानों और शक्ति-गृहों से निकली अतिरिक्त या अनावश्यक ऊष्मा से नदियों तथा झीलों का जल इतना हानिकारक हो जाता है कि सभी जलचर मर जाते हैं। उस ऊष्मा से जलवायु पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

खेती की भूमि भी इस विनाश से नहीं बचती। जिस प्रकार अब खेती की जा रही है उसके कारण भूमि की मौलिक उर्वरा शक्ति का ह्रास होता जा रहा है। भूमि-क्षरण तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी के कारण भूमि की मौलिक उर्वरा शक्ति का तेज़ी से ह्रास हो रहा है। चार सौ वर्षों में धरातल पर मिट्टी की एक इंच परत बनती है, पर जिस प्रकार आजकल खेती की जा रही है उससे धरातल के ऊपर की मिट्टी का तेज़ी से ह्रास हो रहा है। एक सर्वेक्षण के अनुसार संयुक्तराज्य अमेरिका में प्रैरीज के मैदानों में जब से खेती आरम्भ हुई है तब से धरातल के ऊपरी भाग की उपजाऊ मिट्टी की एक चौथाई मिट्टी नष्ट हो गयी, समुद्र में बहकर चली गयी।

आधुनिक प्रौद्योगिकी पूँजी प्रधान है—आधुनिक उत्पादन के ढंग की एक विशेषता यह है कि इसमें अपेक्षाकृत बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि धनोत्पादन की इस पद्धति को समृद्धिशाली राष्ट्र और उनमें भी धनिक वर्ग ही अपनाता है और उसका आर्थिक वर्चस्व स्थापित हो जाता है। यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। श्रम-प्रधान धनोत्पादन की पद्धति (प्रौद्योगिकी) में एक श्रमिक को धनोत्पादन कार्य करने के लिए जो उपकरण या सरंजाम चाहिए वे उसके ६ महीने के वेतन में उपलब्ध किये जा सकते हैं किन्तु पूँजी प्रधान आधुनिक विकसित प्रौद्योगिकी में एक श्रमिक को काम देने के लिए जिन यन्त्रों या उपकरणों की आवश्यकता होती है वह उसके ३५० महीनों (२९ वर्षों) के वेतन या मजदूरी से खरीदे जा सकते हैं। यही कारण है कि जो अविकसित राष्ट्र आधुनिक पश्चिमी प्रौद्योगिकी को अपनाते हैं उनका आर्थिक विकास अत्यन्त मन्द गति से होता है।

वे निर्धन, अविकसित राष्ट्र, जहाँ जन-संख्या बहुत अधिक है और बेकारी की समस्या गम्भीर है, औद्योगिक दृष्टि से अत्यन्त विकसित राष्ट्रों का अनुकरण कर आधुनिक विकसित प्रौद्योगिकी को अपनाते समय यह भूल जाते हैं कि उससे बेकारी की समस्या कभी हल नहीं हो सकती। वास्तविकता तो यह है कि आधुनिक विकसित प्रौद्योगिकी नये स्थानों (नौकरियों) का सृजन नहीं करती वरन् बहुधा स्वचालित प्रक्रियाओं के द्वारा उन्हें कम कर देती है। वह धनोत्पादन की प्रक्रिया में मजदूरों की आवश्यकता को कम करती है और पूँजी की आवश्यकता को बढ़ाती है। धनोत्पादन की उस पद्धति का अनिवार्य परिणाम बड़ी मात्रा का उत्पादन होता है। वह विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती।

आर्थिक केन्द्रीकरण—आधुनिक विकसित प्रौद्योगिकी का एक बड़ा दोष यह है कि विभिन्न देशों की भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक तथा जनसंख्या सम्बन्धी विशेष परिस्थितियों के अनुसार उसका समायोजन नहीं किया जा सकता। यदि किसी देश को आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाना है तो उसे आर्थिक केन्द्रीयकरण को अपनाना ही होगा। आर्थिक केन्द्रीयकरण उसका अनिवार्य परिणाम है। भीमकाय विशाल कारखानों और निर्माणियों (फैक्ट्रियों) की स्थापना करनी होगी, बड़े औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना करनी होगी, देश की जनसंख्या अपने कारबार या धन्धों तथा कुटीर उद्योगों की स्वयं मालिक न रहकर मजदूर की श्रेणी में आ जायगी। गहन पूँजीवाद इसका अवश्यम्भावी परिणाम है। पूँजीवादी राष्ट्रों में समस्त आर्थिक सत्ता कतिपय धन कुबेरों के हाथ में आ जाती है। आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण का परिणाम यह होता है कि कतिपय धन कुबेरों का देश की समस्त जनसंख्या पर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक वर्चस्व स्थापित हो जाता है। साम्यवादी अथवा समाजवादी राष्ट्रों में राज्य-पूँजीवाद का उदय होता है। वहाँ आर्थिक सत्ता राज्य के पास केन्द्रित हो जाती है, और सत्ताधारी दल के शीर्ष राजनीतिक नेताओं का देश पर, उसके सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन पर वर्चस्व स्थापित हो जाता है। जन-साधारण की स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। वे मजदूरों की श्रेणी में आ जाते हैं। स्वतन्त्र रूप से अपनी योजना अपनी [illegible] उत्पादन करने का उनका अधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आत्मसंतोष समाप्त हो जाता है। अतएव चाहे पूंजीवादी समाज-व्यवस्था हो, चाहे साम्यवादी समाज-व्यवस्था जन-साधारण की स्थिति मजदूर की ही रहती है। वह स्वयं सेवा-आयोजक नहीं बन सकता।

प्राकृतिक देन का अपव्यय—प्रकृति ने जो प्राकृतिक धन मनुष्य को दिया है उसका आधुनिक प्रौद्योगिकी में तेजी से दोहन और ह्रास होता है। पृथ्वी के गर्भ में जो खनिज-सम्पत्ति प्रकृति ने करोड़ों-अरबों वर्षों में एकत्र की है वह आधुनिक प्रौद्योगिकी के कारण कुछ सौ वर्षों में समाप्त हो जायगी। प्रकृति जितने समय में खनिज तथा शक्ति के साधनों का नवीन निर्माण करती है उसकी तुलना में नगण्य समय में ही आधुनिक प्रौद्योगिकी उसे समाप्त कर देती है। आज जो संसार में ऊर्जा का महान् भयंकर संकट उपस्थित हो गया है वह आने वाली विभीषिका का किंचित् संकेत मात्र है। जैसे-जैसे इस प्राकृतिक देन का अभाव होता जाता है मनुष्य विज्ञान के आविष्कारों की सहायता से इस साधन को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। एक स्थिति वह आ जाती है कि उसको प्राप्त करने में जो लागत व्यय आता है वह उससे मिलनेवाली उपयोगिता के बराबर हो जाता है। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि यदि हम आजकल की तरह कोयले और खनिज तेल को जलाते रहे तो कुछ वर्षों में उनको प्राप्त करने में जितनी ऊर्जा व्यय करनी पड़ेगी उतनी ऊर्जा उनसे उत्पन्न नहीं होगी।

उदाहरण के लिए यदि हम औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों को लें तो जन-संख्या के लिए खाद्य पदार्थ उत्पन्न करने में जितनी 'कैलोरी' व्यय करनी पड़ती है उतनी कैलोरी उस पदार्थ से मनुष्य को प्राप्त नहीं होती। जहाँ शक्ति-चालित कृषि यन्त्रों का चलन नहीं है और खनिज तेल के द्वारा खेती के यन्त्रों को नहीं चलाना पड़ता वहाँ खेती में एक कैलोरी व्यय करने पर पंद्रह कैलोरी खाद्य पदार्थ उत्पन्न होता है।

आधुनिक प्रौद्योगिकी अत्यन्त जटिल और दुरूह है—आधुनिक प्रौद्योगिकी इतनी जटिल, पेचीदा और दुरूह है कि उसको सचालित करने के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। साधारण स्त्री-पुरुष उसका संचालन नहीं कर सकते, और न उस पर नियन्त्रण ही रख सकते हैं। यही नहीं, आधुनिक प्रौद्योगिकी चरम सीमा की केन्द्रित शक्तियों पर आधारित होती है। मनुष्य उस पर नितान्त निर्भर हो जाता है और यदि किसी भी कारणवश वह केन्द्रित सेवा किसी तकनीकी दुर्घटना के कारण अस्त-व्यस्त हो जाती है तो लाखों-करोड़ों व्यक्तियों का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। युद्धकाल में यदि शत्रु बम वर्षा से किसी एक केन्द्रित सेवा को ध्वस्त कर देता है तो जन जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है, और राष्ट्र की अपार क्षति होती है। आधुनिक प्रौद्योगिकी में किसी भी समाज के मौलिक सामाजिक मूल्य तथा संस्कृति सुरक्षित नहीं रह सकती। यदि सभी समाज और राष्ट्र आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाते हैं तो उसको उसके अनुरूप एवं समान संस्कृति तथा सामाजिक मूल्य अपनाने होंगे। चाहे पाश्चात्य देश हों अथवा एशियाई और अफ्रीकी, आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपना कर वे अपने भिन्न संस्कृति और सामाजिक मूल्यों को सुरक्षित नहीं रख सकते।

आधुनिक प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था का जन्म होता है। उसके कारण मूल सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आता है और जो समाज उसको अपनाता है उसे परिवर्तित अर्थ-व्यवस्था के अनुसार अपने जीवन तथा सामाजिक मूल्यों को बदलना पड़ता है। यह प्रश्न दूसरा है कि यह परिवर्तन हानिकर है, या श्रेयस्कर पर यह स्पष्ट है कि आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनानेवाले समाज को अपने मूल सामाजिक मूल्यों और संस्कृति को सुरक्षित रख सकने का विचार छोड़ना होगा, उसे तिलांजलि देनी होगी, वह सम्भव ही नहीं है। फिर चाहे अरब देश हों, या भारतवर्ष या चीन हो या ईरान उनकी सभ्यता और संस्कृति कितनी प्राचीन क्यों न हो यदि उन्होंने केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था को स्वीकार किया, जो आधुनिक प्रौद्योगिकी का अवश्यम्भावी परिणाम है, तो उनकी प्राचीन सभ्यता संस्कृति अक्षुण्ण नहीं रह सकती; उन्हें केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था के अनुरूप अपने को बनाना ही होगा।

आधुनिक प्रौद्योगिकी मूलतः विदोहनकारी है। जो भी प्राकृतिक देन किसी देश को प्रकृति ने प्रदान की है उसका विदोहन इस उत्पादन की पद्धति में अत्यन्त तीव्रता से होता है। इस कारण वैज्ञानिकों को यह भय होने लगा है कि यदि विदोहन को समय रहते रोका नहीं गया तो वर्तमान अर्थव्यवस्था ढह जायगी और मनुष्य जाति को भयंकर स्थिति का सामना करना पड़ेगा।

विकल्प—प्रश्न यह है कि आधुनिक प्रौद्योगिकी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न ऊपर वर्णित समस्याओं और खतरों से किस प्रकार मानव समाज अपनी सुरक्षा कर सकता है। क्या आधुनिक विज्ञान ने मानव जाति को जो बहुत सी सुविधाएँ और उपलब्धियाँ प्रदान की हैं उनको तिलांजलि देकर मानव प्राचीन स्थिति में पुनः लौट जाय ? आज न तो यह सम्भव है, न व्यावहारिक और न मनुष्य के हित में ही है। आज मानव जाति उस स्थिति में पहुँच चुकी है कि उसके लिए विज्ञान की उपलब्धियों को छोड़ सकना सम्भव और श्रेयस्कर नहीं है। ऐसी दशा में एकमात्र विकल्प यह है कि आधुनिक प्रौद्योगिकी का संशोधन किया जाय। यह हम ऊपर देख चुके हैं कि आधुनिक प्रौद्योगिकी चरम सीमा के केन्द्रीयकरण को जन्म देती है। उसके परिणामस्वरूप केन्द्रित धनोत्पादन और अर्थ-व्यवस्था का विकास होता है। अतएव आवश्यकता यह है कि विकेन्द्रित प्रौद्योगिकी का विकास किया जाय। विकेन्द्रित प्रौद्योगिकी के अपनाने का परिणाम यह होगा कि चरम सीमा का केन्द्रीकरण समाप्त हो जायगा, मनुष्य समाज विज्ञान की उपलब्धियों का लाभ भी उठा सकेगा और केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से भी बच सकेगा। अतएव मानव-समाज को एक नवीन प्रौद्योगिकी को विकसित करना होगा जिसे हम विकेन्द्रित प्रौद्योगिकी कह सकते हैं।

विकेन्द्रित प्रौद्योगिकी को विकसित करने के पूर्व हमें ऊर्जा की समस्या को हल करना होगा। अभी हम अधिकतर खनिज कोयला अथवा खनिज तेल से ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। इनका पृथ्वी के गर्भ में छिपा भांडार सीमित है। यदि इसी प्रकार उसका दोहन होता रहा तो ये भांडार शीघ्र समाप्त हो जायँगे। फिर कोयले से भाप उत्पन्न करके जो शक्ति हम उत्पन्न करते हैं उससे केन्द्रित उत्पादन अर्थात् बड़ी मात्रा का उत्पादन ही हो सकता है।

यदि जल शक्ति, सूर्य की गरमी, वायु की शक्ति तथा ज्वार-भाटे से शक्ति उत्पादन करें तो एक लाभ यह होगा कि वह कभी समाप्त नहीं होगी। वह पृथ्वी के गर्भ में भांडार के रूप में सीमित नहीं है। वह निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। कभी समाप्त नहीं होती। इसके अतिरिक्त एक बड़ा लाभ यह होगा कि उस शक्ति (ऊर्जा) का उपयोग विकेन्द्रित उत्पादन के लिए किया जा सकेगा। आधुनिक ढंग के छोटे यंत्रों के द्वारा कुटीर उद्योगों का विकास हो सकेगा और भीमकाय कारखाने स्थापित करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। उदाहरण के लिए, एक कारीगर अपने घर में अपने परिवार के श्रम की सहायता से जल विद्युत् प्रवाहित जल, सूर्य की गरमी से उत्पन्न शक्ति अथवा वायु की शक्ति से आधुनिक यत्रों से उत्पादन कार्य कर सकेगा।

विकेन्द्रित उत्पादन का अर्थ यह कदापि नहीं है कि शक्ति तथा यंत्रों का उपयोग न किया जाय। परन्तु यह तभी सम्भव होगा जब हम विकेन्द्रित प्रौद्योगिकी का विकास करें। शक्ति द्वारा संचालित हल्की मशीनों (यंत्रों) का निर्माण विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था में आवश्यक होगा। विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था का एक शुभ परिणाम यह होगा कि समाज केन्द्रित अर्थ व्यवस्था के दुष्परिणामों से बच सकेगा और जनतंत्र तेजवान और सबल बनेगा। केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था चाहे पूँजीवादी जनतंत्री देश में हो अथवा समाजवादी-साम्यवादी देश में जनतंत्र को व्यंग्य मात्र बनाती है। वहाँ तो पूँजीपति वर्ग का वर्चस्व स्थापित होता है अथवा एक दल-विशेष द्वारा प्रभावित राज्य पूँजीवाद का वर्चस्व स्थापित होता है जिसका वास्तविक अर्थ होता है कुछ राजनीतिज्ञों का अधिनायकवाद। साधारण जन का दोनों परिस्थितियों में कोई महत्त्व नहीं होता। शुद्ध जनतंत्र तभी तेजवान बन सकता है जब देश के अधिकांश जन राज्य अथवा धन कुबेरों द्वारा संस्थानों में मजदूरी पाने वाले श्रमिक न होकर स्वयं अपने कारबार या धंधे के स्वामी हों। वे स्वयं अपने सेवायोजक हों। यह केवल विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था में सम्भव है। अस्तु, यदि मानव समाज वास्तव में सर्वसाधारण की सुख और समृद्धि चाहता है तो उसे विज्ञान पर आधारित नवीन प्रौद्योगिकी का विकास करना होगा। जनसंख्या तथा आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति को देखते हुए भारत के लिए विज्ञान पर आधारित विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था ही श्रेयस्कर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू और जैन

श्री परिपूर्णानन्द वर्म्मा

३ नवम्बर, १९७५ को, दीपावली के दिन जैनियों के पचीसवें तथा अन्तिम तीर्थंकर महावीर के निर्वाण का २५००वाँ वर्ष पूरा हो जायगा। जैन अथवा श्रमण धर्म के प्रवर्तक थे ऋषभदेव, जिनको आदि पुरुष हिन्दू शास्त्रों ने भी माना है। महावीर ने अपने पूर्ववर्ती २३ तीर्थंकरों के आदेश उपदेश चरित्र का अवगुण्ठन कर समय (काल) के अनुसार उनमें संशोधन कर जैन धर्म की महान् धारा को क्रमबद्ध कर देने का अद्भुत कार्य किया था। जैन धर्म के अनुसार चार घातिया कर्मों (काम, क्रोध, मद, लोभ या शरीर, मन, वचन तथा कर्म) के अत्यन्त क्षय हो जाने पर जो केवल ज्ञान के द्वारा इन्द्रिय, क्रम और व्यवधान रहित तीनों लोकों के सम्पूर्ण द्रव्यों और पर्यायों को साक्षात् जानते हैं, वे केवली कहलाते हैं। जो चतुर्विध संघ तथा उनके नेता, प्रथम गणधर की रचना करके जीवों को संसार-समुद्र से पार उतारते हैं, उन्हें तीर्थंकर कहते हैं। तीर्थंकर संसारी जीवों को उपदेश देकर उन्हें सन्मार्ग पर लाते हैं। तीर्थंकर स्वयंबुद्ध होते हैं। जैन मत से अन्तिम स्वयंबुद्ध तीर्थंकर महावीर थे।

चैत्र शुक्ल पक्ष त्रयोदशी को, ईसा से ५९९ वर्ष पूर्व महावीर का जन्म लिच्छवी गणतंत्र की राजधानी कुण्डग्राम में गणतंत्र के नेता राजा सिद्धार्थ, रानी त्रिशला के यहाँ हुआ। उनके भाई नंदिवर्धन थे। बहन का नाम सुदर्शना था। पिता के आग्रह पर, माता-पिता को प्रसन्न करने के लिए महावीर ने यशोदा नामक राजकन्या से विवाह किया तथा इनसे एक पुत्री हुई जिसका नाम प्रियदर्शिनी था। दूसरा मत कहता है कि महावीर ने विवाह किया ही नहीं। २८ वर्ष की उम्र में, पिता माता के निधन के दो वर्ष बाद, भाई नन्दिवर्धन को राज्य सौंपकर राजकुमार वर्धमान ने संसार से विरक्ति ले ली। 'महावीर' नाम तो इनके बालसखाओं ने इनके दो अद्भुत शौर्य के कार्यों पर रखा था। ७२ वर्ष की उम्र में महावीर का निर्वाण हुआ। इनकी जन्मकथा आगे दी गयी इनकी जन्मकुण्डली से ही स्पष्ट है—

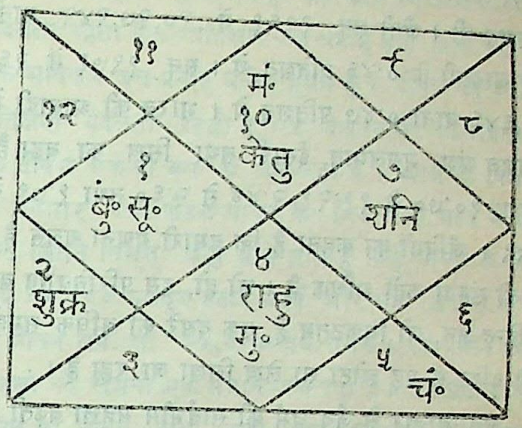

हिन्दू अपरिचित हैं—इस महान् विभूति से हिन्दू बहुत कुछ अपरिचित हैं। जैनी तथा हिन्दू एक ही साथ इतने घुल-मिलकर रहते हैं कि पता भी नहीं चलता कि इनमें कोई भेद है। जैनियों का अध्यात्मवाद हिन्दुओं ने तथा हिन्दुओं का कर्मकाण्ड जैनियों ने इतना अपना लिया है कि बाह्य अन्तर भी नहीं रह गया है। पर दोनों एक दूसरे से धार्मिक रूप से बहुत ही अपरिचित हैं। उनमें परस्पर परिचय का यही निर्वाण वर्ष का सुनहला अवसर था, पर केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारी कमेटियाँ इस परिनिर्वाण-वर्ष को मनाने के लिए बनी थीं—तीन वर्ष पूर्व। उन्होंने इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं किया। जैनियों में भी श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदाय में इतना मतभेद है कि वे भी मिल कर परिनिर्वाण वर्ष सब जगह न मना सके। केवल एक बड़ा काम आचार्य विनोबा के प्रयास से हुआ—श्वेताम्बर आचार्य श्री तुलसी तथा दिगम्बर उपाध्याय मुनि विद्यानन्द के सहयोग तथा वाराणसी के श्री राधाकृष्ण के अथक परिश्रम से जैनियों के लिए सर्वमान्य एक संहिता इस वर्ष तैयार हो गयी।

हिन्दुओं ने बौद्धों के वेग को रोकने के लिए बुद्ध को अपने अवतारों में ले लिया। पर बौद्ध दर्शन से कहीं अधिक महान् जैन दर्शन से वे अपरिचित रहे। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत में ३६,६३,९३,१०२ यानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८३·५१% हिन्दू थे। सन् १९७१ में ४५,३२,९२,०८६ हिन्दू यानी ८२·७२ प्रतिशत रह गये। बौद्धों की संख्या इसी अवधि में ३२,००,३३३ (०·७३ प्रतिशत) से बढ़कर ३८,१२,३२५ यानी कुल आबादी की पहले से घटकर ०·७० प्रतिशत थी। जैनी सन् १९६१ में २०,२७,२४२ यानी कुल आबादी के ०·४६ प्रतिशत थे। सन् १९७१ में २६,०४,६४६ यानी ०·४७ प्रतिशत थे। भारत की आबादी में प्रतिशत अंश मुसलमान, ईसाई तथा सिख का बढ़ा है, क्रमशः १०·७० से ११·२१, २·४४ से २·६० तथा १·७९ से १·८९। जैनियों का कहना है कि हमारी गणना गलत है। उनकी संख्या कहीं अधिक है। जो हो, इस परिनिर्वाण वर्ष में हिन्दू-जैन, जो निकटतम हैं, एक दूसरे को अधिक समझें, इसी दृष्टि से यह छोटा सा लेख लिखा जा रहा है।

मतमतान्तर से जैन धर्म की सार्वभौम महत्ता बढ़ती है, घटती नहीं। इससे दार्शनिक चिन्तन तथा जागरूकता का अनुमान लगता है। जैन ग्रन्थों में परमतवादियों के ३६३ मतों में क्रियावादी तथा अक्रियावादियों के मतों को गिनाया गया है। प्रो० त्रेनीमाधव बरुआ आदि विद्वानों का मत है कि जैन धर्म का मौलिक नाम 'किरियावाद' (क्रियावाद) था। महावीर क्रियावादी थे। अक्रियावादी तथा अज्ञानवादियों के विरोधी थे। वे पुण्य-पाप, आस्रव-बंध तथा निर्जरा-मोक्ष को स्वीकार करते थे। पुरुषार्थ को प्रधान मानते थे। क्रियावादी आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं। दुःख स्वयंकृत है, अन्यकृत नहीं। क्रियावादियों में भी १०८ भेद हैं।

अक्रियावादी प्रत्येक पदार्थ की उत्पत्ति के पश्चात् ही पदार्थ का नाश मानते हैं। आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानते हैं। इनके मत के भी ४० भेद हैं। राजवाड़े के 'मराठी भाषा में लिखित 'दीघ निकाय', भाग १ (पृष्ठ १००) में निगडनातपुत्त बुद्ध को क्रियावादी तथा अक्रियावादी दोनों सिद्धान्तों को माननेवाला लिखा है। वे कहते हैं—"तेव्हां बुद्धानें त्यास आपणांस क्रियावादी अक्रियावादी ही दोन्हों विशषणे कशी लागूं पडतील हें अनेक प्रकारानीं सांगितनें।"

अक्रियावादियों का प्राचीन काल में सबसे प्रबल सम्प्रदाय आजीवकों का था जिसके आचार्य मक्खलिगोशाल बुद्ध और महावीर के समकालीन थे। गोशाल भाग्यवादी थे। इनके अनुसार सम्पूर्ण जीव अवश, दुर्बल, निर्वीर्य हैं। सभी भवितव्यता के वश में हैं। प्राणी कारण के बिना क्लेश पाता है। जीव मुक्ति के बाद फिर वापस आ जाता है। मुख्य योनियाँ चौदह लाख हैं।

पर महावीर तीर्थंकर आज के युग के लिए हैं। जैन अथवा श्रमण धर्म के प्रवर्त्तक ऋषभदेव, जिनकी सत्ता हिन्दू भी मानते हैं, बड़े कर्मठ व्यक्ति थे। उन्होंने भारत का सम्पूर्ण राजनीतिक तथा आर्थिक संगठन पहली बार किया था। राज्य का प्रबन्ध कर अपने सौ पुत्रों में ज्येष्ठ भरत को राज्य देकर वे संसार से विरक्त हुए थे। जैन धर्म के वे ही प्रवर्तक थे, २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ या २४वें तीर्थंकर महावीर नहीं, जैसा बहुत से हिन्दू या अहिन्दुओं का अनुमान है।

हिन्दू धर्म में जितने मत-मतान्तर हैं उतने जैनियों में भी नहीं हैं। किन्तु, भारत में जितने प्रचलित धर्म हैं उनमें जैन और हिन्दू धर्म एक दूसरे के सबसे निकट होते हुए भी दूर हैं—यह बड़े आश्चर्य की बात है। बुद्ध को हमने अवतार मानकर अपने में मिला लिया, पर हम महावीर से दूर क्यों रहे? परमपुरुषार्थ की प्रेरक गीता से हम परिचित हैं, पर परम-पुरुषार्थ के प्रेरक महावीर की वाणी से क्यों नहीं हैं! जीवन की मर्यादा तथा चरित्र का उच्चतम प्रतिपादन जैन धर्म ने किया है। इतना ऊँचे उठकर चरित्र पर बल हमारे शास्त्रों ने भी नहीं दिया। पर हम आज के पुरुषार्थ के युग में चरित्र की उस व्याख्या को क्यों नहीं अपनाते? इसमें दोष जैनियों का हो नहीं सकता। जैन धर्म की ऊँची बातों को अपनाने से हिन्दू जैन नहीं हो जाता, पर शायद इसी शंका के कारण हिन्दू जैन धर्म के मूल तत्त्वों को नहीं मान सका। अहिंसा का सिद्धान्त ही केवल जैन धर्म नहीं है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, फिर सम्यक् चरित्र—यह जैन दर्शन की तीन श्रेणियाँ हैं। जब हम सम्पूर्ण दर्शन शास्त्र का अध्ययन कर लेंगे तभी हमें सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त होगा और पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने से ही सम्पूर्ण चरित्र बन सकेगा। इस महान् उक्ति से किसे विरोध हो सकता है?

आत्मा का प्रश्न—जैन धर्म नास्तिक नहीं है। नास्तिक वह होता है जो पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक तथा कर्मफल को नहीं मानता। सृष्टिकर्त्ता ईश्वर है, परम पुरुष है, ऐसा जैन नहीं मानता। उसकी दृष्टि में यह सृष्टि अनन्त है, अनादि है। न किसी ने इसे बनाया है, न कोई इसे बिगाड़ सकता है। यह सृष्टि दो काल में विभक्त है—उत्सर्पिणी तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर्पिणी। उत्सर्पिणी काल के प्रथम चरण में सृष्टि में कोई नैतिक या चारित्रिक स्तर नहीं होता। धीरे-धीरे वह उच्चतम नैतिक तथा चारित्रिक स्थिति को प्राप्त कर लेती है। उस परम श्रेणी के बाद से पुनः क्रमागत ह्रास शुरू होता है और अवसर्पिणी काल अन्तिम चरण में जब अधोगति की सीमा पर पहुँच जाता है तब पुनः उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ होता होगा।

जैन दर्शन कहता है कि जीव चैतन्यमय है। ज्ञान उसका साक्षात् लक्षण है। जीव को पूरा आत्मज्ञान है, पर कर्मों के आवरण के कारण वह अपने शुद्ध चैतन्य रूप से विमुख है। शुद्ध चरित्र के सेवन से वह सर्वज्ञ तथा कैवल्य पद प्राप्त कर सकता है।

बुद्ध आत्मा को नहीं मानते थे। बौद्ध स्वर्ग नरक तो मानते हैं, पर ईश्वर तथा आत्मा को नहीं मानते। बुद्ध ने दुःख, समुदय (दुःख का कारण), मार्ग और निरोध (मोक्ष)—इन चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया था। वे प्रत्यक्ष और अनुमान—इन दो प्रमाणों को मानते थे। बौद्ध मत में धर्म, बुद्ध और संघ ये तीन रत्न, और सम्पूर्ण विघ्नों को नाश करनेवाली तारादेवी—ये चार चीजें ही स्वीकार करते हैं। बौद्धों के चार भेद हैं—वैभाषिक (बुद्ध के वचनों की टीका को माननेवाले), सौत्रान्तिक (सूत्र को अधिक महत्त्व देनेवाले), योगाचार तथा माध्यमिक (बीच का मार्ग मानने वाले)।

बौद्धों के अनात्मवाद की व्याख्या करते हुए राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि यदि आत्मा को नित्य कहा जाय तो उसमें बंध तथा मोक्ष नहीं हो सकता। यदि उसे कूटस्थ मानें तो वह अनन्त तक एकरस रहेगा। उसे बाहरी अनुभव कैसे होगा? यदि वह चैतन्य है तो इन्द्रिय जनित ज्ञान से अछूता नहीं बच सकता। राग, द्वेष, मोह आदि में कोई न कोई भाव उसे ग्रहण करना होगा। अतएव उस पर कोई भी प्रभाव पड़ने से वह आत्मा नहीं रह सकता। यदि वह एक रस है, कूटस्थ है तो उसका पुनर्जन्म आदि कैसा? यदि वह अशुद्ध हो सकता है तो फिर अशुद्ध हो सकनेवाली वस्तु की मुक्ति कैसी? यदि बाहरी प्रभावों की छाप मन पर पड़ती है तो आत्मा की आवश्यकता ही क्या है? दूसरे, आत्मा सर्वप्रिय है तो संसार की सब परेशानी 'प्रियवस्तु' से ही होती है। प्रिय की प्राप्ति के लिए ही अनन्त प्रयास होते हैं। अतएव आत्मा को मानने से सब परेशानी पैदा होगी।

बौद्ध आत्मा के स्थान पर विज्ञान को मानते हैं। रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा तथा संस्कार—इन पाँच स्कन्धों के समूह से उत्पन्न होनेवाली शक्ति को विज्ञान कहा है, जो प्रति क्षण नदी के प्रवाह की तरह (नदी सोतोविय) बदलता रहता है। प्रतिक्षण जल-प्रवाह होते रहने पर भी एक अविकल जल-प्रवाह प्रतीत होता है। दीपक की ज्योति प्रतिक्षण बदलती रहती है, पर देखनेवाले को लगता है कि दीपक एक ही रूप में जल रहा है। आज के विज्ञान के अनुसार ४० कैंडल पावर के बिजली के बल्ब में एक घण्टे जितने विद्युत् कण आते-जाते हैं उन्हें गिनने के लिए यदि २५,००० मजदूर उठाये जायँ और एक सेकण्ड में दो भी गिनने लगे तो २५,००० वर्ष लगेंगे। पर हमारे लिए बिजली की रोशनी एक समान जल रही है। इस प्रकार एक मानव का जीवन बाल, युवा तथा वार्धक्य में प्रतिक्षण परिवर्तन होने पर भी एक रूप मालूम होता है। यह विज्ञान प्रवाह 'चित्त संतति' ही मानने से काम चल जाता है। यह प्रवाह जब रुक गया, वही निर्वाण है। दीपक बुझ गया, सब प्रवाह समाप्त हो गया। वही निर्वाण है।

हिन्दू उपनिषद् के अनुसार आत्मा नित्य, सुख और आनन्द-स्वरूप है। सच्चिदानन्द है। यह दृश्यमान जगत् इस आत्मा का ही रूप है। आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन से ही समस्त ब्रह्मांड का ज्ञान होता है। हिन्दू मीमांसक कहते हैं कि आत्मा नित्य है, व्यापक और निर्गुण तथा स्वयं चैतन्य है। बुद्धि इससे भिन्न है। आत्मा निष्क्रिय है, न कर्त्ता है, न भोक्ता। प्रकृति ही कर्त्ता तथा भोक्ता है। प्रकृति तथा आत्मा के सम्बन्ध से संसार की रचना हुई। नैयायिक 'वैशेषिकों' का मत है कि आत्मा शरीर से भिन्न होकर कर्मों का कर्त्ता व भोक्ता है। इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख आदि आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते। चेतना के सम्बन्ध से ही आत्मा का इन विकारों से सम्बन्ध होता है। जब विकार छूट गये, आत्मा पुनः अपने सर्वज्ञ स्थिति में लीन हो जाता है।

जैन आत्मा को मानता है। उसकी संज्ञा जीव है। जीव लोक-व्यापी है। यदि वह सर्वथा अमूर्त तथा निरवयव है तो मूर्त शरीर से उसका सम्बन्ध कैसे हो सकता है? तब उसमें ध्यान, ध्येय आदि का व्यवहार कैसे होगा? उसको मोक्ष कैसा मिलेगा? अतएव आत्मा संकोच और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तारवाला सावयव है। वह निश्चय नय से अमूर्त होने के कारण ही लोकव्यापी है। वह लोकव्यापी होते हुए भी हरेक में एक ही नहीं है। पृथक्-पृथक् है। हरेक जीव अलग-अलग है। जब कर्म का आवरण उससे हट जाता है, छूट जाता है, तब वह अपनी लोकव्यापी शान्ति में रम रहता है। वही निर्वाण है।

ईश्वर का प्रश्न—जब जैन एक सर्वव्यापी आत्मा को नहीं मानता तब वह ईश्वर की सत्ता में कैसे विश्वास करेगा? सभी हिन्दू ईश्वर को नहीं मानते। मीमांसक ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता या संहारकर्त्ता नहीं मानते। वेद अपौरुषेय हैं। स्वतः प्रमाण हैं। उनकी रचना के लिए भी ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। यदि ईश्वर अशरीरी है तो शरीरी जगत् की रचना की उसे इच्छा नहीं हो सकती। परमाणु भी यदि ईश्वरकृत होते तो उनमें क्रिया नहीं हो सकती। ईश्वर सृष्टि का कर्ता होता तो दुखी जगत् की रचना ही क्यों करता। यदि उसने दयावश ऐसा किया हो तो यह भी गलत है, क्योंकि उस समय प्राणी नहीं थे तो दया किस पर की गयी। ईश्वर सदा सुखी है। उसे दुःख का खिलवाड़ करने की आवश्यकता नहीं है। और फिर जिस चीज को उसने बनाया उसका संहार क्यों करेगा?

मीमांसकों के अनुसार सृष्टि अनादि है। बीज और वृक्ष की तरह इसकी परम्परा है। ज्ञान की भी सीमा होती है। व्याकरण का पंडित ज्योतिष का पंडित नहीं हो सकता। दस योजन कूदनेवाला सौ योजन नहीं कूद सकता। कोई भी प्राणी सम्पूर्ण समयों के सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञाता नहीं हो सकता। कोई भी सर्वज्ञ नहीं है। मीमांसकों के इसी प्रकार के तर्क के कारण उनको लोकायत या नास्तिक कहते थे। कुमारिल भट्ट ने अपने 'तन्त्र वार्त्तिका' में इस भ्रम का खण्डन किया है तथा 'तामास्तिकपथे कर्तुमयं यत्नः कृतो मया' लिखा है।

सांख्य दर्शन के प्रणेता कपिल क्षत्रिय थे। बुद्ध तथा महावीर के पहले के थे। उन्होंने सम्यक् दर्शन का प्रतिपादन किया था। शुद्ध आत्मा के तत्त्वज्ञान को सांख्य कहते हैं। सांख्य दर्शन मीमांसकों के यज्ञ-याग पर जोर देने की निन्दा करते हैं। वे वेदों को नहीं मानते। तत्त्वज्ञान और अहिंसा पर जोर देते हैं। वे जैनों की तरह आत्मा बाहुल्यवाद—अनेक आत्मा तथा बौद्धों की क्षणिकवाद की तरह परिणामवाद को मानते हैं। जातिवाद को नहीं मानते। इस प्रकार सांख्य और योगदर्शन, जो एक दर्शन की दो धाराएँ हैं, जैन दर्शन के बहुत निकट हैं।

चार्वाक् ऋषि भी हिन्दू थे। वे आत्मा की सत्ता ही नहीं स्वीकार करते थे। वे मानते थे कि चैतन्य विशिष्ट देह ही आत्मा है। जिस समय भौतिक शरीर का नाश हो जाता है आत्मा का भी नाश हो जाता है। धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप कहीं कुछ नहीं है। प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। स्वर्ग, नरक, सब कल्पना है। जब तक जिओ, आनन्द से जिओ।

किन्तु अधिकांश हिन्दू मत ईश्वर की सत्ता में विश्वास करता है। उसका कथन है कि अचेतन सृष्टि का कोई चेतनकर्त्ता होना ही चाहिये। यदि यह माना जाय कि परमाणु या कर्म शक्ति से सृष्टि की रचना हुई तो यह असम्भव है, क्योंकि दोनों ही अचेतन हैं। अतएव इस सृष्टि को एक सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता ईश्वर ने रचा है। बिना कर्त्ता के संसार में कुछ नहीं होता। घड़ा बनानेवाले के बिना घड़ा नहीं हो सकता। अतएव न्याय वैशेषिक 'कार्यकरण न्याय' से ईश्वर का कर्त्तृत्व सिद्ध करते हैं। इसी कार्यकरण भावमूलक को अंग्रेजी में कॉस्मोलॉजी (Cosmology) कहते हैं। दूसरा तर्क ईश्वर के पक्ष में 'सत्तामूलक' है। इसे अंग्रेजी में ऑटोलॉजी (Outology) कहते हैं। यदि ईश्वर की सत्ता न होती तो हमारे हृदय में ईश्वर के अस्तित्व का भाव ही नहीं उठता। कल्पना ही अस्तित्व का प्रमाण है। तीसरा तर्क है प्रयोजनमूलक, जिसे अंग्रेजी में टेलियॉलॉजी (Teleology) कहते हैं। सृष्टि में जो अद्भुत व्यवस्था है, जिसे देखकर आज का विज्ञान भी चकित है, वह किसी व्यवस्थापक के बिना नहीं हो सकती। किसी महान् चेतन शक्ति के बिना ऐसी सृष्टि चल नहीं सकती। सृष्टि एक कार्य है। कार्य के लिये कर्त्ता चाहिये। बिना आधार के सृष्टि नहीं हो सकती। इसका आधार होना जरूरी है। परमाणुओं का आयोजन किसी कर्त्ता के बिना नहीं हो सकता।

जैन दर्शन ईश्वर को नहीं मानता। उसे स्वीकार नहीं है कि यदि ईश्वर इच्छा से परे है तो वह सृष्टि रचने की इच्छा क्यों करेगा। वह दूसरों के लिए सृष्टि की रचना कर नहीं सकता। उसके लिए दूसरा कोई है नहीं। यदि उसके करुणावश सृष्टि की रचना हुई तो संसार में सबको सुखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना चाहिये। अद्वैतवादी शंकराचार्य भी सृष्टि की रचना का कारण न बता सकने के कारण ही 'नेति नेति' कहते हैं तथा उनके अनुसार ईश्वर बुद्धिगम्य नहीं है, बोधगम्य है।

इस लेख का विषय ईश्वर है या नहीं—इस विवाद में पड़ना नहीं है, केवल हिन्दू जैन के तात्त्विक मतभेद तथा मतैक्य की ओर संकेत करना ही इसमें अभीष्ट है। केवल जैनी ही निरीश्वरवादी नहीं हैं। हिन्दुओं में एक अच्छा खासा वर्ग भी निरीश्वरवादी है।

स्याद्वाद—जैन दर्शन की सबसे बड़ी देन है स्याद्वाद। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन आधुनिक विज्ञान करता है। हम जिसे ठोस प्रमाणित वस्तु मानते हैं, वह वास्तव में वैसी नहीं है। केवल एक की दृष्टि में है। दूसरे की दृष्टि में नहीं। मैं एक कमरे में घड़ा रखा देख रहा हूँ। मेरे लिए घड़ा है। जो घड़ा नहीं देख रहा है, उसके लिए वह नहीं है। सूर्य छोटा-सा अग्निपिण्ड दिखायी देता है, पर वह पृथ्वी से साढ़े बारह लाख गुना बड़ा तथा ९ करोड़ ३० लाख मील की दूरी पर है। जो रंग लाल दिखायी पड़ रहा है वह श्वेत भी हो सकता है। इसी प्रकार दार्शनिक दृष्टि से पूर्ण सत्य किसी वस्तु को कहना उचित नहीं है। जैन दर्शन ने स्याद्वाद के द्वारा स्वयं अपने विषय में स्वीकार कर लिया है कि हम जो कह रहे हैं, वही चरम सत्य है—ऐसा कोई दावा नहीं है। धार्मिक जागरूकता तथा उदारता की यह पराकाष्ठा है।

पूर्ण सत्य तो अनुभवगम्य है, बोधगम्य है। मुण्डक उपनिषद् का कहना है कि 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन'—इस आत्मा का ज्ञान न बहुत सुनने, पढ़ने या बुद्धि से हो सकता है। इसी बात को जैन 'आचारांग सूत्र' कहता है—'सव्वे सरा नियट्टंति तक्का तत्थ न विज्जई।' यह अज्ञानवाद नहीं है स्पष्टवाद है। जैन दर्शन कहता है कि बुद्धि परिमित है। ब्रह्माण्ड के अनन्त पदार्थों का ज्ञान बुद्धि से नहीं हो सकता। परम साधना तथा कैवल्य ज्ञान से ही संभव है। साधारण दृष्टि से अनेक जीवन खोज करते रहने से पूरी तह तक पहुँचना सम्भव नहीं है। एक प्रकार से अंधों द्वारा हाथी को टटोलना है। अतएव सत्य तो एक है पर उसको देखने की दृष्टि इतनी भिन्न-भिन्न है कि उस एक अनन्त सत्य के अनन्त रूप भी बन जाते हैं।

जैन स्याद्वाद यह नहीं कहता कि हमको सत्य का ज्ञान नहीं है। वह यह भी कहता है कि सत्य के अनेक रूप होने के कारण स्याद् अस्ति (शायद है) और स्याद् नास्ति (शायद नहीं है)—यह मानकर चलने से हम अपने एकान्त आग्रह को छोड़कर हरेक धर्म का आदर करेंगे। आपस का कोई वैर-विरोध नहीं रह जायगा। स्याद्वाद पदार्थों को जानने की एक दृष्टि मात्र है। यह स्वयं अन्तिम सत्य नहीं है। स्याद्वाद व्यवहार सत्य है। असली वस्तु तो केवल ज्ञान है। स्याद्वाद इन्द्रिय ज्ञान है। घड़ा है और नहीं है, यह इन्द्रिय ज्ञान का विषय है। केवल ज्ञान के लिए यह सब तर्क निरर्थक है।

कर्म का उच्छेद—कर्म से ही आत्मा का आवरण होता है। यदि मानव में किसी चीज की इच्छा न हो तो कोई बाधा न हो। गीता ने निष्काम कर्म की प्रतिष्ठा की है। जैनी एकदम निष्क्रिय हो जाना ही श्रेयस्कर समझता है। जैन मत के अनुसार जहाँ वस्तु से सुख प्राप्त करने की इच्छा शुरू हुई वहीं बंधन शुरू होता है। इसीसे

वेष्ठनं
आवरणम्
आच्छादनम्
तथा संकीर्णता

का क्रमागत परिवेष्ठन होता। इसीलिए क्रमशः वासना से छुट्टी प्राप्त करनी चाहिये। गृहस्थ पहले पाँच समितियों का पालन करे। वे हैं—

१—इर्या समिति—सावधानी से चलना ताकि जीव-हत्या न हो।

२—भाषा समिति—सावधानी से भाषा का उपयोग।

३—ऐषणा समिति—सावधानी से भोजन ग्रहण।

४—निक्षेपण समिति—सावधानी से हरेक वस्तु का सेवन तथा उपयोग।

५—परिस्थापन समिति—यथाक्रम हरेक वस्तु का परित्याग।

ऐसा करते-करते सात व्रतों का पालन करना चाहिये। वे हैं—

१—अहिंसा—अपनी जानकारी में न कोई जीव-हत्या करे न किसी जीव को कष्ट दे।

२—सत्यानुव्रत—असत्य का सेवन न करे।

[शेष पृष्ठ १५९ पर देखिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरालाजी का स्वाभिमान और उनकी उदारता

श्री प्रभुदयाल मीतल

व्रज साहित्य मंडल की स्थापना तो अब से ३५ वर्ष पूर्व, दिनांक २० अक्टूबर १९४० को मथुरा में हुई थी, किन्तु उसका वास्तविक रूप दिल्ली में उसके प्रथम वार्षिकोत्सव में निश्चित हुआ था। वह उत्सव दिनांक ३-४ मार्च, १९४५ को बड़ी धूमधाम से मनाया गया था। मान्यवर श्रीनारायणजी चतुर्वेदी मंडल के अध्यक्ष बनाये गये और मुझे प्रधान मंत्री बनाया गया था। उस समय अन्य साहित्यिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त एक विराट् कवि सम्मेलन का भी आयोजन हुआ था। उस कवि सम्मेलन में अन्य प्रसिद्ध कवियों के अतिरिक्त श्री निरालाजी भी पधारे थे।

श्री निरालाजी के नाम और उनकी रचनाओं से परिचय तो उसी समय से था, जब वे कलकत्ता के सुप्रसिद्ध हास्यरस के पत्र 'मतवाला' में थे, किन्तु उनके साक्षात्कार का प्रथम अवसर उक्त अधिवेशन में मिला था। तब तक निरालाजी अपनी युगान्तरकारी रचनाओं के कारण व्यापक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। दिल्ली अधिवेशन की सफलता के लिए स्वागत समिति ने कुछ धनाढ्य स्त्री-पुरुषों को पदाधिकारी बानाना आवश्यक समझा था। फलतः श्री साँवलदास लोहिया स्वागताध्यक्ष बनाये गये थे। कवि सम्मेलन की स्वागताध्यक्षा श्रीमती सरस्वती देवी गाडोदिया थीं और उसकी अध्यक्षता के लिए श्रीमती सरस्वती देवी डालमिया का नाम निश्चित किया गया था। निरालाजी के स्वाभिमान ने कदाचित् स्वागत समिति का उक्त प्रबंध पंसद नहीं किया था। इसलिए उन्होंने दिल्ली आते ही अपना नृसिंह रूप धारण कर लिया था। उन्होंने कवि सम्मेलन में भाग न लेने का निश्चय तो किया ही, स्वागत समिति का स्वागत-सत्कार भी स्वीकार नहीं किया। वे अपने निवास-स्थान में अकेले रहे आये। जब स्वागत समिति का कोई कार्यकर्त्ता उनकी आवश्यकता के संबंध में पूछताछ करने जाता तब उसे वे फटकार देते थे। तब तक उनके विक्षिप्त हो जाने की भी कुछ चर्चा चल पड़ी थी। अतः कार्यकर्त्ताओं को उनसे मिलने में भय भी होने लगा कि कहीं वे किसीको मारपीट न दें।

इस प्रकार स्वागत समिति के लिए बड़ी परेशानी आ खड़ी हुई। उसके पदाधिकारियों के लिए निरालाजी को मनाने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। वे न तो सरस्वती देवी डालमिया को कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता से हटा सकते थे और न निरालाजी का असहयोग ही सहन कर सकते थे। लोगों ने बतलाया कि निरालाजी केवल श्रीनारायणजी चतुर्वेदी की बात मान सकते हैं। अतः श्री चतुर्वेदीजी को आग्रहपूर्वक निरालाजी को मनाने के लिए भेजा गया। श्री चतुर्वेदीजी के कहने से निरालाजी शांत तो हो गये, किन्तु उन्होंने कवि सम्मेलन में सम्मिलित होना फिर भी स्वीकार नहीं किया। उस रात्रि को कवि सम्मेलन श्रीमती डालमिया की अध्यक्षता में हुआ तो सही, किन्तु निरालाजी के असहयोग के कारण कवियों का मन उसमें नहीं रमा। अतः यह निश्चय किया गया कि दूसरे दिन श्री निरालाजी की अध्यक्षता में फिर कवि सम्मेलन किया जाय।

पं० श्रीनारायणजी चतुर्वेदी के आग्रह पर निरालाजी किसी प्रकार राजी हो गये। उस रात्रि को जो कवि सम्मेलन हुआ, उसकी शानदार सफलता को याद कर आज भी हृदय आह्लाद से भर जाता है। उस कवि सम्मेलन में सभी कवियों ने अत्यंत उत्साह और उमंग के साथ अपनी कविताएँ सुनायी थीं। निरालाजी जब अपनी रचनाएँ पढ़ने को खड़े हुए तब उपस्थित कवियों और दर्शकों ने हर्षपूर्वक करतल ध्वनि से उनका स्वागत किया।

संयोग की बात है कि उस समय निरालाजी अपने 'मूड' में थे। अतः उन्होंने बड़े उत्साह से कविता-पाठ किया था। लोगों के आग्रह से उन्होंने बार-बार अपनी कई प्रसिद्ध रचनाओं को सुनाया था। 'जुही की कली' उन्होंने ऐसी सरसता से सुनायी थी कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो गये थे। जानकारों का कहना है कि वह पहला कवि सम्मेलन था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें निरालाजी ने लहर में आकर अपनी प्रिय रचनाओं को इस प्रकार मन से पढ़ा था।

उसी कवि सम्मेलन में एक ऐसी घटना हुई जिससे निरालाजी की उदारता और गुणग्राहकता की छाप सभी उपस्थित व्यक्तियों पर लग गयी थी। बनारस के श्री बेधड़कजी की हास्यरसपूर्ण कविताओं को कवि सम्मेलन में बहुत पसंद किया गया था। जब उन्होंने अपनी रचना 'सुंदर और असुंदर दोनों साथ साथ' सुनायी तब निरालाजी अपने स्थान से उठकर उस युवक कवि के पास पहुँच गये। हजारों उपस्थित व्यक्तियों की दृष्टि उत्सुकतापूर्वक उनकी ओर लग गयी। लोगों ने बड़े कौतूहल और आश्चर्य से देखा कि निरालाजी अपनी जेब के सब रुपयों को निकालकर उन्हें बेधड़कजी को दे रहे हैं। भला, बेचारे बेधड़कजी निरालाजी का पैसा कैसे लेते! वे चुप-चाप खड़े रहे। जब निरालाजी ने देखा कि बेधड़कजी उनका दिया हुआ रुपया नहीं लेना चाहते तब उनकी भ्रकुटियाँ चढ़ गयीं। मंच पर आसीन कवियों को आशंका होने लगी कि जैसे-तैसे तो निरालाजी को मनाया गया है, अब फिर कहीं वे नृसिंह रूप धारण न कर लें! इसलिए सब ने बेधड़कजी से कहा कि जो कुछ निरालाजी देते हैं, उसे वे उनके आशीर्वाद रूप में बिना किसी संकोच के ले लें। जैसे ही बेधड़कजी ने निरालाजी के हाथ से रुपये लिये, उपस्थित व्यक्तियों ने बड़े ज़ोर से करतल-ध्वनि की। निरालाजी ने बड़ी प्रसन्नता से बेधड़कजी की पीठ ठोंकी और उन्हें शाबासी दी।

दिल्ली के उस चिर-स्मरणीय कवि-सम्मेलन से एक ओर जहाँ निरालाजी के कवि-गौरव और स्वाभिमान का पता चलता है, वहीं दूसरी ओर उनकी गुण-ग्राहकता और उदारता का भी परिचय मिलता है।

हिन्दू और जैन

[पृष्ठ १५७ का शेषांश]

२—अस्तेयानुव्रत—किसी अन्य की वस्तु को उसकी अनुमति के बिना प्राप्त न करे।

४—ब्रह्मचर्यानुव्रत—अपनी पत्नी को छोड़कर हरेक स्त्री को माँ, बहन, बेटी समझे।

५—परिग्रह परिमाणव्रत—अपनी सम्पत्ति की सीमा कम करता जाय।

६—दिग्व्रत—चारों दिशाओं तथा ऊपर-नीचे की दिशाओं मे अपने कार्य या चलने की सीमा कम करता जाय।

७—उपभोग-परिभोग परिमाण—जिस वस्तु का सेवन एक बार होता है वह है उपभोग। जैसे, भोजन, जल आदि। जिसका बराबर सेवन होता है वह है परिभोग। जैसे, वस्त्र। इनके सेवन को यथाशक्य सीमित करता जाय।

अपने जीवन में कतिपय मर्यादा बनाकर चलने से ही मनुष्य का चरित्र बनता है। अतएव नित्य के लिए कुछ आवश्यक कर्त्तव्य हैं—

१—अनर्थदण्डविरमन—अवांछनीय तथा दुष्कर्म से बचना। जैसे—(१) अपध्यान (बुरे विचार), (२) प्रमादचर्या (बिना जाने ही मन में बुरे विचार उठना), (३) हिंसादान (दुष्ट प्रकार का दान या मन में हिंसा का भाव), (४) पापोपदेश (दुष्ट उपदेश देना)।

२—सामयिक—संसार के सभी प्रभावों से कुछ समय के लिए मन को मोड़कर शान्तभाव से ध्यान-मग्न होना।

३—देशावकाशिक—ऊपर लिखे छठे व्रत के संदर्भ में अपनी यात्रा तथा क्षेत्र को सीमित करता जाय।

४—प्रतिपूर्णपौषध—कम से कम एक मास में २४ घण्टे का पूरा उपवास करना तथा वह समय ध्यान में बिताना।

इन सब आचरणों से मनुष्य क्रमशः बढ़ते-बढ़ते पहले देश विरति की स्थिति में होगा, जिसका अर्थ है आंशिक त्याग या कर्म संन्यास। उसके साथ दूसरे परिग्रह त्याग की अवस्था आयेगी, जो अपनी सब कुछ सम्पत्ति आदि का त्याग कर देगा। और तीसरी श्रेणी होगी सर्वविरति यानी सम्पूर्ण त्याग, कर्म संन्यास, विरक्ति और तभी सम्यक् ज्ञान, सम्यक् अनुभूति तथा कैवल्य ज्ञान प्राप्त होगा।

बहुत संक्षेप में हमने जैन दर्शन की मुख्य बात कह दी। मैं नहीं कह सकता कि किसी हिन्दू को इस आचार-संहिता तथा इसके उद्देश्य के प्रति श्रद्धा तथा आकर्षण न होगा। बिना जैनी बने यदि हम अपने जीवन को ही इस ओर मोड़ चलें तो कितना बड़ा आत्म-कल्याण हो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत-दिवस

श्रीमती कमला रत्नम्

संस्कृत-दिवस, श्रावणी पूर्णिमा, अमरनाथ यात्रा—ये सब पर्व हमारे देश में एक साथ आये और इस वर्ष इन्हें राजधानी में बड़ी धूमधाम से मनाया भी गया। ये तीनों पर्व ही भारत की चिरनवीन आध्यात्मिक संस्कृति को चित्रित करते हैं। श्रावण की पूर्णिमा के समान सुधा-निस्यन्दिनी, आनन्ददायिनी संस्कृत भाषा है। इसके श्रवणमात्र से कानों को जो सुख मिलता है, हृदयंगम होने से बुद्धि और मन प्रकाशमय होकर जिस विशद उर्वरता को प्राप्त होते हैं, उसकी तुलना ग्रीष्म के ताप से झुलसी पृथ्वी पर पड़ती श्रावणी वर्षा की फुहारों से ही हो सकती है और संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन और तदनुसार आचरण से जो सिद्धि प्राप्त होती है वह हिमधवल आत्ममण्डित अमरनाथ के शिव के दर्शनों से कम नहीं। पवित्रता, शीतलता, उर्वरता, नवीकरण एवं आत्मोत्सर्गमयी लोक-कल्याण-भावना संस्कृत भाषा के अनिवार्य अंग हैं। संस्कृत को यदि अमरनाथ के शिव की स्वतः निर्मित हिमधवल शब्दप्रतिमा कहें तो अत्युक्ति न होगी।

राजधानी में संस्कृत-दिवस पाँच विभिन्न संस्थाओं के सहयोग से श्रावणी पूर्णिमा (दिनांक २१ अगस्त १९७५) को बड़े उत्साह से मनाया गया। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय, संसदीय-संस्कृत-परिषद्, राष्ट्रीय-संस्कृत-संस्थान, अखिल-भारतीय-संस्कृत-साहित्य-महासम्मेलनम् तथा लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के समन्वित प्रयास से समारोह को गौरव मिला। उपराष्ट्रपति श्री बा० दा० जत्ती महोदय ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा—"संस्कृत का हमारे राष्ट्र के लिए बहुत महत्त्व है। भारतीय साहित्य और संस्कृति की बहुमूल्य धरोहर संस्कृत भाषा में रखी हुई है। एक बड़ी मात्रा में भारतीय आत्मा और चिन्तन इसी भाषा में प्रस्फुटित हुआ और इसे अनेक भाषाओं की जननी, भगिनी और धात्री बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस देश के जीवन में तो यह इतनी ओत-प्रोत हो गई है कि इसे विलग नहीं किया जा सकता।" संस्कृत के सार्व-कालीन महत्त्व और गरिमा की व्याख्या करते हुए जत्ती महोदय ने वर्त्तमान में उसकी विशिष्ट और अपरिहार्य भूमिका की ओर संकेत करते हुए कहा—"अपने देश की प्राचीन संस्कृति, साहित्य, इतिहास और आदर्श परम्पराओं को समझने के लिए हमें संस्कृत की शरण में जाना पड़ता है। इसलिए यह हमारा नैतिक दायित्व है कि नवीन युग की परिस्थितियों में हम इसका नित्य नूतन रूप प्रस्तुत करें। आज के युग में नवयुवकों के सामने अनेक समस्याएँ उठती हैं। उनकी बहुत-सी समस्याओं का निदान हम संस्कृत के प्रचार से कर सकते हैं। वस्तुतः संस्कृत हमारी सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय एकता की प्रतीक है।"

शिक्षा-मन्त्री प्रो० नूरुल हसन ने भी तुमुल हर्ष ध्वनि के बीच कहा कि सरकार संस्कृत के लिए अभी बहुत कुछ और करना चाहती है तथा संस्कृत के प्रचार और प्रसार को और भी विस्तृत बनाने के लिए सुझावों का स्वागत करेगी। शिक्षा-मन्त्रीजी ने बार-बार जोर देते हुए कहा—"संस्कृत के भीतर भारत का सबसे बहुमूल्य तत्त्व—उसकी आत्मा छिपी हुई है। वह भारतीय चिन्तन और दर्शन के विकास और प्रगति की धारा रही है और इतिहास के विषम उतार-चढ़ावों के बीच उसी ने भारत की भारतीयता को सुरक्षित रखा है।" कुछ लोगों ने संस्कृत को लेकर जो भ्रमजाल फैला रखा है कि संस्कृत कठिन एवं दुरूह भाषा है उसका खण्डन करते हुए मन्त्री महोदय ने कहा कि कोई भी भाषा जिसे ताले में बन्द करके रख दिया जाय, और प्रयोग में न लाया जाय, अपने आप लोक जीवन से हट जायगी और दुरूह हो जायगी। परन्तु संस्कृत की ही यह अपार महिमा है कि दीर्घ उदा-सीनता और अपरिचय के बाद भी जो कोई उसके निकट जाता है, उसके लिए वह अपने स्नेह के द्वार खोल देती है। एक बार जिसने संस्कृत के निकट जाकर, उसके भीतर प्रवेश करके देख लिया है उसे फिर इस भाषा को हृदयंगम करने में देर नहीं लगती। फिर भी यह सत्य है कि संस्कृत को सर्वजन सुलभ बनाने के लिए भाषा विज्ञान और भाषा प्रशिक्षण के नये-नये उपकरणों और प्राविधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। परन्तु शिक्षामन्त्रीजी ने चेतावनी देते हुए कहा कि नवीनता और सरलता के नाम पर हम यह नहीं चाहते कि संस्कृत भाषा की मौलिक प्रतिभा अथवा उसकी शास्त्रीयता का जरा भी खण्डन हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत में बातों को यथावत् और शास्त्रीय शुद्धता से कहने की अद्भुत क्षमता है। इसके अध्ययन से मानव-अन्तःकरण में सत्य को यथार्थ देखने और कहने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। जहाँ तक रोजी-रोटी का प्रश्न है, शिक्षा को इसके योग्य बनाना ही चाहिए। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि संस्कृत भाषा के सब गुणों को केवल रोज़ी-रोटी पर निछावर कर दिया जाय। यह समय का फेर है कि आज संस्कृत बड़ी संख्या में लोगों को रोज़ी-रोटी नहीं दे सकती। समय बदलने से यह स्थिति भी बदल सकती है। परन्तु जो बात हिमालय पर्वत और गंगा के पानी की तरह स्थिर है वह है संस्कृत की मानव-चरित्र और उसके मस्तिष्क के निर्माण की क्षमता। संस्कृत भाषा और उसके वाङ्मय के माध्यम से मनुष्य एक बेहतर मनुष्य और भारतीय एक बेहतर भारतीय बन सकता है। मानना पड़ेगा कि संस्कृत भाषा का यह गुण अमूल्य है और जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है संस्कृत का स्थान कोई दूसरी भाषा नहीं ले सकती। उपराष्ट्रपतिजी ने अनौपचारिक वार्त्तालाप में यह भी प्रकट किया कि मुझे संस्कृत भाषा से अगाध प्रेम है। क्योंकि मेरी मातृ-भाषा कन्नड़ संस्कृत के बहुत निकट है और मैं स्वयं आजकल संस्कृत के अध्ययन में लगा हूँ। शिक्षामन्त्रीजी ने यद्यपि अपने को संस्कृत से अनभिज्ञ बताया, फिर भी उनके भाषण से यह बात छिपी नहीं रही कि उनका संस्कृत-वाङ्मय सम्बन्धी ज्ञान गहन और गम्भीर है, और वे संस्कृत की व्यापकता, महत्ता एवं सार्वभौमता की ओर पूर्णरूप से जागरूक हैं।

उपर्युक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति और समाज का संस्कृत के प्रति क्या कर्त्तव्य है। परन्तु व्यक्तियों और समाज को आपस में जोड़ने के समाचार-पत्र, आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि जो साधन हैं उनकी भी संस्कृत के सम्बन्ध में विशेष भूमिका है। जन-सम्पर्क का सर्व-सुलभ और सस्ता साधन होने के कारण समाचार-पत्रों की, विशेषकर देवनागरी लिपिवाले समाचार-पत्रों की, संस्कृत की जानकारी बढ़ाने के लिए विशेष भूमिका हो सकती है। कुछ सुझाव ऐसे हैं जो अनायास सिद्ध हो सकते हैं। जैसे, (१) सम्पादकीय के आरम्भ में प्रतिदिन उस दिन की प्रमुख घटना से सम्बन्धित संस्कृत का या वेद-उपनिषदों का एक आप्त-वाक्य अथवा सुभाषित सुमण्डित कोष्ठक में दिया जाय। (२) संस्कृत भाषा और उसके इतिहास तथा समृद्धि के सम्बन्ध में समय-समय पर जानकार विद्वानों से लेख लिखवाये जायँ। इस प्रकार आप देखेंगे कि ज्ञान-विज्ञान के प्रकरण में भी संस्कृत उतनी अल्पश्री नहीं है, जितना समझा जाता है। (३) संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों और उनकी बहुमूल्य रचनाओं की जानकारी क्रमबद्ध रूप से दी जाय। २५० से ३०० शब्दों का एक कालम इसके लिए प्रतिदिन निश्चित किया जा सकता है। जापान में तो अंग्रेजी भाषा के पत्रों में भी प्रतिदिन एक कालम प्राचीन जापानी कला, संस्कृति एवं साहित्य को दिया जाता है, जिससे पाठक (जापान में पिछली तीन-चौथाई शताब्दी से शत-प्रतिशत साक्षरता है) अपनी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति जागरूक रहें और प्राणपण से उसकी रक्षा करें। आज मन्दिरों और अन्य प्रतिष्ठानों से बहुमूल्य कलाकृतियाँ तस्करी के माध्यम से विदेश चोरी चली जाती हैं। जापान के सम्बन्ध में ऐसी स्थिति की कल्पना करना भी असम्भव है। सांस्कृतिक दृष्टि से लाओस, थाईलैण्ड और इन्दोनीशिया भी अत्यन्त जागरूक देश हैं। इन देशों से भी कलाकृतियाँ चुराकर पश्चिम के कला-पूँजियों को नहीं बेची जातीं। उन कलाकृतियों की बात और है जिन्हें उपनिवेशकाल में अन्तर्राष्ट्रीय तस्कर जबरदस्ती उठाकर ले गये थे। अपने देश की सांस्कृतिक धरोहर का ज्ञान कराना, उसके प्रति लगाव पैदा करना—यह भी आज के जन-सम्पर्क साधनों का कर्त्तव्य है। (४) देश में जहाँ कहीं भी संस्कृत के माध्यम से पठन-पाठन, शोधकार्य हो रहे हैं उनकी सूचना देना। (५) योग्य और नये विद्वानों द्वारा संस्कृत की जीवन के प्रति जो चिरनवीन उत्साहमयी, वैज्ञानिक दृष्टि है उसको सरल, हृदयग्राह्य शब्दों में अभिव्यक्ति देना। (६) संस्कृत में प्रकाशित नवीन ग्रन्थों की समय-समय पर विस्तृत जानकारी देना तथा प्रतिष्ठित रचनाओं का सार—संक्षेप आधुनिक दृष्टि से बनवाकर प्रकाशित करना। उपर्युक्त सुझाव दिशानिर्देश-मात्र हैं। आशा है कि लोक-सम्पर्क के माध्यम पूरी शक्ति से संस्कृत रूपी सांस्कृतिक निर्झरिणी को अपनी समस्त शुचिता, सुन्दरता और अस्मिता सहित अजस्र बहते रहने देने में अपना योगदान करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ काँटे कुछ फूल

श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह

देश-विदेश में बहुत-से आत्मचरित तथा संस्मरण लिखे गये हैं। उनमें लेखक का व्यक्तित्व जितना निखरता है उतना दूसरों द्वारा लिखी गयी जीवनियों में नहीं निखरता। लेखक में जितनी ईमानदारी और सचाई होती है, उतनी उसकी कृति हृदयग्राही होती है। मैंने अंग्रेजी में अनूदित गोर्की, टालस्टाय और क्रोपाटकिन तथा मौलिक बरट्रेण्डरसल और चंदावरकर के आत्मचरित पढ़े हैं। गुजराती में महात्मा गांधी, बंगला में रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा मराठी में सावरकर, साने गुरुजी तथा मनोहर दीवान आदि और हिन्दी में बेचन शर्मा उग्र, गुलाबराय, गोविन्ददास, सीताराम सेकसरिया तथा बच्चन आदि के आत्मचरित पढ़कर इनकी विशेष शैलियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जाता।

'कुछ काँटे कुछ फूल' इसी प्रकार का एक नम्र प्रयत्न है। मेरे मित्र श्री नर्मदाप्रसाद खरे ने अपने आत्मचरित को संस्मरणों के रूप में इन निबन्धों में ढाला है, जिससे उनके बाल्यकाल से लेकर आज तक के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इन सबके भीतर उनकी ईमानदारी और सचाई झलकती है, जिससे प्रगट होता है कि किस प्रकार एक दीन आश्रयहीन बालक अपनी ममतामयी माता की प्रेरणा और अपने पुरुषार्थ से शिक्षक, लेखक, कवि और प्रकाशक बन सकता है।

पहले ही निबन्ध में अपनी स्नेहमयी जननी के प्रति खरेजी की कृतज्ञता और आदर की भावना व्यक्त होती है। उन्होंने पिता और माता दोनों का स्थान भरा। संस्कृत में कहावत है—'मातेव रक्षति पितेव हितेनयुक्ते'--माता के समान रक्षक और पिता के समान शुभचिंतक कोई दूसरा हो नहीं सकता। खरेजी की माता ने उनकी रक्षा और हितचिंतना दोनों ही कार्य किये। स्नेह के कारण उनकी यह इच्छा थी कि लड़का पढ़-लिख जाय, किन्तु वही स्नेह उनको बाहर भेजने में बाधक हुआ, अन्यथा उनकी और भी प्रगति होती। तो भी एक निरक्षर माता के द्वारा इस प्रकार का विद्या-प्रेम विरलों में ही देखने को मिलता है। मजदूरी करके, भीख माँगकर, घास काटकर, दाने-दाने बीनकर और चक्की पीसकर जो माता अपने पुत्र को शिक्षित बनाना चाहती है उस शुभचिंतक और कर्मठ जननी से कौन पुत्र उऋण हो सकता है? जब वे अपने भाई के घर से निराश होकर अपने दोनों पुत्रों के साथ दर-दर भटकने के बाद मेरे घर आयीं तभी उनके मृदुल स्वभाव का परिचय मुझे मिला। वे बड़े प्यार से मुझे 'लाला' कहकर पुकारतीं और मैं उन्हें भौजी कहा करता था। मेरी पत्नी को नर्मदा 'भुज्जी' कहा करते थे, जो कि भौजी शब्द का ही अपभ्रंश है। भौजी के मधुर स्नेह के छींटे मुझ पर भी पड़े थे। वे सचमुच स्नेह की जीती-जागती मूर्ति थीं। उनका स्मरण करते ही एक मैली-कुचैली, फटी-पुरानी साड़ी में लिपटी हुई छरहरी ममता का पिंड मेरे सामने सजीव हो उठता है और मेरी आँखें गीली हो जाती हैं।

संस्मरणों में कठोर हृदय पिता और कोमल हृदय माता के अतिरिक्त अलहड़ बसंती, स्नेहहीन मामी, प्रेमल जशोदा काकी, दयालु मास्टर सुमिरनलाल, प्रेममयी उषादेवी मित्रा, मुँहबोली बहन सुभद्रा, पुरानी पीढ़ी के साहित्यकार पंडित कामताप्रसाद गुरु, देवतुल्य पंडित मधुमंगल मिश्र, सरस्वती संपादक पंडित देवीदत्त शुक्ल, मास्टरजी पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सहृदय कक्का—रामानुजलाल श्रीवास्तव आदि के जीते-जागते चित्र हमारे स्मृति-पटल पर छायाचित्र के समान उभरने लगते हैं। इन विभूतियों को भी खरेजी ने वर्तमानकाल में उपस्थित कर दिया है। उक्त व्यक्तियों के साथ मेरा भी घनिष्ठ परिचय रहा है। इसलिए उनके प्रति खरेजी द्वारा व्यक्त की हुई भावनाओं का मैं समर्थन करता हूँ।

कविता खरेजी के जीवन में सहज और स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित हुई है। उन्होंने बड़ी ईमानदारी के साथ कहा है—'मैं अपनी चाहों, यादों को बड़ी ईमानदारी के साथ व्यक्त करता रहा हूँ। अपनी दुर्बलताओं को मैंने कभी छुपाने की कोशिश नहीं की।'

अपने जीवन की निराशा को उन्होंने करुण स्वर में स्पष्ट किया है—

वसुधा में घुली मिली है, जीवन की करुण कहानी।
मेरा इतिहास बताता, आँखों का खारा पानी॥

इसे पढ़कर सुभद्राजी ने उन्हें सलाह दी थी कि तुम अपनी कविता को प्रेम का इश्तहार मत बनाओ। उसे प्रेम

[शेष पृष्ठ १७० पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्प में विष्णु के वराह अवतार का निरूपण

श्री मारुतिनन्दनप्रसाद तिवारी

विष्णु के दशावतारों में मत्स्य और कूर्म अवतारों के पश्चात् वराह अवतार की गणना की जाती है। मत्स्य और कूर्म अवतारों के समान ही वराह अवतार को भी प्रारम्भ में ब्रह्मा से ही सम्बन्धित बताया गया, किन्तु कालान्तर में इसे विष्णु के एक अवतार के रूप में स्वीकार किया गया। यह अवतार त्रिविक्रम और नृसिंह के समान ही भारतीय शिल्प में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है, जिसका प्रमाण भारतवर्ष के प्रत्येक क्षेत्र से उपलब्ध होने वाली वराह मूर्तियाँ हैं।

पुराणों में उल्लेख है कि विष्णु प्रलय जल से धरातल में डूबी हुई पृथ्वी के उद्धार के हेतु वराह या शंकर रूप में अवतरित हुए। शतपथ ब्राह्मण में सर्वप्रथम प्राप्त होने वाली कथा में मात्र इतना ही उल्लेख है कि एक बार पृथ्वी का उद्धार इमुश नामक शूकर ने किया। तैत्तिरीय और आरण्यक संहिताओं में भी इस बात के उल्लेख प्राप्त होते हैं कि एक बार १०० भुजाओंवाले कृष्ण शूकर ने पृथ्वी का उद्धार किया था। साथ ही विष्णु, लिंग और गरुड पुराणों में भी इससे सम्बन्धित विस्तृत कथानक प्राप्त होते हैं, जिनमें वराह अवतार को निश्चित रूप से विष्णु से सम्बन्धित किया गया है। इन्हीं पुराणों के प्रारम्भिक उद्धरणों में ब्रह्मा से सम्बन्धित अवतारों को विष्णु से सम्बद्ध करने के प्रयास किये गये हैं। साथ ही एक स्थल पर यह भी कहा गया है कि ब्रह्मा और विष्णु मूलतः एक ही हैं। भागवत पुराण में सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से वराह अवतार को विष्णु का एक अवतार प्रतिपादित किया गया है। इस पुराण में वर्णित कथानक के अनुसार जल के अन्दर ही आदि दैत्य हिरण्याक्ष के वराह के समक्ष युद्ध के लिए प्रस्तुत होने पर सशक्त वराह द्वारा अपनी डाढ़ों से उसका अन्त कर दिया गया। वराह की उत्पत्ति और उसके द्वारा पृथ्वी के उद्धार के साथ हिरण्याक्ष के साथ हुए युद्ध की विस्तृत कथा भी भागवत पुराण में उपलब्ध होती है। आगमों एवं तांत्रिक ग्रन्थों में भी वराह को पूर्णतः विष्णु का ही अवतार स्वीकार किया गया है।

प्रतिमालाक्षणिक ग्रन्थों में वराह मूर्ति के दो मुख्य प्रकार प्रतिपादित किये गये हैं:—प्रथम, वराह-विग्रह (जिसमें देवता पूर्ण वराह के रूप में निरूपित होंगे), और दूसरा, नर-वराह-विग्रह (जिसमें देवता का मस्तक वराह का और शेष शरीर मानव का होगा)। वराह-विग्रह रूप में एक विशाल आकार के शूकर के उत्कीर्णन का विधान रहा है, जिसके शरीर पर विभिन्न देव चित्रित होंगे। इसके अतिरिक्त शरीर के प्रत्येक भाग पर विष्णु के विभिन्न रूपों, नवग्रहों, आदि शेष, सप्तमात्रिकाओं, गन्धर्वों, किन्नरों, यक्षों, नागों, गंगा, यमुना और सरस्वती आदि के अंकन का प्राविधान है। भूदेवी, जिसके उद्धार के हेतु विष्णु वराह रूप में अवतरित हुए, शूकर की सशक्त डाढ़ों में लटकी चित्रित होंगी। वराह के पैरों के मध्य में आदि शेष नागराज प्रदर्शित होंगे। 'शिल्परत्न' के अनुसार डाढ़ों से युक्त शूकर की आकृति महाकाय, ऊर्ध्वरोमों, विशाल व पुष्ट स्कन्धोंवाली होनी चाहिए। उसके सम्पूर्ण शरीर से शक्ति एवं दृढ़ता का भाव स्वतः व्यक्त होना चाहिए। 'अपराजित-पृच्छा' वराह की डाढ़ के अग्रभाग में पृथ्वी के स्थान पर लक्ष्मी का चित्रण प्रतिपादित करता है।

उपर्युक्त विवरणों के अनुरूप ही कुषाण युग में वराह विग्रह मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ, और मध्ययुग तक ऐसी मूर्तियों के चित्रण का प्रचलन लोकप्रिय हो चुका था। वराह की एक प्रतिमा मध्यप्रदेश के ऐरण नामक स्थान से प्राप्त होती है, जिस पर हूण शासक तोरमाण का एक लेख उत्कीर्ण है। खजुराहो के मन्दिरों में भी वराह अंकनों का बाहुल्य है। खजुराहो में वराह का एक स्वतन्त्र मन्दिर भी है, जिसमें विशाल वराह प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इनके अतिरिक्त वराह विग्रह में निर्मित मूर्तियाँ कन्नौज, ग्वालियर, लखनऊ संग्रहालय और विशाखापट्टनम से भी उपलब्ध होती हैं।

वराह मूर्ति के दूसरे प्रकार (नृवराह) के पुराणों, आगमों, तन्त्रों आदि में पुनः तीन विभाजन किये गये हैं:—आदि या भूवराह, यज्ञवराह और प्रलयवराह। इन तीनों में आदि या भूवराह का चित्रण ही भारतीय शिल्प में सर्वाधिक प्रचलित रहा है। 'वैखानस आगम' के अनुसार चतुर्भुज आदि वराह मूर्ति का मस्तक वराह का और शेष शरीर मनुष्य का होगा। उसकी भुजाओं में शंख और चक्र प्रदर्शित होगा। देवता का कुछ झुका हुआ दाहिना चरण सपत्नीक आसीन नागेन्द्र के मणियुक्त फण पर स्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। देवता के झुके हुए दाहिने पाद पर भू-देवी आसीन होंगी। देवता का कुछ ऊपर उठा वराह मुख देवी के वक्षः-स्थल के अत्यन्त समीप चित्रित होगा। 'मत्स्यपुराण' और 'शिल्परत्न' में प्राप्त कुछ भिन्न विवरण के अनुसार देवता के हाथों में शंख और चक्र के स्थान पर गदा और पद्म प्रदर्शित होगा। उसका एक पाद आदि शेष पर, और दूसरा कूर्म पर स्थित होगा। उसकी डाढ़ के अग्रभाग पर अथवा बायीं कुहनी पर अवस्थित भू-देवी की एक भुजा नीलोत्पल से युक्त और दूसरी कट्यवलम्बित होगी। लगभग समान विवरणों का प्रतिपादन करनेवाले 'अग्निपुराण' के अनुसार देवता की दाहिनी और बायीं भुजाएँ क्रमशः शंख और पद्म से युक्त होंगी। बायीं भुजा की कुहनी पर लक्ष्मी आसीन होंगी। देवता के चरणों के समीप ही आदि शेष और भू-देवी को मूर्तिगत किया जाना चाहिए।

'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' कुछ अतिरिक्त विशेषताओं का उल्लेख करता है, जैसे चतुर्भुज आदि शेष रत्न सम्पन्न फणों से युक्त और आश्चर्य से देवी की ओर देखते हुए उत्कीर्ण होंगे। उनके दो हाथ अंजलि मुद्रा में प्रदर्शित होंगे और दो हल और मुसल से युक्त होंगे। वराह की बाईं कुहनी पर द्विभुजी वसुन्धरा नमस्कार मुद्रा में अंकित होंगी। देवता के इस हाथ में पद्म और शेष में चक्र और गदा होगा। इसी ग्रन्थ में वर्णित एक दूसरे स्वरूप में युद्ध के लिए उद्यत देवता को हिरण्याक्ष का सिर काटने के लिए हाथ में चक्र लिये चित्रित किये जाने का विधान है। उनके समक्ष ही त्रिशूल से युक्त हिरण्याक्ष भी युद्ध के लिए प्रशस्त होगा। इस पुराण के अनुसार हिरण्याक्ष मूर्तिमान अनैश्वर्य है, जिसे ऐश्वर्य रूप वराह ने अन्ततः निरस्त कर दिया। 'रूप मण्डन' नृवराह की भुजाओं में गदा और पद्म प्रतिपादित करता है। साथ ही चमकती हुई कालिमा से युक्त देवता अपने विशाल दाँतों के अग्रभाग से पृथ्वी का उद्धार करते हुए उत्कीर्ण होंगे।

नृवराह का प्रारम्भिक और सुन्दरतम गुप्तयुगीन उदाहरण भिलसा (मध्यप्रदेश) की पहाड़ियों पर स्थित उदयगिरि से प्राप्त होता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के लेख से युक्त इस मूर्ति में द्विभुज देवता के सिर का भाग वराह का और शेष शरीर मानव का है। देवता का वाम चरण मानव रूप में उत्कीर्ण शेषनाग पर स्थित है, जिसे नमस्कार मुद्रा में वराह की आराधना करते हुए चित्रित किया गया है। आदि शेष के समीप ही आराधना मुद्रा में नाग आकृतियाँ अवस्थित हैं। वराह का दाहिना हाथ जानु पर स्थित है, और वाम पर पृथ्वी या भूदेवी आसीन है। समीप ही एक अन्य पुरुष आकृति नमस्कार मुद्रा में चित्रित है, जो समुद्र का अंकन प्रतीत होता है। इस प्रस्तर फलक की पृष्ठभूमि में कई छोटी-छोटी आकृतियों की पंक्तियाँ उत्कीर्ण हैं। सबसे ऊपर की कतार में ब्रह्मा, शिव और अन्य श्रेष्ठ देवता, दूसरी पंक्ति में साधु, यति, संन्यासी और तीसरी में गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, राक्षस आदि प्रदर्शित हैं। यह प्रतिमा अपनी विशालता भावाभिव्यक्ति और प्रतिमालक्षण के सांगोपांग निरूपण के लिए विश्वप्रसिद्ध है। चालुक्यों की राजनीतिक राजधानी बादामी (७वीं शती) में भी ठीक इसी प्रकार का एक अंकन देखा जा सकता है, जो आकार में अपेक्षाकृत छोटा और शक्ति एवं ओज के प्रदर्शन में कुछ हीन है।

एक पल्लवयुगीन चित्रण महाबलीपुरम (तमिलनाडु) से प्राप्त होता है। इसमें पल्लव कलाकारों का उद्देश्य देवता द्वारा पृथ्वी के उद्धार कराये जाने के भाव का प्रदर्शन कम होकर देवता और उसकी शक्ति के मधुर प्रेम सम्बन्धों के भावों का प्रदर्शन अधिक था। वाम पाद पर जोर देकर खड़ी मध्य की वराह आकृति की कुहनी पर पृथ्वी देवी विराजमान हैं। इस प्रतिमा की पृष्ठभूमि में कुछ श्रेष्ठ देवताओं का अंकन प्रशंसनीय है। इनमें हाथ जोड़े ब्रह्मा की आकृति एवं सूर्य, चन्द्र, ग्रहों आदि की पहचान निश्चित है। एक अन्य आकृति जटाजूट से अलंकृत है और अपनी भग्न भुजाओं में वीणा रहे होने का आभास देती है। उसकी पहचान नारद से की गयी है। मुख्य देवता के पार्श्व में एक संक्षिप्त स्त्री आकृति उत्कीर्ण है। इसी प्रकार की एक अन्य सुन्दर मूर्ति ढाका संग्रहालय में शोभा पा रही है। इसमें सामने की ओर खड़े चतुर्भुज देवता की भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पद्म प्रदर्शित हैं। उनके एक मुड़े हुए हाथ में भू-देवी आसीन है। देवता के दाहिने पार्श्व में लक्ष्मी और बायें में सरस्वती का चित्रण मनोहारी है। आराधना मुद्रा में आसीन शेषनाग की आकृति पर देवता का दाहिना हाथ स्थित है। भुवनेश्वर से उपलब्ध होने वाली एक मूर्ति में वराह युद्ध की मुद्रा में अपना बायाँ पैर कुछ आगे किये हुए हैं और उनके ऊर्ध्व वाम हस्त की कुहनी पर भू-देवी आसीन हैं। उनके अन्य हाथों में शंख और

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Varanasi

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्र प्रदर्शित हैं। बायें पार्श्व में नागों की आकृति उत्कीर्ण है। एक विशिष्ट द्वादशभुजी चित्रण बेलूर के चेन्नकेशव मन्दिर (कर्नाटक) से प्राप्त होता है, जिसमें विभिन्न अलंकरणों से युक्त देवता कई सहायक आकृतियों से वेष्टित हैं। देवता के बारह हाथों में से ६ दाहिने हाथों में शूल (हिरण्यकेश के शरीर में प्रविष्ट), घण्ट, खड्ग, चक्र और बाण स्थित हैं, जबकि शेष बायें हाथों में नीबू, खेटक, अस्पष्ट वस्तु, शंख और विस्मय मुद्रा प्रदर्शित है। देवता अपनी एक भुजा से भू-देवी के लटकते पैर को सहारा दे रहे हैं। साथ ही असुर आकृतियों को अपने पैरों से कुचल रहे हैं। समीप ही अंजलि मुद्रा में भूमि देवी अंकित है।

नृवराह मूर्ति का एक मध्ययुगीन उदाहरण (८वीं शती) संप्रति भारत कला भवन, वाराणसी (न० २२०१८) में संकलित है। चतुर्भुज देवता का कुछ खण्डित दाहिना पाद कूर्म पर स्थित था और वामपाद पद्मपीठिका पर स्थित है, जिसके नीचे हाथ जोड़े नाग-नागी आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। पार्श्ववर्ती सेवकों एवं हाथ जोड़े उपासकों से वेष्ठित देवता की वाम भुजाओं में चक्र और शंख प्रदर्शित है। एक दाहिनी भुजा में पद्म स्थित है जब कि निचली भुजा जानु पर आराम कर रही है। बायें हाथ की कुहनी पर भू देवी को मूर्तिगत किया गया है। देवता वनमाला आदि विभिन्न अलंकरणों से युक्त हैं। मूर्ति के दोनों ऊपरी छोरों पर चतुर्भुज विष्णु एवं ब्रह्मा की आकृतियों का चित्रण ज्ञातव्य है। चाहमान शासकों के काल की एक अत्यन्त अलंकृत एवं मनोज्ञ नृवराह प्रतिमा (१२वीं शती) संप्रति विक्टोरिया संग्रहालय कलकत्ता में सुरक्षित है। उपर्युक्त मूर्ति के सदृश ही यहाँ भी देवता का दाहिना चरण कूर्म पर अवस्थित है, और वाम पद्मपीठिका पर। पद्मपीठिका के नीचे दो नाग आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। देवता के दोनों पार्श्वों में सेवक रूप में चक्र एवं शंख पुरुषों को मूर्तिगत किया गया है। देवता की ऊपरी वाम भुजा की कुहनी पर हाथ जोड़े भूदेवी की आकृति उत्कीर्ण है। चतुर्भुज वराह की दो बायीं भुजाओं में शंख और चक्र चित्रित है, जब कि ऊपर की दाहिनी भुजा में गदा प्रदर्शित है, और निचली भुजा जानु पर स्थित है। देवता की कटि में एक छोटे खड्ग का प्रदर्शन इस मूर्ति की विशेषता है। साथ ही देवता के स्कन्धों के ऊपर दाहिने एवं वाम पार्श्व में क्रमशः चतुर्भुज ब्रह्मा एवं शिव का चित्रण विशेष उल्लेखनीय है। जटामुकुट एवं श्मश्रु से युक्त ब्रह्मा की भुजाओं में अभयमुद्रा, स्रुक, पुस्तक और अस्पष्ट वस्तु प्रदर्शित है। जटामुकुट से अलंकृत शिव की भुजाओं में अभय मुद्रा, त्रिशूल, सर्प और जलपात्र चित्रित है। ऐसी ही अनेक प्रतिमाओं के उदाहरण विभिन्न पुरातात्विक स्थलों एवं संग्रहालयों में देखे जा सकते हैं।

'वैखानस आगम' वराह मूर्ति के एक दूसरे प्रकार—यज्ञवराह—का भी उल्लेख करता है। इसके अनुसार ललित मुद्रा में सिंह पर आरूढ़ देवता के दाहिनी ओर लक्ष्मी और बायीं ओर भू देवी उत्कीर्ण होंगी। आगमों में प्रलय वराह का भी उल्लेख मिलता है, जो सिंहासन पर ललित मुद्रा में आसीन एवं शंख और चक्र से युक्त होंगे। उनकी एक भुजा अभय मुद्रा में, और दूसरी वाम जानु पर स्थित होगी। उनके दाहिने पार्श्व में भू देवी चित्रित होंगी। देवता पीत वस्त्र और सामान्य आभूषणों से अलंकृत होंगे, और उनके शरीर का रंग नीला होगा। नृवराह मूर्तियों के उपर्युक्त दोनों ही प्रकार मात्र ग्रंथों तक सीमित रहे हैं, जिनके पदार्थगत अभिव्यक्ति के उदाहरण अभी तक नहीं प्राप्त हो सके हैं।

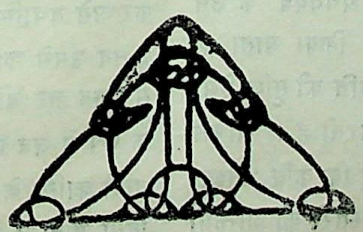

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रान्ति और साहित्य

प्रो० सिद्धेश्वरप्रसाद, केन्द्रीय ऊर्जा उपमन्त्री

मानव-समाज का इतिहास अधूरे सपने और अधूरी क्रान्ति का इतिहास है। सृष्टि के आरम्भ से मनुष्य सपने देखता आया है और अपने सपनों को साकार करने के लिए क्रान्ति की बात भी करता आया है, लेकिन आज तक न तो उसका कोई सपना पूरी तरह से साकार हुआ है और न कोई क्रान्ति ही पूरी हुई है। इसका कारण यह है कि एक सपने से अनेक सपने निकलते हैं और क्रान्ति की एक कल्पना में अनेक क्रान्तियों के बीज निहित होते हैं। साहित्य की विलक्षणता इस बात में है कि यह मनुष्य के सपने को शब्दबद्ध करता है और अपने शब्दों से उसकी क्रान्ति-भावना को भी रूप और शक्ति देता है।

भारतीय परम्परा के आदिकाल में 'कवि' और 'ऋषि' समानार्थक शब्द रहे हैं। वेद में 'कवयः सर्व श्रुतयः' उक्ति बार-बार आयी है। वेद को श्रुति भी कहते हैं। इसलिए उक्त उक्ति से यह स्पष्ट है कि वेदवाणी को कवि ने ही सुना। वैसे यजुर्वेद की 'कविर्मनीषी' उक्ति से ऐसा लगता है कि परमात्मा के लिए भी 'कवि' शब्द का प्रयोग किया गया है। यहाँ प्रयुक्त 'कवि' शब्द का भाष्य करते हुए स्वामी शंकराचार्य ने 'कवि' को मंत्रद्रष्टा बताया है। इसके साथ निरुक्त के 'ऋषि मंत्र द्रष्टारो' की तुलना की जा सकती है। इन शब्दों से मेरा अभिप्राय अभी इतना ही है कि 'कवि' और 'ऋषि' शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते आये हैं और 'कवि' के लिए सर्वश्रुत या मंत्रद्रष्टा होना परम्परा-सम्मत रहा है।

कवि के सर्वश्रुत होने में उसके प्रजापतित्व अर्थात् रचना-शक्ति का रहस्य छिपा हुआ है। अथर्ववेद के उस मंत्र को अक्सर साहित्य-शास्त्र में उद्धृत किया जाता है जिसमें यह कहागया है कि कविरूपी प्रजापति की सृष्टि ऐसी होती है जो न जीर्ण होती है और न मरती है। लेकिन शायद इससे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कवि 'शाश्वतीभ्यः' और 'याथातथ्योऽर्थान्' इन दोनों स्तरों की शक्तियों का समाहार करने की शक्ति से सम्पन्न होता है। इसीलिए साहित्य जहाँ एक ओर जीवन के चिरन्तन मूल्यों को वाणी देता है वहाँ दूसरी ओर जीवन के उस यथार्थ को भी व्यंजित करता है जिसमें क्रान्ति की लपटें उठती-बुझती रहती हैं।

'सर्वे भवन्तु सुखिना' आदि के रूप में सर्व-मंगल की जो कामना है उसमें मानवीय भावों का उदात्तीकरण है, लेकिन वह बेचैनी नहीं, जिससे क्रान्ति-भावना को बल मिलता है। वैसे यह अवश्य है कि 'सर्वे भवन्तु सुखिना' साहित्यकार की उस करुणा का परिचायक है जिसके कारण आदि-कवि की वाणी क्रौंचवध से अभिभूत होकर फूट पड़ी थी। साहित्यकार की यह करुणा देखने में जितनी निरीह मालूम पड़ती है वस्तुतः उतनी निरीह होती नहीं। आज जब हम जोर-जोर से यह कहते हैं कि साहित्यकार को अन्याय के विरुद्ध आवाज उठानी चाहिए तब इसका आदि-उदाहरण भी आदि-कवि बाल्मीकि ही ठहरते हैं क्योंकि उन्होंने ही उस निष्कासिता सीता को अपने आश्रम में जगह दी थी जिससे लक्ष्मण को यह कहने तक का साहस नहीं हुआ था कि आपको वनवास दिया जा रहा है। जिस सीता को उस युग के सबसे प्रतापी पुरुष ने वनवास दे दिया था उसे अपने आश्रम में स्थान देने का साहस आदि-कवि को ही हुआ। इस दृष्टि से रामायण जितनी राम के वीर चरित्र की गाथा है उससे कम सीता की करुण कथा नहीं। वाणी के साथ जब आचरण का मेल होता है तभी क्रान्ति-भावना को आधार प्राप्त होता है और परम्परा को जीवन।

दलित तथा त्यक्त एवं अन्याय-पीडित के प्रति सहानुभूति मात्र व्यक्त न कर जब उसकी सुप्त शक्ति को जाग्रत कर उसे यथास्थिति को बदलने के लिए प्रेरित किया जाता है तब उससे क्रान्ति का जन्म होता है। समाज को अन्याय से मुक्त कर जीवन को नया रूप देने के प्रयत्न के उदाहरण के रूप में जब फ्रांस की राज्य-क्रान्ति या रूस की समाजवादी क्रान्ति के उल्लेख किये जाते हैं तब अक्सर यह भुला दिया जाता है कि इसके पहले से भी इस प्रकार के प्रयत्न होते आये हैं। समाज के विशिष्ट वर्ग के वर्ग-स्वार्थों और निहित सांस्कृतिक मूल्यों के विरुद्ध आवाज उठाना निश्चय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही क्रान्तिकारी कदम है और यह काम इतिहास में सम्भवतः सबसे पहले गौतम बुद्ध ने किया था। उन्होंने न केवल अपने युग की वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठायी, बल्कि अभिजात वर्ग की भाषा संस्कृत के स्थान पर उस युग की लोक-भाषा को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर एक बड़े भारी जन-आन्दोलन का सूत्रपात भी किया। यह ठीक है कि उनको अपने इन दोनों प्रयत्नों में पूरी-पूरी सफलता नहीं मिल पायी, परन्तु तब से वर्णाश्रम व्यवस्था और संस्कृत भाषा की एकच्छत्रता को जो धक्का लगा उससे उनकी नींव जरूर हिल गयी है। जन्म के स्थान पर कर्म और विशिष्ट भाषा के स्थान पर लोक-भाषा की गरिमा को प्रतिष्ठित करनेवाले व्यक्तियों में गौतम बुद्ध का स्थान निश्चय ही संसार में अन्यतम रहेगा। यह अवश्य है कि उन्हें कई कारणों से अपने प्रयास में वैसी सफलता नहीं मिल पायी जिससे उनके विचारों पर आधारित समाज-रचना स्थायी हो पाती। जो प्रतिक्रान्ति हुई उसने उनकी समाज-रचना को छिन्न-भिन्न कर दिया।

ऐसी ही क्रान्ति की दूसरी लहर भारत में तब आयी जब उपासना ने भक्ति आन्दोलन का रूप ले लिया और वह विशिष्ट वर्ग तक सीमित न रहकर उन लोगों तक पहुँची जिनको इसके अधिकार से वंचित रखा गया था। भक्ति-आन्दोलन के कारण न केवल इस देश में उस समाज के व्यक्तियों को गौरव प्राप्त हुआ जिनकी छाया से भी छूत लगती थी, बल्कि लोक-भाषाओं को भी भारतीय जीवन में सम्मान का स्थान प्राप्त हुआ। आधुनिक भारतीय भाषाओं को भक्ति-आन्दोलन से ही पोषण और शक्ति प्राप्त हुई।

अनेक कारणों से समर्थ होते हुए भी भक्ति-आन्दोलन भारतीय समाज की उन बेड़ियों को काट फेंकने में असफल रहा जिनके विरुद्ध गौतम बुद्ध के जमाने से ही आवाज उठती आ रही थी, लेकिन जिन परिस्थितियों में भारत में भक्ति-आन्दोलन का आरम्भ हुआ था उन्हीं परिस्थितियों में आरम्भ किया गया यूरोप का सुधारवादी आन्दोलन बहुत कुछ उसे प्राप्त करने में सफल हुआ जो उस आन्दोलन का लक्ष्य था। सबसे बड़ी बात यह है कि आधुनिक यूरोपीय भाषाएँ यूरोपीय राष्ट्रों के राष्ट्रीय जीवन में सर्वोपरि महत्त्व का स्थान पा गयीं और ग्रीक और लैटिन जैसी प्राचीन भाषाएँ ग्रन्थालय की भाषा-मात्र बनकर रह गयीं। उस समय भारत यदि स्वतन्त्र होता तो शायद यहाँ भी यह बात होती और आज भारत के साहित्यकार क्रान्ति पर नितांत भिन्न परिप्रेक्ष्य में चर्चा करने की स्थिति में होते। यह ठीक है कि भाषा की अपनी शक्ति होती है, लेकिन इतिहास के इस कठोर सत्य को भी नहीं भुलाया जा सकता कि यदि राष्ट्र स्वतन्त्र और शक्तिशाली होता है तो उसकी भाषा को भी उससे शक्ति और गरिमा प्राप्त होती है। इसका कारण यह है कि वैसी स्थिति में साहित्य में भाषा के प्रयोग पर प्रतिबन्ध नहीं होता और उससे भाषा की शक्ति में निरन्तर विकास होता रहता है।

भारतीय साहित्य अत्यन्त विशाल और व्यापक है। भारत की विभिन्न भाषाओं में उच्चकोटि की साहित्य-रचना होती आयी है। भाषा-भेद के बावजूद भारतीय साहित्य में एकसूत्रता की एक अन्तर-धारा और समान भूमि सदा वर्तमान रही है। अतः आज की परिस्थितियों में जब साहित्यकार साहित्य के प्रयोजन और दायित्व पर विचार करता है तब उसे स्वभावतः ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय समाज में व्यापक परिवर्तन तो अपेक्षित है अवश्य, परन्तु भिन्न परिस्थितियों के कारण यह किसी देश की प्रक्रिया की नकल-मात्र नहीं हो सकता। स्वभावतः भारत में क्रान्ति का रूप भिन्न होगा और प्रक्रिया भी भिन्न होगी। अतः जो भारतीय साहित्यकार इनकी गहराई में जाता है उसकी चेतना उसे उन बातों का भी बोध देती है जिनकी चेतना पाश्चात्य मनुष्य या साहित्यकारों को इसलिए नहीं रही कि उनकी परिस्थितियाँ भिन्न थीं।

'सर्वे गुणाः कांचनम् आश्रयन्ते'—यह उक्ति मनुष्य-जीवन में अर्थ की महत्ता का उद्घाटन करती है। अतः कार्ल मार्क्स की इस स्थापना से असहमत होने का कोई कारण नहीं है कि अर्थ-व्यवस्था के मूल आधार पर ही जीवन का महल निर्मित होता है। लेकिन साहित्य और कला पर विचार करते हुए स्वयं मार्क्स को इस बात के लिए गहरा आश्चर्य हुआ था कि प्राचीन सभ्यताओं में भी कैसे उच्च कोटि के साहित्य और कला का निर्माण सम्भव हुआ जो आज भी मनुष्य के लिए उतनी ही नवीन और उदात्त प्रतीत होती हैं जितनी आज की साहित्यिक और कलात्मक कृतियाँ। अतः यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि साहित्य और कला की प्रक्रिया समाज की प्रक्रिया से किंचित् भिन्न अवश्य है। सामाजिक व्यवहार में जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य बिखर कर या विभक्त होकर व्यवहार करता है वहाँ साहित्य और कला के क्षेत्र में सदा महान् रचयिता उस धरातल पर उठ जाता है जहाँ जाकर विभाजन की सामाजिक रेखाएँ लुप्त हो जाती हैं और मनुष्य मात्र मनुष्य रह जाता है। वहाँ न तो धर्म की दीवार होती है और न रंग की, न अन्य प्रकार के भेदों की। कार्ल मार्क्स को यदि भारतीय साहित्य-शास्त्र के साधारणीकरण के सिद्धान्त का पता होता तो निश्चय ही वे साहित्य की उस शक्ति की व्याख्या कर पाते जिसकी ओर संसार के अन्य साहित्य-शास्त्रियों का ध्यान ही नहीं गया है।

भारतीय समाज में 'न मानुषात् हि श्रेष्ठतरं किंचित्' के रूप में मानव को प्रतिष्ठित करने का जो कार्य बाल्मीकि और व्यास ने शुरू किया था उनके उत्तराधिकारियों को उसे पूरा करने के लिए आज भी अपनी अनवरत साधना को जारी रखना है। गौतम बुद्ध और भक्तिकालीन कवियों की जो क्रान्ति अधूरी रह गयी थी उसे पूरा करते हुए नयी परिस्थितियों के अनुरूप आर्थिक सम्बन्धों को भी मानवीय बनाने के लिए अपनी लेखनी का उपयोग करना ही होगा। उत्पादन-सम्बन्धों और आर्थिक सम्बन्धों के शोषक-शोषित आधार के स्थान पर मानवीय आधार की स्थापना की की पृष्ठभूमि साहित्यकार ही प्रदान कर सकता है। यह आज इसलिए आवश्यक है कि उन करोड़ों लांछितों को भी मानवोचित जीवन व्यतीत करने की योग्यता और अवसर प्रदान करना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है जिन्हें कहने को तो मानव का रूप मिला है लेकिन जो मानव जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से भी वंचित हैं। यह सब इसलिए नहीं हो पाता है कि पिछले कुछ वर्षों से हम लोक-भाषा के लिए आन्दोलन तो करते हैं लेकिन लोक-भावना को जीवन में स्थान नहीं दे पाते। लोक-भावना के बगैर लोक-भाषा निर्जीव शरीर के सदृश है। इस बात को अक्सर लोग भूल जाते हैं और वे भाषा के नाम पर आन्दोलन कर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान बैठते हैं। लोक-भावना कभी भी लोक-जीवन का तिरस्कार कर नहीं चल सकती। हमारी कोई भी वैसी मान्यता लोक-जीवन में ग्राह्य नहीं हो सकती जिसमें मनुष्य को मनुष्य के रूप में गौरव का स्थान न मिले।

प्रतीकात्मक रूप में मैं केवल दो का उल्लेख करना चाहूँगा—'एकलव्य' और 'अभिमन्यु'। एकलव्य भारतीय परम्परा की उस विकृति का प्रतीक है जिसमें योग्यता के बावजूद जन्म के कारण व्यक्ति को अधिकार से वंचित होना पड़ा है। किसी जमाने में किसी एकलव्य का द्रोणाचार्य ने अँगूठा कटवाया था, लेकिन उसके बाद भी अनेक एकलव्यों के अँगूठे आज तक उसी परम्परा में कटते चले आ रहे हैं। यदि भारत का साहित्यकार इस व्यथा को वाणी नहीं देगा तो और कहाँ इसे मुक्ति मिल पायेगी ?

अभिमन्यु इस बात का प्रतीक है कि योग्यता को अपने वर्ग के भीतर भी स्वीकार नहीं किया जाता और उसे केवल पनपने ही नहीं दिया जाता है, बल्कि अनेक उचित-अनुचित साधनों से उस व्यक्ति का इसलिए अन्त कर दिया जाता है कि वह सूर्य के समान समाज में चमकने न पाये। कभी सात महारथियों ने मिलकर एक अभिमन्यु का वध किया था, लेकिन तब से आज तक अनेकानेक महारथी असंख्य अभिमन्युओं का वध करते चले आ रहे हैं। यदि भारत का साहित्यकार इन अभिमन्युओं को वाणी नहीं प्रदान करेगा तो फिर इन अबोधों को कहाँ वाणी मिल पायेगी ? रवीन्द्रनाथ ने कहा था—

वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नय
असंख्य बंधन माँझे लभिब महानन्दमय मुक्तिर स्वाद।

वैदिक ऋषि से लेकर कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर जीवन के महानन्दमय मुक्ति-स्वाद की रचना करते आये हैं, लेकिन आज आम आदमी के जीवन में इस महानन्दमय स्वाद का समावेश तभी हो सकता है जब साहित्यकार की लेखनी इस दृष्टि से उसके जीवन को रसमय बनाने के लिए कृतसंकल्प हो।

साहित्यकारों को इस पर भी विचार करना होगा कि उनकी रचनाएँ लोक-जीवन में स्थान पाने में क्यों नहीं सफल होतीं। यदि क्रान्ति जन-सहयोग से होती है तो जो साहित्य जन-जन तक नहीं पहुँचेगा उससे जन-क्रान्ति कैसे हो सकेगी ?

जीवन चुनौतियों से भरा हुआ है। ऐसे जीवन को बदलना चुनौती नहीं बल्कि खतरे का काम है। पर रचयिता तो जन्मजात आशावादी होता है। अतः उसका मन हारता नहीं, बल्कि बार बार कहता है—

'हार बैठे जीवन का दाँव,
जीतते मर कर जिसको वीर।'

यह 'असतो मा सद्गमय' और 'जस की तस धर दीनी चदरिया' की ही गरिमामयी परम्परा है जिसने साहित्य-मन्दिर में मानव-मात्र के एकमात्र आशा-दीप की सौम्य-शिखा को सदा प्रज्वलित रखा है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीपावली की ऐतिहासिकता

श्री श्याममनोहर व्यास, एम० एस्-सी०

दीपावली हमारी लोक-संस्कृति का आलोकमय पर्व है। सदियों से आलोक एवं शक्ति का प्रतीक यह पर्व हमारे देश में बड़े उत्साह से मनाया जाता है। आलोक अर्थात् प्रकाश भारतीय संस्कृति में ज्ञान का प्रतीक रहा है। समग्र रूप से दीपावली अन्धकार पर प्रकाश की, अज्ञान पर ज्ञान की, दरिद्रता पर समृद्धि की और अन्याय पर न्याय की विजय का प्रतीक है। अमीर-गरीब सभी इस पर्व को बड़े उत्साह एवं भावभीनी श्रद्धा से मनाते हैं। सांस्कृतिक समन्वय का यह त्यौहार हमारे राष्ट्रीय जन-जीवन में नित्य नवीन चेतना फूंकता आया है।

दीपावली का उल्लेख कई ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न नामों से आया है। कौमुदी महोत्सव, दीपप्रतिपदुत्सव, यश रात्रि, सुख-रात्रि, लक्ष्मी दिवस आदि कितने ही नामों से इसका वर्णन मिलता है।

सर्वप्रथम ऋग्वेद में इसका उल्लेख श्रीसूक्त के रूप में मिलता है। वहाँ श्री सर्वत्र सौन्दर्य के प्रतीक के रूप में अथवा अन्य विशेषणों के रूप में वर्णित है। शतपथ ब्राह्मण में श्री मूर्त रूप में हमारे सामने आती है। इस कथा के अनुसार प्रजापति की साधना की फलश्रुति रूप में श्री उनके अंतस् से निकलकर स्वर्गिक सौंदर्यमयी, ओजस्वी देवी के रूप में उपस्थित होती है। सम्भवतः यही देवी आर्य-पूर्व भारत की आद्यादेवी—जननी है, जिसके देवत्व में सौन्दर्य और सम्पत्ति का भाव निहित है।

उपनिषद् और गृह्यसूत्रों में भी श्री का उल्लेख है। श्री का कल्याणमय अर्थ लक्ष्मी की भावना के अति समीप है। कई वैदिक मंत्रों में 'श्रीश्च लक्ष्मीश्च' साथ-साथ आते हैं। यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है—'हे दीप्ति की अधिष्ठात्री देवि, ज्योतिर्मयी, हमें जीव-लोक में यशस्वी बनने का वरदान दे।'

पौराणिक आख्यानों के अनुसार लक्ष्मी की उत्पत्ति समुद्र-मन्थन से बतायी गयी है। महाभारत तथा कई पुराणों में लक्ष्मी को विष्णु की अर्द्धांगिनी माना है।

जैन-साहित्य में श्री का कल्याणमय रूप मिलता है। 'कल्पसूत्र' के अनुसार भगवान् महावीर के जन्म के पूर्व त्रिशला ने जो चौदह मंगलमय स्वप्न देखे थे उनमें 'श्री' का स्थान भी है। हेमचन्द्र-कृत 'परिशिष्ट पर्व' में श्री-लक्ष्मी का उल्लेख मिलता है।

भारतीय लोक-संस्कृति में दीपावली का सम्बन्ध अनेक स्रोतों से जुड़ा हुआ है। दीपावली के दिन भगवान् राम लंकापति रावण का वध कर अयोध्या लौटे थे। एक मत के अनुसार दीपावली का सम्बन्ध भगवान् विष्णु द्वारा वामनावतार धारण कर बलि की पराजय से भी है। जैन मतावलम्बी दीपावली का सम्बन्ध तीर्थंकर महावीर की निर्वाण-प्राप्ति के साथ जोड़ते हैं।

भगवान् राम सत्यं, शिवं सुन्दरम् के स्वरूप हैं। वे उदात्त प्रवृत्तियों की निधि हैं, आर्य-संस्कृति के पुरोधा हैं, जबकि रावण दानवता, आसुरी सम्पदा एवं अनार्यत्व का प्रतीक है।

दीपावली को नवसस्येष्टि पर्व भी कहा गया है। इसका शाब्दिक अर्थ है—नवीन अन्न के आगमन के समय स्वागतार्थ मनाया जानेवाला उत्सव। यह पर्व रामायण काल में भी उत्साहपूर्वक मनाया जाता था। वाल्मीकि रामायण के अरण्य काण्ड में इसका उल्लेख है। इस पर्व का सम्बन्ध भगवान् कृष्ण द्वारा भौमासुर का वध किये जाने से भी है। इसी दिन महाराज पृथु ने पृथ्वी का दोहन भी किया था। इस प्रकार यह हमारा राष्ट्रीय पर्व है।

'आनन्द रामायण' में महाराज दशरथ का मिथिला के राजा जनक के यहाँ जाकर दीपावली के उत्सव में सम्मिलित होने का उल्लेख है। अरबी विद्वान् अलबरूनी सन् १०३० में भारत आया था। उसने अपनी भारत-यात्रा के संस्मरण में इस पर्व के मनाये जाने का रोचक वर्णन किया है।

अबुल फजल ने 'आइने अकबरी' में लिखा है कि सम्राट् अकबर के दरबार में यह पर्व बड़े उत्साह और धूम-धाम से मनाया जाता था। उसने कन्दीलों के प्रकाश की भी चर्चा की है।

दीपावली का अर्थ है दीपों की पंक्ति। भारतीय प्राचीन अभिलेखों में विभिन्न प्रकार के दीपकों का उल्लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है। यथा, गजदीप, लक्ष्मीदीप, किन्नरदीप, नागदीप, व्याधदीप, मयूरद्वीप आदि।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या को मनाये जानेवाले इस पर्व के साथ चार पर्व और जुड़े हुए हैं—(१) धनतेरस, (२) नरक चतुर्दशी, (३) अन्नकूट तथा (४) यम द्वितीया। दीपावली के ही दिन महात्मा महावीर, महर्षि दयानंद सरस्वती एवं स्वामी रामतीर्थ प्रभृति लोकोत्तर प्रेरणा देने वाले महापुरुषों ने निर्वाण प्राप्त किया था।

दीपावली के प्रकाश में इनकी अमर वाणियाँ हमारा मार्ग-दर्शन करती हैं। दीपावली को हम 'ज्ञान-दीपावली' के रूप में भी मना सकते हैं। हमारे मनीषी ऋषियों का कथन है—'प्रज्वालितो ज्ञानमय प्रदीप'। दीपक और साहित्य दोनों का महत्त्व स्नेहमय प्रकाश फैलाने में है।

दीपावली के दो प्रमुख पक्ष हैं—सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय, जो हमारी संस्कृति एवं एकता को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। दीपावली प्रादेशिकता के दायरे में न बँधकर सम्पूर्ण भारत का दीपोत्सव है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले इस विशाल देश में सभी वर्गों के लोग अपनी परम्पराओं, प्रथाओं एवं रीति-रिवाजों के अनुसार इसे मनाते हैं।

लक्ष्मी-पूजन से उचित मार्ग से धन कमाने की प्रेरणा मिलती है। लक्ष्मीजी स्वयं कहती हैं—

स्थिता पुण्यवतां गेहे सुनीतिपथवेदिनाम्
गृहस्थानां नृपाणां वा पुत्रवत्पालयामि तान्।

अर्थात् नीति मार्ग पर चलनेवाले, पुण्य कर्म करनेवाले, गृहस्थ तथा राजाओं के यहाँ मैं टिकी रहती हूँ और ऐसे व्यक्तियों का मैं प्रिय पुत्रों के समान पालन करती हूँ। आलसी, अकर्मण्य, मन्द बुद्धि एवं चरित्रहीन व्यक्तियों के यहाँ लक्ष्मीजी नहीं रहतीं।

दीपकों का प्रकाश हमें प्रेरणा देता है कि हम अपने में मानवता की दिव्य ज्योति प्रज्वलित कर हृदय के अन्धकार को पूर्णतया समाप्त कर दें। इस पुनीत पर्व के अवसर पर हम अपने में सत्य, नैतिकता तथा राष्ट्रीयता की भवना को आलोकित करें।

कुछ काँटे कुछ फूल

[पृष्ठ १६२ का शेषांश]

की गीता बना दो। निराशा के बदले उन्होंने आशा का संदेश दिया था—

आशा आलोकित करती मेरे जीवन को प्रतिक्षण।
हैं स्वर्ण सूत्र से वलयित मेरी असफलता के घन॥

खरेजी ने उनसे नवीन आशा और विश्वास ग्रहण किया। बख्शीजी से अपनी कविताओं का संशोधन कराया। आज के कवियों को इसलाह का महत्त्व समझ में नहीं आता। इसलिए उनकी कविताओं को कोई दिशा नहीं मिल पाती। अस्तु, अपने जीवन में जिस दरिद्रता और असहायता का अनुभव खरेजी ने किया उसका उनकी प्रारम्भिक कविताओं में प्रगट होना स्वाभाविक ही था। तुलसीदासजी ने भी उसे नहीं छिपाया जब उन्होंने लिखा—

बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन।
मानत हौं चार फल चार हू चनक को॥

नर्मदाप्रसाद ने भी अपनी भूख और अभाव में घास काटने तक का प्रयत्न किया। भिखारियों के साथ शामिल हो गये। मामा, मामी की प्रताडना सही, गोभी का फूल चुराने पर कोमल-हृदया माता की कठोरता भी देखी। इस प्रकार की अवस्था में कोई बालक निराश हुए बिना नहीं रह सकता। तो भी खरेजी ने गुरुजनों की सत्संगति के कारण उत्साह से आगे बढ़कर सफलता प्राप्त की, यह उनकी बड़ी उपलब्धि है।

बख्शीजी ने कविता और कहानी के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह पुरानी और नयी पीढ़ी दोनों के लिए उपादेय है। वे अन्त तक खरेजी के साहित्यगुरु बने रहे। इसी कारण उनकी लेखनी दिन-प्रति-दिन निखरती गयी। उन्होंने ठीक ही लिखा है—"रचना करनेवाली शक्तियाँ भीतर से वैसे ही आती हैं जैसे सूर्य का रंग फूल के विकास के साथ ढलता और बदलता जाता है।"

खरेजी ने परम्परागत कविताओं, रूढ़ मान्यताओं से हटकर भी जो कुछ लिखा है वह भी पठनीय है। कविता के संबंध में उन्होंने लिखा है—"मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब तक तारों में चमक है, चन्द्रमा में चाँदनी है, फूलों में सुगन्ध है तब तक गीत की मृत्यु नहीं हो सकती। वास्तव में झगड़ा कविता और अकविता के बीच नहीं है, किन्तु सुकविता और कुकविता के बीच है।"

वर्तमान संग्रह कविवर नर्मदाप्रसाद खरे के संघर्षमय जीवन तथा उनके काव्य सम्बन्धी विचारों के कारण हमारे लिए उपादेय है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकि की उपमाएँ

डा० जयशंकर त्रिपाठी

वाल्मीकि आदिकवि हैं और उपमा अलंकार की विधा काव्य-सिद्धान्त की पहली उद्भावनाओं में है। वाल्मीकि महान् हैं। उनकी उपमा भी विराट् वस्तु-चित्रों को प्रत्यक्ष करती है। आदिकवि और काव्य-रचना की आदि उद्भावना—इन दोनों का तारतम्य किन वस्तु-चित्रों में अंकित है—इसका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

उपमा और रूपक पहले सम्भवतः एक ही अलंकार थे। सूक्ति की एक ही विधा का व्याख्यान दाक्षिणात्यों ने उपमामुख से और औदीच्यों ने रूपक मुख से आरम्भ किया। कवि द्वारा काव्य-वस्तु के हृदय ग्राही चित्र प्रस्तुत करने की धुन में अलंकारों की यह मनोरम कल्पना होती रही है। दण्डी ने पहले उपमा का निरूपण किया। वे वैदर्भ-मार्ग के आचार्य थे। भामह ने पहले रूपक का निरूपण किया। वे गौड-मार्ग के समर्थक, वैदर्भ-मार्ग को हेय समझनेवाले औदीच्य आचार्य थे। दण्डी ने उपमा के माध्यम से रूपक को समझाया है। उनका उपमा का लक्षण है—

यथा कथंचित् सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते।
उपमा नाम सा तस्याः प्रपंचोऽयं प्रदर्श्यते॥

(काव्यादर्श २।१४)

अर्थात् जिस प्रकार से प्रकट सादृश्य जहाँ दिखायी पड़ता है वह उपमा अलंकार है। अब इसीके माध्यम से वे रूपक को समझाते हैं—

उपमैव तिरोभूता रूपकमुच्यते।

(काव्यादर्श २।६६)

अर्थात् अति सादृश्य प्रदर्शन के लिए उपमा का तिरोधान ही रूपक है। भामह ने अपने काव्यालंकार में इस व्याख्यान का आरंभ रूपक से किया, उन्होंने कहा कि—पूर्ण समता (तादात्म्य) रूपक है और गुणलेश की समता उपमा है।

किंतु अलंकृत काव्य या सूक्तियों की अलंकार-विधा की प्रथम कल्पना उपमा या रूपक की ही थी—यह नहीं कहा जा सकता। संस्कृत-साहित्य की परवर्त्ती काव्य-रचना तथा काव्य-शास्त्र के व्याख्यान में उपमेय और उपमान को केवल प्रस्तुत (वर्ण्य अर्थात् जिसका वर्णन किया जाना है) और अप्रस्तुत (अर्थात् जिसका वर्णन इष्ट नहीं है जो प्रस्तुत के अर्थ-बोध का साधनमात्र है) के रूप में ही ग्रहण किया गया है। लेकिन यह स्थिति आरम्भ काल में नहीं थी। वाल्मीकि के आदि काव्य से पता चलता है कि उनके वर्णनों में प्रायः उपमेय और उपमान दोनों प्रस्तुत हैं अर्थात् वर्ण्य हैं, दोनों की विद्यमानता वर्णन के सन्दर्भ में है।

वस्तुचित्र प्रस्तुत करनेवाली वाल्मीकि की ऐसी उपमाएँ दीपक अलंकार की उद्भावना के मूल में स्थित हैं। कवियों की काव्य-रचना में अलंकारों का सँवरता या बिगड़ता रूप कैसे-कैसे स्थित हुआ है, इसकी अद्भुत जानकारी इस अनुशीलन से होती है। यह भी ज्ञातव्य है कि जैसे उपमा और रूपक को दो भिन्न सम्प्रदाय अलंकार की प्रथम उद्भावना के रूप में प्रस्तुत करते हैं वैसे ही एक अन्य सम्प्रदाय, जिसके अस्तित्व की चर्चा कम आयी है, दीपक को ही अलंकार की पहली उद्भावना स्वीकार करता है। दीपक से परिचय प्राप्त कर हम वाल्मीकि की उपमाओं को अधिक समझ सकेंगे।

दण्डी ने दीपक की जो परिभाषा दी है उससे दीपक का विस्तार उपमा की अपेक्षा अधिक है—यह स्पष्ट ही लक्षित हो जाता है। उनका दीपक का लक्षण है—

जाति-क्रिया-गुण-द्रव्य - वाचिनैकत्रवर्तिना।
सर्ववाक्योपकारश्चेत् तमाहुर्दीपकं यथा॥

(काव्यादर्श २।९७)

अर्थात् एक स्थान पर विद्यमान जाति, क्रिया, गुण या द्रव्य का वाचक पद यदि पूरे वाक्य या सभी वाक्यों में अर्थबोध की उत्पत्ति कराता है तो उसे दीपक कहा जाता है। दण्डी की इस परिभाषा के बाद दीपक की विशेषता प्रायः क्रिया में ही शेष होती गयी, और लक्षणकारों ने वाक्यों के एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रियात्व में ही दीपक का व्याख्यान किया । अलंकारों की उद्भावनाओं में पहली विधा दीपक की रही है—यह उल्लेख उद्भट और कुन्तक करते हैं । इन्होंने भी एक क्रियात्व में दीपक की स्थिति स्वीकार की है । उद्भट ने अर्थालंकारों की गणना करते समय उपमा का नाम लेकर तब दीपक का नाम लिया है । संभवतः ऐसा उन्होंने छंदोभंग न होने के लिए किया[1], क्योंकि व्याख्यान वे पहले दीपक का ही करते हैं । उद्भट ने यह कहा है कि दीपक में उपमाधर्म अन्तर्भूत होता है तथा कुन्तक ने तो 'वक्रोक्ति जीवित' में स्पष्ट ही दीपक को अन्य अलंकारों का मूल स्वीकार कर सर्वप्रथम इसका व्याख्यान किया है ।

दो वस्तुओं का एकार्थ समन्वयन ही बाद में प्रस्तुत-अप्रस्तुत पदार्थों का एक धर्म बनता गया । एकार्थ समन्वयन दीपक की कल्पना थी और एक धर्म उपमा का लक्षण बन गया । विकासक्रम की यह दोनों स्थितियाँ आदि काव्य में मिलती हैं, जो दीपक तथा उपमा की मिली-जुली कल्पना से अर्थ को चमत्कृत करती हैं । यहाँ दो प्रकार के वस्तुचित्र हैं—एक वस्तु-वर्णन तो वह है जहाँ सम काल में घटित सभी प्रत्यक्ष वस्तुओं का वर्णन हो रहा है । दूसरे प्रकार के वस्तु-वर्णन वे हैं जहाँ सम काल में ही घटित वस्तुओं का वर्णन हो रहा है, पर एक प्रत्यक्ष है और दूसरी वस्तु परोक्ष में है, किन्तु वर्णन दोनों का इष्ट है । ये दोनों प्रकार दीपक से भिन्न नहीं हैं । इनके अतिरिक्त तीसरे प्रकार का वह वस्तु-वर्णन है जहाँ एक वस्तु का वर्णन इष्ट है और दूसरी वस्तु का वर्णन उपमानमात्र हैं, वह उपमेय के वस्तुचित्र में केवल गहरा रंग देने के लिए है । यथाक्रम इनके उदाहरण देखिये । आदिकाव्य के वर्षावर्णन का एक प्रसंग है—

निद्रा शनैः केशवमभ्युपैति
द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति ।
हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति
कान्ता सकामा प्रियमभ्युपैति ॥

(वा० ४।२८।२५)

अर्थात् निद्रा धीरे से भगवान् केशव का आलिंगन कर रही है, नदी समुद्र के पास पहुँचने को उतावली है, बगुलियाँ प्रसन्न होकर बादल के पास दौड़ रही हैं, आतुर रमणियाँ अपने प्रियतम से मिल रही हैं ।

इस सूक्ति में कवि ने दीपक-विधा की अवतारणा की है—केशव के प्रति निद्रा, सागर के प्रति नदी, घन के प्रति बलाका और प्रिय के प्रति कान्ता—इन अनेक में एक ही क्रिया-व्यापार 'अभ्युपैति' (प्राप्त हो रही है) का निबन्धन है । आचार्य उद्भट के अनुसार यह उपमाधर्म से अन्तर्भूत दीपक अलंकार है—ऊपर के तीन वाक्यों की चौथे वाक्य के साथ उपमेयोपमेय भाव से प्रस्तुति है । यदि ऊपर के तीन वाक्यों में 'अभ्युपैति' क्रिया को हटा दिया जाय और तीनों के साथ 'इव' वाचक पद संयुक्त कर दिया जाय तो यह छन्द अच्छी तरह मालोपमा का उदाहरण बन जायगा । अतः उद्भावनाओं की इसी सरणि में, भाव-मूलक दीपक की इन विधाओं में, 'इव' आदि पद जोड़कर सूक्ति का उपमालंकार का रूप प्रकट हुआ । उपमालंकार के प्रकटीकरण की ऐसी आद्य कल्पनाएँ आदि काव्य में हैं, जिनमें वर्णन तो दोनों वस्तुओं का इष्ट है किन्तु एक प्रत्यक्ष है, दूसरी परोक्ष है । और उपमा का वाचक पद 'इव' परोक्ष वस्तु के साथ संयुक्त है । अर्थात् जो परोक्ष है वह उपमान हो गया है ।

आदि काव्य के वर्षा-वर्णन का एक बिम्ब चित्र है—

एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरभिवासितः ।
सुग्रीव इव शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥

(वा० रा०४।२८।९।)

अर्थात् फूले हुए अर्जुन वृक्षों से भरा हुआ और केवड़े के फूलों से सुवासित यह पर्वत, शत्रु को नष्ट कर प्रसन्न सुग्रीव के समान जलधारा से अभिषिक्त हो रहा है । यह भी उक्त कोटि की उपमा का उदाहरण है । आदिकाव्य में उपमा के ऐसे ही अन्य उदाहरण हैं—

एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता ।
सीतेव शोकसंतप्ता मही वाष्पं विमुञ्चति ॥

(वा० ४।२८।७)

अर्थात् ग्रीष्म-ऋतु में तपी हुई धरती आषाढ के बादलों की वर्षा में भीगकर, (विरह में) शोक-संतप्त सीता के समान वाष्प-विमोचन (उच्छ्वास का त्याग, आँसू बरसा कर) कर रही है ।

---

१. उपमादीपके चैव प्रतिवस्तूपमा तथा ।
इत्येत एवालङ्कारा वाचां कैश्चिदुदाहृताः ॥
(काव्यालंकार-सार-संग्रह, १।२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः ।
मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ।।

(वा० ४।२८।१०)

अर्थात् वर्षाकाल में वायु से प्रतिध्वनित पर्वत ब्रह्मचारियों के समान वेदपाठ कर रहे हैं, बादल उनके शरीर पर मृग का काला चर्म हैं और वे स्रोत की धाराओं का यज्ञोपवीत पहने हैं।

नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे ।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी ।।

(वा०४।२८।१२)

अर्थात् नीले बादल के आश्रय में पड़ी चमकती बिजली, मुझे रावण की गोद में विवश पड़ी छटपटाती तपस्विनी सीता के समान मालूम पड़ती है।

ऊपर के उदाहरणों में हम उपमा-विधा के अनुसार उपमेय-उपमान का विभाजन तो कर सकते हैं, लेकिन यह नहीं कह सकते कि कवि का इष्ट केवल उपमेय का वर्णन है। दोनों ही पक्षों का चित्र कवि तथा वक्ता को इष्ट है, वरञ्च जहाँ सीता उपमान हैं, वक्ता राम को सीता का वस्तु-चित्र ही अधिक उद्वेलित कर रहा है, वह उनको उपमेय से अधिक मनोगम्य है। पहले उदाहरण में वर्षा से भीगी धरती की सोंधी महक ने राम के हृद्गत भाव को स्पर्श कर विरहिणी सीता को कल्पना में प्रस्तुत कर दिया। भीगी धरती राम के सामने थी और सीता वहाँसे बहुत दूर। सीता के प्रति ही राम के भाव का सारा उद्वेलन था। अतः मुख्य रूप से राम के लिए सीता का वर्णन इष्ट है, लेकिन यह नहीं कहा जायगा कि उच्छ्वास छोड़ती धरती का वर्णन सीता के वर्णन का सहकारी मात्र है, क्योंकि वह प्रत्यक्ष है, अतः वह भी इष्ट है। इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है। नीले मेघ के बीच चमकती बिजली राम की आँखों के प्रत्यक्ष है, सीता लंका में वन्दिनी हैं। काले बादल के बीच चमकती बिजली ने राम के मानस में राक्षसराज की गोद में विकल तड़पती सीता का उस समय का चित्र प्रस्तुत कर दिया है, जिस समय उसने उनका हरण किया होगा, जो अब भी राम के हृदय में वर्तमान की भाँति स्थित है। सीता की वह विवशता ही वक्ता राम के हृदय को अनुभावित करनेवाला मुख्य वस्तु-तथ्य है, यद्यपि वह यहाँ उपमान के रूप में है। उपमान होने का कारण यह है कि मेघ और बिजली को देखकर सीता का उक्त चित्र रेखांकित हो उठता है। तीसरा उदाहरण भी इसी विधा में है। पर्वत ब्रह्मचारियों के समान वेद-पाठ कर रहे हैं—यह वर्णन करते समय वाल्मीकि के सामने वटुओं का रूप उपस्थित है, जो काले मृग का चर्म कन्धे पर रखे हैं और शुभ्र जनेऊ पहने हैं। उपमा के इन उदाहरणों की विशिष्ट प्रकृति यह भी है कि केवल समानवाची पद 'इव' का प्रयोग इनको दीपक से अलग कर उपमा का अस्तित्व प्रदान कर रहा है। 'इव' पद यदि हटा लिया जाय तो ये उदाहरण दीपक के हो जायँगे। जैसे—

उपमा की विधा—फूले हुए अर्जुन वृक्षों से भरा और केवड़े के फूलों से सुवासित यह माल्यवान् पर्वत, शत्रु को नष्ट कर प्रसन्न सुग्रीव के समान जलधारा से अभिषिक्त हो रहा है।

दीपक की विधा—फूले हुए अर्जुन वृक्षों से भरा और केवड़े से सुवासित माल्यवान् पर्वत जलधारा से अभिषिक्त हो रहा है, (और दूसरी ओर) शत्रु को नष्ट कर राज्य सिंहासन पर आसीन सुग्रीव (अभिषिक्त हो रहा है।)

ऊपर के उदाहरणों में दोनों वस्तुओं का वर्णन वक्ता को इष्ट रहा है, यद्यपि वे उमेय-उपमान भाव से हैं। आदि काव्य में इनके ही समकक्ष दूसरे उदाहरण हैं जिनसे समानवाची पद 'इव' को हटा लेने से अलंकार-विधा दीपक की हो जाती है, लेकिन इन उदाहरणों से उनकी भिन्नता यह है कि उनमें उपमेय का ही वर्णन प्रधान है, उपमान का वर्णन इष्ट तो है, पर गौण है। जैसे—

ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते ।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते ।।

(वा० ३।१६।१४)

अर्थात् हेमन्त-ऋतु में पूर्णमासी की चाँदनी भी तुषार से भरकर मलिन हो जाती है और चारों ओर उन्मुक्त नहीं बिखरती। धूप लगने से साँवली हुई सीता के समान वह न अपने रूप में पहचानी जाती है, न शोभा पाती है।

यहाँ राम लक्ष्मण से वर्णन कर रहे हैं कि हेमन्त ऋतु की तुषार-भरी पूर्णिमा किस प्रकार मलिन हो जाती है और अपनी चाँदनी नहीं बिखेरती। उन्होंने धूप में चलने के कारण श्रान्त सीता को देखा था, जो उस समय धूप लगने से साँवली हो गयी थीं। चाँदनी की इस म्लानता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने सीता की उस म्लानता को याद करा दिया है। यह स्मृति गौण है, प्रधान नहीं है, तो भी तुषारावृता चाँदनी के माध्यम से सीता के उस रूप का भी गान कर देना राम को इष्ट है। यहाँ भी 'इव' पद हटा देने से यह सूक्ति दीपक-विधा में हो जायगी।

दीपक की विधा से सर्वथा स्वतन्त्र होकर परवर्त्ती काल में उपमा के जो प्रयोग हुए, उनकी उत्कृष्ट सूक्तियाँ भी आदि काव्य में हैं। इनमें उपमेय-पक्ष का वर्णन ही इष्ट है, दूसरा पक्ष सर्वथा गौण है, और वह अर्थ-सौन्दर्य का करण-मात्र है। इन सूक्तियों में किसी पद के परिवर्तन से उपमा-विधा में परिवर्तन की सम्भावना भी चमत्कारी नहीं होगी। जैसे—

रवि संक्रान्तसौभाग्यस्तुषारावृतमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते॥

(वा० ३।१६।१३)

अर्थात् जिसका सौभाग्य—लोकप्रियता धर्म—सूर्य में संक्रमित हो गया है, वह हिमकणों से आच्छन्न रहनेवाला चन्द्रमा, निःश्वास से मलिन किये गये दर्पण के समान, अब नहीं चमकता है। यहाँ केवल तुषार से ढके चन्द्रमा का वर्णन कवि को इष्ट है।

मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः।
दूरमभ्युदितः सूर्यः शशाङ्क इव लक्ष्यते॥

(वा० ३।१६।१८)

अर्थात् हेमन्त-ऋतु में, तुषार के कणों से आच्छादित अतएव धीरे-धीरे फैलती किरणों से सूर्य दूर पर उदय होता दिखता है और चन्द्रमा के समान मालूम पड़ता है।

वाल्मीकि की इन उपमाओं की विशेषता यह है कि इनमें वर्णनीय वस्तु का सही चित्र उसका उपमान प्रस्तुत कर देता है। उपमान केवल तुलना के लिए नहीं होता, वह बिम्ब की प्रतिच्छवि मुद्रित कर देता है। वाल्मीकि के उपमान (अप्रस्तुत विधान) कल्पना-जगत् के नहीं हैं, नित्य प्रति के जीवन में अनुभूत होती हुई प्रकृति ही उपमान बन गयी है। इसीलिए आदि काव्य की उपमाएँ रसचर्वणा की संजीवनी रखती हैं अथवा यों कहना चाहिए कि उनमें अननुभूत रहस्य-दर्शन होता है, जिसने स्वतः कवि को प्रस्तुती-करण के लिए अनुप्रेरित किया है। पर्वत, वन, नदी, शस्य-भरे खेत, पशु और आकाश वाल्मीकि के उपमानों की उद्भव-भूमि है, जो स्वतः सत्य हैं। उनकी वही सत्यता उपमान में भी है। कुछ उदाहरण देखिये। दूर तक फैल कर बैठी विशाल वानर-सेना को देखकर वाल्मीकि के हृदय में सुनहले पके धान के खेतों का दृश्य उदय हो जाता है—

बभूव वसुधा तैस्तु सम्पूर्णा हरिपुङ्गवैः।
यथा कलमकेदारैः पक्वैरिव वसुन्धरा॥

(वा० ६।४।९१)

अर्थात् उन वानर-वीरों से पृथ्वी भर उठी थी, पके हुए शालि धान के खेतों से आच्छादित सुनहली धरती के समान वह शोभा थी।

वाल्मीकि ने पौरुष तथा रूप के बिम्ब-चित्रों के लिए कुछ निश्चित उपमान सर्वत्र अपनाये हैं। उनको पौरुष या विक्रम के लिए शार्दूल उपमान बहुत प्रिय है। विक्रम की अभिव्यक्ति के लिए राम-लक्ष्मण के पराक्रम की उपमा वे शार्दूल से देते हैं, पराक्रमी वानर-वीरों के लिए भी वे हरि-शार्दूल, कपि-शार्दूल शब्दों का प्रयोग करते हैं, किन्तु मनोरंजक बात यह है कि वे ज्ञान के उपासक मुनियों के लिए भी मुनि-शार्दूल शब्द का प्रयोग करते हैं—

शनैस्तस्मिन् प्रशान्ते च जनघोषे जनाधिपः।
वशिष्ठं मुनिशार्दूलं राजा वचनमब्रवीत्॥

(वा० २।३।५-६)

राक्षसों के विभ्राट् और भयानक रूप का चित्रांकन उन्होंने गिरि के शिखर या बादल की उपमा देकर किया है। पता नहीं, उन्होंने राक्षसों को देखा था, या केवल सुना था, पर अपनी उक्त मान्यता में वे कहीं परिवर्तन नहीं करते। विभीषण की उपमा भी उन्होंने गिरिशृंग से दी है। कुम्भकर्ण पर्वत के समान तथा भूरी आँखोंवाला है। उसकी भूरी आँखें उसके मुख-मंडल में बादल में बिजली के समान चमकती हैं—

कोऽसौ पर्वतसंकाशः किरीटी हरिलोचनः।
लङ्कायां दृश्यते वीरः सविद्युदिव तोयदः॥

(वा० ६।६१।५)

रावण को कवि ने मन्दराचल का शिखर कहा है और उसके शिर अनेक साँपों के मुख कहे हैं—

शिरोभिर्दशभिर्वीरो भ्राजमानं महौजसम्
नानाव्यालसमाकीर्णैः शिखरैरिव मन्दरम्॥

(वा० ५।४९।६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीनारों की बातें

डा० कमलाकांत हीरक

नोकदार मीनारों की चुभती बातें ।
ज्यों गुजरी सदी करे मन में प्रतिघातें ।।
भोगे क्षण का
कातर सुनना भरमाये
घटनाक्रम में तृष्णा
गहरी हो जाये
शर्तहीन इच्छाओं से लिपटे नाते ।
नोकदार मीनारों की चुभती बातें ।।
उखड़े चौराहों पर
जमना भीड़ों का
शव-सा थक
टूट बिखर जाना नीड़ों का
नियमित दिनचर्या में आरोपित रातें ।
नोकदार मीनारों की चुभती बातें ।।
तने हुए
कागजी मुखौटों के भ्रम में
सारा आकाश
झुका है रहता गम में
जीने के संबोधन रहे सदा झुठलाते ।
नोकदार मीनारों की चुभती बातें ।।

वाल्मीकि ने वीरों के भव्य सुडौल व्यक्तित्व को कुद्मान् (साँड़) से उपमित किया है । किष्किन्धा काण्ड हनुमान् ने राम-लक्ष्मण के रूप का वर्णन करते हुए हा है—

श्रीमन्तौ रूपसम्पन्नौ वृषभश्रेष्ठविक्रमौ ।
हस्तिहस्तोपमभुजौ द्युतिमन्तौ नरर्षभौ ।।
सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गोवृषौ ।
आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः ।।
(वा० ४।३।१०,१४)

अर्थात् आप दोनों श्रीमान् हैं, कान्तिमान् हैं, विशाल-य साँड़ के समान मन्द गति से चल रहे हैं, आपकी जाएँ हाथी की सूँड़ के समान हैं, आप मनुष्यों में श्रेष्ठ तेजस्वी हैं, आपके कन्धे सिंह के समान हैं, मतवाले ाँड़ के समान महान् उत्साही हैं, आपकी भुजाएँ लम्बी, ल तथा परिघ के समान दृढ हैं ।

जनक राम-लक्ष्मण को देखते ही उनके रूप पर य होकर विश्वामित्र से पूछते हैं कि देव तुल्य पराक्रमी, ी के समान मन्दगति से चलनेवाले, सिंह और साँड़ के ान सुडौल स्वस्थ शरीर ये दोनों कुमार कौन हैं—

इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ।
गज-तुल्यगती वीरौ शार्दूल-वृषभोपमौ ।।
(वा० १।५०।१७, १८)

इसी प्रकार अरण्यकांड में कबन्ध ने राम-लक्ष्मण को साँड़ के समान ऊँचे कन्धेवाला कहा है—

कौ युवां वृषभस्कन्धौ महाखड्गधनुर्धरौ ।
(वा०३।६९।४३)

वाल्मीकि के हृदय में गुरुकुल, वन, पर्वत और आकाश की मनोरम प्रकृति वाणी का द्वार घेरे खड़ी रहती है । उनकी काव्य वाणी जब तब उस प्रकृति के सौन्दर्य में पूर्णतया भीगकर ही बाहर निकलती है । हनुमान्जी जब बड़े वेग से पर्वत के शिखर से समुद्र को लाँघने के लिए उड़े तब उस वेग में अनेक फूल और उनकी कलियाँ वात-आवर्त में उड़ती चली गयीं । उस समय हनुमान्जी जुगुनुओं से घिरे बादल के समान शोभित हो रहे थे—

स नाना कुसुमैः कीर्णः कपिः साङ्कुरकोरकैः ।
शुशुभे मेघसंकाशः खद्योतैरिव पर्वतैः ।।
(वा०५।१।४९ अथवा ५१)

उपमावाची 'संकाश' पद का प्रयोग भी वाल्मीकि की अपनी विशेषता है । इसे उन्होंने प्रायः प्रयुक्त किया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमराही

श्रीमती रमा मेहरोत्रा, एम० ए०

पुलिस टी० बी० वार्ड के द्वार से निकलते ही मिसेज राठी का हृदय भर आया था। रात्रि के समय, सर्दी की ठिठुरानेवाली हवा में, कंधे पर एक गर्म शाल डाले, हाथ में दूध का थरमस थामे, मन्थर गति से वे डाक्टर के साथ वार्ड के सामने से गुजर रही थीं। कम्पाउंड के किनारे की ओर खड़ी गाड़ी तक उन्हें पहुँचना था। आज श्वास-वेग के कारण बेनी का दम फूल रहा था। चेष्टा करने पर भी वह 'बहूजी' का उठकर अभिवादन न कर सका था। लेटे-लेटे ही सिर उचकाकर ही उसने अपनी श्रद्धा व्यक्त की थी। तभी डाक्टर के 'लेटे रहो, तुम्हें आराम की अत्यन्त आवश्यकता है'—के संकेत से मिसेज राठी को बेनी की गम्भीर दशा का अनुमान हो गया था। दो दिन पूर्व ही तो इस वार्ड में 'हिमापटेटिस' के एकाएक आक्रमण पर साहब ने भाग कर स्वयं ही बेनी को इस वार्ड में दाखिल कराया था और डाक्टर से उसकी समुचित सेवा और देखभाल की प्रार्थना की थी। एक्स-रे और खून की जाँच-पड़ताल के पश्चात् डाक्टर ने उसे एडवांस टी० बी० का केस बताया था। सुनते ही राठी साहब और मिसेज दोनों को ही अत्यन्त आघात पहुँचा था। वे सोचने लगे थे कि अभी चार दिन पहले ही तो बेनी दिन भर खुशी-खुशी सेवा-तत्पर दिखायी देता था। यह अवश्य था कि इधर कुछ दिनों से उसके निरंतर कृश होते बदन तथा आँखों के नीचे बढ़ते काले गड्ढे देख चिंतित हो जब कभी मिसेज राठी उससे अपने खाने-पीने का ध्यान रखने एवं डाक्टर को दिखाने की बात करतीं तब वह कह उठता—"अरे बहूजी, हमें क्या होना है। थोड़ी पेट की शिकायत है। कब्ज रहत है तो रात में घोंटा लगाय के दुइ-चार दिन पी लेंगे तो भूख भी खुल जायगी।"

कई दिन मिसेज राठी ने उसे भोजनोपरान्त कार्यों से निपटने के पश्चात् साबुन को घोंटा लगा पीते देखा था। एक दिन शाम बेनी के मुख से खून की उल्टी होते देख मिसेज राठी सन्न रह गयी थीं और तुरन्त पुलिस आफिस में पति को फोन करके उन्होंने बेनी की चिन्ताजनक दशा व्यक्त की थी। राठी साहब भी इस सूचना से घबड़ाकर उसे तत्काल ही पुलिस अस्पताल में दाखिल करा आये थे। डाक्टर ने आश्वासन भी दिया कि बहुधा टी० बी० में ये लक्षण प्रकट होते हैं। हालत गंभीर है, पर उपयुक्त इलाज से हाल सुधरने की भी पर्याप्त आशा है, घबरायें नहीं। यह सुनकर दोनों को ही ढाढ़स बँधा था।

टी० बी० वार्ड की ओर नित्य शाम को फेरा लगाते हुए मिसेज राठी का यह तीसरा दिन था। सिर झुकाए, उदास मुद्रा में हाथ में थरमस और बगल में चमड़े के बड़े और सुन्दर-से थैले में चार-पाँच फल टाँगे जब वे वार्ड के अन्दर घुसतीं तब सभी कर्मचारी उन्हें आश्चर्य से देखते रह जाते। एक पुलिस उच्चाधिकारी की पत्नी की सिपाही के प्रति यह सहृदयता! साथ का अर्दली थरमस और थैला थामने का आग्रह करता भी तो वे यह कहकर रोक देतीं कि कोई बात नहीं, हल्का ही तो है। जैसे इन्हें किसी सगे आत्मीय को अपने हाथों से ही खिलाने में आनन्द मिल रहा हो।

आज बेनी की दशा देख मिसेज राठी के मुख पर चिंता की रेखाएँ गहरी हो रही थीं। वार्ड से निकलते ही उन्हें लगा जैसे पाँव फूल रहे हैं, उनका कुछ खो-सा गया हो। एकान्त में डाक्टर साहब से उसके रोग की पूछताछ करने के लिए वे व्याकुल हो उठीं। गाड़ी के समीप पहुँचते ही वे भरे गले से डाक्टर के प्रति कह रही थीं—"डाक्टर साहब, कृपया इसे बचा लीजिए। मैं आजन्म आपकी आभारी रहूँगी। यह इस योग्य हो जाय कि मेरा कुछ काम न करे, केवल ड्योढ़ी पर बैठा ही रहे। यही मेरी आकांक्षा है।"

डाक्टर ने आश्वासन देते हुए उत्तर दिया था—"मिसेज राठी, घबरायें नहीं। इस रोग में ऐसे लक्षण अस्वाभाविक नहीं। रोग निर्मूल होने की कदापि आशा नहीं, परन्तु इलाज से स्वस्थ अवश्य हो जायगा। हाँ, आपकी इसके प्रति अतीव सेवा-भावना एवं सहायता से मैं अवश्य हतप्रभ हूँ। कारण कि बहुधा पुलिस विभाग में सिपाहियों के प्रति व्यवहार में उनके अफसर के रोब-दाब से अधिक उसकी पत्नी का दबदबा कटु व्यवहा में देखा गया है। आपके दयालु व्यक्तित्व के बावजूद भी मैं इस विलक्षणता को समझ नहीं पा रहा हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिसेज राठी की आँखें छलछला आयी थीं और अत्यंत द्रवित शब्दों में उन्होंने कहा था—"डाक्टर साहब, इस व्यक्ति के पीछे अनेक अतीत स्मृतियाँ छिपी पड़ी हैं। यह मेरे सुहाग का रक्षक रहा है। मेरे पति का जीवनदाता है। इसके प्रति मैं जो कुछ भी करूँ नगण्य है। द्वितीय विश्वयुद्ध में मेरे पति कप्तान की हैसियत से बर्मा के मोर्चे पर दुश्मनों से घिरे हुए थे। कुमायूँ की पहाड़ियों के एक छोटे कस्बे में मेरे पति का घर था। मुझे गौने आये थोड़े ही दिन व्यतीत हुए थे कि राठी साहब को युद्ध के मोर्चे पर जाने की आज्ञा मिली थी। अपने सैनिकों की टुकड़ी के साथ ही राठी साहब बर्मा के जंगलों में छिपे दुश्मनों का सामना कर रहे थे कि एक दिन उन्हें जीर्ण-शीर्ण दशा में यह भटका हुआ युवक दीख पड़ा था। विमाता के दुर्व्यवहार से तंग आकर यह रोजी ढूँढने के चक्कर में महीनों से दर-दर की ठोकरें खा रहा था। पास के रुपये समाप्त हो चुके थे। पेट की आग जल रही थी। इसके पास अब थे तो केवल दो तेजपूर्ण नयन और परिश्रम करनेवाले दो हाथ। सैनिकों की भरती में रोजी की आशा रख यह इधर उन्मुख हुआ था। युद्ध समाप्त होने की संभावनावश इसकी भरती न हो सकी। अतः इसने राठी साहब से सिफारिश की अनुनय-विनय की थी।

राठी साहब स्वयं दुश्मनों से घिरे अपनी सुरक्षा के लिए दिन-दिन भर खाइयों में छिपे रहते। रात्रि में जंगलों में घूम-घूमकर सुरंगें बिछवाते। रसद भी समाप्त हो गयी थी। एकाएक बम की गोलाबारी से कैम्प ही केवल तहस-नहस नहीं हुआ अपितु कई सैनिक जख्मी भी हुए और भय से तितर-बितर हो गये। तार और टेलीफोन की लाइनें भी नष्ट-भ्रष्ट हो गयीं। दो टैंकों पर हरियाली बिछे जाल के समीपस्थ खाई में मेरे पति और बेनी आठ दिन तक छिपे रहे। सैनिक वेशभूषा के कारण साहब दिन में भी खाई से न निकलते, किंतु साहसी बेनी ने उनकी क्षुधा-पूर्ति के लिए तब भी अनवरत परिश्रम किया। समीप के गहरे घने जंगलों में, जहाँ धूप की रोशनी तक न झाँकती थी, सेना को रसद पहुँचाने का मार्ग था। बोरे ढोते समय मजदूरों की बोरियों से गिरे दाने भी कभी उस मार्ग पर छिटक जाते थे। दिन-भर बेनी उन दानों को चुगता तो कहीं मुट्ठी भर दाल या चना जमा कर रात में उसे साहब के लिए भिगो देता। आठ दिन तक साहब का यही आहार था। खाली पेट होने पर भी स्वयं दिखाने को वह कुछ दाने मुँह में डालकर संतुष्टता की हामी भरने लगता। साहब सब कुछ समझते थे पर उसकी भक्ति और महत्ता के सम्मुख, उन्हें अपनी कृतज्ञता के शब्द भी फीके जान पड़ते थे।"

डाक्टर साहब एकटक उनकी ओर निहार रहे थे। कई बार कुछ कहने को दिल चाहा, पर उस सजल प्रवाह में स्वयं डूबते से गये। वे कह रही थीं—"दुश्मनों ने हथियार अन्ततो-गत्वा डाल दिये और युद्ध ठंढा पड़ गया। अब समय आया कि एक दिन हेलीकाप्टर से दोनों हेडक्वाटर पहुँच गये। युद्ध में मानव-जीवन की नश्वरता और व्यक्ति के अहं रूप की विध्वंसता का नग्न नृत्य देख साहब ने विरक्ति के कारण नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। उसके पीछे एक कारण बेनी को दिया वह वचन भी था—"बेनी, जब तक जीवित रहूँगा हम दोनों साथ-साथ रहेंगे।" साहब ने तत्पश्चात् पुलिस विभाग में नौकरी कर ली। बेनी को भी पुलिस विभाग में अपने अर्दली रूप में नियुक्त कर लिया था। जहाँ जाते उसे अपने साथ ही रखते।

इस प्रकार कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। बहुधा हम दोनों ही बेनी से कहते—"अपना ब्याह कर घर बसा ले, कब तक अकेला रहेगा?"

वह हँस देता—"अकेला कहाँ हूँ? सरकार ही तो मेरे माई-बाप हैं।" अधिक आग्रह जब कभी करती तब मुँह बना देता—"घर बसा लूँगा तो आप लोगों से अलग जो हो जाऊँगा। मन बँट जायगा। फिर वह भी तो कुछ चाहेगी मुझसे? दूसरा जीवन, बहूजी, कैसे हो सकेगा?" उसकी आँखें डबडबा आतीं, मुँह फेर कर चल देता। बहुत ठेलने पर एक बार अपने गाँव गया था, पर चार दिन में ही लौट आया। मैं हँसने लगी—"बड़ा निर्मोही है।" कहने लगा—"गाँव में मन नहीं लगा।

डाक्टर साहब, हम लोगों का काम, सबकी देख-भाल उसकी सबसे बड़ी खुशी है। जिसने अपना सारा 'प्यार' और जीवन दे दिया हो, उसका ऋण मैं कैसे उतारूँ, समझ में नहीं आता। जिसे हम निम्न और निर्धन समझते हैं वह भी कितना महान् तपस्वी हो सकता है!"

समय बीतता गया। प्रकृति अपनी करवटें लेती गयी। एक दिन, एक बार संयोगवश डाक्टर साहब जब राठी साहब के घर पहुँचे तब द्वार पर ही बेनी के स्वागत भरे हुलास से उसकी प्रसन्नता और आभार प्रकट हो रहा था—"सरकार, बहुत अच्छा हूँ। साहब की वर्दी आदि का रख-रखाव और फोन पर ही अब ड्यूटी है। कोई काम अब भारी नहीं करता।" शरीर उसका अब भी दुर्बल था। सिर के बाल सफेद होने लगे थे। दाँत भी दो-चार गिरे हुए दीख रहे थे। पर आँखों में दीप्ति, मुख पर उज्ज्वलता की चमक उसके हार्दिक उल्लास और संतोष को छिपा न सकी।

तभी अन्दर से मिसेज राठी ने आकर डाक्टर साहब की प्रशंसा और आवभगत में कोई कसर न उठा रखी। कहने लगीं—"डाक्टर साहब, बेनी हमारे बीच है, यही हम लोगों का अहोभाग्य है।" हर्ष के आँसू उनकी आँखों में झलकने लगे थे। डाक्टर साहब भी श्रद्धानत गुनगुनाते हुए लौट रहे थे—"धन्य है, स्वामी एवं सेवक का यह संबंध। यह स्तुत्य ही नहीं, स्मरणीय भी रहेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

भगवत् कृपा

श्री हरप्रसाद शर्मा

पंडित उमाचरन श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति में सदा लीन रहनेवाले व्यक्ति थे। दिशा-मैदान और स्नानादि से निवृत्त होकर प्रातःकाल श्रीमद्भगवद्गीता खोलकर बैठ जाते। घी के दिये की बाती जलाते और धूप तथा अगरबत्तियों का धुआँ उठ-उठकर वातावरण को सुगन्धित करता रहता। तब पंडितजी अत्यन्त भक्ति-भाव से श्लोकों को मधुर कण्ठ से गाते। उनका प्रथम श्लोक सदा अध्याय दस का आठवाँ होता—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

(मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति का कारण हूँ और मेरे से ही सब जगत् चेष्टा करता है, इस प्रकार तत्त्व से समझकर श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए, बुद्धिमान् भक्तजन मुझ परमेश्वर को ही निरन्तर भजते हैं।)

उस गायन में ऐसा माधुर्य टपकता कि सुननेवाले मंत्र-मुग्ध-से रह जाते और हृदय में प्रफुल्लित हो उठते। इस कार्य से छुट्टी पा वे कुछ जल-पान करते और फिर काम पर चले जाते। पंडितजी इलाहाबाद कमिश्नरी में क्लार्क थे। वे पूजापाठ के इतने पक्के थे कि दुःख या बीमारी के समय तक में अपना पाठ पूरा करने में न चूकते; किसी तरह से उसे पूरा करके ही चैन की साँस लेते। यदि कभी यात्रा करते तो पूजा-पाठ का सामान उनके साथ रहता। उन्हें कृष्ण भगवान् पर पूर्ण विश्वास था और उनका सदा यही उपदेश रहा कि भगवान् की नौकरी पहले करो फिर फँसो सांसारिक झंझटों में। फिर यह निश्चय ही जानो कि जीवन की उलझनें भी उसकी कृपा से सुलझती जायंगी और जीवन की नाव अत्यन्त शान्ति से दुःखरूपी सांसारिक समुद्र पर चलकर अन्त में पार जा लगेगी।

पर जहाँ पंडितजी इतने पुजारी थे वहीं धर्मपत्नी उतनी ही उनके विरुद्ध बुद्धि की थी। जब पंडितजी पूजा-पाठ के लिए आसन जमाकर बैठते तब उनकी पत्नी पद्मा उन्हें ऐसे देखती मानों वह कोई बड़ा अनर्थपर्ण कार्य करने जा रहे हैं। पद्मा पढ़ी-लिखी स्त्री थी तथा तर्क-वितर्क बड़े ज़ोरों से करती थी। उसका सदा यही तर्क रहता कि यदि मनुष्य कामधाम न करे और सदा भगवान् के नाम का मन्दिर या घर में घण्टा ही हिलाता रहे तो देखें उसे कौन खाने को दे जाता है। जो मनुष्य अपने घर की आवश्यकताएँ नहीं पूरी कर सके, बच्चों तथा परिवार का पालन-पोषण उचित ढंग से न कर सके और कर्त्तव्य-परायण न हो, धिक्कार है उसके जीवन को। निःसन्देह पूजा-पाठ ढकोसला है जिसमें सिवाय समय नष्ट करने के और कुछ भी नहीं होता। यदि इसके बदले इतना समय मनुष्य जीवन के किसी दूसरे कार्य के लिए दे तो वह उससे कितनी उन्नति कर सकता है तथा जीवन सफल बना सकता है। अतः जीवन सफल बनाने के लिए मनुष्य की भुजाओं में बल चाहिये, सोचने-विचारने की शक्ति चाहिये और चाहिये किसी भी कार्य के करने का उचित ढंग।

पद्मा की इस प्रकार की तर्क की झड़ी पंडित उमाचरन की क्रोधाग्नि भड़का देती और फिर वे गम्भीर मुद्रा करके इस प्रकार उसका उत्तर देते—"देखो पद्मा, जिस प्रकार धुएँ से अग्नि छिप जाती है, उसी प्रकार मनुष्य की बुद्धि भी अज्ञान के धुएँ से छिपी रहती है। यही कारण है कि उसे यह पता नहीं चलता कि संसाररूपी सागर से कैसे पार उतरा जा सकता है। उसके जीवन की नौका सदा डूबती-उतराती रहती है और उसका जीवन क्लेश तथा चिन्ता में ही कटता है। पर जैसे ही धुआँ हट जाता है और अग्नि स्पष्ट दिखायी देती है वैसे ही हम उसकी चमक तथा उसके रूप को भली भाँति देख लेते हैं। इसी प्रकार जैसे ही हमारे अज्ञान का धुआँ हट जाता है वैसे ही हमें बुद्धि का प्रकाश दीखने लगता है। तब हम समझते हैं कि भगवान् की महिमा और जीवन का सुख। और यह कार्य करने के लिए चाहिये जप-तप, पूजा-पाठ तथा मन की एकाग्रता। इसके बिना यह अन्धकार दूर नहीं हो सकता।" इसके पश्चात् पंडितजी कुछ भक्तों के चरित्र भी चित्रण करने लगते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर इस प्रकार पद्मा हारनेवाली कभी न थी। वह कुछ चिढ़ कर कहना आरम्भ करती—"आपकी यह फिलासफी मेरी समझ में नहीं आती। क्या संसार में जितने भी मनुष्य ऊँची-ऊँची जगहों पर कार्य कर रहे हैं और सफल हो रहे हैं इसी पूजा-पाठ की बदौलत? नहीं। मैं तो यही कहूँगी कि यह सब उनके परिश्रम तथा कर्त्तव्यपरायणता का फल है। इसमें क्या भगवान् से लेना है और क्या उसे देना है?"

इस पर पंडितजी जैसे अपने अन्तिम शस्त्र का प्रयोग करते हुए जवाब देते—"सच कहती हो। भला मेरी बातें उसकी समझ में क्यों आयेंगी जो नास्तिक विचारों का है और स्वार्थ के पीछे भगवान् को भी ठुकरा देता है। यह भला कहाँ का न्याय है? तुम तो नयी रोशनी की लड़की हो, संसार से नितान्त अनभिज्ञ।" फिर गीता का उपदेश देते हुए कहते—"निःस्वार्थ सेवा ही भगवान् की सच्ची सेवा है।" इस पर पद्मा फौरन हाथ हिलाती कहती—"बस-बस, रहने दो, अपने गीता-वीता के उपदेश को। मुझे न चाहिये।"

इस प्रकार तर्क-वितर्क की नयी शाखाएं फूटतीं और आये दिन इसी विषय पर उन दोनों में वाद-विवाद छिड़ा रहता। परिणाम यह होता कि बात यहाँ तक बढ़ जाती कि या तो वाद-विवाद महाभारत के रूप में समाप्त हो जाता और कुछ दिनों तक दोनों में बातचीत तक बन्द रहती, या उस रूप में जब पद्मा पूर्णतः परास्त हो जाती। तब पंडितजी अन्त में गर्व से मुस्कराहट के साथ चेतावनी देते—"एक दिन वह आयेगा जब डाकू वाल्मीकि की तरह तुम भी परास्त होकर भगवान् के चरणों में शीश नवाओगी और उसके अस्तित्व को पूर्ण रूप से स्वीकार करोगी।" पर पद्मा अपनी गहरी काली आँखों की एक चितवन पति पर डालकर इस चेतावनी को जैसे मुस्कराकर उड़ा देती।

एक समय पंडित उमाचरन अपने साले की शादी में सम्मिलित होने को इलाहाबाद से झाँसी यात्रा कर रहे थे। केवल पति-पत्नी ही थे। साथ में एक ट्रंक तथा बिस्तर। गाड़ी से मानिकपुर स्टेशन पर उतर पड़े। कारण, इलाहाबाद से झाँसी तक के लिए सीधे कोई गाड़ी नहीं थी। अतः मानिकपुर से झाँसी के लिए दूसरी गाड़ी बदलना अनिवार्य था। वे दोनों प्लेटफार्म पर चादर बिछाकर बैठ गये और गाड़ी आने की बाट देखने लगे। पद्मा टिकट खरीद लायी थी।

पर उसी समय पंडित उमाचरन के पूजा-पाठ का समय हो गया। उन्होंने अपनी पूजा का सामान उठाया और वे एक वृक्ष की छाया में आसन लगाने लगे। यह देख पद्मा ने कुछ रुष्ट होकर टोंकते हुए कहा—"गाड़ी का समय हो रहा है, टिकट खरीद लिये गये हैं। और आप पड़ रहे हैं पूजा-पाठ के चक्कर में। भला यह भी कोई बात है।"

"अभी कहाँ हुआ है गाड़ी का समय?"

"यह भी खूब कही! लाइन क्लियर हो चुकी है, सिगनल डाउन है और कहते हैं कि अभी समय ही नहीं हुआ है।" पद्मा ने तीव्रता से उत्तर दिया।

"तो आने दो, कौन रोकता है। मेरा पूजा-पाठ का समय है, यह कैसे हो सकता है कि मैं अपना नियम भंग कर दूँ।" पंडितजी ने अत्यन्त शान्ति से उत्तर दिया।

"यदि जाना न था तो टिकट ही क्यों खरीदे? पैसे ऐसे फालतू होने लगे। गाड़ी चूकने पर रद्दी न हो जायँगे। शादी के समय पर न पहुँचे तो क्या लाभ? फिर यहाँ पड़े रहो एक अनिश्चित समय तक। मैं तो गाड़ी पर अकेले ही सवार हो जाऊँगी। फिर आप आना, चाहे यहीं धूनी रमाते रहना। मैं तो सचमुच तंग आ गयी हूँ।" पद्मा ने जैसे धमकी देते हुए कहा।

और जैसे इस धमकी को स्वीकार करते पंडितजी झल्ला कर बोले—"अच्छा, अच्छा! चली जाना। कौन रोकता है?"

"तुम्हारी कसम, मैं चली जाऊंगी। फिर मत कहना ये और वो।"

पंडितजी ने इस बार कुछ नरम होते हुए कहा—"हाँ, हाँ! कह तो दिया चले जाना। तुम्हें कोई रोके तो कहना।" इतना कह पंडितजी ने गीता खोली और श्लोकों का मधुर वाणी से पाठ करना आरम्भ कर दिया।

पद्मा की आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह कुछ बड़बड़ाती सी ट्रंक पर बैठ गयी और शान्त दृष्टि से प्लेटफार्म पर जमा होते यात्रियों की भीड़ को देखने लगी।

उसी समय कुछ यात्री चिल्ला उठे—"तैयार हो जाओ। वह देखो गाड़ी आ रही है।" सब यात्रियों का ध्यान उस ओर खिंच गया। गाड़ी में चढ़ने की तैयारियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने लगीं। कोई बिस्तर उठाता, कोई कुली को बुलाता, कोई बच्चों को गोदी में लेता····।

तभी गाड़ी भक्-भक् करती हुई आयी और स्टेशन पर एक झटके के साथ रुक गयी। लोग चढ़ने लगे। एक सिरे से दूसरे सिरे तक लोगों की भीड़। उठता हुआ कोलाहल। कुलियों की भागदौड़ और खोंचेवालों का गला फाड़-फाड़ कर सामानों का बेचना।

"चाय गरम, पान-बीड़ी, मिठाईवाला।"

यहाँ पंडितजी का पाठ अभी आधा बाकी था। आधा पाठ वह कैसे छोड़ सकते थे, भला। चाहे गाड़ी जाय, चाहे रहे। पर पद्मा का बुरा हाल था। पति को लगी ताकने, जैसे कसाई को बकरी। पर बेबस। कभी दिल यह कहता कि चढ़ जाओ गाड़ी में और इन्हें वह मज़ा चखाओ कि याद रखें। पर कभी अकेले सफर किया नहीं था—यह मुश्किल थी। इस बेबसी को पंडितजी भी खूब जानते थे, और वह स्वयं भी जानती थी। पर वह कुछ यह सोचकर उठी कि शायद पंडितजी के सामने जाने से उन्हें ज्ञात हो जायगा कि गाड़ी आ गयी है। अब चलना चाहिये। इसी आशा से वह पंडितजी के सामने खड़ी हो गयी और उनकी तरफ याचना-भरी आँखों से देखने लगी।

उन्हें देख पंडितजी को डर लगा कि कहीं यह पूजा में विघ्न न डाल दे। उन्होंने पूरी सावधानी से पद्मा को एक क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखा और वे फिर श्लोकों का पाठ करने लगे। उनकी क्रोधपूर्ण मुद्रा देख पद्मा सहम गयी और भीगी बिल्ली की तरह वहीं वापस लौट आयी जहाँ सामान रखा था। उसे कुछ भी कहने का साहस न हुआ। हताश हो वह गाड़ी को तथा चढ़ते-उतरते मुसाफिरों को शून्य दृष्टि से ताकती रही।

और इतने में गार्ड ने झण्डी हिलायी। गाड़ी ने सीटी दी और भक्-भक्-भक्-भक् करती हुई प्लेटफार्म से चल पड़ी। थोड़ी देर में आँखों से ओझल हो गयी। प्लेट-फार्म पर शान्ति छा गयी। चारों ओर सन्नाटा। सिवाय कुलियों या दो-चार सरकारी बाबुओं के वहाँ कोई न रह गया। पद्मा ने अनुभव किया कि जैसे उसे किसी ने एक निर्जन-स्थान में छोड़ दिया हो। वह चुपचाप बैठी शून्य में ताकती रही।

गाड़ी जाने के करीब आध घण्टे बाद पंडित उमाचरनजी आसन से उठे। पूजा-पाठ का सामान उठा पद्मा के पास आ गये। पद्मा का क्रोध इतना बढ़ गया था कि वह शायद अब आँसुओं में परिणत होने वाला था। जब स्त्री पूर्ण रूप से विवश हो जाती है और उसकी कोई नहीं सुनता तब वह प्रायः रोती ही देखी जाती है। यही हाल अब पद्मा का हो रहा था। पंडितजी समझ गये कि अब यह न बोलेगी। नाराज़ जो है। पंडितजी ने स्तब्धता भंग करते हुए कहा—"तो गाड़ी चली गयी! खैर कोई बात नहीं, दूसरी गाड़ी से चले चलेंगे। देखा नहीं कितनी भीड़ थी गाड़ी में। लोग एक के ऊपर एक चढ़े जा रहे थे। जो दूसरी गाड़ी आयेगी उसमें आराम से चले चलेंगे।"

"हाँ! आराम से चले चलेंगे! दूसरी गाड़ी तो एक-दम खाली ही चलेगी न। बहाने बनाना तो कोई आपसे सीखे। यह क्यों नहीं कहते कि पूजा-पाठ से फुरसत कहाँ? गर्मियों के दिन हैं। स्टेशन भी ऐसा जहाँ न उठने का हिसाब न बैठने का। खाने-पीने का भी कोई ठिकाना नहीं।" इतना कह पद्मा ने पंडितजी की ओर रुआँसी आँखों से देखा।

"अरे खाना! तुम्हारे भाई की शादी है। अब खाना ही खाना तो है वहाँ और यहाँ रो रही हो खाने को। यह भी खूब रही।" पंडितजी ने हँसते हुए जवाब दिया। उन्होंने फिर विनोद करने के लिए आगे छेड़ा—"तुम तो जा सकती थीं। क्यों न गयीं? मैंने तो यही समझा था कि आप तो शायद तशरीफ भी ले जा चुकी होंगी और मुझे बाद में आना पड़ेगा। पर देखा आप तो डटी हैं अभी तक।"

"चली जाती? जानते हो न—यह अकेली तो कभी चली, नहीं फिर आज अकेली कैसे चली जायेगी। मेरी बेबसी पर ही ऐसी बातें कर रहे हो, क्यों? क्यों कटे पर नमक छिड़क रहे हो? कोई दूसरी होती तो चली भी जाती; तभी ठीक रहते।" पद्मा इतना कह आँचल से आँखों में छलछलाते आँसू पोंछने लगी।

"क्यों बेकार रोती हो? यहाँ कोई देखेगा तो क्या कहेगा? यही न कि ये देखो लैला-मजनू का ड्रामा। फिर इसमें रोने की कौन सी बात है? दूसरी गाड़ी से ज़रूर चलेंगे।" पंडितजी ने स्नेह-भरी दृष्टि से देखते हुए जवाब दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्मा ने आगे प्रश्न किया—"तो टिकट रद्दी न हो जायँगे ?"

"टिकट रद्दी चौबीस घण्टे के बाद माने जाते हैं। यह सरकारी रूल है।"

इसके बाद कुछ खाना-पीना कर दोनों ने मुसाफिर-खाने में बिस्तर बिछाये और रात्रि को शादी के बारे में चर्चा करते-करते सो गये।

पर दूसरे दिन बड़े तड़के। अखबारवाला गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहा था—

"मानिकपुर से झाँसी जाती हुई गाड़ी की मालगाड़ी से भयानक टक्कर! पचीस यात्रियों की मौत। पचास घायल।"

"अखबारवाला! अखबारवाला!"

पद्मा की और पंडितजी की नींद इस अखबारवाले की चिल्लाहट से अचानक टूट गयी। पद्मा ने कुछ चौंक कर पूछा—"क्या गाड़ी लड़ गयी ?" अखबारवाले लड़के को उँगली के संकेत से बुलाकर प्रश्न किया।

लड़के ने अखबार पद्मा के हाथों में देते हुए कहा—"हाँ। भयानक टक्कर। लाइये पैसे।" पंडित उमाचरन ने पैसे लड़के की ओर फेंक दिये और दोनों जने अखबार पढ़ने में तल्लीन हो गये।

घटना का पूर्ण वर्णन पढ़ने के बाद पता लगा कि गाड़ी केवल लड़ ही नहीं गयी साथ ही कई डिब्बे भी पटरी से उतर गये हैं। करीब पचास घायल हुए और पचीस मरे। पद्मा तो मानों आसमान से गिर पड़ी। फिर अचानक उसके हृदय में प्रेम की एक ऐसी लहर उठी जिसमें उल्लास था—एक गहरी श्रद्धा और प्रेम का भाव भगवान् की ओर। हर्ष से आँखों में आँसू भरे हुए वह हाथ जोड़कर आप ही आप चिल्ला उठी—"धन्य हो दयामय! खूब बचाया! कहीं उसी गाड़ी से हम लोग चलते तो न जाने मरते या जिन्दा रहते। सचमुच इतने दयालु न हो तो कौन पूछे तुम्हें।" और वह इसी प्रकार कुछ क्षणों तक आर्थना में लीन रही।

इसी समय पंडित उमाचरन ने गर्व से ताना देते हुए कहा—"भगवान् अपने भक्तों को इसी तरह बचाता है। अब कहो ?" और तभी उन्होंने भगवद्गीता के अट्ठारहवें अध्याय का अट्ठावनवाँ श्लोक पढ़ा—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥

(इस प्रकार तू मेरे निरन्तर मनवाला हुआ, मेरी कृपा से जन्म, मृत्यु आदि सब सङ्कटों को अनायास ही तर जायगा और यदि अहंकार के कारण मेरे वचनों को नहीं सुनेगा तो नष्ट हो जायगा अर्थात् परमार्थ से भ्रष्ट हो जायगा।)

और पद्मा ने मुस्करा कर लज्जा से आँखें नीची कर लीं। तब से पद्मा भी पूजा-पाठ किये बगैर जल तक ग्रहण नहीं करती।

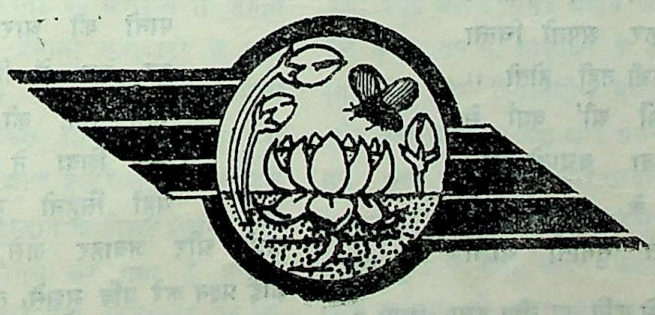

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन में सब कुछ माता है

श्री विवेक (मारिशस)

कोई प्रश्न करे यदि मुझसे, तुम को सबसे क्या माता है।
मेरा यह उत्तर सीधा सा, जीवन में सब कुछ माता है।।

फूट फूट कर रोने लगता,
याद मुझे जब आती है,
माता की वह प्यारी ममता,
विह्वल मुझे बनाती है।।
माता सन्तति हेतु बताओ,
क्या क्या नहीं लुटाती है?
उनके सुखमय जीवन को वह,
साधन सभी जुटाती है।।
माता ही तो प्यार प्यार में
सच्चा मार्ग दिखाती है।
जीवन में आगे बढ़ने की,
अच्छी सीख सिखाती है।।

माता ही से किसी देश का सच्चा भाग्य लिखा जाता है।

जब अबोध, नादान गोद में
माता की मैं आया था।
थपकी दे दे अमित प्यार की
जिसने मुझे सुलाया था।।
मेरे हँसने में जो हँसती,
रोने में थी जो रोती।
मुझे छोड़कर अपनी चिन्ता
जिसको कभी नहीं होती।।
सर्दी गर्मी औ' वर्षा से
मुझको सदा बचाती थी।
मेरे मन के बहलाने को
प्यारे गीत सुनाती थी।।

माता की लोरी के स्वर से कवि का गीत रचा जाता है।

मुझे सुलाती थी सूखे पर,
अपना गीले पर सोती।
मुझे उढ़ाये रखने को जो,
रहती थी जगती-सोती।।
ध्यान मग्न मेरी बातों में,
जो सब कुछ भूली रहती।
मेरे सुख सुविधा की खातिर,
कष्ट अनेकों थी सहती।।
मेरे मुख को चूम चूम कर,
जिसकी कली कली खिल जाती।
मेरी किलकारी में जिसको,
दुनिया की निधि थी मिल जाती।।

माता के आशीषों से ही, जग का वैभव मिल जाता है।

भारत जननी वीर-प्रसू है,
मिट्टी में वीरता छिपी है।
यदि अतीत की ओर निहारें,
गौरव गरिमा अमित छिपी है।
कण कण में इसकी वसुधा के,
वीरों की माँ की गोदी है।
यहाँ पार्थ ने एक तीर से
पानी की धारा ला दी है।।
दूर देश में निर्जन वन में,
जहाँ सिंह की एक गुहा है।
शूर शिवा ने घोर निशा में,
यहाँ सिंहनी दूध दुहा है।।

गांधी और जवाहर जैसे, मोती दे देती माता है।
कोई प्रश्न करे यदि मुझसे, तुमको सबसे क्या भाता है।
मेरा यह उत्तर सीधा सा, जीवन में सब कुछ माता है।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस अमराई ने राम राम कही है

डा० विद्यानिवास मिश्र

भोपाल में 'एकत्र' की गोष्ठी थी। बाहर रिमझिम बारिश हो रही थी और हाल में 'हमारा समय' विषय पर तीन तिलंगों का प्रवचन सुनने पचासेक समझदार लोग एकत्र थे। सबसे पहले बोले एक नाट्य निर्देशक एकालाप की शैली में अटक-अटककर, शब्द टटोल-टटोलकर, अपनी बात को दिली अपनाव में पिरोते हुए। उनके बाद बोलने उठे नपे-तुले शब्दों वाले अतिशय सावधानी बरतनेवाले एक आलोचक और उन्होंने प्रश्न उछाला—देखें अब नकली क्रान्ति की कविता करने वाले समकालीनता के बाधा लोग क्या करते हैं। चुप रह जाते हैं या फिर फूलों-पत्तियों पर, चिरई-चुरुंग पर कविता लिखना शुरू करते हैं और उन्होंने फ़तवा दिया—वर्त्तमान की बात हिन्दी में विगत पन्द्रह वर्षों में की ही नहीं गयी, अब वक्त आया है वर्त्तमान को सोचने-समझने का। मेरी ओर इशारा करके उन्होंने पेशबन्दी की—अभी मेरे बाद मेरे मित्र अतीत की बात करेंगे, पर मैं तो वर्तमान में कहना चाहता हूँ। उसके बाद मैं भी बोला और गहमागहमी में गोष्ठी समाप्त हुई।

पर मन में सालता रहा कि मेरे वर्त्तमानजीवी मित्र मुझे अतीतजीवी घोषित करते हैं और मैं कोई सफाई दूँ भी तो उसका कोई अर्थ नहीं, क्योंकि वर्त्तमान पर मौजूदा समय में काबिज तो वे ही हैं, मेरा तो कब्जा न अतीत पर है न वर्त्तमान पर। यहाँ तक कि कभी-कभी लगता है कि भविष्य के सपनों पर भी अपना कोई हक़ नहीं रहा। उन सपनों की चप्पा-चप्पा ज़मीन छोटे-छोटे प्लाटों में बँटकर बेनामी खरीदारों के नाम नीलाम हो चुकी है। कभी मेरे मित्र 'फागुनी शाम की अंगूरी उजास' से आलोकित और 'जंगली गन्ध में डूबी बतास' से पुलकित थे। आज वे पूरे शहरी बन चुके हैं। गाँव और खास करके हिन्दुस्तान के पिछड़े इलाके, पूर्वी अंचलों के गाँव का लगाव उनसे छूट गया है, उनका वर्त्तमान सुरक्षित हो गया है। पर मेरी विडम्बना यह कि शहरों में रहते और घूमते बरसों बीत गये, उनकी जागरूकता लेकर तो नहीं, पर कमोबेश मैंने भी दूर-दिगन्त नापे, कई रंगतें देखीं, कई आवाज़ें सुनीं, पर वर्त्तमान में तिरकर भी वर्त्तमान को अपनी जीविका नहीं बना सका। मुझे बराबर यही लगा कि वर्त्तमान को चबाने चलो, यह अतीत हो जाता है। इसको एक घूँट में पीने चलो, यह धुत्त नशा बन जाता है। इसे मुट्ठी में बन्द करने चलो, यह रेत की तरह सुर् सुर् बाहर निकल जाता है। वर्त्तमान में जो लोग ठहर गये हैं, उन्हें ही वर्त्तमान में निरन्तर (हाथ-पैर मारते हुए ही सही) तैरनेवाले अतीत की ओर जाते दिखते हैं, क्योंकि वे लोग वर्त्तमान को एक आईना बना कर खड़े हो गये हैं। उस आईने में समय का बोध विपरीत हो गया है। वहाँ अपनी जगह पर ठहरे रहने के लिए आदमी को दौड़ लगानी पड़ती है और सामनेवाले आदमी के पास पहुँचने के लिए पीछे की ओर मुड़कर चलना होता है। अपने वर्त्तमान को अतीत बनाने की निर्ममता मैं नहीं सीख पाया, मेरी यही कमज़ोरी है। मैं ठेठ गाँव का आदमी हूँ, इसको ज़बरन झुठलाने की कोशिश नहीं करता, यही मेरी अतीतजीविता है।

जानता हूँ एक ऐसे देश का निवासी हूँ, जो इतिहास की परवाह नहीं करता। कोई इतिहास रचकर अपनी सन्तान को उससे बाँधना नहीं चाहता, पर वह सृष्टि की पूरी यात्रा अपने जीवन में जीता है। प्रतिदिन वह अगर इतिहासपरस्ती का शिकार नहीं हुआ है तो परम्परा में रहते हुए एक मन्त्र दुहराता है। वह मन्त्र सृष्टि का क्रम दुहराता है—तप से ऋत और सत्य पैदा हुए। उससे उद्भूत हुआ समुद्र अर्णव, समुद्र अर्णव से उद्भूत हुआ संवत्सर। इस प्रकार तप से, आकांक्षा के उत्ताप से, ऋत और सत्य (गतिशील और स्थितिशील धर्म) प्रवर्त्तित हुए और ऋत और सत्य से अनन्त देश और अनन्त काल के आयाम स्फुट हुए। इनसे सावधि देश और सावधि काल जनमे। मन्त्र की धारणा है कि आज मैं अपने को सृष्टि की इस यात्रा से फिर जोड़ता हूँ। मैं नया सर्जन करता हूँ, अतीत को जीता नहीं, वर्त्तमान को बड़ा बनाता हूँ। मेरे लिए न अतीत पलायन है, न गाँव पलायन है। वैदिक विज्ञान के गर्व से आस्फालित लोग मुझे पश्चिमी शिक्षा के निरीह शिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगते हैं। वेदों में अमुक-अमुक सभ्यता की न्यामतें थीं और हमारी विमानविद्या आज से भी ज्यादा विकसित थी। इस प्रकार की बातें सुनता हूँ तो मुझे बड़ी हँसी आती है कि ये लोग पश्चिम की चमत्कारी उपलब्धि को नकारने की कैसी बचकानी कोशिश कर रहे हैं और किस तरह ये पश्चिम के जाल में अपने आप फँसते चले जा रहे हैं। उसी तरह आज गाँव की अमराई के आमन्त्रण की बात भी बड़ी अवास्तविक लगती है। गाँव को शहर ने अपने अष्टपदी लपेटों में जकड़ लिया है। गाँव बड़ी तेज़ी से न गाँव न शहर की शून्य स्थिति में पहुँच रहा है। उस गाँव के आमन्त्रण का क्या अर्थ ? रात घिरने के पहले चकई ने बुलाया होता तो कोई बात भी थी। रात घिर आयी है। अब उस आमन्त्रण का क्या अर्थ ? जाऊँ भी तो बीच में साथ-साथ टूँगी गयी कमल की नाल ही व्यवधान बन कर और अधिक सालेगी। रवि ठाकुर और महात्मा गांधी के सपने बिखर चुके हैं।

हाँ, मेरे लिए हिन्दुस्तान एक अछोर विस्तार है, एक अखण्ड संवत्सर है, एक निरन्तर चलने वाला सर्वमेध है, जिसमें होता हवि और हवि को ग्रहण करने वाले परस्पर भूमिका बदलते रहते हैं। निरपेक्ष रूप में न कोई होता है, न हवि है, न हवि का भोक्ता। इसलिए गाँव में रहूँ चाहे न रहूँ, गाँव मुझमें बराबर रहता है। भिखारीदास का वह छन्द जिसमें नायिका अपनी सहेली के जरिये वसन्त में प्रिय के पास यह सन्देश भेजती है कि वसन्त आ गया, तो भी वे जो नहीं आये तो अब फिर आने में क्या तुक है।

बस

एक काम करिबो सखि आम मौर देबो यह
और कहिबो वा अमराई ने राम राम कही है।

"एक काम करो सखी, यह आम का बौर देना और कहना, उस अमराई ने प्रिय, तुमसे अपनी राम राम कही है।" आज गाँव के लिए कोई मोह-छोह नहीं पैदा करता, कोई विरह के तार भी नहीं छेड़ता, क्योंकि अमराई मेरे ऊपर आज भी छायी हुई है। भले ही वह अब बौरा न पाती हो। कभी-कभी किसी महानगर में जाता हूँ, पाँच-छः दिनों के भीतर ऐसा लगता है कैसे भयावने जंगल में आ गया हूँ, जहाँ पेड़-पौधों झाड़-झंखाड़ की व्यवस्थित हरियाली भी कंक्रीट के विद्युन्माली दैत्य प्रासादों के बीच में क़ैद नज़र आती है, जहाँ पाँच मिनट की औपचारिक भेंट के लिए घंटों धूलि-धक्का खाना पड़ता है और वह भेंट भी ऐसी औपचारिकता या ऐसी घटिया किस्म की चबावरस में सनी आत्मीयता में पर्यवसित होती है कि यही होता है, व्यर्थ आये और जहाँ एक आदमी की ऊब से त्राण पाने के लिए आदमी को इसके सिवाय कोई दूसरा चारा नहीं कि दूसरे आदमी से ऊबने के लिए तैयार हो जाय। इसीलिए ऐसे ऊबजीवी लोगों की ऊब बनने में बड़ा डर लगता है। कई बार सोचता हूँ कि अब फिर इस महानगर में नहीं आऊँगा और दो-तीन महीनों के भीतर फिर आना पड़ता है, जब कि गाँव जाने के कार्यक्रम सालों से बन रहे हैं और पूरे नहीं हो पा रहे हैं। शहरी जीवन में रहने की लाचारी ही गाँव की अमराई को मन में बसाये हुए है।

गाँव में अमराई कट रही है, भूमि सुधार से सम्बन्धित जितने कानून बने, उन सबकी कुल्हाड़ी सबसे पहले अमराई पर ही चली। जमींदारी-उन्मूलन हुआ तो अमराई कटी क्योंकि वे जमींदारों के हाथ से निकले जा रहे थे, इसलिए पेड़ों से जो कुछ मिल जाय, ले लिया जाय। चकबन्दी हुई तो अमराई कटी कि कहीं यह दूसरे के चक में न पड़ जाय और जोत की हदबन्दी हुई तो अमराई कटी कि जमीन तो निकली ही जा रही है, इसके पेड़ों से ही कुछ रुपये ले लिये जायँ। गर्ज कि कानून को हरियाली से वैर है, इसलिए गाँव की अमराई कट रही है, और उसके साथ-साथ उस अमराई की छाया में बितायी गयी सुख-घड़ियों के अपूर्व और अद्वितीय क्षण कट रहे हैं। पर मन की अमराई अभी बनी हुई है, क्योंकि वह अमराई शहरी ज़िन्दगी की दुर्निवार आवश्यकता है। शहरी ज़िन्दगी जो ऊब नहीं बन पाती, जड़ से उखाड़ नहीं पाती, भीतर से तोड़ नहीं पाती, हया की मार से मार नहीं पाती, वह इसीलिए कि अमराई मन के ऊपर छायी हुई है। अमराई से जुड़ने का अर्थ होता है, वसन्त से जुड़ना, वसन्त की तैयारी से जुड़ना, जीवन के नवीकरण की प्रक्रिया से जुड़ना, शक्ति के सघन श्यामल प्रसार से जुड़ना, दूर्वादल श्यामा संगीत मातृका महामातंगी से जुड़ना, पर्णपातन, पल्लवन, कुसुमन और फलन की समग्रता से जुड़ना, प्रकृति के एकतालबद्ध समाज की समस्वरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से जुड़ना, मनुष्य के एकान्त निश्वास से जुड़ना और धरती की उमंग और आकाश के स्वस्तिवाचन से जुड़ना।

मेरे लिए अमराई स्मृति नहीं है, साक्षात्कार है जीवन की वास्तविक सार्थकता का। यन्त्रचालित संसार में चल-फिर रहा हूँ, भूख और नींद तक सूरज के ऊपर आने या ढलने से नियन्त्रित न होकर घड़ी से नियन्त्रित हो गयी है, तो भी स्वयं यन्त्रबद्ध नहीं हो पाया। इसका एकमात्र कारण मन पर छाया हुआ अमराई का साक्षात्कार है। मेरे लिए अमराई किसी दूर अतीत की चोरी-छिपे की गयी प्रणयलीला की स्थली नहीं थी। इसलिए उस रूप में आज न रहकर वह 'काँकरी' चुनने की जगह भी नहीं है। वह न किशोर चित्त का पनाहगाह थी, न प्रौढ़ चित्त का अब आरामगाह है। वह मेरे लिए पहले भी जीवन के स्वीकार की वृत्ति थी, आज भी है। आम पकने पर आता था तो बच्चे ढेला चलाते थे। कुछ पके आम गिरते। ढेर सारे कच्चे आम गिरते। बूढ़े चोरी-चोरी रात में टपका हुआ आम बीनने आते और पकड़े जाने पर दयनीय लालसा की मूर्त्ति बन जाते। चुलबुली किशोरियाँ नखरे के साथ ढेरी में से आम निकाल कर अपने स्निग्ध कटाक्ष-निक्षेप से अधिकार जतलातीं कि अभी इतना ही, बाद में फिर आऊँगी। गाँव के निखट्टू घंटों तक दरबार लगाते और तब दाँत निपोरते, चार-पाँच आम पा जाते, इतने में ही निहाल हो जाते। गाँव की अखाड़ेबाज सोनारिन एक से एक लहरदार गीतों से अमराई की कोयलों को चुप कर देती और आँचल पसार कर मनचाहे आम ले जाती। उसके कंठ की मिठास के आगे आम अपने आप न्यौछावर हो जाते। ऐसे भी कभी-कभार मौके आते कि गिरोह बाँध कर रात में आम लूटने लोग आते और रखवाले प्रतिरोध करने पर लहूलुहान हो जाते। आम के पीछे फौजदारी का लम्बा सिलसिला चलता और अमराई कलंक बन जाती। पर अमराई को आदमी का रागद्वेष सब स्वीकार था। आम फलेंगे तो उसके साझी-दार आयेंगे ही। साझेदारी भी कई प्रकार की होगी। सुग्गे की एक साझेदारी होगी कि कुतर कर छोड़ देगा। वह आम और मीठा हो जायेगा। कौए की एक दूसरी साझेदारी होगी, ठोर लगा देगा, आम सड़ जायेगा। बन्दर की एक तीसरी साझेदारी होगी जो आम खायेगा भी डाल से तोड़-तोड़कर नीचे भी फेंकेगा और कोयल की एक चौथी साझेदारी होगी जो केवल बौर चखेगी। आम पकने पर बस मंजरीतृप्त कंठ से कूकती रहेगी। इन सभी साझेदारियों को स्वीकार करके ही अमराई को अपनाया जा सकता है। अमराई हिन्दुस्तान के मुक्तमना आकाश का वितान है। वह नानाधर्मी, नानाभाषी, नानावर्णी सन्तानों को शरण देनेवाली हिन्दुस्तानी जमीन का भीगा उच्छ्वास है। वह अमराई आज भी जीवन का आश्वासन है। यह दूसरी बात है कि आज वसन्त से पतझर का और वर्षा से आतप का अनुपात काफी बढ़ गया है। फल हर साल नहीं आते। अमराई की सघनता कुछ बाढ़ ने, कुछ सूखे ने, कुछ सर्वग्रासी आदमी की पैसों की भूख ने छाँट दी है। डालें भी छिनगा दी गयी हैं। अब लू चलती है तो अमराई के किनारे से नहीं निकलती, अम-राई के बीच से निकलती है। अमराई काफी उघार हो गयी है। जिन्दगी भी अमराई की तरह ही भीषण उत्ताप से और उद्दाम उपलवृष्टि से छीज गयी है। तब भी उसमें बौर न सही, फल न सही, किसलय न सही, अधसूखी डालें और कुछ इने-गिने पल्लव तो बच ही रहे हैं, जिनसे और कुछ हो न हो, मंगलघट तो ढँका ही जा सकता है, बन्दनवार तो तन ही सकती है। मैं चुहलबाजी के, प्यार के, ईर्ष्या के, द्वेष के केन्द्र में आज न भी होऊँ, आज भी अगर किसी साधारण आदमी के छोटे से समारोह को अपनी हरियाली दे सकता हूँ तो जीवन से अविच्छिन्न तो हूँ ही। मैं अनुभव तो कर सकता हूँ कि तपिश में झुलस रहा हूँ और यह तपिश मेरी अकेली नहीं, उनकी भी है जो झुलसने की संवेदना खो चुके हैं। मैं सुबह की ओस में भींगते समय यह पहचानता तो हूँ कि दर्द की सिहरन मेरी अकेली हो, पर दर्द मेरा अकेला नहीं है, उनका भी है, जो सिहरन अनुभव नहीं करते। मैं एकदम कगार पर आ गया हूँ, जड़ें बाहर झाँकने लगी हैं, नीचे जामुनी जल लहरा रहा है, उस जल में बड़ी अपरूप छाया पड़ रही है। इसके बावजूद मैं अपने अकेले तनाव में भी अपनी अमराई से कट नहीं पाया। इतना कुछ कम नहीं है।

अमराई मेरा संकटबोध और तीव्र करती है। मेरे आतंक को और सघन बनाती है और मेरे निरन्तर रीतते जाने की प्रक्रिया को तेज़ी देती है। मुझे जब लगता है कि अब आगे राह खो गयी है तब अमराई याद दिलाती है कि सबकी राहें खो गयी हैं हर रास्ते को अन्धकार लील चुका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मैं जब आत्मीयता का प्रयोग एक मुखौटे के रूप में देखता हूँ तब अमराई स्वयं एक बहुत बड़ा मुखौटा बन जाती है, और तब लगता है आत्मीयता की तलाश ही बेमानी है। इस बेमानी तलाश का रोना कविता में रोना भी एक फ़रेब है। शहर मुझे कोई भी अजनबी नहीं लगता पर शहरियत बड़ी वैसी लगती है। शहरियत का नकाब जैसे सूचना देता हो कि ज़हरीली गैस चारों ओर फैल रही है उससे बचो। किसी भी बात पर दिलजमई नहीं होती। न पृथ्वी के वातावरण के प्रदूषण से उपस्थित होनेवाले प्रलय की चेतावनी पर, न मनुष्य के तकनीकी कौशल की अपार क्षमता में विश्वास करनेवाले वैज्ञानिकों के स्वर्णिम भविष्य के सपनों पर। पर अमराई है कि संशय, आतंक और अविश्वास को आस्फालित करके भी एक ऐसी आकुलता पैदा करती है कि फिर कोई अपना बने न बने, पराया नहीं रह पाता। इसी कारण भक्ति का आस्वाद मुझे अनन्य तन्मयता में नहीं मिलता। मैं भक्ति में विभोर हो जानेवाले लोगों से स्पृहा करता हूँ। पर यदि कभी भक्ति मुझे छूती है तो अपनी दुरन्त बेचैनी के स्वरूप में। जब आदमी सोचता है—**'माधव हम परिनाम निरासा'**। तुम मिलोगे भी तो भी मेरे पास एक पल भी कहाँ ठहरोगे और ठहरे भी कुछेक क्षण तो बिछुड़ना तो है ही और वह बिछोह और दुस्सह होगा। तुमसे प्रेम करने का अन्तिम परिणाम दुरन्त विरह है—विरह केवल तुमसे ही नहीं, अपने से भी, सब कुछ से भी, जिससे जुड़ने का लगाव रहा हो। भक्ति के इस एक अंश का भी स्पर्श जो चेतना को कभी-कभी झनझना देता है, उसके पीछे वसन्त की उत्कण्ठा में अमराई का बौराना हो या वसन्त के आगमन के बाद भी चैता के स्वर में आधी रात कोयल का कुहकना हो, पर जो कुछ हो, वह अमराई का है, मेरा नहीं।

मुझे पूजापाठ का आडम्बर देखकर कभी-कभी बड़ा संशय होता है कि इस पूजापाठ के बाद भी क्यों कठोरता नहीं जाती, कृपणता नहीं जाती, पर जब कभी साल में एक बार विश्वनाथ की आरती में पहुँच जाता हूँ तब प्रकाश के छन्दोबद्ध नर्त्तन और वाद्यवृन्द के रभस ताल के उत्कर्ष पर पहुँची हुई बाह्यपूजा भीतर के मन को समस्त ऐन्द्रिय परिवेश से खींचकर ज्योतिरूप नाद और नाद रूप ज्योति में अधिष्ठित करती लगती है। उस समय भीड़ का अनुभव लुप्त हो जाता है, समस्त जगत प्रकाश का वलय बन जाता है, नाद की शिखर शृङ्खला बन जाता है और बाह्य पूजा का आडम्बर भी मन पर छा जाता है। मेरे मन में कोई कामना नहीं जगती, कोई बेसुधी का भाव नहीं उमड़ता, ईश्वर का स्वरूप नहीं उभरता, पर कुछ देर के लिए मन आरती के छन्द में बँध जाता है। मुझे लगता है कि इतना भी अनुभव मेरे जैसे आधे आस्तिक आदमी को होता है, उसका कारण भी अमराई की समष्टि चेतना का संस्कार है।

आये दिन ऐसा होता है कि सुबह से आधी रात तक यह पता ही नहीं चलता कि यह शरीर अपना है, यह मन अपना है, यह घर अपना है। घर लगता है रेलवे प्लेटफार्म है, शरीर लगता है हैंडिल से चलने वाला पम्प है, मन लगता है हजार लोगों के हाथ बन्धक रखा हुआ पुराना मकान है जिसके दावेदारों के बीच निरन्तर प्रतिस्पर्धा मची रहती है। रात सोने जाता हूँ या ठीक ठीक कहूँ, चारपाई पर भहराने जाता हूँ तो पैरों में, कमर में और सिर में दर्द सूचना देता है कि यह शरीर अपना है, तथाकथित लोकसंग्रह का अहंकार गलने लगता है और पूरे दिन के कार्यकलाप की व्यर्थता मन में चुभने लगती है। तब मन के असली मालिक की सुधि आती है। नींद तो जरूर उड़ जाती है और भूतों के सपने जैसे दिन का खुमार उतरते ही रात कुहनी की चोट की तरह उजागर हो जाती है, पर ऐसी अवस्था में भी जो यह उत्कंठा जगती है कि अपने स्व को असली दावेदार को सौंपना कब हो पायेगा, कब ठीक तरह से शरीर दूसरों के उपयोग में इस प्रकार आयेगा कि ये दूसरे अपने हो जायें, कब यह दुविधा मिटेगी कि सम्पत्ति कमानेवाले की है कि उपभोग करनेवाले की और कब मन के मीत फुरसत में मिलेंगे। इस उत्कंठा के द्वारा जो जिजीविषा नये सिरे से पैदा होती है, उसका भी कारण अमराई वाला मेरा गँवारपना है, जो पर्युत्सुकता जिलाये रखती है।

बहुत दिनों के बाद इस साल छः-सात दिनों के लिए बारात करने गाँव गया। काफी कस के गर्मी पड़ रही थी। दिन में पाकड़ के पेड़ के नीचे चारपाई बिछाई जाती तो ऊपर से गोदे गिरते, छोटे-छोटे भुनगे गिरते। दुपहरी बिताना कठिन हो जाता, पर उसी दुपहरी में गाँजे की दम पर दम ली जाती और पूरे वातावरण पर गाँजे का धुआँ छा जाता। गाँजे की दम के बाद अमृतस्वर में हारमोनियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भजन, कजली, लावनी, कव्वाली सबका समाहार संगीत छिड़ता और लोग झूम-झूम उठते। अकेले मुझे ऐसा लगता कि मैं यहाँ बिल्कुल अजनबी हूँ। गँवार मन, गँवार भाषा, गँवार वेशभूषा लेकर भी मैं गाँव की इस गहमागहमी में घुलमिल नहीं पाया। शायद इसलिए कि गाँव शहर बनने की आकुलता में अपना गाँवपन छोड़ रहा है। गाँवपन छूट नहीं रहा है, यह अलग बात है। या शायद इसलिए कि शहर में रहनेवाले बाराती स्वाद बदलने के ख्याल से गाँव में आये हों। ये दोनों चीजें मुझे प्रिय न लगीं। पर उस पूरी बारात की अवधि में एक साधारण सी पैर धोनेवाली कहारिन में मुझे अमराई की आत्मीयता मिली। पता लगा कि उसके जवान लड़के जाते रहे, पर उसके चेहरे पर शोक की छाया नहीं है। आवाज़ में करुण मिठास ज़रूर है, पर जिस आजिज़ी से वह हर पाहुन के पैर धोती, भोजन के लिए आग्रहपूर्वक बुलाने आती, उससे लगता कि उसका हताश वात्सल्य अखण्ड सेवाव्रत में परिणत होकर महनीय बन गया है। यह भी पता चला कि दिन-रात बारात में खटती रहेगी। बारात विदा होगी कि यह कई दिन विह्वल रहेगी। अब दूसरी बारात कब आयेगी, कब इधर इतने सारे पाहुन आयेंगे।

जानता हूँ, मेरे प्रगतिशील आलोचक मित्र इसे सामन्तवादी कुसंस्कार कहेंगे, पर दूसरों की खुशी में अपना ग़म डुबा देने की ऐसी साधना को गहरी मानवता का संस्कार मानने के लिए मैं लाचार हूँ। मेरे लिए गाँव मधुबनी चित्रों की फैक्टरी नहीं है, न पिकनिक की जगह, न आधुनिक नागर सभ्यता की देह पर रिसता हुआ घाव, न तेज़ बदलाव की भँवर में पड़ी हुई अधनंगी जंगली तरुणी की देह। मेरे लिए गाँव एक विश्व है, अपने सम्पूर्ण स्व की पहचान का एक निःश्वासान्ध दर्पण है। इसी गाँवबोध के कारण मैं विच्छिन्न क्षणमात्रावच्छिन्न वर्त्तमान में विश्वास नहीं करता, मैं सनातन वर्त्तमान में विश्वास करता हूँ। अपने चित्त की विभक्तता में, मन की टूटन में और ऐन्द्रिय आकुलता में भी अखण्डता की बात यदि सोच पाता हूँ, तो इतना तो लगता ही है कि हिन्दुस्तान एक अमराई है। मैं उसका पुंस्कोकिल न सही, दशहरे के विजयपर्व का नीलकंठ न सही, असीम आकाश के लिए छोटी सी धरती की बेचैनी मुखरित करनेवाला चातक तो हो सकता हूँ और अपनी प्यास नहीं सबकी प्यास बुझाने के लिए बादल को टेर सकता हूँ—'पी कहाँ', 'पी कहाँ'। मैं उस अमराई का सन्देश तो अपने आलोचक मित्र जैसे कठकरेजी, पर अपने को सर्वहारा और जनवादी माननेवाले सपूतों के पास पहुँचा सकता हूँ कि 'उस अमराई ने राम राम कही है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

(१)

बात १९५० के लगभग की है। मुझे वर्ष याद नहीं। कान्यकुब्ज कालिज, लखनऊ में एक कवि सम्मेलन हुआ। मैं उसकी अध्यक्षता कर रहा था। उस कवि सम्मेलन में उस समय के चोटी के कवि पधारे थे। श्री रामचन्द्र द्विवेदी 'प्रदीप' भी उनमें थे, और शायद वह उनका अन्तिम कवि सम्मेलन था क्योंकि उसके बाद वे बम्बई चले गये और उन्होंने दूसरे क्षेत्र में प्रवेश कर अपनी प्रतिभा से बड़ी सफलता प्राप्त की। श्रोताओं में अनेक गण्यमान्य सज्जन भी थे जिनमें सबसे उल्लेखनीय स्व० डाक्टर सम्पूर्णानन्दजी थे जो हृदय से बड़े सरस थे, किन्तु ऊपर से बड़े गम्भीर रहते थे। स्व० श्री कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच' भी उसमें आये थे और वे हास्य और व्यंग्य की कविताएँ सुनाकर श्रोताओं का बड़ा सात्विक मनोरंजन करते थे। व्यंग्य करते समय वे किसीको नहीं बख़शते थे। उस समय वे हरिश्चन्द्र इंटर कालिज, काशी में अध्यापक थे। उस दिन भी उन्होंने अपनी कविता में बड़े मनोरंजक और चुभनेवाले व्यंग्य बाण छोड़े। मैंने सोचा कि उन पर भी कुछ व्यंग्य होना चाहिए। इधर-उधर नजर दौड़ायी तो मुझे श्री शारदाप्रसाद वर्मा 'भुशुंडि' दिखलायी पड़े। मैंने इशारे से उन्हें बुलाया और पूछा--"चोंच पर कुछ दोहे लिख सकते हो?" उन्होंने कहा—"प्रयत्न करूँगा।" यह कहकर वे बाहर चले गये। कुछ देर बाद मैंने देखा कि लौट आये हैं और उन्होंने इशारे से कहा कि दोहे लिख लिये हैं। थोड़ी देर बाद मैंने उन्हें कविता पढ़ने के लिए बुलाया। उन दिनों कवि सम्मेलन का अध्यक्ष आजकल की तरह गुड्डा बनाकर नहीं बैठा दिया जाता था। वही कवि सम्मेलन का संचालन करता था। भुशुंडिजी ने अपने ताज़े-टटके दोहे सुनाना आरम्भ किया। वे ये थे :

एक समय विधि पर हुई मिसेज ब्रह्म नाराज
डर कर तब रोने लगे श्री ब्रह्मा महराज ।।१।।

गिरे अश्रु दो नेत्र से उनके बन कर अर्क,
एक प्रगतिवादी बना, और दूसरा क्लर्क ।।२।।

जो कुछ थोड़ा उस समय था पलकों में शेष
उसका सत टीचर बना लिये फटीचर वेश ।।३।।

अब तो बच्चों का सबक ऐसा हुआ महान्
ज्यों चूहे की पीठ पर हैं गणेश भगवान् ।।४।।

जिसे देख कर गार्जियन बा देते हैं खीस
होटल के बिल सी हुई अब पढ़ने की फीस ।।५।।

लड़के तो इस्कूल में छीला करते घास
उनको ट्यूटर चाहिए घर पर बारह मास ।।६।।

पढ़ने को तो पढ़ गये किन्तु न इतना ज्ञान
किधर भैंस की पूँछ है, किधर गधी के कान ।।७।।

भाई ! व्यर्थ न कीजिए अपने मन में सोच,
लड़के कैसे विज्ञ हों जब टीचर हो चोंच ।।८।।

उन दिनों पुराने कवि प्रगतिशीलों पर भी चोट किया करते थे। शिक्षामंत्री होने के कारण पहले तो डा० सम्पूर्णानन्दजी बड़ी गम्भीरता से इन दोहों को सुनते रहे, पर चौथे और आठवें दोहों पर वे भी अपनी हँसी न रोक सके। कविता श्रोताओं को बहुत पसंद आयी। कवि सम्मेलन समाप्त होने पर श्री चोंचजी ने भी भुशुंडिजी को इन दोहों के लिए बधाई दी। उन दिनों इस प्रकार की साहित्यिक चोटें आपस में बहुधा हुआ करती थीं, किन्तु कवियों में इतनी सद्भावना और उदारता थी कि वे अपने ऊपर भी की गयी साहित्यिक चोटों की प्रशंसा करते थे, यहाँ तक कि हितैषीजी ऐसे उग्र स्वभाव के कवि में भी मैंने यह गुण प्रचुर मात्रा में पाया।

(२)

भरतपुर के प्रसिद्ध विद्वान् श्री चतुर्भुजदास रावत ने महाकवि बिहारी के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की है जिससे उनके पिता 'केशव केशवराय' कौन थे, इस प्रश्न पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। उनके भानजे कुलपति मिश्र भी हिन्दी के कवि थे। वे गोविन्दपुरा (अलवर) के निवासी थे। उन्होंने 'संग्रामसार' नामक एक ग्रन्थ भी लिखा है जिसमें वे लिखते हैं :

कविवर मातामह सुमिरि केशव केशवराय।
कही कथा भारत्थ की भाषा छन्द बनाय ।।

इससे स्पष्ट है कि बिहारीलाल के पिता (अर्थात् कुलपति के नाना) का नाम केशव केशवराय था। ये भी अच्छे कवि थे। इनके फुटकर छन्द मिलते हैं। एक नमूना देखिए :

लागी चटपटी अटपटी सब बातें कहै
लटपटी भई जाति, प्रान गये पिय में।
केसौ केसौराय कहूँ बारक बिलोक आयी
तब ही तें देखिए न हियौ रह्यौ हिय में।
आन कहै, आन करैं, आन हाथ-पाँव भई
अनँग के अनष न सुधि रही तिय में।
सीरौ जानि तातौ करै, तातौ जानि सीरौ करै
दूध न जमायौ जाय, नेह जाम्यौ जिय में ।।

बिहारी के जीवन चरित्र में रुचि लेनेवालों को रावतजी ऐसे विद्वान् की इस खोज से उनके वंश को निर्धारित करने में सहायता मिलेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

भारत १९७५—वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ— प्रकाशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली। रायल आकार, पृष्ठ संख्या ४५५। कपड़े की जिल्द। अनेक नकशे और सारणियाँ। मूल्य, नौ रुपये।

सामान्यतः सरकार की रिपोर्टें और संदर्भ ग्रन्थ देर से निकलते हैं। प्रकाशन विभाग को इस बात के लिए बधाई है कि उसने १९७५ का वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ १९७५ के मध्य ही में निकाल दिया। यह ग्रन्थ भारत की राजनीतिक, आर्थिक, औद्योगिक, सांस्कृतिक आदि सभी विषयों की अद्यतन जानकारी देता है। यह पत्रकारों, विद्यार्थियों, सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ताओं और देश के सम्बन्ध में उसकी प्रगति और वर्तमान स्थिति में रुचि लेनेवालों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यह भारत की स्थिति और उन्नति जानने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संदर्भ ग्रन्थ है। विषयों का क्रम बड़े अच्छे ढंग से दिया गया है जिससे किसी भी विषय की जानकारी खोजने में बड़ी सुविधा होती है। इसकी सारिणियाँ बड़े परिश्रम से तैयार की गयी हैं और प्रामाणिक हैं। ऐसे सुन्दर, अच्छे छपे हुए और परम उपयोगी ग्रन्थ को इतनी शीघ्रता से निकालने के लिए प्रकाशन विभाग हमारे धन्यवाद का पात्र है।

भारतीय भाषाओं का संक्षिप्त इतिहास—सम्पादक, डा० गोपाल शर्मा, श्रीमती तारा तिक्कू और श्री जगदीश-प्रसाद चतुर्वेदी। प्रकाशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, वेस्ट ब्लाक ७, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या ४०८। डिमाई आकार। छपाई सन्तोषजनक। मूल्य, २३ रु०।

इस ग्रन्थ में भारत की १५ भाषाओं और उनके साहित्य के इतिहास प्रत्येक भाषा के एक प्रतिष्ठित विद्वान् से लिखवाकर एक साथ प्रकाशित किये गये हैं जिससे पाठकों और अध्येताओं को एक ही पुस्तक में इन भारतीय भाषाओं के साहित्य का प्रामाणिक और ज्ञानवर्द्धक विवरण उपलब्ध हो गया है। जिन भाषाओं के इतिहास दिये गये हैं वे ये हैं : असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तमिल, तेलुगू, पंजाबी, बँगला, मराठी, मलयालम, संस्कृत, सिंधी और हिन्दी। प्रत्येक का आकार ऐसा है कि पाठक उसे आसानी से पढ़ सकता है और उससे उसे उस भाषा और उसके साहित्य का इतिहास और उसकी वर्तमान स्थिति का साधारण ज्ञान बिना अधिक प्रयास के प्राप्त हो सकता है। लेखक सावधानी से चुने गये हैं और उन्होंने जो शैली अपनायी है वह मनोरंजक होने के साथ महत्त्वपूर्ण बातों का सम्यक् ज्ञान करा देती है। हमने इसके कई निबन्ध पढ़े और वे हमें बड़े मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक मालूम हुए। हिन्दी का अध्याय औरों से कुछ भिन्न है और वह इतना गठा हुआ नहीं है जितने अन्य अधिकांश अध्याय हैं। फिर भी उसमें आवश्यक सामग्री मिल जाती है। वास्तव में इस ग्रन्थ पर 'गागर में सागर' वाली उक्ति चरितार्थ होती है। सामान्य हिन्दी पाठक भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य के सम्बन्ध में इतना अनभिज्ञ है कि यह ग्रन्थ उसके ज्ञानवर्द्धन के लिए वरदान सिद्ध होगा। साथ ही यह पाठकों को उनके इतिहास के अतिरिक्त उनकी आधुनिक प्रगति, धाराओं और स्थिति की भी जानकारी देगा। भारत की भाषाओं की आधुनिक विचारधाराओं में कितना साम्य है तथा उनके प्रेरणा-स्रोतों में कितना सामंजस्य है, यह इसके पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है। यह पुस्तक लोगों को भारतीय भाषाओं की जानकारी देकर स्पष्ट कर देगी कि सारे देश की साहित्यिक विचारधारा और साहित्य एक ही दिशा में उन्मुख हो रहे हैं और देश की सभी भाषाओं के साहित्यकारों का लक्ष्य एक ही है। हम इस परम उपयोगी और भारतीय एकता के लिए अत्यन्त सहायक ग्रन्थ को इतने अच्छे ढंग से प्रकाशित करने के लिए शिक्षा निदेशालय, ग्रन्थ के सम्पादकों और लेखकों को हार्दिक बधाई देते हैं। हमें विश्वास है कि हिन्दी के पाठक और विद्यार्थी इससे पूरा लाभ उठायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णुसहस्रनाम—आचार्य विनोबा की हस्तलिपि में। प्रकाशक, सस्ता साहित्य मंडल, कनाट प्लेस, नई दिल्ली। सजिल्द। पृष्ठ संख्या ४१४।

हिन्दी में अभी तक हमने भारती भण्डार, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित 'कामायनी' ही प्रसादजी की हस्तलिपि में देखी थी जो हिन्दी का एक अत्यन्त ऐतिहासिक, महत्त्वपूर्ण और संग्रहणीय प्रकाशन है। आचार्य विनोबाजी की हस्तलिपि में श्रीविष्णुसहस्रनाम के ३६० नामों की इस पुस्तक का प्रकाशन कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्व० सेठ जमनालालजी की पत्नी के आग्रह पर उन्होंने उनकी कापी में प्रत्येक दिन कुछ लिखने का अनुरोध मान लिया और पहले दिन पहले पृष्ठ पर केवल 'ॐ' लिख दिया। इसके बाद वे प्रति दिन एक नये पृष्ठ पर विष्णुसहस्रनाम के एक नाम को लिखने लगे। कभी केवल नाम लिख देते, कभी उस नाम की व्याख्या रेखाचित्रों से कर देते और कभी उसकी संक्षिप्त व्याख्या कर देते। किसी-किसी नाम की व्याख्या के नीचे अति संक्षिप्त कुछ व्यक्तिपरक उपदेश भी लिख देते। यह क्रम एक साल के लगभग चला और आचार्य ने विष्णुसहस्रनाम के ३६० नाम ३६० पृष्ठों पर उपर्युक्त विधि से लिख दिये। उसके बाद उन्होंने मौन ले लिया और वे 'राम हरि' के अतिरिक्त प्रायः कुछ नहीं लिखते, यहाँ तक कि कभी-कभी अपने हस्ताक्षर की जगह भी 'राम हरि' लिख देते हैं। उन्हें विष्णुसहस्रनाम में इतनी आस्था है कि उनके पवनार आश्रम में नित्य उसका संकीर्तन होता है। उनका कहना है कि विष्णुसहस्रनाम में संसार की सभी धर्म पुस्तकों में गिनाये गये भगवान् के गुण समा गये हैं। जब श्री श्रीमन्नारायणजी के आग्रह से माता जानकीबाई की कापियों में उनकी हस्तलिपि में लिखे नामों को छपाने का आयोजन हुआ और उनसे उसमें प्रस्तावनारूप में कुछ लिखने को कहा गया तब उन्होंने यह श्लोक लिख दिया :

अेष में सर्व धर्माणां
धर्मोऽधिकतमो मतः
यद् भक्त्या पुंडरीकाक्षं
स्तंबैरर्चेन्नरः सदा।

(भीष्मदेव)
राम हरि
4.1.1975

उनके अर्थ की शैली का एक नमूना देखिए :

प्रकाशात्मा

भगवान प्रकाश ही है

भगवान ही प्रकाश है

भगवान के अलावा बाकी जो कुछ दिखता है वह सब अंधेरा है

हम अंधेरे में गोते खा रहे हैं प्रभु हमें बचाअें

यह एक सामान्य नमूना है। किसी-किसी पृष्ठ में तो और भी मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक है। यह पुस्तक इसीलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि आचार्य विनोबा की हस्तलिपि में है, प्रत्युत इसलिए भी है यह विष्णुसहस्रनाम के नामों की व्याख्या ऐसी भाषा और ऐसी शैली में है जो पढ़े-बेपढ़े सभी लोगों के लिए उपयोगी और हृदयग्राही है। पुस्तक का मूल्य इसका आकार, जिल्द और छपाई देखते हुए इतना कम है कि सामान्य जन भी आचार्य भावे के महत्त्वपूर्ण अर्थों और भावों को सरलता से हृदयंगम कर सकते हैं। हमें विश्वास है कि पुस्तक लोकप्रिय होगी।

ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल—लेखक, डा० महेन्द्रप्रतापसिंह। प्रकाशक, श्री पटल प्रकाशन, के ४६ कैलास कालोनी, नई दिल्ली—४८। आकार डिमाई। पृष्ठ संख्या १८४। सजिल्द। मूल्य, २० रुपये।

यह पुस्तक हिन्दी में अपने ढंग की शायद पहली पुस्तक है। हिन्दी साहित्य और अभिलेखों में मध्यकाल का जो इतिहास बिखरा पड़ा है, उसकी ओर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया। हमारा मध्यकालीन इतिहास अधिकतर मुगल तथा अन्य मुसलमान शासकों के आश्रित लोगों ने लिखा था या स्वयं शासकों ने लिखा था। यह स्वभावतः एकांगी है। अंग्रेज लेखकों ने भी अपने इतिहास अधिकतर उन्हींके आधार पर लिखे हैं। कुछ विदेशी यात्रियों के वर्णनों से तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्त्वपूर्ण जानकारी भी मिल जाती है। किन्तु हिन्दी ग्रन्थों, अभिलेखों (विशेषकर हरियाणा और मध्यप्रदेश के राज्यों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी अभिलेखों, राजनयिक और निजी पत्रों) तथा जनता में प्रचलित इतिहास सम्बन्धी लोकगीतों, कविताओं का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करने की ओर ध्यान नहीं दिया गया। उनसे मुसलमानों के दृष्टिकोण और उनकी लिखी बातों के अतिरिक्त हिन्दू राजाओं और जनता के दृष्टिकोण और उनके द्वारा अभिलिखित तथ्यों का पता लग सकता है। इन दोनों के अध्ययन और परीक्षण के बाद ही मध्यकालीन इतिहास को संतुलित ढंग से लिखा जा सकता है। इधर मध्यकालीन काव्यों और ग्रन्थों पर बहुत शोध कार्य हुआ है, किन्तु वह मुख्यतः साहित्यिक दृष्टि से। कहा जाता है कि हिन्दू स्वभाव ही से इतिहास की ओर से उदासीन रहता है। हमारे अधिकांश साहित्यकार भी अपवाद नहीं हैं। वे किसी पुराने काव्य की 'पृष्ठभूमि' देने के लिए कभी-कभी तत्कालीन इतिहास का सतही वर्णन भले ही कर दें, किन्तु साहित्य तथा अभिलेखागारों, संग्रहालयों, पुराने पुस्तक भंडारों या निजी संग्रहों में संकलित सामग्री का इतिहास को केन्द्र विन्दु बनाकर अध्ययन नहीं करते। इसके लिए हमारी शिक्षा प्रणाली भी उत्तरदायी है क्योंकि साहित्य का अध्येता प्रायः इतिहास से कोरा रहता है, और इतिहास के शोधकर्ता हिन्दी में रुचि न लेने के कारण और प्रोफेसरों के अंग्रेजी-फारसी पुस्तकों के आधार पर बल देने के कारण हिन्दी में उपलब्ध सामग्री से लाभ नहीं उठा पाते। इस स्थिति में हिन्दी प्राध्यापकों का एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य यह भी है कि वे इस उपेक्षित सामग्री का प्रयोग कर तत्कालीन इतिहास पर नया प्रकाश डालें। ऐसा करने से इतिहास के प्रोफेसरों और शोधकर्ताओं को भी इस सामग्री का महत्त्व मालूम होगा और वे हिन्दी की सामग्री का उपयोग करना आरम्भ करेंगे जिससे हिन्दी के अध्ययन और प्रचार को प्रोत्साहन मिलेगा।

इन्हीं कारणों से हमें डा० महेन्द्रप्रतापसिंह की यह पुस्तक (ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल) बहुत मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण मालूम हुई। यह पुस्तक का प्रथम खंड है। दूसरा खंड (जिसमें मूल अभिलेखों का संग्रह रहेगा) अभी प्रकाशित नहीं हुआ। उसका प्रकाशन इसलिए आवश्यक है कि लोगों को मालूम हो कि उन अभिलेखों, पत्रों आदि में कितनी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री भरी पड़ी है। इस खंड में इन्हीं अल्पज्ञात या अज्ञात अभिलेखों, पत्रों, लोकगीतों, लोक में प्रचलित कथाओं के आधार पर छत्रसाल के जीवन और समय पर नया प्रकाश डाला गया है। छत्रसाल की सफलता उनके व्यक्तिगत शौर्य, राजनीतिक सूझ-बूझ तथा राजनयिक योग्यता पर ही निर्भर न थी, प्रत्युत उसका ठोस आधार जनता का व्यापक समर्थन था जो मुगल शक्ति से पीड़ित होने के कारण स्वतंत्र होना चाहती थी। लेखक ने ठीक ही लिखा है कि "छत्रसाल ने केवल सैनिक शक्ति के आधार पर अपने राज्य की स्थापना करने में सफलता नहीं प्राप्त की थी बल्कि यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि सैनिक शक्ति के समान रैय्यत (प्रजा) का सहयोग लेकर ही उनके द्वारा स्थापित राज्य के पाये राजनीति के झंझावातों में भी मजबूती के साथ खड़े रह गये थे।" इस कथन के प्रमाण में लेखक ने हिन्दी के अनेक लोकगीतों, लोककथाओं और कम या बिल्कुल न ज्ञात स्रोतों के प्रमाण दिये हैं। छत्रसाल के उत्थान, राज्य-विस्तार, सैनिक संगठन, शासन प्रणाली तथा उनके शासन में प्रजा की अवस्था का सप्रमाण चित्र प्रस्तुत किया गया है और ये प्रमाण अधिकतर प्रायः हिन्दी ही के हैं।

इस छोटी-सी टिप्पणी में हम पुस्तक की विस्तृत आलोचना नहीं कर सकते, किन्तु इतना कहना आवश्यक है कि इस पुस्तक ने इतिहास की शोध के लिए हिन्दी स्रोतों का प्रयोजन और महत्त्व भली भाँति प्रमाणित कर दिया है। यह अपने ढंग का हिन्दी में पहला ग्रन्थ है। हम इसे मार्गदर्शक (पायोनियरिंग) का काम समझते हैं। साहित्य और इतिहास का ऐसा सामंजस्य पहली बार हमारे देखने में आया है, और शोध तथा अध्ययन को एक नयी दिशा देने के लिए हम लेखक को बधाई देते हैं। हम आशा करते हैं कि हिन्दी के अध्येता इस ग्रन्थ को ध्यान से पढ़ेंगे और इससे प्रेरणा लेंगे।

भीतरी सतहों पर—लेखक रामरतन नीरव; प्रकाशक, साहित्य संस्थान, २०३०, मौहल्ला चूड़ीवालान, जौहरी बाज़ार जयपुर-३ (राजस्थान)। मूल्य चार रुपये।

रामरतन 'नीरव' जी की ५२ कविताएँ इस पुस्तक में संगृहीत हैं। प्रत्येक पृष्ठ में एक नयी कविता, एक नया भाव। भाषा और भाव दोनों ही स्पष्ट हैं, सुथरे हैं—

परतों की शिकन तक
खुल न पायी थी
समझौते की आलपिन से
किया नत्थी कोरे पृष्ठों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्यात् भूल हुई
पूँछ बैठा—अन्धकार से
अन्धेपन का कारण

इनकी कविताएँ घुटन, निराशा और व्यंग्य से दूर हैं, एक कविता में केवल एक भाव है जो पूर्णतः व्यक्त हो जाता है। एक काव्य के रूप में उनकी कविताएँ उभरती हैं। यदि घुटन, युग को कोसना, हर बात में उलझकर रह जाना, कविता में आधुनिकता के मापदण्ड हैं तो नीरवजी की कविताएँ उनसे बहुत दूर हैं।

बाज़ के खूनी डैनों में जकड़ा गया
आशा का एक विहंग
ढह गयी एक एक
सभी कल्पना की मीनारें
रह गया
मात्र मौन साथ
और
दर्द संग्रहीत।

यह उनकी साफ सुथरी कविता का एक उदाहरण है, जिसमें भाव और भाषा एक दूसरे का साथ दे रहे हैं।

एक छन्द चार हस्ताक्षर—सम्पादक, डॉ० पी० जयरामन, डी० लिट्० और त्रिलोकीनाथ ब्रजबाल; प्रकाशक, हिन्दी प्रचार सभा, सदर, मथुरा (उ० प्र०)। मूल्य पाँच रुपये।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, चार भिन्न-भिन्न कवियों के मुक्तक छन्दों का संग्रह एक पुस्तक में कर लिया गया है। कवियों के नाम हैं—श्री सुभाषचन्द्र वशिष्ठ, श्री रामललक राय शर्मा 'पंकज', श्री लाल नारंग तथा आशा सिंह। रचनाओं के पूर्व रचयिता का संक्षिप्त जीवन-परिचय है। इतना तो कहना ही होगा कि यह प्रयोग सराहनीय है। उदीयमान और प्रसिद्ध कवियों की प्रतिभा बहुत कुछ इसलिए भी छिपी रह जाती है कि वे अपने संकलन छपाने में असमर्थ रहते हैं। इस प्रकार के प्रयोग जिसमें उनकी रचनाएँ भी प्रकाशित हो जायँ और उनको अकेला अपना संकलन छपाने के लिए भटकना न पड़े, सराहनीय प्रयोग माना जायगा। संकलन बहुत छपते हैं; परन्तु प्रायः उन कवियों की रचनाएँ उनमें चुनी जाती हैं जो सफल कवि माने जा चुके हैं। उदीयमान और नये कवियों के संकलन कम देखने को मिलते हैं।

श्री सुभाषचन्द्र वशिष्ठ की कविताओं में वह घुटन समा गयी है जो आज देश में व्याप्त है। जहाँ लगता है कुछ आगे नहीं बढ़ रहा है।

सारी घुटन के आवरण के बाद इनके अन्तिम पद कविता में आशा स्फुरित करते हैं; और इन अन्तिम पदों में समस्त कविता को धैर्य देने और एक दृष्टिकोण देने का गुण है—जैसे

इन्हें दो—
ताकि ये निरर्थक कोलाहल के इस
अपार समुद्र पर
शब्द सेतु बाँध सकें।

तथा—

परछाइयों से डर गयी सी शाम;
किन्तु मन्दिरों, गिरजाघरों के बजते हुए घड़ियाल

श्री रामललक राय शर्मा 'पंकज' को घुटन का आभास नहीं है। किन्तु उन्हें मानव की मानवता लुप्त हुई प्रतीत होती है। वे वायदा करते हैं

'सुनो,
मैं भी करता हूँ
एक वायदा
एक न एक दिन
तुम्हारे अस्तित्व के साथ
दफना दूँगा
तुम्हारे इतिहास को
इंसान!
समाज!

श्री लाल नारंग की कविता में भावना है, यादें भी।

एक चेहरा था
—जो दिल में रहा
सबके उठ आने पर। मैं अकेला महफिल में रहा।

इन सबके बीच आशा सिंह की कविता है जो वास्तविकता की ओर आती है, जिसमें न घुटन है, न निराशा है और न हवाई भावना है। उसमें स्त्री सुलभ व्यावहारिकता है।

ओढ़ो मत उदासी
ढिंढोरची बनो मत
अफीम में पिनको मत
मनाओ मत मातम
वादों की पगडंडी में भूलो मत, भटको मत

इन सभी कवियों की कविताओं की भाषा सुथरी है और भावों को व्यक्त करने की सामर्थ्य रखती है। पाठकों को उलझाती नहीं है।

मस्जिदों में गूँजती
मुल्ला की अजान
गला घोंट जाती है
निस्तब्धता के राक्षस का,
और आशाएँ महक
जाती हैं, ज्यों
देव प्रतिमा के लिए
जल जायें अगर बत्तियाँ।

CC-0. In Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar
प्रकाशक—बी० पी० श्रीवास्तव, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' से पुरस्कृत

गुप्त साम्राज्य का इतिहास

लेखक

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सुविख्यात लेखक एवं प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान्

डा० वासुदेवशरण उपाध्याय

गुप्त सम्राटों का काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। गुप्त काल में सारे वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति ने विकास के उच्च शिखर पर थी। धन्य था वह युग जब शिक्षा, साहित्य ही नहीं ललित कला को भी उन महान् गुप्त सम्राटों ने विकसित कर अपनी आदर्श शासन-प्रणाली को इतिहास की एक अमर निधि बना दिया। विद्वान् लेखक की इस रचना के समकक्ष हिन्दी ही नहीं अँगरेजी में भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। सभी इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। अनेक विश्वविद्यालयों की एम० ए० कक्षाओं की परीक्षाओं के लिए यह पाठ्य पुस्तक बन गयी है। स्नातकों ने ही नहीं जनता ने भी इस ग्रन्थ का स्वागत किया है। ग्रन्थ का तीसरा संस्करण दो भागों में परिवर्धित कर तैयार है।

प्रथम भाग	१०·०० रुपये
द्वितीय भाग	१२·५० रुपये

इतिहास की दो नई पुस्तकें

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास

डॉ० ओमप्रकाश

हिन्दी भाषा में प्राचीन भारतीय इतिहास पर मौलिक रूप से लिखी गई पुस्तकों का प्रायः अभाव सा है। इतिहास के गहन एवं विस्तृत विवेचन को लक्ष्य में रखते हुए विद्वान् लेखक ने यथासंभव आधुनिकतम शोधों और मतों का समावेश करते हुए इस पुस्तक की रचना की है। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कथन की पुष्टि उचित पाद टिप्पणियों द्वारा की गई है। इतिहास के विद्वज्जगत् द्वारा प्रशंसित पुस्तक का प्रकाशन हमारे लिए भी गौरव की बात है। इतिहास के प्राक् ऐतिहासिक काल का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी इस पुस्तक को यथाशीघ्र मँगाकर लाभ उठावें। मूल्य १२·०० रुपये

भारत का प्राचीन इतिहास

लेखक—प्रो० नगेन्द्रनाथ घोष एम० ए०

संशोधक—ओमप्रकाश एम० ए० डी० फिल०

यह पुस्तक इतिहास जगत् में प्रायः दशाब्दियों से लोकप्रिय रही है मगर यह सर्वांशतः संशोधित संस्करण नवीन ऐतिहासिक उपलब्धियों, अनुसंधानों के परिणामों को ध्यान में रखते हुए प्रकाशित हुआ है। कलेवर पहले से दूना है। इस संस्करण की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं—राजनीतिक इतिहास के नवीन एवं ग्राह्य मतों के अनुसार वस्तु परिवर्तन, इसके सांस्कृतिक अंगों पर विशेष प्रकाश, पाँच विशेष प्रकार के मानचित्रों का समावेश और विवादात्मक विषयों को परिशिष्टों में देना आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जो विद्यार्थियों की ऐतिहासिक ज्ञानवृद्धि के प्रकाशस्तंभ हैं। जब चाहें मूल्य १२·५० रुपये तक मँगाकर लाभ उठावें।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Yearly Subscription : Rs. 24.00 August 1975 SARASWATI—Reg. No. A. D. 17
Single Copy : Rs. 2.00 December 1975
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक डिप्टी की डायरी

पृष्ठ-संख्या १६८ लेखक : निशीथकुमार राय मूल्य १२.५०

हिन्दी की इस अनोखी पुस्तक के बारे में कुछ सम्मतियाँ

माननीय विचारपति श्री महेशनारायण शुक्ल

"Diary writing is a well recognised literary form, it is at least as old as Samuel Pepys but few house displayed real excellence in this genre, particularly in Hindi.

Shree Nishith Kumar Roy, deserves to be congratulated on the remarkable success he has achieved in his "Diary of a Deputy" which is a landmark in the art of diary writing. When a Deputy Collector turns a lawyer he packs into his life a wealth of experience not vouchsafed to a person spending his life-time in the pursuit of a single avocation. This is the secret of the irresitable charm, the deeply absorbing quality, the surpassing human interest of these models of brevity strung together like pearls on a necklace.....the author has written the book in fluent, virile, idiomatic Hindi.

The author has a knack of selecting the most captivating captions for his pieces and enriching the same by his subtle irony and pleasant humour. His description of the performance of courtesans as "cultural activity extending far into the night" is a superb specimen of his incisive wit and buoyant humour. To a narrative of the sordid facts of actual life the writer has imparted the fascinating beauty of fiction and that is the highest measure of his success as a diary-writer.".....

श्री श्यामनाथ कक्कड़, एडवोकेट जनरल, हाईकोर्ट, इलाहाबाद

.....यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पुस्तक का आरम्भ करने के पश्चात् बिना समाप्त किये छोड़ना बड़ा कठिन है। सत्य भी इतना मनोरंजक होता है यह डिप्टी की डायरी पढ़कर ही विश्वास होता है.....इस डायरी के माध्यम से उन्होंने आफिसर्स वर्ग का बड़ा सही चरित्र-चित्रण किया है। मैं आशा करता हूँ जो कोई इस पुस्तक को पढ़ेगा उसको भी इतना ही रस और आनन्द मिलेगा जितना मुझे मिला।.....

श्री प्रेमशंकर गुप्त, गवर्नमेन्ट एडवोकेट, हाईकोर्ट, इलाहाबाद

बन्धु निशीथ राय की 'एक डिप्टी की डायरी' ने १५-२० वर्ष पूर्व की डिप्टियों की इजलास में वकालत करते समय की वे स्मृतियाँ सहज जागृत कर दीं जो मस्तिष्क के किसी कोने में सुप्तावस्था में पड़ी थीं। यह उनकी लेखनी का चमत्कार है कि उनकी डायरी पढ़कर पाठक पाँचवीं दशाब्दी के पूर्वार्द्ध के डिप्टी कलक्टरों के संसर्ग एवं सम्पर्क में पहुँच जाता है, और वैसे ही जाने-पहिचाने कितने मुखड़े उसकी आँखों के सामने नाचने लगते हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह अनूठी पुस्तक है.....इस चित्रण में इस कारण और अधिक निखार आ गया है क्योंकि यह पात्र काल्पनिक न होकर लेखक के व्यक्तिगत सम्पर्क में आये हुये व्यक्ति हैं जिन्हें बिना संजोये-सँवारे लेखक ने ज्यों का त्यों पाठकों के सामने रख दिया है। वास्तव में उन भ्रमित व्यक्तियों को इस पुस्तक को पढ़कर मार्ग दर्शन लेना चाहिये जो अहमग्रस्त होकर जनसेवा से भटक गये हैं और जनसाधारण की दृष्टि में उपहास का पात्र बन रहे हैं। हिन्दी पाठक श्री राय के इस स्तुत्य प्रयास के लिए कृतज्ञ है।.....

श्री जे० एस० टिंगल, सुपरिण्टेण्डेण्ट आफ पुलिस

.....The book is so interesting that one cannot lay it aside without reading it from cover to cover. Not many books have yet been written which give any inkling into the personal and social life of officers.....

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इस अंक में एक सम्पूर्ण उपन्यास पढ़िये
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीनतम हिन्दी मासिक पत्रिका
(संस्थापित सन् १९००)

सरस्वती

सम्पादक
निशीथकुमार राय
जुलाई १९७६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नातक स्तरीय कुछ हिन्दी ग्रन्थ

चिन्तामणि-मंजूषा : आचार्य विश्वनाथप्रसाद, डी० लिट्०

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखित चिन्तामणि (भाग १) की आलोचनात्मक भूमिका—विषय-प्रवेश, टिप्प एवं व्याख्या। शुक्लजी भारतीय दृष्टि से प्रकृष्ट भावक थे और पश्चिमी दृष्टि से महान् चिंतक (थिंकर)। चिन्तामा प्रथम भाग में उनकी चिन्तना या भावकता की मणियाँ संग्रहीत हैं। उनमें दूसरे की दृष्टि की पकड़ तो है ही, अप स्वच्छन्द दृष्टि भी है। 'मंजूषा' लिखने में प्रयास किया गया है कि जहाँ तक हो सके दोनों पहलू झलक जाएँ। चिन्त मणि में भावों पर लिखे और भारतीय सिद्धान्त शास्त्र से सम्बद्ध उनके निबन्धों पर कुछ विस्तार से विमर्श किया ग है। विशुद्ध आलोचना पर थोड़ा प्रकाश डाला गया है। विश्वास है मंजूषा द्वारा ग्राहकों को चिन्तामणि (प्रथम भाग) रूप पूर्णतया स्पष्ट हो जायगा। मूल्य ४·२५

गद्याञ्जलि : लेखक—डा० रामलाल सिंह, डी० लिट्०

प्रस्तुत संकलन हिन्दी अध्यापन जगत् में विभिन्न गद्य विधाओं के आधुनिक पुस्तक की अभावपूर्ति है। इस प्रमुख उद्देश्य यह है कि स्नातक कक्षाओं में विद्यार्थी रेखाचित्र, सस्मरण, डायरी, आत्मकथा, जीवनी, यात्रा-व रिपोर्ताज, व्यंग्य, गद्य काव्य, गद्य-रूपक, फीचर आदि से परिचित होकर इनके आस्वादन के हेतु अपनी प्रतिभा पल्लवित कर सके। हिन्दी गद्य के नूतन विधाओं के ज्ञान के लिए यह पुस्तक अत्यन्त आवश्यक है। पृष्ठ १४४ मूल्य ५

भाषाविज्ञान : लेखक—डा० श्यामसुन्दरदास, डी० लिट्०

इस ग्रन्थ में तुलनात्मक भाषा-शास्त्र के सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं परस्पर सम्बन्ध की सुबोध व्याख्या की गयी है। आधुनिक पाठ्यक्रम के अनुसार विख्यात भाषाविद् डा० उदयनारा तिवारीजी ने इसका आद्योपान्त संशोधन व परिवर्द्धन कर पुस्तक की उपयोगिता में वृद्धि की है। मूल्य १०·५०

समीक्षा-दर्शन : लेखक—डा० रामलाल सिंह, डी० लिट्०

डाक्टर साहब द्वारा आद्योपान्त संशोधित तथा परिवर्द्धित। इस पुस्तक में समीक्षा-शास्त्र की परिभाषा, उस भेद तथा सिद्धान्तों की सुन्दर और सविस्तार विवेचना की गयी है। यह नवीन संस्करण अभी मुद्रणाधीन है और शी ही प्रकाशित हो जायगा।

अपभ्रंश पाठमाला : (भाग १, भाग २) लेखक—श्री नरोत्तमदास शास्त्री, एम० ए० विशा

अपभ्रंश भाषा का साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से उसका गौरव अद्वितीय है प्रथम भाग में मूल संकलन है। दूसरे भाग में मूल पाठों का शब्दार्थ, भावार्थ आदि दिया गया है। परीक्षार्थियों के लि ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगी।

प्रथम भाग : पृष्ठ १२४, मूल्य ७·०० **द्वितीय भाग : पृष्ठ १६४, मूल्य ९·००**

इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अंक में पढ़िए—

विषय

पृष्ठ

१—चटक चाँदनी महक गई (कविता)—श्री देवनाथ पांडेय 'रसाल' १

२—राष्ट्रीय एकता के प्रतीक, महान् कवि 'अमीर खुसरो'—डा० परमानन्द पांचाल, एम० ए०, पी-एच० डी० .... २

३—भारत अन्तरिक्ष युग में—**इन्दिरा शासन की दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि**—श्री उमाकान्त वर्मा ५

४—केवल क्षण भर (कविता)—डा० कमलाकान्त हीरक, एम० एस्-सी०, पी० एच० डी० .... ७

५—**एक मनोरंजक सम्पूर्ण उपन्यास**—जन्मान्तर—श्री निशीथकुमार राय ८

६—निकल रही है केवल आह (कविता)—डा० स्वर्णकिरण सम्पादक, 'नालन्दा दर्पण' २७

७—**विश्व-साहित्य-सर्विया देश की कहानी**—इलाज—श्री अशोककुमार राठौर, बी० ए, एल्-एल० बी २८

८—अमरीकी शराफत—श्री शिवसरन सिंह यादव ३१

९—वृन्दावन के मध्यकालीन भक्ति-काव्य में संगीत—सुश्री आशा सेठ ३३

१०—क्रान्तिकारी आजाद की हत्या में भारतीय जिम्मेदार—श्री लक्ष्मणप्रसाद मिश्र एडवोकेट ३६

११—नवीन प्रकाशन ३८

१२—सम्पादकीय ३९

आवरण पृष्ठ : प्रसिद्ध कलाकार श्री असितकुमार हालदार द्वारा अंकित

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

आवश्यक सूचना

'सरस्वती' पुनः प्रकाशित हो रही है। 'सरस्वती' केवल सामयिक पत्रिका ही नहीं अपितु हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। भारत की प्राचीनतम मासिक पत्रिका के रूप में सरस्वती आज की हिन्दी को वर्तमान रूप देने में जो कुछ सेवा करती आई है उसका परिचय देना आवश्यक नहीं है।

हम हिन्दी के सभी लेखकों से अनुरोध करते हैं कि वे अपनी रचनाएँ 'सरस्वती' में प्रकाशन के लिए इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, ३६ पन्नालाल रोड, इलाहाबाद के पते से भेजें। यदि आवश्यक डाक-टिकट रचना के साथ संलग्न रहेगा तो हम अमनोनीत लेख उनके लेखक या लेखिका को वापस कर सकेंगे अन्यथा वापसी की जिम्मेदारी न ले सकेंगे।

'सरस्वती' में समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक है।

—प्रबन्धक सरस्वती

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द-संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य २० रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र में एक बार फिर आत्मविश्वास जागा है

1975-76

काले धन्धे के विरुद्ध अभियान

- तस्करों की बदमाशी के खड्डे खत्म। कुख्यात तस्कर सीखचों में बन्द। 42 तस्कर फरार घोषित और उनकी जायदाद जब्त।

- शहरों में पड़ी खाली जमीन की सीमाबन्दी। अधिकतम सीमा के अन्दर आने वाली जमीन के हस्तान्तरण पर रोक।

- रिहायशी मकानों का क्षेत्रफल निर्धारित। करों की चोरी रोकने के लिए आलीशान इमारतों का मूल्यांकन। छापों के परिणामस्वरूप जुलाई 1975 के बाद से प्रत्यक्ष करों की वसूली में 27·4 प्रतिशत की वृद्धि।

- स्वेच्छया प्रकटन योजना के अन्तर्गत 2 लाख 50 हजार व्यक्तियों द्वारा 15 अरब 87 करोड़ रुपये से अधिक की आय और धन की घोषणा। लगभग $2\frac{1}{2}$ अरब रुपए के राजस्व की प्राप्ति।

डीएवीपी 76/90

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र में एक बार फिर आत्मविश्वास जागा है

1975-76

नौजवानों के लिए नई सुविधाएँ और नए अवसर

- 10,490 होस्टलों को नियंत्रित मूल्यों पर आवश्यक वस्तुएँ पहुँचने से 9,56,000 से अधिक विद्यार्थियों को लाभ।

- छपाई का सफेद कागज रियायती दरों पर सप्लाई करने से किताबों और कापियों के मूल्यों में कमी। कालेजों और स्कूलों में 88,600 पुस्तक-बैंक कार्यरत।

- 103 व्यवसाय और 216 उद्योग अब अप्रेंटिसशिप योजना के अधीन।

- 18,800 सीटें बढ़ने से अप्रेंटिसशिप योजनाओं के अन्तर्गत कुल 1,33,900 से अधिक सीटें। 1,28,900 सीटों पर अप्रेंटिस काम कर हैं जिनमें से 28,000 (20 प्रतिशत से अधिक) अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के हैं।

डीएवीपी 76/91

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवनागरी लिपि में उर्दू के चार ग्रन्थ-रत्न

महाकवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लें—टीकाकार—रामानुजलाल श्रीवास्तव । मूल्य ६·०० रुपये । शब्दार्थ, भावार्थ, प्रासंगिक कथाएँ तथा यथास्थान हिन्दी काव्य से तुलनात्मक विवेचनाएँ ।

मौलाना हाली और उनका काव्य—टीकाकार—ज्वालादत्त शर्मा । मूल्य ६·०० रुपये । शब्दार्थ, भावार्थ तथा टीका । हाली मिर्ज़ा 'ग़ालिब' के पट्ट-शिष्य थे । इन्होंने उर्दू काव्य को नया मोड़ दिया था ।

सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की अमर राष्ट्रीय कविताएँ । सम्पादक—बालकृष्ण गुर्टू । मूल्य ६·०० रुपये । शब्दार्थ सहित यह ग्रन्थ राष्ट्रीय कविताओं का अनुपम संग्रह है ।

महाकवि अकबर—संग्रहकर्ता—रघुराजकिशोर 'वतन' । मूल्य ३·०० रुपये । शब्दार्थ तथा टीका सहित । 'अकबर' इलाहाबादी उर्दू-काव्य में हास्यरस के जनक है । चारों पुस्तकें अपनी-अपनी शैली में अनूठी हैं ।

नई साज-सज्जा में सरस्वती सीरीज़

इस सीरीज की पुस्तकों ने हिन्दी पुस्तक-जगत् में अपनी लोकप्रियता, सुलभता और विविध विषयता से धूम मचा दी थी । वे ही अब आकर्षक नये रूप-रंग में छापी गई हैं । प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल ३·०० रुपये । इन सुलभ, लाभप्रद तथा मनोरंजक पुस्तकों का अभाव किसी भी पुस्तकालय या घरेलू पुस्तक संग्रह में खटक सकता है ।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री ब्रजेश्वर वर्मा एम० ए०
पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी
सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय
मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०
दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी
वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की आज भी सुलभ कुछ पुस्तकें मूल्य प्रत्येक का १·५० रु०

ये पुस्तकें अल्प मूल्य में आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन का अत्यंत सुगम आधार हैं

समस्या का हल	रूपान्तर	घर का भेदिया	पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
मृत्युलोक की झाँकी	रूस की क्रान्ति	अग्रणी	समस्या
लाल दूत	धरती माता	नीमचमेली	च्यांगकाई शेक
अनन्त की ओर	इत्सिंग की भारत-यात्रा	जीवन-शक्ति का विकास	हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
वंशानुक्रम विज्ञान	परलोक-रहस्य	साथी	तीन नगीने
मशीन के पुर्जे	लखनऊ की शहजादियाँ	निष्कलंकिनी	पूर्व के पुराने हीरे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

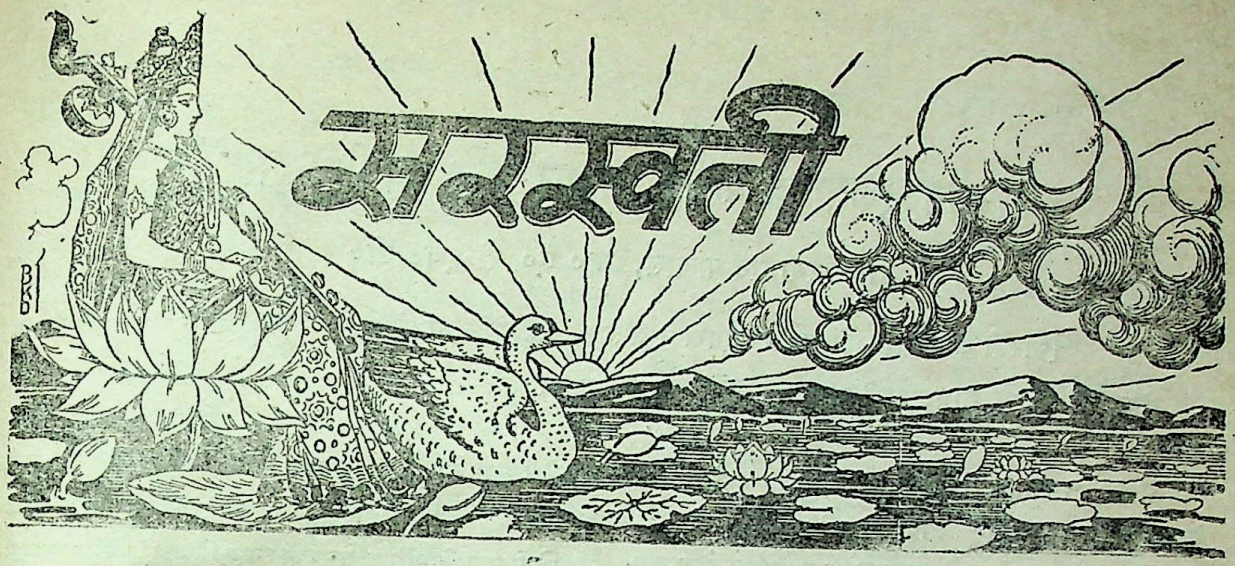

सम्पादक

निशीथकुमार राय

वर्ष ७७
पूर्ण संख्या ९१९

इलाहाबाद : जुलाई १९७६ : आषाढ़ २०३३ वि०

खण्ड २
संख्या १

चटक चाँदनी महक गई

श्री देवनाथ पाण्डेय 'रसाल'

शेफाली की कलियाँ चिटक गईं।
गोरी चटक चाँदनी महक गई।

बाँहों के घेरे में कस डाला
मुझे प्यार ने कर बेबस डाला
अंगुलियों से किरनें लिपट गईं
अधरों ने कर अर्पित रस डाला

इतना रहा खुलापन बहक गई।
गोरी चटक चाँदनी महक गई।

चमकीली रश्मियाँ फूटती हैं
मन में महताबियाँ छूटती हैं
मोती हँस कनखियाँ लुटा देतीं
फुलझड़ियाँ रंगीन घूमती हैं

अञ्जलि में रूपाली गमक गई।
गोरी चटक चाँदनी महक गई।

यह जो डगर अकेले में निकली
तरुणाई की उष्मा गर्वीली
आँखें बड़ी नशीली, स्वप्नीली
उमर रसीली, मीठी, रंगीली

छूकर साँस लवे-सी दहक गई।
गोरी चटक चाँदनी महक गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय एकता के प्रतीक, महान् कवि 'अमीर खुसरो'

डा० परमानन्द पांचाल, एम० ए०, पी-एच० डी०

[फारसी के प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो ने सात सौ वर्ष पूर्व जिस बोली में काव्य-रचना करने की चेष्टा की थी वह आज हमारी राष्ट्रभाषा है।]—सम्पादक सरस्वती

अमीर खुसरो एक बहुमुखी प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। वे कुशल सैनिक, महान् कवि, भाषाविद् एवं उच्चकोटि के संगीतज्ञ और उससे भी बढ़कर एक महान् देशभक्त थे, जिन्होंने दीन और दुनिया दोनों को ही अपनी मुट्ठी में कर लिया था। उनकी महानता का परिचय इस बात से सहज ही मिल जाता है कि प्रत्येक वर्ष न केवल भारत के ही कोने-कोने से श्रद्धालु लोग उनके मज़ार पर श्रद्धा-सुमन चढ़ाने आते हैं, अपितु विदेशों से भी अनेक कवि, संगीतकार और भक्त इनके उर्स में सम्मिलित होने के लिए भारत आते हैं। स्थान-स्थान से विभिन्न कवियों, कव्वालों और संगीतज्ञों की टोलियाँ निज़ामुद्दीन-स्थित इनके मज़ार की ओर खिची चली आती हैं। क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी अपनी श्रद्धा के पुष्प उन्हें चढ़ाते हैं। अमीर खुसरो एक महान् देशभक्त कवि थे। उन्हें अपने भारतीय होने पर गर्व था। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है :—

'हस्त मेरा मौलिद-वो भावी-बे वतन,

(अर्थात् भारत मेरी जन्मभूमि और मेरा देश है।)

उन्होंने अपनी काव्य-रचनाओं में भारत की महानता और उसके गौरव की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी। खुसरो भारत को पृथ्वी का स्वर्ग मानते थे।

किश्वरे हिंद अस्त बहिश्ते बजमी'

(अर्थात् भारत पृथ्वी का स्वर्ग है)।

प्रसिद्ध विद्वान् सैयद सुलेमान नदवी ने अखिल भारतीय इतिहास परिषद् के मद्रास अधिवेशन (१९४४) के अपने अध्यक्षीय भाषण में खुसरो के भारत प्रेम की चर्चा करते हुए कहा था, अमीर खुसरो ने हिन्दुस्तान की ख़ाक को अपनी आँखों का सुरमा बनाया। यद्यपि वे नस्ल से तुर्क थे मगर उनका दिल हिन्दुस्तान की मिट्टी से बना था। खुसरो ने अपनी प्रसिद्ध मसनवी 'नूह सिपहर' (नौआकाश) का एक अध्याय १३१८ ई० में भारत की प्रशंसा में ही लिखा था। हिन्दुस्तान का राग अलापते हुए भावावेश में वे एक स्थान पर कहते हैं :—

'हिकमत व दानाई व इल्मों हुनर
व आँचे कि दर हिन्द मानीअस्त दिगर।'

अपने भारत-प्रेम के समर्थन में एक हदीस के आधार पर वे कहते हैं :—

'हुब्बे वतन हस्त जूँ ईमान ब यकीन'
(देशप्रेम निःसंदेह ईमान का भाग है।)

अमीर खुसरो का असली नाम अबुलहसन यमीनुद्दीन खुसरो था। इनका जन्म १२५३ ई० में पटियाली (जिला एटा) में हुआ था। इनके पूर्वज तुर्क किसान थे, जो बलख के आसपास के रहनेवाले थे। ये बाल्यकाल से ही बड़े मेधावी थे और हर समय गुनगुनाते रहते थे। बहुधा तख्ती पर सुलेख का अभ्यास करते समय कविता लिख देते थे। बारह वर्ष की अवस्था में ही काव्य की विभिन्न विधाओं में इतनी निपुणता प्राप्त कर ली थी कि प्रसिद्ध कवि और विद्वान् उनकी विद्वत्ता पर दाँतों तले उँगली दबाते थे।

वे अरबी और तुर्की के विद्वान् थे, फारसी इनके घर की बाँदी थी, खड़ीबोली इन्हें अपनी माँ से विरासत में मिली थी। संस्कृत पर भी इन्हें पूरा अधिकार था। उन्होंने अपनी एक मसनवी 'बुलरानी' में लिखा है 'ज्ञान के समर्थ व्यक्ति को ज्ञात होना चाहिए कि संस्कृत को अधिकांश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं पर अधिकार है।' इससे उनके संस्कृत ज्ञान की भली भाँति पुष्टि हो जाती है।

जब वह पढ़-लिख चुके तो सुल्तान गयासुद्दीन बलबन के दरबारी अमीर कतलू खाँ के यहाँ, जिन्हें मलिक कज्जू भी कहते थे, नौकर हो गये। फिर सुल्तान के लड़के बुगराखाँ के दरबार में सम्मिलित हो गये। दिल्ली में अमीर खुसरो का परिचय उनके बड़े लड़के काआन से हो गया। वह उन्हें अपना विशेष कवि बनाकर मुल्तान ले गया। इसी समय तातारियों ने भारत पर आक्रमण किया, काआन लड़ाई में मारा गया।[1] ये भी पकड़े गये। तातारी इन्हें बलख ले गये, खुसरो बड़ी तरकीबों से छूटकर दिल्ली आये। इसके पश्चात् अवध में नौकरी की, किन्तु इनकी माँ ने इन्हें दिल्ली बुला लिया। जलालुद्दीन खिल्जी जब सिंहासन पर बैठा तो उसने इन्हें कुरान पढ़ाने पर नौकर रख लिया। यह बड़े सम्मान की नौकरी थी।

अलाउद्दीन ने भी खुसरो को बड़े सम्मान से अपने दरबार में रखा। अलाउद्दीन ने २१ वर्ष तक शासन किया। इसके बाद शहाबुद्दीन और फिर कुतुबुद्दीन सुल्तान हुए। कुतुबुद्दीन ने इन्हें एक बार हाथी के बराबर तोल कर रुपये दिये थे। खुसरो ने दिल्ली के सात बादशाहों का जमाना देखा था। सोनारगाँव के अभियान में अमीर खुसरो गयासुद्दीन तुग़लक के साथ थे। यह उनका अन्तिम अभियान था।

उनके प्रवास काल में उनके गुरु हज़रत निजामुद्दीन औलिया ने प्राण त्याग दिये। जब अमीर खुसरो को दिल्ली लौटने पर अपने पीर की मृत्यु का दुखद समाचार मिला तो उन्हें बड़ा आघात पहुँचा। वस्त्र फाड़ डाले, मुँह पर कालिख मल ली और उनकी कब्र पर जाकर यह दोहा पढ़ा और खूब रोये।

"गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस॥"

अपनी सारी कमाई लुटाकर कब्र पर झाड़ू देने लगे। अन्त में छः मास पश्चात् इसी दुःख में घुल-घुलकर जान दे दी।

खुसरो का काव्य

खुसरो फारसी के उच्चकोटि के कवि थे। उनकी फारसी कविता शेख सादी और हाफ़िज की कविता से टक्कर ले सकती है। स्वयं ईरानी विद्वान् भी इन्हें 'तूतीए हिन्द' के नाम से पुकारते थे। खुसरो के समकालीन इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी का कथन है कि—

'अमीर खुसरो दर नज्म व नस्र
पारसी कुतुबखाना तसनीफ करदा अस्त'[1]

(अर्थात् अमीर खुसरो ने फारसी पद्य तथा गद्य के एक पुस्तकालय की रचना की है।)

कहा जाता है कि इन्होंने लगभग ९० ग्रन्थों की रचना की थी किन्तु उनके पाँच काव्य-संग्रह, नौ मसनवियों और गज़लों के कई संग्रह मौजूद हैं। गद्य में 'एजाज़े खुसरवी' खज़ायनुल फतूह और 'अफज़ल उल फवायद' उनकी मौलिक रचनाएँ हैं।

फारसी के उच्चकोटि के कवि होने पर भी उन्हें अपनी मातृभाषा (हिन्दी) पर गर्व था—

तुर्क हिन्दुस्तानियम मन हिन्दवी गोयम चूं आब।
शक्कर-ए-मिस्री न दारम कज़ अरब गोयम सुखन॥

(मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ और हिन्दवी पानी की रवानी (गति) के साथ बोलता हूँ। मेरे पास मिस्र की शक्कर नहीं है कि मैं अरबों की बात करूँ।)

—मुकद्दमा दीवान गुर्रतुल कमाल

एक स्थान पर वे कहते हैं—

चूं मन तूतीए हिन्दम अरारास्त पुर्सी।
ब मन हिन्दवी पुरस्त नग्ज गोयम॥

(अगर तुम सच पूछते हो तो मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ; मैं हिन्दवी से भरा हुआ हूँ। मैं अपनी भावनाओं का निचोड़ इसमें उंडेल देता हूँ।)

---

१. मकतबा जामिया लि० दिल्ली से प्रकाशित 'अमीर-खुसरो' में 'काआन' के मारे जाने का उल्लेख है किन्तु इतिहास प्रो० मुजीब ऐसा नहीं मानते। उनका कथन है कि सुल्तान मुहम्मद ही तातारियों के हाथों मारा गया था।

१. तारीख़ फीरोजशाही—जियाउद्दीन बर्नी—पृ० २५९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमीर खुसरो को खड़ीबोली हिन्दी का प्रथम कवि होने का गौरव प्राप्त है। स्वर्गीय रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में 'जब हम खड़ीबोली के इतिहास को उठाते हैं तब निश्चित रूप से हमें मानना पड़ता है कि इस भाषा का प्राचीनतम लिखित साहित्य खुसरो का ही है।[1] कितने संयोग की बात है कि आज से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व अमीर खुसरो जिस बोली को काव्य की भाषा बनाने का प्रयत्न कर रहे थे, वही बोली आज परिनिष्ठित रूप में देश की राजभाषा के रूप में स्वीकृत है।'

खुसरो के हिन्दी काव्य की मौलिकता को लेकर आज एक विवाद अवश्य है और अभी तक ठीक-ठीक रूप में यह नहीं कहा जा सकता कि वह कितना मौलिक है और कितना प्रक्षिप्त। अमीर खुसरो का सबसे प्रामाणिक हिन्दी दोहा दक्खिनी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, मुल्ला वजही की रचना 'सब रस' में इस प्रकार मिलता है :—

"पंखा होकर मैं डुली साती तेरा चाव।
मुंज जलती को जन्म गया तेरे लेखन बाव॥"

खुसरो ने जनभाषा में दोहे और कविताएँ, पहेलियाँ व मुकरियाँ; गज़लें तथा ढकोसले आदि लिखे थे जो आज तक जन-जन की जिह्वा पर मौजूद हैं। मोटे रूप में इनके हिन्दी काव्य के निम्नरूप प्राप्य हैं :—

१—खालिकबारी—यह फारसी हिन्दी का एक पर्यायवाची कोश है, जिसमें २१५ शेर दिये गये हैं। इसमें अरबी के २३७, तुर्की के २, फारसी के ४८२ और हिन्दी के ४७५ शब्द हैं।[2]

२—चेस्तान—इसमें सकारण और अकारण पहेलियाँ, कह-मुकरनियाँ, दो सखुने तथा ढकोसले आदि सम्मिलित हैं जैसे आरी पर एक पहेली देखिए—

श्याम बरन और दाँत अनेक लचकत जैसे आरी।
दो हाथों से खुसरो खींचे और कहे तू आरी॥

कह-मुकरनी—जैसे :—

उछल कूद के जो वह आया, धरा ढका सभी कुछ खाया।
दौड़ झपट जा बैठा अन्दर, ऐ सखी साजन ना सखी बंदर॥

३—गज़लें—इसमें एक मिसरा फारसी और एक हिन्दी का है।

४—दोहे और ५ कुछ गीत।

अमीर खुसरो बड़े ही प्रत्युत्पन्नमति कवि थे। समस्या सामने आई नहीं कि कविता हाजिर। किंवदन्ती है कि एक बार अमीर खुसरो एक कुएँ पर पानी पीने के लिए गये। वहाँ चार स्त्रियाँ पानी भर रही थीं। स्त्रियों ने उनसे कहा कि वे उन्हें उस समय पानी पिलायेंगी, जब वे उनके चार शब्दों 'खीर', 'चर्खा', 'कुत्ता' तथा 'ढोल' को एक ही कविता में पिरो देंगे। खुसरो तो आशुकवि थे ही, तुरन्त यह ढकोसला कह दिया :—

'खीर' पकाई जतन से 'चर्खा' दिया जलाय,
आया 'कुत्ता' खा गया तू बैठी 'ढोल' बजाय।
—ला पानी पिला।

संगीत-प्रेम

खुसरो संगीत-कला में भी निपुण थे। अनेक राग-रागिनियों का उन्होंने आविष्कार किया था। कहा जाता है कि सारंगी, बीन और सितार[1] आदि वाद्य-यंत्र उन्हीं के आविष्कार हैं। अपने समय के जगद्गुरु नायक 'गोपाल' को नीचा दिखाकर वे नायक बन गये थे। इनके प्रसिद्ध रागों का फारसी अनुवाद आलमगीर के समय में एक अमीर 'फकीर अल्लाह' ने किया था और उसका नाम रागदर्पण रखा था।[2] आज तक भी कव्वाल साधारणतया खुसरो को अपना उस्ताद मानते हैं।

---

१. संस्कृति के चार अध्याय—रामधारीसिंह दिनकर—पृ० ३७०

२. प्रो० शीरानी 'पंजाब में उर्दू' ग्रन्थ में खालिकबारी को खुसरो की रचना नहीं मानते किन्तु। अब इसका निराकरण हो गया है। देखिए हिन्दी के मुस्लिम साहित्यकार—परमानन्द पांचाल।

१. आचार्य बृहस्पति सितार को खुसरो के बाद का आविष्कार कहते हैं—साप्ताहिक हिन्दुस्तान ९ नवम्बर १९७५ किन्तु अभी उस दिशा में कुछ और अनुसंधान की आवश्यकता है।

२. बयाने खुसरो—मौलाना शिबली तैयानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्दिरा शासन की दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि

श्री उमाकान्त वर्मा

[आर्यभट्ट नामक उपग्रह-प्रक्षेपण पर लेखक ने तथ्यपूर्ण लेख प्रस्तुत करके सामान्य पाठक के लिए सरल भाषा में भारत के अन्तरिक्ष विज्ञान में नवीन उपलब्धि के विषय में जो बातें बताई हैं वे मनोरंजक तो हैं ही साथ ही साथ शिक्षाप्रद भी हैं।]—सरस्वती सम्पादक

आकाशवाणी से १९ अप्रैल को घोषित होते ही कि भारत ने दिन के १ बजे मास्को स्थित 'बीअर्स लेक कास्मोड्रोम' से अपना पहला उपग्रह छोड़ा है, सारे देश में प्रसन्नता की लहर छा गयी। भारत अपना उपग्रह इसी महीने में छोड़नेवाला था, पर १९ तारीख ही वह शुभ दिन होगा, इसकी किसी को कल्पना न थी। सोवियत रूस के सहयोग से भारत को इस क्षेत्र में सफलता मिली। अब भारत उन राष्ट्रों की पंक्ति में आ गया जिन्होंने अपने उपग्रह छोड़े हैं। भारत के पहले आठ अन्य राष्ट्र अन्तरिक्ष युग में प्रवेश कर चुके हैं। एशिया में भारत का स्थान चीन और जापान के बाद तीसरा है।

इस उपग्रह का नाम 'आर्यभट्ट' रखकर भारत सरकार ने अपने भूतकाल में विकसित ज्ञान और प्रतिभा की याद तरोताजी कर दी। आर्यभट्ट पाँचवीं शताब्दी में प्रसिद्ध बीजगणितज्ञ और खगोलविद् हो चुके हैं। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'आर्यभट्टिय' मात्र २३ वर्ष की अवस्था में लिखी गयी थी। उन्होंने पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा और बहुत से आकाशीय ग्रहों के भौतिक न्यास (फिजीकल पैरामीटर) पर महत्त्वपूर्ण काम किये थे। उन्होंने भारत में आधुनिक बीजगणित (माडर्न अलजेबरा) की नींव डाली और शून्य के महत्त्व को बताया। उन्होंने त्रिकोणमितीय फलनों (ट्रिगनामेट्रिक फंकशन्स) के बारे में भी मूलभूत परिभाषा दी।

जिस समय मास्को स्थित कास्मोड्रोम से आर्यभट्ट का प्रक्षेपण हुआ उस समय सोवियत वैज्ञानिकों के अलावा भारत के चालीस वैज्ञानिक और इन्जीनियर भी वहाँ मौजूद थे। ये वैज्ञानिक प्रसन्नता से आनन्द-विभोर हो गये। भारतीय अन्तरिक्ष आयोग के अध्यक्ष प्रोफेसर सतीश धवन और उपग्रह परियोजना के निदेशक डा० यू० आर० राव भी वहाँ उपस्थित थे। उपग्रह आर्यभट्ट से प्राप्त सूचनाओं को मास्को स्थित बीअर्स लेक और मद्रास के श्री हरिकोटा अन्तरिक्ष अनुसन्धान केन्द्र (एस० एच० ए० आर०) में विश्लेषण के लिए इकट्ठा किया जा रहा है। फ्रांस के भी एक केन्द्र से इस काम में मदद ली जा रही है।

अन्तरिक्ष प्रयोगों का श्रीगणेश

सन् १९६१ में भारत ने लघु पैमाने पर अन्तरिक्ष विज्ञान की ओर ध्यान देना शुरू किया था। १९७० में स्वर्गीय डा० विक्रम साराभाई ने त्रिवेन्द्रम के विक्रम साराभाई अन्तरिक्ष अनुसन्धान संस्थान में उपग्रह योजना खंड (एस० एस० डी०) की स्थापना की। इस खंड का काम उपग्रह निर्माण के लिए तकनीकी ज्ञान प्राप्त करना था।

१० मई १९७२ को भारत और रूस में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार भारत अपने निर्मित उपग्रहों को सोवियत केन्द्र से छोड़ सकता है। अब तक जिन देशों के पास अपने कास्मोड्रोम या उपग्रह छोड़ने की व्यवस्था है उनके नाम हैं—चीन, जापान, फ्रांस, अमरीका और रूस। भारत के पास अपनी उपग्रह छोड़ने की कोई व्यवस्था न होने से उसे इस काम में सोवियत रूस से मदद लेनी पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय वैज्ञानिक और तकनीशियन इस क्षेत्र में भी काम कर रहे हैं। आशा है कि १९७८ तक देश में ऐसे राकेट बन जायेंगे जो आगे उपग्रहों को छोड़ सकेंगे। आर्यभट्ट के प्रक्षेपण से भी इस काम में मदद मिलेगी।

उपग्रह आर्यभट्ट की रूपरेखा : सामान्य परिचय

आर्यभट्ट हीरे की शक्ल का अष्टकोणीय बना है। इसकी ऊँचाई १११ से० मी० और व्यास १४७ से० मी० है। २६ फलकों वाले इस उपग्रह का वजन ३६० कि० ग्राम है। नीले और बैंगनी रंग के इस उपग्रह का कार्यकाल ६ महीने का है। इसका निर्माण देशी साधनों से ही हुआ है। इसकी डिजाइन भारतीय अन्तरिक्ष संस्थान बंगलोर में बनायी गयी है। ८ बड़े सार्वजनिक, एक बड़े निजी और २० छोटे निजी संस्थानों ने इसके निर्माण में सहयोग दिया है। ५ करोड़ की लागत से निर्मित इस उपग्रह के पूरी तरह से तैयार होने में २६ महीने लगे हैं। पृथ्वी का एक पूर्ण चक्कर लगाने में इसे ९६ मिनट लगते हैं।

ईंधन के लिए ६ टंकियों में 'काम्प्रेस्ड नाइट्रोजन गैस' भरी है। ऊर्जा इसे सौर-सेलों की सहायता से मिलती है। इसके लिए उपग्रह आर्यभट्ट की बाहरी सतह पर १८५०० सौर-सेलों का निर्माण किया गया है। सूर्य के प्रकाश में ये सेल औसतन ४६ वाट बिजली उत्पन्न करते हैं। लेकिन जब उपग्रह अँधेरे में पहुँचता है तो शक्तिशाली बैटरियाँ उसे संचालित रखती हैं।

आर्यभट्ट दीर्वाकार कक्षा में घूम रहा है। पृथ्वी की सतह से इसकी दूरी (कम से कम) ५६४ कि० मी० और (अधिक से अधिक) ६२६ कि० मी० है।

ऊपर हमने उपग्रह शब्द की चर्चा की है। लगभग हर व्यक्ति ने उपग्रह शब्द बहुत बार सुना होगा। यह निश्चित है कि सामान्य जानकारी के लोगों को, उपग्रह होता क्या है और इसको प्रक्षेपित करने के उद्देश्य क्या होते हैं, नहीं मालूम होता है। अतः संक्षेप में इसका भी वर्णन कर देना अप्रासंगिक न होगा।

उपग्रह वह होता है जो किसी ग्रह के चारों ओर चक्कर लगाता है। ४ अक्तूबर १९५७ को संसार का प्रथम उपग्रह स्पुतनिक-१ रूस ने छोड़ा था। इसकी शक्ल बास्केट बाल की तरह थी। तब से अब तक छोटे-बड़े कई उपग्रह छोड़े जा चुके हैं। इनमें अन्तरिक्ष में काम करनेवाली प्रयोगशाला (स्काईलैब) तक हैं। आर्यभट्ट विश्व का नवीनतम उपग्रह है। स्पुतनिक-१ के मुकाबले यह कई गुना बड़ा है।

किसी उपग्रह को प्रक्षेपित करने के लिए कम से कम २९,००० कि० मी० प्रति घण्टा की गति चाहिए। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि यदि गति में इससे कमी आ गयी तो उपग्रह पृथ्वी पर गिर पड़ेगा और यदि यह सीमा ४४,००० कि० मी० प्रति घण्टा की गति से लाँघ गयी तो उपग्रह पृथ्वी की गुरुत्व शक्ति से बाहर निकल जायेगा और पृथ्वी पर फिर नहीं लौट पायेगा।

कोई उपग्रह जब अन्तरिक्ष में चक्कर लगाना शुरू करता है तो पृथ्वी उसे अपनी तरफ अपनी गुरुत्व शक्ति से खींचती है और तद्जन्य 'सेन्ट्रीफ्यूगल फोर्स' उसे पृथ्वी की ओर गिरने से रोकता है। इस कारण प्रत्येक उपग्रह अन्तरिक्ष में या तो वृत्ताकार घूमता है या फिर दीर्घ वृत्ताकार। आर्यभट्ट दीर्घवृत्ताकार कक्षा में घूम रहा है। प्रत्येक चक्कर के बाद इसकी स्थिति में थोड़ा सा परिवर्तन हो जा रहा है। इसका कारण यह है कि पृथ्वी की घूर्णन गति में २४ घण्टे के बाद कुछ परिवर्तन आ जाता है।

अन्तरिक्ष में किये जानेवाले परीक्षण और उनसे लाभ

आर्यभट्ट अपने प्रवास (६ महीने) के दौरान जिन तीन परीक्षणों को करेगा वे हैं—(१) 'एअरोनामी' ('आइनोस्फीयर' और पृथ्वी के पर्यावरण का अध्ययन), (२) x-किरण खगोलविद्या और (३) सौर न्यूट्रान तथा गामा-किरणों से सम्बन्धित प्रयोग। प्रथम प्रयोग की रूपरेखा और उसका विकास भौतिकी शोध प्रयोगशाला, अहमदाबाद में हुआ है। इसे डा० बी० एच० सुब्बारैया और प्रो० सत्यप्रकाश ने तैयार किया है। दूसरे प्रयोग की रूप-रेखा आई० एस० आर० ओ० के डा० यू० आर० राव और डा० के० कस्तूरिअंगन ने तैयार की है। तीसरे और अन्तिम प्रयोग की रूपरेखा टाटा के मूलभूत शोध-संस्थान में तैयार की गयी है। इसको सम्पादित करनेवाले वैज्ञानिक हैं—प्रो० आर० आर० डैनियल, डा० लावाकारे और डा० दामले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल क्षण भर

डा० कमलाकान्त हीरक, एम० एस्-सी०, पी० एच० डी०

केवल क्षण भर !
तरल वाष्प सा हास
कनक सुधि के प्यालों में
ढाल-ढाल
मधुस्वर झर-झर भर
क्वाँरेपन की अल्हड़ता को
गीत सुना कर
सतरंगे डैने वाले
तिरते पंछी के संग
सब कुछ
हाँ, सब कुछ तिर जाने दें।
केवल क्षण भर।

पसरे सागर के तट पर
रेती के टीलों पर,
औंधी लेटी किरणों की सोनपरी को
फेनिल उच्छ्वासों के झोंकों में
नहला कर
अंतर की जिज्ञासाओं के विन्ध्याचल पर
भावन-चिन्तन का सुन्दर परिधान उढ़ाकर
मर्मर साँसों से सहला लें
केवल क्षण भर।

ऊपरी वातावरण में जो 'एलेक्ट्रान' अब तक समझे जाते रहे हैं और उनमें ऊर्जा के संप्रेषण के बारे में जो धारणा है उसके सम्पन्न करने में 'एलेक्ट्रानों' की संख्या मापने का कार्य इस उपग्रह द्वारा किया जायगा। इससे 'आइनोस्फीयर' में उपस्थित विद्युत् 'फील्ड' का पता चल सकेगा। साथ ही वायु के सूक्ष्म कणों से रात के समय जो 'रेडिएशन' होता है जिन्हें 'एअरग्लो' भी कहते हैं, के बारे में जानकारी मिलेगी। दिन में यही उपग्रह ऊपरी वातावरण में ऊष्मा-सम्बन्धित आँकड़े भेजेगा।

दूसरे प्रयोग से प्रकृति और ब्रह्माण्ड के बारे में व्यापक रूप से जानकारी मिलेगी। तीसरे प्रयोग से सूर्य की बनावट और उसकी गति आदि के बारे में जानकारी मिलेगी। किसी उपग्रह से ऐसे प्रयोगों को करना आवश्यक है क्योंकि x-किरणें, गामा-किरणें आदि जो अन्य ग्रहों से निकलती हैं, वे पृथ्वी तक पूरी-पूरी नहीं पहुँच पाती हैं।

जो आँकड़े उपग्रह इकट्ठे कर रहा है वे एक टेपरिकार्डर में अंकित हो जा रहे हैं। यह टेपरिकार्डर उपग्रह के बाहरी हिस्से पर लगा है। ये आँकड़े तुरन्त आई० एस० आर० ओ० के केन्द्र श्री हरिकोटा (जो उपग्रह के नियन्त्रण के लिए मद्रास के समीप बना है) और मास्को के बीअर्स लेक में विश्लेषण के लिए भेज दिये जाते हैं। ये आँकड़े फ्रांस के तालूस केन्द्र में भी इकट्ठे किये जा रहे हैं। श्री हरिकोटा और बीअर्स लेक के ऊपर से गुजरते समय उपग्रह आँकड़ों को सांकेतिक भाषा में भेज रहा है। ये आँकड़े उपग्रह जितनी देर में अपने टेपरिकार्डर में टेप करता है उसकी दस गुनी गति से पृथ्वी पर भेज देता है। करीब १ सेकेण्ड में पृथ्वी पर लगे चुम्बकीय टेप पर २५०० धड़कन अंकित होती है। शब्दों में इन्हें ३२० शब्द प्रति मिनट मापा गया है। इन्हें इकट्ठा कर विश्लेषण करने के लिए 'एलेक्ट्रानिक कारपोरेशन आव इण्डिया' ने 'कम्प्यूटर' बैठाया है।

भारत ने अपना पहला उपग्रह जो छोड़ा है उसका महत्त्व देश को गरीबी से निकालने, खेती के काम आदि में सहायक आँकड़े प्राप्त करना है। इससे पता चल सकेगा कि कब बाढ़ आनेवाली है या कब तूफान आनेवाला है आदि। निस्सन्देह यह भारतीय जनता के हित में है। भारत ने उपग्रह का प्रक्षेपण न सामरिक दृष्टि से किया है, न ही उसकी ऐसी मंशा है। मानव-कल्याण के लिए किये गये इस प्रक्षेपण के बाद भारत आगे चलकर इस क्षेत्र में और सफलता प्राप्त करे, यही मंगलकामना हर देशवासी की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[जाति भेद तथा छुआछूत का दूर होना अत्यावश्यक है। दे श की एकता के लिए भी इस प्रथा का उच्छेद अत्यावश्यक है! इस उपन्यास में मार्मिक ढंग से इसी बात को दर्शाया गया है। स्थानाभाव के कारण मूल उपन्यास का संक्षिप्त रूप दिया गया है।]—सरस्वती सम्पादक

"राम राम, घोर कलियुग है। ऐसा तो कभी सुना नहीं था", बोले प्रधान। यह तो निन्दा की बात थी ही। किसी जवान लड़की के लिए इस प्रकार भी निर्लज्जता दिखाना गाँव के लिए नयी एवं निन्दनीय बात थी ही। "पंडितजी को चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए" ऐसा मन्तव्य किया सरपंच ने।

दरअसल बात भी कुछ ऐसी ही थी। गाँव के भूतपूर्व जमींदार पंडित राजाराम तिवारी की इकलौती बेटी सुभद्रा ने गाँव भर के सामने जिस निर्लज्जता का परिचय दिया था, वह तो कल्पनातीत था। माना विलायत की लड़कियों को खुली छूट रहती है और बचपन से सुभद्रा वहीं पढ़ी-लिखी थी और उन्हीं की रीति नीति से परिचित थी—यहाँ की रीति-नीति उसे नहीं मालूम थी; मगर यह तो भारत है विलायत नहीं! और यहाँ के निष्ठावान ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर सुभद्रा को अपना नहीं तो वंश और परिवार के मान-अपमान का तो ख्याल अवश्य ही रखना चाहिए था।

पं० राजाराम जमींदारी टूटने से पहिले भी काफी जमीन अपनी जोत में रक्खे थे इसलिए जमींदारी टूटने का उनपर विशेष असर नहीं पड़ा। वे उसी ठाटबाट से रहते थे जैसे पहिले। सुभद्रा उनकी इकलौती बेटी थी। शैशव से ही उसका मानसिक सन्तुलन ठीक नहीं था। वह जाने क्या-क्या अर्थहीन बातें किया करती थी, इसलिए उसके पिता ने उसे स्विट्जरलैण्ड भेज दिया था ताकि वहाँ इलाज भी हो जाय और पढ़ाई-लिखाई भी। पर इलाज से उसे कोई विशेष लाभ भले न हुआ हो, पढ़ाई में उसने बड़ी कामयाबी दिखलायी थी। उसका सत्रहवाँ वर्ष चल रहा था। सोलह वर्ष की अवस्था में ही उसने सीनियर कैम्ब्रिज परीक्षा में समग्र स्विट्जरलैण्ड ही नहीं, बल्कि यूरोप में प्रथम स्थान प्राप्त करके स्वदेश एवं विदेश दोनों को चकित कर दिया था।

देहात में यह पहली बार आई थी। बिल्कुल बचपन का तो याद न था पर होश सँभालने के बाद वह कभी देहात नहीं आई थी। उसकी बीमारी के कारण पं० राजारामजी सदा उसे शहर में ही रखते थे जहाँ चिकित्सा की सहूलियत आसानी से उपलब्ध हो सके।

उसके मनोरंजन के लिए पंडितजी ने नाच का इन्तजाम किया था। उन्हें क्या पता था कि वह इतना बड़ा अनर्थ कर बैठेगी। जो दो लड़के नाचने के लिए आये थे वे दोनों लोकनृत्य में उस इलाके में प्रसिद्ध थे और लोगों को उनका नाच बड़ा ही पसन्द था।

एक किशोर हरिजन था—जाति का चमार और दूसरा था अहीर। हरिजन का नाम श्यामलाल अथवा श्यामू एवं अहीर लड़के का नाम अक्षयबर अथवा छयबर था। दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोरावस्था पार करके यौवन में पदार्पण करनेवाले थे। दोनों का रंग श्यामवर्ण होने के उपरान्त हरियाली की वह श्यामलता लिए था कि मन को मोह लेता। चेहरों पर नई उम्र की ताज़गी—मस्ती और अल्हड़पन! शरीर की मांसपेशियाँ इस बात की गवाही दे रही थीं कि दोनों किशोर व्यायाम के शौकीन भी थे। छयबर नकली बाल लगाकर राधिकाजी बना था और श्यामू बना था कृष्ण! जूड़े में मोरपंख! हँसने से वह बहुत ही प्यारा लगता था। श्यामू घुटने तक धोती पहिने था—पीली धोती। दोनों नाच रहे थे और नृत्य के छन्द के साथ मधुर स्वर में गा रहे थे—

अँचरा के जिन थामा भरीली डगरिया, सँवरिया रे
का कइहैं लोगवा हजार—
एक तो अँचरवा इहाँ खुदै उधिराला रे
दूसरे बयरिया से जिया घबराला रे
आँखिया से लड़ी जब छलकी जवनियाँ, सँवरिया रे
बह जइहै अँसुअन की धार—
अँचरा के जिन····

अब ही छिपल बाटै दुनिया कै रितिया
लुक छिप चोरी चोरी दूहूँ कै पिरितिया
डर अस लागै कहीं केहू के नजरिया, सँवरिया रे
जर जइहै सपना हमार—
अँचरा के जिन····

बिनती करीला हम रंग दा चुनरिया
सुनसान लागै पिया बाबा कै नगरिया
लेइ चला रोप देई अँगना बेइलिया, सँवरिया रे
छाई जइहैं देश कै बहार—
अँचरा के जिन····

गाने के साथ-साथ छरहरा बदन लचाकर वह लहरा-लहराकर नाच रहा था। दोनों मिलकर नाच रहे थे। छयबर की बड़ी-बड़ी आँखें जिसमें दीर्घ बरौनियाँ थीं, उसे बड़ा ही आकर्षक बना रखा था। उन आँखों में स्निग्ध दृष्टि थी और उनमें कुछ कौतुक भी भरा रहता था।

उन दोनों की जोड़ी आसपास के इलाके में प्रसिद्ध थी। दोनों एक ही उम्र के थे। साथ ही साथ पढ़ते और साथ ही साथ रहा करते थे, हरदम साथ ही दिखाई देते थे। इसे लेकर गाँव में चर्चा करते-करते लोग थककर चुप हो गये थे। क्या कहते उस निर्लज्ज को जो अहीर के घर पैदा होकर भी चमार के हाथ पानी पीता था। पंचायत बुलाकर लोगों ने छयबर के घरवालों का हुक्का-पानी बन्द करने का प्रस्ताव रखा था। छयबर के बाप ने हाथ जोड़कर पंचों से निवेदन किया था कि उसका बेटा छयबर उमर से जवान अवश्य हो गया है परन्तु बुद्धि से अभी शिशु जैसा अल्हड़ है। उसकी भूलों को पंच माफ कर दें नादान नासमझ के नाते। बचपन से दोनों साथ-साथ रहे हैं—खेले-कूदे हैं।

पंचों ने क्षमा किया था पर वैसे नहीं। छयबर के पिता पर पाँच सौ रुपये जुर्माना करके।

"बाबू तू चिन्ता जिन करा। ई रुपैया तो हम नाच के कमाय लेब। तोहके ई रुपिया अबहीं दय देतही", बोला था छयबर।

बेटे की अक्ल की कमी पर उसके पिता रामधन दुखी रहते। आखिर इन रुपयों से गृहस्थी का कुछ काम बनता। पंचायत के लिए दरी और हंडा खरीदकर बरबाद करने से क्या लाभ? पर लड़का पढ़ने में तेज़ था—अपने वजीफा के रुपयों से पढ़ता था। उसके ऊपर नाचता-गाता इतना सुन्दर था कि उसे लोग अपने यहाँ उत्सव या समारोहों में रुपये देकर बुलाया करते थे और नाच पर लोग खुश होकर इनाम अलग से दिया करते थे। छयबर और श्यामू को हर महीने दो-तीन बार बुलौवा मिल जाया करता था।

दोनों कॉलेज साथ-साथ जाते और साथ ही लौटते थे। छयबर के घर की बनी ढूँढ़ी और श्यामू की माँ का दिया लाई-चना दोनों नदी के किनारे बैठकर खाते, तो कभी-कभी नदी में नाव खोल देते और दोनों नदी तट को मुखरित करके गीत गाते चलते—

कइसे निकसूँ बीच बजरिया लोगवा बोली बोलैला।
कोई कहेला चम्पा चमेली, कोई कहे गुलनार
लहुरा देवरवा हमका निहारे जियरा के भइल झमाल,
कि लोगवा बोली बोलैला।

कइसे निकसूँ·····

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ना पहिरब हम धानी चुनरिया, ना करिबै शृंगार
न करिबै शृंगार मोरे राजा, ना करिबै शृंगार
मैं अलबेली नई नवेली—हाय अकेली नार,
कि लोगवा बोली बोलैला।

कइसे निकसूँ.....

कौन जतन करी हे मोरी गुइयाँ काँचि उमर कचनार,
काँचै अनरवा काँचै पियरवा, पूँछे न जियरा हमार—
कि लोगवा बोली बोलैला....

कइसे निकसूँ.....

नदी तट पर नहाती इठलाती किशोरियों को सुनाने अथवा छेड़ने के लिए वे नहीं गाते थे। वे तो गाते थे अपनी मस्ती में—परन्तु उनका मधुर स्वर सुनने के लिए किशोरियाँ एवं युवतियाँ लालायित रहतीं।

नदी पर कहीं-कहीं भारी नाव, सवारी, जानवर व सामान लादे फेरी करते दिखाई देते थे, और कहीं-कहीं मल्लाह मछली पकड़ने में लगे रहते थे।

चारों ओर की निर्जनता, भरी दोपहरी की निस्तब्धता, नदी का कलकल शब्द—कभी-कभी स्नान करती हुई ललनाओं का आपसी मजाक में कलहास्य चारों ओर अपूर्व मादकता फैला रहे थे।

ये दोनों मानों एक ही माँ-बाप से जन्मे दो किशोर थे। दोनों के चेहरों में भी काफी सादृश्य था। हालाँकि वे अलग-अलग जाति के थे परन्तु दोनों के स्वभाव तथा चेहरे का मेल, दोनों का बन्धुत्व अद्भुत था।

नदी तट की निर्जन छाया में मेड़ पर बैठी पेंढ़की बोलती रहती—अथवा अलसायी दोपहरी की निस्तब्धता में कौए का कर्कश स्वर सुनाई देता—'का-का', नदी छिछली—कहीं-कहीं उसमें सेवार—कहीं जंगली घास का गुच्छ! जल स्रोत का पता नहीं चलता था। मानों स्थिर जल—कहीं काली—कहीं मटमैली। जलज उद्भिद की भरमार।

कहीं-कहीं चरवाहे अपने जानवर नदी में पानी पिलाने लाये थे तो कहीं उन्हें चरने को छोड़कर स्वयं नदी के किनारे नहाने से ज्यादा शोर मचा रहे थे।

जब नाव ऐसी जगह से जाती जहाँ कोई गाँव रहता, तो गाँव की किशोरियाँ निर्जन नदी में नहाती नजर आतीं—इस परिचित जुगल को देखकर शरीर के सिक्तवस्त्र को वृथा सँभालने के प्रयास में अपने यौवन के उभार को ढकने के बदले और भी दर्शनीय कर डालतीं।

इन दोनों का लक्ष्य उन किशोरियों पर नहीं रहता बल्कि प्राकृतिक शोभा की ओर''''श्यामू का स्वर पानी के साथ लहराता।

उस दिन जब पंडितजी के घर से नाचने-गाने का बुलौवा आया तो श्यामू जाने क्यों सकुचाया। उसे ऊँची जातिवालों की अवज्ञा एवं कड़वी बातें अखरती थीं। शान्त स्वभाव के होने के नाते वह किसी से कुछ कहता नहीं था। यहाँ तक कि अपने मित्र छयबर से भी इस बात पर कभी चर्चा नहीं छेड़ी जिससे वह दुःखी न हो। वह जहाँ तक हो सके ऊँची जातिवालों को दूर रखकर चला करता था।

श्यामू अधिक आपत्ति नहीं कर सका जब गाँव के प्रधान ने भी हाथ पकड़कर उससे अनुरोध किया। कहा, "श्यामू—जात न मानों न सही—हैसियत न मानों कोई बात नहीं, पर पंडितजी की उम्र का ख्याल तो करो।"

"दद्दा, के कहलेस कि जात बदे या बड़े आदमी बदे पंडितजी का बात न मानब। उनका हम जातो बदे मानब और उमिरो बदे—"

अब तो गलतफहमी दूर करने के खातिर वह नाचने को सहमत हो गया। दोनों नाच रहे थे। सुभद्रा एकटक श्यामू को देख रही थी। एकाएक वह उठकर श्यामू के पास पहुँची और उसने निःसंकोच श्यामू के माथे पर के केश को अपने हाथों से हटाते हुये मन ही मन बोली, "हाँ, वही काला निशान।" फिर मानों वह भूल गयी कि सारा गाँव उसके अद्भुत आचरण को गौर से देख रहा है—बोली, "बच्चू जरा धोती तो उतारना"—और फिर छयबर से आँखें मिलते ही घूँघट निकालकर हट गयी।

विलायत में पढ़ी-लिखी लड़की का देहाती स्त्रियों जैसा घूँघट निकालना जहाँ अस्वाभाविक था वहीं भरी महफिल में निर्लज्जता के साथ अनजाने किशोर की धोती खोलने की कोशिश भी अद्भुत एवं अविश्वसनीय थी।

सारी महफिल स्तब्ध! मानों वज्रपात हो गया। पंडितजी स्तम्भित—मर्माहत! उनके मुँह से बोली तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं निकली। सारे गाँव के सामने यह कैसा अपमान! घटना की आकस्मिकता का धक्का सँभालकर जब वे होश में आये, तब तक अपने हाथों सुभद्रा श्यामू की धोती कमर से खिसका चुकी थी।

'सुभद्रा'—कड़े स्वर से पंडितजी चिल्ला पड़े एवं उसके बाद सुभद्रा का हाथ पकड़कर वे मकान में घसीट ले गये और फिर घर से नहीं निकले। सुभद्रा भी उनके साथ ऐसी मुद्रा में गयी मानों किसी ने उसे सम्मोहित कर दिया हो! उसकी दृष्टि विभ्रान्त थी।

सिरी अहीर के घर लोग इकट्ठा हुए थे। रामधन के लड़के के बारे में चर्चा—और वह भी इतना रोचक—भला लोग चुप कैसे रहते?

रामसेवक ने श्लेषपूर्वक कहा,—"अब रामधन समझिहैं कि चमार के दोस्ती का नतीजा का होला। पंडितजी इतनी बड़ी बदनामी भला भूल सकलें—"

"तू सही कहत हउआ—श्यामू का छयबर कपारे चढ़ाय लिहले रहलन" सिरी ने हामी भरते हुये कहा, "ओही के नतीजा हउवै—बाम्हन ठाकुर की लड़किन से छिनारा—"

उसका कहना समाप्त नहीं हुआ था कि छविराज यादव ने टोककर कहा, "श्यामू के गलती काहे, सुभद्रा दीदी तो खुदै....."

"तू चुप रह" घुड़क उठे सिरी यादव, "तू बड़न के बात में काहे पड़त हउआ—चुप रह" चाचा की डाँट सुनकर वह चुप हो गया....।

रामसेवक फिर बोला, "पंडितजी बिलायत भेजकर लड़की का मेम बनउलन, अब झेलैं"—सिरी बोला, "मेमियन भी इतनी निलज्जन नहीं होतीं—ई तो गाँव भर के सामने पराये मंसेधू की धोती खोल के न जाने का देखल चाहत रहलै—छयबरवा का देख के पतुरियन की नायीं घूँघुट काढ़ लेहलस।"

निरहू यादव बोला "लड़किया पगली रहस एही बदे पंडितजी ओका बिलायत में रखले रहलेन। लोग कहत रहलें कि अब अच्छी हो गयी है, लेकिन हमका लागत है ऊ अबहिनौं पगली है"। "पागल नहीं तो सब कुछ" बोला पुरहू "ऊ औरन का पागल कर देई—ससुरी बदचलन है।"

आँख मारकर सीताराम यादव बोले, "अब पंडिताइन और चमार कै विआह होई। तू बरात ले जाये।"

"हम चमारे के बरात में काहे जाब? तू पंचे पंडितजी के घरे चमारन के बेराती खिलावै जरूर जाबो, "बोले, घुरहू।

"देखो, बेकार बात न करैं चाही! पंडित की जमीन हम सब जोते हैं। कहूँ सुन लेइहैं तो भूखन मार डलिहैं" हरसरन यादव ने कहा।

इस बात को सुनकर सभी लोग चौकन्ने हुए। क्योंकि उन्हें मालूम था, हरसरन यादव पंडितजी का खास आदमी है और छोटी-छोटी बातें वहाँ तक पहुँचाने में तनिक भी देर नहीं करता। लोगों के प्राण सोंठ हो गये—रामसेवक बातें बदलते हुये बोले, "बिटिया का होश में रही? कबौं नहीं। बिलायत से पास करके अइसन काम कउनो कर सकत है?"

"अरे भाई पगली सब कुछ कर सकत है—ओहका बेचारी का का मालूम कि काम भला है कि बुरा," बोले सिरी यादव।

ये लोग अभी तक पंडितजी की बुराई करने में लगे थे। अब एक साथ प्रशंसा में जुट गये देखकर—सीताराम जल-भुनकर खाक हो गये। कड़ुये स्वर में बोले, "पगली तो है ही—और नहीं तो का छिनार है? आपन बहू-बिटिया ऐसन होत तो देखित छिनार कहतेव कि नहीं।"

इसके बाद लोग वहाँ से उठने से पहिले एक बात पर सहमत होकर उठे कि सुभद्रा बहुत ही भली लड़की है। मेमों के बीच रहकर वह भारतीय नारी जैसी लज्जावती नहीं रह गयी है, मगर स्वभाव की बड़ी सुशीला एवं नेकचलन है। श्यामू की धोती पकड़कर खींचातानी मचाना उसके लिए बड़ा ही स्वाभाविक रहा। उसमें निन्दा की कोई बात नहीं है।

× × ×

पंडित राजाराम निर्जीव जैसा पड़े थे। उनकी पत्नी तपेसरा देवी भी निर्वाक् बैठी थीं। इकलौती बेटी—तिस पर बीमार—उसे कुछ कहना भी सम्भव न था। उभय संकट में पंडितजी पड़े थे। जो घटना हो चुकी थी उसे भुलाना सम्भव न था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपेसरा देवी धीरे से बोलीं, "आप इतना मन मारे क्यों पड़े हैं ? पागल के काम से कोई हमारी बदनामी थोड़े ही करेगा—बिटिया को बड़े डाक्टरों को दिखलाइए। देखा बुत जैसी हो गयी है—बोल-चाल नहीं रही है तभी से....।"

"नहीं सुभद्रा की माँ ! यह पागलपन की बात नहीं है। देखा नहीं उसने उस लौंडे को कितनी आसानी से पहिचान लिया। यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही है—ऐसा लगा मानों वर्षों की पहिचान हो।"

मैंने भी पूछा था तो बोली, "अम्मा मुझे नहीं मालूम। मगर श्यामू मेरा बहुत दुलारा और प्यारा है। मैं उसे बहुत दिनों से जानती हूँ। कैसे—यह खुद ही नहीं जानती। याद करने की कोशिश कर रही हूँ।"

"सुभद्रा की माँ—मैं डर गया हूँ। सुभद्रा को लेकर आज ही मैं देहली भाग रहा हूँ। वैसे भी यहाँ मुँह दिखाने लायक मैं नहीं रहा।"

× × ×

"कहो, अब तो पंडिताइन फंसी है तुमसे," बोली एक सांवली किशोरी।

"तोहका अइसन बात न कहै चाही गुलाबी," बोला श्यामू। गुलाबी का बाप हरिजन था और श्यामू के जाति-बिरादरी का था; परन्तु अमीर था। उसके पास खेती भी थी और पनचक्की एवं तेल पेरने की मशीनें भी थीं। उसके और श्यामू के परिवार में आर्थिक विषमता अत्यधिक थी, इसलिए इन दोनों परिवार के बच्चों में ब्याह होना स्वाभाविक नहीं था। मगर श्यामू की पढ़ाई में तेजी, सुन्दर चेहरा, निर्मल स्वभाव से आकृष्ट होकर गुलाबी के पिता इतवारीलाल ने अपनी लड़की गुलाबी से श्यामू के विवाह की बात छेड़ी थी, शादी हो भी गयी होती अब तक; पर श्यामू ने माँ से साफ कह दिया था कि जब तक वह कमाने नहीं लगेगा तब तक शादी नहीं करेगा। इतवारीलाल ने यह सुनकर गर्व के साथ कहा था, "कमाने का सवाल कहाँ है। अपनी बिटिया के दूल्हे को दहेज में मैं पाँच बीघा खेत दूँगा और दूँगा नकद दस हजार रुपये। उसी को लेकर कोई कारोबार शुरू कर दे।"

जब नदी किनारे एकान्त में गुलाबी ने श्यामू से कहा था, कि शादी क्यों नहीं कर लेते, कमाई की फिक्र न करो,

"प्रणप्रथा तो समाज का कोढ़ है...."

तो श्यामू ने उत्तर दिया था, "तुम्हारे पिताजी दामाद खरीदना चाहते हैं—मुझे धन-दौलत की लालच रत्ती भर नहीं है। अपनी मेहनत से जो कमाऊँगा, वही मेरे लिए बहुत है। प्रणप्रथा तो समाज का कोढ़ है।....मैं उसे बढ़ावा नहीं देना चाहता गुलाबी।"

गुलाबी ने जब सुना सुभद्रा ने श्यामू की धोती खुली महफिल में खोलना चाहा था तो जल-भुनकर खाक हो गयी। मगर करती ही क्या। उसे ऐसा विश्वास हो गया कि श्यामू का नाच देखकर और मस्तानी चाल देखकर सुभद्रा उस पर मोहित हो गयी थी और बिलायती कायदे से फाँस रही थी। सुभद्रा उसकी पहुँच के बाहर थी इसलिए श्यामू को ही श्लेषभरी बातों का लक्ष्य बनाया। इससे उसकी ईर्ष्या एवं जलन को कुछ राहत मिली। श्यामू को सुभद्रा का व्यवहार तनिक भी अच्छा नहीं लगा था परन्तु फिर भी उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध प्रेम की गुलाबी की बातों ने ठेस पहुँचाया और उसने गुलाबी को ऐसी बातें करने से रोकना चाहा। परन्तु एक तो गुलाबी की गलतफहमी, दूसरे ईर्ष्या की जलन और फिर जब श्यामू ने सुभद्रा से हमदर्दी जताकर गुलाबी को डाँटा तो वह मानों जल उठी। कड़ुए स्वर में बोली—"काहे के न कहीं? उनका अइसन काम करै के चाहत रहल? ऊ तो जउन चाहैं तउन करैं—हम कही भी न? केकर-केकर बोली तू बन्द करब्या—गँउवा भर ओका थूकत हउवै! तोहरे पर तो जादू-टोना कइलै हव, नहीं तो तुम अइसन न कहत्या। अकेले में धोती टरले होतिन तो काम बनल होत।"

"छिः गुलाबी" आगे घृणा एवं वितृष्णा के मारे श्यामू से कुछ कहा न गया।

श्यामू ने देखा इसके मुँह लगना बेकार है। इसलिए वह आगे बातें न बढ़ाकर वहाँ से चल दिया। पीछे से गुलाबी का तीखा स्वर उसके कानों को मानों छेदता गया—"चाहे जेतना ओके बदे जिव देया, चाहे धोती खोला चाहे निगोटा—बाम्हनी बियाहै का न मिली—ई जनले रहेव, मिली तो चमइनियै मिली।"

श्यामू ने मन ही मन निश्चय किया कि चाहे जिससे वह शादी करे गुलाबी से हरगिज नहीं करेगा। जीवन भर छोटी-छोटी बातों को लेकर जहर उगलनेवाली पत्नी उसे नहीं चाहिए। शोख औरत—उससे आशा भी क्या कर सकता था।

गुलाबी को भी दरिद्र श्यामू का यह मिजाज बहुत बुरा लगा। उसके समाजवाले सभी उसे अपनी बहू बनाने के लिए उत्सुक थे और इस दरिद्र ने उसे अवज्ञा दिखाने का साहस किया। उसे भला शौहरों की क्या कमी है?

इस घटना के बाद से श्यामू स्वयं कटा-कटा फिरता था। जाने क्यों उसे किसी से बातचीत करने में संकोच मालूम पड़ता था। उसे स्वयं नहीं मालूम था सुभद्रा ने उसके साथ ऐसा अद्भुत आचरण क्यों किया था। बहुत से ऐसे लोग थे जिन्हें सन्देह था, उसके साथ सुभद्रा का अवैध सम्पर्क है। कुछ का ख्याल था पाश्चात्य समाज में पली किशोरी अपनी कामोत्तेजना को रोक नहीं पाई, सबके सामने प्रगट कर बैठी। श्यामू तो जानता था—इससे पहले स्वप्न में भी कभी उससे सुभद्रा से भेंट नहीं हुई थी—जान-पहिचान का होना तो बहुत बड़ी बात थी। और उस दिन भी सुभद्रा की आँखों में उसे चटुल दृष्टि के बदले वात्सल्य प्रेम की झलक दिखायी दी थी। उसका मन यह भी मानने को तैयार न था कि सुभद्रा कामोत्तेजना के कारण अथवा किसी गन्दे विचार से उसकी धोती खिसका रही थी क्योंकि सुभद्रा की आँखों में जिस स्नेह की झलक उसको दिखायी दी थी वह वैसी न थी। बहुत-सी लड़कियाँ श्यामू से प्रगल्भता किया करती थीं। उसके नृत्यगीत से प्रभावित होकर असंख्य युवतियाँ श्यामू से घनिष्ठ होने की कोशिश किया करती थीं। श्यामू किसी को इस नाते मुँह नहीं लगाता था पर निगाहें पहिचानने लगा था। वह कैसे लोगों से ये बातें कहता! सिर्फ अपनी माँ से उसने कहा था "माई उनके आँखी से ओइसन पियार झलकत देखली जइसन तोहरी आँखी में देखिला।"

—'एइसनै समझ्या बेटा। गाँव के बहिन बिटियन के आपन बहिन बिटिया समझै के चाही। हमहन बहुत गरीब हई बेटवा—कउनों अमीर का गुस्सा सहै लायक हमहन में बूता ना हव।" माता के स्वर से भय एवं पुत्र की मंगल कामना एवं आनेवाली विपदा की आशंका प्रगट हो रही थी—

"बेटवा, एक बात हमार मान लेब्या?"

"तोहार कउन बात हम नहीं मानित माई? बतउ-तिव काहे न—का बात है?" लड़के ने दुलराकर माँ से कहा। श्यामू माँ को बेहद प्यार करता था। दुनिया में उसका और था ही कौन?

"गुलबिया का पतोहू बनाय के घरे लियायदा—अकेले अब हमसे काम नहीं होत....." श्यामू समझ गया कि सुभद्रा के काण्ड से माता का मन शंकित हो उठा है। कहीं इतनी अच्छी शादी हाथ से न निकल जाय।

उसका मन विद्रोह कर उठा। दहेज देकर खरीदने वाला ससुर—धन के गर्व से उद्यत। गुलाबी के सिवा क्या धरती पर ब्याहने योग्य कोई लड़की ही नहीं है? प्रकाश्य में उसने यह नहीं कहा। केवल संक्षेप में बोला, "अम्मा, दुलहिन तो तब लावै चाही जब ओका ओढ़ावै-खिलावै लायक कमाई करत होई। अबहिन तोहरे खाय भरे का नहीं है और फालतू आदमी बटोरे से का फायदा?"

"बेटवा गुलाबी घरे आई तो लक्ष्मी इहाँ बस जइहैं"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"माई का तू ऐसन अभागिन हऊ कि तोके पतोहू के दिहल रोटी खाय के होई। अइसन बेटवा का तो जनमय से संघेन मर जाय चाही रहा तोका पतोहू लियावै का होय तो गुलाबी का लिआवा ऊ सेवा लेई तोंहार सेवा कै न सकी।"

बेटे के मुँह पर हाथ रखकर वह बोली, "चुप रह, अईसन बात कबौं कहै के न चाही, तोका गोदी में लइके जब हम बेवा भइल रहली तो बहुत आदमी हमके बियाहल चाहत रहलैं—लेकिन तोहार मुँह ताक के अउर तोहार बाबू का खियाल करके हम राजी नहीं भइ रहली।"

"अम्मा, हमका दुइचार बरिस और कुछ न बोल—फिर देखे तोका लोग दूर से अँगुरी दिखाय के इज्जत से कहिहैं—"ऊ श्यामलाल की माई जात हउवै—बड़ी भागसालिन है।"

एक दीर्घश्वास को दबाकर श्यामू की माँ सुखिया वहाँ से उठ गयी। उसके कानों में बेटे की आत्मविश्वासपूर्ण बातें ध्वनित हो रही थीं।

नदी के किनारे—जहाँ ढेरों पेड़ एक दूसरे से लाग-डाट लगाकर बढ़ रहे थे पर पास-पास होने के नाते एक-दूसरे से दबे भले हों, फैल कोई भी नहीं सका था—और उन्हीं में से एक पेड़ मानों नदी को प्रणाम करने के उद्देश्य से नदी के वक्ष पर निहुरा पड़ा था—उसी की आड़ में श्यामू जा बैठा। उसका मन बड़ा ही अशान्त था। इन अस्वाभाविक तथा आकस्मिक घटनाओं ने उसके ऊपर बड़ा प्रभाव डाला था। इतने में वहाँ छयबर आ पहुँचा और बोला—"क्यों श्यामू, सबेरे से आज मुँह नहीं दिखाया—तुझे ढूँढ़-ढूँढ़कर मैं तो परेशान हो गया। चाची से पूछा, वे भी नहीं बता सकीं। वे तेरा खाना लिये बैठी थीं। बात क्या है?"—सुखिया को छयबर चाची कहता था और सुखिया भी इस प्रियदर्शन अहीर किशोर को सन्तान से अधिक प्यार करती थी।

"भूख नहीं लगी थी इसलिए नहीं खाया", श्यामू ने उदास स्वर से उत्तर दिया। उसकी उदासी छयबर से छुपी न रही। छयबर ने गमछा में बँधे कुछ अमरूद और लइया निकालकर श्यामू के सामने रख दिया और बोला, "तुम्हें भूख लगी है या नहीं यह तो मुझे पता है। लो खा लो। अम्मा ने मुझे दिया और कहा कि तुम दिन भर खाये नहीं हो—और जानते हो, यह अमरूद ललगुदरी है। वही पेड़ जिसे तुमने लगाया था, उसी का पहला फल है। अम्मा ने भगवान् को चढ़ाया और फिर मुझे बुलाकर कहा, 'श्यामू के पेड़ का फल उसे पहिले खिला आ छयबर'—और मैं अमरूदों की पोटली लिए बेवकूफ जैसा मारा-मारा फिर रहा हूँ।"

श्यामू कुछ बोला नहीं। छयबर की माँ उसे बहुत प्यार करती थीं—इसी बात को सोचकर उसकी आँखें छल-छला आईं। वह चुपचाप उनका भेजा फल और लइया खाने लगा।

"श्यामू, तू क्यों सकुचा रहा है। सुभद्रा दीदी सुना पगली है—बेचारी के पागलपन को भगवान् अच्छा कर दे, उसके किसी काम को लेकर चर्चा करना उचित नहीं है।"

"छयबर, मुझे अपने लिये दुख नहीं है—उस बेचारी का नाम लेकर लोग जो गन्दी बातें कर रहे हैं इसका मुझे बहुत दुःख है।"

"पर क्या कर सकते हो भाई! देहात में अगर कोई काम सबसे सरल है तो वह है दूसरों की निन्दा और अकारण चर्चा।"

"अच्छा छयबर, सुभद्रा दीदी क्या बहुत पढ़ी-लिखी हैं?"

"सुना तो है सुइज़रलैण्ड में सीनियर कैम्ब्रिज परीक्षा में प्रथम स्थान पा चुकी हैं। पागल होती तो क्या यह सम्भव था?"

"हमारा ख्याल है, वहाँ ठीक हो गयी थीं। और उन्हें समय-समय पर सनक सवार होती है। पूर्ण पागल नहीं भी होंगी।"

"काश कि मैं उनका सगा भाई होता तो उनसे अच्छी तरह अंग्रेजी पढ़ लेता।" आन्तरिक खेद के साथ श्यामू बोला।

"कितनी सुन्दर अंग्रेजी वे बोलती हैं," बोला छयबर।

"तुमने कहाँ सुन लिया?" चकित होकर श्यामू ने पूछा।

छयबर बोला, "वाह, रेडियो में सुना। अक्सर वे बोला करती हैं·····लगता है कोई अंग्रेज महिला बोल रही हैं—क्या मजाल कोई हिन्दुस्तानी समझे!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्यों भाई, किसी तरह उनसे अंग्रेजी पढ़ने का प्रबन्ध नहीं कर सकते ?"

"हरगिज नहीं। कल के किस्से के बाद तो उनसे मिलने या बोलने की बात तक जुबान पर न लाना। उन बेचारी को बदनाम करने से हमें क्या लाभ ?"

"ले एक गाना सुनाऊँ तुझे—आज ही लिखा है मैंने" बोला छयबर और उसका सुमधुर स्वर उस निर्जन कुंज में गूंज उठा—

अइसन बिगड़ल मोर सजनवा घर घुमनवा होय गइल ··।
एवर ओघर घूम घूम के खेलै आँखमिचौली
लाकै एन्हि ओन्हि लोगवा बोलैं हमका बोली
सखियाँ मारैं मोहें तनवा घर घुमनवा होय गइल
अइसन बिगड़ल मोर सजनवा····

गाने के बहाने उसने उस अप्रिय प्रसंग को बदलना चाहा और श्यामू के मन के भार को हल्का करना चाहा। सुखिया बड़ी गरीब थी। दूसरों के खेतों पर मेहनत-मजदूरी करके, गोबर इकट्ठा करके कंडे पाथकर और अपनी दो गायों के दूध को बेंचकर वह किसी तरह गुजारा करती थी। जब से लड़के को वृत्ति मिलने लगी थी तब से पढ़ाई के खर्चे से वह बच गयी थी।

श्यामू जब बड़ा हो गया और नृत्यगीत से भी अच्छा कमाने लगा तब उसने कुछ रुपये इकट्ठा करके जमीन खरीदी। थोड़ी सी जमीन सरकार की ओर से मिली। अब एक जोड़ा बैल खरीदने के लिए थोड़ा-थोड़ा करके रुपये जोड़ रही थी। सरकारी सहायता के बारे में लड़के ने कहा था, "माई सरकारी रुपिया ओके लेवै द्या, जेकरे कमाई के कौनो साधन ना हव। यही पर भरोसा करै लें। हमके तो भगवान् कुछ आमदनी देहले हवैं। हमहूँ अगर सरकारी रुपिया लेब तो ओह बेचारन का पइहैं ?"

सुखिया बेटे की बात मान गयी। दरिद्रता के भयानक रूप को उसने देखा था—वह नहीं चाहती थी कि ईश्वर किसी को ऐसा दुर्दिन दे। अब तो श्यामू की बदौलत उसे दरिद्रता का विकराल रूप नहीं देखना पड़ता था।

छयबर से श्यामू की दोस्ती को देखकर लोग कहा करते थे कि पिछले जनम में ये दोनों भाई-भाई रहे होंगे—इनकी मातायें भी लड़कों की मित्रता को देखकर एक-दूसरे के घनिष्ठ हो गयी थीं। समाज के डर से छयबर की माँ सुखिया से घर पर अधिक मेल-जोल भले न बढ़ा सके—खेत-खलिहान में दोनों एक-दूसरे के सुख-दुःख की बातों में भाग लिया करती थीं। दोनों एक दूसरे की संतान को अपनी संतान जैसा मानती थीं।

सुखिया श्यामू के बारे में छयबर की माँ से खुलकर चर्चा किया करती थी क्योंकि वह जानती थी, श्यामू को वे छयबर जैसा चाहती थीं। उस दिन सुखिया ने पूछा, "सुनले हह कि पण्डितजी बिटिया का शहर लै जइहैं—और कब्बौं न अइहैं।"

"हमहूँ सुनले रहिल। लेकिन सुभद्रा तो बहुत बीमार हइन। बार-बार मुच्छाय जालीं—जबले तक अच्छी न होइ जइहैं तबलेक उनके कहीं कइसे ले जइहैं ?"

"ई बीमारी कब से भइल बहिनी—" उद्विग्न होकर सुखिया ने पूछा। उसका मातृहृदय सुभद्रा की बीमारी के संवाद से व्याकुल हो उठा।

"ओही दिन से भइल हवै। डाक्टर लोग कहत हउवैं ओकरे मन का कौनों सदमा पहुँचल हवै—ऊ लोग तो ई कहले हउवैं कि सुभद्रा जइसन चाहैं ओइसन करै द्या। मना न करैं कुछ दिन, ताकि जेह से जइसन रहली ओइसन होय जाय।"

"भगवान् बेचारी का ठीक कर दें····।" एक दीर्घश्वास त्यागकर सुखिया ने कहा।

हफ्ता भर बीत गया था। कुछ तो सुभद्रा की संगीन बीमारी, कुछ पंडितजी का भय, कुछ स्वार्थ सिद्ध करने की अभिलाषा—सब मिलाकर लोगों को सुभद्रा के चरित्र की रोचक समालोचना करने से रोका था। लोग अब उस चर्चा को नहीं किया करते थे।

सुभद्रा ठीक हो गयी थी। पर अधिक बोलती-चालती नहीं थी। उस दिन वह नदी किनारे टहल रही थी। एका-एक दूर नदी किनारे श्यामू दिखाई दिया। सुभद्रा की आँखें चमक उठीं। चेहरा उद्भासित हो उठा और वह द्रुत उसके पास जा पहुँची। उसे देखकर श्यामू इतना घबरा गया कि उसका चेहरा विवर्ण हो उठा और मुँह से बोली नहीं निकली।

बड़े प्यार से उसके सर पर हाथ रखकर सुभद्रा बोली, "बच्चू तू कितना बड़ा हो गया है—मुझे पहिचान नहीं सका ? मेरा बेटा कहाँ है ? उसे अब भी साँस की तकलीफ है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामू की समझ में कुछ भी नहीं आया। वह निर्वाक् खड़ा रहा। सुभद्रा ने उसके सर पर हाथ फेरने के बाद एकाएक उसके माथे को चूमा। श्यामू को आश्चर्य हो रहा था कि इस युवती के स्पर्श अथवा चुम्बन से उसके मन में पुलक का संचार तो हुआ परन्तु कोई विकार नहीं आया। उस चुम्बन में और बचपन में सुखिया के चुम्बन में जाने कहाँ एक सादृश्य नजर आया।

सुभद्रा की नौकरानी ने कुछ नहीं कहा क्योंकि उसे आदेश था कि वह साथ रहे पर सुभद्रा की इच्छा के विरुद्ध कुछ न करे।

सुभद्रा ने श्यामू को दुलारने के बाद कहा, "आ घर चलें।"

श्यामू ने दुर्बल स्वर में कहा, "पण्डितजी बुरा मानेंगे—मुझे जाने दें।"

"तेरे घर चलूंगी बच्चू—हमारे बेटे और बहू को देखने—चल।"

सुखिया का घर एकान्त में था। बस्ती से दूर गाँव के एक प्रान्त में। सुभद्रा अपने आप चलकर वहाँ पहुँची। हालाँकि इससे पहिले वह कभी श्यामू के घर नहीं गयी थी और न ही किसी ने उसका पथ-प्रदर्शन किया था। श्यामू के घर के बाहर नीम के नीचे सुखिया गोबर के कंडे पाथ रही थी। सुभद्रा शीघ्र ही उसके पास पहुँची और दुलार से बोली, "मेरी सूखा रानी, तू गोबर न पाथ—रामा या राधा से कह दे पाथ दें! तू हमारी बड़ी दुलारी दुलहिन है।"

सुखिया चौंक पड़ी। रामा, राधा उसकी ननदें थीं। दोनों कई वर्ष पहिले मर चुकी थीं। श्यामू ने उन्हें देखा भी न था। गाँव के लोगों को भी उनकी याद न थी। इसलिए एकाएक सुभद्रा से उन दोनों का नाम सुनकर वह चकित रह गयी। सुखिया को भी इस प्रकार सम्बोधन उसकी सास किया करती थीं पर उन्हें मरे तो पन्द्रह-सोलह वर्ष हो गये। उनकी याद भी वे भुला बैठी थीं। याद आया, जब वे इस घर में बिदा होकर आई थीं तो उनकी सास कितनी खुश हुई थीं। उसे ससुर की याद नहीं है। वे उसके आने के कुछ दिनों बाद मर गये थे। जब लोगों ने उनके आगमन और ससुर के देहान्त के बीच कार्य कारण सम्बन्ध की चर्चा की थी और कहा था बहू आते ही ससुर को खा गयी तो सास ने दृढ़ स्वर में उन्हें जता दिया था—"अगर मेरी बहू के आने से माँग का सिन्दूर किसी का मिटा है तो मेरा। आप लोगों को फिक्र क्यों है। ऐसी कड़ुई बातें आप लोग कृपा करके दुलहिन के सामने तो न कहा करें।" भले वह छोटी जात की रही हो, पर उनमें एक आभिजात्य था—लोग उनकी बातों पर ध्यान दिया करते थे।

"क्या सोच रही है पगली—मुझे यह तो बता मेरा बेटा कहाँ है?"

"कौन बेटा?" दबी आवाज में त्रस्त सुखिया ने पूछा।

"और कौन बेटा—बच्चू का बाप रामकृपाल—मेरा नन्हूँ!"

सुखिया की आँखें विस्फारित हो उठीं। ये तो उसके मृत पति का नाम है। उन्हें 'नन्हूँ' कहकर केवल सास पुकारा करती थीं। अब तो "किरपलवा" नाम के नीचे नन्हूँ नाम जाने कब दब गया था—खो गया था। बहुत दिनों बाद पति के उल्लेख से, सो भी उनके छुटपन के नाम से, सुखिया की आँखें गीली हो उठीं। रुँधे स्वर में वे बोलीं, "वे नहीं हैं—मर चुके।"

"मेरा नन्हूँ मर गया? अब नहीं है।" कहती हुई सुभद्रा अचेत होकर गिर गयी। सुखिया ने चटपट उठाकर उसका सर अपनी गोद में ले लिया। मुँह पर पानी का छींटा देकर पंखा झलना शुरू किया तो सुभद्रा ने धीरे-धीरे आँखें खोलीं। बड़े स्नेह से सुखिया की ओर ताककर फिर आँखें बन्द कर लीं।

श्यामू पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा था। सुभद्रा की नौकरानी हक्का-बक्का थी। पण्डितजी को खबर देने जाय तो सुभद्रा को यहाँ कौन देखे—और न जाय तो कौन जाने पण्डितजी खफा हों। वह चुपचाप खड़ी तमाशा देख रही थी—"क्या हुआ था मेरे लाल को—दुलहन?" सुभद्रा ने पूछा। उसके बोलने का ढंग ऐसा था मानों वह सुखिया की बड़ी बूढ़ी हो—सुखिया के जवाब की प्रतीक्षा किये बिना स्वयं बोली, "वही साँस की बीमारी—?"

"हाँ" बोली सुखिया।

"मैंने तो बच्चू को देखकर ही पहिचाना था। बिल्कुल नन्हूँ जैसा! अपने बाप को पड़ा है। सर पर निशान है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या कमर के नीचे 'मसा' है बहू ? मैंने धोती हटाकर देखना चाहा था पर मेरा पोता लजा गया।"

'हाँ' बोली सुखिया—"पर बिटिया रानी, आपको ये सब बातें कैसे मालूम हुईं ? आप तो तब जनमी भी न थीं और न ही कभी इधर आईं ? आप बच्चू की दादी और मेरी सास कैसे बन बैठीं ?"

"खूब कहा तूने ! तुझे नन्हीं-सी गुड़िया जैसी ब्याह कर मैं लाई थी तो अब पहिचान भी न सकूँगी। अपने बाल-बच्चों को भी पहिचानने के लिए दूसरों की जरूरत पड़ेगी क्या ?"

"तो आप क्या····?"

"हाँ, मैं नन्हूँ की माँ सीता हूँ—तू मेरी दुल्हन सुखिया है और वह जो खड़ा है" कहकर श्यामू की ओर इशारा करके कहा, "और वह मेरा लाड़ला पोता बच्चू है।" फिर कुछ देर चुप रहकर बोली, "तेरी 'बुधिया' गइया कहाँ गयी ?"

"बुधिया तो उनके मरने के बाद बिक गयी थी। ओ श्यामू ये तेरी आजी हैं—इनके पाँव छू" पुकार उठी सुखिया।

उसे कलेजे से लगाकर सुभद्रा रोने लगी। "मरते समय सिर्फ तुझे छोड़ जाने का दुःख मुझको था बच्चू—और तभी तेरे पास फिर आ पहुँची।" सुभद्रा बोली। अब उसके दिमाग पर से मानों एक काला पर्दा उठ गया। बोली, "तेरे ससुर जी की याद मुझे बहुत कम है मगर दो बातें उनके बारे में याद हैं। एक तो उनके सीने पर बाईं ओर जन्म से ही काला चिह्न था। दूसरे बायें पैर की कानी उँगली टेढ़ी थी। वे गाना बहुत अच्छा गाते थे। नाचते भी खूब थे·····।"

"उनके बारे में और कुछ याद है आजी ?" श्यामू ने पूछा। उसके मन में एक घोर सन्देह उठ खड़ा हुआ था। यह वर्णन उसे किसी की याद दिला रहा था।

"विशेष कुछ याद तो नहीं है पर इतना याद है कि वे बजरी की ढूँढ़ी बहुत पसन्द करते थे और खाते समय उनकी दाहिनी भौं ऊपर उठ जाया करती थी।"

"यह तो छयबर की आदत है अम्मा", बोला श्यामू।

"छयबर—छयबर कौन है बच्चू ?" सुभद्रा ने पूछा।

"मेरा दोस्त", बोला श्यामू।

"आजी मैं आपसे अंग्रेजी पढ़ा करूँगा। मुझे अंग्रेजी पढ़ा दोगी न ? छयबर भी पढ़ेगा—छयबर वही है जो मेरे साथ नकली बाल और मोरपंख लगाकर उस दिन नाच रहा था।" सुभद्रा को याद आया दूसरा किशोर जिसे देखकर वे लजा गई थीं।

"जरूर पढ़ा दूँगी मेरे लाल ! तुम्हारे सिवा हमारा है ही कौन ?"

जब सुभद्रा वहाँ से नौकरानी के बारम्बार तकाजे पर उठकर चली तो सूरज डूब चुका था। गोधूलि का म्लान आलोक भी लुप्तप्राय था।

सुभद्रा प्रफुल्ल थी। जन्म-जन्मान्तर का ढूँढ़ना आज समाप्त हुआ। उसके हृदय पर से मानों बड़ा भारी बोझ उतर गया था। उसे उसका स्नेहास्पद मिल चुका था। उसके दिमाग की उलझन सुलझ गयी थी।

राजारामजी को दासी ने यथासमय बिटिया रानी की सारी बातें बता दी थीं। पण्डितजी समझ गये कि सुभद्रा को गत जन्म की बातें याद आ गयी हैं। यही कारण था कि वह बचपन से अस्वस्थ रहा करती थी। दरअसल बिगत जन्म की याद से मस्तिष्क उत्तेजित हो उठता था जिसे लोग अब तक समझ नहीं पाये। यह समझकर वे डरे कि सुभद्रा गाँव के नन्हूँ चमार की माँ थी—अगर गाँववालों को यह पता चला तो न जाने कैसा बवण्डर खड़ा कर देंगे।

इसलिए उन्होंने काम के बहाने श्यामू की माँ को सुभद्रा की देखभाल के लिए नौकरानी रख लिया। राजाराम और तपेसरा देवी हृदय से भले पसन्द न करती हों परन्तु इक-लौती लड़की का प्रौढ़ा हरिजन रमणी को पतोहू कहना एवं बड़ी बूढ़ी जैसी बातचीत में वे कौतुक का अनुभव किया करते थे जिसमें सुभद्रा को सुख और शान्ति मिले, उसमें उन्हें भी आनन्द मिलता था।

श्यामू का वहाँ आना-जाना सुखिया पसन्द नहीं करती थी क्योंकि गाँव में गलतफहमी बढ़ने का भय था। वह खुलकर किसी से वास्तविक बात कह न सकेगी क्योंकि इससे पण्डितजी की घोर बदनामी होती। सुभद्रा को भी अपार क्षति पहुँचाती। इन्हीं बातों को सोचकर वे लड़के को वहाँ आने से रोका करती थीं। हालाँकि श्यामू का मन सुभद्रा के प्यार के लिए सदा प्यासा रहा करता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुभद्रा खाने बैठती तो साथ ही साथ सुखिया को भी खाना परोसा जाता था। बड़े स्नेह से वह सुखिया को सामने बिठाकर भोजन करवाती और फिर कटोरदान में श्यामू के लिए भोजन रखवाती थी। उसके बहुत अनुरोध करने पर भी श्यामू को सुखिआ वहाँ नहीं बुलाती थी। उसने सुभद्रा को समझा दिया था कि श्यामू का वहाँ आना गाँव में अप्रिय चर्चा आरम्भ करवा देगा और तब कहीं श्यामू के साथ उन्हें भी गाँव न त्यागना पड़े। उन्हें पाकर भी खोने के भय से सुभद्रा चुप हो जाती थी।

"सुभद्रा बेटी तू तो पढ़ी-लिखी है, इस बात को क्यों नहीं समझती ?" पंडित राजाराम ने एक दिन बात छेड़ दी थी, "इस जनम में तो तू बाम्हन के घर पैदा हुई है—अब समाज के नियम को मानकर क्यों नहीं चलती ?"

"—डैडी, नियम के माने नफरत ! क्या हरिजनों को नफरत की निगाहों से न देखना सामाजिक अपराध है ? अगर डैडी हममें से कोई अगले जन्म में हरिजन के घर जन्म ले ले तो क्या हमें बाम्हन-ठाकुरों का अपमान नहीं चुभेगा ! डैडी, पश्चिमी देश की उन्नति की जड़ में एक मुख्य बात है। वहाँ जात-पाँत नहीं है और इन्सान होकर इन्सान को कोई नफरत नहीं करता ! इन्सान के स्वभाव और काम पर इज्जत निर्भर करता है ?"

"पर यह बिलायत नहीं भारत है—और भारत का भी बहुत पिछड़ा हुआ गाँव है।" बोले थे राजाराम जी।

"डैडी, हमें समाज को बदलना होगा। यदि आप जैसे धनीमानी शिक्षित लोग ऐसे सामाजिक नियमों के विरुद्ध विद्रोह नहीं करेंगे तो फिर और कौन करेगा ?"

पं० राजाराम चुप हो जाते। नादान लड़की से क्या तर्क करें। यहाँ क्या इस प्रकार का विरोध करके कोई शान्ति से रह सकता है ? नक्कार खाने में तूती की आवाज़ !

× × ×

"आजी, हम कहीं ऐसी जगह नहीं जा सकते जहाँ इन्सान को इन्सान समझा जाता हो—जहाँ आजी-पोते के बीच जात-पाँत की दीवार बनाकर उन्हें अलग न रखा जाता हो।"

"क्यों नहीं मेरे बच्चू ! यहीं अब क्रान्तिकारी परिवर्त्तन आ रहा है। देखते नहीं पुराने संस्कार के किले ढह रहे हैं और आरम्भ हो गया है नवनिर्माण। इतने हजारों वर्ष के कोढ़ को हटाने में कुछ समय तो लगेगा ही।"

"आजी, हमारी तुम्हारी जिन्दगी बीत जायगी इसी गन्दगी में।" बोला श्यामू।

"नहीं बेटे ! अब वह दिन दूर नहीं पर मुझे अगर सौ बार मरना पड़े और जनम लेना पड़े तो मैं राजी हूँ—बशर्त्ते देश से जात-पाँत का भेद हट जाये।"

"आजी कल चाँदनी रात है। हम दोनों रात को नदी पर नाव में सैर करने चलेंगे—तुम भी चलोगी ?"

श्यामू से सुभद्रा की बातें हो रही थीं सुभद्रा के विशाल आम्र-कुंज के भीतर ट्यूब वेल के चबूतरे पर बैठकर।

"जरूर चलूँगी बच्चू। यहाँ मकान के भीतर बन्द रह-रहकर मैं हाँफ उठी हूँ।"

"अच्छा आजी बिलायत में लोग बड़ी आजादी से घूमते फिरते होंगे।"

"हाँ बच्चू—पर वहाँ भी भेद है—अमीर-गरीबों का, ऊँचे और नीचे खानदानवालों में भयानक भेद है। इन्सान जब तक दूसरे को नफरत नहीं कर पाता तब तक उसका अहम् भाव सन्तुष्ट नहीं होता।"

"सभी मानव हों....."

"भारत को क्यों न हम लोग ऐसा देश बनायें जहाँ जात-पाँत न हो—अमीर-गरीब न हों—ऊँचा-नीचा न हो। सब समान हों—सभी मानव हों—एक दूसरे के सुख-दुःख में हाथ बँटायें और एक दूसरे की मदद करें।"

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाँदनी रात थी। ज्योत्सना का मानों ज्वार आया था। एकान्त नदी के निर्जन तट पर श्यामू अधीरता से सुभद्रा की प्रतीक्षा कर रहा था। वह आई। हाई हील सैण्डल पहिने, शरीर पर हल्का सुन्दर स्कर्ट—मानों परी हो! इस समय उसे देखकर कौन कह सकता था कि खास् बिलायत की मेम नहीं है? उसने जान-बूझकर इस पोशाक को पहिना था। कहीं कोई देख भी ले तो चट से सुभद्रा कहकर पहिचान न सके।

"आजी, आप इतनी ऊँची एड़ीवाला जूता पहिन के कैसे चल लेती हैं? बिलायत में रहकर मेमियन के साथ अइसन जूता पहिनै सीखे रहिउ?" श्यामू ने विशुद्ध बोली और देहाती बोली मिलाकर सुभद्रा से पूछा। वैसे वह शुद्ध ही बोलने की कोशिश किया करता था।

"नहीं बच्चू—तेरे आजा ने एक बार किसी बड़े साहब की मेम के लिए हाई हील का जूता सिला था। उन्होंने वैसा ही जूता मेरे लिए भी सिल दिया था और रात को एकान्त में हाथ पकड़कर मुझे चलना सिखाया करते थे" कहती हुई वह हँस पड़ी। विगत जन्म के पति की याद से वह लज्जा के मारे संकुचित हो उठी।

"दिन के काहे नहीं पहिनत रहिउ?"

"अरे बाप रे—दिन के चमाइन जूता पहिन के घूमी—और लउनो अइसन जूता?"

वे हँस उठीं। उनकी हँसी के पीछे वेदना झलक उठी। कितने असहाय थे ये लोग। हरिजन के घर में अगर जन्म ले लिया तो मानो इन्सान नहीं। मनुष्यत्व के अधिकार से वंचित—समाज के बनाये अनुचित नियम कानून एवं स्वार्थी और नीच लोगों के द्वारा उत्पीड़ित।

"आओ आजी हमारा हाथ पकड़कर नाव पर चढ़ो।" नाव पर से हाथ बढ़ाकर श्यामू ने कहा।

उसका हाथ पकड़कर नाव पर चढ़कर सुभद्रा बोली, "बच्चू ऐसा लग रहा है—कई साल पहिले तेरे आजा के साथ मैं इसी तरह नाव पर सैर करने जाया करती थी। मगर यह बात किसी को मालूम न थी। तेरे आजा को बहुत सुन्दर नाचना आता था। आसपास के देहातों में जमींदार और बड़े आदमियों के घर पर कोई शादी-ब्याह होता तो उन्हें बुला ले जाते थे। देखने में भी वे....।"

सुभद्रा रुकी। उसके सामने जगमगा उठा २२-२३ वर्ष का एक युवक का चेहरा। छरहरा साँवला बदन, सर पर काले कुंचित केश—बहुत बड़ी-बड़ी आँखों में कोमल स्निग्ध दृष्टि—सुन्दर स्फुरित अधरों पर मीठी मुस्कान। ऐसा चेहरा कि देखने से प्यार करने को जी चाहता था। इतने वर्षों के बाद भी सुभद्रा का हृदय उस युवक के लिए ममता से भर उठा था। श्यामू बोला—"चुप क्यों हो गई आजी—कुछ कहने जा रही थी न।"

'हाँ', मानो सुभद्रा स्वप्न से जग उठीं, बोलीं, "हाँ बच्चू—मैं तेरे आजा की बात कह रही थी। बड़े सुन्दर थे वे। चेहरा इतना प्यारा था....।" इस समय सुभद्रा के मुखड़े पर नई दुल्हन की सी लज्जा, संकोच और झिझक दिखायी पड़ी। लगा, अपने प्रियतम की बात बताने में लजा रही है वह.....।

"वे बहुत अच्छा नाचते थे तो पैसे भी अच्छा कमाते रहे होंगे?"

"नहीं बच्चू? चमार-पासी होकर पैसे का ख्वाब देखना भी पाप था। एक तो महाजनों का उधार—वह कभी अदा नहीं हो पाता था। दूसरे जमींदार का बेगार....उसका भी अन्त न था। फिर जब उन अमीरों में से किसी के यहाँ से नाच का बुलौवा आता तो पैसा माँगे, इतनी हिम्मत किसमें थी?—यह और बात है कि देखनेवाले खुश होकर उन पर पैसे बरसाते थे....नाच का भी बेगार देना पड़ता था।"

"आप लोगों के घरवाले कैसे थे जो इतना डरते थे?"

"घर में आग लगाकर सबको वे लोग जलाकर मार सकते थे।"

"उनका घर भी न जल जाता?" श्यामू ने सरल प्रश्न पूछा।

"नहीं। हरिजनों के घर गाँव के एक छोर मे थे। गाँव के अन्दर ठाकुर-बाम्हनों के बीच हरिजन किस बूते पर रहते? वहाँ एकान्त में आग लगवा देने से दूसरों के घरों को कोई खतरा नहीं था।"

"आजा वगैरह क्यों इतना अत्याचार चुपचाप सह लेते थे, प्रतिवाद क्यों नहीं करते थे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्रतिवाद कौन करता ? सुनता भी कौन ? जिन लोगों को दो वक्त खाना नहीं मिलता था। तड़के से आधी रात तक मेहनत करके जो पेट भर खाना को भी तरस जाते थे, वे हिम्मत करते विद्रोह करने की ?—नहीं बच्चू—आज जब सरकार ने जात-पाँत हटा देने के लिए इतने कानून बना दिये हैं—आज जब छुआछूत माननेवाले को कड़ी सज़ा देने की व्यवस्था की गयी है तब भी क्या हम हरिजनों को सचमुच अपना सके हैं ?"

"आजी, आप हम लोगों से इतना अपनापन दिखायेंगी तो आपके समाजवाले आपको समाज से निकाल देंगे। आपको समाज का डर नहीं लगता ?"

"मुझे समाज की परवाह नहीं है बच्चू ! वैसे ही बिलायत में पलने के कारण वे मुझे नेक निगाह से नहीं देखते और कभी भी अपना नहीं समझेंगे—यह और बात है कि वे हमारे धन-दौलत के कारण सामने कुछ न बोलें—और फिर यह जात-पाँत का नियम कितना गलत है, यह मुझसे ही साबित होता है। मैं ही चमारिन थी, मैं ही बाम्हनी हूँ। किसी के नीच कुल में जन्म लेने से उससे घृणा करना पाप है। कर्म से लोगों को श्रद्धा अथवा घृणा करना चाहिए। किसी घर में जन्म लेना तो अपने हाथ में नहीं है फिर क्यों भेद किया जाय ?"

"आजी, यह तो आपने ठीक ही कहा है मगर मुझे आपकी चिन्ता रहती है। हमारे लिए अगर आपको कोई कुछ कहे तो हमें बड़ा दुःख होगा।"

"मगर बच्चू, अब समय आ गया है जब हम लोगों को इस जाति-प्रथा का विरोध करना चाहिए और इन्सान होकर इन्सान को नफरत करनेवाली आदत बदलनी चाहिए।"

"अच्छा आजी, हमारे बाबू तुम्हें बहुत प्यार करते थे ?"

"हाँ बच्चू ! नन्हूँ जब नन्हा सा था तो हमें पल भर के लिए नहीं छोड़ता था। मैं घास काटने जाती थी तो वह साथ जाता था। कहीं काम करने जाती थी तो वह साथ-साथ रहता था। तेरे आजा जब तक घर पर रहते थे तब तक उसे अपने कन्धे पर लिये-लिये फिरा करते थे। उनका भी बड़ा दुलारा था वह ! जब तेरे आजा मरे थे तो नन्हूँ मिट्टी नहीं उठाने दे रहा था। उनके पास बैठा उन्हें जगाने की कोशिश कर रहा था; परन्तु अनन्त नींद से कभी कोई जागा है जो वे जागते। तेरे आजा के बाद मैं पल भर न जीती अगर नन्हूँ न रहा होता···।"

"किसने बप्पा को पाला-पोसा था ? आजा के बाद घर पर आप सब तो अनाथ हो गयी होंगी ?"

"हाँ बच्चू ! अनाथ तो हो ही गयी थीं। परन्तु मैंने दिल मज़बूत किया और उनके जूते की दूकान की देख-भाल शुरू कर दी। उसी दूकान से हमारी रोज़ी-रोटी चलती थी। लोगों ने, खासतौर पर जात-बिरादरीवालों ने दूकान हड़पने की बहुत कोशिश की। मगर मैं अड़िग रही···।"

"हिसाब-किताब, लिखा-पढ़ी कौन करता था, आजी ?"

प्रश्न सुनकर सुभद्रा चुप रही। कुछ देर बाद मुस्करा-कर बोली, "तेरे आजा को बड़ा शौक था मुझे पढ़ाने-लिखाने का, इसलिए रात को मुझे बिठाकर पढ़ाते थे।"

"वे पढ़े-लिखे थे आजी ?" श्यामू ने गर्व अनुभव किया, अपने आजा पर।

"हाँ बच्चू। वे हिन्दी अच्छी तरह लिख-पढ़ लेते थे। थोड़ा-बहुत हिसाब लगा लेते थे और अंग्रेजी में अच्छी तरह बोल लेते थे। एक अंग्रेज के यहाँ छुटपन में नौकरी की थी। उसी ने पढ़ाया-लिखाया था और उसी ने दुकान खुलवा दी थी। वह पादरी था। मगर बहुत भला आदमी था। पहले तो वह तेरे आजा को ईसाई बनाना चाहता था पर उन्होंने जब धर्मत्याग नहीं किया तो वह तेरे आजा के धर्म के प्रति लगाव देखकर बड़ा खुश हुआ और जूते का काम सिखवाकर दूकान खुलवा दी थी। जब तक वह भारत में रहा, तेरे आजा को अपना लड़का जैसा मानता था। उनके मरने के साल भर पहिले बिलायत चला गया था। उसके जाने के बाद तेरे आजा सिर्फ एक साल जिन्दा थे।"

"आपने भी अंग्रेजी बोलना सीख लिया था उनसे ?"

"नहीं बच्चू—अंग्रेजी बोलना तो मैंने नहीं सीखा था पर थोड़ा-बहुत पढ़-लिख लिया था और उसी पढ़ाई का लाभ उनके मरने पर मिला।"

"मेरी इच्छा थी नन्हूँ को पढ़ाऊँ-लिखाऊँ, मगर गाँव में स्कूल नहीं था। तहसील में जो स्कूल था वह एक धनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित का था। वहाँ चमार बच्चे का दाखिल होना कठिन था और फिर नन्हें से बच्चे को आरम्भ से ही घृणा और नफरत का सामना करना पड़े, यह मैं नहीं चाहती थी। इसीलिए नन्हूँ को मैंने घर पर खुद ही थोड़ा-बहुत पढ़ाया था और फिर दूकान के काम में लगा दिया था।"

"पढ़-लिख लेते तो वे भी अफ्सर बने होते—हैं न आजी ?"

"मेरे लाल, पढ़ने-लिखने का उद्देश्य सरकारी नौकरी नहीं होना चाहिए। बिलायत में तो नौकरी सबसे बुरी चीज़ समझी जाती है। जब कहीं ठिकाना न लगे तो लोग नौकरी ढूंढ़ते हैं। पढ़ो-लिखो बुद्धि के विकास के लिए, चरित्र बनाने के लिए। यदि कोई व्यवसाय हो तो उससे घृणा न करो—देखो न, अब तो शहर में जूते की बड़ी-बड़ी दूकान हैं जहाँ ऊँची जातवाले नौकरी करने के लिए मुँह बाये बैठे रहते हैं।"

"आजी, आप के विचार कितने अच्छे हैं और आप बोलती भी कितनी प्यारी हैं। आजी मैं भी पढ़ाई में अच्छे नम्बर से पास होता हूँ—आपको मालूम होगा।"

"क्यों नहीं होगा मेरे लाल ? तेरा आजा पढ़ाई में तेज था। मैं भी तेरी पढ़ाई के लिए व्यग्र थी तो तू क्यों पढ़ाई पसन्द नहीं करेगा ? आखिर औलाद किसकी है ?"

श्यामू को गर्व का अनुभव हो रहा था। आज वह अपने आपको सब के समान अनुभव कर रहा था। वह सुभद्रा का नाती है। उसके बाप-दादा भी अनपढ़ गँवार नहीं थे। पढ़े-लिखे स्वावलम्बी इन्सान थे। अपनी मेहनत की कमाई खाते थे।

चारों तरफ चाँदनी छिटकी हुई थी। दूर तक नदी पर कोई और नाव नहीं थी। चाँदनी फैल जाने से नदी पर अपूर्व शोभा छाई थी। एकाएक बहुत दूर एक काली सी चीज नजर आई। श्यामू ने कहा, "कोई नाव आ रही है आजी। चलो हम लौट चलें।"

सुभद्रा कुछ नहीं बोली। वह सोच रही थी, इस संसार के अनित्य होने की बात। आज ऐसा लग रहा था कि बीच के ये वर्ष मानों बीते ही नहीं। श्यामू का चेहरा आजा से उतना नहीं मिलता था जितना नन्हूँ से ! आज वे क्या स्वर्ग में बैठे देख रहे होंगे कि सीता पोते को लेकर नदी की सैर कर रही है ? या वे भी कहीं और जन्म ले चुके हैं ? क्या पूर्व जन्म के पति-पत्नी दूसरे जन्म में बिछुड़ जाते हैं ? एकाएक नृत्यरत किशोर का चेहरा उनके मन में कौंध गया।

दूर से किसी का गीत सुनायी दिया—

"तोंहे बिना अँगना उदास साँवर गोरिया रे,
तोहे बिना अँगना उदास
जब से गइलू धनि तुहु नईहरवा,
निक नहीं लागे गोरी खेत खलिहनवा।"

सुभद्रा चौंक पड़ी—हूबहू उन्हीं जैसा स्वर—वही मादकता, वही मिठास, वही जादू "मेरा मित्र छयबर गा रहा है। आपके साथ सैर करने को वह राज़ी नहीं हुआ मगर कहीं मुझ पर कोई विपदा न आ पड़े इसलिए नदी किनारे टहलकर मेरी चौकीदारी कर रहा है।" कहकर श्यामू हँसा।

नाव लौटकर किनारे लगी। सुभद्रा को सावधानी से किनारे उतारकर श्यामू नाव बाँधने लगा और सुभद्रा घर की ओर चल पड़ी।

श्यामू आज बड़ा प्रसन्न था। इसलिए आजी के जाने के बाद भी वह नाव पर ही बैठा रहा। आसमान की ओर ताककर वह सोच रहा था—"वहीं कहीं उसके बप्पा हैं—आजा हैं·····क्या वे अपने वंशधर को देख रहे होंगे—आशीर्वाद दे रहे होंगे ? आजा के नाम पर वह चौंका—तो क्या छयबर·····।"

उसका ध्यान किसी की बोली से भंग हुआ। देखा गाँव के प्रधान और सिरी यादव खड़े हैं। सिरी पूछ रहे थे, "क्यों रे श्यामू—कोई नाव पर और भी तो था।"

श्यामू ने उत्तर नहीं दिया। वे दोनों सन्दिग्ध हो उठे। सिरी ने अन्दाज़न ही पूछा, "पंडितजी के घर की ओर जाते देखा किसी औरत को—है न ?" इस पर भी श्यामू निर्वाक् रहा। वह झूठ कम बोलता था—आज एकाएक सही बात के सामने चट से झूठ कैसे बोलता और क्यों बोलता ? मगर उसे इन लोगों के अभद्र इशारे पर क्रोध भी आ रहा था। वह इस प्रश्न को टालने के लिए घर की ओर चल पड़ा। अब प्रधान से रहा न गया। वे कड़क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर बोले, "अबे साले चमार सियार होकर बात का जवाब नहीं देता ? अभी पचास जूते मारूँगा···।"

श्यामू कुछ दूर गया था। रुक गया। मुँह फेरकर शान्त परन्तु कठिन स्वर में बोला, "प्रधान, तमीज से बात करना सीखो—अगर गाली निकालोगे तो जुबान खींच लूंगा—जूता क्या मारोगे, मैं अकेले ही तुम दोनों की हड्डी-पसली चूर-चूर कर सकता हूँ—समझे ?"

"अच्छा, अच्छा खूब कहा"—कहते हुये प्रधान चुप हो गये। इस निर्जन रात में सचमुच अगर लौंडा झपट पड़े तो वे कर ही क्या लेंगे ? उसकी उभरी हुई मांश पेशियाँ सचमुच डरावनी सी थीं।

दूसरे दिन तड़के ही सिरी यादव को लेकर वे थाने पहुँचे और रपट लिखाना चाहा। वे रात को लौटे थे तो श्यामू चमार को एक औरत के साथ सन्देह जनक हालत में देखा—वह औरत राजाराम पंडित के घर की ओर भाग गयी और श्यामू ने उन्हें मार डालने की धमकी दी। उन्हें जान माल का खतरा श्यामू चमार की ओर से है।.....

दरोगाजी ने प्रधानजी से कहा, "पंडितजी, आपको मैं झूठा कैसे कहूँ, पर यह कोई मानेगा कि गाँव के प्रधान को, जो बाम्हन हैं—गाँव के ही एक हरिजन लड़के से शान्ति भंग का अन्देशा हो गया है, जो कालिज में पढ़ाई में सबसे आगे है और जिसकी तारीफ कालिज भर करते हैं ? कहीं आप ही ने तो कुछ कहा नहीं था उसे ?"

"मेरा गवाह सिरी यादव है !"—बोले प्रधान। वे बड़े क्रोध में थे।

"वह तो ठीक है मगर वह लड़का अगर आपके खिलाफ रिपोर्ट लिखाना चाहेगा तो वह भी लिखना पड़ेगा—और फिर एक बात का ध्यान रखियेगा। अदालत में जिरह के चक्कर में कहीं यह राज न खुल जाय कि आधी रात को आप नाव पर शराब खींचा करते हैं।"

जोंक के मुँह पर नमक पड़ने से जैसे पल भर में वह सिकुड़ जाता है उसी तरह प्रधानजी सिकुड़ से गये। उन्होंने नहीं सोचा था कि उनकी करतूत पुलिस को मालूम है।

रपट न लिखे जाने से उनकी बड़ी भद्द हुई थी क्योंकि यह तो उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि ऐसा भी हो सकता है। थाने से निराश होकर उन्होंने दूसरा रास्ता अपनाया।

गाँव भर में हल्ला हो गया कि श्यामू चमार पंडित राजाराम की कुँवारी लड़की को लेकर रात भर नाव पर सैर करता है और सबसे पहले गुलाबी को यह बात बतायी गयी। वह सीधे सुभद्रा के पास पहुँची। सुभद्रा को गाँव के हल्ले का कुछ पता न था। इसलिए जब गुलाबी ने पूछा, "दीदी कल रात श्यामू ने आपको नाव पर सैर करवाया था क्या ?" तो सुभद्रा ने सरलता से हामी भर दी।

अब तो गुलाबी जल-भुनकर खाक हो गयी और गाँव में आकर उसने जो हल्ला मचाया उससे कोने-कोने में बात फैल गयी और बाम्हन-ठाकुर लोग बजाय सुभद्रा की निन्दा करने के इस बदचलन लौंडे को ठीक करने की बात सोचने लगे।

पं० राजाराम ने भी सुना। पर वे क्यों मना करते ? इस चमार लौंडे ने उनकी पगड़ी उछाली है और गाँव वाले उसकी मरम्मत करें तो राजाराम को क्या आपत्ति हो सकती है ?

छयबर ने कॉलिज से लौटते समय श्यामू से पूछा, "क्यों रे श्यामू यह सब क्या सुन रहा हूँ। सुभद्रा जिज्जी तेरे साथ नाव में सैर करने गयी थीं कल रात; यह बात तूने सबसे कही है ?"

"नहीं छयबर ! आजी और मैं नाव पर नदी की सैर करने गये थे। सुभद्रा ही हमारी पिछले जन्म की आजी हैं। वे इतनी नेक हैं छयबर—और इतनी भली। बता रही थीं हमारे आजा और पिताजी उस जमाने में हरिजन होते हुए निरक्षर नहीं थे—अरे भाई सुनकर चकित रहोगे—आजी भी उसी जमाने में पढ़ी-लिखी थीं।"

"देख श्यामू, कोई अगला जन्म पिछला जन्म नहीं मानेगा—सभी गन्दी बातें सोचेगा। अगर सुभद्रा जिज्जी को हमारे खातिर बदनाम होना पड़े तो उनके प्रति बड़ा ही अन्याय होगा। इसीलिए उस रात को मैं नहीं गया था।"

"हाँ छयबर। पर क्या बताऊँ, मन नहीं मानता। हमारी आजी तो जिन्दा नहीं हैं—अम्मा के सिवा प्यार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाला कोई नहीं। लोग नीच जात कहकर सदा घृणा करते हैं। इसलिए तुझसे या सुभद्रा आजी से स्नेह पाने को मन आतुर रहता है।"

"प्रधान को तूने सचमुच धमकी दी थी क्या रे ?"

"हाँ छयबर ! मुझे कोई कुछ कह ले—मैं सहने पर तैयार हूँ। पर मेरे सामने भगवती जैसी पवित्र आजी के बारे में अगर किसी ने गन्दी बात कही तो मैं उसका मुँह नोच लूँगा—भले ही मुझे इसके लिए कोई भी कीमत अदा करनी पड़े—मैं तैयार हूँ।"

"यह तेरी बेवकूफी है। जो ठीक समझ अवश्य कर। परन्तु जुबान से किसी को अपशब्द कहकर दुश्मन क्यों बनाये", कुछ रुककर फिर छयबर बोला।

"प्रधान तेरे पीछे पड़ गया है। सुभद्रा जिज्जी के बारे में कुछ कहने की हिम्मत नहीं है क्योंकि पंडित चाचा भंगी बनाकर छोड़ेंगे—तो वह तेरे पीछे पड़ गया है।"

"मेरे पीछे पड़ने में उसकी शान नहीं। अगर मैं मिट जाऊँ तो भी क्या ? कहाँ प्रधान और कहाँ मैं ? परन्तु यदि कुछ न हुआ तो प्रधान के भद्द का अन्त न रहेगा। और अगले निर्वाचन में उन्हें एक भी हरिजन का वोट नहीं मिलेगा—प्रधानी रक्खी रह जायेगी....।"

"वह चक्रान्त रच रहा है ! कुछ करना चाहता है। आजी कह रही थीं, अब सरकार हरिजनों के लिए बहुत कुछ कर रही है। अब उन्हें कोई आसानी से रौंद नहीं सकता।"

"छयबर" सिरी यादव दिखाई दिये, बोले, "उस लौंडे के साथ ज्यादा न हिलो-मिलो। प्रधान की नाराजगी उसे शौक हो वह झेले, मगर तुम क्यों झंझट मोल लोगे ?"

"चच्चा आप मेरी फिक्र छोड़ दें। जब से मैंने होश सँभाला तभी से श्यामू के साथ रहा। अब तो साथ नहीं छूट सकता। आप नाहक परेशान हो रहे हैं। प्रधान का हमने कुछ नहीं बिगाड़ा है फिर भी वे हमारी बुराई चाहेंगे तो भगवान् उनको फल देगा।"

"तभी तो लोग तेरा हुक्का-पानी बन्द करने को कहते हैं। अहीरों के बीच तू उठने-बैठने लायक नहीं है और न तुझसे हम अहीर लोग कोई मतलब रखेंगे।"

"ईश्वर के वास्ते ऐसा ही करे चाचा। हमें जात-पाँत की परवाह नहीं है। अम्मा और मैं—दो तो कुल आदमी ! आप लोगों की दया बिना ही चल जायगा हमारा।"

सिरी और बातें न बढ़ाकर वहाँ से चल दिये। भुन-भुनाते हुए गये। ये दोनों भी मुस्कराते हुए चल दिये। पास ही राजा मोतीचन्द की बगिया थी। नाना प्रकार के वृक्षों से शोभित। हालाँकि अब जमींदारी टूट चुकी थी। बगिया भी देखभाल के अभाव से जंगल सदृश दिखायी पड़ रही थी। बड़ी-बड़ी घासें, कँटीली झाड़ियाँ बाग भर में फैली हुई थीं। पेड़ भी बिना किसी प्रकार के यत्न के कारण श्रीहीन लग रहे थे। वहीं एक विशाल कदम के वृक्ष के घने छाये में दोनों मित्र जा बैठे और किताब लेकर कुछ देर पढ़ते रहे, फिर सो गये।

छयबर की आँखें खुलीं श्यामू की चीख पर। और नींद की खुमारी में उसने देखा कुछ लोग श्यामू पर लाठियाँ चला रहे हैं। छयबर की लाठी पास में ही पड़ी थी। उसे उठाकर वह आक्रमणकारियों पर टूट पड़ा। छयबर लाठी चलाने में उस्ताद था। थोड़ी ही देर में मारनेवाले इधर-उधर भाग गये। शाम हो चली थी। झुटपुटे में कोई पहिचान में नहीं आया था। छयबर ने अपनी धोती फाड़ डाली और उसी से श्यामू का सर बाँध दिया। उसका सर फट गया था। सर से बराबर रक्त बह रहा था। छयबर ने उसे अपनी मजबूत बाहों का सहारा दिया और कहा, "क्यों श्यामू चल पायेगा—या पीठ पर लाद लूं—"

"धीरे-धीरे चल सकूंगा" बोला श्यामू। उसका स्वर क्षीण था। वह अपने को बड़ा दुर्बल अनुभव कर रहा था।

रास्ते में ही सरकारी अस्पताल पड़ता था। श्यामू की चोटों का डाक्टरी उपचार करवाकर इक्के पर बिठालकर छयबर उसे घर ले आया। श्यामू की माँ तो बेटे की हालत और खून से सने कपड़ों को देखकर स्तब्ध रह गयी। फिर बेटे को कलेजे से लगाकर रो पड़ी।

सुभद्रा ने किसी की न मानी। खबर पाते ही दौड़ती चली आयी और श्यामू की हालत देखकर तुरन्त सिविल सार्जन को खबर भेजी—"सर की चोट है बहू—मैं कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिस्क लेना नहीं चाहती हूँ—मेरा और कोई नहीं है इस नाती के अलावा ....।"

सिविल सर्जन आये। चोटें देखकर उनका चेहरा गम्भीर हुआ। उन्होंने इलाज की व्यवस्था करते हुये कहा, "अभी कुछ भी कहा नहीं जा सकता जब तक हफ्ता भर न बीत जाये।"

उन्होंने सदर लौटकर पुलिस को इत्तिला भेज दी। पुलिस आई। दरोगाजी को सिरी यादव की बातें मालूम हुई। उन्होंने फौरन सिरी को गिरफ्तार कर लिया और जो उनकी मरम्मत की तो सारा राज़ खुल गया। किसने चक्रान्त किया था और किसने मारा, सब मालूम हो गया।

कई गिरफ्तारियाँ हुईं! प्रधान भी पकड़े गये। पुलिस ने मुकदमा कायम किया।

श्यामू यह सब नहीं चाहता था, पर सुभद्रा ने एक नहीं सुनी। अत्याचार को सह लेने से अत्याचारी को बढ़ावा मिलता है। वह बोली, "मैं इन नीच कुत्तों को जेल भिजवा कर ही रहूँगी....।"

अब तो चारों तरफ चर्चा की बाढ़! राजारामजी सुभद्रा को लेकर शहर चले गये। सुभद्रा नहीं जाना चाहती थी परन्तु पिता की हालत को देखकर बाध्य हुई। डाक्टरों ने कहा राजारामजी को दिल की बीमारी है और "कार्डियोग्राम" करवाना आवश्यक है। और किसी का हमेशा देखभाल के लिए रहना बहुत ज़रूरी है। सुभद्रा के सिवा राजाराम और किसी को साथ ले जाने को तैयार न थे। इसमें राज़ भी था। किसी तरह यहाँ से उसे हटा ले जाना।

श्यामू धीरे-धीरे अच्छा हो उठा। परन्तु आजी उसे एक बार भी देखने नहीं आई, यह सोचकर वह दुःखी था। उसे मालूम नहीं था राजाराम के दिल के दौरे का हाल—न सुखिया को ही यह बात मालूम हो सकी। एकाएक राजाराम सपरिवार सदर चले गये।

श्यामू की माँ ने श्यामू को समझाया, ये बड़े आदमी हैं। इनको कब क्या सूझता है कौन जाने? सुभद्रा का भी उन लोगों से ज्यादा लगाव पंडितजी भला कैसे पसन्द करते? उन्हें भी तो समाज में रहना था।

सदर में जब मुकदमा पेश हुआ तो गवाही में छयबर श्यामू और सुभद्रा सभी तलब हुये। कचहरी में अपनी मोटर में सुभद्रा बैठी थी इतने में श्यामू दिखाई दिया। वह संकोच के मारे पास नहीं आ रहा था परन्तु सुभद्रा ने पुकारा, "श्यामू बच्चू।"

"आया आजी" और श्यामू मोटर के पास आ पहुंचा। मोटर अदालत के कमरे से दूर एकान्त में एक पीपल के पेड़ के नीचे खड़ी थी। श्यामू को मोटर पर अपने पास बिठालते ही उसकी आँखें भर आयीं। सुभद्रा ने देखा। सस्नेह बोली, "क्या बात है रे? क्यों रो रहा है तू?"

"आजी तुम मुझ पर खफा हो क्या? क्यों मुझे कभी देखने नहीं आई थी?" क्षुब्ध स्वर में उसने उलाहना दिया।

"मेरा मन देखने को करता था पर मजबूर थी—पिताजी की तबीयत बहुत खराब हो गयी। गाँव का वातावरण, वहाँ इलाज की असुविधा—इन तमाम कारणों से उन्हें लेकर सदर आना पड़ा। मगर बच्चू मेरा शरीर यहाँ आया था, मन तो तेरे ही पास छोड़ आई थी....।"

ठीक इसी समय छयबर श्यामू को खोजता हुआ उधर आया। गर्मी का मौसम था। इसलिए कचहरी के कुएँ पर वह नहा चुका था और इस समय नंगे बदन था। उसे देखकर सुभद्रा चौंक पड़ी और आँचल सरपर घूँघट जैसा रखने लगी। जाने क्यों उसने ऐसा किया। श्यामू तो पहिले कुछ नहीं समझा। मगर उसके दिमाग में पुराना सन्देह फिर से जाग उठा... छयबर भी कुछ चकित हुआ था। उस भावान्तर को देखकर वह एकाएक खड़ा हो गया था।

"तेरा आजा—श्यामू, तेरे आजा हैं।" फिसफिसाकर सुभद्रा बोली और छयबर की ओर लजाती हुई ताकी। ...श्यामू चुपचाप मोटर से उतरकर छयबर के पास गया। छयबर ने कहा, "जीजी कुछ कह रही थीं क्या?"

"फिर बताऊँगा" बोला श्यामू। "क्या बात है, मुकदमा पेश हो गया है क्या छयबर?"

"नहीं। मगर मैं कह रहा था—" छयबर कुछ कहना चाहता था पर कह नहीं पा रहा था। श्यामू ने प्रेम से कहा, "कहो न भाई।"

"मैं कह रहा था, यह मुकदमा चलाना ठीक नहीं। सभी तो आपस के हैं। इन्हें जेल भिजवाने से क्या लाभ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरा भी यही विचार है। मुझे उनसे कोई शिकायत नहीं है। आओ चलो आजी से कहें····।"

दोनों मोटर के पास पहुँचे। श्यामू ने अपनी बात सुभद्रा को कहते ही उसने धीरे-धीरे कहा—"जो ये कहते हों वैसा ही करो बच्चू—मैं भला क्या कहूँ! इनकी बातों पर मुझे कुछ कहना शोभा नहीं देता।"

उस दिन मुकदमा पेश नहीं हुआ। कोट साहब ने गवाहान को डाँवाडोल देखकर मुकदमा टलवाना बेहतर समझा। उधर मुलज़िमान ने भी मुद्दई से सुलह की बात तय करने से पहिले तारीख लेना ठीक समझा।

छयबर को इतने नज़दीक से सुभद्रा ने पहिले कभी नहीं देखा था। नाच के दिन भी उसका ध्यान श्यामू की ओर रहने के कारण उसने छयबर की ओर गौर नहीं किया था और छयबर नकली बाल लगाये था। फिर भी उसे सन्देह हुआ था कि वह सुभद्रा का अपना कोई है।

जब उसने छयबर को नंगे बदन धोती पहिने हुये देखा तो एकाएक उसे श्यामू के आजा की बात याद आ गयी। हूबहू इसी तरह देखने में थे वे—इसी उम्र में तो नन्हूँ उनकी गोद में आया था।····सुभद्रा की पैनी निगाहों से छयबर के सीने का दाग़ और पाँव की कानी उँगली छिपी न थी। वे ही तो हैं। वैसा ही श्यामल उज्ज्वल रंग, उन्हीं की तरह बड़ी-बड़ी आँखें, आँखों में घने पल्लव, स्निग्ध-दृष्टि और वही मुस्कान!

छयबर को देखते ही सुभद्रा का कलेजा धक-सा कर उठा। नसों में खून तेजी से दौड़ा, शरीर में रोमांच हुआ।

जब सुभद्रा घर लौटी तो उसका हृदय एक अवर्णनीय आनन्द से विभोर था।···उसने भगवान् के चरणों में प्रणाम करते समय मन ही मन कहा, "ईश्वर तुमने मुझे सब कुछ दिया। ये तुम्हारी ही महिमा है।"

मगर ईश्वर सब को हर तरीके से सुखी नहीं करते। इसका आभास सुभद्रा को हुआ जब राजाराम की हालत बिगड़ी! उन्होंने सुभद्रा को पास बिठालकर सर पर हाथ फेरकर कहा, "बिटिया, लगता है मेरा समय पूरा हो गया है। मगर जाने से पहिले तेरे हाथ पीले नहीं कर सका, इसी का दुःख है। तुझे किसे सौंप जाऊँ?"

"मेरे लिए चिन्ता न करें बाबूजी! आप अच्छे हो जाइये। मेरी देख-भाल करने का आदमी जगदीश्वर भेज देंगे····।"

उसके स्वर में दृढ़ विश्वास ध्वनित हो उठा।····राजाराम जी चकित होकर देखने लगे। आश्वस्त हुए।

राजाराम बिटिया का बिवाह देखने की प्रतीक्षा नहीं कर सके और एक दिन एकाएक बिना पूर्वाभास के बिटिया का क्रन्दन, पत्नी की व्याकुलता को उपेक्षा करके इस संसार से चल दिये।

सुभद्रा की माँ सुभद्रा को लेकर देहात लौट आई। देहात में लोग चर्चा कर रहे थे, "अरे भाई कलियुग है तो क्या इतना बड़ा अधर्म सह जायगा। बाम्हनी होकर चमार के साथ····"

"पण्डितजी को इसी लौंडिया ने जप लिया। कहाँ तक सहते?"

"गलती तो उन्हीं की थी। जवान लड़की? शादी-ब्याह कर दिये होते। यह तो उम्र का तकाजा है। दिल लगी गदही से तो भला····।"

इन लच्छेदार बातों का मुख्य लक्ष्य श्यामू, छयबर अथवा सुभद्रा कोई भी वहाँ न रहने के बावजूद आलोचना में कोई रुकावट न थी।

जिनके बारे में चर्चा कर रहे थे उन्हें नेकनामी बदनामी की रत्ती भर परवाह न थी।

उस दिन के बाद से छयबर ने भी अपने अन्दर अद्भुत परिवर्त्तन का अनुभव किया। एक तो उसे लगा सुभद्रा से उसका परिचय जन्म-जन्मान्तर से है—और फिर ऐसा लगा मानों सुभद्रा उसकी बड़ी प्यारी है।

छयबर ने अपने हृदय का भाव मित्र से भी नहीं बताया। जाने क्यों उसे ऐसा लग रहा था कि वह गाँव की लड़की के बारे में इतनी गन्दी बातें क्यों सोच रहा है।

सुभद्रा के दूर के एक रिश्तेदार जिनका नाम जगदीश था, इलाहाबाद से आकर काम-काज देखने के बहाने ठहर गये थे। अशिक्षित गुण्डा किस्म के आदमी थे—राजारामजी के जीते जी यहाँ नहीं जम पाये थे। अब आ धमके। गाँजा और भंग की नशा करते थे। नामावली और कन्ठी पहिने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरों को घृणा करने में और ब्राह्मण को देवता तथा अन्य जातवालों को जन्तु के समान बखान करने में उनका सारा समय बीत जाता था। इसके अलावा वे सुभद्रा को बदचलन समझकर उसे अपनी ओर आकर्षित करने का शुभ इरादा भी हृदय के संगोपन में बनाये हुए थे।

जब उन्हें मालूम हुआ कि सुभद्रा श्यामू को अपना पौत्र समझती है तो वे श्यामू को इतना अधिक प्यार दिखाने लगे कि वह उकता उठा। रात के अन्धकार में वे सुखिया के घर पहुँच जाते और श्यामू को लेकर नदी की सैर के बहाने नदी तट की ओर ले जाया करते—उसे प्रसाद कहकर अक्सर पेड़ा-बर्फी खिलाते। यहाँ तक कि पंडितजी सुभद्रा के साथ श्यामू के घर जाकर रात के अन्धेरे में एकान्त में भोजन भी कर लेते थे। झेंप मिटाने के लिए कहा करते—"तुम चमार थोड़े ही हो—जब सुभद्रा रानी के पोते हो—तो बाम्हन हो और मैं ज़रूर तुम्हारे यहाँ खा-पी सकता हूँ।"

सुभद्रा ने कुछ कहा नहीं पर उसका अन्तर उन रिश्तेदार के प्रति कुछ झुका। जगदीशजी इस बात को ताड़ गये और श्यामू को लाड़-प्यार से इस क़दर परेशान कर डाला कि वह सोच रहा था—यह बला कब टले!

मगर जिस दिन सीधे-सादे श्यामू से उन्हें मालूम हुआ कि छयबर को सुभद्रा अपना पूर्व जन्म का पति समझती है उस दिन वे चौकन्ना हुये। मगर कोई काम जल्दी में करके इतने दिनों का किया धरा पर वे पानी फेर दें ऐसे बेवक़ूफ भी वे नहीं थे। इसलिए वे सावधानी से बढ़े।

छयबर की माँ से एक बार वे मिले और बड़े प्रेम से बोले, "देखो छयबर की अम्मा—कलियुग भले हो फिर भी बाम्हन-ठाकुर वही रहेंगे। इनको श्रद्धा करना हमारा धर्म है।"

छयबर की माँ सीधी-सादी देहाती रमणी—उसने हामी भर दी। उत्साहित होकर जगदीश बोले, "मगर फिर भी अहिर-गड़ेरिया को एकदम बाम्हनी बियाहै न चाही। बड़ा पाप लगा।"

"हाँ महाराज! ई तो ठीक बात है" बोली छयबर की माँ।

"लेकिन उमिर कहाँ ले जाबू?" बोले जगदीश पंडित। "जौन उमिर का ज़उन चाही! समय से बिआह भवा होत तो दुइ-चार लरिका की माई होतैं....।"

उसके पाले नहीं पड़ा पंडितजी क्या कहना चाहते हैं। इसलिए उसने केवल सर हिलाया। पंडितजी उत्साहित होकर आगे बोले, "जवानी में लौंडिया का भतार चाही। बिलाइत में रही। हुआँ ई सब बात की खुली छूट रही। हियाँ जब से आई—ई चीज ओका नै मिला। एक बार खून के सवाद पावै के बाद कौनो शेर चुप नहीं रहत। हिंअऊँ चमार के लौंडवा का पकड़िस! प्रधानजी जब ठोकवाय दिहिन तो जवानी की गर्मी झड़ गई—चमरा खसक गवा तो तोहार बेटवा कइति हाथ फैलाय रही है। हम तोहका बताय दिहा। हमार नाव जिन लिहेव—बिस्वास न होय तो श्यामू ने पूँछ के देखेव!"

इसके बाद दो-तीन दिन के बाद जगदीश एकान्त में छयबर की माँ से फिर मिला। पूछा, "श्यामू से पूँछे रहिउ?"

"हाँ भैया! बतिया तो पंडितजी आप ठीक बताये रहेव मुला अब बचै का उपाय भी बताय देव!"

"येहू हमही बताई? जवान लौंडा—जवान लौंडिया—आग औ घिउ! बरी न तो का होई? देखो एक काम करो बेटवा के बिआह कर देव। तुम लोग में तो नान से रह थू तबहिनै बिआह होय जाथे—एकर बिआह काहे नहीं किहेव? श्यामू के दोस्त हैं—सुभद्रा के कहके हजार-पाँच सौ दिलवाय देव! अच्छी लड़की देख के बिआह कर देव और जल्दी गवन ले आय देवतिउ सब ठीक होय जाई।"

"हाँ पंडितजी अइसनै करबै....।"

छयबर को सुभद्रा के पिछले जनम में अपनी पत्नी होने की बात मालूम न थी, इसलिए अहीर होकर बाम्हनी से शादी करने की बात वह सोच ही नहीं सकता था। उसने माँ के शादी के प्रस्ताव में हामी इसलिए भर दी ताकि दुनिया भर की चर्चा शान्त हो जाय और उसके हृदय में सुभद्रा के प्रति उमड़ते प्यार को दबाने के लिए उसने हामी भर दी जिससे उसे छुटकारा मिले—शान्ति मिले।

सुभद्रा को भी यह बात मालूम हुई पर वह क्या कहती। जगदीश का हाथ शादी में है इतना ही नहीं मालूम हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल रही है केवल आह !

डा० स्वर्णकिरण सम्पादक, 'नालन्दा दर्पण'

नहीं तसल्ली देता कोई
खींच रहे सब मिलकर टाँग !
नींद नहीं टूटती समय पर
मुर्गे देते हैं क्या बाँग ?
कैसा है बदलाव यहाँ पर खुली नहीं क्या कोई राह ?

धूल छींटते वे बेवस हो
या कि प्रकट करते आक्रोश !
दया-दर्द है नहीं जहाँ पर
कितना रह पाता है होश।
नर कैसे हैं, नारी कैसी, किसकी पूरी होती चाह ?

प्रस्तर-खंड कि केवल तिनके
कैसा है सम्मुख उपहार।
मस्तक काट रहा चक्कर है,
अपना तन लगता है भार !
संकट का पहाड़ है टूटा या कोई है नया प्रवाह !

उन्नति सपना या यथार्थ है
कहाँ प्रकट आस्था की धूप !
स्व या स्वेततर हेतु लोग हैं
खोद रहे क्या गहरे कूप ?
मित्र हैं कि हैं शत्रु, द्वेष कितना इनमें है कितना डाह !

कार्यभार है या करभार
बढ़ती जाती है कुछ ऊब।
खाली पेट दिखायें किनको
क्या हम जायें खुद ही डूब।
पर्व मने या नहीं मने यह कैसा मन में उठता दाह।
निकल रही है केवल आह !

"बच्चू, उन्हें आज रात को नाव पर बुला ला सकते हो ?" सुभद्रा ने श्यामू से पूछा।

"क्यों नहीं आजी। आज रात को बुला लाऊँगा। रात अँधेरी है। आपको साथ लाना पड़ेगा कि आप अकेली आ जायेंगी।"

"मैं आ जाऊँगी बच्चू" बोली सुभद्रा। बातों ही बातों में जगदीश को श्यामू ने बता दिया। वह जगदीश को अपना समझने लगा था।

आधी रात को अँधेरे में से एक झलक रोशनी की तरह निकल आई सुभद्रा। वह लाल बनारसी साड़ी पहिने थी। कपाल पर चन्दन की बिंदियाँ थीं। नवोढ़ा का सा व्रीड़ावनत भाव !

नदी तट पर खड़े छयबर को सुभद्रा ने झुककर प्रणाम किया और मृदु मधुर स्वर में बोली "नन्हूँ के पिता, मैं तुम्हारी सीता हूँ—जनम-जनम तुम्हारी प्रतीक्षा में रही हूँ—और रहूँगी।" छयबर तो हक्का बक्का रह गया। छयबर अपने भीतर एक परिवर्तन अनुभव कर रहा था। उसे कुछ याद आ रहा था—सुभद्रा को बड़ा ही प्रिय लग रहा था।

इतने में ४०-५० टार्चें चमक उठीं। रोशनी से वह स्थान उद्भासित हो उठा। नदी तट पर खड़ा छयबर और उनके पदप्रान्त पर पड़ी सुभद्रा—थोड़ी दूर पर खड़ा था श्यामू !

"मारो अहिर साले को—भले घर की लड़की भगाता है। इस लम्पट को मार कर नदी में फेंक दो....।"

बड़ा हल्ला मचा। एकाएक सुभद्रा चौंककर उठ खड़ी हुई और दूसरे ही पल नदी में कूद पड़ी।

'सीता' आर्त्त चीत्कार से नदी तट प्रतिध्वनित करके उसके पीछे-पीछे नदी में कूद पड़ा। छयबर... नदी के जल में कुछ बुलबुले उठकर विलीन हो गए।

गाँववाले अवाक् रह गये। और जब निराश होकर लौटने लगे तो नदी तट पर मूर्च्छित हरिजन किशोर श्यामू की ओर किसी ने ताका भी नहीं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलाज

श्री अशोककुमार राठौर, बी० ए०, एल्-एल० बी०

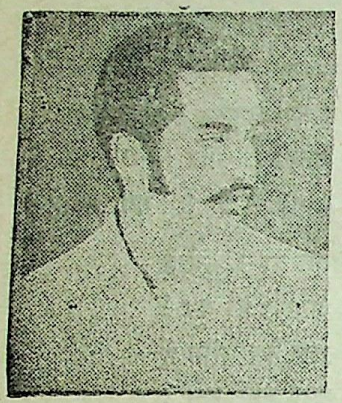

(लाज़ा लाज़ारेविक लिखित "ऐट द बेल" नामक कहानी के आधार पर)

[सर्विया प्रदेश के प्रथम श्रेणी के कहानीकार हैं लाज़ा लाज़ारेविक। इनका जन्म १८५१ ई० में और मृत्यु १८९० ई० में हुई थी। सरकारी वृत्ति लेकर जर्मनी से डाक्टरी पढ़कर सर्विया सरकार के स्वास्थ्य-विभाग में उच्च पद पर थे। उनका साहित्य वैचित्र्यपूर्ण है। प्राचीन सर्विया के सामाजिक जीवन की एक झलकी प्रस्तुत कहानी में मिलेगी।]

—सम्पादक सरस्वती

बार्मास अमीर आदमी थे—उनकी इकलौती बेटी थी 'आनोका', बड़ी खूबसूरत युवती। उनके दरवाजे पर बैठ-कर बाँसुरी बजाया करता था गोष्ठीपति मैथियस जैनाडिक के असंख्य पौत्रों में से एक युवक—जिसका नाम था आर्सेन।

उस दिन वह वंशी नहीं बजा रहा था—बल्कि आनोका के सामने खड़ा था। उसने हकलाकर आनोका से कहा, "क्या करूँ, पिताजी से कहते लजाता हूँ और दादा से डर लगता है।" आनोका चिढ़ गई। उसे शर्म-हया तो थी ही नहीं। उसने अवज्ञापूर्ण स्वर में कहा, "ठीक है। तो मैं उसी फिलिफ मैरिचिक को ब्याह लूँगा।"

आर्सेन चौंक पड़ा। चीखकर बोला, "मैरिचिक हो या कोई हो—किसी और से शादी का नाम भी लोगी तो मैं उसे मार डालूँगा।"

माँ-बाप की दुलारी बेटी आनोका—वह भी गुस्साना जानती है। धरती पर लात मारकर बोली, "तुम्हारा मतलब क्या है? जीवन भर मैं क्वारी रह जाऊँ! बड़े शौकीन!"

आर्सेन ने उसे आगे कुछ नहीं कहने दिया। उसे अपने कलेजे से लगा लिया। आनोका बहुत कुछ कहना चाहती थी पर मर्द जब कमर लपेट में ले ले तो किशोरी के लिए कुछ कहना दुश्वार हो जाता है।

बार्मास की भी गलती न थी। प्लेग में जब वह निर्वंश होने चला था तो सिर्फ आनोका ने ही बचकर उसके वंश का नाम रक्खा। प्यार न करे तो क्या करे?

जैनाडिक का परिवार बहुत बड़ा था। विशाल कोठी, अहाता और विस्तृत खेती। उम्र सौ से ऊपर। उनके चार लड़के और छब्बीस पोतों में से पन्द्रह तो हट्टे-कट्टे जवान हो चले थे। वे लोग ही खेती का काम देखा करते थे। आर्सेन के पिता थे अस्सी वर्ष के। वे ही सबसे बड़े भाई थे। घर में लक्ष्मी सदा विराजमान। कोठी के बाहर बेर के पेड़ से एक घड़ा टँगा था। उसमें सदा मदिरा भरी रहती। जो चाहे पिये। जितना चाहे पिये। एक बहू का यही काम था कि घड़ा खाली न होने दे।

यदि कोई पहिले से सूचना देकर आता था तो कोठी के सामनेवाले रास्ते पर ही उसे घर की एक न एक बहू मिलती—मेहमान का स्वागत करने के लिए। यदि रात को मेहमान आता तो बहू मशाल लेकर स्वागत करती। मेहमान को लेकर जब बहू बाग में पहुँचती तो वहाँ इन्तजार करती मिलती दूसरी बहू। ये दोनों उसे ले जातीं रसोईघर में जहाँ तीसरी बहू उसे नाश्ता परोसती। और चौथी बहू नाश्ते के बाद उसे बैठके तक पहुँचा देती जहाँ बड़े बूढ़े बैठे मिलते।

ऐसे ही मेहमाननेवाज घर का लड़का था आर्सेन।

उस दिन आर्सेन ने बेर के पेड़ पर से घड़ा उतारकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढेर सी शराब पी ली। यह उसका पहला मद्यपान था। फिर बाग में जा बैठा। घर के अन्दर परिवार के लोग रात का भोजन कर रहे थे। कम से कम डेढ़ सौ आदमी भोजन कर रहे थे। वह भी काफी भूखा था पर घरवालों के साथ बैठकर खाने की इच्छा नहीं हुई। शराब के नशे में यदि कोई बात कर बैठा तो दादा का गुस्सा उसे खाक कर डालेगा। एक सौ दस वर्ष के उस बूढ़े को सभी लोग भगवान् जैसी भक्ति और यमराज की तरह भय किया करते थे।

सब लोग खाना खा लें तब वह जाकर पिताजी के चरणों पर लोट जायेगा—वे दादा को राजी करवा सकें तो ठीक वर्ना जिन्दगी बेकार है!

खाना समाप्त हो गया है। अब पिताजी रोजाना की तरह दादा से दो-चार बातें करने के लिए उनके कमरे में जायेंगे। उनके कमरे तक पहुँचने से पहिले उसे अपनी बातें कह देना पड़ेगा। उसने उत्तेजना से हवा में घूंसा चलाया। पर उठने से पहिले भौजी मेलिका ने उसे देख लिया। "तुम यहाँ हो देवरजी," कहती हुई वह पास आई "हैं, राम राम, तुमने शराब पी है?"

'हाँ', आर्सेन ने मान लिया।

"पर क्यों?"

"अच्छा किया। मैं फिलिफ मेरिचिक की हत्या करूँगा," कहते हुये वह हँस पड़ा। मेलिका भी हँसी। "पर फिलिफ ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है भैया?"

"वह आनोका को पाना चाहता है।"

"पाने दो—तुमसे मतलब?"

"मतलब? मैं किसी को आनोका को लेने नहीं दूंगा—कभी नहीं।" कहकर उठने जा रहा था पर नशे के मारे फिर बैठ गया।

"यानी आनोका को तुम लेना चाहते हो?" मेलिका ने पूछा।

"ठीक समझी हो। यही पिताजी को कहने जा रहा हूँ। लज्जा दूर करने के लिए खूब शराब पी ली है।"

मेलिका इस देवर को चाहती थी। कुछ सोचकर बोली, "तुम्हारी जो हालत इस समय है—पिताजी को कुछ ठीक से कह नहीं पाओगे—गड़बड़ा जायगा। इससे अच्छा है तुम चुप रहो। मैं तुम्हारे लिये बात करूंगी—बाबूजी या दादाजी से नहीं बल्कि आजी से। फिर वे आजाजी से कहेंगी—आगे तुम्हारी किस्मत।"

आर्सेन की जान बची। मेलिका भौजी अगर आजी से कहे तो ठीक है। आजी के दिल में दया-माया है—पिताजी के हृदय में दया है या नहीं, इसमें घोर सन्देह है। उनके सामने कदाचित् आर्सेन आनोका का नाम ले ही न सकता। और अगर लिए भी होता तो वे एक झापड़ रसीद किए होते। मेलिका ने ठीक ही कहा है। अगर काम बनेगा तो आजी के द्वारा ही होगा।

आजी तो प्रस्ताव सुनकर निराश हो उठीं। बोलीं, "बार्मास की लौंडिया आनोका? वह तो पाजी लड़की है। देखने में अच्छी होने से क्या—एक नम्बर की जुबान-दराज—और आलसिन! इस विशाल परिवार में क्या वह अपने आपको खपा सकेगी?"

इस बात में काफी सन्देह होते हुये भी आर्सेन की दिल की बात को भी नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता था। "शादी न करने से उठती उम्र में ही लड़के को इतना बड़ा दुःख देना ठीक होगा?" आजी ने मैथियस बूढ़े से कहा। उन्होंने कई बार लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरा। एक-एक बार वे दाढ़ी पर हाथ फेरते और बोला करते "बार्मास!" आजी ने देखा कि गुस्सा कम होता जा रहा है।

अन्त में आजी ने मैथियस से पूछा, "तुम्हारी क्या राय है?"

"बहुत सोचा है देवरजी, बहुत सोचा है! लौंडिया बाप को पड़ेगी—इसमें आश्चर्य क्या है? अपने अलावा किसी और की भलाई-बुराई सोचने का मौका ही कहाँ था उसे? उसका कोई भाई या बहिन तो नहीं है!....फिर भी तुम्हारी अक्ल पर मुझे भरोसा है। तुम शायद उसे खपा सको इस परिवार में! तुम और मैं—हम दोनों नहीं चाहते कि लौंडा दुखी हो!"

आर्सेन के बाप व्लैगोया को बुलाया गया। उस परिवार में आजा-आजी के बाद उन्हीं का स्थान था। उनकी उम्र थी अस्सी! उन्होंने अपने पिताजी से कहा कि आर्सेन को दुखी वे भी नहीं करना चाहते। आर्सेन के आजा-आजी जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक समझें करें। मैथियस ने कहा, "शादी हो जाने दो फिर देखा जायगा।"

शादी हो गई। आर्सेन मानों स्वर्गपुरी पहुँच गया हो। पर स्वर्ग से गिरते देर न लगी। परिवार भर में आनोका के खिलाफ समालोचना होने लगी।

झगड़ा करना तो दूर की बात, मैथियस परिवार में चुगलखोरी भी कोई नहीं करता था। पर आजीजी ने सब कुछ देखा-सुना था। उन्होंने आजाजी को सब कुछ कह सुनाया, "नई बहू बड़ों की इज्जत नहीं करती—सब पर हुक्म चलाती है।"

बूढ़े ने आर्सेन को बुलवा भेजा। "तू अब भी लौंडिया से प्यार करता है?" आर्सेन क्या कहता? वह तो डर से सोंठ था। मैथियस फिर बोले, "जवाब दे! तू उसे प्यार करता है या नहीं, मुझे बता। अगर तेरा नशा उतर गया हो, उसे मैं अभी नैहर भेज दूँ। और अगर नशा नहीं है—सचमुच प्यार है, तो मुझे इसका इलाज करना होगा। सच बता प्यार है या नशा?"

"सच" यही एक शब्द आर्सेन कह सका।

"अच्छा भाग," बोले वृद्ध।

उस दिन रात को खाने का समय था। डेढ़ सौ थाल परोसा गया था। पाँच बहुएँ परोसने में लगी थीं—उनमें आनोका भी थी। पर वह एक ओर चुपचाप खड़ी थी। चेहरे पर नफरत लिये। कभी-कभी अन्य बड़ों की खिल्ली भी उड़ाती जा रही थी।

सभी शंकित थे। अभी मैथियस चीख न पड़ें, "इस बदमाश लौंडिया का सर मुड़वाकर घर से निकाल दो!"

पर ऐसा कुछ भी न हुआ। मैथियस ने चुपचाप भोजन समाप्त किया। फिर सभी को सुना-सुनाकर बोले, "सब लोग सुनो। मैंने देखा है, सुना है, और अच्छी तरह समझा है कि हमारी इस लक्ष्मी जैसी नवबधू—मेरे मित्र बार्मास की बेटी आनोका को घर भर तुच्छ किया करते हैं। यह बुरी बात है। मैं क्या चाहता हूँ, सब लोग सुनो। आनोका को कोई काम करने के लिए नहीं कहेगा। उसके आदेश को सभी हमारा आदेश समझकर पालन किया करेंगे। सभी उसकी परिचर्या करेंगे। उसे किसी नाते ठेस इस घर में न पहुँचे।"

सभी स्तम्भित रह गये आदेश सुनकर। आनोका ने अपनी जेठानी-ननद आदि की ओर विजयोल्लास से ताककर देखा। आर्सेन भी खुश हो सकता था यदि लज्जा से उसका सर न झुक गया होता।

खाने के कमरे से निकलते ही आनोका ने हुक्म दिया, "पेट्रिया, तुम मेरे लिए बाग में बिस्तर लगा दो—आजा का गद्दा और आजी की तकिया लगा देना मेरे लिए। मेलिका तुम रात भर पंखा झलोगी, मच्छर-मक्खी भगाने के लिए। और सालुना, तुम फूल लाकर मेरे लिए गजरे बनाओगी।"

सिर्फ तीन दिन। आनोका आजिज आ गई। सभी उसका हुक्म बजा लाते थे। पर उसकी ओर इस प्रकार ताकते मानों अद्भुत जानवर देख रहे हों। आनोका झगड़ा समझती है पर इस प्रकार निःशब्द असहयोग उसकी समझ में नहीं आता था। वह ऊब उठी। यह हुक्म की तामील है! इन्सान को अपमानित करने का और कोई तरीका है?

उस रात को आनोका बाग में लेटी थी। पेट्रिया पंखा झल रही थी। अचानक आनोका उससे लिपट गई और फूट-फूटकर रोने लगी।

सूरज अभी नहीं निकला था। प्रतिदिन की तरह मैथियस अपने पलँग पर बैठे ईश्वर का नाम ले रहे थे। किसी को अँधेरे में खाट के नीचे बैठा देखकर उन्होंने पुकारा, "कौन है? आनोका नतनी? क्या चाहती हो मेरी लाड़ली?"

"आपके नहाने का पानी कुएँ से मैं भरकर लाऊँगी आज से—"

"सिर्फ मेरे लिए?" मैथियस मानों सन्तुष्ट नहीं थे।

"पहिले आपके लिए फिर घर भर के लिए," बोली आनोका।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीकी शराफत

श्री शिवसरन सिंह यादव

प्रेसिडेन्ट ट्रूमैन की बदौलत ही अमरीका की गिनती आज विश्व के 'सूपर पावर' में है इसमें कोई सन्देह नहीं। अमरीका के राष्ट्रपतियों में हैरी० एस० ट्रूमैन का स्थान काफी ऊँचा है। हालाँकि वे किसी विश्वविद्यालय के स्नातक नहीं थे। वे एक साधारण किसान थे। कारोबार करने में भी असफल हुए थे।

हैरी० एस० ट्रूमैन प्रेसिडेन्ट निक्सन को फूटी आँखों देखना पसन्द नहीं करते थे। युक्तराष्ट्र के खुर्राट सांवादिक ने निक्सन के बारे में ट्रूमैन की बातों को टेपरिकार्ड कर लिया था। निक्सन के बारे में ट्रूमैन का कहना था, "निक्सन इज़ अशिफ्टीसाइड गौड-डैम लायार !आइ कैन नॉट फिगर आउट हाउ ही के केम सो क्लोज़ टू गेटिंग इलेक्टेड प्रेज़िडेन्ट इन नाइनटीन सिक्सटी ! आइ कैन नॉट सी हाउ द सन-ऑफ-अ-बिच कैरेड वन स्टेट....." अर्थात् "निक्सन एक थाली का बैगन एवं प्रथम श्रेणी का झूठा है। मेरी समझ में नहीं आता कि किस प्रकार वह १९६० में राष्ट्रपति निर्वाचित होने को था। मेरी समझ में नहीं आया कि उस कुतिया के पिल्ले ने एक राज्य का समर्थन कैसे प्राप्त किया।"

व्हाइट हाउस के उन दिनों के मालिक नं० २ मि० हम्फ्री से वहाँ के पत्रकारों की बातचीत का नमूना देखें—

हिउबर्ट होरेशिओ हाम्फ्री उन दिनों अमरीका के उप-राष्ट्रपति थे। उनके राष्ट्रपति पद के लिए खड़े होने की इच्छा प्रगट करते ही एक पत्रकार ने उनसे साक्षात्कार के समय नाना प्रकार के प्रश्नों के साथ यह भी पूछा था, "मि० वाइस प्रेजिडेन्ट डू यू थिंक यू आर स्मार्ट एनाफ, टैक्टफुल एनाफ, सन-ऑफ-ए-बिच एनाफ टु विकम द प्रेजिडेन्ट ऑफ द युनाइटेड स्टेट्स" अर्थात् "श्रीमान् उपराष्ट्रपतिजी क्या आप अपने को पर्याप्त चुस्त, पर्याप्त कुशल, पर्याप्त कुतिया का पिल्ला समझते हैं कि संयुक्तराष्ट्र का राष्ट्रपति बन सकें।"

वहाँ के साहित्यकारों की बातचीत करने का ढंग भी निराला है। डलास में प्रेजिडेंट कैनेडी के कत्ल की बात सुनकर प्रसिद्ध लेखक नॉरमैन मेहलर ने कहा था, "पहिले सोचा करता था सन-ऑफ-अ-बिच कितने नखरे जानता है। पर आज नखरे-वखरे की बात दिमाग में नहीं आई—आज सचमुच बेचारे के लिए दुःख का अनुभव हुआ।"

एक और विख्यात लेखक हन्टर टाम्पसन हैं। कुछ दिन हुए उन्होंने कहा था—"बीस वर्ष में मैंने केवल एक बार ही देखा है कि इस विश्वासघातक 'बास्टार्ड' यानी दोगला (निक्सन) ने झूठ का सहारा नहीं लिया।"

किसी खुर्राट पत्रकार ने तब उनसे पूछा, "प्रेसिडेन्ट जानसन यदि होते तो इस 'वाटरगेट' वाले छीछालेदर को कैसे सम्हाले होते ?"

उन लेखक महोदय ने तुरन्त उत्तर दिया, "जानसन टेपों को जरूर जला डाले होते। अचानक मालूम होता कि उनके 'फार्म' में अग्निकाण्ड हो गया है ! शायद ऐसा होता कि जिन दो सिक्रेट सर्विस अफसरान को टेपों के बारे में मालूम था उन्हें लेकर सरकारी 'वैन' के जाते समय किसी अज्ञात कारण से 'वैन' में बम विस्फोट होता और टेपों के जलकर नष्ट होने के अलावा, दो आदमी जलकर खाक हुए होते—वे दो वही कर्मचारी होते जिन्हें टेपों के विषय में जानकारी थी।

इस संवाद पर जॉनसन कई गैलन आँसू बहाते और 'व्हाइट हाउस' के अन्य हाली-मवाली के आँसुओं को पोंछते हुए कहते, "सबसे दुःख की बात तो यह है कि उन दोनों को टेप लेकर एक ही गाड़ी पर जाने को मैंने मना किया था। किन्तु वे नहीं माने थे।"

जिस दिन प्रेसिडेन्ट कैनेडी हत्यारे की गोली से मारे गये उस दिन की एक छोटी-सी घटना बड़ी ही करुणापूर्ण है।

कैनेडी का शव एयरफोर्स वैगन पर वाशिंगटन ले जाने के लिए रखा था। इसी बीच मिस्टर लिन्डन जॉनसन कई बार दाढ़ी बना चुके थे, नई कमीज़ निकालकर पहिन लिया था, बार-बार राष्ट्रपति के विमान वाले बड़े शीशे के सामने टाई का 'नॉट' ठीक करने एवं कॉलर दुरुस्त करने के लिए खड़े हुए थे—ताकि अबकी प्रेसिडेन्ट बनते समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें देखकर लोग समझें कि हाँ मृत राष्ट्रपतिजी से जॉनसन किसी माने में कम नहीं हैं।

थोड़ी देर पहिले के उपराष्ट्रपति उस समय पूरे-पूरे राष्ट्रपति बन बैठे थे। जाने क्या कहने के लिए कैनेडी की विधवा जैकी ने अभ्यास के अनुसार जॉनसन को 'लिन्डन' कहकर सम्बोधित करते ही उन्होंने इस प्रकार घूरकर उसकी ओर ताका था कि जैकी बेचारी लिन्डन बेइन्स जॉनसन का मनोभाव समझकर तुरन्त बोली थी, "ओह नो, आइ ऐम सॉरी—नो मोर लिन्डन। आइ से मिस्टर प्रेसिडेन्ड" अर्थात् "ओह! नहीं! मुझे खेद है—अब लिन्डन नहीं—मैं कहती हूँ श्रीमान् राष्ट्रपति—।"

इसके साथ तुलना की जा सकती है जानसन से दो दशक पहिले के राष्ट्रपति ट्रूमैन को! प्रेसिडेन्ट रूज़वेल्ट के ज़माने में उपराष्ट्रपति थे ट्रूमैन। रूज़वेल्ट की तबीयत ठीक न थी। उन्होंने तय किया था ट्रमैन को ही वे राष्ट्रपति नियुक्त करेंगे। ट्रूमैन यह नहीं चाहते थे। उन्होंने दूसरे एक सिनेटर का नाम मनोनीत किया था। वे जानते थे कि प्रेसिडेन्ट रूज़वेल्ट अब अधिक दिन के मेहमान नहीं हैं, एवं उनके बाद उपराष्ट्रपति के नाते ट्रूमैन ही राष्ट्रपति पद पर नियुक्त होंगे। और रूज़वेल्ट जब तीन महीने के बाद स्वर्ग को सिधारे तो ट्रमैन ही राष्ट्रपति बने।

ट्रूमैन की माता को जब लोगों ने शुभकामनाएँ जताया तो उन्होंने कहा था—"आज मैं बेहद खुश हूँ यह कहते नहीं बनता। मि० रूजवेल्ट मर जायँ और उनकी जगह मेरा लड़का राष्ट्रपति बन बैठे ऐसा-मैंने कदापि नहीं चाहा था। आज यदि वोट पाकर मेरा हैरी राष्ट्रपति बना होता तो वह और बात थी.....

ट्रूमैन की बहन मेरी जेन ट्रूमैन ने कहा था, "अन्त तक वही हुआ। हैरी को ही राष्ट्रपति बनना पड़ा। मुझे बड़ा दुःख है मि० रूजवेल्ट मर गये। मुझे हैरी के लिए भी दुःख है!"

प्रेसिडेन्ट ट्रूमैन ने स्वयं कहा था, "व्हाइट हाउस जनता की सम्पत्ति है। मुझे थोड़े समय के लिए भार मिला है। जब व्हाइट हाउस छोड़कर जाऊँगा तब इस धरोहर को ज्यों का त्यों दे जा सकूँ—।"

मि० जेराल्ड फोर्ड ने कभी कल्पना नहीं की थी कि वे राष्ट्रपति बनेंगे। उपराष्ट्रपति बनने से पहिले उन्होंने अपनी पत्नी बेटी से वादा किया था, अवसर पाने पर वे पत्नी के साथ सारा समय बितायेंगे। परन्तु जब उन्हें ट्रंक-कॉल पर निक्सन के पदत्याग एवं उनके राष्ट्रपति बनने की सूचना मिली तो उन्होंने कहा, "ज़रा रुको—बेटी से कहकर देखूँ" मानों पत्नी यदि अनुमोदन न करे तो वे राष्ट्रपति पद को ही न लें।

पत्नी बेटी को प्रेसिडेन्ट की पत्नी होने के बजाय फोर्ड की पत्नी रहना अधिक पसन्द था।

पति के राष्ट्रपति बनने के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र की प्रथम महिला होने के नाते पत्रकारों ने एक सम्मेलन करके उन्हें बुलाया। वहाँ असंख्य प्रश्न पूछा। उन्होंने भी यथा-साध्य उत्तर दिया। पर मन ही मन कुछ अप्रसन्न सी हो गयीं। इस प्रसंग में उन्होंने कहा था, "उन्होंने मुझसे अत्यधिक प्रश्न पूछा था। वह लम्बी कहानी है। पर एक सवाल नहीं पूछा था, पति के साथ शय्या पर महीने में मैं कितने दिनों तक रहती हूँ। किसी ने यदि पूछा होता तो कदाचित् वह भी मैं कह दिये होती।"

हिटलर जब यहूदियों का निष्कासन कर रहे थे तो स्कूल मास्टर पिता का हाथ पकड़कर केवल पन्द्रह वर्ष की अवस्था में किसिंजर अमरीका आये थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उन्हें फिर जन्मभूमि देखने का अवसर मिला था। जर्मनों के निरस्त्रीकरण के सिलसिले में अमरीका के युवा अफसर किसिंजर जर्मनी गये थे। फिर अमरीका लौटकर कॉलिज में दाखिल हुए थे। हारवर्ड विश्वविद्यालय में शोधकार्य करते समय उनकी पत्नी नौकरी करके घर का एवं उनकी पढ़ाई का खर्च पूरा करती थीं।

बाद में किसिंजर नेलसन रॉकफेलर नामक धनकुबेर के उपदेष्टा बने थे और रॉकफेलर ने ही उन्हें निक्सन के हवाले किया था। उनके रहने से संसार को कोई लाभ हो न हो, अमरीका को लाभ हुआ—यह सही है।

हेनरी किसिंजर की रॉकफेलर ने बड़ी भारी मदद की थी। विवाह-विच्छेद के खर्चे के रूप में चार लाख रुपये जब किसिंजर को देना पड़ा था तो वह रकम उसी धनकुबेर ने अपने पास से दी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृन्दावन के मध्यकालीन भक्ति-काव्य में संगीत

सुश्री आशा सेठ

[लेखिका हिन्दी की शोध छात्रा ही नहीं अपितु सुलेखिका भी हैं। आकाशवाणी पर एकाधिक बार विभिन्न विषयों पर आपकी वार्त्ता प्रसारित हो चुकी है। प्रस्तुत रचना रचयित्री के गम्भीर अध्ययन, सूक्ष्म रसबोध एवं सुरुचि की परिचायक है।]—सरस्वती सम्पादक

भक्ति का सम्बन्ध सदा से आत्मशुद्धि से रहा है। भारत में काव्य का उद्देश्य आत्मसुख व आत्मशुद्धि के अतिरिक्त जनमंगल की कामना भी रहा। मध्यकालीन भक्ति-काव्य में भी हम दोनों ही आदर्श अभिप्रेत पाते हैं। सन्त कवियों ने अपने पदों के गायन द्वारा एक ओर तो घूम-घूमकर जनता का उद्धार किया, समाज की कुरीतियों को दूर करना चाहा, दूसरी ओर अनहद नाद (नाद का अव्यक्त स्वरूप) उनके लिए आत्मशुद्धि का आदर्श था। 'वैष्णव भक्त कवियों के काव्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन परम पुरुषार्थों के हेतु हैं।' भारतीय प्राचीन संगीतादर्श भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों की प्राप्ति से युक्त है। संगीतशास्त्र सम्बन्धी सभी प्राचीन ग्रन्थों ने इस आदर्श को मान्यता दी है। यदि विचार करके देखा जाये, तो लक्ष्यों की यह विभिन्नता साधकों के लिए भिन्न-भिन्न महत्त्व रख सकती है। धर्मार्थी गायक कवि के लिए नाद साधन ही नहीं, साध्य भी हो सकता है। उसकी दृष्टि में नाद ब्रह्मस्वरूप होगा जिसकी उपासना करने से समस्त देवताओं की उपासना स्वयं हो जाती है। मोक्षार्थी व्यक्ति संगीत के द्वारा एकाग्रता प्राप्त करते हुए ब्रह्म में लीन होने का प्रयत्न करना चाहेगा। यह दोनों ही वर्ग संगीत को सात्विकता-प्रधान रखना चाहेंगे जबकि कामार्थी व्यक्ति के लिए संगीत काम-भावना को जगाने का साधन हो सकता है। वह संगीत को सांसारिक कामनाओं की तृप्ति का और मात्र मनोरंजन का साधन मानता है, अतः वह संगीत को रजःप्रधान रखेगा। रजःप्रधान संगीत में संगीत का कलापक्ष मुख्य तथा भावपक्ष गौण होता है जबकि सात्विक संगीत में भावपक्ष और कलापक्ष का समुचित सुन्दर समन्वय होता है। रीतिकाव्य और भक्तिकाव्य के संगीत में यही मुख्य अन्तर है। रीतिकाव्य में कलापक्ष के आगे भाव गौण हैं, अतः उससे चमत्कार की सृष्टि भले ही हो, रसानुभूति नहीं होती।

मध्यकाल में वृन्दावन भक्तिकाव्य और संगीत का एक प्रमुख केन्द्र था। सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास, कृष्णदास जैसे कवि संगीतज्ञों के अतिरिक्त स्वामी हरिदास, हितहरिवंश एवं हरिराम व्यास जैसे संगीतज्ञ भक्त कवि भी इस युग में वृन्दावन की देन हैं। इन सभी ने भारतीय संगीत के शास्त्रीय स्वरूप को मान्यता दी और अपनी रचनाओं को भावानुकूल राग-रागिनियों में बद्ध किया। स्वरों के उचित और अनुचित (सात्विक एवं राजसिक व तामसिक) प्रयोग की सही जानकारी शास्त्रीय संगीत द्वारा संभव थी।

इन भक्त कवियों के काव्य एवं संगीत का प्रमुख लक्ष्य आत्मशुद्धि और कलि-कलुष से पीड़ित मानवों के उद्धार की भावना से ओतप्रोत था। उनका काम भी माधुर्य बन कर, प्राप्त प्रसाद अर्थस्वरूप बनकर उनके आराध्य के ही श्रीचरणों में अर्पित था हरिकथा ही उनके लिए समस्त तीर्थों का निवास थी। भक्त में अपने आराध्य के प्रति प्रेम की तल्लीनता होती है, संगीत में ऐसी तल्लीनता प्रदान करने की अद्भुत शक्ति है। भारतीय प्राचीन संगीत मोक्ष का साधन था, ऐसी दशा में संगीत के मात्र मनोरंजक स्वरूप को स्वीकार करना इन भक्त कवियों के लिए असंभव था। ईरानी मिश्रित भारतीय संगीत में मनोरंजन की धारणा ही प्रमुख थी। भक्त कवियों ने संगीत को धनोपार्जन के लिए अंगीकार नहीं किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकबर जैसे प्रतापी शहंशाह के निमन्त्रण को भी वे 'संतन को कहा सीकरी सो काम' कहकर ठुकरा देने का आदर्श रखते थे। लक्ष्य के भेद के कारण उनके और दरबारी कवियों के गायन में महान् अन्तर था। भक्तमाल में कथा है कि शहंशाह अकबर एक बार स्वामी हरिदास का गायन सुनने तानसेन के साथ स्वयं वृन्दावन गये। वहाँ जो संगीत उन्होंने छिपकर हरिदास से सुना वही तानसेन से सुनने पर उतना आनन्द न आया। कारण पूछने पर तानसेन ने कहा कि हरिदास ने 'उसके सामने गाया था जो जगत् का स्वामी है, मैं तो केवल एक बादशाह के सामने गाता हूँ।' अकबर ने स्वामी हरिदास से हठ किया कि वह भी उनकी कुछ सेवा करना चाहता है। स्वामीजी ने दिव्य ब्रजभूमि दिव्य नेत्र से बादशाह को दिखाई, यह वृत्तान्त धामनिष्ठा में लिखा गया। बादशाह चरणों में गिर पड़ा और प्रार्थना की कि यद्यपि किसी सेवा के योग्य नहीं हूँ परन्तु कुछ स्वल्प सेवा की आज्ञा करके कृतार्थ और धन्य-भाग किया जाये। तब स्वामीजी ने कहा कि पहले बन्दरों के निमित्त कुछ चना पहुँचता रहे, दूसरे ब्रजभूमि के वृक्ष और शाखाएँ कोई काटने न पाये, तीसरे बादशाह फिर कभी उनके पास न आयें। बादशाह ने तीनों आज्ञाओं का पालन किया।

प्रस्तुत उदाहरण एक भक्त गायक और सच्चे साधक की निःस्वार्थता का प्रमाण है और यह सिद्ध करता है कि अकबर जैसे संगीतानुरागी के दरबार का भी वृन्दावन के संगीत पर प्रभाव नहीं था।

मध्यकाल में वृन्दावन संगीत का एक प्रमुख केन्द्र था। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्गीय भक्ति का सन्देश दिया था जिसका केन्द्र अपने आराध्य की भूमि ब्रज को बनाया था। पुष्टिमार्ग में भगवान् के लीलागान का महत्त्व था। काव्य के माध्यम से भक्ति के उद्गार संगीत के हार में पिरोकर आराध्य को चढ़ाना और उसका अनुग्रह प्राप्त करना इन साधकों का लक्ष्य था। संगीत के गुण-दोष, विभिन्न ध्वनियों का प्रभाव, नाद की शक्ति का सही ज्ञान, शास्त्रीय संगीत के द्वारा ही संभव था, अतः पुष्टिमार्गी लगभग सभी भक्त कवि भी भारतीय संगीत के मर्मज्ञ थे। प्राचीन भारतीय संगीतशास्त्रों में संगीत आत्मानुभूति की शक्ति से सम्पन्न माना गया है। गीत में 'जीव' और 'परमात्मा' के एकीकरण की क्षमता स्वीकार की गयी। ऐसे पवित्र संगीत को छोड़कर ईरानी प्रभाव से पूर्ण संगीत पद्धति को अपना लेने की बात इन कवियों के सन्दर्भ में तर्कहीन जान पड़ती है। ईरानी संगीत में रसपरिपाक की धारणा नहीं थी।

जब संगीत में राग और रस का संबंध मुसलमानी प्रभाव से विच्छिन्न होने लगा और संगीत निरक्षर एवं आम जनता के पास तक पहुँच गया, तब प्राचीन संगीत का रस-सिद्धान्त इस निरक्षर जनता को समझाना बहुत कठिन हो गया। फलतः रागों के रूप और ध्यान की कल्पना की जाने लगी और उनके चित्र बनाये जाने लगे। यह स्थिति लगभग वैसी ही थी जैसी अवतारवाद की। शंकराचार्य का अमूर्त ब्रह्म जब जनता के लिए अग्राह्य सिद्ध होने लगा तभी उसके साकार स्वरूप का प्रचलन करके उसमें भक्ति का समावेश किया गया। निरक्षर गायकों के संगीत में भाव की प्रतिष्ठा करने के लिए ही गायन से पूर्व राग का ध्यान आवश्यक बताया गया। भारतीय रागों के कुछ वर्गीकरण उनके ढाँचे की दृष्टि से थे, तो कुछ उनकी आत्मा की दृष्टि से। अमूर्त एवं भावात्मक तथ्यों को भी साकार एवं सजीव रूप में प्रस्तुत करने की शैली पौराणिक परम्परा की विशेषता थी। ध्यानों, चित्रों अथवा रूपक के माध्यम से रसात्मक रूप को साकार करना पुराण-परम्परा की सफलता ही थी। भारतीय मूर्च्छना गायन पद्धति रागों का ढाँचा प्रस्तुत करती थी। पुराण-परम्परा में रस दृष्टि से गेय स्वर-सन्निवेशों अर्थात् रागों का वर्गीकरण राग-रागिनी के रूप में किया गया था। भक्त कवियों के लिए यही रसधारित वर्गीकरण मान्य रहा और उन्होंने इसी को अपनाया। भक्त संगीतकार संगीतजीवी नहीं थे। आश्रय-दाताओं का प्रसन्नता के लिए ईरानी मिश्रित संगीत-पद्धति को मान्यता देना उनके लिए कोई महत्त्व भी नहीं रखता था। आचार्य बृहस्पतिजी ने भी लिखा है—"मुगलकाल के परिवर्तनों से अप्रभावित रागों की प्राप्ति यदि किसी सीमा तक सम्भव है तो वैष्णव सम्प्रदायों के समाजों में।" कुछ दरबारी कवि जैसे तानसेन, बक्सू आदि भारतीय संगीत की मूर्च्छना पद्धति को जानते थे परन्तु वे 'जिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही पार्यौ तिनहिं लुकायौ' नियम का पालन करते थे। ये दरबारी कवि वास्तव में वे थे जो ग्वालियर में राजा मानसिंह तोमर के दरबार से संबंधित रहे थे। ग्वालियर, मध्यकाल में, भारतीय संगीत का गढ़ रहा है। अबुलफ़ज़ल और फ़कीरुल्ला के उल्लेखों से स्पष्ट है कि अकबरी दरबार के छत्तीस कलाकारों में पन्द्रह ग्वालियर के थे।

भारतीय परम्परा के अनुसार संगीत में गायन, वादन और नृत्य तीनों का समावेश माना गया है। इनमें क्रमशः गायन के बाद वादन, उसके बाद नृत्य को महत्त्व दिया गया। एक अच्छे संगीतकार में तीनों के ही समुचित ज्ञान को आवश्यक बताया गया। प्राचीन एवं मध्यकालीन संगीतशास्त्र ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं। वृन्दावन के भक्ति-काव्य में हम तीनों का ही उचित सामंजस्य पाते हैं। राग-रागिनियों, ढोल-पखावज, मृदंग, झाँझ-मंजीरों आदि के बोल और उन पर रासनृत्य का उन्हें भली प्रकार ज्ञान था, उनका काव्य इसका प्रमाण है। दरबारी कवियों की रचनाओं में अधिकांशतः राग-रागिनियों का ही उल्लेख पाते हैं। राम के मर्यादापूर्ण चरित्र का भी केवल गायन ही प्रचलित हुआ। सन्त कवियों ने राग-रागिनियों को समाज-सुधार के लिए अधिक अपनाया था, जिसके लिए उन्होंने भी गायन को प्रधानता दी। आत्मशुद्धि के लिए अनहद-नाद को साध्य माना। राजदरबारों में संगीत जीविकोपार्जन के लिए था। वहाँ गायक, वादक और नर्तक अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए अपने-अपने क्षेत्र में योग्यता बढ़ाते थे। एक ही व्यक्ति में तीनों गुणों का समावेश आवश्यक नहीं था। फलस्वरूप दरबारी संगीतज्ञों की शास्त्रीय रचनाओं में भी हम संगीत गायन अथवा अधिक से अधिक वादन की चर्चा पाते हैं। दरबारी राग-रागिनियों का स्वरूप भी अधिकांशतया वृन्दावन के भक्त कवियों द्वारा प्रयुक्त राग-रागिनियों से भिन्न था क्योंकि वे ईरानी संगीत से मिश्रित थीं, और यही ईरानी मिश्रित संगीत का स्वरूप ही आज तक प्रचलित रहा है। अतः इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वृन्दावन के भक्त कवियों द्वारा प्रयुक्त राग-रागिनियों की तुलना रस की दृष्टि से आज के प्रचलित रागों के साथ करना तर्कहीन है। ठाठ पद्धति (ईरानी मिश्रित पद्धति) हो या मूर्च्छना पद्धति (विशुद्ध भारतीय पद्धति), इतना तो निश्चित है कि वृन्दावन के भक्त कवियों की राग-रागिनियों का स्वरूप आज से बहुत भिन्न था। यथा—आज जो भैरव का स्वरूप है वह उस युग के भैरव का नहीं था, आज जिस स्वरावलि के राग को हम भैरवी कहते हैं, वही स्वरावलि मध्यकालीन ठाठवादियों के तोड़ी की स्वरावलि थी। राग द्वारा रस-परिपाक में स्वरों का विशेष महत्त्व है, यदि उन्हीं में अन्तर आ जाये तो रसभाव में भी अन्तर आयेगा। भक्तिकाव्य के रागों और उनसे निष्पन्न होने वाले रसों को जानने के लिए उनके सही स्वरूप को जानना आवश्यक है जिसकी जानकारी हमें भारतीय पद्धति पर लिखे मध्ययुगीन संगीत-शास्त्र ग्रन्थों से प्राप्त हो सकती है। ऐसे कुछ प्रमुख ग्रन्थ शारङ्गदेव कृत 'संगीत रत्नाकर', कुम्भकर्ण कृत 'संगीतराज', महाराजा सवाई प्रतापसिंह देव कृत 'राधागोविन्द संगीत-सार', तानसेन कृत 'संगीतसार', चतुर दामोदर कृत 'संगीत-दर्पण', हरिराम व्यास कृत 'रागमाला' आदि।

[क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

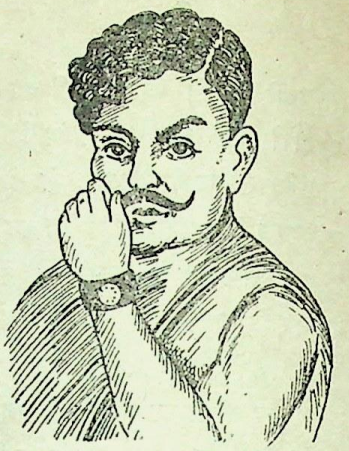

क्रान्तिकारी आजाद की हत्या में भारतीय जिम्मेदार

श्री लक्ष्मणप्रसाद मिश्र एडवोकेट

[चन्द्रशेखर आजाद को कौन नहीं जानता। उनके भस्मावशेष को बड़ी धूमधाम से प्रान्तीय सरकार ने ग्रहण किया है। इस लेख में उनके वीरगति प्राप्त होने का विवरण प्रस्तुत है। चन्द्रशेखर आजाद ने आत्महत्या कर ली थी, यह सही है। जिस समय अपने ही देश के एक विश्वासघाती ने नॉट बाबर को यह बता दिया कि दो व्यक्तियों में से चन्द्रशेखर आजाद कौन है उस समय वे और उनके साथी संवाद-पत्र पढ़ने में तल्लीन थे। उनकी अन्यमनस्कता का लाभ उठाकर नॉट बाबर ने आजाद के नजदीक आकर साइलेन्सर लगे पिस्तौल से आजाद के पाँव में इसलिए गोली मारी थी जिससे आजाद को जिन्दा कैद कर सके।

जब आजाद समझ गये कि वे पाँव की चोट के कारण बच नहीं सकेंगे तो उन्होंने आवश्यक पत्रादि अपने साथी को दे दिया था। साथी ने गोली का उत्तर गोली से देकर आक्रमणकारियों को दूर रखा था एवं स्वयं भी पीछे हट रहा था। अन्त में साथी भाग निकला और आजाद ने यह कहते हुये आत्महत्या कर ली "स्वदेशघातक मुझे ठगा नहीं तो अंग्रेज का बच्चा मेरा क्या कर सकता था।"

इसके बाद उन्हें पुलिसवालों ने कम से कम रायफल की पचास गोलियाँ मारी थीं। 'पोस्टमार्टम रिपोर्ट' में आजाद के शव पर रायफल की गोली की चोट का पाया जाना इस बात का प्रमाण नहीं था कि उन्होंने आत्महत्या नहीं की।]—सम्पादक सरस्वती

२७ फरवरी सन् १९३१ की बात है, लगभग १० बजे दिन गंगा-यमुना के इस पावन नगर प्रयाग के अल्फ्रेड पार्क में क्रान्तिकारियों एवं पुलिस के साथ मुठभेड़ हुई जिसके फलस्वरूप "हिन्दुस्तानी सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी" के प्रधान सेनापति श्री चन्द्रशेखर आजाद वीरगति को प्राप्त हुए।

घटना का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। २७ फरवरी १९३१ ई० को प्रातःकाल खुफिया विभाग के उप-अधीक्षक ठाकुर विश्वेश्वर सिंह और खुफिया विभाग के कानूनी सलाहकार श्री दालचन्द्र पार्क में घूमने गए थे। पार्क में उन्होंने एक हृष्ट-पुष्ट नौजवान युवक को देखा। इन लोगों को उस युवक को चन्द्रशेखर आजाद होने का सन्देह हुआ।

संयुक्त प्रान्त, बिहार, पंजाब, बंगाल तथा दिल्ली की पुलिस कई वर्षों से इस क्रान्तिकारी की तलाश में थी। काकोरी षड्यंत्र, सांडर्स हत्याकांड, लाहौर षड्यंत्र के मुख्य अभियुक्त के रूप में भी आजाद की खोज बड़ी तत्परता से की जा रही थी। उसकी गिरफ्तारी के लिए ५००० रुपये का पुरस्कार घोषित किया गया था। विश्वेश्वर सिंह ने दालचन्द्र से अपना संदेह प्रगट करते हुए यह कहा कि मुझे इस युवक के चन्द्रशेखर आजाद होने का संदेह है—इसके बाद वे दोनों अधिकारी पार्क से चले गये। लगभग ८ बजे वे दोनों पुनः पार्क में आये। इन्होंने पार्क में दो युवकों को बैठे हुए देखा। एक तगड़ा था दूसरा मध्यम कद का। अंत में विश्वेश्वर का विश्वास पक्का हो गया कि तगड़ा युवक चन्द्रशेखर आजाद ही है। उधर बनारस की पुलिस भी क्रान्तिकारियों का पीछा कर रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा जाता है कि आजाद के दल के ही किसी व्यक्ति ने गद्दारी की थी परन्तु यह कहाँ तक सत्य है, इसके सम्बन्ध में पुराने क्रान्तिकारी ही बता सकेंगे। ठाकुर विश्वेश्वर सिंह ने अपने अर्दली सिपाही को पुलिस अधीक्षक के पास भेजा। इसी समय वे दोनों युवक उठकर थार्नहिल रोड की तरफ जाने लगे। जिस समय ठाकुर विश्वेश्वर सिंह और दालचन्द्र इन युवकों का निरीक्षण कर रहे थे इसी बीच श्री नॉटबाबर पुलिस अफ्सर वहाँ अपनी मोटर कार से पहुँचा। उसके साथ दो शस्त्रधारी सिपाही थे। नॉटबाबर कार से उतरा और युवकों के पास १० गज के फासले से ही उनके बारे में पूछा। इतना पूछते ही युवकों ने पिस्तौल निकाल ली। उनको पिस्तौल निकालते देखकर नॉटबाबर ने उन पर फायर किया।

कुछ लोगों का कहना है कि पहले आजाद ने नॉटबाबर पर गोली दागी; लेकिन नॉटबाबर ने जो गोली चलाई वह आजाद के पैर में लगी और वह उठ नहीं सका। दूसरी गोली फिर नॉटबाबर ने आजाद के ऊपर चलाई। इस समय आजाद का दूसरा साथी शीघ्र ही उठा और गोली दागता हुआ पश्चिम की ओर से भागा। इस बीच आजाद और नॉटबाबर तथा दोनों सिपाहियों के बीच दनादन गोलियाँ चलती रहीं।

जब नॉटबाबर के रिवाल्वर की गोली खत्म हो गई तो उसने फिर अपना रिवाल्वर भरना चाहा। जैसे ही नॉटबाबर ने अपने रिवाल्वर में गोली भरनी शुरू की कि आजाद ने उसके हाथ पर गोली मारी जिससे उसका तमंचा छूटकर जमीन पर गिरा और वह घायल होकर एक पेड़ की ओट में छिप गया। इतना देखकर ठाकुर विश्वेश्वर सिंह ने पीछे से फायर करना प्रारम्भ किया। उनके ऊपर आजाद ने अपने माउजर से एक फायर किया जिससे उनके मुँह का जबड़ा टूट गया। ठाकुर विश्वेश्वर सिंह जीवन-पर्यन्त रोटी चबाकर नहीं खा सके। आजाद भी रेंग कर एक पेड़ की आड़ में छिपा और वहीं से दनादन गोली दागता रहा। अंत में विदेशियों से लड़ता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ।

लोगों का कहना है कि आखिरी गोली आजाद ने स्वयं मारकर अपने को समाप्त कर लिया। लेकिन कुछ लोगों का कहना है कि यह बात गलत है—आजाद के शरीर से माउजर की गोली नहीं निकली।

आजाद के वीरगति प्राप्त हो जाने के बाद भी उनके मृत शरीर पर पुलिस ने बराबर गोलियाँ दागीं। फिर उनके शव को उठाकर अपनी गाड़ी पर रखा। एकत्रित जनता ने उनके शव को माँगा लेकिन पुलिस ने शव नहीं दिया और ले जाकर उसे रसूलाबाद में जला दिया।

आजाद के शव के पास घटनास्थल पर ४४८ रुपये के नोट, १६ गोलियाँ और २२ खाली कारतूस तथा आजाद का माउजर जिसे वे 'बुखारा' कहते थे पड़े मिले और चारों तरफ खून था। शव उठाकर ले जाने के बाद वहाँ बहुत-सी जनता एकत्रित हुई और वह वहाँ की मिट्टी खोदकर उठा ले गयी। उन दिनों इलाहाबाद और बनारस की गलियों में अक्सर लोग गाया करते थे—

"मरते-मरते मर गया, लेकिन न छोड़ा आन को।
लाल खूँ से रंग गया, आजाद एलफ्रेड पार्क को।"*

---

*प्रस्तुत लेख व फोटो "भविष्य" नामक साप्ताहिक अखबार पर आधारित है।

—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

संध्या के आँसू—लेखिका—सरोज सक्सेना, मूल्य ८ रुपये, प्रकाशक—श्रीमती सरोज सक्सेना प्राचार्या के० जी० गर्ल्स कालिज भोगाँव, मैनपुरी।

इस पुस्तक में कवयित्री की ४४ कवितायें संकलित हैं। यह उनका प्रथम प्रयास है। परन्तु किसी-किसी कविता में उन्होंने जिस कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है उससे हम उन्हें प्रथम श्रेणी की कविता कह सकते हैं।

'आशा और निराशा' शीर्षक कविता में उन्होंने जो आश्वासन दिया है, 'मेरे मीत, निराश न हो, फिर ज्योति जलेगी, तिमिर ढलेगा' अंग्रेजी कविता की विख्यात पंक्ति 'पवन, यदि शीत का पतझार आता है तो क्या वसन्त के आगमन में विलम्ब रह सकता है' की याद दिलाती है।

निम्नलिखित पंक्तियाँ रवीन्द्रनाथ की कविता 'एकला चलो रे' की याद दिलायेगी—

"जीवन का हर पथ एकाकी
मत समझो इसको अभिशाप
जीवन है नूतन अधिकार
मत इसमें चाहो प्रतिदान"

'जलना ही उपहास बना जब' शीर्षक कविता की दो पंक्ति सुनिये—

"जलना ही उपहास बना जब कैसे दीपक हाय जलेगा
कैसे अपना 'तन मन' खोकर अब पीड़ा में प्यार पलेगा"

कई कविताएँ जहाँ पढ़ने में सुन्दर हैं वहीं भाव में गम्भीर हैं।

पुस्तक की छपाई एवं गेटअप उत्तम है। आवरण पृष्ठ आकर्षक है।

इस पुस्तक को स्कूल-कालिजों में पुरस्कार वितरण में सम्मिलित किया जा सकता है।

पुष्पांजलि (कहानी संग्रह)—प्रकाशक—साहित्य भवन, के० पी० कक्कड़ रोड, इलाहाबाद, मूल्य सात रुपये।

'सरोज' की लिखी हुई कहानियों का संग्रह है। कहानियाँ 'गद्य कविता' की शक्ल में भी लिखी गयी हैं। भाषा में कविता जैसा उच्छ्वास एवं प्रवाह है। यह एक नयी शैली है।

रचनायें भाषा एवं भाव के दृष्टिकोण से स्तुत्य प्रयास हैं परन्तु भावावेग के आधिक्य ने रचनाओं के 'टेम्पो' को गत्यवरोध किया। यदि लेखिका मानव-जीवन के दैनिक सुख-दुःख को लेकर नये दृष्टिकोण से कहानियाँ लिखें तो हमें विश्वास है, वे साहित्य को समृद्ध करेंगी।

वैसे पुस्तक की छपाई, गेटअप, आवरण पृष्ठ की सज्जा, सभी अत्युत्कृष्ट हैं।

—श्रीमती शीला देवी

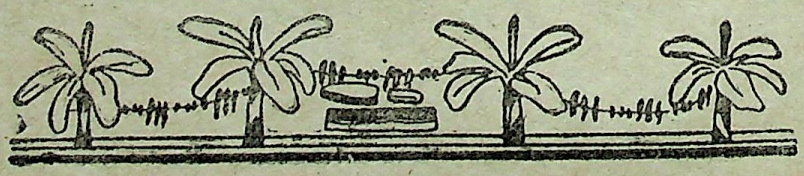

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

श्री कमलापति जन्मदिवस समारोह

प्रयाग में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भवन में पं० कमलापति त्रिपाठी के जन्मदिवस पर जो भव्य समारोह का आयोजन किया गया था उसका सभापतित्व भूतपूर्व विचारपति माननीय श्री हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी ने किया था।

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक एवं विद्वान् इस समारोह में भाग लेने बाहर से भी पधारे थे।

पं० कमलापति त्रिपाठी ने हिन्दी के लिए जो कुछ किया है एवं कर रहे हैं वह स्तुत्य है। 'सरस्वती' को अन्तर्हित होने से बचाने के लिए सरस्वती के इन वरपुत्र ने जो कुछ किया है उसे हम सदैव याद रखेंगे।

राजनीति, पत्रकारिता एवं हिन्दी भाषा की सेवा कमलापतिजी ने जिस निष्ठा के साथ की है उसके लिए यथार्थ ही उन्हें भारतरत्न कहा जा सकता है।

अभी हाल में जब वे देहली जा रहे थे तो हज़ारों शुभचिन्तकों ने रेलवे स्टेशन इलाहाबाद पर एकत्रित होकर उनकी सम्वर्धना की।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' एवं सरस्वती

'सरस्वती' के प्रति हिन्दी के प्रवीण एवं प्रमुख लेखकों के हृदय में स्नेह का भाव है। सभी को 'सरस्वती' का असामयिक समापन अच्छा नहीं लगा था।

'सरस्वती' ने अगणित हिन्दी लेखक बनाया है और आज उसके संकट के समय सभी महानुभावों से अनुरोध है कि वे 'सरस्वती' को रचनादान करके इसे पुनरुज्जीवित करें। 'भू-दान', 'रक्तदान', 'चक्षुदान' की तरह 'रचना-दान' भी अपना महत्त्व रखता है। संसार को यह विदित हो जाय कि हिन्दी साहित्यिक अपनी प्रिय पत्रिका को समय आने पर त्याग स्वीकार करके भी सेवा कर सकते हैं।

हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकार एवं लेखक श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने 'सरस्वती' को अपनी रचना देने का आश्वासन दिया है।

'सरस्वती' अश्कजी का आभार मानती और इसी प्रकार वह अन्य प्रमुख साहित्यिकों से रचना दान पाने की अपेक्षा करती है।

केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री

हिन्दी निदेशालय के निदेशक डा० हरबंसलाल शर्मा ने 'सरस्वती' की बीस प्रतियाँ अधिक खरीदकर इसकी सहायता करनी चाही थी। वे हिन्दीप्रेमी हैं और इस संस्था के निदेशक के नाते हिन्दी के प्रचार के लिए उत्तर-दायी हैं।

माननीय शिक्षा-मन्त्री प्रोफेसर नूरुलहसनजी ने हिन्दी-भाषी न होते हुए भी हिन्दी के प्रति जो प्रेम भाव दर्शाया है वह स्तुत्य है। उन्होंने सरस्वती के विशेषांक की एक हजार प्रतियाँ खरीदने का आदेश दिया। भारत के शिक्षा-मन्त्री के उदार दृष्टिकोण की जितनी प्रशंसा की जाय वह कम है।

अपने प्रदेश के शिक्षा-मन्त्री श्री अम्मार रिजवीजी से भी 'सरस्वती' सहायता के लिए अनुरोध करती है।

हिन्दी के छात्रों के लिए 'सरस्वती' की जो उपयोगिता है उसे देखते हुए शासन का यह कर्त्तव्य है कि समस्त कॉलिजों के हिन्दी विभाग को यदि 'सरस्वती' न भी दे सकें तो कम से कम सरकारी कॉलिज एवं स्कूलों की लाइब्रेरी को 'सरस्वती' अवश्य उपलब्ध करायें।

इससे जहाँ एक ओर हिन्दी के छात्रों को लाभ होगा दूसरी ओर इस प्राचीनतम पत्रिका के जीवित रहने का उपाय भी हो जायगा।

पं० रामनारायण मिश्र का निधन

हिन्दी मासिक पत्र 'भूगोल' के सम्पादक एवं भूगोल शास्त्र में अगाध पाण्डित्य रखनेवाले विद्वान् श्री राम-नारायण मिश्र का प्रयाग में २३ जुलाई को निधन हो गया। उन्होंने हिन्दी में भूगोल पर २०० पुस्तकों की रचना की है। कांग्रेस के लिए उन्होंने डा० जाकिर हुसैन एवं काका साहेब कालेलकर जैसे महान् लोगों के साथ काम किया था।

उनके निधन से शिक्षा-जगत् एवं हिन्दी की अपार क्षति हुई है। 'सरस्वती' उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री कामताप्रसाद गुरु

स्वर्गीय श्री कामताप्रसाद गुरु हिन्दी के सर्वप्रथम व्याकरणविद थे। हाल ही में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उनकी जन्मशती श्री व्ही० कृष्णस्वामी आय्यंगरजी के सभापतित्व में मनायी है। श्री प्रभात शास्त्री, डा० हरदेव बाहरी जैसे विद्वानों ने श्री गुरु के प्रति श्रद्धांजलि देते हुए हिन्दी भाषा को वर्तमान रूप देने में उन्होंने जो कुछ किया उस पर प्रकाश डाला।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने श्री आय्यंगर का स्वागत किया।

हिन्दी तथा उर्दू साहित्य

सहायता के लिए प्रांतीय सरकार एक लाख रुपये का विज्ञापन प्रति वर्ष उर्दू पत्रों को दिया करेगी। मुख्य मन्त्रीजी ने भी उर्दू प्रेमियों को आश्वासन दिया है कि उर्दू के लिए उपर्युक्त समिति जो कुछ सिफारिश करेगी वे उसका कार्यान्वयन करेंगे।

माननीय मुख्य मन्त्रीजी के उर्दू साहित्य के प्रति लगाव की हम प्रशंसा करते हैं। उर्दू का साहित्य वैचित्र्यपूर्ण है और हम उसकी उत्तरोत्तर उन्नति की कामना करते हैं।

साथ ही साथ सरस्वती माननीय मुख्य मन्त्रीजी का ध्यान हिन्दी साहित्य, तथा हिन्दी के लेखकों की दयनीय दशा की ओर आकर्षित करते हुए प्रार्थना करती है कि हिन्दी की उन्नति के लिए वे ठोस कदम उठायें।

हिन्दी के प्रति हिन्दी-प्रेमियों की उदासीनता इसकी वर्त्तमान दुरवस्था के लिए जिम्मेदार है।

श्री चन्द्रशेखर आजाद का एक पत्र एवं चिताभस्म

क्रान्तिकारी नेता श्री चन्द्रशेखर आजाद देश के स्वाधीनता संग्राम में २७ फरवरी १९३१ ई० को प्राण की आहुति देकर अमर हुए थे। उनका एक पत्र एवं चिताभस्म उनके चाचा पं० शिव विनायक मिश्र ने यत्नपूर्वक अपने पास रखी थी। सन् १९७० ई० में श्री मिश्र के निधन के पश्चात् उनके तीन लड़के सर्वश्री राजीव लोचन, फूलचन्द एवं श्यामसुन्दर ने भी उसे अपने पास सुरक्षित रखा था। विगत १० जुलाई को इन लोगों ने भस्म तथा पत्र को उत्तर प्रदेश के मन्त्री सर्दार कुलतार सिंह के हाथों अर्पण किया। सर्दार कुलतार सिंहजी अन्यतम प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सर्दार भगतसिंह के भाई हैं। सरकार इन दोनों स्मृति-चिह्नों को लखनऊ के अजायबघर में सुरक्षित रखेगी।

राजर्षि जन्मशती

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जन्मशती साहित्य सम्मेलन के हाल में बाबू गंगाशरण सिंह जी के सभापतित्व में मनायी। इस उपलक्ष्य में सर्वश्री सालिगराम जायसवाल, वाचस्पति पाठक, बहुगुणा, भगवतीप्रसाद शुक्ल, चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी और प्रभात शास्त्री, के० एन० मालवीया, राजाराम अनुरागी एवं और कई लोगों ने स्वर्गीय श्री टण्डन को श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं।

स्वर्गीय राजर्षिजी के प्रति प्रकृत श्रद्धा जतानी हो तो हमें हिन्दी के प्रसार एवं उन्नति के लिए आन्तरिक चेष्टा चाहिए केवल मौखिक शुभेच्छाओं से कुछ नहीं होता।

आकाशवाणी द्वारा आयोजित कवि-सम्मेलन

३१-७-७६ ई० को आकाशवाणी ने एक कवि-सम्मेलन का आयोजन किया था। २४ कवियों ने विभिन्न प्रान्तों से आकर सम्मेलन में भाग लिया था। यह सम्मेलन पूर्णतया असफल रहा। आजकल कवि-सम्मेलन में काव्य के दृष्टिकोण एवं साहित्य के दृष्टिकोण से कोई अच्छी कविता शायद ही कोई सुनाता हो। संयोजक लोग हास्य कविता पर जोर डालते हैं क्योंकि उससे सुननेवाले रह-रह-कर हँसी के ठहाके से महफिल को सरगरम रखते हैं और वही मापदण्ड सम्मेलन की सफलता का माना गया है।

कविता ऐसी होनी चाहिए जो अन्तर तक पहुँचे। हृद्तन्त्री में ऐसी झंकार उत्पन्न करे जिसका अनुरणन दीर्घ स्थायी हो। परिवार नियोजन की हँसी उड़ाकर अथवा अन्य गम्भीर विषयों पर हल्की बातें कहकर जो कविताएँ लिखी जाती हैं वे आकाशवाणी जैसी जिम्मेदार संस्था द्वारा आयोजित कवि सम्मेलन में पढ़ने के योग्य नहीं होतीं।

इस प्रकार का उद्देश्यहीन, लक्ष्यहीन, असंबद्ध कवि सम्मेलन 'आकाशवाणी' भविष्य में न किया करे क्योंकि इससे अकारण रुपये का अपव्यय होता है।

भ्रान्त धारणा

कुछ लोग अन्य भाषा की हँसी उड़ाकर अपनी परिचय दिया करते हैं। बँगला के विभूति

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याविनोद नामक अर्वाचीन लेखक उनमें से एक हैं। बँगला की सबसे अधिक बिकनेवाली मासिक पत्रिका 'नव-कल्लोल' के बँगला संवत् १३८२ के माघ अंक में प्रकाशित एक लेख 'बांगला भाषाय इंगराजी शब्देर अनुप्रवेश' में अकारण हिन्दी का उल्लेख करके हँसी उड़ाने का प्रयत्न किया गया है। आश्चर्य है कि 'नव कल्लोल' के सम्पादक एवं प्रकाशक ने कैसे इस लेख को प्रकाशित किया। इसमें कहा गया है 'टेलीफोन' शब्द को हिन्दी में 'कानफूस', 'टाई' को 'कण्ठ लँगोट', 'ब्लड प्रेशर' को 'खून का हिच-पिच का भिड़भाड़', 'रेलवे स्टेशन' को 'झिकझिक गाड़ी घर' कहा जाता है। लेखक ने इन कपोलकल्पित तथा कथित पर्यायवाची शब्दों को हास्यकर, श्रुतिकटु एवं गन्दा अनुवाद कहा है जब कि हिन्दी में ऐसे शब्द हैं ही नहीं।

लेखक महोदय को बता देना आवश्यक है कि हिन्दी में उपर्युक्त शब्दावली टेलीफोन, टाई आदि शब्दों के पर्यायवाची के रूप में कहीं नहीं कहा गया है। वस्तुतः वे हिन्दी शब्द ही नहीं हैं। यह सब लेखक का खुद का बनाया हुआ है। किसी भाषा को न जानते हुए इस प्रकार भ्रमात्मक रूप से उल्लेख करना—सो भी राष्ट्रभाषा को—धृष्टता ही नहीं अपितु अत्यन्त नीच मनोभाव, विकृत रुचि का परिचायक है एवं निन्दनीय है। हिन्दी में ब्लड प्रेशर को बँगला जैसा 'रक्तचाप', फोन को 'दूरभाष' रेलवे स्टेशन को 'रेलवे स्टेशन' कहा जाता है। इस प्रकार के लेख एक भाषा से दूसरे का विरोध, प्रादेशिकता की भावनाओं को बढ़ावा देकर देश की एकता को नष्ट करते हैं। ऐसे लेखक एवं प्रकाशक भी देश का अहित करते हैं।

मारिशस में विश्वहिन्दी साहित्य सम्मेलन

मारिशस में हाल में जो विश्वहिन्दी साहित्य सम्मेलन का आयोजन वहाँ की सरकार ने किया था उसमें केन्द्रीय सरकार के माननीय डा० कर्णसिंह एवं उत्तर प्रदेश के स्पीकर श्री वासुदेव सिंहजी एवं अन्य कुछ हिन्दीप्रेमी सज्जन मारिशस गये थे।

श्री वासुदेव सिंह हिन्दी के प्रेमी हैं एवं माने हुए विद्वान् हैं।

'सरस्वती' कई वर्ष पहिले ही मारिशस के विद्वानों द्वारा लिखित कई रचनायें प्रकाशित कर चुकी है। मारिशसवासियों की हिन्दी-प्रीति की प्रशंसा करते हुए 'सरस्वती' ने कई लेख प्रकाशित किया था।

खेद है कि केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकार ने उस 'सरस्वती' को इस विश्वहिन्दी सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमन्त्रित नहीं किया जब कि अनेक स्वल्प परिचित हिन्दीप्रेमी को भी इस सिलसिले में मारिशस जाने का निमन्त्रण दिया गया था।

मारिशस का हिन्दीप्रेम स्तुत्य है। हम इस सम्मेलन के प्रयास के सफल होने की कामना करते हैं।

काज़ी नज़रुल इस्लाम

बंगला के विद्रोही युगप्रवर्त्तक कवि काज़ी नज़रुल इस्लाम का ७७ वर्ष की आयु में निधन हो गया। वीररस की कविता में वे अपना सानी नहीं रखते थे। भारत के स्वाधीनता संग्राम के वे वीर सेनानी थे। भारत ने उनका सम्मान पद्मभूषण की उपाधि द्वारा किया था। पश्चिमी बंगाल सरकार से उन्हें पेन्शन मिलती थी। उनकी धर्म्म-पत्नी एक हिन्दू महिला प्रमीला सेनगुप्त थीं। उन्होंने काज़ीजी से विवाह करने पर भी अपना धर्मपरिवर्त्तन नहीं किया था। काज़ीजी का परिवार इस बात का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है कि विभिन्न धर्ममत में विश्वासी होते हुये भी किस प्रकार लोग शान्ति एवं प्रेम के साथ एक दूसरे के धर्ममत का सम्मान करते हुये जीवन निर्वाह कर सकते। अंग्रेजी शासन में उन्हें पूर्ण स्वाधीनतादावी करने के कारण पाँच वर्ष का कारावास दण्ड दिया था।

काज़ी नज़रुल का सम्मान बांगला देश एवं भारत सरकार दोनों ने किया। उनके निधन से बँगला भाषा की अपार क्षति हुई है।

प्रकाशक—बी० पी० श्रीवास्तव, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशन) प्रेस, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' से पुरस्कृत

गुप्त साम्राज्य का इतिहास

लेखक

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सुविख्यात लेखक एवं प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान्

डा० वासुदेवशरण उपाध्याय

गुप्त सम्राटों का काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। गुप्त काल में सारे वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति अपने विकास के उच्च शिखर पर थी। धन्य था वह युग जब शिक्षा, साहित्य ही नहीं ललित कला को भी उन महान् गुप्त सम्राटों ने विकसित कर अपनी आदर्श शासन-प्रणाली को इतिहास की एक अमर निधि बना दिया। विद्वान् लेखक की इस रचना के समकक्ष हिन्दी ही नहीं अँगरेजी में भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। सभी इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। अनेक विश्वविद्यालयों की एम० ए० कक्षाओं की परीक्षाओं के लिए यह पाठ्य पुस्तक बन गयी है। स्नातकों ने ही नहीं जनता ने भी इस ग्रन्थ का स्वागत किया है। ग्रन्थ का तीसरा संस्करण दो भागों में छप कर तैयार है।

प्रथम भाग १०·०० रुपये द्वितीय भाग १२·५० रुपये

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास

डॉ० ओमप्रकाश

हिन्दी भाषा में प्राचीन भारतीय इतिहास पर मौलिक रूप से लिखी गयी पुस्तकों का प्रायः अभाव सा है। इतिहास के गहन एवं विस्तृत विवेचन को लक्ष्य में रखते हुए विद्वान् लेखक ने यथासंभव आधुनिकतम शोधों और मतों का समावेश करते हुए इस पुस्तक की रचना की है। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कथन की पुष्टि उचित पाद टिप्पणियों द्वारा की गयी है। इतिहास के विद्वज्जगत् द्वारा प्रशंसित पुस्तक का प्रकाशन हमारे लिए भी गौरव की बात है। इतिहास के प्राक् मौर्यकाल का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी इस पुस्तक को यथाशीघ्र मँगाकर लाभ उठावें। मूल्य १२·०० रुपये

भारत का प्राचीन इतिहास

लेखक—प्रो० नागेन्द्रनाथ घोष एम० ए० संशोधक—ओमप्रकाश एम० ए० डी० फिल०

यह पुस्तक इतिहास जगत् में प्रायः दशाब्दियों से लोकप्रिय रही है मगर यह सर्वांशतः संशोधित संस्करण नवीनतम ऐतिहासिक उपलब्धियों, अनुसंधानों के परिणामों को ध्यान में रखते हुए प्रकाशित हुआ है। कलेवर पहले से दूना है। इस संस्करण की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं—राजनीतिक इतिहास के नवीन एवं ग्राह्य मतों के अनुसार वस्तु परिवर्तन, उनके सांस्कृतिक अंगों पर विशेष प्रकाश, पाँच विशेष प्रकार के मानचित्रों का समावेश और विवादात्मक विषयों को परिशिष्टों में देना आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जो विद्यार्थियों की ऐतिहासिक ज्ञानवृद्धि के प्रकाशस्तंभ हैं। जरूर चाहें पुस्तक मँगाकर लाभ उठावें। मूल्य १२·५० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध नवीनतम प्रकाशन

मेघदूत : राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित : डॉ० श्यामसुंदरदास द्वारा सम्पादित

इस ललित काव्य का अनुवाद जिस मनोयोग से राजा लक्ष्मणसिंह ने किया उसी सामर्थ्य का कौशल डॉ० श्यामसुंदरदास ने संपादन में दिखाया है। बड़े आकार-प्रकार की इस कलात्मक पुस्तक की साज-सज्जा विख्यात कलाकार असितकुमार हालदार के चित्रों से की गयी है। संस्कृत-हिन्दी छंदों के साथ-साथ भाषा में अर्थ देकर व कठिन संस्कृत शब्दों के सरल रूप देकर ग्रन्थ को अनुपम बनाया गया है। यह नवीन संस्करण अब पुनः उपलब्ध हो गया है। शीघ्र कला-काव्य प्रेमी पाठक आर्डर भेजने की कृपा करें। मूल्य १२·०० रुपये।

कुमारसंभव : पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

कुमारसंभव महाकवि कालिदास की अमर रचनाओं में एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। यह पुस्तक उसका छायानुवाद है। माता पार्वती के जन्म से लेकर महादेव शिव के साथ वन में विहार करने तक की सभी मनोरम कथायें सरल भाषा में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे महारथी विद्वान् लेखक ने दी हैं। यह कथा और उसकी भाषा दोनों ही ललित हैं। पढ़ने में उपन्यास का आनन्द मिलता है।

नवीन सजधज के साथ मुद्रित संस्करण का मूल्य ५·०० रुपये।

पुरातत्त्व निबंधावली : लेखक—राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् राहुल जी द्वारा प्रणीत ये अप्राप्य लेख जगह-जगह से इकट्ठा करके पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये गये हैं। विषय की उपयोगिता पर पुरातत्त्व के विद्यार्थियों से हमें कुछ कहना नहीं है। अब तक हमारे देश में पुरातत्त्व पर क्या हुआ और क्या आवश्यक है इस पर विद्वान् लेखक ने भली भाँति प्रकाश डाला है। यथास्थान कलात्मक चित्र खुदाई में कैसे मिले, उनका परिचय देते हुए इन दुर्लभ चित्रों को भी छापा गया है।

बड़े आकार में पुनःमुद्रित संस्करण का मूल्य १४·०० रुपये।

मनोरंजक संस्मरण : लेखक—भूतपूर्व सरस्वती सम्पादक पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी

प्राचीन और आधुनिक हिन्दी कवियों और साहित्यकारों के कुछ फुटकर संस्मरण

सरस्वती में प्रतिमास लिखकर इन संस्मरणों के प्रकाशित होते रहने पर एक बार स्वर्गीय बाबू शिवपूजन सहायजी ने सरस्वती-सम्पादक से कहा था कि वे सबसे पहिले "मनोरंजक संस्मरण" ही पढ़ते हैं। इसी प्रकार अनेक साहित्यिकों ने भी उनकी प्रशंसा की थी। सामान्य पाठकों में भी वे अत्यन्त लोकप्रिय हुए थे। वे ही साहित्यिक संस्मरण साहित्यिकों और पाठकों के निरन्तर अनुरोध पर इस पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए हैं।

पृष्ठ-संख्या (डिमाई) २९०, मूल्य ८·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

112876

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर २१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५४ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं। मूल्य—साधारण संस्करण—२५ रु०—डाक व्यय—५ रुपये।

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक का परिशिष्टांक : पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य पाँच रुपये।

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी को सरस्वती का विशेषांक भेंट करने के समारोह से प्रारम्भ कर प्रयाग में अनुष्ठित समारोह में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों, विद्वानों और साहित्यकारों आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

किशोर सीरीज़ उपन्यासमाला

किशोरों या उदीयमान भावी युवकों को प्रेरणा, उत्साह, साहस और मनोरंजन की विशद सामग्री उपस्थित करनेवाले उपन्यासों का अनुवाद अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं से हिन्दी में कराकर हमने हिन्दी किशोर पाठकों के लिए सुलभ किया है।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—लेखक जूले वर्न, मूल्य ३·००
मरु-मक्षकों के देश में—ले० जूले वर्न, मूल्य ३·००
उड़ते अतिथि—ले० जूले वर्न, मूल्य ३·००
रहस्यमय द्वीप—ले० जूले वर्न, मूल्य २·५०
द्वीप का रहस्य—ले० जूले वर्न, मूल्य ३·२५
भूगर्भ की यात्रा—ले० जूले वर्न, मूल्य ३·००
दृढ़प्रतिज्ञ—ले० जूले वर्न, मूल्य ३·२५
बुम्बारे में अफ्रीका यात्रा—ले० जूले वर्न, मूल्य ३·२५
चन्द्रलोक की यात्रा—ले० जूले वर्न, मूल्य ३·२५
चन्द्रलोक की परिक्रमा—ले० जूले वर्न, मूल्य ५·००
अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—ले० जूले वर्न, मूल्य ५·००
गुलीवर की यात्राएँ—ले० जोनाथन स्विफ्ट २ भागों में, प्रत्येक ५·००
मास्टर मैन रेडी—ले० कैप्टेन मैरियट, मूल्य ५·००
नीली झील—ले० स्टैकपोल, मूल्य ३·२५
स्विस परिवार राबिंसन—ले० रुडाल्फ वाएस, मूल्य ५·००
आकाश में युद्ध—ले० एच० जी० वेल्स, मूल्य ३·२५
गुप्तधन—ले० राइडर हैगार्ड, मूल्य ५·००

प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय और अपनी संतान को उत्तम शिक्षा प्रदान करने का संकल्प रखनेवाले माता-पिताओं के निजी पुस्तक संग्रहालयों के लिए ये पुस्तकें बेजोड़ ही हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी महान् धार्मिक पुस्तकें

सचित्र रामचरितमानस : यह हिन्दी के अमर कवि गोस्वामी तुलसीदास की सुप्रसिद्ध रचना है। इसमें गोस्वामीजी ने अपने आराध्य देव रामचन्द्रजी की कथा, सात काण्डों में, दोहा-चौपाई-सोरठा और छन्दों में कही है। डाक्टर श्यामसुन्दरदास ने इस अनुपम ग्रन्थ पर जो टीका लिखी है उससे अर्थ समझने में बहुत सुविधा होती है। ग्रन्थ के आरम्भ में विस्तृत भूमिका है जिससे गोस्वामीजी के जीवनचरित और उनकी समस्त रचनाओं पर विशद विवेचन है। चित्रों की अधिकता है। आकर्षक जिल्द से सज्जित पुस्तक का मूल्य ५० रुपये।

सचित्र हिन्दी महाभारत : महाभारत को पाँचवाँ वेद कहते हैं। इस ग्रन्थ में महर्षि वेद व्यास ने अनेक शास्त्रों का वर्णन करके जीवनक्रम की सुलभ रीति बतलाई है। तीर्थों और व्रतों का वर्णन है, पुण्य-पुरुषों की चरितावली है, ऋषियों के उपदेश हैं, सुन्दर उपाख्यान हैं और धर्म पर स्थिर रहकर उन्नति करने का मार्ग बतलाया गया है। यह ग्रन्थ १० खण्डों में समाप्त हुआ है। रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। टिकाऊ व कपड़े की बढ़िया जिल्द है। १० खण्डों के पूरे सेट का मूल्य २५० रुपये।

सचित्र महाभारत : इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गयी है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य २० रुपये।

दुर्गापाठ : ७०० संस्कृत मंत्रों का यह पञ्चबद्ध हिन्दी अनुवाद इतना लोकप्रिय हुआ कि पिछला संस्करण भी प्रायः समाप्त होने पर है। संस्कृत मंत्र व हिन्दी पद्य दोनों साथ-साथ छापे गये हैं। मातृकास्तुति, सप्तसती पाठ विधि, देवी कवच, अर्गला स्तोत्र, कीलक स्तोत्र, तीनों चरित्र तथा तीनों रहस्य सभी कुछ इसमें हैं। नयना-भिराम जिल्दबन्द और देवीजी की अति सुन्दर रंगीन तस्वीरों द्वारा संशोधित पुस्तक का मूल्य सजिल्द १० रुपये।

श्रीमद्भागवत : श्रीमद्भागवत में भगवान् कृष्ण की चमत्कारी लीलाओं, प्राचीन राजवंशी ऋषि-महर्षियों की गौरव गाथाओं और तात्कालिक भारत की सामाजिक दशा के साथ-साथ ज्ञान की पावन धारा बहाने का जो भगीरथ प्रयास वेदव्यासजी ने किया उसका गुणगान राजमहल से लेकर झोपड़ी तक समान रूप से होता है। हिन्दी पाठकों की सुलभता के लिए यह पुराण हिन्दी में २ खण्डों में छपकर प्रकाशित हुआ है। जिल्द बढ़िया, चित्रों की भरमार ग्रन्थ की विशेषता है। प्रथम खण्ड प्रेस में; द्वितीय खण्ड का मूल्य १० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य में भारी कमी !

एक डिप्टी की डायरी

पृष्ठ-संख्या १६८ लेखक : निशीथकुमार राय मूल्य १२.५०

हिन्दी की इस अनोखी पुस्तक के बारे में कुछ सम्मतियाँ देखिए

माननीय विचारपति श्री महेशनारायण शुक्ल

"Diary writing is a well recognised literary form, it is at least as old as Samuel Pepys but few have displayed real excellence in this genre, particularly in Hindi.

Shree Nishith Kumar Roy deserves to be congratulated on the remarkable success he has achieved in his "Diary of a Deputy" which is a landmark in the art of diary writing. When a Deputy Collector turns a lawyer he packs into his life a wealth of experience not vouchsafed to a person spending his life-time in the pursuit of a single avocation. This is the secret of the irresistible charm, the deeply absorbing quality, the surpassing human interest of these models of brevity strung together like pearls on a necklace.....the author has written the book in fluent, virile, idiomatic Hindi.

The author has a knack of selecting the most captivating captions for his pieces and enriching the same by his subtle irony and pleasant humour. His description of the performance of courtesans as "cultural activity extending far into the night" is a superb specimen of his incisive wit and buoyant humour. To a narrative of the sordid facts of actual life the writer has imparted the fascinating beauty of fiction and that is the highest measure of his success as a diary-writer."....

श्री श्यामनाथ कक्कड़, भूतपूर्व एडवोकेट जनरल, उ० प्र०, इलाहाबाद

....."यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पुस्तक का आरम्भ करने के पश्चात् बिना समाप्त किये छोड़ना बड़ा कठिन है। सत्य भी इतना मनोरंजक होता है यह डिप्टी की डायरी पढ़कर ही विश्वास होता है....."इस डायरी के माध्यम से उन्होंने आफिसर्स वर्ग का बड़ा सही चरित्र-चित्रण किया है। मैं आशा करता हूँ जो कोई इस पुस्तक को पढ़ेगा उसको भी इतना ही रस और आनन्द मिलेगा जितना मुझे मिला।"....

श्री प्रेमशंकर गुप्त, गवर्नमेन्ट एडवोकेट, हाईकोर्ट, इलाहाबाद

बन्धु निशीथ राय की 'एक डिप्टी की डायरी' ने १५-२० वर्ष पूर्व की डिप्टियों की इजलास में वकालत करते समय की वे स्मृतियाँ सहज जागृत कर दीं जो मस्तिष्क के किसी कोने में सुप्तावस्था में पड़ी थीं। यह उनकी लेखनी का चमत्कार है कि उनकी डायरी पढ़कर पाठक पाँचवीं दशाब्दी के पूर्वार्द्ध के डिप्टी कलक्टरों के संसर्ग एवं सम्पर्क में पहुँच जाता है, और वैसे ही जाने-पहिचाने कितने मुखड़े उसकी आँखों के सामने नाचने लगते हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह अनूठी पुस्तक है.....इस चित्रण में इस कारण और अधिक निखार आ गया है क्योंकि यह पात्र काल्पनिक न होकर लेखक के व्यक्तिगत सम्पर्क में आये हुए व्यक्ति हैं जिन्हें बिना संजोये-सँवारे लेखक ने ज्यों का त्यों पाठकों के सामने रख दिया है। वास्तव में उन भ्रमित व्यक्तियों को इस पुस्तक को पढ़कर मार्ग दर्शन लेना चाहिए जो अहमग्रस्त होकर जनसेवा से भटक गये हैं और जनसाधारण की दृष्टि में उपहास का पात्र बन रहे हैं। हिन्दी पाठक श्री राय के इस स्तुत्य प्रयास के लिए कृतज्ञ है।"....

श्री जे० एस० टिंगल, सुपरिण्टेण्डेण्ट आफ पुलिस

".....The book is so interesting that one cannot lay it aside without reading it from cover to cover. Not many books have yet been written which give any inkling into the personal and social life of officers....."

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

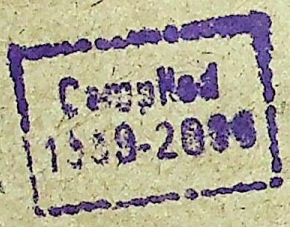

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri